

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-
विरचितया अनगारधर्मामृतवर्षिण्याख्यया व्याख्यया समलङ्कृतं

हिन्दी-गुर्जर-भाषाऽनुवादसहितम्-

श्री-ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रम् ।

SHREE GNĀTĀDHARMA
KATHĀNGA SOOTRAM

(तृतीयो भागः)

नियोजकः

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि-
पण्डितमुनि-श्रीकन्हैयालालजी-महाराजः

प्रकाशकः

‘मद्रासनिवासी-श्रीमान्-शेठ-ताराचंद्रजी-साहेब
गेलडा’ तत्प्रदत्त-द्रव्यसाहाय्येन अ० भा० श्वे०
स्था० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुखः श्रेष्ठि-
श्रीशान्तिलाल-मङ्गलदासभाई-महोदयः

मु० राजकोट

प्रथमा-आवृत्ति
प्रति १२००

वीर-संवत्
२४८९

विक्रम-संवत्
२०२०

ईसवीसन्
१९६३

मूल्यम्-रु० ३०-०-०

भणवानुं ठेकाणुं :
श्री अ. ला. जे. स्थानकेवासी
नेन शास्त्रोद्धार समिति,
ठे. गरेडिया कुवा रोड, श्रीन लोंज
पासे, राजकोट, (सौराष्ट्र).

Published by :
Shri Akhil Bharat S. S.
Jain Shastroddhara Samiti,
Garedia Kuva Road, RAJKOT,
(Saurashtra), W. Ry, India.



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष वत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतच्छन्दः



करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुल पृथ्वी ध्यान में यह लायगा ॥ १ ॥

मूल्याः ३. २५=००

प्रथम आवृत्ति : प्रत १२००
वीर संवत् : २४८६
विक्रम संवत् २०१६
धसवीसन् १९६३

मुद्रक :
मण्डिलाल छगनलाल शाह
नवप्रसात प्रिन्टीग प्रेस,
धी छांटा रोड, अमदावाद.

दक्षिण भारत में जैन समाज के प्रखर नेता दानवीरशेट
स्व० श्रीमान ताराचंदजी साहेब गेलडाकी

जीवनझलक

दक्षिण भारत के प्रवास पर आये हुए किसी भी व्यक्ति के दिलमें, मद्रास जैसे शहर के जैन समाज की शिक्षण और-वैद्यकीय संस्थाओं का सुव्यवस्थित क्रम और प्रबंध देखकर आनंद हुए बिना नहीं रह सकता । और स्वतः ही जैन समाज की दान-दिशा को इस ओर ले जाने वाले व्यक्तिके रूपमें दानवीर शेट स्व० श्रीमान् ताराचंदजी साहेब गेलडाका नाम व व्यक्तित्व नजरमें आये बिना नहीं रहता ।

मध्यम कदका हकहटा बदन, खादीकी धोती, खादीका कुरता और खादी की टोपी, पैरमें केन्वासके पादत्राण हाथमें छोटीसी लकड़ी-चमकती तेज आंखे और ७० वर्ष की अवस्थामें भी-जवानों की तेजी-ये आप के अभिन्न गुणों के सूचक थे । उनके यह सादगी अंत समय तक भी कायम रही थी ।

सन १९३७ में आप राजकोट पधारे थे वहां अनेक शिक्षण संस्थाओंको देखकर आपने अपने मनमें तय किया कि मैं मद्रास जाकर शिक्षाकी ऐसीही संस्थाएँ बनाउंगा । उनके विचारों की पुष्टि के रूपमें श्रीमान् विरदीचंदजी सा. मलेचाने ५००००) रूपया दान दिया और यहांकी श्री एस.एस.जैन एज्युकेशन सोसायटी की स्थापना हुई । इस सोसायटी के विकास के लिये आपने अपने व्यापार से भी-निवृत्ति ले ली और-क्रमशः इसका विकास करते रहे । इस सोसायटी के तत्वावधानमें क्रमशः प्राथमरी स्कूल, बोर्डिंग होम; हाईस्कूल एवं कॉलेज भी-स्थापित हुए और आज भी सुचारु रूपसे चल रहे हैं । जब तक ये संस्थाएँ पूर्णरूपसे आत्म-निर्भर नहीं हुईं तबतक आप सोसायटी के प्रारंभ कालसे मंत्री बने रहे । इतनाही नहीं प्रत्येक संस्था के लिये आपने दान दिया था ही-किन्तु ताराचंद गेलडा जैन विद्यालयके लिये ३१०००) रु.का भव्य दान दिया । इसके उपरांत भी २२००० रु. का और दान आपका होनेसे आप

सोसायटी के पेइन (संरक्षक) बने। सन १९५६ में अन्व्यों को भी-कार्य संचालन का अनुभव हो एतर्थ आप निवृत्त हुए, किन्तु अंत समय तक सोसायटी के प्रत्येक कार्य के लिये आप सलाह देते रहे और वह समाज का गौरव था कि आप जैसे कुशल एवं विचक्षण सलाहकार मिले।

दानके प्रवाह को शुभ मार्गमें वहाने का आप का प्रयास अत्यंत अनुकरणीय रहा। और मद्रास के जैन समाजने वैदकीय राहत क्षेत्रमें "जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी" स्थापित की-जिसके तत्त्वावधानमें कई डीसपेंसरियां और एक प्रसूतिगृह चल रहा है। आप उसकी कार्य कारिणी के पदाधिकारी व सदस्य रहे।

इतनाही नहीं आपने अपने व्यापार क्षेत्रको नहीं भूला और सैदापेट (भूदान) में शुद्ध आयुर्वेदिक औषधलय-जिनेश्वर औषधालय खोला जिसके साथ आगे जा कर अपनी पत्नीके नामपर राममुरजवाई गेलडा प्रसूतिगृह भी खोला। एतदर्थ आपने अपने द्वितीय पुत्र स्व. नेमीचंदजी की इच्छाके अनुसार अलग ट्रस्ट बना दिया है।

आपने अपनी जन्मभूमि कुचेरा के लिये भी कुछ करने के विचार से वहां पर भी छात्रालय शुरू १९४२ में करवाया और उसके प्रारम्भकाल से आपकी ओर से २५० मासिक सहायता उसे दी जा रही है-जो अब भी चालू है।

तदुपरांत ताराचंद गेलडा ट्रस्ट भी आपने कायम किया जिससे कई उदीयमान जैन समाज के विद्यार्थियों की आशाओं को प्रोत्साहन दिया गया और दिया जा रहा है।

उनके अदम्य उत्साह और जोश के साथ उनके दृढ मनोबल का परिचय न दिया जावे तो उनका व्यक्तित्व अधूरा रहेगा। वे अपने आप आगे बढ़ने वाले थे। बहुत ही छोटी उम्र में उन्होंने ने व्यापार किया और ताराचंद गेलडा एन्ड सन्स, टी. वी. ज्वेळरीज एवं महेन्द्र स्टोर्स आदि व्यापारिक फर्म चले। सामान्य पूंजीसे लेकर वे लाखोपति बने। सामान्य शिक्षा ज्ञान के वाद् भी चार भाषा की जानकारि और प्रबल व्यापारिक ज्ञान आपकी विशेषता थी।

आजीवन खादीव्रत, हाथघंटी का पीसा हुआ धान और गायका दूध-ची कठिन व्रत वे आजीवन निभाते रहे। समाज-सुधारणा भी आपने कई प्रकारसे की।

७८ वर्ष की आयुमें आपका पंडित-मरण हुआ जो आपके यशस्वी जीवन की यशकलगी के समान था। अर्थात् यशस्वी पुरुषों के शिरोमणि थे।

आपके सुपुत्र श्रीमान् भागचंदजी सा. गेलडा भी कर्मठ कार्यकर्ता हैं। जैन एन्ड नेशनल सोसायटी के आप सदस्य एवं पदाधिकारी रह चुके हैं—वर्तमानमें आप सोसायटीके सभापति हैं। गोसेवा और पांजरापोल के कार्यके लिये आप घर २ जाकर चंदा करने में संकोच महसूस नहीं करते और विगत आठेक वर्षों से आप मद्रास पांजरापोलके मंत्री हैं और उसका बहुत ही विकास किया है। द्वितीय पुत्र श्री नेमचंदजी स्वर्गवासी हुए हैं किन्तु आप भी औषधालय निमित्त ट्रस्ट करके गये हैं। तृतीय पुत्र श्री खुशालचंदजी व्यापार-कुशल हैं और कार्य-भार सम्हाले हुए हैं।

इस आगम प्रकाशन के लिये जब आपके पास डिप्यूटेशन पहुँचा तब इन सुपुत्रोंने उदारता से ५००१) रु. दिये हैं एतदर्थ धन्यवाद है। अन्य सज्जन भी उनका अनुकरण करें यही अभ्यर्थना है।

सेक्रेट्री
शास्त्रोद्धार समिति

ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र तृतीय भा. की विषयानुक्रमणिका

क्रमाङ्क	विषय	पेज
चौदहवां अध्ययन		
१	तेतलीपुत्र प्रधानके चरित्रका वर्णन	१-१८
पंद्रहवां अध्ययन		
२	नदिफलके स्वरूपका निरूपण	११-१३१
सोलहवां अध्ययन		
३	धर्मरुचि अनगारके चरित्र निरूपण	१३२-१८२
४	सुकुमारिका के चरित्रका वर्णन	१८३-२५१
५	द्रौपदी के चरित्रका निरूपण	२५२-२९६
६	द्रौपदी पूजा चर्चा	२९७-४२६
७	द्रौपदी के चरित्रका वर्णन	४२७-५८५
सत्रहवां अध्ययन		
८	नावसे व्यापार करने वाले वणिजोंका वर्णन	५८६-५९०
९	नावके निर्यामक का दिङ्मूढ होनेका कथन	५९१-५९५
१०	कालिक द्वीपमें सुवर्ण आदिका वर्णन	५९५-५९६
११	कालिक द्वीपमें हिरण्य आदिसे पोतकाभरना	५९७-६००
१२	कालिक द्वीपमें रहे आकीर्णाश्वों का वर्णन	६०१-६१९
१३	आकीर्णाश्वोंके द्रष्टांतको दाष्टान्तिक के साथ योजना	६२०-६३७
अठारहवां अध्ययन		
१४	सुंसमा दारिका के चरित्रका वर्णन	६३८-७०७
उन्नीसवां अध्ययन		
१५	पुंडरीक-कंडरीक मुनिके चरित्रका वर्णन	७०८-७५२
द्वितीय श्रुतस्कंध		
१६	द्वितीय श्रुतस्कंध का मङ्गलाचरण	७५३-७६०

१७	द्वितीय श्रुतस्कंधका उपक्रम प्रथम वर्ग-पहला अध्ययन	
१८	कालीदेवीका वर्णन दूसरा अध्ययन	७६१-८०६
१९	रात्रीदेवीका वर्णन तीसरा अध्ययन	८०६-८१०
२०	रजनी दारिका के चरित्रका निरूपण दूसरा वर्ग	८११-८१४
२१	शुभानिशुंभादि देवीयोंके चरित्रका वर्णन तीसरा वर्ग	८१५-८१९
२२	अम्बादि देवियोंके चरित्रका वर्णन चौथा वर्ग	८२०-८२५
२३	रूपादि देवियों के चरित्रका वर्णन पांचवा वर्ग	८२५-८२८
२४	कमलादि देवियों के चरित्रका वर्णन छठा वर्ग	८२९-८२३
२५	उत्तरदिशाके इन्द्र महाकाल आदिकोंकी अग्रमहिषियों का वर्णन सातवां वर्ग	८३४-८३५
२६	सूर्यभादि देवियों के चरित्रका वर्णन आठवां वर्ग	८३६-८३८
२७	चन्द्रभादि देवियों के चरित्रका वर्णन नववां वर्ग	८३९-८४२
२८	पद्मादिदेवियों के चरित्रका वर्णन दशवां वर्ग	८४२-८४५
२९	कृष्णादि देवियोंके चरित्रका वर्णन	८४६-८५१
३०	शास्त्र प्रशस्ति	८५२

તા. ૧૫-૭-૬૩ ના રોજ કલાસવાર

મેમ્બરોની સંખ્યા.

૨૭	આદ્ય મુરખીશ્રી, ૫૦૦૦ થી વધુ રકમ ભરનારા
૩૨	મુરખીશ્રી, ૧૦૦૦ થી વધુ રકમ ભરનારા
૧૩૩	સહાયક મેમ્બરો, ૫૦૦ થી વધુ રકમ ભરનારા
૫૮૬	લાઇફ મેમ્બરો, ૨૫૦ થી વધુ રકમ ભરનારા
૪૯	બીજાનંબરના જુના મેમ્બરો, ૧૫૦ થી વધુ રકમ ભરનારા
<hr/>	કુલ મેમ્બરો
૮૨૭	

રૂપિયા બસો પચાસ તથા રૂપિયા પાંચસો વાળા મેમ્બરો લેવાનું હવે બંધ છે. ફક્ત રૂ. ૧૦૦૧ થી મુરખીશ્રી માટે ૭૦ સીતેર જગ્યા ખાલી છે અને આદ્ય મુરખીશ્રી રૂ. ૫૦૦૧ થી હાખલ કરવામાં આવે છે.

મેમ્બરોની સંખ્યા પૂરતાં જ શાઓ છપાય છે જેથી પાછળથી હાખલ થનારને સૂત્રો મળવાં મુશ્કેલ છે માટે જુજાસુ ભાઈઓ તથા બહેનોને અમારી વિનંતી છે કે તેઓ મુરખીશ્રી અથવા આદ્ય મુરખીશ્રીમાં પોતાનું નામ જલ્દી મોકલી આપે

રાજકોટ
તા. ૧૫-૭-૬૩

નમ્ર સેવક,
સાકેરચંદ્ર ભાઈચંદ્ર શેઠ
મંત્રી.

आद्यमुर्खीश्री



शेठ साहेबश्री ताराचंदजी साहेब, गेलडा
मद्रास

આંધ્રમુરખીશ્રીઓ



(સ્વ.) શેઠશ્રી હરખચંદ કાલીદાસ વારિયા
ભાણુવડ.



કેઠારી હરગોવિંદ જ્ઞેચંદભાઈ
રાજકોટ.



શેઠશ્રી શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ



(સ્વ.) શેઠશ્રી ધારશીભાઈ જીવણુલાલ
ખારસી.



(સ્વ.) શેઠશ્રી જીનલાલ શામળદાસ ભાવસાર
અમદાવાદ

આધ્યમુરખીશ્રીઓ



(સ્વ) શેઠશ્રી શામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી
રાજકોટ.



શેઠશ્રી રામજીભાઈ શામજીભાઈ વીરાણી
રાજકોટ.



(સ્વ) વિનાદકુમાર વીરાણી
રાજકોટ.
(દીક્ષા લીધા પહેલાં શાસ્ત્રાભ્યાસ કરતા)



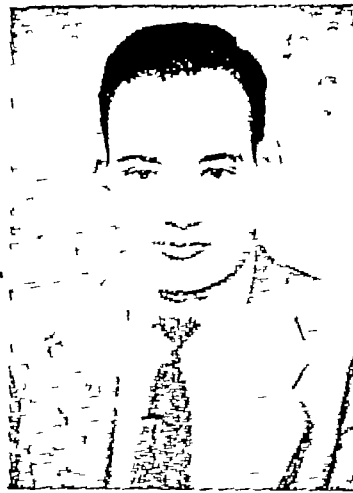
શેઠશ્રી મિશ્રીલાલજી લાલચંદજી સા. હુણિયા
તથા શેઠશ્રી જેવંતરાજજી લાલચંદજી સા

આધ્યમુરુખીશ્રીઓ

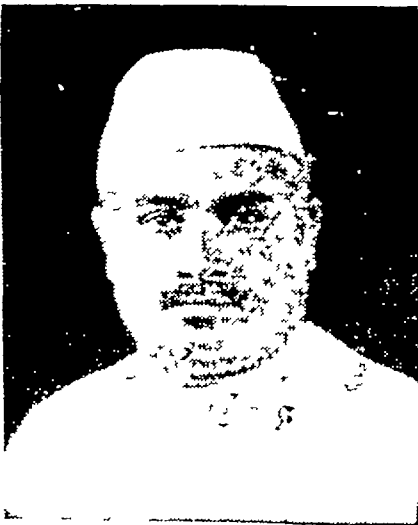


સ્વ. શ્રીમાન્ શેઠશ્રી મુકુન્દચંદ્ર સા.
ખાલિયા પાણી મારવાડ.

(સ્વ.) શેઠ રંગજીભાઈ મોહનલાલ શાહ
અમદાવાદ.



(સ્વ) શેઠશ્રી દિનેશભાઈ કાંતિલાલ શાહ
અમદાવાદ



શેઠશ્રી જીસિંગભાઈ પોચા
અમદાવાદ.



સ્વ. શેઠશ્રી આત્મારામ ભાણુકલાલ
અમદાવાદ.

આધ્યમુરુખીશ્રીઓ



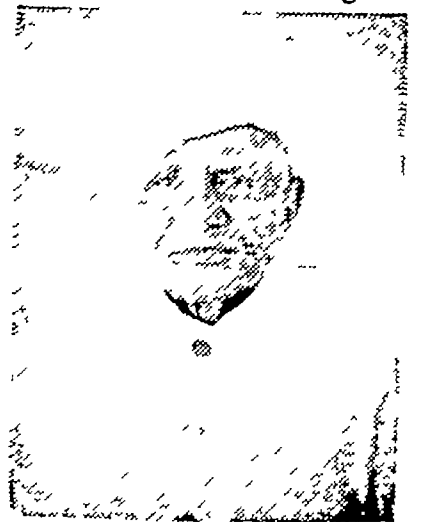
ગૅઠ સાહેબ શ્રી કીશનચંદ્ર સાહેબ
જેહરી દિલ્હી



સ્વ. શેઠશ્રી હરિલાલ અનોપચંદ શાહ
અંભાત



૧ વચ્ચે બેઠેલા મોટાભાઈ શ્રીમાન
મૂલચંદ્ર જવાહીરલાલ અરાડયા
૨ આગળમાં બેઠેલા મિશ્રીલાલ
અરડયા
૩ ઉભેલા મોઘી નાનાભાઈ પૂનમચંદ
અરડયા



શ્રી વૃજલાલ દુર્લભ અરેખ
રાજકોટ.

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

श्रीजैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालत्रिविरचितया अनगार-
धर्माभूतत्रिणिष्याख्यया व्याख्यया समलङ्कृतं

श्री-ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रम्

तृतीयो भागः

अथ चतुर्दशाध्ययनं प्रारभ्यते

अस्य व्याख्यायमानचतुर्दशाध्ययनस्य व्याख्यातेन त्रयोदशेनाध्ययनेन सहाय-
मभिसम्बन्धः-पूर्वस्मिन् अध्ययने सतां गुणानां गुणाभिवर्द्धकसद्गुरुरूपदेशरूप-
सामग्र्यभावे हानिरुक्ता, इहतु-तथाविधसामग्रीसद्भावे गुणसंपदुपजायते, इत्यभि-
धीयते, इत्येवं पूर्वेण सहाभिसंबद्धस्यास्पेदमादिसूत्रम्-‘जड्णं भते’ इत्यादि ।

मूलम्-जड्णं भते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जावं
संपत्तेणं तेरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, चोद्द-
समस्स णं भते ! णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महा-
वीरेणं जावं संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते? एवं खलु जंबू ! तेणं

चौदहवां अध्ययन प्रारंभः-

इस चौदहवें अध्ययन का तेरहवें अध्ययन के साथ इस प्रकार का
संबन्ध है-तेरहवें अध्ययन में जो यह बात कही गई है कि आत्मा में
सम्यग्दर्शन आदि प्रकट भी हो गये, हों परन्तु यदि उन को बढ़ाने वाली
सद्गुरु आदि की उपदेश रूप सामग्री का अभाव रहे तो उन गुणों की
हानि हो जाती है । इस अध्ययन में अब सूत्रकार यह स्पष्ट करेंगे कि
यदि जीव को तथाविध सामग्री प्राप्त होती रहती है तो गुण संपत्ति
भी बढ़ती रहती है:-‘जड्णं भते’ इत्यादि ।

चौदसुं अध्ययन प्रारंभ-

चौदसा अध्ययनने तेरसा अध्ययननी साथे आ नतने संपंध छे के
तेरसा अध्ययनमां ले आ वातनुं स्पष्टीकरण करवासा आण्युं छे के आत्मासां
सम्यग्दर्शन वगेरे प्रगट पण थछ गयां डोय छतां ले सद्गुरु वगेरेनी उप-
देश रुप तेसनुं वर्धन करनार सामग्री डोय नहि तो ते गुणोनी हानि थछ
जय छे. आ अध्ययनमां सूत्रकार डवे ये ज वात स्पष्ट करवा भागे छे के
एवने ले तथाविध सामग्री भणती रहे छे तो गुण संपत्ति पण, वधती रहे छे.

‘जड्णं भते’ इत्यादि-

कालेणं तेषां समणं तेयलिपुरं नाम नगरं पमयवणे उज्जाणे कणगरहे राया । तस्स णं कणगरहस्स पउमावई देवी । तस्स णं कणगरहस्स तेयलिपुत्ते णामं अमच्चे सामदंड-दक्खे । तत्थ णं तेयलिपुरे कलादे नामं मूसियारदारए होत्था अट्टे जाव अपरिभूए । तस्स णं भद्दा नामं भारिया । तस्स णं कलायस्स मूसियारदारयस्स धूया, भद्दाए अत्तया पोट्टिला नामं दारिया होत्था रूवेण य जोववणेण य लाव-ण्णेण य उक्किट्टा उक्किट्टसरीरा । तएणं पोट्टिला दारिया अन्नया कयाइ णहाया सव्वालंकारविभूसिया चेडियाचक्क-वालसंपरिवुडा उप्पि पासायवरगया आगासतलगंसि कण-गमणं तिंदूसणं कीलमाणीः विहरइ ॥ सू० १ ॥

टीका—जम्बूस्वामी पृच्छति—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता महा-वीरेण यावत्संप्राप्तेन त्रयोदशस्य ज्ञाताध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः चतुर्दशस्य खलु भदन्त ! ज्ञाताध्ययनस्य श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः

टीकार्थ—जंबू स्वामी पूछते हैं कि (भंते—जइणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं) हे भदंत ! यदि श्रमण भगवान् महावीरने कि जिन्होंने सिद्धिगति नाम का स्थान प्राप्त कर लिया है (तेरसमस्स णाय-ज्झयणस्स अयमट्टे पणत्ते चोदसमस्स णं भंते ! णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरे णं जाव संपत्तेणं के अट्टे पणत्ते) तेरहवें ज्ञाताध्ययन का पूर्वोक्त रूप से अर्थ प्रज्ञप्त किया है—तो हे भदंत ! चौदहवें ज्ञाता-ध्ययन का उन्हीं श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ निरूपित किया-

टीकार्थ—जंबू स्वामी पूछे छे डे (भंते ! जइणं समणेणं भगवया महा-वीरेणं जाव संपत्तेणं) हे भदंत ! ते श्रमण भगवान् महावीरे-डे जेअो सिद्ध गति स्थानने भेणयी थूथया छे

(तेरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्टे पणत्ते, चोदसमस्स णं भंते ! णायज्झ-यणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे पणत्ते)

तेरभा ज्ञाताध्ययनने पूर्वोक्त रूपे अर्थ निरूपित कथो छे तो हे भदंत ! ते श्रमण भगवान् महावीरे जेअो यौदभा ज्ञाताध्ययनने शेअो अर्थ निरूपित कथो छे ?

प्रज्ञप्तः । सुधर्मा स्वामी कथयति—एवं खलु जम्बू ! । तस्मिन् काले तस्मिन् समये तैतलिपुरं नाम नगरम् आसीत् । तत्र प्रमदवनं नाम उद्यानमासीत् । तस्य नगरस्य कनकरथो नाम राजाऽसीत् । तस्य खलु कनकरथस्य राज्ञः पद्मावती नाम देवी । तस्य खलु कनकरथस्य राज्ञः तैतलिपुत्रो नाम अमात्यः ' सामदंडदक्खे ' सामदण्डदक्षः=अत्र सामदण्डग्रहणाद् दानभेदयोरपि ग्रहणं तेन सामदानभेददण्डात्मकचतुर्विधोपायनिपुण इत्यर्थः आसीत् ।

तत्र खलु तैतलिपुरे कलादो नाम ' मूसियारदारण ' मूषीकारदारकः= सुवर्णकारदारकः, ' मूषी ' इति मूषापर्यायः, गौरादित्वाद्डीप्र यत्र सुवर्णादि है ? (एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं तेयलिपुरं नाम नगरं पमयवणे उज्जाणे कणगरहे राया, । तस्स णं कणगरहस्स पउमावई देवी) श्री सुधर्मा स्वामी अब श्री जंबू स्वामी के इस प्रश्न का उत्तर देने के अभिप्राय से कहते हैं—जंबू ! सुनो—तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार से है—उस काल और उस समय में तैतलिपुर नाम का नगर था । उस में प्रमदवन नाम का उद्यान था । उस नगर के राजा का नाम कनकरथ था । इस कनकरथ राजा की रानी का नाम पद्मावती देवी था । (तस्स णं कणगरहस्स तेयलिपुत्ते णामं अमच्चे सामदंडदक्खे । तत्थ णं तेयलिपुरे कलादे नामं मुसियारदारण होत्था अड्डे जाव अपरिभूए) उस कनकरथ राजा का अमात्य था जिस का नाम तैतलिपुत्र था । यह साम, दान, भेद और दंड इन चार प्रकार की राजनीति में विशेष पटु निपुण था । उसी तैतलिपुर में कलाद नाम का

(एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं तेयलिपुरं नाम नगरं पमयवणे उज्जाणे कणगरहे राया । तस्स णं कणगरहस्स पउमावई देवी)

श्री सुधर्मास्वामी डवे श्री जंबू स्वामीने आ प्रश्नोना जवाअ आपवानी धिच्छथी डडे छे डे डे जंबू ! सांलणेा तमारा प्रश्नोना जवाअ आ प्रमाणे छे डे ते डणे अने ते समये तैतलिपुर नामे नगर डतुं. तेमां प्रमदवन नामे उद्यान डतुं. ते नगरना राजानुं नाम कनकरथ डतुं. ते कनकरथ राजानी राणीनुं नाम पद्मावती डतुं.

(तस्स णं कणगरहस्स तेयलिपुत्ते णामं अमच्चे सामदंडदक्खे । तत्थ णं तेयलिपुरे कलादे नामं मूसियारदारण होत्था अड्डे जाव अपरिभूए)

ते कनकरथ राजानो अेक अमात्य (मंत्री) डतो जेनुं नाम तैतलिपुत्र डतुं. ते साम, दान, भेद अने दंड अे थारे अकारनी नीतिमां सविशेष निपुण-कुशल डतो. ते तैतलिपुरमां कलाद नामे मूषीकार दारक (सोनीनेा पुत्र)

गाल्यते सा, तां करोति=साधनसामग्रीत्वेन निष्पादयति, इतिव्युत्पत्त्या मूषीकार-
इति सुवर्णकारे योगारूढोऽय शब्दः । ' होत्था ' आसीत् । यो हि आढ्यो यावद्-
परिभूतः । तस्य खलु कलादस्य मूषिकारदारकस्य दुहिता भद्राया आत्मजा
पोट्टिला नाम दारिका आसीत्, याहि रूपेण च=आकृत्या, यौवनेन च=तारूप्येन
च लावण्येन च=शरीरोत्कृष्टकान्ति विशेषेण उत्कृष्टा अत्रैव उत्कृष्टशरीराऽसीत् ।
ततः खलु पोट्टिला दारिका अन्यदा कदाचित् स्नाता सर्वालङ्कारविभूषिता

मूषीकार दारक-सुवर्णकार का पुत्र-रहता था । मूषी शब्द का अर्थ
सांचा है । इस में सुवर्णादि द्रव्य पिघलाये जाते हैं । इस सांचे को जो
यनाता है उस का नाम मूषीकार है । इस व्युत्पत्ति के अनुसार यह
शब्द सुवर्णकार (सोनार) में योगारूढ हुआ है । यह मूषीकार दारक
आढ्य यावत् अपरिभूत था । (तस्स णं भद्रा नामं भारिया, तस्स णं
कलायस्स मूसियारदारयस्स धूया, भद्राए अत्तया पोट्टिला नामं दारि-
या होत्था, र्वेण य जोव्वणेण य लावण्येण य उक्किट्ठा उक्किट्ठ
सरीरा) इस मूषिकार दारक कलाद-सौनी की अत्यन्त प्रिय पोट्टिलो
नाम की लड़की थी जो इस की पत्नी भद्रा की कुक्षि से उत्पन्न हुई
थी । यह आकृति से, यौवन से एवं लावण्य से-शारीरिक उत्कृष्ट कान्ति
से-बहुत ही अधिक मनोहर थी-अतः इस का शरीर बहुत अधिक
उत्तम था । (तएणं पोट्टिला दारिया अन्नया कयाइं ण्हाया सव्वालंकार-

रहेतो इतो ' मूषी ' शब्दनेो अर्थं सांचो (भीष्णुं) छे. तेमां सोनुं वगेदे
द्रव्येओ आगाणवामा आवे छे. आ सांच्याने णनावनारनुं नाम मूषीकार छे. आ
व्युत्पत्तिने लधने आ शब्द सुवर्णकार (सोनी) भाटे योगारूढ थर्थ गथेओ छे.
ते मूषिकारदारक आढ्य (धनवान) यावत् अपरिभूत इतो.

(तस्स णं भद्रा नामं भारिया तस्स णं कलायस्स मूसियारदारयस्स धूया
भद्राए अत्तया पोट्टिला नामं दारिया होत्था, र्वेण य जोव्वणेण य लावण्येणं
य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा)

ते मूषिकारदारक इलाह सोनीनी भूषण वडादी पोट्टिला नामे पुत्री इती
ने तेनी पत्नी लद्राना गर्भथी उत्पन्न थर्थ इती, ते आकृतिथी, यौवनथी,
लावण्यथी-शरीरनी उत्कृष्ट-कान्तिथी बहु व मनोहर इती, अथी तेनुं शरीर
भूषण उत्तम इतुं.

(तएणं पोट्टिलादारिया अन्नया कयाइं ण्हाया सव्वलंकारविभूसिया चेडिया-
चक्कन्नलसंपरिवुडा उप्पि पासायवरगया आगासतलगंसि कणमएणं त्तिदस-
एणं कीलमाणी २ विहरइ.)

‘चेडियाचक्रवालसंपरिवुडा’ चेटिकाचक्रवालसंपरिवृता=चेटिका:=दास्यस्तासां यच्चक्रवालं मण्डलं तेन संपरिवृता=सहिता दासीसमूहपरिवेष्टितेत्यर्थः, उपरिप्रासादं वरगता प्रासादोपरिस्थिता-आकाशतले=अनावृतप्रदेशे ‘छत्त’ इति प्रसिद्धे कनकमयेन=स्वर्णनिर्मितेन ‘तिंदूसएणं’ तिन्दूसकेन=कन्दुकेन क्रीडन्ती २ विहरति ॥ सू० १ ॥

मूलम्-इमं च णं तेयलिपुत्ते अमच्चे णहाए आसखंधवरगए महया भडचडगरवंदपरिक्खित्ते आसवाहणियाए णिजायमाणे कलायस्स मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीइवयइ। तएणं से तेयलिपुत्ते मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणे २ पोडिलं दारियं उप्पिं पासायवरगयं आगासतलगंसि कणगतिंदूसएणं कीलमाणीं पासइ, पासित्ता पोडिलाए दारियाए रूवे य जाव अज्झोववन्ने कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता। एवं वयासी - एसा णं देवाणुप्पिया ! कस्स दारिया ? किं नामधेज्जा ?। तएणं कोडुंबियपुरिसा तेयलिपुत्तं एवं वयासी-एसा णं सामी ! कलायस्स मूसियारदारगस्स धूया, भहाए अत्तयापोडिला नामं दारिया रूवेणं य जाव उक्किट्ट-सरीरां। तएणं से तेयलिपुत्ते आसवाहणियाओ पडिनियत्ते समाणे

विभूसिया चेडियाचक्रवालसंपरिवुडा उप्पिं पासायवरगया आगास तलगंसि कणगमएणं तिंदूसएणं कीलमाणी २ विहरइ) एक दिन की बात है कि यह स्नान कर के तथा समस्त आभरणों से विभूषित हो करके अपनी दासियोंके साथ प्रासाद के ऊपर छत्त पर सुवर्ण निर्मित कन्दुक (गेंद) से क्रीडा कर रही थी । सूत्र ॥ १ ॥

अेक-दिवसे ते स्नान कर्या आह पोताना यथा अंगोने धरेणुंअोर्था शणुगारीने पोतानी दासीओनी साथे मडेलनी उपरनी अगाशीमां सोनार्थी अनावधोमां आवेली हडीथी रभी रंडी डती ॥ सूत्र “ १ ” ॥

अब्भितरट्ठाणिजे पुरिसे सदावेइ, सदावित्ता, एवं वयासी-
गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! कलादस्स मूसियारदारयस्स
धूयं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं मम भारियत्ताए वरेह ।
तएणं ते अब्भंतरट्ठाणिजा पुरिसा तेतलिणा एवं वुत्ता समाणा
हट्टुट्ठा करयलपरिग्गाहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्ठु
तहत्ति किच्चा जेणेव कलायस्स मूसियारस्स गिहे तेणेव उवा-
गया । तएणं से कलाए मूसियारदारए ते पुरिसे एज्जमाणे
पासइ, पासित्ता हट्टुट्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्त-
ट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता, आसणेणं उवणिमंतेइ उव-
णिमंतित्तां, आसत्थे वीसत्थे सुहासणवरगए एवं वयासी-
संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! किमागमणपओयणं ? तएणं ते
अब्भितरट्ठाणिजा पुरिसा कलायं मूसियदारयं एवं वयासी-
अम्हे णं देवाणुप्पिया ! तव धूयं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं
तेयलिपुत्तस्स भारियत्ताए वरेमो, तं जइ णं जाणासि देवाणु-
प्पिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो संजोगो ता
दिज्जउणं पोट्टिला दारियातेयलिपुत्तस्स, तो भण देवाणुप्पिय !
किंदलामो सुक्कं ? तएणं कलाए मूसियारदारए ते अब्भित-
रट्ठाणिजे पुरिसे एवं वयासी-एस चेव णं देवाणुप्पिया ! मम
सुक्के, जन्नं तेयलिपुत्ते मम दारिया निमित्तेणं अणुग्गहं करेइ ।
ते अब्भितरट्ठाणिजे पुरिसे विपुलेणं असणपाणखाइमसाइ-
मेणं पुप्फवत्थ जाव मल्लालंकारेणं सकारेइ, सम्माणेइ, सका-
रित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ । तएणं ते कलायस्स मूसिया-

रदारयस्स गिहाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता, जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता, तेयलिपुत्तस्स अमच्चस्स एयमद्धं निवेदेति ॥ सू० २ ॥

टीका—‘इमं च णं’ इत्यादि । अस्मिंश्च खलु समये तेतलिपुत्रोऽमात्यः स्नातः ‘आसखंधवरगए’=अश्वस्कन्धवरगतः=अश्वारूढः ‘महया भटचडगरवंदपरिक्खित्ते’ महाभटचटकरवृन्दपरिक्षिप्तः महान्तो भटचटकराः=भटसमूहाः तेषां वृन्दैः=समूहैः परिक्षिप्तः=परिवृतः सन् ‘आसवाहणियाए’ अश्ववाहनिकायै=अश्ववाहनेन क्रीडनार्थं ‘णिज्जायमाणे’=निर्यान्=निर्गच्छन् कलादस्य मूषीकारदारकस्य गृहस्य अदूरसामन्तेन पार्श्वभागेन ‘वीइवयइ’=व्यतिव्रजति=गच्छति । ततः खलु स तेतलिपुत्रो मूषीकारदारकस्य गृहस्य अदूरसामन्तेन व्यतिव्रजन् पोड्डिलं दारिकाम्

‘इमं च णं तेयलि पुत्ते अमच्चे’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(इमं च णं) इसी समय (तेयलिपुत्ते अमच्चे ण्हाए आसखंधवरगए महया भटचडगरवंदपरिक्खित्ते आसवाहणियाए णिज्जायमाणे कलायस्स मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीइवयइ) तेतलि पुत्र अमात्य स्नान से निवट कर घोड़े पर चढा हुआ बड़े २ भट समूहों के वृन्दों से घिरा होकर अश्वक्रीडा के लिये मूषीकारदारक कलादके (सोनार) मकानके पास से निकला । (तएणं से तेयलिपुत्ते मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणे २ पोड्डिलं दारियं उप्पि पासायवरगयं आगासतलगंसि कणगतिदूसएणं कीलमाणी पासइ) मूषीकारदारक कलाद के मकान के पास से होकर जाते हुए

इमं च णं तेयलिपु अमच्चे’ इत्यादि—

टीकार्थ—(इम च णं) ते वधते

(तेयलिपुत्ते अमच्चे ण्हाए आसखंधवरगए महया भटचडगरवंदपरिक्खित्ते आसवाहणियाए णिज्जायमाणे कलायस्स मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीइवयइ)

तेतलिपुत्र अमात्य स्थानथी परवारीने घोडा उपर सवार थया अने त्थारपथी विशाण लठो (थोद्धाओ) ना समूहोथी वीटणाधने अश्वक्रीडा माटे मूषीकारदारक कलादना घरनी पासे थधने नीकल्या.

(तएणं से तेयलिपुत्ते मूसियादारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणे २ पोड्डिलं दारियं उप्पि पासायवरगयं आगासतलगंसि कणगतिदूसएणं कीलमाणी पासइ)

उपरि प्रासादवरगतामाकाशतले कनकतिन्दूसकेत क्रीडन्ती पश्यति, दृष्ट्वा, पोष्टि-
लाया दारिकाया रूपे च यौवने चलावण्ये च 'जाव अज्ज्ञोववन्ने' यावत्-सूच्छितः,
गृद्धः, ग्रथितः, अध्युपपन्नः = अत्यन्तसक्ताइत्यर्थः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति,
शब्दयित्वा, एवमवदत्-एषा खलु देवानुप्रियाः ! कस्य दारिका किं नामधेया ? ।
ततः खलु कौटुम्बिकपुरुषाः तेतलिपुत्रम् एवमवदन्-एषा खलु स्वामिन् ! कलादस्य
मूषीकारदारकस्य दुहिता, भद्राया आत्मजा पोष्टिला नाम दारिका रूपेण च
उस तेतलिपुत्र अमात्य ने प्रासाद के ऊपर छत पर सुवर्ण की कन्दुक
(गेंद) से क्रीडा करती हुई उस पोष्टिला दारिका को देखा । (पासित्ता
पोष्टिलाए दारियाए रूपे य जाव अज्ज्ञोववन्ने कोडु वियपुरिसे सदावेह
सदावित्ता एवं वयासी-एसा णं देवाणुप्पिया कस्स दारिया ? किं नाम
धेज्जा ?) देख कर वह उस पोष्टिला दारिका के रूप, यौवन एवं लावण्य में
सूच्छित, गृद्ध, ग्रथित बनकर उस पर अत्यन्त आसक्ति में युक्त हो
गया । उसी समय उसने कौटुम्बिकपुरुषों को बुलाया-बुलाकर उन
से इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियो ! कहो यह कन्या किसकी है और
इसका नाम क्या है ? (तएणं कोडुं वियपुरिसा तेयलिपुत्तं एवं
वयासी-एसा णं सामी ! कलायस्स मूसियारदारगस्स धूया भद्दाए
अत्तया पोष्टिला नामं दारिया रूपेण य जाव उक्किट्टसरीरा) उन कौटु-
म्बिक पुरुषों ने, तेतली पुत्र से ऐसा कहा-हे स्वामिन् ! यह मूषीकार
दारक कलाद की पुत्री है जो भद्रा भार्या की कुक्षि से उत्पन्न हुई है ।

भूषिकारदारक कलादना घरनी पास थपने जाता ते तेतलिपुत्र अमात्ये
भडेलना उपरनी अगाशी उपर सोनानी, दधीथी रमती ते पोष्टिला दारिकाने लेधः
(पासित्ता पोष्टिलाए दारियाए रूपे य जाव अज्ज्ञोववन्ने कोडुं वियपुरिसे सदा-
वेइ सदावित्ता एवं वयासी एसा णं देवाणुप्पिया कस्स दारिया ? किं नामधेज्जा ?)
ते पोष्टिला दारिकाने लेधने ते तेना इप, यौवत् अने लावण्यमां भूच्छित
गृद्ध, ग्रथित अनीने अत्यन्त आसक्त थर्ध गथे ततत ज तेले कौटुम्बिक
पुश्योने जोलाव्या अने जोलावीने तेले तेओने आ प्रभावे कहु के डे देवा
नुप्रियो ! जोलो, आ कन्या डोनी छे अने ओनुं शुं नाम छे !

(तएणं कोडुं वियपुरिसा तेयलिपुत्तं एवं वयासी-एसा णं सामी । कलायस्स
मूसियारदारगस्स धूया, भद्दाए अत्तया पोष्टिला नामं दारिया रूपेण य जाव
उक्किट्ट सरीरा)

ते कौटुम्बिक पुश्योओ तेतलिपुत्रने आ प्रभावे कहु के डे स्वामिन् !
ते भूषिकारदारक कलादनी पुत्री छे अने भद्राभार्याना गर्भथी तेना जन्म थयो

यावत्-उत्कृष्टशरीरा अस्ति । ततः खलु स तेतलिपुत्र अश्ववाहनिकायाः प्रति-
निवृतः=प्रत्यागतः सन् ' अर्धितरठाणिज्जे ' अभ्यन्तरस्थानीयान्=अन्तरङ्गप्रेष्य-
पुरुषा शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदत्-गच्छत खलु गृयं देवानुप्रियाः! कलादस्य
मूषीकारदारकस्य दुहितरं भद्राया आत्मजां पोड्डिलां दारिकां मम भार्यात्वेन
वृणुत । हे देवानुप्रियाः गृयं तथा प्रयतन्वप् , यथा स मूषीकारदारकः स्वदुहितरं
मम भार्यात्वेन महं दद्यादिति तत्रः । ततः खलु ते अभ्यन्तरस्थानीयाः पुरुषास्ते-
तलिना एवमुक्ताः सन्तो हृष्ट तुष्टाः करतलपरिमृहीतं शिर आवर्त्तं मस्तकेऽञ्जलिं
कृत्वा, ' तदत्ति ' तथेति तथा करिण्यामीति ' किंचा ' कृत्वा=स्वीकृत्य यत्रैव कला-

इस का नाम पोड्डिला है । रूप आदि से यह बहुत ही उत्कृष्ट शरीर
वाली है । (तएणं से तेयलिपुत्ते आसवाहणियाओ पडिनियत्ते समाणे
अर्धितरठाणिज्जे पुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी, गच्छहणं
तुव्भे देवाणुप्पिया ! कलादस्स मूसियारदारयस्स धूयं भदाए अत्तयं
पोड्डिलं दारियं मम भारियत्ताए वरेह) इस के बाद वह तेतलि पुत्र
अमात्य, अश्ववाहनिका से पीछे जब लौटा तो लौटते ही उसने अपने
अन्तरंग प्रेष्य पुरुषों को बुलाया-और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा-
हे देवानुप्रियों ? तुम लोग जाओ-और मूषीकार दारक कलाद की पुत्री
जिसका नाम पोड्डिला है, जो भद्रा की कुक्षि से उत्पन्न हुई है उसे मेरी
भार्यारूप से वरआओ । तात्पर्य इत का यह है कि तुमलोग वहां
जाकर ऐसा प्रयत्न करो कि जिस से वह मूषीकारदारक कलाद अपनी
पुत्री को पत्नी के रूप में सुझे दे देवें । (तएणं ते अभ्यन्तरठाणिज्जा
पुरिसा तेतलिणा एवं वुत्ता समाणा हइ तुट्ठां करयल परिग्गहियं सिरसा

छे. तेनु नाम पोड्डिला छे ते इप वगेथी भूणञ् उत्कृष्ट शरीरवाणी छे.

(तएणं से तेयलिपुत्ते आसवाहणियाओ पडिनियत्ते समाणे अर्धितरठाणिज्जे
पुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी गच्छहणं तुव्भे देवाणुप्पिया ! कलादस्स
मूसियारदारयस्स धूयं भदाए अत्तयं पोड्डिलं दारियं मम भारियत्ताए वरेह)

त्यारपथी ते तेतलिपुत्र अमात्य अश्ववाहनिकाथी धेर पाछे आन्थे।
त्यारे आवतांती साथे न तेणे पोताना-अन्तरंग प्रेष्य पुत्रोने जोलाव्या अने
जोलावीने तेमने आ प्रमाणे उछु के हे देवानुप्रियो ! तमे नन्थो अने मूषी-
कारदारक कलादनी पुत्री छे-के नेनु नाम पोड्डिला छे, अने ने भद्राना गर्भथी
उत्पन्न थर्ध छे-तेने भार्या उपमां मने आपो तात्पर्य आ प्रमाणे छे के तमे
दोके त्यां न्धने जेवी केशिश करे के नेथी ते मूषीकारदारक कलाद पोतानी
पुत्रीने पत्नी इपमां मने आपी दे.

दस्य मूषीकारदारकस्य गृहं तत्रैव उपागताः । ततः खलु स कलादो मूषीकारदारकः
तान् अभ्यन्तरस्थानीयान् पुरुषानेजमानान् पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टोऽतिशयप्रमुदितः
आसनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय तान् सम्मानयितुं तेषामभिमुखं सप्ताष्टपदानि

वत्तं मत्थए अंजलिं कद्दु तहत्ति किञ्चा जेणेव कलायस्स मूसियारस्स
गिहे तेणेव उवागया) इस प्रकार तैतलि पुत्र के द्वारा कहे गये वे
अन्तरंग प्रेष्य पुरुष हृष्ट तुष्ट होते हुए वहाँ से निकल कर मूषीकार
कलाद का जहाँ घर था वहाँ आये । आते समय उन्होंने तैतलि पुत्र
को दोनों हाथों की अंजलि बनाकर और उसे मस्तक पर रख कर नम-
स्कार किया-और हम आपने जैसा कहा है वैसा ही करेंगे इस बात
को उसे आश्वासन देकर स्वीकार किया था । (तएणं से कलाए मूसि-
यारदारए ते पुरिसं एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हृष्ट तुष्टे आसणाओ
अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता आसणे-
णं उवणिमंतेइ, उवणिमंत्तित्ता आसत्थे वीसत्थे सुहासणवरगए एवं
वयासी संदिसत्तु णं देवाणुप्पिया ! किमागमणपओयणं-तएणं ते अ-
र्विभतरठाणिज्जा पुरिसा कलायं मूसियदारय एवं वयासी) जब उस
मूषीकार दारककलादने उन पुरुषों को आपने घर की ओर आते हुए
देखा-तो वह देखकर हृष्ट तुष्ट हो अपने आसन पर से उठ बैठा-उठ

(तएणं ते अब्भन्तरठाणिज्जा पुरिसा तैतलिणा एवं बुत्ता समाणा हृष्टतुष्टा
करयलपरिगगहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कद्दु तहत्ति किञ्चा जेणेव कलायस्स
मूसियारस्स गिहे तेणेव उवागया)

आ रीते तैतलिपुत्रे जेओने आदेशे आभ्ये छे जेवा ते अन्तरंग प्रेष्य
पुरुष हृष्ट तुष्ट यतां त्याथी खाना यधने मूषीकार कलादनुं न्या घर उतुं त्यां
पडोन्था. तैतलिपुत्रनी पासैथी पाछां इरतां तेओजे जने हाथोनी अंजलि
जनावीने जने तेने मस्तके मूषीने नमस्कार कर्या जने जमे जाये जेम हुकम कर्यो
छे तेने यथावत पालन करीगुं, आ रीते तेमनी आज्ञा तेओजे स्वीकारी

(तएणं से कलाए मूसियारदारए ते पुरिसे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता
हृष्टतुष्टे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता
आसणेणं उवणिमंतेइ, उवणिमंत्तित्ता आसत्थे सुहासणवरगए एवं वयासी संदिमत्तु
णं देवाणुप्पिया ! किमागमणपओयणं-तएणं ते अर्विभतरठाणिज्जा पुरिसा
कलायं मूसियदारय एवं वयासी)

मूषीकारदारक कलादे न्यादे ते पुत्रोने पोताना घर तरङ्ग आवता जेया
त्यादे ते जेधने हृष्ट तुष्ट यधने पोताना आसन उपरथी जेने यध गये जने

गत्वा तानग्रे कृत्वा स्वयम् 'अणुगच्छइ' अनुगच्छति, तेषां पृष्ठवर्तीभूत्वा गच्छति, अनुगम्य, आसनेन उपनिमन्त्रयति=आसनदानेन तान् पुरुषानुपवेशयति, उपनिमन्त्र्य, आस्वस्थः, विश्वस्थः एतेषाममात्यपुरुषाणां सत्कारो यथावज्जात इति हेतोः स्वस्थमनाः भूत्वा सुखासनवरगतः=स्वयमपि स्वकीयासने सुखोपविष्टः सन् एवमवदत्-संदिशन्तु खलु हे देवानुप्रियाः! भवतां किमागमनप्रयोजनम्? ततः खलु ते आभ्यन्तरस्थानीयाः पुरुषाः कलादं मूषीकारदारकम् एवमवदन्-वयं खलु देवानुप्रिय! तव दुहितरं भद्राया आत्मजां पोड्डिलां दारिकां तेतलिपुत्रस्य भार्यात्वेन वृणुमः, तद् यदि खलु त्वं 'जाणसि' जानासि=मन्यसे, हे देवानुप्रिय! यद् अस्माकमेतच्चत्कन्याविषयकं वाचनं 'जुत्तं वा' युक्तं वा=उचितम् 'पत्तं वा' प्राप्तं वा मनसिसंलग्नं वा 'सलाहणिज्जं वा' श्लाघनीयं वा=प्रशंसनीयं वा अपि च 'सरिसो वा संजोगो' सहसो वा संयोगः तेतलिपुत्रेण सह तव कन्याया वैवाहिकः

कर फिर वह सात आठ डग प्रमाण आगे उन का सत्कार करने के लिये गया। वहां से उन्हें आगेकर के वह स्वयं उनके पीछे २ आया। आकर के फिर उसने उन्हें आसनों पर बैठाया-बैठा कर आश्वस्त विश्वस्त होकर बाद में वह स्वयं दूसरे अपने आसन पर शान्ति पूर्वक बैठ गया। बैठ जाने के बाद फिर उसने इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियो! कहिये-किस कारण से आप यहां पधारे हैं-आपलोगों के आने का क्या प्रयोजन है-इस प्रकार उसके पूछने पर उन अभ्यन्तर स्थानीय पुरुषों ने उस सुवर्णकार के पुत्र कलाद से इस प्रकार कहा (अम्हे णं देवाणुप्पिया। तव धूयं भद्दाए अत्तयं पोड्डिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स भारियत्ताए वरेमो, तं जइणं जाणसि देवाणुप्पिया। जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो ता दिज्जउणं पोड्डिला दारिया तेयलि-

बोले थधने तेमना स्वागत माटे सात आठ पगलां सामे गये। त्यांथी तेणु आवनाराओने आगण करीने ओटवे के पोते तेओनी पाछण पाछण आलतो त्यां आव्ये। अने आवीने तेणु तेओने आसने। उपर षेसाउया। त्यारपधी आश्वस्त विश्वस्त थधने ते पोते थील आसन उपर शान्तिपूर्वक षेसी गये। षेसीने तेणु तेओअे विनय पूर्वक उछुं के डे देवानुप्रियो! ओलो, तमे शा कारणुथी अहीं आव्या छे? तमे शा प्रयोअनथी आव्या छे? आ रीते कलाद (सुवर्णकार) नी वात सांलणीने ते आभ्यन्तर स्थानीय पुरुषोअे तेने आ प्रभाणु कछुं के

(अम्हेणं देवाणुप्पिया! तव धूयं भद्दाए अत्तयं पोड्डिलं दारियं तेयलि पुत्तस्स भारियत्ताए वरेमो, तं जइणं जाणसि देवाणुप्पिय! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं

सम्बन्धो योग्यो भवतीति, यदि जानासि तदा दीयतां खलु पोष्टिला दारिका तेत-
लिपुत्राय ' तो ' तर्हि भण=ब्रूहि, हे देवानुप्रिय ! किं दत्तः शुल्कम् सम्मानपुरस्कारं
भवते किं समर्थयामः । ततः खलु कलादो मूषीकदारकः अभ्यन्तरस्थानीयान्
पुरुषान् एवमवदत्-एतदेव खलु देवानुप्रियाः ! मम शुल्कम्, यत्खलु तेतलिपुत्रो
मम दारिकानिमित्तेन अनुग्रहं=दयां करोति । इत्युक्तनाऽमौ तान् अभ्यन्तरस्थानी-

पुत्रस्स तो भण देवाणुप्पिया ! किं दलामो सुक्कं ? तएणं कलाए मूसि-
यार दारए ते अविंभतरठाणिज्जे पुरिसं एवं वयासी) हे देवानुप्रिय हम
लोग तुम्हारी पुत्री पोष्टिला दारिका को कि जो भद्राकी कुक्षि से उत्पन्न
हुई है तेतली पुत्र अमात्य की वह भार्या बने इस रूप से वरण करने
के लिये आये हुए हैं-तो यदि तुम हे देवानुप्रिय ! हमारी इस याचना
को उचित, प्राप्त, और श्लाघनीय-प्रशंसनीय मानते हो और यह सम-
झते हो कि यह तेतलिपुत्र के साथ तुम्हारी कन्या का वैवाहिक संबंध
योग्य है-तो पोष्टिला दारिका तेतलि पुत्र के लिये प्रदान कर दो-और
साथ में यह भी कह दो कि हम आपके लिये इस निमित्त क्या सम्मान
पुरस्कार दें। इस प्रकार उन सब की ऐसी बातें सुनकर उस सुवर्ण
कार पुत्र कलादने उन आये हुए अभ्यन्तर स्थानीय पुरुषों से इस प्रकार
कहा-(एस च्च वणं देवाणुप्पिया ! मम सुक्के जन्मं तेयलिपुत्ते-
मम दारिया निमित्तेणं अणुगगहं करेइ, ते अविंभतरठाणिज्जे पुरिसे

वा सरिसो वा सजोयो ता दिज्जउण पोष्टिला दारिया तेयलिपुत्तस्स तो भण
देवाणुप्पिया ! किंदलामो सुक्कं तएणं कलाए मूसियारदारए ते अविंभतरठाणिज्जे
पुरिसं एवं वयासी)

हे देवानुप्रिय ! तमारी लदा लायांता गर्लथी जन्म पायेली तमारी
पोष्टिला दारिका अमात्य तेतलीपुत्रनी लार्या थाय आ लतनी मांगणी करवा
अमे तमारी पास आवा छीअे हे देवानुप्रिय ! तमे तेतलिपुत्रनी मांगणी
उचित, श्लाघनीय अने प्रशंसनीय मानता होय तेमअे अमे पणु तमने थतुं
होय हे अमात्य तेतलिपुत्रनी साथेने आ लअ संभध योग्य छे तो तमे
अमात्य तेतलिपुत्रने पोष्टिलादारिका आपी हो अने अेनी साथे तमे अमने
अेअ पणु जणुवी हो हे तमने अमे अेना पद्व सम्मान पुरस्कारना इपमां
थुं आपीअे ? आ रीते तेअे अधनी वात सांभणीने ते सुवर्णकारना पुत्र
हवाहे आअ्यंतर स्थानीय पुत्रोने आ प्रमाणे इहु छे—

(एस च्च वणं देवाणुप्पिया ! मम सुक्के जन्मं तेयलिपुत्ते मम दारिया

यान् पुरुषान् विपुलेन अशनपानखाद्यस्त्राद्येन पुष्पस्त्रगन्धमाल्यालंकारेण च सत्करोति, सम्मानयति, सत्कृत्य सम्मान्य, प्रतिविसर्जयति । तत- खलु ते=आभ्यन्तर स्थानीयाः पुरुषाः कलादस्य मूषीकारदारकस्य गृहात् प्रतिनिष्क्राम्यन्ति, प्रतिष्क्राम्य यत्रैव तेतलिपुत्रोऽमात्यस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य तेतलिपुत्राय अमात्याय ' एयमद्वं ' एतमर्थम्=विवाहस्य स्वीकृतिरूपमर्थं निवेदयन्ति ॥ सू० २ ॥

विपुलेण असणपाणखाइमसाइमेणं पुष्पवत्थ जाव मल्लालंकारेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता पडि विसज्जेइ । तएणं ते कलायस्स मूसियारदारयस्स गिहाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेयलिपुत्तस्स अमच्चस्स एयमद्वं निवेदेति) हे देवानुप्रियो ! मेरा सन्मान पुरस्कार यही है कि जो तेतलि पुत्र दारिका के निमित्त से मेरे ऊपर ऐसी दया कर रहे हैं—अर्थात् मेरी पुत्री को जो वे अपनी पत्नी बनाने की चाहना कर रहे हैं यही सब से बड़ा उन की ओर से मेरे लिये सन्मान पुरस्कार प्रदान किया जा रहा है । इस प्रकार कह कर उस कलाद ने उन अभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों का विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से एवं पुष्प, वस्त्र, गंध माला एवं अलंकारों से खूब सत्कार किया—सन्मान किया । सत्कार एवं सन्मान करने के बाद फिर उसने उन्हें विसर्जित कर दिया । वहां से विसर्जित होकर वे अभ्यन्तर स्थानीय

निमित्तेणं अणुगहं करेइ, ते अडिभतरट्टाणिज्जे पुरिसे विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पुष्पवत्थ जाव मल्लालंकारेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता, सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ । तएणं ते कलायस्स मूसियारदारयस्स गिहाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेयलिपुत्तस्स अमच्चस्स एयमद्वं निवेदंति)

हे देवानुप्रियो ! अमात्य तेतलिपुत्र भारी दारिकाने स्वीकारवा इय ने भारा ऊपर दया भतावी रखा छे ते न भरेभर भारा भाटे सन्मान अने पुरस्कारनी न वस्तु छे. अेटवे के तेओ भारी पुत्रीने पोतानी पत्नी पत्नी तरीके धर्यी रखा छे, ओ न तेमना तरइथी भारा भाटे सन्मान अने पुरस्कार इय छे आ रीते कहीने ते कलादे आभ्यन्तर स्थानीय पुइषेनेो विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यथी अने पुष्प, वस्त्र, गंध, माला अने अलंकारेथी थूअ न सरस रीते सत्कार कथी अने तेमनुं सन्मान कथुं. सत्कार अने सन्मान कथी पछी तेओ तेमने विदाय आपी. तयारपछी ते आभ्यन्तर स्थानीय पुइषे ते सुवथुं.

मूलम्—तएणं कलाए मूसियारदारए अन्नया कयाइं सोहणंसि तिहिनक्खत्तमुहुत्तंसि पोट्टिलं दारयं षहायं सव्वालंकारभूसियं सीयं दुरूहइ, दुरूहिता मित्तणाइसंपीरवुडे सातो गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सव्विड्डीए तेयलीपुरं मज्झं मज्झेणं जेणेव तेयलिस्सगिहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स सयमेव भारियत्ताए दलयइ । तएणं तेयलिपुत्तं पोट्टिलं दारियं भारियत्ताए उवणीयं पासइ, पासित्ता पोट्टिलाए सद्धिं पट्टयं दूरूहइ, दूरूहिता सेयपीएहिं कलसेहिं अप्पाणं मज्जावेइ, मज्जावित्ता अग्गिहोमं करावेइ, करावित्ता पाणिग्गहणं करेइ, करित्ता पोट्टिलाए भारियाए मित्तणाइ जाव परिजणं विउलेणं असणपाणखाइम साइमेणं पुप्फ जाव पडिविसज्जेइ । तएणं से तेयलिपुत्ते पोट्टिलाए भारियाए अणुरत्ते अविरत्ते उरालाइं जाव विहरेइ॥सू०३॥

टीका—‘तएणं’ इत्यादि, ततः खलु कलादो मूषीकारदारकः अन्यदा कदाचित् ‘सोहणंसि’ शोभने=शुभावहे विवाहयोग्ये ‘तिहिनक्खत्तमुहुत्तंसि’ तिथिनक्खत्तमुहुत्ते

पुरुष उक्त सुवर्णकार पुत्र कलाद के घर से निकले और निकल कर जहाँ तेतलि पुत्र अमात्य था वहाँ आये—वहाँ आकर उन्होंने ने तेतलि पुत्र अमात्य को विवाह रवीकृति रूप अर्थ की खबर दी । सूत्र ॥ २ ॥

“ तएणं कलाए मूसियारदारए ” इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इस के बाद (मूसियारदारए) मूषीकार दारक ने (अन्नया कयाइं) किसी एक समय (सोहणंसि तिहिनक्खत्तमुहुत्तंसि

क्षर पुत्र श्लाघना धरथी नीकल्या अने त्यांची ल्यां अमात्य तेतलिपुत्र डेतो त्यां पडोल्या. अमात्य तेतलिपुत्रनी पासि लथने तेओओ २३तसंघ स्वीकारवा ३५ भभर आपी. ॥ सूत्र “ २ ” ॥

‘ तएण कलाए मूसियारदारए ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) तयारपत्री (मूसियारदारए) मूषीक्षर दारके (अन्नया कयाइं) ठाई ओके वधते

पोट्टिलां दारिकां स्नतां सर्वाङ्कान्भूषितां 'सीयं' शिविकां दूरोहयति=आरोहयति, दूरोह=आरोह 'मित्तणाइ संपरिवुडे' मित्रज्ञाति संपरिवृतः=मित्रज्ञाति स्वजनसंबन्धिपरिवेष्टितः, सर्वान् वैवाहिकान् संभारान्=विवाहसंस्कारोचित सामग्रीन् गृहीत्वा स्वकाद् गृहात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य 'सन्विडुए' सर्वद्वया=सर्वप्रकारिकया ऋद्ध्या सह 'तेयलिपुरं' तेतलीपुरस्य मध्यमध्येन निर्गच्छन् यत्रैव तेतलेर्गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पोट्टिलां दारिकां तेतलिपुत्राय स्वयमेव भार्यात्वेन ददाति । ततः खलु तेतलिपुत्रोऽमात्यः पोट्टिलां दारिकां स्वभार्यात्वेन 'उवणीयं' उपनी-

पोट्टिलं दारियं ण्हायं सन्वालंकारविभूषियं सीयं दुरुहइ) शुभ तिथि नक्षत्र, सुहृत्तं में पोट्टिला दारिका को स्नान करा कर समस्त अलंकारों से विभूषित किया और विभूषित कर के फिर उसे शिविका पर बैठा दिया-(दुरुहित्ता मित्तणाइ संपरिवुडे सातो गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सन्विडुए तेयली पुरं मज्झं मज्झे णं जेणेव तेयलिस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स सयमेव भारियत्ताए दलयइ) बैठा कर फिर वह मित्र, ज्ञाति, स्वजन, संबन्धी परिजनों से परिवेष्टित होकर एवं वैवाहिक समस्त सामग्री को लेकर अपने घर से निकला । निकल कर सर्व प्रकार की अपनी ऋद्धि के साथ २ तेतलि पुर के बीच से होता हुआ जहां तेतलि का घर था वहां पहुँचा । वहां पहुँच कर उसने अपनी पुत्री पोट्टिला दारिका को तेतलि पुत्र को अपने आप से भार्या रूप से प्रदान कर दी । (तएणं

(सोहणंसि तिहिनक्खत्तमुहत्तंसि पोट्टिलं दारियं ण्हायं सन्वालंकार, भूसियं सीयं दुरुहइ)

शुभ तिथि नक्षत्र, सुहृत्तंमा पोट्टिला दारिकाने स्नान करावीने षधी नतना अलंकारेथी शणुगारीने तेने पावणीमां षेसाडी दीधी

(दुरुहित्ता मित्तणाइसंपरिवुडे सातो गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सन्विडुए तेयलीपुरं मज्झं मज्झेणं जेणेव तेयलिस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स सयमेव भारियत्ताए दलयइ)

षेसाडीने ते पोताना मित्र, ज्ञाति, स्वजन, संबन्धी अने परिजनोंनी साथे लग्ननी षधी साधन सामग्री लधने घेरथी नीकल्ये। नीकलीने ते सर्व प्रकारनी पोतानी ऋद्धिनी साथे तेतलिपुरनी वर्ये थधने न्यां तेतलिकानुं धर इतुं त्यां पडोन्थे। त्यां पडोन्थीने तेणे पोतानी पुत्री पोट्टिला दारिकाने तेतली पुत्रने तेनी भार्याना इपमां आपी-दीधी.

ताम् उपनयनीकृतां पश्यति, दृष्ट्वा पोष्टिलया सार्द्धं पट्टकं दूरोहति, दूरुह्य 'सेय पीएहिं' श्वेतपीतैः = रजतसुवर्णनिर्मितैः 'कलसेहिं' कलशैः चघटैः आत्मानं 'मज्जावेड्' मज्जति = नपयति, मज्जयित्वा अग्निसाक्षिको विवाह इति हेतोः 'अग्निहोमं करावेड्' अग्निहोमं कारयति, कारयित्वा 'पाणिग्रहणं' पाणिग्रहणं = विवाहं करोति, कृत्वा पोष्टिलया भार्यायाः 'मित्तगाइ जाव परिजणं' मित्रं ज्ञातिस्वजनममन्त्रिपरिजनम् त्रिजुलेन अजनपानग्वाघस्याघेन चतुर्विधादारेण

तेयलिपुत्ते पोष्टिलं दारियं भारियत्ताए उवणीय पासइ, पासित्ता पोष्टिलाए सद्धिं पड्डयं दुरुहइ) तेतलिपुत्र अभात्य ने पोष्टिला दारिका को अपनी भार्या रूप से अपने लिये प्रदान की हुई देखा तो देव कर वह उस पोष्टिला दारिका के साथ पट्टक पर बैठ गया। (दुरुहिता सेयपीएहिं कलसेहिं अप्पाणं मज्जावेड्, मज्जावित्ता अग्निहोमं करावेड्, करावित्ता पाणिग्रहणं करेइ करित्ता पोष्टिलाए भारियाए मित्तगाइ जाव परिजणं त्रिजुलेणं असणं पाणं ग्वाइम साइमेणं पुफ्फ जाव पडिविसज्जेइ । तएणं से तेयलिपुत्ते पोष्टिलाए भारियाए अणुरत्ते अविरत्ते उरालाइं जाव विदरेइ) बैठ कर फिर उसने रजन एवं सुवर्ण से निर्मित कलशों द्वारा अपना अभियेक करवाया। अभियेक करवा कर "अग्नि साक्षिक विवाह होता है" इस खयाल से फिर उसने अग्नि में होम करवाया। करवा कर बाद में उसने उस पोष्टिला दारिका का पाणि ग्रहण कर लिया। विवाह हो चुकने के अनन्तर फिर उस तेतलि पुत्र अभात्य ने

(तएणं तेयलिपुत्ते पोष्टिलं दारियं भारियत्ताए उवणीयं पासइ, पासित्ता पोष्टिलाए सद्धिं पड्डयं दुरुहइ)

तेतलिपुत्र अभात्ये पोष्टिला दारिकाने तेरी भार्या रूपमा आपेली जेधने ते पोष्टिला दारिकानी साथे पट्टक उपर जेशी जथे।

(दुरुहित्ता सेयपीएहिं कलसेहिं अप्पाणं मज्जावेड्, मज्जावित्ता- अग्निहोमं करावेड्, करावित्ता पोष्टिलाए भारियाए मित्तगाइ जाव परिजणं त्रिजुलेणं असणं पाणं ग्वाइम साइमेणं पुफ्फ जाव पडिविसज्जेइ । तएणं से तेयलिपुत्ते पोष्टिलाए भारियाए अणुरत्ते अग्निं उगन्नाइं जाव विदरेइ)

जेशीने तेजे यादी अने ज्ञानाना जणशे वडे पोताने। अलिपेक करवाउओये अलिपेक करवाउओयेने तेजे 'अग्नि साक्षिक लग्न थाय छे' आम विद्य रीने तेजे अग्निमां लवन करवाउओये त्थारपथी तेजे पोष्टिला दारिकानु पाणि अडणु थ्युं. लग्ननी विधि पूरी थया गाइ तेतलिपुत्र अभात्ये

‘पुष्पजाव’ पुष्पयावत्=पुष्पवस्त्रादिना यावन्माल्यालङ्कारादिना सत्कारयति, सत्कार्यं ‘पडिविसज्जेइ’ प्रति विसर्जयति । ततः खलु स तेतलिपुत्रोऽमात्यः पोडिलागं भार्यायाम् ‘अणुरत्ते’ अनुरक्तः=आसक्तः ‘अविरत्ते’ अविरक्तः=अत्यन्तानुरक्त इत्यर्थे, ‘उरावाइं जाव’ उदारान् यावत्=उदारान् भोगभोगान्=विषयभोगान् भुञ्जानो विहरति ॥ सू०३ ॥

मूलम्—तएणं से कणगरहे राया रज्जे य रट्टे य वले य वाहणे य कोसे य कोट्टागारे य अंतेउरे य सुच्छिण्ठ जाए पुत्ते वियंगेइ, अप्पेगइयाणं हत्थंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं हत्थंगुइए छिंदइ, एवं पायंगुलियाओ पायंगुइएवि, कन्नसक्कुलीएवि, नासापुडाइं फालेइ, अंगसंगाइं वियंगेइ । तएणं तीलेपउमावईए देवीए अन्नया पुव्वरत्तावरत्तकालसमयांसि अयमेयाहूवे अज्झत्थिए५ समुप्पज्जित्या—एवं खलु कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगेइ, जाव अंगसंगाइं वियंगेइ । तं जइ अहं दारयं पयायामि, सेयं खलु ममं तं दारयं कणगरहस्स रहस्सियं चैव सारक्खेमाणीए संगो-

पोडिला भार्या के मित्र, ज्ञाति, स्वजन संबन्धि परिजनों का अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य रूप चतुर्विध आहार से तथा पुष्प, वस्त्र यावत् माल्य अलंकार आदि से सत्कार करवाया, सत्कार करवाने के बाद फिर उन सब को वहां से विदा कर दिया । इसके पश्चात् पोडिला भार्या में आसक्त एवं अनुरक्त बने हुए उस तेतलि पुत्र अमात्य ने उसके साथ पंचेन्द्रिय संबन्धी सुखों का अनुभव करने लगा । सूत्र ॥ ३ ॥

पोडिला भार्याना मित्र ज्ञाति, स्वजन संघधी अने परिजनोना अशन, पान, खाद्य अने स्वद्य इय अर नतना आहारथी तेमज्ज पुष्प, वस्त्र यावत् माल्य अलंकार वगेरेथी सत्कार करावडाव्यो अने सत्कार करावडाव्या पछी तेण्णु अधाने पोताना घेरथी विदाय आपी. तयारपछी पोडिला भार्यामां आसक्त अने अनुरक्त थयेवो ते अमात्य तेतलिपुत्र तेनी साथे पंचेन्द्रिय संघधी सुखोना उपभोग करवा लाव्यो. ॥ सूत्र “ ३ ” ॥

वेमाणीए विहरित्तए त्तिकड्डु एवं संपेहेइ, संपेहिता तेयलि-
पुत्तं अमच्चं सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी एवं खलु देवा-
णुप्पिया ! कणगरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ, तं जइ णं
अहं देवाणुप्पिया ! दारगं पयायामि । तएणं तुमं देवाणु-
प्पिया ! कणगरहस्स रहस्सियं चव अणुपुव्वेणं सारक्खे-
माणे संगोवेमाणे संबहेहि । तएणं से दारए उम्मुक्कवाल-
भावे जोव्वणगमणुप्पत्ते तवं य मम य भिक्खाभायणं
भविस्सइ । तएणं से तेयलिपुत्ते पउसावईए एयमड्डं पडि-
सुणेइ, पडिसुणित्ता पडिगए ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि । ततः खलु स कनकरथो राजा राज्ये च=राष्ट्रे
च=देशे बले=सैन्ये च, वाहने=अश्वदिपु च कोसे=भाण्डारे च धान्यादीनां
कोष्ठागारे च अन्तःपुरे च, ‘मुच्छिण्ण’ मूर्च्छितः=मोहं प्राप्तः, गृद्धः=आसक्तः
प्रथितः=विशेषेणामक्तः, अध्युपपन्नः=सर्वथा तत्परायणः, जाए २=जातान् २=
उत्पन्नान् २ पुत्रान् ‘वियंगेइ’ व्यङ्गयति=विगतानि अङ्गानि येषां तान् व्यङ्गान्

‘तएणं से कणगरहे राया’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से कणगरहे राया रज्जे य रट्टे य बले य
वाहणे य कोसे य कोष्ठागारे य अन्तेउरे य मुच्छिण्ण ४) वह कनकरथ
राजा राज्य में राष्ट्र में सैन्य में अश्वदि वाहन में, धान्यादिकों के
कोष्ठागार में एवं अन्तःपुर में मूर्च्छित, गृद्ध अत्यन्त अनुरक्त एवं
अध्युपपन्न—सर्वथा तत्परायण बन गया । सो (जाए पुत्ते वियंगेइ)

तएणं से कणगरहे राया इत्यादि—

(तएणं) त्यारण्ण

टीकार्थ—(से कणगरहे राया रज्जेय रट्टे य बले य वाहणे य कोष्ठागारे य
अन्तेउरे य मुच्छिण्ण ४)

ते कनकरथ राज्ञ राज्ञ्य राज्ञ्यमां, राष्ट्रमां, सैन्यमां, अश्व वगेरे वाड
नामां, धान्य वगेरेनी णाणतमां, कोष्ठागारमा अने णुवासमां मूर्च्छित, गृद्ध,
धक्को न आसक्त अने अध्युपपन्न अ पूर्युपत्ते तत्पर थर्ष गयो. जेथी (जाए
पुत्तं वियंगेइ) ते वन्नेइसा पोताना पुत्राने अंगडीत जनायी देतो डतो.

करोतीति व्यङ्गयति=अङ्गहीनान् करोति । ' विङ्तेइ ' इति पाठे विकर्तयति छिनत्ति इत्यर्थो बोध्यः । तत्प्रकारमाह-अप्येकेषां=केषांचिदुत्पन्नानां पुत्राणां हस्ताङ्गुली-
छिनत्ति, अप्येकेषां=केषांचित् बालानां हस्ताङ्गुष्ठान् छिनत्ति । एवं पादाङ्गुलिकाः पादाङ्गुष्ठान् अपि, एवं ' कण्णसकुलीए वि ' कर्णशङ्कुलीरपि=कर्णानपि तथा नासा-
पुटानि च ' फालेइ ' पाटयति=छिनत्ति, इत्यर्थः । अनेन प्रकारेण एव कनकरथो राजा बालानाम् ' अंगमंगाइ ' अङ्गानि अंगानि सर्वाण्यङ्गानि व्यङ्गयति=छिनत्ति । ततः खलु अनेन प्रकारेण समुत्पन्नानां पुत्राणां विनाशानन्तरम् ' तीसे ' तस्याः कनकरथस्य राज्याः पद्मावत्याः देव्या अन्यदा ' पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि ' पूर्वरात्रापररात्रकालसमये=रात्रेः पश्चिमे भागे अयमेतद्रूप आध्यात्मिकः=आत्मगतो

उत्पन्न हुए अपने पुत्रों को अंगहीन कर देता । (अप्पेगइयाणं हत्थं गुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं हत्थंगुट्टए, छिंदइ, एवं पायंगुलियाओ पायंगुट्टए वि कन्नसक्कुलीए वि, नासापुडाइं फालेइ, अंगमंगाइ विचंगेइ) कितनेक बालकों के वह हाथों की अंगुलियों को छेद देता था, कितनेक बालकों के हाथों के अंगूठों को-काट देता था, इसी तरह वह पैरों की अंगुलियों को पैरों के अंगुष्ठों को, कानों को नासा पुटों को छेद देता था । इस तरह यह कनक रथ राजा बालकों के अंगों का भंगकर देता था । (तएणं तीसे पाउमावईए देवीए अन्नया पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अयमेवाखुवे अज्जत्थिए ५ समुप्पज्जित्था) इस प्रकार समुत्पन्न पुत्रों के विनाश के बाद उस कनकरथ राजा की रानी पद्मावती देवी के किसी एक समय रात्रि के पश्चिम भाग में यह इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न

(अप्पेगइयाणं हत्थंगुलियाओ छिंदइ अप्पेगइयाणं हत्थंगुट्टए छिंदइ, एवं पायंगुलियाओ पायंगुट्टए वि कन्नसक्कुलीए वि, नासापुडाइं फालेइ, अंगमंगाइविचंगेइ)

केटलाक भाणकेनी ते हाथेनी आंगणीओ कपावी नंभावतो हतो,
केटलाक भाणकेना हाथेना अंगूहाओ कपावी नंभावतो हतो, आ रीते ते पगेनी आगणीओने, पगेना अंगूहाओने, कानेने, नाकने कपावी नंभावतो हतो. आभ ते कनकरथ राज भाणकेना अंगोनुं ते छेदन करावी नंभावतो हतो.

(तएणं तीसे पाउमावईए देवीए अन्नया पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अयमेवाखुवे अज्जत्थिए ५ समुप्पज्जित्था)

आ प्रभाषे जन्मेसा पुत्रेना विनाश पथी ते कनकरथ राजनी राणी पद्मावती देवीने केअ ओक समये रात्रिना छेदला पडोरमां आ जतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न थयो के—

विचारो यावत् मनोगतः संकल्पः, 'समुपज्जित्वा' समुदपद्यत । संकल्पप्रकार-
माह—'एवं खलु' इत्यादि—एवं खलु कनकरथो राजा राज्ये च यावत् व्यङ्गयति ।
यावत् अद्धानि अद्धानि व्यङ्गयति अनेन प्रकारेण कुत्सितसारेण मारयति । तद्यदि
खलु अहं दारकं 'पयायामि' प्रजनयामि, सेयं खलु मम तं दारकं कणगरहस्स
रहस्सियं चैव सारक्खेमाणीए संगोवेमाणीए विहरित्ताए' श्रेयः खलु मम तं दारकं
कनकरथस्य 'रहस्सियं चैव' रहस्सियकमेव=गुप्तमेव उपापद्ः संरक्षन्त्या 'संरक्ख-
माणीए' संरक्षन्त्याः भूपट्टचादेः, 'संगोवेमाणीए' संगोपायन्त्या भूपकृतोप-
द्रवात् विहर्त्तुम्, 'त्तिक्कहु' इति कृत्वा=इति मनसि कृत्वा एवं संपेक्षते=एव
विचारयति संपेक्ष्य=विचार्य तेतल्लिपुत्रममात्यं प्रयानं जन्दयति, शब्दयित्वा
एवमवदत्—एवं खलु देवानुप्रिय ! कनकरथो राजा 'रज्जेय जाव वियंगेइ'
राज्ये च यावद् व्यङ्गयति=राज्यादिषु च मूर्च्छितो जातान् पुत्रान् विकृताङ्गान्
करोति एवं नेषामद्गोपाङ्गानि खण्डयति । अनया रीत्या पुत्रान्मारयति, तद्यदि खलु
अहं देवानुप्रिय ! दारकं प्रजनयामि । ततः खलु त्वं कनकरथस्य रहस्सियकमेव

हुआ—(एवं खलु कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगेइ, जाव अङ्ग
मंगाइं वियंगेइ) यह कनकरथ राजा राज्य आदिमें मूर्च्छित गृह, अत्य-
न्त अलुरक्त एवं अशुपपन्न अत्यन्त तत्पर बन्कर पुत्रों को काट देता
हैं—बुरी तरह से उन्हें मार डालता है (तं जइ अहं दारकं पायायामि,
सेयं खलु मम तं दारकं कणगरहस्स रहस्सियं चैव सारक्खेमाणीए
संगोवेमाणीए विहरित्ताए त्तिक्कहु एवं संपेहेइ, संपेहिता, तेयल्लिपुत्तं
अमच्च सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया । कण-
गरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ तं जइणं अहं देवाणुप्पिया । दारगंप-
यायामि, तएण तुमं देवाणुप्पिया ! कणगरहस्स रहस्सियं चैव अणुपुव्वे

(एवं खलु कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगेइ, जाव अंग मंगाइं वियंगेइ)

कनकरथ राजा राज्ये च यावत् व्यङ्गयति अनेन प्रकारेण कुत्सितसारेण मारयति । तद्यदि
खलु अहं दारकं 'पयायामि' प्रजनयामि, सेयं खलु मम तं दारकं कणगरहस्स
रहस्सियं चैव सारक्खेमाणीए संगोवेमाणीए विहरित्ताए त्तिक्कहु एवं संपेहेइ, संपेहिता,
तेयल्लिपुत्तं अमच्च सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया । कण-
गरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ तं जइणं अहं देवाणुप्पिया । दारगंप-
यायामि, तएण तुमं देवाणुप्पिया ! कणगरहस्स रहस्सियं चैव अणुपुव्वे

(तं जइ अहं दारकं पायायामि, सेयं खलु मम तं दारकं कणगरहस्स रह-
स्सियं चैव सारक्खेमाणीए संगोवेमाणीए विहरित्ताए त्तिक्कहु एवं संपेहेइ, संपेहिता
तेयल्लिपुत्तं अमच्च सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया !
कणगरहे, राया रज्जे य जाव वियंगेइ तं जइणं अहं देवाणुप्पिया ! दारकं पया-
यामि, तएण तुमं देवाणुप्पिया । कणगरहस्स रहस्सियं चैव अणुपुव्वेणं सारक्खे-

‘अणुपुत्रेण’ आनुपूर्व्येण=यथाक्रमम् संरक्षन् भूपदृष्ट्यादितः संगोपायन् भूपकृतो पद्रवात् तं दारकं ‘संवद्धेः’ संवर्द्धय, तस्य बालस्य वृद्धिसुपनय । ततः खलु स दारकः ‘उम्मुक्कवालभावे’ उन्मुक्तबालभावः=उन्मुक्तः परित्यक्तो बालभावो बालत्वं येन सः, ‘जोव्वणगमणुपत्ते’ यौवनकमनुप्राप्त =प्राप्ततारुण्यः तव मम च

पं सारक्खेमाणे संगोवेमाणे संवद्धेहिं । तएणं से दारए उम्मुक्कवाल भावे जोव्वणगमणुपत्ते तव य मम य भिक्खाभायणं भविस्सइ तएणं से तेयलिपुत्ते पउमावइए एयमट्टं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता पडिगए) तो यदि मेरे यहां पुत्र उत्पन्न होता है-मैं पुत्र को उत्पन्न करती हूँ- तो मुझे यही योग्य है कि मैं राजा कनकरथ को खबर न पड़े इस रूप से उसकी रक्षा करूँ-उनकी दृष्टि से -उसे बचाकर रखूँ-ऐसा उसने मन से विचार किया । विचार कर फिर उसने अमात्य तैतलिपुत्र को बुलाया-बुलाकर उस से ऐसा कहा-हे देवानुप्रिय ! कनकरथ राजा राज्य आदि में इतना अधिक शूर्धित गृद्ध-अत्यंत अनुरक्त एवं अध्यु-पपन्न बना हुआ है जो वह उत्पन्न हुए बालकों को अंग हीन कर देता है-उनके हाथों की अंगुलियों आदि अङ्गों को काट देता है । तो हे देवा-नुप्रिय ! यदि मैं पुत्र को उत्पन्न करती हूँ तो देवानुप्रिय तुम उसे राजा को खबर न पड़े इस रूप से रक्षित करते हुए और उनकी दृष्टि से बचाते हुए क्रमशः वृद्धिगत करो । जब वह बालक-क्रमशः संवर्द्धित होता हुआ बाल्यावस्था से रहित होकर यौवनावस्था वाला बन जायगा

माणे संगोवेमाणे संवद्धेहिं । तएणं से दारए उम्मुक्क बालभावे जोव्वणगमणु-पत्ते तव य मम य भिक्खाभायणं भविस्सइ तएणं से तेयलिपुत्ते पउमावइए एयमट्टं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता पडिगए)

हुवे मने पुत्र उत्पन्न थवाने न छे, तो मने अेअ योअ्य लागे छे के कनकरथ राजने भणर पडे नछि ते रीते भाणकनी रक्षा कइ. तेमनी कुदृष्टिथी तेने भयावुं. आ प्रभाणु तेणु मनेमां विचार कर्यो विचार करीने तेणु अमात्य तैतलिपुत्रने भोलाव्यो अने भोलावीने तेने कहुं के हे देवानुप्रियः। राज कनकरथ राजय वगेरेना काममां आटलो भयो भूर्धित, गृद्ध-भूअअ आसकत अने अध्युपपन्न थर पउयो छे के ते न्नेला भाणकेना अगे कपावी नाणे छे. तेमना हाथोनी आंगणीओ वगेरे अजोने कपावी नाणे छे. जे हे देवा-नुप्रिय ! हुं पुत्रने न्म आपु तो देवानुप्रिय तमे राजने भणर पडे नहीं तेम तेमनी कुदृष्टिथी भाणकनी रक्षा करता तेनुं अरणु-पोषणु करणे. जे ते

‘भिक्षाभाषणं’ भिक्षाभाजनम्=भिक्षाया आधारभूतो भविष्यति । ततः खलु स तेतलिपुत्रः पद्मावत्याः एकमर्थं प्रतिश्रुणोति=स्वीकरोति, प्रतिश्रुत्य=स्वीकृत्य पद्मावत्या समीपात् प्रतिगत स्वगृहे गतवान् ॥सृ०४॥

मूलम्—तएणं पउमावई य देवी पोड्डिला य अमच्ची सय-
मेव गच्छं गिणहइ, सयमेव परिवहइ । तएणं सा पउमावई
नवणहं मासाणं जाव पियदंरुणं सुरुवं दारगं पयाया, जं रयणिं
च णं पउमावई दारयं पयाया तं रयणिं च णं पोड्डिला वि
अमच्ची नवणहं मासाणं विणिहायमावन्नं दारियं पयाया ।
तएणं सा पउमावई देवी अम्मधाइं सदावेइ सदावित्ता एवं
वयासी—गच्छह णं तुमे अम्मो ! तेतलिगिहे तेतलिपुत्तं अमच्चं
रहस्सियं चैव सदावेह । तएणं सा अम्मधाइं तहत्ति पाडिसुणेइ,
पाडिसुणित्ता अंतेउरस्स अवहारेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता,
जेणेव तेतलिस्स गिहे जेणेव तेतलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया !
पउमावई देवी सदावेइ । तएणं तेतलिपुत्तं अम्मधाइंए अंतिए
एयमट्टं सोच्चा हट्टुट्टे अम्मधाइंए सद्धिं साओ गिहाओ
णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता अंतेउरस्स अवहारेणं रहस्सियं चैव
अणुप्पविसइ, अणुप्पविरित्ता जेणेव पउमावई देवी तेणेव

तो हमारे तुम्हारे दोनों के लिये भिक्षा पात्र-भिक्षा का आधार भूत-
घन जायगा इस-प्रकार पद्मावती के इस कथन रूप अर्थ को उस तेत
लिपुत्र अमात्यने स्वीकार कर लिया । और स्वीकार करके फिर वह
पद्मावती देवी के पास से अपने घर पर चला आया ॥ सृ० ४ ॥

भाषण आणदे भोटो थर्ध न्थे अने णयपणु वटावीने लुवान थर्ध न्थे ते।
भारा अने तभारा अनेने भाटे लिक्षायात्र लिक्षानो आधारभूत थर्ध न्थे।
आ रीते पद्मावतीना आ कथन इय अर्थने ते तेतलिपुत्र अमात्ये स्वीकार
करीने ते पद्मावती देवीनी पासैथी विहाय लधने पोताने घर आवी गयो. सू ४

उवागए करयलपरिग्गहियं दसणहं तिरसावत्तं मत्थए अंजलिं
 कट्टु एवं वयासी-संदिसतु णं देवाणुप्पिया ! जं मए कायव्वं ?
 तएणं पउमावई तेतलिपुत्तं एवं वयासी-एवं खलु कणगरहे
 राया जाव वियंगेइ, अहं च णं देवाणुप्पिया ! दारगं पयाया
 तं तुमं णं देवाणुप्पिया ! एयं दारगं गेणहाहि जाव तव मम
 य भिक्खाभायणे भविस्सइ त्ति कट्टु तेतलिपुत्तं दलयइ । तएणं
 तेतलिपुत्ते पउमावईए हत्थाओ दारगं गेणहइ गिण्हत्ता उत्त-
 रिज्जेणं पिहेइ, पिहित्ता अंतेउरस्स रहस्सियं अव्हारेणं णिग्गच्छइ,
 णिग्गच्छित्ता, जेणेव सये गिहे जेणेव पोट्टिला भारिया, तेणेव
 उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोट्टिलं एवं वयासी-एवं खलु देवा-
 णुप्पिया ! कणगरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ, अयं च णं दारए
 कणगरहस्सपुत्ते पउमावईए अत्तए, तं णं तुमं देवाणुप्पिया !
 इसं दारगं कणगरहस्स रहस्सियं चैव अणुपुव्वेणं सारक्खाहि
 य संगोवाहि य संवड्ढेहि य । तएणं एस दारए उमुक्कवालभावे
 तव य मम य पउमावईए य आहारे भविस्सइ त्ति कट्टु पोट्टि-
 लाए पासे णिक्खिवइ, णिक्खिवित्ता, पोट्टिलाओ पासाओ विनि-
 हायमावन्नियं दारियं गेणहइ, गेण्हत्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ, पिहित्ता
 अंतेउरस्स अव्हारेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव पउ-
 मावई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमावईए देवीए
 पासे ठावेइ, ठावित्ता जाव पडिणिग्गए । तएणं तीसे पउमा-
 वईए अंगपरियारियाओ पउमावइं देविं विणिहायमावन्नं च

दारियं पासन्ति, पासित्ता जेणेव कणगरहे राया तेणेव उवाग-
च्छन्ति उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं म-
त्थए अंजलिं कहु एवं वयासी एवं खलु सामी ! पउमावई
देवी मइल्लियं दारियं पयाया । तएणं कणगरहे राया तीसे
मइल्लियाए दारियाए नीहरणं करेइ, वहुणि लोइयाइं मयकि-
च्चाइं करेइ, करित्ता कालेणं विगयसोए जाए । तएणं से तेत-
लिपुत्ते कोडुं वियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता, एवं वयासी—खिप्पा-
मेव चारगसोहणं जाव ठिइवडियं, जम्हाणं अम्हं एस दारए
कणगरहस्स रजे जाए, तं होउ णं दारए, नामेणं कणगज्झए
जाव भोगसमत्थे जाए ॥ सू० ५ ॥

टीका—‘ तएणं ’ इत्यादि । ततः खलु पद्मावती च देवी पोट्टिला च अमात्यी
सममेव गर्भं गृह्णाति, सममेव गर्भं परिवहति=धारयति । ततः खलु सा पद्मावती
‘ नवण्हं मासाणं जाव ’ नवानां मामानां नवसु मासेसु व्यतीतेषु यावत् सत्सु
‘ पियदंसणं ’ पियदर्शनम्=प्रियं चेतोहरं दर्शनमत्रलोकनं यस्य तं = दर्शकजन-
चेतोहाजनकं सुरूपं दारकं ‘ पयाया ’ प्रजाता=प्रजनितवती । यस्यां रजन्यां च

‘ तएणं पउमावई य देवी ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके वाइ (पउमावई य देवी पोट्टिलाय अमच्ची
सयमेव गर्भं गिण्हड) पद्मावती देवी और पोट्टिला अमात्यी ने साथ ही
गर्भ धारण किया । (तएणं सा पउमावई नवण्हं मासाणं जाव पियदं-
सणं सुरूपं दारगं पयाया) पद्मावती देवी ने जब नौ मास अच्छी तरह
गर्भ के समाप्त हो चुके तब दर्शकजन चित्ताह्लाद जनक अच्छे रूप
शाली पुत्र को जन्म दिया । (जं ग्यणि च णं पउमावई दारयं पयाया

‘ तएणं पउमावइ य देवी ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्धारपत्री (पउमावइ य देवी पोट्टिला य अमच्ची सयमेव गर्भं
गिण्हड) पद्मावती देवी अने पोट्टिला अमात्यीके साथे साथे न गर्भधारण करीये।
(तएणं सा पउमावई नवण्हं मासाण जाव पियदंसणं सुरूपं दारग पयाया)
न्यारे नव मास सारी रीते पसार थर्र गया त्यारे पद्मावती देवीके
लेनारके लेईने प्रसन्न थर्र नथ येवा इपाणा पुत्रने जन्म आये।

खलु पद्मावती दारिकं प्रजाता तस्यां रजन्यां च खलु पोद्दिलापि अमात्यी ' नवण्डं-
मासाणं ' नवानां मासानाम्=नवसु मासेषु व्यतीतेषु ' विणिहायमावन्नं ' विनि-
घातमापन्नाम्=मृताम् दारिकां प्रजाता=जनितवती । ' तएणं ' ततः खलु पुत्रजन्मा-
नन्तरं सा पद्मावती देवी अम्बधात्रीं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदत्-गच्छत
खलु यूयमम्ब ! ' तेतलिगिहे ' तेतलिगृहे=तेतलेरमात्यस्य गृहे तेतलिपुत्रममात्यं
रहस्यिकम्=अन्यैरपरिज्ञातमेव शब्दयत=आह्वयत । ततः खलु सा अम्बधात्री तथेति
प्रतिश्रुणोति,=अङ्गीकरोति, प्रतिश्रुत्य अन्तः पुरस्य ' अवदारेणं ' अपद्वारेण=पृष्ठ-
द्वारेण निर्गच्छति, निर्गत्य, यत्रैव तेतलेगृहम्, यत्रैव तेतलिपुत्रस्तत्रैव उपा-
गच्छति, उपागत्य करतल यावद् अञ्जलिपुटं कृत्वा एवमवादीत्-एवं खलु हे

तं रयणिं च णं पोद्दिलावि अमची नवण्डं मासाणं विणिहायमावन्नं
दारिकं पयाया) जिस रात्रि में पद्मावती देवी ने पुत्र को जन्म दिया था
उसी रात्रि में पोद्दिला अमात्यी ने भी नौ मास व्यतीत हो जाने पर
एक मरी हुई कन्या को जन्म दिया (तएणं सा पउमावई अम्मधायं
सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुमे अम्मो ! तेतलिगिहे
तेतलीपुत्तं अमच्चं रहस्सियं चैव सदावेह) इस के बाद उस पद्मावती
ने अम्बधात्री को बुलवाया और बुलवाकर उससे ऐसा कहा हे अम्म !
तुम तेतलि अमात्य के घर पर जाओ । और किसी को पत्ता न पड़े
इस रूप से तुम तेतलि पुत्र अमात्य को बुला लाओ । (तएणं सा अ-
म्मधायं तहत्ति पडिसुणेह, पडिसुणित्ता अंतेउरस्स अवदारेणं णिग्ग-
च्छह णिग्गच्छित्ता जेणेव तेतलिस्सगिहे जेणेव तेतलिपुत्ते तेणेव उवा-
गच्छह, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया

(जं रयणिं च णं पउमावई दारिकं पयाया तं रयणिं च णं पोद्दिला वि अमची
नवण्डं मासाणं विणिहायमावन्नं यारियं पयाया)

ये रात्रिमे पद्मावती देवीमे पुत्रने जन्म आप्थे । ते ज रात्रिमे पोद्दिला
अमात्यीमे पणु नव मास पूरा थवाथी अेक भरेदी कन्याने जन्म आप्थे ।

(तएणं सा पउमावई अम्मधायं सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी गच्छह णं
तुमे अम्मो ! तेतलिगिहे तेतलिपुत्तं अमच्चं रहस्सियं चैव सदावेह)

त्याम्पथी ते पद्मावतीमे अम्बधात्रीने ओदावी अने ओदावति तेने
आ प्रभाणे उह्यु के हे अम्म ! तमे तेतलि अमात्यने घेर ण्णमे अने उाधने
अभर पडे नडि तेम तेतलिपुत्र अमात्यने तमे अडी ओदावी दावे ।

(तएणं सा अम्मधायं तहत्ति पडिसुणेह, पडिसुणित्ता अंतेउरस्स अवदारेणं
णिग्गच्छह णिग्गच्छित्ता जेणेव तेतलिस्स गिहे जेणेव तेतलिपुत्ते तेणेव उवा-

देवानुप्रिय ! पद्मावती देवी भवन्तं गच्छयति । ततः खलु तेतलिपुत्रः ' अंबघाईए-
अंतिए ' अम्बघात्र्या अन्तिके=अम्बघात्र्याः सकाशात् एतमर्थं श्रुत्वा हृष्टतुष्टोऽम्ब-
घात्र्याः सार्द्धं स्वकाद् गृहाद् निर्गच्छति, निर्गत्य अन्तपुरस्य अपद्वारेण रहस्यिक-
मेव=प्रच्छन्नमेव अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य, यत्रैव पद्मावती देवी तत्रैव ' उवागए '
उपागतः=संप्राप्तः करयलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवं=
वक्ष्यमाणप्रकारेण अवदत्- ' संद्रिसत्तु ' संद्रिशतु=आज्ञापयतु खलु हे देवानुप्रिये !

पडमावई देवी सदावेइ । तएणं तेतलिपुत्ते अम्मघाईए अंतिए एयमट्टं
सोच्चा दट्ट तुट्टे अम्मघाईए सद्धिं साओ गिहाओ णिगगच्छइ) पद्मा-
वती देवी के इस प्रकार वचन सुनकर उस अम्बघात्री ने तथेति
कह कर उसकी आज्ञा को स्वीकार कर लिया । स्वीकार कर के फिर
वह अंतः पुर के अपद्वार से-पीछे के दरवाजे से बाहिर निकली-निकल
कर जहां तेतलि का घर और उसमें भी जहां तेतलिपुत्र था वहां गई ।
वहां जाकर पहिले उसने तेतलिपुत्र अमात्य को दोनों हाथ जोड़ कर
नमस्कार किया-बाद में बोली-हे देवानुप्रिय ! आपको पद्मावती देवी
बुला रही हैं । अम्बघात्री के सुख से इस प्रकार वचन सुन कर व
तेतलि पुत्र हर्षित एवं तुष्ट होता हुआ अम्बघात्री के साथ ही अपने
घर से निकला । (णिगगच्छत्ता अंतेउरस्स अवद्वारेणं रहस्सियं चैव
अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव पडमावई देवी तेणेव उवागए
करयलपरिगग्हियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वया-

गच्छइ, उवागच्छत्ता करयल जाव एवं वयासी-एवं खलु देवानुप्रिया ! पडमावई
देवी सदावेइ । तएणं तेतलिपुत्ते अम्मघाईए अतिए एयमट्टं सोच्चा दट्टतुट्टे अम्म-
घाईए सद्धिं साओ गिहाओ णिगगच्छइ)

आ रीते पद्मावती देवीनी वात सांभजीने अम्बघात्रीअे ' तथेति ' (साई)
आम कहीने तेमनी आज्ञा स्वीकारी लीधी. स्वीकारीने ते रणुवासना पाछला
णारण्णैथां णद्वार नीकणी अने नीकणीने न्यां तेतलिपुत्रतुं धर अने तेमां पव
न्यां तेतलिपुत्र अमात्य उता त्या पडोथी. त्यां पडोथीने तेले सौ पडोवां
अने हाथ नेदीने तेतलिपुत्रने नमस्कार कर्या अने त्यारपथी तेले कहुं डे डे
देवानुप्रिय ! तमने पद्मावती देवी बोलावे छे. अम्बघात्रीना मुखथी आ नतनी
वात सांभजीने तेतलिपुत्र हर्षित तेमए संतुष्ट थतो अम्बघात्रीनी साथे
साथे ए ते पेताना धेरथी रणुवास तरइ रवाना थयो

(णिगगच्छत्ता अंतेउरस्म अवद्वारेणं रहस्सियं चैव अणुप्पविसइ, अणुप्प-
विसित्ता जेणेव पडमावई देवी तेणेव उवागए, करयलपरिगग्हियं दसणहं सिर-

‘जं मए कायव्वं’ यन्मया कर्तव्यम्, ततः खलु पद्मावती देवी तेतलिपुत्रमेवमव-
दत् ‘एवं खलु कणगरहे राया वियंगेइ’ एवं खलु कनकरथो राजा व्यङ्गर्यात=
हे देवानुप्रिय ! मया पूर्वमेवकथितं—यत्कनकरथ उत्पन्नान्पुत्रान् विकृताऽङ्गान्
कृत्वा मारयति । अहं च खलु देवानुप्रिय ! दारकं प्रजाता=प्रजनितवती, ‘तं’
तस्मात् कारणात् त्वं खलु देवानुप्रिय ! एतं दारकं गृहाण यावत् तव च मम च

सी संदिसंतु णं देवानुप्पिया ! जंमए कायव्वं ? तएणं पउमावई तेतलि
पुत्तं एवं वयासी—एवं खलु कणगरहे राया जाव वियंगेइ, अहं च णं
देवानुप्पिया दारगं पयाया तं तुमं णं देवानुप्पिया ! एयं दारगं गेणहाहि)
चलकर वह अंतः पुर के पृष्ठ भाग के द्वार से किसी को आने का पता
न लगे इस रूप से वहां प्रविष्ट हुआ । प्रविष्ट होकर जहां पद्मावती देवी
थी वहां गया । वहां जाकर उसने दोनों हाथ जिसमें जुड़े हुए हैं और
दशौंनख जिसमें हैं ऐसी अंजलिको दक्षिण तरफ से घुमाकर बायें
तरफ छेजाकर और मस्तकपर अंजलि को रखकर कहा—अर्थात् नम-
स्कार कर पूछा हे देवानुप्रिये ! जो मुझे करने योग्य कार्य है उस के
करने की आप आज्ञा दीजिये । इस के बाद पद्मावती देवी ने तेतलिपुत्र
से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! मैंने तुमसे पहिले ही कह रक्खा है
कि कनकरथ उत्पन्न हुए पुत्रों को विकृत अंग बनाकर मार डालता है ।
और मैंने हे देवानुप्रिय ! पुत्र को उत्पन्न किया है । इसलिये तुम हे देवा-

सावत्तं मत्थए अंजलिं कहु एवं वयासी—सं दिसंतु णं देवानुप्पिया ! जंमए कर-
णिज्जं तएणं परमावीइ देवी वयासी—एवं खलु कणगरहे राया जाव वियंगेइ अहं
च णं देवानुप्रिया ! दारगं पयाया तं तुमं णं देवानुप्पिया ! एवं दारगं गेणहाहि)

त्यां पडोंचीने रणुवासना पाछला आरणेथी केअने अणर पडे नडि तेम
रणुवासमां प्रविष्ट थर गयो. प्रविष्ट थरने ते न्यां पद्मावती देवी डती त्यां
पडोंचीने. त्यां पडोंचीने तेणे दशे नजे जेमां छे जेवा अने हाथ जेडीने
अंजलि अनावीने तेने जमणी आणुथी इरवीने डाणी आणु तरइ लथ जधने
मस्तक उपर अंजलि भूडीने आ प्रमाणे कहुं—अटवे नमस्कार करीने पूछयुं
के—हे देवानुप्रिये ! मारे लायक जे कंठ पणु काम डाय ते मने कडे त्थार
पडी पद्मावती देवीजे तेतलिपुत्रने आ प्रमाणे कहुं के हे देवानुप्रिय !
तमने मे पडेवेथी कडी राणुं छे के राज कनकरथ उत्पन्न थयेला पुत्राने
अंगहीन करी नाजे छे. अने हे देवानुप्रिय ! मारे पुत्र थये छे, हे देवा-
नुप्रिय ! जे आणकने तमे लथ नज्यो.

भिक्षाभाजनमिव भिक्षाभाजनं, यथा भिक्षाभाजनं जीवनं निर्वाहयति तथाऽयमपि जीवननिर्वाहको भविष्यति 'त्तिकट्टु' इति कृत्वाः इत्युक्त्वा 'तेतलिपुत्तं' तेतलिपुत्राय प्राकृतत्वाद् द्वितीया ददांति=तेतलिपुत्रस्य हस्ते दारकमर्पयति । ततः खलु तेतलिपुत्रः पद्मावत्यां हस्ताभ्यां दारकं गृह्णाति, गृहीत्वा उत्तरीयेण=उत्तरीयवस्त्रेण तं 'पिहेइ' पिह्मति=आच्छादयति, 'पिहित्ता' पिधाय अन्तः-पुरस्य 'रहस्सियं' रहस्सिकं=प्रच्छन्नं यथा स्यात्तथा अपद्वारेण निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव स्वकं गृहं यत्रैव पोट्टिला भारिया तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पोट्टिलामेवमवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिये ! कनकरथो राजा राज्ये च यावद् व्यङ्गयति स्वपुत्रान् मारयति अयं च खलु मम हस्तस्थितो दारकः कनकरथस्य पुत्रः पद्मावत्या आत्मजो मयाऽजानीतः, 'तं' तस्मात् कारणात् खलु हे देवानुप्रिये ! इमं दारकं 'कणगरहस्स-

नुप्रिय ! इस बालक को लेलो (जाव तव मम य भिक्खाभायणे भविस्सत्तिकट्टु तेतलिपुत्तं दलयइ) यावत् यह हमारे तुम्हारे लिये भिक्षा का आजन हो जायगा जिस प्रकार भिक्षा भाजन जीवन निर्वाहक होता है-उसी तरह यह भी जीवन निर्वाहक होवेगा-इस प्रकार कहकर उसने तेतलिपुत्र के हाथमें आपने पुत्र को दे दिया । (तएणं तेतलिपुत्ते पउमावईए हत्याओ दारगं गेण्हइ) तेतलिपुत्र ने भी पद्मावती देवीके हाथसे बालक को ले लिया । (गिण्हित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ, पिहित्ता अंते उरस्स रहस्सियं अवहारेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव पोट्टिला भारिया-तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता-पोट्टिलं एवं वयासी एवं खलु देवानुप्रिया ! कणगरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ, अयं

(जाव तव मम य भिक्खाभायणे भविस्सत्तिकट्टु तेतलिपुत्तं दलयइ)

ओ भारा अने तभारा भाटे ' भिक्षाभाजन ' थसे अएके के नेम भिक्षानुं पात्र एवनने ट्ठावनार डाय छे तेमए आ णाणड पणु एवन निर्वाहक थसे. आ प्रभाणु धहीने तेणु तेतलिपुत्रना डायभां पोताना नव वान पुत्रने सोंधी दीधो.

(तएणं तेतलिपुत्ते पउमावईए हत्याओ दारगं गेण्हइ)

तेतलिपुत्रे पणु पद्मावती देवीना डायभाधी णाणड लछ दीधु.

(गिण्हित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ पिहित्ता अंते उरस्स रहस्सियं अवहारेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव पोट्टिला भारिया-तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, पोट्टिलं एवं वयासी, एवं खलु देवानुप्रिया ! कणगरहे राया रज्जे य जाव वियंगेइ, अयं च णं दारए कणगरहस्सपुत्ते पउमावईए अतए

रहस्सियं चैव ' कनकरथस्य रहस्सिकमेव=कनकरथो यथा न जानीयात्तथैव ' अणु-
पुण्वेणं' आनुपूर्व्येण=अनुक्रमेण तत्कृतोपद्रवतश्च 'सारक्खाहि य' संरक्ष्य कनकरथन्-
पद्वष्टितः संगोपाय च तत्कृतोपद्रवतः, तथा संवड्ढेहिय ' संवर्धय च=स्तन्यपानादि-
नाऽस्य बालस्य वृद्धिमुपनय ! ततः खलु एष दारकः उन्मुक्तबालभावः तव च मम
च पद्मावत्याश्च 'आहारे' आधारः=आधारस्वरूपो भविष्यति ' तिकट्टु ' इतिकृत्वा

च णं दारए कणगरहस्स पुत्ते पउमावईए अत्तए, तं णं तुमं दारगं
कणगरहस्स रहस्सियं चैव अणुपुण्वेणं सारक्खाहि य संगोवाहि य सं-
वड्ढेहिय) लेकर फिर उसे अपने दुपट्टे से ढक लिया और ढककर
प्रच्छन्न गुप्तरूप से अंतःपुर के पीछे के दरवाजे से बाहर निकल गया ।
निकल कर जहाँ अपना घर और पोड़िला भार्या थी वहाँ गया । वहाँ
जाकर उसने पोड़िला भार्या से इस प्रकार कहा-देवानुप्रिये ! कनकरथ
राजा राज्य आदि में इतना अधिक मूर्च्छित हो रहा है कि वह उत्पन्न
हुए अपने बालकों को अङ्ग विच्छेद कर मार डालता है । यह जो पुत्र
मेरे हाथ में है वह कनकरथ राजा का पुत्र है यह पद्मावती देवी की
कुक्षि से उत्पन्न हुआ है । इसलिये हे देवानुप्रिये ! तुम इस पुत्र को
कनकरथ को खबर न पड़े इस तरह प्रच्छन्न रूप से क्रमशः रक्षित
करती रहो-पालती रहो उसकी दृष्टि से बचाती रहो और स्तन्यपान
आदि से बढ़ाती रहो । (तएणं एस दारए उन्मुक्तबालभावे तव य

तं णं तुमं देवानुप्रिया ! इमं दारगं कणगरहस्स रहस्सियं चैव अणुपुण्वेणं सार-
क्खाहि य संगोवाहि य संवड्ढेहिय)

बलधने तेणु जेसमां ढांकी हीधुं, अने ढांकीने छुपी रीते रणुवासना पाछला
भारणुथी भडार मीकणी गयो. भडारसीकणीने ज्यां पोतानुं धर अने पोडिला
भार्या ढुती म्यां गयो. त्यां पडोन्थीने तेणु पोडिला भार्याने जेम कहुं के-डे
देवानुप्रिये ! राजा कनकरथ राज्य वगेरेनी भागतमां अटलो भयो. आसकत अर्थ
गयो छे के ते जन्म पायेला पोताना भाणकेना अंगोने कपावीने भारी नाणे
छे. भारा हाथमां जे भाणक छे ते पणु कनकरथ राजाने ज पुत्र छे. पद्मावती
देवीना गर्भमांथी आने जन्म थयो छे. जेथी डि देवानुप्रिय ! कनकरथ राजाने
जणु थाय नहि ते प्रमाणे तमे छुपी रीते आ पुत्रनुं रक्षणु करता रडे,
पोषणु करतां रडे, राजनी कुदृष्टिथी जेने हर राभता रडे जेने स्तन्यपान
अट्थे के ह्य वगेरे पीवडावीने जेने शोरो करे.

इत्युक्त्वा पोट्टिलायाः पार्श्वे 'णिक्खिवड्' निक्षिपति=स्थापयति, तथा पोट्टि-
लायाः पार्श्वत् तां 'विणिहायमावण्णं' विनिघातमापन्नां=मृतां दारिकां गृह्णाति,
गृहीत्वा उत्तरीयेण पिदधाति, पिधाय अन्तः पुरस्य अपद्वारेण अनुप्रविशति, अनु-
प्रविश्य यत्रैव पद्मावती देवी तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पद्मवत्याः देव्याः
पार्श्वे स्थापयति, स्थापयित्वा तावत् 'पडिणिग्गए' प्रतिनिर्गतः प्रतिनिवर्त्य स्वगृहं

मम य पउमावईए य आहारे भविस्सइत्ति कट्टु पोट्टिलाए पासे णि-
क्खिवड्, णिक्खिवित्ता पोट्टिलाओ पासाओ विनिहायमावण्णियं दारियं
गेण्हइ, गेण्हित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ पिहित्ता, अंतेउरस्स अवहारेणं
अणुप्पविसइ) इस तरह क्रमशः वृद्धिगत होता हुआ यह बालक जब
बाल्यावस्था से रहित हो जावेगा तो हमारा तुम्हारा और पद्मावती देवी
का आधार होगा, ऐसा कहकर उस तेतलिपुत्र अमात्य ने उस पुत्र को
पोट्टिला के पास रख दिया। और पोट्टिला के पास से मरी हुई कन्या
को उठा लिया—उठाकर उसे अपने उत्तरियवस्त्र से ढँक लिया, ढँक कर
फिर अंतः पुर के पिछले दरवाजे से वहाँ आया (अणुप्पविसित्ता जेणेव
पउमावई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमावईए देवीए पासे
ठावेइ, ठावित्ता जाव पडिनिग्गए) वहाँ आकर जहाँ पद्मावती देवी थी
वहाँ पहुँचा, वहाँ पहुँच कर उसने उस मृत कन्या को पद्मावती देवी के

(तएणं एस दारए उम्मुक्कवालमावे तव य मम य पउमावईए य आहारे
भविस्सइत्ति कट्टु पोट्टिलाए, पासेणिक्खिवड्, णिक्खिवित्ता पोट्टिलाओ पासाओ
विनिहायमावण्णियं दारियं गेण्हइ, गेण्हित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ, पिहित्ता, अंतेउरस्स
अवहारेणं अणुप्पविसइ)

अने आ रीते अनुकमे भोटो थतो आ भाण्ड न्यारे अयपशु वटावीने
खुवान थथ नशे त्यारे आ भारे, तमागे अने पद्मावती देवीने आधार
थशे. आ प्रभाणे कडीने ते तेतलिपुत्र अमात्ये ते बालकने पोट्टिलानी पासे
भूडी दीधो अने पोट्टिलानी पासेथी मरी गयेली भाण्ड्रीने उपाडी लीधी.
उपाडीने तेने पोताना जेसथी ढांड्री दीधी अने त्यारपथी ते रणुवासना पाछदा
भाण्णेतथी पद्मावती देवीना मडेलमा गयो.

(अणुप्पविसित्ता जेणेव पउमावई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता,
पउमावईए देवीए पासे ठावेइ, ठावित्ता जाव पडिनिग्गए)

त्यां नधने न्या पद्मावती देवी हुती त्यां गयो अने त्यां पडोंथीने तेणे
ते मरी गयेली भाण्ड्रीने पद्मावती देवीना पडणामां भूडी दीधी. अने त्यां
भूडीने ते त्यांथी पाछो इर्थो अने त्यारपथी ते पोताने घेर आवी गयो.

गतवान् । 'तएणं' ततः खलु तस्याः पद्मावत्याः 'अंगपरियारियाओ' अङ्गप्रति-
चारिकाः=दास्यः पद्मावतीदेवीं विनिघातमायन्नां प्राणरहितां दारिकां च पश्यन्ति,
दृष्ट्वा यत्रैव कनकरथो राजा, तत्रैव उवागच्छन्ति, उवागत्य करयलपरिगृहीतं दश-
नखं शिर आवर्त्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा 'एवं' = वक्ष्यमाणरीत्या अवदत्-हे
स्वामिन् ! पद्मावतीदेवी 'मइल्लियां' मृतां दारिकां 'पयाया' प्रजाता=प्रजनित-
वती । 'तएणं' इति, ततः खलु दासीमुखान्भृतवाञ्छिकाजन्मश्रवणानन्तरं कनकरथो
राजा तस्या 'मइल्लियाए' मृतायाः दारिकाया 'नीहरणं' निर्हरणं =निष्काशनं
'करेइ' करोति, कृत्वा बहूनि लौकिकानि मृतकृत्यानि करोति, कृत्वा 'कालेणं'

पास रख दिया । और रखकर फिर वह वहां से चल दिया चलकर
अपने घर आ गया । (तएणं तीसे पउमावईए अंगपरियारियाओ पउ-
मावईं देविं विणिहायमावन्नं दारियं पासंति, पासित्ता जेणेव कणगरहे
राया तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता करयलपरिगृहियं दसनहं
सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कइहु एवं वयासी एवं खलु सामी पउमावई
देवी मइल्लियं दारियं पयाया) इसके बाद पद्मावती देवी की अंगपरि-
चारिकाओंने पद्मावती देवी को और मरी हुई उस कन्या को देखा देख
कर वे सब जहां कनक रथ राजा थे वहां गईं-वहां जाकर उन्होंने दो
नों हाथों की अंजलि बना कर और उसे मस्तक पर घुमाकर-अर्थात्
नमस्कार कर इस प्रकार कहा हे स्वामिन् ! पद्मावती देवी ने मृत कन्या
को जन्म दिया है । (तएणं कणगरहे राया तीसे मइल्लियाए दारियाए नीह-
रणं करेइ, बहूणि लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ करित्ता कालेणं विगयसोए
जाए) इस प्रकार उन के मुख से सुनकर कनक रथ राजाने उस मृत

(तएणं तीसे पउमावईए अंगपरियारियाओ पउमावईं देविं विणिहायमावन्नं
दारियं पासंति, पासित्ता जेणेव कणगरहे राया तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता
करयलपरिगृहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कइहु एवं वयासी-एवं खलु
सामी पउमावईदेवी मइल्लियं दारियं पयाया)

त्यारथाह पद्मावती देवीनी अंग-परिचारिकाओओ पद्मावती देवी तेमज्ज
ते भरेली कन्याने जेधं. जेधने तेओ अधी जयां कनकरथ राजा उता त्यां गधं
अने त्यां जधने तेणे अने हाथेथी अञ्जलि अनावीने अने तेने मस्तक
उपर इरवीने आ प्रभाणे कहुं के उे स्वामी ! देवी पद्मावतीओ भरेली
कन्याने जन्म आप्ये छे.

(तएणं कणगरहे राया तीसे मइल्लियाए दारियाए नीहरणं करेइ, बहूणि
लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ करित्ता कालेणं विगयसोए जाए)

कालेन समये व्यतीते ' विगयसोए ' विगतशोकः=शोकरहितो जातः । ततः स्वच्छ
स तेतलिपुत्रः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदत्—' खिप्पामेव '
क्षिप्रमेव ' चारगसोहणं ' चारकशोधनं=वन्दीजनमोक्षणं यावन्मानोन्मानवर्द्धनम्
पुत्रजन्मोत्सवनिमित्तकं राजकर्मचारिणां वेतनवृद्ध्यादिना सत्कारसम्मानवर्द्धन
कुरुत. इत्येवंरूपामाज्ञां दत्त्वा स्वयं ' ठिइवडियं ' स्थितिपतितां कुलमर्यादान्तर्गतां
पुत्रजन्मनिदशदिवससाध्यमद्योत्सवरूपां प्रक्रियां करोति । पुनश्चाशतादिना मित्र-
ज्ञातिप्रमुखान् सत्कृत्य सम्मान्य तत्पुरत एवं कथयति—' जम्हाणं ' यस्मात्स्वच्छ

कन्या का निर्हरण—श्मशान में ले जाना—किया । निर्हरण कर के फिर
अनेक लौकिक मृतकृत्य किये । मृत कृत्य कर चुकने के बाद धीरे २
वै विगत शोक हो गये । (तएणंसे तेतलिपुत्ते कोडुंबियपुरिसे सदा-
वेइ, सदावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव चारगसोहणं जाव ठिइवडियं
जम्हाणं अम्हं एस दारए कणगरहस्स रज्जे जाए तं होउण दारए नामेणं
कणगज्जाए जाव भोगसमत्थे जाए) इस के बाद तेतलिपुत्र अमात्यने
कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—शीघ्र
ही तुम लोग चारक शोधन करो—वन्दीजनों को मुक्त करो यावत् मानो-
न्मन का वर्द्धन, और पुत्र जन्मोत्सव के निमित्त को लेकर राज कर्म
चारिय के वेतन की वृद्धि आदि करके उनके सन्मान का वर्द्धन करो—
इस प्रकार आज्ञा देकर स्वयं उस तेतलिपुत्र अमात्यने अपनी कुल
मर्यादा के अनुसार पुत्र का जन्म होने के कारण दश दिवस तक बड़ा

आ रीते तेमनां मुअथी आ वात सांलणीने कनकरथ राज्जे ते भरेली
कन्याने श्मशानमां पडोंयाडी अने त्थारणाह तेणु भरणु पथीनी धणी डियाओ
पूरी करी. भरणु डियाओने पताव्या पथी राज कनकरथ धीमे धीमे शोक
रहित थय गया.

(तएणं से तेतलिपुत्ते कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-
खिप्पामेव चारगसोहणं जाव ठिइवडियं, जम्हाणं अम्हं एस दारए कणगरहस्स
रज्जे जाए तं होउणं दारए नामेणं कणगज्जाए जाव भोगसमत्थे जाए)

त्थारणाह तेतली पुत्र अमात्ये पोताना कौटुम्बिक पुरुषोने ओलाव्या
अने ओलावीने तेमने आ प्रमाणे कहु कं—तमे लोके सत्तरे चारक शोधन
करे—अट्टे डे लेलणानामांथी डेहीओने छोडी भूडे यावत् मानोन्माननुं वर्द्धन
तेमन पुत्र जन्मोत्सव षडश राजकर्मचारीओना पगार वगेरेनी वृद्धि करीने
तेमना सन्माननुं वर्द्धन करे आ रीते कौटुम्बिक पुरुषोने आज्ञा आपीने
तेतलिपुत्रे जते पोतानी कुल मर्यादा मुअण पुत्र जन्म होवा षडश दिवस

अस्माकमेष दारकः कनकरथस्य राज्ये जातः, ' तं ' तस्मात् भवतु खलु दारको नाम्ना ' कनकध्वजः ' इति । अनन्तरमसौ दारकः क्रमेण वृद्धिं गच्छन् यावद् ' भोगसमर्थे जाए ' भोगसमर्थो जातः=तारुण्यं प्राप्त इत्यर्थः ॥ सू० ५ ॥

मूलम्—तएणं सा पोड्डिला अन्नया कयाई तैतलिपुत्तस्स अणिट्ठा ५ जाया यावि होत्था, नेच्छइ य तैतलिपुत्ते पोड्डिलाए नाम गोत्तमवि सवणयाए, किंपुणदरिसणं वा परिभोगं वा ? । तएणं तीसे पोड्डिलाए अन्नया कयाई पुव्वरत्तावरत्तकालसमयांसि इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुपज्जित्था—एवं खलु अहं तैतलिस्स पुव्विं इट्ठा ५ आसिं इयाणि अणिट्ठा ५ जाया, नेच्छइ य तैतलिपुत्ते मम नाम जाव परिभोगं वा ओहयमणसंकप्पं जाव झियायइ । तएणं तैतलिपुत्ते पोड्डिलं ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियाहि । तुमं च णं मम महाणसंसि विउलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावेहि, उवक्खडावित्ता बहूणं

भारी उत्सव किया । तथा भोजन आदि द्वारा मित्र ज्ञाति द्वारा प्रमुख जनों का सत्कार सन्मान करके फिर उसने उनके समक्ष इस प्रकार कहा—यह हमारा पुत्र कनक रथ राजा के राज्य में उत्पन्न हुआ है—इस लिये यह “कनकध्वज” इस नामसे प्रसिद्ध होवे । इस के बाद यह पुत्र क्रमशः वृद्धिगत हुआ यावत्—भोग समर्थ हो गया—अर्थात् जवान युवा-वन गया ॥ सू० ५ ॥

सुधी लारे उत्सव उज्ज्वे। तेमज्ज लोअन वगेरेथी मित्र ज्ञाति वगेरे प्रमुअ लोकेने। सत्कार अने सन्मान करीने तेणे तेअनी समक्ष आ प्रभाणे उहुं के आ अमारो पुत्र राज कनकरथना राज्यमां उन्नत थयो छे अथी अे “कनकध्वज” नामे प्रसिद्ध थाय. त्थार पछी ते कनकध्वज समय पसार थतां धीमे धीमे मोटे थतां यावत लोअ सार्थ थर्ग गयो अेट्ठे के जुवान थर्ग गयो. ॥ सू० ५ ॥

समणमाहण जाव वणीमगाणं देयमाणी व दवावेमाणी य
विहराहि। तण्णं सा पोट्टिला तेतलिपुत्तेणं एवं बुत्तासमाणा
हट्टतुट्ठा तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिमुणित्ता, कल्लाकल्लिं
महाणसंसि त्रिपूलं असण जाव दवावेमाणी विहरइ ॥सू०६॥

टीका—' तण्णं ' इत्यादि । ततः खलु न पोट्टिला अन्यदा वटावित्
केनापि कारणेन तेतलिपुत्रस्य अनिष्टा, अकान्ता, अप्रिया, अमनोशा, अमनोऽमा
जाता चाप्यऽभवत् । नेच्छति च तेतलिपुत्रः पोट्टियाया नाम गोत्रमपि ' सण्ण-
याए ' श्रवणतायै=श्रूयतेऽनेनेति श्रवणं कर्मः, तस्य कर्म श्रवणता तस्यै, श्रवण-
विषयीकर्तुम् इत्यर्थः किं पुन तस्या ' दग्गिणं वा ' दर्शनं वा तथा महपरिभोगं वा,
वाञ्छेत्, अपितु न । ततः खलु तस्याः पोट्टियाया अन्यदा रुदावित् पुत्ररत्नार-

तण्णं सा पोट्टिला इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तण्णं) इसके बाद (सा पोट्टिला) वह प्रधानकी स्त्री पोट्टिला
(अन्नया कयाइं) किन्ही समय-कोई निमित्त को लेकर-किन्ही भी
कारण से—(तेतलिपुत्तस्स अणिट्ठा जाया यावि होत्या) तेतलिपुत्र के
लिये अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ एवं अमनोम बन गई । (णे-
च्छइ तेतलिपुत्ते पोट्टियाए नाम गोत्तमवि सवग्गयाए किं पुणदरिसणं
वा परिभोगं वा) इस प्रकार वह तेतलिपुत्र उस पोट्टिला के नाम गोत्र
तक को भी सुनना पसंद नहीं करता तो फिर उसके देखने और परि-
भोग पास जाने की तो बात ही क्या है । (तण्णं तीसे पोट्टियाए अन्न-

तण्णं सा पोट्टिला इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तण्णं) त्थार पथी (सा पोट्टिला) ते अमात्यनी पत्नी पेट्टिवी (अ-
न्नया कयाइ) डेअ वभते गभेते अरहे (तेतलिपुत्तस्स अणिट्ठा प जाया यावि
होत्या) तेतलि पुत्रने भाटे अनिष्ट, अकान्त अप्रिय, अमनोज्ञ अने
अमनोम थर पथी.

(णेच्छइ तेतलिपुत्ते पोट्टियाए नाम गोत्तमवि सवग्गयाए किं पुणदरिसणं वा
परिभोगं वा)

अथी तेतलिपुत्र अमात्यने तेतुं नाम गोत्र सुद्धा सांभणवु पणु पयंठ
पडतुं न उतुं त्थारे तेने जेवानी अने तेनी पासे जवानी तो वात ज शी ?
(तण्णं तीसे पोट्टियाए अन्नया कयाइं पुग्गवरत्तकारुसमयंसि इमेयाह्वे

क्तकालसमए ' पूर्वरात्रापररात्रकालसमये=रात्रोः पश्चिमे भागे ' इमेयारूवे ' अय-
मेतद्रूपः=वक्ष्यमाणप्रकारः ' अज्जत्थिए जाव ' आध्यात्मिको यावत् मनोगतः
संकल्पः ' समुप्पज्जित्था ' समुदपघत, संकल्पप्रकारमाह-एवं खलु अहं ' तैतलिस्स '
तैतलेः=तैतलिपुत्रस्यामात्यस्य पूर्वम् इष्टा, कान्ता, प्रिया, मनोज्ञा, मनोऽमा
' आसि '=आसम् , परन्तु ' इयाणि ' इदानीम् अनिष्टा यावद्-अमनोऽमा जाता ।
नेच्छति च तैतलिपुत्रः मम नाम यावत् परिभोगं वा=मम नाम गोत्रमपि श्रोतुं
नेच्छति किंपुन मम दर्शनं मया सह परिभोगं वा । इत्थमेषा पोट्टिला ' ओहय-
मणसंकप्पा ' अपहतममः संकल्पा=अपहतो=दुःखावेगवशाद् रुद्धो, मनः संकल्पो=
मानसिको विचरो यस्याः सा, ' जावझियायइ ' यावद् ध्यायति=यावदार्त्तध्यानं
करोति । ततः खलु तैतलिपुत्रः पोट्टिलामपहतमनः संकल्पां ' जाव झियायमणि '

या कयाइं पुव्वावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्जत्थिए जाव समुप्प-
जित्था) जब पोट्टिलाने अपनी तरफ तैतलि पुत्र अमात्य की इतनी
अधिक उपेक्षा-अनादरता देखी तो एक दिन किसी समय उसे रात्रि
के मध्यभाग में इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प
उत्पन्न हुआ-(एवं खलु अहं तैतलिस्स पुन्वि इट्ठा ५ आसिं, इयाणि
अणिट्ठा ५ जाया नेच्छइ य तैतलिपुत्ते मम नाम जाव परिभोगं वा ओ-
हयमणसंकप्पा जाव झियायइ) मैं तैतलि पुत्र अमात्य के लिये पहिले
इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ एवं मनोम थी, परन्तु इस समय मैं-उन्हे
अनिष्ट यावत् अमनोम बन रही हूँ । वे तैतलि पुत्र अमात्य देखने और
परिभोग करने की तो बात कौन कहे मेरे नामगोत्र तक को भी सुनना
पसंद नहीं करते हैं । इस तरह वह अपहतमनसंकल्प होकर यावत्

अज्जत्थिए जाव समुप्पजित्था)

न्यारे अमात्य-तैतलिपुत्रने पोट्टिल्ला अये पोताना प्रत्ये आटली अधी
उपेक्षा अने अनादरता जेठ त्यारे केठि वणते अेक दिवस रात्रिना मध्यला-
गमां तेना मनमां आ जतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न थैथा के

(एवं खलु अहं तैतलिस्स पुन्वि इट्ठा ५ आसिं इयाणि अणिट्ठा ५ जाया
नेच्छइ य तैतलिपुत्ते मम नाम जाव झियायइ)

पडेलां हुं तैतलिपुत्र अमात्यने भाटे छिष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ अने मनोम
हती. पणु डमणां हुं तेमना भाटेअनिष्ट यावत् अमनोम थधं पडीःछुं. तैतलि-
पुत्र अमात्य न्यारे भारु नाम गोत्र सुद्धां सांखणुं धम्भता नथी त्यारे भारी
साभे जेवानी अने भारी साथे परिखोगनी तो बात न शी करवी ? आ रीते
ते पोट्टिल्ला अपहत मन संकल्प थधने यावत् आर्त्तध्यान करती जेठी हती.

यावद् ध्यायन्तीम्=यावदार्तध्यानं कुर्वन्ती पश्यति, दृष्ट्वा एवमवदन्-मा खलु त्वं हे देवानुप्रिये ! अपहृतमनः संकल्पा 'जाव झियाहि' यावद्-ध्याय=यावदार्तध्यानं माकुरु । हे देवि । त्वं च खलु मम 'महाणसंसि' महाणसे=भोजनशालायाम् विपुलम् 'असण जाव' अशन यावत्=अशनपान खादिम स्वादिम चतुर्विधमाहारम् 'उक्खखडावेहि' उपस्कारय, 'उक्खखडावित्ता' उपस्कार्य 'बहूणं समण माहण जाव वणीमगाणं' बहुभ्यः श्रमणब्राह्मण यावद् वणीपकेभ्यः=याचकेभ्यः, स्वयं देयमाणी 'ददती च, अन्यैः 'दवावेमाणी' दापन्ती च विहर । नतः खलु सा

आर्तध्यान कर रही थी-(तएणं तेतलिपुत्ते पोट्टिलं ओहयमणसंक्रुपं जाव झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी माणं तुमं देवाणुप्पिया ओहयमणसंक्रुप्या जाव झियाहि, तुमं च णं ममं महाणसंसि विउलं असणपाणं खाइमं साइमं उक्खखडावेहि, उक्खखडावित्ता बहूणं समण माहण जाव वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य विहराहि, तएणं सा पोट्टिला तेतलीपुत्तेणं एवं वुत्ता समाणा हट्टु तुट्टा तेयलिपुत्तास्स एयमट्ट पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता कल्लाकल्लि महाणसंसि विपुलं असण जाव दवावेमाणी विहरइ) इतने में तेतलिपुत्र ने उस अपहृतमनः संकल्प होकर आर्तध्यान करती हुई पोट्टिला को देखा-तो देवकर उसने उससे कहा-हे देवानुप्रिये तुम अपहृतमनः संकल्प होकर आर्तध्यान मत करो-तुम तो मेरी भोजनशाला में विपुलमात्रा में अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम इस तरह चतुर्विध अहार बनवाओ बनवाकर उसे अनेक श्रमण ब्राह्मण यावत् याचकजनों के लिये स्वयं दो और दूसरों

(तएणं तेतलिपुत्ते पोट्टिटलं ओहयमणसंक्रुपं जाव झियायमाणिं पासइ पासित्ता एवं वयासी माणं तुमे देवाणुप्पिया ओहयमणसंक्रुप्या जाव झियाहि, तुमं च णं ममं महाणसंसि विउलं असणपाणं खाइमं साइमं उक्खखडावेहि, उक्खखडावित्ता बहूणं समणमाहण जाव वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य विहराहि तएणं सा पोट्टिला तेतलिपुत्तेणं एवं वुत्ता समाणा हट्टु तुट्टा तेयतिपुत्तस्स एयमट्ट पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता कल्लाकल्लि महाणसंसि विपुलं असण जाव दवावेमाणी विहरइ)

आटलाभा अपहृतमन संकल्प धरने आर्तध्यान करती ते पोट्टिलाने अभात्य तेतलिपुत्रे जेध अने जेधने तेने आ प्रमाणे कहु डे-डे देवानुप्रिये । तमे अपहृतमनसंकल्प धरने आर्तध्यान करे नहि-तमे भारी लोअन शाणाभां जेधने पुष्कल प्रमाणुभां अशन, पान, खादिम अने स्वादिम आभ थार जतना आडावे गनावडावे अने गनावडावीने तेने धणु श्रमणु प्राणु

पोट्टिला तैतलिपुत्रेण 'एवं' पूर्वोक्तप्रकारेण उक्ता सती हृष्टतुष्टा तैतलिपुत्रस्य 'एयमद्वं' एतमर्थम्=अन्नदानरूपमभिप्राय 'पडिसुसइ' प्रतिश्रृणोति=स्वीकरोति, पडिसुणित्ता 'प्रतिश्रुत्य=स्वीकृत्य, 'कस्लाकलिं' कल्याण्य=प्रतिदिनम्, महानसे विपुलम् 'असण जाव' अशन यावत्=अशनपानखाद्यस्वाद्यं चतुर्विधमाहार-मुपस्कार्य ददती च 'दवावेमाणी' दापयन्ती च विहरति ॥ ६ ॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं सुव्वयाओ नामं अज्जाओ ईरिया समियाओ जाव गुत्तवंभयारिणीओ बहुस्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं०चरमाणागामाणुगामं दुइज्जमाणा जेणामेव तैतलिपुरे णयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता, अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हंति, उग्गिण्हित्ता, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणिओ विहरंति । तएणं तासिं सुव्वयाणं अज्जाणं एगे संघाडए पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ जाव अडमाणे तैतलिस्स गिहं अणुपविट्ठे । तएणं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ, पासित्ता, हट्टुट्टा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता, वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता, विउलं असण जाव पडिलाभेइ, पडिलाभित्ता, एवं वयासी—एवं खलु अहं अज्जाओ तैतलिपुत्तस्स पुठ्वं

से दिलवाओ । इस तरह तैतलिपुत्र अमात्यने जब उस पोट्टिला से कहा—तो वह बहुत अधिक प्रसन्न एवं संतुष्ट हुई । और उसने तैतलिपुत्रकी इस बातको मान लिया । मान करके वह प्रतिदिन भोजन शाला में चारों प्रकार का आहार बनवा कर उसे श्रमण, माहण आदि जनोंके लिये स्वयं देने लगी और दूसरों से दिलवाने लगी ॥ सू० ६ ॥

यावत् यात्रकोने पोते आपो अने भीलओने हुकम करीने अपावो. तैतलिपुत्र अमात्ये न्यारे आ प्रमाणे पोट्टिलाने कहुं त्यारे ते भूण्ण प्रसन्न तेमण संतुष्ट थं गं अने तेणे तैतलिपुत्रनी आ वात स्वीकारी वीधी. अने ते हररेण लोणन शाणामां त्यारे नतना आडारे णनावडावीने श्रमणु आहणु वगेरे ने पोते आडार आपवादागी अने भीलओ द्वारा अपाववा दागी सू६

इट्ठा ५ आसि, इयाणि अणिट्ठा ५ जाव दंसणं वा परिभोगं वा, तं तुब्भेणं अज्जाओ सिक्खियाओ बहुनायाओ बहुपट्टियाओ वड्डणिं गामागर जाव आहिंडह वड्डणं राईसर जाव गिहाइं अणुपविसह, तं अत्थि आइं भे अज्जाओ ! केइ कर्हिचि चुन्न-जोए वा संतजोए वा कम्मणजोए वा हिय उट्ठावणे वा काउ-डुवणे वा आभिओगिए वा वसीकरणे वा कोउयकम्मे वा भूइकम्मे वा मूले कंदे छट्ठी वट्ठी, सिलिया वा गुलिया वा ओसहे वा भेसजे वा उवलद्धपुव्वं वा जेणाहं तेतलिपुत्तस्स पुणरवि इट्ठा ५ भवेज्जामि । तएणं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए एवं वुत्ताओ समाणीओ दो वि हत्थे कच्चे ठवेति ठवित्ता, पोट्टिलं एवं वयासी—अम्हे णं देवाणुप्पिया ! समणीओ निग्गं-थिओ जाव गुत्तवंभयारिणीओ, नो खल्लु कप्पइ अम्हं एयप्प-यारं कन्नेहि वि णिसामेत्तए, किमंग पुण उवदिसित्तए वा आयरित्तए वा ? अम्हेणं तव देवाणुप्पिया ! विचित्तं केवलि-पन्नत्तं धम्मं पडिकहिज्जामो । तएणं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एवं वयासी—इच्छामि णं अज्जाओ ! तुम्हं अंतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं निसामेत्तए, तएणं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए विचित्तं धम्मं परिकर्हेति । तएणं सा पोट्टिला धम्मं सोच्चा निसम्म हट्टुत्तुट्ठा एवं वयासी—सद्धहामि णं अज्जाओ ! णिग्गंथं पावयणं जाव से जाहियं तुब्भे वयह, इच्छामि णं अहं तुब्भं अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव गिहिधम्मं पाडिवाज्जित्तए, अहासुहं, तएणं

सा पोट्टिला तसिं अज्जाणं अंतिए पंचाणुवइयं जाव गिहि-
धम्मं पडिवज्जइ, ताओ अज्जाओ वंदइ णमंसइ, वांदिता ण-
मंसित्ता पडिविसज्जेइ । तएणं सा पोट्टिला ससणोवासिया
जाया जाव पडिलाभेमाणी विहरइ ॥ सू० ७ ॥

टीका—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये सुत्रतानाम
आर्या ईर्यासमिता यावद् गुप्तब्रह्मचारिण्यो बहुश्रुता बहुपरिवाराः ‘पुत्राणुव्वि’
पूर्वानुपूर्व्या=तीर्थङ्करपरम्परया विचरन्त्यः ‘जेणामेव’ यत्रैव तेतलिपुरं नगरं तत्रैवो-
पागच्छन्ति, उपागत्य ‘अहापडिरुवं’ यथाप्रतिरूपम्=यथाकल्पम् ‘उग्गहं’
अवग्रहम्=वस्त्यर्थमाज्ञाम् ‘उग्गिण्हन्ति’ अवगृह्णन्ति=याचन्ते, अवगृह्य ‘संजमेण’
संयमेन सप्तदशविधेन, ‘तवसा’ तपसा द्वादशविधेन आत्मानं भावयन्त्यो

‘तेणं कालेणं तेणं समएणं’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समयमें
(सुव्वयाओ नामं अज्जाओ ईरिया समियाओ जाव गुत्तवंभयारिणीओ
बहुस्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्वि० जेणामेव तेतलिपुरे णयरे तेणेव
उवागच्छइ) सुत्रता नामकी आर्या तीर्थंकर परंपरा के अनुसार विहार
करती हूइ उस तेतलिपुर नगर में आई । ये ईर्यासमिति आदि पांच
समितियों की पालक थी-गुप्त ब्रह्मचारिणी थीं । बहुश्रुत थी । अनेक
परिवार से युक्त थीं । (उवागच्छित्तो अहा पडिरुवं उग्गहं उग्गिण्हन्ति,
उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणीओ विहरन्ति तएणं

तेणं कालेणं तेणं समएणं इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले अने ते समये
(सुव्वयाओ नामं अज्जाओ ईरिया समियाओ जाव गुत्तवंभयारिणीओ बहुस्सु-
याओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्वि० जेणामेव तेतलिपुरे णयरे तेणेव उवागच्छइ)

सुत्रता नामनी आर्या तीर्थंकर परंपरा सुव्वया (विहार करती तेतलिपुर
नगरमां आवी ते ईर्यासमिति वगेरे प (पांच) समितिओनुं पालनकरनारी
हुती तेमज्ज शुभ ब्रह्मचारिणी हुती ते बहुश्रुत तेमज्ज धर्या परिवारे थी
वीटणायेदी हुती

(उवागच्छित्तो अहापडिरुवं उग्गहं उग्गिण्हित्ति, उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा

विहरन्ति । ततः खलु तामां सुव्रतानामादीनामैकः संघाटकः प्रथमायां पौरुष्याम्
 स्वाध्यायं=सुव्रतपुत्रपठनरूपं करोति, ' जात्र अडमाणे ' यावददन्त्याः, यावच्छ्रुत्वात्
 ' द्वितीयस्यां पौरुष्यां सूत्रार्थचिन्तनरूपं ध्यानं करोति, तृतीयस्यां पौरुष्यां
 सुव्रतामार्यामापृच्छथ उच्चनीचमध्यमकुलेषु गृहसामृदानिकमिश्रार्थपठन् इत्यर्थो
 बोध्यः, तेतलेर्गृहमनुप्रविष्टः । ततः खलु सा पोट्टिला ताः संघाटकस्था आर्या
 एजमानाः पश्यति, दृष्ट्वा, हृष्टतृष्टा आमनान् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय वन्दते

तासि सुव्रायाणं अज्जाणं एमे संघाटण पढमाणे पोरिमीए सज्जायं करेड,
 जात्र अडमाणे तेतलिस्स गिहं अणुपविट्ठे) वहां आ कर उन्हांने यथाकल्प
 टहरने की आज्ञा मांगी-मांगकर फिर वे १७ सतरह प्रकारके संयम और
 १२ बारह प्रकार के तपसे अपने आपको चाग्मित करती हुई टहर गईं ।
 इन सुव्रता आर्या का एक संघाटक था जो प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय
 करता-द्वितीय पौरुषीमें सूत्रार्थका चिन्तनरूप ध्यान करना और तृतीय
 पौरुषीमें सुव्रता आर्या की आज्ञासे ऊँच नीच एवं मध्यम कुलोंमें भिक्षा
 के लिये अटन करता । इस तरह वह संघाटक (संघाटा)तृतीय पौरुषीमें
 इन उच्चादि घरों में भिक्षार्थ अटन करता हुआ तेतलिपुत्र अमात्य के
 घर पर आया (तर्णं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पा-
 सह) इतने में उस पोट्टिलाने उन संघाटकस्थ आर्याओं को ज्यों ही
 अपने घर पर आया हुआ देखा तो (पासित्ता हट्टुत्ता आसणाओ अ-

अप्पाणं भावेमाणीओ विहरति तर्णं तामि सुव्रायाणं अज्जाणं एमेसंघाटण
 पढमाणे पोरिमीए सज्जायं करेड जात्र अडमाणे तेतलिस्स गिहं अणुपविट्ठे)
 त्यां आवीने तेमहे यथाइइय (साधुइइय प्रमाहे) रडेवानी आज्ञा मांगी अने
 त्पारपधी ते १७ वतना संयम अने १२ वतना तप पडे पोतानी वतने
 वासित इस्तां ते त्यां शैशध सुव्रता आर्यानि ओर संघाटक इने। वे प्रथम
 पौरुषीमां स्वाध्याय इस्तां इतो, द्वितीय पौरुषीमां सूत्रार्थंनुं चिंतन उप ध्यान
 इस्तां अने तृतीय पौरुषीमां सुव्रता आर्यानी आज्ञा भेणवीने उवा, नीथा
 अने मध्यम कुलोमां गोयरी भाटे वता इता. आ प्रमाहे ते संघाटक तृतीय
 पौरुषीमां उयरोइत उवा वगेरे कुलोना धरोमां गोयरी भाटे इस्तां इस्तां
 तेतलिपुत्र अमात्यने त्यां आव्ये। (तर्णं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एज्ज-
 माणीओ पासइ) पोट्टिलाओ व्पारे संघाटकस्थ आर्याओने पोताने घेर आवेडी
 नेध त्पारे ते (पासित्ता हट्टु तुट्टा आसणाओ अज्जुट्ठेइ) नेधने ते भूम अ
 प्रसन्न थध अने पोताना आसनधां उवा थध

नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा, विपुलमशनपानखाद्यस्वाद्यरूपं चतुर्विधमाहारं
 'पडिलाभेड' प्रतिलम्भयति=ददाति, प्रतिलम्भय, एवमवदत्-एवं खलु अहं हे
 आर्याः ! तैत्तलिपुत्रस्य पूर्वमिष्टा, कान्ता, प्रिया, मनोज्ञा, मनोऽमा, आसम्,
 परन्तु 'इयार्णि' इदानीम् 'अणिट्टा ५ जाव दंसणं परिभोगं वा' अनिट्टा ५ यावत्
 दर्शनं परिभोगं वा=साम्प्रतं तैत्तलिपुत्रस्याऽहमनिष्टा अकान्ता, अप्रिया, अमनोज्ञा,
 अमनोऽमा जाता, तस्मादेष तैत्तलिपुत्रो मम नामगोत्रमपि श्रोतुं नेच्छति, किं
 पुनर्हं आर्याः ! स मम दर्शनं मया सह परिभोगं वा कथं वाञ्छेत् ? । 'तं तुब्भेणं

व्भुट्टेह) देखकर वह बहुत अधिक प्रसन्न हुई, और अपने स्थान से
 उठी (अव्भुट्टित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता विउलं असण जाव
 पडिलाभित्ता एवं वयासी) उठकर उसने उसको वंदना की-नमस्कार
 किया । वन्दना नमस्कार करके फिर उसने उन्हें विपुल मात्रामें अशन
 पान आदि चतुर्विध आहार दिया-और दे कर वह इस प्रकार कहने
 लगी-(एवं खलु अहं अज्जाओ ! तैत्तलिपुत्तस्स पुव्वं इट्टा ५ आसि,
 इयार्णि अणिट्टा ५ जाव दंसणं वा परिभोगं वा-तं तुब्भेणं अज्जाओ
 सिक्खियाओ बहुनायाओ बहुपडियाओ बहूणि गामागर जाव अहिं-
 डइ, बहूणं राईसर जाव गिहाइ अणुपविसइ) हे आर्याओ ! पहिले मैं
 तैत्तलिपुत्र अमात्य के लिये बहुत ही इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ एवं
 मनोम थी परन्तु अब इस समय मैं उनके लिये अनिष्ट, अकान्त,
 अप्रिय, अमनोज्ञ एवं अमनोम बन रही हूँ । वे मेरा नाम गोत्र तक
 भी सुनना पसंद नहीं करते हैं तो फिर मेरे साथ परिभोग करने की

(अव्भुट्टित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता विउलं असण जाव पडिलाभेइ
 पडिलाभित्ता एवं वयासी)

बोली थधने तेणे तेभने नमनं कर्या, वंदनं अने नमनं करीने तेणे तेभने
 पुष्कण प्रमाणेमां अशनं, पानं वगेरे चारे जतना आडारे आप्या अने
 आपीने ते आ प्रमाणे कडेवा लागी डे—

(एवं खलु अहं अज्जाओ ! तैत्तलिपुत्तस्स पुव्वं इट्टा ५ आसि, इयार्णि ५
 दंसणं वा परिभोगं वा तं तुब्भेणं अज्जाओ सिक्खियाओ बहुनायाओ बहुपडि-
 याओ बहूणि गामागर जाव अहिंडइ, बहूणं राईसर जाव गिहाइ अणुपविसइ)

हे आर्याओ ! हुं पडेवा तैत्तलिपुत्र अमात्यना माटे भूषणं च धइ, कांत,
 प्रियं, मनोज्ञं अने मनोम इती पणु डवे हुं तेभना माटे अनिष्टं, अकांतं,
 अप्रियं, अमनोज्ञं अने अमनोम थधं पडी छुं. तेओ भारां नाम गोत्रं सुद्धां
 सांसणवा धच्छता नथी त्यारे भारी सामे परिभोग करवानी अने भने जेवानी

अज्जाओ ' इति, तत्=तस्मात् कारणात् गृयं खलु हे आर्याः ! ' सिखियाओ ' शिखिताः=शिक्षां प्राप्ता, ' बहुणायाओ ' बहुज्ञाताः=अनेकज्ञानज्ञाननिपुणाः ' बहुपट्टियाओ ' बहुपटिताः=नानाविधविद्याकुशलाः स्यः पुनः ' बहुणि ग्रामाग्र जाव अडिडह ' बहुनि ग्रामाग्र यावत् आदिण्डय=बहुपु ग्रामाकरनगरादिषु परिभ्रमणं कुरुथ । तथा च ' बहुणं राईसर जाव गिहाडं अणुपचिमड ' बहुणां राजेश्वर यावद् गृहाणि अनुप्रविशथ=हे आर्याः । गृयं बहुणां राजेश्वर तलवरश्रेष्ठि सेनापत्यादीनां गृहे प्रवेशं कुरुथ, ' तं ' तत्=तस्मात् कारणात् ' अत्थि अडं भे अज्जाओ । ' अस्ति आइं गुप्माकमार्या । ' आइं ' इति वाक्यालङ्कारे टेगी शब्दः । हे आर्याः ! अस्ति ' केइ कहिं चि ' कोऽपि कुत्रचित्=गुप्माकं ज्ञानविषये ' चुन्नजोए वा ' चूर्णयोगो वा=चूर्णानां द्रव्यचूर्णानां योगः, स्तम्भनादिकर्मकारी, ' मंतजोए वा ' मन्त्रयोगो वा=मन्त्राणां योगो व्यापारो वा वशीकरणादि मन्त्रयोगः ' कम्मणजोए

और देखने की उनकी बात ही क्या कहूँ इस लिये हे आर्याओ ! आप सब तो शिक्षित हैं, बहुज्ञाता हैं—अनेक शास्त्रों के ज्ञानसे निपुण हैं—बहुपटित हैं—नाना प्रकार की विद्याओं में कुशल हैं—अनेक ग्राम, आकर आदि स्थानों में विहार करती रहती है, अनेक राजेश्वर आदिकों के घरों में आती जोती रहती हैं (तं अत्थिआइं भे अज्जाओ) तो हे आर्याओ ! (केइ कहिं चि चुन्नज्जोएवा) कहीं कोई चूर्ण योग—द्रव्य चूर्णों का स्तम्भनादि कर्मकारी योग (मंतजोए वा कम्मणजोए वा हिय उड्ढावणे वा, काउड्ढावणे वा आभिओगिए वा वसीकरणे वा, कोउयकम्मे वा, भूइकम्मे वा मूले कंदे छल्ली, बल्ली, सिलिया, वा, गुलिया वा, ओसहे वा, भेसज्जे वा, उवलद्वपुण्वे वा जेणाहं तेतलिपुत्तस्स पुणरवि इट्ठा ५ भवेज्जामि) मंत्र योग—वशीकरण आदि मंत्रों का

तो बात ७ क्यां रही ? अथी डे आर्याओ तमे सी शिक्षिता थे, बहुज्ञाता थे—अट्ठे के धणा शाओना ज्ञानथी निपुणु थे, बहुपटिता थे—अनेक ज्ञानानी विद्याओमां कुशल थे, धणा ग्राम, आकर स्थानोमां विहार करतां रहे थे, अने धणा राजेश्वर वगेरेना भडेलोमा आवण करता रहे थे। (तं अत्थि-आइं भे अज्जाओ) तो डे आर्याओ ! (केइ कहिं चिचुन्नज्जोएवा) क्यांके गमे ते चूर्ण योग—द्रव्य चूर्णोना स्तम्भन वगेरेना योग,

(मंतजोएवा कम्मणजोए वा हिय उड्ढावणे वा, काउड्ढावणे वा आभि-ओगिए वा वसीकरणे वा, कोउयकम्मे वा, भूइकम्मे वा मूले कंदे छल्ली बल्ली सिलिया, वा गुलिया वा, ओसहे वा, भेसज्जे वा उवलद्वपुण्वे वा जेणाहं तेतलि-पुत्तस्स पुणरवि इट्ठा ५ भवेज्जामि)

वा 'कार्मणयोगो वा=उच्चाटनादिकर्मयोगो वा, 'हिय उड्ढावणे वा'=हृदयो-
 ड्ढायनं वा=चित्ताकर्षकवस्तुविशेषो वा 'काउड्ढायने वा' कायोड्ढायनं वा=शरीरा-
 कर्षकवस्तुविशेषो वा 'आभियोगिण वा' आभियोगिको वा,=पराभवकरणयोगो
 वा, 'वशीकरणे वा' वशीकरणं वा=वशीकरणयोगो वा, 'कोउयकम्मे वा' कौतुक-
 कर्म वा=सौभाग्यवर्द्धकस्नानादि वा 'भूइकम्मे वा' भूतिकर्म वा=मन्त्राभिमन्त्रित-
 भस्मप्रक्षेपणं वा तथा-औषधीनां 'मूले' मूलम् 'कंदे' कन्दः 'छल्ली' त्वक्
 'बल्ली' लता 'सिलिया वा' शिलिका=तृणविशेषः, 'गुलिया' गुलिका=
 गुटिका 'ओसहे वा भेसज्जे वा' औषधं वा भेषज्यं वा, इत्यादिकं वस्तुजातं
 युष्माभिः 'उवलद्धुव्वे' उपलब्धपूर्वम्=प्राप्तपूर्वम्, हे आर्याः! भवत्य एषु किमपि
 उपलब्धपूर्वा अवश्यं भवेयुः, तत्कृपया मह्यमर्पय, 'जेणाहं' येनाहम्, यत्सेवनादहं
 तैत्तिलिपुत्रस्य पुनरपि इष्टा कान्ता प्रियामनोज्ञामनोऽमा भवेयम् । ततः खलु ता
 आर्याः पोट्टिलाया एवमुक्ताः सत्यो द्वात्रपि हस्तौ कर्णे स्थापयन्ति, स्थापयित्वा

योग कार्मण योग-उच्चाटन आदि मन्त्रो का योग हृदयोड्ढीयन-
 चित्ताकर्षक वस्तु विशेष का योग, कायोड्ढायन-शरीराकर्षक वस्तु
 विशेषका योग, आभियोगिक-पराभव करने का योग, वशीकरण-
 वशीकरण योग, कौतुक कर्म-सौभाग्यवर्द्धक स्नान आदि का योग,
 भूति कर्म-मन्त्रादि से अभिमन्त्रित भस्म के प्रक्षेपण करने रूप योग तथा
 औषधियों के मूल, कंद त्वक-छाल तथा लता, शिलिका-तृण विशेष
 गोलो, औषध-भेषज्य इत्यादि वस्तुओं का योग आयेके देखने में अवश्य
 आया होगा-इस लिये कृपाकर इनमें से कोई न कोई योग आप हमें
 अवश्य-अवश्य प्रदान करे कि जिससे मैं-जिस के सेवन से मैं-तैत-
 लिपुत्र को पुनरपि इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ एवं मनोम बन जाऊँ (तएणं
 ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए एव बुत्ताओ समाणाओ दावि हत्थे कन्ने ठवेति,

मन्त्रयोग-वशीकरण वगेरे मन्त्रेना योग-कार्मणयोग, उच्चाटन वगेरे
 मन्त्रेना योग, हृदयोड्ढायन-चित्ताकर्षक वस्तु विशेषना योग, आभियोगिक-
 पराभव करवाना योग, वशीकरण-वशीकरण योग, कौतुककर्म-सौभाग्यवर्द्धक
 स्नान वगेरेना योग, भूतिकर्म-मन्त्र वगेरथी अभिमन्त्रित करीने भस्म
 (राणोडी) नु प्रक्षेपणु रूप योग तेमण औषधीओना मूल, कंद, त्वक् (छाल)
 तेमण लता, शिलिका-तृण विशेष गोणी, औषध, भेषज्य वगेरे वस्तुओना
 योग तनारा जेवामा याक्कस आओणु लेशे. अटला माटे तमे कृपा करीने
 ओमार्या गमे त योग मने याक्कस आपो क जेना सेवनथा हुं करी तैत्तिलि-
 पुत्रनी इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ अने मनोम थरुं जाओ.

दिपुः—‘अथासुहृ’ यथा सुखं, हे देवानुप्रिये । तत खलु सा पोट्टिला तासा-
भार्याणामन्तिके पञ्चाणुग्रतिक यावद् गृह्णधर्मं प्रतिपद्यते, पुनस्ता आर्या वन्दते
नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा प्रतिविसर्जयति । ततः सा पोट्टिलाश्रमणोपासिका
जाता, ‘जात्र पड्डिआभेमाणि’ यावत् प्रतिविसर्जयन्ती=निर्ग्रन्थेभ्यः श्रमणेभ्यः
श्रमणीभ्यश्च चतुर्विधमाहारं ददती विहरति ॥ सू० ७ ॥

जाव गिह्णधम्मं पड्डिवज्जेह, ताओ अज्जाओ चंढह, णमंसह वंदित्ता
णमंसित्ता पड्डिविसज्जेह) हे आर्याओ ! मैं इस निर्ग्रन्थ प्रवचन पर
श्रद्धा करती हूँ यावत् ऐसा मानती हूँ कि यह निर्ग्रन्थ प्रवचन जैसा
आप कहती है वैसा ही है । अतः हे आर्याओ ! अब मैं आपके पास
पंचाणु व्रत सात शिक्षाव्रत आदि रूप १२ धारह प्रकार का गृहस्थ धर्म
को धारण करना चाहती हूँ । इस तरह पोट्टिला की भावना जान कर
उन आर्याओं ने उससे कहा—यथा सुखं देवानुप्रिये ! तुझे जिस तरह
सुख हो वैसा तू कर—श्रमणकार्यमें विलम्ब करना योग्य नहीं है—इस
प्रकार उन आर्याजनोंकी आज्ञा प्राप्त कर उस पोट्टिलाने उन्हीं आर्याओं
के पास से श्रावकधर्म पंच अणुव्रत एवं सात शिक्षाव्रतोंको धारण कर
लिया । इस प्रकार श्रमणोपासिका बनी हुई उस पोट्टिला ने उन आर्याओं
को वन्दना एवं नमस्कार की-वन्दना नमस्कार करके फिर उन्हें विस-
र्जित कर दिया । (तएणं सा पोट्टिला समणोवासिया जाया जात्र पड्डि-

सुहं, तएणं सा पोट्टिला तासिं अज्जाणं अंतिए पंचाणुवज्जं जाव गिह्णधम्मं पड्डि-
वज्जेह, ताओ अज्जाओ वदह, णमंसह वंदित्ता णमंसित्ता पड्डिविसज्जेह)

हे आर्याओ ! आ निर्ग्रन्थ प्रवचन उपर हुं श्रद्धा कइं छुं. यावत
आ निर्ग्रन्थ प्रवचन जेबु तमे कडे छे तेबु न छ. ज्येथी हे आर्याओ !
हुवे हुं तमारी पासिथी पांथ अणुव्रत वगेरेनो गृहस्थ-धर्म धारण करवा
धम्मं छुं. आ रीते पोट्टिलाना विचारो जण्णीने ते आर्याओजे तेने कहुं के
‘यथासुखम्’ जेट्ठे के हे देवानुप्रिये । तने जेमां सुभ प्राप्त थाय तेम तुं कर
सार काममां विदांण करवे जेधजे नहि. आ प्रमाणे ते आर्याओनी आज्ञा
भेजवीने ते पोट्टिलाजे ते आर्याओनी पासिथी श्रावक-धर्म-पांथ अणुव्रतो
अने सात शिक्षाव्रतो-ने धारण करी लीयो. आ रीते श्रमणोपासिका थर्
गयेली ते पोट्टिलाजे ते आर्याओने वंदन तेमज्ज नमन कर्या अने वदन तथा
नमन करीने तेमने विदाय आपी. (तएणं सा पोट्टिआ समणोवासिया जाया
जात्र पड्डिआभेमाणी विहरह) आ रीते श्रमणोपासिका थर् गयेली ते पोट्टिला

मूलम्—तएणं तीसे पोट्टिलाए अन्नया कयाइं पुव्वरत्तावर-
त्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे
अज्झरिथिए जाव समुप्पन्ने। एवं खलु अहं तेयलिपुत्तस्स पुव्वि
इट्ठा ५ आसि, इयाणिं अणिट्ठा ५ जाव परिभोगं वा, तं सेयं
खलु मम सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइत्तए, एवं संपेहेइ,
संपेहित्ता, कल्लं जाव पाउप्पभायाए जेणैव तेयलिपुत्ते तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, करयलपरिग्गहियं दसनहं
सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी — एवं खलु
देवाणुप्पिया ! मए सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए धम्मे णिसंते
जाव अब्भणुन्नाया पव्वइत्तए । तएणं तेयलिपुत्ते पोट्टिले एवं
वयासी—एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! मुंडा पव्वइया समाणी
कालमासे कालं किच्चा अन्नतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उव्व-
ज्जिहिसि, तं जइ णं तुमं देवाणुप्पिए ! ममं ताओ देवलो-
याओ आगम्म केवलि पन्नत्ते धम्मे वोहेहि, तोहं विसज्जेमि,
अह णं तुमं ममं ण संबोहेसि, तो ते ण विसज्जेमि । तएणं
सा पोट्टिला तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ । ततः खलु तेत-
लिपुत्ते विपुलं असणं४ उव्वक्खडावेइ, उव्वक्खडावित्ता, मित्तणाइ
जाव आमंतेइ, आमंतित्ता, जाव सम्माणेइ, सम्माणित्ता, पो-
ट्टिलं णहायं जाव पुरिससहस्सवाहिणि सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता,
लाभेमाणी विहरइ) इस प्रकार श्रमणोपासिका वनी हुई वह पोट्टिला
निर्ग्रन्थ श्रमणजनोंको एवं निर्ग्रन्थ श्रमणियों को दान-चारों प्रकार का
आहार देती हुई अपना समय व्यतीत करने लगी ॥ सू० ७ ॥

निर्ग्रन्थ श्रमणो अने निर्ग्रन्थ श्रमणीओने दान-चारै जतना आहारो-आपती
पोतानो वधत पसार करवा लागी. ॥ सूत्र " ७ " ॥

मित्तणाइ जाव संपरिवुडे सव्विड्डिए जाव रवेणं तेयलिपुरस्स
 मज्झं मज्झेणं जेणेव सुव्वयाणं उवस्सए तेणैव उवागच्छइ ।
 पोट्टिला सीयाओ पच्चोरुहइ । तेतलिपुत्ते पोट्टिलं पुरओ कहु
 जेणेव सुव्वया अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता वंदइ
 नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया !
 मम पोट्टिला भारिया इट्ठा ४, एसणं संमारभउव्विगा जाव
 पव्वइत्तए, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणीभिकखं अहा-
 सुहं मा पडिवंधं करेहि । तएणं सा पोट्टिला सुव्वयाहिं अज्जाहिं
 एवंवुत्ता समाणा हट्टुट्टा उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ,
 अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता,
 सयमेव पंचमुट्टियं लोयं करेइ, करित्ता, जेणेव सुव्वयाओ तेणेव
 उवागच्छइ, उवागच्छत्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता.
 एवं वयासी—आलित्ते णं भंते ! लोए एवं जहा देवाणंदा जाव
 एक्कएत्तअंगाइं अहिज्जइ, ब्रह्मणि वासाणि सामन्नपरियागं पाउणइ,
 पाउणेत्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसेत्ता सट्ठि भत्ताइं
 अणसणाए छेदित्ता, आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालसासे
 कालं किच्चा अणतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उव्वण्णा ॥सू०८॥

टीका—‘ तएणं तीसे ’ इत्यादि । ततः खलु तस्याः पोट्टिलायाः ‘ पुव्व-
 रत्तावत्तकालसमयंमि ’ पूर्वरात्रावररात्रकालसमये=रात्रे. पश्चिमेभागे ‘ कुडुं व जाग-

तएणं—‘तीसे पोट्टिलाए’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (तीसे पोट्टिलाए) उस पोट्टिला के
 जब कि वह (अन्नया कयाइं) किमी एक दिन (पुव्वावरत्तकालसम-

‘तएण-तीसे पोट्टिलालाए’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएण) त्थार पछी (तीसे पोट्टिलाए) ते पोट्टि नामे-के न्यादि ते
 (अन्नया कयाइं) डेअ ओक दिवसे (पुव्वावरत्तकालसमयंसि) रात्रिना

रियं जागरमाणीए ' कुटुम्बजागरिकां जाग्रत्या अयमेतद्रूप ' अज्ज्ञत्थिए जाव ' आध्यात्मिको यावत्=आध्यात्मिकः=आत्मगतो यावन्मनोगतः संकल्पः समुत्पन्नः । संकल्पप्रकारमाह-एवं खलु अहं तेतलिपुत्रस्य पूर्वम् इष्टा कान्ता प्रिया मनोज्ञा मनोऽमा आसम्, इदानीमनिष्टा, अकान्ता, अप्रिया, अमनोज्ञा, अमनोऽमा यावत् परिभोगं वा । अस्याभिप्रायः-अहो मनुष्याणां मनोवृत्तेरस्थिरतो । पूर्वं यस्याहम् इष्टा कान्ता प्रियाऽदिकाऽसम्, सैवाहमस्यानिष्टाऽकान्ताऽप्रियादिका जाताऽस्मि । अयं तेतलिपुत्रो मम नाम गोत्रश्रवणमपि नेच्छति किं पुनर्ममदर्शनं मया सह परिभोगं वाञ्छेत् अपितु नेत्यर्थः । ' तं ' तत्=तस्मात्कारणात् ' सेयं '

यंसि) रात्रि के पिछले भागमें (कुटुम्बजागरियं-जागरमाणीए अयमेया-रूवे अज्ज्ञत्थिए जाव समुत्पन्ने) कुटुम्ब की चिन्ता से जाग रहा थी इस प्रकार का आध्यात्मिक यावन्मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ-(एवं खलु अहं तेतलिपुत्रस्य पुर्वि इष्टा ५ आसि इयाणि अणिट्ठा ५ जाव परिभोगं वा, तं सेयं खलु मम सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइत्तए) मैं पहिले तेतलिपुत्र को बहुत ही अधिक इष्ट, कान्त प्रिय, मनोज्ञ एवं मनोम थी-परन्तु अब मैं ऐसी नहीं रही हूँ-अनिष्ट आदि बन गई हूँ । और बातों की बात ही क्या है-वे तो अब मेरा मुख तक नहीं देखना चाहते हैं-देखो मनुष्यों की मनोवृत्ति कितनी अस्थिर है-पूर्व मैं जिसे इष्ट, कान्त, प्रिय, आदि रूप थी-अब वही मैं उसके लिये अनिष्ट अप्रिय आदि बन गई हूँ । यह तेतलिपुत्र तो मेरा नाम गोत्र तक भी सुनना नहीं चाहता है तो फिर मेरे साथ रहने की तो चाहना ही

आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उद्भवोऽपि ३

(एवं खलु अहं तेतलिपुत्रस्य पुर्वि इष्टा ५ आसि इयाणि अणिट्ठा ५ जाव परिभोगं वा तं सेयं खलु मम सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइत्तए)

पडेदां हुं तेतलिपुत्रने भूमञ्छं पडकांत, प्रिय, मनोज्ञ अने मनोम डती पणु डवे हुं तेमना मटे तेवी रडी नथी अनीष्ट वगेरे थथ पडी छुं । मारी साथे वातथीतनी वात तो इर रडी पणु तेओ माइं मेां पणु जेवा भागता नथी जेरअर पुरुषोनी मनोवृत्ति डेटली अधी अंथण डोय छे १ जेने पडेदां जे हुं थण्ट, कात, प्रिय, वगेरेना इपमा डती, डवे तेने तेज हुं अनिष्ट अप्रिय वगेरे थथ पडी छुं आ तेतलिपुत्र मारा नामगोत्र सुद्धां साल-णवा भागता नथी त्यारे मने जेवानी अने मारी साथे रडेवानी तो तेमने पाछदा पडोरमां (कुटुम्बजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्ज्ञत्थिए जाव समुत्पन्ने) धर-गृहस्थीना विचारकरती जगी रडी डती त्यारे-आ जतनो

श्रेयः=उचितं खलु मम सुव्रतानामार्याणामन्तिके प्रव्रजितुम्, एवं संपक्षते=विचार-
यति, संप्रेक्ष्य=विचार्य 'कल्लं जाव पाउप्पभायाए' कल्लं यावत् प्रादुपभावा-
याम्=प्रातः सूर्योदयसमये यत्रैव तेतलिपुत्रस्तत्रैव उपागच्छति उपागत्य 'करयल-
परि०' करतलपरीगृहीतं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवमवदत्-एवं खलु हे देवानुप्रिय!
मया सुव्रतानामार्याणामन्तिकेधर्मः 'णिसंते' निशान्तः=श्रुतः, 'जाव अब्भणु

उसे कैसे हो सकती है। इस लिये मुझे अब यही उचित है कि मैं
सुव्रता आर्यिका के पास प्रव्रजित हो जाऊँ। (एवं संपेहेइ, संपेहिता
कल्लं जाव पाउप्पभायाए जेणेव तेयलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ) इस
प्रकार जब वह विचार कर चुकी तो विचार करके फिर जब प्रातःकाल
हुआ और सूर्य का उदय हो चुका तब जहाँ तेतलिपुत्र था वहाँ पहुँची
(उवागच्छित्ता करयल० एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए
सुव्वयारणं अज्जाणं अंतिए धम्मं णिसंते जाव अब्भणुन्नाया पव्वइत्ताए,
तएणं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं एवं वयासी-एवं खलु-तुमं देवाणुप्पिए !
मुंडा पव्वइया समाणी कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु
देवत्ताए उववज्जिहिसि, तं जहं तुमं देवाणुप्पिए ! ममं ताओ देवलो-
याओ आगम्म, केवल्लिपन्नत्ते धम्मं वोहेहि तो हं विसज्जेमि) वहाँ जा
कर उसने दोनों हाथ जोड़ कर उस को नमस्कार किया-बाद में वह
इस प्रकार उससे कहने लगी हे देवानुप्रिय ! बात ऐसी है कि मैंने

हरकार न शी डाय ? ओधी भने डवे ओन थोग्य लागे छे डे डु' सुव्रता
आर्यिकाओनी पासे प्रव्रजित थछ नठ.

(एवं संपेहेइ, संपेहिता कल्लं जाव पाउप्पभायाए जेणेव तेयलिपुत्ते तेणेव
उवागच्छइ)

आ रीते न्यादे तेहे ओच्छस विचार करी लीधे। त्पारे ते सवारे सूर्योदय
थतां न्यां तेतलिपुत्र अमात्य डतो। त्यां पडोन्थी

(उवागच्छित्ता करयल० एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए सुव्व-
यारणं अज्जाणं अंतिए धम्मं णिसंते जाव अब्भणुन्नाया पव्वइत्ताए, तएणं तेयलिपुत्ते
पोट्टिलं एवं वयासी-एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! मुंडा पव्वइया समाणीकालमासे
कालं किच्चा अन्नतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जिहिसि तं जइणं तुमं देवाणु-
प्पिए ! ममं ताओ देवलोयाओ आगम्म, केवल्लिपन्नत्ते धम्मं वोहेहि तो हं विसज्जेमि)

त्यां नधने तेहे तेभने णने डाय न्नेडीने नभस्कार कर्या अने त्पारपछी
ते आ प्रभाहे डडेवा लागी डे डे देवानुप्रिय ! मे' सुव्रता आर्यानी पासेथी

णाया पञ्चइत्तए ' यावदभ्यनुज्ञाता प्रव्रजितुम्=स धर्मो मम मनसि रुचितः तस्माद्भवताऽभ्यनुज्ञातासती प्रव्रजितुमिच्छामीतिभावः । ततः खलु तैतलिपुत्रः पोट्टिला-मेवमवदत्-एवं खलु त्वं देवानुप्रिये ! मुण्डा प्रव्रजिता सती कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवलोकेषु देवतया उपपत्स्यते । ' तं ' तदा यदि खलु त्वं देवानु-प्रिये ! मां ततो देवलोकादागत्य केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं बोधयेः, ' तोहं ' तदाऽहं त्वां ' विसज्जेमि ' प्रव्रजितुमाज्ञापयामि । ' अहं णं ' अथ खलु यदि खलु त्वं मां ' णं संबो-हेसि ' न संबोधयसि=केवलिप्ररूपितं धर्मं बोधयितुं प्रतिज्ञां न करोषि ' तो ' तदा ' ते ' त्वां न विसृजामि=प्रव्रजितुं नाज्ञापयामि । ' तएणं ' ततः खलु=तैतलिपुत्रस्य एतद्वचनश्रवणानन्तम्, सा पोट्टिला तैतलिपुत्रस्य ' एयमट्ठं ' एतमर्थं=धर्मं प्रति बोधनरूपमर्थं ' पडिसुणेइ ' प्रतिश्रृणोति=स्वीकरोति । ततः खलु तैतलिपुत्रो विपुलमशनपानखाद्यस्वाद्यं चतुर्विधमाहारम्, ' उवक्खडावेइ ' उपस्कारयति=निष्पादयति, ' उवक्खडावित्ता ' उपस्कार्यं ' मित्तणाइ जाव आमंतेइ ' मित्रज्ञाति

सुव्रता आर्यिका के पास धर्म का उपदेश सुना है वह धर्म मुझे बहुत ही अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ है । इस लिये मैं आपसे आज्ञा लेकर दीक्षित होना चाहती हूँ । पोट्टिला को ऐसी बात सुन कर तैतलिपुत्रने उससे कहा—देवानुप्रिये ! बात ऐसी है कि तुम दीक्षित हो कर जब काल अवसर काल करोगी (यह निश्चित है) अन्यतर देवलोक में देवता की पर्याय से उत्पन्न होओगी—तब यदि देवानुप्रिय ! मुझे वहां से आ कर तुम केवलिप्रज्ञप्त धर्म समझाओ—तो मैं तुम्हें प्रव्रजित होने के लिये आज्ञा दे सकता हूँ (अहं णं तुमं ममं णं संबोहेसिं तो ते ण विस-ज्जेमि तएणं सा पोट्टिला तैयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, ततः खलु तैयलिपुत्ते विपुलं असणं ४ उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइ जाव

धर्मनेो उपदेश सांलण्ये छे अने ते भने गमी गये छे, अट्टला भाटे हुं तमारी आज्ञा भेगवीने दीक्षा श्रद्धा करवा धच्छुं छुं पोट्टिलानी आ नतनी वात सांलणीने तैतलिपुत्रे तेने क्खुं के डे देवानुप्रिये ! तमे दीक्षित थंभने न्यारे काणना समये काण करशे। अने अन्यतर देवलोकंमां देवताना पर्यायथी न्म पामशे। त्यारे ने तमे डे देवानुप्रिये ! त्यांथी आवीने भने केवलि प्रज्ञप्त धर्म समज्जेवो तो हुं तमने अत्यारे भुशीथी प्रव्रजित थवानी आज्ञा आपी शकुं तेम छुं.

(अहं णं तुमं ममं णं संबोहेसिं तो ते ण विसज्जेमि तएणं सा पोट्टिला तैयलि-पुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, ततः खलु तैतलिपुत्ते विपुलं असणं ४ उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता, मित्तणाइ जाव आमंतेइ, आमंतित्ता, मित्तणाइ सम्माणित्ता पोट्टिलं

यावदामन्त्रयति, मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिपरिजनान् आमन्त्रयति, ' आमंत्रित्ता ' आमन्त्रय ' जाव संमाणेह ' यावत्-संमानयति=अशनपानादि चतुर्विधाहारेण संमान्य, ' पोट्टिलं ष्हायं जाव पुरिससहस्रवाहिणिं सीयं ' पोट्टिल्यां स्नातां यावत् पुरुषसहस्रवाहिनीं शिविकाम्, ' दूरोहेह ' दूरोहयति=आरोहयति, ' दूरुहित्ता ' आमंतेह आमंत्रित्ता जाव सम्माणेह, सम्माणित्ता पोट्टिलं ष्हायं जाव पुरिससहस्रवाहिणिं सीयं दूरुहह, दूरुहित्ता मित्तणाह जाव संपडिबुडे सन्विड्डीए जाव रवेणं तेयलिपुरस्स मज्झं मज्जेणं जेणेव सुव्वयाणं उवस्सए तेणेव उवागच्छह) यदि तुम मुझे संयोजित नहीं करोगी अर्थात् केवल प्रज्ञप्त धर्म को मुझे समझाने की प्रतिज्ञा नहीं करोगी तो मैं तुम्हें दीक्षित होने की आज्ञा नहीं दूँगा—इस प्रकार के तेतलिपुत्रके इस कथनको उस पोट्टिलाने स्वीकार कर लिया। अर्थात् मैं देवलोक में जाऊँगा तो वहाँ से आ कर आप को प्रतिबोध दूँगी इस प्रकार जब पोट्टिला ने स्वीकार कर लिया। इस के बाद तेतलिपुत्र ने विपुल मात्रा अनशनदि रूप चारों प्रकार का आहार निष्पन्न करवाया—करवा करके फिर उसने अपने मित्र, ज्ञाति, आदि जनो को आमंत्रित किया। मित्र, ज्ञाति, स्वजन संबन्धी परिजनोंको आमंत्रित करके यावत् अशन पानादिरूप इस चतुर्विध आहार से उनका सन्मान करके उसने पोट्टिलाको स्नान करवा कर यावत् उसे पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका पर बैठाया,

ष्हायं जाव पुरिससहस्रवाहिणिं सीयं दूरुहह दूरुहित्ता मित्तणाह जाव संपडिबुडे सन्विड्डीए जाव रवेणं तेयलिपुरस्स मज्झं मज्जेणं जेणेव सुव्वयाणं उवस्सए तेणेव उवागच्छह)

जे तमे मने सञ्जाधेशो नडि ओट्ठे डे जे तमे मने डेवणि प्रज्ञप्त धर्मने सभल्लववानी प्रतिज्ञा करेशो नडि तो तमने हुं केअपणु सञ्जेगोमां पणु दीक्षा स्वीकारवानी आज्ञा आपीश नडि. आ रीते ढडेवाथी पोट्टिलाओ तेतलिपुत्रना कथनने स्वीकारी लीधुं ओट्ठे डे पोट्टिलाओ तेमने आ प्रभाणु प्रतिज्ञाअद्ध थधने डह्णुं डे हुं देवलोअमां जअश अने त्याथी आवीने तमने धर्मने ओध आपीश. आम न्यादे पोट्टिलाओ स्वीकारी लीधुं त्यारपथी तेतलिपुत्रे पुअण प्रभाणुमां अशन वगेरेना इपमां चार जतना आहारो अनावडाव्या अने त्यारणाह तेणु पोताना मित्र, ज्ञाति, वगेरे स्वजनोने आमंत्रणु आभ्युं. मित्र, ज्ञाति, स्वजन संबन्धी परिजनोने आमंत्रणु आपीने यावत् अशनपान वगेरे चार जतना आहारोथी तेमनुं सन्मान करीने तेणु पोट्टिलाने स्नान करवावडाव्युं अने यावत् तेने पुरुष सहस्रवाहिनी पावथीमां असाडी.

दूरोह्य=आरोह्य ' मित्तणाइ जाव संपरिवुडे ' मित्रज्ञाति यावत् संपरिवृतः=मित्र-
ज्ञातिस्वजनसम्बन्धिपरिजनादिभिर्युक्तः ' सन्विड्डीए ' सर्वद्वर्चा ' जाव रवेणं '
यावद्रवेण=भेर्यादिनिनादेन सह तैतलिपुरस्य मध्यमध्येन यत्रैव सुव्रतानामुपाश्रय-
स्तत्रैव उपागच्छति । सा पोट्टिला शिविकातः ' पच्चोरुहइ ' प्रत्यवरोहति=अवतरति ।
ततः स तैतलिपुत्रः पोट्टिलां पुरतः कृत्वा यत्रैव सुव्रता आर्या तत्रैव उपागच्छति,
उपागत्य, वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवदत्-एवं खलु हे
देवानुप्रियाः मम पोट्टिलाभार्या इष्टा कान्ता प्रिया मनोज्ञा मनोऽमा, वर्तते,

बैठा कर मित्र, ज्ञाति स्वजन संबन्धी परिजनों से युक्त होकर अपनी
समस्त विभूति के अनुसार गाजे बाजेके साथ तैतलिपुर नगर के बीचों-
बीच चल कर वह जहाँ सुव्रता आर्यिका का उपाश्रय था वहाँ पहुँचा ।
(पोट्टिला सीयाओ पच्चोरुहइ, तैतलिपुत्ते पोट्टिलं पुरओ कट्टु जेणेव
सुव्वया अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, वंदइ नमंसइ वंदित्ता
नमंसित्ता एवं वयासी, एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम पोट्टिला भारिया इट्ठा
५ एसणं संसारभउव्विग्गा जाव पव्वइत्तए पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया !
सिस्सिणीभिव्वं अहासुहं मा पडिवंधं करेहि) पोट्टिला शिविका से
उतरी-तैतलिपुत्र पोट्टिलाको आगे करके जहाँ सुव्रता आर्यिका थीं वहाँ
गया । जा कर उसने उनको वंदनाकी नमस्कार किया । वंदना नमस्कार
करके फिर इस प्रकार कहने लगा हे देवानुप्रिये ! यह मेरी पोट्टिला नाम
की पत्नी है । यह सुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ एवं मनोम है । इसने

पालभीमां भेसाडीने मित्र, ज्ञाति, स्वजन संबन्धी परिजनोने साथे लधने
ते पोतानी समस्त विभूति सुव्वम गांनवाळनी साथे तैतलिपुर नगरनी
वस्सेवस्से थधने ज्यां ते सुव्रता आर्यिकाने उपाश्रय इते त्यां पडोऽथे ।
(पोट्टिला सीयाओ पच्चोरुहइ, तैतलिपुत्ते पोट्टिलं पुरओ कट्टु जेणेव सुव्वया अज्जाओ
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी एवं
खलु देवाणुप्पिया ! मम पोट्टिला भारिया इट्ठा ५ एसणं संसारभउव्विग्गा जाव
पव्वइत्तए पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणीभिव्वं अहासुहं मा पडिवंधं करेहि)
पोट्टिला पालभीमांथी नीथे उतरी पडी, तैतलिपुत्र अमात्य पोट्टिलाने
आगण राभीने ज्यां सुव्रता आर्यिका इती त्यां गथे । त्यां जधने तेणे तेमने
वंदना तेमज नमस्कार कर्थां, वंदना अने नमस्कार करीने तेणे आ प्रमाणे
कथुं के डे देवानुप्रिये ! आ पोट्टिला नामे भारी पत्नी छे । मने ओ धृष्टकांत,
प्रिय, मनोज्ञ अने मनोम छे । ओणे तभारी पासेथी धर्मनुं श्रवणुं कथुं छे

एषा खलु भवतीनां समीपे धर्मं श्रुत्या, धर्मश्रवणजनितवैराग्यप्रज्ञात् संसारभयो-
द्विग्ना ' जाव पत्रञ्जत् ' यावत् प्रव्रजितुम् भीता जन्म मरणेभ्यो भवतीनामन्तिके
प्रव्रज्यां ग्रहीतुमिच्छति, तस्मात् ' पडिच्छन्तु ' प्रतीच्छन्तु=स्त्रीकुर्वन्तु खलु देवानु-
प्रियाः ! इमां शिष्याभिक्षाम्, सुव्रतार्या प्राह—यथासुखम् मा प्रतियन्धं कुरुष्व ।
ततः खलु सा पोष्टिला सुव्रताभिरार्याभिरेवमुक्ता सती हृष्टतुष्टा उत्तरपौरस्त्यं
दिग्भागम्=ईशानकोणम् अवक्राम्यति=गच्छति, अवक्राम्य स्वयमेव आभरणमाल्या-
लंकारमवमुञ्चति, अवमुच्य स्वयमेव पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति, कृत्वा यत्रैव सुव्रता
आर्यास्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमव-
दत्—' आलित्तेणं भंते ! लोए ' आदीप्तः खलु भदन्त ! लोकः—हे आर्ये ! एष
लोको जन्म नरामरणादिभिर्दुःखैः प्रज्वलितः, ' एव ' अनेन प्रकारेण ' जहा देवाणंदा '
यथा देवानन्दा=देवानन्देव एषाऽपि सुव्रतानामन्तिके प्रव्रजिता, यावत्—एकादश
अङ्गानि अधीते, बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति, पालयित्वा मासिक्या

आपक पास धर्म सुना है सो उमके प्रभाव से यह संसार भय से
उद्विग्न हो कर जन्म मरण से भीत, व्रस्त हो कर आपके पास दीक्षित
होना चाहतो है । इसलिये हे देवानुप्रिये ! आप मेरे द्वाग दी गई इस
शिष्य भिक्षाको अंगीकार कीजिये । तब सुव्रता आर्यिका ने कहा—
यथा सुखं मा प्रतियन्धं कुरुष्व—(तण्णं सा पोष्टिला—सुव्वयाहिं अज्जाहिं
एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्ठा उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्क-
मित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव, पंच-
मुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव सुव्वयाओ तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—अलित्ते णं
भंते । लोए एवं जहा देवाणंदा जावे एककारसअंगाई अहिज्जइ, बहूणि

तेना प्रभावथी ये संसारलयथी व्याकुण थधने जन्म-मरणथी भीत अने व्रस्त
थधने तभारी पासथी दीक्षा ब्रह्म करवा छिछे छे. अट्टला भाटे डे देवानु-
प्रिये ! मारा वडे अपाती आ शिष्या इपी लिक्षानो स्वीकार करो. त्पारे
जवाणमां सुव्रता आर्यिकाये तेने कहुं के ' यथासुखं मा प्रतियन्धं कुरुष्व '
(तण्णं सा पोष्टिला सुव्वयाहिं अज्जाहिं एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्ठा उत्तर-
पुरत्थिमं दिसी भागं अवक्कमइ; अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्लालंकारं
ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव, पंचमुट्ठियं लोयं करेइ; करित्ता जेणेव सुव्वयाओ
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-
अलित्तेणं भंते ! लोए एवं जहा देवाणंदा जावे एककारसअंगाई अहिज्जइ, बहूणि

संलेखनया आत्मानं जुष्टा षष्ठि भक्तानि अनशनेन छिन्वा, ' आलोड्यपडिकंता ' आलोचित प्रतिक्रान्ता ' समाहिपत्ता ' समाधिप्राप्ता कालमासे कालं कृत्वा अन्य-तरेषु देवलोकेषु देवतया उपपन्ना । सू०८ ॥

वासाणि सामन्नपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसेत्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता आलोड्यपडिक्कता समाहिपत्ता, कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु - देवलोएसु देवत्ताए उव्वण्णा) इस प्रकार सुव्रता आर्यिका के द्वारा कही गई वह-पोट्टिला बहुत अधिक हृष्टतुष्ट हुई। बाद में वह ईशान कोणमें गई। वहां जाकर उसने अपने हाथों से शरीर पर रहे हुए आभरण, माल्य एवं अलंकारों को उतार दिया। उतार कर अपने आप पंचमुष्टिक केशों का लुंचन किया-लुंचन कर फिर वह जहां सुव्रता आर्या थीं वहां आई। आते ही उसने उन्हें वन्दना एवं नमस्कार करके फिर वह इस प्रकार बोली — हे भदन्त ! यह लोक जरा मरण आदि दुःखों से प्रवृत्तित हो रहा है, इस प्रकार से देवानदा की तरह यह सुव्रता आर्या के पास दीक्षित हो गई। यावत् उसने ११ अंगों का अध्ययन भी कर लिया। बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय को पालन किया। प्रीतिपूर्वक अन्त में एक मास की संलेखना धारण कर ६०, भक्तों का अनशन द्वारा छेद

वासाणि सामन्नपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसेत्ता सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता आलोड्यपडिक्कता समाहिपत्ता, कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उव्वण्णा)

आ रीते सुव्रता आर्यिका वडे आसा अपायेत्ती पोट्टिला भूण न हृष्ट-तुष्ट थर्ध गध त्थारपणी ते धशान कोणु तरइ गध अने त्यां नधने तेणु पोताना डथथी न शरीर उप्ररना आलरणे, माणाओ अने अलंकारे ने उतार्या अने उतारीने पोतानी भेणे न पांय मुठी केशानुं लुचन कर्तुं. लुंचन कर्था पणी ते न्यां सुव्रता आर्या डती त्यां आवती रूडी त्यां आवीने तेणु तेमने वंदन अने नमस्कार कर्था, वंदना अने नमस्कार करीने ते आ प्रमाणे विनंती करवा लागी डे डे लदन्त ! आ संसार नरा (धडपणु) भरणु वगेरे दुःभोथी सणगी रह्यो छे. आ रीते पोट्टिला देवानंदानी नेम सुव्रता आर्यानी पासे दीक्षित थर्ध गध अने अनुकमे तेणु अगियार अ गोनुं अध्ययन पणु करी दीधु. तेणु धणुं वर्षो सुधी श्रामण्य पर्यायनुं पालन कर्तुं छेवटे प्रीतिपूर्वक अेक मासनी सदेणना धारणु करीने अनशन वडे साठ लक्तानुं छेदन कर्तुं

मूलम्-तएणं से कणगरहे राया अन्नया कयाइं कालधम्मुणा
 संजुत्ते यावि होत्था । तएणं राईसर जाव णीहरणं करेत्ति,
 करित्ता, अन्नमन्नं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! कणग-
 रहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगित्था, अम्हेणं देवाणुप्पिया !
 रायाहीणा रायाहिट्ठिया रायाहीणकज्जा अयं च णं तेतली
 अमच्चे कणगरहस्स रत्तो सव्वट्ठाणेसु सव्वभूमियासु लद्धप-
 च्चए दिन्नवियारे सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था, तं सेयं खलु
 अम्हं तेतलिपुत्तं अमच्चं कुमारं जाइत्तएत्ति कट्टु अन्नमन्नस्स
 एयमट्ठं पडिसुणेत्ति, पडिसुणित्ता, जेणेव तेतलिपुत्ते अमच्चे
 तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छिता, तेतलिपुत्तं अमच्चं एवं
 वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! कणगरहे राया रज्जे य रट्ठे
 य जाव वियंगेइ । अम्हे य णं रायाहीणा जाव रायाहीणकज्जा,
 तुमं च णं देवाणुप्पिया ! कणगरहस्स रणो सव्वट्ठाणेसु जाव
 रज्जधुराचिंतए, तं जइणं देवाणुप्पिया ! अत्थि केइ कुमारे
 रायलक्खणसंपन्ने अभिसेयारिहे, तण्णं तुमं अम्हं दलाहि ।
 जाणं अम्हे महया२ रायाभिसेएणं अभिसिंचामो । तएणं
 तेतलिपुत्ते तेसिं ईसर० एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता, कण-
 गज्जयं कुमारं णहायं जाव सस्सिरीयं करेइ, करित्ता तेसिं ईसर

दिया । छेद कर आलोचित प्रतिक्रान्त वनी हुई यह समाधि प्राप्त हो
 गई और काल अवसर काल कर अन्यतर देवलोकमें देवता की पर्याय
 से उत्पन्न हो गई ॥ सू० ८ ॥

छेदन करीने आवेद्यित प्रतिक्रान्त वनी ते समाधि प्राप्त थई गई अने काल
 अवसर काल करीने अन्यतर देवलोकमां देवताना पर्यायधी जन्म पायी. सू. '८'

जाव उवणेइ, उवणित्ता, एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया !
 कणगरहस्स रण्णो पुत्ते पउमावईए अत्तए कणगज्झए नामं
 कुमारे अभिसेयारिहे रायलक्खणसंपन्ने मए कणगरहस्स रत्तो
 रहस्सियं संवड्ढिए, एयं णं तुब्भे महयार रायाभिसेएणं अभि-
 सिंचह । सव्वं च से उट्टाणपरियावणियं परिकहेइ । तएणं ते
 ईसर० कणगज्झयं कुमारं महयार रायाभिसेएणं अभिसिंचंति ।
 तएणं से कणगज्झए कुमारे राया जाए, महया हिमवंत मलय०
 षण्णओ जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ । तएणं सा पउमा-
 वई देवी कणगज्झयं रायं सदावेइ, सदावित्ता, एवं वयासी-
 एस णं पुत्ता ! तव रज्जे य जाव अंतेउरे य० तुमं च तैत्तलि-
 पुत्तस्स अमच्चस्स पहावेण, तं तुमं णं तेयलिपुत्तं अमच्चं
 आढाहि परिजाणाहि सक्कारेहि सम्माणेहि इंतं अब्भुट्ठेहि, ठियं
 पज्जुवासाहि, वयंतं पडिसंसाहेहि, अद्धासणेणं उवणिमंतेहि
 भोगं च से अणुवड्ढेहि । तएणं से कणगज्झए राया पउमावईए
 देवीए तहत्ति पडिसुणेइ जाव भोगं च से अणुवड्ढेइ ॥सू० ९॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स कनकरथो राजा अन्यदा
 कदाचित् । ‘ कालधम्मणा सजुत्ते ’ कालधर्मेण संयुक्तः= मृतश्चाप्यभवत् । ततः

‘तएणं से कणगरहे राया’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से कणगरहे राया अन्नया कयाइं)
 वह कनकरथ राजा किसी एक दिन काल कवलित हो गया (तएणं

‘ तएणं से कणगरहे राया ’ इत्यादि

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपठी (से कणगरहे राया अन्नया कयाईं) ते कनकरथ
 राजा काल दिवसे कालकवलित थछ गयो अटले के मृत्यु पाभ्यो.

खलु 'राईसर० जाव' = राजेश्वर० यावत् = राजेश्वरतलवरमाडम्बिककौटुम्बिकादि-
सार्थवाहप्रभृतयः तस्य 'णीहरणं' निहरणं = मृतककृत्यं कुर्वन्ति, कृत्या अन्यो-
ऽन्यमेवमवदन्-एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! कनकरथो राजा 'रज्जे य जाव पुत्ते'
राज्ये च यावत् पुत्रान् = राज्यादिपु मूर्च्छित उत्पन्नान पुत्रान 'वियंगित्था'
अव्यङ्गयत् = विकृताङ्गान् कृतवान् मारितवानित्यर्थः । 'अम्हेणं' वयं खलु देवानु-
प्रियाः ! 'रायाहीणा' राजाधीनाः = राजवशवर्तिनः, 'रायाहिद्विया' राजाऽधि-
प्रिता = राजाश्रिता इत्यर्थः, 'रायाहीणकज्जा' राजाधीनकार्याः, राजामधीनं कार्यं

राईसर जाव णीहरणं करेति, कारित्ता अन्नमन्नं एवं वयासी-एवं खलु
देवाणुप्पिए ! कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगित्था) राजेश्वर,
तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, सार्थवाह आदि व्यक्तियों ने मिल कर
उसका दाह संस्कार कियो । दाह संस्काररूप मृतक कृत्य करने के बाद
फिर उन लोगों ने परस्पर में इस प्रकार का विचार किया । हे देवानु-
प्रियो ! देखो कनकरथ राजाने तो राज्य आदि में मूर्च्छित हो कर
उत्पन्न हुए समस्त पुत्रों को विकृत अंग करके मार डोला है (अम्हे णं
देवाणुप्पिया ! राया हीणा रायाहिद्विया रायाहीणकज्जा अयं च णं तेत-
लीअमच्चे कणगरहस्स रघ्नो सव्वट्टाणेसु-सव्वभूमियासु लद्धपच्चए,
दिन्नविचारे-सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था) अब इस समय कोई राजा
है नहीं अतः हमलोगों का क्या होगा क्यों कि हम लोग तो हे देवा-
नुप्रियों ! राजा वशवर्ती है, राजा के आश्रित ही रहते आये हैं, हमारा

(तएणं राईसर जाव णीहरणं करेति, कारित्ता अन्नमन्नं एवं वयासी-एवं
खलु देवाणुप्पिए ! कणगरहे राया रज्जे य जाव पुत्ते वियंगित्था)

राजेश्वर, तलवर, माडम्बिक कौटुम्बिक, सार्थवाह वगैरे लोकोत्थे मणीने
तेने अग्नि-संस्कार क्यो. अग्नि-संस्कार आदि मृत्यु विधि पनावीने ते लोकोत्थे
परस्पर मणीने आ प्रभाण्णे विचार क्यो के हे देवानुप्रियो ! बुद्धो, राज
कनकरथे तो राज्य वगैरेनी भाषतमा लोडुप तेमञ्च भोडित थधने उत्पन्न
थयेदा चोताना षधा पुत्रेना अणो क्खीने भारी नाञ्च्ये छे.

(अम्हेणं देवाणुप्पिया ! राया हीणा रायाहिद्विया रायाहीणकज्जा, अयं च
णं तेतलीअमच्चे कणगरहस्स रघ्नो सव्वट्टाणेसु सव्वभूमियासु लद्धपच्चए, दिन्न-
विचारे सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था)

इवे अत्थारे केधं राज्ञे छे नडि तो अमारी शी दशा थसे ? हे
देवानुप्रियो ! अम्हे तो राजाना वशवर्ती छीये, राजने अधीन रहवाभां न

येषां ते तथा, सर्वमस्माकं कृत्यं राजाधीनं वर्तते इति भावः । अयं च खलु तैत्तिलि-
रमात्यः कनकरथस्य राज्ञः 'सर्वद्वारेषु' सर्वस्थानेषु=संधिविग्रहादिषु सर्वेषु
कार्येषु, 'सर्वभूमियासु' सर्वभूमिकासु = स्वाम्यमात्यराष्ट्रदुर्गकोषवलसुहृत्पौर-
श्रेणिरूपाष्टविधासु 'लब्धपञ्च' = लब्धप्रत्ययः-लब्धः=प्राप्तः प्रत्ययो विश्वासी
यस्य सः, सकलजनविश्वासपात्रमित्यर्थः, 'दिनविचारे' दत्तविचारः, दत्तः=
राज्ञे वितीर्णः, विचारः=शोभनो विचारो येन सः, लोकोपकारि विचारदायक इति-
भावः, 'सर्वकृज्जवद्वाय' सर्वकार्यवर्द्धकः=राज्ये समस्तकार्यसम्पादकश्चापि
'होत्या' अस्ति । 'तं' तत्=तस्मात् कारणात् 'सेयं' श्रेयः=उचितं खलु अस्माकं
तैत्तिलिपुत्रममात्यं कुमारं 'जाइत्तए' याचितुम्, अयमभिप्रायः-यद्यममात्यो
राज्ञः सकलकार्यनिर्वाहकः, अतस्तत्समीपे गत्वा 'कोऽपि राजलक्षणसंपन्नः
'कुमारो राजपदे स्थापनीयः' इति वार्तालापमुपक्रम्य, समागते प्रसङ्गे, तत्पुत्रो
राजपदे स्थापयितुं याचनीयः, 'त्तिकट्टु' इति कृत्वा=इति मनसि कृत्वा अन्यो-
ऽन्यस्य एतमर्थं 'पडिसुणंति' प्रतिशृण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति, 'पडिसुणित्ता' प्रति-
श्रुत्य, यत्रैव तैत्तिलिपुत्रोऽमात्यस्तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य, एवमवदन्-एवं खलु

जितना भी कार्य होता है वह सब राजाधीन ही होता आया है । इस
लिये तैत्तिलिपुत्र जो अमात्य है चलो उनके पास चले क्यों कि वे ही
कनकरथ राजाके लिये सधिविग्रह आदि समस्त कार्यों में एवं स्वामी,
अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग कोश, बल, सुहृत् और पौरश्रेणीरूप आठ भूमियों
में विश्वसनीय थे । राजा के लिये ये ही लोकोपकारी कार्यों में सलाह
दिया करते थे और ये ही राज्यमें समस्त कार्यों के संपादक हैं (तं सेयं
खलु अहं तैत्तिलिपुत्रं अमच्चं कुमारं जाइत्तए त्तिकट्टु अन्नमन्नस्स एयं-
महं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता जेणेव तैत्तिलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवाग-
च्छंति, उवागच्छित्ता तैत्तिलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी-एवं खलु देवाणु-

देवाद्य गयेदा छीये. अमारा अथा कामो राजधीनं न डोय-छे अथी आलो
आपणे सौ मणीने अमात्य तैत्तिलिपुत्रनी पासं नथये, केमके तेयो न राज
कनकरथना संधिविग्रह वगेरे अथा कामोमां अने स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग,
कोशभण, सुहृत् अने पौर श्रेणिरूप आठ भूमियांमां ते विश्वसनीय छे. लोकोना
हित भाटे तैत्तिलिपुत्र अमात्य न सलाह आपता रडेता छता तेम न राज्याना
अथा कामोने पार पाडनाश पणु तेयो न छे.

(तंसेय खलु अहं तैत्तिलिपुत्रं अमच्चं कुमारं जाइत्तए त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स
एयमहं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता जेणेव तैत्तिलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति,
उवागच्छित्ता तैत्तिलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुष्पिया ! कर्णगरहे

हे देवानुप्रिय ! कनकरथो राजा राज्ये च राष्ट्रे च यावत् व्यङ्गयति, वयं च खलु हे देवानुप्रिय ! राजाधीना यावद् राजाधीनकार्याः, त्वं च खलु हे देवानुप्रिय !

पिया ! कणगरहे राया रज्जे य रट्टे य जाव वियंगेइ, अम्हे य णं राया हीणा जाव रायहीणकज्जा, तुमं च णं देवाणुप्पिया । कणगरहस्स रण्णो सव्वट्ठाणेषु जाव रज्जधुरा चितए—तं जइणं देवाणुप्पिया । अत्थि केइ कुमारे रायलक्खणसंपन्ने अभिसेयारिहे, तएणं तुमं अम्हं दलाहि) इसलिये हमको उचित है कि हम तेतलिपुत्र अमात्य से कुमार की याचना करें। तात्पर्य इस का यह है कि ये तेतलिपुत्र अमात्य राजा के सकल कार्य निर्वाहक हैं—इसलिये उनके पास चलकर “कोई राज लक्षण संपन्न कुमार राजपद में स्थापनीय है” इस बात की हम चर्चा करें। इस चर्चा के प्रसंग में उनसे यह भी निवेदन करेंगे कि आप अपने पुत्र की ही राज पद में स्थापित कर दीजिये। इस प्रकार का विचार उन्होंने किया। जब विचार स्थिर होचुका—तब सवने इस बात को एक मत से स्वीकार कर लिया। स्वीकार कर के फिर वे सबके सब जहां अमात्य तेतलिपुत्र थे वहां गये। वहां जाकर उन्होंने ऐसा कहा—हे देवानुप्रिय ! कनक रथ राजाने राज्य और राष्ट्र आदि में विशेष मूर्च्छित बनकर उत्पन्न हुए अपने समस्त पुत्रों को अंगभंग कर मारडाला

राया रज्जे य रट्टे य जाव वियंगेइ, अम्हे य णं देवाणुप्पिया ! कणगरहस्स रण्णो सव्वट्ठाणेषु जाव रज्जधुरा चितए—तं जइणं देवाणुप्पिया । अत्थि केइ कुमारे रायलक्खणसंपन्ने अभिसेयारिहे, तएणं तुमं अम्हं दलाहि)

अथी अभने अे उचित लागे छे. के अभे तेतलिपुत्र अमात्यनी पासे जधने राजकुमारनी याचना करीअे. कारणु के तेतलिपुत्र अमात्य राजाना अधा कामेने सारी रीते पार पाउनारा छे, अेटला भाटे तेमनी पासे जधने राज थवा योग्य राज-लक्षण युक्त-कौर्ण कुमार भणी शके तेम छे के केम ? ते विशे अर्था करीअे. आ नतनी विचारणां करतां करतां अभे अधा तेमने अेवी विनंती पणु करीअुं के तेमे पोताना पुत्रने न राजगाहीअे अेसाडी हो. आम ते बोकेअे भणीने विचार करी. आम विचार पाके थई गये. त्यारे सौअे अेकमत थधने तेने स्वीकारी लीधे. स्वीकार करीने तेअे अधा त्यांथी न्यां अमात्य तेतलिपुत्र इतो त्यां गया, त्यां जधने तेमणु तेतलिपुत्रने इहुं के हे देवानुप्रिय ! कनकरथ राजाअे सन्त्य अने राष्ट्र वगेरेमां सविशेष मूर्च्छित अेटले के भोइवश थधने जन्म पायेला पोताना अधा न पुत्रेना अंगे कापीने तेअेने सारी

कनकरथस्य राज्ञः सर्वस्थानेषु यावत् 'रज्जधुरार्चिते' राज्यस्य धूः राज्यधुरा, तस्याश्चिन्तकः, राज्यभारनिर्वाहकश्चासि, तद् यदि खलु देवानुप्रिय! अस्ति कोऽपि कुमारो राजलक्षणसंपन्नः 'अभिसेयारिहे' अभिषेकार्हो राज्याभिषेकयोग्यः, 'तं णं' तं खलु त्वमस्मभ्यं 'दलाहि' देहि 'जो' यस्मात् 'णं' तं 'अम्हे' वयं महता २ 'रायाभिसेएण' राज्याभिषेकेण=राजयोग्येनाभिषेकेण अभिषिञ्चामः राज्ये स्थापयाम इत्यर्थः। ततः खलु तैत्तिलिपुत्रः तेषाम् 'ईसर०=ईश्वर०=ईश्वरतलवरमाडम्बिकादि सार्थवहप्रभृतीनाम् एतमर्थं 'पडिसुणेइ' प्ररिश्रृणोति=स्वीकरोति, प्रतिश्रुत्य=स्वाकृत्य, कनकध्वजं कुमारं 'ण्हायं सस्सिरीयं' स्नातं यावत् सश्रीकं, स्नातं=कृतस्नानम्, यावत् सश्रीकम्=सर्वालङ्कारविभूषितं शोभासमन्वितं च करोति, कृत्वा तेषाम् 'ईसर जाव' ईश्वर यावत्=ईश्वरादीनां सम्मुखे 'उवणेइ' उपनयति, उपनीय एवमवादीत-एष खलु हे देवानुप्रियाः!

है। अब इस समय राज पद में कोई नहीं है। हमलोग तो हे देवानुप्रिय! राजाधीन यावत् राजाधीन कार्य वाले हैं। और देवानुप्रिय! कनक रथ राजा के लिये संधि विग्रह आदि समस्त स्थानों में एव स्वामी अमात्य आदि आठ भूमियों में विश्वसनीय रहें हैं। राजा के लिये लोकोपकारी कार्यों में आप सलाह देते रहे हैं। और आप ही राज्य भार के निर्वाहक है। इसलिये हमारी आपसे यह प्रार्थना है कि हे देवानुप्रिय! यदि राज्यलक्षण संपन्न कोई कुमार राज्य पद में अभिषेक करने के योग्य होवे तो उसे आप हमें देवें। (जो णं अम्हे महया २ रायाभिसे एणं अभिसिञ्चामो। तएणं तैत्तिलिपुत्ते तैसि ईसरएयमहं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता कणगज्झयं कुमारं ण्हायं जाव सस्सिरीयं करेइ, करित्ता तैसि ईसर जाव उवणेइ, उवणित्ता एवं वयासी) कि जिससे हम उसे

नाभ्या छे. डवे अत्थारे राजपद भाटे कोठ रह्युं नथी. डे देवानुप्रिय! अमे दोको तो राजधीन रह्युने न रह्येता आण्यो छीये अने डे देवानुप्रिय! तमे राज कनकरथना संधिविग्रह वगेरे ण्हा कामेमां अट्ठये डे स्वामी अमात्य, विग्रह विगेरे तमाभ कामेमां डंभेशा विश्वासपात्र रह्या छे, दोडडित्ताणी णाभतमां तमे राजने सलाह आपता रह्या छे, अने तमेण राज्यना ण्हा कामेने पार पाउता आण्यो छे. अथी अमे तमने अवी विनति करीये छीये डे डे देवानुप्रिय! राज-लक्षणोवाणे अने अलिपिकत थधने राजगाहीये जेसवा योग्य कोठ कुमार डोय तो तेने तमे अभने सोपो.

(जे णं अम्हे महया २ रायाभिसेएणं अभिसिञ्चामो। तएणं तैत्तिलिपुत्तं तैसि ईसर एयमहं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता कणगज्झयं कुमारं ण्हायं जाव सस्सिरीये करेइ, करित्ता तैसि ईसर जाव उवणेइ, उवणित्ता एवं वयासी)

कनकरथस्य राज्ञः पुत्रः पद्मावत्या देव्या आत्मजः कनकध्वजो नाम कुमारः अभि-
पेकार्थं राजलक्षणसम्पन्नो मया कनकरथस्य राज्ञो ' रहस्सियं ' रहस्सिकं=प्रच्छन्नं
यथा स्यात्तथा संवर्द्धितः, एतं खलु यूयं महता २ राजाभिषेकेण अभिविञ्चत ।
पुनः सः सर्वं च ' से ' तस्य ' उट्टाणपरियावणियं ' उत्थानपरियापनिकम्=

राज योग्य अभिषेक द्वारा अभिषिक्त कर राज्य में स्थापित करें । इस
तरह के उन ईश्वर, तलवर, मांडविक आदि सार्धवाह वगैरह के इस
कथन रूप अर्थ को उस तैतलिपुत्र अमात्य ने स्वीकार कर लिया और
स्वीकार करके कनकध्वज कुमार को उसने नही धुवाकर सर्वालंकारों
से विभूषित किया । विभूषिक करके फिर वह उसे उन ईश्वर तलवर
आदिकों के समक्ष ले आया । लाकर के उनसे उसने ऐसा कहा-(ए स
णं देवानुप्पिया ! कणगरहस्स रण्णो पुत्ते पउमावईए अत्तए कणगज्झए
णामं कुमारे अभिसेयारिहे रायलक्खणसंपन्ने मए कणगरहस्स रण्णो
रहस्सियं संवड्ढिए एयं णं तुव्वे महया महया रायाभिसेएणं अभिसि-
चह) हे देवानुप्पियो ! यह कनकरथ राजा का पुत्र है जो पद्मावती की
कुक्षि से जन्मा है । इसका नाम कनकध्वज कुमार है । अभिषेक के
योग्य है और राजलक्षण संपन्न है । मैंने इसको कनकरथ राजा से छिपी
कर पालापोषा है और वृद्धिगत किया है । इसे आपलोग बड़े भारी
राजयोग्य अभिषेक के साथ राज्य में स्थापित कीजिये । (सर्वं च से

हे देवी अमे तेने राज्यासने अलिषेक करी शक्ये. आ रीने अमात्य
तैतलिपुत्रे ते ईश्वर, तलवर, मांडविक, सार्धवाह वगैरेना कथनने स्वीकार्युं
अने स्वीकारिने तेणे कनकध्वज कुमारने कानन करंयुं अने त्थारपणी अथा
'अलंकारेथी तेने शक्यार्थी. त्थारणाए अमात्य तैतलिपुत्रे सुसन्न थयेदा
कुमारने ईश्वर, तलवर वगैरेनी साथे लाये अने तेणेने कहुं हे—

(ए सणं देवानुप्पिया ! कणगरहस्स रण्णो पुत्ते पउमावईए अत्तए कणगज्झए
णामं कुमारे अभिसेयारिहे रायलक्खणसंपन्ने मए कणगरहस्स रण्णो रहस्सियं
संवड्ढिए एयं णं तुव्वे महया महया रायाभिसेएणं अभिसिचह)

हे देवानुप्पियो ! आ कनकरथ राजने पुत्र हे अने पद्मावती देवीना
कुक्षिथी आने जन्म थये हे. कनकध्वज कुमार आनुं नाम हे. आ कुमार
राज्यासने ऐसाउवा योग्य तेमज राजलक्षणार्थी युक्त हे. राज कनकरथने आ
पालननी लक्ष्मी नथी, मे आनुं पालन तेमज रक्षक छुपी रीते क्युं हे.
तमे लारे मडोत्सवनी साथे आ कुमारने राज्यादीये ऐसाडे.

उत्थानं=जन्म, परियापनिका=जन्मानन्तरमद्यावधिका संवर्द्धनादिपरिस्थितिः,
 उत्थानं च परियापनिका च=उत्थानपरियापनिकम्=जीवनचरितं परिकथयति ।
 ततः खलु 'ईसर०' ईसरतलवरमाडम्बिकादयः कनकध्वजं कुमारं महताः २
 राजाभिषेकेण अभिषिञ्चन्ति । ततः खलु स कनकध्वजः कुमारो राजा जातः, स
 च कनकध्वजो राजा 'महया हिमवंत०' महाहिमवद्=महाहिमवन्महामलय
 मन्दरमहेन्द्रसारः '=महाहिमवन्महामलयमन्दरमहेन्द्राणां सार इव सारो यस्य सः,

उद्घाणपरियावणियं परिकहेइ, तएणं ते ईसर० कणगज्झयं कुमारं महया
 २ रायाभिसेएणं अभिसिंचन्ति । तएणं से कणगज्झए कुमारे राया
 जाए, महया हिमवंत मलय० वण्णओ जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ,
 तएणं सा पउमावई देवी कणगज्झयं रायं सहावेइ, सहावित्ता एव
 वयासी) ऐसा कहकर फिर उन तैत्तिलिपुत्र अमात्य ने उस कनकध्वज
 कुमार का उत्थान-जन्म और परियापनी का-जन्म से लेकर अभी तक
 की समस्त पालन पोषण संवर्द्धन आदि परिस्थिति रूप-जीवन चरित्र
 उन्हें कह सुनाया-इस के बाद उन ईश्वर, तलवर, माडम्बिक एव कौटुं
 म्बिक आदिकोंने कनकध्वज कुमार का बड़े जोर शोर के साथ राज्या-
 भिषेक किया । राज्य में अभिषिक्त होने के बाद वे कनकध्वज कुमार
 अब राजा बन गये । इसका सार-बल लोकमर्यादा कारी होने के कारण
 महा हिमवत् जैसा, यश और कीर्ति के फैलाव के कारण महामलय

सर्वं च से उद्घाणपरियावणियं परिकहेइ, तएणं ते ईसर० कणगज्झयं कुमारं
 महया २ रायाभिसेएणं अभिसिंचन्ति । तएणं से कणगज्झए कुमारे राया जाए,
 महया हिमवंता मलय० वण्णओ जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ, तएणं सा पउमा-
 वई देवी कणगज्झयं रायं सहावेइ, सहावित्ता एव वयासी)

आ प्रभाषे कहीने तैत्तिलिपुत्र अमात्ये ते कनकध्वज कुमारेणु उत्थान-
 जन्म अने परियापनिका अटवे के जन्मथी भाडीने अत्यार सुधीनी पोषण
 संवर्द्धन वगेरेनी एवन चरित्र संअधी अधी विगत अथथी धति सुधी कही
 संलणावी. त्यारभाइ ते ईश्वर, तलवर, माडम्बिक अने कौटुम्बिक वगेरे लोकेशे
 कनकध्वज कुमारेणो अहु अ मोटा पाया उपर उत्सव उल्लसने राज्याभिषेक
 कथे. अभिषिक्त थप्रा भाइ कनकध्वज राजा थई गया इता. तेमनुं अण लोक
 मर्यादाने रक्षनार डोवा अहल महाहिमवंत जेवुं इतुं. तेमना यश अने कीर्ति
 थोमेर प्रसरेला इता तेथी ते महामलय जेवा इता तेमज तेथो इइ प्रति-

लोकमर्यादाकारित्वेन महाहिमवत्सदृशः, प्रसृतयशः कीर्तित्वेन महामलयतुल्यः, दृढप्रतिवृत्तत्वेन कर्तव्यदिग्दर्शकत्वेन च मन्दरमहेन्द्रतुल्यः, 'वष्णाओ' वर्णकः विशेषरूपेण अन्यतोऽवसेयः, 'जाव रज्जं पसासेमाणे' यावद्राज्यं प्रशामद् विहरति राज्यं कुर्वन्नास्ते । ततः खलु सा पद्मावतीदेवी कनकध्वजं राजानं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदत्-एतत् खलु हे पुत्र ! तव 'रज्जे य जाव अंतेउरे य०' राज्यं च यावदन्तः पुरं च एतत्सर्वं तेतलिपुत्रस्य प्रभावेन वर्तते 'तं' तत्=कारणात् त्वं खलु तेतलिपुत्रममात्यं 'आढाहि' आद्रियस्व=आदरं कुरुष्व 'परिजाणाहि', परिजानाहि=अवेक्षस्व तदनुमत्या सर्वं कार्यं सम्पादयेत्यर्थः सत्कारय वस्त्रादिना, सम्मानय माल्यादिना, 'इंतं' यन्तम्=भासच्छन्तमेतं तेतलिपुत्रम् 'अब्भुडेहि' अभ्युत्तिष्ठ=अभ्युत्थानादिना विनयं प्रदर्शयेत्यर्थः 'ठियं पज्जुवासाहि' स्थितं पर्युपास्व=सेवस्व, 'वयंतं' व्रजन्तं=गच्छन्तम् 'पडिसंसाहेहि' प्रतिसंसाधय=अनुगमनादिना प्रसादय, तथा 'अद्धासणेणं उवणिमंतेहि' अर्थासनेन उपनिमन्त्रय=स्वस्यासने तमुपवेपय, भोगं=सुखसामग्रीरूपं च 'से' तस्य अनुवर्द्धय । ततः स कनकध्वजः 'पउमावईए देवीए' पद्मावत्या देव्याः वचनं 'तवत्ति'

के जैसा, दृढप्रतिज्ञा वाले एव कर्तव्य का दिग्दर्शन कराने वाले होने के कारण मन्दर महेन्द्र-मेरु के जैसा था। और भी इन राजा के विषय का विशेष वर्णन दूसरों शास्त्रों से जान लेना चाहिये। यावत् इस तरह ये कनकध्वज कुमार अपने राज्य के शासन करने में तत्पर बन गये। इसके बाद उस राजमाता पद्मावतीदेवी ने उन कनकध्वज राजाको अपने पास बुलाया-और बुलाकर फिर उनसे उसने इस प्रकार कहा-(तएणं पुत्ता ! तव रज्जे य जाव अंतेउरेय० तुमंच तेतलिपुत्तस्स अमच्चस्स पहावेणं, तं तुमं णं तेतलिपुत्तं अमच्चं आढाहि, परिजाणाहि, सक्कारेहि, सम्माणेहि, इंतं अब्भुडेहि ठियं पज्जुवासाहि, वयंतं पडिसंसाहेहि, अद्धासणेणं

शानाणा अने कर्तव्यने पतावनार होवा पहल मन्दर महेन्द्र-मेरु जेवा हुता. राजा कनकध्वज विशेष विशेष वर्णन भील शास्त्रोभां वर्णुंथुं छे, एतासुथोअये त्यांथी लोणी लेवुं जेधंअये आ प्रभाणु ते कनकध्वज कुमार पोताना रान्यना वहीवटने संलाणवा भाटे सावध थंथ गया. त्यारपछी रजमाता पद्मावतीदेवीअये कनकध्वज राजने पोतानी पासे जोलाव्या अने जोलावीने तेमने आ प्रम णु कहुं छे

(तएणं पुत्ता ! तव रज्जे य जाव अंतेउरेय० तुमं च तेतलिपुत्तस्स अमच्चस्स पहावेणं, तं तुमं णं तेतलिपुत्तं अमच्चं आढाहि, परिजाणाहि, सक्कारेहि, सम्मा-

तथेति=' तथास्तु ' इतिकृत्वा प्रतिश्रुणोति=स्वीकरोति प्रतिश्रुत्य तथैव कुर्वाण यावद् भोगं च तस्य अनुवर्द्धयति ॥ ९ ॥

उवणिमंतेहि, भोगं च से अणुवड्डेहि । तएणं से कणगज्झए राया पउमावईए देवीए तहत्ति पडिसुणेइ, जाव भोगं च से अणुवड्डेइ) हे पुत्र । यह तुम्हारा राज्य और अंतः पुर तथा तुम स्वयं यह जो कुछ है वह सब तैत्तलिपुत्र अमात्य के प्रभाव से ही है इसलिये तुम तैत्तलिपुत्र अमात्य का आदर करते रहो, उनकी अनुमति से काम किया करो उनका वस्त्रादि द्वारा समय २ पर सत्कार करते रहो, अभ्युत्थानादि सन्मान करते रहो और जब तैत्तलिपुत्र तुम्हें आते हुए दिखलाई दे तौ तुम उठकर इनके प्रति अपना विनय प्रदर्शित किया करो । जब ये जावे-तब तुम बैठ कर इनकी सेवावृत्ति किया करो, जब ये चलने लगे तो तुम इनके पीछे २ थोड़ी दूर तक अपने महलों में पहुँचाने जाया करो, अपने बैठने के आसन पर इन्हें अर्धभाग में बैठाया करो और जो भी सुख साधनकी सामग्री है वह इनकी बड़ा दो । इस प्रकार राजमाता पद्मावती देवी के वचनों को " तथास्तु " कहकर कनकध्वज राजाने स्वीकार कर लिया ।

णेहि इंत अब्भुड्डेहि ठियं पज्जुवासाहि वयं तं पडिसंसाहेहि, अद्वासणेणं उवणिमं तेहि, भोगं च से अणुवड्डेहि । तएणं से कणगज्झए राया पउमावईए देवीए तहत्ति पडिसुणेइ, जाव भोगं च से अणुवड्डेइ)

हे पुत्र ! आ तमाइं राज्य रणुवास तेमज तमे पोते आ अधुं ने कंठ छे, ते सर्वे तैत्तलिपुत्र अमात्यना प्रभावथी ज छे. जेथी तमे तैत्तलिपुत्र अमात्यने सदा आदर करता रडे, दरेक काम तेमनी आज्ञाथी करता रडे, वस्त्रो वगेरे आपीने यथा समय तेमने सत्कार करता रडे, तेमनु सन्मान करता रडे अने अमात्य तैत्तलिपुत्र तमने आवता हेणाय त्तारे तमे उलाथधने तेमना प्रति विनय युक्त थधने व्यवहार करे. न्यारे तेज्जे जवा त्तार थाय त्तारे तमे जेसीने तेमनी सेवा करता रडे. अने न्यारे तेज्जे आलवा मांडे त्तारे तमे तेमनी पाछण पाछण थोडे दूर सुधी पोताना मडेल मांज विहाय आपवा माटे तेमनु अनुसरणु करेतां जज्जे तमे तेमने पोताना आसनना अर्धभाग उपर जेसाडे अने तेमनी जधी सुणसगवडनी सामग्री मां वधारे करी आपो. आ रीते राजमाता पद्मावती देवीनी आज्ञाने कनक ध्वज राजज्जे ' तथास्तु ' कडीने स्वीकारी दीधी, स्वीकार्या पधी तेज्जे ते

मूलम्-तएणं से पोद्विले देवे तेतलिपुत्तं अभिक्खणं २
केवलिपन्नत्ते धम्ममे संबोहेइ, नो चेव णं से तेतलिपुत्ते संबु-
ज्झइ । तएणं तस्स पोद्विलदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५
एवं खलु कणगज्झए राया तेतलिपुत्तं अढाइ जाव भोगं च से
वड्ढेइ तएणं से तेतलीपुत्ते अभिक्खणं २ संबोहिजमाणे वि धम्ममे
नो संबुज्झइ, तं सेयं खलु मम कणगज्झयं रायं तेतलिपुत्ताओ
विप्परिणामेत्तए तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहिता, कणगज्झयं तेत-
लिपुत्ताओ विप्परिणामेइ । तएणं तेतलिपुत्ते कल्लं ष्हाए जाव
पायच्छित्ते आसखंधवरगए वड्ढहिं पुरिसेहिं संपरिवुडे साओ
गिहाओ णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव कणगज्झए राया तेणेव
पहारेत्थए गमणाए । तएणं० तेतलिपुत्तं अमच्चं जे जहा वहवे
राईसरत्तलवर जाव पभियाओ पासंति, ते तहेव आढायंति,
परिजाणंति, अब्भुट्ठेति, आढाइत्ता, परिजाणित्ता, अच्चुट्ठित्ता,
अंजलिपरिग्गहं करेति, इट्ठाहिं कंताहिं जाव वग्गूहिं आल-
वेमाणा य संलवेमाणा य पिट्ठओ य पासओ य मग्गओ य
समणुगच्छंति तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव कणगज्झए राया
तेणेव उवागच्छइ । तएणं से कणगज्झए राया तेतलिपुत्तं
एज्जमाणं पासइ, पासित्ता, नो अढाइ, नो परियाणाइ, नां

स्वीकार करके फिर उन्होंने वैसा ही सब कुछ करते हुए तेतलिपुत्र
अमात्य की यावत् सुख साधन सामग्री बढ़ा दी ॥ सू० ९ ॥

प्रभाषेणं णधुं कर्तां तेतलिपुत्र अमात्यनी सुप्पसगवड वगेरेनी सामग्रीमां
वधारो करी आये ॥ सू० ९ ॥

अब्भुट्टेइ, अणाढायमाणे, अपरियाणमाणे, अणब्भुट्टायमाणे,
परम्भुहे संचिठ्टइ । तएणं तेतलिपुत्ते कणगज्झयस्स अंजलिं
करेइ । तएणं से कणगज्झए राया अणाढायमाणे तुसिणीए
परम्भुहे संचिठ्टइ । तएणं तेतलिपुत्ते कणगज्झयं विप्परिणयं
जाणित्ता भीए जाव संजायभए एवं वयासी-रुट्टेणं मम कण-
गज्झए राया हीणे णं ममं कणगज्झए राया, अवज्झाए णं
ममं कणगज्झए, राया तं ण नज्जइ णं ममं केणइ कुमारेण
मारेहिइ त्ति कट्टु भीए तत्थेऽ जाव सणियं२ पच्चोसकइ, पच्चो-
सक्कित्ता, तमेव आसखंधं दुरूहेइ, दुरूहित्ता, तेतलिपुरं मज्झं-
मज्झेणं जेणेव सए गिहे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए । तएणं
तेतलिपुत्तं जे जहा ईसर जाव पासंति, ते तहा नो आढायंति
नो परियाणंति नो अब्भुट्टेति नो अंजलिपरिग्गहं करेति, इट्ठाहिं
जाव णो संलवंति नो पुरओ य पिट्टुओ य पासओ य मग्गओ
य समणुगच्छंति । तएणं तेतलिपुत्ते जेणेव सए गिहे तेणेव
उवागच्छइ । उवागच्छित्ता जाविय से तत्थ बाहिरिया परिसा
भवइ, तं जहा—दासेइ वा पेसेइ वा भाइल्लएइ वा सावि य
णं नो आढाइ नो परियाणाइ नो अब्भुट्टेइ, जाविय से अब्भि-
तरिया परिसा भवइ, तं जहा - पियाइ वा मायाइ वा
जाव सुणहाइ वा सावि य णं नो आढाइ, नो परियाणाइ,
नो अब्भुट्टेइ । तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव वासधरे जेणेव सए
सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, सयणिज्जांसि णिसी-

यइ, णिसीइत्ता, एवं वयासी-एवं खलु अहं सयाओ गिहाओ
 णिग्गच्छामि, तं चेव जाव अविंभतरिया, पुरिसा नो आढाइ
 नो परिजाणाइ, नो अब्भुट्टेइ, तं सेयं खलु मम अप्पाणं जी-
 वीयाओ ववरोवित्तएत्तिकट्टु, एवं संपेहेइ, संपेहिता तालउडं विसं
 आसगंसि पक्खिवइ, से य विसे णो संकमइ । तएणं तेतलि-
 पुत्ते नीलुप्पल जाव असिं खंधंसि ओहरइ, तत्थ वि य से धारा
 ओपह्हा । तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव असोगवणिया तेणेव
 उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासगं गीवाए वंधइ, वंधित्ता अप्पाणं
 मुयइ, तत्थ वि य से रज्जू छिन्ना । तएणं से तेतलिपुत्ते महइ
 महालयं सिलं गीवाए वंधइ, वंधित्ता अत्थाहमतारमपोरिसि-
 यंसि उदगंसि अप्पाणं मुयइ, तत्थ वि से थाहे जाए । तएणं
 से तेतलिपुत्ते सुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवइ, पक्खि-
 वित्ता मुयइ, तत्थ वि से अगणिकाए विज्झाए । तएणं से
 तेतलोपुत्ते एवं वयासी-सद्धेयं खलु भो समणा वयंति, सद्धेयं
 खलु भो माहणा वयंति, सद्धेयं खलु भां समणामाहणा वयंति,
 अहं एगो असद्धेयं वयामि, एवं खलु अहं सहपुत्तेहिं अपुत्ते
 को मेयं सदहिस्सेइ? सहमित्तेहिं अमित्ते, को मेयं सदहिस्सइ,
 एवं अत्थेणं दारेणं दासेहिं परिजणेणं एवं खलु तेतलिपुत्तेणं
 असच्चे कणगज्झएणं रन्ना अवज्झाएणं समाणेणं तेतलिपुत्तेणं
 तालपुडगे विसे आसगंसि पक्खित्ते, से वि य णो कमइ को
 मेयं सदहिस्सइ ? तेतलिपुत्तेणं नीलुप्पल जाव खंधंसि, ओइ-

रिए, तत्थ वि से धारा ओपळा को मेयं सदहिस्सइ । तेतलि-
पुत्तेणं पासगं गीवाए बंधेत्ता जाव रज्जू छिन्ना को मेयं सदहि-
स्सइ? तेतलिपुत्तेणं महइमहालयं जाव बंधित्ता अत्थाहे जाव
उदगंसि, अप्पासुकके, तत्थ वि य णं थाहे जाए को मेयं सद-
हिस्सइ ? तेतलिपुत्तेणं, सुकंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खि-
वित्ता अप्पासुकको तत्थ वि से अगणिकाए विज्झाए, को मेयं
सदहिस्सइ ? ओहयमणसंकप्पे जाव झियाइ ॥ सू० १० ॥

टीका—‘ तएणं से पोट्टिले ’ इत्यादि । ततः खलु स पोट्टिलोदेवस्तेतलि-
पुत्रम् ‘ अभिक्खणं २ ’ अभीक्षणम् २=पुनः पुनः केवलिप्रज्ञप्ते धर्मे संबोधयति ।
परन्तु नो चैव खलु स तेतलिपुत्रः ‘ संबुज्झइ ’ सम्बुध्यते=प्रतिबोधं प्राप्नोति ।
ततः खलु तस्य पोट्टिलदेवस्य ‘ इमेयारूवे ’ अयमेतद्रूपः=पुरउच्यमानः ‘ अज्झ-
त्थिए ’ ५=आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपद्यत ।
संकल्पप्रकारमाह—‘ एवं खलु ’ इत्यादि । एवं खलु कनकध्वजो राजा तेतलि-
पुत्रं आद्रियते यावत् भोगं च संवर्द्धयति, ततः खलु स तेतलिपुत्रोऽभीक्षणं २ मया

‘ तएणं से पोट्टिले ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से पोट्टिले देवे) वह पोट्टिलाका जीव देव
(तेतलिपुत्तं अभिक्खणं २ केवलिपन्नत्ते धम्ममे संबोहेइ, नो चैव णं से
तेतलिपुत्ते संबुज्झइ) तेतलिपुत्र अमात्यको बार बार केवलिप्रज्ञप्त धर्ममें
प्रतिबोधित करने लगा परन्तु तेतलिपुत्र प्रतिबोध को प्राप्त नहीं हुआ ।
(तएणं तस्स पट्टिलदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५—एवं खलु कणज्झए
राया तेतलिपुत्तं अदाइ, जाव भोगं च संवर्द्धेइ, तएणं से तेतलिपुत्ते अ-

तएणं से पोट्टिले इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) त्थार पछी (से पोट्टिले देवे) ते पोट्टिलानो एव देव
(तेतलिपुत्तं अभिक्खणं २ केवलिपन्नत्ते धम्ममे संबोहेइ नो चैव णं से तेतलि
पुत्ते संबुज्झइ)

तेतलिपुत्र अमात्यने बारंवार डेवणि प्रज्ञप्तधर्मभां प्रतिबोधित करवा
लाये। पछु तेतलिपुत्रने प्रतिबोध प्राप्त थये नडि।

(तएणं तस्स पोट्टिलदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५—एवं खलु कणज्झए
राया तेतलिपुत्तं अदाइ, जाव भोगं च संवर्द्धेइ, तएणं से तेतलिपुत्ते अभिक्खणं

‘संवोद्धिज्जमाणे वि धम्मे नो संबुद्धं न प्राप्नोति ।
 ‘तं तत्=तन्मान कारणात् श्रेयः खलु मम कनकध्वजं राजानं तेतलिपुत्राद् विपरि-
 णमयितुम्=तेतलिपुत्रविषये कनकध्वजस्य मानसिको भावो यथा विपरिणतो भवे-
 त्तथा कर्तुमुचितम्, इतिकृत्वा=इति मनसि विचार्य एव संप्रेक्षते=विचारयति
 संप्रेक्ष्य कनकध्वजं तेतलिपुत्राद् विपरिणमयति=विपरीतं करोति । ततः खलु
 तेतलिपुत्रः ‘कल्लं’ कलये द्वितीयमिन्द्र दिने प्रायः ‘ण्हाए जाव पायच्छित्ते’
 स्नातो यावन् प्रायश्चित्तः=स्नातः=कृतस्नानः यावन् पदेन कृतवल्किकर्मा=काकादि
 निमित्तं कृतान्नभागःकृतकौतकमांगलयप्रायश्चित्तः=कृतानि कौतुकानि दुःस्वप्नादि-
 दोषनिवारणार्थं मपीण्डुद्वादीनि-माङ्गलवादीनि = मङ्गलकारकाणि दूर्वाक्षतादीनि
 =प्रायश्चित्तवदवश्यं कर्तव्यानि येन सः, ‘आसखंधवरगए’ अश्वस्कन्ध-
 वरगतः=अश्वारूढः बहुभिः पुरुषैः संपरिवृतः स्वस्माद् गृहाद् निर्गच्छति, निर्गत्य

भिक्षुखणं २ संवोद्धिज्जमाणे वि धम्मे नो संबुद्धं, तं सेयं खलु मम
 कणगज्जयं रायं तेतलिपुत्ताओ विपरिणमेत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ)
 तत्र उस पाट्टिल देवको गेमा आध्यात्मिक यावत् मनोगत भंरुत्प उत्पन्न
 हुआ-कनकध्वज राजा तेतलिपुत्र अमात्यका आदर करते हैं यावत् वे
 उनके सुख साधनकी सामग्री बढ़ा दिया है-इसलिये मेरे द्वारा बार बार
 प्रतिबोधित करने पर भी वे धर्म में प्रतिबुद्ध नहीं बन रहे हैं-प्रतिबोध
 को प्राप्त नहीं हो रहे हैं । इसलिये मुझे अब ऐसा करना चाहिये कि
 जिससे तेतलिपुत्र के विषय में कनकध्वज राजा का मानसिक विचार
 बदल जावे । इस प्रकार का विचार उस देवके मनमें जगा (सपेहिता
 कणगज्जयं तेतलिपुत्ताओ विपरिणामेइ, तएणं तेतलिपुत्ते कल्लं ण्हाए

२ संवोद्धिज्जमाणे वि धम्मे नो संबुद्धं, तं सेयं खलु मम कणगज्जयं रायं
 तेतलिपुत्ताओ विपरिणामेत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ)

त्यारे ते देवइप पोट्टिलाना एव देवने एवे आध्यात्मिक यावत् मनो-
 गत सद्धप उल्लेखे के राजा कनकध्वज अमात्य तेतलिपुत्रने आदर करे छे
 थावत् तेओओ तेमनी अधी नतनी सुभसगवडनी सामग्रीमा वधारो पखु
 धरी आये छे, ओथी मारावडे वारंवार प्रतिबोधित करवा छतांओ
 तेओ धर्ममां प्रतिबुद्ध थर्ष नता नथी ओटले के तेमने वारवार प्रेरणा
 आपवा छतां प्रतिबोध थयो नथी. ओटला माटे हुं डवे ओ प्रमाणे कर्षक
 कर्ष के ओथी राजा कनकध्वजना मानसिक विचारो अमात्य तेतलिपुत्रने माटे
 प्रतिक्रिया थर्ष नथ ते देवे मनमां आ नतने विचार कर्यो.

(सपेहिता कणगज्जयं तेतलिपुत्ताओ विपरिणामेइ तएणं तेतलिपुत्ते कल्लं
 ण्हाए जाव पायच्छित्ते आसखंधवरगए, बहूहिं पुरिसेहिं संपरिवुडे, साओ गिहाओ,

यत्रैव कनकध्वजो राजा तत्रैव 'पहारेत्थ गमणाए' प्राधारयद् गमनाय-प्रस्थित-
वान् । ततः खलु तैत्तलिपुत्रममात्यं 'जेजहा' ये यथा=येन प्रकारेण बहवो 'राई-
सरतलवरजावपभियाओ' राजेश्वरतलवर यावत्प्रभृतयः, राजेश्वरतलवरादयः पश्यन्ति,
ते तथैव तममात्यमाद्रियन्ते नमस्कारादिना परिजानन्ति=शुभागमनमित्यनुमो-
दयन्ति, अभ्युत्तिष्ठन्ति=अभ्युत्थानं कुर्वन्ति, आदृत्य परिज्ञाय, अभ्युत्थाय अञ्जलि-
परिग्रहं कुर्वन्ति, तथा इष्टाभिः कान्ताभिः यावत्-प्रियाभिर्मनोज्ञाभिर्मनोऽमाभिः'

जाव पायच्छित्तं आसखधवरगए, बहूहिं पुरिसेहिं स परिवुडे, साओ
गिहाओ, गिगगच्छइ, गिगगच्छित्ता जेणेव कणगज्झए राया तेणेव
पहारेत्थ गमणाए, तएणं० तैत्तलिपुत्तं अमच्चं जे जहा बहवे राईसरत-
लवर जाव पभियाओ पासंति ते तहेव आढायंति परियाणंति, अब्भु-
ट्टेति) इस विचार के आते ही उस देवने कनकध्वज राजा को तैत्तलि
पुत्र अमात्य के प्रति विपरीत परिणमादिया। जब द्वितीय दिन प्रातः
काल स्नान कर बलिकर्म, कर-काकादि निमित्त अन्न का विभाग कर,
कौतुक, मंगल, प्रायश्चित्त कर-दुःस्वप्न आदि दोषों को निवारण करने
के लिये मषी पुण्ड्रादि और मंगल कारक दूर्वाक्षतादि तथा प्रायश्चित्तकी
तरह आवश्यक कृत्य समाप्त कर-वह तैत्तलिपुत्र अमात्य घोड़े पर बैठ
कर जब अनेक पुरुषों के साथ साथ अपने घर से निकला तब निकल
कर वह ऊस ओर गया जहाँ कनकध्वज राजा थे। तैत्तलिपुत्र अमात्य
को ज्यों ही राजेश्वर आदि कों ने आता हुआ देखा तो उन्होंने पहिले
की तरह ही उसका आदर किया, उसके आगमन की सराहना की

गिगगच्छइ गिगगच्छित्ता जेणेव कणगज्झए राया तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तएणं०
तैत्तलिपुत्तं अमच्चं जे जहा बहवे राईसर तलवर जाव पभियाओ पासंति ते
तहेव आढायंति पभियाणंति, अब्भुट्टेति)

आ जतने। विचार उत्पन्न थतांज ते देवे अमात्य तैत्तलिपुत्र ने माटे
राज कनकध्वजने प्रतिक्रम अनावीहीधो णीज दिवसे सवा० थतां स्नान, आत्रि-
कर्म, (कगडा वगेरे पक्षीओ माटे अन्नलाग अर्पणु) कौतुक, मंगल, प्राय-
श्चित्त-ओटले के दुःस्वप्न वगेरेना दोषेना उपशमन माटे मषी पुण्ड्र वगेरे
तेमज मंगल कारक दुर्वा अक्षत (च्याओ) वगेरेथी प्रायश्चित्त नी आवश्यक
विधियो पतार्वने धत्था पुरुषेथी वीटणधने अमात्य तैत्तलिपुत्र घोडा उपर
सवार थधने न्यां कनकध्वज राज हुता त्यां गयो। अमात्य तैत्तलिपुत्रने आ-
वतां जेतानी साथे ज राजेश्वर वगेरे लोकेओ पडेतांनी जेम ज तेमने आहर
क्या, तेमना अगमननी सराहना करी अने अधाओ उलाथधने तेमनेवधावी लीधा

वाग्भिः आलपन्तः संलपन्तश्च=आलापं=संभाषणं, संलापं=परस्परसंभाषणं
 कुर्वन्तश्च पुरतः=अग्रं च पृष्ठतः=पश्चाद्भागंतश्च, पार्श्वतः=पार्श्वभागतश्च, मार्गतः=
 यस्मान्मार्गात् तेतलिपुत्रो निर्गच्छति, तन्मार्गतश्च 'समणुगच्छति' समणुग-
 च्छन्ति । ततः खलु स तेतलिपुत्रो यत्रैव कनकध्वजस्त व उपागच्छति । ततः
 खलु स कनकध्वजो राजा तेतलिपुत्रमेजमानं पश्यति, दृष्ट्वा नो आद्रियते, नो परि-
 जानाति, नो अभ्युत्तिष्ठति । अनन्तरं 'अणाढायमाणे' अनाद्रियमाणः=तस्मादरं-

सवने उठकर उसे लिया-(आढाहत्ता, परिजाणित्ता अब्भुट्टित्ता अंजलि
 परिगहं करेति, इट्ठाहिं कंनार्हिं जाव वग्गूहिं आलवेःणाणा य संलवे
 माणा य पुरओ य पिट्ठओ य पासओ य मग्गओ य समणुगच्छति
 तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव कणगज्झए राया तेणेव उवागच्छइ, तएणं
 से कणगज्झए राया तेतलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो आढाह
 नो परियाणाइ, नो अब्भुट्ठेइ, अणाढायमाणे अपरियाणमाणे अणब्भु
 ट्ठायमाणे परम्मुहे संचिट्ठइ) आदर देकर शुभागमन की अनुमोदनाकर
 तथा उठकर उन सवने फिर दोनों हाथों की अजलि जोड़कर उसे
 नमस्कार किया । बाद में इष्ट, कांत यावत् प्रिय-मनोज्ञ-मनोम
 चाणियों से आलाप - संभाषण, संलाप परस्पर संभाषण - करते
 हुए वे सबभागों, पीछे आजू बाजू होकर जिस मार्ग से वह आरहा
 था उसी मार्ग से उसके साथ साथ चले आये । चलते २ तेतलिपुत्र
 अमात्य जहाँ कनकध्वज राजा बैठे थे वहाँ आया । कनकध्वज
 राजा ने उन्हें आता हुआ देखा-तौभी पहिले की तरह देखकर न

(अढाहत्ता, परिजाणित्ता अब्भुट्टित्ता अंजलि परिगहं करेति इट्ठाहिं, कंनार्हिं
 जाव वग्गूहिं आलवेःणाणा य संलवेःणाणा य पुरओ य, पिट्ठओ य, पासओ य,
 मग्गओ य, समणुगच्छति तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव कणगज्झए राया तेणेव
 उवागच्छइ, तएणं से कणगज्झए राया तेतलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता
 नो आढाह, नो परियाणाइ, नो अब्भुट्ठेइ, अणाढायमाणे अपरियाणमाणे अणब्भु
 ट्ठायमाणे परम्मुहे संचिट्ठइ)

तेमने आदर आपीने, शुभागमनने अनुमोदित करीने तेओ अधा उला
 थया अने त्थार पञ्ची णने ड्ढाथानी अज्जणि णनावीने तेमने नमस्कार कर्था
 त्थार आढ छं, कांत, यावत् प्रिय, मनोज्ञ अने मनोम वातोर्धी आलाप-
 संलाषण, संलाप-परस्पर संलाषण करतां तेओ सवे आगम, पाछम अने
 तेमनी णने आबुओ थर्धने जे मार्गथी तेओ आवता डता ते मार्गथी ज तेनी
 साथे साथे आसवा दाग्या तेतलिपुत्र अमात्य आसतां आसतां न्थया राज कनकध्वज
 भेडा डता त्या आओया पणु कनकध्वज राजओ तो तेमने जेथो छता पणुतेमने

माञ्जुवन् 'अपरिजाणमाणे' अपरिजानन्, तदागमनमननुभोदयन् अनभ्युत्तिष्ठन्=अभ्युत्थानाद्यकुर्वन् 'परम्भुहे' पराङ्मुखः=विमुखः सन् संतिष्ठते । ततः खलु तेतलिपुत्रः कनकध्वजस्य राज्ञः संमुखे अञ्जलिं कसेति । 'तएणं' ततः खलु=तेतलिपुत्रेण अञ्जलिकरणानन्तरमपि स कनकध्वजो राजा अनाद्रियमाणः, अपरिजानन्, अनभ्युत्तिष्ठन् तूष्णीकः पराङ्मुखः संतिष्ठते । ततः खलु तेतलिपुत्रः कनकध्वजं विपरिणतं=विपरीतं ज्ञात्वा 'भीए जाव संजायभए' भीतो यावत् संजातभयः, एवमवदत्=मनस्यकथयत्-रुष्टः खलु मम=मम विषये कनकध्वजो राजा,

उसका कोई आदर किया-न उसके आनेकी कोई सराहना की और न उठकर उसे लिया ही । इस तरह अनादर अननुभोदन एवं अनभ्युत्थान करते हुए वे राजा प्रत्युत उस ओरसे अपना मुँह फेर कर बैठ गये । (तएणं तेतलिपुत्ते कणगज्झयस्स अंजलिं करेइ) तेतलिपुत्रने आते ही राजा कनकध्वज को नमस्कार किया-(तएणं से कणगज्झए राया अणाढायमाणे तुसिणीए परम्भुहे संचिट्ठइ) तौ भी उन कनकध्वज राजा ने उस अंजलि करने का भी कोई आदर नहीं किया केवल चुप चाप ही विमुख बना हुआ बैठा रहा-(तएणं तेतलिपुत्ते कणगज्झयं विपरिणयं जाणित्ता भीए संजायभए एवं वयासी) तब तेतलिपुत्र ने कनकध्वज राजा को विपरीत जानकर भीत (भय पाया हुआ) यावत् संजात भय होकर मनमें ऐसा विचार किया-(रुट्ठे णं ममं कणगज्झए राया) कनकध्वज राजा मेरे ऊपर रुष्ट हो गये हैं । (हीणे णं ममं कण-

आदर न कर्था, तेमना आववानी सराहना न करी अने उला थधने तेमने सत्कार्या पणु नहि आ रीते अनादर, अननुभोदन अनभ्युत्थान करता-ते राजा तेमना तरक्ष थी भों इरवीने जेभी गया । (तएणं तेतलिपुत्ते कणगज्झयस्स अंजलिं करेइ) तेतलिपुत्रे आवतांनी साथे न राजा कनकध्वजने नमस्कार कर्था ।

(तएणं से कणगज्झए राया अणाढायमाणे तुसिणीए परम्भुहे संचिट्ठइ) छतांजे राजा कनकध्वजने तेमना नमस्कारने पणु उचित सत्कार कर्था नहि इक्षत तेजो चुपचाप भों इरवीने जेभी न रहा ।

(तएणं तेतलिपुत्ते कणगज्झयं विपरिणयं जाणित्ता भीए जाव संजायभए एवं वयासी)

त्यारे तेतलिपुत्र अमात्ये राजा कनकध्वजने प्रतिक्षणलथर्ध गयेता (नाराज थयेता) न्नाणीने लयलीत यावत् संजतलय वाणा थनां मनमां विचार कर्था के (रुट्ठेण ममं कणगज्झए राया) कनकध्वज राजा मारा उपर नाराज

‘ हीणे णं ’ हीनः खलु=प्रीतिहीनः खलु ममोपरि कनकध्वजो राजा ‘ अवज्झाण ’ अपध्यात=दुर्भावमरूपज्ञो जातः खलु मम विषये कनकध्वजो राजा ‘ तं ’ तत्= तस्मात् ‘ न नज्जइ ’ न ज्ञायते खलु एष मां केन कीदृशेन कुमारेण=कृत्स्नितेन मारेण ‘ मारेहिइ ’ मारयिष्यति ‘ त्ति कट्टु ’ इति कृत्या=इति विचिन्त्य भीतस्ततः यावत्- त्रसितः, उद्विग्नः, संज्ञातमयः सन् ‘ मणियंर ’ शनैः २ ‘ पच्चोसक्कइ ’ प्रत्यवस्वपकते =प्रत्यवसर्पति=पश्चाद्गच्छति प्रत्यवस्थाक्य, तमेव ‘ आसखंधं ’=अश्वस्खंधं दूरो- हति, दूरुह्य ‘ तेतलिपुरं ’ अत्र पट्टयर्थे द्वितीया, तेतलिपुरस्येत्यर्थः, मध्यमध्येन यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव प्राधारयद् गमनाय । ततः खलु तं तेतलिपुरं ‘ जेजहा ’

गज्झण राया) कनकध्वज राजा मेरे ऊपर प्रीति से रहित हो गये हैं । (अवज्झाण णं ममं कणगज्झण राया) कनकध्वज राजा मेरे विषय में सद्भाव रहित बन गये हैं । (तं ण नज्जइ णं ममं केणइ कुमारेणं मारे- हिइ त्ति कट्टु भीण तत्थे पूजावमणिय २ पच्चोसक्कइ) तो न मालूम यह मुझे किस कुत्सित धरण से धरवा डाले, ऐसा विचार कर वह भीत (भययुक्त) हो गया त्रस्त यावत् संज्ञात भयबाला बन गया । और धीरे २ वहां से पीछाहट कर चला आया-(पच्चोसक्कित्ता तमेव आसखंधं दुरुहेइ, दुरुहित्ता तेतलिपुरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सएगिहे तेणेव प्हारेत्थ गमणाण) आकर के वह अपने उसी घोड़े पर बैठकर तेतलिपुर के बीच से होता हुआ अपने घर की तरफ चल दिया (तएणं तेतलिपुत्त जे जहा ईसर जाव पासंति ते तहा नो आढायंति, नां परिया-

थं गथा छे. (हीणेणं ममं कणगज्झण राया) कनकध्वज राजानो डूबे मारा उपर प्रेम रह्यो नथी. (अवज्झाण णं ममं कणगज्झण राया) कनकध्वज राजा मारा प्रत्ये सद्व्यवहारा रहित थं गथा छे.

(तं ण नज्जइ णं ममं केणइ कुमारेणं मारेहिइ त्ति कट्टु भीण तत्थे जाव सणिय २ पच्चोसक्कइ)

तो डोणु णणु ध्यारे तेणो मने धमेते मरावी नंणावे आरीते विचार करीने ते लयलीत थं गथो, ते त्रस्त यावत् संज्ञत लयवाणो थं गथो अने धीमेधीमे त्याथी पाछो करीने आवतो रह्यो ।

(पच्चोसक्कित्ता तमेव आसखंधं दुरुहेइ, दुरुहित्ता तेतलिपुरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव प्हारेत्थ गमणाण)

त्यांथी आवीने ते पोताना घोरा उपर सवार थंने तेतलिपुरनी वस्थे थंने पोताना घर तरफ रवाना थयो.

तएणं तेतलिपुत्तं जे जहा ईसर जाव पासंति ते तहा नो आढायंति, नो

ये यथा=ये यथास्थिताः ' ईसरजाव ' ईश्वर यावत्=ईश्वरतलवरमाडम्बिकादयः पश्यन्ति, ' ते तहेव ' ते तथा स्थिता एव सन्तो नो आद्रियन्ते, नो परिजानन्ति, नो अभ्युत्तिष्ठन्ति, नो अञ्जलिपरिग्रहं कुर्वन्ति, इष्टामिर्यावद्वाग्भिर्नो संलपन्ति, नो पुरतश्च पृष्ठतश्च पार्श्वतश्च मार्गतश्च समनुगच्छन्ति । ततः खलु तेतलिपुत्रो यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव उपागच्छति । यापि च ' से ' तस्य ' तत्थ ' तत्र भवने बाह्या परिषद् भवति, तद् यथा-' दासाइ वा ' दासाइति वा,

प्राप्ति, नो अब्भुट्टेति) मार्ग में तेतलिपुत्र को आते हुए जिन ईश्वर तलवर, माडम्बिक आदिको ने देखा तो उन्होंने अब पहिले की तरह न उसका आदर किया न उसके आगमन की अनुमोदना की और न उसे देखकर वे उठे ही (नो अञ्जलिपरिग्रहं करेति, इद्वाहिं जाव णो संलवंति नो पुरओ य पिट्ठओय पासओय मग्गओय समणुग०) और न उसे हाथ जोड़ कर नमस्कार ही किया । न इष्ट प्रिय वाणियों से उससे आलाप, संलाप किया, और न आजू बाजू से होकर वे उसके साथ मार्ग में ही चले । (तएणं तेतलिपुत्ते जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ) इस तरह चलता हुआ वह तेतलिपुत्र अमात्य अपने घर पर आ गया । उवागच्छित्ता जाविसे तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ, तंजहा दासेइ वा पेसेइ वा भाइल्लएइ वा सा वि य णं नो आहाइ, नो परियाणाइ, नो अब्भुट्टेइ) वहां पर भी जो दास घर के काम काज करने परियाणंति, नो अब्भुट्टेति)

मार्गमां जतां तेतलिपुत्रने ईश्वर तलवर माडम्बिक वगेरे लोकोअे लोथे पणु कोअे पडेलांनी जेभ तेने आदर न कर्ये, तेना आगमननी अनुमोदना न करी अने तेने जेधने तेअे जिला न थया.

(नो अञ्जलि परिग्रहं करेति, इद्वाहिं जाव णो संलवंति नो पुरओ य पिट्ठओ य पासओ य मग्गओ य समणुग०)

अने तेअेअे हाथ जेडीने तेने नमस्कार पणु न कर्ये इष्ट, प्रिय, वथेनाथी तेअेअे तेनी साथे आलाप न कर्ये, संलाप न कर्ये अने षने णानुअे थधने तेअे मार्गमां तेनी साथे साथे आल्या पणु नडि. (तएणं तेतलिपुत्ते जेणेव सएगिहे तेणेव उवागच्छइ) आ प्रभाणे आलतो आलतो तेतलिपुत्र अमात्य पोताने घेर आवी गथे.

(उवागच्छित्ता जाविसे तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ, तं जहा दासेइ वा पासेइ वा भाइल्लएइ वा, सा वि य णं नो आहाइ नो परियाणाइ, न अब्भुट्टेइ) त्यां पणु जे दासो-धरमां काम करतारा नोकरे, प्रेअे-धरना काम भाटे

दासाः=गृहकार्यकारिणोभृत्याः, 'पेसाइवा' प्रैष्याइति वा, प्रैष्याः गृहकार्यं कर्तुमन्यत्र प्रेषणीया भृत्याः, 'भाइल्लएति वा' भाइल्लाइति वा, 'भाइल्ल' इति देशीशब्दः, हाल्लिकः भागिनश्चेति सदर्थः हाल्लिकाः=भूमिकर्षणार्थं नियुक्ता भृत्याः, भागिनः=स्वव्ययेनाऽन्यस्य क्षेत्रे कृषिं कृत्वा उपजातान्नस्यार्थं भागं ग्राह्णिणः, एतद्रूपा या परिपत् साऽपि च एतं नो आद्रियते, नो परिजानाति, नो अभ्युत्तिष्ठते । याऽपि च तस्य आभ्यन्तरिको परिपद् भवति, 'तं जहा' तद् यथा 'पियाइ वा' पिताइति वा, 'मायाइ वा' माता इति वा, 'जाव सुण्हाइ वा' यावत् स्नुवाइति वा, स्नुवाः=पुत्रवधुः, तद्रूपापि च परिपद् एतं नो आद्रियते, नो परिजानाति, नो अभ्युत्तिष्ठति । ततः खलु स तेतलिपुत्रो यत्रैव वासगृहं यत्रैव स्वकं शयनीयं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य,

वाले नौकर प्रैष्य, घर के काम के लिये जिन्हे बाहर भेजा जाता है ऐसे भृत्य, तथा भाईल्ल-हाल्लिक-भूमि कर्षणार्थं नियुक्त भृत्य, अथवा भागीदार-अपने व्यय से अन्य के खेत में कृषिकरके उत्पन्न अन्न के अर्ध-भाग को लेने वाले वटियाजन इनरूप जो बाह्य परिपत् थी उसने भी उसका आदर नहीं किया, उसके आगमन की अनुमोदना नहीं की और न वह उसके आने पर अपने अधिष्ठित स्थान से उठे। (जाविय से अर्धभंतरिया परिसा भवइ-तंजहा-पियाइ वा मायाइ वा जाव सुण्हाइ वात्सा वि य णं नो आढाइ, नो परिघाणाइ, नो अब्हुट्टेइ) इसी तरह जो उसकी अन्तरंग परिषद् थी जैसे पिता माता यावत् स्नुवा-पुत्रवधु आदि जन इन्होंने भी उसका आदर नहीं किया, आगमन का अनुमोदन नहीं किया और न ये कोई भी उसके आने पर अपने स्थानसे

उठाने अथवा भेकलेवाभा आवे छे ते भृत्यो, तथा लाइल्ल-हालीके अटले के भेउवा भाटे नियुक्त करायेला भृत्यो अथवा तो लागीदरे-के के पोताना अथवा नीजना भेतरमां अनाज वावे छे अने वणतरमा भेतरना मासिक पासेथी अर्धाभाग भेणवे छे-अेवा के भाह्य परिपत् स'णंधी लोके उता तेओ अे अणु तेनो आहर कर्यो नडि, तेना आगमनने अनुमोदन आभ्यु' नडि अने न तेना आववा अदल पोताना स्थानेथी सत्कार भाटे तेओ लिला थया.

(जा वि य से अर्धभतरिया परिमा भवइ-तंजहा-पियाइ वा मायाइ वा जाव सुण्हाइ वा सा वि य णं नो आढाइ, नो परिघाणाइ, नो अब्हुट्टेइ) अने आ प्रमाणे न तेनी अंतरंग परिषदना लोके केम के पिता माता यावत्-स्नुवा-भेटा वहु-वगेरे लोकेओ पणु तेनो आहर कर्यो नडि, तेना आगमनने अनुमोदन आभ्यु' नडि अने तेओमांथी केअ पणु तेना आववा अदल पोताना स्थानेथी लिला थया नडि.

शयनीये निषीदति, निषद्य, एवमवदत्=मनस्यकथयत्-एवं खलु=यथा अद्य-
तथैवान्यस्मिन्नपि दिवसे, अहं स्वकाद् गृहात् निर्गच्छामि, ' तं चेव जाव अर्भि-
तरिया परिसा नो आढाइ, नो परियाणाइ नो अब्भुट्टेइ ' तदेव यावत् आभ्यन्तरिकी
परिषद् नो आद्रियते, नो परिजानाति, नो अभ्युत्तिष्ठति, अस्यायमभिप्रायः-
पूर्वस्मिन् दिवसे राज्ञि प्रसन्ने मां दृष्ट्वा राजेश्वरादयः सर्वे आद्रियन्ते स्म, परिजाना-
न्ति स्म अभ्युत्तिष्ठन्मि स्म, अद्याऽपि गृहनिर्गतं मां ते तथैव सत्कारयन्ति स्म । परन्तु
राज्ञि अक्रस्मात् अप्रसन्ने राजेश्वरतलवरमाडम्बिककौटुम्बिकप्रभृतयः तथा मदीय-
ब्राह्म्याभ्यन्तरा च परिषदपि सर्वेऽपि च मां नाद्रियन्ते, नो परिजानन्ति, नो

उठे । (तएणं से तैत्तलिपुत्ते जेणेव वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे
तेणेव उवागच्छइ) इस तरह घर पर आकर वह तैत्तलिपुत्र अमात्य
जहां अपना वासगृह और उसमें भी जहां अपनी शय्या थी वहां गया-
(उवागच्छित्ता सयणिज्जंस्सि निसीयइ, णिसीइत्ता एवं वयासी) वहां
जाकर वह उस पर बैठ गया-और मनही मन विचार करने लगा-(एवं
खलु अहं सयाओ गिहाओ णिग्गच्छामि, तं चेव जाव अर्भितरिया
पुरिसा नो आढाइ, नो परिजाणाइ नो अब्भुट्टेइ-तं सेयं खलु मम अ-
प्पाणं जीवियाओ ववरोवित्तएत्ति वहु एव संपेहेइ) पहिले के दिनों में
जब मैं अपने घर से निकलता था तो लोग-राजेश्वर आदि समस्त जन
सुझ पर राजा की प्रसन्नता होने के कारण आता जाता हुआ देखकर
मेरा आदर करते थे-मेरे आगमन आदि की अनुमोदन करते थे उठ-
कर अपने विनय प्रदर्शित करते थे-तथा आज भी जब मैं घरसे निकल

(तएणं से तैत्तलिपुत्ते जेणेव वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ)

आ रीते घेर आवीने तैत्तलिपुत्र अमात्य न्यां तेनी 'रडेवानी ओरडी'
अने तेमां पणु न्यां पोतानी पथारी छती त्यां गथे। (उवागच्छित्ता सयणि-
ज्जंस्सि निसीयइ, णिसीइत्ता एवं वयासी) त्यां जधने ते तेना उपर भेसी गथे
अने मनमां ज विचार करवा लाग्ये के

(एवं खलु अहं सयाओ गिहाओ णिग्गच्छामि, तं चेव जाव अर्भितरिया
पुरिसा नो आढाइ, नो परिजाणाइ, नो अब्भुट्टेइ-तं सेयं खलु मम अप्पाणं जीवि-
याओ ववरोवित्तएत्ति कट्टु एवं संपेहेइ)

पडेवां न्यारे हुं घेरथी णडार नीकणतो छतो त्यारे लोको-राजेश्वर
वगेरे णथा लोको-राज भारा उपर पुश छता ओटली-आवतां जतां जेधने
भारे आदर करता छता, भारा आगमनतुं अनुमोदन करता छता तेमज्ज उल्लो'
थधने विनय प्रदर्शित करता छता अने आवे पणु हुं न्यारे घेरथी नीकणाने

अभ्युत्तिष्ठन्ति । ' तं ' तत्=तस्मात् कारणात् , श्रेयः खलु मम आत्मानं जीवि-
ताद् व्यपरोपयितुम् , इति कृत्वा, एवं संप्रक्षते, संप्रक्ष्य तालपुटं विपम् ' आस-
गंसि ' आस्ये=मुखे प्रक्षिपति, विपं नो संक्राम्यति=विपत्वेन नो परिणमति ।
ततः खलु स तेतलिपुत्रो ' नीलुप्पल जाव असिं ' नीलोत्पल यावदसिं=नीलोत्पल
गवलगुलिकसमप्रभं=नीलोत्पलं=नीलकमलम् गवलं=माहिपं शृङ्गम् , ' गुलिकं '
नीलरङ्गविशेषः, तैः समा प्रभातेतलि कान्तिर्यस्य स त तादृशं यावदसिं=तीक्ष्ण-
खड्गं ' खंधे ' स्कन्धे=ऋण्ठपूछे ' ओहरद् ' अवहरति=निपातयति । तत्राऽपि च

कर राजा के पास गया-तब भी इन सबलोगों ने पूर्ववत् मेरा आदर
आदि कुछ क्रियां-परन्तु अकस्मान राजा के रुष्ट होने पर जब मैं
वहां से लौटकर वापिस अपने स्थान पर आने लगा-तो किसी ने भी
मेरा आदर आदि कुछ भी सत्कार नहीं किया । यहां तक कि जो मेरी
बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् है-भीतर बाहरके नौकर चाकर एवं माता
पिता आदि जन हैं-उसने भी आज इस समय आने पर मुझे कुछ
नहीं समझा-अतः मुझे अब ऐसी स्थिति से मरना ही उत्तम है । इस
प्रकार का उसने अपने मन में विचार किया-(संपेहिता तालउडं विसं
आसगंसि पक्खिवड, सेय विसे णो संक्रमड, तएणं से तेतलिपुत्ते नीलु-
प्पल जाव असिं खंधसि ओहरद्, तत्थ वि य से धारा ओपल्ला, तएणं से
तेतलिपुत्ते जेणेव असोगवणिया तेणेव उ०) विचार करके उसने ताल-
पुटविष को अपने मुख में डाला-परन्तु उसने अपना कुछ भी प्रभाव

राजनी पासे गयो त्यारे पणु अे अधांअे पडेदांनी जेमज्ज भारे आदर
वगेरे अणुं कथुं उंत्तुं पणु अेअिना राजने नाराज थर्ध ज्वा षड्द न्यारे
हुं त्यांथी पाछे इरीने पोताने धेर आववा लाग्थे त्यारे केअंअे पणु भारे
आदर के सत्कार कथे नडि भारी णाह्य अने आस्य तर परिषद-अेट्थे के
अडारना नोकरे-आकरे अने माता पिता वगेरे-छे तेअेअे पणु आरे अत्यारे
भारा आववा षड्द कंथं पणु किंमत करी नडि. अेथी अेवी परिस्थितिमां
भाइं मरणु ज् उत्तम उपाय छे

(संपेहिता तालउडं विसं आसगंसि पक्खिवड, सेय विसे णो संक्रमड, तएणं
से तेतलिपुत्ते नीलुप्पल जाव असिं खंधसि ओहरद्, तत्थवि य से धारा ओपल्ला,
तएणं से तेतलिपुत्ते जेणेव असोगवणिया तेणेव उ०)

आ नतने विचार करीने तेथे तालपुट विष (अेर) ने पोताना

‘से’ तस्य खड्गस्य धारा ‘ओपल्ला’ कुण्ठिता, ‘ओपल्लं’ इति देशी शब्दः तलपुटेन विषेण, कण्ठे निपातितेनासिनाऽपि च तदभिलषितं मरणं न जातम् । ततः खलु=तदनन्तरं स तेतलिपुत्रो यत्रैव अशोकवनिका=अशोकवाटिका तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पाशकं ग्रीवायां बध्नाति, बद्ध्वा ‘रुवखं’ वृक्षं ‘दुरुहइ, दुरो हति=आरोहति, दूरुह्य, पाशं वृक्षे बध्नाति, बद्ध्वा आत्मानं ‘मुयइ’ मुञ्चति=अधः पातयति । - ‘तत्थवि’ तत्राऽपि=एतस्मिन्मरणोपाये कृतेऽपि च ‘से’ तस्य रज्जुच्छिन्ना=मध्यत एव पाशकुण्ठितः । ततः खलु स तेतलिपुत्रः ‘महइमहालयं’ महातिमहतीम्=अति विशालां शिलां ग्रीवायां बध्नाति, बद्ध्वा ‘अत्था-हमतारमपोमियंसि’ अस्ताघातारापौरुषेये=नास्ति स्नायः यस्य तत् अस्ताघम्=

नहीं दिखलाया-अर्थात् वह विष रूप सं परिणत नहीं हुआ । इसके बाद उस तेतलिपुत्रने नीलोत्पल गवत, गुलिक की प्रभा जैसी प्रभावाली अत्यन्त नीलवर्ण वाली-ऐसी तलवार को कि जिसकी धार बहुत तीक्ष्ण थी-अपनी गर्दन पर रखा-अर्थात् उसे गर्दन पर चलाई-परन्तु उसने भी अपना काश नहीं किया-वह भी-कुण्ठित हो गई-इस तरह जब इन दोनों वस्तुओ से अपना अभिलषित मरण साध्य नहीं हुआ-अब वह तेतलिपुत्र जहाँ अशोकवनिका-अशोक वाटिका-थी वहाँ गया (उपागच्छित्ता पासगगीवाए बंधइ) वहाँ जाकर उसने अपनी ग्रीवामें फंदा डाला-बांधा (बंधित्ता अप्पाणं मुयइ, तत्थ वि से रज्जू छिन्ना) बान्ध कर फिर वह वृक्ष पर चढ़ गया और वहाँ से अपने आपको नीचे लटका दिया परन्तु यहाँ पर भी उसकी रज्जू बीच में से टूट गई (तएणं से तेतलिपुत्ते

मुपमा नाभ्युं. पणु तेणु कंठं असर अतापी नडि अट्ठे के ते विष इपमां परिणुभ्युं नडि. त्थार पछी ते तेतलिपुत्रे, नीलोत्पल गवत, गुलिकना जेवी प्रभावाणी तेमज तीक्ष्ण धारवाणी तद्वारने पोतानी डोक उपर भूडी अट्ठे के तेना वडे तेणु पोतानी डोक उपर धा कर्ये पणु तेनाथी पणु कंठं काम् थ्युं नडि अट्ठे के तरवार पणु भूडी थं गं डती ‘ओपल्ल’ आ कुण्ठित (भूडी) अर्थ भाटे वपरायेडे देशी शब्द छे. न्यारे आ रीते ते अने वस्तुअथी तेनी छिन्ना पूरी थं नडि अट्ठे के तेनुं मरण थं शक्युं नडि त्थारे ते न्यां अशोक वनिका-अशोक वाटिका-डती त्यां गये (उपागच्छित्ता पासगं गोवाए बंधइ) त्यां न्धने तेणु पोतानी डोकमां क्षमे लेरवीने आधये (बंधित्ता अप्पाणं मुयइ तत्थ वि से रज्जू छिन्ना) आधीने ते वृक्ष उपर चढी गये अने त्यांथी पोतानी भेजे न ते लटकी गये परंतु अडीं पणु क्षसानुं होरइं वन्थेथी तूटी गयुं डतुं.

अतलस्पर्शि, अतारम्=अतरणीयम्, अपौरुषेयम्=पुरुषः प्रमाणं यस्य तत् पौरुषेयम्= न पौरुषेयम्=अपौरुषेयम्=पुरुषप्रमाणरहितम्. एतेषां कर्मधारयः, तस्मिन् अतिगम्भीरे इत्यर्थः, उदके आत्मानं गृञ्चति । तत्रापि=तस्मिन्नुदकेऽपि च 'से' तस्य=तेतलिपुत्रस्य 'थाहे' स्ताघो जातः । ततः खलु स तेतलिपुत्रः शुष्के तृणकूटे=तृणपुञ्जे 'अग्निकाय' अग्निकायं प्रक्षिप्य, तत्र आत्मानं गृञ्चति । तत्रापि=शुष्के तृणेऽपि सोऽग्निकायो 'विज्जाए' विध्यातः=उपशान्तः । 'तएणं' ततः खलु=एतस्य सर्वस्य असम्भाव्यस्य सम्भावनानन्तरम् स तेतलिपुत्र एवमवा-

महद्महालय सील गीवाए-बंधइ वंघित्ता अत्याह मतारमपोरिसियंसि उदगंसि अप्पाणं सुयइ, तत्थ वि से थाहे जाए) इसके बाद उस-तेतलिपुत्र ने एक बहुत विशालकाय जिला क्षो अपने गले में बांधा-और बांध कर अपने आपको अथाह-अतार एवं अपुरुष प्रमाण जल में छोड़ दिया-परन्तु वह जल भी उसके लिए स्ताघ थाह युक्त-घन गया-(तएणं से तेतलिपुत्रे सुक्कंसि तणकूडंसि अग्निकायं पक्खिववइ पक्खिवित्ता सुयइ, तत्थ वि से अग्निकाए विज्जाए-तएणं से तेतलिपुत्रे एवं-वयासी-सद्धेयं खलु भो समणा वयंसि सद्धेयं-खलु भो माहणा वयंसि, सद्धेयं खलु भो समणमाहणा वयंसि, अहं एगो असद्धेयं वयामि एवं खलु अहं सह पुत्तेहिं अपुत्ते को मेयं सहहिस्सइ ? सहमित्ते हिं अमित्ते को मेयं सहहिस्सइ) इसके बाद तेतलिपुत्रने शुष्क घासके ढेर में अग्नि लगाई-और उसमें अपने आपको डाल दिया-परन्तु वह भी

(तएण से तेतलिपुत्रे महद् महालयं सिलं गीवाए वंधइ, वंघित्ता अत्याहमतारमपोरिसियंसि उदगंसि अप्पाणं सुयइ, तत्थ वि से थाहे जाए)

त्यार पछी ते तेतलिपुत्रे अेक णडु भोटी लारे शिसा (पथरो) ने चोतानी लतने अथाह-अतार अने अपुरुष प्रमाणे पाणीमां नाणी दीधी परंतु ते णडु पाणी पणु तेना भाटे थाह वाणुं अेटले के छीछडुं थर्ध अयु.

(तएणं से तेतलिपुत्रे सुक्कंसितणकूडंसि अग्निकायं पक्खिववइ, पक्खिवित्ता सुयइ, तत्थवि से अग्निकाए विज्जाए-तएणं से तेतलिपुत्रे एवं वयासी सद्धेयं खलु भो समणा वयंसि सद्धेयं-खलु भो माहणा वयंसि, सद्धेयं खलु भो समणमाहणा वयंसि, अहं एगो असद्धेयं वयामि एवं खलु अहं सह पुत्तेहिं अपुत्ते को मेयं सहहिस्सइ ? सहमित्तेहिं अमित्ते को मेयं सहहिस्सइ)

त्यार पछी, तेतलिपुत्रे सूडा घासना ढगलाभां अग्नि प्रगटाव्यो अने चोतानी लतने तेमां नाणी दीधी परंतु ते पणु वय्येथी न ओलवाध गध.

दीत्=चित्तं संबोध्य मनस्येवमकथयत्-भो चित्त ! श्रमणा यद् वदन्ति तत्खलु
 श्रद्धेय=श्रद्धा योग्यं, श्रद्धेयं खलु भोः ब्राह्मणा वदन्ति, श्रद्धेय खलु भोः !
 श्रमण ब्राह्मणा वदन्ति । अयं भाव-आत्मपरलोकाद्यर्थं प्रतिबोधकं श्रमणादीनां वचनं
 श्रद्धेयं भवति, अतीन्द्रियस्याप्यात्मपरलोकादिस्वरूपस्यानुमानादि प्रमाणविषय-
 तया श्रद्धाविषयत्वात् । परन्तु अहमेको असहायः अश्रद्धेयम् अविश्वसनीयं
 वदामि । यद्यपि सदीयं वचनं सर्वथा सत्यम्, तथापि असम्भाव्यतया जनैः
 प्रत्येतुमशक्यम् । तदेवाह-‘ एवं खलु ’ इत्यादिना ‘ एवं खलु ’ मयि अश्रद्धेय-

बीच ही में बुझ गई । इस तरह इन समस्त असंभवनों की संभवना
 के बाद तेतलिपुत्रने अपने आपको संबोधित करते हुए मन में विचार
 किया-हे चित्त ! श्रमणजन जो कहते हैं वह श्रद्धेय हैं । ब्राह्मणजन जो
 कहते हैं वह श्रद्धेय है इसी प्रकार श्रमणमाहणजन जो कहते हैं वह श्रद्धेय
 है । इसका भाव यह है कि आत्मा, परलोक आदि पदार्थ जो कि अतीन्द्रिय
 हैं वे अनुमान आदि प्रमाण कि विषयभूत हो जाते हैं-इसलिये ये श्रद्धाके
 विषय बन जाते हैं-अतः इन अतीन्द्रिय आत्म, परलोक आदि पदार्थों
 को प्रतिपादित करने वाले श्रमण माहण आदिकों के वचन भी श्रद्धेय
 हो जाते हैं, परन्तु मैं जो कह रहा हूँ वह अश्रद्धेय कह रहा हूँ एक
 असहाय हूँ-इसलिये-मुझे इस विषयमें किसी को भी सहायता मिलने
 वाली नहीं है । उन श्रमण माहण आदिजनों के वचनों के सहायक तो
 अनुमान आदि प्रमाण है-परन्तु मेरा सहायक कोई प्रमाण ही नहीं
 होता है, यद्यपि मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ परन्तु वह मेरा वचन असं-
 भवित असहाय-होने की वजह से मनुष्यों के लिये श्रद्धेय नहीं बन

आ रीते आ षथा असंभवनानी संभावना पादते तद्विपुत्रे पोतानी ज्ञाननेन
 संबोधित करतां मनसां विचार कथो के डे चित्त । श्रमणजनो ने कंठ कडे छे
 ते श्रद्धेय छे, ब्राह्मणो ने कंठ कडे छे ते श्रद्धेय छे आ प्रमाणे श्रमण माहणजनो
 ने कंठ कडे छे ते श्रद्धेय छे आनो भावार्थ आ प्रमाणे छे के आत्मा परलोक वगेरे
 पदार्थो ने आ के अतीन्द्रिय छे-ते आ अनुमान वगेरे प्रमाणना विषयभूत थर्थ नय
 छे. ओटला माटे ते पदार्थो श्रद्धाना विषय जनी नय छे ओथी आ षथा
 ‘अतीन्द्रिय आत्म, परलोक वगेरे पदार्थोनुं प्रतिपादन करनार श्रमण माहण
 वगेरेना वचनो पणु श्रद्धेय थर्थ नय छे, पणु हुं ने कंठ कडी रह्यो छे ते
 अश्रद्धेय कडी रह्यो छुं. ओक असहाय छु ओथी मने आ भाजतमा केरनी
 महह पणु मणी शके तेम नथी ते श्रमण माहण वगेरेना वचनोना सहायक
 तो अनुमान वगेरे प्रमाणे छे पणु मारा कथननुं सहायभूत थाय तेवुं केर
 प्रमाणे न नथी. ने के हुं ने कंठ पणु कडी रह्यो छुं ते संपूर्ण रीत यथार्थ
 सत्य-कडी रह्यो छु. पणु मारा ते वचनो असंभवित असहाय होवा महह

वचने सती यदि अद्भुतं=एवभूतं सत्यमपि वदामि, यत्-अहं 'सहपुत्रेहि अपुत्रे'
 सहपुत्रैरपि अपुत्रः=पुत्रेषु विद्यमानेष्वपि अहं पुत्ररहित एवास्मि तेरनाद्यत्वात् कः
 'मेयं' ममेदं=इदं मदीयं वचनं 'सद्विस्मह' श्रद्धास्यति=प्रत्येष्यति, न कोऽपि,
 तथा अहं 'सहमितेहिअमिते' सहमितैरमितः=मित्रेषु विद्यमानेष्वपि 'मित्र-
 रहितोऽहं' को 'सेदं' ममेदं वचनं श्रद्धास्यति? एवम्=अनेन प्रकारेणैव अर्थेन
 दारैः दासैः परिजनेन च सहितोऽपि, तं रहितोऽस्मि, इदं मदीयं वचनं कः श्रद्धा-
 स्यति, अपितु न कोऽपि। 'एवं' अमुना प्रकारेण ख यद्यहं व्रीमि-यत्
 'तेतलिपुत्रे' तेतलिपुत्र नामधेये खलु मयि अमात्ये कनकध्वजेन राजा 'अव-
 ज्ञाएणं समाएणं' अपघ्यातेन=दृश्चिन्तकेन सत्ता, अर्थात् कनकध्वजो राजा

सकता है जैसा मैं यह सत्य भी कहूँ कि मैं पुत्रों के विद्यमान होने पर
 भी अपुत्र पुत्र रहित-हूँ, तो कौन मेरी इस बात को श्रद्धा से देखेगा-
 इसी तरह मैं यह कहूँ कि मैं मित्रों के विद्यमान होने पर भी मित्र
 रहित हूँ-तो कौन मेरे इन वचनों पर विश्वास करेगा--(एवं अत्ये णं
 दारेणं दासेहि परिजणेणं एवं खलु तेतलिपुत्रेणं अमच्छे कणगज्झएणं
 रत्ताअवज्झाएणं समाणेणं तेतलिपुत्रेणं तालपुडगे त्रिसे आमगंसि
 पक्खित्ते से वि य णो कमइ को मेयं सद्विस्मइ ? तेतलिपुत्रेणं नीलुप्पल
 जाव खंधंसि ओहरिए तत्थ वि से धारा ओपला को मेयं सद्विस्मइ)
 इस तरह अर्थ, दारा, दास, परिजन, इन से युक्त होने पर भी मैं-इन
 से रहित हूँ, कौन मेरे इस वचन को मानेगा? अर्थात् कोई नहीं मानेगा
 इसी तरह यदि मैं ऐसा कहूँ कि सुझे तेतलिपुत्र अमात्य के ऊपर कनक

भाषणो भाटे श्रेष्ठ्य थर्थ शडे तेम नथी. नेम डे हुं अत्यारे आ नतनी
 साथी वात पणु डहुं डे पुत्रो डोवा छताये हुं पुत्र वगरनेो छुं तो डोणु
 भारी आ वातने श्रद्धानी दृष्टिये नेशे ? आ प्रभाणु न हुं डहुं डे मित्रो
 डोवा छतांये हुं मित्र वगरनेो छुं तो डोणु भारी आ वात उपर श्रद्धा धरावथे ?

(एवं अत्येणं दारेणं दासेहि परिजणेणं एवं खलु तेतलिपुत्रेणं अमच्छे कण-
 गज्झएणं रत्ता अवज्झाएणं समाणेणं तेतलिपुत्रेणं तालपुडगे त्रिसे आसगंसि
 पक्खित्ते से वि य णो कमइ, को मेयं सद्विस्मइ ? तेतलिपुत्रेणं नीलुप्पल जाव
 खंधंसि ओहरिए तत्थ वि से धारा ओपला को मेयं सद्विस्मइ)

आ रीते अर्थ (धन), दारा (पत्नी) दास, परिजन ये मधा डोवा
 छतां पणु हुं येमना वगर छुं भारी आ वात उपर डोणु विश्वास भूडवा
 तीयार थथे ? अटवे डे डोणु पणु विश्वास करथे न डि. आ रीते न ले हुं
 आम डहुं डे भारी उपर राज्य कनक ध्वज नाराय थथे गया छता अटवा भाडे

तेतलिपुत्रे दुश्चिन्तको जातः इतिहेतोः, तेतलिपुत्रेण तालपुटकं विषम् 'आसगंसि' आस्ये=मुखे प्रक्षिप्तम्, 'से वि य' तदपि च विषं नो 'कमड' न क्राश्यति=विषत्वेन न परिणमति को जनः 'मेदं' ममेदं सत्यमपि वचनं श्रद्धास्यति न कोऽपि, तथा 'तेतलिपुत्तेणं' नीलोत्पल जाव खंधसि ओहरिण' तेतलिपुत्रेण नीलोत्पल यावत् स्कन्धे अपहतः=तेतलिपुत्रेण नीलोत्पलगवलगुलिकमप्रभाऽसिः 'स्कन्धे कण्ठमूले 'अवहतः' प्रहतः 'तत्थवि' तत्रापि=तस्मिन् मरणोपाये कृतेऽपि च' तस्य=असेः धारा ओपलला=कुण्ठीभूता को 'मेदं' ममेदं श्रद्धास्यति । एवमेव यद्यहं ब्रूयाम् यन्मया 'तेतलिपुत्तेणं पासगं गीवाए बंधेत्ता जाव रज्जुच्छिन्ना को मेयं सहहिस्सइ' तेतलिपुत्रेण पाशकं ग्रीवायां बद्ध्वा यावत् रज्जुच्छिन्ना, को ममेदं श्रद्धास्यति ? तेतलिपुत्रेण अतिविशालां शिलां यावद् बद्ध्वा अस्ताधयाव-

ध्वज राजा दुश्चित्तक बन गये-इसलिये मैंने तालपुट विष सुख में डाल दिया परन्तु वह विषरूप से परिणामित नहीं हुआ । मैंने विष खाया-पर मैं मरा नहीं-कौन मनुष्य मेरी इस सत्य बात को श्रद्धा की दृष्टी से देखेगा । तथा मैंने नीलोत्पल, गवल एवं गुलिका की प्रभा जैसी प्रभाव वाली तीक्ष्ण तलवार अपनी गर्दन पर धरने के लिये चलाई-परन्तु वह भोटी धारवाली बन गई-कुण्ठित हो गई-उससे मेरी गर्दन नहीं कटी-कौन मेरी इस बात को मानने के लिये तैयार हो सकेगा (तेतलिपुत्तेणं पासगं इत्यादि) इसी तरह यदि मैं यह कहूँ कि सुझ तेतलिपुत्रने अपने गले में पाशक डाला और वृक्षपर चढ़कर वहाँ से नीचे मैं लटक पड़ा और फंदा बीच में से टूट गया तो कौन इन वचनों पर विश्वास करेगा । (तेतलिपुत्तेणं सहइमहालयं जाव बंधित्ता अत्थाह जाव उदगंसि अप्पा

मे' तालपु'विष (जेर) पाधुं डतुं पणु ते विषना इपभां परिणुत थयु नथी अेटवे के विष लक्षणु करवा छतांअे डुं भरणु पाभ्यो नडि. आ वात उपर क्यो माणुस विश्वास भूकवा तैयार थशे ? तेमज नीलोत्पल, गवल अने गुलिकाना जेवी प्रभावाणी तीक्ष्ण धारवाणी तरवारनेो मे' भरवा भाटे मारी डोक उपर धा कुर्यो पणु ते तरवार ज भूडी धारवाणी थछ गछ-कुण्ठित थछ गछ-तेनाथी मारी डोक कपाछ नडि. मागी आ वात उपर डोणु विश्वास करवा तैयार थशे ? (तेतलिपुत्तेणं पासग इत्यादि) आ नीते ज डुं आम कडुं के मे' तेतलिपुत्रे पोताना गणामां क्षामे नांभ्यो अने वृक्ष उपर अढयो. वृक्ष उपर अडीने त्याथी नीचे लटकी पउयो पणु क्षसेो वर्येयी ज तूरी गये तो डोणु मारी आ वात उपर विश्वास भूकशे ?

(तेतलिपुत्तेणं सहइमहालयं जाव बंधित्ता अत्थाह जाव उदगंसि अप्पा सुवके,

दुदके आत्मा मुक्तः, तत्रापि च खलु स्तावो जातः, को ममेदं श्रद्धास्यति=मया स्वकण्ठे महाशिलां वद्ध्वा अगाधे उदके आत्मा मुक्तः, परन्तु तस्मिन्नुदकेऽपि मम तलस्पर्शो जातः, इति मम वचनं कः श्रद्धास्यति ? पुनश्च-तेतलिपुत्रेण मया शुष्के तृणकूटे=तृणपुञ्जेऽग्निं प्रक्षिप्य प्रज्वलितं तस्मिन् आत्मा मुक्तः, परन्तु सोऽग्निं कायः 'त्रिज्जाए' विध्यातः=उपशान्त, इत्येवंरूपमपि मदीयं वचनं कः श्रद्धास्यति ? न कोऽपि, इत्येवं स तेतलिपुत्रः 'ओहयमणसंकल्पे' अपहृतमनः संकल्पः=भग्नोत्साहः सन् यावद् ध्यायति=आर्तध्यानं करोति ॥सू० १०॥

मुक्को, तत्थ वि णं थाहे जाए को मेयं सद्विस्सइ ? तेतलिपुत्तेण सुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवित्ता अप्पा मुक्को तत्थ वि से अगणिकाए विज्जाए को मेयं सद्विस्सइ ? ओहयमणसंकल्पे जाव द्वियायइ) मुञ्ज तेतलिपुत्रने एक बहुन बड़ी शिला का गलेमें बांधी और बाद में अथाह अतार अपुरुष प्रमाण जल में कूद पड़ा परन्तु वह जल कूदते ही थाह वाला बन गया अथाह नहीं रहा मेरी इस सत्य बात पर भी कौन श्रद्धा करेगा। इसी तरह मुञ्ज तेतलिपुत्रने एक बड़े भारी शुष्क घास के ढेर में अग्नि लगाई और उसमें अपने आप को प्रक्षिप्त कर दिया-परन्तु वह अग्नि बुझ गई उसने मुझे भस्म नहीं किया मेरी इसबात को कौन श्रद्धा रूप से स्वीकार करेगा। इस प्रकार अपहृत मनः संकल्प वाला बन कर-उत्साह रहित होकर वह तेतलिपुत्र अभात्य आर्तध्यान में पड़ गया ॥ सू० १० ॥

तत्थ वि णं थाहे जाए को मेयं सद्विस्सइ ? तेतलिपुत्तेण सुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवित्ता अप्पा मुक्को तत्थवि से अगणिकाए विज्जाए को मेयं सद्विस्सइ ? ओहयमणसंकल्पे जाव द्वियायइ)

मे' तेतलिपुत्रे ओक अहु लारे मोटी शिला (पथरे) गणामा बांधी अने त्थार पथी हुं अथाह (ठांठा) अतार अपुरुष प्रमाणे उटला पाणीमां डूही गयो पणु डूहतांनी साथे न पाणी थाहवाणु (छीछरुं) थछ गयुं, अथाह (ठांठु) रह्यु नडि भारी आ वात उपर पणु केणु विश्वास भूकशे ? आ प्रमाणे न मे' तेतलिपुत्रे ओक अहु मोटा लारे सूका घासना ढगलामां अग्नि प्रगटाव्ये अने तेमां मे' पोतानी जतने अंपदावी दीधी पणु ते अग्नि ओलवाध गयो. तेणु मने लसभ डयो नडि. भारी आ वातने केणु श्रद्धेय मानीने स्वीकारवा तैथार थशे ? आ रीते ते अपहृतमनः संकल्पवाणे (हुताश) थधने निरुत्साही गनी गयो अने आर्तध्यानमां डूधी गयो. ॥ " सूत्र १० " ॥

मूलम्—तएणं से षोडहिले देवे षोडहिलारूवं विउव्वइ, विउ-
 विवत्ता, तैत्तलिपुत्तस्स अहूरत्तामंते ठिच्चा एवं वयासी—हं
 भो ! तैत्तलिपुत्ता ! पुरओ पत्राए पिट्ठओ हत्थिभयं, दुहओ
 अचक्खुफासे, मज्झे सराणि वरिसंति, गामे पलित्ते रत्ते
 झियाइ, रत्ते पलित्ते गामे झियाइ । आउसो तैत्तलिपुत्ता !
 कओ वयामो ?, तएणं से तैत्तलिपुत्ते षोडहिलं एवं वयासी—
 भीयस्स खलु भो ! षव्वज्जा सरणं, उक्कंठियस्स सद्देशगमणं
 छुहियस्स अन्नं, तिसियस्स पाणं, आउरस्स भेसज्जं, माइ-
 यस्स रहस्सं अभिजुत्तस्स पच्चयकरणं, अच्चाणपरिसंतस्स
 वाहणगमणं, तरिउकामस्स पवहणाक्किच्चं, परं अभिउंजिउ
 कामस्स सहायक्किच्चं खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स एत्तो
 एगमवि णं भवइ । तएणं से षोडहिले देवे तेयलिपुत्तं अमच्चं
 एवं वयासी—सुट्ठु णं तुमं तेयलिपुत्ता ! एयमट्ठं आयाणाहि
 त्तिकट्ठु दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं
 पाउव्वभूए, तामेव दिसं पडिगए ॥ सू० ११ ॥

टीका—‘तएणं से’ इत्यादि । ‘तएणं’ ततः खलु तैत्तलिपुत्रे आर्तध्यान-
 स्ते सति स षोडहिलोदेवः ‘षोडहिलारूवं’ षोडहिलारूप विकुर्वति=वैक्रियशक्त्या-

‘तएणं से षोडहिले देवे’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से षोडहिले देवे) उस षोडहिल देवने
 (षोडहिला रूवं विउव्वइ) षोडहिला के रूप की विकुर्वणा की—अर्थात् वैक्रिय
 शक्ति के प्रभाव से उसने षोडहिला का रूप धारण किया (विउव्वित्ता

‘तएणं से षोडहिले देवे’ इत्यादि

टीकार्थ—(तएणं) त्थार पछी (से षोडहिले देवे) ते षोडहिलदेवे (षोडहिला रूवं
 विउव्वइ) षोडहिलाना इपनी विकुर्वणा करी अटवे के वैक्रिय शक्तिना प्रभावथी

धारयति, विकुर्वित्वा तेतलिपुत्रस्य अदूरसामन्ते=नातिदूरे नातिनिकटे स्थित्वा एवमवादीत्-हंभो तेतलिपुत्र ! ' हंभो ' इत्यामन्त्रणे, हे तेतलिपुत्र ! ' पुरओ ' पुरतः=अग्रतः ' ' पवाए ' प्रपातः=गर्तः, अतो निर्गमनमसम्भवि, पृष्ठतः द्वास्तिभयम्, अतो प्रत्यावर्तनं चासंभवि, ' दुहभो ' उभयतः=उभयत=उभयोः पार्श्वयोः ' अचक्खुफासे' अचक्षुस्पर्शः=अन्धकारः, ' मज्झे ' मध्ये=यत्र वयमास्महे तत्र ' सराणि' शरा =गणाः, ' वरिसंति ' वर्षन्ति=निपतन्ति । ' गामे पलित्ते ' ग्रामे प्रदीप्ते=प्रज्वलिते सति रण्णे ' अरण्यं=वनं ' झियाइ ' ध्यायति=गन्तुं चिन्तयति, अरण्ये प्रदीप्ते ग्रामं ध्यायति=गन्तुं चिन्तयति, ' आउमो तेतलिपुत्ता ' हे आयुष्मन् तेतलिपुत्र ! ' उभओ रत्ति ' उभयतः प्रदीप्ते=उभयस्मिन् प्रज्वलिते वयं ' कओ वयामो ' कुतो व्रजामः=ऋगच्छामः । ततः खलु स तेतलिपुत्रः पोट्टिला-

तेतलिपुत्तस्स अदूरसामन्ते टीच्चा एवं वयासी) धारण कर के वह तेतलिपुत्र के समीप गयी। वहाँ जाकर उसने उसने इस प्रकार कहा—(हं भो तेतलिपुत्ता ! पुरओ पवाए पिट्टओ हत्थिभयं) अरे ओ तेतलिपुत्र ! आगे प्रपात खड्डा है और पीछे हाथी का भय है। (दुहओ अचक्खुफासे, मज्झे सराणि वरिसंति) दोनों ओर अन्धेरा है और जहाँ हमलोग ठहरे हुए हैं वहाँ वाणों की वृष्टि हो रही है। (गामे पलित्ते रण्णो झियाइ, रत्तो पलित्ते गामे झियाइं) ग्राम में आगलगने पर मनुष्य जंगल में चले जाने को सोचता है—और जंगल में आग लगने पर ग्राम में चले आने के लिये विचारता है। (आउमो तेतलिपुत्ता ! उभओ पलित्ते कओ वयामो) परन्तु जब दोनों में आग लग जावे तो हे आयुष्मन् तेतलिपुत्र ! कहो ! हम कहाँ जावे ? (तएणं से

तेण्णे पोट्टिलाणुं ३५ धारणु करुं) (विकुर्वित्वा तेतलिपुत्तस्स अदूरसामन्ते टीच्चा एवं वयासी) धारण कर के वह तेतलिपुत्रनी पास गयी तथा वहने तेण्णे तेने आ प्रमाणे करुं के (हं भो तेतलिपुत्ता ! पुरओ पवाए पिट्टओ हत्थिभयं) अरे, ओ ! तेतलिपुत्र ! तमारी सामे प्रपात-धोध छे अने तमारी पछण हाथीने भय छे (दुहओ अचक्खुफासे, मज्झे सराणि वरिसंति) अने तरु अधाइं छे अने तथा अमे ठाँसा छीअे त्यां तीरे वर्षी रखा छे (गामे पलित्ते रण्णो झियाइ रत्तो पलित्ते गामे झियाइं) गाभमां आग लागता माणुस जंगलमां नासी जवाने विचार करे छे अने जंगलमा आग लागतां गाभमां आवता रहवने विचार करे छे. (आउमो तेतलिपुत्ता उभओ पलित्ते कओ वयामो) पणु न्यारे अने तरु आग सण्णी ठे त्यारे छे आयुष्मन्त तेतलिपुत्र ! ओलो, अमे कयां जअे ?

मेवमवादीत् ' भो ' हे पोट्टिले ! भीतस्य खलु प्रव्रज्याशरणं भवति तत्र दृष्टान्तः-
माह-यथा-' उक्कंडियस्स ' उत्कण्ठितस्य=परदेशवर्तित्वादुत्सुकस्य स्वदेशगमनं;
' लुहियस्स ' क्षुधितस्य अन्नम्, ' तिसियस्स ' तृषितस्य पानं, ' आउरस्स आतु-
रस्य=रोगिणः ' भेसज्ज ' भैषज्यं ' मायिस्स ' मायिकस्य=मायाविनः रहस्यं=गोपनम्,
' अभिजुत्तस्स ' अभियुक्तस्य = दोषापवादयुक्तस्य ' पच्चयकरणं = प्रत्ययकरणं
तन्निराकरणेन स्वविषये निर्दोषताप्रतीत्युत्पादनम्, ' अद्धाणपरिसंतस्स ' अध्वपरिश्रा-
न्तस्य=मार्गगमनपरिखिन्नस्य ' वाहणगमणं ' वाहनगमनं, शकटादिना गमनं ' तरि-

तैत्तलिपुत्ते पोट्टिलं एवं वयासी-भीत्तस्स खलु भो पवज्जा-सरणं-उक्कं-
डियस्स सदेसगमणं लुहियस्स अन्नं, तिसियस्स पाणं, आउरस्स भेस-
ज्जं, माइयस्स रहस्सं, अभिजुत्तस्स पच्चयकरणं, अद्धाण परिसंतस्स
वाहणगमणं, तरिउकामस्स पद्दवणकिच्चं, परं अभिउंजिउकामस्स
सहायकिच्चं संतस्स दंतस्स जिहंदियस्स एत्तो एगमवि ण भवइ) इस
प्रकार पोट्टिला की बात सुनकर तैत्तलिपुत्र अमात्य ने उससे ऐसा कहा
हे पाट्टिले ! भीन (भय युक्त) के लिये प्रव्रज्या शरण भूत होती है,
जैसे-परदेश वर्ती उत्सुक व्यक्ति के लिये स्वदेश गमन शरण भूत
होता है, भूखे के लिये अन्न शरण भूत होता है प्यासे के लिये पानी,
आतुर रोगी के लिये भैषज्य, मायावी के लिये मायाचारी, अभियुक्त-
दोषापवाद वाले के लिये दोषों के निराकरण से अपने विषय में निर्दो-
षता की प्रतीति का उत्पादन, शरण भूत होता है । मार्ग श्रान्त के लिये
वाहन से गमन, करना शरण भूत होता है, तैरने की इच्छा वाले के

(तएणं से तैत्तलिपुत्ते पोट्टिलं एवं वयासी-भीत्तस्स खलु भो पवज्जा सरणं
उक्कंडियस्स सदेसगमणं लुहियस्स अन्नं तिसियस्स पाणं, आउरस्स भेसज्जं,
माइयस्स रहस्सं, अभिजुत्तस्स पच्चयकरणं, अद्धाणपरिसंतस्स वाहणगमणं, तरिउ-
कामस्स सहायकिच्चं संतस्स जिहंदियस्स एत्तो एगमवि ण भवइ)

आ रीते पोट्टिलानी वात सांलणीने तैत्तलिपुत्र अमात्ये तेने क्खुं के डे
पोट्टिले ! भयभीत थयेदाने माटे प्रव्रज्या शरणु भूत डोय छे-जेम-परदेशमां
रडेती उत्सुक व्यक्तिते माटे पोताने देश पाछा इरखु शरणु भूत डोय छे भूभ्या
ने माटे अन्न शरणु भूत डोय छे. आ प्रमाणे ज तरस्थाने म टे पाथी, आतुर-
रोग-ने माटे लैषन्य-दवा, मायावीने माटे माया अ री, अभियुक्त-दोषापवाद-
वाणा-ने माटे दोषाना निराकरणथी पोताना विषे निर्दोषतानी प्रतीतिनु उत्पादन
शरणु भूत डोय छे मार्गमां आलतां थानी गयेदाने माटे वाहनने उपयोग
शरणु भूत डोय छे, तरवानी इच्छा धरावता भाणुसने माटे नाव वगेदे जलयानं

उकामस्स ' तरीतुकामस्य ' प्रवहणक्किच्चं ' प्रवहणकृत्यम्-प्रवहणं=प्रतरणं कृत्यं यस्य तत्, जलयानं-नौकादिकमित्यर्थः ' परं अभिगोजितुकामस्स ' परमभियोजयितुकामस्य=समाक्रमितुमुद्यतस्य ' सहायक्किच्चं ' महाकृत्यं=मित्रादीनां साहाय्यं शरणं भवति, परं प्रवज्यानन्तरं ' खंतस्स ' क्षान्तस्य=क्षमाशीलस्य, ' दंतस्स ' दान्तस्य इन्द्रिय नो इन्द्रियाणां दमनशीलस्य, ' जिहंदियम्स ' जितेन्द्रियस्य=वशीकृतेन्द्रियस्य ' एत्तो' इतः=एषु पूर्वोक्तेषु मध्ये 'एगमवि न भवड' एकमपि न भवति । एकमपि शरणं तस्य प्रवजितरयोपादेयं न भवतीत्यर्थः । ततः खलु तेतलिपुत्रस्यैतद्वचनश्रवणानन्तरम् स पोट्टिलो देवः तेतलिपुत्रममात्यमेवमवदत्-सुण्टु ग्वल्लत्वं हे तेतलिपुत्र ! एतमर्थम्=' भीतस्य प्रवज्या शरणम् ' इत्येवंरूप भावम् ' आयाणाहि ' आजानीहि=अनुष्ठानद्वारेणावबुधस्व-प्रवज्यां गृहाणेत्यर्थः ' ति

लिये नौकादि यान शरण भूत होना है, और जो दूमरों पर आक्रमण करने के लिये उद्यत होता है उसके लिये मित्रादिकों की सहायता शरण भूत होती है । परन्तु जो क्षमाशील होता है, दान्त-इन्द्रियों को एवं मन को दमन करना है, जितेन्द्रिय होता है ऐसे प्रवजित को इन पूर्वोक्त शरणों मेंसे एक भी शरण उपादेय नहीं होता है । (तएणं से पोट्टिले देवे तेयलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी-सुट्टुण तुमं तेयलिपुत्ता । एयमट्ट आयाणाहिं ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि एवं वडत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए) इस प्रकार तेतलिपुत्र के वचन सुनने के बाद उस पोट्टिल देवने तेतलिपुत्र अमात्य से ऐसा कहा है तेतलिपुत्र ! डरे हुए को प्रवज्या शरण होती है इस भावरूप अर्थ को तुम अनुष्ठान द्वारा अच्छी तरह जानो अर्थात् प्रवज्या ग्रहण करो । ऐसा

शरण भूत होय छे अने ने जीजओ। उपर हुमत्रो करवा तैयार होय छे तेना भाटे त्रि वगेदेनी मट्ट शरण भूत होय छे यण ने क्षमाशील होय छे, दान्त-इन्द्रियो अने मनने दमन करनार होय छे-अट्टे के जितेन्द्रिय होय छे अवा प्रवजितता भाटे अे यधी उपर वडुवामा आवेदी शरणोभाथी अेकेय क्षममां आवती नथी।

(तएणं से पोट्टिले देवे तेयलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी-सुट्टुणं तुमं तेयलिपुत्ता ! एयमट्टं आयाणाहिं ति कट्टु, दोच्चंपि तच्चंपि एवं वडत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए)

आ रीते तेतलिपुत्रनां वचन सांखणीने ते पोट्टिल देवे तेतलिपुत्र अमात्यने कथं के छे तेतलिपुत्र ! लयलीत थयेलाने भाटे प्रवज्या शरण भूत होय छे आ भावार्थ अर्थने तमे अनुष्ठान द्वारा सारी रीते समझे, अट्टे के तमे

कट्टु' इति कृत्वा=इत्युक्त्वा 'दोच्चंपि' द्वितीयमपि=द्वितीयवारमपि एवं वदति, वदित्वा यस्या दिशः प्रादुर्भूतः, तस्यामेव दिशि प्रतिगतः ॥ सू० ११ ॥

मूलम्-तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स सुभेणं परिणामेणं जाइसरणे समुप्पन्ने । तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स अयमे-
मेयारूवे अज्झत्थिए५ समुप्पजित्था-एवं खल्लु अहं इहेव
जंबूद्वीवे दीवे महाविदेहे वासे पोक्खलावई विजये पोंडरि
गिणीए रायहाणीए महापउमे नामं राया होत्था । तएणं
अहं थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव चोदसपुव्वाइं०
बहूणि वासाणि सामन्नपरियायं० मासियाए संलेहणाए
महासुक्के कप्पे देवे । तएणं अहं ताओ देवलोयाओ आयु-
क्खएणं३ इहेव तेतलिपुरे तेतलिस्स भहाए भारियाए
दारगत्ताए पच्चायाए, तं सेयं खल्लु मम पुव्वदिट्ठाइं महव्व-
याइं सयमेव उवसंपजित्ताणं विहरित्तए, एवं संपेहेइ, संपे-
हित्ता सयमेव महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहित्ता, जेणेव पमय-
वणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, असोगवर-
पावयस्स अहे पुढविसिलापट्टयंसि सुहनिसन्नस्स अणुचिंते
माणस्स पुव्वाहीयाइं सामाइयमाइयाइं चोदसपुव्वाइं सयमेव
अभिसमन्नागयाइं । तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स अणगारस्स
सुभेणं परिणामेणं जाव तयावरणिज्जाणं कम्माणं खयोव-

कहकर उसने इसी बात को उससे दुबारा तबोरा भी कहा और कह-
कर बादमें वह पोट्टिला रूप धारी देव जिस दिशा से प्रकट हुआ था
उसी दिशा तरफ चला गया ॥ सू० ११ ॥

प्रमत्त्या स्त्रीकारी दो, आ प्रमाळे कडीने तेणे णीण अने त्रीण वणत पळ
आ रीते न कहु अने त्थार पळी ते पोट्टिला इय धारी देव ने दिशा तरक्
थी प्रकट थयो डतो ते तरक् पाछे नतो रह्यो. ॥ सूत्र " ११ " ॥

समेणं कस्मरयविकरणकरं अपुत्रकरणं पविट्टस्स केवलवर-
णाणदंसणे ससुप्पणे ॥ सू० १२ ॥

टीका— 'तएणं तस्स' इत्यादि । ततः खलु तस्य तेतलिपुत्रस्य शुभेन परिणामेण जातिस्मरणम्=पूर्वभवज्ञानं समुत्पन्नम् । ततः खलु तस्य तेतलिपुत्रस्य अयमेतद्रूप आध्यात्मिकः प्रार्थितः चिन्तितः कल्पितो मनोगतः संकल्पः समुत्पद्यत एवं खलु अहम् इहेव जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहेवर्षे पुष्कलावती विजये पुण्डरी-
किण्यां राजधान्यां महापद्मो नाम राजा आसम् । ततः खलु अहं स्थविराणामन्तिके-
मुण्डो भूत्वा यावत् 'चोदसपुव्वाइ०' चतुर्दशपूर्वाणि०=चतुर्दशपूर्वाणि अधीत-
वान्, बहूनि वर्षाणि 'सामन्नपरियायं०' श्रामण्यपर्यायं०=चारित्र्यपर्यायं पालित-

'तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स' इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (तेतलिपुत्तस्स) तेतलिपुत्र को (सुभेणं परिणामेणं जाइ सरणे समुत्पन्ने) शुभपरिणाम से जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया । (तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स अयमेयारूवे अज्जत्थिए ५ समु-
प्पज्जित्था—एवं खलु अहं इहेव जम्बूद्वीपे दीपे महाविदेहे वासे पोक्खला-
वई विजए पोंडरिगिणीए रायहाणीए महापउमे नामं राया होत्था)
उसके प्रभाव से उसने अपने पूर्वभव को जान लिया—उसने जाना कि मैं इसी जम्बूद्वीप नामके द्वीप में महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी नामकी राजधानी में महापद्म नाम का राजा था (तएणं अहं थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव चोदसपुव्वाइ० बहूणि

'तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स' इत्यादि

टीकार्थ—(तएणं) त्थाग्गाह (तेतलिपुत्तस्स) तेतलिपुत्रने (सुभेणं परिणामेणं जाइ सरणे समुत्पन्ने) शुभ परिणामथी जति स्मरणं ज्ञान उत्पन्न थर्थं गयुं

(तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स अयमेयारूवे अज्जत्थिए ५ समुत्पज्जित्था—एवं खलु अहं इहेव जम्बूद्वीपे दीपे महाविदेहे वासे पोक्खलावई विजए पोंडरिगिणीए रायहाणीए महापउमे नामं राया होत्था)

तेना प्रभावथी तेणु पोताना पूर्वं भवने ज्ञाणी वीथो तेने आ जतनुं ज्ञान थयुं के ते आ जम्बूद्वीप नामना द्वीपमां मडा विदेह क्षेत्रमां पुण्ड लावती विन्ध्यमां पुण्डरीकिणी नामनी राजधानीमां महापद्म नामे राजा उतो ।

(तएणं अहं थेराणं अंतिए मुंडे भवित्ता जाव चोदसपुव्वाइ० बहूणि वासाणि

वान् । अनन्तरं मासिक्या संलेखनया कालभासे कालं कृत्वा ' महासुक्रे कल्पे ' महाशुक्रे कल्पे=सप्तमे देवलोके ' देवे ' देवः=देवत्वेनोत्पन्नः । ततः खलु अहं तस्माद् देवलोकात् ' आयुक्खणं ३ ' आयुः क्षयेण ३=आयुर्भवस्थिति क्षयानन्तरम् इहैव तेतलिपुरे तेतलेरमात्यस्य भद्राया भार्याया ' दारगत्ताए ' दारकत्वेन=पुत्रतया ' पच्चायाए ' प्रत्यायातः=उत्पन्नः, तत्=तस्मात् श्रेयः ख मम पूर्वदृष्टानि=पूर्वभवपालितानि ' महव्वयाइं ' महाव्रतानि=पञ्चमहाव्रतानि स्वयमेव उपसंपद्य विहर्तुम्, एवं संप्रेक्षते संप्रेक्ष्य स्वयमेव महाव्रतानि आरोहति=स्वीकरोति, आरुह्य, यत्रैव प्रमदवनम्=उद्यानं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य ' असोगवरपाय-

व्वासाणि सामन्नपरियाय० मासियाए संलेहणाए महासुक्रे कल्पे देवे-तएणं अहं ताओ देवलोयाओ आयुक्खणं ३ इहैव तेतलिपुरे तेतलिस्स अमच्चस्स भदाए भारियाए दारगत्ताए पच्चायाए) वहां मैंने स्थविरो के पाम मुंडित होकर दीक्षा धारण की थी और ग्यारह अंगों का अध्ययन कर विशिष्ट तपस्या की थी अन्त में अनेक वर्षों तक श्रामण्य पर्यायका पालन कर एक मासकी संलेखना धारण कर मैं काल अवसर काल कर सातवां महाशुक्रे कल्पमें देवकी पर्यायसे उत्पन्न हो गया । वहां की आयुष्य स्थिति भवस्थिति स्थितिके क्षयके अनन्तर मैं वहांसे चलकर इस तेतलिपुर में तेतलि अमात्य के यहां भद्रा भार्या की कुक्षि से पुत्र रूप में अवतरित हुआ । (तं सेयं खलु मम पुव्वदिट्ठाइं महव्वयाइं सयमेव उपसंपज्जित्ताणं विहरित्तए-एवं संपेहेइ, संपेहित्ता सयमेव महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहित्ता जेणेव पमयवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ,

सामन्नपरियाय० मासियाए संलेहणाए महासुक्रे कल्पे देवे-तएणं अहं ताओ देवलोयाओ आयुक्खणं ३ इहैव तेतलिपुरे तेतलिस्स अमच्चस्स भदाए भारियाए दारगत्ताए पच्चायाए)

त्यां मे मुंडित थधने स्थविरोनी पासेथी दीक्षा धारणु करी डती अने अगियार अ गोनुं अध्ययन करीने विशिष्ट तपस्या करी डती. छेवटे धणां वर्षो सुधी श्रामण्य पर्यायनुं पालन करीने अके मडिनानी सलेणना धारणु करी अने त्यार पछी काण अवसरे काण करीने सातमा मडा शुक्क डटपमा हेवना पर्यायथी डं जन्म पाये। त्यानी लवस्थिति उ (त्रणु) ना क्षय थवा णटल डु त्याथी आवीने आ तेतलिपुरमां तेतलि अमात्यने त्यां भद्रा भार्याना गर्लथी पुत्र रूपमां जन्म पाये।

(तं सेयं खलु मम पुव्वदिट्ठाइं महव्वयाइं सयमेव उपसंपज्जित्ताणं विहरित्तए एवं संपेहेइ, संपेहित्ता सयमेव महव्वयाइं आरुहेइ, आरुहित्ता जेणेव पमयवणे

वस्तु 'अशोकवरपादपस्य=अशोकवृक्षस्य 'अहे' अधः परिणतशिलोपरि 'सुह-
निसन्नस्त' सुखनिपण्णस्य=सुखोपविष्टस्य 'अणुचितेमाणस्त' अनुचिन्तयतः=
पूर्वभवे कृतमध्ययनादिकं रमरतः 'पुव्वाहीयाइं' पूर्वाधीतानि=पूर्वभवे पठितानि
सामायिकादीनि चतुर्दशपूर्वाणि स्वयमेव 'अभिसमन्नागयाइं' अभिसमन्नागतानि=
ज्ञानविषयतया संजातानि । ततः खलु तस्य तेतलिपुत्रस्य अनगारस्य शुभेन परि-
णामेन 'जाव' यावत्-प्रशस्तैरध्ययसाधैः, प्रशस्ताभिर्लेङ्गामि त्रिंशुद्धयमानामिः
'तयावरणिज्जाणं' तदावरणीयानां=ज्ञानावरणीयादीनां कर्मणां 'स्वयोवसमेणं'

उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्तु अहे पुढविसिलापट्टयंसि सुहनि-
सन्नस्त अणुचितेमाणस्त पुव्वाहीयाइं सामाइयमाइयाइं चोदसपुव्वाइं
सयमेव अभिसमन्नागयाइं) इसलिये अब मुझे यही उचित है कि मैं
पूर्व भव में पालित किये पंच महाव्रतों को अपने आप धारण कर लूं।
ऐसा उसने विचार किया। विचार करके फिर उसने अपने आपही
महाव्रतों को धारण कर लिया। धारण करके फिर वह जहाँ प्रमदवन
नामका उद्यान था वहाँ चला गया। वहाँ जाकर वह अशोक वृक्ष के
नीचे रक्खे हुए पृथिवी शिलापट्टक पर पटाकार से परिणत शिला के
ऊपर-आनन्द के साथ बैठ गया और पूर्व भव में कृत अध्ययन आदि
का चार चिन्तवन करने लगा। इस तरह विचार करते-उसके पूर्व भव
में पठित सामायिक आदि चौदह पूर्व ज्ञान के विषय भूत बन गये।
(तएणं तस्स तेतलिपुत्तस्स अणगारस्स सुभेणं परिणामेणं जाव तथा-

उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्तु अहे पुढविसिला
पट्टयंसि सुहनिसन्नस्त अणुचितेमाणस्त पुव्वाहीयाइं सामाइयमाइयाइं चोदस
पुव्वाइं सयमेव अभिसमन्नागयाइं)

એટલા માટે હવે મને એજ થોડાં લાગે છે કે પૂર્વ ભવમાં જે
પાંચ મહાવ્રતાને મેં ધારણ કરેલાં તેને પોતાની મેળે જ ધારણ કરી લઉં.
આ રીતે તેણે વિચાર કર્યો. વિચાર કર્યા બાદ તેણે પોતાની મેળે જ પાંચ
મહાવ્રતો ધારણ કરી લીધાં ધારણ કર્યા પછી તે જ્યાં પ્રમદવન નામે ઉદ્યાન
હતું ત્યાં જતો રહ્યો ત્યાં જઈને તે અશોક વૃક્ષની નીચે મૂકાયેલા પૃથિવી
શિલા પટ્ટક ઉપર-પટ્ટાકાર રૂપથી પરિણત શિલા ઉપર-આનંદ અનુભવતો બેસી
ગયો અને પૂર્વ ભવમાં જે કઈ અધ્યયન કર્યું હતું તેનું વારવાર ચિંતન કરવા
લાગ્યો. આ રીતે ચિંતન કરતાં કરતાં પૂર્વભવમા ભણેલા સામાયિક વગેરે ચૌદ
પૂર્વજ્ઞાન તેને વિષયભૂત થઈ ગયાં.

क्षयोपशमेन=उदितानां कर्मणां क्षयेण अनुदितानां कर्मणामुपशमेन=निरुद्धोदयत्वेन
'कम्मरयविकरणकरं' कर्मरजो विकरणकरम् 'अपुञ्चकरणं' अपूर्वकरणम्=अष्टम-
गुणस्थानम् पविष्टस्य तस्य केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् ॥सू० १२॥

मूलम्-तएणं तैतलिपुरे नयरे अहा संनिहिएहिं वाणमं-
तरेहिं देवेहि देवीहिय देवदुंदुभीओ समाहयाओ, दसद्धवन्ने
कुसुमे निवाडिए, दिठ्वे देवगीयंगधठ्वनिनाए कए यावि
होत्था । तएणं से कणगज्जाए राया इमीसे कहाए लद्धट्टे
समाणे एवं वयासी-एवं खल्लु तैतलिपुत्ते मए अवज्जाए
मुंडे भवित्ता पठ्वइए, तं गच्छामि णं तैतलिपुत्तं अणगारं
वंदामि नमंसामि वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं विणएणं भुज्जो
२ खामेमि, एवं संपेहेइ, संपेहित्ता पहाए० चाउरंगणीए

वरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं कम्मरयविहरणकरं अपुञ्चकरणं
पविट्टस्स केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे) इस प्रकार शुभ परिणामों से
यावत् प्रसस्त अध्यवसायों से विशुद्धमान लेश्याओं से, उसके ज्ञाना-
वरणी आदि कर्मों का क्षयोपशम-उदित कर्मों का क्षय एवं अनुदित
कर्मों का उपशम-हो गया-सो इस के प्रभाव से वे कर्मरज को दूर
करने वाले अष्टम अपूर्व करण नामके गुणस्थान में प्राप्त हो गये ।
बाद में बाहरवे गुणस्थान के अंत में और तेरहवे गुणस्थान के प्रारंभ
में उन्हें केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया ॥सू० १२॥

(तएणं तस्स तैतलिपुत्तस्स अणगारस्स सुभेणं परिणामेणं जाव तयावरणि-
ज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं कम्मरयविकरणकरं अपुञ्चकरणं पविट्टस्स केवल-
वरनाणदंसणं समुप्पण्णे)

आ रीते शुभ परिणामोथी, यावत् प्रसस्त अध्यवसायोथी, विशुद्धमान
लेश्याओथी तेना ज्ञानावरणीय वजरे कर्मोने। क्षयोपशम-उदित कर्मोने। क्षय
अने अनुदित कर्मोने। उपशम थई गयो. जेना प्रभावथी तेओ। कर्मरजने
विकरणु करनारा अष्टम अपूर्व करणु नामना शुणुस्थानमां प्राप्त थई गयो. त्यार
पछी आरमा शुणुस्थानना अंतमां अने तेरमा शुणुस्थानना प्रारंभमां तेभने
केवलज्ञान अने केवल दर्शन उत्पन्न थई गयां. ॥ सूत्र " १२ " ॥

सेणाए जेणेव पमयवणे उज्जाणे जेणेव तेतलिपुत्त तेणेव
 उवागच्छइ उवागच्छित्ता तेतलिपुत्तेअणगारं वंदइ नमंसइ
 वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्टं विणएणं भुज्जो२ खामेइ, नच्चा-
 सन्ने जाव पज्जुवासइ । तएणंसे तेतलिपुत्ते अणगारे कण-
 गज्जयस्स रत्तो तीसे य महइ महालयाए० धम्मं परिकहेइ ।
 तएणं से कणगज्जए राया तेतलिपुत्तस्स केवलिस्स अंतिए
 धम्मं सोच्चा णिसम्म, पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं सावग-
 धम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता समणोवासए जाए जाव
 अहिगय जीवाजीवे । तएणं तेतलिपुत्ते केवली वट्ठूणि वासाइं
 केवलिपरियागं पाउणित्ता जाव सिद्धे । एवं खलु जंबू !
 सन्नणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं चोइसमस्स
 णायज्जयणस्स अयमट्टे पण्णत्ते तिवेमि ॥ सू० १३ ॥

॥ चउइस अज्जयणं समत्तं ॥

टीका—‘ तएणं ’ इत्यादि । ततः खलु तेतलिपुरे नगरे ‘ अहासंनिहिएहिं ’
 यथा संनिहितैः=आसन्नैः ‘ वाणमंतरेहिं ’ वाणव्यन्तरैः देवैः देवीभिश्च देवदुन्दुभयः
 समाहताः=आकाशे देवैः देवीभिश्च देवदुन्दुभयो वादिता इत्यर्थः, ‘ दसद्धवणे
 कुसुमे निवाडिए’ दशार्द्धवर्णं कुसुमं निपातितम्, अत्र जाति विवक्षायामेकवचनम्,

‘ तएणं तेतलिपुरे नगरे ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (तेतलिपुरे नगरे) तेतलिपुर नगरमें
 (अहासंनिहिएहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहिय देवदुंदुभीओ समाहयाओ,
 दसद्धवन्ने कुसुमे निवाडिए, दिव्वे देवगीयगंधव्वनिनाए कए यावि

‘तएणं तेतलिपुरे नगरे’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थार ५४ (तेतलिपुरे नगरे) तेतलिपुर नगरमां
 (अहा संनिहिएहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहिय देवदुंदुभीओ समाहयाओ,
 दसद्धवन्ने कुसुमे निवाडिए, दिव्वे देवगीयगंधव्वनिनाए कए यावि होत्था)

दशार्द्धवर्णानि=पञ्चवर्णाणि अचित्तपुण्याणि निपातितानि=वर्षितानि, दिव्यः=मनो-
हरः गीतगन्धर्व निनादः कृतश्चापि अभवत् । ततः खलु स कनकध्वजो राजा
'इमीसे कहाए लद्धहे समाणे ' यस्याः कथाया लब्धार्थः मया दुष्टचिन्ता विषयी-
कृतस्तेतलिपुत्रः अमात्यः प्रब्रज्य प्रमदवने केवलवरज्ञानदर्शनसम्पन्नो जात इति
वृत्तान्ताभिज्ञः सन् एवमवादीत्-एवं खलु तेतलिपुत्रो मया ' अवज्झाए ' अप-
ध्यातः=दुष्टचिन्ताविषयीकृतः सन् मुण्डो भूत्वा प्रब्रजितः, 'तं' तत्=तस्मात् कार-
णात् नमस्यित्वा ' एयमहं ' एतमर्थं=मया कृतमपमानरूपमर्थं विनयेन भूयो भूयः
' स्वामेमि ' क्षमयामि, एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य ' ण्हाए ' स्नातः कृतस्नानः ' चाउ-
रंगिणीए सेणाए ' चतुरङ्गिण्या सेनया सार्द्धं यत्रैव प्रमदवनं उद्यानं यत्रैव तेतलि-

होत्था) यथा संनिहित आसन्न भूत हुए वाण, व्यन्तर देवों ने और
देवियों ने आकाश में देवदुन्दुभियां बजाई । पंचवर्ण के अचित्त कुसुमों
की वृष्टि की । मनोहर गीत गधर्व निदान भी किया । (तएणं से कण-
गज्झए राया इमीसे कहाए लद्धहे समाणे एवं वयासी) जब यह
समाचार कनकध्वज राजा को ज्ञात हुआ मेरी दुष्ट विचारणा के विषय
भूत बने हुए, तेतलिपुत्र अमात्य ने दीक्षित होकर प्रमदवन में केवल
ज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर लिया है-इस प्रकार का वृत्तान्त जब
उसे मालूम पड़ा-तब उसने अपने मन में विचार किया (एवं खलु तेत-
लि पुत्ते मए अवज्झाए मुंढे भवित्ता पव्वइए, तं गच्छामि णं तेतलिपुत्तं
अणगारं वंदामि नमंसांमि, वंदित्ता नमंसित्ता एयमहं विणणणं भुज्जोरे
स्वामेमि एवं संपेहेइ-संपेहित्ता ण्हाए० चाउरंगिणीए सेणाए जेणेव पमय-
वणे उज्जाणे जेणेव तेतलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेतलि

यथा संनिहित आसन्नभूत थयेला वाणु०यन्तर देवोअने अने देवीअने अने
आकाशमां देवदुन्दुभियो वगाडी, पांय रगना अचित्त पुण्योनी वर्षा करी अने
मनोहर गीत गधर्व निनाद (ध्वनि) पणु कर्यो. (तएणं से कणगज्झए राया
इमीसे कहाए लद्धहे समाणे एवं वयासी) त्थारे आ सभात्थारोनी णणु राण
कनक ध्वजने थर्ध के भारी हुण्ट विचरणुने लीधि तेतलिपुत्र अमात्ये दीक्षित
थधने प्रमदवनमां केवणज्ञान अने केवण दर्शन प्राप्त करी लीधा छे त्थारे
तेणु मनमा विचार कर्यो के

(एवं खलु तेतलिपुत्ते मए अवज्झाए मुंढे भवित्ता पव्वइए तं गच्छामि णं
तेतलिपुत्तं अणगारं वंदामि नमंसांमि, वंदित्ता नमंसित्ता एयमहं विणणणं भुज्जोरे
स्वामेमि एवं संपेहेइ-संपेहित्ता ण्हाए० चाउरंगिणीए सेणाए जेणेव पमयवणे
उज्जाणे जेणेव तेतलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेतलिपुत्तं अणगारं

पुत्रोऽनगारस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तेतलिपुत्रमनगारं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमर्थं=रवकृताऽपराधलक्षणं विनयेनभूयो भूयः क्षमयति=क्षमां कारयति, तथा ' नच्चासन्ने० ' नात्यामन्ने नातिदूरे यावत् पर्युपास्ते=सेवां करोति । ततः खलु म तेतलिपुत्रोऽनगारः कनकधजाय राज्ञे तस्यां च

पुत्रं अणगारं वंदइ, नमंसइ, वंदित्वा नमंसित्वा एमयट्टं विणएणं भुज्जो २ खामेइ नच्चासन्ने जाव पज्जुवासइ) मेंने तेतलिपुत्र को अपनी दुष्ट चिन्ता का विषयभूत बनाया है—सो वह मुंडित होकर दीक्षित हो गया है । हमलिये मैं अब उसके पास जाऊँ और उन तेतलिपुत्र अनगार को वंदना करूँ—नमस्कार करूँ । वंदना नमस्कार कर मैं अपने द्वारा किये अपमान रूप अपराधकी बड़े विनय के साथ वारं उनसे क्षमा मांगूँ—इस प्रकार ज्योही उसने विचार किया—कि उसी समय वह उठा और स्नान किया—बाद में अपनी चतुरंगीनी सेना के साथ जहाँ प्रमदवन था—उसमें जहाँ तेतलिपुत्र अनगार विराजमान थे वहाँ पहुँचा—वहाँ पहुँच कर उसने तेतलिपुत्र अनगार को वंदना की नमस्कार किया । वंदना नमस्कार करके फिर अपने द्वारा कृत अपमान रूप अपराध की बड़े विनय के साथ वारं उनसे क्षमा कराई और समुचित स्थान पर बैठ कर उनकी सेवा सुश्रूषा की (तएणं से तेतलिपुत्ते अणगारे कणगज्ज-

वंदइ, नमंसइ, वंदित्वा नमंसित्वा एमयट्टं विणएणं भुज्जा २ खामेइ नच्चासन्ने जाव पज्जुगामइ)

तेतलिपुत्र अभात्यने मे' पोतानी दुष्ट चिंताने विषयभूत (लक्ष्य) बनाये। छे तेथी न ते मुंडित थईने दीक्षित थई गये। छे. ओटला भाटे डवे हुं तेनी' पासे जठि अने तेतलिपुत्र अनगारने वंदन इइ' नमस्कार इइ' वंदना अने नमस्कार इरीने हुं' मारा वडे थई गयेला अपमान इप अपराध भइल भइ नअपणे तेमनी पामेथी क्षमा याचना इइ' आ रीते विचार थतांनी साथे तरत न ते ओमो थये अने स्नान इयुं' त्थार पथी पोतानी चतुरंगिणी सेनाने साथे न्या प्रमदवन इतुं अने तेमां पणु न्या तेतलिपुत्र अनगार विशाब्धान इता त्या पडेथे। त्या पडेथीने तेणे तेतलिपुत्र अनगारने वंदना इरी अने नमस्कार इयां। वंदना अने नमस्कार इरीने तेणे तेना वडे थई गयेला अपमान इप अपराधनी भइ नअपणे क्षमा मागी अने त्थार पथी तेणे उचित स्थान उपर भेसीने तेमनी सेवा तेमन सुश्रूषा इरी।

(तएणं से तेतलिपुत्ते अणगारे कणगज्जयस्स रणां तीसे य महइ महाल-याए० धम्मं परिकहेइ)

‘महद्महालयाए०’ महातिमहत्यां परिषदि धर्मं ‘परिकहेइ’ परिकथयति= उपदिशति । ततः खलु स कनकध्वजो राजा तेतलिपुत्रस्य केवलितोऽन्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य पञ्चाणुव्रतिकं सप्तशिक्षाव्रतिकं इत्येवं द्वादशविधं श्रावकधर्मं प्रतिपद्यते, प्रतिपद्य श्रमणोपासको जातः । कीदृशः ?—अभिगत जीवा—जीवः=परिज्ञात-

यस्स रण्णो तीसे य महद्महालयाए० धम्मं परिकहेइ) इसके बाद उन तेतलिपुत्र अनगार केवली ने कनकध्वजराजा को उपरिथत परिषद् को विशाल धर्म का उपदेश दिया—(तएणं से कणज्झए राया तेतलिपुत्तस्स केवलितस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं सावगधम्मं पडिवज्जइ पडिवज्जित्ता समणोवासए जाए जाव अहिगयजीवाजीवे । तएणं तेतलिपुत्ते केवली बहूणि वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता जाव सिद्धे । एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं चोद्दसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्तिवेमि) उपदेश सुनने के बाद कनकध्वज राजाने तेतलिपुत्र केवलि के समीपश्रुतचारित्ररूप धर्म के प्रभाव से प्रेरित होकर और उस श्रुत धर्म का अच्छी तरह हृदय से विचार कर पांच अणुव्रत एवं सात शिक्षा रूप श्रावक धर्म धारण कर लिया । धारण करके वे श्रमणोपासक बन गये—यावत् जीव और अजीव तत्त्व का क्या स्वरूप है इसके भी वे ज्ञाता हो गये । बाद में तेतलिपुत्र केवलीने अनेक वर्षों तक केवलि

त्यार पछी ते तेतलिपुत्र अनगार डेवणीअे उनकध्वज राजाने तेमज्ज उपस्थित परिषदने सविस्तर धर्म विषे उपदेश आये।

(तएणं से कणज्झए राया तेतलिपुत्तस्स केवलितस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं सावगधम्मं पडिवज्जइ पडिवज्जित्ता समणोवासए जाए जाव अहिगयजीवाजीवे । तएणं तेतलिपुत्ते केवलि बहूणि वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता जाव सिद्धे । एवं खलु जंबू । समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं चोद्दसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्तिवेमि)

उपदेश सांलणीने उनकध्वज राजाने तेतलिपुत्र डेवणिना श्रुतचारित्ररूप धर्मना प्रभावथी प्रेरणने ते श्रुतचारित्र रूप धर्म विषे मनमां सारी रीते विचार करनि तेमनी प.सेथी पांच अणुव्रत अने सात शिक्षारूप श्रावकधर्म धारण करी लीधा. धारण करीने तेअो श्रमणोपासक थर्छ गया अने यावत् एव तेमज्ज अणुव्रतत्त्वतुं स्वरूप शुं छे ? तेतुं पणु तेअोने ज्ञान थर्छ गथुं. त्यार पछी तेतलिपुत्र डेवणीअे धर्मां वर्षो सुधी डेवणी पर्यायतुं पादन कथुं अने आम तेअोअे यावत सिद्धपद

સકલજીવાજીવતત્ત્વશ્રાડપિ જાતઃ । તતઃ સ્વલુ તેતલિપુત્રઃ કેવલી વહુનિ વર્ષાણિ
કેવલિપર્યાયં પાલપિત્વા યાવત્ સિદ્ધઃ=મોક્ષં ગતઃ ।

સુધર્માસ્વામી પ્રાહ—એવં સ્વલુ હે જન્મૂઃ ! શ્રમણેન ભગવતા મહાવીરેણ ચતુર્દશસ્ય
જ્ઞાતાધ્યયનસ્ય ‘અયમદ્દે’ અયમર્થઃ=પૂર્વોક્તો ભાવઃ પ્રક્ષપ્તઃ=પ્રસ્ફુપિતઃ, ‘ત્તિ વેમિ’ ઇતિ
વ્રવીમિ=ભગવત્સમીપે યથા શ્રુતં તથા ત્વાં પ્રતિકથયામિ । एतेन अध्ययनेन इद-
मायातं यत्-प्राणिनो यावद् दुःखं मानभ्रंशं च न प्राप्नुवन्ति तावद् बहुशः
प्रबोधिता अपि धर्मं न स्वीकुर्वन्ति, यथा तेतलिपुत्रः ॥ सू० १३ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगदवल्लभ-परिद्धवानकपञ्चदशभाषाकलितललितक-
लापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैरुग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूच्छ-
त्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त-‘जैनशास्त्राचार्य’ पदप्रपित-कोल्हापुरराज-
गुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री-घासीलाल-
त्रतिविरचितायां ‘ज्ञातार्थर्मकथाज्ञ’ सूत्रस्यानगारधर्माभूतव-
र्षिण्याख्यायां व्याख्यायां चतुर्दशमध्ययनं संपूर्णम् ॥१४॥

પર્યાય કા પાલન કર યાવત્ સિદ્ધ પદ પ્રાપ્ત કર લિયા । સુધર્માસ્વામી
કહતે હૈં-હે જન્મૂ ! શ્રમણભગવાન મહાવીર ને હસ ચૌદહવે જ્ઞાતાધ્યયન
કા યહ પૂર્વોક્તરૂપ સે ભાવ અર્થ પ્રસ્ફુપિત ક્રિયા હૈ । સૌ જૈસા મૈને ઉન
ભગવાન કે સમીપ મેં સુના હૈ યહ વૈસા હી તુમસે કહા હૈ । હમ અધ્ય-
યન સે હમેં યહ જ્ઞાન હો જાના હૈ કિ સંસાર મેં તેતલિપુત્ર કી તરહ
એસે મી પ્રાણી હૈં કિ વે જવ તક દુઃખ ઓર અપમાન કો નહીં પાલતે
હૈં તવ તક અનેક ઘાર પ્રતિબોધિત કરને પર મી-ધર્મ કો સ્વીકાર
નહીં કરતે હૈં ॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય જૈનધર્મ દિવાકર પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કૃત
“ જ્ઞાતાધર્મકથાજ્ઞસૂત્ર ” કી અનગારધર્માભૂતવર્ષિણી વ્યાખ્યાકા
ચૌદહવાં અધ્યયન સમાપ્ત ॥ ૧૪ ॥

મેળવી લીધું સુધર્માસ્વામી કહે છે કે હે જન્મૂ ! શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે
આ ચૌદમા જ્ઞાતાધ્યયને પૂર્વોક્ત રૂપથી ભાવ-અર્થ નિરૂપિત કર્યો છે. જેવો અર્થ
મેં તેઓશ્રી પાસેથી સાંભળ્યો છે તેવોજ તમને કહ્યો છે. આ અધ્યયનથી
અમને આ ભૂતનું જ્ઞાન થાય છે કે સંસારમાં તેતલિપુત્રની જેમ એવાં પણ પ્રાણી-
ઓ છે કે તેઓ જ્યાં સુધી હુ ખી અને અપમાનિત થતા નથી ત્યાં સુધી ઘણા
વખત પ્રતિબોધિત કરતા છતાં ધર્મને સ્વીકારતા નથી ॥ સૂત્ર ‘ ૧૩ ’ ॥

શ્રી જૈનાચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજ કૃત જ્ઞાતાસૂત્રની અનગારધર્માભૂતવર્ષિણી
વ્યાખ્યાનું ચૌદમું અધ્યયન સમાપ્ત ॥ ૧૪ ॥

॥ अर्थ पञ्चदशमध्ययनं प्रारभ्यते ॥

गतं चतुर्दशमध्ययनं सम्प्रति पञ्चदशमारभ्यते, पूर्वाध्ययनेऽपमानाद् विषय-
त्यागः प्रदर्शितः, अत्र तु स जिनोपदेशाद् भवतीति प्रतिपादयिष्यतेऽतस्तस्य
सद्भावेऽर्थप्राप्तिः, असद्भावेऽनर्थप्राप्तिर्भवतीत्येवं पूर्वेण सम्बन्धः तत्रोद्मा-
दिसूत्रम्—‘ जङ्गं भंते ’ इत्यादि ।

मूलम्—जङ्गं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव
संपत्तेणं चोद्दसमस्स नायज्झणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते पन्नरस-
मस्स णं भंते णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं
जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?, एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं
तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, पुन्नभद्दे चेद्दए जिय-
सत्तू राया । तत्थ णं चंपाए नयरीए धणणे णामं सत्थवाहे
होत्था अट्ठे जाव अपरिभूए । तीसे णं चंपाए नयरीए
उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अहिच्छत्ता नामं नयरी होत्था,

—:नन्दिफल नामका पन्द्रहवां अध्यायन प्रारं :-

चौदहवां अध्यायन समाप्त हो चुका—अब पन्द्रहवां अध्यायन प्रारंभ
होता है । पूर्व अध्यायन में तैत्ति प्रधान के आख्यान द्वारा अपमान से
भी विषयों का त्याग कर दिया जाता है यह बात समझाई गई है ।
इस अध्यायन में यह विषय त्याग जिनके उपदेश से होता है यह कहा
जावेगा । इस लिये उसके सद्भाव में अर्थ प्राप्ति और असद्भाव में
अनर्थ प्राप्ति होती है इस तरह से पूर्व अध्यायन के साथ इसका संबन्ध
बन जाता है:—जङ्गं भंते ! समणेणं इत्यादि ॥

नन्दिष्ण नामे पंद्रमुं अध्ययन प्रारंभ

चौदमुं अध्ययन पुरं थयुं छे. हवे पंद्रमुं अध्ययन शरुं थाय छे.
पडेदांना अध्ययनमां तैत्तिप्रधानना आख्यान वडे अे वात समजववामां
आनी छे के अपमानथी पशु विषयाने त्याग करवामां आवे छे. आ अध्ययनमां
आ विषय त्याग नेमना उपदेशथी थाय छे ते विषे कडेवामां आवशे. अेटला
भाटे तेना सद्भावमां अर्थ प्राप्ति अने असद्भावमां अनर्थ प्राप्ति डोय छे.
आ रीते पूर्व अध्ययननी साथे आने संणध समञ्ज शकय छे.

टीकार्थ—‘जङ्गं भंते ! समणेणं’ इत्यादि ।

रिद्धत्थिमियसमिद्धा वन्नओ । तत्थ णं अहिच्छत्ताए नय-
रीए कणगकेऊ नामं राया होत्था, महया वन्नओ । तस्स
धण्णस्स सत्थवाहस्स अन्नया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकालस-
मयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए कप्पिए मणो-
गए संकप्पे समुप्पज्जित्थासेयं खलु मम विपुलं पणियभंड-
मायाए अहिच्छत्तं नगरिं वाणिज्जाए गमित्ताए, एवं संपेहेइ
संपेहित्ता गणिसंच४ चउट्ठिवहं भंडं गेणहइ, सगडीसागडं
सज्जेइ सज्जित्ता सगडीसागडं भरेति२ कोडुंविपुलपुरिसे
सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुव्वमे देवाणु-
प्पिया ! चंपाए नगरीए सिंघाडग जाव पहेसु घोसणं
घोसेह ॥ सू० १ ॥

टीका—जम्बूस्वामी पृच्छति—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता महा-
वीरेण यावत् सिद्धिगतिमानधेयं स्थानं सम्प्राप्तेन चतुर्दशस्य ज्ञाताध्ययनस्य अय-
मर्थः=पूर्वोक्तो भावः प्रज्ञप्तः तर्हि पञ्चदशस्य ज्ञाताध्ययनस्य श्रमणेन भगवता महा-

टीकार्थ—जम्बूस्वामी पूछते हैं कि (जइणं भंते ! समणेणं भगवया महा-
वीरेणं जाव संपत्ते णं चोदसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते पन्नर-
समस्स णं भंते णायज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्ते
णं के अट्ठे पणत्ते) भदंत ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने कि जो
मोक्षप्राप्त कर चुके हैं चौदहवें ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्त रूप से अर्थ
प्रतिपादित किया है—तो हे भदत ! मुक्ति प्राप्त हुए उन्हीं श्रमण भगवान्

जम्बू स्वामी पूछे छे के—

(जइणं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं चोदसमस्स नाय-
ज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते पन्नरसमस्स णं भंते णायज्झयणस्स समणेणं भगवया
महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते)

हे भदत ! जे श्रमणु लगवान् महावीरे—के जेओ मोक्ष प्राप्त करी चुक्या
छे—सीदमा ज्ञाताध्ययनने आ पूवोक्त इपथी अर्थ प्रतिपादित कर्यो छे तो हे
भदंत ! मुक्ति प्राप्त करेला ते श्रमणु लगवान् महावीरे पंदरमा ज्ञाताध्ययनने
शे अर्थ निरूपित कर्यो छे.

वीरेण यावत्सम्पाप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? सुधर्मस्वामी कथयति—एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम नगर्यासीत् । तत्र पूर्णभद्र चैत्यं जितशत्रु राजा चाभवत् । तत्र खलु चम्पायां नगर्यां धन्यो नाम सार्थवाह आसीत् । स कीदृशः ? इत्याह—आढ्यो यावद् अपरिभूतः प्रभूतशक्तिशालीत्यर्थः । तस्या खलु चम्पाया नगर्या उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे अहिच्छत्रा नाम नगर्यासीत् । सा कीदृशी?—
त्याह—‘ रिद्धत्थिमियसमिद्धा ’ ऋद्धस्तिमितसमृद्धा, तत्र ऋद्धा=नभः स्पशिवहु-
प्रासादयुक्ता, स्तिमिता = स्वपरचक्रभयरहिता, समृद्धा=धनधान्यादि परिपूर्णा,
‘ वण्णओ ’ वर्णकः=नगरी वर्णनपाठोऽत्रवाच्यः, स तु औपपातिकसूत्रादवस्यैः ।
तत्र खलु अहिच्छत्रार्या नगर्यां कनककेतुर्नाम राजाऽऽसीत् । ‘ महया वण्णओ ’

महावीर ने पन्द्रहवें ज्ञानाध्ययन का क्या अर्थ निरूपित किया है ।
(एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपानामं नयरी होत्था)
इस प्रकार जंबू स्वामी के प्रश्न के समाधान निमित्त श्री सुधर्मा स्वामी
उन से कहते हैं कि जंबू ! सुनो—तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—
उस काल और उस समय में चंपा नाम की नगरी थी (पुन्नभद्दे चेइए
जियसत्तू राया, तत्थ णं चंपाए नयरीए धण्णे नामे सत्थवाहे होत्था
अड्डे जाव अपरिभूए) पूर्णभद्र नाम का उसमें उद्यान था । जितशत्रु
नामका राजा उसमें रहता था । उसी चंपा नगरी में धन्य नामका सार्थ-
वाह भी रहता था । यह जन धन धान्यादि संपन्न था । एवं लोकमान्य
भी था । (तीसे णं चंपाए नयरीए उत्तर पुरत्थिमे दिसीभाए अहिच्छत्ता
नामं नयरी होत्था, रिद्धत्थिमिय समिद्धा वन्नओ—तत्थणं अहिच्छत्ताए

(एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था)

आ रीते ज'णू स्वामीना प्रश्नना समाधान माटे श्री सुधर्मा स्वामी
तेमने कहे छे के डे ज'णू ! सांलणेा, तमारा प्रश्नना जवाण्य आ प्रभाण्णे
छे के ते काने अने ते समथे चंपा नामे नगरी इती.

(पुन्नभद्दे चेइए जियसत्तू राया, तत्थ णं चंपाए नयरीए धण्णे नामे सत्थवाहे
होत्था अड्डे जाव अपरिभूए)

तेमा पूण्णं लद्ध नामे उद्यान इतुं. तेमां जितशत्रु नामे राजा रहेंते।
इतो धन्य नामे एक सार्थवाह पणु ते चंपा नगरीमा ज रहेंते। इतो. ते जन्,
धन, धान्य, वजेश्ठी संपन्न इतो, तेमज लोक मान्य पणु इतो.

(तीसेणं चंपाए नयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अहिच्छत्ता नामं नयरी
होत्था, रिद्धत्थिमिय समिद्धा वन्नओ—तत्थणं अहिच्छत्ताए नयरीए कणगकेइ
नामं राया होत्था महया वन्नओ)

महा०वर्णक = स च 'महयाहिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे' महाहिमवन्महाम-
लयमन्दरमहेन्द्रसारः, इत्यादिरूपोऽत्र विज्ञेयः । तस्य धन्यस्य सार्थवाहस्य अन्यदा
कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकालसमये=रात्रे पश्चिमे प्रहरे अयमेतद्रूप आध्यात्मिक-
श्रिन्तितः प्रार्थितः कल्पितो मनोगतः संकल्पः=विचारः समुदपद्यत-श्रेयः=उचितं
खलु मम विपुल=प्रचुरं 'पणियभंडं' प्रणितभाण्डं=गणिमादिक्रय विक्रयवस्तुभाण्डम्
'आयाए' आदाय=गृहीत्वा अहिच्छत्रां नगरीं वाणिज्याय गन्तुम्, गणिमादि-
पण्यवस्तुजातं गृहीत्वा व्यापारायाहिच्छत्रां नगर्यां मया गन्तव्यमिति भावः । एवं
'संपेहेह' संप्रेक्षते=विचारयति, संप्रेक्ष्य गणिमं ४-गणिमं धग्मिं मेयं परिच्छेद्यं
चेत्येवंरूपं चत्तर्विधं भाण्डं=पण्यवस्तुजातं गृह्णाति, गृहीत्वा 'सगडीसागडं' शकटी-

नगरीए कणगकेऊ नाम राया होत्था, महया वन्नओ) उस चंपा नगरी
के ईशान कोण में अहिच्छत्रा नामकी नगरी थी । यह नभस्तलस्पर्शी
प्रासादों से युक्त स्वचक्र और परचक्र के भयसे रहित तथा धन धान्य
आदि विभव से विशेष समृद्ध थी । नगरी के वर्णन का पाठ औपपा-
तिक सूत्र में जैसा नगरी का वर्णन किया गया है वैसा ही यहां जनना
चाहिये । उस अहिच्छत्रा नगरी में कनककेतु नामका राजा रहना था ।
हम राजा के वर्णन में "महया हिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे"
इत्यादिरूप पाठ यहां लगा लेना चाहिये । (तस्म धन्नस्म सत्थवाहस्स
अन्नया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकालममयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चितिए
पत्थिए, कप्पिए, मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-सेयं खलु मम विउलं
पणियभंडमायाए अहिच्छत्तं नयरिं वाणिज्जाए गमित्तए, एवं संपेहेह,
संपेहित्ता गणिमंच ४ चउव्विहं भंडे गेण्हइ, सगडी सागडं सज्जेइ म-

ते चंपा नगरीना ईशान कोणमा अहिच्छत्र नामे नगरी इती. आकाशने
स्पर्शता येवा जिया प्रासादोथी आ नगरी युक्ता इती तेम च स्वयंके अने परयके
ना लयथी रडित तथा धन धान्य वगेरे वलवथी आ नगरी अविशेष समृद्ध
इती. औपपातिक सूत्रमा नगरीना विषे जेवु वरुणं करवामां आण्युं छे तेवुं
च अडीं पणु जणुी देवुं जेधये ते अहिच्छत्रा नगरीमां कनककेतु नामे राजा
रडेने इती, आ राजाना वरुणं भाटे (महया हिमवत-महत-मलय मंदर-
महिंदसारे) वगेरे पाठ अडीं समजवे जेधये.

(तस्म धन्नस्स सत्थवाहस्स अन्नया कयाइं, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे
अज्झत्थिए चितिए, पत्थिए, कप्पिए, मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-सेयं खलु
मम विउलं पणियभंडमायाए अहिच्छत्तं नयरिं वाणिज्जाए गमित्तए एवं संपेहेह,
संपेहित्ता गणिमं च ४ चउव्विहं भंडे गेण्हइ सगडीसागडं सज्जेइ, सज्जित्ता

शाकटं=लघुमहच्छकटसमूह सज्जयति,=पगुणी करोति सज्जयित्वा शकटीशाकटं भरेति, भृत्वा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति=आह्वयति, आहूय एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! चम्पाया नगर्याः 'सिंघाडगजावपहेसु' शृङ्गाटक-त्रिकचतुष्क चत्वरमहापथपथेषु घोषणाम्=घोषयत ॥ सू० १ ॥

जिज्जत्ता, सगडीसागडं भरेइ भरित्ता कोडुं वियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-गच्छहणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! चंपाए नयरीए सिंघाडग जाव पहेसु घोसणं घोसेह) एक दिन की बात है कि उस धन्यसार्थवाह को रात्रि के पश्चिम प्रहर में यह इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित कल्पित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि मैं गणिमादि रूप विपुल पण्य वस्तु को लेकर व्यापार के लिये जो अहिच्छत्रा नगरी में जाऊँ तो बहुत अच्छी बात है। इस प्रकार उसने विचार किया-ऐसा विचार करके उसने गणिम, धारिम, मेय और परिच्छेद्य रूप चार प्रकार का भाण्ड लिया। भाण्ड लेकर फिर उसने गाड़ी और गाड़ों को तैयार करवाया-जब वे गाड़ी गाड़े तैयार हो चुके तब उसने उम पण्य (विक्रय वस्तु) को उनमें भरा-भर कर फिर उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया बुलाकर उसने ऐसा कहा-हे देवानुप्रियों ! तुम लोग जाओ-और चंपा नगरी के शृंग्गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, महापथ इन सब मार्गों में घोषणा करो। क्या घोषणा करना-यह बात नीचे के सूत्र से सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं ॥ सू० १ ॥

सगडीसागडं भरेइ, भरित्ता कोडु वियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी गच्छहणं तुब्भे देवाणुप्पिया । चंपाए नयरीए सिंघाडग जाव पहेसु घोसणं घोसेह)

એક દિવસે તે ધન્ય સાર્થવાહને રાત્રિના છેલ્લા પહોરમાં આ જાતનો આધ્યાત્મિક, ચિંતિત, પ્રાર્થિત, કલ્પિત, મનોગત સંકલ્પ ઉત્પન્ન થયો કે પુષ્કળ પ્રમાણમાં ગણિમ વગેરે વેચાણની વસ્તુઓ લઈને વેપાર જોડવા માટે જો હું અહિચ્છત્રા નગરીમાં જાઉં તો ખુબ સારું થાય. આ રીતે તેણે વિચાર કર્યો. આવો વિચાર કરીને તેણે ગણિમ, ધરિમ, મેય અને પરિચ્છેદ્ય રૂપ ચાર પ્રકારની વસ્તુઓ વાસણોમાં ભરી. ચારે જાતની વસ્તુઓ વાસણોમાં ભરીને તેણે ગાડી તેમજ ગાડાંઓને તૈયાર કરાવ્યા. જ્યારે ગાડી અને ગાડાંઓ તૈયાર થઈ ચુક્યાં ત્યારે તેણે તે વેચાણની વસ્તુઓને ગાડી અને ગાડાંઓમાં મૂકી ત્યાર પછી તેણે પોતાના કૌટુંબિક પુરુષોને બોલાવ્યા અને બોલાવીને તેમને આ પ્રમાણે કહ્યું કે હે દેવાનુપ્રિયા ! તમે જાઓ, અને ચંપા નગરીના શૃંગાટક, ત્રિક, ચતુષ્ક, ચત્વર, મહાપથ આ બધા માર્ગોમાં ઘોષણા કરો. ઘોષણા કરતાં થું કહેવું તે નીચેના સૂત્ર વડે સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે. ॥ સૂત્ર “ ૧ ” ॥

घोषणास्वरूपमाह—‘ एवं खलु ’ इत्यादि ।

मूलम्—एवं खलु देवाणुप्पिया ! धण्णे सत्थवाहे विउलं पणियं मायाए इच्छइ अहिच्छत्तं नयरिं वाणिज्जाए गमित्तए तं जो णं देवाणुप्पिया ! चरणे वा चीरिए वा चम्मखंडिए वा भिच्छुडे वा पंडुरंगे वा गोयमे गोव्वइए वा गिहिधम्म-
च्चित्तए वा अविरुद्ध विरुद्धबुद्धमावगरत्तपडनिग्गंथप्पभिइपा-
संडत्थे वा गिहत्थे वा धण्णेणं सत्थवाहेणं सद्धिं अहिच्छत्तं
नगरिं गच्छइ तस्स णं धण्णे सत्थवाहे अच्छत्तगस्स छत्तगं
दलाइ अणुवाहणस्स उवाहणाओ दलयइ अकुंडियस्स कुंडियं
दलयइ अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयइ अपक्खेव्वगस्स पक्खेवं
दलयइ अंतराऽविय से पडियस्स वा भग्गलुग्गस्स साहेज्जं
दलयइ सुहंसुहेण य णं अहिगच्छत्तं संपावेइ तिकट्टु दोच्चंपि
तच्चंपि घोसेह घोसित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह,
तएणं ते कोडुंविय पुरिसा जाव एवं वयासी-हंदिसुणंतु भवंतो
चंपानगरीवत्थव्वा वहवे चरगा य जाव पच्चपिणंति ॥सू०२॥

टीका—एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! धन्यः सार्थवाहः विपुलान् पणितभाण्डान्
'आयाए' आदाय इच्छति अहिच्छत्रां नगरीं 'वाणिज्जाए' वाणिज्याय=

‘ एवं खलु देवाणुप्पिया ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(एवं खलु देवाणुप्पिया ! धण्णे सत्थवाहे विउलं पणियं
मायाए इच्छइ अहिच्छत्तं नयरिं वाणिज्जाए गमित्तए) हे देवाणुप्रियो !

एवं खलु देवाणुप्पिया इत्यादि ।

(एवं खलु देवाणुप्पिया ! धण्णे सत्थवाहे विउलं पणियं मायाए इच्छइ
अहिच्छत्तं नयरिं वाणिज्जाए गमित्तए)

हे देवानुप्रियो ! तमे लोकौ शृंगाटक वगेरे भार्गोमां आ नतनी घोषणा

व्यापाराय गन्तुं तत्=तस्मात् यः खलु हे देवानुप्रिया ! कोऽपि धन्येन सार्थवाहेन सार्द्धमहिच्छत्रां नगरीं 'गच्छती' त्युत्तरेण सम्बन्धः, कोऽसौ, यस्तेन सार्द्धं गच्छे-
दित्याह—'चरण' इत्यादिना 'चरण वा' चरकः=गृहस्थस्य गृहे निष्पन्नस्योदनादे-
र्योऽग्रभागो दानार्थं पृथक्कृत्य स्थाप्यते तस्य भिक्षावृत्त्याग्राहकः, 'चीरिए वा'
चीरिकमार्गपतितशटितचीवरपरिधारकः, 'चम्मखंडिए वा' चर्मखण्डिकः=चर्म-
धारकः, 'भिच्छुंडे वा' भिक्षोण्डः=अन्यानीतभिक्षान्नभोजी, 'पंडुरंगे वा' पाण्डु-
राङ्गः=भस्मलिप्तशरीरः, 'गोयमे वा' गौतमः=वृषभमधिकृत्य कणभिक्षाग्राही,
'गोव्वइए वा' गोव्रतिकः=गोचर्यानुकारी यथा यथा गौः स्थानासनादिक्रियां
करोति तथा तथा सोऽपि करोतीति भावः, 'गिहिधम्मचितए वा' गृहिधर्म-
चिन्तकः=गृहिणो=गृहस्थस्य धर्मो गृहिधर्मस्तं चिन्तयतीति तथा, 'गृहस्थधर्मएव-
श्रेयान् नान्यः' उक्तञ्च—

तुम लोग श्रृंगटक आदि मार्गों में खड़े होकर इस प्रकार की घोषणा
करना—कि धन्य सार्थवाह विपुल मात्रा में पणित (विक्रय वस्तु) को
लेकर अहिच्छत्रा नगरी में व्यापार के लिये जाना चाहता है (तं जो
णं देवाणुप्पिया ! चरण वा चीरिए वा चम्मखंडिए वा भिच्छुंडे वा
पंडुरंगे वा गोयमे गोव्वइए वा गिहिधम्मचितए वा अविरुद्धविरुद्ध बुद्ध
सावगरत्तपडनिग्गंधप्पभिइपासंडत्थे वा गिहत्ये वा धण्णेणं सत्थवा-
हेणं सद्धिं अहिच्छत्तं नयरिं गच्छइ तस्स णं धण्णे सत्थवाहे अच्छत्त-
गस्स छत्तगं दलाइ) इसलिये हे देवाणुप्रियो ! जो भी कोई धन्य सार्थ-
वाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी जाना चाहता हो—चाहे वह चरक हो
चीरिक हो, चर्मखंडधारी हो, भिक्षोण्ड हो, पाण्डुरङ्ग हो, गौतम हो,
गोव्रतिक हो, गृहस्थधर्म चिन्तक हो, अविरुद्ध हो, विरुद्ध हो, वृद्ध-

करो के धन्य सार्थवाह पुष्कर प्रमाणमां पणित (वेयाणुनी वस्तुओ) लधने
अहिच्छत्रा नामे नगरीमां वेपार जेउवा भाटे जवा धिच्छे छे

(तं जो णं देवाणुप्पिया ! चरण वा चीरिए वा चम्मखंडिए वा भिच्छुंडे वा पंडुरंगे
वा गोव्वइए वा गिहिधम्मचितए वा अविरुद्धविरुद्धबुद्धसावगरत्तपडनिग्गंध
प्पभिइ पासंडत्थे वा गिहत्ये वा धण्णेणं सत्थवाहेणं सद्धिं अहिच्छत्तं नयरिं गच्छइ-
तस्स णं धण्णे सत्थवाहे अच्छत्तगस्स छत्तगं दलाइ)

अटवा भाटे हे देवानुप्रियो ! धन्य सार्थवाहंणी साथे जे कोरि जवा
धिच्छतो डाय—सत्ते ते चरक डाय, चीरिक डाय, चर्म खंड धारी डाय, भिक्षोऽ
डाय, पाण्डुरंग डाय, गौतम डाय, गोव्रतिक डाय, गृहस्थ धर्म चिन्तक डाय,

“ गृहाश्रमसमो धर्मो,—न भूतो न भविष्यति ।

पालयन्ति नराः शूराः, क्लीवा पापण्डमाश्रिताः ॥ १ ॥ ”

इत्यभिसन्धाय तथा चिन्तनशीलः, ‘ अविरुद्धविरुद्धवृद्धुमात्रगरत्तपडनिर्गन्ध-
 प्पभिडपासंडत्थे वा ’ अविरुद्धविरुद्धवृद्धश्रावकरत्तरनिर्ग्रन्थप्रभृतिपापण्डस्थः तत्र-
 ‘ अविरुद्ध ’ अविरुद्धः विरुद्धः कस्मादपीत्यविरुद्धः=विनयवादी क्रीयावादीत्यर्थः,
 परलोकाभ्युपगमात्, ‘ विरुद्ध ’ विरुद्धः विरुद्धः = विरुद्धवादोऽस्यास्तीति-अर्थ
 आदिन्वादच्च, विरुद्धवादी आक्रियावादीत्यर्थः परलोकानभ्युपगमात्, ‘ वृद्धुमात्रग ’
 वृद्धश्रावकः=ब्राह्मणः, वृद्धः=वृद्धकालिको यः श्रावकः सः, भरतादिकाले पूर्व
 श्रावकसत्त्वेन पश्चाद् ब्राह्मणत्वभावान्, ‘ रक्तपड ’ रक्तपट=गैरिकवस्त्रधारीपरि-
 ब्राजकः, ‘ निर्गन्धप्पभिड ’ निर्ग्रन्थप्रभृतिः = साधुप्रभृतिरन्यः कोऽपिकपिलादिः
 पापण्डस्थो वा गृहस्थो वा, इति यदि एषु यः कोऽपिगच्छेत् तस्मै खलु धन्यः
 सार्थवाहः अच्छत्रकाय=छत्ररहिताय छत्रकं ददाति=दास्यतीति भावः, एवं सर्वत्र
 विज्ञेयम् ‘ अणुवाहणस्स ’ अनुपानहे=पादत्राणरहिताय ‘ उवाहणाओ ’ उपानहौ
 ददाति, अकुण्डिकाय=जलपात्ररहिताय कुण्डिकां=जलपात्रं ददाति । ‘ अपत्थय-
 णस्स ’ अपत्थयदनाय शम्बलरहिताय ‘ पत्थयणं ’ पत्थयदनं = शम्बलं ददाति ।
 ‘ अपक्खेवगस्स ’ अपक्षेपकाय, प्रक्षेपकः = पूर्तिद्रव्यं, तद्रहिताय मध्यमार्गे न्यून
 शम्बलाय प्रक्षेपकं=शम्बलपूरकं द्रव्यं ददाति । ‘ अंतराविय ’ अन्तराऽपि च=
 मार्गान्तरालेऽपि च ‘ से ’ तस्मै पतिनाय = वाहनाद् पादादिस्खलनेन वा, वा=

श्रावक हो, गैरिकवस्त्रधारी परिव्राजक हो, निर्ग्रन्थ हो, पाखंडी हो,
 चाहे गृहस्थ हो कोई भी क्यों न हो, उसके लिये धन्य सार्थवाह यदि
 वह छत्ररहित है तो छत्र देगा (अणुवाहणस्स उवाहणाओ दलयह अ-
 कुंडियस्स कुंडियं दलयह अपत्थयणस्स पत्थयणं दलयह अपक्खेवगस्स
 पक्खेवं दलयह अंतराऽविय से पडियस्स वा भग्गलुग्गस्स साहेज्जं दलयह,

अविरुद्ध होय, विरुद्ध होय, वृद्ध श्रावक होय, गैरिक वस्त्र धारी परिव्राजक होय,
 निर्ग्रन्थ होय, पाखंडी होय अने गृहस्थ होय कोई पणु केम न होय तेना
 भाटे ले ते छत्र वगरने होय तेवाने धन्य सार्थवाह छत्र आपसे

(अणुवाहणस्स उवाहणाओ दलयह, अकुंडियस्स कुंडियं दलयह अपत्थयणस्स
 पत्थयणं दलयह अपक्खेवगस्स पक्खेवं दलयह अंतराऽविय से पडियस्स वा

अथवा ' भग्गलुग्गस्स ' भग्गरुग्गाय भग्गाय = त्रुटितहस्तपादाद्यव्यवाय
रुग्गाय = रोगाक्रान्ताय रोगग्रस्ताय वा ' साहेज्जं ' साहाय्यम् = औषधो-
पचारादि करणरूपं ददाति, तथा - सुखं -- सुखेन = सुखपूर्वकं च तम्
अहिच्छत्रं नगरीं ' संपावेइ ' संप्रापयति=संप्रापयिष्यतीत्यर्थः । ' तिकट्टु ' इति
कृत्वा एवमुच्चार्य द्वितीयमपि तृतीयमपि वारं घोषयत, घोषयित्वा मम ' एय-
माणत्तियं ' एतामाज्ञप्तिकाम्=एतद्रूपां समाज्ञां ' पच्चवप्पिणह ' प्रत्यर्पयत=मदुक्तां
घोषणां कृत्वा पुनर्महं निवेदयतेत्यर्थः । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः ' तथाऽस्तु-
सुहंसुहेणं अहिच्छत्तं संपावेइ, त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि घोसेह) पद-
त्राण (जूता) रहित है तो जूता (पदत्राण) देगा जलपात्ररहित होगा, उसे
जलपात्र देगा, कलेवा (भोजन) रहित है तो कलेवा (भोजन) देगा, शम्ब-
लपाथेय पूरक द्रव्यसे रहित है तो उसे शम्बल पाथेय-भाता पूरक द्रव्य
देगा, अर्थात् चलतेर बीच मार्गमें ही जिसका कलेवा (भोजन) समाप्त हो
जावेगा उसे उसके योग्य द्रव्यप्रदान करेगा, मार्गके मध्यमें चलतेर यदि
वह घोड़ेसे गिर गया होगा, अथवा पैदल चलतेर यदि वह पैर फिसल
कर गिर गया होगा और इस तरह से उसके हाथ पैर आदि टूट गये
होंगे तो उसकी सार संभाल करेगा-रोगी की दवाई करेगा, और षडे
आनन्द के साथ उसे अहिच्छत्रा नगरीमें पहुँचा देगा । इस प्रकार की
इस घोषणा को तुम लोग दो तीन बार करना । और (घोसित्ता मम
एयमाणत्तियं पच्चवप्पिणह) करके फिर हमें पीछे इसकी खबर देना
(तएणं ते कौडुंबियपुरिसा-जाव एवं वयासी हंदि सुणंतु भवंतो चंपा

भग्गलुग्गस्स साहेज्जं दलयइ, सुह सुहेणं अहिच्छत्तं संपावेइ, त्ति कट्टु दोच्च पि
त च्चंपि घोसेह)

जेडा वगरने। उशे तेने जेडा आपशे, जभवानी सगवड उशे नडि तेने
जभवानी सगवड करी आपशे. शंभल-पाथेय-पूरक द्रव्य वगरने। उशे तेने
शंभल-पाथेय-पूरक द्रव्य आपशे. ओटले के मार्गमां अधवन्थे लातुं जलास
थर्धं गथुं उशे तेने योग्य धन आपशे मार्गमां अधवन्थे आलतां आलतां
जे ते घोडा उपरथी पडी जशे अथवा पगे आलतां आलता जे ते पग लपसवाथी
पडी जशे अने तेथी तेना हाथ पग वगेरे. लागी गया उशे तो तेनी ते
सुश्रूषा करशे-रोगनी दवा करशे अने सुजेथी तेने अहिच्छत्रा नगरीमां पडेया-
उशे. आ रीते तमे जे त्रथु वभत घोषणा करे अने (घोसित्ता मम एयमाण
त्तियं पच्चवप्पिणह) घोषणा करीने अमने भ्रमर आपो.

(तएणं ते कौडुंबियपुरिसा जाव एवं वयासी हंदि सुणंतु भवंतो चंपानयरी-

इत्युक्त्वा चम्पानगर्यां शृङ्गाटकादिमहापथपथेषु समागत्य-एवमवादिपुः-‘ हंदि ’ इत्यामन्त्रणे तेन हे लोकाः । शृण्वन्तु-भवन्तः-यत् चम्पानगरी वास्तव्या बहवः ‘ चरगाय जाव ’ इति-चरकचीरिकादयो धन्येन सार्थवाहेन सार्द्धमहिच्छत्रां नगरीं गच्छन्ति तेभ्यो धन्यः सार्थवाहश्छत्रादिकं सर्वं दास्यति, मार्गं च स्वलितेभ्यो रोगादिग्रस्तेभ्यश्च औषधोपचारादिना साहाय्यं करिष्यति, सुखपूर्वकमहिच्छत्रां नगरीं प्रापयिष्यति च, इत्येवं घोषयित्वा धन्यसार्थवाहाय ‘ पच्चप्पिणंति ’ प्रत्यर्पयन्ति=निवेदयन्ति ॥ सू० २ ॥

नगरीवत्थव्वा वहवे चरगा य जाव पच्चप्पिणंति) इस प्रकार धन्यसार्थवाह की बात को उन कौटुम्बिक पुरुषों ने “तथास्तु” कहकर स्वीकार लिया और चंपानगरी में शृङ्गाटक आदि महापथ पर्यंतके समस्त मार्गों में जाकर इस प्रकार की घोषणा की, हे लोको ! सुनो-जो कोई चंपानगरी का निवासी चरक आदि जन धन्य सार्थवाह के साथ अहिच्छत्रा नगरी को जाना चाहता हो उसके लिये धन्यसार्थवाह छत्रादि सब देगा तथा जो मार्ग में पतित हो जावेंगे अथवा रोगाक्रान्त बन जावेंगे उनकी औषधि आदि द्वारा सहायता भी करेगा और इस तरह वह उनके लिये सकुशल अहिच्छत्रा नगरी में पहुँचा देगा-इस प्रकार की घोषणा करके उन लोगों ने इसकी खबर धन्य सार्थवाह के पास भेज दी। गृहस्थ के घर निष्पन्न हुए औदनादिक खाद्य वस्तुओं का जो सर्व प्रथम हिस्सा दानके लिये पृथक कर रख लिया जाता है, उस

वत्थव्वा वहवे चरगा य जाव पच्चप्पिणंति)

आ रीते धन्य सार्थवाहनी आज्ञाने ते कौटुम्बिक पुरुषोऽप्ये स्वीकारी लीधी अने चंपा नगरीना शृङ्गाटक वगेरे महापथोमां जघने आ रीते तेऽप्ये घोषणा करी के डे लोके ! सांभणो, चंपा नगरीमां रडेनार अरक वगेरे गभे ते भाणुस धन्य सार्थवाहनी साथे अहिच्छत्रा नगरीमां ज तेने धन्य सार्थवाह छत्र वगेरे अधुं आपसे, तेमज मार्गमां केठ पडी जशे अथवा तो भांडो थर जशे तो धन्य सार्थवाहनी तेनी अरोअर भावजत करावीने तेनी सहाय करशे अने तेने सकुशल अहिच्छत्रा नगरीमा पडेयाडशे आ रीते घोषणा करीने ते लोकेऽप्ये धन्य सार्थवाहने घोषणुं काम पुइं थर जवानी अअर आपी. गृहस्थने घर तैयार करायेला सात वगेरे भाद्य वस्तुओने जे ओ पडेलां दान भाटे बूढो करीने राणवामां आवे छे ते लागने जे पीअ भांगीने लर जय छे तेने अरिक् डडे छे. मार्गमां पडेलां द्वाटेलां वओ जे

हिस्से को जो भिक्षा वृत्ति से ले जाते हैं उनका नाम चरिक है । मार्ग में गिरे हुए फटेचिटे वस्त्र को लेकर जो पहिनते हैं उनका नाम चीरिक है । चमड़े को जो अपने पहिरने के उपयोग में लाते हैं वे चर्म खडिक है । दूसरे के द्वारा लायी गई भिक्षा से जो अपना निर्वाह करते हैं वे भिक्षोण्ड हैं । अपने शरीर पर जो भस्म लपेटे रहते हैं वे प्रांडुरंग हैं । बैल को लेकर जो दूसरों के घरों से अनाज मांगते हैं वे गौतम है । दिलीप राजा की तरह जो गायकी सेवा करने में लगे रहते हैं—जब वह बैठती है तब वे बैठते हैं—वह खड़ी होती है तो वे भी खड़े हो जाते हैं इत्यादि रूप से गोचर्यानुकारी जो जन होते हैं वे गोव्रतिक हैं । गृहस्थ धर्म ही श्रेष्ठ है, इस प्रकार मान कर जो उसमें रह रहते हैं वे गृह्णधर्म चिन्तक है । जैसे—गृहस्थाश्रम के समान धर्म न हुआ है और न आगे होगा ही । जो शूरवीर मनुष्य होते हैं वे ही इसे पालते हैं । पाण्ड धर्म को पालने वाले मनुष्य शूरवीर नहीं हैं किन्तु वे तो क्लीब-नपुंसक हैं । ऐसी इनकी मान्यता होती है । अविरुद्ध शब्द का अर्थ विरुद्ध नहीं रहते हैं सबका समानरूप से विनय करते हैं । विरुद्ध शब्द का अर्थ अक्रियावादी है । ये अक्रिया वादी पर-

पंडेरे छे तेनुं नाम चीरिक छे. आमडाने जे वस्त्र तरीके पडेरवामां काममां ले छे ते चर्म अडित छे. भीमज्यो वडे लाववामां आवेदी लिक्षाधी जे पोतानुं उदर पोषणु करे छे ते भिक्षोण्ड छे. पोताना शरीर उपर जे राभ योणे छे ते प्रांडुरंग छे. भण्डने साथे लधने जेज्यो भीमज्योना धरोथी अनाज मांगे छे तेज्यो गौतम कडेवाय छे. राजा दिलीपनी जेम जेज्यो गायनी सेवा करवामां व्यस्त रहे छे—न्यारे गाय जेसे छे त्यारे तेज्यो जेसे छे, न्यारे गाय जेसी थाय छे त्यारे तेज्यो पणु जिला थर्ष नय छे वगेरे रुपमां जेज्यो गोचर्यानुकारी जन डोय छे तेज्यो गोव्रतिक कडेवाय छे. गृहस्थ धर्म जे अरेअर उत्तम धर्म छे आम योक्कस पणु मानीने तेमां दत्त चित्त रहे छे तेज्यो गृह्णधर्म—चिन्तक छे. जेमके:—गृहस्थाश्रम जेवो धर्म थयो नथी अने आगण लविष्यमां थवानी संलावना पणु नथी. जेज्यो शूरवीर माणुसो डोय छे तेज्यो जे आ धर्मनुं पालन करे छे. पाण्ड धर्मने पालन करनारा माणुसो शूरवीरो नथी पणु तेज्यो तो नपुंसक छे. गृहस्थीज्योनी आ नतनी मान्यता डोय छे. अविरुद्ध शब्दने अर्थ अक्रियावादी छे. जेम के जेज्यो डोर्ष पणु माणुसथी विरुद्ध आचरणु करता नथी तेज्यो अधानी साथे सरणी रीते विनयपूणु व्यवहार करे छे. विरुद्ध शब्दने अर्थ अक्रियावादी छे. अक्रियावादी जेडो परडोके जेवी वस्तुमां

मूलम्-तएणं तेसिं कोडुंविद्य पुरिसाणं अंतिए एयमट्टं
 सोच्चा णिसम्म चंपानयरी वत्थवा वहे चरगा य जाव गिहत्था
 य जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति तएणं से धण्णे
 सत्थवाहे तेसिं चरगाण य जाव गिहत्थाण य अच्छत्तगंस्स
 छत्तं दलयइ जाव पत्थय णं दलाइ दलइत्ता एवं वयासी-
 गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! चंपाए नयरीए वहिया अग्गु-
 जाणंसि मम पडिवालेमाणा चिट्टह, तएणं ते चरगा य जाव
 गिहत्था य धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं बुत्ता समाणा जाव चिट्ठंति,
 तएणं धण्णे सत्थवाहे सोहणंसि तिहिकरणनक्खत्तंसि विउलं
 असणं ४ उवक्खडावेइ उवक्खडावित्ता मित्तनाइ० आमंतेइ
 आमंतित्ता भोयणं भोयावेइ भोयावित्ता आपुच्छइ आपुच्छित्ता
 सगडीसागडं जोयावेइ जोयावित्ता चंपानगरीओ निग्गच्छइ
 निग्गच्छित्ता चरगा य जाव गिहत्था य सद्धिं घेत्तूण णाइवि-
 प्पइट्ठेहिं अच्चाणेहिं वसमाणेऱ सुहेहिं वसहिं पायरासेहिं अंगं

लोक नहीं मानते हैं। वृद्धश्रावक-ब्राह्मण-अर्थ का वाचक है। क्यों कि
 ये पहिले भरत चक्रवर्ती के समय में श्रावक थे-पश्चात् ब्राह्मण बन
 गये इसलिये “ वृद्धकालिको यः श्रावकः ” इस व्युत्पत्ति के अनुसार
 वृद्धश्रावक शब्द ब्राह्मण अर्थ का वाची बन जाता है। वाकी अवशिष्ट
 शब्दों का अर्थ स्पष्ट है ॥ सू० २ ॥

विश्वास करता न थी वृद्ध श्रावक-ब्राह्मण अर्थने स्पष्ट करे छे केम के ओओ
 पडेलां भरत चक्रवर्तीना वधते श्रावक हुता त्पार पछी ओओ ब्राह्मण थर्ध
 गया ओटला भाटे ‘ वृद्ध कालिको यः श्रावकः सः वृद्ध श्रावकः ’ आ व्युत्पत्ति
 मुज्जम वृद्ध श्रावक शब्द ब्राह्मण अर्थने वाचक थर्ध नय छे. पीन शेष
 शब्दोना अर्थ तो स्पष्ट न छे. ॥ सूत्र “ २ ” ॥

जणवयं मज्झं मज्झेणं जेणेव देसग्गं तेणेव उवागच्छइ उवा-
गच्छित्ता सगडीसागडं मोयावेइ मोयावित्ता सत्थणिवेसं करेइ
करित्ता कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-तुब्भे णं
देवाणुप्पिया ! अम सत्थनिवेसंसि महया महया सद्दणं उग्घोसेमाणा
२ एवं वयह-एवं खलु देवाणुप्पिया ! इमीसे आगमियाए
छिन्नावायाए दीहमद्दाए अडवीए बहुमज्झदेसभाए बहवे
णंदिफला नामं रुक्खा पन्नत्ता किण्हा जाव पत्तिया पुप्फिया
फलिया हरियगरेरिज्जमाणा सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा
चिट्ठंति मणुण्णा वज्जेणं४ जाव मणुन्ना फासेणं मणुन्ना छायाए,
तं जो णं देवाणुप्पिया ! तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि वा कंदं
तय० पत्त० पुप्फ० फल० बीयाणि वा हरियाणि वा आहारेइ
छायाए वा वीसमइ तस्सणं आवाए भइए भवइ तओ पच्छा
परिणममाणा२ अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेति, तं माणं
देवाणुप्पिया ! केइ तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि वा जाव छायाए
वा वीसमउ, मा णं सेऽवि अकाले चेव जीवियाओ ववरो-
विज्जिस्सइ, तुब्भेणं देवाणुप्पिया ! अन्नेसि रुक्खाणं मूलाणि-
य जाव हरियाणि य आहारेह छायासु वीसमहत्ति घोसणं
घोसेह जाव पच्चप्पिणंति, तएणं से धण्णे सत्थवाहे सगडी-
सागडं जोएइ२ जेणेव नंदिफला रुक्खा तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं अदूरसामंते सत्थणिवेसं करेइ
करित्ता दोच्चंपि तच्चंपि कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता

एवं वयासी—तुव्भेणं देवाणुप्पिया ! मम सत्थनिवसंति महया
महया सदेणं उग्घोसेमाणा२ एवं वयह—एएणं देवाणुप्पिया !
ते णंदिफला रुक्खा किण्हा जाव मणुन्ना छायाए तं जो णं
देवाणुप्पिया ! एएसिं णंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंद०
पुप्फ० तय० पत्त० फल० जाव अकाले चैव जीवियाओ ववरो-
वेइ, तं माणं तुव्भे जाव दूरे दूरेणं परिहरमाणा वीसमह, मा
णं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविस्सइ, अच्चेसिं रुक्खाणं
मूलाणि य जाव वीसमहत्तिकट्टु घोसणं जाव पच्चप्पिणंति, तत्थ
णं अप्पेगइया पुरिसा धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमट्टं सदहंति
पत्तियंति रोयंति एयमट्टं सदहमाणा३ तेसिं नंदिफलाणं० दूरं
दूरेण परिहरमाणा२ अन्नेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव वीसमंति
तेसिं णं आवाए नो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा२
सुहरूवत्ताए भुज्जो२ परिणमंति, एवामेव समणाउसो ! जो
अम्हं निग्गंथोनिग्गंथी वा जाव पंचसु कामगुणेसु नो सज्जेइ नो
रज्जेइ से णं इहभवे चैव वहुणं समणाणं अच्चणिज्जे५ परलोए
नो आगच्छइ जाव वीइवइस्सइ, जहा य ते पुरिसा तत्थ णं
अप्पेगइया पुरिसा धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमट्टं नो सदहंतिइ
धण्णस्स एयमट्टं असदहमाणा३ जेणेव ते नंदिफला तेणेव
उवागच्छंति उवागच्छित्ता तेसिं नंदिफलाणं मूलाणि य जाव
वीसमंति तेसिं णं आवाए भद्दए भवइ तओ पच्छा परिणममाणा
जाव ववरोवेति, एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा

निगंथी वा जाव पठ्वइए पंचसु कामगुणेषु सज्जेइ सज्जित्ता
जाव अणुपरिघट्टिस्सइ जहा वा ते पुरिसा ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘तएणं तेसिं’ इत्यादि । ततः खलु तेषां कौटुम्बिकपुरुषाणा-
मन्तिके एतमर्थं=पूर्वोक्तमहिच्छत्रानगरीगमनार्थघोषणारूपं भावं श्रुत्वा=कर्ण-
विषयीकृत्य, निशम्य=हृद्यवधार्य चम्पानगरी वास्तव्या अहिच्छत्रानगरीगन्तुकामा
वहवश्चरकाश्च यावद् गृहस्थाश्च यत्रैव धन्यः सार्थवाह-स्तत्रैवोपागच्छन्ति । ततः
खलु स धन्यः सार्थवाहस्तेषां चरकाणां च यावद् गृहस्थानां च मध्ये अच्छत्रकाय-
छत्रं ददाति यावत् पथ्यदनं=शम्बलं ददाति, एवमवादीत्=कथयति गच्छत खलु
युयं हे देवानुप्रियाः ! चम्पाया नगर्या वहिः ‘अग्गुज्जाणंसि’ अग्र्योद्याने मां
‘पडिवालेमाणा’ प्रतिपालयन्तः=प्रतीक्षमाणास्तिष्ठत । ततः खलु ते चरकाश्च=

—तएणं तेसिं इत्यादिः—

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (तेसिं कौटुम्बियपुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं
सोच्चा णिसम्म चंपानगरी वत्थव्वा वहवे चरगाय जाव गिहत्था य जेणेव
धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति) उन कौटुम्बिक पुरुषों के मुख से
इस घोषणारूप अर्थ को सुनकर और उसे हृदय में धारणकर चंपा
नगरी निवासी अनेक चरक से लेकर गृहस्थ पर्यंत मनुष्य जहां धन्य
सार्थवाहक था वहां आये (तएणं से धण्णे सत्थवाहे तेसिं चरगाण य
जाव गिहत्थाण अच्छत्तगस्स छत्तं दलइ जाव पत्थयणं दलाइ दलइत्ता
एवं वयासी-गच्छह णं तुव्भे देवाणुप्पिया । चंपाए नगरीए वाहिया अ-
ग्गुज्जाणंसि ममं पडिवाले माणा चिट्ठेह) इसके बाद धन्य सार्थवाह

‘तएणं तेसिं’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्थार पथी

(तेसिं कौटुम्बिय पुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म चंपानगरी वत्थव्वा
वहवे चरगाय जाव गिहत्था य जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति)

ते कौटुम्बिक पुरुषोत्तमा सुप्रथी आ घोषणा इय अर्थने सांख्यीने अने
तेने हृदयमां धारय करीने चंपा नगरीना धणा चरकथी भांडीने गृहस्थ सुधीना
पथा भाणुसे न्यां धन्य सार्थवाह उता त्यां आव्या.

(तएणं से धण्णे सत्थवाहे तेसिं चरगाण य जाव गिहत्थाण अच्छत्तगस्स
छत्तं दलयइ, जाव पत्थयणं दलाइ, दलइत्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुव्भे देवाणु-
प्पिया ! चंपाए नगरीए वाहिया अग्गुज्जाणंसि ममं पडिवालेमाणा चिट्ठेह)

चरकादयो यावद् गृहस्थ धन्येन सार्थवाहेन-एवमुक्ताः सन्तः 'जाव' यावत्-
धन्यं सार्थवाहं प्रतीक्षमाणास्तिष्ठन्ति । ततः खलु धन्यः सार्थवाहः शोभने तिथि-
करणनक्षत्रे=शुभदिवसे विपुलमशनादिक चतुर्विधाहारम् उपस्कारयति=निष्पादयति
उपस्कार्य मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिपरिजनान् आमन्त्रयति, भोजनं भोजयति=कार-

ने उन चरक आदि से लेकर गृहस्थ पर्यन्त के मनुष्यों में जिसके पास
छत्ता आदि नहीं था उसे छत्ता दिया यावत् जिस के पास कलेवा नहीं
था उसको कलेवा-मार्ग भोजन-दिया । बाद में उसने उन सयसे कहा
हे देवानुप्रियो ! तुम यहां से चलो और मुख्य उद्यान में मेरी प्रतीक्षा
करते हुए ठहरे रहो-(तएणं ते चरगाय जाव गिहत्थाय धण्णेणं सत्थं
वाहेणं एवं वुत्ता समाणा जाव चिट्ठंति, तएणं धण्णे सत्थवाहे सोहणंसि
त्तिहिकरणनक्खत्तसि विउलं असणं ४ उवक्खडवेइ, उवक्खडावित्ता
मित्तनाइ० आमंतेइ, आमंत्तित्ता भोयणं भोयावेइ, भोयावित्ता आपु-
च्छइ, आपुच्छित्ता सगडीसागडं जोयावेइ, जोयावित्ता चंपानगरीओ
निग्गच्छइ) इस प्रकार धन्यसार्थवाह के द्वारा कहे गये वे चरकादि
गृहस्थ पर्यन्त समस्तजन वहां से चलकर मुख्य उद्यान में गये-और
धन्यसार्थवाह की प्रतीक्षा करते हुए वहां ठहर गये । धन्यसार्थवाह ने
शुभ तिथि, करण, एवं नक्षत्र में विपुल मात्रा में अशन आदि रूप
चारों प्रकार का आहार निष्पन्न करवाया । जब आहार निष्पन्न हो

त्यार पछी धन्य सार्थवाडे तेओ चरक वगेरेथी भाडीने गृहस्थ सुधीना
अधा भाबुसोभांथी नेनी पासे छत्री वगेरे न डती तेने छत्री वगेरे अने
नेनी पासे मार्गं भाटेनुं लोअन न डतु तेने लोअन आप्थुं त्यार पाइ
तेबु अधा ने क्खु के डे देवानुप्रियो ! तमे अडीथी सुभ्य उद्यानभां नओ
अने त्यां भारी प्रतीक्षा करे।

(तएणं ते चरगाय जाव गिहत्थाय धण्णेणं सत्थवाहे णं एव वुत्ता समाणा
जाव चिट्ठंति, तएणं धण्णे सत्थवाहे सोहणंसि त्तिहिकरणनक्खत्तसि विउलं
असणं ४ उवक्खडवेइ, उवक्खडावित्ता मित्तनाइ आमंतेइ, आमंत्तित्ता भोयणं
भोयावेइ, भोयावित्ता आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सगडीसगडं जोयावेइ, जोयावित्ता
चंपानगरीओ निग्गच्छइ)

आ रीते धन्य सार्थवाड वडे आजापित थयेत्ता चरक गृहस्थ वगेरे
अधा भाबुसो त्यांथी सुभ्य उद्यानभां गया अने धन्य सार्थवाडनी राड लेता.
तेओ त्यां न रोक्या. धन्य सार्थवाडे शुभ तिथि, करण, अने सारा नक्षत्रभां
पुष्कण प्रभाबुभां अशन वगेरे इय चारे जतना आडारे तैयार कराव्या. च्यादे

यति, भोजयित्वा 'आपुच्छइ' आपुच्छति=विदेशगमनार्थमाज्ञां प्रार्थयति, आपु-
च्छय=आज्ञा प्राप्य शकटीशाकटं योजयति, योजयित्वा चम्पा नगरीतो निर्ग-
च्छति=निस्सरति, निर्गत्य चरकान् यावत् गृहस्थांश्च सार्द्धं गृहीत्वा 'नाइविप्पगिद्धेहि'
नातिविप्रकृष्टेषु=नातिदूरेषु यथोचितेषु 'अद्धाणेहि' अध्वसु=मार्गेषु 'वसमाणे २'
वसन्-वसन् स्थाने स्थाने निवासं कुर्वन् 'सुहेहि' शुभैः=प्रशस्तैः 'वसहिपायरा-
सेहि' वसतिप्रातराशैः = निवासस्थाने प्रातःकालीनलघुभोजनैः सह अङ्गजन-
पदस्य=अङ्गदेशस्य मध्य-मध्येन यत्रैव 'देसगं' देशाद्यं=अङ्गदेशसीमा वर्त्तते
तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य शकटीशाकटं मोचयति, मोचयित्वा 'सत्थनिवेसं'
सार्थनिवेशं करोति, कृत्वा कौडुम्बिकपुरुषान् शब्दयति=आह्वयति शब्दयित्वा=
आह्वय एवमत्रादीत्-“ हे देवानुप्रियाः । यूयं खलु मम सार्थनिवेशे महता-महता
शब्देन=उच्चस्वरेण उद्घोषयन्तः=सन्तः एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण वदत=कथयत-

शुका-तव उसने अपने मित्र, ज्ञाति आदि परिजनोको आमंत्रित किया ।
आमंत्रित करके फिर उन सबको उसने उस चतुर्विध आहारको भोजन
कराया भोजन कराके फिर उन सबसे परदेश गमन करने की उसने
आज्ञा मांगी । आज्ञाप्राप्त करके उसने गाडी और गाड़ों को जुतवाया
जुतवा कर फिर वह चंपा नगरी से बाहिर निकला । चरकादि गृहस्थ
पर्यन्त समस्त जन को अपने साथ में ले लिया-(निग्गच्छित्ता चरगाय
जाव गिहत्थाय सद्धिं घेत्तूण णाइविप्पगिद्धेहि अद्धाणेणि वसमाणे २
सुहेहि वसहिपायरासेहि अंगं जणवयं मज्झं मज्झेणं जेणेव देसगं
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सगडीसागडं मोयावेइ मोयावित्ता
सत्थणिवेसं करेइ करित्ता कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं
वयासी — तुब्भेणं देवाणुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया २

आहारो तैयार थर्ध गया त्पारे तेले पोताना मित्र, ज्ञाति वगेरे पत्तिनेने
आमंत्रित कया. आमंत्रित करिने तेले अधाने थारे नतना आहारो जभाउथा.
त्यार पथी तेले सौनी पासेथी परदेश ज्वानी आज्ञा भागी आम तेले
अधानी पासेथी आज्ञा भेणवीने गाडी तेमज गाडांओ नेतराव्यां अने त्यार
पथी ते चंपा नगरी थी अहार नीज्जयो. तेले उधानमां राड नेतारा अधा
ररक गृहस्थ वगेरे भावसेने पण साथे लर्ध वीधा डता.

(निग्गच्छित्ता चरगाय जाव गिहत्था य सद्धिं घेत्तूण णाइविप्पगिद्धेहि
अद्धाणेहि वसमाणे २ सुहेहि वसहिपायरासेहि अंगं जणवयं मज्झं मज्झेणं
जेणेव देसगं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सगडीसागडं मोयावेइ,
मोयावित्ता -सत्थणिवेसं करेइ, करित्ता कौडुंबियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता

एवं खलु हे देवानुप्रिया ! ' इमीसे ' अस्याः ' अगामियाए ' = ग्रामरहितायाः ' छिन्नावायाए ' छिन्नापातायाः छिन्नः आपातो = जनसञ्चारो यत्र सा, तस्याः जनसञ्चाररहितायाः ' दीहमद्वाए ' दीर्घाध्वायाः-दीर्घः=बहुकालगम्यः अध्वा=मार्गो यत्र सा, तस्याः-चिरकाललङ्घनीयायाः, एतादृश्या अटव्याः बहुमध्यदेश-भागे=अतिमध्यभागे, ' एत्थ णं ' अत्र खलु बहवो नन्दिफला नामवृक्षाः मत्तमाः=लोकैः कथिताः । कीदृशास्ते ? इत्याह-' क्रिष्ठा ' इत्यादि=कृष्णाः=कृष्णवर्णाः, कृष्णावभासाः=अतिनीलत्वेन कृष्णच्छटासम्पन्नाः यावत्-नीत्यादिवर्णयुक्ताः,

सद्देणं उग्धोसेमाणा २ एवं बयह-एवं खलु देवाणुप्पिया । इमीसे अगामियाए छिन्नावायाए दीहमद्वाए अडवीए बहुमज्जदेसभाए बहवे णंदिफलानामं रुक्खा पन्नत्ता किण्हा जाव पत्तिया, पुप्फिया, फलिया हरियगरेरिज्जमाणा सिरीए अईव २ उवसोभेमाणा चिट्ठंति) निकल कर नाति विप्रकृष्ट-यथोचित-मार्गीमें ठहरता २ और वहां २ प्राणः कालीन कलेवा करता हुआ वह जहां अंगदेश की सीमा थी वहां पर आया । वहां आकर के उसने अपने शकटी शकटों को ढील दिया और ढील करके फिर अपने सार्थ को ठहरा दिया । ठहरा देने के बाद फिर उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया-और उनसे इन प्रकार कहा-हे देवानुप्रियो ! तुम लोग हमारे सार्थनिवेश में बड़े जोर २ से घोषणा करते हुए ऐसा कहो कि हे देवानुप्रियो ! सुनो जन संचार रहित दीर्घ मार्ग वाली इस आगे की अटवी के मध्यभाग में लोग कहते हैं कि अनेक नन्दीफल नाम के

एवं बयासी — तुग्धेणं देवाणुप्पिया । मम सत्थ निवेशंसि महया २ सद्देणं उग्धोसेमाणा २ एवं बयह-एवं खलु देवाणुप्पिया ! इमीसे अगामियाए छिन्नावायाए दीहमद्वाए, अडवीए बहुमज्जदेसभाए बहवे णंदिफलानामं रुक्खा पन्नत्ता किण्हा जाव पत्तिया, पुप्फिया फलिया, हरियगरेरिज्जमाणा सिरीए अईव २ उवसोभेमाणा चिट्ठंति)

त्यांथी रवाना थधने ते मार्गमां यथास्थाने नल्लक नल्लकना स्थणो उपर विश्राम करतो अने त्यां सवार थतां जलपान (नास्तो) वगेर करतो ते अंगदेशनी डेढ उपर पडोन्थो. त्यां पडोन्थीने तेणु गाडी अने गाडांओने छोडी भूञ्ज्या अने त्यां पोताना सार्थने रोक्थो. रोक्थ्या पथी तेणु पोताना कौटुम्बिक पुरुषोने ओलाव्या अने ओलावीने तेओने आ प्रभाणु कहु के हे देवानुप्रियो ! अमारा सार्थ सनिवेशमां तमे दोडे रोटेथी आ प्रभाणुनी घोषणा करतां कडे के हे देवानुप्रियो ! सांलणो ! डेवे आगण आवनार, तांभा मार्गवाणा निर्जन वनमां दोडे ओम कडे छे के तेमां धणुं नन्दिफ,

तथा- 'पत्तिया' पत्रिताः=पत्रबहुलाः, 'पुष्पिया' पुष्पिताः=पुष्पबहुलाः, 'फलिया' फलिताः=फलबहुलाः 'हरियगरेरिज्जमाणा' हरितकरारज्यमानाः=हरितकेन=हरितवर्णेन भृशं शोभमानाः 'सिरीए' श्रिया=हरितपल्लवादिशोभया अतीवातीव उवशोभमानास्तिष्ठन्ति=वर्तन्ते । पुन कीदृशास्ते 'इत्याह-मनोज्ञाः-वर्णेन, 'जाव' यावत्-गन्धेन, रसेन स्पर्शेन, मनोज्ञाच्छायया, रस्यवर्णादिना रस्य छायाया च युक्ता इत्यर्थः, 'त' तत्=तस्मात् नन्दिदृक्षाणां सौन्दर्यादिकारण-वशात् 'जो णं' यः खलु हे देवानुप्रियाः ! तेषां नन्दिफलानां=नन्दिफलाभिधानां वृक्षाणां मूलानि वा कन्दानि वा त्वचो वा, पत्राणि वा, पुष्पाणि वा, फलानि वा, बीजानि वा, हरितानि वा 'आहारेइ' आहारयति, तेषां छायायो वा 'वीस-मइ' विश्राम्यति तस्य खलु आवाए' आपाते=पूर्वं भक्षणादि समये 'महए'

वृक्ष हैं । ये वृक्ष कृष्ण वर्णवाले हैं और देखने पर भी अनि हरित होने के कारण कृष्ण ही प्रतीत होते हैं । पत्र, पुष्प एवं फलों से वे युक्त हैं । वे हरित वर्णसे बड़े सुहावने लगते हैं । उनके पल्लव आदि सब हरे र हैं । इससे उन की शोभा बड़ी नीराली बनी हुई है । (मणुण्णा वन्नेणं ४ जाव मणुन्ना फासेणं मणुन्ना छायाए, तं जो णं देवानुप्पिया ! तेसि नन्दिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदं तयं पत्तं पुष्कं फलं बीयाणि वा हरियाणि वा आहारेइ, छायाए वा वीसमइ, तस्स णं आवाए महए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा २ आकाले चैव जीवियाओ व वरो वेति) वर्ण, रस, गंध एवं स्पर्श से वे बड़े मनोज्ञ हैं । छाया भी उनकी बड़ी मनोज्ञ है । इस लिये हे देवानुप्रियो ! जो कोई इन की सुन्दरता आदि कारण के वशसे आकृष्ट होकर इन नन्दिफल वृक्षों के मूलों को कंटों को छालों को, पत्रों को, फलों को बीजों को अथवा हरित अंकुरों

नामे वृक्षो छे. ते वृक्षो कृष्ण वर्णवाणां छे अने भूषण लीलां डोवाथी कृष्ण वर्णना जेवा न लागे छे पत्रो, पुष्पो अने इणोथी तेओ समृद्ध छे. लीलां छम डोवाथी तेओ अत्यंत सुंदर लागे छे तेमनां पत्रो वगेरे षधां लीलां छे. तेथी तेमनी शोभा अेकदम अनोणी छे.

(मणुण्णा वन्नेणं ४ जाव मणुन्ना फासेणं मणुन्ना छायाए तं जो णं देवानु-प्पिया ! तेसि नन्दिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदं तयं पत्तं पुष्कं फलं बीयाणि, वा हरियाणि वा आहारेइ, छायाए वा वीसमइ, तस्स णं आवाए महए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा २ आकाले चैव जीवियाओ व वरोवेति)

वर्ण, रस, गंध अने स्पर्शथी तेओ भूषण मनोज्ञ छे. छायाओ पणु तेओना अत्यंत मनोज्ञ छे अेटला भाटे छे देवानुप्रियो ! केछ पणु माणुस तेमनी सुंदरता वगेरे कारणोथी आकर्षणने ते नन्दिफल वृक्षोना भूषणे, कंदोने, छालने पांडांओने, पुष्पोने, षियांओने अथवा तो लीला कृष्णोने भाशे के

भद्रकं=सुखं भवति, ततः पश्चात्=स्तौककालानन्तरं ' परिणममाणार ' परिणमन्तः
 २ रसादिरूपेण परिणमनं प्राप्नुवन्तस्ते मूलकन्दादयस्तं पुरुषम् अकाले एव
 जीविताद् व्यपरोपयन्ति=प्राणनाशं कुर्वन्तीत्यर्थः, ' तं ' तत्=तस्मात्कारणात् मा
 खलु हे देवानुप्रियाः ! ' केइ ' कोऽपि तेषां नन्दिफलवृक्षाणां मूलानि वा यावत्-
 कन्दादीनि आहारयतु, तेषां छायायां वा विश्राम्यतु तेषां फलानि मा आहारयतु,
 छायायांच मा विश्राम्यतु, इति भावः, सोऽपि च=यो नन्दिफलवृक्षाणां मूलादीनि-
 नाहारयिष्यति, नापि च तच्छायायां विश्रामिष्यति सः न खलु अकाल एव
 जीविताद् व्यपरोपिष्यते, स न मरिष्यतीत्यर्थः । यूयं खलु हे देवानुप्रियाः !

को, खावेगा अथवा उनकी छाया में विश्राम करेगा उसे उससमय तो
 बड़ा अनन्द आवेगा-परन्तु उसके बाद में थोड़े ही समय में जैसे २
 रसादिरूप से उसका परिणमन होगा वैसे २ वे भक्षित मूलादिकंद इस
 पुरुष को अकालमें ही जीवन से रहित कर देंगे । (तं माणं देवाणुप्पिया
 केइ तेसिं नन्दिफलाणं मूलाणि वा जाव छायाए वा वीसमउ, माणं से वि
 अकाले चैव जीवियाओ ववरोविज्जिस्सह, तुब्भेणं देवाणुप्पिया । अन्ने
 सिं रुक्खाणं मूलानि जाव हरियाणिय आहारेह, छायासु वीसमह त्तिं
 घोसणं घोसेह, जाव पच्चप्पिणंति) इसलिये हे देवानुप्रियो ! तुम लोग
 में से कोई भी व्यक्ति उन नन्दिफल वृक्षों के मूल आदिकों को न खावे
 और न कोई उन की छाया से ही विश्राम करे । जो उन नन्दिफल वृक्षों
 के मूल आदिकों को नहीं खावेगा और न उनकी छाया में विश्राम ही
 करेगा वह अकाल में अपने जीवन से रहित नहीं बनेगा । वहाँ इनसे

तेमना छायडामा विसामो देशे त्थारे तो तेमने भूणञ्ज आनह प्राप्त थये
 पणु त्थार पछी थोडा ञ् समयमा जेम जेम तेमनुं रसादिरूप परिणमन थये तेम
 तेम तेओ भाधेसा भूण कद वगेरे ते भाणुजने अजाणे ञ् निर्णव जनावी हेथे.

(तं माणं देवाणुप्पिया ! केइ तेसिं नन्दिफलाणं मूलाणि वा जाव छायाए
 वा वीसमउ, माणं से वि अकाले चैव जीवियाओ ववरोविज्जिस्सह, तुब्भेणं
 देवाणुप्पिया । अन्नेसिं रुक्खाणं मूलानि जाव हरियाणि य आहारेह, छायासु
 वीसमह त्तिंघोसणं घोसेह जाव पच्चप्पिणंति)

अथी हे देवानुप्रियो ! तमारामाथी केअपञ्चु भाणुस ते नन्दिण वृक्षोना
 भूणोने न पाय अने तेनी छायामां पणु विसामो देवा जेसे नडि. जे भाणुस
 नन्दिण वृक्षोना भूण वगेरेनुं लक्षणु करशे नडि तेमञ्ज तेमना छायडामां पणु
 विसामो देशे नडि तेनुं अजाणे मरणु थये नडि. तमे दोडे ते वनमां
 नन्दिण वृक्षोने पाह करतां भीज्ज जे वृक्षो डोय हे देवानुप्रियो ! तमे दोडे
 तेमना भूणोने तेमञ्ज लीली कृपणे वगेरेनुं लक्षणु करले अने तेमनी ञ् छायामां
 विसामो देशो. आ प्रभाणु तमे घोषणु करे. त्थार पछी-ते दोडेओ आसा प्रभाणे

धन्येषाम्=तद्भिन्नानां वृक्षाणां मूल नि च यावत् हरितानि च 'आहारेत्थ' आहार-
यत्, छायासु विश्राम्यत च " इति=एतद्रूपां घोषणां घोषयत कुरुत । 'जाव'
यावत्-ते च तथैव कृत्वा तदाज्ञां प्रत्यर्पयन्ति=तस्मै निवेदयन्तीत्यर्थः । ततः खलु
धन्यः सार्थवाहः शकटीशाकटं योजयति, योजयित्वा यत्रैव नन्दिफलावृक्षास्तत्रैवो-
पागच्छति, उपागत्य तेषां नन्दिफलानाम् अदूरसामन्ते सार्थनिवेशं करोति, कृत्वा
द्वितीयमपि तृतीयमपि वारं कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-

भिन्न जो और दूसरे वृक्ष हों हे देवानुप्रियों ! तुमलोग उन्हीं के मूलों
को यावत् हरिताङ्कुरों को खाना उनकी ही छाया में विश्राम करना ।
इस प्रकारकी तुमलोग घोषणा करो । यावत् उन्होंने वैसा ही किया और
इस की खबर धन्य सार्थवाह को भी दे दी । (तएणं से घण्णे सत्थ वाहे
सगडीसगडं जोएइ २ जेणेव नन्दिफलरुक्खा तेणेव उवागच्छइ, उवाग-
च्छित्ता तेसि नन्दिफलाणं अदूरसामन्ते सत्थणिविसे करेइ, करित्ता दोच्चंपि
तच्चंपि कोडुंघियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी तुव्भे णं देवा-
णुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया २ सद्देणं उग्घोसेमागार एवं वयह-
एणं देवाणुप्पिया ! ते णन्दिफला रक्खा, किण्हा जाव मणुन्ना छायाए) इस
के बाद उस धन्य सार्थवाहने अपनी गाड़ी और गाड़ोंको जुतवाया और
जुतवाकर जहां वे नन्दि फलवृक्ष थे वहां गया । वहां जाकर उसने
उन नन्दिफल वृक्षों के पास अपने सार्थ को ठहरा दिया-अर्थात् अपना
पडाव डाला ठहरने के बाद फिर उसने कौटुम्बिक पुरुषों को दोबार और

७ घोषणा करीने धन्य सार्थवाहने घोषणानुं काम थर्ष ७वानी भभर आपी

(तएणं से घण्णे सत्थवाहे सगडी सागडं जोएइ २ जेणेव नन्दिफलरुक्खा,
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेसि नन्दिफलाणं अदूरसामन्ते सत्थणिविसे करेइ
करित्ता दोच्चंपि तच्चंपि कोडुंघियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी तुव्भेणं
देवाणुप्पिया ! मम सत्थनिवेसंसि महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयह-
एणं देवाणुप्पिया ! ते णन्दिफला रक्खा, किण्हा जाव मणुन्ना छायाए)

त्यार पछी ते धन्य सार्थवाहे गाडीओ अने गाडांओने नेतराव्यां अने
नेतरापीने तेओ ७ तरश् नन्दिक्षण वृक्षो डतां ते तरश् रवाना थया. त्यां
पडोंथीने तेओ नन्दिक्षण वृक्षोनी पासे पोताना सार्थने राकथे अर्थात् विसामा
भाटे त्यां ७ पडाव नाथ्ये पडाव नाथ्या ग्राह तेओ ७ त्रथु वभत कौटुंभिक
पुरुषोने जोदाव्या अने जोदापीने तेभने आ प्रभाओे कहुं के डे देवानुप्रियो !

युयं खलु हे देवानुप्रियाः । मम सार्थनिवेशे महता-महता शब्देन उद्घोषयन्तः २ एवं वदन्-“ एते खलु हे देवानुप्रियाः ! ते इमो नन्दिफलाग्राः यदर्थं, पूर्वम् पदिष्टम् कृष्णा यावत्-मनोज्ञा छायाया, तद् यो खलु हे देवानुप्रियाः ! एतेषां नन्दिफलानां वृक्षाणां मूलानि वा, कन्दानि वा पुष्पाणि वा, त्वचो वा, पत्राणि वा, फलानि वा, यावत्-तानि मूलकन्दादीनि तं जीविताद् व्यपरोपयन्ति, तत् मा खलु युयं ' जाव ' यावत्-तेषां मूलकन्दादीनि मा आहारयत, मा च तेषां छायासु विश्राम्यत किन्तु तान् दूरं-दूरेण=दूरत एव ' परिहरमाणा ' परिहरन्तः=वर्जयन्तः

तीन बार बुलाया-बुलाकर उसने ऐसा कहा-हे देवानुप्रिया ! तुम मेरे सार्थ निवेश में जाकर जोर २ से ऐसी घोषणा करो-कि हे देवानुप्रियो जिन नन्दिफल वृक्षों के विषय में पहिले सूचना दी गई है-वे येही कृष्ण यावत् छाया से मनोज्ञ नन्दिफल वृक्ष हैं । तं जो णं देवाणुप्रिया । एएसि णंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदं पुष्पं तयं पत्तं फल जाव अकाले चैव जीवियाओ ववरोवेइ, तं माणं तुब्भे जाव दूरे दूरेणं परिहरमाणा वीसमह. माणं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविस्सइ, अन्नेसि रुक्खाणं मूलाणि य जाव वीसमहत्ति कइहु घोसणं जाव पच्चपिणंति) इस लिये हे देवानुप्रियो ! तुम लोग में से कोई भी व्यक्ति इन नन्दिफलवृक्षोंके मूलोंको, कंदोंको, पुष्पोंको, छालोंको, फलोंको नही खावे और न वह इनकी छायामें विश्राम ही करे-नहीतो वह अकालमें ही कालकवलिन अर्थात् मर जावेगा हो जावेगा । इस लिये इन्हें बहुत दूर छोडकर दूसरी जगह तुम लोग विश्राम करो इससे जीवन से रहित

भारा सार्थ निवेशमा न्धने भोटेथी तमे आ प्रमाणे घोषणा करो डे डे देवानुप्रियो ! ने नन्दिक्षण वृक्षोना विषे पडेलां तमने न्धु करवाभां आवी डती ते अन्ने कृष्ण तेमन् छायाथी मनोज्ञ लागतां नन्दिक्षण वृक्षो छे.

(तं जो णं देवाणुप्रिया ! एएसि णंदिफलाणं रुक्खाणं मूलाणि वा कंदं पुष्पं तयं पत्तं फल जाव अकाले चैव जीवियाओ ववरोवेइ तं माणं तुब्भे जाव दूरं दूरेणं परिहरमाणा वीसमह,माणं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविस्सइ, अन्नेसि रुक्खाणं मूलाणि य जाव वीसमहत्ति कइहु घोसणं जाव पच्चपिणंति)

अटला भाटे डे देवानुप्रियो ! तभाराभांथी डोअ पणु माणुम नन्दिक्षण वृक्षोनां भूणोने, कंढोने, पुष्पोने, छालने, इणोने णाय नडि अने तेमनी छायाभां पणु विसाभो डे नडि, नडितर ते अकाणे न् भृत्युने लेटथे. अटला भाटे अमनाथी ण्ण न् इर रहीने विसाभो डेशो तेथी तभारा एवनने कंअ

सन्तोऽन्यत्र ' वीसमइ ' विश्राम्यत=विश्रामं कुरुत तेन न खलु यूयं जीविताद् व्यपरोपिष्यध्वे, तथा-अन्येषां वृक्षाणां मूलानि च यावत्-कन्दादीनि आहारयत, छायासु विश्राम्यत " इति कृत्वा घोषणां घोषयत, यावत्-ते घोषणां घोषयित्वा-धन्यसार्थवाहाय तदाज्ञां प्रत्यर्पयन्ति । तत्र=खलु सार्थे अप्येके पुरुषा धन्यस्य सार्थ-वाहस्य एतमर्थम्=एतद्गुपदेशं श्रद्धयति, प्रतियन्ति-रोचयन्ति, एतमर्थं श्रद्धधानाः=श्रद्धाविषयिकुर्वाणाः प्रतियन्तः रोचयन्तः तेषां नन्दिफलवृक्षाणां मूलादीनि छायां च दूरं -दूरेण=दूरतएव परिहरन्तः=परिवर्जयन्तोऽन्येषां वृक्षाणां मूलानि च यावत्-कन्दादीनि आहारयन्ति, अन्यवृक्षाणां छायासु च विश्राम्यन्ति, तेषां खलु

नहीं होंओगे । तथा इनसे अनिरिक्त और जो दूमरे वृक्ष हैं उनके मूलों को यावत् कन्दादिकों को खाओ और उनकी छाया में विश्राम करो । इस प्रकार की घोषणा कर दो-उन्होंने धन्य सार्थवाह की आज्ञानुसार वैसा ही किया और इसकी उसे खबर भी दे दी । (तत्थ णं अप्पेग-इया पुरिसा धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं सहहंति, पत्तियति रोयंति, एयमट्ठं सहहमाणाइ तेसि नन्दिफलाणं० दूरं दूरेणं परिहरमाणा २ अ-न्नेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव वीसमंति) वहां सार्थ में के कितनेक मनुष्यों ने धन्य सार्थवाहके इस सूचना रूप अर्थको स्वीकार कर लिया । उस पर श्रद्धा जमाई उसे अपनी प्रतीति का विषय बनाया तथा उन्हें वह बात अच्छी तरह रुचि कर भी हुई । इसलिये इस बात पर श्रद्धा आदि संपन्न बने हुए उन लोगों ने उन नन्दि फल वृक्षों के मूलादिकों को और उनकी छाया को बहुत दूर से छोड़कर अन्य वृक्षों के मूलादि

पणु भुशकेली नउशे नडि. तेमज्ज आ वृक्षो सिवायनां भील्लं वृक्षो छे, तेमना भूण, उंइ वगेरे तमे भाव अने तेमना छायाडामां विश्राम करे तेओओ धन्यसार्थवाहनी आशा प्रमाणे ज घोषणा करीने तेने भणर आपी

(तत्थ णं अप्पेगइया पुरिसा धण्णस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं सहहंति, पत्तियंति, रोयंति, एयमट्ठं सहहमाणाइ तेसिं नन्दिफलाणं० दूरं दूरेणं परिहरमाणा २ अन्नेसिं रुक्खाणं मूलाणि य जाव वीसमंति)

त्यां सार्थमां आवेला डेटलाक भाणुसोओ धन्यसार्थवाहनी सूचना इप आ वातने स्वीकारी लीधी अने तेने श्रद्धानी अपेक्षाओ पोताना इहयमां स्थान आपता भरोणर तेनी उपर प्रतीति करी लीधी ते लोकेने ते वात इच्छिकर पणु थर्क पडी आ रीते श्रद्धायुक्त थयेला ते लोकेओ ते नन्दिफल वृक्षोना भूण वगेरेथी अने तेमनी छायाथी भूण ज हर रडीने भील्लं वृक्षोना भूण तेमज्ज उंइ वगेरेने भाधां तथा तेमनी छायामां विसामे लीधे.

आपाते=पूर्वमाहारसमये नो भद्रकं भवति=विशिष्टस्वादादिलाभो न भवति किन्तु ततः पश्चाद्=भक्षणविश्रामानन्तर परिणम्यमानानि २ रसादिरूपेण परिणतानि मूलकन्दादीदि शुभरूपतया=भद्रकतया भूयो भूयः परिणमन्ति ।

अथोपनयं दर्शयन् सुधर्मस्वामी प्राह—‘ एवामेव ’ त्यादिना । ‘ एवामेव ’ एवमेव=अनेनैव पूर्वोक्तप्रकारेण हे आयुष्मन्तः श्रमणाः ? योऽस्माकं निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी वा ‘ जाव ’ यावत्-आचार्योपाध्यायानामन्तिके मुण्डो भूत्वा प्रव्रजितस्तेषामुपदेशं श्रद्धानः सन् पञ्चसु कामगुणेषु=शब्दादिविषयेषु ‘ नो सज्जेइ ’ नो

कों को यावत् कंदों को खाया और उनकी छाया में विश्राम किया । (तेसिं णं आवाए णो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा २ सुहरूवत्ताए भुज्जो २ परिणमंति, एवामेव समणाउसो जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा जाव पंचसु कामगुणेषु नो सज्जेइ, नो रज्जेइ, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं ४ अच्चणिज्जे परलोए नो आगच्छइ, जाव वीइवयस्सइ, जहा वा ते पुरिसा) परन्तु इन पुरुषोंको उनके मूलादिकों के खाने के समय विशिष्ट स्वादादि की प्राप्तिरूप भद्रक का लाभ तो नहीं हुआ—किन्तु उसके बाद जब खाये हुए उन मूलादिकों का रसादि रूप से परिणमन हुआ तब उन्हें चार २ शुभ रूप परिणमन होने से आनन्द आया और जीवन सुरक्षित रहा—अब सुधर्मास्वामी इसका उपनय (दृष्टान्त के अर्थ को प्रकृति में जोड़ना) दिखलाते हुए कहते हैं कि इसी तरह से हे आयुष्मन्त श्रमणो । जो हमारे निर्ग्रन्थ श्रमण एवं श्रमणियांजन हैं वे आचार्य उपाध्यायके पास मुंडित होकर दीक्षित हो जाते हैं और उनके उपदेश को श्रद्धा आदि का विषयभूत

(तेसिं णं आवाए णो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणा २ सुहरूवत्ताए भुज्जो २ परिणमंति, एवामेव समणाउसो जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा जाव पंचसु कामगुणेषु नो सज्जेइ, नो रज्जेइ से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं ४ अच्चणिज्जे परलोए नो आगच्छइ, जाव वीइवयस्सइ, जहा वा ते पुरिसा)

ते भाष्योने वृक्षोना भूण कंठ वगेरे भाती वपते सविशेष स्वाद वगेरेनी अनुभूति तो थछ शकी नहि पणु भाधा पछी ते भूण कंठ रस वगेरे रुपमां परिणुत थयां त्यारे तेमने सुभ भउंयुं अने साथे साथे तेमनां एवन पणु सुरक्षित रखां. सुधर्मा स्वामी हवे ज्ये वातने दृष्टान्तनां रुपमां रुपए करतां कडे छे के छे आयुष्मंत श्रमणो ! आ प्रमाणे जे अमारा निग्रंथ श्रमणीयो, आचार्य तेमज उपाध्यायनी पासे मुंडित थधने श्रद्धा वगेरेथी

स्वजते=आसक्तो भवति, 'नो रज्जेइ' नो रज्यते नो अनुरक्तो भवति स खलु इह भवएव बहूनां श्रमणानां श्रमणीनां बहूनां साधूनां साध्वीनां मध्ये-अर्चनीयः=माननीयः सन् परलोके=मत्तान्तरे नो आगच्छति=जन्म न प्राप्नोति किन्तु-यावत्-अस्मिन्नेव भवे चातुरन्तसंसारकान्तारं व्यतिव्रजिष्यति=उल्लङ्घयिष्यति, मोक्षं प्राप्स्यतीत्यर्थः 'जहा वा ते पुरिसा' यथा वाते पुरुषाः-यथा वा=येन प्रकारेण धन्यसार्थवाहोपदेशश्रद्धया ते=नन्दिफलवृक्षमूलकन्दादि परिवर्जनेन तत्कथनानुसारसमाचरणशीलाः पुरुषाः=सार्थपुरुषाः सुखपूर्वकमहिच्छत्रां नगरीं प्राप्स्यन्ति तथेत्यर्थः । अथ श्रद्धा रहितान् वर्णयति-'तत्थ णं' इत्यादि । तत्र खलु सार्थे अप्पेके=ये तेचित् पुरुषाः धन्यस्य सार्थवाहस्य एतमर्थं=नन्दिफलमक्षणादि निषेधरूपं

बनाते हुए पांच काम गुणों में-शब्दादि विषयों में आसक्त नहीं बनते हैं अनुरक्त नहीं बनते हैं वे इस भवमें ही अनेक साधु और साध्वियों के बीचमें माननीय होते हुए परलोक में जन्म से रहित हो जाते हैं-अर्थात् पुनः उन्हें जन्म धारण नहीं करना पडता है । कारण वे इसी भव में चतुर्गति रूप इस संसार कान्तार को पार करने वाले बन जाते हैं-उन्हें मोक्ष प्राप्त हो जावेगा ऐसे वे तैयार हो जाते हैं । जिस प्रकार धन्य सार्थवाह के उपदेश पर श्रद्धा करने से ये सार्थ के कितनेक पुरुष नन्दि वृक्षों के मूलकन्दादिकों का परिहार-त्याग करते हुए और उसके कथनानुसार अपना आचरण बनाते हुए सकुशल अहिच्छत्रा नगरी को प्राप्त कर लेंगे ऐसे बन गये । अब जिन्होंने धन्य सार्थवाहके वचनों पर श्रद्धा नहीं की-उनकी क्या दशा हुई इस बान का वर्णन सूत्रकार करते हैं-(तत्थ णं अप्पेगइया पुरिसा धणस्स सत्थवाहस्स एय-

युक्त थधने पाय काम गुणोमां शब्दादि विषयोमा-अनासक्त रहे छे अेटदे के अनुरक्त थता नथी, तेओ आ लवमा न धणा साधुओ तेमन साध्वीओनी वये सन्माननीय थतां परलोकां नमरहित थर्थ नय छे अेटदे के इरी तेओना जन्म थतो नथी केमके तेओ आ लवमा न चतुर्गति इय आ संसार कान्तारने पार करवा लायक सामर्थ्य भेणवी ले छे तेओ मोक्ष भेणववा योग्य थर्थ नय छे, जेम धन्यसार्थवाहना उपदेश उपर श्रद्धा भूडीने सार्थना केटलाक पुइषोओ नदि वृक्षोना मूण कंद वगेरेने त्यज्जने तेनी सूयना मुज्ज अचरसु करतां अहिच्छत्रा नगरीमां पडोची शके तेवा थर्थ गया हुवे जे पुइषोओ धन्यसार्थवाहनी वात उपर श्रद्धा भूडी नडि तेओनी शी डालत थर्थ तेतुं वर्णन करतां सूत्रकार कडे छे-

(तत्थं अप्पेगइया पुरिसा धणस्स सत्थवाहस्स एयमदं नो सददंति इ

नो श्रद्धयति नो रोचयन्ति नो प्रतियति । ने धन्यस्य—एतमर्थम् अश्रद्धवाना अरोच-
यन्तः, अप्रतियन्त यत्रैव नन्दिफला वृक्षास्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य तेषां नन्दि-
फलानां मूलाणि च यावत्—कन्दादीनि आहारयन्ति, तेषां छायासु च विश्राम्यन्ति
तेषां खलु आपाते=पूर्वं फलभक्षणादिसमये भद्रकं भवति=शुभरवादादिलोभो भवति
किन्तु 'तत्रो पच्छा' ततः पश्चात्=फलभक्षणाद्यनन्तरं परिणम्यमानाः=रसादिरूपेण

मद्वं नो सहहन्ति ३ धणस्य एयमद्वं असद्वहमाणा ३ जेणेव ते नन्दिफला
तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छन्ता तेसिं नन्दिफलाणं मूलाणि य जाव
वीसमन्ति, तेसिं णं आवाए भदए भवइ, तत्रो पच्छा परिणममाणा
जाव ववरोवेति एवामेव समणाउसो । जो अम्वं निग्गंथो वा निग्गंथी
वा जाव पव्वइए पंचसु कामगुणेषु सज्जेइ, सज्जित्ता जाव अणुपरिय-
ट्टिस्सइ जहा वा ते पुरिसा) वहां पर कितनेक पुरुषों ने धन्यसार्थवाह
के इस कथन को कि नन्दिफल वृक्षों के कंदमूलादि नहीं खाना चाहिये
और न उनकी छायामें ही विश्राम करना चाहिये श्रद्धाकी दृष्टिसे नहीं
देखा उस पर अपनी श्रद्धा नहीं जमाई, उसे अपनी रुचि का प्रतीति
का विषय नहीं धनाया—वे पुरुष— धन्यसार्थवाह के इस कथन को अश्र-
द्धेय आदि मानकर जहां पर नन्दिफल वृक्ष थे— वहां गये वहां जाकर
उन्होंने उनके मूल कंदादि कों को खाया उनकी छाया में विश्राम किया
उस समय उन्हें बड़ा आनन्द आया— स्वाद जन्य कोई अपूर्व सुख मिला
—किन्तु जब उनका परिपाक काल आया जब वे खाये हुए मूलकन्दादि

धणस्य एयमद्व असद्वहमाणा ३ जेणेव ते नन्दिफला तेणेव उवागच्छन्ति, उवा-
गच्छन्ता तेसिं नन्दिफलाणं मूलाणि य जाव वीसमन्ति, तेसिं णं आवाए भदए,
भवइ, तत्रो पच्छा परिणममाणा जाव ववरोवेति एवामेव समणाउसो । जो अम्वं
निग्गंथो वा निग्गंथी वा जाव पव्वइए पंचसु कामगुणेषु सज्जेइ, सज्जित्ता
जाव अणुपरियट्टिस्सइ, जहा वा ते पुरिसा)

त्यां डेट्ठाक माणुसोअे धन्यसार्थवाडना न दिक्खि वृक्षोना कंदमूणो वगेरे
भावा जेधअे नडि तेमज्जे ते वृक्षोनी छायामां पणु विसामो लेवो नडि आ
जतना कथन प्रत्ये श्रद्धावान थया नथी, तेना उपर विश्वास भूकथो नडि अने
अतीतिपूर्वकं तेमां पेतानी अलिइथी अतावी नडि. ते माणुसो धन्यसार्थवाडना
कथन अश्रद्धेय मानीने न्यां नंदिक्खि वृक्षो डता त्यां गया. त्यां जेधने तेमजे
तेमना भूण कंद वगेरे भाधां अने तेमना छांयडामां विसामो लीधो. ते समथे
तो तेमने भूण ज्ज आनंद प्राप्त थयो, इणोना स्वादमां अपूर्व सुअ मज्जुं,
पणु न्यारे तेओनी पाअन किया थवा मांडी अेटले डे भाधेदा भूणकंद वगेरे

परिणामं प्राप्नुवन्तः सन्तः कन्दादयः यावत्-तान् जीविताद् व्यपरोपयन्ति ।
 'एवमेव' एवामेव=अनेनैव प्रकारेण हे आयुष्मन्तः श्रमणाः योऽस्माकं निर्ग्रन्थो
 वा निर्ग्रन्थी वा यावत् प्रव्रजितः सन् पञ्चसु कामगुणेषु=शब्दादिकामभोगेषु स्व-
 जते, रज्यते-कामभोगासक्तो भवति यावत्-स खलु इह भवेत् बहूनां श्रमण-श्रम-
 णीनां, बहूनां श्रायकश्रायिकानां मध्ये हिलनीयो, निन्दनीयः, खिसनीयो भवति,
 परलोके=च भवान्तरे चातुरन्तसंसारकान्तारम् अनुपर्यटिष्यति चातुर्गतिकसंसार
 एव स्थास्यति न तु मोक्षं प्राप्स्यतीत्यर्थः । येन प्रकारेण ते=धन्योपदेशमश्रद्धानाः
 पुरुषाः=सार्थस्थिता जना नन्दिफलवृक्षमूलकन्दादिभक्षणेन तत्रैव म्रियन्ते नतु-
 अहिच्छत्रा नगरीं प्राप्नुवन्तीति भावः ॥ सू० ३ ॥

मूलम्—तएणं से धणणे सत्थवाहे सगडीसागडं जोयावेइ
 जोयावित्ता जेणेव अहिच्छत्ता नयरी तेणेव उवागच्छइ उवा-

रसादिरूप से पणिमने लगे-तब वे सब अपनेर जीवन से रहित हो गये
 -मर गये-। इसी तरह हे आयुष्मन्त श्रमणो । जो हमारा निर्ग्रन्थ व
 निर्ग्रन्थी सोध्वीजन यावत् प्रव्रजित होकर पंचकाम गुणों में-पंचइन्द्रियों
 के शब्दादि विषयों में-आसक्त बन जाता है-अनुरक्त हो जाता है, वह
 इस भवमें अनेक श्रमण श्रमणियोंके बीच हीलनीय, निन्दनीय एवं खिस-
 नीय होता है एवं वह भवान्तर में भी इस चतुर्गति रूप संसार कान्तार
 में ही घूमता रहेगा-मोक्ष प्राप्त नहीं करेगा । जिस प्रकार धन्य सार्थवाह
 के उपदेश पर श्रद्धा नहीं करने वाले सार्थ के ये कितनेक पुरुष नन्दिफल
 वृक्षों के मूलादि के खाने से वहीं पर मर गये-अहिच्छत्र नगरी नहीं
 जा सके ॥ सू० ३ ॥

रस वगेरे इपमां परिणुत थवा लाग्या त्पारे तेओ अधा निर्णव थर्ध गया,
 भृत्यु पाभ्या. आ प्रमाणे ञ डे आयुष्मन्त श्रमणो ! जे अमारा निर्ग्रन्थ
 साधुओ के निर्ग्रन्थ सधिवओ प्रव्रजित थर्धने पांच काम गुणोमां अर्थात्
 पांचे इन्द्रियोना शब्दादि विषयोमां आसक्त थर्ध पडे छे-ओटले के अनुरक्त
 थर्ध जाय छे, ते आ लवमां धणुा श्रमणो अने धणुी श्रमणीओनी वन्धे
 हीलनीय, निन्दनीय, अने खिसनीय डोय छे अने जील लवमां पणु आ
 चतुर्गति इप संसार-कान्तारमां ञ अमणु करतो रडेशे. तेने मोक्ष प्राप्त थशे
 नडि. धन्यसार्थवाडना उपदेशने श्रद्धेय न माननारा केटलाक भाणुसो जेम नन्दि
 इण वृक्षोना मूल वगेरे पाधने त्यांने त्यांज मरणु पाभ्या, अहिच्छत्रा नग-
 रीमां पडोयी शक्या नडि, तेमज तेओनी पणु स्थिति थाय छे. ॥ सू. ३ ॥

गच्छिता अहिच्छत्ताए णयरीए वहिया अग्गुज्जाणे सत्थानिवेसं
करेइ करित्ता सगडीसागडं मोयावेइ, तएणं से धणणे सत्थवाहे
महत्थं३ रायरिहं पाहुडं गेणहइ गेण्हत्ता बहुहिं पुरिसेहिं सद्धिं
संपरिवुडे अहिच्छत्तं नयरिं मज्झं मज्झेणं अणुप्पविसइ अणुप्प-
विसित्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
करयल जाव वद्धावेइ, वद्धावित्ता तं महत्थं३ पाहुडं उवणेइ,
तएणं से कणगकेऊ, राया हट्टुट्टु० धणणस्स सत्थवाहस्स तं
महत्थं३ जाव पडिच्छइ पडिच्छित्ता धणणं सत्थवाहं सक्कारेइ
सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता उस्सुकं वियरइ २ पडिविस-
उजेइ । तएणं से धणणे सत्थवाहे भंडविणिमयं करेइ करित्ता पडि-
भंडं गेणहइ गेण्हत्ता सुहंसुहेणं जेणे चंपानयरी तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छित्ता मित्तनाइ० अभिसमन्नागए विउलाइं माणुस्सगाइं
कामभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरा-
गमणं धणणे सत्थवाहे धम्मं सोच्चा जेट्टुपुत्ते कुडुंवे ठावेत्ता
पठ्वइए सामाइयमाइयाइं एक्कारसअंगाइं वहुणि वासाणि
सामणपरियागं पाउणइ पाउणित्ता मासियाए सं० अन्नतरेसु
देवलोएसु देवत्ताए उववन्ने महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ जाव
अंतं करेहिइ । एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेण
जाव संपत्तेणं पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्टे पण्णत्ते
त्तिवेमि ॥ सू० ४ ॥

॥ पन्नरसमं नायज्झयणं समत्तं ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः शकटीशाकटं योजयति, योजयित्वा यत्रैवाह्निच्छत्रा नगरी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अहिच्छत्रायां नगर्यां वहिः अग्रयोद्याने=मुखयोद्याने सार्थनिवेशं करोति, कृत्वा शकटी-शाकटं मोचयति । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः ‘ महत्थं ’ महार्थं=महाप्रयो जनकं. ‘ महर्घं ’ महार्घं=महामूल्य, ‘ महरिहं ’ महार्हं=महतां योग्य ‘ रायरिहं ’ राजार्हं=राजयोग्यं प्राभृतं गृह्णाति, गृहीत्वा बहुभिः पुरुषैः सार्द्धं संपरिवृतः अहिच्छत्रां नगरीं मध्यमध्येन अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य यत्रैव कनककेतू राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य ‘ करयल जाव वद्धावेड’ करतल यावद् वर्धयति—कर-

‘ तएणं से धण्णे सत्थवाहे’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से धण्णे सत्थवाहे) उस धन्यसार्थवाहने (सगडी सागडं जोयावेइ जोयावित्ता जेणेव अहिच्छत्ता नगरी तेणेव उवागच्छइ) वहां से अपने गाड़ी और गाड़ों को जुनवाया और जुनवाकर जहां अहिच्छत्रा नगरी थी उस ओर चल दिया । (उवागच्छत्ता अहिच्छत्ताए नगरीए वहिया अगुज्जाणे सत्थनिवेशं करेइ) धीरे धीरे अहिच्छत्रा नगरी में वह पहुँच गया । वहां पहुँच कर उमने बाहर रहे हुए प्रधान बगीचे में अपने सार्थ को ठहरा दिया । (करित्ता सगडी सागडं मोयावेइ) और वहीं पर अपनी गाड़ी और गाड़ों को ढील दिया । (तएणं से धण्णे सत्थवाहे महत्थं ३ रायरिहं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता बहुहिं पुरिसेहिं सद्धिं संपरिवुडे अहिच्छत्तं नयरिं मज्झं मज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवाग-

तएणं से धण्णे सत्थवाहे इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारभाह (से धण्णे सत्थवाहे) ते धन्यसार्थवाडे (सगडी सागडं जोयावेइ जोयावित्ता जेणेव अहिच्छत्ता नगरी तेणेव उवागच्छइ त्यांथी पोतानी गाडीओ अने गाडाओने जेतरीने ७ तरइ अहिच्छत्रा नगरी हुती ते दिशा तरइ रवाना थयो. (उवागच्छत्ता अहिच्छत्ताए नगरीए वहिया अगुज्जाणे सत्थनिवेशं करेइ) अने धीमे धीमे अहिच्छत्रा नगरीमां पडोथी गयो. त्यां पडोथीने तेजे नगरीनी षडार आवेदा प्रधान उधानमां पोताना सार्थनेा मुकाम नाथ्यो. (करित्ता सगडीसागडं मोयावेइ) अने त्यां ७ पोतानी गाडीओ अने गाडाओने छेडावी नाथ्यां.

(तएणं से धण्णे सत्थवाहे महत्थं ३ रायरिहं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता बहुहिं पुरिसेहिं सद्धिं संपरिवुडे अहिच्छत्तं नयरिं मज्झं मज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता

तलपरिगृहीतं शिरआवर्तं दगनखं मस्तके ऽञ्जलिं कृत्वा राजानं जयविजयशब्देन
वर्द्धयति, वर्द्धयित्वा तन्महार्थं महार्थं महार्हं प्राभृतम् उपनयति=राज्ञः समीपे स्था-
पयति । ततः खलु स कनककेतु राजा हृष्टतुष्टहृदयो हर्षवशविसर्पद्हृदयो धन्यस्य
सार्थवाहस्य तन्महार्थं ३ यावत् प्राभृतं 'पडिच्छद्' प्रतीच्छति=स्वीकरोति,
प्रतीप्य धन्य सार्थवाहं सत्कारयति सम्मानयति, सत्कृत्य सम्मान्य तस्मै 'उस्सुकं'
उच्छुल्लं=शुल्काभाषणत्र 'केनापि राजपुरुषेणास्मात्करो न ग्राह्यः' इत्येतद्रूपमा-
भाषणं वितरति=ददाति, वितीर्थं त प्रतिविसर्जयति ।

च्छद्, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्वावेइ, वद्वावित्ता तं महत्थं ३ पाहुडं
उवणेइ) इस के बाद उस धन्य सार्थवाह ने महार्थ साधक, महामूल्य
एवं महा पुरुषों के योग्य-प्राभृत-भेंट को साथ में लिया, और लेकर
अनेक पुरुषों के साथ २ अदिच्छत्रा नगरी में बीच से होता हुआ प्रविष्ट
हुआ । नगरी में प्रविष्ट होकर वह जहां कनक केतु राजा थे वहां गया
वहां जाकर उसने राजा को दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार किया, और
जय विजय शब्दों को उच्चारण करते हुए उन्हें बंधाई दी । बंधाई देकर
उसने फिर राजा के समक्ष अपनी भेंट रख दी । (तर्णं से कणगकेऊ
राया हृष्ट तुष्ट० धण्णस्स सत्थवाहस्स तं महत्थं ३ जाव पडिच्छद् पडि-
च्छित्ता धण्णं सत्थवाहं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता
उस्सुकं वियरइ २ पडिविसज्जेइ) कनककेतु राजाने हर्षित एवं संतुष्ट
होकर धन्यसार्थवाह की उस महार्थ साधक महामूल्य राज योग्य भेंट
जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छद्, उवागच्छित्ता करयल जाव वद्वावेइ,
वद्वावित्ता तं महत्थं ३ पाहुडं उवणेइ)

त्यारपणी ते धन्यसार्थवाहे महार्थ साधक गहु किमती अने महा पुश्-
षेने योग्य भेंट साथे लधने घणा भाषुसोनी साथे अदिच्छत्रा नगरीनी
वञ्चेना मार्गे (राजमार्ग) धधने नगरीमा प्रविष्ट थयो. नगरीमां प्रवेशीने
ते ज्वां कनककेतु राजा उता त्यां गयो. त्यां लधने तेणे राजाने गने हाथ
लेडीने नमस्कार कर्था अने जय विजय शब्दो उच्चारणु करतां तेभने वधाई
आपी. वधाई आप्या पणी तेणे राजानी साथे पोतानी भेंट भूडी दीधी

(तर्णं से कणगकेऊ राया हृष्ट तुष्ट० धण्णस्स सत्थवाहस्स तं महत्थं ३
जाव पडिच्छद् पडिच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्मा-
णित्ता उस्सुकं वियरइ २ पडिविसज्जेइ)

कनककेतु राजाने हर्षित तेभने संतुष्ट थधने महार्थ साधक महामूल्य-
वाणी अने राजाने माटे योग्य भेंट स्वीकारी दीधी. स्वीकार कर्था आइ

ततः खलु सधन्यः सार्धवाहस्तत्र ' भंडविणिमयं ' भाण्डविनिमयं = भाण्डानां = क्रयाणकवस्तूनां विनिमयम् = आदानप्रदानं करोति, कृत्वा ' पडिभंडं ' प्रतिभाण्डं = विनिमयेन प्राप्तं वस्तुजातं गृह्णाति, गृहीत्वा शकटीशाकटे भरति भृत्वा शकटीशाकटं योजयति, योजयित्वा सुखं = सुखेन = सुखपूर्वकं यत्रैव चम्पानगरी = स्वनिवासस्थानं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धि परिजनैः सह ' अभिसमन्वागए ' अभिसमन्वागतः = संमिलितो विपुलान् मानुष्यकान् कामभोगान् भुञ्जतो विहरति ।

को स्वीकार कर लिया । स्वीकार करके फिर उन्होंने ने धन्यसार्धवाह का सत्कार एवं सन्मान किया । सत्कार सन्मान करके " किसी भी राज पुरुष को इन से कर नहीं लेना चाहिये इस प्रकार का शुल्क भाव विषयक आज्ञा पत्र " उसके लिये प्रदान किया और प्रदान करके बाद में उसे वहाँ से विदा कर दिया । (तएणं से धणणे सत्थवाहे भंडविणिमयं करेइ, करित्ता पडिभंडं गेण्हइ, गेण्हित्ता सुहं सुहेणं जेणेव चंपा नयरी तेणेव उवागच्छइ) इसके बाद धन्यसार्धवाह ने वहाँ रह कर अपनी क्रयाणक वस्तुओं का विक्रय किया और उससे प्राप्त द्रव्य से और दूसरी वस्तुओं को खरीदा । खरीद कर उसने उन्हें गाड़ी और गाड़ों में भरा भरकर उन्हें जुनवाया और जुनवाकर फिर वह वहाँ से चंपानगरी की ओर द्योपिस चल दिया । (उवागच्छित्ता मित्तनाइ० अभिसमन्वागए विउलाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं भुञ्जमाणे विहरइ)

' तेभल्ले धन्यसार्धवाडेने सत्कार तेमञ्ज सन्मान उरुं ' . सत्कार अने सन्मान करीने राज्ञे ' डोअपणु राजपुश्च तेमनी पासिथी राजकर दे नडि ' ते प्रमा-ल्लेनी व्यवस्था करतां तेमने शुष्क माडीतुं आज्ञापत्र दधी आप्थुं त्यारपधी तेने त्यांधी न्वानी आज्ञा आपी

(तएणं से धणणे सत्थवाहे भंडविणिमयं करेइ, करित्ता पडिभंडं गेण्हइ, गेण्हित्ता सुहं सुहेणं जेणेव चंपानयरी तेणेव उवागच्छइ)

त्यारणाइ धन्यसार्धवाडे त्यां रडीने पोतानी इयाषुक वस्तुओने वेथी अने तेनाथी ने धन मज्जु तेताथी भीअ वस्तुओ भरीदी दीधी. वस्तुओनी भरीद करीने तेले षधी वस्तुओनी भरीदी करीने तेले षधी वस्तुओने गाडी तेमञ्ज गाडाओमां लरी अने त्यारपधी गाडी अने गाडाओने जेतरावीने त्यांधी अ पा नगरी तरइ पाछे रवाना थयो.

(उवागच्छित्ता मित्तनाइ० अभिसमन्वागए विउलाइं माणुस्सगाइं काम भोगाइं भुञ्जमाणे विहरइ)

तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्थविरागमनम् । धन्यः सार्थवाहो धर्मश्रुत्वा
प्रतिबुद्धः सन् ज्येष्ठपुत्रं कुटुम्बे स्थापयित्वा प्रव्रजितः, सामायिकादीनि एकादश-
ज्ञान्यधीते । बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति, पालयित्वा मासिक्या संले-
खनया ऽऽत्मानं जुष्टा पष्टि भक्तानि अनशनेन छित्त्वा कालमासे कालं कृत्वा-

चंपानगरी में आकर वह अपने मित्र, ज्ञानि, स्वजन, संबन्धी परिजनों
से मिली और विपुल मनुष्य भव संबन्धी काम भोगों को भोगने लगा
(तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं, धण्णे सत्थवाहे धम्मं सोच्चा
जेट्ठं पुत्तं कुटुम्बे ठवेत्ता पव्वइए, सामाह्यमाइयाइं एक्कारस अंगाइं बहूणि
वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अन्नतरेसु
देवलोएसु देवत्ताए उववन्ने महाविदेहे वासे सिज्जिहिइ जाव अंतं
करेहिइ । एवं खलु जंबू । समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं
पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्तिवेमि) उसी काल और
उसी समय में वहां पर स्थविरों का आगमन हुआ । धन्यसार्थवाह ने
उनसे धर्म का व्याख्यान सुना सुनकर वह प्रतिबुद्ध हो गया और
प्रतिबुद्ध हो करके फिर वह कुटुम्ब में अपने ज्येष्ठ पुत्र को रखकर दीक्षित
होकरके उसने सामायिक आदि ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया । अनेक
वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर १ मास की संलेखना से ६०
भक्तों का अनशन द्वारा छेदन करके काल अवसर काल करके देव-

अथा नगरीमां आवीने ते पोताना मित्र, ज्ञानि, स्वजन, संबन्धी
परिजनाने भज्ये। अने विपुल मनुष्य लवना कामलोगो लोगववा लाग्ये।

(तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं धण्णे सत्थवाहे धम्मं सोच्चा जेट्ठं
पुत्तं कुटुम्बे ठवेत्ता पव्वइए, सामाह्यमाइयाइं एक्कारसअंगाइं बहूणि वासाणि
सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अन्नतरेसु देवलोएसु
देवत्ताए उववन्ने महाविदेहे वासे सिज्जिहिइ, जाव अंतं करेहिइ । एवं खलु जंबू !
समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पन्नरसमस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति वेमि)
ते काले अने ते समये ते नगरीमां स्थविरे पधार्या धन्यसार्थवाहे तेज्जाना
सुभथी धर्मंतुं व्याख्यानं सांलज्जुं अने सांलणीने तेने प्रतिबोध थये। प्रतिबुद्ध
थधने तेज्जे पोताना कुटुम्बना वडा तरीके पोताना मोटां पुत्रनीनीमल्लुक करीने
दीक्षा अडणु करी दीक्षा अडणु कर्या भाद तेज्जे सामायिक वगेरे अजियार अंगोतुं
अध्ययनं कथुं अने धणां वर्षो सुधी श्रामण्य पर्यायतु पालन करीने अक
भासनी संलेखनाथी ६० भक्तोनुं अनशन वडे छेदन करीने कालना वभते

अन्यतरेषु देवलोकेषु ' देवताए ' देवतया=देवत्वेन उपपन्नः । महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत्-सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति । एवं खलु हे जम्बूः ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत्-सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं सम्प्राप्तेन पञ्चदशस्य ज्ञाताध्ययनस्य अयमर्थः=पूर्वोक्तो भावः प्रज्ञप्तः 'त्तिव्वेमि' इति ब्रवीमि व्याख्या पूर्ववत् । सू० ४ ।

इति श्री विश्वविख्यात - जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलित-ललितकलापालापक -प्रविशुद्धेगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक श्रीशाहू छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ' जैनशास्त्राचार्य ' पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकरपूज्यश्री घासीलालव्रतिविरचितायां श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रस्यानगरधर्माभृतवर्षिण्याख्यायां व्याख्यायां पञ्चदशमध्ययनं समाप्तं ॥ १५ ॥

लोक में देव की पर्याय से उत्पन्न हो गया । महाविदेह क्षेत्र से यह सिद्ध अवस्था को प्राप्त करेगा-यावत् समस्त दुःखों का अन्त करने वाला होगा इस प्रकार हे जंबू ! श्रमण भगवान महावीर ने कि जो सिद्धगति नाम के स्थान को प्राप्त कर चुके हैं इस पंद्रहवें ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्त भाव प्रज्ञप्त किया है । ऐसा मैंने उनके मुख से सुना है सो यह वैसा तुमसे कहा है ॥ सू० ४ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर श्री घासीलालजी महाराजकृत " ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र"की अनगरधर्माभृतवर्षिणी व्याख्याका पंद्रहवां अध्ययन समाप्त ॥ १५॥

કાળ કરીને દેવલોકમાં દેવના પર્યાયથી જન્મ પામ્યો. મહાવિદેહ ક્ષેત્રથી તે સિદ્ધ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરશે યાવત્ અથવા દુઃખોનો તે અન્ત કરનાર થશે. આ રીતે હે જંબૂ ! શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે કે જેઓએ સિદ્ધિગતિ નામના સ્થાનને મેળવી લીધું છે-આ પંદરમા જ્ઞાતાધ્યયનનો આ પૂર્વોક્ત ભાવ નિરૂપિત કર્યો છે. મેં જે પ્રમાણે તેઓશ્રીના મુખથી સાંભળ્યું છે તે પ્રમાણે જ તમારી આગળ રજુ કર્યું છે. ॥ સૂત્ર ૪ ॥

જૈનાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કૃત જ્ઞાતાધ્યયન સૂત્રની અનગરધર્માભૃતવર્ષિણી વ્યાખ્યાનું પંદરમું અધ્યયન સમાપ્ત ॥૧૫॥

॥ अथ षोडशाध्ययनं प्रारभ्यते ॥

उक्तं पञ्चदशाध्ययनम्, तत्र विषयसङ्गोऽनर्थस्य कारणमित्युपदिष्टम् इह षोड-
शाध्ययने तु तद्विषयनिदानमनर्थस्य मूलं भवतीत्युच्यते, इत्येवं सम्बन्धेन प्रसङ्गतः
प्राप्तस्यास्याध्ययनस्य प्रथमं सूत्रमाह—‘ जङ्घं भंते !’ इत्यादि ।

मूलम्—जङ्घं भंते ! समणेषां भगवया महावीरेण जाव
संपत्तेणं पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते सोल-
समस्स णं भंते णायज्झयणस्स णं समणेषां भगवया महा-
वीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते !, एवं खलु जंबू !
तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, तीसेणं
चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमेदिसिभाए सुभूमिभागे
उज्जाणे होत्था, तत्थ णं चंपा नयरीए तओ माहणा भायरो
परिवसंति, तं जहा-सोमे सोमदत्ते सोमभूर्इ, अड्ढा जाव
अपरिभूया रिउव्वेय जाव सुपरिनिट्ठिया, तेसि णं माहणाणं
तओ भारियाओ होत्था, तं जहा-नागसिरी भूयसिरी जक्खसिरी

सोलहवां अध्ययन प्रारंभ

पन्द्रहवां अध्ययन समाप्त हो चुका-अब सोलहवां अध्ययन प्रारंभ
होता है । पंद्रहवें अध्ययन में विषयसंग अनर्थ का कारण कहा गया
है-अब सोलहवें अध्ययन में विषय निदान अनर्थ का कारण होता है
यह स्पष्ट किया जायगा । इसे संबन्ध से आया हुआ इस अध्ययन का
यह प्रथम सूत्र है ‘ जङ्घं भंते । ’ इत्यादि ।

सोणभुं अध्ययन प्रारंभ

पंद्रहवें अध्ययन पुश्चात्थाय छे. डवे सोणभुं अध्ययन प्रारंभ थाय छे.
पंद्रहवां अध्ययनमां विषयसंगने अनर्थनुं कारणं गताववामां आव्युं छे. डवे
सोणभुं अध्ययनमां विषय-निदान अनर्थनुं कारणं डोय छे, आ वात स्पष्ट
करवामां आवशे. आ विषयने लगतुं आ अध्ययननुं पडेवुं सूत्र आ छे—

जङ्घं भंते इत्यादि—

सुकुमाल जाव तेसि णं माहणाणं इट्ठाओ ५, विपुले माणु-
 स्सए जाव विहरंति । तएणं तेसिं माहणाणं अन्नया कयाई
 एगयओ समुवागयाणं जाव इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे
 समुप्पजित्था, एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमे विउले
 धणे जाव सावतेज्जे अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ
 पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं तं सेयं खलु अम्हं
 देवाणुप्पिया ! अन्नमन्नस्स गिहेसु कल्लाकल्लिं विउलं असणं
 पाणं खाइमं साइमं उवक्खडाविउं उवक्खडावित्ता परिभुंज-
 माणाणं विहरित्तए, अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेति परिसु-
 णित्ता कल्लाकल्लिं अन्नमन्नस्स गिहेसु विपुलं असणं उव-
 क्खडावेति, उवक्खडावित्ता परिभुंजमाणा विहरंति, तएणं
 तीसे नागसिरीए माहणीए अन्नया भोयणवारए जाए यात्रि
 होत्था, तएणं सा नागसिरी विपुलं असणं उवक्खडेति
 उवक्खडित्ता एगं महंसालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंजुत्तं
 णेहावगाढं उवक्खडेइ उवक्खडित्ता एगं विंदुयं करयलंसि
 आसाएइ आसाइत्ता तं खारं कडुयं अक्खज्जं अभोज्जं
 विसब्भूयं जाणित्ता एवं वयासी—धिरत्थु णं मम नागसिरीए
 अहन्नाए अपुन्नाए दूभगाए दूभगसत्ताए दूभगणिंबोलियाए
 जीएणं मए सालइए बहुसंभारसंभिए नेहावगाढे उवक्ख-
 डिए, सुबहुदव्वक्खए, नेहक्खए य कए, तं जइणं ममं
 जाउयाओ जाणिस्संति तो णं मम खिसिस्संति तं जाव
 ताव मम जाउयाओ ण जाणंति ताव मम सेयं एयं साल-

इयं तित्तालाउ य बहुसंभारणेहकयं एगंते गोवेत्तए अन्नं
 सालइयं महुरालाउयं जाव नेहावगाढं उवक्खडेत्तए, एवं
 संपेहेइ संपेहिता तं सालइयं जाव गोवेइ, अन्नं सालइयं
 महुरालाउयं उवक्खडेइ, तेसिं माहणाणं ण्हायाणं जाव
 सुहासणवरगयाणं तं विपुलं असणं४ परिवेसेइ, तएणं ते
 माहणा जिमियभुत्तुत्तरागया समाणा आयंता चोक्खा परम-
 सुइभूया सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था, तएणं ताओ
 माहणीओ ण्हायाओ जाव विभूसियाओ तं विपुलं असणं
 ४ आहारैति आहारित्ता जेणेव सयाइं२ गेहाइं तेणेव उवा-
 गच्छइ उवागच्छित्ता सकम्मसंपउत्ताओ जायाओ ॥सू०१॥

टीका—श्रीजम्बूस्वामी श्रीसुधर्मस्वामिनं पृच्छति—यदि खलु हे भदन्त ! =
 हे भगवन् श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तेन
 पञ्चदशस्य अयम्=उक्तरूपः, अर्थः प्रज्ञप्तः, षोडशस्य खलु ज्ञाताध्ययनस्य श्रमणेन
 भगवता महावीरेण यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

टीकार्थ—(जइणं भंते । समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं
 पन्नरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते सोलसमस्स णं भंते ? णाय-
 ज्झयणस्सणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?
 एवं खलु जंबू ?) श्री जंबू स्वामी सुधर्मास्वामी से पूछते हैं कि भदन्त ।
 श्रमण भगवान् महावीरने जो कि सिद्धि गति नामक स्थानको प्राप्त हो
 चुके हैं पन्द्रहवें ज्ञाताध्ययनका यह पूर्वोक्तरूपसे अर्थ निरूपित किया है—तो

टीकार्थ—(जइणं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पन्नरस-
 मस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते सोलसमस्स णं भंते ! णायज्झयणस्स णं
 समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एव खलु जंबू !)

श्री जंबू स्वामी सुधर्मा स्वामीने पूछे छे के के भदन्त ! श्रमण भग-
 वान् महावीरे के-केओ सिद्धिगति नामक स्थानने भगवती च्युत्था छे—पंद्रहवा
 ज्ञाताध्ययनने आ पूर्वोक्त इये अर्थ निरूपित किये छे तो ते श्रमण भगवान्

श्रीसुधर्मास्वामी कथयति—' एवं खलु जंबू ' इत्यादि ! एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम नगरी आसीत्, तस्याः खलु चम्पाया नगर्यां बहिरुत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे सुभूमिभागनामकमुद्यानमासीत्, तत्र खलु चम्पायां नगर्यां त्रयो ब्राह्मणा भ्रातरः परिवसन्ति, तद् यथा—(१) सोमः, (२) सोमदत्तः, (३) सोमभूतिः, ते किं भूताः—आढ्याः=धनवन्तः, यावद्—अपरिभूताः, तथा—' रिउव्वेय जाव ' ऋग्वेद—यजुर्वेदसामवेदाथर्ववेदेषु साङ्गोराङ्गेषु सुपरि-निष्ठिताः । तेषां खलु ब्राह्मणानां तिस्रोभार्या आसन्, तद् यथा—(१) नागश्रीः,

सोलहवे ज्ञाताध्यन का हे भदंत ? उन्हीं श्रमण भगवान महावीरने कि जो सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त हो चुके हैं क्या भाव अर्थ प्रति-पादित किया है ? इस प्रकार के जंबू स्वामी के प्रश्नका उत्तर देते हुए सुधर्मास्वामी उनसे कहते हैं कि जंबू ! (तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, तीसेणं चंपाए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए सु-भूमिभागे उज्जाणे, होत्था, तत्थ णं चंपाए नयरीए तओ माहणा भाय रा परिवसंति) उस काल और उस समय में चंपा नामकी नगरी थी । उस चंपा के बाहिर ईशान कोण में सुभूमि भाग नाम का उद्यान था । उसी चंपा नगरी में तीन ब्राह्मण भाइ रहते थे (तं जहा) उनके नाम ये हैं—(सोमे सोमदत्ते सोमभूई) सोम, सोमदत्त, और सोमभूति (अड्डा जाव अपरिभूया) ये सब धन धान्यादि संपन्न एवं जन मान्य (रिउव्वेय, जाव सुपरिनिष्ठिया) ये सबके सब ऋग्वेद आदि चारो वेदों

महावीर-के जेओ सिद्धिगति भेणवी यूक्या छे—सोणमा ज्ञाताध्यनने शो अर्थ निरूपित कथी छे ? आ रीते ज'णू स्वामीना प्रश्नने सांलणीने सुधर्मा स्वामी तेमने उत्तर आपतां कडे छे के छे ज'णू !

(ते णं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, तीसेणं चंपाए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए सुभूमिभागे उज्जाणे, होत्था तत्थ णं नयरीए तओ माहणा भायरा परिवसंति)

ते काले अने ते समये चंपा नामे नगरी इती ते चंपा नगरीनी षडार ईशान कोणमां सुभूमिभाग नामे उद्यान इतुं ते चंपा नगरीमा त्रयु ब्राह्मणु लाधओ रहता इता (तजहा) तेमना नाम आ प्रभाणु छे—(सोमे सोमदत्ते सोमभूई) सोम, सोमदत्त, अने सोमभूति (अड्डा जाव अपरिभूया) तेओ त्रणु धनधान्य वगेरेथी संपन्न तेमज जनमान्य इता (रिउव्वेय, जाव सुपरिनिष्ठिया) तेओ त्रणु ऋग्वेद वगेरे चारे वेदाना सांसा ज्ञाता इता.

(तेसि णं माहणा णं तओ भारियाओ होत्था तं जहा—नागसिरी, भूयसिरी

(२) भूतश्रीः, (३) यक्षश्रीश्च, ताः किं भूताः—सुकुमारपाणिपादाः, यावत्—सर्वाङ्ग-सुन्दर्यः, तेषां खलु ब्राह्मणानामिष्टाः=कमनीयाः, विपुलान् मानुष्यकान् यावत् कामभोगान् भुञ्जाना विहरन्ति ।

ततः खलु तेषां ब्राह्मणानामन्यदा कदाचिदेकतः समुपागतानां यावत् अय-
मेतद्रूपः=वक्ष्यमाणस्वरूपः, मिथः=परस्परं, कथाममुल्लापः=वार्तालापः समुद्रप-
घत—एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! अस्माकमिदं विपुलं धनं गणिमधरिममेवपरि-
च्छेद्य भेदाच्चतुर्विधं यावत् 'सावतेज्जे' स्वापतेयं—पञ्चरागादिरूपं वा, अत्र
यावत्पद्मोर्ध्वं—कनकसुवर्णरत्नादिकं तथा—मौक्तिकादिकं च विद्यते, किंभूतं तदि-
त्याह—'अलाहि' पर्याप्त=परिपूर्णं—यावत्—आसप्तमात् कुलवंशात्=सप्तमवंशपर्यन्तं-

के अच्छे जानकार थे । (तेषिणं माहणाणं तओ भारियाओ होत्था—तं
जहा—नागसिरी, भूयसिरी, जक्खसिरी, सुकुमाल जाव तेषि णं
माहणाणं इट्ठाओ ५ विपुले मा० जाव विहरन्ति) इन तीनों ब्राह्मणों
की तीन स्त्रियां थीं । उनके नाम ये हैं ।—नाग श्री, भूत श्री, और यक्ष
श्री, ये सब सुकुमार करचरणवाली थीं यावत् सर्वाङ्ग, सुन्दर थीं । ये
तीनों ब्राह्मण इनके साथ मनुष्यभव संबन्धी काम भागों को भोगते
हुए आनंद से रहते थे । (तएणं तेषिं माहणाणं अन्नया कयाई एगय
ओ समुवागयाणं जाव इमेयारूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था)
एक दिन की बात है कि जब ये तीनों भाई एक जगह बैठे हुए थे तब
इनका परस्पर में इस प्रकार का विचार चला—(एवं खलु देवानुप्पिया ।
अम्हं इमे विउले धणे जाव सावतेज्जे अलाहिजाव आसत्तमाओ कुल-

जक्खसिरी, सुकुमार जाव तेषिणं माहणाणं इट्ठाओ ५ विपुले मा० जाव विहरन्ति)
आ त्थे प्राहणोने त्थे स्त्रीओ इती. तेमनां नामो आ प्रभाणे छे.
नागश्री, भूतश्री, अने यक्षश्री. तेओ त्थे सुकुमण हाथ अने पगवाणी इती
अने णधां अंगो तेमनां सुहर इतां. त्थे प्राहणो तेमनी साथे मनुष्य लवना
कामलोगो लोगवतां सुप्पेथी रहता इता.

(तएणं तेषिं माहणाणं अन्नया कयाई एगयओ समुवागयाणं जाव इमेया-
रूवे मिहो कहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था)

એક દિવસની વત છે કે તેઓ ત્રણે ભાઈ એક સ્થાને બેઠા હતા ત્યારે
તેઓ પરસ્પર આ બતનો વિચાર કરવા લાગ્યા કે—

(एवं खलु देवानुप्पिया ! अम्हं इमे विउले धणे जाव सावतेज्जे अलाहि

प्रकामं दातुं, प्रकामं भोक्तुं प्रकामं परिभाजयितुम् ततः = तस्मात् श्रेयः = श्रेयस्करं खलु अस्माकं हे देवानुप्रियाः ! अन्योन्यस्य = परस्परस्य गृहेषु 'कल्लाकल्लि' कल्याकलयं प्रतिदिवसं विपुलं = बहुलम्, अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं 'उक्खडाउं' उपस्कार्युपरिभुञ्जानानां विहर्तुम् । अन्योन्यस्य=परस्परस्य एतमर्थं ते त्रयो भ्रातरो ब्राह्मणाः प्रतिशृण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति प्रतिश्रुत्य 'कल्लाकल्लि'

वंसाओ प्रकामं दाउं प्रकामं भोक्तुं प्रकामं परिभाएउं-तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया । अन्नमन्नस्स गिहेसु कल्लाकल्लिं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उक्खडाविउं) हे देवानुप्रियो ! अपने पास विपुलमात्रा में, गणिम, धरिम, मेय, एवं परिच्छेद्यरूप चारों प्रकार का धन है, यावत् पद्मराग आदिरूपस्वापत्य भी हैं, कनक, सुवर्ण, रत्न, मणिमौक्तिक आदि सब कुछ है-और वह इतना अधिक है कि सात पीढी तक भी यदि खूब दान दिया जावे, बैठ २ खूब खाया जावे-और उसका हिस्सा भाग भी कर दिया जावे-तौ भी वह समाप्त नहीं हो सकता है । इसलिये हम लोगों को उचित है कि हम लोग प्रति दिन एक दूसरे के घर पर अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार विपुल मात्रा में बनवावे और (उक्खडावित्ता परिभुंजमाणानं विहरित्तए) बनवा कर उस का भोजन करें । (अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति) इस प्रकार का आपस का विचार उन्होंने एक दूसरे का स्वीकार कर लिया ।

जाव आसत्तमाओ कुलवंसाओ प्रकामं दाउं प्रकामं भोक्तुं प्रकामं परिभाएउं तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! अन्नमन्नस्स गिहेसु कल्लाकल्लिं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उक्खडाविउं)

हे देवानुप्रियो ! आपणी पासे पुण्डण प्रमाणुमां गणिम, धरिम, मेय, अने परिच्छेद्य रूप चारे नतनुं धन छे. यावत् पद्मराग वगेरे रूप स्वापत्य पणु छे. कनक सुवर्ण, रत्न, मणि, मोती, वगेरे णधुं छे-अने जे कंथ छे ते ओट्ठुं णधुं छे के सात पेढी सुधी पणु जे पुण्डण प्रमाणुमां दान इरवामां आवे छतां ते भूट्ठे नडि. ओथी अमने ओ थोग्य दागे छे के अमे णधा इरवेअ ओकणीजने धेर अशन, पान, णाद्य अने स्वाद्यरूप चार नतना आडासे पुण्डण प्रमाणुमां णनावटावीअे अने (उक्खडावित्ता परिभुंजमाणानं विहरित्तए) णनावटावीने नभीअे. (अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति) आ रीते णधाअे ओकमत धधने वात स्वीकारी दीधी.

कल्याकलयं=प्रतिदिवसम् अन्योन्यस्य गृहेषु विपुलमशनादिकमुपस्कारयन्ति । उप-
स्कार्य परिभुञ्जाना विहरन्ति । ततः खलु तस्या नागश्रीयो ब्राह्मण्या अन्यदा=
कदाचिदन्यस्मिन् समये ' भोजनवारण ' भोजनवारकः=भोजयितुं नियमितो दिवसो
भोजनवारकः जातः=समायातश्चाप्यभवत्, ततः खलु सा नागश्रीः विपुलमशनं
पानं खाद्यं स्वाद्यमुपस्करोति=निष्पादयति, उपस्कृत्य एकं महत् ' सालइयं '
सारचितं-सारेण रसेन चितं युक्तं यद्वा-शरदिकं=शरदृतुभवं ' तित्तालाउअं '
तित्तालाउअं=निम्बादिवत् तिक्तरसयुक्ततुम्बीफलं, बहुसंभारसंयुक्तं=बहुभिः=
अनेकविधैः संभारद्रव्यैः=शाकादौ स्वादसुगन्धविशेषार्थं हिन्दुमेथिकाजीरकादीनि
व्याघारकद्रव्याणि निक्षिप्यन्ते, तैर्मिश्रितं, ' णेहावगाढं ' स्नेहावगाढं=घृतादिह्लावि-
तम् (युक्तम्) ' उक्कखडेइ ' उपस्करोति, उपस्कृत्यैकं विन्दुकं करतले समादाय

(पडिसुणित्ता कल्ला कल्लिं अन्नमन्नस्स गिहेसु विउलं असणं ४ उक्कखडेइवेति)
स्वीकार करके अब वे एक दूसरे के घर पर विपुल मात्रा में
निष्पन्न हुए अशनादिरूप चतुर्विध आहार को खाने पीने लगे । (तएणं
तीसे नागसिरीए माहणीए अन्नया भोजनवारण जाए यावि होत्था)
किसी एक दिन नागश्री ब्राह्मणी की भोजन बनाने की चारी आई
(तएणं सा नागसिरी विउलं असणं ४ उक्कखडेइवेति) सो उस दिन
उसने विपुल मात्रा में चारों प्रकार का आहार बनाया (उक्कखडित्ता
एगं महं सालइयं तित्तालाउअं बहुसंभारसंयुक्तं णेहावगाढं उक्कखडेइ)
आहार बनाकर फिर उसने शरदऋतु में उत्पन्न हुई अथवा रस से
सरस बनी हुई तिक्तरसतुम्बी का शाक बनाया-और उसमें स्वाद एवं
सुगंधि के निमित्त हींग, मैथी, जीरे आदि का वधार दिया । उसे खूब
अधिक घृत में छोंका था-इसलिये घृत उसके ऊपर तैर रहा था ।

(पडिसुणित्ता कल्लाकल्लिं अन्नमन्नस्स गिहेसु विउलं असणं ४ उक्कखडेइवेति)
स्वीकारिने तेओ अेकधीजने घेर पुष्कण प्रमाणुमां अशनपान वगेरे आर
जतना आहारिने भावा-पीवा लाग्या.

(तएणं तीसे नागसिरीए माहणीए अन्नया भोजनवारण जाए यावि होत्था)
केअ अेक दिवसे नागश्री ब्राह्मणीने लोअन तैयार करवाने वारे आओये
(तएणं सा नागसिरी विउलं असणं ४ उक्कखडेइवेति) तेओ ते दिवसे पुष्कण
प्रमाणुमां आरे जतना आहारिने बनाया.

(उक्कखडित्ता एगं महं सालइयं तित्तालाउअं बहुसंभार संयुक्तं णेहावगाढं उक्कखडेइ)
आहार बनाधीने तेओ शरदऋतुमां उत्पन्न थयेदी अथवातो रसथी
सरस थयेदी तिक्तरसवाणी तुम्बीनुं शाक बनाओये अने तेमां स्वाद अने
सुगंधीने भाटे हींग, मैथी, जीरे वगेरेने वधार दीये हुतो अेट्ठे तेनी

आस्वादयति, अस्वाद्य तत् क्षारं कटुकमस्वाद्यमभोज्यं विषभूतं ज्ञात्वा एवमवादीत्-
धिगस्तु मां नागश्रियमधन्यामपुण्यां दुर्भगां 'दुर्भगसत्ताए' दुर्भगसत्वां दुर्भगं=निष्फलं
सत्त्वं=बलं यस्याः सा तां व्यर्थपरिश्रमाभित्यर्थः 'दुर्भगिबोलिए' दुर्भगनिम्ब-
शुलिकानिम्बफलिक्का, तद्वद् दुर्भगा तां=जनैरनादरणीयामित्यर्थः, अत्र द्वितीयार्थे
षष्ठी प्राकृतत्वात्, 'जीए' यथा खलु मया शारदिकं बहुसंभारद्रव्यसंभृतं स्नेहाव-

(उक्खडित्ता एगं विदुयं करयलंसि आसाएइ) जब वह तैयार शाक
हो चुका-तब उसने उसमें से एक बिन्दु मात्र शाक अपनी हथेली पर
रखा और फिर उसे चखा-(आसाइत्ता तं खारं कडुयं अक्खज्जं अभोज्जं
विसम्भूयं जाणित्ता एवं वयासी-धिरत्थु णं मम नागसिरीए अहन्नाए,
अपुन्नाए दुरभगाए दुभगसत्ताए दुभगिबोलियाए जीएणं मए सालइए
बहुसंभारसंभिए नेहावगाढे उक्खडिए) चखकर उसे ज्ञात हुआ
कि यह शाक तो बहुत खारा है, बहुत अधिक कडुआ है। खाने के
योग्य नहीं है भोजन में लेने के लायक नहीं है, यह तो विष जैसा है
ऐसा जानकर उसने मन ही मन विचार किया उस विचार में उसने
कहा-सुझ नागश्री को धिक्कार है, मैं अधन्या और अपुण्या हूँ। जनों
के द्वारा आदर पाने योग्य नहीं हूँ। मेरे इस बल को बार २ धिक्कार
हो-मेरा यह बल बिलकुल निष्फल है मैंने जो इस शाक के बनाने में
इतना उद्यम किया है वह मेरा सर्वथा निष्फल गया। जिस प्रकार नीम

उपर धी तरतुं डतुं (उक्खडित्ता एगं विदुयं करयलंसि आसाएइ) न्यारे
शाक तैयार थई गयुं न्यारे तेणे तेमांथी इइत्त ओक टीया नेटुं शाक पोतानी
डुथेणी उपर लधने थाभ्युं.

(आसाइत्ता तं खारं कडुयं अक्खज्जं अभोज्जं विसम्भूयं जाणित्ता एवं
वयासी-धिरत्थु णं मम नागसिरीए अहन्नाए, अपुन्नाए, दुरभगाए दुभगसत्ताए
दुभगिबोलियाए जीएणं मए सालइए बहुसंभारसंभिए नेहावगाढे उक्खडिए)

थाभवाथी तेने लाग्युं के आ शाक तो भूषण न पाई छे, भूषण न कडुबुं
छे, भावालायक नथी, लोअनमां काम लागे तेबुं नथी, आ तो अरे नेबुं छे,
आम नष्ठीने तेणे पोताना मनमां न विचार कर्यो अने विचार करतां, तेणे
पोतानी नतने न आ प्रभाणे कहुं के-मने-नागश्रीने-धिक्कार छे, हुं अरेअर
अधन्या तेमन अपुण्या छुं, हुं लोके द्वारा आदर भेणववा लायक नथी.
मारा आ भणने पारवार धिक्कार छे, भाई आ भण साव नकासुं छे. शाक
तैयार करवामां नेटवो में धम कर्यो छे ते भयो नकामो गयो. नेम लीम-

गाढमुपस्कृतं, तेन सुबहुद्रव्यक्षयः-हिङ्गुजीरकादिद्रव्यनाशः, स्नेहक्षयः=घृतादि-
क्षयश्चकृतः, तत्=तस्मात् यदि खलु मम 'जाउयाओ' यातृकाः, देवरभार्याः
ज्ञास्यन्ति, 'तोणं' तर्हि खलु मम 'खिसिस्संति' खिसिष्यन्ति-निन्दां कोपं च
करिष्यन्ति, तत्-तस्मात् यावन्मम यातृका न जानन्ति, तावन्मम श्रेयः-उचितं
एतत् शारदिकं तिक्तालावुकं बहुसंभारस्नेहकृतम् एकान्ते 'गोवेत्तए' गोपयितुम्,
अन्यत् शारदिकं मधुरालावुकं मधुरतुम्बीफलं यावत् स्नेहावगाढमुपस्कृतम् । एवं

की निबौली किसी मनुष्य की दृष्टि में आदर पाने योग्य नहीं होती
है उसी प्रकार मैं भी जनों द्वारा अनादरणीय बनी हूँ । जो मैंने शरद
कालिक अथवा सरस इस तुंथी फल का हिङ्गु, जीरकादि द्रव्यों से
युक्त और घृतादि से युक्त शाक बनाया है (सुबहुद्वक्खए, नेहक्खए
य कए) इस के घनाने में मैंने व्यर्थ ही बहुत से हिङ्गु जीरे मैथी आदि
द्रव्य का और घृत का विनाश किया है । (तं जइणं ममं जाउयाओ
जाणिस्संति, तो, णं मम खिसिस्संति) इस बात को यदि मेरी देवरानी
जानेगी तो वे मेरे ऊपर गुस्सा होगी और मेरी निंदा करेंगी । (तं जाव
ताव ममं जाउयाओ ण जाणंति ताव ममं सेयं एयं सालइयं तिक्ता-
लाउय बहुसंभारणेह कयं एगंते गोवेत्तए) इसलिये मुझे अब यही उचित
है कि मैं इस शारदिक तिक्तोलावु के शाक को जो बहुत संभार एवं
घृत डालकर बनाया है किसी एकान्त स्थान में छुपाकर रख दूँ और

डानी लींओणी भाणुसेानी सामे आदर भेणववा येअथ गण्ठाती नथी ते प्रभाणु
हुं पणु भाणुसेा द्वारा आदर प्राप्त करवा लायक रही नथी. अटले के हु
लोकेनी सामे अनादरणीय थर्ध गर्ध छुं. में शरद कालिक अथवा सरस
तुंथीना इणतुं डींग, ७३ वगेरे द्रव्येथी युक्त अने धी वगेरेथी युक्त शाक
भनाअंथुं छे (सुबहु द्वक्खए नेहक्खए य कए) अने तैयार करवाभां में
व्यर्थ डींग, ७३, मेथी वगेरे तेमए धी वगेरे वस्तुअेनो दुव्यर्थ कर्यो छे
(तं जइणं ममं जाउयाओ जाणिस्संति, तो णं मम खिसिस्संति) अने भारां
हेराणीने आ वातनी न्णणु थशे तो तेअो येअस भारा उपर गुस्से थशे. अने
भारी निंदा करशे.

(तं जाव ताव ममं जाउयाओ ण जाणंति ताव ममं सेयं एयं सालइयं
तिक्तोलाउय बहु संभारणेहकयं एगंते गोवेत्तए)

अथी अत्यादे भने अे न येअथ लागे छे के आ शारदिक तिक्तोलावु
(कडवी तूणडी) ना शाक ने-के न्ण भूण न सरस धी नाणीने वधारवाभां
आअ्यु छे-अेक तरइ छुपावीने भूडी हई अने तेनी न्णयाअे (अन्नं सालइयं

संप्रेक्षते=विचारयति, संप्रेक्ष्य तत् शारदिकं यावद् तिक्तालालुकं गोपयति=कचित् समाच्छाद्य धरति अन्यत् शारदिकं मधुरालालुकमुपस्करोति=रन्धयति शेषवारादिभिः संस्करोति । तेषां ब्राह्मणानां यावत् सुखासनवरगतानां निजनिजासने-सुखोपविष्टानां तद् विपुलमशनंपानं खाद्य स्वाद्यं परिवेषयति=तेषां भोजनावसरे भोजनपात्रे ददातीत्यर्थः । ततः खलु ते ब्रह्मणाः 'जिमियभुत्तुरगया' जिमित-

उसके स्थानपर (अन्नं सालइयं महुरालाउयं जाव नेहावगाढं उवक्खडेत्तए) दूसरी शारदिक मधुर तुंबडी का शाक हींग, जीरे और मैथी का वधार लगाकर घृत में तैरता हुआ बनालूँ (एवं संपेहेइ, संपेहित्ता तं सालइ य जाव गोपेइ अन्नं सालइयं महुरालाउयं उवक्खडेइ तेसिं महणाणं षहायाणं जाव सुहासनवरगयाणं तं विपुलं असणं ४ परिवेसेइ) ऐसा उसने विचार किया-विचार करके उस शारदिक कडवी तुंबडी के बहुत संभार एवं घृत युक्त शाक एकान्त में छुपाकर रख दिया-और दूसरी शारदिक मधुर तुंबडी - का शाक हींग जीरे और मैथी का वधार लगाकर घृत में तैरता हुआ बना लिया। इनने में वे तीनों ब्राह्मण स्नान आदि से निवृत्त कर भोजन शाला में आकर अपने २ आसन पर शांति के साथ बैठ गये। उनके बैठते ही उसने उन्हें अशन आदिरूप चारों प्रकार का आहार थालों में परोसा (तएणं ते माहणा जिमिय भुत्तुरागया समाणा आयंता, चोक्खा परम सुइ-

महुरालाउयं जाव नेहावगाढं उवक्खडेत्तए) भील शारदिक भीडी तुंबडीतुं धी उपर तरी रहुं छे अबुं शाक डींग, लइं अने मेथीमां वधारीने बनाई.

(एवं संपेहेइ, संपेहित्ता तं सालाइ य जाव गोपेइ, अन्नं सालइयं महुराला-उयं उवक्खडेइ, तेसिं माहणाणं षहायाणं जाव सुहासनवरगयाणं तं विपुलं असणं ४ परिवेसेइ)

आ जतने। तेणु विचार करी, विचार करीने ते' शारदिक कडवी तुंबडीना सरस धीमां वधारेला शाकने अक तरइ छुपावीने भूडी दीधुं अने भील शारदिक भीडी तुंबडी-इधी-तुं डींग, लइं अने मेथीने। वधार करीने उपर धी तरतुं शाक बनाव्युं. अटलाभां तो तेओ त्रणे आहणो। स्नान वगेरेथी परवारीने लोअनशाणांमां आवीने पोतपोताना आसन उपर शांतिथी जेसी गया. तेभने जेसतां ज तेणु तेओने अशन वगेरे इप थारे जतने आहार थाणीमां पीरथे।

भुक्तोत्तरगताः भोजनानन्तरं वहिरागताः सन्तः ' आयंता ' आचान्ताः कृतचुलकाः
' चोक्त्वा ' चोक्षाः=प्रक्षालितहस्तमुखाः परमशुचिभूताः ' सकम्मसंपउत्ता '
स्वकर्मसंप्रयुक्ताः=स्वस्वकार्यसंलग्ना जानाश्चप्यभवत् । ततः खलु ताः ब्राह्मण्यः
स्नाताः यावत् ब्रह्मालंकारविभूषितास्तद् विपुलमशन पानं खाद्यं स्वाद्यम् आहार-
यन्ति=आहारं कुर्वन्ति भुञ्जते स्म । आहत्य, यत्रैव स्वकानि स्वकानि गृहाणि=
आवासभवनानि तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य स्वकर्मसंप्रयुक्ता जाताः ॥ सू० १ ॥

मूलम्-तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसा नाम थेरा
जाव बहुपरिवारा जेणेव चंपा नामं नयरी जेणेव सुभूमिभागे

भूया सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था) आहारं जव परोसां जा
चुका-तव उन सवने उसे खाया पीया-और खा पीकर जव वे निपट
चुके तव उन्होंने कुछा आदि कर अपने मुह का प्रक्षालन किया-और
हार्थों को साफकर वे अपने २ कार्य में लग गये । (तएणं ताओ माह-
णीओ पहायाओ जाव विभूसियाओ तं विपुलं असणं ४ आहारेति,
आहारित्ता जेणेव सयाइं २ गेहाइं तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता
सकम्म संपउत्ताओ जायाओ) इसके बाद उन ब्रह्मणियोंने जो कि
पहिले से ही स्नान कर चुकी थी और अपने २ शरीर को सुन्दर वेष-
भूया से सुसज्जित किये हुए थी, उस विपुल अशनादिरूप चतुर्विध
आहार को खाया-और खाकर के फिर वे अपने २ वासभवनों में
चली गईं-वहाँ जाकर अपने २ वे सब काममें लग गईं ॥ सूत्र १ ॥

(तएणं ते माहणा जिमिय भुत्ततरागया समाणा आयंता, चोक्त्वा परमसुह
भूया सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था)

आहार न्याये पीरसाधं गथे त्याये तेओ त्रणे नभ्या अने नमी पर-
वारीने केगणा वगेदे करीने, हाथ में साक्ष कथी अने हाथ में साक्ष करीने
तेओ त्रणे पोतपोताना काममां परेवाधं गया.

(तएणं ताओ माहणीओ पहायाओ जाव विभूसियाओ तं विपुलं असणं ४ आहारित्ता
जेणेव सयाइं २ गेहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सकम्मसंपउत्ताओ जायाओ)

त्यारभाह ते प्राहणीओओ-के नेओओ पडेलां स्नान करीने पोताना
शरीरने सुंदर वओथी शेषुगार्थुं उर्तु-ते पुष्कण प्रमाणुमां भनाववामां आवेके
अशन वगेदे इय तार नतने आहार कथी आहारथी परवारीने तेओ
पोतपोताना वासलवनमां नती रही अने त्यां नधने तेओ सवे पोतपोताना
भओमां परेवाधं गध. ॥सू०१॥

उज्जाणे तेणेव उवागच्छति २ अहापडिरुवं जाव विहरति,
परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया, तएणं
तेसिं धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी धम्मरुई नाम अणगारे
ओराले जाव तेउलेस्से मासं मासेणं खममाणे विहरइ,
तएणं से धम्मरुई अणगारे मासखमणपारणगंसि पढमाण
पोरिसीए सज्झायं करेइ वीयाए पोरिसीए एवं जहा गोयमसा-
मी तहेव उग्गाहेइ उग्गाहित्ता तहेव धम्मघोसे थेरं आपुच्छइ
जाव चंपाए नयरीए उच्चनीयमज्झिमकुलाइं जाव अडमाणे
जेणेव नागसिरीए माहणीए गिहे तेणेव अणुपविट्ठे, तएणं
सा नागसिरी माहणी धम्मरुइं एज्जमाणं पासइ पासित्ता
तस्स सालइयस्स बहुसंभारसंभियस्स णेहावगाढस्स तित्त-
कडुयस्स पट्टवणट्टयाए हट्टुट्टा उट्टाए उट्टेइ उट्टित्ता जेणेव
भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं सालइयं तित्त-
कडुयं च बहुसंभारसंभियं णेहावगाढं धम्मरुइस्स अणगा-
रस्स पडिग्गहंसि सव्वसेव निसिरइ, तएणं से धम्मरुई
अणगारे अहापज्जत्तमितिकट्टु णागसिरीए माहणीए गिहाओ
पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता चंपाए नयरीए मज्झं मज्झेणं
पडिनिक्खमइ जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवाग-
च्छइ, उवागच्छित्ता धम्मघोसस्स अदूरसामंते अन्नपाणं
पडिलेहेइ पडिलेहित्ता अन्नपाणं करयलंसि पडिदंसेइ, तएणं
ते धम्मघोसा थेरा सालइयस्स जाव नेहावगाढस्स गंधेणं

अभिभूया समाणा तओ सालइयाओ जाव नेहावगाढाओ
 एगं विंदुणं गहाय करयलांसि आसाएइ । तित्तगं खारं कडुयं
 अखज्जं अभोज्जं विसभूयं जाणित्ता धम्मरुइं अणगारं एवं
 वयासी-जइणं तुमं देवाणुप्पिया ! एवं सालइयं जाव
 नेहावगाढं आहारेसि तो णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ
 ववरोविज्जसि, तं सा णं तुमं देवाणुप्पिया ! इमं सालइयं
 जाव आहारेहि, सा णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ वव-
 रोविज्जेहि, तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया ! इमं सालइयं
 एगंतमणावाए अच्चित्ते थंडिले परिट्टवेहि परिट्टवित्ता अन्नं
 फासुयं एसणिज्जं असणंपाणं खाइमं साइमं पडिगहित्ता
 आहारं आहारेहि ॥ सू० २ ॥

टीका—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये धम्मघोषा
 नाम स्थविना यावत्-बहुपरिवाराः-बहुसाधुपरिवारेण सहिता यत्रैव चम्पा नाम
 नगरी, यत्रैव सुभूमिभागगुद्यानं तत्रैवोपागच्छन्ति, अत्र ‘धर्मघोषा’ इति बहु-
 वचनमादरार्थं प्रयुक्तम्, उपागत्य यथा प्रतिरूपं यावत्-अवग्रहमवगृह्य संयमेन

तेणं कालेणं तेणं समएणं इत्यादि ॥

टीकार्थं—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समय में
 (धम्मघोसा नाम थेरा जाव बहुपरिवारा जेणेव चंपा नामं नगरी जेणेव
 सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागाच्छित्ता अहापडिरुवं
 जाव विहरंति-परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ परिसा पडिगया-तएणं
 तेसिं धम्मघोसाण थेराणं अंतेवासी धम्मरुई नाम अणगारे ओराले

(ते णं कालेणं तेणं समएणं) इत्यादि ।

टीकार्थं—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते क्षणे अने ते समये
 (धम्मघोसा नाम थेरा जाव बहुपरिवारा जेणेव चंपा नामं नगरी जेणेव
 सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरुवं जाव विहरंति
 परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ, परिसापडिगया, तएणं तेसिं धम्मघोसाणं थेराणं

तपसाऽऽत्मानं भावयन्तो विहरति-आसतेस्म । परिपद् निर्गता धर्मः कथितः=
धर्मकथा कथिता, परिपत् प्रतिगता=धर्मकथा श्रवणानन्तरं प्रतिनिवृत्ता । ततः खलु
तेषां धर्मघोषाणां स्थविराणामन्तेवासी धर्मरुचिर्नामानगारः उदारः प्रधानो यावत्
संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्यः=संक्षिप्ता शरीरान्तः संकोचिता, विपुला=अनेकयोजन-
प्रमितक्षेत्रस्थितवस्तुदहनसमर्था, तेजोलेश्या=विशिष्टतपोजन्यलब्धिविशेषो येन सः

जाव तेउलेस्से मासं मासेणं खममाणे विहरइ) धर्मघोष नामके स्थविर
यावत् अनेक परिवार से युक्त होकर जहां चंपा नगरी, ओर उसमे जहां
वह सुभूमिभाग नाम का उद्यान था वहां आये । वहां आकर के उन्होंने
ने वहां ठहरने के लिये अपने कल्पानुसार आज्ञा मांगी बाद मे वे वहा
संघम और तप से आत्माको भावित करते हुए ठहर गये । चंपानगरी
के समस्त जन उनको वंदना एवं धर्मकथा सुनाने के लिये वहां आये ।
उन्होंने श्रुतचारित्र रूप धर्मका उपदेश दिया । उपदेश श्रवण कर परिषद्
अपने २ स्थान पर पीछे गई । इसके अनन्तर इन धर्मघोष स्थविर के
अन्तेवासी जिनका नाम धर्मरुचि अनागार था बड़े उदार प्रकृति के थे
विशिष्ट तपस्याओं को किया करते थे-उसके प्रभाव से इन्हें तेजोलेश्या
की प्राप्ति हो गई थी और वह तेजोलेश्या इन्होंने अपने शरीर के भीतर
संक्षिप्त कर रखी थी इस तेजोलेश्या का यह स्वभाव होता है कि जब
वह शरीर से बाहिर निकलती है तो अनेक योजन प्रमित क्षेत्र में रही
हुइ वस्तुओ को भस्मकर देती है । मास क्षपण की उपवास रूप तपस्या

अन्तेवासी धर्मरुई नाम अणगारे ओराले जाव तेउलेस्से मासं मासेणं खममाणं विहरइ

धर्मघोष नामना स्थविर पोताना धणु परिवारेनी साथे न्यां चंपा
नगरी अने तेमां पणु न्यां ते सुभूमिभाग नामे उद्यान हुतुं त्यां आया.
त्यां आवीने तेमणे त्यां रोडावानी पोताना आचार मुज्ज्ण आज्ञा मांगी.
त्यार पछी तेजो त्या पोताना आत्माने तप अने संघमथी भावित करतां
रहेता लाग्या. चंपा नगरीना अधा दोडो तेमनां वंदन तेमज्ज धर्मकथा श्रवणु
भाटे त्यां आया तेजोश्रीजे श्रुतचारित्र रूप धर्मने उपदेश आप्यो. उपदेश
सांभजीने दोडो पोतपोताना निवास स्थाने जाता रह्या. त्यारपछी धर्मघोष
स्थविरना अन्तेवासी-जेमनु नाम धर्मरुचि अनगार हुतुं, जेजो पूण ज
उदार प्रकृतिना हुता, विशिष्ट तपस्याजो करता रहेता हुता. जेना प्रभावधी
जेमणे तेजोलेश्या मेणवी हुती अने तेजोलेश्याने तेमणे पोताना शरीरमां ज
संकोची राणी हुती, आ तेजो-देश्याने प्रभाव आ जातने होय छे के न्यारे
ते शरीरनी उठार नीकणे छे त्यारे धणु योजने सुधीना क्षेत्रमां भूकेली
वस्तुजोने भस्म करी नाणे छे-मासक्षपणनी उपवास रूप तपस्याधी तेजो

तथा, मासं=त्रिंशद्द्वोरात्रात्मकं कालं मासेन=मासक्षपणेन मासोपचाराख्यतपः कर्मणा 'खममाणे' क्षपयन्=यापयन् विहरति । ततः खलु स धर्मरुचिरनगरी मासक्षपणपारणके प्रथमायां पौरुष्यां 'सृज्जयं' स्वाध्यायं सूत्रपाठरूपं करोति, द्वितीयायां पौरुष्यां ध्यानम् सूत्रार्थचिन्तनरूपं ध्यायति-करोति, एवं यथा गौतम-स्वामी, तथैव गौतमस्वामीवत् तृतीयपौरुष्यां भाजनवस्त्राणिप्रमार्जयति, प्रमार्ज्यं भाजनानि 'उग्गाहेइ' अवगृह्णाति, अवगृह्य यत्रैव धर्मघोषस्थविररतत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तथैव श्रीमहावीरस्वामीनं गौतमस्वामिवदेव धर्मघोषं स्थविरमापृच्छति,

से ये अपने त्रिंशत् अहोरात्रात्मक काल को उस समय व्यतीत कर रहे थे । अर्थात् एक महीने की तपस्या इन्होंने उस समय कर रखे थे- (तएणं से धम्मरुइ अणगारे सासखमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ वीयाए पोरिसीए एवं जहा गोयमसामी तहेव उग्गाहेइ, उग्गाहित्ता तहेव धम्मघोसं थेरं आपुच्छइ, जाव चंपाए नयरीए उच्चनीय मज्झिमकुलाइं जाव अडमाणे जेणेव नागसिरीए माहणीए गिहे तेणेव अणुपविट्ठे, तएणं सा नागसिरी माहणी धम्मरुइ एज्जमाणं पासइ) ये धर्मरुचि अनगार सासक्षपण की पारणा के दिनप्रथम पौरुषी में सूत्रपाठ रूप स्वाध्याय, द्वितीय पौरुषी में सूत्रार्थ चिन्तन रूप ध्यान और तृतीय पौरुषी से गौतम स्वामी की तरह वस्त्रपात्रों का प्रमार्जन करते । इस तरह इन्होंने तृतीय पौरुषी में वस्त्र पात्रों का प्रमार्जन कर अपने पत्रों को उठाया और उठकर ये धर्मघोष स्थविर के पास गये ।

पोताना त्रिंशत् अहोरात्रात्मक कालने ते समये पसार करी रखा डता-अट्ठे डे तेओ ते समये अडे मासनी तपस्या करी रखा डता.

(तएणं से धम्मरुइ अणगारे सासखमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, वीयाए पोरिसीए एवं जहा गोयमसामी तहेव उग्गाहेइ, उग्गाहित्ता तहेव धम्मघोसं थेरं आपुच्छइ, जाव चंपाए नयरीए उच्चनीय मज्झिमकुलाइं जाव अडमाणे जेणेव नागसिरीए माहणीए गिहे तेणेव अणुपविट्ठे, तएणं सा नागसिरी माहणी धम्मरुइ एज्जमाणं पासइ)

धर्मरुचि अनगार गौतम स्वामीनी जेम प्रथम पौरुषीमां सूत्रपाठ इप स्वाध्याय, द्वितीय पौरुषीमां सूत्रार्थ चिन्तन इप ध्यान अने तृतीय पौरुषीमां वस्त्र अने पात्रानुं प्रमार्जन करता डता, मास क्षपणुना पोताना पारणुना दिवसे पणु तेओअे तृतीय पौरुषीमां वस्त्र-पोतानुं प्रमार्जन करीने पोताना पात्राने दीधा अने लधने तेओ धर्मघोष स्थविरनी पासे गया. जेम गौतम

यावत्-चंपायं नगर्यामुच्चनीचमध्यमकुलानि यावदटन् यत्रैव नागश्रिया ब्राह्मण्या गृहं तत्रैवानुप्रविष्टः ।

ततः खलु सा नागश्री ब्राह्मणी धर्मरुचिमनगारम् एजमानम्-आगच्छन्तं पश्यति, दृष्ट्वा तस्य 'सालइयस्स' शारदिकस्य तित्तकडुकस्य=तित्तकडुकतुम्ब-कस्य बहुसंभारसंभृतस्य स्नेहावगाढस्य 'पट्टवणट्टयाए' प्रस्थापनार्थं=परिष्ठा-पनार्थं हृष्टतुष्टा 'उट्टाए' उत्थया=उत्थानक्रियया उत्तिष्ठति, उत्थाय यत्रैव भक्तगृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तद् शारदिकं तित्तकडुकतुम्बकं बहुसंभारसंभृतं स्नेहावगाढं धर्मरुचेरनगारस्य 'पडिग्गहंसि' पतद्ग्रहे-पात्रे, सर्वमेव 'निसिरइ'

जिस प्रकार गौतम स्वामी श्री महावीर स्वामी से पूछकर आहार लेने के लिये जाते थे उसी प्रकार इन्होंने धर्मघोष स्थविर से आहार लाने के लिये आज्ञा मांगी । आज्ञा प्राप्तकर ये चंपानगरी में उच्च नीच एवं मध्यमकुलो में भ्रमण करते हुए जहाँ नागश्री ब्राह्मणी का घर था वहाँ गये । नागश्री ब्राह्मणी ने इन्हें ज्योंही आते हुए देखा (पासित्ता तस्स सालइयस्स बहुसंभारसंभियस्स णेहावगाढस्स तित्तकडुयस्स पट्टवण-ट्टयाए हट्ट तुट्टा उट्टाए उट्टेइ उट्टित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ) त्योंही यह बहुसंभार संभृत एवं स्नेहावगाढ उसकडवी तुम्बडीका आहार देने के लिये उत्थान क्रिया द्वारा-उठी-अर्थात् अपने में रही हुई उठने की शक्ति से उठी और हृष्ट तुष्ट होती हुई जहाँ भोजन-गृह था वहाँ गई । (उवागच्छित्ता तं सालइयं तित्त कडुयं च बहुसंभारसंभियं णेहा-वगाढं धम्मरुइयस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सत्थमेव निसिरइ) वहाँ

स्वामीने पूछीने आहार लाववा भाटे नीकणता हुता तेमज तेओओे पणु आहार लाववा भाटे धर्मघोष स्थविरनी पासे आज्ञा मांगी. आज्ञा भेजनीने तेओ-चंपा नगरीमां उच्यनीय अने मध्यम कुलोमां भ्रमणु करतां न्यां नागश्री ब्राह्मणीनुं घर हुतुं त्यां गया. नागश्री ब्राह्मणीओे तेओने आवता ल्थया (पासित्ता तस्स सालइयस्स बहुसंभारसंभियस्स णेहावगाढस्स तित्तकडुयस्स पट्टवणट्टयाए हट्टतुट्टा उट्टाए उट्टेइ, उट्टित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ) त्यारे तरतज सरस वधारेलो. धी तरतो कडवी तुम्बडीने आहार आपवा भाटे उत्थान क्रिया पडे जेली थर अटले के पोतानामां रडेली जेमा थवानी ताकांतथी ते जेली थर अने हृष्ट तेमज तुष्ट थती न्या लोअनशाणा हुती त्यां गर्ध.

(उवागच्छित्ता तं सालइयं तित्तकडुयं च बहुसंभारसंभियं णेहावगाढं ध-म्मरुइयस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सत्थमेव निसिरइ)

निवृत्तजति=परिष्ठापयति । ततः खलु स धर्मरुचिरनगरः 'अहापज्जत्तं' यथा पर्याप्तम्-उदरपूर्तये पूर्णमेतद् इति कृत्वा=इति मनसि विभाव्य, नागश्रिया ब्राह्मण्या गृहात् प्रतिनिष्क्रामति-निर्गच्छति प्रतिनिष्क्रम्य चम्पाया नगर्या मध्यमध्येन प्रतिनिष्क्राम्यति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव सुभूमिभागमुद्यानं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य धर्मघोषस्य स्थविरस्य 'अदूरसामन्ते'=नातिदूरे नातिसमीपे, अन्नपानं 'पडिलेहेइ' प्रति लेखयति प्रतिलेख्य अन्नपानं करतले पात्रं कृत्वा प्रतिदर्शयति। ततः खलु ते धर्मघोषाः स्थविरास्तस्य शारदिकस्य तित्तकट्टुस्वकस्य यावत् स्नेहावगाढस्य गन्धेनाऽभिभूतासन्तस्तस्माच्छारदिकाद् यावद् स्नेहावगाढादेकं विन्दुकं गृहीत्वा करतले कृत्वा आस्वादयति । तित्तकं क्षारं कटुकम् अस्वाद्यमभोज्यं विपभूतं ज्ञात्वा धर्म-

जाकर उसने उस शारदिक कडवी तुंबडी का वहु संभार संभृत एवं स्नेहावगाढ शाक धर्मरुचि अनगर के पात्र में सब का सब डोल दिया (तएणं सेधम्मरुइ अणगारे अहापज्जत्तमित्ति कट्टु णागसिरीए माहिणीए गिहाओ पडिनिक्खमइ) इसके बाद वे धर्मरुचि अनगर " यह उदर पूर्ति के लिये पर्याप्त है " ऐसा अन में समझ कर नागश्री ब्राह्मणी के घर से बाहर निकले पडिनिक्खमित्ता चंपाए नयरीए मज्झं मज्झेणं पडिनिक्खमइ, जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे - तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मघोसस्स अदूरसामन्ते अन्नपाणं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता अण्णपाणं करयलंसि पडिदंसेइ, तएणं से धम्मघोसा थेरा तस्स सालइस्स जाव नेहावगाढस्स गंधेणं अभिभूया समाणा ताओ सालइयाओ जाव नेहावगाढाओ एणं विंदुगं गहाय करयलंसि आसाएइ)

त्यां न्धने तेणु ते शारदिक कडवी तुंबडीतुं भूण न सरस रीते वधा-
रेणु तेमन धी तरतुं शाक लध आवी अने त्थारपथी धर्मरुचि अनगारना
पात्रमां अधुं नाभी हीधुं.

(तएणं धम्मरुइ अणगारे अहापज्जत्तमित्ति कट्टु णागसिरीए महिणीए गिहाओ पडिनिक्खमइ)

त्थारपथी ते धर्मरुचि अनगार " आ उदर पोषणु भाटे पर्याप्त छे "
अधुं नाणीने नागश्री ब्राह्मणीना घेरथी अहार नीउण्था.

(पडिनिक्खमित्ता चंपाए नयरीए मज्झं मज्झेणं पडिनिक्खमइ, जेणेव सुभूमि-
भागे उज्जाणे-तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मघोसस्स अदूरसामन्ते अन्न-
पाणं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता अण्णपाणं करयलंसि पडिदंसइ, तएणं से धम्म-
घोसाथेरा तस्स सालइस्स जाव नेहावगाढस्स गंधेणं अभिभूया समाणा ताओ
सालइयाओ जाव नेहावगाढाओ एणं विंदुगं गहाय करयलंसि आसाएइ)

रुचिमनगारमेवमवदन् यदि खलु त्वं हे देवानुप्रिय । एतद् शारदिकं यावत्-
तिक्तकटुकुतुम्बकं यावत् स्नेहावगाढम् आहारयसि=आहारं करिष्यसि, तर्हि खलु
त्वमकाले एव जीविताद् व्यपरोपिष्यसे' एतदशनेन मरणमवश्यं प्राप्स्यसीत्यर्थः ।
तत्=तस्मात् मा खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! एतद् शारदिकं यावदाहारय, मा खलु

निकल कर चंपानगरी के बीचो बीचसे होकर चल दिये सो जहां सुभू-
मिभाग नाम का उद्यान था वहां आ गये । वहां आकर वे अपने आ-
चार्य धर्मघोष स्थविर के पास आये वहां आकर उन्होंने भिक्षामें प्राप्त
हुआ आहार बताया और बताने के बाद उस शारदिक कडवी तुंबडी
के यावत् स्नेहावगाढ शाक की गंध से अभिभूत होते हुए उन धर्मघोष
आचार्य ने उस शारदिक यावत् स्नेहावगाढ शाक में से एक बिन्दु मात्र
को अपने हाथ की हथेली पर रख कर चखा (तिक्तगं खारं कडुयं
अखज्जं अभोज्जं विसभूयं जाणित्ता धम्मरुइ अणगारं एवं वयासी-
इणं तुमं देवाणुप्पिया । एयं सालइयं जाव ने हावगाढं आहारेसि तो
णं तुमं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविज्जसि) चखते ही " यह
तिक्त हैं क्षार से युक्त है कटुक है अखाद्य एवं अभोज्ज है तथा विषभूत
है " ऐसा जानर धर्मरुचि अनगर से उन्होंने ऐसा कहा हे देवानु-
प्रिय ! यदि तुम शारदिक कडवी तुंबडी के बहु संभार संभृत एवं
स्नेहावगाढ इस शाक का आहार करोगे-तो निश्चय से बिना मृत्यु के

नीकणीने अंपा नगरीनी वर्येना भार्गथी पसार थतां न्यां सुभूमिलाग
नामे उद्यान उतुं त्यां आव्या. त्यां आवीने तेज्यो पोताना आचार्य धर्मघोष
स्थविरनी पासे आव्या अने त्यां आवीने तेमणे लिक्षाभां प्राप्त थयेदा
आहारने गताव्यो अने गतावीने ते शारदिक कडवी तुंबडीना सरस वधारेदा
धी तरता शाकनी सुवासथी अलिभूत थतां ते धर्मघोष आचार्ये ते शारदिक
सरस वधारेदा धी तरता शाकने उथेणी उपर भूडीने आभ्युं.

(तिक्तगं खारं कडुयं अखज्जं अभोज्जं विसभूयं जाणित्ता धम्मरुइ अणगारं
एवं वयासी-इणं तुमं देवाणुप्पिया । एयं सालइयं जाव नेहावगाढं आहारेसि
तो णं तुमं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविज्जसि)

आभतां न " आ तिक्त छे, भाइं छे, कडवुं छे, अभाद्य तेमन अलोअन्य
छे तथा विषभूत छे " आपुं न्णणीने धर्मरुचि अनगारने तेज्योअे आ प्रभाणे
कडुं के डे देवानुप्रिय ! ने तमे शारदिक कडवी तुंबडीना सरस वधा-
रेदा धीतरता शाकने आहार करेशो तो थोअस तमे कमेते भरी नशो.

स्वमकालएव जीविताद् व्यपरोप्यन्व=मा त्रियस्व । तत्=तस्माद् गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिय । इदं शारदिकं ' एगंतमणावाए ' एकान्तेऽनापाते=एकान्ते= निर्जनस्थाने, अनापाते-आपातः-द्वीन्द्रियादिप्राणिनां संयोगस्तद्वर्जिते, अचित्ते= जीवरहिते, स्थण्डिले=भूमौ ' परिद्वेहि ' परिष्ठापय, परिष्ठाप्यान्यत् प्रासुकमेपणीयं= द्वाचत्वारिंशदोषरहितं, शुद्धम्-अशनपानखाद्यस्वाद्यम् प्रतिगृह्य आहारमाहारया ॥ सू० २ ॥

मूलम्-तएषां से धम्मरुई अणगारे धम्मघोसेणं थेरेणं एवं वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स थेरस्स अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ अदूरसासंते थंडिल्लं

मरजाओगे-(तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! इमं सालइयं जाव आहारेहि मा णं तुमं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविज्जहि तं गच्छणं तुमं देवाणुप्पिया ! इमं सालइयं एगंतमणावाए अचित्ते थंडिले पडिद्वेहि, परिद्वित्ता अन्नं फासुयं एसणिज्जं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिगाहेत्ता आहारं आहारेहि) इमन्विये हे देवानुप्रिय ! तुम शारदिक कडवी तुंबडी के शाक किसी एकान्त स्थानमें कि जहां द्वीन्द्रियादि प्राणियोंको संचरण नहीं—और जो अचित्त हो ऐसी भूमि पर परिष्ठापना कर आओ । और परिष्ठापना करके फिर प्रासुक एपणीय ४ ४२ दोषों से रहित शुद्ध अशन, पान खाद्य स्वाद्य रूप दूसरे आहार को लेकर भोजन कर लो ॥ सू० २ ॥

(तं माणं तुमं देवाणुप्पिया ! इमं सालइयं जाव आहारेहि माणं तुमं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविज्जहि तं गच्छणं तुमं देवाणुप्पिया ! इमं सालइयं एगंतमणावाए अचित्ते थंडिले पडिद्वेहि, परिद्वित्ता अन्नं फासुयं एसणिज्जं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिगाहित्ता आहारं आहारेहि)

अथी डे देवानुप्रिय ! तमे आ शारदिक तूणडीना शाकने भाशो नडि तेथी अकाले तमाइं भरएणु पए थशे नडि, माटे हे देवानुप्रिय ! तमे आ आ शारदिक कडवी तूणडीना शाकनी केअपिणु ओकांत-निर्जन स्थानमा के न्यां द्विन्द्रियादि प्राणीओनुं संचरणु डोय नडि-अने ने अचित्त डोय अथी भूमि उपर परिष्ठापना करी आवो अने परिष्ठापना कर्या भाह प्रासुक ओपणीय ४२ दोषोथी रहित शुद्ध अशन, पान, खाद्य-स्वाद्य रूप भीले आहार दावी ते आहार अडए करे ॥ सूत्र " २ " ॥

पडिलेहेइ, पडिलेहिता तओ सालाइयाओ एगं विंदुगं गहेइ
 गहिता थंडिलंसि निसिरइ तो णं तस्स सालइयस्स तित्तकडु-
 यस्स बहुनेहावगाढस्स गंधेण बहूणि पिपीलियासहस्साणि पाउ-
 ष्मूयाइं जा जहा य णं पिपीलिका आहारेइ सा तथा अकाले
 चैव जीवियाओ ववरोविज्जइ तएणं तस्स धम्मरुइस्स अणगा-
 रस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५ जाव ताव इमस्स सालइयस्स
 जाव एगंसि विंदुगंसि पक्खित्तंसि अणेगाइं पिपीलियासहस्साइं
 ववरोविज्जंति तं जइ णं अहं एयं सालइयं थंडिलंसि सव्वं
 निसिरामि तएणं बहूणं पाणाणं ४ वहकारणं भविस्सइ, तं
 सेयं खलु ममेयं सालइयं जावगाढं सयमेव आहारेत्तए, मम
 चैव एएणं सरीरेणं णिज्जाउत्तिकट्टु एवं संपेहेइ संपेहिता मुह-
 पोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहिता ससीसोवरियं कायं पमज्जेइ २ तं
 सालइयं तित्तकडुयं बहुनेहावगाढं बिलमिव पन्नगभूतेणं अ-
 प्पाणेणं सव्वं सरीरकोट्टंसि पक्खिवइ, तएणं तस्स धम्मरुइस्स
 तं सालइयं जाव नेहावगाढं आहारियस्स समाणस्स मुहुत्तंतरेण
 परिणममाणंसि सरीरगंसि वेयणा पाउष्मूया उज्जला जाव दुरहि-
 यासा, तएणं से धम्मरुची अणगारे अथामे अवले अवीरिए
 अपुरिसक्कारपरक्कमे आधारणिज्जमित्तिकट्टु आयारभंडगं एगंते
 ठवेइ ठवित्ता थंडिलं पडिलेहेइ, पडिलेहिता दब्भसंथारगं
 संथारेइ संथारित्ता दब्भसंथारगं दुरूहइ, दुरूहित्ता पुरत्थाभि-
 मुहे संपलियंकनिसन्ने करयलपरिग्गहियं एवं वयासी-नमोऽत्थु

णं अरहंताणं जाव संपत्ताणं, णमोऽत्थु णं धम्मघोसाणं थेराणं
 मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसगाणं, पुंविंपि णं मए धम्म-
 घोसाणं थेराणं अंतिए सव्वेपाणाइवाए पच्चक्खाए जावजीवाए
 जाव परिग्गहे, इयाणिंपि णं अहं तेलिं चैव भगवंताणं अंतियं
 सव्वं पाणाइवाइं पच्चक्खामि जाव परिग्गहं पच्चक्खामि जाव-
 जीवाए, जहा खंदओ जाव चरिमेहिं उस्सासेहिं वोसिरामिति-
 कट्टु आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालगए ॥ सू० ३ ॥

टीका—ततः खलु स धर्मरुचिरनगारो धर्मघोषेण स्थविरेणैवमुक्तः सन् धर्म-
 घोषस्य स्थविरस्यान्तिकात्=समीपात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य सुभूमिभागो-
 घानाद् अदूरसामन्ते=नानिदूरे नातीसमीपे स्थण्डिलं प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य
 ततः=तस्माद् गारदिकात् तित्तरुद्धुत्तु तुम्बकादेकं विन्दुकं गृह्णाति, गृहीत्वा
 स्थण्डिले=भूमौ 'निर्साइ' निस्तृजति=परिष्ठापयति । ततः खलु तस्य शादिकस्य

तएणं से धम्मरुई अणगारे इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इत्युक्ते वाद (से धम्मरुई अणगारे धम्मघोसे णं
 थेरेणं एवं वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स थेरस्स अतिघाओ पडिनिक्खमइ) वे
 धर्म रुचि अनगार धर्म घोष से इत्य प्रकार कहे जाने पर धर्मघोष के
 पास से चले आये (पडिनिक्खमित्ता सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ
 अदूर सामंते थंडिलं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता तओ सालइयाओ एगं विंदुगं
 गहेइ, गहित्ता थंडिलंसि निसिरइ, तो णं तस्स सालइयस्स तित्त कडुय-

त एण से धम्मरुई अणगारे इत्यादि

टीकार्थ—(त एणं) त्पारपथी

(से धम्मरुई अणगारे धम्मघोसेणं थेरेणं एवं वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स
 थेरस्स अतिघाओ पडिनिक्खमइ)

ते धर्मरुचि अनगार धर्मघोषनी आ वात सांभणीने तेमनी पासेथी
 आवता रथा.

(पडिनिक्खमित्ता सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ अदूरसामंते थंडिलं पडिले-
 हेइ, पडिलेहित्ता तओ सालइयाओ एगं विंदुगं गहेइ, गहित्ता थंडिलंसि निसरइ,
 तो णं तस्स सालइयस्स तित्तकडुयस्स बहुनेदावगाढस्स गंधेणं बहूणि पिवीळिगा

तिक्तकटुकस्य तुम्बकस्य बहुसंभारसंभृतस्य स्नेहावगाढस्य गन्धेन बहूनि पिपीलिका-
सहस्राणि प्रादुर्भूतानि, या यथा च 'णं' तं=शारदिकस्य, तिक्तकटुक तुम्बकस्य
विन्दुकं पिपीलिका आहरति, सा तथा अकाले एव "जीवियाओ ववरोविज्जइ"
जीविताद् व्यपरोप्यते=प्राणेभ्यो वियुज्यते 'म्रियते' इत्यर्थः, ततः खलु=पिपी-
लिकाविराधनमवलोक्य धर्मरुचेरनगरस्यायमेतद्रूपः=वक्ष्यमाणस्वरूपः. आध्या-
त्मिकः=५ आत्मगतः चिन्तितः=स्मरणरूपः, प्रार्थितः=अभिलाषरूपः, कल्पितः=
कल्पनारूपः, मनोगतः=अन्तः प्रकाशितः संकल्पो विचारः समुदपद्यत यदि तावदस्य
शारदिकस्य यावत्-तिक्त-तुम्बकस्य एकस्मिन्-विन्दुके प्रक्षिप्ते सति, अनेकानि
पिपीलिकासहस्राणि 'ववरोविज्जंति' व्यपरोप्यन्ते=प्राणेभ्यो वियुज्यन्ते म्रियन्ते ।

स्स बहुनेहावडाढस्स गंधेणं बहूणि पिपीलिगासहस्साणि पाउब्भूयाइं
जा जहायणं पिपीलिका आहारेइ सा तथा अकाले चैव जीवियाओ ववरो
विज्जइ) और आकर के उन्होंने सुभूमिभाग उद्यान से न अतिदूर
और न अति समीप भूमि की प्रतिलेखना की । प्रतिलेखना करके फिर
उन्होंने उस शारदिक-तिक्तकटुक-तुंबडी के शाक में से एक विन्दुमात्र
शाक लिया-और लेकर उसे भूमि पर डाल दिया । तो इतने में ही
शारदिक तिक्तकटुवी तुंबडी के उस बहुस्नेहावगाढ शाक की गंध से
वहां हजारों कीड़िया एकट्टी-एकत्रित-हो गईं । उनमें से जिस कीड़ीने
जिस समय उसे खाया वह कीड़ी उसी समय वहां मर गई । (तएणं
तस्स धम्मरुइयस्स अणगारस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५-जइ ताव इम-
स्स सालइयस्स जाव एगंमि विन्दुगंमि पक्खित्तंमि अणेगाइं पिपीलिया

सहस्साणि पाउब्भूयाइं जा-जहायणं-पिपीलिका-आहारेइ-सा-तथा अकाले चैव
जीवियाओ ववरोविज्जइ)

अने आवीने तेभण्णे सुभूमिलाग उद्यानथी वधारे इर पणु नडि अने
वधारे नशुक्क पणु नडि अथा-स्थाने भूमिनी प्रतिवेपना करी. प्रतिवेपना
करीने तेअण्णे ते शारदिक-तिक्त कटुवी तुंबडीना शाकमांथी अेक टीया नेटुं
शाक लीधुं अने लधने ते भूमिलाग उपर नाणी दीधुं. नाणतांणी साथे न
त्यां शारदिक तिक्त-कटुवी तुंबडीना धी तरता शाकनी सुवासथी इण्णरे. कीडीअे
अेकडी थर्ध गध. तेअेमांथी अे अे कीडीअे ते शाकने पाधुं इतुं ते ते तरतअ
त्यां मरी गध.

तएणं तस्स धम्मरुइयस्स अणगारस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५ जइ ताव इम-
स्स सालइयस्स जाव एगंमि विन्दुगंमि पक्खित्तंमि अणेगाइं पिपीलिया सहस्साइं

तत्=तस्माद् यदि खल्वहमेतद् शारदिकं 'थंडलंसि' स्थण्डिले=भूमौ सर्वं
 'निसिरामि' निसृजामि=परिष्ठापयामि, 'तोणं' तर्हि खलु वहूनां प्राणानां=
 प्राणाः सन्त्येषामिति प्राणाः=प्राणवन्तस्तेषां, तथाभूतानां जीवानां तत्=तस्माद्
 श्रेयः=श्रेयस्करं खलु ममेदं शारदिकं तिक्तकडुकालावुकं यावत्-स्नेहावगाढं स्वय-
 मेव आहारयितुं=भोक्तुम्, ममैव 'एण' एतेन=तिक्ततुस्वकाहारेण 'सरीरेण'
 शरीरं खलु 'णिज्जाउ' निर्यातुं=निर्गच्छतु नश्यतु 'त्तिकडु' इति कृत्वा इति
 मनसि निधाय एवम्=अनेन प्रकारेण संप्रेक्षते=पुनः पुनर्विचारेण शरीरनिर्याणं कर्तुं

सहस्साहं ववरोविज्जंति, तं जइणं अहं एयं सालइयं थंडलंसि सव्वं
 निसिरामि तएणं बहुणं पाणाणं ४ वह कारणं भविस्सइ तं सेयं खलु
 ममेयं सालइयं जाव गाढं सयमेव आहारेत्तए) इस तरह पिपीलिकाओ
 की विराधना देखकर धर्मरुचि अनगार को इस प्रकार आध्यात्मिक
 यावत् मनोगत संकल्प-विचार हुआ-यहां संकल्पके चिन्तित, प्रार्थित,
 कल्पित इन तीन विशेषणों को ग्रहण कर ने के निमित्त सूत्र में ५ का
 अंक दिया है। जब इस शारदिक तिक्त कडवी तुंबडी की शाक की
 एक बिन्दु मात्र जमीन पर डालने पर अनेक पिपीलिका सहस्र प्राणों
 से वियुक्त हो जाती हैं तो मैं जब इस शारदिक तिक्त कडवी तुंबी के
 शाकको पूरुरूपमें जमीन पर परिष्ठापित कर दूंगा तो अनेक प्रणियों ४
 के वह विराधना का कारण होगा इसलिये मुझे उचित है कि मैं ही
 इस शारदिक तिक्त कडवी तुंबडी के इस बहुत मसालेदार एवं स्नेहा-
 वगाढ बहुत घृतसे युक्त शाक को स्वयं आहार कर जाऊँ। (मम चैव
 एणं सरीरेण णिज्जाउत्तिकडु एवं संपेहेइ संपेहित्ता मुहपोत्तियं २

ववरोविज्जंति, तं जइणं अहं एयं सालइयं थंडलंसि सव्वं निसिरामि तएणं बहुणं
 पाणाणं ४ वह कारणं भविस्सइ तं सेयं खलु ममेयं सालइयं जाव गाढं सयमेव आहारेत्तए

आ प्रभाण्णे डीडीओनी विराधना नेधने धर्मरुचि अनगारने आ नतने।
 आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प-विचार-उद्बलन्त्ये। अर्ही संकल्पना चिन्तित,
 प्रार्थित, कल्पित आ त्रणे विशेषणाना अडणु माटे सूत्रमां ५ ने। अंक आप
 वामां आण्ये छे-के न्यारे आ शारदिक तिक्त कडवी तुंबडीना शाकना इकत
 अक टीपाने पृथ्वी उपर नाभवाथी घण्णी डीडीओ हुनरे प्राणोथी वियुक्त
 यध नय छे त्यारे हु शारदिक कडवी तुंबडीना मधा शाकने पृथ्वी उपर
 नाभीश त्यारे ते अनेक प्राणोओ ४ नी विराधनानुं कारणु थशे। अथी मने
 ओण थोग्य दागे छे के हु आ शारदिक तिक्त कडवी तुंबडीना आ सरस
 भसादावाणा अने धी तरता शाकने पोते न आर्ध नउ.

निश्चिनुते । संप्रेक्ष्य-‘ मुहपोत्तियं ’ मुखपोत्तिकां=सदोरकमुखवस्त्रिकां रजोहरणं च प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य ‘ ससीसोवरियं ’ सशीर्षोपरिकं=चरणतलाद् मस्तकोपरि-भाग्यन्तं कायं=शरीरं, ‘ पमज्जेइ ’ प्रमार्जयति, प्रमार्ज्यं तद् शारदिकं तिक्तकडुकं बहुसंभारसंभृतं स्नेहावगाढं विलमिव पन्नगभूतेन आत्मना सर्वं शरीरकोष्ठके=उदरे प्रक्षिपति मुखस्य पार्श्वद्वयस्पर्शरहितमाहारयतीत्यर्थः । ततः खलु तस्य धर्मरुचेस्तद्

पडिलेहेइ, पडिलेहिता ससीसोवरियं कायं पमज्जेइ पमज्जिता तं सालइयं तिक्तकडुयं बहुनेहावगाढं विलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं सव्वं सरीरकोट्टंसि पक्खिवइ) मेरा ही शरीर इस तिक्त कडु तुंबडी के आहार से नाश होवे इस प्रकार उन्होंने अपने मनमें बार २ सोचा सोचकर अपने शरीर के निर्याण करने का उन्होंने निश्चय कर लिया । निश्चय करने के अनन्तर सदोरक मुखवस्त्रिका एवं रजोहरण इनकी उन्होंने प्रतिलेखना करके फिर वे चरण तल से लेकर मस्तकोपरिभाग पर्यन्त तक के समस्त अपने शरीर की प्रमार्जना करके उन्होंने उस शारदिक तिक्त कडुवी तुंबडी के बहुत मसाला से युक्त एवं स्नेहावगाढ बहुत घी से युक्त समस्त शाक का आहार कर लिया-जिस प्रकार सर्प जब बिल में प्रविष्ट होता है तब बिल के दोनों पार्श्वभागों को स्पर्श नहीं करता हुआ उसमें सीधा प्रविष्ट हो जाता है-उसी तरह वह शाक रूप सर्प भी मुख रूप बिल के दोनों पार्श्वभागों को स्पर्श नहीं करता हुआ सीधा गले से होकर पेट में चला गया । (तएणं तस्स

(मम चेव एएणं सरीरेणं णिज्जाउत्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहिता मुहपोत्तियं २ पडिलेहेइ, पडिलेहिता ससिसोवरियं कायं पमज्जेइ पमज्जिता तं सालइयं तिक्तकडुयं बहुनेहावगाढं विलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं सव्वं सरीरकोट्टंसि पक्खिवइ)

माइं शरीर न आ तिक्त कडुवी तुंबडीना आहारथी नष्ट थाय. आ रीते तेण्णे पोताना मनमां वारंवार विचार कथी. विचारीने पोताना शरीरने नष्ट करवाने तेमण्णे भञ्जम विचार कथी आइ तेण्णे सदोरक मुखवस्त्रिका अने रजोहरणुनी तेमण्णे प्रतिदोषना करी. प्रतिदोषना करीने तेमण्णे पगना तणियाथी भांडीने मस्तक सुधीना पोताना आभा शरीरनी प्रमार्जना करी त्यारे तेमण्णे ते शारदिक तिक्त कडुवी तुंबडीना सरस मसालावाणा अने उपर घी तरता अथा शाकने आहार करी लीघा. जेवी रीते साय त्यारे दरमां प्रवेशे छे त्यारे दरना अने पार्श्वलागने स्पर्श कथी वगर तेमां सीधा प्रविष्ट थई नाय छे तेमण्णे ते शाक इपी साय पण्णु मुण्णु इपी दरना अने पार्श्वलागने स्पर्श वगर सीधुं गणामा थईने पेटमां नर्तु रद्धं.

शारदिकं यावत्-स्नेहावगाढम् आहारितस्य=भुक्तवतः, सतो मुहुर्तान्तरेण परिण-
म्यमाने=आहारे परिणामं प्राप्ते सति शरीरे वेदना प्रादुर्भूता, सा कीदृशी ? त्याह-
उज्ज्वला=तीव्रा, यावद् 'दुरहियासा' दुरध्यासा=दुरधिसदा-असह्येत्यर्थः । ततः
खलु स धर्मरुचिरनगारो ऽस्थामा, हीनपराक्रमः, अवलः=मनोबलरहितः अवीर्यः=
हतोत्साहः अपुरुषकारपराक्रमः,=पुरुषार्थहीनः, 'अधारणिज्जमितिकद्दु' अधार-
णीयमिति कृत्वा-धारयितुमशक्यमिदं शरीरमिति मनसि विचार्य 'आयारभंडगं'
आचारभाण्डकम्-आचाराय आचारपालनार्थं भाण्डकं=भाण्डोपकरणं वस्त्रपात्रादिक-

धम्मरुइस्स तं सालइयं जाव नेहावगाढं आहारियस्स समाणस्स मुहुत्तं
तरेणं परिणममाणंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुर-
हियासा-तएणं से धम्मरुई अणगारे अयामे अवले अवीरिए अपुरिस-
क्कारपरकमे अधारणिज्जमिति कद्दु अधारभंडगं एगंते ठवेइ, ठवि-
त्ता थंडिल्लं पडिलेहेइ, पडिलेहिता दब्भसंधारगं संधारेइ, संधारित्ता
दब्भसंधारगं, दुरुहइ, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसन्ने कर-
यल परिग्गहियं एवं वयासी) शाक उन धर्मरुचि अनगार के पेट में
पहुँचते ही एक मुहूर्त के बाद जब वह पचने लगा तब उनके शरीर
में उज्ज्वल यावत् दुरधिध्यास वेदना प्रकट हुई । इस से वे धर्मरुचि
अनगार पराक्रम से हीन, मनोबल से विहिन, हतोत्साह होकर पुरु-
षार्थ रहित बन गये । यह शरीर अब धारण करने से अशक्य हो रहा
है ऐसा जब उन्होंने प्रतीत होने लगा तब उन्होंने अपने आचारभांडक
पंचविध आचार पालने के लिये जो - वस्त्र - पात्रादिक थे उनको
-एकान्त में रख दिया-रखकर फिर उन्होंने ने संस्तारकभूमि की

(तएणं तस्स धम्मरुइस्स तं सालइयं जाव नेहावगाढं आहारियस्स समा-
णस्स मुहुत्तंतरेणं परिणममाणंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव
दुरहियासा-तएणं से धम्मरुई अणगारे अयामे, अवले अवीरिए अपुरिसक्कारपर-
कमे अधारणिज्जमिति कद्दु आयारभंडगं एगंते ठवेइ, ठवित्ता थंडिल्लं पडि-
लेहेइ, पडिलेहिता दब्भसंधारगं संधारेइ, संधारित्ता दब्भसंधारगं दुरुहइ,
दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसन्ने करयलपरिग्गहियं एवं वयासी)
शाक ते धर्मरुचिना पेटमां पडोयतां न ओइ मुहुत्तं पथी न्यादे तेनुं
पाचन शइ थयु त्यादे तेमना शरीरमां उल्लवव यावत् दुरधिध्यास वेदना थवा
मांडी. तेथी ते धर्मरुचि अनगार पराक्रम वगर, मनोबल वगर हतोत्साही
थरने पुरुषार्थ वगर गनी गया. डवे आ शरीर टकुं अशक्य थथ पडयुं
छे ओवी न्यादे तेमने प्रतीति थवा लागी. त्यादे, तेमणे पोताना आचार

मित्यर्थः, एकान्ते स्थापयति, स्थापयित्वा स्थण्डिलं=संस्तारकभूमिं प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य दर्भसंस्तारकं 'संधारेइ' संस्तृणाति=आस्तृतं करोति संस्तीर्य, दर्भसंस्तारकं दूरोहति=आरोहति, दूरुह्य पौरस्त्याभिमुखः=पूर्वदिगभिमुखः, 'संपलियं-कनिसन्ने' संपल्यङ्क निषण्णः=पद्मासनसंनिविष्टः, करतलपरिगृहीतं=संयोजितहस्त-तलद्वयं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्=स्वमनस्युक्तवान्,
 " नमोऽस्थुणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं,—

—णमोऽस्थुणं धम्मघोसाणं थेराणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसयाणं " नमोऽस्तु खलु अर्हद्दयो भगवद्दयो यावत् संप्राप्तेभ्यः, नमोस्तु खलु धर्मघोषेभ्यः स्थविरेभ्यो मम धर्माचार्येभ्यो धर्मोपदेशकेभ्यः, पूर्वमपि दीक्षाग्रहणकालेऽपि खलु मया धर्मघोषाणां स्थविराणामन्तिके सर्वः प्राणातिपातः प्रत्याख्यातो यावज्जीवं 'यावत् परिग्रहः' अत्र यावच्छब्देन-सर्वो मृषावादः, सर्वमदत्तादानं सर्वं मैथुनं च प्रत्याख्यातम्, तथा-सर्वः परिग्रहः प्रत्याख्यातः। इदानीमपि खलु अहं तेषामेव भगवतामन्तिके सर्वं प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि यावत् परिग्रहं प्रत्याख्यामि याव-

प्रतिलेखना की प्रतिलेखना करके फिर उसके ऊपर उन्होंने दर्भसंस्तारक को बिछाया-बिछाकर फिर वे उसपर बैठकर फिर पूर्वदिशा की और मुखकर पर्यङ्कासन से उस पर विराजमान हो गये विराजमान होकर उन्होंने अपने दोनों हाथों को जोड़ा ओर मस्तक पर उसकी अंजलि रखकर इस प्रकार अपने मन ही मन वे कहने लगे- (नमोऽस्थुणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं, णमोऽस्थुणं धम्मघोसाणं थेराणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसयाणं पुब्बिपि णं मए धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जावजीवाए जाव परिग्रहे इयाणि पि अहं तेसिंचेव भगवताणं अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव

लांडकने-पत्र पात्र-वगेरेने ओकांतमां भूडी हीधां. भूक्या षाह तेओओ सस्ता-रक लूमिनी प्रतिलेखना करी. प्रतिलेखना करीने तेनी उपर तेमणे हर्लं सस्ता-रक कथी हर्लंसस्तारक पाथरीने तेओतेनी उपर भेसीने पूर्वदिशा तरइ सुभ करीने पयंकासनथी तेनी उपर विराजमान थर्ल गथा. विराजमान थर्लने तेओओ पोताना अंने हाथेने ओडथा अने तेमनी अंजली अनावीने मस्तक उपर भूडी अने पोताना मनमां अ कडेवा लाओया.

(नमोऽस्थु णं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं णमोऽस्थुणं धम्मघोसाणं थेराणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसयाणं पुब्बिपि णं मए धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव जीवाए जाव परिग्रहे, इयाणि पि अहं तेसिंचेव

ज्जीवं, यथा-स्कन्दकः=स्कन्दकवत् यावच्चरमे-रुच्छ्वासैः, 'वोसिरामितिकट्टु' व्युत्सृजामि=शरीरं परित्यजामि' इति कृत्वा "आलोइय पडिकंते" आलोचितप्रति कान्तः=पूर्वकृतं यदतीचारजातं तदालोचितं, पुनरकरणप्रतिज्ञया प्रतिक्रान्तं येन स तथाभूतः समाधिप्राप्तः=आत्मसमाधियुक्तः कालगतः=मरणं प्राप्तः ॥सू०३॥

मूलम्-तएणं ते धम्मघोसा थेरा धम्मरुई अणगारं चिरं गयं जाणित्ता समणै निग्गंथे सदावेति सदावित्ता एवं वयासी

परिग्रहं पचचक्खामि जाव जीवाए जहा खंदओ जाव चरिमेहिं उस्सा सेहिं वोसिरामित्ति कट्टु आलोइय पडिकंते समाहिपत्ते कालगए) यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए अरिहंत भगवंतो के लिये मेरा नमस्कार हो-धर्मोपदेशक मेरे धर्माचार्य श्री धर्मघोषस्थविर के लिये मेरी नमस्कार हो मैंने पहिले दीक्षा ग्रहण के समय उन धर्मघोष स्थविर के समीप समस्त प्राणातिपात, समस्त मृषावाद, समस्त अदत्तादान, समस्त मैथुन तथा समस्त परिग्रह जीवन पर्यन्त प्रत्याख्यान कर दिया है । अब भी मैं उन्हीं भगवंतो के समक्ष समस्त प्राणातिपात यावत् समस्त परिग्रह का यावज्जीव प्रत्याख्यात करता हूँ । यावत् अन्तिम श्वासोत्तक स्कन्दककी तरह इस शरीरका परित्याग करता हूँ । इस प्रकार मन ही मन कह कर वे धर्मरुचि अनागार आलोचित प्रतिक्रान्त बनकर आत्मसमाधिमें तल्लीन होते हुए मरण प्राप्त हुवे सू०३॥

भगवंताणं अंतियं सत्वं पाणाइवायं पचचक्खामि जाव परिग्रहं पचचक्खामि जाव जीवाए जहा खंदओ जाव चरिमेहिं उस्सासेहिं वोसिरामित्ति कट्टु आलोइयपडिकंते समाहिपत्ते कालगए)

यावत् सिद्धिगति भेगवेत्ता अरिहंत भगवंतोना भाटे भारा नमस्कार छे. धर्मोपदेशक भारा धर्माचार्य श्री धर्मघोष स्थविरना भाटे भारा नमस्कार छे. पहिला दीक्षा ग्रहण करती वधते में ते धर्मघोष स्थविरनी पासे समस्त प्राणातिपातो, समस्त मृषावाद्यो, समस्त अदत्तादानो समस्त मैथुनो तथा समस्त परिग्रहोतुं प्रत्याख्यान करुं हुनुं. अत्यारे पणु ते जे भगवंतोनी सामे समस्त प्राणातिपात यावत् समस्त परिग्रहोतुं यावज्जीव प्रत्याख्यान करुं छुं. उपनना छेत्ता श्वास सुधी स्कन्दकनी जेम आ शरीरनो त्याग करुं छुं. आ रीते पोताना मनमां जे कहीने ते धर्म-रुचि अनगार आलोचित प्रतिक्रान्त आत्मसमाधिमां तल्लीन यतां मरणु पाभ्या. ॥ सूत्र " ३ " ॥

—एवं खलु देवाणुप्पिया ! धम्मरुई अणगारे मासखमण-
 पारणगंसि सालइयस्स जावगाढस्सणिासरणट्टयाए बहिया
 निग्गए चिरगए तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! धम्म-
 रुइस्स अणगारस्स सच्चओ समंता मग्गणगवेसणं करेह,
 तएणं ते समणा निग्गंथा जाव पडिसुणेति, पडिसुणित्ता
 धम्मघोसाणं थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनि-
 क्खमित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सच्चओ समंता मग्गण-
 गवेसणं करेमाणा जेणेव थंडिल्लं तेणेव उवागच्छंति उवा-
 गच्छित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सरीरगं निप्पाणं निच्चेट्ठं
 जीवविप्पजडं पासंति पासित्ता हा हा अहोअकज्जमितिकट्टु
 धम्मरुइस्स अणगारस्स परिनिव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेति
 करित्ता धम्मरुइस्स आयारभंडगं गेण्हंति गेण्हित्ता जेणेव
 धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता गमणा-
 गमणं पडिक्कमंति पडिक्कमित्ता एवं वयासी—एवं खलु अम्हे
 तुब्भं अंतियाओ पडिनिक्खमामो२ सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स
 परिपेरंतेणं धम्मरुइस्स अणगारस्स सच्च जाव करेमाणे जेणेव
 थंडिल्ले तेणेव उवा०२ जाव इहं हव्वमागया, तं कालगए
 णं भंते ! धम्मरुई अणगारे इमे से आयारभंडए, तएणं
 ते धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं गच्छंति गच्छित्ता
 समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य सदावेति सदावित्ता एवं वयासी
 —एवं खलु अज्जो ! मम अंतेवासी धम्मरुची नाम अणगारे

पगइभदए जाव विणीए मासं मासेणं अणिकिखत्तेणं तवो-
 कम्मेणं जाव नागसिरीए माहणीए गिहे अणुपविट्ठे, तएणं
 सा नागसिरी माहणी जाव निसीरइ, तएणं से धम्मरुई
 अणगारे अहापज्जत्तमितिकहु जाव कालं अणवकंखेमाणे वि-
 हरति, से णं धम्मरुई अणगारे बहूणि वासाणि सामन्नप-
 रियागं पाउणित्ता आंलोइयपडिकंते समाहिपत्ते कालमासे
 कालं किच्चा उड्डं सोहम्मजाव संबवट्टसिद्धे महाविमाणे देव-
 त्ताए उववत्ते, तत्थ णं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं साग-
 रोवमाइं ठिई पन्नत्ता, तत्थ धम्मरुइस्सवि देवस्स तेत्तीसं
 सागरोवमाइं ठिई पणत्ता से णं धम्मरुई देवे ताओ
 देवलोगाओ जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ तं धिरत्थुणं
 अज्जो ! णागसिरीए माहणीए अधन्नाए अणुन्नाए जाव णिं
 बोलियाए जाए णं तहारुवे साहु धम्मरुई अणगारे मास-
 खमणपारणगंसि सालइएणं जाव गाढेणं अकाले चेव जीवि-
 याओ ववरोविए ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘ तएणं ते ’ इत्यादि । ततः खलु=इतच्च ते धर्मघोषाः स्थविरा
 धर्मरुचिमनगारं चिरं गतं बहुकालतो गतं ज्ञात्वा भ्रमणान् निर्ग्रन्थान् शब्दयति,

तएणं ते धम्मघोसा थेरा इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते धम्मघोसा थेरा) उन-धर्मघोष
 स्थविरने (धम्मरुइं अणगारं) धर्मरुचि अनगार को (चिरंगयं जाणित्ता)
 बहुत देर के गये हुए जानकर (समणे निगंये सदावेत्ति, सदावित्ता एवं

तएण ते धम्मघोसा थेरा इत्यादि

टीकार्थ—(तएणं) त्याख्याइ (ते धम्मघोसा थेरा) ते धर्मघोष स्थविरे (धम्म-
 रुइं अणगारं) धर्मरुचि अनगारने (चिरंगयं जाणित्ता) बहुत वधतथी भंडार
 गयेला लक्ष्मीने

शब्दयित्वा, एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अवादिषुः=उक्तवन्तः, एवं खलु हे देवानु-
प्रियाः ! धर्मरुचिरनगारो मासक्षणपारणके शारदिकस्य तिक्तकडुकतुम्बकस्य
यावत्-स्नेहावगाढस्य ' गिसिरणद्वयाए ' निसृजनार्थं वहिर्निर्गतश्चिरगतः=तस्मिन्
गते सति बहुतरः कालो व्यतीत इत्यर्थः । तत्-तस्माद् गच्छत खलु यूयं हे देवानु-
प्रियाः ! धर्मरुचेरनगारस्य सर्वतः समन्ताद् मार्गणगवेषणं=सम्यगन्वेषणं कुरुत ।
ततः खलु ते श्रमणा निर्ग्रन्था यावत् प्रतिशृण्वन्ति=तथा करिष्यामीत्युक्त्वा तामाज्ञां
स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य धर्मघोषाणां स्थविराणामन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनि

वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! धम्मरुई अणगारे मासखमणपारण-
गंसि सालइयस्स जाव गाढस्स गिसिरणद्वयाए बहिया निग्गए-चिरगए,
तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! धम्मरुइयस्स अणगास्स सव्वओ
समंता गवेषणं करेह) श्रमण निर्ग्रन्थों को बुलाया । बुलाकर उनोंने
ऐसा कहा-हे देवानुप्रियो ! धर्मरुचि अनगार आज मासखमण की
पारणा के दिन शारदिक तिक्त कडुयी तुंबडी का बहु संभार संभृत
शाक कि जिसके ऊपर घृत तैर रहा था लाये थे-मैंने उसे परिष्ठापन के
लिये उन्हें आज्ञा दिया सो वे उसे परिष्ठापन करने के लिये यहाँ
से बाहिर चले गये-गये उन्हें बहुत देर हो गई-वे अभीतक नहीं
आये इसलिये हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और धर्मरुचि
अनगार की सब तरफ चारों दिशाओं में मार्गणा एवं गवेषणा करो ।
(तएणं ते समणा निग्गंथा जाव पडिसुणेंति, पडि सुणित्ता धम्मघोसाणं

(समणे निग्गंथे सदावेति सदावित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया !
धम्मरुई अणगारं मासखमणपारणगंसि सालइयस्स जाव गाढस्स गिसिरणद्वयाए
बहिया निग्गयाए-चिरगए, तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! धम्मरुइस्स अण-
गारस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेषणं करेह)

श्रमणु निर्ग्रन्थेने जोलाव्या. जोलावीने तेभने आ प्रभाणु कडु-के डे
देवानुप्रियो ! धर्मरुचि अनगार आजे भास भमणुनी पारणाना देवसे शार-
दिक तिक्त कडुयी तुंबडीनुं सरस वधारेलु उपर धी तरतुं शाक आडार भाटे
लाव्या डता. तेओने भं प्रतिष्ठापाननी आज्ञा आपी छे, तेओ परिष्ठापन
भाटे अडुंधी भडार गया छे. तेओने भडार गयाने अहु न वणत थयो छे,
हुण तेओ आव्या नथी. ओथी डे देवानुप्रियो ! तभे लोके जओ अने
धर्मरुचि अनगारनी ओभेर भार्गणा तेभन गवेषणा करे.

(तएणं ते समणा निग्गंथा जाव पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता धम्मघोसाणं

कर्म्य धर्मरुचेरनगारस्य सर्वतः समन्ताद् मार्गणगवेपणं कुर्वन्तो यत्रैव स्थण्डिलं= स्थलं धर्मरुचेरनगारस्य कालकरणस्थानं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य धर्मरुचेर- नगारस्य शरीरकं 'निष्पाणं' निष्पाणं=प्राणरहितं, 'निच्चेष्टं' निश्चेष्टं=चेष्टा- रहितं 'ज्वविप्पजहं' जीव विमत्यक्तं=जीवहीनं पश्यन्ति, दृष्ट्वा हा ! हा ! अहो ! इति खेदे, 'अकज्जं' अकार्यम्=अनिष्टं जातं यद् धर्मरुचिनगारो मृतः, 'तिकट्टु'

धेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता धम्मरुइस्स- अणगाहस्स सव्वाओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणा जेणेव थंडिल्लं तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सरीरगं निष्पाणं निच्चेष्टं जीवविप्पजहं पासंति, पासित्ता हा हा अकज्जमित्ति कट्टु धम्मरुइस्स अणगारस्स परि निव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं-करंति) उन निर्ग्रन्थ श्रमणों ने अपने धर्माचार्य की इस आज्ञा को यावत् स्वीकार कर लिया । और स्वीकार करके फिर वे धर्मघोष स्थविर के पास से निकले निकल कर उन्होंने धर्मरुचि अनागार की चारों दिशाओमें सब प्रकार से मार्गणा गवेपणा की । इस तरह मार्गण गवेषणा करते हुए जहां वह स्थण्डिल था-धर्मरुचि अनागार की मृत्यु होने का स्थान था- वहां आये वहां आकर के उन्होंने धर्मरुचि अनगार के शरीर को प्राण- रहित, चेष्टा रहित और जीव रहित देखा । देखकर के सहसा उनके मुख से हाय हाय यह खेद सूचक शब्द निकल पड़ा वे कहने लगे यह बड़ा अनिष्ट हुआ-जो धर्मरुचि अनागार का देहावसान हो गया ।

धेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वा- ओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणा जेणेव थंडिल्लं तेणेव उवागच्छंति उवाग- च्छित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स, सरीरगं निष्पाणं निच्चेष्टं जीव विप्पजहं पासंति, पासित्ता हाहा अकज्जमित्ति कट्टु धम्मरुइस्स अणगारस्स परिनिव्वाणवत्तियं काउ- स्सग्गं करंति)

ते निर्ग्रन्थ श्रमणोऽप्ये पोताना धर्माचार्यनी आज्ञाने स्वीकारी लीधी अने स्वीकारीने तेऽप्यो धर्मघोष स्थविरनी पासैथी नीकणीने धर्मरुचि अनगारनी अधी रीते योभेर मार्गणा तेमञ्ज गवेषणा करवा लाग्या. आ रीते मार्गणु गवेषणु करतां न्यां ते स्थण्डिलं उतुं-धर्मरुचि अनगारना मृत्युनुं स्थानं उतुं त्यां आव्या त्यां आवीने तेऽप्योऽप्ये धर्मरुचि अनगारना शरीरने निष्पाणु निश्चेष्टं अने निज्जं व जेथु. आ दस्य जेतानी साथे न तेऽप्योना मुपथी हाय ! हाय ! ना भेद सूचक शब्दो नीकणी पड्या. तेऽप्यो उडेवा लाग्या के आ षडु न जोडुं थयुं छे-धर्मरुचि अनगारनुं देहावसानं थरं थयुं छे. आ

इतिकृत्वा-इतिखेदं कृत्वा धर्मरुचेरनगरस्य 'परिनिव्वाणवन्नियं' परिनिर्वाण-
प्रत्ययिकं=परिनिर्वाणं मरणं तत्र यन्मृतशरीरस्य परिष्ठापनं तदपि परिनिर्वाणमेव
तदेव प्रत्ययोद्देश्यस्य स परिनिर्वाणप्रत्ययिकः तं तथा, मृतपरिष्ठापननिमित्तकमि-
त्यर्थः कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, कृत्वा धर्मरुचेरनगरस्याऽऽचारभाण्डकं=वस्त्रपात्रादिकं
गृह्णन्ति-गृहीत्वा यत्रैव धर्मघोषाः स्थविरास्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य गमनागमनम्=
ईर्यापयिषीं प्रतिक्रामन्ति, प्रतिक्राम्यैवमवादिषुः एवं खलु हे स्वामिन् । वयं युष्मा-
कमन्तिहात् प्रतिनिष्क्रामामः=प्रतिनिर्गताः, प्रतिनिष्क्रम्य सुभूमिभागस्योद्यानस्य

इस प्रकार कहकर उन्होंने वहीं पर मृत शरीर को बोसराने रूप कायो-
त्सर्ग किया । (करित्ता० उवागच्छ०) कायोत्सर्ग करके फिर उन्होंने
उन धर्मरुचि अनागर के आचार भांडको को वस्त्र पात्रादिकों को-उठा
लिया-उठाकर वे जहां धर्मघोष स्थविर थे-वहां आये (उवागच्छित्ता
गमनागमनं पडिक्कमन्ति, पडिक्कमित्ता एवं वयासी-एवं खलु अम्हे-
तुब्भं अंतियाओ पडि निक्खमामो २ सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स परिपे-
रंतेणं धम्मरुइस्स अगगारस्स सव्व जाव करेमाणे जेजेव थंडिल्ले तेणेव
उवा० २ जाव इहं हव्वमागया, तं कालगणं भंते ! धम्मरुई अगगारे
इमे से आयारभंडए - तएणं ते धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं
गच्छति गच्छित्ता समणे निगंथे निगंथीओ य सदावेति-सदावित्ता
एवं वयासी) आकर के उन्होंने ईर्यापयिक प्रतिक्रमण किया ।
प्रतिक्रमण करके फिर इस प्रकार वे कहने लगे हे स्वामिन् ! हम लोग
आपके पास से यहां से गये-और जाकर सुभूमिभाग उद्यान की चारों

रीते कहीने तेमणे त्याज मृत शरीरने बोसराना रूप कायोत्सर्ग कथीं.
(करित्ता० उवागच्छ०) कायोत्सर्ग करीने तेओओ धर्मरुचि अनागरना आयार
भांडकेने तेमज वओने लईलीधा अने लईने न्यां धर्मघोष स्थविर उता त्यां आओया.
(उवागच्छित्ता गमनागमनं पडिक्कमन्ति, पडिक्कमित्ता एवं वयासी-एवं
खलु अम्हे तुब्भं अंतियाओ पडिनिक्खमामो २ सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स
परिपेरंतेणं धम्मरुइस्स अगगारस्स सव्व जाव करेमाणे जेजेव थंडिल्ले
तेणेव उवा० जाव इहं हव्व-मागया तं कालगणं भंते ! धम्मरुई अगगारे
इमे से आयारभंडए तएणं ते धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं गच्छति
गच्छित्ता समणे निगंथे निगंथीओ य सदावेति-सदावित्ता एवं वयासी)
त्यां आवीने तेमणे ईर्यापयिक प्रतिक्रमण कथुं. प्रतिक्रमण करीने तेओ
आ प्रभाणे कडेवा लाग्या के हे स्वामिन् ! अमे लोके अहीथी आपनी
पासेथी गया अने नईने सुभूमिभाग उद्याननी ओमेर इरतां इरतां धर्मरुचि

‘परिपेरंतेण’ परिपर्यन्तेन=चतुर्दिक्षु परिभ्रमन्तो धर्मरुचेरनगारस्य ‘सव्वजाव’ सर्वतः समन्ताद् मार्गणगवेषणं कुर्वन्तो यत्रैव स्थण्डिलं तत्रैवोपागच्छामः, उपागम्य यावद् इह दृश्यमागताः स कालगतः खलु हे भदन्त ! धर्मरुचिरनगारः, इमानि ‘से’ तस्य, आचारभाण्डकानि । ततः ख ते धर्मघोषाः स्थविराः ‘पुव्वगए’ पूर्वगते=दृष्टिवादान्तर्गतश्रुताधिकारविशेषे उपयोगं गच्छन्ति=लगयन्ति यदा धर्मरुचिराहारमानेतुं नगर्यां गतस्तदा कस्य गृहे गतः ? केनेदमाहारंदत्त’ मित्यादि ज्ञातुं स्वकीयोपयोगं नयन्तीत्यर्थः, गत्वा—स्वकीयोपयोगं लगयित्वा, श्रमणान् निर्ग्रन्थान् निर्ग्रन्थीश्च शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—एवं खलु हे आर्याः । ममान्तेवासी=शिष्यः, धर्मरुचिर्नामाऽनगारः ‘पगइमइए’ प्रतिकभद्रकः=प्रकृत्या

दिशाओं में फिरते २ धर्मरुचि अनगार की सर्व प्रकार से मार्गण, गवेषणा करने लगे । मार्गणा, गवेषणा करते हुए हम लोग फिर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ धर्मरुचि अनगार का शव पड़ा हुआ था वहाँ से अभी २ हम लोग आरहे हैं । हे भदन्त ! वे धर्मरुचि अनगार कालगत हो गये हैं—वे उनके आचार भाण्डक वस्त्र पात्र हैं । इस के बाद उन धर्मघोष स्थविर ने दृष्टि बाद के अंतर्गत श्रुताधिकार विशेष में अपना उपयोग लगाया—तो उन्हें यह ज्ञात हो गया कि जब धर्मरुचि आहार लेने के लिये नगरी में गये तो वे किसके घर गये, किस ने यह आहार उन्हें दिया इत्यादि । अपने उपयोग से इस बात को जानकर उन्होंने निर्ग्रन्थ श्रमणों और निर्ग्रन्थ श्रमणियों को बुलाया और बुलाकर उनसे ऐसा कहा—(एवं खलु अज्जो मम अंतेवासी, धम्मरूई, णाम

अनगारनी षधी रीते भार्गणा गवेषणा करवा दाग्घा. भार्गणा तेमज गवे-
षणा करतां अमे दोके ते जग्घाअे पडिंअ्या न्यां धर्मरुचि अनगारनुं मडडं
पडथुं डंतुं. अमे दोके अत्यारे त्यांथी ज आवी रद्धा छीअे. डे लहंत ! ते
धर्मरुचि अनगार भरणु पाअ्या छे. तेअेअीना आ आअार लांडक वस्त्रपात्रो
छे. त्थारपछी ते धर्मघोष स्थविरे दृष्टिवादना अंतर्गत श्रुताधिकार विशेषमां
पोताने उपयोग दाग्घाअे. तेमांथी तेअेअेने आ वातनी नाणु थध डे न्यारे
धर्मरुचि आहार दाववा माटे नगरीमां गया डता, त्त्यारे तेअेअे डेना घेर
गया डता, आ आहार तेमने डेअे आअेअे डते वगेरे. पोताना उपयोगथी
आ षधी विगत नाण्णीने तेमअे निर्ग्रन्थ श्रमणो अने निर्ग्रन्थ श्रमणीअेअेने
पोतानी पासे ओलावी अने ओलावीने तेमने आ प्रमाअे डधु डे—

(एवं खलु अज्जो मम अंतेवासी, धम्मरूई णाम अणगारे पगइमइए जाव

स्वभावेन भद्रकः-शान्तः, यावद्-यावत् करणादिदं द्रष्टव्यम्-‘पगइ उवसंते, पगइ-पयणु कोहमाणमायालोहे, मिउमहवसंपण्णे, आलीणे, भदए, इति । प्रकृत्यु-पशान्तः, प्रकृति प्रतनुक्रोधमानमाया लोमः, सृदु मार्दवसंपन्नः, आलीनः, भद्रकः, इति । विनीतः ‘मासं मासेणं’ मासं व्याप्य मासेन=मासक्षणनामकेन, अनिक्षि-प्तेन=अन्तरहितेन, अविश्रान्तेनेत्यर्थः तपः कर्मणा विचरन् पारणकदिने यावत्-नागश्रिया ब्राह्मण्यागृहमनुपविष्टः, ततस्तदनन्तरं सा नागश्री ब्राह्मणी यावत्-शारदिकं तिक्कालावुकं ‘निसिरइ’ निसृजति=पात्रे निक्षिपतिस्म । ततः धर्मरुचि-

अणगारे पगइभदए जाव विणीए मासं मासेणं अणिक्खित्तेणं तवोक-म्मेणं जाव नागसिरीए माहणीए गिहे अणुपविष्टे तएणं सा नागसिरी माहणी जाव निसीरइ, तएणं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जमिच्छि कइहु जाव कालं अणवकंखेमाणे विहरइ, सेणं धम्मरुई अणगारे बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पउणित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहि पत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्डुं सोहम्म जाव सव्वइसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववन्ने ठिई पण्णत्ता) आर्यो ! सुनो वात ऐसी है मेरे अन्ते वासी शिष्य-धर्मरुचि अनगार स्वभाव से ही भद्र परिणामी थे। यावत् शब्द से इस पाठ का यहाँ संग्रह हुआ है “पगइ उवसंते पगइ पगणु कोहमाणमाया लोहे मिउमहवसंपण्णे आलीणे भदए” । ये अविश्रान्त अंतर रहित-मास मासखमण पारणा करले थे । आज उनके पारणा का दिन था-सो गोचरीके लिये श्रद्धण करते हुए ये नागश्री ब्राह्मणीके घर

विणीए मासं मासेणं अणिक्खित्तेणं तवो कम्मेणं जाव नागसिरीए माहणीए गिहे अणुपविष्टे तएणं सा नागसिरी माहणी जाव निसीरइ, तएणं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जमिच्छि कइहु जाव कालं अणवकंखेमाणे विहरइ, सेणं धम्मरुई अणगारे बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं पउणित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्डुं सोहम्म जाव सव्वइसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववन्ने ठिई पण्णत्ता) आर्यो ! सांलणो, वात येवी छे डे भारा अन्तेवासी शिष्य-धर्मरुचि अनगार स्वभावथी ज् भद्र परिणामी इता. यावत् शब्दथी अही आ पाठने संग्रह थये छे-“पगइ उवसंते” (पगइपयणुकोहमाणमायालोहे मिउमहवसंपण्णे आलीणे भदए) तेओ अविश्रान्त-अंतर रहित-(निरंतर) मास भमणु करता रहेता इता. आजे तेमने पारणाने दिवस इतो, तेओ आडार भाटे भ्रमणु करतां नागश्री ब्राह्मणीना घर गया इता. ब्राह्मणीये शारदिक तिक्त

रनगारो यथापर्याप्तमिति कृत्वा=क्षुधानिवृत्तये पूर्णमिति मत्वा यावत्-कालम् 'अवणसंखेमाणे' अनवकाङ्क्षमाणः विहरति, स खलु धर्मरुचिरनगारो बहूनि वर्षाणि श्रमण्यपर्यायं पालयित्वा, आलोचित प्रतिक्रान्तः समाधिप्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा ऊर्ध्वं 'सोहगम जात्र सव्वट्टसिद्धे' सौधर्मादयो द्वादशदेवलोकाः, तत उर्ध्वं नवप्रैवेयकानि तदुपरि यावत् सर्वाधिसिद्धे, महाविमाने देवत्वेनोपपन्न = देवभवं प्राप्तवान्। तत्र=तस्मिन् सर्वार्थसिद्धिमाने, खलु 'अजहण्णमणुक्कोसेण' अजध-न्यानुत्कृष्टेन=जघन्योत्कृष्टवर्जितेन तत्र हि सर्वेषां देवानां स्थितिः समानैव भवति न तु न्यूनाधिक्यकालतया त्रियमेतिमात्रः। त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता, तत्र धर्मरुचेरपि देवस्य त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता, स खलु धर्मरुचि-देवस्तस्माद् देवलोकाद्=सर्वार्थसिद्धिमानाद् यावद् व्युतः सन् यावद् महाविदेहे वर्षे सिञ्जिहिह' सेस्सति, सिद्धिं प्राप्स्यति। तत्=तस्माद् त्रिगस्तु खलु हे

पहुंचे। यावत् उसने शारदिक तिक्त कडवे तुंचे की शार उनके पात्र में बोहरारा धर्मरुचि अनगार ने उसको क्षुधानिवृत्ति के लिये पर्याप्त मान कर लिया। उन धर्मरुचि अनगारने अनेक वर्षों तक श्रमण्य पर्याय का पालन किया और पालन करके आलोचित प्रतिक्रान्त होकर वे समाधि में लीन हो गये। काल अवतर काल करके अब वे सौधर्म आदि १२ देवलोको से ऊपर नवप्रैवेय को से भी आगे जो सर्वार्थसिद्धि नाम का विमान है कि जिसमें ३३ सागर की स्थिति हैं-ओर यह स्थिति जहां सब देवां की समान हैं उसमें ३३ सागर की स्थितिवाले देव हुए हैं। "अजहण्णमणुक्कोसेण" जघ-न्य और उत्कृष्ट तेत्तीस सागरोपम की स्थिति है। (से णं धम्महई देवे ताओ देवलोगाओ जात्र महाविदेहे-वासे सिञ्जिहिह, तं धिरत्थु

ऊर्ध्वं तूअडीनुं शाक तेमना पात्रमा वडोराव्युं. धर्मरुचि अनगारे तेने क्षुधा निवृत्ति भाटे पर्याप्त जज्ञीने तेने स्त्रीदारी लीधुं. ते धर्मरुचि अनगारे धणा वर्षो सुधी श्रामण्य पर्यायतु पालन कथुं छे अने पालन करीने आलोचित प्रतिक्रान्त यग्ने तेओ समाधिमां लीन थज गया छे. काण समये काण करीने डवे तेओ सौधर्म वगेरे णार देववोकोथी उपर नव प्रैवेयकोथी पथु आगग जे सर्वार्थसिद्धि नामे निमान छे डे जेमा उउ सागरनी स्थिति छे अने आ स्थिति जयां जवा देवोनी सरणी छे, तेओ तमां उउ सागरनी स्थितिवाणा देव थया छे 'अजहण्णमणुक्कोसेण' जघन्य अने उत्कृष्ट उउ सागरोपमनी स्थिति छे.

(से णं धम्महई देवे ताओ देवलोगाओ जात्र महाविदेहे-वासे सिञ्जिहिह,

आर्याः ! नागश्रियं ब्राह्मणीमधन्यामगुण्यां यावद् दुर्भग निम्बगुलिकाम्, यथा-
खलु नागश्रिया ब्राह्मण्यातथारूपः प्रकृतिभद्रत्वादिगुणयुक्तः साधुः धर्मरुचिरनगारो
मासक्षपणपारणके शारदिकेन तिक्तालावुकेन यावत् स्नेहावगाढेनाऽकाल एव
जीविताद् व्यपरोपितः ॥सू०४॥

मूलम्-तएणं ते समणा निगंथा धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए
एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म चंपाए सिंघाडगतिग जाव बहुजणस्स
एवमाइक्खंति-धिरत्थु णं देवाणुप्पिया ! नागसिरीए माहणीए
जाव णिंबोलियाए जाए णं तहारूवे साहू साहूरूवे सालइएणं
जीवियाओ ववरोवेइ, तए णं तेसिं समणाणं अंतिए एयमट्ठं
सोच्चा णिसम्म बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ

णं अज्जो ! नागसिरीए माहणीए अधन्नाए, अपुन्नाए, जाव णिंबोलियाए
जाए णं तहारूवे साहू धम्मरूई अणगारे भासखमणपारणगंसि सालइए
णं जाव गाढेणं अकाले. चेव जीवियाओ ववरोविए) वे धर्मरुचि देव
इस देवलोक से चक्कर यावत् महाविदेह क्षेत्र से सिद्धिको प्राप्त करेंगे
आर्यो ! अधन्य, अपुण्य यावत् दुर्भग निम्बगुलिका जैसी अनादरणीय
उस नागश्री ब्राह्मणी को धिक्कार हो-कि जिसने तथारूप, प्रकृति भद्र-
त्वादि गुणों से संपन्न साधु धर्मरुचि अनगर को मासखमण के पारणा
के दिन शारदिक तिक्त कडवी तुंडी का शाक यावत् स्नेहावगाढ बना-
कर दिया-कि जिससे वे अकाल में मरण को प्राप्त हुए ॥ सू० ४ ॥

तं धिरत्थुणं अज्जो ! नागसिरीए माहणीए अधन्नाए, अपुन्नाए, जाव णिंबोलि-
याए जाए णं तहारूवे साहू धम्मरूई अणगारे मासखमणपारणगंसि सालइएणं
जाव गाढेणं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए)

ते धर्मरुचि देव ते देवलोकाधी यवीने यावत् महाविदेह क्षेत्रधी सिद्धिने
भेजवसे हे आर्यो ! अधन्य, अपुण्य, यावत् दुर्भग निम्बगुलिका जैसी अना-
दरणीय ते नागश्री ब्राह्मणीने धिक्कार छे के जेहे तथारूप, प्रकृति भद्रत्व
वगेरे गुणोपाणा साधु धर्मरुचि अनगरने भास भमणुना पारणाना दिवसे
शारदिक तिक्त कडवी तुंडीनुं शाक-के जे सरस वघारेहुं, जेनी उपर धी तरतुं
हुतुं-वडोरावुं, जेने दीधे अकाले जे तेओनुं भरणु थयुं. ॥ सूत्र "४" ॥

धिरत्थु णं नागसिरीए साहणीए जाव जीवियाओ ववरोविए,
तएणं ते साहणा चंपाए नयरीए बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं
सोच्चा निसम्म आसुरुत्ता जाव भिमिमिसेमाणा जेणेव नागसिरी
साहणी तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता णागसिरीं साहणीं
एवं वयासी—हं भो ! नागसिरी ! अपत्थिय पत्थिय दुरंत पंत-
लक्खणे हीणपुण्णचाउद्वसे धिरत्थु णं तव अधन्नाए अपुन्नाए
जाव णिबोलियाए जाव णं तुमं तहारूवे साहू साहूरूवे मास-
खमणपारणंसि सालइएणं जाव ववरोविए, उच्चावएयाहिं
अक्कोसणाहिं अक्कोसेति उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धंसेति
उच्चावयाहिं णिव्भत्थणाहिं णिव्भत्थंति उच्चावयाहिं णिच्छोड-
णाहिं निच्छोडेति तज्जेति तालेति तज्जेत्ता तालेत्ता सयाओ
गिहाओ निज्जुभंति, तएणं सा नागसिरी सयाओ गिहाओ
निच्छूढा समाणी चंपाए नगरीए सिंघाडगतिच्चउक्कचच्चर-
चउम्मुह० बहुजणेणं हीलिज्जमाणी खिसिज्जमाणी निंदिज्जमाणी
गरहिज्जमाणी तज्जिज्जमाणी पव्वहिज्जमाणी धिक्कारिज्जमाणी
थुक्कारिज्जमाणी कत्थइ ठाणं वा निलयं वा अलभमाणी२ दंडि-
खंडनिवसणा खंडमल्लयखंडघडमहत्थमया फुट्टहडाहडसीसा
मच्छियाचडगरेणं अन्नज्जमाणमग्गागेहं गेहेणं देहं वलियाए
वित्तिं कप्पेमाणी विहरइ, तएणं तीसे नागसिरीए साहणीए
तवभवंसि चेव सोलस रोयायंका पाउवभूया, तं जहा—सासे
कासे जोणीसूल जाव कोढे, तएणं सा नागसिरी साहणी

सोलसहिं रोयायंकेहिं अभिभूया समाणी अट्टदुहडवसट्टा काल-
मासे कालं किच्चा छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीससागरो-
वमट्टिइएसु नेरएसु नेरइयत्ताए उववन्ना ॥ सू० ५ ॥

टीका—‘ तएणं ते ’ इत्यादि । ततः खलु ते श्रमणाः निर्ग्रन्था धर्मघोषाणां
स्थविराणामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य चंपार्या शृङ्गाटक-यावन्महापथेषु बहु-
जनस्य एवमाख्यान्ति धिगस्तु खलु हे देवानुप्रियाः ! नागश्रियं ब्राह्मणीं यावद्
दुर्मगनिम्बगुलिकाम् , यया खलु तथारूपः साधुः साधुरूपो धर्मरुचिरनगरः शार-
दिकेन यावत्तिलाबुकेन जीविताह्वयपरोपितः । ततः खलु तेषां श्रमणानामन्तिके

‘ तएणं ते समणा निग्गंथा ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते समणा निग्गंथा धम्मघोसा येणं)
अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म चंपाए सिंघाडगतिग जाव बहुजणस्स एव-
माइक्खंति-धिस्थुणं देवाणुप्पिया ! नागसिरीए जाव णिवोलियाए जाएणं
तहारूवे साहू साहूरूवे सालइएणं जीवियाओ ववरोवेइ) उन श्रमण
निर्ग्रन्थोंने धर्मघोष स्थविर के मुख से इस समाचार को सुनकर और
उसका हृदय में विचार कर चंपानगरी में शृंगटाक यावत् महापथों में
बहुजनों से ऐसा कहा हे देवानुप्रियों ! ब्राह्मणी नागश्री को धिकार है
यावत् निम्ब की निवोली जैसी अनादरणीय है कि जिसने तथा रूप
साधु-साधुरूप धर्मरुचि अनगर को शारदिक यावत् कडबे तुम्बे का
शाक देकर जीवन से रहित कर दिया है । (तएणं तेसिं समणाणं अं-

‘ तएणं ते समणा निग्गंथा ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारणाह

(ते समणा निग्गंथा धम्मघोसा येणं) अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म चंपाए
सिंघाडगतिग जाव बहुजणस्स एव माइक्खंति-धिस्थुणं देवाणुप्पिया ! नाग-
सिरीए महाणीए जाव णिवोलियाए जाए णं तहारूवे साहू साहूरूवे सालइएणं
जीवियाओ ववरोवेइ)

ते श्रमण निर्ग्रन्थो धर्मघोष स्थविरता सुभधी आ वात् सांख्यीने
अने तेने हृदयमां धारण्य करीने चंपानगरीमां शृंगटाक महापथे वगेरेमां धण्य
सांख्यीने आ प्रमाणे कहुं के हे देवानुप्रियो ! ब्राह्मणी नागश्रीने धिक्कार छे
अने ते दीसडानी दीणोणानी नेम अनादरणीय छे केमके तेणु तथा रूप साधु साधु-
रूप धर्मरुचि अनगरमे शारदिक कडवी तूणडीनुं शाक आपीने मारी नाभ्या छे.

एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य बहुजनोऽन्योन्यस्य=परस्परस्य एवमाख्याति-एवं भाषते एवं प्रज्ञापयति, एवं प्ररूपयति धिगस्तु खलु नागश्रिया ब्राह्मण्याः, यया धर्मरुचिः-नगरः शारदिकेन यावद् जीविताद् व्यपरोपितः । ततः खलु ते ब्राह्मणा चंपायं नगर्यां बहुजनस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य, आशुरुताः=शीघ्रं क्रोधाविष्टाः यावत् मिसमिसन्तः=क्रोधानलेन प्रज्वलन्तः, यत्रैव नागश्रीर्ब्राह्मणी, तत्रैवीपागच्छन्ति,

तिए एयमट्टं सोच्चा बहुजणे अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ, एवं भासइ धिरत्थुणं नागसिरीए माहणीए जाव जीवियाओ ववरोविए, तएणं ते माहण चंपाए नयरीए बहुजणस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म आसुरत्ता जाव मिसिमिसेमाणा जेणेव नागसिरी माहणी तेणेव उवागच्छंति) उन श्रमणजनों के मुख से इस समाचार को सुनकर और उसे हृदय में धारण करके अनेक मनुष्य आपस में इस प्रकार कहने लगे बोलने लगे प्रज्ञापना करने लगे प्ररूपणा करने लगे कि ब्राह्मणी नागश्री को धिक्कार है जिसने धर्मरुचि अनगार को शारदिक-तिक्त कडवे तुंवे के शाक से जीवन रहित करदिया है । इस प्रकार उन ब्राह्मणों ने तथा सोम, सोमदत्त, सोमभूति आदि ने जब चंपानगरी में अनेक मनुष्यों के मुख से इस बात को सुना-तो वे सुनकर और उसे अपने २ हृदय में धारण कर इकदम क्रोध से तम तमा उठे और यावत् क्रोधानल से जलते हुए जहां नागश्री ब्राह्मणी थी वहां आये-

(तएणं तेसिं समणाणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा बहुजणे अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ, एवं भासइ धिरत्थुणं नागसिरीए माहणीए जाव जीवियाओ ववरोविए, तएणं ते माहणा चंपाए नयरीए बहुजणस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म आसुरत्ता जाव मिसिमिसेमाणा जेणेव नागसिरी माहणी तेणेव उवागच्छंति) ते श्रमणु लोकेना मुग्घी आ सभायार सांभणीने अने तेने हृदयमां धारणु करीने घणु भाणुसे अेकधीजनी साथे आ रीते वातथीत करवा लाग्या, प्रज्ञापना करवा लाग्या, प्ररूपणा करवा लाग्या के प्राहणु नागश्रीने धिक्कारे छे. जेणे धर्मरुचि अनगारने शारदिक-तिक्त कडवी तुंणडीना शाकथी भारी नाभ्या. आ रीते ते प्राहणुअे अेटवे के सोम, सोमदत्त अने सोमभूतिअे न्यारे चंपा नगरीना अनेक भाणुसेना मुग्घी आ वात सांभणी त्यारे तेअे सांभणीने अने तेने हृदयमां धारणु करीने अेकदम क्रोधाविष्ट थई गया अने क्रोधधी अग्निमां लजगता न्यां नागश्री प्राहणी कती त्यां आग्या.

उपागत्य नागश्रियं ब्राह्मणीमेवमवादिषुः-उक्तवन्तः, हं भो ! नागश्रीः ! अप्रार्थित प्रार्थिके ! मरणाभिलाषिणि ! दुरन्तप्रान्तलक्षणे ! हीनपुण्यचातुर्दशिके ! धिगस्तु खलु तव अधन्यायाः अपुण्यायाः यावद्-दुर्भगनिम्बगुलिकायाः, अत्र द्वितीयार्थे षष्ठी आर्षत्वात्, यया खलु त्वया तथारूपः साधुः साधुरूपो धर्मरुचिरनगारो मासक्षणपारणके शारदिकेन तित्कालाबुकेन यावद् व्यपरोपितः, ' उच्चावयार्हि ' उच्चावचाभिः=उच्चनीचाभिः ' अक्कोसणार्हि ' आक्रोशनाभिः=निन्दावचैः नीचाऽसि त्वमित्यादिभिर्वचनैः ' अक्कोसन्ति ' आक्रोशन्ति-फटकारयन्ति उच्चावचाभिः उद्धं सनाभिः दुष्कुलोत्पन्नाऽसित्यादिवचनैः, ' उद्धंसेति ' उद्धंसयन्ति=कुलादि-

(उवागच्छित्ता णागसिरीं माहणीं एवं वयासी) हं भो ! नागसिरी ! अपत्थियपत्थिय दुरंतपतलक्खणे, हीण पुण्णचाउदसे धिरत्थुणं तव अधन्नाए अपुन्नाए जाव णिंबोलियाए जाए णं तुमे तहारूवे साहू साहूरूवे मास खमणपारणंसि सालइएणं जाव ववरोविए उच्चावयार्हि अक्कोसणार्हि अक्कोसन्तिउद्धंसेति) वहां आकर न्होंने नागश्री ब्राह्मणीसे कहा अरीओ नागश्री ! अरी अप्रार्थित प्रार्थिके । हे दुरन्तप्रान्त लक्षणे । ओ हीन पूण्य चातुर्दशिके ! तुझ अपुण्य अधन्या को धिक्कार हो ! तू दुर्भग निम्बगुलिका जैसी अनादरणीय है जो तूने मासखमणके पारणा के दिन घरपर आहार लेने के निमित्त आये हुए तथा रूप साधुरूप धर्मरुचि अनगर को शारदिक तित्त कडवे तुंवे का शाक देकर जीवन से रहित कर दिया है । तूंबडी नीच है इत्यादि रूप ऊँच, नीच आक्रोश निन्दा-वचनों से उन्होंने ने उसे फटकारा तूं नीच खानदान की

(उवागच्छित्ता णागसिरीं माहणीं एवं वयासी-हं भो ! नागसिरी ! अपत्थिय पत्थिय दुरंतपंतलक्खणे, हीनपुण्णचाउदसे धिरत्थु णं तव अधन्नाए अपुन्नाए जाव णिंबोलियाए जाए णं तुमे तहारूवे साहू साहूरूवे मासखमणपारणंसि साल-इएणं जाव ववरोविए उच्चावयार्हि अक्कोसणार्हि अक्कोसन्ति...उद्धंसेति) त्यां आवीने तेमळे नागश्री आहणीने कळुं के-के सुधं ओ नागश्री ! अप्रार्थित प्रार्थिके ! हे दुरंत प्रांत लक्षणे ! ओ हीनपुण्य चातुर्दशिके ! तारा नेवी पापणी अधन्याने धिक्कार छे तुं दुर्भग निम्बगुलिका (विंभाणी नेवी अनादरणीय छे. केमके तेळे मास-अमणुना पारणांना दिवसे घेर आहार बेवा भाटे आवेला तथाइय साधु साधुइय धर्मरुचि अनगारने शारदिक तित्त कडवी तूंबडीतुं शाक आवीने भारी नाप्या छे. तुं साव नीच छे, आम वषा उच्च-नीच आक्रोश-निन्दा-ना वचनेथी तेओओ तेने शिटकारी. तुं नीच

गौरवात्पातयन्ति, उच्चावचाभिर्निर्मत्सनाभिः=परुषवचनैः 'णिम्भत्थंति' निर्भत्स-
यन्ति, उच्चावचाभिः 'णिच्छोडणाहि' निश्छोटनाभिः= 'अस्मद् गृहाब्दहि-
निस्सर इत्यादि वचनैः 'निच्छोडेंति' निश्छोटयन्ति = गृहादित्यागभयोत्पा-
दनेन भीषयन्ति, 'तज्जेति' तर्जयन्ति 'ज्ञास्यसि पापे।' इत्यादिवाक्यैरङ्गुली
प्रदर्शनपूर्वकं ताडनभयं प्रदर्शयन्ति, 'तालेंति' ताडयन्ति चपेटादिभिः, तर्जयित्वा
ताडयित्वा, स्वकाद् गृहाद् 'निच्छुभंति' निक्षिपन्ति = वहिर्निः-सारयन्ति ।
ततस्तदनन्तरं सा नागेश्रीः स्वकाद् गृहाद् 'निच्छूढा समाणा' निक्षिप्तासती=निः
सरितासती, चम्पाया नगर्याः शृङ्गाटक त्रिकचतुष्कचत्वरचतुर्मुखमहापथपथेषु यत्र यत्र

है इस तरह की ऊँची नीची वाणियों से उसे भला बुरा कहा कुलादि
के गौरव से उसे पतित कहा । (उच्चावयाहिं णिम्भत्थंणाहिं णिम्भत्थंति
उच्चावयाहिं णिच्छोडणाहिं निच्छोडेंत्ति, तज्जेति, तालेंति, तज्जेत्ता
तालेंत्ता सयाओ गिहाओ निच्छुभंति) ऊँचे नीचे कठोर वचनों से
उसका तिरस्कार किया । भले बुरे वचनों से उसे डरवाया-हमारे घर
से तू बाहिर निकल जा इत्यादि भयोत्पादक शब्दों से उसे भय
दिखलाया । ओ पापिनी ! तूजे मालूम पड जायगा, इत्यादि वाक्यों से
अंगुली दिखा २ कर उसे मारने का भय दिखलाया और चपेटा-थप्पड
आदि से उसे पीटा भी । और पीटपाट कर उसे उन्होंने फिर अपने घर
से बाहिर निकाल दिया । (तएणं सा नागसिरी सयाओ गिहाओ
निच्छूढा समाणी चंपाए नगरीए सिघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुह०

भानदाननी छे, आ न्ततनां उंथा नीथा वचनेथी तेछे जेठी भरी सुखजावी.
कुण वगेरेना गौरवथी तेछे पतिता कछु

(उच्चावयाहिं णिम्भत्थंणाहिं णिम्भत्थंति, उच्चावयाहिं णिच्छोडणाहिं निच्छो-
डेंति, तज्जेति, तालेंति तज्जेत्ता तालेंत्ता सयाओ गिहाओ निच्छुभंति)

उंथा नीथा वचनेथी तेने तिरस्कार कर्यो, जेठां भरां वचनेथी तेने
भीषडावी. 'अभारा घरथी तु भडार नीकणी न्न' वगेरे लयेत्पादक वचनेथी
तेछीने भीक भतावी. 'अ पापेणु ! तेने मन्न भंताववी द्दशु ?' वगेरे वच-
नेथी 'साभी आंगणी करीने तेने भारी नाभवानी भीक भताववा दाउंथा अने
थप्पड दाका वगेरेथी तेने मार पणु भार्यो, मारपीट करीने तेओअे तेने
चेताना घरथी भडार काठी भूझी.

(तएणं सा नागसिरी सयाओ गिहाओ निच्छूढा समाणी चंपाए नगरीए
सिघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुह० चहुंजणेणं हीलिज्जमाणी खिसिज्जमाणी

गच्छति तत्र तत्र सर्वत्र बहुजनेन 'हीलिज्जमाणी' हील्यमाना-जात्याद्युद्धाटनेन,
'खिसिज्जमाणी' खिस्यमाना-परोक्षकुत्सनेन, 'निदिज्जमाणी' निन्द्यमाना-
तत्परोक्षम् 'गरहिज्जमाणी' गर्ह्यमाना-तत्समक्षमेव, 'तज्जिज्जमाणी' तर्ज्यमाना-
अङ्गुलीचालनेन भयमुत्पाद्यमाना 'पव्वहिज्जमाणी' पव्वध्यमाना यष्ट्यादिता-
डनेन 'धिकारिज्जमाणी' विक्रियमाणा 'शुक्कारिज्जमाणी' शुक्क्रियमाणा कुत्रापि

बहुजणेणं हीलिज्जमाणी खिसिज्जमाणी निदिज्जमाणी, गरहिज्जमाणी,
तज्जिज्जमाणी, पव्वहिज्जमाणी, धिकारिज्जमाणी, शुक्कारिज्जमाणी,
कत्थइ ठाणं वा निलयं वा अलममाणी २ दंडि खंडा निवसणा खंड
खंडमल्लय खंड खंड घउगहत्थगया फुडुहडाहडसीसा म च्छियाउगरेणं
अभिज्जमाणमग्गा गेहं गेहेणं देहं वलियाए वित्ति कप्पेमाणी विहरइ)
अपने घर से बाहिर निकल कर वह नागश्री चंपानगरी के श्रृंगाटक,
त्रिक, चतुष्क, चत्वर चतुर्मुख महापथ आदि मार्गों पर जहां २ गई,
वहां २ सर्वत्र अनेक जनों ने उसकी " यह नीचजाति की है " इत्या-
दिरूप से हीलना की। सब के सब उसपर बहुत क्रोधित हुए सबने
उसकी परोक्ष में निंदा की। सामने सबने उसे भला बुरा कहा। अंगुली
संचालन पूर्वक उसे मारने पीटने का भय दिखलाया। किन्हीं २ ने उसे
लकड़ी आदिसे मारा पीटा भी। अनेकोंने उसे धिक्कारा। कितनेक
जनों ने उसे देखकर उसपर थूक भी दिया। इस तरह की परिस्थिति

निदिज्जमाणी, गरहिज्जमाणी, तज्जिज्जमाणी पव्वहिज्जमाणी, धिकारिज्जमाणी,
शुक्कारिज्जमाणी, कत्थइ ठाणं वा निलयं वा अलममाणी २ दंडिखंडा निव-
सणा खंडमल्लय खंड खंड घउगहत्थगया फुडुहडाहडसीसामच्छियाउगरेणं
अभिज्जमाणमग्गा गेहं गेहेणं देह वलियाए वित्ति कप्पेमाणी विहरइ)

पोताना घेरथी षडार नीकणीने ते नागश्री चंपा नगरीना श्रृंगाटक,
त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ वगेरे मार्गों उपर न्यां गच्छत्यां
त्यां षडे घण्टा भाषुसोअे तेनी " आ नीच जातनी छे " वगेरे वचनोथी
हीलना करी. षडा भाषुसो तेनी उपर षण्ण व शुस्से थया. तेनी गेर डाव-
रीमां दोडोअे तेनी षण्ण निंदा करी, तेनी सामे तेने षडाअे षरी जोटी
संलणावी, आगणी ची'धी ची'धीने तेनी साथे मारपीट करवानी षीक अता-
ववा लाग्या डोअ डोअअे तो तेने दाडडी वगेरेनो इटके पणु मार्यो, घण्टा-
ओअे तेने इटकारी, डेटदाके भाषुसोअे तेने जेधने तेनी उपर थुंकी डीधुं.

स्थानं वा निवासार्थं निलयं वा-अल्पकालविश्रामार्थस्थानम्, अलभमाना २=अपा-
 प्नुवती २, 'दंडीखंडनिवसगा' दण्डिखण्डनिवसना=दण्डि-कृतसन्धानं जीर्णवस्त्रं,
 तस्य खण्डं, तदेव निवसनं-परिधानं यस्याः सा तथा, 'खंडमलयखंडघटगहस्थ-
 गया' खण्डमल्लक-खण्डघटकहस्तगता=खण्डमल्लः=भिक्षार्थं शरावखण्डं खण्डघट-
 कश्च पानार्थं घटखण्डं, तद् द्वयं हस्तगतं यस्याः सा तथा, 'फुट्टहडाहडसीसा'
 स्फुटितहडाहडशीर्षा-स्फुटितं स्फुटितकेशं 'हडाहडम्' अत्यर्थं शीर्षं शिरो यस्याः
 सा तथा, विक्रीर्णकेशवतीत्यर्थं 'मच्छियाचडगरेणं अन्निज्जमाणमग्गा' मक्षिका
 चटकरेण अन्यीयमानमार्गा मक्षिकासमूहेन अनुगम्यमानमार्गा शरीरवस्त्रादीनां
 मलिनत्वान् मक्षिकास्तत्पृष्ठतो धावन्तीत्यर्थः 'गेहं गेहेणं देहं वलियाए' गृहं गृहेण
 देहवलिकया=प्रतिगृहं देहनिर्वाहहेतोः उदरपूर्यर्थमेवेत्यर्थः-वृत्तिं 'कप्पेमाणी'
 कल्प्यमाना=कुर्वाणा सती विहरति । ततस्तदनन्तरं खलु तस्या नागश्रिया ब्राह्मण्या
 स्तस्मिन् भवे एव षोडश रोगातङ्काः प्रादुर्भूताः, तद्यथा-(१) श्वासः, (२)
 कासः, (३) ज्वरः, 'जावकुट्टे' यावत्-कुण्ठम्, (४) दाहः, (५) कुक्षिशूलम्, (६)

का सामना करती हुई वह कहीं पर भी बैठने के लिये स्थान को, और
 ठहरनेके लिये-विश्राम करनेके लिये-जगह भी को नही प्राप्त करती फटे
 हुए जीर्ण वस्त्र के टुकड़े को पहिरे हुए भिक्षा के लिये मिट्टी के खप्पर
 को और पानी के लिये फूटे घड़े के टुकड़े को हाथ में लिये हुए ईधर
 उधर एक घर से दूसरे घर पर उदर पूर्ति के लिये फिरने लगी । इसके
 शिर के बाल ईधर उधर बिखरे हुए रहते थे । शरीर और वस्त्रादिकों
 के मैले कुचैले होने के कारण मक्षिकाओं का समूह इसके पीछे पीछे २
 भागता रहता था । (तएणं तीसे नागसिरीए माहणीए तब्भवंसि चैव
 सोलसरोयायंका पाउब्भूया-तं जहा सासे कासे जोणिसूले, जाव

आवी परिस्थितिना मुकाणलो करती डोर्ध पणु स्थाने णेसवानी के रोकवानी
 के विश्राम करवानी जग्गा ते भेणवी शक्की नडि, अने छेवटे इट्टेला ज्जना
 वओना कड्डाने वीटाणीने लिक्षाना भाटे भाटीनुं अप्पर अने पाण्णीना भाटे
 इट्टी भाटलीना कड्डाने हाथमां लधने पेट भरवा भाटे आभतेम अक धेरथी
 धीले धेर लभवा लागी, तेना भाथाना वाणो आभ तेम अस्त व्यस्त रहेता
 हुता, शरीर अने वओ वगेरे भेला डोवाने लीधे भाणीओना टोणेटोणां तेनी
 पाछण पाछण लभतां रहेतां हुतां ।

(तएणं तीसे नागसिरीए माहणीए तब्भवंसि चैव सोलसरोयायंका पाउ-
 ष्भूया-तं जहा सासे कासे जोणिसूले, जाव कोवे तएणं सा नागसिरी माहिणी,

भगन्दरः, (७) अर्शः, (८) योनिशूलम्, (९) दृष्टिशूलम्, (१०) मूर्धशूलम्, (११) अरुचिः, (१२) अक्षिवेदना, (१३) कर्णवेदना, (१४) कण्डूः, (१५) जलोदरम्, (१६) कुष्ठम् । ततस्तदनन्तरं सा नागश्री ब्राह्मणी षोडशभी रोगातङ्कैरभिभूता-सती आर्तदुःखार्तवशात्तन्=शारीरिकमानसिकदुःखयुक्ता कालमासे कालं कृत्वा षष्ठ्यां पृथिव्याम् 'उक्कोसेण' उत्कृष्टतः, द्वाविंशति सागरोपमस्थितिकेषु नर-केषु-नरकावासेषु नारकत्वेन उपपन्ना-उत्पन्ना ॥ सू०५ ॥

मूलम्-सा णं तओऽणंतरंसि उव्वट्ठित्ता मच्छेसु उववन्ना,
तत्थ णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किञ्चा
अहेसत्तमीए पुढवीए उक्कोसाए तेत्तीसं सागरोवमट्ठिइएसु
नेरइएसु उववन्ना, सा णं ततोऽणंतरं उवट्ठित्ता दोच्चंपि

कोठे तएणं सा नागसिरी माहिणी, सोलसहिं रोयायंकेहिं अभिभूया
समाणी अट्टदुहट्टवसटा कालमासे कालं किञ्चा छट्ठीए पुढवीए उक्कोसे
णं बावीससागरोवमट्ठिइएसु नरएसु नेरइयत्ताए उववन्ना) उस नागश्री
ब्राह्मणी को उसी भव में ये सोलह रोगातंक प्रकट हो गये-(१) श्वास
(२) कास (३) ज्वर (४) दाह (५) कुक्षिशूल (६) भगन्दर (७) अर्श
(८) योनिशूल (९) दृष्टिशूल (१०) मूर्धशूल (११) अरुचि (१२) अक्षि-
वेदना (१३) कर्णवेदना (१४) कण्डू (१५) जलोदर (१६) कुष्ठ । इन १६
सोलह रोगातंको से अत्यन्त दुःखित हुई-शारीरिक एवं मानसिक व्य-
थाओं से व्यथित हुई-वह नागश्री काल अवसर कालकर छठी पृथिवी
में २२ सागर की उत्कृष्ट स्थितिवाले नरकावासों नैरयिक को पर्यायसेमें
उत्पन्न हुई ॥ सू० ५ ॥

सोलसहिं रोयायंकेहिं अभिभूया समाणी अट्ट दुहट्टवसटा कालमासे कालं किञ्चा
छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीससागरोवमट्ठिइएसु नेरइयत्ताए उववन्ना)
ते नागश्री ब्राह्मणीने तेज्ज लवमां आ सोण रोगांतके प्रकट थया.

(१) श्वास (२) कास (३) ज्वर (४) दाह (५) कुक्षिशूल (६) भगन्दर (७)
अर्श (८) योनिशूल (९) दृष्टिशूल (१०) मूर्धशूल (११) अरुचि (१२)
अक्षिवेदना (१३) कर्णवेदना (१४) कण्डू (१५) जलोदर (१६) कुष्ठ आ सोण
रोगांतकेथी अतीव दुःखी थयेती शारीरिक तेमज्ज मानसिक व्यथाओथी व्यथित
थती ते नागश्री काल अवसरे काल करीने छट्ठी पृथिवीमा बावीस सागरनी
उत्कृष्ट स्थितिवाला नरकावासोमां नैरयिकनी पर्यायसी जन्म पायी. ॥ सू. ५ ॥

मच्छेसु उववज्जइ, तत्थ वि य णं सत्थविज्झा दाहवक्कंतीए-
दोच्चंपि अहे सत्तमीए पुढवीए उक्कोसं तेत्तीससागरोवम-
ट्टिइएसु नेरइएसु उववज्जइ, सा णं तओहिंतो जाव उव्व-
ट्टित्ता तच्चंपि मच्छेसु उववन्ना तत्थ वि य णं सत्थवज्झा
जाव कालं किच्चा दोच्चंपि छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेपां०
तओऽणंतरं उव्वट्टित्ता मच्छेसु उरएसु एव जहा गोसाले
तहानेयव्वं जाव रथणप्पभाओ सत्तसु उववन्ना तओ उव्व-
ट्टित्ता जाइं इमाइं खहयर विहाणाइं जाव अदुत्तरं च णं खर
वायर-पुढविकाइ यत्ताते तेसु अणेगसतसहस्स खुत्तो ॥सू०६॥

टीका—‘ सा णं ’ इत्यादि। सा=नागश्री ब्राह्मणी खलु ततः=पृथ्या पृथिव्याः
अनन्तरम्=आयुर्ध्वस्थितिक्षये सति ‘ उव्वट्टित्ता ’ उद्वर्त्य—निस्सृत्य मत्स्येषूपन्ना,
तत्र खलु मत्स्यस्ये सा ‘ सत्थवज्झा ’ शस्त्रविद्धा ‘ दाहवक्कंतीए ’ दाहव्युत्क्रा-
न्त्या-दाहोत्पत्त्या, कालमाये कालं कृत्वाऽथः सप्तम्यां पृथिव्यामुत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंश-
त्सागरोपमस्थितिकेषु ‘ नेरइएसु ’ नैरयिकेषु उत्पन्ना । सा खलु ततः=सप्तम्याः
पृथिव्याः अनन्तरमुद्वर्त्य द्वितीयवारमपि मत्स्येषूपत्पद्यते । तत्रापि च खलु शस्त्रः

‘ सा णं तओ ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(सा) वह नागश्री (तओऽणंतरंस्ति) उस छट्टी नरककी भव-
स्थिति समाप्त होने पर (उव्वट्टित्ता) वहां से निकली—और निकलकर
(मच्छेसु उववन्ना तत्थणं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं
किच्चा अहे सत्तमीए पुढवीए उक्कोसाए तेत्तीसं सागरोवमट्टिइएसु
नेरइएसु उववन्ना, सा णं ततोऽणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चंपि मच्छेसु उवव-

‘ सा णं तओ ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(सा) ते नागश्री (त ओ ऽ णं तं तं स्ति) ते छट्टी नरकनी लवस्थिति
पूरी तथा षाड (उव्वट्टित्ता) त्यांथी नीकणी अने नीकणीने

(मच्छेसु उववन्ना तत्थ णं सत्थव-ज्झा दाह वक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा
अहे सत्तमीए पुढवीए उक्कोसाए तेत्तीसं सागरोवमट्टिइएसु नेरइएसु उववन्ना
सा णं उववज्जइ)

विद्धा दाहव्युत्क्रान्त्या द्वितीयवारमपि अधः सप्तम्यां पृथिव्यामुत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सा-
गरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूपपद्यते, सा खलु ' तओर्हितो ' तस्याः=सप्तम्याः
पृथिव्याः, यावद् उद्वर्त्य ' तच्चंपि ' तृतीयवारमपि मत्स्येषु उत्पन्ना । तत्रापि च
खलु शस्त्रविद्धा ' जाव कालं किच्चा ' यावत् दाहव्युत्क्रान्त्या कालमासे कालं
कृत्वा द्वितीयवारमपि षष्ठ्यां पृथिव्यामुत्कृष्टतो द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिकेषु
नरकेषूपपन्ना, सा खलु ततः=षष्ठ्याः पृथिव्या अनन्तरं ' उवद्वित्ता ' उद्वर्त्य=
निस्सृत्य उरःपरिसर्पेषूपपन्नाः, तत्र शस्त्रवध्या दाहव्युत्क्रान्त्यामुत्कृष्टतः सप्तदश-
सागरोपमस्थितिकेषूपपन्ना । एवं यथा शोशरलकस्तथा ज्ञातव्यम्=गोशालकवदस्या-

ज्जई) तिर्यञ्चगति में अच्छ की पर्याय से उत्पन्न हो गई । वहां वह
मत्स्य के भव में शस्त्र से विद्ध होकर दाह की उत्पत्ति से काल अवसर
काल कर मरी सो नीचे सप्तम नरक में ३३ तेतीस सागर की उत्कृष्ट
स्थितिवाले नरकावास में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुई । वहां से
निकलकर फिर वह मत्स्य की पर्याय से उत्पन्न हुई । (तत्थ वि य णं
सत्थविज्झादाहवक्कतीए दोच्चंपि अहे सत्तमीए पु०) वहां वह शस्त्र
से पुनः विद्ध होकर दाहकी व्युत्क्रान्ति से मरी और मरकर द्वितीयवार
भी सप्तम नरक में (उक्कोसें तेतीससागरोवमद्विइएसु नेरइए उवव-
ज्जई) उत्कृष्ट-तेतीस सागर की स्थिति लेकर नैरयिक की पर्याय में
उत्पन्न हुई । (सा णं तओर्हि तो जाव उववद्वित्ता तच्चंपि मच्छेसु उव-
वन्ना, तत्थ वि य णं सत्थविज्झा जाव कालं किच्चा दोच्चंपि छट्ठीए पुठ-
वीए उक्कोसे णं तओऽणंतरं उवद्वित्ता मच्छेसु उरएसु एवं जहाँ गोशाले

तिर्यञ्च गतिमां मच्छथी पर्यायनी जन्म पाभी. त्यां ते मत्स्यना लवमां
शस्त्र वडे वींघाधने दाहथी पीडाधने काण अवसरे काण करीने मरणु पाभी अने
नीचे सातमा नरकमां ३३ सागरनी उत्कृष्ट स्थितिवाणा नरकावासमां नैरयिकनी
पर्यायथी जन्म पाभी. त्यांथी नीकणीने करी ते मत्स्यना पर्यायथी जन्म पाभी.
(तत्थ वि य णं सत्थविज्झा दाहवक्कतीए दोच्चंपि अहे सत्तमीए पु०)
त्यां ते करी शस्त्र वडे विद्ध थधने दाहथी पीडाधने मरी अने मरीने
भी० पथत पणु सातमां नरकमां (उक्कोसें तेतीससागरोवमद्विइएसु नेरइए उव-
वज्जई) उत्कृष्ट ३३ सागरनी स्थिति दधने नैरयिकनी पर्यायमां जन्म पाभी.
(सा णं तओर्हि तो जाव उववद्वित्ता तच्चंपि मच्छेसु उववन्ना, तत्थ वि य णं
सत्थविज्झा जाव कालं किच्चा दोच्चंपि छट्ठीए पुठवीए उक्कोसेणं तओऽणंतरं

वर्णनं बोध्यमित्यर्थः, 'यावरयणप्पभाण सत्तसु उववन्ना' यावद् रत्नप्रभायां सप्त-
सूतपन्ना=अयं भावः-उरः परिसर्पभवतो निः सृत्य पञ्चम्यां धूमप्रभायां पृथिव्या-
मुत्कृष्टतः सप्तदशसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेपूतपन्ना, ततो निः सृत्य द्वितीय-
वारसुरःपरिसर्वेपूतपद्यते, तत्रापि पूर्ववत् कालं कृत्वा द्वितीयवारमपि पञ्चम्यां पृथि-

तहा नेयव्वं जाव रयणप्पभाओ सत्तसु उववन्ना, तओ उव्वट्टित्ता जाइं
इमाइं खहायर विहाणाइं जाव अदुत्तरं च णं खरवायर पुढविकाइयत्ता
ते तेसु अणेगसतसहस्स खुत्तो) वहां से भव स्थिति समाप्त होते ही
वह निकली-निकल कर तीसरी बार भी मत्स्य की पर्याय में उत्पन्न
हुई। वहां शस्त्र विद्ध होकर दाह की व्युत्क्रान्ति से मरी सो मर कर
दुबारा भी छठी ही पृथिवी में २२ बावीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति ले
कर उत्पन्न हुई। वहां की भवस्थिति समाप्त कर जब वह वहां से
निकली तो उरः परिसर्प की पर्याय में उत्पन्न हुई। वहां पर भी वह
शस्त्र विद्ध होकर दाह की व्युत्क्रान्ति से-उत्पत्ति से काल अवसर काल
कर धूमप्रभा नाम की पंचम पृथिवी में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न
हुई। वहां सत्तरह सागर की उत्कृष्ट-स्थिति इसकी हुई। गोशालक
की तरह इसका वर्णन जानना चाहिये। तात्पर्य इसका इस प्रकार है-
१७ सागर की उत्कृष्टस्थिति वाले पंचम नरक से निकल द्वितीय बार
भी वह उरः परिसर्प की पर्याय से उत्पन्न हुई। वहां से पूर्व की तरह

उव्वट्टित्ता मच्छेसु उरएसु एवं जहा गोसाले तहा नेयव्वं जाव रयणप्प
भाओ सत्तसु उववन्ना, तओ उव्वट्टित्ता जाइं इमाइं खहायरविहाणाइं जाव
अदुत्तरं, च णं खरवायरपुढविकाइयत्ता ते तेसु अणेगसतसहस्सखुत्तो)
त्यांनी लवस्थिति पूरी थतां ज ते त्यांथी नीकणी अने नीकणीने त्रीण वार
पणु माछलीना पर्यायमां जन्म पाभी. त्यां शस्त्रथी वींघाधने तथा दाहथी
पीडाधने मरणु पाभी अने ते वणते पणु छठी पृथिवीमां २२ सागरनी उत्कृष्ट
स्थिति लधने उत्पन्न थध. त्यांनी लवस्थिति पूरी करीने न्यारे ते त्यांथी
नीकणी न्यारे ते उरः परिसर्पना पर्यायमां जन्म पाभी. त्यां पणु ते शस्त्रथी
वींघाधने अने दाहथी पीडाधने काण अवसरे काण करीने धूमप्रला नामनी
पंचम पृथिवीमां नैरयिकना पर्यायथी जन्म पाभी त्यां १७ सागरनी उत्कृष्ट
स्थिति तेनी थध. गोशालकनी जेम आनु' वणुंन जाणी देवुं जेधजे. मतलण
आनी आ छे के १७ सागरनी उत्कृष्ट स्थितिवाणा पंचम नरकथी नीकणीने
भीण वणत पणु ते उरः परिसर्पना पर्यायथी जन्म पाभी. त्यांथी पणु पडे-
सांनी जेमज काण अवसरे काण करीने भीणवार पणु आ पंचम पृथिवीमां

व्यामुत्कृष्टतः सप्तदशसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूत्पन्ना । ततो निःसृत्य तृतीयवारमपि उरः प्रतिसर्पेषूत्पद्यते, अत्र पूर्ववत् कालं कृत्वा चतुर्थ्यां पङ्कप्रभायां पृथिव्यामुत्कृष्टतो - दशसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूत्पन्ना, ततो निःसृत्य सिंहेषूत्पद्यते, तत्रापि पूर्ववत् कालं कृत्वा द्वितीयवारमपि चतुर्थ्यां पृथिव्यामुत्कृष्टतो-दशसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूत्पन्ना । ततश्चतुर्थ्याः पृथिव्याः निःसृत्य द्वितीयवारमपि सिंहेषूत्पद्यते, तत्र पूर्ववत् कालं कृत्वा तृतीयायां बाहुकप्रभायां पृथिव्यामुत्कृष्टतः सप्तसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूत्पन्ना, ततो निःसृत्य पक्षिषूत्पद्यते, तत्र पूर्ववत् कालं कृत्वा द्वितीयवारमपि तृतीयायां पृथिव्यामुत्कृष्टतः

काल कर द्वितीयवार भी यह पंचम पृथिवी में १७ सागर की उत्कृष्ट स्थितिवाले नरकों में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुई। वहाँ की स्थिति समाप्त कर जब यह वहाँ से निकली-तो तीसरी बार भी यह उरः परिसर्पों में उत्पन्न हुई। वहाँ से पूर्व की तरह काल कर चौथी पङ्क प्रभा पृथिवी में कि जहाँ १० सागर की नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति है वहाँ नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुई। वहाँ से निकल कर यह सिंह की पर्याय में उत्पन्न हुई। पहिले की तरह वहाँ से भी मर कर द्वितीय बार भी यह चतुर्थ नरक में दश सागर की स्थिति वाले नरक में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुई। चतुर्थ नरक से निकल कर यह दुबारा भी सिंह की पर्याय से उत्पन्न हुई। वहाँ से अपने समय पर मर कर फिर यह बालुका प्रभा नाम की तीसरी पृथिवी में सात सागर की उत्कृष्ट स्थिति लेकर नैरयिक की पर्याय में उत्पन्न हुई। वहाँ से निकल कर फिर यह पक्षियों के कुल में उत्पन्न हुई। यहाँ से मर कर

१७ सागरनी उत्कृष्ट स्थितिवाणा नरकमां नैरयिकना पर्यायथी जन्म पाभी, त्यांनी स्थिति पूरी करीने न्यारे ते त्यांथी नीकणी तो त्रीण वार पणु ते उरः परिसर्पमां उत्पन्न थछ. त्यांथी पडेलांनी जेम काण करीने योथी पङ्क-प्रभा पृथिवीमां-के न्यां दशसागरनी नैरयिकेनी उत्कृष्ट स्थिति छे, त्यां नैर-यिकनी पर्यायथी उत्पन्न थछ, त्यांथी नीकणीने ते सिंदना पर्यायथी जन्म पाभी. पडेलांनी जेम त्यांथी पणु भरणु पाभीने भीणवार पणु चतुर्थ नरकमां दश सागरनी स्थितिवाणा नरकमां नैरयिकना पर्यायथी जन्म पाभी, चतुर्थ नरकथी नीकणीने ते करी सिंदना पर्यायथी उत्पन्न थछ. त्यांथी भरणु पाभीने करी ते बालुकाप्रभा नामनी त्रीण पृथिवीमां सात सागरनी उत्कृष्ट स्थिति लधने नैर-यिकनी पर्यायसां जन्म पाभी, त्यांथी नीकणीने ते करी ते पक्षीयोना कुणमां

सप्तसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूत्पन्ना । ततस्तृतीयायाः पृथिव्या निःसृत्य
द्वितीयवारमपि पक्षिपूत्पद्यते, तत्रापि पूर्ववत् कालं कृत्वा द्वितीयायां पृथिव्या
शर्करप्रभायामुत्कृष्टतस्त्रिसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूत्पन्ना । ततो निःसृत्य सरी-
सृपेषूपद्यते, तत्रापि शस्त्रवेध्या दाहव्युत्क्रान्त्या कालमासे कालं कृत्वा द्वितीयवार-
मपि द्वितीयायां पृथिव्यामुत्कृष्टतस्त्रिसागरोपमस्थितिकेषु नैरयिकेषूत्पन्ना । ततो
द्वितीयायाः पृथिव्याः निःसृत्य द्वितीयवारमपि सरीसृपेषूपद्यते, तत्रापि पूर्ववत्
कालं कृत्वा प्रथमायां पृथिव्यां रत्नप्रभायामुत्कृष्टत एकसागरोपमस्थितिकेषु नैर-
यिकेषूत्पन्ना, ततो निःसृत्य संज्ञिषु, ततो निःसृत्याऽसंज्ञिपूत्पद्यते, ततो निः

फिर यह पुनः तीसरे नरक में सात सागर की उत्कृष्ट स्थिति वाले नैर-
यिकों में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुई । यहां से निकल कर पुनः
यह पक्षियों के कुल में उत्पन्न हुई । यहां से मर कर फिर यह दूसरी
पृथिवी जो शर्करा प्रभा है और जिसके नरकावासों में तीन सागर की
उत्कृष्ट स्थिति है वहां नैरयिकों की पर्याय से उतनी स्थिति लेकर उ-
त्पन्न हुई । वहां से निकल कर सरीसृपों में यह दाह की व्युत्क्रान्ति से
भरी तो मर कर द्वितीय वार भी द्वितीय पृथिवी के नरकावासों में
तीन सागर की उत्कृष्ट स्थिति लेकर उत्पन्न हुई । द्वितीय पृथिवी से
निकल कर दुबारा यह सरीसृप में उत्पन्न हुई । वहां से अपने समय
पर मर कर रत्नप्रभा नामकी प्रथम पृथिवी में उत्कृष्ट एक सागर की
स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुई । वहां की
भवस्थिति समाप्त होने पर यह वहां से निकलकर संज्ञी जीवों में वहां

जन्म पायी । त्यांथी भरलु पाभीने इरी ते त्रीन नरकमां सात सागरनी
उत्कृष्ट स्थितिवाणा नैरयिकेमां नैरयिकना पर्यायथी उत्पन्न थछ । त्यांथी नीक-
णीने इरी ते पक्षीओना कुणमां उत्पन्न थछ त्यांथी भरलु पाभीने इरी ते
भील पृथिवी जे शर्कराप्रभा छे अने जेना नरकावासोमां त्रलु सागरनी उत्कृष्ट
स्थिति छे त्यां नैरयिकेना पर्यायथी तेटली ज स्थिति लधने जन्म पायी ।
त्यांथी नीकणीने सरीसृपेमां ते उत्पन्न थछ । त्यां शस्त्रथी वी'धाधने तथा दाहथी
पीडाधने भरलु पाभी अने त्यारपछी भीलवार पलु भील पृथिवीना नरका-
वासोमां त्रलु सागर जेटली उत्कृष्ट स्थिति लधने उत्पन्न थछ । भील पृथिवी
नीकणीने भीलवार ते सरीसृपेमां उत्पन्न थछ त्यांथी यथा समय भरलु पाभीने
रत्नप्रभा नामनी प्रथम पृथिवीमां उत्कृष्ट ओक सागरनी स्थितिवाणा नरका-
वासोमां नैरयिकना पर्यायथी उत्पन्न थछ त्यांनी भवस्थिति पूरी करीने ते
त्यांथी नीकणीने संज्ञी-ओवोमां, त्यांथी पलु भरलु पाभीने अज्ञंज्ञी-ओवोमां

सृत्य द्वितीयवारमपि प्रथमायां पृथिव्यां पत्योपमस्याऽसंख्येयभागस्थितिकेषु नैरयिकेषु नैरयिकतयोत्पन्ना ' इति ।

' तओ उवट्टिता ' तत उद्वर्त्य=रत्नप्रभातो निः सृत्य यानि इमानि ' खर-
यरविहाणाइ ' खरविधानानि चर्मपक्ष्यादीनि भवन्ति तेषु, यावत् अथोत्तरं च
खलु यानीमानि खरबादरपृथिवी कायिकविधानानि तेषु खरबादरपृथिवीकायिक-
तयाऽनेकशतसहस्रकृत्वः समुत्पन्ना ॥ सू०६ ॥

मूलम्—सा णं तओऽणंतरं उवट्टिता इहेव जंबूद्वीवे दीवे
भारहेवासे चंपाए नयरीए सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स भद्दाए
भारियाए कुच्छिसि दारियाए पच्चायाया तएणं सा भद्दा
सत्थवाही णवण्हं मासाणं० दारियं पथाया सुकुमालकोमलियं
गयतालुयसमाणं, तीसे दारियाए निव्वत्तवारसाहियाए अम्मा-
पियरो इमं एथारूवं गोत्रं गुणनिष्फन्नं नामधेज्जं करेति—जम्हा
णं अम्हं एसा दारिया सुकुमाला गयतालुयसमाणा तं होउणं
अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जे सुकुमालिया, तएणं तीसे
दारियाए अम्मापियरो नामधेज्जं करेति सूमालियत्ति, तएणं
सा सूमालिया दारिया पंचधाई परिग्गहिया तं जहा—खीरधाईए

से भी मर कर असंखी जीवों में और फिर वहां से मर कर फिर
दुबारा भी प्रथम पृथिवी में १ एक पत्य के असंख्यात वे भाग प्रमाण
स्थितिवाले नरकावांसों में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुई । उस रत्न
प्रभा पृथिवी से निकल कर फिर यह जितने ये पक्षिभेद हैं—चर्म पक्षी
आदि हैं—उनमें और उनके बाद जो ये खर—बादर—पृथिवीकायादि भेद
हैं उनमें खरबादर पृथिवीकायिकरूपसे लाखों वार उत्पन्न हुई ॥सू०६॥

अने इरी त्याधी भरणु पाभीने भीण्वार पणु पडेली पृथिविमां १ ओक पत्यना
असंख्यातमा लाग प्रमाणु स्थितिवाणा नरकावासेमां नैरयिकता पर्यायधी
जन्म पाभी. ते रत्नप्रभा पृथिवी नीकणीने इरी ते नेटला पक्षी लेटो छे-
चर्म पक्षी वगेरे छे—तेओमां अने त्पारपछी भर—भादर पृथिवीकाय वगेरे लेट
छे तेओमां भर—भादर पृथिवीकायिकता इपमां लागो वार जन्म पाभी. सू. १

जाव गिरिकंदरमालीणा इव चंपकलया निव्वाए निव्वाघायंसि
जाव परिवड्डइ, तएणं सा सूमालियादारिया उम्मुक्कवालभावा
जाव रूवेण य जोव्वणेण य लावणणेण य उक्किट्टा उक्किट्ट
सरीरा जाया यावि होत्था ॥ सू० ७ ॥

टीका—‘सा णं तओ’ इत्यादि । सा खलु नागश्रीः ततोऽनन्तरम् उद्वृत्य
जम्बूद्वीपे दीपे भारते वर्षे चम्पायां नगर्यां सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य भद्राया भार्यायाः
कुक्षौ ‘पञ्चायाया’ प्रत्यायाता गर्भसमागता । ततः खलु सा भद्रा सार्थवाही
नवसु मासेषु बहुप्रतिपूर्णेण अर्द्धाष्टमेषु रात्रिन्दिवेषु व्यतिक्रान्तेषु सत्सु दारिकां

‘सा णं तओऽणंतरं’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(सा णं तओऽणंतरं उवट्टित्ता) इसके बाद वह नागश्री खर
पृथ्वी कायिका से निकल कर (इहेव जंबूद्वीपे दीपे भारहे वासे चंपाए
नयरीए सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स भद्राए भारियाए कुच्छिसिदारियात्ताए
पञ्चायाया) इसी जंबूद्वीप नाम के द्वीप में स्थित भारतवर्ष नामके क्षेत्र
में वर्तमान चंपानगरी में सागरदत्त सेठ की धर्मपत्नी—भद्रा की कुक्षि में
पुत्रीरूप से अवतरी (तएणं सा भद्रा सत्थवाही नवण्हं मासाणं दारियं
पयासा सुकुमालकोमलियं गयतालुयसमाणं तीसे दारियाए निव्वत्त
धारिसाहियाए अम्मापियरो इमं एयारूवं गोन्नं गुणनिप्फन्नं नाम
धेज्जं करेति, जम्हाणं अम्हं एसा दारिया सुकुमाला गयतालुय समाणा
तं होउणं अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जे सुकुमालिया) भद्रा सार्थ

‘सा णं तओऽणंतरं उवट्टित्ता’ इत्यादि—

टीकार्थ—(सा णं तओऽणंतरं उवट्टित्ता) त्पारपणी ते नागश्री अर पृथिविका
थिकथी नीकणीने (इहेव जंबूद्वीपे दीपे भारहे वासे चंपाए नयरीए सागरद-
त्तस्स सत्थवाहस्स भद्राए भारियाए कुच्छिसि दारियात्ताए पञ्चायाया)
अ ७ ७ जंबूद्वीप नामना द्वीपमा आवेत्ता भारतवर्ष नामना क्षेत्रमा विद्यमान
चंपानगरीमां सागरदत्त सेठनी धर्मपत्नी भद्राना उदरमां पुत्री रूपमां अवतरी.
(तएणं सा भद्रा सत्थवाही नवण्हं मासाणं० दारियं पयाया सुकुमालकोम-
लियं गयतालुयसमाणं तीसे दारियाए निव्वत्तधारिसाहियाए अम्मापियरो इमं
एयारूवं गोन्नं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेति, जम्हाणं अम्हं एसा दारिया सुकु-
माला गयतालुयसमाणा तं होउणं अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जे सुकुमालिया)

‘पयाया’ प्रजाता=प्रजनितवती, किं भूतां दारिकामित्याह—‘सुकुमालकोमलियं’ सुकुमारकोमलाम्—अतिमृदुलाम् गजतालुकसमानां अङ्गस्यातिकोमलतया गजतालुतुल्यमित्यर्थः। तस्या दारिकाया ‘निव्वत्तचारसाहियाए’ निवृत्तद्वादशाहिकायाः सम्प्राप्तद्वादशदिवसायाः अम्बापितरौ=मातापितरौ इदमेतद्रूपं ‘गौणं’ गौणं=गुणेभ्य आगतं=प्राप्तं गुणनिष्पन्नं=गुणबोधकं नामधेयं कुरुतः कर्त्तुविचारयतः तथाहि यस्मात् खलु अस्माकमेषा दारिका सुकुमारा गजतालुकसमाना जाता, तद्=तस्मात् भवतु खलु अस्माकमस्या दारिकाया नामधेयं ‘सुकुमारिका’ इति। ततः विचारकरणानन्तरं खलु तस्या दारिकाया अम्बापितरौ नामधेयं कुरुतः ‘सुकुमारिका’ इति। ततः खलु सा सुकुमारिका दारिका पञ्चधात्रीपरिगृहीता—पञ्चसंख्यकाभिर्धात्रीभिः=उपमातृभिः सुरक्षिता जाता, तद् यथा=तासां पञ्चानां धात्रीणां नामानि दर्शयति ‘खीरधाईए जाव गिरकंदर’ इति। क्षीरधात्र्या=स्तन्य-

बाहिके गर्भ के नौ मास तथा साढे सात दिन रात पूर्णरूप से व्यनीत हो चुके तब उसने पुत्रीको जन्म दिया। यह पुत्री अत्यन्त कोमल अंगवाली थी इसी लिये गजका तालु भाग जिस प्रकार मृदुल होता है यह वैसी ही कोमल थी। जब यह १२ चारह दिन की हो चुकी—तब इस के मातापिताने इसका ‘यथा नाम तथा गुण’ इस कहावतके अनुसार गुणों को लेकर नाम संस्कार करने का विचार किया। विचार करने के बाद उन्होंने इस खयाल से कि यह हमारी पुत्री अत्यन्त सुकुमार और गज तालु का के जैसी मृदुल है अतः इसका नाम सुकुमारिका रहे (तएणं तीसे दारियाए अम्मा पियरो नामधेज्जं करेति सुमालियत्ति) उस कन्या का नाम सुकुमारिका रख दिया (तएणं सा सुकुमारियदारिया

लद्रा सार्थवाहीना गर्भना नव मास अने साढे सात दिवस रात पूरा थर्ध थुका त्यारे तेणे पुत्रीने जन्म आये। आ पुत्री अतीव कोमलांगी छती छाथीना ताणवाने लाग जेवे सुकोमण छाय छे, ते तेवीअ कोमण छती. न्यारे ते भार दिवसनी थर्ध गर्ध त्यारे तेना मातापिताअे जेवुं नाम तेवा शुषुवाणी अे कडेवत मुज्जं शुषुना आधारे तेना नाम संस्कार करवाने विचार कर्ये। विचार कर्या बाद तेअेअे पोतानी पुत्रीनी सुकोमण दृष्टि समक्ष राणीने अेटवे के तेअेअे आ प्रभाजे विचारीने के आ भारी पुत्री छाथीना ताणवा जेवी सुकोमण छे माटे अेनुं नाम सुकुमारी राणीअे.

(तएणं तीसे दारियाए अम्मावियरो नामधेज्जं करेति सुमालियत्ति)

ते कन्यानुं नाम सुकुमारी राभ्युं.

दायिन्वा, यावत्करणादेवं बोध्यम्—‘ मंडनधाईए ’ मज्जनधाईए क्रीलावणधाईए अंकधाईए’ इति । मण्डनधात्र्या=प्रस्रमालयाङ्कालरपरिधापिकया, मज्जनधात्र्यर=स्नानकारिकया, क्रीडनधात्र्या=या क्रीडां=खेलनं कारयंति तथा, तथा अङ्कधात्र्या =उत्सङ्गे रथापिकया च पाल्यमाना, उपलाल्यमाना आलिङ्ग्यमाना स्तूयमाना प्रचुम्ब्यमाना, गिरिकन्दरमालीना चम्पकलतेव निर्वाते महावातरहिते निर्व्याघाते=

पंचधाई परिग्गहिया तं जहा-खीरधाईए जाव गिरिकंदरमालिणा इव चंपकलया निव्वाए निव्वाघायंसि जाव परिवडुइ-तएणं सा सुमालिया दारिया उम्मुक्कपालभावा जाव ख्वेणं य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था) इसकी रक्षा के लिये माता पिताने ५ धायमाताए-उपमाताएँ-रख दी-उनकी देखरेखमें यह सुरक्षित रहने लगी उनके नाम ये हैं-क्षीरधात्री दुग्ध पान करानेवाली-धाय, मंडनधात्री-वस्त्र माला अलंकार आदि पहिरानेवाली धाय, मज्जन धत्री-स्नान करानेवाली धाय, क्रीडन धात्री-खेल कुंद करानेवाली धाय, अंक धात्री-अपनी गोद में बैठानेवाली धाय, इस तरह इन ५ धाय माताओं द्वारा पालित होती हुई, उपलालित होती हुई, आलिङ्ग्य मान होती हुई, स्तूयमान होती हुई और प्रचुम्ब्यमान होती हुई यह सुकुमारिका कन्या, गिरिकन्दरा में उत्पन्न हुई चम्पकलता जैसे महावातसे वर्जित एवं उपद्रवों से रहित स्थान में आनन्द के साथ बढ़ता है-उसी प्रकार बढ़ने लगी । धीरे २ बाल्यावस्था से जब यह रहित हो गई-तब

(तएणं सा सुकुमारिया दारिया पंचधाई परिग्गहिया तं जहा-खीरधाईए जाव गिरिकंदरमालिणा इव चंपकलया निव्वाए निव्वाघायंसि जाव परिवडुइ-तएणं सा सुमालिया दारिया उम्मुक्कवालभावा जाव ख्वेणं य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठ सरीरा जाया यावि होत्था)

तेना रक्षणु माटे माता-पिताओ ५ धाय-माताओ उपमाताओनी नीम-लुंठ करी, तेमनां नामो नीचे लप्या मुज्ज छे-क्षीरधात्री-दूध पीवडावनार धाय, मंडनधात्री-वस्त्र, माणा, अलंकारो वणेरे पडेरावनारी धाय, मज्जन-धात्री-स्नान करावनारी धाय-क्रीडनधात्री रमाडनार धाय, अंकधात्री-पोताना ओणांमां ओसाडनारी धाय, आ रीते आ ५ धाय माताओ वडे पालित थती-उपपालित थती, आलिङ्ग्यमान थती, स्तूयमान थती अने प्रचुम्ब्यमान थती ते सुकुमारिका कन्या गिरिकंदराओमां उत्पन्न थयेली चंपकलतानी ओम महावातथी रक्षित तेमज्ज जीज उपद्रवोथी रहित स्थानमां सुओथी वधे छे. तेमज्ज मोटी

उपद्रववर्जिते स्थाने यावत् सुखं सुखेन परिवर्धते स्म । ततः खलु सा कुमारिका दारिका
उन्मुक्तबालभावा=व्यतीतबाल्यावस्था, यौवनमनुप्राप्ता यावद् रूपेण=आकृत्या च,
यौवनेन=तारुण्यवयसा च, लावण्येन=यौवनवयोजनितकान्तिविशेषेण च, उत्कृष्टा
=विशेषशोभासम्पन्ना, उत्कृष्टशरीरा=सर्वाङ्गसुन्दरी जाता चाप्यभवत् ॥ सू० ७ ॥

मूलम्—तत्थ णं चंपाए नयरीए जिणदत्ते नाम सत्थवाहे
अड्डे० तस्स णं जिणदत्तस्स भद्दा भारिया सूमाला इट्ठा जाव
माणुस्सए कामभोए पच्चणुब्भवमाणा विहरइ, तस्स णं जिण-
दत्तस्स पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए सागरए नाम दारए
सुकुमाले जाव सुरूवे, तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया
कयाई साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता सागर-
दत्तस्स मिहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ इमं च णं सूमालिया
दारिया णहाया चेडियासंघपरिवुडा उप्पि आगासतलगंसि
कणगतेदूसएणं कीलमाणी२ विहरइ, तएणं से जिणदत्ते सत्थ-
वाहे सूमालियं दारियं पासइ पासित्ता सूमालियाए दारियाए
रूवे य३ जायविम्हए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं
वयासी—एस णं देवाणुप्पिया ! कस्स दारिया किं वा णामधेज्जं

यौवनने इसके शरीर पर अपना अधिकार स्थापित करना प्रारंभ कर
दिया—उस समय यह रूप आकृति—से यौवन—तारुण्य वय से, और
यौवन वय जनित कान्ति विशेषसे विशिष्ट शोभा संपन्न हो गई और
समस्त इस के शारीरिक अवयव सुंदर हो गये अर्थात् उस समय यह
सर्वाङ्ग सुन्दरी बन गई । सू० ७ ।

थवा लागी. धीमे धीमे न्यारे ते भयपणु वटावीने युवावस्था संपन्न थवा
मांडी ल्यारे तेना शरीर उपर यौवनना यिहो देणावालाग्यां. ते समये ते ३५-
आकृति-थी, यौवन-तारुण्य-थी अने यौवनावस्था जनित सविशेष कान्तिथी
विशिष्ट शोभा संपन्न थथ गथ अने तेना शरीरनां अधां अगो सुंदर थथ
गयां, अट्ठे के ते वणते ते सर्वांग सुंदरी भनी गथ. ॥ सूत्र ७ ॥

से ? तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जिणदत्तेण सत्थवाहेणं एवं
 वुत्ता समाणा हट्ट करयल जाव एवं वयासी-एस णं देवाणु-
 प्पिया ! सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स धूया भद्दाए अत्तया सूमा-
 लिया नाम दारिया सुकुमालपाणिपाया जाव उक्किट्टसरीरा
 तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे तेसिं कोडुंबियाणं अंतिए एयमट्ठं
 सोच्चा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाए
 जाव मित्तनाइ परिवुडे चंपाए० जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव
 उवागच्छइ, तएणं सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्तं सत्थवाहं
 एज्जमाणं पासइ पासित्ता आसणाओ अब्भुट्टेइ अब्भु-
 ट्ठित्ता आसणेणं उवणिमंतेइ उवणिमंतित्ता आसत्थं वीसत्थं
 सुहासणवरगयं एवं वयासी-भण देवाणुप्पिया ! किमाग-
 मणपओयणं ? तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तं
 सत्थवाहं एवं वयासी-एवं खल्लु अहं देवाणुप्पिया ! तव धूयं
 भद्दाए अत्तियं सूमालियं सागरस्स भारियत्ताए वरोमि, जइ णं
 जोणाह देवाणुप्पिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो
 वा संजोगो दिज्जउणं सूमालिया सागरस्स, तएणं देवा-
 णुप्पिया कि दलयामो सुंक्कं सुमालियाए?, तएणं से सागर-
 दत्ते तं जिणदत्तं एवं वयासी-एवं खल्लु देवाणुप्पिया सूमालिया
 दारिया मम एगा एगजाया इट्ठा जाव किमंग पुण पासणयाए
 तं नो खल्लु अहं इच्छामि सूमालियाए दारियाए खणमवि
 विप्पओगं तं जइणं देवाणुप्पिया ! सागरदारए मम घरजामाउए

भवइ तो णं अहं सागरस्स दारगस्स सूमालियं दलयामि-
तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते
समाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता साग-
रदारगं सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-एवं खलु पुत्ता ! साग-
रदत्ते सत्थवाहे मम एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया !
सूमालिया ! दारिया मम एगा एगजाया इट्ठा तं चेव तं जइ
णं सागरदारए मम घरजामाउए भवइ ता दलयामि, तएणं
से सागरए दारए जिणदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे
तुसिणीए, तएणं जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाइं सोहणंसि
तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहुत्तांसि विउले असणपाणखाइमसा-
इमं उवक्खडावित्ता मित्तणाइ० आमंतेइ जाव सम्माणित्ता
सागरं दारगं णहायं जाव सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करित्ता
पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूहावेइ, दुरूहावित्ता मित्तणाइ
जाव संपरिवुडे सव्विड्डीए साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्ग-
च्छित्ता चंपानयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयाओ पच्चोरुहावेइ, पच्चोरुहा-
वित्ता सागरगं दारगं सागरदत्तस्स सत्थ० उवणेइ, तएणं सा-
गरदत्ते सत्थवाहे विपुलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडा-
वेइ उवक्खडावित्ता जाव सम्माणेत्ता सागरगं दारगं सूमालियाए
दारियाए सद्धिं पट्टयं दुरूहावेइ दुरूहावित्ता सेयापीएहिं कल-
सेहिं मज्जावेइ मज्जावित्ता अग्गिहोमं करावेइ करावित्ता सागरं
दारयं सूमालियाए दारियाए पाणिं गिण्हावेइ ॥ सू० ८ ॥

टीका—‘ तत्थ णं चंपाए ’ इत्यादि । तत्र खलु चम्पायां नगर्यां जिनदत्तो नाम सार्थवाह आढ्यो यावद् अपरिभूत आसीत्, तस्य जिनदत्तस्य भद्रा भार्या आसीत्—सा किम्भूता—सुकुमारा इष्टा यावद् मानुष्यकान् ‘ पञ्चणुब्भवमाणा ’ प्रत्यनुभवन्ती विहरति । तस्य खलु जिनदत्तस्य पुत्रो भद्राया भार्याया आत्मजः= अद्भजातः, सागरो नाम दारकः आसीत् स किम्भूतः—सुकुमारपाणिपादः, सर्व-लक्षणसम्पन्नः यावत्—सुरूपः । ततः खलु स जिनदत्तसार्थवाहः अन्यदा कदाचित्

‘ तत्थ णं चंपाए ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तत्थ णं चंपाए नयरीए जिणदत्ते नाम सत्थवाहे अड्डे, तस्स णंजिणदत्तस्स भद्रा भारिया, सुमाला इट्ठा जाव माणुस्सए कामभोए पञ्चणुब्भवमाणा विहरह) उस्स चंपा नगरीमें जिनदत्त नामको एक सार्थवाह रहता था जो धनधान्य आदि से विशेष परिपूर्ण एवं जनमान्य था । इसकी धर्मपत्नी का नाम भद्रा था । यह सर्वाङ्ग सुन्दरी थी । समस्त अंग और उपांग इसके बड़े ही सुकुमार थे । यह अपने पतिको अत्यन्त इष्ट प्रिय थी । पति के साथ अनुष्य भव सम्बन्धी काम भोगों को भागती हुई यह आनन्द के साथ अपने समय व्यतीत किया करती थी (तस्स णं जिणदत्तस्स पुत्ते भद्राए भारियाए अत्तए सागरए नामं दारए सुकुमाले जाव सुख्वे) भद्रा भार्या से उत्पन्न हुआ जिनदत्त सार्थवाहके एक पुत्र था—जिसका नाम सागर था । यह सुकुमाल यावत्

तत्थणं चंपाए इत्यादि—

टीकार्थ—(तत्थणं चंपाए नयरीए जिणदत्ते नाम सत्थवाहे अड्डे तस्सणं जिणदत्तस्स भद्रा भारिया, सुमाला इट्ठा जाव माणुस्सए कामभोए पञ्चणुब्भवमाणा विहरह)ते चंपा नगरीमां छिनदत्त नामे अेक सार्थवाह रहतेो हतेो. ते धनधान्य वगेरेथी सविशेष संपन्न तेमज्ज समान्जमां पूछतेो भाणुस्स हतेो. तेनी धर्मपत्नीनुं नाम भद्रा हतुं, ते सर्वांग सुंदरी हती. तेना अथा अंगो अने उपांगो अहुज्ज सुकामण हतां, ते चोताना पतिने अहुज्ज वहाली हती. पतिनी साथे अनुष्य लवना कामलोगो लोणवती ते सुजेथी चोतानो वअत पसार करी रही हती.

(तस्सणं जिणदत्तस्स पुत्ते भद्राए भारियाए अत्तए सागरए नामं दारए सुकुमाले जाव सुख्वे)

भद्राभार्याथी उत्पन्न थयेतेो भद्राभार्यानि अेक पुत्र हतेो. तेनुं नाम सागर हतुं. ते सुकुमार यावत् सुंदर रूपवान हतेो.

स्वकाद् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति=निर्गच्छति, प्रतिनिष्क्रम्य, सागरदत्तस्य गृहस्य 'अदूरसामन्ते' =नातिदूरे नातिसमीपे 'वीईवयई' व्यतिव्रजति=गच्छति, 'इमंचणं' अस्मिन् समये सुकुमारिका दारिका स्नाता=कृतस्नाना 'चेडियासंघपरिवुडा' चेटिकासंघपरिवृता=दासीसमूहमध्यगता, उपरि आकाशतलके-प्रासादस्याट्टालिकोपरि 'कणगतेंदूसकेणं' कनकतेंदूससयेन 'तेंदूसय' इतिदेशीशब्दः, सुवर्णभयकन्दुकेन 'कीलमाणी २' विहरति, ततः खलु स जिनदत्तः सार्थवाहः सुकुमारिकां दारिकां पश्यति, दृष्ट्वा सुकुमारिकाया दारिकाया रूपे च यौवने च लावण्ये च 'जाय विम्हए' यावत् विस्मितः=आश्चर्ययुक्तः सन् कौटुम्बिकपुरुषान्=आज्ञाकारिणः पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-एषा खलु हे देवाणुप्पिया ! कस्य दारिका किं वा नामधेयं 'से' इति तस्याः ?, ततः खलु ते

अच्छे रूपवाला था । (तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाई साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता सागरदत्तस्स गिहस्स अदूरसामन्तेणं वीईवयई) एक दिन जिनदत्त सार्थवाह अपने घरसे निकला और निकलकर सागरदत्तके घरके पास से हो कर जा रहा था । (इमंचणं सूमालिया दारिया ण्हाया चेडियासंघपरिवुडा उप्पिआगा सतलगंसि कणगतेंदूसएणं कीलमाणी २ विहरइ) इसी समय सुकुमारिका दारिका नहा धो कर अपने प्रासाद की छत पर दासी समूहके साथ २ सुवर्णभय कंदुक (गेंद) से खेल रही थी । (तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे सूमालियं दारियं पासइ पासित्ता सूमालियाए दारियाए रूवेय ३ जाय विम्हए कोडुविय पुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी एसणं देवाणुप्पिया ! कस्स दारिया किं वा-नामधेज्जं से ? तएणं ते

तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाई साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता सागरदत्तस्स गिहस्स अदूरसामन्तेणं वीईवयई)

એક દિવસે જીનદત્ત સાર્થવાહ પોતાને ઘરથી બહાર નીકળ્યો અને નીકળીને સાગરદત્તના ઘરની પાસે થઈને બેઠો હતો.

(इमंचणं सूमालिया दारिया ण्हाया चेडियासंघपरिवुडा उप्पि आगास-तलगंसि कणगतेंदूसएणं कीलमाणी २ विहरइ)

ते वभते सुकुमारिका दारिका स्नान करीने पोताना भडेलनी अगाशी उपर दासी समूहनी साथे सुवर्णभय कंदुक (गेंद) रभती હતી.

(तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे सूमालियं दारियं पासइ पासित्ता सूमालियाए दारियाए रूवेय ३ जाय विम्हए कोडु विय पुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी एसणं देवाणुप्पिया ! कस्स दारिया किं वा नामधेज्जं से ? तएणं ते कोडुविय

કૌટુંબિકપુરુષા જિનદત્તન સાર્થવાહેનૈવગુક્તાઃ સન્તો હૃષ્ટપ્થાઃ—અતિમુદિતાઃ ‘ કર-
યલ જાવ ’ કરતલપરિગૃહીતં શિર આવૃતં દશનસ્રં મસ્તકેઽઙ્ગલિં કૃત્વા એવમવા;
દિપુઃ—હે દેવાનુપ્રિયાઃ ! એવા સાગરદત્તસ્ય સાર્થવાહસ્ય ‘ ધૂયા ’ દુહિતા=પુત્રી,
ભદ્રાયા આત્મજા સુકુમારિકા નામ દારિકા સુકુમારપાણિપાદા યાવદ્-રૂપેણ ચ
યૌવનેન ચ લાવણ્યેન ચ ઉત્કૃષ્ટા ઉત્કૃષ્ટ શરીરા । તતઃ સ્વલુ સ જિનદત્તઃ સાર્થ-

કૌટુંબિય પુરિસા જિણદત્તેણ સત્થવાહેણં એવં વુત્તાસમાણા હઠ્ઠ કરયલ
જાવ એવ વયાસી—એસણં દેવાણુપ્પિયા ! સાગરદત્તસસ સત્થવાહસસ ધૂયા-
ભદ્રાએ અત્તિયા સુમાલિયા નામ દારિયા સુકુમાલપાણિપાયા જાવ ઉક્કિદ્ધ
સરીરા) ખેલતી હુઈ ઉસ કુમારિકા દારિકા કો જિનદત્ત સાર્થવાહ ને
દેલા—દેલકર વે સુકુમારિકા દારિકા કે રૂપ યૌવન એવં લાવણ્ય મેં
આશ્ચર્યચકિત્ત હો ગયે—ઑર આશ્ચર્ય સે યુક્ત હોકર ઉન્હોને કૌટુંબિક
પુરુષો કો વુલાયા—વુલાકર વે ઉનસે ઇસ પ્રકાર કહને લગે—હે દેવાનુ-
પ્રિયો ! યહ કન્યા કિસકી હૈ ઇસકા નામ કયા હૈ । જિનદત્ત સાર્થવાહ
કે દ્વારા પૂછે ગયે ઉન કૌટુંબિક પુરુષો ને હર્વિત્ત હો કર ઑર અપને
દોનોં હાથોં જોડ, કર વડે વિનય કે સાથ ઉનસે એસા કહા—હે દેવાનુ-
પ્રિય ! યહ પુત્રી સાગરદત્ત સાર્થવાહકી હૈ । ભદ્રા ભાર્યા કી કુક્ષિ સે
યહ જન્મી હૈ । ઇસકા નામ સુકુમારિકા હૈ । ઇસકે કર ચરણ વડે હી
સુકુમાર હૈ યાવત્ રૂપ, યૌવન એવં લાવણ્યસે યહ સર્વોત્કૃષ્ટ હૈ ઑર
સર્વાઙ્ગ સુન્દરી હૈ । (તર્ણં સે જિણદત્તે સત્થવાહે તેસિં કૌટુંબિયાણં

પુરિષા જિણદત્તેણ સત્થવાહેણં એવં વુત્તા સમાણા હઠ્ઠ કરયલ જાવ એવ વયાસી-
એસણં દેવાણુપ્પિયા ! સાગરદત્તસસ સત્થવાહસસ ધૂયા ભદ્રાએ અત્તિયા સુમાલિયા
નામ દારિયા સુકુમાલપાણિપાયા જાવ, ઉક્કિદ્ધસરીરા)

રમતી સુકુમાર દારિકાને ઁનદત્ત સાર્થવાહે જોઈ જોઈને તેઓ સુકુમાર
દારિકાનાં રૂપ, યૌવન અને લાવણ્યમાં આશ્ચર્ય અકિત થઈ ગયા અને ત્યાર-
પછી તેમણે કૌટુંબિક પુરુષોને બોલાવ્યા અને બોલાવીને તે તેમને આ
પ્રમાણે કહેવા લાગ્યા કે હે દેવાનુપ્રિયો ! આ કન્યા કોની છે ? એનું નામ શું
છે ? ઁનદત્ત સાર્થવાહ વડે એવી રીતે પૂછાએલા તે કૌટુંબિક પુરુષોએ હર્વિત્ત
થઈને પોતાના અને હાથ જોડીને બહુજ વિનયની સાથે તેમને આ પ્રમાણે
કહ્યું કે હે દેવાનુપ્રિય ! સાર્થવાહ સાગરદત્તની આ પુત્રી છે. ભદ્રાભાર્યાના ઉદરથી
આનો જન્મ થયો છે સુકુમારિકા આનું નામ છે. એના હાથપગ ખૂબ જ સુકો
મળ યાવત્ રૂપ, યૌવન અને લાવણ્યથી આ સર્વોત્કૃષ્ટ છે અને સર્વાંગ સુંદરી છે.

बाहस्तेषां कौटुम्बिकानामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य स्नातो यावद् मित्रज्ञातिपरिवृतश्रम्पाया नगर्यां मध्ये भूत्वा यत्रैव सागर-दत्तस्य गृहं तत्रैवोपागच्छति, ततस्तदनन्तरम् सागरदत्तः सार्थवाहः खलु जिनदत्तं सार्थवाहम् एजमानम्=आगच्छन्तं पश्यन्ति, दृष्ट्वाऽऽसनादुत्तिष्ठति, उत्थाय 'आस-णेणं उवणिमंतेइ' आसनेनोपनिमन्त्रयति=आसन उपवेशनार्थं प्रार्थयति, उपनि-मन्त्र्य, आसनोपर्युपवेशनानन्तरम्, आस्वस्थं=मार्गश्रमापगमात् श्रान्तिरहितं, विस्व-स्थं=विशेषतो विश्रान्तिमुपगतं, सुखासनवरगतं=सुखेन विशिष्टासनोपविष्टं, तं

अंतिए एयमदुं सोच्चा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्तां प्हाए, जाव मित्तणाइपरिवुडे चंपाए० जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, तएणं सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्तं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टित्ता आसणेणं उवणि-मंतेइ उवणिमंत्तित्ता आसत्थं सुहासणवरगयं एवं वयासी) जिनदत्तं सार्थवाहने उन कौटुम्बिक पुरुषों के मुख से जब इस अर्थ को सुना तो सुनकर वह पहिले अपने घर गया—वहां जा कर उसने स्नान किया । यावत् फिर वह अपने मित्र, ज्ञाति आदि परिजनों के साथ चंपानगरी के बीच से हो कर जहां सागरदत्त का घर था वहां पहुँचा—सागरदत्तने ज्यों ही अपने घर पर आते हुए जिनदत्त सार्थवाहको देखा - तो वह जल्दीसे अपने स्थान से उठा—और उठकर " आप यहाँ बैठिये " इस प्रकार उनसे कहने लगा जब वे यथोचित स्थान पर बैठ चुके और आस्वे

(तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे तेसिं कौटुम्बिकानां अंतिए एयमदुं सोच्चा—जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता प्हाए, जाव मित्तणाइ परिवुडे चंपाए० जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, तएणं सागरदत्ते सत्थवाहे, जिणदत्तं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टित्ता आसणेणं उवणिमंतेइ उवणिमंत्तित्ता आसत्थं वीसत्थं सुहासणवरगयं एवं वयासी)

अनदत्त सार्थवाहे ते कौटुम्बिक पुरुषाना मुभथी आ वात सांसणीने सौ पडेलां तेओ। पोताने घेर गया. त्यां पडेलांने तेभणे स्नान कथुं. यावत् पछी ते पोताना मित्र, ज्ञाति वगेशे परिजनोनी साथे यंचा नगरीनी वन्ने थधने न्यां सागरदत्तनुं घर इतुं त्यां पडेलांन्या. सागर-दत्त अनदत्त सार्थवाहने पोताने घेर आवता नेधने त्वराथी ते पोताना आसन उपरथी गेलो थध गयो. अने गेलो थधने " तमे अडी भेसो "

जिनदत्तं सार्थवाहमेवं=वक्ष्यमाणप्रकारेणावादीत्-हे देवानुप्रिय ! भण=कथय, किमागमनप्रयोजनम्=कस्मै प्रयोजनाय समागतो भवान् ? ततः खलु स जिनदत्तः सार्थवाहः सागरदत्तं सार्थवाहमेवं=वक्ष्यमाणप्रकारेणावादीत्-एवं खलु अहं हे देवानुप्रिय ! तव दुहितरं=पुत्रीं, भद्राया आत्मजां सुकुमारिकां=सुकुमारिकानाम्नी सगरश्च=सगरनामकस्य मत्पुत्रस्य भार्यात्वेन ' वरेमि ' वृणोमि=चाञ्छामि, यदि खलु त्वं जानीहि हे देवानुप्रिय ! ' जुत्तं वा ' युक्तं वा=योग्यं वा-' एतत् कार्यं समुचितं भवति ' ति ' पत्तं वा ' प्राप्तं वा=एतत् कार्यं कुलमर्यादामनुप्राप्तं वा,

स्थविश्वस्थ वन चुके-तब विशिष्ट आसन पर शांतिके साथ बैठे हुए उन जिनदत्त सार्थवाह से उसने इस प्रकार पूछा ।-(भण देवाणुप्पिया ! किमागमणपओयणं) कहिये देवानुप्रिय ! यहां पधारने का आपका क्या प्रयोजन है ? किस प्रयोजन से आप यहां आये हैं-कहिये-(तएणं से जिनदत्तसत्थवाहे सागरदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी-एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! तव धूयं भद्दाए अंतियं सूमालियं सागरस्स भारियत्ताए वरेमि जइणं जाणाह देवाणुप्पिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो दिज्जउणं सूमालिया सागरस्स) जिनदत्त सार्थवाहने सागरदत्त सार्थवाहसे तब इस प्रकार कहा हे देवानुप्रिय ! मैं आपकी सुभद्रा की कुक्षिसे उत्पन्न हुईं सूमालिका पुत्री को अपने पुत्र सागर की भार्या बनाना चाहता हूँ । यदि आप इसे स्वीकार करें कि यह कार्य योग्य है-उचित है-कुल मर्यादा के अनुसार है अथवा मेरा पुत्र आपकी

आ रीते, तेभने डडेवा दाग्थे. न्यारे तेग्थे उचित स्थाने भेसी गया अने आस्वस्थ विश्वस्थ थर्ध चूक्या त्यारे विशिष्ट आसन उपर शांतिपूर्वक भेठेला ते उनदत्त सार्थवाहने तेणे आ प्रभाणे उहुं-(भण देवाणुप्पिया ! किमागमण पओयणं) हे देवानुप्रिय ! भतावे अर्धी पधारवानी पाछण आपने शो उेतु छे ? क्या प्रयोजनथी आप अर्धी आंव्या छे ?

(तएणं से जिनदत्त सत्थवाहे सागरदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी-एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! तव धूयं भद्दाए अंतियं सूमालियं सागरस्स भारियत्ताए वरेमि जइणं जाणाह देवाणुप्पिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो दिज्जउणं सूमालिया सागरस्स)

उनदत्त सार्थवाहे सागरदत्त सार्थवाहने त्यारे आ प्रभाणे उहुं हे देवानुप्रिय ! हे तमारी सुभद्राना उदरथी जन्म पाभेदी सुमालिका पुत्रीने भारी पुत्र सागरनी यत्नी भनाववा धंछुं छुं. आप ने भारी भागणी उचित सम-जता छे, कुण-मर्यादा योग्य तेमज भारे पुत्र तमारी कन्या भाटे योग्य

पात्रं= 'कन्या योग्योऽयं मत्पुत्रः सागरः' इति, 'सलाहणिज्जं वा' श्लाघनीयं= प्रशंसनीयं वा 'सरिसो वा संजोगो' सदृशो वा संयोगः—अयं कन्यावरयो वैवाहिकः सम्बन्धः कुलेन रूपेण गुणेन वा तुल्य इति, 'तो' तर्हि 'दिज्जउ' ददातु भवान् खलु सुकुमारिकां दारिकां सागराय=मत्पुत्रायेतिभावः । ततः खलु हे देवानुप्रिय ! ब्रूहि—किं दद्व—किं दद्यां, शुल्कं=संमानार्थं द्रव्यं सुकुमारिकाया दारिकायाः ? ततः खलु स सागरदत्तः सार्थवाहस्तं जिनदत्तमेवमवादीत्—एवं खलु हे देवानुप्रिय ! सुकुमारिका दारिका ममैका एकजाता=एकैवोत्पन्ना, तथा—इष्टा—अनुकूला, यावत्—कान्ता=ईप्सिता, प्रिया=प्रीतिपात्रा, मनोज्ञा=मनोगता तथा—

कन्या के योग्य है यह संबन्ध प्रशंसनीय है, कन्या और वर का यह वैवाहिक संबन्ध कुल रूप और गुणों के अनुरूप है तो आप अपनी पुत्री सुकुमारिका को मेरे पुत्र सागर के लिये प्रदान कर दीजिये—(तएणं देवाणुप्पिया ! किं दल्लयामो सुक्कं सुमालियाए ?) हे देवानुप्रिय ! साथ में यह भी कहदीजिये कि सुकुमारिका दारिका के संमानार्थं हम क्या द्रव्य देवें (तएणं से सागरदत्ते तं जिणदत्तं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! सुमालिया दारिया मम एगा, एगजाया ईट्ठा जाव किमंगपुण पासणयाए तं नो खलु अहं इच्छामि, सुमालियाए दारियाए खणमवि विप्पओगं तं जइणं देवाणुप्पिया ! सागरदारए मम धरजामाउए भवइ, तो णं अहं सागरस्स सुमालियं दल्लयामि) सागरदत्तए ने जिनदत्त से तब इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! यह सुकुमारिका पुत्री मेरे यहां एक ही लड़की है और यह एक ही उत्पन्न हुई

छे, आ संबंध सारे छे, कन्या तेमज वरने। आ लग्न संबंध कुण इप अने शुष्णेने अनुइप छे तो तमे तमारी पुत्री सुकुमारिकाने भारा पुत्र सागरने भाटे आपो. (तएणं देवाणुप्पिया ! किं दल्लयामो सुक्कं सुमालियाए ?) हे देवानुप्रिय ! साथे साथे अे पणु अमने जणुवो के सुकुमारी दारिकाना संमानार्थं अमे शुं द्रव्य इपमां आपीअे ?

(तएणं से सागरदत्ते त जिणदत्तं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! सुमालिया दारिया मम एगा. एग जाया इट्ठा जाव किमंगपुण पासणयाए तं नो खलु अहं इच्छामि सुमालियाए दारियाए खणमवि विप्पओगं तं जइणं देवाणुप्पिया ! सागरदारए मम धरजामाउए भवइ, तो णं अहं सागरस्स दारगस्स सुमालियं दल्लयामि) त्तारे सागरदत्ते अनदत्तने आ प्रभाणु कहु के हे देवानुप्रिय ! आ सुकुमारिका दारिका भारे अेकनी अेक पुत्री छे अने आ अेक ज जन्मी छे.

मनोमा=मतसः स्थानभूता, किं वहूना उदुम्बरपुष्पमिव ' उदुम्बरपुष्पं केनापि दृष्टम् ' इतिवत् श्रवणविषयत्वेन सा दुर्लभा, किमङ्ग ! पुन-दर्शनविषयतया, तत्=तस्माद् नो खलु अहमिच्छामि सुकुमारिकाया दारिकायाः क्षणमपि विप्रयोगं=वियोगम्, तत्=तस्माद् यदि खलु हे देवानुप्रिय ! सागरदारको मम ' घरजामा-उए ' गृहजामातृकः=गृहवासीजामाता भवति ' तोणं ' तर्हि खलु अहं सागराय दारिकाय सुकुमारिकां ददामि । ततः खलु स जिन्दत्तः सार्थवाहः सागरदत्तेन सार्थवाहेनैव मुक्तः सन् यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सागरदारकं=स्वपुत्रं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-एवं खलु हे पुत्र ! सागरदत्तः सार्थ-वाहो मम=मां प्रति, ' सम्बन्धसामान्ये षठी ' एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिय ! सुकुमारिका दारिका ममैका एक जाता इष्टा ' तं चेव'

है । यह मेरे लिये ईष्ट यावत् मनोम है-कान्त है, प्रिय है और मनोज्ञ है । अनुकूल होने से इष्ट, ईप्सित होने से कान्त प्रीतिपात्र होने से प्रिय मनको रुचने वाली होने से मनोज्ञ एवं मन का स्थान भूत होने से मनोज्ञ है । ज्यादा क्या कहूँ यह तो हमें उदुम्बर पुष्प के समान दर्शन दुर्लभ थी-सुनने की तो बात ही क्या । अतः मैं इसे देना नहीं चाहता हूँ । कारण इस सुकुमारिका दारिका के बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता हूँ इसलिए हे देवानुप्रिय ! सागर यदि घरजमाई बन कर रहना चाहें तो मैं उन्हें यह अपनी सुकुमारिका पुत्री दे सकता हूँ । (तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सागरदारगं सदावेइ, सदावित्ता एवं क्यासी-एवं खलु पुत्ता ! सागरदत्ते सत्थवाहे मम एवं

आ मने धए यावत् मनोम छे-अेटके के कान्त छे, प्रिय छे, अने मनोम छे. अनुकूल होवा अदल धए, धप्सित होवाथी कान्त, प्रीतिपात्र होवा अदल प्रिय अने मनने गमे अेवी होवाथी मनोज्ञ तथा मनने आश्रय होवाथी मनोम छे. वधारे शुं कहुं ! आ तो अमने उदुम्बर पुष्पनी नेम ' दर्शन-दुर्लभ' इती. सांभणवानी तो वात न शी करवी ! अेथी आने हुं आपवा धिच्छतो नथी. कारण के अेना वगर हु क्षणवार पाणु रही शकतो नथी अेटला भाटे डे देवा नुप्रिय ! सागर ने घर न भाई थधने भारी पासे रहेवा धिच्छतो होय तो हुं आ भारी सुकुमारीका पुत्री तेमने आपी शकुं तेम छुं.

(तएणं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्ते णं सत्थवाहे णं एवं वुत्ते समाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरदारगं सदावेइ, सदावित्ता एवं क्यासी-एवं खलु पुत्ता ! सागरदत्ते सत्थवाहे मम एवं क्यासी-एवं खलु

तदेव=पूर्वोक्तवर्णनमेवात्रबोधयं यावत्-तस्माद् नो खल्वहमिच्छामि सुकुमारिकाया दारिकायाः क्षणमपि विप्रयोगं, तत्=तस्माद् यदि खलु सागरदारको मम 'घर-जामाउए' गृहजामातृकाः=गृहवासी जामाताभवति, तर्हि ददामि । ततः खलु त सागरको दारको जिनदत्तेन तार्थवाहेनैवमुक्तः तन् तूष्णीकः=मौनावलम्बी सन् संतिष्ठते ।

वयास्त्री-एवं खलु देवाणुप्पिया ! सुमालिया दारिया मम एगा एगजाया इट्टा तं चेव जइणं सागरदारए मम घरजमाउए भवइ ता दलयामि) इस प्रकार सागरदत्त सार्थवहके कहे जाने पर जिनदत्त सार्थवाह जहां अपना घर था वहां आया-वहां आकर उसने अपने सागेर पुत्र को बुलाया । बुला कर फिर उससे उसने ऐसा कहा-हे पुत्र-सागरदत्त सार्थवाह ने मुझसे ऐसा कहा है कि आपका पुत्र सागेर यदि मेरे घर जमाई बन कर रहना चाहें तो मैं अपनी सुकुमारिका उन्हें दे सकता हूँ । उनका घरजमाई बनाने का कारण यह है कि यह सुकुमारिका पुत्र पुत्री उसके एक ही पुत्री है-और एक ही उत्पन्न हुई हैं । यह उसे बहुत ही अधिक इष्ट यावत् मनोम है । इस तरह सागरदत्त का कहा हुआ समस्त कथन जिनदत्त ने अपने पुत्र सागेर को सुना दिया । इसलिये वह उसका एक क्षण भी वियोग सहन नहीं कर सकता है । अतः वह

देवाणुप्पिया ! सुमालिया दारिया मम एगा एगजाया इट्टा तं चेव जइणं सागर-दारए मम घरजमाउए भवइ ता दलयामि)

आ रीते अनदत्त सार्थवाड तेमनी आ वात सांभणीने ते अनदत्त सार्थवाड ज्यां पोतानुं घर इतुं त्यां आव्या. त्यां आवीने तेणु पोताना सागरपुत्रने जोलाव्या. जोलावीने तेणु तेने आ प्रभाणु कहुं के डे पुत्र ! सागरदत्त सार्थवाडे मने आ प्रभाणु कहुं छे के तमारो पुत्र सागेर ने भारो घर जमाई रडेवा कभूलतो डोय तो हुं भारी पुत्री सुकुमारिका तेमने आपवा तैयार छुं. तेज्यो तमने घर जमाई जनाववा अटला भाटे धिछे छे के सुकुमारिका दारिका तेमनी अकनी अक पुत्री छे. ते तेमने अतीव धष्ट यावत् मनोम छे. आ रीते सागरदत्ते ने क'ध कहुं इतुं ते जधुं तेमणु पोताना पुत्र सागेर आगण रणू कर्युं. अने छेवटे कहुं के अटला भाटे ज ते अक क्षण पणु पोतानी पुत्रीने वियोग सही शकतो नथी. तमने ते आ कारणथी ज घर जमाई जनाववा धवछे छे.

ततः खलु जिनदत्तः तार्थवाहो ऽन्यदा कदाचित् शोभने=शुभकारके, तिथिकरणनक्षणमुहूर्ते विपुलमशनं पानं खाद्यं स्वाद्यमृपस्कारयति, निष्पादयति, उपस्कार्य मित्रज्ञातिप्रभृतिनामन्त्रयति, आमन्त्र्य 'जाव सम्माणेइ' यावत् सम्मानयति भोजयति, भोजयित्वा वस्त्रादिभिः सत्करोति, सत्कृत्य स्वागतवचनादिना

तुम्हें घरजमाई बनाना चाहता है । (तएणं से सागरए दारए जिणदत्ते णं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ, तएणं जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाइं सोहणंसि तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहूर्त्तंसि विउलं असण पान खाइम साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइ० आमंतेइ, जाव सम्माणित्ता सागरं दारगं ण्हायं जाव सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करित्ता पुरिससहस्स वाहिणिं सीयं दुरूहावेइ, दुरूहावित्ता मित्तणाइ जाव संपरिवुडे सच्चिटीए साओ गिहाओ निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता चंपा नयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ) जिनदत्त सार्थवाह के द्वारा इस प्रकार कहा जाने पर वह सागर दारक चुपचाप रह गया उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया । एक दिन जिनदत्त ने शुभ, तिथि करण, दिवस नक्षत्र मुहूर्त्तमें विपुलमात्रा में अशन, पान, खाद्य और स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार बनवाया-बनवाकर उसने अपने मित्र ज्ञाति आदिवन्धुओं को आमंत्रित किया आमंत्रित करके फिर उसने उन सबको भोजनकराया-भोजन कराकर

(तएणं से सागरए दारए जिणदत्ते णं सत्थवाहे णं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ, तएणं जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाइं सोहणंसि तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहूर्त्तंसि, विउलं असणपान खाइम साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइ आमंतेइ, जाव सम्माणित्ता सागरं दारगं ण्हायं जाव सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूहावेइ, दुरूहावित्ता मित्तणाइ जाव संपरिवुडं सच्चिटीए साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता चंपा नयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ)

अनहत्त सार्थवाह वडे आ प्रमाणे उडेवायेले। सागर पुत्र अकहम थूथधने जेसी न रहीं। तेणे केअ पणु नतने। नवाअ आथे। नहि अक दिवस अनहत्ते शुभतिथि, करण, दिवस, नक्षत्र मुहूर्त्तमां पुष्कण प्रमाणुमां अशन, पान, आद्य अने स्वाद्य इय चार नतने। आहार अनावडाये। अनावडावीने तेणे पोताना मित्र, ज्ञाति वगेरे संबंधीअने आमंत्रित कथां। आमंत्रित करीने तेणे ते अथा आवेदा संबंधीअने नमाइया। नमा-

सम्मानयति समान्य सागरं दारकं स्नातं यावत् सर्वालङ्कारविभूषितं कारयति, कारयित्वा पुरुषसहस्रवाहिनीं शिविकां दूरोहयति=आरोहयति, दूरोह्य मित्रज्ञाति स्वजन-सम्बन्धिभिर्यावत् परिवृतः सर्वद्वर्चा सकलविभवेन स्वकाद् गृहाद् निर्गच्छति, निर्गत्य चम्पाया नगर्या मध्यमध्येन=मध्येभूत्वा यत्रैव सागरदत्तस्य गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य शिविकातः 'पञ्चोर्हावेइ' प्रत्यवरोहयति, सागरदारकं स्वपुत्रं प्रत्यवतारयति, प्रत्यवरोह्य सागरकं दारकं सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य उपनयति=समीपमानयति ।

ततः खलु सागरदत्तः सार्थवाहो विपुलमशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं=चतुर्विधमाहारम् उपस्कारयति=निष्पादयति, उपस्कार्य यावत् = मित्रादिसहितं जिनदत्तमामन्व्य भोजयित्वा, सत्कृत्य, संमानयति, समान्य सागरकं दारकं सुकुमारिकया दारिकाया सार्थं 'पट्टयं' पट्टकं 'दुरूहावेइ' दूरोहयति=आरोहयति, दूरुह्य श्वेतपीतकः=

सबका वस्त्रादिक से सत्कार किया सत्कार करके फिर उनका स्वागत बचानादिकों द्वारा सन्मान किया- । सन्मान कर के बाद मैं उसने अपने सागरपुत्रको स्नान कराया- । स्नान कराकर उसने उसे समस्त अलंकारों से विभूषित कराया । विभूषित कराकर बाद मैं उसने उसे पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका पर चढाया चढाकर मित्र, ज्ञाति, स्वजन संबन्धियों को साथ लेकर फिर वह सकल विभवके अनुसार अपने घर से निकला-निकलकर चंपानगरी के बीचो बीच से होता हुआ सागरदत्त का जहाँ घर था वहाँ पहुँचा । (उवागच्छित्ता सीयाओ पञ्चोर्हावेइ, पञ्चोर्हावित्ता सागरगं दारगं सागरदत्तस्स सत्थ० उवणेइ, तएणं, सागरदत्ते सत्थवाहे विपुलं असणपाण खाइम साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता जाव सम्माणत्ता सागरगं दारगं सूमालियाए दारियाए सद्धिं पट्टयं

दीने अधाने वञ्चो वगेरे आपीने सत्कार कर्थो, सत्कार करीने तेणे तेमनुं स्वागत वयनेो वडे सन्मान कर्थुं. सन्मान कर्था आइ तेणे पोताना सागर पुत्रने स्नान करावुं स्नान करावीने तेणे तेने अधा अन्नंकारेथी शणुगार्यो, शणुगारीने तेणे तेने पुरुष-सहस्रवाहिनी पादणीमां भेसाउथे. त्थारपथी मित्र, ज्ञाति, स्वजन संबन्धीयेने साथे लधने ते पोताना संपूणुं वैलवणी साथे पोताना घेरथी नीकउथे-नीकणीने चंपा नगरीनी वञ्चे थधने ते न्यां सागरदत्तनुं घर डतुं त्यां पडोअथे.

(उवागच्छित्ता सीयाओ पञ्चोर्हावेइ, पञ्चोर्हावित्ता सागरगं दारगं सागरदत्तस्स सत्थ० उवणेइ, तएणं, सागरदत्ते सत्थवाहे विपुलअसणपाणखाइम साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता जाव सम्माणत्ता सागरगं दारगं सूमालियाए

राजतसौवर्णैः कलशैः = चारिपूर्णैर्घटैर्मज्जयति = स्नपयति, मज्जयित्वा अग्निहोमं कारयति, कारयित्वा सागरं दारकं सुकुमारिकाया दारिकायाः पाणिं ग्राहयति ॥ सू. ८ ॥

दुरूहावेइ, दुरूहावित्ता सेयोपीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावित्ता अग्निहोमं करोवेइ, करावित्ता सागर दारयं सूमालियाए दारियाए पाणिं गिण्हावेइ) वहां पहुँचकर उसने अपने पुत्र सागर को पालखी से नीचे उतारा और उतारकर सागरदत्त सार्थवाह के पास उसे लेभाया । सागरदत्त सार्थवाहने भी पहिलेसे ही विपुलमात्रा में अशन, पान, खाद्य, एवं स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार तैयार करवालियो था सो उससे मित्रादि सहित जिनदत्त सार्थवाह को आनंद के साथ खिलाया खिलाकर सबका सत्कार किया सन्मान किया । सत्कार सन्मान करने के बाद फिर सागरदत्तने सागर दारक को अपनी पुत्री सुकुमारिका के साथ एक पट्टक पर बैठाया-बैठाकर सुवर्ण चांदी के कलशोंसे उनका अभिषेक कराया अभिषेक हो जाने के बाद अग्निहोम कराया । अग्निहोम जब हो चुका तब सागरदत्तने अपनी पुत्री सुकुमारिका का सागर के हाथ में हस्तमिलाप किया-अर्थात् लग्न कर दिया ॥ सू. ८ ॥

दारियाए सद्धिं पट्टयं, दुरूहावेइ, दुरूहावित्ता सेयोपीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावित्ता अग्निहोमं करावेइ, करावित्ता सागरदारयं सूमालियाए दारियाए पाणिं गिण्हावेइ)

त्या पडोंथीने तेणे पोताना पुत्र सागरने पाखीभांथी नीचे उतार्यो अने उतारीने सागरदत्त सार्थवाहनी पासे लई गयो. सागरदत्त सार्थवाहे पणु पडेलेथी न पुष्कण प्रमाणुमां अशन, पान, भाद्य अने स्वाद्य इय तार नतने आहार तैयार करावीने राख्यो हुने. तेणे मित्र वगेरे दोडोनी साथे अनदत्त सार्थवाहने आनंदनी साथे, नभाउया अने तयारपणी तेणे सौने सत्कार तेमन सन्मान क्युं. सत्कार अने सन्मान कर्था बाद सागरदत्ते सागरदत्तने पोतानी पुत्री सुकुमारिकानी साथे एक पट्टक उपर घेसाउयो. घेसाउने सोना-चांदीना कणशोथी तेमने अलिषेक करावडांयो. अलिषेकनुं काम पुई भया बाद तेणे अग्निहोम करांयो. अग्निहोमनी विधि पूरी थई गई तयारे सागरदत्ते पोतानी पुत्री सुकुमारिकाने सागरनी साथे हस्तमेलाप करावी-दीघे अरेके के लस करावी दीघां. ॥ सू. ८ ॥

मूलम्—तएणं सागरदारए सूमालियाए दारियाए इमं
 एयारूवं पाणिफासं पडिसंवेदेइ से जहा नामए असिपत्तेइ
 वा जाव मुम्मुरेइ वा एत्तो अणिट्टतराए चेव० पाणिफासं
 पडिसंवेदेइ, तएणं से सागरए अकामए अवसव्वसे मुहु-
 त्तमित्तं संचिट्ठइ, तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे सागरस्स
 दारगस्स अम्मापियरो मित्तणाइ० विउलेण असणपाणखा-
 इमसाइमं पुप्फवत्थ जाव सम्माणेत्ता पडिविसज्जइ, तएणं
 सागरए दारए सूमालियाए सद्धिं जेणेव वासघरे तेणेव उवाग-
 गच्छइ उवागच्छित्ता सूमालियाए दारियाए सद्धिं तलिंगंसि
 निवज्जइ, तएणं से सागरए दारियाए सूमालियाए दारि-
 याए इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, से जहा नामए
 असिपत्तेइ वा जाव अमणामयरागं चेव अंगफासं पच्चणु-
 ष्भवमाणे विहरइ, तएणं से सागरए अंगफासं असहमाणे
 अवसव्वसे मुहुत्तमित्तं संचिट्ठइ, तएणं से सागरदारए सूमा-
 लियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सूमालियाए दारियाए
 पासाउ उट्टेइ, उट्टित्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवाग-
 च्छइ, उवागच्छित्ता सयणीयंसि निवज्जइ, तएणं सूमालिया
 दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी पइव्वया पइ-
 मणुरत्ता पतिं पासे अपस्समाणी तलिमाउ उट्टेइ, उट्टित्ता
 जेणेव से सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सागरस्स
 पासे णुवज्जइ, तएणं से सागरदारए सूमालियाए दारियाए

दुच्चंपि इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ जाव अकामए
 अवसव्वसे मुहुत्तमित्तं संचिट्ठइ, तएणं सेसागरदारएसूमा-
 लियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्तासयणिज्जाओ उट्ठेइ उट्ठित्ता
 वासघरस्स दारं विहाडेइ विहाडित्ता मारामुक्के विव काए
 जामेव दिसिं पाउव्वभूए तामेव दिसिं पडिगए ॥ सू०९॥

टीका—‘तएणं’ इत्यादि । ततः खलु सागरदारकः सुकुमारिकाया दारि-
 काया इममेतद्रूपं=वक्ष्यमाणप्रकारं पाणिस्पर्शं=करस्पर्शं प्रतिसंवेदयति=अनुभवति,
 कीदृशः स करस्पर्शः इति सदृष्टान्तमाह—‘से जहानामए’ इत्यादि । तद् यथा
 नामकम्=यथा दृष्टान्तम्-दृष्टान्तं प्रदर्शयति—‘असिपत्तेइ वा’ इत्यादि । असि-
 पत्रमिति वा=असिपत्रं-खड्गः, यथा खड्गधारायाः स्पर्शः सोढुमशक्यस्तद्वत् सुकु-
 मारिका दारिकायाः करस्पर्शः प्रतिसंवेद्यत इति भावः । ‘जाव मुम्मुरे इ वा०’
 यावत् मुम्मुरेति वा=अत्र यावत् करणादिदं बोध्यम्—‘करपत्तेइ वा खुरपत्तेइ वा

‘तएणं सागरदारए’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद—अर्थात् सागरदारकने जब हस्तमिलाप
 किया तब (सागरदारए) उस सागर को (सूमालियाए दारियाए) सुकु-
 मारिका दारिकाका (पाणिपासं) वह हस्तका स्पर्श (इमं एयारूवं पडिसंवे-
 देइ) इस प्रकार से लगा (से जहा नामए असिपत्तेइ वा जाव मुम्मुरे-
 इवा, एत्तो अणिट्ठतराए चैव० पाणिफासं पडिसंवेदेइ) जैसे वह
 असिपत्र तलवार का स्पर्श हो यावत् अग्नि कणमिश्रित भस्म का स्पर्श
 हो । यहां यावत् शब्दसे “कर पत्तेइ” वा खुर पत्तेइवा, कलंव चीरिया

‘तएणं सागरदारए’ इत्यादि

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी अट्ठे के सागरदारके ल्यारे हस्तमेजाय कुर्यो त्थारे
 (सागरदारए) ते सागरने (सूमालियाए दारियाए) सुकुमार दारिकानो (पाणि-
 पास) ते हाथनो स्पर्श (इमं एया रूवं पडिसंवेदेइ) आ प्रभाणे लाग्थे के
 (से जहा नामए असि पत्तेइ वा जाव मुम्मुरेइ वा, एत्तो अणिट्ठतराए चैव
 पाणिफासं पडिसंवेदेइ)

अण्णे ते असिपत्र-तरवार-नो स्पर्शं न डोय, यावत् अग्निक्खु मिश्रित
 भस्मनो स्पर्शं न डोय. अर्ही ‘यावत्’ शब्दथी

(करपत्तेइ वा खुरपत्तेइ वा, कलंवचीरियापत्तेइ वा सत्ति अग्गेइ वा कौतग्गेइ

कलंवचीरियापत्तेः वा सत्तिअग्गेइ वा कौंतग्गेइ वा तोमरग्गेइ वा भिंडिमालग्गेइ वा सूचिकलावएइ वा विच्छुयडंकेइ वा कविकच्छूइ वा इंगालेइ वा मुम्पुरेइ वा अच्चीइ वा जालेइ वा आलाइ वा सुद्धागणीइ वा भवेयारूवेसिया?, नो इणट्टे समट्टे, करपत्रमिति वा क्षुरपत्रमिति वा कदम्बचीरिकापत्रमिति वा शक्त्यग्रमिति वा कुन्ताग्रमिति वा तोमराग्रमिति वा भिन्दिपालाग्रमिति वा वृश्चिकदंश इति वा कपिकच्छुरिति वा अङ्गार इति वा मुर्मुर् इति वा अर्चिरिति वा ज्वालेति वा, अलातमिति वा शुद्धाग्निरिति वा भवेदेतद्रूपः-स्यात्?, नायमर्थः समर्थः, इति । तत्र करपत्रं= क्रकचं ' करवत् ' इति प्रसिद्धं क्षुरपत्रम्=' उस्तरा ' इति प्रसिद्धम्, कदम्बचीरिकापत्रम्-कदम्बचीरिका-तृणविशेषः, अस्या अग्रभागोऽतितीक्ष्णो भवति तस्य पत्रं, शक्तिः=शस्त्रविशेषः-त्रिशूलं वा तस्या अग्रभागः स्व कुन्तः ' भाला ' इति प्रसिद्धः शस्त्रविशेषः, तदग्रभागः, तोमरः=बाण विशेषस्तदग्रभागः, भिन्दिपालः= शस्त्रविशेषः सूचीकलापकं सूचीसमूहस्तस्याग्रभागः, वृश्चिकदंशः=वृश्चिक कण्टकः, कपिकच्छुः-खर्जुकारी वनस्पतिविशेषः, अङ्गारः=ज्वालारहितोऽग्निः, मुर्मुर्ः=अग्नि-

पत्तेइ वा, सत्ति अग्गेइवा कौंतग्गेइवा तोमरग्गेइ वा, भिंडिमालग्गे वा सूचिकलावएइवा विच्छुय डंकेइ वा कवि कच्छूइवा इंगालेइ वा मुम्पुरेइ वा अच्चीइ वा जालेइ वा आलाइ वा सुद्धागणीइ वा भवेयारू वेसिया ? नो इणट्टे समट्टे) कर पत्र-कर वत, क्षुर पत्र-उस्तरा कदम्बचीरिका पत्र छुहिया घास-जिसका अग्रभाग अधिक तीक्ष्ण होता है शक्ति-अग्र-शक्ति-त्रिशूल अथवा आयुधविशेष का अग्रभाग कुन्ताग्र भाले की नोक तोमराग्र-बाण की अनी भिन्दिपाल-शस्त्र विशेष-का अग्रभाग-सूची कलापका अग्रभाग-विच्छु का डंक कपिकच्छु-करेंच-जिसके स्पर्श होनेपर खुजली आती है-ज्वाला रहित अग्नि, मुर्मुर्-अग्निकणमिश्रित

तोमरग्गेइ वा, भिंडिमालग्गे वा सूचिकलावएइ वा विच्छुय डंकेइ वा, कविकच्छूइ वा इंगालेइ वा, मुम्पुरेइ वा अच्चीइ वा जालेइ वा, आलाइ वा सुद्धागणीइ वा भवेयारूवे सिया ? नो इणट्टे समट्टे)

करपत्र-करवत, क्षुरपत्र - अश्रो, कदम्बचीरिका पत्र-छुरिका के जेना अग्रभाग अतितीक्ष्ण तीक्ष्ण होय छे, शक्ति-अग्र-शक्ति, -त्रिशूल अथवा आयुध विशेषने अग्रभाग, कुन्ताग्र-भालानी अशी, तोमराग्र-तीरनी अशी, सिद्धिवाल-विशेषने अग्रभाग, सूचीकलापने अग्रभाग, वींछीने डंभ, कविकच्छु-कषय-जेना स्पर्शथी भंवाण आवे छे, नवाणा रहित अग्नि, मुर्मुर्-अग्निकण मिश्रित लक्ष्म, अर्चि-लाकडाओथी सणगती नवाणा, नवाणा-लाकडा वगरनी

कणमिश्रितभस्म अर्चिः=इन्धन प्रतिवद्धा ज्वाला, ज्वालातु-इन्धनच्छिन्ना, आला-
तम्=उल्मुकं, शुद्धाग्निः लोहपिण्डस्थाऽग्निः । असिपत्रादि-शुद्धाग्निपर्यन्तानां स्पर्श
इव सुकुमारिकायाः करस्पर्शो भवेत्कथञ्चित्किम्? नायमर्थः समर्थः=अथं दृष्टान्तसमूहः
करस्पर्शं साम्यं प्राप्तुं न समर्थः तर्हि कीदृशः? इत्याह ' एत्तो अणिद्वतराए चैव० '
एतस्माद् असिपात्रदीनां स्पर्शादनिष्टतरक एव, अकान्ततरक एव=अत्यन्तमक-
मनीय एव, अप्रियतरक एव=अतिदुःखजनकएव अमनोज्ञतरकएव=अतिशयेन मनो-
विकृतिकारकएव अमनोमतरकएव=अतिशयेन मनःप्रतिकूलएव वर्तते, तमेवम्भूतं
पाणिस्पर्शं सुकुमारिकादारिकायाः करस्पर्शं प्रतिसंवेदयति=अनुभवति ।

ततः खलु स सागरदारकः अकामकः= निरभिलाषः 'अवसव्वसे' अपसव्वशः=
अपगतस्वातन्त्र्यः विवशः सन् गृहूर्तमात्रं=स्तोककाल संतिष्ठते (ततः खलु स
सागरदत्तः सार्थवाहः सागरस्य दारकस्य अम्वापितरौ मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिप-

भस्म अर्चि-इन्धन प्रतिवद्ध ज्वाला, ज्वाला-इन्धन से रहित ज्वाला
अलात-उल्मुक शुद्धाग्नि-लोहपिण्डस्थ अग्नि । इन असिपत्र से लेकर
शुद्धाग्नि पर्यन्त पदार्थों का स्पर्श जैसा होता है वैसा ही सुकुमारिका
के कर का स्पर्श हो सकता था-परन्तु यहाँ यह अर्थ समर्थित नहीं है
-अर्थात् उसके सुकुमारिका के कर स्पर्श में इन दृष्टान्तों के स्पर्श की
समानता नहीं मिल सकती है क्योंकि वह स्पर्श तो इनके स्पर्श से भी
अधिक अनिष्टतर ही था, अकान्ततरक ही था-अत्यन्त अकमनीय था,
अप्रिय तरकही था-अत्यन्त दुःखजनक ही था, अमनोज्ञतरक ही था
-अत्यन्त मनो विकृतिजनक ही था, अमनोमतरक ही था-अत्यन्त
मनः प्रतिकूल ही था । (तएणं से सागरए अकामए अवसव्वसे
सुहुत्तमित्तं संचिद्धइ, तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे सागरस्स दारगस्स

न्वाणा, अलात-उल्मुक, शुद्ध अग्नि-लोहपिण्डस्थ अग्नि-आटली वस्तुओंतुं श्रद्धे
अवुं लेधये. आ असिपत्रथी मांडीने शुद्ध अग्नि सुधीना पदार्थोना वे नतने
स्पर्शं डाय छे तेवे न सुकुमारिकाना हाथने पणु स्पर्शं हतो.

पणु उद्वीकृतमां तो आ वस्तुओंनी समानता पणु तेना तीक्ष्ण स्पर्शनी साथे
शरी शक्य तेम नथी केभके तेना हाथने स्पर्शं तो उक्त वस्तुओंना स्पर्शं
उरतां पणु वधारे अनिष्टतर हतो, अकान्ततरक हतो, अतीव अकमनीय हतो,
अप्रियतरक हतो, अत्यन्त दुःखजनक हतो, अमनोमतरक हतो, अत्यन्त मनो
विकृतिजनक हतो, अमनोम तरक हतो, अहु न मनः प्रतिकूल हतो.

(तएणं से सागरए अकामए अवसव्वसे सुहुत्तमित्तं संचिद्धइ, तएणं से सा-

रिजनांश्च विपुलेनाशनपानखाद्यस्वाद्येन पुष्पवस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण सत्करोति
संमानयति सत्कृत्य संमान्य प्रतिविसर्जयति = प्रस्थापयति । ततः खलु सागरको
दारकः सुकुमारिकया सार्धं यत्रैव वासगृहं-शयनगृहं तत्रैवोपागच्छति उवागत्य
सुकुमारिकया दारिकया सार्धं 'तलिमंसि' तलिमे देशीयोऽयंशब्दः तल्पे-शयनीये
'निवज्जइ' निषीदति । ततः खलु स सागरदारकः सुकुमारिकाया दारिकाया
इममेतमद्रूपमङ्गस्पर्शं प्रतिसंवेदयति-तद् यथानामकं=तत् प्रतिसंवेदनं दष्टान्तोपन्या-
सपूर्वकं प्रदर्शयते-असिपत्रं वा यावद् अमनोमतरमेव सुकुमारिकाया अङ्गस्पर्शं

अम्मापियरो मित्तणाइ० विउलेणं असणं पाणंखाइमं साइमं पुष्पवत्थ
जाव सम्माणेत्ता पडिविसज्जति) अतः वह सागर उसमें अभिलाषा
से रहित बन गया । फिर भी वहाँ विवश होकर वह कुछ समय तक
ठहरा रहा । सागरदत्त सार्धंवाह ने सागर दारक के मातापिता का तथा
उसके मित्र, ज्ञाति स्वजन, संबन्धी परिजनों का विपुल अशन, पान,
खाद्य और स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार से एवं पुष्प वस्त्र, गन्ध, माला
तथा अलंकार से खूब सत्कार किया-सन्मान किया । सत्कार सन्मान
करके फिर उसने सबको अपने यहाँ से विदा कर दिया । (तएणं
सागरए दारए सुमालियाए सद्धिं जेणेव वासगिहे तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छिता सुमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि निवज्जइ, तएणं
से सागरए दारए सुमालियाए दारियाए इमं एयारुवं अंगफासं पडि-
संवेदेइ से जहानामए असि पत्तेइवा जाव अमणामयरागंचेव अंगफासं

गरदत्ते सत्यवाहे सागरस्स दारगस्स अम्मापियरो मित्तणाइ० विउलेणं असणं पाणं
खाइमं साइमं पुष्पवत्थ जाव सम्माणेत्ता पडिविसज्जति)

अटला भाटे ते सागर तेनां अलिशापाथी रद्धित णनी गथो. छतांअे
ते त्यां लाथार थधने थोडा वणत सुधी रोकाथो. सागरदत्त सार्धंवाडे सागर
दारकना मातापितानो तेमण तेना मित्र, ज्ञाति, स्वजन, संबन्धी परिजनोना
विपुल अशन, पान, आद्य अने स्वाद्य रूप चार जतना आडारथी अने पुष्प
वस्त्र, गंध, माला तेमण अलंकारेथी अहु सत्कार अने सन्मान कथुं. सत्कार
तेमण सन्मान करीने तेणे सोने पोताने त्यांथी विदाय कथां.

(तएणं सागरए दारए सुमालियाए सद्धिं जेणेव वासगिहे तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छिता सुमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि निवज्जइ, तएणं से सागरए
दारए सुमालियाए दारियाए इमं एयारुवं अंगफासं पडिसंवेदेइ से जहा नामए
असिपत्तेइ वा जाव अमणामयरागं चैव अंगफासं पञ्चगुणमवमाणे विहरइ तएणं

प्रयत्नुभवन् विहरति । ततः खलु स सागरदारकस्तस्या अङ्गस्पर्शमसहमानोऽपस्व-
 वत्राः=अपगत स्वातन्त्र्यः, सन् मुहूर्तमात्रं संतिष्ठते । ततः खलु स सागरदारकः
 सुकुमारिकां दारिकां सुखप्रसृतां ज्ञात्वा सुकुमारिकाया दारिकायाः पार्श्वत उत्तिष्ठति,
 उत्थाय यत्रैव स्वकं शयनीयं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य शयनीये, ' निवज्जइ '
 निपीदति स्वपितीत्यर्थः । ततः खलु सुकुमारिका दारिका ततो मूहूर्तान्तरे प्रति-
 बुद्धा=जागरिता सति पतिव्रता ' पइमणुरत्ता ' प्रत्यनुरत्ता स्वपतिं प्रत्यनुरागिणी,
 पार्श्वे पतिसपश्यन्ती ' तलिमाउ ' तल्यात्=शयनीयाद् उत्तिष्ठति, उत्थाय यत्र

पञ्चणुवभवमाणे विहरइ तएणं से सागरए अंगफासं असहमाणे अव-
 सव्वसे मुहुत्तमित्तं संचिद्धइ) इसके बाद सागरदारक सुकुमारिका के
 साथ जहाँ वासगृह-शयन घर-था वहाँ गया वहाँ जाकर वह उस सुकु-
 मारिकाके साथ एक शय्यापर बैठ गया । बैठ जाने पर उस सागरदारक
 को सुकुमारिका दारिकाका अंगस्पर्श इस रूपसे प्रनीत हुआ-जैसे मानो
 असिपत्र आदिका स्पर्श हो ! इन असिपत्र (खड्गको यावत्) आदिको
 के स्पर्श से भी उसका वह अंगस्पर्श यावत् अमनामतरक ही था । इस
 प्रकार का उसका अंगस्पर्श अनुभवता हुआ वह सागरदारक विवश
 बनकर वहाँ कुछ समय तक ठहरो बाद में जब उससे सहन नहीं
 हुआ तो । (तएणं से सागरदारए सुमालियं दारियं सुहपसुत्तं
 जाणित्ता सुमालियाए दरियाए पासाउ उट्टेइ, उट्टित्तां जेणेव सए सय-
 णिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयणीयंसि निवज्जइ, तएणं
 सुमालिया दारिया तओ मुहुत्ततरस्स पडिबुद्धा समाणी पइव्वया पइ

से सागरए अंगफासं असहमाणे अवसव्वसे मुहुत्तमित्तं संचिद्धइ) .

त्यारपणी सागर दारकं सुकुमारिकानी साथे न्यां वासगृह-शयनघर उंतुं
 त्यां गयो, त्यां न्धने ते सुकुमारिकानी साथे अक शय्या उपर भेसी गयो.
 भेसा भाद ते सागर दारकने सुकुमारिका दारिकानो अंग-स्पर्श अवा प्रकारेनो
 न्णुथो के ते असिपत्र - तरवार वगेरेनो स्पर्शं न डोय ! असिपत्र
 वगेरे करतां पणु तेनो अंग स्पर्शं यावत् अमनोमतरक हुतो. आ रीते तेनो
 अंग स्पर्शने अनुभवतो सागर दारक लायार थधने त्यां थोडा वधत सुधी
 रोकाथो अने त्यारभाद न्यारे तेने ते स्पर्शं असह्य थध पडयो त्यारे

(तएणं से सागरदारए सुमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सुमालियाए
 दरियाए पासाउ उट्टेइ, उट्टित्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवा-
 गच्छित्ता सयणीयंसि निवज्जइ, तएणं सुमालिया दारिया तओ मुहुत्ततरस्स

‘से’ तस्य शयनीयं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य सागरदारकस्य पार्श्वे (निवज्जइ) निपीदति=स्वपिति । ततः खलु स सागरदारकः सुकुमारिकाया दारिकाया ‘दुच्चंपि’ द्वितीयवारमपि इममेतद्रूपम् पूर्वोक्तप्रकारकम् अङ्गस्पर्शं प्रतिसंवेदयति यात्रद्-अकामकोऽपस्ववशो मुहूर्तमात्रं संतिष्ठति, ततः खलु स सागरदारकः सुकुमारिकां दारिकां सुखप्रसुप्तां ज्ञात्वा शयनीयात्=शय्यात उत्तिष्ठति, उत्थाय वासगृहस्य=शयनगृहस्य द्वारं ‘विहाडेइ’ विघाटयति = उद्घाटयति विघाटय ‘मारामुक्के विवकाए’ मारामुक्त इव काकः=मार्यन्ते प्राणिनो यस्यां सा मारा

मणुरत्ता पतिं पासे अपस्समाणी तलिमाउ उट्टेइ उट्टित्ता उवागच्छइ) वह सागरदारक उस सुकुमारिका दारिका को सुखसे सोई हुई जानकर उस सुकुमारिका दारिका के पास से उठ बैठा-और उठकर जहाँ अपनी शय्या थी वहाँ चला गया । वहाँ आकर उस पर पड़ गया इतने में ही एक मुहूर्त के बाद वह पति में अनुरक्त बनी हुई पतिव्रता सुकुमारिका दारिका जग गई और अपने पास पति को न देखकर अपने पलंग से उठ बैठी । उठकर वह जहाँ सागरदारक का पलंग था वहाँ गई । (उवागच्छित्ता सागरस्स पासे पुवज्जइ) वहाँ जाकर वह उसके पास सो गई । (तएणं से सागरदारए सुमालियाए दारियाए दुच्चंपि इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ जाव अकामए अवसव्वसे मुहुत्तमित्तं संचिट्ठइ, तएणं से सागरदारए सुमालियं दारियं सुहपसुत्तं

पडिबुद्धा समाणी पडव्वयां पइमणुरत्ता पत्तिपासे अपस्समाणी तलिमाउ उट्टेइ उट्टित्ता उवागच्छइ)

ते सागर दारक ते सुकुमारिका दारिकाने सुभेथी सूतेवी ज्ञाणीने तेनी पासेथी उठयो, अने उठीने ज्यां पोतानी शय्या उती त्यां जतो रह्यो. त्यां जधने ते तेनी उपर पडी गयो. अट्टेत्तामां अक मुहूर्तं पथी पतिमां अनुरक्त भनेवी पतिव्रता सुकुमारिका दारिका जगी गध अने पोतानी पासे पति न जेतां पोतानी शय्या उपरथी उठी अने जेठी गध. त्यारपथी ते उठीने ज्यां सागर दारकनी शय्या उती त्यां गध. (उवागच्छित्ता सागरस्स पासे पुवज्जइ) त्यां जधने ते तेना पडथांमां सूध गध.

(तएणं से सागरदारए सुमालियाए दारियाए दुच्चंपि इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ जाव अकामए अवसव्वसे मुहुत्तमित्तं संचिट्ठइ, तएणं से सागरदारए सुमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सयणिज्जाओ उट्टेइ, उट्टित्ता वासवस्स दारं विहा-

शूना वधस्थानं, तस्यामुक्तो निस्सृतः काक इव, यद्वा-माराद्=मारकपुरुषादामुक्तः
=निर्मुक्तःविच्छुटितः फाको यथा वेगतो निर्गच्छति तद्वद्, यस्या एव दिशः
प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः ॥ सू० ९ ॥

मूलम्-तर्णसूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा
पइवया जाव अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्टेइ सागरस्स
दारियाए सवओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणीर वासघ-
रस्स दारं विहाडियं पासइ पासित्ता एवं वयासी-गए से

जाणित्ता सयणिज्जाओ उट्टेइ, उट्टित्ता वासघरस्स दारं विहाडेई,
विहाडेत्ता मारामुक्के विव काए जामेव दिस्सि पाउब्भूए तामेव दिस्सि
पडिगए) सागरदारक को सुकुमारिका दारिका का अंगस्पर्श दुवा-
राभी वैसा ही पूर्वोक्तरूप से अनुभव में आया-अतः उसके पास सोने
की इच्छा न होने पर भी वह विवशहोकर कुछ समय तक उसके पास
सोता रहा-जब वह अच्छी तरह सो गइ-तब वह उसे सुख प्रसुप्तजा-
नकर उसके पास से उठा-और उठकर उसने उस वास गृह के दरवाजे
को खोला खोलकर जिस प्रकार 'मारामुक्त' काक बड़े वेगसे निकलता है
-उसी तरह यह भी बहुत जल्दी वहां से निकलकर जिस दिशा से
प्रकट हुआ था-उसी दिशा तरफ वापिस चला गया । जिस में प्राणी
मारे जाते हैं उसका नाम मारा-शूना- वधस्थान है । इस मारा से
निकला हुआ अथवा मारनेवाले पुरुष के हाथ से छूटा हुआ-ऐसे ये दो
अर्थ " मारमुक्त " इस शब्द के हो सकते हैं । सू० ९

डेई,विहाडित्ता मारामुक्के विव काए जामेव दिस्सि पाउब्भूए तामेव दिस्सि पडिगए)
सागर दारके सुकुमारिकाने पीछारने अंग स्पर्श पण्डु पडेलानी
जेमज लाग्यो. ओठला भाटे तेनी पासे सूवानी धरुछा न डोवा छतंजे ते
विवश थधने थोडीवार सुधी तेनी पासे पडी रह्यो. न्यारे ते सारी नीते सुध
गर्ध त्यारे ते तेने सुजेथी सूती न्णणीने तेनी पासेथी उठ्यो अने उठीने
तेणे ते वासगृहना पारणाने उघाड्यु. उघाडीने जेम मारा-मुक्त कागडो न्ण्डी
नीकणी नय छे तेमज ते पण्डु पण्डु ज तराथी त्यांथी नीकणीने जे दिशा तरुथी
आव्यो हुतो ते ज दिशा तरु पाछे जतो रह्यो. जे स्थाने प्राणीयो मारी
नाभवामां आवे छे तेनुं नाम " मारा " (वधस्थान) छे. आ ' मारा ' थो
पुटीने आम जे अर्थो ' मारामुक्त ' शब्दना थध शके छे. ॥ सूत्र ६ ॥

सागरे त्तिकट्टु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ, तएणं सा भदा सत्थवाही कळं पाउ० दास चेडियं सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए ! बहुवरस्स मुहधोवणियं उवणेहि, तएणं सा दासचेडी भदाए एवं वुत्ता समाणी एयमट्टं तहत्ति पडिसुणंति, मुहधोवणियं गेणहइ गेणित्ता जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं जाव झियायमाणिं पासइ पासित्ता एवं वयासी - किन्नं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियाहिसि ?, तएणं सा सूमालिया दारिया तं दासचेडी एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! सागरए दारए मम सुहपसुत्तं जाणित्ता मम पासआओ उट्टेइ उट्टित्ता वासघरदुवारं अवगुणइ जाव पडिगए तएणं तओ अहं मुहुत्तं तरस्स जाव विहाडियं पासामि, गए णं से सागरएत्तिकट्टु ओहयमण जाव झियायामि, तएणं सा दासचेडी सूमालियाए दारियाए एयमट्टं सोच्चा जेणेव सागरदत्ते तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सागरदत्तस्स एयमट्टं निवेएइ, तएणं से सागरदत्ते दासचेडीए अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते जेणेव जिणदत्तस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जिणदत्तं एवं वयासी-किण्णं देवाणुप्पिया ! एवं जुत्तं वा पत्तं वा कुलाणुरूवं वा कुलसरिसं वा जन्नं सागरदारए सूमालियं दारियं अदिट्टुदोसं पइवयं

विप्पजहाय इहमागओ बहूहिं खिज्जणियाहि य रुंणियाहि
 य उवालभइ, तएणं जिणदत्ते सागरदत्तस्स एयमट्ठं सोच्चा
 जेणेव सागरए दारए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता साग-
 रयं दारयं एवं वयासी-दट्टुणं पुत्ता ! तुमे कयं सागरदत्तस्स
 गिहाओ इहं हव्वमागते, तेणं तं गच्छह णं तुमं पुत्ता !
 एवमवि गए सागरदत्तस्स गिहे, तएणं से सागरए जिणदत्तं
 एवं वयासी-अवि आइं अहं ताओ ! गिरिपडणं वा तरुप-
 डणं वा मरुप्पवायं वा जलप्पवेसं वा जलणप्पवेसं वा
 विसभक्खणं वा सत्थोवाडणं वा वेहाणसं वा गिद्धापिट्ठं वा
 पवज्जं वा विदेसगमणं वा अब्भुवगच्छिज्जामि नो खलु अहं
 सागरदत्तस्स गिहं गच्छिज्जा, तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे
 कुडुंतरिए सागरस्स एयमट्ठं निसामेइ निसामित्ता लज्जिए
 विलीए विडे जिणदत्तस्स गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिनि-
 क्खमित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
 सुकुमालियं दारियं सदावेइ सदावित्ता अंके निवेसेइ निवे-
 सित्ता एवं वयासी-किण्णं तुमं पुत्ता ! सागरएणं दारएणं
 मुक्का ?, अहंणं तुमं तस्स दाहामि जस्स णं तुमं इट्ठा जाव
 मणासा भविस्ससित्तिस्सूमालियं दारियं ताहिं इट्ठाहिं वग्गूहिं
 समासासेइ समासासित्ता पडिविसज्जेइ ॥ सू० १० ॥

टीका—‘ तएणं ’ इत्यादि । ततः=तन्निर्गमनानन्तरं खलु सुकुमारिका
 दारिका ततो मूहूर्तान्तरे प्रतिबुद्धा=जागरिता सती पतिव्रता यावत् पतिमपश्यन्ती

शयनीयात्=शय्यात उत्तिष्ठति, उत्थाय सागरस्स दारकस्य सर्वतः समन्ताद् मार्ग-
णगवेषणं कुर्वती २ वासगृहस्य=शयनगृहस्य द्वारं विधाटितम्=उद्घाटितं पश्यति,
दृष्ट्वा एवमवादीत्-गतः स सागरदारकः, इति कृत्वा 'ओहयमणसंकम्पा' अपह-
तमनः संकल्पा=नष्टमनोरथा, यावत् ध्यायति=आर्तध्यानं करोतिस्म । ततस्तदन-
न्तरं भद्रा सार्थवाही 'कल्लं' कल्पे=द्वितीयदिवसे प्राहुः प्रभातार्यां रजन्यां यावत्
तेजसा ज्वलति=दीप्यमाने सूर्ये उदिते दासचेटी मां=दामपुत्रीं शब्दयति, शब्दयित्वा

'तएणं सूमालिया दारिया' इत्यादी ।

टीकार्थ-(तएणं) इसके बाद (सूमालिया दारिया) सुकुमारिका दारिका
(तओ सुहुत्तरस्स पडिबुद्धा पइवया जाव अपासमाणी) एक सुहुत्त
के बाद जग पडी-सो उस पतिव्रता ने वहाँ अपने पतिको जब नहीं देखा
तब (सयणिज्जाओ उट्टेइ, सागरस्स दारगस्स सव्वाओ समता मग्गण-
गवेषणं करेमाणी २ वासघरस्स दारं विहाडियं पासइ, पासित्ता एवं
वयासी) पलंग से उठी उटकर उसने सागर दारक की वहीं पर सथ
और बाह २ मार्गण गवेषणा की- । जब उसने शयन गृह के दरवाजे
को उघड़ा हुआ देखा-तब उसे विचार आया कि (गये से सागरे ति
कहु ओहयमणसंकम्पा जाव झियायइ, तएणं सा भद्रा सत्यवाही कल्लं
पाउ० दासचेडियं सदावेइ) कि सागर चले गये हैं । इस प्रकार अप-
हतमनःसंकल्प होकर वह विचार में पड़ गई, इतने में भद्रा सार्थवा-

(तएणं सूमालिया दारिया इत्यादि—

टीकार्थ-(तएणं) त्याख्याह (सूमालिया दारिया) सुकुमारिका दारिका
(तओ सुहुत्तरस्स पडिबुद्धा पइवया जाव अपासमाणी) एक सुहुत्त पडी
जगी गध ते पतिव्रताओ त्यां पोताना पतिने न्यारे जेया नडि त्यारे
(सयणिज्जाओ उट्टेइ, सागरस्स दारगस्स सव्वाओ समता मग्गणगवेषणं
करेमाणी २ वासघरस्स दारं विहाडियं पासइ, पासित्ता एवं वयासी)

शय्या उपरथी जली धध अने लारपछी तेणे त्यांन आरपास योमेर
सागर दारकनी मार्गणा-गवेषणा करी. न्यारे तेणे शयनगृहना पारणाने
उघारेलु जेथु त्यारे तेने विचार आव्यो हे

(गए से सागरे तिकहुओ ओहयमणसंकम्पा जाव झियायइ, तएणं सा
भद्रा सत्यवाही कल्लं पाउ दासचेडियं सदावेइ)

सागर जता रखा छे. आ रीते अपहत मनः संकल्पवाणी धधने ते

एवमवादीत्—हे देवानुप्रिये ! गच्छ खलु त्वं ' बहुवरस्स ' वधूवरयोः समीपे ' मुहधोवणियं ' मुखधावनिकां=दन्तधावनादिरूपाम् ' उवणेहि ' उपनय=प्रापय । ततः खलु सा दासचेटी भद्रया सार्थवाद्या एवमुक्तासती ' एयमद्वं ' एतमर्थम्= एतद्वचनं ' तथा ऽस्तु ' इतिकृत्वा प्रतिशृणोति, प्रतिश्रुत्य ' मुहधोवणियं ' मुख धावनिकां गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव वासगृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सुकुमारिकां दारिकामेकाकिनीं यावत्—ध्यायन्तीं=आर्त्तध्यानं कुर्वतीं पश्यति, दृष्ट्वा एवमवादीत्—

हीने द्वितीय दिन प्रातः काल होते ही दासपुत्री को बुलाया (सदावित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए ! बहुवरस्स मुहधोवेणियं उवणेहि तएणं सा दासचेटी भदाए एवं बुत्ता समानी एयमद्वं तहत्ति पडि सुणंति मुहधोवणियं गेणहइ, उवागच्छित्ता, सुमालियं दारियं जाव झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—किन्नं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहमणंसंरुप्पा जाव झियाहिसि ? तएणं सा सुमालिया दारिया तं दासचेटीं एवं वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया सागरए दारए मम सुहपसुत्तं जणित्ता मम पासओ उट्टेइ, उट्टित्ता वासघरदुवारं अवगुणइ, जाव पडिगए) बुलाकर उससे ऐसा कहा कि हे देवाणु प्रिय !तूजा, और वधूवर के पास इस दन्त धावन आदिरूप मुख धावनिका को लेजा भद्रा के इस कथन को उस दासचेटी ने " तहत्ति " कहकर स्वीकार कर लिया—और मुख धावनीका को ले लिया—और लेकर फिर वह जहां वासगृह था—वहां गई । वहां पहुँचकर उसने सुकुमारिका दारिका को

चित्तामां गमगीन थध गध. अेटत्तामां णीन द्विसे सवारे लद्रासार्थवाडीअे दासपुत्रीने णोलावी.

(सदावित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए ! बहुवरस्स मुहधोवणियं उवणेहि, तएणं सा दासचेटी भदाए एवंबुत्ता समानी एयमद्वं तहत्ति पडिसुणंति मुहधोवणियं गेणहइ, गेणित्ता जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, सुमालियं दारियं जाव झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—किन्नं तुमं देवाणुप्पिया ओहयमणंसंरुप्पा जाव झियाहिसि ? तएणं सा सुमालिया दारिया तं दासचेटीं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! सागरए दारए मम सुहपसुत्तं जणित्ता मम पासओ उट्टेइ, उट्टित्ता वासघरदुवारं अवगुणइ, जाव पडिगए)

णोलावीने तेने आ प्रमाणे उह्णु के डे देवानुप्रिये ! तु वरवधूनी पासे आ दंतधावन वगेरे मुखधावनिका लध न्ण लद्राना आ कथनने सांलणीने ते दासचेटीअे ' तडत्ति " उड्डीने तेने स्वीकारी लीधु अने मुखधावनिका (दाताथु) ने लध लीधु अने लधने ते न्या वासगृह उतुं त्यां गध त्यां

हे देवानुप्रिये ! हे सुकुमारिके ! किं=कुतः खलु त्वम् अपहतमनः संकल्पा यावत्
ध्यायसि ?, ततस्तदनन्तरं सा सुकुमारिका दारिका तां दासचेटीमेवमवादीत्—हे
देवानुप्रिये ! एवं खलु सागरको दारको मां सुखप्रसुप्तां ज्ञात्वा मम पार्श्वार्धुत्तिष्ठति,
उत्थाय वासगृहद्वारम् ' अत्रगुणः ' अत्रगुणयति=अपावृणोति उद्घाटयति, 'यावत्
प्रतिगतः ' यस्याः एव दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः । ततस्तदनन्तरं खलु
' तओ ' ततो मुहुर्तान्तरेऽहं यावत्—प्रतिबुद्धा सती सागरदारकमपश्यन्ती शयना-
दुत्तिष्ठामि, उत्थाय तस्य मार्गणगवेषणं कुर्वती वासगृहस्य द्वारं विघाटितं पश्यामि
गतः खलु स सागरकः ' इति कृत्वा=इति हेतोरहम् अपहतमनः संकल्पा यावद्—

चिन्ता मग्न देखा-देखकर उसने उससे पूछा कि हे देवानुप्रिये ! क्या
कारण है जो आप अपहतमनः संकल्पा होकर चिन्ता मग्न बनी हुई
हो ? इस दासचेटी के प्रश्नको सुनकर उस सुकुमारिका ने उस से
कहा—देवानुप्रिये—सुनो—सागरदारक मुझे सुख प्रसुप्त जानकर मेरे
पास से उठे और उठकर वासगृह के दरवाजे को खोलकर जहाँ
से आये थे वहाँ चले गये हैं । (तए णं तओ अहं मुहुत्तंतरस्स
जाव विहाडियं पासामि गएणं से सागरए त्तिक्कट्टु ओहयमाणं
जाव झियायामि, तए णं सा दासचेडी सूमालियाए दारियाए एयमट्टं
सोच्चा जेणेव सागरदत्ते तेणेव उवागच्छइ) उसके बाद ज्योंही मैं
जगी—तो मैंने जब सागर दारक को अपने पास नहीं देखा—तो मैं शय्या
से उठ बैठी—और उठकर मैंने उनकी यहीं पर सब तरफ मार्गण गवे-
षणाकी उसमें मैंने वासगृह के दरवाजे उघडा पाया—तब मैं समझ

जधने तेणे सुकुमारिका दारिकाने चिंतामां गमगीन जेध जेधने तेणे तेने
पूछथुं के हे देवानुप्रिये ! सा कारण्थी तमे अपहत मनः संकल्पा थधने
चिंतामां जेका छे ? दासचेटीना प्रश्नने सांलणीने ते सुकुमारिकाजे तेने कहु-
के हे देवानुप्रिये ! सांलणो, सागर दारक भने सुणेथी सूती जलणीने भारी
पासेथी उला थया अने उला थधने वासगृहना पारणाने उघाडीने ज्यांथी
आन्था डता, त्यां जता रखा छे.

(तएणं तओ अहं मुहुत्तंतरस्स जाव विहाडियं पासामि गएणं से सागरए
त्तिक्कट्टु ओहयमाणं जाव झियायामि, तएणं सा दासचेडी, सूमालियाए दारियाए
एयमट्टं सोच्चा जेणेव सागरदत्ते तेणेव उवागच्छइ)

त्यार पछी न्यारे हुं जगी त्यारे मे' सागर दारक ने भारी पासे जेथे
नडिं, हुं शय्या उपर उडी अने जेडी थधं गध अने त्यार पछी मे' अडीं ज
तेमनी अघे मार्गण-गवेषणा करी मे' न्यारे वासगृहना पारणाने उघाडुं जेथुं
त्यारे हुं समज गध के तेजो आल्या गया छे. आ विचारथी ज हुं अपहत

आर्तध्यानं ध्यायामि । ततः खलु सा दासचेटी सुकुमारिकाया दारिकाया अन्तिके-
 एतमर्थं श्रुत्वा, यत्रैव सागरदत्तः सार्थवाह = सुकुमारिकायाः पिता, तत्रैवोपा-
 गच्छति, उपागत्य तं सागरदत्तमेतमर्थं निवेदयति । ततस्तदनन्तरं स सागरदत्तः
 सार्थवाहो दासचेटीया अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निश्चय आशुरुत्तः = शीघ्रं क्रोधाविष्टः
 सन् यत्रैव जिनदत्तस्य सार्थवाहस्य गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य जिनदत्तं
 सार्थवाहमेवमवादीत्-हे देवानुप्रिय ! किं = कथं खलु एवं युक्तम् = उचितं वा प्राप्तं =
 कुलमर्यादामनुप्राप्तं वा कुलानुरूपं = कुलयोग्यतानुकूलं वा कुलसदृशं = कुलसाम्यापन्नं
 वा, यत् खलु सागरो दारकः सुकुमारिकां दारिकामदृष्टदोषां = निर्दोषां पतिव्रतां
 गई कि वे चले गये है इस विचार से मैं अपहृतमनः संकल्प होकर
 आर्तध्यान-चिन्ता-में पड़ रही हूँ । इस प्रकार सुकुमारिका की बात
 सुनकर वह दासचेटी बहुत सोच विचार करके वहाँ से सागरदत्त
 के पास आई । (उवागच्छत्ता सागरदत्तस्स एयमद्वं निवेएइ-तएणं
 से सागरदत्ते दासचेटीए अंतिए एयमद्वं सोच्चा निसम्म आसुरत्ते
 जेणेव जिनदत्तस्स सत्यवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ-उवागच्छत्ता
 जिनदत्तं एवं वयासी) वहाँ आकर उसने सागरदत्त से इस बात को
 कहा-। इस तरह दासचेटी के मुख से इस बात को सुनकर और उसे
 हृदय में धारण कर सागरदत्त बहुत अधिक-क्रुद्ध हुआ-और उसी
 समय जहाँ जिनदत्त सार्थवाह का घर था वहाँ गया । वहाँ जाकर
 उसने जिनदत्त से इस प्रकार कहा-(किण्हं देवाणुप्पिया ! एवं जुत्तं
 वा पत्तं वा कुलाणुरुवं वा कुलसरिसं वा जन्नं सागरदारए सुमालियं

मनः संकल्प यद्यने आर्तध्यान-चिन्ता-मां पडी छुं आ रीते सुकुमारीकानी बात
 सांलणीने ते दास चेटी भूषण विचार करीने त्यांथी सागरदत्तनी पासे गर्ध
 उवागच्छत्ता सागरदत्तस्य एयमद्वं निवेएइ-तएणं से सागरदत्ते दासचेटीए
 अतिए एयमद्वं सोच्चा निसम्म आसुरत्ते जेणेव जिनदत्तस्स सत्यवाहस्स गिहे
 तेणेव उवागच्छइ-उवागच्छत्ता जिनदत्तं एवं वयासी)

त्यां आवी ने तेणे सागरदत्तने आ बात करी आ रीते दास चेटीना
 भुषणी भधी विगत सांलणीने अने तेने हृदयमां धारण करीने सागर दत्त
 अत्यंत गुस्से थये अने तस्त न न्यां जिनदत्त सार्थवाहंतुं घर छतुं त्यां
 गये त्या नद्यने तेणे जिनदत्त सार्थवाहने आ प्रभाणे कहुं के

(किण्हं देवाणुप्पिया ! एवं जुत्तं वा पत्तं वा कुलाणुरुवं वा कुलसरिसं वा
 जन्नं सागरदारए सुमालियं दरियं अदिदुदोसं पइवयं विप्पजहाय इहमागओ
 वहुहिं खिज्जणिचाहि य रुट्टणियाहि य उवालमइ)

विप्रहाय=त्यक्त्वा इहागतः-कथमेतद् युक्तं, यत् निर्दोषां सुकुमारिकां विहाय सागरदारकोऽत्र समायात इति । एवं ब्रह्मीभिः ' खिञ्जणियाहि य ' खेदनिकामिः=खेदपूर्णाभिस्तथा ' रुंठणियाहि य '=रुंठणियाभिश्च देशीयोऽयं शब्दः, रोदनक्रियायुक्ताभिः वाग्भिः उपालभते=सागरदत्तो जिनदत्तस्य उपालम्भं करोतीत्यर्थः ।

ततः खलु जिनदत्तः सार्थवाहः सागरदत्तस्य सार्थवाहस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निश्चय्य यत्रैव सागरदारकस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सागरकं दारकं स्वपुत्रमेवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अत्रादीत्-हे पुत्र ! त्वया खलु दुष्टु=अशोभनं कृतम् यत्-सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य गृहादिह हव्यमागतः, तत्-तस्माद् गच्छ खलु त्वं हे पुत्र ! एवमपि=यथास्थितस्तथैव सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य गृहम् । सागरदारको जिनदत्तं सार्थवाहमेवमत्रादीत्-हे तात ! अपि=निश्चयेन ' आइं ' इति वाक्यालंकारे अहं

दारिक्यं अदिद्वदोसं पडवयं विप्पजहाय इह मागओ बहूहिं खिञ्जणियाहि य रुंठणियाहि य उवालभइ) हे देवानुप्रिय ! क्या यह बात योग्य है-अथवा कुलभर्यादा के लायक है, या कुल की योग्यता के अनुसार है या कुल को शोभित करे ऐसी है, जो सागरदारक बिना किसी दोषके देखे-पतिव्रता सुकुमारिका दारिका को छोड़कर यहां आ गया है इस प्रकार अनेक खेदपूर्ण एवं रोदनक्रिया युक्त वचनोंसे सागरदत्तने अपने संबंधी जिनदत्तको ठपका-उलाहना दिया । (तएणं जिणदत्ते सागरदत्तस्स एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सागरए दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरयं दारयं एवं वयासी-दुट्ठुणं पुत्ता तुमे कयं, सागरदत्तस्स गिहाओ इह हव्वमागए, तेणं तं गच्छह णं तुमं पुत्ता ! एवमविगए, सागरदत्तस्से गिहे, तएणं से सागरए जिणदत्तं एवं वयासी-अवि आइं अहं ताओ !

हे देवानुप्रिय ! शुं आ वात वाञ्छी छे ? कुण भर्यादाने लायक छे ? अथवा तो कुणनी योग्यता मुञ्ज छे ? कुणने शोभावनारी छे ? के जे सागर दारक के छे पणु जतना दोष जेथा वगर पतिव्रता सुकुमारीका दारिकाने त्यजने अर्ही आवी गयो छे ? आ रीते मनने हुलावनारा तेमज गणगणा थनि रउतां रउतां धणुं वयनोथी सागरत्ते पोताना वेवाध जिणदत्तने ठपके आथ्यो.

(तएणं जिणदत्ते सागरदत्तस्स एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सागरए दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरयं दारयं एवं वयासी-दुट्ठुणं पुत्ता तुमे कयं सागरदत्तस्स गिहाओ इह हव्वमागए, तेणं तं गच्छह णं तुमं पुत्ता ! एवमविगए, सागरदत्तस्से गिहे, तएणं से सागरए जिणदत्तं एवं वयासी-अवि आइं अहं

तवाज्ञया गिरिपतनं वा तरुपतनं वा मरुप्रपातं वा=निर्जलदेशगमनं वा जलप्रपातं वा=अगाधजले पतनं वा, ज्वलनप्रवेशं वा ज्वलद्ग्नौ प्रवेशं वा विषभक्षणं वा, 'सत्थोवाडणं वा' शस्त्रावपाटनं वा=शस्त्रेण शरीरविदारणं वा, 'वेहाणसं वा' वैहायसं वा कण्ठे पाशकग्रहणं वा, तथा-गृध्रस्पृष्टं=गृध्रैः स्पर्शनं मया गजोष्ठादीनां कलेवरे प्रवेशितस्य शरीरस्य मृतबुद्ध्या गृध्रैर्भक्षणं, तथा प्रव्रज्यां वा, विदेश-

गिरिपडणं वा तरुपडणं वा मरुप्पवायं वा जलप्पवेसं वा जलणप्पवेसं वा विसभक्खणं वा सत्थोवाडणं वा वेहाणसं वा गिद्धापिट्ठं वा पवज्जं वा विदेसगमणं वा अब्भुवगच्छिज्जामि, नो खलु अहं सागरदत्तस्स गिहं गच्छिज्जा) जिनदत्त सागरदत्त के इस उलाहने रूप अर्थ को सुनकरके जहाँ सागरदारक था वहाँ गया-वहाँ जाकर उसने सागर दारक से इस प्रकार कहा-हे पुत्र ! यह तुमने अच्छा नहीं किया-जो तुम सागरदत्त के घर से यहाँ इतने जल्दी आ गये । इसलिये हे बेटा ! तुम जैसे यहाँ बैठे हो वैसे ही सागरदत्त के घर चले जाओ । तब सागरदारकने अपने पिता जिनदत्त से इस प्रकार कहा-पिताजी ! मैं आपकी आज्ञा से पर्वत से गिरना स्वीकार कर सकता हूँ, वृक्ष से नीचे पड़ना स्वीकार कर सकता हूँ-मरुप्रपात-निर्जलप्रदेश में जाना अंगीकार कर सकता हूँ, अगाधजल में डूबकर मर सकता हूँ तथा जलती हुई अग्नि से प्रवेश करना, विषकाभक्षण करना, शस्त्र से शरीर का

ताओ ! गिरिपडणं वा तरुपडणं वा मरुप्पवायं वा जलप्पवेसं वा जलणप्पवेसं वा विसभक्खणं वा सत्थोवाडणं वा वेहाणसं वा गिद्धापिट्ठं वा पवज्जं वा विदेसगमणं वा अब्भुवगच्छिज्जामि, नो खलु अहं सागरदत्तस्स गिहं गच्छिज्जा) जिनदत्त सागरदत्तना आ ठपडाने सांभणीने जयां सागर दारक डते त्यां गथे अने त्यां जधने तेणे सागर दारकने आ प्रभाणे क्खुं के डे पुत्र ! तमे आ जे क'रुं क'रुं छे, ते सारुं न डडेवाय तमे सागरदत्तना घेरथी आटला जदही आवता रहा आ डीक नथी. जेथी डे जेटां ! तमे अत्यारे जेवी स्थितिमां छे तेवी न स्थितिमां सागरदत्तने घेर जता रडे। त्यारे सागर दारके पोताना पिताने आ प्रभाणे क्खुं के डे पितश्री ! तमारी आसाथी कुं पर्वत उरथी नीचे गणडी पडवुं स्वीकारी शकुं छुं, वृक्ष उपरथी नीचे पडी जवुं स्वीकारी शकुं छु, मरुप्रपात-निर्जल प्रदेशमां जवुं स्वीकारी शकुं छुं, उंठा पाणीमां रूणीने मरी शकुं छुं, तेमज सणगता अग्निमां प्रवेशवु, विषनुं लक्षणुं करवुं, शस्त्रनाघाथी शरीर ने डापवुं, गणामां क्षंसे

गमनं वा अभ्युपगच्छामि=स्वीकरोमि. किंतु खलु=निश्चयेन सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य
 गृहे नैवगच्छामि । ततस्तदा—स सागरदत्तः सार्थवाहः कुड्यान्तरितः=मिनिव्य-
 वधानेन स्थितः सागरस्य दारकस्य एतमर्थम्=उक्तं वचनं निशामयति=शृणोति,
 निशाम्य लज्जितः स्वयं, व्रीडितः परतः ' विडे ' विडुः=देशीयोऽयं शब्दः स्वप-
 रतोलज्जितः, जिनदत्तस्य गृहात् प्रतिनिष्क्रामति=निर्गच्छति । प्रतिनिष्क्रम्य
 यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सुकुमारिकां दारिकां शब्दयति, शब्द-
 यित्वा अङ्के=उत्सङ्गे ' निवेसेइ ' निवेशयति= उपवेशयति, निवेश्य एवमवादीत्—हे
 पुत्री ! किं=केन कारणेन खलु त्वं सागरेण दारकेण ' मुक्ता ' मुक्ता=त्यक्ता ? ।

विदारण करना गले में फांसी लगाकर घरजाना, गज, उष्ट्र आदि के
 मृतकलेवर से मैं अपने आपको प्रविष्ट कराकर उस शरीरको मृतबुद्धि
 की कल्पना से गृह पक्षियों द्वारा अक्षयण करवाना यह सब मैं स्वीकार-
 कर सकता हूँ, इसी तरह दीक्षागृहण करना अथवा विदेश में चलेजाना
 भी स्वीकारकर सकता हूँ—परन्तु मैं सागरदत्त के घरजानास्वीकार नहीं
 कर सकता हूँ । अर्थात् ये सब पूर्वोक्त आपकी आज्ञाएँ मुझे विना किसी
 संकोचके या विचारके मान्य हैं परन्तु सागरदत्तके घरजाना मुझे मान्य
 नहीं है । (तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे कुडुंतरिए सागरस्स एयमट्टं नि-
 सामेइ, निसामित्ता लज्जिए, विलीए, विडु. जिनदत्तस्स गिहाओ पडिनि-
 क्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
 सुकुमालियं दारियं सदावेइ, सदावित्ता अंकेनिवेसेइ, निवेसित्ता एवं
 वयासी, किण्णं तुमं पुत्ता सागरएणं दारएणं मुक्का? अहं णं तुमं तस्स

लेखीने भरवुं, हाथी अंत वगेरेना भरेदा शरीरमां प्रवेश करी मारा शरी-
 रने मृतबुद्धिनी कल्पनाथी गीध पक्षीअने भवडाववुं आ भधुं हु स्वीकारी
 शकुं तेम छुं, तेवी न रीते दीक्षा अडणु करवी अथवा तो परदेशमां जाता
 रडेवुं पणु हु स्वीकारी शकुं छुं पणु हु सागरदत्तना घेर नवुं स्वीकारवा तैयार
 नथी. अटले के आ अधी उपरनी तमारी आज्ञाअो मने कोध पणु नतना
 विचार कर्या वगर मान्य छे, पणु सागरदत्तने त्यां नवुं मान्य नथी.

(तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे कुडुंतरिए सागरस्स एयमट्टं निमामेइ, निसामित्ता
 लज्जिए, विलीए, विडु, जिनदत्तस्स गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता
 जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुकुमालियं दारियं सदावेइ,
 सदावित्ता अंके निवेसेइ, निवेसित्ता एवं वयासी किण्णं पुत्ता सागरएणं दारएणं

अहं खलु त्वां तस्मै दास्यामि यस्य खलु त्वमिष्टा=अभिलषिता कान्ता प्रिया मनोज्ञा
मनोमा=मनोगता भविष्यति, इति=एवं सुकुमारिकां दारिकां तामिष्टाभिर्वाग्मिः
'समासासेइ' समाश्वासयति, समाश्वास्य प्रतिविसर्जयति=प्रस्थापयति ॥ १० ॥

मूलम्-तएणं से सागरदत्ते एगं महं दमगपुरिसं पासइ
दंडिखंडनिवसणं खंडगमल्लगघडगहतथगयं मच्छियासहस्सेहिं

दहामि जस्स णं तुमं इट्ठा जाव मणामा भविस्ससित्ति सूमालियं दारियं-
ताहिं इट्ठाहिं वग्गूहिं समासासेइ, समासासित्ता पडिविसज्जेइ) वही
भित्ति के पीछे छुपा हुआ सागरदत्त सार्थवाह सागर-के उन बचनों को
खुन रहा था । खो खुनकरके स्वयं बड़ा लज्जित हुआ तथा दूसरोंसे भी
उसे बड़ी शर्म आई इस तरह स्व और पर से लजाना हुआ वह जिन-
दत्त के घर से बाहर निकल गया । और जाकर अपने घर पहुँचा ।
वहाँ पहुँच कर उसने अपनी पुत्री सुकुमारिका दारिका को बुलाया
-बुलाने पर जब वह आ गई तब उसे उसने अपनी गोदी में बैठा लिया
बैठानेके बाद फिर उसने उससे पूछा बेटी । सागरने तुम्हें किस कारण
से छोड़ दिया है मैं तुम्हें उसी के दूंगा । कि जिस के लिये तुम अच्छी
तरह इष्टा, कान्ता, प्रिया, मनोज्ञा एवं मनोमा होओगी, इस प्रकार उसने
सुकुमारिका दारिकाको उनर इष्ट वचनों द्वारा अच्छी तरह आश्वासन
दिया-वैर्य बंधाया-और आश्वासन देकर उसे विसर्जित करदिया । सू०१०

मुक्का ? अहं णं तुमं तस्स दाहामि जस्सणं तुमं इट्ठा जाव मणामा भविस्ससित्ति
सूमालियं दारियं ताहिं इट्ठाहिं वग्गूहिं समासासेइ, समासासित्ता पडिविसज्जेइ)
त्यां ञ् लीतनी पाछण छुपाउने सागरदत्त सार्थवाह सागरनी ते अधी
वातने सांलणी रह्यो डतो सांलणी ते ञ्हुण् लज्जित थयो तेमञ् भीन-
ओथी पणु ते ञ्णञ् लज्जित थयो आ रीते 'नते' अने भीनओथी
ललतो ते जिनदत्तना घेरथी ञ्डार नीकणी गयो अने नीकणीने पोताने घेर
पडोअयो. त्यां ञ्धने तेणु पोतानी पुत्री सुकुमारिका दारिकाने ओलावी न्यादे
ते सुकुमारिका दारिका आवी गध त्यादे तेने पोताना ओणामां ओसाडी लीथी
ओसाडीने तंणु तेने पूछुं डे भेटी । शा डारणुथी सागरे तने त्यण् छे ? तने
हुं ते पुरुषने ञ् आपीथ डे नेना माटे तुं सारी रीते धण्ठा, कान्ता, प्रिया,
मनोज्ञा अने मनोमा थसे आ रीते तेणु सुकुमार दारिकाने पोताना धण्ट वय
नेथी सारीरीते आश्वासन आप्थुं अनेत्यार पछी तेने विदाय आपी ॥सू०१०॥

जाव अन्निज्जमाणमग्गं, तएणं से सागरदत्ते कोडुंबियपुरिसे
सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-तुब्भे णं देवाणुप्पिया !
एयं दमगपुरिसं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमं पलोभेहि
पलोभित्ता गिहं अणुप्पवेसेह अणुप्पवेसित्ता खंडगमल्लगं
खंडघडगं ते एगंते एडेह एडित्ता अलंकारियकम्मं कारेह
कारित्ता णहायं कयवलि० जाव सत्वालंकारविभूसियं करेह
करित्ता मणुण्णं असणपाणखाइमसाइमं भोयावेह भोया-
वित्ता मम अंतियं उवणैह, तएणं कोडुंबियपुरिसा जाव
पडिसुणेंति पडिसुणित्ता जेणेव से दमगपुरिसे तेणेव उवा-
गच्छइ उवागच्छित्ता तं दमगं असणं उवप्पलोभेंति उवप्प-
लोभित्ता सयं गिहं अणुपवेसिंति अणुपवेसित्ता तं खंडगम-
ल्लगं खंडगघडगं च तस्स दमगपुरिसस्स एगंते एडंति,
तएणं से दमगे तंसि खंडमल्लगंसि खंडघडगंसि य एगंते
एडिज्जमाणंसि महया२ सद्देणं आरसइ, तएणं से सागरदत्ते
तस्स दमगपुरिसस्स तं महया२ आरसियसदं सोच्चा निसम्म
कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी-क्किण्णं देवाणुप्पिया ! एस
दमगपुरिसे महया महया सद्देणं आरसइ ? तएणं ते कोडुं-
वियपुरिसा एवं वयासी-एस णं सासी ! तंसिखंडमल्लगंसि
खंडघडगंसि एगंते एडिज्जमाणंसि महया महया सद्देणं
आरसइ, तएणं से सागरदत्ते सत्थ० ते कोडुंबियपुरिसे एवं
वयासी-सा णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! एयस्स दमगस्स तं

खंड जाव एडेह पासे ठवेह जहा णं पत्तियं भवइ, ते वि
तहेव ठविति, तएणं ते कोडुंबियपुरिसा तस्स दमगस्स
अलंकारियकम्मं करेति करित्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिच्छेहिं
अवभंगेति अवभंगिए समाणे सुरभिगंधुव्वट्टणेणं गायं उव्व-
ट्टिति२ उस्सिणोदगेणं गंधोदगेणं सीतोदगेणं ण्हारणेति पम्हल
सुकुमाल गंधकासाइयाए । गायाइं लूहंति लूहित्ता हंसल-
क्खणं पट्टसाडगं परिहेति परिहित्ता सव्वालंकारविभूसियं
करेति करित्ता विउलं असणपाणखाइमसाइमं भोयावेति
भोयावित्ता सागरदत्तस्स उवणेति, तएणं सागरदत्ते सूमा-
लियं दारियं ण्हायं जाव सव्वालंकारविभूसियं करिता तं
दमगपुरिसं एवं वयासी—देवाणुप्पिया! सम धूया इट्ठा एयं
णं अहं तव भारियत्ताए दलामि भद्वियाए भद्वओ भवि-
ज्जासि, तएणं से दमगपुरिसे सागरदत्तस्स एयमट्टं पडिसु-
णेति पडिसुणिता सूमालियाए दारियाए सद्धिं वासघरं
अणुपविसइ अणुपविसित्ता सूमालियाए दारियाए सद्धिं
तलिमंसि निवज्जइ, तएणं से दमगपुरिसे सूमालियाए इमं
एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, सेसं जहा सागरस्स जाव
सयणिज्जाओ अवभुट्टेइ अवभुट्टित्ता वासघराओ निग्गच्छइ
निग्गच्छित्ता खंडमल्लगं खंडघडगं च गहाय मारामुक्के विव
काए जामेव दिसं पाउव्वभूए तामेव दिसं पडिगए, तएणं
सा सूमालिया जाव गएणं से दमगपुरिसे त्तिकट्टु ओहय-
मण जाव झियायइ ॥ सू० ११ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु स सागरदत्तः सार्धवा-
होऽन्यदा=अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित् काले ‘ उर्षि आगासतलगंसि ’ उपरि आका-
शतलके=प्रासादोपरिभागे , सुहनिसण्णे ’ सुखेनोपविष्टः, राजमार्गमवलोकमानः
२ तिष्ठति । ततः खलु स सागरदत्त एकं महान्त ‘ दमगपुरिसं ’ द्रमनपुरुषं
‘ दमग ’ इति देशीयः शब्दः दरिद्रपुरुषं पश्यति, किम्भूतम् ? इत्याह—‘ दंडिखंड
निवसणं ’ दण्डिखण्डनिवसनं=दण्डि-कृतसन्धानं जीर्णवस्त्र तस्य खण्डं तदेव निव-
सनं परिधानवस्त्रं यस्य स दण्डिखण्डनिवसनस्तम्, तथा—, खंडमल्लग घडगहत्थगयं ’
खण्डमल्लकघटकहस्तगतं= खण्डमल्लकं-खण्डशरावं स्फुटितशरावं भिक्षापात्रं, तथा
खण्डघटकश्च=खण्डरूपो घटः स्फुटितस्य घटस्य भागः स एवं जलपात्रं, एतद्
द्वयं हस्तगतं यस्य तम्, ‘ मच्छियासहस्सेहिं जाव अनिज्जमाणमग्गं ’ मक्षिकास-
हस्रै र्यावत् अन्वीयमानमार्गं, शरीरवस्त्रादेर्मलिनत्वात् तत्पृष्ठतो मक्षिका आप

‘तएणं से सागरदत्ते’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं से सागरदत्ते)इसके बाद सागरदत्तने किसी एक समय
“ उर्षि आगासतलगंसि ” अपने प्रासाद के ऊपर सुख पूर्वक बैठी हुई
स्थिति में राजमार्ग का अवलोकन करते समय (एणं महं दमगपुरिसं
पासइ) एक अत्यंत दरिद्र पुरुष को देखा (दंडिखंडनिवसणं खंडगम-
ल्लगघडगहत्थगयं मच्छियासहस्सेहिं जाव अनिज्जमाणमग्गं) जो
जीर्णवस्त्र के जुड़े हुए चिथड़े को पहिने था और जिसके हाथ में खंड-
मल्लकथा-फुटा हुआ मिट्टि के खप्पर था - तथा पानी पीने के
लिये फुटे हुए घट का एक खप्पर था । हजारों मविख्या जिसके पीछे
पीछे, शरीर और वस्त्रों के मलिन होने से भिन्न २ करती हुई उड़ रही

‘ तएणं से सागरदत्ते ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं से सागरदत्ते) त्थार भाह सागरदत्त कोठि ओक वधत (उर्षि आगा-
सतलगंसि) पोताना भडेदनी उपर सुभेथी भेसीने राजमार्गंनुं अवलोकिनकरतो इतो.
त्थारे तेणे (एणं महं दमगपुरिसं पासइ) ओक भूभञ्ज दरिद्र-कंगाण-पुरुषने नेथो.
(दंडिखंडनिवसणं खंडगमल्लगघडगहत्थगयं मच्छियासहस्सेहिं जाव अनिज्जमा-
णमग्गं) तेणे भूना वञ्चना यीथराओ पडरेदा इता अने तेना हाथभां
‘ भउमल्लक इतुं ’ ओटवे के कुटी गयेदा भाटीना वासणुने ओक ककडो इतो
तेमणपाण्णी पीवा भाटे कुटेदी भाटलीनुं ओक भप्पर इतुं इज्जरे भाणीओ
तेनीपाछण पाछण-शरीर अने वञ्चोनी मलीनताने दीघे उडी रही इती.

तन्तीत्यर्थः । ततः खलु स सागरदत्त कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत् हे देवानुप्रियाः ! यूयं खलु एतं द्रमकपुरुषं = रङ्गपुरुषं विपुलेन अशनपानखाद्यस्वाद्येन प्रलोभयत प्रलोभ्य गृहमनुप्रवेशयत, अनुप्रवेश्य खंडकमल्लकं = खण्डशरावं खण्डघटकं = पानीयपात्रं ' से ' तस्य द्रमकपुरुषस्य एकान्ते = एकान्त स्थाने ' एडेह ' निक्षेपयत, निक्षेप्य अलंकारिककर्म = केशनखच्छेदनादिकं नापितादिभिः कारयत, कारयित्वा स्नातं कृतवलिकर्माणं यावत् सर्वालङ्कार-

थीं । (तए णं से सागरदत्ते कौटुम्बियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-तुव्भे णं देवाणुप्पिया ! एयं दमगपुरिसं विउलेणं असणपाणखाइम साइमं पलोभेइ, पलोभित्ता गिहं अणुपवेसेह, अणुपवेसित्ता खंडगमल्लगं खंडघडगं तं एगंते एडेह एडित्ता अलंकारिकम्मं कारेह कारित्ता ण्हायं कयवलि० जाव सव्वालंकारविभूसियं करेह करित्ता मणुणं असणपाणखाइमसाइमं भोयावेह, भोयावित्ता मम अंतियं उवणेह) इसके बाद सागरदत्तने आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाया । बुलाकर उसने इस प्रकार कहा देवानुप्रियो । तुम लोग इस दरिद्र पुरुषको विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्यरूप चतुर्विध आहारका प्रलोभन दो-प्रलोभन देकर फिर इसे घर में भीतर करलो । जब यह घरके भीतर हो जावेगा तब तुमलोग इसके ये खंडमल्ल (फटी लंगोटी) और खंडघटक इससे छुड़ाकर किसी एकान्त-सुरक्षित-स्थान में रखदो । बाद में नापित (नाई) को बुलाकर इसके सुन्दर ढंग से बाल बनवाओ नखआदि जो बढ़ रहे

(तएणं से सागरदत्ते कौटुम्बियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-तुव्भेणं देवानुप्पिया ! एयं दमगपुरिसं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमं पलोभेइ, पलोभित्ता गिहं अनुपवेसेह, अणुपवेसित्ता खंडगमल्लगं खंडघडगं तं एगं ते एडेह, एडित्ता अलंकारिकम्मं कारेह कारित्ता ण्हायं कयवलि० जाव सव्वालंकारविभूसियं करेह करित्ता मणुणं असणपाणखाइमसाइमं भोयावेह, भोयावित्ता मम अंतियं उवणेह)
 त्थारपथी सागरदत्ते आज्ञाकारी पुरुषोने बोलाव्या. बोलावीने तेभने आ प्रभाणे इधु-डे डे देवानुप्रियो ! तमे बोके आ दरिद्र पुरुषने पुष्कण प्रभाणुमां अशन, पान, भाद्य अने स्वाद्य इप थार जतना आहारनी लालय आपो. लालय आपीने तेने घरनी अंदर बोलावी बो न्यारे ते घरमा आवी नय थारे तमे तेनी पासोना अउमल्ल अने अउघटक लधने तेने अेकांत सुरक्षित स्थानमां भूडी हो. त्थारपथी उज्जमने बोलावीने तेना सरस रीते वाण कथावी नाणे अने वधी गयेला नथ वगेरेने कथावी नाणे. त्थारपथी तेने स्नान

विभूषितं कुरुत कृत्वा ' मणुणं ' मनोज्ञं=रुचिरम् अशनपानखाद्यस्वाद्य भोजयत
भोजयित्वा ममान्तिकं=समीपमुपनयत । ततः खलु कौटुम्बिकपुरुषा यावत्-प्रति-
शृण्वन्ति=' तथाऽस्तु ' इति कृत्वा तदाज्ञां स्वीकुर्वन्ति प्रतिश्रुत्य यत्रैव स द्रमकपु-
रुषः=रङ्गपुरुषः, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तं द्रमकं रुचिरेण विपुलेनाशनादिना
प्रलोभयन्ति प्रलोभ्य स्वकं गृहमनुप्रवेशयन्ति, अनुप्रवेश्य त खण्डकमल्लकं खण्डक-
घटकं च तस्य द्रमकपुरुषस्यैकान्ते ' एडंति ' निक्षेपयन्ति, ततः खलु स द्रमक-
स्तस्मिन् खण्डमल्लके खण्डघटके च एकान्ते ' एडिज्जमाणंसि ' निक्षेप्यमाणे
सति महता २ शब्देन ' आरसइ ' आक्रन्दति । ततः खलु स सागरदत्तस्तस्य
द्रमकपुरुषस्य तं महान्तं ' आरसियइ सहं ' आक्रन्दनशब्दं श्रुत्वा निशम्य कौटु-

हैं उन्हें कटवाओ । उसके प्रश्नात् इसे स्नान कराओ । बाद में इससे पशु
पक्षी आदिको अन्नादिका भागरूप बलिकर्म आदिकरवाओ—जब यह
बलिकर्म आदिकर चुके तब तुमलोग इसे समस्त अलंकारों से विभूषित
करो, विभूषित करके फिर इसे मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य, एवं
स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार खिलाओ—खिलाकर के बाद में फिर
हमारे पास इसे ले आओ । (तएणं कौटुंबियपुरिसा जाव पडि-
सुणेंति, पडिसुणित्ता, जेणेव से दमगपुरिसे तेणेव उवागच्छइ, उवाग
च्छित्ता तं दमगं असणं उवप्पलोभेति, उवप्पलोभित्ता सयं गिहं
अणुपवेसिति अणुपविसित्ता, तं खंडमल्लगं खंडगघडगं च तस्स दम-
गपुरिसस्स एगंते एडेंति, तएणं से दमगे तंसि खंडमल्लगंसि, खंड-
घडगंसि य एगंते एडिज्जमाणंसि महया २ सहेणं आरसइ, तएणं
से सागरदत्ते तस्स दमगपुरिसस्स तं महया २ आरसियसहं सोच्चो

करावो स्नान कराव्या आह तेना डाथेथी पशु-पक्षी वगेरेने अन्न वगेरेने
लाग आपवा इप बलिकर्म करावावो न्यारे बलिकर्मनी विधि पती नय
त्यारे तये दोडो अने अधी नतना अलंकारेथी शणुगारे. शणुगारीने तेने
मनोज्ञ, अशन, पान, आद्य अने स्वाद्य इप आर नतना आहारो नभाडे.
नभाडया पधी तेने अमारी पासे लई आवो.

(तएणं कौटुंबियपुरिसा जाव पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जेणेव से दमग-
पुरिसे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता तं दमगं असणं उवप्पलोभेते उवप्पलो-
भित्ता सयंगिहं अणुपवेसिति, अणुपविसित्ता, तं खंडमल्लगं खंडगघडगं च
तस्स दमगपुरिसस्स एगंते एडेंति तएणं से दमगे तंसि खंडमल्लगंसि, खंडघड-
गंसि य एगंते एडिज्जमाणंसि महया २ सहेणं आरसइ, तएणं से सागरदत्ते तस्स
दमगपुरिसस्स तं महया २ आरसियसहं सोच्चा निसम्म कौटुंबियपुरिसे एवं वयासी)

म्बिकपुरुषानेवमवादीत्-हे देवानुप्रियाः ! किं=केन कारणेन खलु एष द्रमकपुरुषो महता २ शब्देन आरसति=आक्रन्दति ? । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः एवमवदन्-एष खलु हे स्वामिन् ! तस्मिन् खण्डमल्लके खण्डघटके एकान्ते निक्षेप्यमाणे महता २ शब्देन आरसति=आक्रन्दति । ततः खलु स सागरदत्तः सार्थवाहस्तान् कौटुम्बिकपुरुषान् एवमवादीत्-हे देवानुप्रियाः ! मा खलु यूयं एतस्य

निसम्म कौटुम्बिकपुरिसे एवं वयासी) इस प्रकार की उन कौटुम्बिक ने सागरदत्त सेठ की इस आज्ञा को अच्छी तरह स्वीकार लिया और स्वीकारकर वहाँ जाकर उन्होंने उस दमक को अशन पान आदिरूप चतुर्विध आहार से बार २ लुभाया लुभाकर वे उसे अपने घर तक ले आये और अंत में अपने घर में उसे प्रवेश कराया । बाद में उन लोगोंने उस दमक पुरुष के फूटे हुए मिट्टी के दीपक के खंड को, तथा फूटे हुए घड़े के खप्पर को उससे लेकर किसी सुरक्षित स्थान में रख दिया । जब उस दमकपुरुषने अपने खंडमल्लक(फटी लंगोटी) को और खंडघटकको अपने से लेकर एकान्त स्थानमें रखा जाता हुआ देखा-तो वह जोर जोरसे रोने लगा-उसके उस रोनेकी आवाजको सुनकर और उसे अपने चित्त में धारण कर सागरदत्तने कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा-(किण्णं देवाणुप्पिया ! एसदमगपुरिसे महया २ सद्देणं आरसइ ३ तएणं ते कौटुम्बिकपुरिसा एवं वयासी एसणं सामी ! तंसि खंडमल्लगंसि खंडघडगंसि एगंते एडिज्जमाणंसि महया २ सद्देणं

आ जतनी सागरदत्तनी आजाने ते कौटुम्बिक पुरुषोअे सारी रीते स्वीकारी वीधी स्वीकार्यो आइ तेअे हरिद्र भाणुसनी पासे गया त्यां जधने तेमणे तेने भोलाव्ये अने अशन, पान वगेरे इप आर जतना आहारनी धारंवार लालच्य आपी. ललयावीने तेअे तेने घर सुधी लध आव्या अने छेवटे तेने घरमां दाभल करी दीधो. त्यारपणी ते लोकोअे ते हरिद्र भाणुसनी पासेथी कूटेला भाटीना वासणुने कटके तेमज कूटेला भाटलाना अण्परने लधने सुरक्षित स्थाने मूडी दीधु न्यारे ते हरिद्र भाणुसे पोताना अउमदलकने अने अउघटकने पोतानी पासेथी छीनवीने अेकांत स्थानमां मूकतां जेथुं त्यारे ते भोटेथी धांटा पाडीने रउवा लाग्ये तेना रउवाना आवाजने सांलणीने अने तेने पोताना चित्तमा धारण करीने सागरदत्ते कौटुम्बिक पुरुषोने आ प्रभाणे कधु.

(किण्णं देवाणुप्पिया ! एस दमगपुरिसे महया २ सद्देणं आरसइ, तएणं ते कौटुम्बिकपुरिसा एवं वयासी एसणं सामी ! तंसि खंडमल्लगंसि खंडघडगंसि एगंते एडिज्जमाणंसि महया २ सद्देणं आरसइ, तएणं से सागरदत्ते सत्यवाहे ते

द्रमकपुरुषस्य तत् खण्डमल्लकं खण्डघटकं यावत्—एकान्ते ' एडेह ' निक्षेपयत अस्य परोक्षे मा स्थापयतेत्यर्थ', किन्तु पार्श्वे स्थापयत, यथा खलु ' पत्तियं ' प्रत्ययः= विश्वासो भवति । तेऽपि कौटुम्बिकपुरुषास्तथैव स्थापयन्ति । ततः खलु ते कौटु-
आरसइ, तएणं से सागरदत्ते सत्थवाहे ते कोडुंबिय पुरिसे एवं वयासी)
हे देवानुप्रियो ! क्या कारण है जो यह दमक पुरुष जोर २ से रो रहा है ? तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने ऐसा कहा कि हे स्वामिन् ! इसने ज्योंहीं अपने खंडमल्लक को और घटखंड को लेकर एक ओर सुरक्षित स्थान में रखे जाते हुए देखा जैसे ही यह बड़े जोर २ से रोने लगा है । ऐसा सुनकर सागरदत्त ने उन कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा—
(माणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! एयस्स दमगस्स तं खंड जाव एडेह, पासे ठवेह, जहाणं पत्तियं भवइ, ते वि तहेव ठवेति, तएणं ते कोडुंबिय पुरिस्सा तस्स दमगस्स अलंकारियकम्मं करेति, करित्ता सयपाग- सहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भगेति, अब्भंगिए समाणे सुरभिगंधुव्व- दृणेणं गायं उव्वट्ठिति, २ उस्सिणोदगेणं गंधोदगेणं सीतोदगेणं ण्हावेति)
हे देवानुप्रियो ! तुम लोग इस दमक पुरुष के फूटे हुए मिट्टी के दीपक के खंड को और फूटे हुए घड़े के खप्पर को इससे लेकर परोक्ष में— अदृश्य स्थान में—मत रखो किन्तु इस के पास में ही—समक्षरखो, जिससे इसे अपना विश्वास बना रहे । इस प्रकार सागरदत्त की बात

कोडुंबिय पुरिसे एवं एवं वयासी)

हे देवानुप्रियो ! शा डारणुथी आ हरिद्र भाणुस भोठेथी धांटा पाडी पाडीने रडी रह्यो छे ? त्यारे ते कौटु णिक पुइषोअे आ प्रभाणे कहुं डे डे स्वामिन् ! पोताना भंडमल्लक अने भंडघटकने तेनी पासेथी लधने णीण सुरक्षित स्थाने लध जतां नेधने आ हरिद्र भाणुस भोठेथी रडवा लाग्यो छे. आ प्रभाणे सांभणीने सागरदत्ते कौटु णिक पुइषोने आ प्रभाणे कहुं डे—

(माणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! एयस्स दमगस्स तं खंड जाव एडेह पासे ठवेह, जहाणं पत्तियं भवइ, ते वि तहेव ठवेति, तएणं ते कोडुंबियपुरिस्सा तस्स दमगस्स अलंकारियकम्मं करेति, करित्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भगेति अब्भंगिए समाणे सुरभिगंधुव्वदृणेणं गायं उव्वट्ठिति २ उस्सि णोदगेणं गंधोदगेणं सीतोदगेणं ण्हावेति)

हे देवानुप्रियो ! तमे दोडो आ हरिद्र पुइषना कूटेला भाटीना दीपकना कटकाने अने कूटेला घडाना खप्परने अनी पासेथी लधने इर अेकांतमां भूइशो नडि पणु अनी पासे ज-अनी सामे ज भूइ राणे. नेथी अने विश्वास रडे.

म्विकपुरुनास्तस्य द्रमकस्य=रङ्गपुरुपस्य अलंकारिककर्म कारयन्ति कारयित्वा शत-
पाक सहस्रपाकैस्तैरभ्यङ्गयति=मर्दयन्ति । अभ्यङ्गितः सन् सुरभिगन्धोद्वर्तनेन=
सुगन्धिपिष्टकेन गात्रमुद्वर्तयन्ति, उद्वर्त्य उष्णोदकेन गन्धोदकेन शीतोदकेन
स्नपयन्ति, स्नपयित्वा ' पम्हलसुकुमालगंधकासाइयाए ' पक्षमलसुकुमारगन्ध-
कापायिकया=पक्षमला=पक्षमवती गृदुरोमयुक्ता अत एव सुकुमारा तथा कपायेण
रक्ता साटी कापायिका तथा गात्राणि ' लूहंति ' रूक्षयन्ति = प्रोञ्छयन्ति,

स्नानकर उन आदेशकारी पुरुषों ने वैसा ही किया—अर्थात् उसके मल्लक-
खंड और घटखंड दोनों को ही उसके समक्ष उन्हींने रख दिया ।
इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषोंने उस दमक पुरुषका अलंकारिक कर्म
करवाया । अब उसका अच्छी तरह अलंकारिक कर्म निष्पन्न हो चुका-
तब उसके बाद उस दमक पुरुष के शरीर की उन लोगों ने शतपाक और
सहस्र पाकवाले तैल से माडिश की—मालिश करनेके पश्चात्, सुगन्धि-
पिष्टक—सुगंधितपिटी—से उसके शरीर का उपटन किया उस सुगंधित
पिटी को उसके शरीर पर रगड़ २ कर मला इससे जो उसके शरीर
पर मल जमा हुआ था वह निकनाहट के संबन्ध से उस पिटीद्वारा
निकल गया । जब उनके शरीर का उद्वर्त्तन हो चुका—तब फिर उन
लोगों ने उसे उष्णोदक से गंधोदक से, एवं शीतोदक से स्नान कराया ।
स्नान कराकर बाद में उसका शरीर (पम्हलसुकुमारगंधकासाइयाए
गायाइं लूहंति) पक्षमल—रूखवाली—गृदुरोमयुक्त—सुकुमार—नरम, रंगी-
हुई द्वाल से—अंगोछी—से—तौलिया से पोंछा । (लूहिता हंसलखणं

आ रीते सागरहत्तनी वात सांलणीने ते आजाकारी पुश्पोञ्जे ते प्रभाणु ७
क्युं' ज्येद्वे के तेना मल्लकखंड अने घटखंडने तेनी साभे ७ भूझी छीधा.
त्यारपधी ते कौटुम्बिक पुश्पोञ्जे ते हरिद्र भाणुसना वाण अने नथ कपाव्या.
न्यारे आशम सरस रीते पुश् थथ गयुं' त्यारे तेञ्जाञ्जे हरिद्र भाणुसना
शरीरने शतपाक अने सहस्रपाकवाणा तेसथी मालिश क्युं' आद
सुगंधिपिष्टक—सुगंधित पीठी—तेना शरीरे चोणीने उपटन क्युं'. ज्येथी तेना
शरीर उपर जेटवे मेल छतो ते पीठीनी स्निग्धताने लीधे साइ थथ गये।
न्यारे तेना शरीरे पीठी चोणार्थ गथ त्यारे ते बोकोञ्जे तेने गरम पाण्णीथी,
सुवासित पाण्णीथी अने ठंडा पाण्णीथी स्नान कराव्युं'. स्नान कराव्या आद तेना
शरीरने (पम्हल सुकुमार गंध कासाइयाए गायाइं लूहंति) पक्षमल—इंवाटावाणा
भुकोभण, नरम रंगीन दुवालथी लूथ्युं'.

रुक्षयित्वा ' हंसलक्षणं ' हंसलक्षणं = हंसस्वरूपं तदिव शुक्लं स्वरूपं यस्य तत् ,
' पट्टसाडगं ' पट्टशाटकं=क्षौमवस्त्रं ' परिहेंति ' परिधापयन्ति परिधाप्य सर्वालंकार-
विभूषितं कुर्वन्ति, कृत्वा विपुलमशनपानखाद्यस्वाद्यं भोजयन्ति, भोजयित्वा
सागरदत्तस्योपनयन्ति । ततः खलु सागरदत्तः सुकुमारिकां दारिकां स्नातां यावत्-
सर्वालङ्कारभूषितां कृत्वा तं द्रमकपुरुषम् एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्-हे
देवानुप्रिय ! एषा खलु मम दुहिता इष्टा, एतां खलु अहं तव भार्यात्वेन ददामि

पट्टसाडगं परिहेंति, परिहित्वा सञ्चालंकारविभूषितं करेति, करित्वा
त्रिउलं असनपाणखाद्यमसाद्यं भोजयति, भोजयित्वा सागरदत्तस्य
उपवर्णति) जब शारीरिक प्रत्येक अवयव ठीक २ अच्छी तरह से
पोंछाजा चुका-तब फिर उन्होंने हँस चिह्नवाला अथवा हँस के जैसा
शुभ्रपट्टशाटक-क्षौमवस्त्र उसको पहिराया । क्षौमवस्त्र पहिराकर फिर
उसको विपुल, अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार का
भोजन कराया । भोजन कराकर फिर वे उसको सागरदत्त के पास ले
गये (तएणं सागरदत्ते सूमालियं दारियं ण्हायं जाव सञ्चालंकार विभू-
सियं करित्वा तं दमगपुरिसं एवं वयासी-एसणं देवाणुप्पिया ! मम
धूया इट्ठा एयं णं अहं तव भारियत्ताए दलामि) सागरदत्त ने अपनी
सुकुमारिका दारिका को स्नान कराकर यावत् समस्त अलंकारो से
विभूषित करके उस दमक पुरुष से इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिय !
यह मेरी लड़की है । और सुझे बहुत ही अधिक इष्ट, प्रिय, कान्त

(ल्हित्ता हसलखणंपट्ट साडगं परिहेंति, परिहित्वा, सञ्चालंकारविभूषितं करेति,
करित्वा त्रिउलं असनपाणखाद्यमसाद्यं भोजयति, भोजयित्वा, सागरदत्तस्य उपवर्णति)

न्याये शरीरना अथा अंगो सरस रीते लुछाई गया त्यारे तेओओ
हंसचित्रित अथवा तो हंस जेवुं स्वच्छ धोणुं पट्टशाटक क्षौम वस्त्र पडेरान्युं .
क्षौम वस्त्र पडेरानीने तेने विपुल अशन, पान, खाद्य अने स्वाद्य इप त्थार
नतना आहारो जभाउया. जभाउया पछी तेओ तेने सागरदत्तनी पास ले लई गया

(तएणं सागरदत्ते सूमालियं दारियं ण्हायं जाव सञ्चालंकारविभूषितं करित्वा
तं दमगपुरिसं एवं वयासी-एसणं देवाणुप्पिया ! मम धूया इट्ठा एयं णं अहं तव
भारियत्ताए दलामि)

सागरदत्ते पोतानी सुकुमारिका दारिकाने स्नान करावीने यावत् अथी
नतना अलंकारोधी शणुगारीने ते दरिद्र भाणुसने आ प्रभाणु कहुं के
हे देवानुप्रिय ! आ भारी पुत्री छे अने मने णहुं ज इष्ट, प्रिय, कान्त, मनोस

‘ भद्रियाए ’ अद्रिक्रिया=भाग्यशालिन्याऽनया त्वमपि भद्रको भाग्यशाली भविष्यसि । ततः खलु स द्रमकपुरुषः सागरदत्तस्यैतमर्थं प्रतिशृणोति=स्वीकरोति, प्रतिश्रुत्य सुकुमारिकया दारिकया सार्धं वासगृहमनुप्रविशति, सुकुमारिकया दारिकया सार्धं ‘तलिगंसि’ तल्ये=शयनीये ‘नीवज्जइ’ निपीदति उपविशति । ततः खलु स द्रमकपुरुषः सुकुमारिकाया इमं=पूर्वोक्तम् एतद्रूपं=पूर्वोक्तस्वरूपम् अङ्गस्पर्शं ‘पडिसंवेदेइ’ प्रतिसंवेदयति=प्रत्यनुभवति शेषं यथा सागरस्य=शेषवर्णनं सागरदारकवद् बोध्यम्, यावत्-अत्र यावच्छब्दादिदं द्रष्टव्यम्-‘असिपजादीनां स्पर्शादप्यनिष्टतरं तदङ्गस्पर्शं ज्ञात्वा सागरदारकवद् द्रमकपुरुषोऽपि तां सुकुमारिकां सुखप्रसुप्तां ज्ञात्वा, शयनीयादुत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय वासगृहाद् निर्गच्छति, निर्गत्य खण्डमल्लकं=स्फुटि-

मनोज्ञ एव मनोम है । मैं अपनी इस पुत्री को तुम्हें तुम्हारी भार्या के रूप में प्रदान करता हूँ (भद्रियाए भद्रओ भविज्जसि, तएणं से दमगपुरिसे सागरदत्तस्स एयमट्ठं पडि०२ सुमालियाए दारियाए सद्धिं वासघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता सुमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि निवज्जइ) इस भाग्यशालिनी से तुम भी भाग्यशाली बनजाओगे । द्रमकपुरुष ने सागरदत्त के इस कथनरूप अर्थ को अंगीकार कर लिया, और फिर वह उस सुकुमारिका दारिका के साथ वासगृह में प्रविष्ट हुआ । वहाँ जाकर वह उस सुकुमारिका दारिका के साथ साथ एक ही पलंग पर-बैठ गया-सो गया (तएणं से दमगपुरिसे सुमालियाए इमं एयारूवं अंगफासं पडि संवेदेइ, सेसं जहा सागरस्स जाव सयणिज्जाओ अवमुट्ठेइ, अवमुट्ठित्ता वासघराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता खण्डमल्लकं

अने मनोम छे उं भारी आ पुत्रीने तमने तभारी पत्नीना इपमां अपुं छुं । भद्रियाए भद्रओ भविज्जसि, तएणं से दमगपुरिसे सागरदत्तस्स एयमट्ठं पडि० २ सुमालियाए दारियाए सद्धिं वासघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता सुमालियाए दारियाए सद्धिं तलिगंसि निवज्जइ)

आ भाग्यशालिनी तमे पणु भाग्यशाली थर्थ जेशो. ते दरिद्र पुइये सागरदत्तनी ओ पातने स्वीकारी लीधी अने त्यारणाए ते सुकुमारिका दारिकानी साथे वासगृहमां प्रविष्ट थयो. त्या जधने ते दरिद्र माणुस सुकुमारिका दारिकानी साथे ओक ज शय्या उपर ओसी गयो.

(तएणं से दमगपुरिसे सुमालियाए इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, सेसं जहा सागरस्स जाव सयणिज्जाओ अवमुट्ठेइ, अवमुट्ठित्ता वासघराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता खण्डमल्लकं खण्डमल्लकं च गहाय माराष्ट्रके विव काए जामेव

तमिक्षापात्रं, खण्डघटकं=स्फुटितपानीयपात्रं च गृहीत्वा 'मारामुक्के विव काए'
मारामुक्तइव काकः मारा-शूना प्राणिवधस्थानं ततो मुक्तः निःसृतः काक इव,
अथवा-माराद्-मारकपुरुषात् तदीयहस्तादित्यर्थः मुक्त-विच्छुटितः काक इव
शीघ्रतया यस्या एव दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः । ततः खलु सा सुकु-
मारिका यावद्-ततो गृहूर्त्तान्तरे प्रतिबुद्धा सती पतिमपश्यन्ती शयनीयादुत्तिष्ठति,
उत्थाय द्रमकपुरुषस्य मार्गणगवेषणं कुर्वाणा वासगृहस्य द्वारं विघाटितं पश्यति

खंडघडगं च गहाय मारामुक्के विव काए जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव
दिसं पडिगए) उस समय उस दमक पुरुष को उस सुकुमारिका दारिका
का वह पूर्वोक्त तथा पूर्वोक्त स्वरूपवाला अंगस्पर्श अनुभव में आया ।
शेष वर्णन सागरदारककी तरह जानना चाहिये । इस तरह वह दमक
पुरुष भी असिपत्रादिकों के स्पर्श से भी अधिक अनिष्ट उसके अंग-
स्पर्श को जानकरके, सागरदारक की तरह, खुब प्रसुप्त उस सुकुमारिका
दारिका को जान उसे छोडने के लिये पलंग से उठा और उठकर उस
वास घर से बाहिर निकला-निकलकर खंडघडलक-फूटे हुए भिक्षापात्र
को तथा खंडघटक-फूटे हुए पानी पीने के पात्र को-लेकर वध्यस्थान से
अथवा मारक पुरुष के हाथ से मुक्त हुए काककी तरह वह बहुत जल्दी
जहां से आया था उसी ओर चलदिया (तएणं सा सूमालिया जाव
गएणं से दमगपुरिसे त्ति कट्टु ओहमण जाव झियायइ) इसके
थोड़ीदेर बाद वह सुकुमारिका दारिका जगी और पतिको अपने पास न

दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए)

ते वपते ते हरिद्रं माणुसने सुकुमारिका दारिकाना अंगेनेो स्पर्शं पडेसां
वर्णुन करवांमां आंव्या प्रमाणेनेो कठोरं च लाग्ये. (अर्डी सागरदारक जेवुं च
वर्णुन समञ्चं जपु जेधंजे.) आ रीते ते हरिद्रं माणुस पणु तरवारना स्पर्शं
करतां पणु वधारे अनिष्टकर तेनेो स्पर्शं नाणीने सागर दारकनी जेमज सुजेथी
सूधं गयेली ते सुकुमारिका दारिकाने जेधने, तेनेो त्याग करवा माटे पलंग
उपरथी जिलेो थयेो अने जिलेो थधने वासगृहनी णडार नीकल्यो अने नीक-
णीने णंउमल्लक-कूटेला भिक्षापात्र तेमज णंउघटक-कूटेला पाणी पीवा माटेना
पात्रने लधने वध्यस्थानथी अथवा तो मारक (डिंसक) पुत्रपना हाथथी मुक्त
थयेला कागडानी जेम ते त्वराथी न्याथी ते आंव्येो डतो ते तरइं च जतो रह्यो.
(तएणं सा सूमालिया जाव गएणं से दमगपुरिसे त्ति कट्टु ओहमण जाव झियायइ)
थोडावधत पछी ते सुकुमारिका दारिका जगी अने पतिने चोतानी पासे न जेधने

दृष्ट्वा एवमवादीत्—इति कृत्वा, अपहृतमनः संकल्पा यावद्—आर्तध्यानं ध्यायति ॥ सू० ११ ॥

मूलम्—तएणं सा भद्रा कल्लं पाउ० दासचेडिं सदावेइ सदा-
वित्ता एवं वयासी जाव सागरदत्तस्स एयमट्ठं निवेदेइ, तएणं
से सागरदत्ते तहेव संभंते समाणे जेणेव वासहरे तेणेव उवा-
गच्छइ उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं अंके निवेसेइ निवेसित्ता
एवं वयासी—अहो णं तुमं पुत्ता ! पुरा पोरणा णं जाव पच्चणु-
वभवमाणी विहरसि तं मा णं तुमं पुत्ता ! ओहयमण जाव
झियाहि तुमं णं पुत्ता मम महाणसंसि विपुलं असणं४ जहा
पुट्टिला जाव परिभाएमाणी विहराहि, तएणं सा सुमालिया
दारिया एयमट्ठं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता माहणसंसि विपुलं
असणं जाव दलमाणी विहरइ ॥ सू०११ ॥

टीका—‘ तएणं सा ’ इत्यादि । ततः खलु सा भद्रा सार्थवाही=सुकुमारिका
दारिकाया जननी ‘ कल्लं ’ कल्पे द्वितीयदिवसे प्रादुः प्रभातायां रजन्यां यावत्—

देखकर पलंग से उठी । उठकर उसने उस दमकपुरुषकी मार्गणा एवं
गवेषणा की । उसमें उसने वासगृह के द्वार को खुला हुआ देखा । देख-
कर उसने विचारा कि वह दमक पुरुष अब चला गया है । ऐसा सोचकर
वह अपहृत मनः संकल्प होकर यावत् आर्तध्यान करने लगी ॥ सू० ११ ॥

‘ तएणं सा भद्रा कल्लं ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (सा भद्रा कल्लं पाउ० दासचेडिं

शब्धा उपरथी वली थर्ध. वली थर्धने तेणु ते दरिद्र भाणुसनी शोध भोज करी.
तेणु विचार करी के ते दरिद्र भाणुस तो नतो रह्यो छे आ रीते विचार करीने
ते अपहृतमनः संकल्पा थर्धने यावत् आर्तध्यानमां डूणी गध. ॥ सूत्र ११ ॥

‘ तएणं सा भद्रा कल्लं ’ इत्यादि

टीकार्थ—(तएणं) त्थारणाए (सा भद्रा कल्लं पाउ० दासचेडिं सदावेइ, सदा-

तेजसा ज्वलति सूर्ये—उदिते दासचेटीं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—यावत् सागरदत्तस्यैतमर्थं निवेदयति, अत्र यावच्छब्देन पूर्वसूत्रोक्तवर्णनमनुसन्धेयम्, तथा—वधूवरयोर्मुखधावनिकामुपनयेति । एवमुक्तासती दासचेटी वासगृहमुपागत्य सुकुमारिकामार्तध्यानं ध्यायन्तीं पश्यति, दृष्ट्वा एवमवादीत्—हे देवानुप्रिये ! किं खलु त्वम् अपहतमनः संकल्पा ध्यायसि ? ततः सुकुमारिका तां दासचेटीमेवमवादीत्—स द्रमकपुरुषो मां सुखप्रसुप्तां ज्ञात्वा मम पार्श्वीदुत्थाय निर्गतः, ततोमुहूर्त्तान्तरेऽहमुत्थाय तमपश्यन्ती ' गतः सद्रमकपुरुषः, इति कृत्वा ऽऽर्तध्यानं ध्यायामि

सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी जाव सागरदत्तस्स एयमहं निवेदेहं) सुकुमारिका दारिकाकी माता उस भद्रा ने द्वितीय दिन जब प्रातः काल हो गया था—और सूर्य उदित हो चुका था—तब अपनी दासचेटी को बुलाया—बुलाकर उससे ऐसा कहा—यहां यावत् शब्द से यह पूर्वसूत्र गत वर्णन जोड़लेना चाहिये जैसे, भद्राने बुलाकर उससे ऐसा कहा कि तू वधू और वर के लिये यह मुख धोने की सामग्री दतौन आदि—लेजा जब भद्रा ने उससे ऐसा कहा तब वह दासचेटी वासगृह में गई—और वहां जाकर उसने सुकुमारिका को आर्तध्यान करती हुई देखा तब देखकर उसने उससे ऐसा कहा—देवानुप्रिये । क्या कारण है जो अपहतमनः संकल्प होकर तुम आर्तध्यान कर रहीं हो—तब सुकुमारिका दारिका ने उस दासचेटी से इस प्रकार कहा—वह द्रमक पुरुष मुझे यहां सुख प्रसुप्त जान छोड़कर चला गया है । जब मैं थोड़ी देरबाद उठी तो मैंने उसे अपने पास नहीं देखा, वासभवन का द्वार खुला हुआ

वित्ता, एवं वयासी जाव सागरदत्तस्स एयमहं निवेदेहं) सुकुमारिका दारिकानी माता लद्राये धीन द्विवसे न्यारे सवार थर्ध गथुं अने सूर्य उदय पारये। त्यारे तेणे - दासीने जोलावी अने जोलावीने आ प्रमाणे कथुं—अडीं यावत् शण्ठथी पडेलांना सूत्रनी जेम न वर्णन समण लेवुं लेधये. जेमके लद्राये तेने जोलावीने आ प्रमाणे कथुं के वधू अने वरता मुण प्रक्षासन भाटे हातणु वगेरे लधं न. न्यारे लद्राये तेने आ प्रमाणे कथुं त्यारे ते दासी वासगृहमां गध अने त्यां नधने तेणे सुकुमारिका दारिकाने आर्तध्यान करती लेध. त्यारे आ प्रमाणे तेनी हावत लेधने तेणे कथुं के डे देवानुप्रिये ! शा कारणथी तमे अपहतमनः संकल्प थर्धने आर्तध्यान करी रथां छे. त्यारे सुकुमार दारिकाये ते दासीने आ प्रमाणे कथुं—के ते हरिद्र भाणुस मने अडीं सुजेथी सूतेडी छोडीने नतो रह्यो छे न्यारे थोडा वधत पछी हु नगी त्यारे मे तेने मारी पासे लेथे नहि अने मे वासगृहना पारणाने पणु थुवहुं

ततः सा दासचेटी सागरदत्तस्य सार्थवाहस्य समीपमागत्यैतमर्थं निवेदयतीति योजना बोध्या । ततः खलु स सागरदत्तस्तथैव 'संभंते' संभ्रान्तः=उद्विग्नः सन् यत्रैव वासगृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सुकुमारिकां दारिकामङ्गे निवेशयति, निवेश्य एवमवादीत्-अहो ! इत्याश्चर्ये खलु हे पुत्रि ! त्व 'पुरा' पुरा=पूर्वभवेषु 'पोराणाणं' पुराणानाम्=अतीतकालकृतानां, यावत्=अत्र यावच्छब्देनेदं बोध्यम्-'दुच्चिणाणं दुष्परकंताणं कङ्गाणं पावाणं कम्माणं पावगं फलवित्ति

देखा तव मै समझ गई कि वह यहां से चला गया है । इस प्रकार मैं चिन्ता में पड़ रही हूँ । सुकुमारिका को इस बात को सुनकर दासचेटी ने उसी समय वहां से वापिस आकर सागरदत्त को इस बात की खबर दी-" इस प्रकार यह पूर्वोक्त पाठ यहां लगा लेना चाहिये-(तएणं से सागरदत्ते तहेव संभंते समाणे जेणेव वासहरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुमालियं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसित्ता एवं वयासी, अहोणं तुमं पुत्ता पुरा पोराणाणं जाव पच्चणुवभवमाणी विहरसि तं माणं तुमं पुत्ता ओहयमण जाव झियाहि-तुमं णं पुत्ता मम महाणसंसि विपुलं असणं ४ जहा पुट्टिला जाव परिभाएमाणी विहराहि) इसके बाद वह सागरदत्त पहिले जैसा उद्विग्न चित्त होकर जहां वासगृह था वहां गया । वहां जा कर उसने सुकुमारिका दारिका को अपनी गोदमें बैठा लिया और बैठाकर कहने लगा-हे पुत्रि ! तुमने पहिले भवोंमें जो दुश्चीर्ण दुष्पराक्रान्त, (कठिन-ताईसे भोगने योग्य एवं कृत ज्ञानावरणीय आदि अशुभ कर्म उपार्जित

नेथुं त्पारे भने थोळसपणे आत्री थई गई के ते अडीथी आढ्यो गयो छे. आ रीते हु थितामां पडी छुं. सुकुमारिकानी आ वात सांलणीने दासीये तस्त न सागरदत्तने णणर आपी. आ रीते अडीं पडेलाणे पाठ नणी देवे न्नेथंये. तएणं से सागरदत्ते तहेव संभंते समाणे, जेणेव वासहरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुमालियं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसित्ता एवं वयासी अहो णं तुमं पुत्ता ! पुरा पोराणाणं जाव पच्चणुवभवमाणी विहरसि तं माणं तुमं पुत्ता ओहयमण जाव झियाहि-तुमं णं पुत्ता मम महाणसंसि विपुलं असणं ४ जहा पुट्टिला जाव परिभाएमाणी विहराहि)

त्यारपधी सागरदत्त पडेलांनी नेम आकुण चित्तवाणे थईने न्यां वासगृह उतुं त्यां आये. त्यां आवीने तेणे सुकुमारिका दारिकाने येताना जेणामां जेसाडी लीधी अने जेसाडीने उडेवा लाग्या के छे पुत्रि ! ते पडेला भवमा ने उंई दुश्चीर्ण, दुष्पराक्रांत अने कृतज्ञानावरणीय वगेदे अशुभ कर्मा उपा

त्रिसेसं-’ इति-दुश्चीर्णानां-दुश्चरितानां वाह्मनोजनित मृपावादादिकर्मणामित्यर्थः, किं भूतानां तेषां? दुष्पराक्रान्तानां-कायिकानां प्राणिर्हिंसाऽदत्तादानादीनां, कृतानां प्रकृतिस्थित्यलुभागप्रदेशभेदेन बद्धानां पापानां=अशुभानां कर्मणां=ज्ञानावरणीयादीनां पापकम्-अशुभं, फलवृत्तिविशेषम्, प्रत्यनुभवन्ती=वेदयन्ती विहरसि=वर्तसे तत्=तस्माद् मा खलु त्वं हे पुत्रि! अपहतमनःसंकल्पा यावद् ध्याय=आर्तध्यानं मा कुरु इत्यर्थः, त्वं खलु हे पुत्रि! मम ‘महाणसंसि’ महानसे-पाकशालायां विपुलमशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं यथा पोडिला यावत् परिभाजयन्ती=श्रमणादिभ्यः प्रविभागं कुर्वती ‘विहराहि’ विहर=तिष्ठ। ततः खलु सा सुकु-

क्रिये-प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंधके भेदसे बांधे हैं-उन्हीं पुराने अशुभ ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के तुम अशुभ फल विशेष को इस समय भोग रही हो। पूर्व भवों में जो पाप क्रिये हैं वेही यहां ” “पुराण” शब्द से गृहीत हुए हैं। पाप शब्द यहां अशुभ ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का बोधक है। ये अशुभ ज्ञानावरणीय आदि कर्म जीव अशुभ मन, वचन और काय की प्रवृत्ति से जन्य मृपावाद आदि क्रियाओं से, तथा प्राणिर्हिंसा, अदत्तादान आदि कुकृत्यों से बांधता है। बांधते समय इनमें प्रकृति, स्थिति अनुभाग और प्रदेश बंधरूप विभाग हो जाता है। अधिक स्थिति और अधिक अनुभाग बंध इनमें संकलेश परिणामों से पडता है। इसलिये हे पुत्रि। तुम अपहतमनः संकल्प होकर यावत् आर्तध्यान मत करो। तुम तो मेरी भोजन शाला में चतुर्विध आहार तैयार करा कर पोडिला की तरह श्रमण आदि

र्जित कर्मां डतां-प्रकृति, स्थिति, अनुभाग अने प्रदेश बांधना लेखी गांध्या छे अत्यारे तुं तेन पडेलांना अशुभ ज्ञानावरणीय वगेरे कर्माना अशुभ इण विशेषने लागवी रही छे. पूर्वा लचमां ले पाप करवामां आव्यां डाय तेने अही “पुराण” शब्दथी अडणु करवामां आव्या छे. अही पाप शब्द अशुभ ज्ञानावरणीय वगेरे कर्माने स्पष्ट करे छे आ अथा अशुभ ज्ञानावरणीय वगेरे कर्मों लव अशुभ-मन, वचन, अने कायनी प्रवृत्तिथी अन्य मृपावाद वगेरे क्रियाओथी तेमळ प्राणीओनी हिंसा, अदत्तादान वगेरे कुकर्मोथी बांधे छे गांधती वधते ओओमां प्रकृति, स्थिति, अनुभाग अने प्रदेश बांधरूप विभाग थड लय छे अधिक स्थिति अने अधिक अनुभाग बांध तेओमां संकलेश परिणामोथी पडे छे. ओथी हे पुत्रि। तमे अपहतः मनः संकल्प थडने यावत्

मारिका दारिका एतमर्थं प्रतिशृणोति=स्वीकरोति, प्रतिश्रुत्य महानसे विपुलमश-
नपानखाद्य खाद्यं यावद् 'दलमाणी' ददती विहरति=आस्ते स्म ॥ सू० १२ ॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं गोवालियाओ अजाओ
बहुस्सुयाओ एवं जहेव तेयलिणाए सुव्वयाओ तहेव सन्नोस-
द्धाओ तहेव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे तहेव जाव सूमालिया
पडिलाभित्ता एवं वयासी—एवं खलु अजाओ ! अहं सागरस्स
अणिट्ठा जाव असणामा नेच्छइ णं सागरए मम नामं वा जाव
परिभोगं वा, जस्स २ वि य णं दिज्जामि तस्स २ वि य णं
अणिट्ठा जाव असणामा भवामि, तुब्भे य णं अजाओ ! बहु-
नायाओ एवं जहा पुट्टिला जाव उवलद्धे जे णं अहं सागरस्स
दारियाए इट्ठा कंता जाव भवेज्जामि, अजाओ तहेव भणंति
तहेव साविया जाया चिंता तहेव सागरदत्तं सत्थवाहं आपु-
च्छइ जाव गोवालियाणं अंतिए पव्वइया, तएणं सा सूमा-

जनों के लिये वितरण करती रहो (तएणं सा सूमालिया दारिया एय-
मट्ठं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता महाणसंसि विपुलं असण जाव दलमाणी
विहरइ) इस तरह पिता सागरदत्त के समझाने पर उस सुकुमारिका
दारिका ने अपने पिता के इस कथन को स्वीकार कर के वह महानस
भोजन शाला में निष्पन्न चतुर्विध आहार को श्रमणादि जनों के लिये
वितरण भी करने लगी ॥ सूत्र १२ ॥

आर्तध्यान करीश नडि. तुं भारी लोअन शाणाभां आर नतना आडारे
तैयार करावडावीने पोट्टिलानी जेम श्रमणु वगेरे जेनेने आपती रडे.

(तएणं सा सूमालिया दारिया एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता महाणसंसि
विपुलं असण जाव दलमाणी विहरइ)

आ रीते पिता सागरदत्त वडे समभववामां आवेदी ते सुकुमाठ दारि-
काये पोताना पिताना कथनने स्वीकारी लीधु अने स्वीकारीने ते लोअनशाणाभां
तैयार थयेदा आरे नतना आडारेने श्रमणु वगेरेने आपवा लागी. ॥ सू. १२

लिया अजा जाया ईरियासमिया जाव गुत्तवंभयारिणी बहुहि
 चउत्थच्छट्टुम जाव विहरइ, तएणं सा सूमालिया अजा
 अन्नया कयाइ जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवाग-
 च्छइ उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-
 इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहि अब्भणुन्नाया समानी चंपाओ
 बाहिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्टंछट्टेणं अणि-
 विखत्तेणं तवोकम्मेणं सूराभिमुही आयावेमाणां विहरित्तए,
 तएणं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं एवं वयासी-
 अम्हे णं अज्जे ! समणीओ निगंथीओ ईरियासमियाओ जाव
 गुत्तवंभयारिणीओ नो खलु अम्हं कप्पइ वहिया गामस्स जाव
 सण्णिवेसस्स वा छट्टं जाव विहरित्तए, कप्पइ णं अम्हं अंतो
 उवस्सयस्स विइपरिविखत्तस्स संघाडिबद्धियाए णं समंतल
 पइयाए आयावित्तए, तएणं सा सूमालिया गोवालियाए एय-
 मट्टं नो सदहइ नो पत्तियइ नो रोएइ एयमट्टं अ०३ सुभूमि-
 भागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्टं छट्टेणं जाव विहरइ ॥सू०१३॥

टीका—‘ तेणं कालेणं ’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये ‘ गोवा-
 लियाओ अज्जाओ ’ गोपालिका=गोपालिकानाम्भ्यः आर्याः=साध्व्यः, ‘ बहुस्सु-
 र्याओ ’ बहुश्रुताः=श्रुतपारगाम्भ्यः, एवम्=अनेन प्रकारेण यथैव ‘ तेतलिणाए ’
 तेतलिजाते=चतुर्दशे तेतलिपुत्राध्ययने वर्णिताः ‘ सुव्वयाओ ’ सुव्वताः=सुव्वता-

‘ तेणं कालेणं तेणं समएणं ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तेणं कालेणं—तेणं समएणं) उस काल और उस समय में
 (गोवालियाओ अज्जाओ बहुस्सुयाओ एवं जहेव तेयलिणाए सुव्वयाओ

‘ तेणं कालेणं—तेणं समएणं ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तेणं कालेणं—तेणं समएणं) ते क्षणे अने ते समये
 (गोवालियाओ अज्जाओ बहुस्सुयाओ एवं जहेव तेयलिणाए सुव्वयाओ

नामन्यः साध्व्यः. ' तहेव समोसङ्गाओ ' तथैव समवसृताः=सुव्रतावद् गोपालिकाः समागताः । ' तहेव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे ' तथैव संघाटको यावद् अनुप-
विष्टः गोपालिकानामार्याणामेकः संघाटकः यावत्=सुकुमारिकाया गृहेऽनुपविष्टः ।
तथैव यावत् सुकुमारिका ता आर्याः अशनादिना प्रतिलम्भ्य एवं=वक्ष्यमाणप्रका-
रेण अवादीत्-हे आर्याः ! एवं खलु अहं सागरस्य दारकस्यानिष्टा यावद्=
अकान्ता अप्रिया अमनोज्ञा अमनोमा मनः प्रतिकूलाऽस्मि, नेच्छति खलु साग-
रको मम नाम वा गोत्रं वा श्रोतुम्, किं पुनर्यावत् मया सह परिभोगं वा, यत्र
मम नामाऽपि श्रोतुं नेच्छति तत्र का वार्ता परिभोगस्य, अहं तु तेन सर्वथा परि,
त्यक्तेति भावः । अपि च यस्मै यस्मै खलु ' दिज्जामि ' दीये=स्वपित्रा प्रदत्ता
भवामि, तस्य तस्यापि च खलु अनिष्टा यावद् अमनोमा=मनः प्रतिकूला भवामि,
हे आर्याः ! यूयं च खलु ' बहुनायाओ ' बहुज्ञाताः ज्ञानाविशययुक्ताः, ' एवं

तहेव समोसङ्गाओ तहेव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे तहेव जाव सुमा-
लिया पडिलभित्ता एवं वयासी) गोपालिका नामकी आर्यिका जो श्रुत
पारगामिनी थीं इस प्रकार से कि जिस प्रकार से तेतलि प्रधान नामक
चौदहवें अध्ययन में सुव्रता साध्वी वर्णित हुई है-थीं-वे उसी तरह से
वहां आईं । इनका एक संगडा था, यावत् सुकुमारिका के घर में
गोचरी के लिये प्रवेश किया । सुकुमारिका ने बड़ी भक्ति के साथ
उन्हें आहार पानी दिया-और देकर वह फिर इस प्रकार से उनसे
कहने लगी-(एवंखलु अज्जाओ ! अहं सागरस्स अणिट्ठा, जाव अम
णामा, नेच्छह णं सागरए मम नामं वा जाव परिभोगं वा जस्स २ वि
य णं दिज्जामि तस्स-तस्स वि य णं अणिट्ठा, जाव अमणामा भवामि
तुम्भे य णं अज्जाओ ! बहुनायाओ, एवं जहा पुट्टिला जाव उवल्लहे

तहेव समोसङ्गाओ तहेव संघाडओ जाव अणुपविट्ठे तहेव जाव सुमालिया पडि
लभित्ता एवं वयासी)

गोपालिका नामे आर्यिका डे जे श्रुत पारगामिनी इती. तेतलीप्रधान
नामना औदमा अध्ययननी सुव्रता साध्वी जेवी इती तेवी ज ते पखु इती.
सुव्रता साध्वीनी जेम ज ते यावत् सुकुमारिकाना घेर ते गोचरी भाटे गध.
सुकुमारिकाजे गूण ज लडित-लावथी तेमने आहारपाखी आभ्युं अने आपीने
ते तेमने आ प्रभाणे डडेवा लागी—

(एवं खलु अज्जाओ अहं सागरस्स अणिट्ठा, जाव अमणामा नेच्छह णं
सागरए मम नामं वा जाव परिभोगं वा जस्स २ वि य णं दिज्जामि तस्स तस्स
वि य णं अणिट्ठा, जाव अमणामा भवामि तुम्भे य णं अज्जाओ ! बहुनायाओ,

यथा पोट्टिला यावद् उपलब्धम् ' अयमर्थः—यथा तेतलिपुत्रभार्या पोट्टिला स्वभर्तृ-
वशीकरणोपायमदर्शनार्थं सुव्रतां साध्वीं पृच्छतिस्म, तथा—सुकुमारिका दारिका
गोपालिका संघाटकं पृष्ठयती, तादृशं चूर्णयोगादिकमुपलब्धं=ज्ञातं किम् ? येनाहं
सागरस्य दारकस्येष्टा कान्ता यावद् भवेयं आर्यास्तथैव भगन्ति=यथा पोट्टिलि-

जे णं अहं सागरस्स दारगस्स इड्ढा कंता जाव भवेज्जामि, अज्जाओ
तहेव भगंति, तहेव साविया जाया, तहेव चिंता, तहेव सागरदत्तं सत्थ-
वाहं आपुच्छइ जाव गोवालियाणं अंतिए पव्वइया) हे आर्याओ ।
मैं अपने पति सागर दारक के अनिष्ट बनी हूँ यावत् अकान्त
अप्रिय अमनोज्ञ एवं अमनोम मनः प्रतिकूल बनी हुई हूँ । वे मेरा नाम
गोत्र कुछ भी सुनना नहीं चाहते हैं । तो फिर उनके साथ परिभोग
करने की तो बात ही क्या है । मुझे तो उन्होंने सर्वथा ही छोड़ दी है ।
अपिच—मेरे पिता मुझे जिस २ व्यक्ति के लिये देते हैं—मैं उस २ व्यक्ति
के लिये भी अनिष्ट आदि बन जाती हूँ । हे आर्याओ ! आप तो बहु-
श्रुत हैं अनेक शास्त्रों की ज्ञाता है—ज्ञान के अतिशय से संपन्न हैं ।
इस प्रकार उस सुकुमारिका ने पोट्टिला की तरह अपने पति को वश
में करने के विषय में उनसे उपाय पूछा पोट्टिलाने अपने पति तेतलिपुत्र
को वशमें करने को पहिले जैसे सुव्रता साध्वी के संघाटेसे उपाय पूछा
था—और कहा आपको यदि कोई ऐसा चूर्ण आदि का प्रयोग उपलब्ध

एवं जहा पुट्टिला जाव उवल्ले जेणं अहं सागरस्स दारगस्स इड्ढा कंता जाव
भवेज्जामि, अज्जाओ तहेव भगंति, तहेव साविया जाया, तहेव चिंता,
तहेव सागरदत्तं सत्थवाहं आपुच्छइ जाव गोवालियाणं अंतिए पव्वइया)

हे आर्याओ ! मेरा पति सागरदारक भाटे हु अनिष्ट थई गयेली छुं
यावत् अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ अने अमनोम थई चूकी छुं । तेओ मेरा
नाम गोत्र क'ध पणु सांलणवा छिंछता नथी त्पारे तेमनी साथे परिभोग
करवानी तो बात न शी करवी । तेओओ मने ओकदम न ने छोडी दीधी छे.
अने मेरा पिताओ मने ने ने माणुसने आपे छे ते पधा भाटे पणु हुं अनिष्ट
वगेरे थई नउ छुं । हे आर्याओ ! तमे तो बहुश्रुत छे, धणुं शास्त्रोने
नणुओ छे, ज्ञान संपन्न छे । आ रीते पोट्टिलानी नेम न सुकुमारिका दारि-
काओ पणु पतिने वशमां करवा भाटेना उपायोनी पूछपरछ करी । पोट्टिलाओ
पोताना पति तेतलिपुत्रने वशमा करवा भाटे पडेता सुव्रता साध्वीना संघा-
टाधी नेम उपायो पूछया डता तेमन तेओ पणु तेमने कहुं के-ने ओवे

कया पृष्ठा सुव्रतायाः संघाटकस्थिताः साऽव्यस्तामवोचत्, तथैव गोपालिका संघाटस्थाः आर्या भणन्ति=वदन्ति स्मेत्यर्थः । ' तथैव सावित्रा जाया ' तथैव श्राविका जाता=पोट्टिला वत् सुकुमारिका दारिकाऽपि श्राविका जाता । तथैव चिन्ता-पोट्टिलावदेव पश्चात्=प्रव्रज्यां ग्रहीतुं चिन्ता सुकुमारिकाया मनसि प्रादुर्भूता । सुकुमारिका सागरदत्तं सार्थवाहं=स्वपितरं तथैव=यथा स्वपतिं पोट्टिला, तद्वद् आपृच्छति, यावद् गोपालिकानामन्तिके प्रव्रजिता=दीक्षां गृहीतवती । ततः खलु सा सुकुमारिका आर्या=साध्वी जाता सा किं भूता-ईर्यासमिता यावद् गुप्त

हो तो भी बता दीजिये कि जिससे मैं अपने पति सागरदारक को दृष्ट, कान्त यावत् मनोम बनजाऊँ । गोपालिका के संघाटे की इन आर्याओं ने सुकुमारिका को, पोट्टिला को सुव्रता साध्वी की तरह समझाया-वह उसी तरहसे श्राविका बन गई । पोट्टिला की तरह इस सुकुमारिका ने भी बाद में दीक्षा लेने का मन में विचार किया-। पोट्टिलाने जिस तरह अपने पति से आज्ञा लेकर दीक्षा धारण की थी-उसी प्रकार इस सुकुमारिका ने भी अपने पिता सागरदत्त से पूछकर गोपालिका आर्या के समीप दीक्षा धारण कर ली । (तएणं सा सुमालिया अज्जा जाया ईरिया समिया जाव गुत्तवंभयारिणी बहूहि चउत्थ छट्ठम जाव विहरइ, तएणं सा सुमालिया अज्जा अन्नया कयाइं जेणेव गोवालिया अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ) इस तरह वह सुकुमारिका आर्या बन गई । वह ईर्यासमिति आदि का पालन करने लगी

कोई श्रुति वगेरेना प्रयोग भणी शके तो पणु भने पतावी हो के नेथी हु मारा पति सागरदारकना भाटे इरी छुट, कान्त, यावत् मनोम थर्ष न्ठि. गोपालिका संघाटानी ते आर्याओओ-सुव्रता-साध्वीओ नेम पोट्टिलाने सम-लवी तेमन् समलवी, अने छेवटे ते श्राविका भनी गध. पोट्टिलानी नेमन् ते सुकुमारिकाओ पणु त्थारपछी दीक्षा लेवाने मनमां मच्छम विचार करी लीधो. पोट्टिलाओ नेम पोताना पतिनी आज्ञा लधने दीक्षा धारणु करी छती तेमन् सुकुमारिकाओ पणु पोताना पति सागरदत्तने पूछीने गोपालिका आर्यानी पासैथी दीक्षा धारणु करी लीधी

(तएणं सा सुमालिया अज्जा जाया इरिया जाव गुत्तवंभयारिणी बहूहि चउत्थ छट्ठम जाव विहरइ, तएणं सा सुमालिया अज्जा अन्नया कयाइं जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ)

आ रीते सुकुमारिका आर्या थर्ष गध, ते धर्या समिति वगेरेनुं पालन करवा लागी. अने नवकोटीथी अन्नयर्थ मडावतनी रक्षा करवा लागी. मणु

ब्रह्मचारिणी सा बहुमिश्रतुर्थषष्ठाष्टमभक्तैर्यावत्-तपः कर्मभिरात्मानं भावयन्ती
विहरति=आस्तेस्म । ततः खलु सा सुकुमारिका आर्या अन्यदा कदाचिद् यत्रैव
गोपालिका आर्यास्तत्रैवोपागच्छति उपागत्य वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा
नमस्यित्वा एवमवादीत्=हे आर्याः ! इच्छामि खलु युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती
चस्पानगर्या वहिः सुभूमिभागस्योद्यानस्यादूरसामन्ते = नातिदूरे नातिनिकटे
षष्ठषष्ठेन-षष्ठभक्तानन्तरं पुनः षष्ठभक्तेन ' अणिक्विखत्तेण ' अनिक्षिप्तेन
=अविश्रान्तेन-अन्तररहितेन, तपःकर्मणा ' सूर्याभिमुखी ' सूर्याभिमुखी ' आया-
वेमानी ' आतापयन्ती-आतापनां कुर्वती विहर्तुम् ' इति । ततस्तदनन्तरं
ता गोपालिका आर्याः सुकुमानिकामार्यामेवमवादिषुः-हे आर्ये ! वयं खलु श्रमण्यो

और नौ कोटी ब्रह्मचर्य से महाव्रत की रक्षा करने लगी । अनेक चतुर्थ,
षष्ठ, अष्टम, भक्त आदि तपस्याओं से अपने आपको भावित
भी करने लगी । एक दिन की बात है कि वह सुकुमारिका आर्या
साध्वी-जहां गोपालिका आर्या विराज मान थी वहां गई-(उवाग-
च्छित्ता वंदह, नमंसह, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी, इच्छामि णं अ-
ज्जाओ ! तुम्हेहिं अब्भणुन्नाया समाणी चंपाओ बहिं सुभूमिभागस्स
उज्जाणस्स अदूर सामन्ते छट्टं छट्टेण अणिक्विखत्ते णं तवोकम्मै णं सूर्या
भिमुखी आयावेमानी विहरित्तए) वहां जाकर उसने उन्हें वंदना
की, नमस्कार किया ! वंदना एवं नमस्कार कर फिर वह इस-
प्रकार कहने लगी-हे भदंत ! मैं आप से आज्ञा प्राप्त कर चंपा नगरी से
बाहिर सुभूमिभाग नाम के उद्यान के समीप अंतररहित छट्ट छट्ट
की तपस्या से सूर्याभिमुखी होकर आतापना करना चाहती हूँ ।
(तएणं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं एवं वयासी-अम्हेणं

अतुर्थं, षष्ठ, अष्टम लक्षत वगेरे तपस्याओधी पोताने लावित पणु करवा
लागी. ओक द्विवसनी वात छे के ते सुकुमारिका आर्या साध्वी न्यां गोपालिका
आर्या विराजमान छनी त्यां गथ. (उवागच्छित्ता वंदह, नमंसह, वंदित्ता, नमं-
सित्ता एवं वयासी, इच्छामि णं अज्जाओ ! तुम्हेहिं अब्भणुन्नाया समाणी चंपाओ
बहिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामन्ते छट्टं छट्टेण अणिक्विखत्तेणं तवो
कम्मैणं सूर्याभिमुखी आयावेमानी विहरित्तए) त्यां न्धने तेणु तेभने वंदना करी
नमस्कार कर्या. वंदना तेभन नमस्कार करीने तेणु आ प्रमाणे कथु के छे
लहत ! आपनी आज्ञा भेजवीने हुं चंपा नगरीमां अहार सुभूमिभाग नामना
उद्याननी पासि अंतर रहित छट्ट छट्टनी तपस्या करतां सूर्याभिमुखी धधने
आतापना करवा धच्छुं छु. (तएणं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं

निर्ग्रन्थः ईर्यासमिताः=ईर्यासमितियुक्ताः, यावद्-गुप्तत्रह्वारिण्यः स्मः, तस्माद् नो खलु अस्माकं कल्पते- 'वहिया' वहिः-ग्रामाद् यावद् संनिवेशाद् षष्ठ षष्ठेन 'जाव विहरित्तए' यावद् विहर्तुम् ग्रामादे वहिः प्रदेशे साध्वीनां स्थितिः शीलभङ्गादिकारणं भवतीति भावः । किंतु कल्पते खलु अस्माकम् 'अंतो' अन्तः=अभ्यन्तरे 'उवस्मयस्स' उपाश्रयस्य=वसतेः, किम्भूतस्य 'वित्तिपरिक्खित्तस्स' वृत्तिपरिक्षिप्तस्य=भित्त्यादिना सर्वतः समावृतस्य, 'संघाडिवद्धियाए' संघ्राटिका प्रतिवद्धायाः=प्रतिवद्धशाटिकायाः सर्वथाऽनुद्धाटितगात्राया इत्यर्थः 'समतलपइयाए' समतलपदिकायाः=भूमौ समतलतया स्थापितचरणयुगलाया आयावित्तए' आतापयित्तुम्=आतापनां कर्तुं कल्पते इति पूर्वेण सम्बन्धः । ततः

अज्जे ! समणीओ निग्गंथीओ ईरियासमियाओ जाव गुत्तवंभचारिणीओ, नो खलु अम्हं कप्पइ वहियागामस्स जाव सण्णिवेसस्स वा छट्ठं जाव विहरित्तए) इस प्रकार सुकुमारिका साध्वी का कथन सुनकर गोपालिका आर्या ने उस सुकुमारिका आर्या से इस प्रकार कहा है आर्ये ! हम लोग निर्ग्रन्थ भ्रमणियाँ हैं । ईर्या आदि समितियों का पालन करती हैं । और नौ कोटि से ब्रह्मचर्य की रक्षा करती हैं । इसलिये हम लोगों को ग्राम से यावत् संनिवेश से बाहिर रह कर षष्ठ षष्ठ की तपस्या करना यावत् सूर्याभिमुखी होकर आतापन योग धारण करना कल्पित नहीं है । कारण-ग्रामादि के बाहिरी प्रदेश में साध्वियों का रहना शीलभग आदि का निमित्त बन जाता है । (कप्पइ णं अम्हं अंतो उवस्सयस्स विहपरिक्खित्तस्स संघाडिवद्धियाए णं समतल पइयाए आयावित्तए) हमें तो यही कल्पित है कि हम लोग उपाश्रय के

एव वयासी-अम्हेणं अज्जे ! समणीओ निग्गंथीओ ईरिया सामियाओ जाव गुत्तवंभचारिणीओ, नो खलु अम्हं कप्पइ वहिया गामस्स जाव सण्णिवेसस्स वा छट्ठं जाव विहरित्तए) आ रीते सुकुमारिका साध्वीनुं कथन सांलणीने गोपालिका आर्याये सुकुमारिका आर्याने आ प्रभाणु कहुं के आर्ये । आपणु निर्ग्रन्थ भ्रमणीये छीये. धर्या वगेरे समितिओनुं पालन करीये छीये, अने नव-कोटिथी प्रह्वचर्यनुं रक्षणु करीये छीये. अथी आपणु गामथी यावत् संनिवेशथी षष्ठ षष्ठनी तपस्या करवी यावत् सूर्याभिमुखी थधने आतापन योग धारणु करवो कल्पित नथी. कारणु के-गाम वगेरेथी षष्ठाना प्रदेशमां साध्वीओये उठेवुं शीललग विगेरेनुं निमित्त थई जय छे. (कप्पइ णं अम्हं अंतो उवस्सयस्स विहपरिक्खित्तस्स संघाडिवद्धियाए णं समतलपइयाए आयावित्तए) आपणुने तो अये ७ कल्पित छे के आपणु नीति वगेरेथी आनेर

खलु सा सुकुमारिका गोपालिकानामार्याणामेतमर्थं नो श्रद्धधाति ' नो पत्तियद् ' नो प्रत्येति=नो विश्वसिति, ' नो रोएद् ' नो रोचते, एतमर्थम् अश्रद्धधाना, अप्रतियन्ती, अरोचमाना सति सुभूमिभागस्य उद्यानस्य अदूरसामन्ते षष्ठ-षष्ठेन यावत्-तपः कर्मणा सूर्याभिमुखी भूत्वा-आतापनां कुर्वती विहरति ॥ सू० १३ ॥

सूत्रम्-तत्थ णं चंपाए ललिया नाम गोट्टी परिवसद्, नरवद् दिण्णवियारा अम्मापिड्ढिनिययनिप्पिवासा वेसविहारकयनिकेया नाणाविहअविणयप्पहाणा अड्डा जाव अपरिभूया, तत्थ णं चंपाए देवदत्ता नामं गणिया हात्था सुकुमाला जहा अंडणाए, तएणं तीसे ललियाए गोट्टीए अन्नया पंच गोट्टिलगपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स

कि जो भित्ति आदि से सब तरफ से परिक्षिप्त है भीतर ही अपने शरीर को शाटिका से अच्छी तरह संवृत्त करती हुई और भूमि पर दोनों चरणों को बराबर स्थापित कर आतापना लें (तएणं सा सूमालिया गोवालियाए एयमट्टं नो सहहद्, नो पत्तियद् नो रोएद् एयमट्टं अ० ३ सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामन्ते छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरद्) इस गोपालिका आर्याके कथन ऊपर उस सुकुमारिका आर्या को श्रद्धा नहीं जमी उस पर उसे विश्वास नहीं आया, वह उसे रुचा नहीं । इस तरह वह उसे अश्रद्धा अप्रतीति और अरुचि का विषय बनाती हुई सुभूमिभाग नामक उद्यान के पास षष्ठ षष्ठ की तपस्या करती हुई वह सूर्याभिमुख होकर आतापना करने लगी ॥ सू० १३ ॥

परिक्षिप्त उपाश्रयनी अंदर ७ पोताना शरीरने शाटिका-साडीथी सारी रीते ढांडीने अने भूमि उपर अने चरणोने पराभर स्थापित करीने आतापना लधये (तएणं सा सूमालिया गोवालियाए एयमट्टं नो सहहद् नो पत्तियद् नो रोएद्, एयमट्टं अ० ३ सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामन्ते छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरद्) गोपालिका आर्याना कथन उपर सुकुमार आर्याने श्रद्धा थर्ध नडि, तेना उपर तेने विश्वास थये नडि ते तेने गर्भ्युं पणु नडि आ रीते ते ते कथन प्रत्ये अश्रद्धा, अप्रतीति अने अरुचि धरावती सुभूमिभाग नामना उद्याननी यासे षष्ठ षष्ठनी तपस्या करती सूर्याभिमुणी थर्धने आतापना करवा लागी ॥ सूत्र १३ ॥

उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुवभवमाणा विहरंति, तत्थ णं
 एगे गोट्टिल्लगपुरिसं देवदत्तं गणियं उच्छंगे धरइ एगे पिट्ठओ
 आयत्तं धरेइ एगे पुप्फपूरयं रएइ एगे पाए रएइ एगे
 चामरुक्खेवं करेइ तएणं सा सूमालिया अज्जा देवदत्तं गणियं
 तेहिं पंचहिं गोट्टिल्लपुरिसेहिं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं
 भोगभोगाइं भुंजसाणी पासइ तएणं तीसे इमेयारूवे संकप्पे
 ससुप्पज्जित्था—अहो णं इमा इत्थिया पुरा पोरणाणं कम्माणं
 जाव विहरइ, तं जइ णं केइ इमस्स सुचरियस्स तव-
 नियमव्रंभच्चेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि तो
 णं अहमवि आगमिस्सेणं भवग्गहणेणं इमेयारूवाइं उरा-
 लाइं जाव विहरिज्जामि त्तिक्कहु नियाणं करेइ करित्ता
 आयावणभूमिओ पच्चोरुहइ ॥सू० १४॥

टीका—‘ तत्थ णं चंपाए ’ इत्यादि । तत्र खलु चम्पायां नगर्यां ललिता
 नाम्नी ‘ गोट्टी ’ गोट्टी=मण्डली परिवसति किं भूतो सा गोट्टीत्याह—‘ नरवद्विष्ण-
 वियारा ’ नरपतिदत्तविचारा नरपतिना दत्तो विचारः संमतिर्यस्यै सा तथा—सेवा-
 दिना सन्तुष्टान्नरपतेर्लब्धस्यत्तन्त्रता, तथा—‘ अम्मापिइ निययनिप्पिवासा ’
 अम्मापित्तिजकनिःपिपासा=मातापित्रादि निरपेक्षा, ‘ वेसविहारकय निकेया ’

‘ तत्थ णं चंपाए ललिया नाम ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तत्थ णं चंपाए ललिया नाम गोट्टी परिवसइ) उस
 चंपानगरीमें ‘ ललिता ’ इस नामकी गोट्टी—मंडली—रहती थी । (नरवइ
 द्विष्णवियारा, अम्मापिइ नियय निप्पिवासा वेसविहारकयनिकेया,

‘ तत्थ णं चंपाए ललिया नाम ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तत्थ णं चंपाए ललिया नाम गोट्टी परिवसइ) तेषां
 नगरीमां ‘ ललिता ’ नामे गोष्ठी ‘ भउणी रहती हती. (नरवइ, द्विष्णवियारा
 अम्मापिइ निययनिप्पिवासा, वेसविहारकयनिकेया, नाणाविहअविणयप्पहाणा, अइदा

वेश्याविहारकृतनिकेता - वेश्यागृहकृतनिवासा, तथा- 'नाणाविहअविणयप्पहाणा' नानाविधाऽविनयप्रधाना, तथा-आढ्या=धनधान्यसम्पन्ना, यादद् अपरिभूता=परैरनभिभूता, आसीत् । तत्र खलु चम्पायां नगर्यां देवदत्ता नाम 'गणिया' गणिका=वेश्या, आसीत्, सा किम्भूतेत्याह-सुकुमारपाणिपादा, चतुष्पष्टिकलाविशारदा 'जहा अंडणाए' यथा अण्डज्ञाते=अण्डनामके तृतीये ज्ञाताध्ययने यथाऽस्यावर्णनं तद्वदिह बोध्यम् । ततः खलु तरया ललिताया गोष्ठ्या अन्यदा=अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित्प्रमये, पञ्च 'गोष्ठिल्लगपुरिसा' गोष्ठिकपुरुषा=मण्डलीपुरुषाः समानवयस्का इत्यर्थः देवदत्तया गणिकया सार्धं सुभूमिभागस्योद्यानस्योद्यानश्रियं=उद्यानशोभां प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति । तत्र खलु एको गोष्ठिकपुरुषो देवदत्तां

नाणाविह अविणयप्पहाणा, अड्डा जाव अपरिभूया) इसने अपनी सेवासे राजाको प्रसन्न कर रखा था-सो उसकी कृपा से यह बिलकुल स्वच्छंद थे । अपने माता पिता आदि कुटुम्बी जनों की यह परचाह नहीं किया करते थे-उनको इन पुरुषों से बिलकुल भय नहीं था । वेश्याओं के घर में पड़े रहना-यही इनका एक काम था । अनेक प्रकार के अविनय प्रधान रूप अनाचारों का सेवन करना यही उनका काम था । पैसे की-द्रव्यकी उनके- पास कमी नहीं थी । कोई इनको कुछ कह सुन नहीं सकता था । (तत्थ णं चंपाए देवदत्ता नामं गणिया होत्था, सुकुमाला, जहा अंडणाए, तएणं तीसे ललियाए गोठ्ठीए अन्नया पंच 'गोष्ठिल्लगपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धि सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरीं पच्चणुवभवमाणा विहरंति) उसी चंपा नगरी में

जाव अपरिभूया) ते म'उणीओ चोतानी सेवाथी राजने प्रसन्न करेलेो हतेो. तेमनी कृपाथी ते म'उणी ओकहम स्वच्छंदपणुं आचरती हती. चोताना माता पिता वगेरे कुटुंणी लेोकेानी पणु तेओो हरकार करता न हता तेओोने आ वडीलेोनी केोपणु जतनी भीक हती नडि, वेश्याओोना घेर पडया रडेपुं इकत ओओ ओमनुं ओक मात्र काम हतुं. अनेक प्रकारना अविनयपूणुं आचरणो करवां ओओ तेओोना लवननुं मुप्य काम हतुं, धननी तेओोनी पासे जोट हती नडि. केोपणु नागरिकनी ओटकी पणु ताकात नडोती के तेओो तेमने कं'पणु कडे । (तत्थ णं चंपाए देवदत्ता नामं गणिया होत्था, सुकुमाला, जहा अंडणाए, तएणं तीसे ललियाए गोठ्ठीए अन्नया पंच गोष्ठिल्लगपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धि सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरीं पच्चणुवभवमाणा विहरंति) तेओ थंपा

गणिकामुत्सङ्गे धरति एकः 'पिट्टओ' पृष्ठतः 'आयवत्तं' आतपत्रं=छत्र धरति, एकः 'पुप्फपूरयं' पुप्फपूरकं=पुष्पाणां रचनाविशेषं 'रएइ' रचयति, एकः पादौ-अलक्तकादिना रञ्जयति । एकः 'चामरुक्खेवं' चामरोत्क्षेपं=चामरवीजनं करोति । ततः खलु सा सुकुमारिका आर्या देवदत्तां गणिकां तैः पञ्चभिर्गौंष्टिक-

देवदत्ता नाम की एक गणिका रहती थी । यह चौसठ कलाओं में निष्णात थी । इसके हाथ पैर आदि सब ही अवयव बहुत ही अधिक सुकुमार थे । मयूर अंड नाम के तृतीय ज्ञाताध्ययन में इसका जैसा वर्णन किया गया है-वैसा ही वर्णन इसका यहां जानना चाहिये । एक समय की बात है कि गोष्ठी के ५, पुरुष कि जो समान वयसवाले थे देवदत्ता गणिका के साथ उस सुभूमिभाग उद्यान में आये-और वहां की उद्यान की शोभा का निरीक्षण करते हुए इधर-उधर धूमने लगे-(तत्थ णं एगे गोट्टिल्लगपुरिसे देवदत्तां गणियं उच्छंगे धरइ, एगे पिट्टओ आयवत्तं धरेइ, एगे पुप्फपूरयं रएइ, एगे पाए रएइ, एगे चामरुक्खेवं करेइ, तएणं सा सूमालिया अज्जा देवदत्ता गणियं तेहिं पंचहिं गोट्टिल्लगपुरिसेहिं अद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंज-माणी पासइ) वहां एक उस अंडली के पुरुष ने देवदत्ता गणिका को अपनी गोदी में बैठाया, एक दूसरे-अंडली के पुरुष ने उसके पीछे से उसके ऊपर छत्ता ताना, एक तीसरे पुरुषने उसके निमित्त पुष्पों की रचना रचीं, चौथे पुरुष ने उसके दोनों पैरों में माहुर लगाया पांचवें ने

नगरीमा देवदत्ता नामे अे गणिका रहती होती. ते ६४ कलाओमा निपुण्णु होती, तेना हाथ-पग वगेरे यथां अंगो अतीव सुकोमल होती. मयूरी अंड नामना त्रीण अध्ययनमां देवदत्तानुं वेपुं वर्णन करवामा आव्यु छे तेपुं अ वर्णन अर्धी पणु नाणी 'लेपुं' नेधये अेक द्विसनी वात छे के गोष्ठी-अंडलीना पांच भाणुसे के वेओ सरणी उभरवाणा होता-देवदत्ता गणिकानी साथे ते सुभूमिभाग उद्यानमां गया अने त्यानी उद्यान शोभानुं निरीक्षणुं कन्ता आम तेम श्रवा लाग्या. (तत्थण णे गोट्टिल्लगपुरिसे देवदत्तां गणियं उच्छंगे धरइ, एगे पिट्टओ आयवत्तं धरेइ, एगे पुप्फपूरयं रएइ, एगे पाए रएइ, एगे चामरुक्खेवं करेइ तएण सा सूमालिया अज्जा देवदत्तां गणियं तेहिं पंचहिं गोट्टिल्लपुरिसेहिं अद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी पासइ) त्यां ते अंडलीना अेक भाणुसे देवदत्ता गणिकाने पोत'ना ओणांमां वेसाडी त्रीण भाणुसे तेनी उपर छत्री ताणी, त्रीण भाणुसे तेना माटे पुष्पेनी रचना करी, चौथा भाणुसे तेना पगमां लाल रंग लगाओ, पांचवा भाणुसे तेना उपर आमर

पुरुषैः सार्धं बुदारान्=श्रेष्ठान् भोगान् भुञ्जानां-कुर्वतीं पश्यति, ततस्त्वस्याः सुकुमारिकाया अयमेतद्रूपः=वक्ष्यमाणस्वरूपः संकल्पः=विचारः समुदपद्यत-अहो ! खलु इयं स्त्री पुरा=पूर्वभवे 'पोराणाणं' पुराणानाम्-पुरातनानां सचितानां कर्मणां पुण्यकर्मणां यावत्=फलवृत्तिविशेषं प्रत्यनुभवन्ती विहरति तत्=तस्मात् कारणाद् यदि खलु कौऽप्यस्य सुचरितस्य तपोनियमब्रह्मचर्यवासस्य कल्याणः=इष्टः शुभरूपः, फलवृत्तिविशेषः अस्ति, 'तो' तर्हि खलु अहमपि 'आगमिस्सेणं' आगामिना भवग्रहणेन इमान् एतद्रूपान् उदारान् भोगान् यावद् भुञ्जाना 'विह-

उस पर चमर ढोरे । इस तरह से उस सुकुमारिका आर्या ने उन मंडली के पांच पुरुषों के साथ उस देवदत्ता गणिका को उदार मनुष्य भव सम्बन्धी काम भोगों को भोगते हुए देखा । (तएणं तीसे इमेया-रूवे संकप्पे समुप्पज्जित्था-अहो णं इमा इत्थिया पुरा पोराणाणं कम्ममाणं जाव विहरइ) तो उस सुकुमारिका आर्या को इस प्रकार का यह विचार उत्पन्न हुआ-अहो ! इस स्त्री ने पूर्वभव में जो पुण्य कर्म कमाये हैं उन्हीं पुराने पुण्य कर्मों के यावत् फलवृत्ति विशेष को यह भोग रही है । (तं जइ णं केइ इमस्स सुचरियस्स तव नियमवंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि तो णं अहमवि आगमिस्सेणं भवग्रहणेणं इमेयाह्वाइं उरांलाइं जाव विहरिज्जामि, त्ति कट्टु नियाणं करेइ, करित्ता आयावगभूमिओ पच्चोरुहइ) इसलिये यदि इन पालित तप, नियम एवं ब्रह्मचर्य ब्रतों का कोई शुभरूप फलवृत्ति विशेष है तो मैं भी आगामी अब में इसी तरह के उदार मनुष्य भव सम्बन्धी काम भोगों

देखा. आ रीते ते सुकुमारि-आर्याये मंडलीना पाये भाषुसेनी साथे ते देवदत्ता गणिकाने उदार मनुष्यलवना कामलोगे लोगताने येया. (तएणं तीसे इमेयारूवे संकप्पे समुप्पज्जित्था-अहो णं इमा इत्थिया पुरा पोराणाणं कम्ममाणं जाव विहरइ) त्थारे ते सुकुमार आर्याने आ जतने विचार उ-लये के अडे ? आ स्त्रीये पूर्वलवमां ने पुण्यकर्म कया छे तेमने लीधेअ अट्ठे के ते अ पूर्वलवना पुण्य-कर्मोना यावत् इणविशेषने आ लोगवी रडी छे. (तं जइ णं केइ इमस्स सुचरियस्स तव नियम वंभचेरवासस्स कल्लाणे फल-वित्तिविसेसे अत्थि तो णं अहमवि आगमिस्से णं भवग्रहणे ण इमेयाह्वाइं उरा-लाइं जाव विहरिज्जामि, ति कट्टु नियाणं करेइ, करित्ता आयावगभूमिओ पच्चोरुहइ) आ यथा भारा पडे आग्रहमां आवेत्ता तप, नियम अने प्रहयर्थं प्रतीतुं शुभ इण छे तो हुं पणु आवता लवमां आ जतना अ उदार मनुष्यलव सम्बन्धी कामलोगाने लोगवुं आ प्रभाषे विचार करीने तेषु निदान

रिज्जामित्ति कट्टु ' ' विहरामि ' इति कृत्वा ' नियानं ' निदानं करोति, कृत्वा
आतापनभूमितः प्रत्यवरोहति-आतापनां परित्यजति ॥ सू० १४ ॥

मूलम्-तएणं सा सूमालिया अज्जा सरीरवउसा जाया
यावि होत्था, अभिक्खणं अभिक्खणं२ हत्थे धोवेइ पाए धोवेइ
सीसं धोवेइ मुहं धोवेइ थणंतराइं धोवेइ कक्खंतराइं धोवेइ
गोज्झंतराइं धोवेइ जत्थ णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा
चेएइ तत्थ वि य णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खइत्ता तओ
पच्छा ठाणं वा३ चेइए, तएणं ताओ गोवालियाओ सूमालियं
अज्जं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जे अम्हे सम-
णीओ निगंथीओ ईरियासमियाओ जाव वंभचेरधारिणीओ
नो खलु कप्पइ अम्हं सरीरवाउसियाए होत्तए, तुमं च णं
अज्जे ! सरीरवाउसिया अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवेसि
जाव चेएसि, तं तुमं णं देवाणुप्पिए ! तस्स ठाणस्स आलो-
एहि जाव पडिवज्जाहि, तएणं सा सूमालिया गोवालियाणं
अज्जाणं एयमट्ठं नो आढाइ नो परिजाणइ अगाढायमाणी
अपरिजाणमाणी विहरइ, तएणं ताओ अज्जाओ सूमालियं
अज्जं अभिक्खणं अभिक्खणं अभिहीलंति जाव परिभवंति,
अभिक्खणं अभिक्खणं एयमट्ठं निवारेंति, तएणं तीए सूमा-
लियाए समणीहिं निगंथीहिं हीलिज्जमागीए जाव वारिज्ज-

को भोग्य । ऐसा विचार कर उसने निदान बंध किया और करके फिर
वह आतापन भूमि से आतापना लेकर अपने स्थान आ गई ॥ सू० १४ ॥

अंध कुर्यो अने करीने ते आतापन भूमिथी आतापना लधने पोताना स्थाने
आवी गई ॥ सूत्र १४ ॥

माणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था, जयाणं
 अहं अगारवासमज्जे वसामि तथा णं अहं अप्पवसा, जया
 णं अहं मुंडे भवित्ता पव्वइया तथा णं अहं परवसा, पुठ्वि च
 णं ममं समाणीओ आढायंतिर इयाणिं नो आढंतिर तं सेयं
 खलु मम कल्लं पाउ० गोवालियाणं अंतियाओ पडिनिक्खमित्ता
 पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए त्तिकट्टु एवं
 संपेहेइ संपेहित्ता कल्लं पा० गोवालियाणं अज्जाणं अंतियाओ
 पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जि-
 त्ताणं विहरइ, तएणं सा सूमालिया अज्जा अणोहट्टिया
 अनिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवेइ
 जाव चेएइ तत्थ वि य णं पासत्था पासत्थविहारी ओसण्णा
 ओसण्णविहारी कुसीलार संसत्तार बहूणि वासाणि सामण्ण-
 परियागं पाउणइ अद्धमासियाए संलेहणाए तस्स ठाणस्स
 अणालोइयअपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे
 अण्णयरंसि विमाणंसि देवगणियत्ताए उववण्णा, तत्थेगइयाणं
 देवीणं नव पलिओवमाइं ठिई पणत्ता, तत्थ णं सूमालियाए
 देवीए नव पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता ॥ सू० १५ ॥

टीका—‘तएणं सा’ इत्यादि । ततः खलु सा सुकुमारिका आर्या ‘सरीर

‘तएणं सा सूमालिया अज्जा’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इस के बाद (सा सूमालियाए अज्जा सरीर वउसा

‘तएणं सा सूमालिया अज्जा’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्यारपथी (सा सूमालिया अज्जा सरीरवउसा जाया चावि

वउत्ता ' शरीरवक्रुशा शरीरसंस्कारपरायणा जाता चाप्यसवत्, अमीक्षणं २ पुनः पुनः हस्तौ ' धोवेइ ' धावति=प्रक्षालयति, पादौ धावति ' सीसं ' शीर्षं=शिरः धावति, मुखं धावति, ' थणंउराइं ' स्तनान्तराणि धावति ' कक्खंतराइं ' कक्षान्तराणि धावति, ' गोज्जंतगाइं ' गुह्यान्तराणि गुह्यप्रदेशं धावति, यत्र खलु ' ठाणं वा ' स्थानम्-उपवेशनार्थं स्थानं ' सेज्जं वा ' शय्यां वा ' निसीहियं वा ' नैषेधिकीं स्वाध्यायभूमिं वा ' चेएइ ' चेतयति-करोति, तत्रापि च खलु पूर्वमेवोदकेन ' अब्भुक्खइत्ता ' अभ्युक्ष्य=अभिपिच्य, ततः पश्चात् ' ठाणं वा ' स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा चेएइ ' चेतयति-करोति ।

जाया घावि होत्था-अभिक्षण २ हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीसं धोवेइ, मुहं धोवेइ, थणंतराइं धोवेइ, कक्खंतराइं धोवेइ, गोज्जंतराइं धोवेइ) वह सुकुमारिका आर्या शरीर संस्कार करने में भी तत्पर बन गई। चार २ वह होथ धोने लगी, पैर धोने लगी, शिर धोने लगी, मुख धोने लगी, स्तनान्तरों को धोने लगी, कक्षाओं को धोने लगी और गुह्य प्रदेश को धोने लगी। (जत्थ णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ तत्थ वि य णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खइत्ता तओ पच्छा ठाणं वा ३ चेएइ, तएणं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं एवं वयासी) इसी-तरह वह जहां अपना बैठने के लिये स्थान बनाती, शय्या-पाथरती, स्वाध्याय स्थान करती, वहां भी वह पहिले से ही उसे जल से सींच देती-तब जाकर वहां वह अपना स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय भूमि नियत करती। इस प्रकार की परिस्थिति देख कर गोपा-

होत्था-अभिक्षण २ हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीस धोवेइ, मुहं धोवेइ, थणंतराइं धोवेइ, कक्खंतराइं धोवेइ गोज्जंतराइं धोवेइ) ते सुकुमारिका आर्या शरीर-संस्कारना काममां परोवाठ गथ. वारंवार हाथ धोवा लागी, पग धोवा लागी, माथुं धोवा लागी, मुख धोवा लागी, स्तनोना वन्नेना स्थानने धोवा लागी, अगतोने धोवा लागी, अने शुभ स्थानोने धोवा लागी (जत्थणं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ तत्थ वि य णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खइत्ता तओ पच्छा ठाणं वा ३ चेएइ तए णं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं एवं वयासी) आ प्रभावे ७ ते न्यां पोतानुं भेसवानुं स्थान नक्की करती, के पथारी पाथरती अथवा तो स्वाध्याय भाटे भेसवानुं स्थान नक्की करती. त्यां पडेवेथी ७ ते स्थानने पाणी छांटती हुती अने त्थारपणी ते त्यां पोतानुं स्थान-शय्या अने स्वाध्याय स्थान नक्की करती हुती आ जतनी परिस्थिति जेठने गोपालिका आर्याओ ते

ततः खलु गोपालिका आर्याः सुकुमारिकामार्यामेवमवादिषुः एवं खलु हे देवानुप्रिये ! आर्ये ! वयं श्रमण्यः—तपस्विन्यः निर्ग्रन्थ्यः ब्राह्माभ्यन्तरग्रन्थि-
रहिताः ईर्यासमिता यावद् गुप्तब्रह्मचर्यधारिण्यः स्मः, नो खलु कल्पतेऽस्माकं
सरीरवाउसियाए ' शरीरबकुशिका ' होत्तए ' भवितुम् इति त्वं च खलु हे
आर्ये ! शरीरवाकुशिका जाता, अभीक्षणं=पुनः पुनरतिशयेन हस्तौ धावसि
=प्रक्षालयसि, यावत्—स्थान वा शय्यां वा स्वाध्यायभूमिं वा जलेनाभ्युक्ष्य
' चेएसि ' चेतयसि स्थानादिकं करोषीत्यर्थः । तत्=तस्मात् त्वं खलु हे देवानु-
प्रिये ! तत् स्थानम् ' आलोएहि ' आलोचय, स्वातिचारं प्रकाशयेत्यर्थः । यावत्
' पडिवज्जाहि ' प्रतिपद्यस्व=प्रायश्चित्तं स्वीकुरु ' इत्यर्थः । ततः खलु सा सुकु-

लिका आर्या ने उस सुकुमारिका आर्या से कहा—(एवं खलु देवाणुप्पि-
या ! अज्जे अम्हे समणीओ निग्गंथीओ ईरियासमियाओ जाव वंभचेर
धारिणिओ, नो खलु कप्पह अम्हं सरीरवाउसियाए होत्तए, तुमं च णं
अज्जे सरीरवाउसिया. अभिक्खणं २ हत्थे धोवेसि, जाव चेएसि)
हे देवानुप्रिये ! हम आर्याएँ निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ हैं । ईर्या आदि पाँच समि-
तियोंका पालन करती हैं । नौकोटि ब्रह्मचर्य सहितमहोव्रतको पालन
करती हैं । अतः हम लोगों को अपने शरीर के संस्कार करने में परा-
यण बनना कल्पित नहीं हैं । हे आर्ये ! तुम शरीर संस्कार करने में
परायण बन चुकी हो । बार २ तुम हाथों को धोती हो यावत् स्थान को
शय्या को, और स्वाध्याय भूमि को पहिले से ही पानीसे धोकर नियत
करती हो (तं तुमं णं देवाणुप्पिए ! तस्स ठाणस्स आलोएहि, जाव
पडिवज्जाहि) इस लिये हे देवानुप्रिये ! तुम उस स्थान की आलोचना
करो—अपने अतिचारों को प्रकाशित करो यावत् उनका प्रायश्चित्त लो ।

सुकुमारिका आर्याने आ प्रभाषे उल्लु के—(एव खलु देवाणुप्पिया । अज्जे अम्हे
समणीओ निग्गंथीओ ईरियासमियाओ जाव वंभचेरधारिणिओ नो खलु कप्पह
अम्हे सरीरवाउसियाए होत्तए, तुमं च णं अज्जे सरीरवाउमिया, अभिक्खण
२ हत्थे धोवेसि जाव चेएसि) हे देवानुप्रिये ! अमे आर्याओ निर्ग्रन्थ श्रम
णीओ छीओ, धर्या वगेरे पाय समित्तिओनुं अमे पालन करीओ छीओ, नव-
कौटिथी ब्रह्मचर्य महाव्रत धारण करीओ छीओ. ओधी पोताना शरीरने संस्कार
करवे ओ आपणा माटे योग्य गणाय नहि हे आर्ये ! तमे शरीरने संस्का-
रमां परायण णनी चूकी छे। तमे वारंवार छायेने धुओ छे यावत् स्थानने,
शय्याने अने स्वाध्यायभूमिने पडेवेथी न पाणीथी धोएने नछी करी ले। छे।
(तं तुमं णं देवाणुप्पिए ! तस्स ठाणस्स आलोएहि, जाव पडिवज्जाहि) ओधी

मारिका आर्या गोपालिकानामार्याणामेतमर्थं ' नो आढाइ ' नाद्रियते, नो परिजानीते तद्वचने ध्यानं न ददाति, । अनाद्रियमाणा=अनादरं कुर्वती, अपरिजानाना=ध्यानप्रददाना विहरति=आस्ते । ततः खलु ताः गोपालिका आर्याः सुकुमारिकामार्यामभीक्षणं=पुनः पुनरभिहीलन्ति खिसन्ति निन्दन्ति यावत् परिभवन्ति । अभीक्षणं=पुनः पुनः, ' एयमट्टं ' एतमर्थम् उक्तमर्थं शरीरशोभाकरण-जलप्रक्षेपादिकं नियारयन्ति=प्रतिषेधयन्ति । ततः खलु ' तीए ' तस्याः सुकुमारिकायाः श्रमणीभिर्निग्रन्थीभिः हील्यमानाया यावद् वार्यमाणाया अयमेतदूषः=वक्ष्यमाणस्वरूपः आध्यात्मिको यावन्मनोगतः संकल्पो-विचारःसमुदपद्यत=मादु-

(तएण सा सुमालिया गोवालियाणं अज्जाणं एयमट्टं नो आढाइ, नो परिजाणाइ, अणाढायमाणी, अपरिजाणमाणी, विहरइ) सुकुमारिका आर्या ने गोपालिका आर्या के इस कथन रूप अर्थ को आदर की दृष्टि से नहीं देखा, उनके वचनों पर उसने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इस तरह उनके वचनों का अनादर और उन पर ध्यान नहीं देती हुई वह रहने लगी (तएणं ताओ अज्जाओ सुमालियं अज्जं अभिक्खणं २ एयमट्टं निवारंति, तएणं तीसे सुमालियाए समणीहिं निग्गंथीहिं हीलिज्जमाणीए जाव वारिज्जमाणीए इमेयाह्वे अज्जत्थिए जाव समुप्पज्जित्था) इस के पश्चात् उन गोपालिका आर्या ने उस सुकुमारिका आर्या की बार २ अवहेलना की, उस पर वे गुस्सा भी हुई उसकी निंदा भी की यावत् उसका तिरस्कार भी किया। बार २ उसे शरीर की शोभा करने से और जल का स्निचन करने से रोका। तब उसे इस प्रकार का

डे देवानुप्रिये । तमे ते स्थाननी आलोचनता करे-पोताना अतिचारने प्रकाशित करे यावत् तेना भाटे प्रायश्चित्त करे (तएणं सा सुमालिया गोवालियाणं अज्जाणं एयमट्टं नो आढाइ, नो परिजाणाइ, अणाढायमाणी, अपरिजाणमाणी, विहरइ) सुकुमारिका आर्याओ गोपालिका आर्याना आ कथनइय अर्थने आदरनी दृष्टिथी जेथे नडि, तेमनां वचनेओ उपर तेणे कथं पणु विचार कर्यो नडि. आ रीते तेमना वचनेओ अनादर अने ते प्रत्ये वेदरकार थधने ते पोतानेओ वणत पसार करवा लागी. (तएणं ताओ अज्जाओ सुमालियं अज्जं अभिक्खणं २ एयमट्टं निवारंति, तएणं तीसे सुमालियाए समणीहिं निग्गंथीहिं हीलिज्जमाणीए जाव वारिज्जमाणीए इमेयाह्वे अज्जत्थिए जाव समुप्पज्जित्था) त्थारपथी ते गोपालिका आर्याओ ते सुकुमारिका आर्यानी वारंवार अवहेलना करी, तेनी तरइ तेमणे शुस्सेओ पणु पताव्येओ, तेनी निंदा करी यावत् तेना तिरस्कार पणु कर्यो. तेने वारंवार शरीरने शोभाववा पढल तेमओ वणतुं सिचन करवा पढल

भूतः, यदा=यावत् कालं खलु अहमगारवासमध्ये वसामि, तदा=तावत् कालं खल्वहं 'अप्पवसा' आत्मवशा स्वाधीना आसम्, यदा खल्वहं मुण्डा भूत्वा प्रव्रजिता तदा खल्वहं परवशा पराधीना जाता । 'पुण्वि' पुरा पूर्वस्मिन् काले च खलु 'ममं' मां श्रमण्यः 'आढायंति' २ आद्रियन्ते, तथा परिजानन्ति, इदानीं नो आद्रियन्ते नो परिजानन्ति, 'तं' तत्=तस्मात् श्रेयः खलु मम कलये प्रादुर्भूत प्रभातयां रजन्यां यावज्ज्वलति सूर्ये अभ्युद्गते गोपालिकानामार्याणामन्तिकत् प्रतिनिष्क्रम्य 'पाडिएक्कं' पार्थक्यं=पार्थक्याश्रयं पृथग्भूतम् अन्यमित्यर्थः 'उव-

यह आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—(जयाणं अम्हं आगारवासमज्झे वसामि तथाणं अहं अप्पवसा जयाणं अहं मुण्डे भवित्ता पव्वइया तथाणं अहं परवसा, पुण्वि च णं ममं समणीओ आढायंति, इयाणि णो आढंति २ तं सेयं खलु मम कल्लं पाउंगोवालियाणं अंतियाओ पडिनिक्खमित्ता पडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ) जब तक मैं घर में रही तब तक स्वाधीन रही—और अब जब से मुंडित होकर प्रव्रजित हुई हूँ तब से पराधीन बन रही हूँ । पहिले ये श्रमणियां मेरा आदर करती थीं—मेरी बात मानती थीं परन्तु अबतो कोई भी न मेरा आदर करती है—और न मेरी बात ही मानती है । इस लिये मुझे अब यही उचित होगा कि मैं दूसरे दिन जब प्रातः काल होने पर सूर्य प्रकाश से चमकने लगे—तब मैं गोपालिकों आर्याके पास से निकल कर किसी दूसरे भिन्न उपा-

देश टोड़ करी. त्पारे तेने आ नतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उद्भूतयो के (जयाणं अम्हं आगारवासमज्झे वसामि तथाणं अहं अप्पवसा जयाणं अहं मुण्डे भवित्ता पव्वइया तथाणं अहं परवसा पुण्वि च णं ममं समणीओ आढायंति, इयाणि णो आढंति २ तं सेयं खलु मम पाउ० गोवालियाणं अंतियाओ पडिनिक्खमित्ता पडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ) न्यां सुधी हुं घरमां रही त्यां सुधी स्वाधीन रही पणु न्यारथी मुंडित थधने प्रव्रजित थधं छुं त्पारथी पराधीन थधं गधं छुं पडेलां आ श्रमणीओ मारे आदर करती डती, मारी वात मानती डती पणु अत्पारे ते केडि पणु मारे आदर नथी करतुं अने मारी वात पणु मानतुं नथी. तेथी मारे माटे अे न उचित छे के भीरे दिवसे सवारे सूर्य उदय पाभतां न हुं गोपालिका आर्यानी पासैथी नीडणीने केडि भील उपाश्रये नती रहुं. आ नतने तेणे विचार कर्यो (संपेहित्ता) विचार करीने ते (कहंपा०

स्सयं' उपाश्रयम् उपसंपद्य विहर्तुमिति कृत्वा एवं संप्रेक्ष्य कल्पे प्रादुर्भूतमा-
तायां रजन्यां यावज्ज्वलति सूर्ये उदिते ति गोपालिकानामार्याणामन्तिकत्वात् प्रति-
निष्कामति, प्रतिनिष्कम्य ' पण्डिक्कं ' प्रार्थक्यं-पृथग्भूतमन्यमुपाश्रयमुपसंपद्य
खलु विहरति-आस्ते स्म ।

ततः खलु ता सुकुमारिका आर्या ' अणोहट्टिया ' अनप्यघट्टिका अपवारक-
रहिता-उच्छब्दस्वला अविनयवतीति यावत् ' अनिवारिया ' अनिवार्या दुर्निवारा
' सच्छंदमई ' स्वच्छन्दमतिः-चारित्रधर्मानुरोधरहितभावा, अभीक्ष्णं-पुनः पुन-
ईस्तौ धावति=प्रक्षालयति यावत्=स्थानं वा शय्यां वा नैषेधिकीं वा जलेनाभ्युक्ष्य
चेतयति=स्थानादिकं करोतीत्यर्थः। तत्रापि च खलु पार्श्वस्था, पार्श्वस्थविहारिणी,

श्रय मे चली जाऊँ इस प्रकार का उसने विचार किया (संपेहिस्ता)
ऐसा विचार करके (कल्लं पा० गोवालियाणं अज्जाणं) दूसरे ही दिन
प्रातः काल जब सूर्योदय हो गया-तब वह गोपालिका आर्या के (अंति-
याओ) पास से (पण्डिनिक्खमिस्ता) निकल कर (पण्डिक्कं) भिन्न
दूसरे (उवस्सयं) उपाश्रय को (उवसंपज्जित्ताणं विहरइ) प्राप्तकर
वहाँ रहने लगी-अर्थात् दूसरे उपाश्रय में चली आई। (तएणं सा
सूमालिया अज्जा अणोहट्टिया अनिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं
अभिक्खणं हत्थे धोवेइ जाव चेएइ) वहाँ वह सुकुमारिका आर्या बिना
किसी रोक टोक के स्वच्छंद बनकर रहने लग गई। वहाँ उसे कोई
रोकने वाला रहा नहीं-सो जो मन में आया वह करने लग गई-इस
तरह वह चारित्र धर्म के भाव से रहित बन गई। बार २ अपने हाथों
को धोती यावत् स्थान, शय्या, और स्वाध्याय की भूमि को धोकर वहाँ

गोवालियाणं अज्जाणं) थीने द्विसे सपारे न्यारे सूर्य उदय पाभ्ये। त्पारे ते
गोपालिका आर्यानी (अंतियाओ) पासैथी (पण्डिनिक्खमिस्ता) नीकणीने (पण्डिक्कं)
थीण (उवस्सयं) उपाश्रयने (उवसंपज्जित्ताणं विहरइ) भेणवीने त्यां रडेवा
लागी, ओटवे डे थीण उपाश्रयमां नती रडी। (त एणं सा सूमालिया अज्जा
अणोहट्टिया अनिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं हत्थे धोवेइ जाव चेएइ) त्यां
ते सुकुमारिका आर्या डेअपणु नतनी रोक टोक वगर स्वच्छंतांपूर्वक रडेवा
लागी। त्यां तेने डेअ रोक-टोक करनार डतुं नडि ओटवे ने प्रभाणे तेनी
धच्छा थती ते प्रभाणे न ते आचरती डती। आ रीते ते चारित्र धर्माना
भावथी रहित थनी गध. वारंवार ते पोताना डायोने धोती डती यावत् स्थान,
पथारी अने स्वाध्यायना स्थानने धोथने त्यां पोतानु स्थान नक्की करती डती।

अवसन्ना, अवसन्नविहारिणी, कुशीला कुशीलविहारिणी, संसक्ता, संसक्तविहारिणी, बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयति, पालयित्वा अर्धमासिकया संलेखनया तस्य स्थानस्याऽनालोचिता अप्रतिक्रान्ता कालमासे कालं कृत्वा, ईशाने कल्पेऽन्यतमस्मिन् विमाने माथुर्यादि वाचना ये आचार्याणां विमानसंख्याया विस्मरणेन निश्चयाभावादन्यतमस्मिन्नित्युक्तम्, देवगणिकतया उपपन्ना । तत्रैकैकासां देवीनां नवपल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ॥ सू० १५ ॥

अपना स्थान नियत करती । इस प्रकार (तत्थ वि य णं पासत्था पासत्थ विहारी, ओसण्णा ओसण्णविहारी कुशीलार संसत्तार बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउण्ह) वहां उस सुकुमारिका ने पार्श्वस्था पार्श्वस्थ विहारिणी, अवसन्ना, अवसन्न विहारिणी, कुशीला, कुशील विहारिणी, संसक्ता, संसक्त विहारिणी बनक अनेक वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया (पाउणित्ता अद्ध सियाए) पालन करके वह अर्धमास की संलेखना धारण कर (कालमासे) अपनी मृत्यु के अवसर (कालं किच्चा) पर मरी-सो भरकर (अणालोह्य अपडिक्कंता) अपने पापों की अनालोचना करने से वह प्रतिक्रान्त नहीं बन सकने के कारण (ईसाणे कल्पे) ईशानकल्प में (अण्णयरंसि विमाणंसि) किसी एक विमान में (देवगणियत्ताए उववण्णा) देवगणिका के रूप में उत्पन्न हुई । (तत्थेगइयाणं देवीणं नवपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थणं सूमालियाए देवीए नव पलिओवमाइं ठिइ पण्णत्ता) वहां कितनिक देवियों

आ रीते (तत्थ वि य णं पासत्था पासत्थविहारी ओसण्णा ओसण्णविहारी कुशीलाऽसंसक्ता २ बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउण्ह) त्यां ते सुकुमारिकाये पार्श्वस्था, पार्श्वस्थ विहारिणी, अवसन्ना, अवसन्न विहारिणी, कुशीला, कुशील विहारिणी, संसक्ता, संसक्त विहारिणी थधने धण्णां वर्षो सुधी श्रामण्य पर्यायत्तु पालन कथुं. (पाउणित्ता अद्धमासियाए) पालन करीने ते अर्धमासिकनी संलेखना धारण करीने (कालमासे) पोताना मृत्यु काणे (कालं किच्चा) ते भरणु पाभी. अने भरणु पाभीने (अणालोह्य अपडिक्कंता) पोताना पापोनी आलोचना न करवाथी प्रतिक्रान्त न थनी शकवाना कारणे ते (ईसाणे कल्पे) ईशान कल्पमां (अण्णयरंसि विमाणंसि) केई एक विमानमां (देवगणियत्ताए उववण्णा) देवगणिकाना रूपमां उत्पन्न पाभी. (तत्थे गइयाणं देवीणं नवपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थणं सूमालियाए देवीए नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता) त्यां केटलीक देवीओनी स्थिति नव पल्योपननी कडे-

मूळम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्वीवे भारहे वासे पंचालेसु जणवएसु कंपिल्लपुरे नामं नयरे होत्था, वन्नओ तत्थ णं दुवए नामं राथा होत्था, वन्नओ, तस्स णं चुलणीदेवी धट्टज्जुणे कुमारे जुवराथा, तएणं सा सूमालियादेवी ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं जाव चइत्ता इहेव जंबुद्वीवे द्वीवे भारहे वासे पंचालेसु जणवएसु कंपिल्लपुरे नयरे दुपयस्स रण्णो चुलणीए देवीए कुच्चिसि दारियत्ताए पच्चायाया, तएणं सा चुलणीदेवी नवण्हं मासाणं जाव दारियं पयाया, तएणं सा तीसे दारियाए निठ्वत्तवारसाहियाए इमं एयारूवं गोणं गुणणिप्फणं नामधेज्जं जम्हाणं एस दारिया दुवयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया तं होउ णं अरूहं इमीसे दारियाए नामधिज्जे दोवई, तएणं तीसे अम्मापियरो इमं एयारूवं गुणं गुणनिप्फणं नामधेज्जं करिंति दोवई, तएणं सा दोवई दारिया पंच धाइपरिग्गाहिया जाव गिरिकंदरमल्लीण इव चंपगलया निवाय-

की स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है—सो इस सुकुमारिकादेवी की वहां नौ पल्योपम की स्थिति हुई। यहां जो " किसी एक विमान में " ऐसा अनिश्चयात्मक पद आया है उसका तात्पर्य यह है कि माधुर्यादि-वाचना के समय में आचार्यों को विमान संख्या का विस्मरण हो जाने से उसका निश्चय नहीं रहा। अतः ऐसा कहा गया है ॥ सू० १५ ॥

वामा आवी छे तो ते सुकुमारिका देवीनी पणु त्यां नवपट्योपमनी स्थिति अर्थः अर्धी ने " कोठि अेक विमानमां " आ जतनुं अनिश्चयात्मक पद आव्युं छे तेनुं कारणु आ प्रभाणु छे के माधुर्यादि वाचनाना समये आचार्येनि विमान संख्यानु विस्मरणु थध ज्वाथी ते विषे निश्चय रह्यो नडि. अथी 'आ प्रभाणु छडेवामां आव्युं छे. ॥ सूत्र १५ ॥

निन्वाघायंसि सुहंसुहेणं परिवड्डइ । तएणं सा दोवई रायवरकन्ना
उम्मुक्कवालभावा जाव उक्किट्टसरीरा जाया जावि होत्था, तएणं
तं दोवइं रायवरकन्नं अण्णया कयाई अंतेउरियाओ णहायं
जाव विभूसियं करेति करित्ता दुवयस्स रण्णोपाएवंदिउं पेसंति
तएणं सा दोवइं राय० जेणेव राया तेणेव उवागच्छइ उवा-
गच्छित्ता दुवयस्स रण्णो पायग्गहणं करेइ, तएणं से दुवए
राया दोवइं दारियं अंके निवेसेइ निवेसित्ता दोवइए रायवर-
कन्नाए ह्वेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जायविम्हए दोवइं
रायवरकन्नं एवं वयासी-जस्स णं अहं पुत्ता ! रायस्स वा जुवरायस्स
वा भारियत्ताए सयमेव दलइस्सामि तत्थ णं तुमं सुहिया वा
दुक्खिया वा भविज्जासि, तएणं मम जावजीवाए हियथडाहे
भविस्सइ, तं णं अहं तव पुत्ता ! अज्जयाए सयंवरं विरयामि,
अज्जयाए णं तुमं दिण्णसयंवरा जण्णं तुमं सयमेव रायं वा
जुवरायं वा वरेहिसि से णं तव भत्तारे भविस्सइ त्तिकट्टु ताहिं
इट्टाहिं जाव आसासेइ आसासित्ता षडिविसज्जेइ ॥ सू० १६ ॥

टीका—‘ तेणं कालेणं ’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहेव
जम्बूद्वीपे भारते वर्षे पञ्चालेषु जनपदेषु काम्पिल्यपुरं=काम्पिल्यपुरनामकं नगर-

‘ तेणं कालेणं तेणं समएणं ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस
समय में (इहेव जंबुद्वीपे भारते वासे पंचालेषु जनपदेषु कंपिलपुरे नामं
नगरे होत्था) इसी जंबूद्वीप में भारत वर्ष में पांचाल जनपद में

तेणं कालेणं तेणं समएणं इत्यादि—

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले अने ते समये (इहेव जंबुद्वीपे
भारतवासे पंचालेषु जनपदेषु कंपिलपुरे नामं नगरे होत्था) आ जंबूद्वीपमां
भारत वर्षमां पांचाल जनपदमां कम्पिल्यपुर नामे नगर इतुं. (वज्रओ) आ
नगरनुं वरुणं औपपातिक सूत्रमां करवामां आण्युं छे त्यांथी पाठकेअे जाणी

मासीत्, वर्णकः=अस्य नगरस्य वर्णनमौपपातिकसूत्राद् बोध्यम् । तत्र खलु द्रुपदो नाम राजाऽऽसीत्, चुलनी नाम्नी देवी भार्याऽभवत्, तस्य पुत्रः 'धट्ट-ज्जुणे' धृष्टद्युम्नो नाम कुमारो युवराजोऽभवत् ।

ततः खलु सा सुकुमारिका देवी तस्माद् देवलोकादायुःक्षयेण यावत्-च्युत्वा इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे पंचालेषु जनपदेषु काम्पिल्यपुरे नगरे द्रुपदस्य राज्ञः=चुलन्या देव्याः कुक्षौ दारिकतया=पुत्रीत्वेन 'पञ्चायाया' प्रत्या याता=समुत्पन्ना । ततः खलु सा चुलनीदेवी नवानां मासानां बहुप्रतिपूर्णानां यावद् दारिकां पुर्वीं प्रजाता=प्रजनितवती । ततः खलु सा तस्यां दारिकाया

काम्पिल्यपुर नाम का नगर था । (वन्नओ) इस नगर का वर्णन औप-पातिक सूत्र में किया गया है सो वहाँ से जान लेना चाहिये । (तत्थ णं दुवए नामं राया होत्था वन्नओ तस्स णं चुलणीदेवी, धट्टज्जुणे कुमारे जुवराया, तएणं सा सुमालिया देवी ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं जाव चइत्ता इहेव जंबुद्वीवे दीवे, भारहे वासे पंचालेषु जणवएसु कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो चुलणीए देवीए कुच्छिसि दारियत्ताए पञ्चायाया) वहाँके राजाका नाम द्रुपद था । राजाका वर्णन भी पहिले जैसा ही जानना चाहिये । इस की रानी का नाम चुलनीदेवी था । कुमार का नाम धृष्टद्युम्न था—यह युवराज था । वह सुकुमारिका आर्या का जीव उस दूसरे ईशान देवलोक से आयु आदि क्षय हो जाने के कारण चक्कर इसी जंबूद्वीप नाम के द्वीप में भरत क्षेत्र में, पांचाल जनपद में काम्पिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की चुलनीदेवी की कुक्षि में पुत्री रूपसे अवतरित हुआ । (तएणं सा चुलणीदेवी नवणहं मासाणं जाव

देवुं नेधये. (तत्थ णं दुवए नामं राया होत्था, वन्नओ, तस्सणं चुलणी देवी धट्टज्जुणे कुमारे, जुवराया, तएणं सा सुमालिया देवी ताओ देवलोयाओ आ उक्खएणं जाव चइत्ता इहेव जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे पंचालेषु जणवएसु कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो चुलणीए देवीए कुच्छिसि दारियत्ताए पञ्चायाया) त्यांना राळतुं नाम द्रुपद इतुं राळतुं वर्षेन पणु औपपातिक सूत्रमां वणितं ओणिक राळनी नेमळ ळाणी देवुं नेधये तेनी राणीतुं नाम चुलनी देवी इतुं. तेना पुत्रतुं नाम धृष्टद्युम्न इतुं. धृष्टद्युम्न युवराज इतो, सुकुमारिका आर्याना एव ते ळीळ देवलोकाथी आयु वगेरे क्षय थवा णटल यवीने आळ ळपूद्वीप नामना द्वीपमां, भरत क्षेत्रमां, पांचाल्य जनपदमां, काम्पिल्यपुर नगरमां द्रुपद राळनी चुलनी देवीना उदरमां पुत्री रूपे अवतरित थये. (त एणं सा चुलणी

‘ निव्वत्तवारसाहियाए ’ निव्वत्तद्वादशाहिकायां=द्वादशेऽहनि संप्राप्ते इदमेतद्रूपं नाम कृतवती यस्मात् खलु एषा दारिका द्रुपदस्य राज्ञो ‘ धूया ’ दुहिता-पुत्री चुलन्या देव्या ‘ अत्तिया ’ आत्मजा=अङ्गजाता, तस्माद् भवतु खल्वस्माकमस्या दारिकाया नामधेयं ‘ द्रौपदी ’ इति । ततः खलु तस्या अम्बापितरौ इममेतद्रूपं गोणं=गुणप्राप्तं गुणनिष्पन्नं=गुणसंपन्नं, नामधेयं कुरुतः । ततः सा द्रौपदी दारिका पञ्चधात्रीभिर्यावद् गिरिकन्दरमालीने चम्पकलता निर्वातनिर्व्याघाते सुखं-सुखेन परिवर्धते स्म ।

दारियं पयाया तएणं सा तीसे दारियाए निव्वत्तवारसाहियाए इमं एया रूवं गोणं गुणनिष्पण्णं नामधेज्जं जम्हाणं एस दारिया दुवयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया तं होउणं-अम्हं इमीसे दारियाए नामधिज्जे दोवई) गर्भ के जब नौ मास अच्छी तरह समाप्त हो चुके तब चुलनी-देवी ने एक पुत्री को जन्म दिया । पुत्री को उत्पन्न हुए १२ वां दिन लगा-तब चुलनी माताने उसका इस रूप से गुणनिष्पन्न नामरक्खा क्यों कि यह द्रुपदराजा की पुत्री है और मुझ चुलनी के उदर से उत्पन्न हुई है-इसलिये इस हमारी कन्या को नाम द्रुपदी रहो इस तरह के विचार से (तीसे अम्मा पियरो) माता पिता ने उसका (इमं एयारूवं गुणं गुणनिष्पण्णं नामधेज्जं करिति दोवई) इस तरह का गुणनिष्पन्न नाम द्रौपदी रख दिया । (तएणं) इसके बाद-(सा दोवई दारिया पंचधाह परिग्गहिया जाव गिरिकंदरमल्लीणइव चंपगलया निवायनिव्वाघायंसि सुहं सुहेणं परिवड्ढेइ) वह द्रौपदी दारिका पांच धायघाताओं से युक्त

देवी नवण्हं मास्राणं जाव दारियं पयाया तएणं सा तीसे दारियाए निव्वत्तवारसाहियाए इमं एयारूवं गोणं गुणनिष्पण्णं नामधेज्जं जम्माणं एस दारिया दुवयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया तं होउणं अम्हं इमीसे दारियाए नामधिज्जे दोवई) गर्भना नवमास न्यारे संपूर्णपण्णे समाप्त थया त्यारे चुलनी देवीये येक पुत्रीने जन्म आय्थो. पुत्रीना जन्म पथी न्यारे अगि-यार द्विस पूरा थया अने गारमो द्विस शइ थयो त्यारे चुलनी माताये विचार कथो के द्रुपद राजनी आ कन्यापुत्री छे अने भारा गर्भथी जन्म पायी छे, आ प्रभाण्णे आनुं नाम द्रौपदी राभीये तो साइं आम विचारीने (तीसे अम्मापियरो) मातापिताये (इमं एयारूवं गुणं गुणनिष्पण्णं नाम धेज्जं करिति दोवई) आ रीते ते कन्यानुं शुष्प निष्पन्न नाम द्रौपदी पाउथुं (तएणं) त्यारपथी (सा दोवई दारिया पंचधाहपरिग्गहिया जाव गिरिकंदर मल्लीण इव चंपगलया निवायनिव्वाघायंसि सुहं सुहेणं परिवड्ढेइ) द्रौपदी

ततः खलु सा द्रौपदी राजवरकन्या उन्मुक्तबालभावा यावद् उत्कृष्टा, उत्कृष्ट-
शरीरा जाता चाप्यभवत् । ततः खलु तां द्रौपदीं राजवरकन्यामन्यदा कदाचिद्
' अंते उरियाओ ' आन्तः पुरिक्य.=अन्तः पुरवर्तिन्यः स्त्रियः स्नातां यावत्-वह्ना-
कंकारविभूषितां कुर्वन्ति कृत्वा द्रुपदस्य राज्ञः पादौ वन्दितुं ' पेसंति ' प्रेषयन्ति,
ततः खलु सा द्रौपदी राजवरकन्या यत्रैव द्रुपदो राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य
द्रुपदस्य राज्ञः पादग्रहणं करोति, ततः खलु स द्रुपदो राजा द्रौपदीं दारिकामङ्के

होकर इस तरह पलने पुषने लगी कि जिस तरह गिरि की कंदरा के
प्रदेशमें उत्पन्न हुई चंपकलता वात रहित निरुपद्रव स्थानमें आनन्द के
साथ पलती पुषती है । (तएणं सा दोवई रायवरकन्ना उन्मुक्कबाल-
भावा, जाव उक्किट्टसरीरा जाया यावि होत्था, तएणं तं दोवई रायव-
रकन्नं अण्णया कयाई अंते उरियाओ ण्हायं जाव विभूसियं करेति,
करित्ता दुवयस्स रण्णो पाए वंदिउं पेसंति) वह राजवर कन्या द्रौपदी
बालभाव रहित होकर जब यौवन अवस्था वाली हो चुकी तब इस के
शरीर में लावण्य की चमक से विषय सौन्दर्य आ गया-अतः उस समय
यह विशेषरूप से उत्कृष्ट शरीर वाली बन गई । किसी एक दिन की बात
है कि अंतः पुर की स्त्रियों ने द्रौपदी को स्नान कराकर यावत् वस्त्रालं-
कार से विभूषित किया-और विभूषित कर के द्रुपद राजा की चरण
वंदना करने के लिये भेज दिया (तएणं सा दोवई राय० जेणेव दुवए
राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, दुवयस्स रण्णो पायग्गहणं करेइ,

दारिका पांथ धायमाताओथा युक्त थधने आ प्रभाणु लादित पादित थवा
भाडी जेमके पर्वतनी कंदराना प्रदेशमां उत्पन्न थथेदी चंपकलता निर्वात,
निरुपद्रव स्थानमां सुणेथी भाडी थती न डोय ! (तएणं सा दोवई रायवर-
कन्ना उन्मुक्कबालभावा जाव उक्किट्टसरीरा जाया यावि होत्था, तएणं तं दोवई
रायवरकन्नं अण्णया कयाई अंते उरियाओ ण्हायं जाव विभूसियं करेति करित्ता
दुवयस्स रण्णो पाए वंदिउं पेसंति) ते राजवर कन्या, द्रौपदी अथपणु वटावीने
न्यारे युवावस्था संपन्न थर्ध गधं त्यारे तेना शरीरमां लावण्यना अमकथी
सविशेष सौंदर्य दीपी उठ्युं. तेथी ते वअते ते विशेष इपथी उत्कृष्ट शरीर-
वाणी थध गधं डती. डोय ओक हिवसनी वात छे के रणुवासनी स्त्रीओओ द्रौप-
दीने स्नान कराओयुं यावत् वस्त्रालंकारेथी विभूषित करी अने विभूषित करीने
द्रुपद राजनी अरणु वंदिउं करवा भाटे भेडकी (तएणं सा दोवई राय० जेणेव
दुवए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, दुवयस्स रण्णो पायग्गहणं करेइ, तएणं

निवेशयति, निवेश्य द्रौपद्या राजवरकन्यायां रूपेण च यौवनेन च लावण्येन च 'जायविम्हए' जातविस्मयः=आश्चर्यं प्राप्तः स द्रुपदो द्रौपदीं राजवरकन्यामेवमवादीत्—हे पुत्रि ! यस्य खलु अहं राज्ञो वा युवराजस्य वा भार्यात्वेन स्वयमेव दास्यामि, तत्र खलु त्वं सुखिता वा दुःखिता वा भविष्यसि, ततः खलु मम 'जाव जीवाए' यावज्जीवं 'हिययडाहे' हृदयदाहः—मनोदुःखं भविष्यति ।

तएणं स्ये दुवए राया दोवइं दारियं अंके निवेशेइ, निवेशित्ता, दोवईए रायवरकन्नाए रूपेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जायविम्हए दोवइं, रायवरकन्नं एवं वयासी) सो वह राजवर कन्या द्रौपदी जहां द्रुपद राजा था वहां आई । वहां आकर उसने वंदना करने के लिये द्रुपद राजा के ज्योंही दोनों पैरों को पकड़ा कि इतने में उस द्रुपद राजाने उस द्रौपदी दारिका को अपनी गोदमें बैठा लिया । द्रौपदी के बैठते ही वह राजा उस राजवर कन्या द्रौपदी के रूप, यौवन और लावण्य से विशेष विस्मित हुआ—सो विस्मित होकर उसने उस राजवर कन्या द्रौपदी से इस प्रकार कहा—(जस्स णं अहं पुत्ता ! रायस्स वा जुवरायस्स वा भारियत्ताए सयमेव दलइस्सामि, तत्थ णं तुमं सुहिया वा दुक्खिया वा भविज्जासि तएणं मम जाव जीवाए हिययडाहे भविस्सइ) हे पुत्रि ! मैं स्वयं तुम्हें जिस राजा को, अथवा युवराज को भार्या के रूप में दूँगा वहां तुम सुखी और दुःखी दोनों भी हो सकती हो । तो इससे कुछे यावज्जीव हृदय दाह—मानसिक दुःख रहेगा । (तं णं अहं पुत्ता !

से दुवए राया दोवइं दारियं अंके निवेशेइ, निवेशित्ता, दोवईए रायवरकन्नाए रूपेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य जायविम्हए दोवइं रायवरकन्नं एवं वयासी) ते राजवर कन्या द्रौपदी न्यां राज्ञे द्रुपद इति त्वां गच्छ. त्वां जघने तेज्जु द्रुपद राजाने वंदन करवा भाटे अने पगे। पकडया त्वारे तेज्जोअे द्रौपदी दारि-काने पोताना जोगामां भेसाडी द्रौपदी न्यारे जोगामां भेसी गच्छ त्वारे राज ते राजवर कन्या द्रौपदीना इय, यौवन अने लावण्यथी सविशेष विस्मित थये। अने विस्मित थधने तेज्जु ते राजवर कन्या द्रौपदीने आ प्रभाजे कथ्थु— (जस्स णं अहं पुत्ता ! रायस्स वा जुवरायस्स वा भारियत्ताए सयमेव दलइस्सामि, तत्थणं तुमं सुहिया वा दुक्खिया वा भविज्जासि तएणं मम जाव जीवाए हिययडाहे भविस्सइ) हे पुत्रि ! तु तने जे राजने के युवराजने लार्याना इयमां आपीश त्वां तु सुभी पण्ण थध शके तेस छे अने दुःभी पण्ण. तेथी भने

=तत्तस्मात् खल्वहं हे पुत्रि ! तव ' अज्जयाए ' अद्यतया-एषु दिवसेषु अल्पेषु दिनेषु इत्यर्थः स्वयंवरं वरयामि-कारयामि अद्यतया स्वल्पदिवसेष्वेव खलु त्वं ' दिण्णसयंवरः ' दत्तस्वयंवरा=त्रियते इति वरः, कन्यया स्वयं दत्तः स्वयंवरः, स दत्तः कन्यायाः पित्रादिना यस्यै सा दत्तस्वयंवरा भविष्यतीति भावः । ' दत्तस्वयंवरा ' इत्तिपदं व्याचक्ष्ण कथयति-' जणं तुमं ' इत्यादि । यं खलु त्वं स्वयमेव राजानं वा युवराजं वा वरिष्यसि, स खलु तव भर्ता भविष्यति ' इति कृत्वा=इत्युक्त्वा ताभिरिष्टाभिर्यावद्=वाग्भिराश्वासयति, आश्वास्य प्रतिविसर्जयति ॥ सू० १६ ॥

मूलम्-तएणं से हुवए राया दूयं सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिथा ! बारवइं नयरिं तत्थ णं तुमं कण्हं वासुदेवं समुद्विजयपामोक्खे दस दसारे बलदेव-पामुक्खे पंचमहावीरे उग्गसेणपामोक्खे सोलसरायसहस्से पज्जुणपामुक्खाओ अद्घुट्ठाओ कुमारकोडीओ संबपामोक्खाओ

अज्जयाए सयंवरं विरयामि, अज्जयाए णं तुमं दिण्ण सयंवरा जणं तुमं सयमेव रायं वा जुवरायं वा वरेहिसि से णं तव भत्तारे भविस्सइ त्ति कद्दु ताहिं इट्ठाहिं जाव आसासेइ, असासित्ता पडिविसज्जेइ) इस लिये हे पुत्रि ! मैं थोड़े ही दिनों मैं तुम्हारा स्वयंवर करवाने वाला हूँ । तुम इन दिनों मैं दत्तस्वयंवरा हो जाओगी, सो तुम जिस राजाको या युवराज को अपनी इच्छानुसार वरोगी वही तेरा भर्ता बन जायगा । इस तरह कहकर राजा ने अपनी पुत्री को इष्ट आदि विशेषणों वाली वाणी से आश्वासित किया और फिर आश्वासित करके उसे वहाँ से भेज दिया ॥ सू० १६ ॥

एवमपर्यन्तं दुःखं तथा करशे. (तं णं अहं पुत्ता ! अज्जयाए सयंवरं विरयामि, अज्जयाए णं तुमं दिण्णसयंवरा जणं तुमं सयमेव रायं वा जुवराय वा वरेहिसी से णं तव भत्तारे भविस्सइ, त्ति कद्दु ताहिं इट्ठाहिं जाव आसासेइ आसासित्ता पडिविसज्जेइ) हे पुत्रि ! थोड़ा दिवसोभां न् दु तमारा भाटे स्वयंवर करवाने छुं. त्पारे तु स्वयंवरभां दत्त स्वयंवरा थर्ष न्शे. न् राजा के युवराजने तु तारी पसंङ्गी आपशे तेन तारे पति थशे. आ प्रभाषे कहीने राजाये पोतानी पुत्रीने छष्ट वगेरे विशेषणोधी युक्त वचने। वडे आश्वासनधी आश्वासित करीने तेने त्यांथी विदाय करी ॥ सूत्र १६ ॥

सडि दुहंतसाहस्सीओ वीरसेणपामोकखाओ इक्कवीसं वीरपुरिस-
साहस्सीओ महसेणपामोकखाओ छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ
अन्ने य वहवे राईसरतलवरमाडंबियकोडुंबियइब्भसिट्टिसेणा-
वइसत्थवाहपभिइओ करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं
अंजलिं सत्थए कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेहि वद्धावित्ता एवं
वयाहि—एवं खलु देवाणुप्पिया ! कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स
रणो धूयाए चुल्लणीए देवीए अत्तयाए धट्टुज्जुणकुमारस्स
भगिणीए दोवईए रायवरकण्णाए खयंवरं भविस्सइ तं णं
तुब्भे देवाणुप्पिया ! दुवयं रायं अणुगिण्हेमाणा अकालपरि-
हीणं चैव कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह, तएणं से दूए करयल
जाव कट्टु दुवयस्स रणो एयमट्टुं पडिसुणेति पडिसुणित्ता
जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता कोडुंबियपुरिसे
सदावेइ सहावित्ता एवं वयासी—खिप्पाभेव भो देवाणुप्पिया !
चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्टुवेह जाव उवट्टुवेति, उवट्टुवित्ता
तएणं से दूए पहाए जाव अलंकार० सरीरे चाउग्घंटं आसरहं
दुरुहइ दुरुहित्ता बहूहिं पुरिसेहिं सन्नद्ध जाव गहियाऽऽउह पह-
रणेहिं सद्धिं संपरिवुडे कंपिल्लपुरं नयरं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ
पंचालजणवयस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव देसपंपते तेणेव उवाग-
च्छइ, सुरट्टाजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव वारवइ नयरी तेणेव
उवागच्छइ उवागच्छित्ता वारवइं नयरिं मज्झं मज्झेणं अणुप-
विसइ अणुपविसित्ता जेणेव कणहस्स वासुदेवस्स वाहिरिया

उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता चाउघंटं आस-
 रहं ठवेइ ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता मणुस्सवग्गु-
 रापरिक्खित्ते पायविहारचारेणं जेणेव कणहे वासुदेवे तेणेव
 उवागच्छइ उवागच्छित्ता कणहे वासुदेवे समुद्विजयपामुक्खे
 य दस दसारे जाव बलवगसाहस्सीओ करयल तं चेव जाव
 समोसरह । तएणं से कणहे वासुदेवे तस्स दूयस्स अंतिए
 एयमद्वं सोच्चा निसम्म हट्ट जाव हियएतं दूयं सक्को इ सम्मा-
 णेइ सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ ॥ सू० १७ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं स दुपदो राजा दूत शब्द-
 यति, शब्दयित्वा एयमवादीत्-गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिय । द्वारवतीं=द्वारकां
 नगरीम्, तत्र खलु त्वं कृष्णं वासुदेवं, समुद्रविजयप्रमुखान् दश दशार्हान्, बलदेव-
 प्रमुखान् पञ्च महावीरान्, उग्रसेनप्रमुखान् षोडश राजसहस्राणि, प्रद्युम्नप्रमुखाः
 अर्धचतुर्थीः कुमारकोटीः=प्रद्युम्नप्रमुखान् सार्धत्रिकोटिराजकुमारान्, साम्बप्रमुखाः
 पण्डितदुर्दान्तसाहस्रीः=साम्बप्रमुखान् पण्डितसहस्रदुर्दान्तान्, वीरसेनप्रमुखान् एक
 विंशतिवीरपुरुषसाहस्रीः=वीरसेनप्रमुखान् एकविंशतिसहस्रवीरपुरुषान्, महासेन

‘ तएणं से दुवए ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ-(तएणं से दुवए राया दूयं सहावेह, सहावित्ता एवं वयासी
 गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया ! वारवइ नयरिं-तत्थणं तुमं कणहं वासुदेवं समु-
 द्द्विजय पामोक्खे दसदसारे बलदेव पामोक्खे पंच महावीरे उगसेन पामो-
 क्खे सोलसरायसहस्से पज्जुण्णपामोक्खाओ अद्दुट्ठाओ कुमारकोडीओ
 संचपामोक्खाओ सट्ठि दुदंत साहस्सीओ वीरसेन पामोक्खाओ इक्कवीसं

‘ तएणं से दुवए ’ इत्यादि—

टीकार्थ-(तएणं से दुवए राया दूयं सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी-गच्छ णं
 तुमं देवाणुप्पिया ! वारवइं नयरिं-तत्थणं तुमं कणहं वासुदेवंसमुद्विजयपामोक्खे
 दसदसारे बलदेवपामोक्खे पंच महावीरे उगसेनपामोक्खे सोलसरायसहस्से पज्जुण्ण-
 पामोक्खाओ अद्दुट्ठाओ कुमारकोडीओ सत्रपामोक्खाओ सट्ठि दुदंत साहस्सीओ वीर-
 सेन पामोक्खाओ इक्कवीसं वीरपुरिससाहस्सीओ महसेनपामोक्खाओ छप्पनं बलव-

प्रमुखाः पट्टपञ्चाशत् बलवत्साहस्रीः=महासेनप्रमुखान् पट्टपञ्चाशत्सहस्रप्रमितबल-
वतो राज्ञः, अन्यांश्च बहून् राजेश्वरतलवरमाडंबिककौटुम्बिकेभ्यश्रेष्ठिसेनापति सार्थ-
वहप्रभृतीन् करतलपरिगृहीतं दशनखं शिर आवर्तमञ्जलिं मस्तके कृत्वा जयेन विज-
येन=जयविजयशब्देन 'वद्धावेहि' वर्धय=अभिनन्दय वर्धयित्वा एव ब्रूहि-हे
देवानुप्रियाः ! एवं खलु काम्पिल्यपुरे नगरे द्रुपस्य राज्ञो दुहितुः=पुत्र्या, चुलन्या
देव्या आत्मजायाः धृष्टद्युम्नकुमारस्य भगिन्याः, द्रौपद्या राजवरकन्यकाया स्वयं-

वीर पुरिससाहस्सीभो महासेनपामोक्त्वाओ छप्पन्नं बलवगसाहस्सी
ओ अन्नेय बहवे राई सरतलवरमाडंबियकोडुंबियइवभसेट्टिसेणावह
सत्थवाहपभिइओ करयलपरिगहियं दसनहं सिरसावत्तं अंजलिं
मत्थए कद्दट्टु जएणं विजएणं वद्धावेहि वद्धावित्ता एवं वयाहि) इस
द्रुपद राजाने अपने एक दूत को बुलाया और बुलाकर उससे ऐसा
कहा-देवानुप्रिय ! तुम द्वारका नगरीको जाओ वहा तुम कृष्ण वासुदेव
को, समुद्र विजय प्रमुख दश दशार्हो को, बलदेव प्रमुख पांच महावीरों
को, उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजाओं को प्रद्युम्न प्रमुख ३॥)
साठे तीन करोड़ राजकुमारों को ६० हजार दुर्दान्त साम्ब प्रमुखों
को २१ हजार वीरसेन प्रमुख वीरों को ५६ हजार महासेन प्रमुख
बलिष्ठ राजाओं को, तथा और भी अनेक राजेश्वर तलवर, माडंबिक,
कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदिकों को दोनों अपने
हाथों की दशनखों वाली अजलि बनाकर और उसे मस्तक से घुमाकर
नमस्कार करना तथा "जय विजय" शब्दोच्चारण करते हुए उन्हें
बधाई देना-उनका अभिनन्दन करना। बधाई देकरके फिर उन से ऐसा

गसाहस्सीभो अन्नेय बहवे राईसरतलवरमाडंबियकोडुंबियइवभसेट्टिसेणावइसत्थवाह
पभिइओ करयल परिगहियं दसनहं सिरसावत्तं अंजलि मत्थए कद्दट्टु जएणं विज-
एणं वद्धावेहि, वद्धावित्ता एवं वयाहि) त्थारपथी द्रुपद राज्ञे पोताना ओड
इतने ओलाओ। अने ओलावीने तेने क्खुं के डे देवानुप्रिय । तमे द्वारका
नगरीमां नओ। त्यां तमे कृष्णवासुदेवने, अणदेव प्रमुअ पांच महावीरिने,
उग्रसेन प्रमुअ सोण हुअर राज्ञेने, प्रद्युम्न प्रमुअ साडा त्रणु करोड राज-
कुमारिने, ६० हुअर दुर्दान्तसांअ प्रमुओने, २१ हुअर वीरसेन प्रमुअ वीरिने,
५६ हुअर महासेन प्रमुअ बलिष्ठ राज्ञेने तेमए णीअ पणु अथा राजेश्वर,
तलवर, माडंबिक, कौटुंबिक, इभ्य, श्रेष्ठि, सेनापति, सार्थवाह वगेरेने पोताना
अने दश नओवाणा हाथेनी अंजलि अतावीने तेने मस्तके भूडीने नमस्कार
करने तथा 'जय विजय' शब्दोच्चारण करतां अथाने तमे अलिनदित

वरो भविष्यति, तत्=तस्मात् खलु यूयं हे देवानुप्रियाः । द्रुपद् राजानमनुगृह्णन्तः
 ' अकालपरिहीणं चैव ' कालविलम्बरहितमेव काम्पिल्यपुरे नगरे समवसरत, ततः
 खलु स दूतः करतल० यावत्-अञ्जलिं मस्तके कृत्वा द्रुपदस्य राज्ञ एतमर्थं प्रति-
 शृणोति, प्रतिश्रुत्य यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य कौटुम्बिकपुरुषान्
 शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः चतुर्घण्टं=घंटाचतु-
 ष्टययुक्तम् अश्वरथं युक्तमेवोपस्थापयत । यावत्-उपस्थापयन्ति । तत खलु स दूतः

कहना-(एवं खलु देवानुप्रिया ! कम्पिल्यपुरे नगरे दुवयस्स रण्णो धूयाए
 चुल्लीणीए देवीए अत्तयाए धट्टज्जुणकुमारस्स भगिणीए दोवईए रायवर
 कण्णाए सयंवरं भविस्सइ, तं णं तुव्भे देवानुप्रिया ! दुवयं रायं अणु
 णिण्हे माणा अकालपरिहीणं चैव कम्पिल्यपुरे नगरे समोसरह) हे देवा-
 नुप्रियो ! कम्पिल्यपुर नगर में द्रुपद् राजा की पुत्री, चुलनी देवी की
 आत्मजा, धृष्टद्युम्न कुमार की भगिनी राजवर कन्या द्रौपदी का स्वयंवर
 होनेवाला है, इसलिये हे देवानुप्रियो ! आप लोग द्रुपद् राजाके ऊपर
 अनुग्रह करके बहुत ही शीघ्र कम्पिल्यपुर नगर से पधारें । (तएणं से
 दूए करयल जाव कट्टु दुवयस्स रण्णो एयमट्टं पड्डिसुणेंति पड्डिसुणित्ता
 जेणेव सए णिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोट्टुं विय पुरिसे सदा-
 वेइ, सदावित्ता एव वयासी, खिप्पामेव भो देवानुप्रिया ! चाउगघंठं
 आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेइ जाव उवट्टवेति) दूतने द्रुपद् राजा के इस
 कथन को दोनों हाथ जोड़कर स्वीकार कर लिया । स्वीकार करके फिर

करने. अस्मिन् दित्थं कथां णाह तस्मै तेभ्योने आ प्रभाषे विनती करणे (एवं
 खलु देवानुप्रिया ! कम्पिल्यपुरे नगरे दुवयस्स रण्णो धूयाए चुल्लीणीए देवीए
 अत्तयाए धट्टज्जुणकुमारस्य भगिणीए दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरं भविस्सइ, तं
 णं तुव्भे देवानुप्रिया ! दुवयं रायं अणुणिण्हेमाणा अकालपरिहीणं चैव कम्पिल्य
 पुरे नगरे समोसरह) हे देवानुप्रियो ! कम्पिल्यपुर नगरमां द्रुपद् राजानी पुत्री
 चुलनी देवीनी आत्मजा, धृष्टद्युम्नकुमारनी णडेन राजवर कन्या द्रौपदीने
 स्वयंवर थवानो छे ओथी हे देवानुप्रियो । तस्मै द्रुपद् राजा ऊपर कृपा करीने
 सत्वरं कम्पिल्य नगरमा पधारो. (तएणं से दूए करयल जाव कट्टु दुवयस्स
 रण्णो एयमट्टं पड्डिसुणेंति, पड्डिसुणित्ता जेणेव सए णिहे तेणेव उवागच्छइ, उवा-
 गच्छित्ता कोट्टु वियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एव वयासी खिप्पामेव भो देवा
 नुप्रिया ! चाउगघंठं आसरहं जुत्तामेव उवट्टवेइ जाव उवट्टवेति) द्रुपद् राजानी
 आज्ञाने दूते णेने हाथ जोडीने स्वीकारी लीधी. स्वीकार कथां णाह ते भ्यां

स्नातः यावत्—सर्वालङ्कारविभूषितशरीरश्चतुर्घण्टमश्वरथं 'दुरुहह' दूरोहति—आरो-
हति । दुरुह्य बहुभिः पुरुषैः कीदृशैः पुरुषैरित्याह—'सन्नद्ध जाव गहिया' इति
अत्र यावच्छब्देनैवं बोध्यम्—सन्नद्धवद्धवर्गिमयकवर्हि, उप्पीलियसरासनपट्टगेहि,
पिण्डगेविज्जगवद्धाविद्धविमलवरचिन्धपट्टेहि, गहियाऽऽउहपरणेहि इति । सन्नद्ध-
वद्धवर्मितकवचैः उत्पीडितशरासनपट्टकैः, पिनद्धग्रैवेयकवद्धविद्धविमलवरचिह्न-
पट्टैः गृहीतायुधप्रहरणैः, सन्नद्धाः सज्जीकृताः, वद्धाः=कशावन्धनेन संबद्धा,
वर्मिताः=अङ्गे परिहिताः कवचा ये स्ते सन्नद्धवद्धवर्मितकवचास्तैः, तथा—उत्पीडि-
तशरासनपट्टकैः उत्पीडितानि=गुणारोपणेन वक्रीकृतानि शरासनपट्टकानि धनुः
प्रकाण्डानि यैस्ते उत्पीडितशरासनपट्टकाः रज्ज्वारोपणवक्रीकृतधनुर्धरिणस्तैः,

वह जहां अपना घर था वहां आया । वहां आकर उसने कौटुम्बिक
पुरुषों को बुलाया बुलाकर उनसे ऐसा कहा हे देवानुप्रियों ! तुम लोग
शीघ्र ही चार घंटों से युक्त अश्वरथ को घोड़े जोतकर यहां ले आओ ।
उन्होंने आज्ञानुसार ऐसा ही किया । वे चार घटा वाले उस रथ में
घोड़े जोतकर उसे वहां ले आये (तएणं से दूए ण्हाए जाव अलंकार०
सरीरे चाउघटं आसरहं दुरुहह, दुरुहिता बहूहिं पुरिसेहिं सन्नद्ध जाव
गहियाऽऽउहपरणेहिं सिद्धिं : संपरिवुडे कपिलपुरनयरं मज्झं मज्झेणं
निग्गच्छइ) इस के बाद दूतने स्नान किया, यावत् अपने शरीर को
समस्त अलंकारों से विभूषित किया । बाद में वह उस चतुर्घट वाले
अश्वरथ पर सवार हो गया । उस के साथ सजाकर अपने शरीर पर
कवच पहिर रखा है ऐसा अनेक पुरुष थे ज्यापर बाण को आरोपित
करने से वक्री भूत हुआ धनुष जिनके हाथों में हैं ऐसे अनेक धनुर्धारी

पोतानुं धर इतुं त्यां आन्थे. त्यां आवीने तेणु कौटुम्बिक पुत्रोने भोलाव्या
अने भोलावीने तेमने कहुं के डे देवानुप्रिय ! तमे सत्वरे चार घंटडीओवाणे।
अश्वरथ नेतरीने अडी आवे। कौटुम्बिक पुत्रोअे तेमन् कथुं चार घंटडी-
ओवाणे। अश्वरथ नेतरीने त्यां लध आव्या. (तएण से दूए ण्हाए जाव
अलंकार० सरीरे चाउघटं आसरहं दुरुहह, दुरुहिता बहूहिं पुरिसेहिं सन्नद्ध
जाव गहियाऽऽउहपरणे हि सिद्धिं संपरिवुडे कपिलपुरनवरं मज्झं मज्झेणं
निग्गच्छइ) त्थारमाह इते स्नान कथुं यावत् पोताना शरीरने अधी नतना
अलंकारेथी शणुगार्थुं. त्थारपथी ते इत चतुर्घटवाणा अश्वरथ उपर सवार
थध गथे। ते इतनी साथे अणतरथी सुसन्न थयेला धणा पुत्रो डता.
प्रत्यंथा उपर आणु अठाववाथी वक थध गथेला धनुषो नेमना डथेमां छे

तथा-पिनद्धग्रैवेयकवद्धाविद्धविमलवरचिह्नपट्टैः- पिनद्धानि - परिधृतानि ग्रैवेय-
काणि-कण्ठभूषणानि यै स्ते तथा, वद्धः=आरोपितः संयोजितः आविद्धः=मस्तके-
परिधृतः विमलः=स्वच्छः वरः चिह्नपट्टः-स्वपक्षबोधकचिह्न : यैस्ते तथा,
ततो द्विपदकर्मधारयः, तथा-गृहीतायुधप्रहरणैः=आयुधानि अस्त्राणि, प्रहरणानि-
शस्त्राणि गृहीतानि यैस्ते गृहीतायुधप्रहरणा स्तैः, सार्धं संपरिवृतः काम्पिल्यपुरं
नगरं मध्यमध्येन मध्यमार्गेण निर्गच्छति, पञ्चालजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव
' देसपन्ते ' देशप्रान्तं-देशसीमा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य 'सुरद्वजणवयस्स '
सौराष्ट्रजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव द्वावती नगरी तत्रैवोपागच्छति उपागत्य
द्वावतीं नगरीं मध्यमध्येन अनुपविशति, अनुपविश्य यत्रैव कृष्णस्य वासुदेवस्य

पुरुष थे, जिन्होंने गले में आभूषणों को पहिरकर रखे हैं और मस्तक के
ऊपर स्वच्छ, स्वपक्षबोधक चिह्न धारण किया है ऐसे अनेक व्यक्ति
थे । तथा आयुध एवं प्रहरणों को लेकर अनेक सैनिक जन इसके
आसपास हो कर चल रहे थे । सो वह दूत इन सब के साथ २ उस
काम्पिल्यपुर नगर के बीचोंबीच से होकर निकला । (पंचालजनवयस्स मज्झं
मज्झेणं जेणेव देसपन्ते तेणेव उवागच्छइ-सुरद्वजणवयस्स मज्झं
मज्झेणं जेणेव द्वावती नगरी तेणेव उवागच्छइ) चलते २ वह पंचाल
जनपदके बीचोंबीच से होता हुआ जहां पर अपने देशकी सीमा का
अन्त था वहां आया । वहां आकर वह सौराष्ट्र देशके बीचसे निक
लता हुआ जहां द्वावती नगरी थी वहां आया-(उवागच्छित्तो द्वा-
वइं नगरीं मज्झं मज्झेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव कण्हस्स

अथा धणु धनुर्धरे तेनी साथे उता, जेओअे गणाभां आलूषणो पडरेलां
अने मस्तक उपर स्वच्छ स्वपक्ष बोधक चिह्न पट्टो आंधी राणेला अथा पणु
अनेक पुइयो तेनी साथे उता. आयुध अने प्रहरणोने उथडीने पणु धणु सैनिको
तेनी आंने आणुअे आली रखा उता. आ रीते ते दूत तेओ अधानी साथे
काम्पिल्यपुर नगरनी वच्चे थरने नीकल्यो. (पंचाल जनवयस्स मज्झं मज्झेणं
जेणेव देसपन्ते तेणेव उवागच्छइ सुरद्वजणवयस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव द्वावती नगरी
तेणेव उवागच्छइ) आभ पोतानी यात्रा पूरी करीने ते दूत पायाल जनपदनी
वच्चेवच्चे न्यां पोताना देशनी उद पूरी थती उती त्यां आओ. त्यां आपीने
ते सौराष्ट्र देशनी वच्चे थरने न्यां द्वावती नगरी उती त्यां आओ. (उवाग-
च्छित्ता द्वावइं, नगरीं मज्झं मज्झेणं, अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव कण्हस्स

बाहिरस्थानशाला-आस्थानमण्डपः, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य चातुर्घण्टमश्वरथं
स्थापयति, स्थापयित्वा 'रहाओ' रथात् 'पञ्चोरुहइ' प्रत्यवरोहति-प्रत्यवत-
रति, प्रत्यवरुह्य 'मनुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते' मनुष्यवागुरापरिक्षिप्तः=मनुष्यसमूह
परिवृतः, स दूतः पादविहारचारेण=पादाभ्यां गमनेन यत्रैव कृष्णवासुदेवरतत्रैवो-
पागच्छति, उपगत्य कृष्णं वासुदेवं समुद्रविजयप्रमुखंश्च दशदशार्हान् यावत्
बलवत्साहस्रीः, करतलपरिवृत्तदशमुखं शिरथावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा
एवमवादीत्-'तं चेव' तदेव-अत्र पूर्वोक्तमेव वर्णनं बोध्यम् यावत्-सभवसरत

वासुदेवस्स बाहिरिया उवाट्टाण साला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
चाउघटं आसरहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पञ्चोरुहइ, पञ्चोरुहित्ता
मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पायविहारचारेण जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव
उवागच्छइ) वहाँ आकर द्वारावती नगरी में बीचोंबीच के मार्ग से
होता हुआ प्रविष्ट हो कर वह जहाँ कृष्ण वासुदेव की बाहिर में उप-
स्थानशाला-सभामंडप था वहाँ गया । वहाँ पहुँचकर उसने अपने चार
घंटावाले अश्वरथ को खड़ा कर दिया । रोक दिया-उसके रुकते ही वह
उससे नीचे उतरा । उतर कर वह मनुष्योंके समूहसे परिक्षित (युक्त) हो
कर पैदल ही जहाँ कृष्ण वासुदेव थे वहाँ गया । (उवागच्छित्ता कण्हं
वासुदेवसमुद्रविजयपामुक्खे य दस दसारे जाव बलवगसाहस्सीओ
करयल तं चेव जाव समोसरह) वहाँ जा करके उसने कृष्ण वासुदेव को
समुद्रविजय प्रमुख दश दशार्होंको यावत् महासेन प्रमुख ५६, हजार ब-
लिष्ठ राजाओंको दोनों हाथों की अंजलिकर और उसे मस्तक पर रखकर

देवस्स बाहिरिया उवाट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउघटं आस-
रहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पञ्चोरुहइ पञ्चोरुहित्ता मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पाय
विहारचारेण जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ) त्यां आवीने ते द्वारा
वती नगरीना मध्यमार्गे थधने नगरभां प्रविष्ट थये अने त्थारपणी ते न्यां
कृष्ण-वासुदेवनी भाइ उपस्थानशाणा-दीवाने आम-(सभा मंडप) इती त्यां
गथे. त्यां पछोन्थीने तेणे पोताना चार घंटीओवाणा रथने जिले राभ्ये
अने पोते नीचे उतर्यो. उतर्यो पछी ते पोताना नोकरो-सेवकनी साथे न्यां
कृष्ण-वासुदेव इता त्यां गथे. (उवागच्छित्ता कण्हं वसुदेवसमुद्रविजयपामुक्खे
य दस दसारे जाव बलवगसाहस्सीओ करयल तं चेव जाव समोसरह) त्यां
बधने तेणे कृष्ण-वासुदेवने समुद्र विजय प्रमुख दशार्होने यावत् महासेन
प्रमुख ५६ हजार बलिष्ठ राजाओने अने साथनी अंजलि भतावीने तेने

इति पर्यन्तम्, अयमर्थः—काम्पिल्यपुरनगरे द्रुपदस्य राज्ञः पुत्र्या द्रौपद्याः स्वयंवरो भविष्यति, तस्माद् यूयं द्रुपदं राजानमनुगृह्णन्तः कालविलम्बरहितं काम्पिल्यपुरे नगरे समागच्छतेति स दूतः प्रोक्तवान् ' इति ।

ततः खलु स कृष्णो वासुदेवस्तस्य दूतस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टः यावत्-वर्षवशेन विसर्पद्दहदयस्तं दूतं सत्कारयति तथा संमानयति, सत्कार्यं समान्यं प्रतिविसर्जयति ॥ सू०१७ ॥

मूलम्—तएणं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सहावित्ता एवं बयासी-गच्छह णं तुसं देवाणुप्पिया ! सभाए सुहम्माए सामुदाइयं भेरिं तालेहि, तएणं से कोडुंबियपुरिसे कर यल जाव कणहस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता

नमस्कार किया । यहां पर 'एवं खलु देवाणुप्पिया,' से लेकर समोसरह "तकका पूर्वोक्त पाठ इसके द्वारा कहा गया लगा लेना चाहिये—जिसका तात्पर्य यह है कि काम्पिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला है सो आपलोग द्रुपद राजा के ऊपर कृपा कर के उसमें शीघ्र पधारें । इस प्रकार (तएणं से कण्हे वासुदेवे तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ट जाव हियए तं दूयं सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ) कृष्ण वासुदेव ने उस दूत के मुखसे जब इस समाचार को सुना—तो वे सुनकर और उसे हृदयमें धारण कर बहुत ही अधिक हर्षित एवं संतुष्ट हुए । दूतका उन्होंने सत्कार किया, सम्मान किया । बादमें उसे वहां से विसर्जित कर दिया ॥सू०१७॥

भस्तके मूडीने नमस्कार कर्था. अडी ' एवं खलु देवाणुप्पिया ' थी समोसरह ' सुधीने। पाठ इत वडे कडेवामा आवेत्ते। छे अेम समलु देवुं नेधये तेनी मतलभ ये छे के काम्पिल्यपुर नगरमा द्रुपद राजानी पुत्री द्रौपदीने स्वयंवर थवाने छे तो आप सौ द्रुपद राजा उपर मडेरणानी करीने तेमां सात्वरे पधारो. आ रीते (तएणं से कण्हे वासुदेवे तस्स दूयस्स अ तिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ट जाव हियए तं दूयं सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ) कृष्ण-वासुदेवे इतना भुभथी आ नतना सभाथारो सांलण्या त्यारे सांलणीने अने तेओने भरोभर इदयमां धारण करीने अत्यंत हर्षित तेमज संतुष्ट थर्धने तेमणे इतना सत्कार तेमज सम्मान कर्था. त्यारथी तेमणे इतने विदाय कर्था. ॥ सूत्र १७ ॥

जेणेव सभाए सुहम्माए सामुदाइया भेरी तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छिता सामुदाइयं भेरिं महया महया सदेणं तालेइ
तएणं ताए सामुदाइयाए भेरीए तालियाए समाणीए समु-
दविजयपामोक्खा दस दसारा जाव महसेणपामुक्खाओ
छप्पणं बलवगसाहस्सीओ णहाया विभूसिया जहा विभव-
इड्डिसक्कारसमुदएणं अप्पेगइया जाव पायविहारचारेणं
जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छिता कर-
यल जाव कण्हे वासुदेवे जएणं विजएणं वद्धावैति, तएणं
से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वया-
सी-खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! अभिसेक्कं हत्थिरयणं
पडिकप्पेह हयगय जाव पच्चपिणंति, तएणंसे कण्हे वासुदेवे
जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता समुत्तजा-
लाकुलाभिरामे जाव अंजणगिरिकूडसन्निभं गयवइं नरवई
दुरूढे, तएणं से कण्हे वासुदेवे समुदविजयपामुक्खेहिं दसहिं
दसारेहिं जाव अणंगसेणापामुक्खेहिं अणेगाहिं गणियासाह-
स्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्डीए जाव रवेणं बारवइनयरिं
मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छिता सुरट्टाजणवयस्स मज्झं
मज्झेणं जेणेव देसप्पंते तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता
पंचालजणवयस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे
तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० १८ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कौटुम्बिक-
पुरुषं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! सभायां
सुधर्मायां ‘ सामुदाइयं ’ सामुदायिकिं भेरिं ताडय, ततः खलु स कौटुम्बिक-
पुरुषः करतल० यावद्-मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा यावत् कृष्णस्य वासुदेवस्यैतमर्थं
प्रतिश्रुणोति, प्रतिश्रुत्य यत्रैव सभायां सुधर्मायां ‘ सामुदाइया ’ सामुदायिकी
भेरी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सामुदायिकीं भेरीं महता २ गव्देन ताडयति,
येन महाशब्दो भवति, तथा भेरीं ताडयति स्मे ’ त्यर्थः, ततस्तदनन्तरं खलु तस्यां

‘तएणं से कण्हे वासुदेवे’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं इत्येके वाद (से कण्हे वासुदेवे) उन कृष्ण वासुदेवने
(कौटुम्बिकपुरिसं सदावेह) अपने कौटुम्बिक पुरुष को बुलाया, बुला-
कर (एवं वयासी) उनसे ऐसा कहा- (गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया !
सभाए सुहम्माए सामुदाइयं भेरिं तालेहि) हे देवानुप्रिय तुम सुधर्मा
समाप्ते जाओ और वहाँ जाकर सामुदाय की भेरी को बजाओ (तएणं
से कौटुम्बिक पुरिसे करयल जाव कण्हस्स वासुदेवस्स एयमहं पडि
सुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए सामुदाइया भेरी तेणेव
उवागच्छह, उवागच्छित्ता सामुदाइयं भेरिं सहया २ सहणं तालेह) इस
प्रकार की कृष्ण वासुदेव की आज्ञा को उस पुरुष ने बड़े विनय के साथ
अपने दोनों हाथों को मस्तक पर रखकर स्वीकार कर लिया-और
स्वीकार करके फिर वह सुधर्मा सभा में जहाँ वह सामुदायिकी भेरी थी
वहाँ आया । वहाँ आकर उसने उस सामुदायिकी भेरी को इसतरह से

‘ तएणं से कण्हे वासुदेवे ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (से कण्हे वासुदेवे) ते कृष्ण-वासुदेवे (कौटुम्बिक
पुरिसं सदावेह) पोताना कौटुम्बिक पुरिसेने जालाव्या अने जालावीने (एवं
वयासी) तेभने आ प्रभाषे कथं के- (गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! सभाए
सुहम्माए सामुदाइयं भेरिं तालेहि) हे देवानुप्रिय ! तमे सुधर्मा सभायां जाओ
अने त्या जगने सामुदायिकी भेरी बजाओ. (तएणं से कौटुम्बिकपुरिसे कर-
यल जाव कण्हस्स वासुदेवस्स एयमहं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता जेणेव सभाए
सुहम्माए सामुदाइया भेरी तेणेव उवागच्छह उवागच्छित्ता सामुदाइयं भेरिं सहया २
सहणं तालेह) आ जतनी कृष्ण-वासुदेवनी आज्ञाने ते पुरुषे भूभक्त नम्र-
पण्णे जने हाथाने मस्तके मूडीने स्वीकार करी पथी, स्वीकार कर्या पथी ते त्यांथी
व्या सुधर्मा सभायां सामुदायिकी भेरी उती त्यां जगने तेणे मोठो अवाज
घाय तेम ते सामुदायिकी भेरीने बजायी. (तएणं ताए सामुदाइयाए भेरीए

सामुदायिक्यां भेरीयां ताडितायां सत्यां समुद्रविजयप्रमुखा दश दशार्हा यावत्-
महासेन प्रमुखाःपट्टपञ्चाशद्बलवत्साहस्रघाः=पट्टपञ्चाशत्-सहस्रप्रमिता बलवन्तो
राजानः स्नाता यावद्-सर्वालंकारविभूषिता यथाविभवर्द्धिसत्कारसमुदयेन
'अप्येगइया' अप्येके-यावद्=केचिद् हयारूढा=अश्वारूढाः केचिद् गजारूढाः,
केचिद् रथारूढाः केचिद् पादविहारचारेण यत्रैव कृष्णो वासुदेवस्तत्रैवोपाग-
च्छंति, उपागत्य करतल० यावत् कृष्णं वासुदेव जयेन विजयेन=जयविजय-
शब्देन वर्धयन्ति । ततः खलु कृष्णो वासुदेवः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्द-
यित्वा एवमवादीन्-भो देवानुप्रियाः ! क्षिप्रमेव 'अभिसेकं' आभिषेकं गज-

बड़े बल से बजायी कि जिससे उससे बड़ी भारी आवाज निकली
(तएणं ताए सामुदाइयाए भेरीए तालियाए समाणीए समुद्रविजय
पामोक्खा दस दसारा जाव महासेण पामुक्खाओ छप्पणं बलवगसाह-
स्सीओ णहाया जाव विभूसिया जहा विभव इड्ढी सक्कारसमुदएणं
अत्थेगइया जाव पायविहारचारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवाग-
च्छति) इस तरह उस सामुयिकी भेरी के बजने पर समुद्रविजय आदि
दश दशार्हों ने यावत् ५६ हजार महासेन प्रमुख बलिष्ठ राजाओं ने
स्नान किया । यावत् समस्त अलंकारों से विभूषित होकर एवं सबके
सब अपने विभव ऋद्धि और सत्कार के अनुसार जहां कृष्ण वासुदेव
थे वहां आये । इनमें कितनेक घोडों पर कितनेक हाथियों पर कितनेक
रथों पर बैठकर आये और कितनेक पैदल ही चलकर आये (उवाग-
च्छित्ता करयल जाव कण्हं वासुदेवं जएणं विजएणं बद्धावेति, तएणं से
कण्हे वासुदेवे कोडुंबिय पुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी, खिप्पामेव

तालियाए समाणीए समुद्रविजयपामोक्खा दस दसारा जाव महासेण पामु-
क्खाओ छप्पणं बलवगसाहस्सीओ णहाया जाव विभूसिया जहा विभव इड्ढी
सक्कारसमुदएणं अप्येगइया जाव पायविहारचारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव
उवागच्छंति) आ रीते ते सामुयिकी भेरी वगाडवामां आवी त्तारे समुद्र विजय
वगेरे दश दशार्होअे यावत् ५६ हजार महासेन प्रमुख बलिष्ठ राजाओअे
स्नान कथुं. यावत् तेओ सर्वे समस्त अलंकारोथी सुसन्न थथने पोताना
विलव अने सत्कारनी साथे न्यां कृष्णु-वासुदेव उता त्या गया. आमा डेटलाक
घोडाओ उपर, डेटलाक डार्थीओ उपर, डेटलाक रथो उपर सवार थथने त्यां
पडोअ्या उता तो डेटलाक पगे आदीने न कृष्णु-वासुदेवनी पासे डान्द थथा
उता. (उवागच्छित्ता करयल जाव कण्हं वासुदेवं जएणं विजएणं बद्धावेति
तएणं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी खिप्पा-

रत्नं=मय मुख्यहस्तिनं परिकल्पयत्-सज्जीकुरुत्, हयगजरथपदातिरूप चतुरङ्गवल
सज्जीकुरुत्, एतां ममात्रां प्रत्यर्पयत्, इति ततस्ते कौटुम्बिकपुरुषाः ' तथाऽस्तु '
इत्युक्त्वा तदात्रां स्वीकृत्य सर्वं संपाद्य वाहनं बलं च सर्वं सज्जीकृतमस्माभिरिति
यावत् प्रत्यर्पयन्ति=निवेदयन्ति स्म । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवो यत्रैव मञ्जन-
गृहं तत्रांवापागच्छति, मञ्जनगृहं कीदृशमित्याह-' समुत्तजालाकुलाभिरामे ' समु-
त्तजालाकुलाभिरामं मुक्ताभिः सदितानि जालानि गवाधास्तैराकुलं युक्तमतएवा-
भिरामं सुन्दरम्, उपागत्य स तत्र स्नानं कृत्वा यावत्-सर्वालंकारविभूषितः,
अञ्जनगिरिकूटसन्निभम्=उच्चतरं श्यामवर्णमित्यर्थः, गजपतिं=वस्तिषु मुख्यं हस्तिनं
नरपतिः=श्री कृष्णवासुदेवः ' दुरूढे ' दूरूढः=समारूढः, ततः खलु स कृष्णो

भो देवानुपिया ! अभिसेवकं हत्थिरयणं पडिकप्पेह, हयगय जाव
पच्चप्पिणत्ति) वहां आकर उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर कृष्ण वासुदेव
को नमस्कार करते हुए जय विजय शब्दों द्वारा वधाई दी-इसके बाद
उन कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया-बुलाकर उससे इस
प्रकार कहा-भो देवानुपियो ! तुमलोग शीघ्र ही मेरे मुख्य हाथी को
सजाओ-तथा-हय, गज, रथ और पदातिरूप चतुरंग युक्त सेना को भी
सजाकर तैयार करो । पीछे हमको इसकी खबर दो । इसके बाद उन
कौटुम्बिक पुरुषों ने-" तथास्तु " कहकर उनकी आज्ञा को स्वीकार लिया
और स्वीकार करके बल और वाहन सब हमने सज्जित कर दिये हैं
इस प्रकार की खबर उन्हें पीछे कर दी । (तएणं से कण्हे वासुदेवे जेणेव
मञ्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समुत्तजालाकुलाभिरामे
जाव अंजणगिरि कूडसन्निभं गयवइं नरवईं दुरूढे) इसके पश्चात् वे

मेव भो देवानुपिया ! अभिसेकं हत्थिरयणं पडिकप्पेह, हयगयजाव पच्चप्पिणत्ति)
त्यां ळ्ठीने तेओओे भने हाथ जेडीने ' जयविजय ' शब्दोथी कृष्ण-वासुदेवने
नमस्कार करतां अलिनदित कथां त्थारपथी कृष्ण-वासुदेवे कौटुम्बिक पुरुषोने
ओलाओ्या अने ओलावीने तेओेने आ प्रभाओे कल्लु के डे देवानुपियो ! सत्तरे
तमे भाश मुप्य हाथीने तेमज्ज थोओ पणु घोडा, हाथी, रथ अने पायदलनी
अतुर गिणी सेनाने सुसज्ज करे अने सेना सुसज्ज थर्थ जय त्थारे अमने अणर
आपी. त्थारपथी कौटुम्बिक पुरुषोओे ' तथास्तु ' कहीने तेमनी आत्ता स्वीकारी
लीथी अने स्वीकारीने तेओे पोताना काममा परेवाठ गया. त्थारे काम थर्थ
गयुं त्थारे तेओेओे " सेना अने वाहन तैथार छे " आ जतनी अणर आपी.
(तएणं से कण्हे वासुदेवे जेणेव मञ्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
समुत्तजालाकुलाभिरामे जाव अंजणगिरिकूडसन्निभं गयवइं नरवईं दुरूढे)

वासुदेवः समुद्रविजयप्रमुखैर्दशार्है र्यात्रत् अनङ्गसेनाप्रमुखाभिरनेकाभिर्गणिका
साहस्रीभिः सार्धं संपरिवृतः सर्वद्वर्चा=छत्रादिराजचिह्नरूपया यावत्-शङ्खपण-
वपटहभेर्यादिरवेण द्वारवती नगर्या मध्यमध्येन=निर्गच्छति, निर्गत्य सौराष्ट्रजन-
पदस्य मध्यमध्येन यत्रैव देशप्रान्तं-देशसीमा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पञ्चा-
लजनपदस्य मध्यमध्येन यत्रैव काम्पिल्यपुरं नगरं तत्रैव प्राधारयद् गमनाय=
गन्तुं प्रवृत्तः ॥ सू० १८ ॥

कृष्ण वासुदेव जहां स्नान घर था वहां गये-वहां जाकर उन्होंने मुक्ताओं
सहित गवाक्षों से सुन्दर उस स्नान घर में स्नान किया-स्नान करके
फिर सर्व अलंकारों से विभूषित होकर वे नरपति अंजन गिरि के शिखर
जैसे-विशाल कृष्णवर्ण वाले गजपति पर आरूढ हो गये । (तएणं से
कण्हे वासुदेवे समुद्रविजयपामोक्खेहिं दसहिं दमारेहिं जाव अणंग
सेणा पामुक्खेहिं अणेगाहिं गणिया साहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्व-
ड्ढीए जाव रवेणं वारवइ नयरिं मज्झं मज्जेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता
सुरट्ठा जणवयस्स मज्झं मज्जेणं जेणेव देसपंते तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता पंचाल जणवयस्स मज्झं मज्जेणं जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे
तेणेव पहारेत्थ गमणाए) आरूढ होकर वे कृष्ण वासुदेव समुद्र विजय
आदि दश दशार्हों यावत् अंगसेना प्रमुख हजारों गणिकाओं के साथ
२ छत्र आदि राज चिह्नरूप विभूति से युक्त होकर शख, पणव, पटह,
भेरी आदि बाजों की तुमुल ध्वनि पूर्वक द्वारावती नगरी के बीच से

त्यारपणी ते कृष्ण-वासुदेव जयां स्नानघर इतुं त्यां गया त्यां जंने तेमणे
भोती जडेवा गवाक्षोथी रमणीय लागता स्नानघरमां स्नान क्युं अने त्यार
पणी मधा अलंकारोथी विभूषित थंने-नरपति अंजनगिरिना शिखर जेवा
विशाल कृष्ण वर्णवाणा गजपति उपर सवार थं गया (तएणं से कण्हे
वासुदेवे समुद्रविजयपामोक्खेहिं दसहिं दमारेहिं जाव अणंगसेणा पामुक्खेहिं
अणेगाहिं गणियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं वारवइ नयरिं
मज्झं मज्जेणं निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता सुरट्ठा जणवयस्स मज्झं मज्जेणं जेणेव
देसपंते तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पंचालजणवयस्स मज्झं मज्जेणं जेणेव
कंपिल्लपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए) सवार थं ने तेयो समुद्र विजय
वगेरे दश दशार्हो यावत् अंगसेना प्रमुख इन्दरो गणिकायेनी साथे छत्र
विगेरे राजचिह्न रूप विभूतिथी युक्त थंने शख, पणुव, पटह, भेरी वगेरे
तुमुल ध्वनि स्थाने द्वारावती नगरीनी वर्ये थंने पसार थया. त्याथी पसार

मूल्य—तएणं से दुवए राया दोच्चं दूयं सदावेइ सहावित्ता
 एवं वयासी—गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरं नयरं
 तत्थ णं तुमं पंडुरायं सपुत्तयं जुहिठिल्लं भीमसेणं अज्जुणं
 नउलं सहदेवं दुज्जोहणं भाइसयसमग्गं गंगेयं विदुरं दोणं
 जयइहं सउणी किवं आसत्थामं करयल जाव कट्टु तहेव समो-
 सरह, तएणं से दूए एवं वयासी जहा वासुदेवे नवरं भेरी
 नत्थि जाव जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए२ ।
 एएणेव कमेणं तच्चं दूयं चंपानयरिं तत्थ णं तुमं कण्हं अंग-
 रायं सेहं नंदिरायं करयल तहेव जाव समोसरह । चउत्थं दूयं
 सुत्तिमइं नयरिं तत्थ णं तुमं सिसुपालं दमघोससुयं पंचभाइ-
 सयसंपगिवुडं करयल तहेव जाव समोसरह । पंचमग्गं दूयं
 हत्थसिसिनयरं तत्थ णं तुमं दमदंतं रायं करयल तहेव जाव
 समोसरह । छट्ठं दूयं महुं नयरिं तत्थ णं तुमं धरं रायं करयल
 जाव समोसरह । सत्तमं दूयं रायगिहं नयरं तत्थ णं तुमं सह-
 देवं जरासिंधुसुयं करयल जाव समोसरह । अट्ठमं दूयं कोडिणं
 नयरं तत्थ णं तुमं रुप्पिं भेसगसुयं करयल तहेव जाव समो-
 सरह । नवमं दूयं विराडनयरं तत्थ णं तुमं कीयगं भाउसय
 समग्गं करयल जाव समोसरह । दसमं दूयं अवसेसेसु य गामागार

होते हुए निकले । निकलकर वे सौराष्ट्र देश के बीचों बीच से चलकर
 वहाँ आये जहाँ देश की सीमा थी । उस सीमा पर आकर के फिर वे
 पांचाल जनपद के मध्य से होते हुए जहाँ कांपिल्य पुर नगर था उस
 और चल दिये । सू० १८

थधने तेयो। सौराष्ट्र देशनी वन्धे थधने पोताना देशनी उद सुधी यडोन्धा.
 त्यांथी तेयो। पायाद जनपदनी वन्धे थधने ल्यां अण्णियपुर नगर उदुं ते
 तरेइ रवाना थया. ॥ सूत्र १८ ॥

नगरेसु अणेगाइं रायसहस्साइं जाव समोसरह । तएणं से दूए
तहेव निग्गच्छइ जेणेव यामागर जाव समोसरह । तएणं ताइं
अणेगाइं रायसहस्साइं तस्स दूयरस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा
निसम्म हट्टुं तं दूयं सक्कारेति सक्कारित्ता सम्माणेति सम्मा-
णित्ता पडिविसज्जिति, तएणं ते वासुदेवपामुक्खा बहवे रायस-
हस्सा पत्तेयं२ ण्हाया सन्नद्धहत्थिखंधवरगया हयगयरहं० महया
भडचडगररहपहकरं० सएहिंतोर नगरेहिंतो अभिनिग्गच्छंति२
जेणेव पंचाले जणवए तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० १९ ॥

टीका—‘ तएणं से’ इत्यादि । ततः खलु स द्रुपदो राजा द्वितीयं दूतं शब्द-
यति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—गच्छ खलु त्वं पाण्डुं राजं सपुत्रकं=पुत्रैः सहितं

‘ तएणं से दुवए राया ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इस के बाद (से दुवए राया) उस द्रुपद राजाने
(दोच्चं दूयं सद्दावेइ) अपने दूसरे दूतको बुलाया (सद्दावित्ता एवं वयासी)
बुलाकर उससे ऐसा कहा—गच्छणं तुमं देवाणुप्पिया हत्थिणाउरं नयरं
तत्थ णं तुमं पंडुरायं सपुत्तयं जुहिद्वित्तं भीमसेणं अज्जुणं नउलं सह-
देवं दुज्जोहणं भाइसयसमरगं गंगेयं विदुरं दोणं जयदहं सउणीक्किवं
आसत्थामं करयल जाव कट्टु तहेव समोसरह) बुलाकर उससे ऐसा
कहा हे देवानुप्रिय ! तुम हस्तिनापुर नगर जाओ—वहां जाकर तुम पुत्र

‘ तएणं से दुवए राया ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (से दुवए राया) ते द्रुपद राज्ञे (दोच्चं दूयं
सद्दावेइ) येताना भीष्म इतने बोलाव्ये। (सद्दावित्ता एवं वयासी) बोला-
वीने तेने आ प्रभाणे कथुं के (गच्छणं तुमं देवाणुप्पिया हत्थिणाउरं नयरं,
तत्थ णं तुमं पंडुरायं सपुत्तयं जुहिद्वित्तं भीमसेणं अज्जुणं नउलं सहदेवं दुज्जो-
हणं भाइसयसमरगं गंगेयं विदुरं दोणं जयदहं सउणी किवं आसत्थामं करयल
जाव कट्टु तहेव समोसरह) हे देवानुप्रिय ! तमे हस्तिनापुर नगरमां लाव्ये।

युधिष्ठिरं भीमसेनम् अर्जुनं नकुलं सहदेवं दुर्योधनं भ्रातृशतसमग्रं=शतभ्रातृभिः सहितं, गाङ्गेयं=भीष्म, विदुरं द्रोणं जयद्रथं शकुनिं ' किवं ' कृपम्=कृपाचार्यं, अश्वत्थामानं करतल० यावत् मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा, तथैव समवसरत यथा पूर्वाशुक्तं तथैवात्र ' समवसरत ' इतिपर्यन्तं बोध्यम् अयं भावः—जयविजयशब्देन बर्धयित्वा एवं ब्रूहि—काम्पिल्यपुरे नगरे द्रुपदस्य राज्ञः पुत्र्या द्रौपद्याः स्वयंवरो भविष्यति तस्माद् खलु हे देवानुप्रियाः ! यूयं द्रुपदं राजानमनुगृह्णन्तः कालविलम्बरहितमेव काम्पिल्यपुरे नगरे समवसरत । ततः स दूतो द्रुपदस्य वचनं स्वीकृत्य हस्तिनापुरं गत्वा पाण्डुराजादिकमेवमवादीत्—' काम्पिल्यपुरे द्रौपद्याः स्वयंवरो भविष्यति तत्र शीघ्रमागच्छत ' इति ततोऽसौ दूतः पाण्डुराजादिना सम्मानितो विसर्जितश्च ' जहा वासुदेवे ' यथा—वासुदेवः कृष्णस्तद्वदत्रापि विज्ञेयम्—' नवर ' विशेषस्तु ' भेरी नत्थि ' भेरीनास्ति, कृष्णवासुदेव इव पाण्डुराजादिः स्नातः सर्वालंकारविभूषितो गजारूढश्चतुरङ्गसेनया संपरिवृतः सर्वद्वर्षा युक्तो यावत् यत्रैव काम्पिल्यपुरं नगरं तत्रैव प्राधारयद् गमनाय=गन्तुं प्रवृत्तः ।

सहित पाण्डुराज को, युधिष्ठिर को, भीमसेन को, अर्जुन को नकुल को, सहदेव को, सौभाईयों सहित दुर्योधन को, गांगेय भीष्म पितामह को विदुर को, द्रोण को जयद्रथ को, शकुनि को, कृपाचार्य को, और द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा को पहिले दोनों हाथों की अंजलि बनाकर और उसे मस्तक पर रखकर नमस्कार करना उन सबको जय विजय आदि शब्दों से बधा देना । बधाकर फिर इस प्रकार कहना कि कांपिल्य पुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर है, इस लिये हे देवानुप्रियों ! आप सब द्रुपद राजा के ऊपर कृपा करके विना किसी विलंब के शीघ्रही कांपिल्यपुर नगर में पधारें । (तएणं से दूए एवं वयासी—जहा वासुदेवे नवरं भेरी नत्थि, जाव जेणेव कांपिल्लपुरे

अने त्यां बंधने तमे पुत्रो सहित पाण्डुराजने, युधिष्ठिरने, भीमसेनने, अर्जुनने, नकुलने, सहदेवने, सौ भाईयो सहित दुर्योधनने, गांगेय भीष्म पितामहने, विदुरने, द्रोणने, जयद्रथने, शकुनिने, कृपाचार्यने अने द्रोणाचार्यना पुत्र अश्वत्थामाने सौ पहिले दोनो हाथो की अंजलि बनानी तेने मस्तके भूझीने नमस्कार करले अने ' नय विनय ' शब्दोथी तेओने अलिनिहित करले त्थारपछी तमे तेमने आ प्रभाषे विनंती करले हे कांपिल्यपुर नगरमां द्रुपद राजानी पुत्री द्रौपदीने स्वयंवर थवानो छे ओथी हे देवानुप्रियो ! आप सौ द्रुपद राजा उपर भडेरणानी करीने सत्वरे कांपिल्य नगरमां पधारो. (तएणं से दूए एव वयासी—जहा वासुदेवे नवरं भेरी नत्थि जाव जेणेव कांपिल्ल-

नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए २ एएणेव कमेणं तच्चं दूयं चंपानयरिं
तत्थ णं तुमं कण्णं अंगरायं सेल्लं नंदिरायं करयल तहेव जाव समोसरह
चउत्थं दूयं सुत्तिमइं नयरिं, तत्थ णं तुमं सिसुपालं दमघोससुयं पंच-
भाइसयसंपरिवुडं करयल तहेव जाव समोसरह) इस के बाद दूत
अपने राजा की आज्ञा प्रमाण कर वहाँ से हस्तिनापुर को चला गया।
वहाँ पहुँच कर उसने पांडुराजा आदि से बडे विनय पूर्वक इस प्रकार
कहा—कांपिल्यपुर में द्रौपदी का स्वयंवर होगा—सो आप सब कृपाकर
शीघ्रातिशीघ्र वहाँ पधारें। इस तरहके समाचार देकर वह दूत पांडुराजा
आदि से सन्मानित होकर वहाँ से वापिस हो गया। पांडुराज आदि
स्नान कर सर्वालंकारों से विभूषित होकर गजारूढ हो, चतुरंगिणी
सेना के साथ अपनी ऋद्धि आदि के अनुसार यावत् जहाँ कापिल्यपुर
नगर था उस ओर चल दिये। इस तरह कृष्ण वासुदेव की तरह यहाँ
पर सब पाठ लगा लेना चाहिये। उस पाठ से इस में विशेषता केवल
इतनी है कि वे सब जब द्वाारावती नगरी से कांपिल्यपुर नगर को जाने
के लिये निकले तो उनके साथ भेरी थी—यहाँ वह नहीं है। इसी क्रम
से द्रुपद ने तीसरे दूत को बुलाया—बुलाकर उससे भी इसी प्रकार से

पुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए २ एएणेव कमेणं तच्चं दूयं चंपानयरिं
तत्थ णं तुमं कण्णं अंगरायं सेल्लं नंदिरायं करयल तहेव जाव समोसरह चउत्थं
दूयं सुत्तिमइं नयरिं तत्थ णं तुमं सिसुपालं दमघोससुयं पंचभाइसयसंप-
रिवुडं करयल तहेव जाव समोसरह) त्थारपथी इत पोताना राजनी आज्ञा
प्रमाणे त्यांथी हस्तिनापुर तरइ रवाना थइ गये। त्यां पडोंचीने तेणे पांडु
राज वगेरे राज्ञेने नअपणे आ रीते विनंति करी के—कांपिल्यपुरमां
द्रौपदीने स्वयंवर थसे तो आप सो कृपा करीने सत्तरे त्यां पधारो. आ
हीते सभआरो आपीने ते इत पांडुराज वगेरेथी सन्मान पाभीने त्यांथी
पाछे इथीं. पांडुराज वगेरे अधाणे पणु स्नान वगेरेथी परवारीने तेमज सर्वा-
लंकारेथी सुसज्ज थइने हाथीणे उपर सवार थया अने पोत पोतानी यतु-
रंगिणी सेना तेमज ऋद्धिनी साथे यावत् जे तरइ कांपिल्यपुर नगर हंतुं
ते तरइ रवाना थया. आ प्रमाणे कृष्ण-वासुदेवनी जेमज अहीं पणु वरुन
समज लेवुं जेथणे कृष्ण-वासुदेवना पाठमां पांडुराज करता अेटली विशेषता
हती । तेणे न्यारे द्वाारावती नगरीनी अडार नीकल्या त्तारे तेमनी साथे
लेरी पणु हती, पांडुराजनी साथे लेरी न हती आ प्रमाणे द्रुपद राज्ञे
श्रीज इतने जेलाणे अने तेने पणु आ रीते कहुं के हे देवानुप्रिय ! तसे

एतेनैव क्रमेण तृतीयं दूतं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! चम्पानगरीम्, तत्र खलु कर्ण = कर्णनामकम्—अङ्गराजम् = अङ्गदेश-स्याधिपतिं, तथा ' सेल्लं ' शैल्यं = शैल्यनामकं नन्दिराजं = नन्दिदेशाधिप करतल-परिगृहीतं दशनखं यावत्—मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा जयेन विजयेन वर्धयित्वा एवं ब्रूहि—' तथैव ' तथैव = पूर्ववदत्र बोध्यम्—तद् यथा—“ काम्पिल्यपुरे नगरे द्रुपदस्य राज्ञः पुत्र्या द्रौपद्याः स्वयंवरौ भविष्यति, तस्माद् खलु हे देवानुप्रियाः ! यूयं द्रुपदं राजानमनुगृह्णन्तः शीघ्रमेव काम्पिल्यपुरे नगरे समवसरत ” इति एवं द्रुपदो-राजा चतुर्थं दूतं शब्दयित्वा एवमवादीत्—गच्छ खलु त्वं शुक्तिमतीं नगरीं, तत्र खलु त्वं शिशुपालं दमघोषमुक्तं पञ्चभ्रातृशतसंपरिवृतं करतय० यावन्मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा ब्रूहि—' तथैव यावत् समवसरत ' यथा पूर्वमुक्तं तद्वदत्र ' समवसरत ' इति-

कहा—कि हे देवानुप्रिय ! तुम चपानगरी जाओ वहां अंगदेश के अधि-पति कर्ण राजा को तथा नन्दिदेश के अधिपति शैल्यराजा को कर तल परिगृहीत दशनखवाली अंजलि मस्तक पर रखकर नमस्कार करना बाद में जय विजय शब्दों से उन्हें बधाई देकर पूर्व की तरह ऐसा कहना—कि कांपिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला है, सो हे देवानुप्रियो ! आपलोग द्रुपद राजा पर कृपा करके जल्दी से जल्दी कांपिल्यपुर नगर पधारें । इसी तरह द्रुपद ने चौथे दूत को बुलाकर उससे ऐसा ही कहा—कि तुम शुक्तिमती नगरी में जाओ वहां जाकर दमघोष के पुत्र तथा पांचसौ अपने भाइयों से युक्त शिशुपाल राजा से करतल परिगृहीत दशनखवाली अंजलि मस्तक पर रखकर कहना, पहिले की तरह ऐसा कहना कि कांपिल्यपुर नगरमें

अंघा नगरीमां न्त्वो, त्यां अंग देशना अधिपति कर्ण राजने तेमञ्च नंदि देशना अधिपति शैल्यराजने छाथोनी अंजलि जनावीने तेने मस्तके भूझीने नमस्कार करले अने जय-विजय शब्दोथी तेमने अलिनादित करले. त्थारपथी तेमने विनंती करले के कांपिल्यपुर नगरमां द्रुपद राजनी पुत्री द्रौपदीने स्वयंवर थवानो छे तो छे देवानुप्रियो तमे सौ द्रुपद राज उपर कृपा करीने अविलग्न कांपिल्यपुर नगरमा आवो. आ रीते द्रुपद राजन्वो थोथा इतने जालाव्यो अने तेने यल्लु आ प्रभाञ्जे कल्लु के तमे शक्तिमती नगरमां न्त्वो अने त्या जधने दमघोषना पुत्र शिशुपाल राजने ज्च योताना, पांचसो भाधञ्जे सदितकरणद्ध थधने अंजलि मस्तके भूझीने विनंती करतां आ प्रभाञ्जेना समाचार आपन्ने के कांपिल्यपुर नगरमां द्रुपद राजनी पुत्री द्रौप-

पर्यन्तं वाच्यमित्यर्थः । एवं द्रुपदो राजा पञ्चमकं दूतं शब्दयित्वा एवमवादीत्-
गच्छ खलु त्वं हस्तिशीर्षनगरं, तत्र खलु त्वं दमदन्तं=दमदन्तनामकं राजानं कर-
तलपरिगृहीतदशनखं यावन्मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा ब्रूहि-‘ तथैव यावत् समवसरत ’
इति पूर्ववदेवात्रापि ‘ समवसरत ’ इतिपर्यन्तं वाच्यम् एवं स द्रुपदो राजा षष्ठं दूतं
शब्दयित्वाऽवादीत्-गच्छ खलु त्वं मथुरां नगरीं, तत्र खलु त्वं धरं=धरनामकं
राजानं ‘ करतल० यावत् समवसरत ’ अत्रापि पूर्ववद्दूतगमनादिकं बोध्यम्, एवं
सप्तमं दूतं शब्दयित्वा एवमवदत्-गच्छ खलु त्वं राजगृहं नगरम्, तत्र खलु त्वं
सहदेवं जरासिन्धुसुतं ‘ करतल० यावत् समवसरत ’ इति पूर्ववत्-द्रौपद्याः स्वयं-
वरस्य वार्तां कथयित्वा ‘ काम्पिल्यपुरे नगरे समवसरत ’ इति ब्रूहि । तथा स

द्रुपद् राजा की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला है-सो आप कृपा
करके शीघ्र ही वहां पधारें । (पंचमगं दूयं हत्थिसीसनयरं तत्थ णं तुमं
दमदंतं रायं करयल तहेव जाव समोसरह, छट्टं दूयं महुरं नयरिं तत्थ ण
तुमं धरं रायं करयल जाव समोसरह सत्तमं दूयं रायगिहं नयरं तत्थणं
तुम सहदेवं जरासिन्धुसुयं करयल जाव समोसरह, अट्टमं दूयं कोडि-
णं नयरं तत्थणं तुमं रूपिं भेसगसुयं करयल तहेव जाव समोसरह,
नवमं दूयं विराडनयरं तत्थ णं तुमं कीयगं भाउसयसमगं करयल जाव
समोसरह, दसमं दूयं अवसेसेसु गामागरनगरेसु अणेगाइं रायसहस्साइं
जाव समोसरह) इसी तरह पांचवे दूत को हस्तिशीर्षनगर में दमदन्त
नाम के राजा के पास छठे दूत को मथुरा नगरी में धर राजा के पास,
सातवे दूत को राजगृह नगर में जरासिन्धु के पुत्र सहदेव के पास

दीने। स्वयंवर थवाने छे अथी तमे कृपा करीने अविदंभ त्यां पधारो।
(पंचमगं दूयं हत्थिसीसनयरं तत्थ णं तुमं दमदंतं रायं करयल तहेव जाव
समोसरह छट्टं दूयं महुरं नयरिं तत्थणं तुमं धरं रायं करयल जाव समोसरह
सत्तमं दूयं रायगिहं नयरं तत्थ णं तुमं सहदेवं जरासिन्धु सुयं करयल जाव
समोसरह अट्टमं दूयं कोडिणं नयरं तत्थणं तुमं रूपिं भेसगसुयं करयल
तहेव जाव समोसरह नवमं दूयं विराडनयरं तत्थ णं तुमं कीयगं भाउसय-
समगं करयल जाव समोसरह, दसमं दूयं अवसेसेसु गामागर नगरेसु अणेगाइं
रायसहस्साइं जाव समोसरह) आ प्रमाणे पांचमा इतने हस्तिशीर्ष नगरमां
दमदन्त नामना राजनी पासे, छठ्ठा इतने मथुरा नगरीमां धर राजनी पासे,
सातमा इतने राजगृह नगरमा जरासिन्धुना पुत्र सहदेवनी पासे, आठमा
इतने कौडिल्य नगरमां लीभकना पुत्र इकिम राजनी पासे, नवमा इतने

द्रुपदो राजा अष्टमं दूतं शब्दयित्वाऽवादीत्—गच्छ खलु त्वं कौण्डिल्यनगरं तत्र खलु त्वं 'रुक्मिणं' रुक्मिणं=रुक्मिणामकं भीष्मकसुतं करतल तथैव यावत् समवसरत् पूर्ववत् 'समवसरत्' इति पर्यन्तं वाच्यम् । एवं स द्रुपदो राजा नवमं दूतं शब्दयित्वाऽवादीत्—गच्छ खलु त्वं विराटनगरं, तत्र खलु त्वं 'कीचकं' कीचकं=कीचकनामकं राजानं शतभ्रातृसहितं करतल यावत् समवसरत् अत्रापि व्याख्या पूर्ववत् । एव स द्रुपदो राजा दशमं दूतं शब्दयित्वाऽवादीत्—अवशेषेषु च ग्रामाकरनगरेषु अनेकानि राजसदस्यार्ण यावत् समवसरत्, अत्रापि व्याख्या पूर्ववत्, ततस्तदनन्तरं खलु स दूतस्तथैव=पूर्वोक्तदूतइव निर्गच्छति काम्पिल्यनगरतो निः

में आठवें दूत को कौण्डिल्य नगर में भीष्मक के पुत्र रुक्मिण राजा के पास में नौवें दूत को विराट नगर में सौ भाइयों से युक्त कीचक के पास में, और दशवे दूतों को अवशिष्ट ग्रामों में आकरों में एवं नगरों में हजारों राजाओं के पास जाने के लिये कहा । इन दूतों को राजा द्रुपद ने यह समझादिया कि तुम लोग जब इन राजाओं के पास जाओ तब पहिले उन्हें दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करना और कहना कि काम्पिल्य पुर नगर में द्रुपदकी पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला है सो आप लोग उस में द्रुपद राजा उपर दया कर के शीघ्र से शीघ्र पधारें । राजाकी आज्ञानुसार तीसरे दूतसे लेकर नौवें दूत तक समस्त दूत जिन्हें २ जहाँ २ जाने को कहा था—वे वहाँ २ चले गये । वहाँ जाकर उन्होंने ने जैसा द्रुपद राजा ने इन से करने एव कहने को कहा था—वैसा ही उन्होंने ने वहाँ २ किया और कहा । इस तरह पहिले की तरह यहाँ तक सब व्याख्या समझलेनी चाहिये । (तएणं से दूए तद्देव निगच्छद्,

विराट नगरमा सो लाभ्योथी युक्तं शीयकनी पासे अने दशमा दूतने भाडी ग्ही गयेला भीज प्रायोमा आकरोमां अने नगरोमां उलरो राज्ञोनी पासे जना हुकम कथे आ अथा दूतोने राज्ञ द्रुपदे जतां पडेलां आ वात सरस शीते समज्जवी दीधी इती के ज्यारे तमे राज्ञोनी पासे ज्ञयो त्यारे सो पडेलां पोताना अने इति जेडीने तेजोने नमस्कार करजे अने त्थारपथी तमे तेमने विनती करजे के काम्पिल्य नगरमां द्रुपदनी पुत्री द्रौपदीने स्वयंवर थवानो छे तो आप सो द्रुपद राज्ञ उपर कृपा करीने अविजय त्यां पधारो. राज्ञनी आज्ञा सुज्ज त्रीज इत्थी भाडीने नवमा दूत सुधीन अथा दूतो ज्यो ज्यो तेजोने जवानुं इतुं त्यां त्या पडेज्या त्या पडेथीने तेजोजे द्रुपद राज्ञे जेम आज्ञा करी इती तेमज तेजोजे कथुं अने कहुं, माडीं पडेलांनी जेमज समज्ज लेवुं जेधजे. (तएणं से दूए तद्देव निगच्छद्, जेणेव नामागर जाव

सरति, निर्गत्य यत्रैव ग्रामाकरनगरेषु अनेकानि राजसहस्राणि, तत्रैत्रोपागच्छति
उपागत्य यावत्-समवसरत, 'समवसरत' इति पर्यन्तं दूतवाक्यं प्रवृत्तं बोध्यम् ।
ततः खलु तानि अनेकानि राजसहस्राणि तस्मिन् दूतस्थान्तिके एतन्मर्थं श्रुत्वा
निश्चयं हृष्टतुष्टाः सन्तः दूतं सत्कारयन्ति=सत्कृतं कुर्वन्ति संमानयन्ति.सत्कार्यं,
संमान्य प्रतिविसर्जयन्ति ।

ततः खलु ते वासुदेवप्रमुखा बहुसहस्रसंख्यका राजानः,=पत्येकं २ स्नाताः

जेणेव गामागर जाव समोसरह) वह दशवां दूत उसी तरह से-
पहिले के दूतों के समान कांपिल्य नगर से निकला और निकल कर
जहां ग्राम आकर और नगर थे-वहां पर अनेक राजसहस्रों के पास
गया-वहां जाकर शिष्टाचार पूर्वक उसने सब से इस प्रकार कहा कि
काम्पिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला
है-सो आप सब लोग द्रुपद राजा के ऊपर कृपा करके जल्दी कांपिल्य
पुर नगर पधारे (तएणं ताइं अणेगाइं रायसहस्साइं तस्स दूयस्स
अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टं तं दूयं सक्कारेति, सक्कारित्ता
सम्मणेति, सम्माणित्ता पडिविसज्जेति) इस प्रकार वे अनेक सहस्र
राजा उस दूत के मुख से इस समाचार को सुन कर और उसे अपने
अपने २ हृदयों में अवधारित कर बहुत ही अधिक आनन्द से प्रमुदित
बनकर परम संतोष को प्राप्त हुए । उन्होंने उस दूत का सत्कार किया
सत्कार करके सन्मान किया और सन्मान करके फिर उसे पीछे विसर्जित
कर दिया-भेज दिया । (तएणं ते वासुदेव पामुक्खा वहवे रायसहस्सा पत्तेयं

समोसरह) ते दशमे इत अधानी जेम कांपिल्य नगरथी नीकल्ये अने
नीकणीने न्यां ग्राम आकर अने नगर छता त्या अनेक सहस्रो राजानोनी
पासे गयो. त्यां जेधने नअपणे तेणे सहुने आ प्रमाणे छे छे कांपिल्य
नगरमां द्रुपद राजनी पुत्री द्रौपदीने स्वयंवर थवाने छे तो आप सो द्रुपद
राज उपर कृपा करीने अविदंअ कांपिल्य नगरमां पधारे. (तएण ताइं
अगणेाइं रायसहस्साइं तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टं तं
दूयं सक्कारेति. सक्कारित्ता, सम्मणेति, सम्माणित्ता, पडिविसज्जेति) आ रीते
सहस्रो राजानो ते इतना मुणथी आ अमाअर सांलणीने अने तेने
पोताना हृदयमां धारणु करीने अणअ प्रसन्न तेमअ परम संतुष्ट थया.
तेओअे इतने। सत्कार कर्यो अने सन्मान कर्युं त्थारपछी इतने तेओअे
विदाय आपी. (तएणं ते वासुदेवपामुक्खा वहवे रायसहस्सा पत्तेयं २ ण्हाया

सन्नद्धवद्धर्मितकवचाः यावद् गृहीतायुदप्रहरणाः हस्तिस्कन्धवरगता हयगजरथ
महाभटचटकरप्रकरवृन्दपरिक्षिप्ताः=अश्वगजरथमहासुमटसमूहपरिवृताः, स्वकेभ्यः
स्वकेभ्योअभिनिर्गच्छन्ति, अभिनिर्गत्य यत्रैव पञ्चालो जनपदस्तत्रैव प्राधारयन्
गमनाय=गन्तुं प्रवृत्ताः ॥ सू० १९ ॥

मूलम्—तएणं से दुवए राया कोडुंवियपुरिसे सदावेइ सदा-
वित्ता एवं वयासी—गच्छहणं तुमं देवाणुप्पिया ! कांपिल्ल-
पुरे नयरे वहिया गंगाए महानदीए अदूरसामंते एगं महं
सयंवरमंडवं करेह अणेगखंभसयसन्निविट्टं लीलट्टियं साल-
भंजिआगं जाव पच्चप्पिणांति, तएणं से दुवए राया दोच्चंपि
वांडुंवियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव

रणहाया सन्नद्ध हस्तिखंभवरगया हय गजरह० महया भडचडगररहप-
हकर० नगरेहितो २ नगरेहितो अभिनिर्गच्छति २ जेणेव पांचाले जण-
वए तेणेव पहारेत्थ गमणाए) यादमें जब दून समाचार देकर वापिस
कांपिल्य पुर नगर में आंचुके तब वासुदेव प्रमुख वे अनेक शहस्त्र राजा
प्रत्येक स्नान से निवटे, और सजाकर अपने २ शरीर पर कवच पहिरा,
यावत् आयुध और प्रहरणों को अपने २ साथ लिया, अपने २ प्रधान
हाथियों पर चढे और हाथी घोडे रथ और महाभटों के समुदाय से
घिरे हुए होकर ये सब अपने राज महलोंसे—नगरों से—निकले—निलकर
जहां पांचाल जनपद था उस ओर चल दिये ॥ सू० १९

सन्नद्धहस्तिखंभवरगया हयगजरह० महया भडचडगररहपहकर० नगरेहितो २
नगरेहितो अभिनिर्गच्छति २ जेणेव पांचाले जणवए तेणेव पहारेत्थ गमणाए)
त्यारपधी त्यारे णधा द्वतो समाचार आपीने कांपिल्यपुर नगर पाछा
आनी गया त्यारे वासुदेव प्रमुख धरुा हुन्तेरे शान्त्योओ स्नान कर्या
अने त्यारणाड पोताना शरीर उपर डवयो धारणु कर्या यावत् आयुधी अने
प्रहरणोने पोतानी साथे लीधा त्यारपधी तेओ णधा पोतपोताना प्रधान
हाथीओ उपर सवार थया अने हाथी, घोडा, रथ अने महाभटोना समु-
दायनी साथे पोताना नजभडेत्थी—नगरेत्थी नीडोया अने नीडणीने न्यां
पांचाल जनपद स्तो ते तरइ रवाना थया ॥ सूत्र १९ ॥

भो देवाणुष्पिया ! वासुदेवपामुक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं
 आवासे करेह तेवि करेत्ता पच्चप्पिणांति, तएणं दुवए
 वासुदेवपामुक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आगमं जाणेत्ता
 पत्तेयंर हत्थिखंध जाव परिवुडे अग्घं च पज्जं च गहाय सवि-
 ङ्घिण् कंपिल्लपुराओ निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव ते वासु-
 देवपामुक्खा बहवे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ उवाग-
 च्छित्ता ताइं वासुदेवपामुक्खाइं अग्घेण य पज्जेण य सक्कारेइ
 सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता तेसिं वासुदेवपामुक्खाणं
 पत्तेयंर आवासे वियरइ, तएणं ते वासुदेवपामोक्खा जेणेव
 सयार आवासा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता हत्थिखं-
 धाहितो पच्चोरुहंति पच्चोरुहित्ता पत्तेयं खंधावारनिवेसं
 करेति करित्ता सएर आवासे अणुपविसंति अणुपविसित्ता
 सएसु र आवासेसु य आसणेसु य सयणेसु य सन्निसन्ना य
 संतुयट्ठा य बहूहिं गंधवेहि य नाडएहि य उवगिज्जमाणा य
 उवणच्चिज्जमाणा य विहरंति, तएणं से दुवए राया कंपिल्ल-
 पुरं नगरं अणुपविसइ अणुपविसित्ता विउलं असणं उवक्ख-
 डावेइ उवक्खडावित्ता कोडुंविचपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं
 वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुष्पिया ! विउलं असणं सुरं
 च मज्जं च संसं च सीधुं च पसणं च सुवहुपुप्फवत्थगंधम-
 ल्लालंकारं च वासुदेवपामोक्खाणं रायसहस्साणं आवासेसु
 साहरह, तेवि साहरंति, तएणं तं वासुदेवपामुक्खा तं विउलं

अस्यं४ जाव पसन्नं च आसाएमाणा४ विहरंति, जिमियाभुत्तु-
 त्तरागया वि य णं समाणा आयंता जाव सुहासिणवरगया
 वहूहिं गंधवेहिं जाव विहरंति, तएणं से दुवए राया पुव्वाव-
 रणहकालसमयांसि कोडुंवियपुरिसेसदावेइ सदावित्ता एवं वयासी
 गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! कंपिल्लपुरं सघाडग जाव पहे
 वासुदेवपासुवखाण य रायसहस्साणं आवासेसु हत्थिखंधवरगया
 महया२ सहेणं जाव उग्घोसेसाणा२ एवं वदह—एवं खल्लु देवा-
 णुप्पिया कल्लं पाउ० दुवयस्स रणो धूयाए चुलणीए देवीए
 अत्तयाए धट्टुज्जुणस्स भगिणीए दोवईए रायवरकण्णाए
 सयंवेरे भविस्सइ, तं तुव्भे णं देवाणुप्पिया ! दुवयं रायाणं
 अणुगिणहेमाणा पहाया जाव विभूसिया हत्थिखंधवरगया सको-
 रं० सेयवरचामर० हयगयरह० महया भडचडगरेणं जाव
 परिक्खित्ता जेणेव सयंवरसंडवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 पत्तेयं२ नामंक्किएसु आसणेसु निसीयहर दोवइं रायकण्णं पडि-
 वालेमाणा२ चिट्ठह, घोसणं घोसेहर मम एयमाणत्तियं पच्च-
 प्पिणह, तएणं ते कोडुंविया तहेव जाव पच्चप्पिणंति, तएणं
 से दुवए राया कोडुंवियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी
 —गच्छह णं तुव्भे देवाणुप्पिया ! सयंवरसंडपं आसियसंभज्जि-
 ओवलित्तं सुगंधवरगंधियं पंचवण्णपुप्फपुंजावचारकलियं काला-
 गरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्क जाव गंधवट्ठिभूयं मंचाइमंचकलियं करेह
 करित्ता वासुदेवपासुवखाणं वहुणं रायसहस्साणं पत्तेयं२ नामं-

काइं आसणाइं अत्थुयपच्चत्थुयाइं रएह२ एयमाणत्तियं पच्च-
पिणह, ते वि जाव पच्चपिणंति, तएणं ते वासुदेवपामुक्खा
बहवे रायसहस्सा कल्लं पाउ० णहाया जाव विभूसिया हत्थि-
खंधवरगया सकोरंट० सेयवरचामराहिं हयगय जाव परिवुडा
सव्विड्डीए जाव रवेणं जेणेव सयंवरे तेणेव उवागच्छइ उवाग-
च्छित्ता अणुपविमंति अणुपविसिन्ना पत्तेयं२ नामंकिएसु आस-
णेसु निलीयंति दोवइं रायवरकण्णं पडिवालेमाणा चिट्ठंति,
तएणं से पंडुए राया कल्लं णहाए जाव विभूसिए हत्थिखंध-
वरगए सकोरंट० हयगय० कंपिल्लपुरे मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति
जेणेव सयंवरमंडवे जेणेव वासुदेवपामुक्खा बहवे रायसहस्सा
तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता तेसिं वासुदेवपामुक्खाणं
कश्यल० बद्धावेत्ता कणहस्स वासुदेवस्स सेयवरचामरं गहाय
उववीयमाणे चिट्ठंति ॥ सू० २० ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स द्रुपदो राजा कौटुम्बिकपुर-
पान् शब्दपति, शब्दपित्वा एवमवादीत्—गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः !
काम्बिल्यपुरस्य नगरस्य बहिः प्रदेशे गङ्गाया महानद्या अदूरसामन्ते=नातिदूरे
नातिसमापे एकं महान्तं सयंवरमण्डलं कुरुत कोट्टशमित्याह—‘ अणेग ’ इत्यादि ।

‘ तएणं से दूवए राया कोडु विय पुरि से ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (दूवए राया) द्रुपद राजा ने (कोडुं विय
पुरिसे सदावेह) कौटुम्बिकपुरुषों को बुलाया (सदावित्ता एयं वयासी)
बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—(गच्छहणं तुमं देवाणुप्पिया ! कंपिल्लपुरे
नयरे बहिया गंगाए महानईए अदूरसामन्ते एगं महं सयंवरमंडवं करेह,

‘ तएणं से दूवए राया कोडु विय पुरिसे ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (दूवए राया) द्रुपद राजा ने (कोडु वियपुरिसे
सदावेह) कौटुम्बिक पुरुषोन्ने जेलाया. (सदावित्ता एयं वयासी) जेलायीने
तेमने आ प्रभावे उल्लुं के (गच्छहणं तुमं देवाणुप्पिया ! कंपिल्लपुरे नयरे
बहिया गंगाए महानईए अदूरसामन्ते एगं महं सयंवरमंडवं करेह, अणेगखंभस-

अनेकस्तम्भगतसंनिविष्टं=अनेकशतस्तम्भयुक्तं, 'लीलद्वियसालभंजिभागं' लीला-स्थितगालभञ्जिकं=लीलाया स्थिता शालभञ्जिका=पुत्तलिका यस्मिंस्तादृशं, यावत्- 'तथाऽस्तु' इति कृत्वा ते कौटुम्बिकपुरुषास्तदाज्ञां स्वीकृत्य तथैव संपाद्य, प्रत्यर्पयन्ति=मण्डपोनिर्मित इति निवेदयन्ति। ततः खलु स द्रुपदो राजा 'दोचंपि' द्वितीयवारमपि कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-हे देवानु-प्रियाः ! क्षिप्रमेव वासुदेवप्रमुखाणां बहूनां राजसहस्राणाम् आवासं-वासस्थानं कुरुत=चयत, तेऽपि कौटुम्बिकपुरुषाः 'करेत्ता' कृत्वा=वासुदेवादीनां निवासार्थं पृथक् पृथक् योग्यं वासस्थानं विधाय प्रत्यर्पयन्ति=द्रुपदाय राज्ञे कथयन्ति। ततः

अणेग खंभसयसन्निविष्टं लीलद्वियसालभंजिभागं जाव पचचप्पिणंति) हे दे-वानुप्रियो ! तुमलोग जाओ-और कांपिल्यपुर नगरके बाहिर गंगा महा-नदी के नअतिदूर और न अति समीप-उचित स्थान-में एक बड़ाभारी स्वयंवरमंडप बनाओ। जो अनेक सैकड़ों स्तंभोंसे युक्त हो तथा जिसमें विविध प्रकार की क्रीडा करती हुई पुत्तलिकाएँ खजा कर लगाई गई हों। यावत् "तथास्तु" कह कर उन लोगों ने राजा की इस आज्ञा को मान लिया और उसी आज्ञाके अनुसार स्वयंवर मंडप बना कर इसकी खबर राजाको कर दी। (तएणं से दूवए राया दोचंपिकोडुंविघ पुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव देवाणुप्पिया। वासुदेव पासु-कखाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेइ ते वि करेत्ता पचचप्पिणंति इसके बाद द्रुपद राजा ने दूसरे कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया-बुलाकर उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्रातिशीघ्र वासुदेव

यसन्निविष्टं लीलद्वियसालभंजिभागं जाव पचचप्पिणंति) हे देवानुप्रियो ! कांपिल्य-पुरनगरनी भंडार मंडा नदी गंगाथी वधारे इर नडीं तेमन्न वधारे नल्लक पणु नडि ओवा थोग्य स्थणे ओक लारे विशाण स्वयंवर मंडप तैयार करे। हे जे धणु। से'कडे धाललाओवाणे डोय, तेमन्न जेमां अनेक नतनी डीडा करती पूत-णीओ सन्नवीने भूकवामा आवी डोय ते लोकेओ पणु 'तथास्तु' कडीने सन्ननी आज्ञा स्वीकारी लीधी अने तयारपथी तेमनी आज्ञा मुज्जण न स्वयं-वर मंडप तैयार करीने सन्नने तेनी भअर आवी (तएणं से दूवए राया दोचंपि कोडुंविघपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव देवाणुप्पिया। वासुदेव पासु-कखाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेइ, ते वि करेत्ता पचचप्पिणंति) तयारपथी द्रुपद सन्नने भीन कौटुम्बिक पुरुषोने ओलाव्या अने ओलावीने तेमने कणु हे हे देवानुप्रियो ! तसे लोके अविलम्ब वासुदेव प्रभुण धणु।

खलु द्रुपदो राजा वासुदेवप्रमुखाणां बहूनां राजसहस्राणाम् आगमं=आगमनं
ज्ञात्वा प्रत्येकं २ हस्तिस्कंधवरगतः, हयगजरथमहाभटसमूहपरिवृतः, अर्घ्यं=
पानार्थं जलं पार्थ=चरणप्रक्षालनार्थमुदकं च गृहीत्वा सर्वद्वर्षां छत्रचामरादिरूपया
काम्पिल्यपुरतो निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव ते वासुदेवप्रमुखा बहुसहस्रसंख्याका-
राजानस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तानि वासुदेवप्रमुखाणि बहूनि राजसहस्राणि=
तान् बहुसहस्रसंख्याकान् वासुदेवप्रमुखान् राज्ञः, अर्घ्येण च पाशेन च सत्कार-

प्रमुख अनेक सहस्र राजाओं को बैठने के लिये पृथक् स्थान बनाओ ।
उन्होंने राजाकी आज्ञानुसार बैसा ही किया और इसकी खबर राजा को
कर दी । (तएणं दूवए वासुदेव पामुक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आगमं
जाणेत्ता पत्तेयं २ हत्थिखंध जाव पडिबुडे अग्गं च पज्जं च गहाय सन्वि-
ड्ढीए कंपिल्लपुराओ निगगच्छइ, निगगच्छित्ता जेणेव ते वासुदेव पामोक्खा
बह्वे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताइं वासुदेवपामु-
क्खाइं अग्घेण य पज्जेण य सक्कारेइ, सम्माणेइ) इसके बाद द्रुपद
राजा वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं को आगमन जानकर अपने प्रधान
हस्ती पर आरूढ हो हय, गज, रथ तथा महाभटों के समूह के साथ २
प्रत्येक राजा के लिये अर्घ्य-पीने के लिये पानी, पाय-चरण प्रक्षालन के
जल-लेकर छत्रचामर आदि अपना राजविभूतिसे युक्त होकर कांपिल्य
पुर नगर से निकले-निकलकर जहां वासुदेव प्रमुख हजारों राजा थे वहां
गये । वहां जाकर उन्होंने उन वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं का अर्घ्य

दुन्दरे राजाओने भेसवा भाटे लुदा लुदा स्थान तैयार करे ते दोडोअे पणु
राजानी आज्ञा मुअणअ पणु काम पतावी दीधु अने काम थउ गयानी अअर
राज सुधी पडोअ्याडी दीधी. (तएणं दूवए वासुदेवपामुक्खाणं बहूणं राय-
सहस्साण आगमं जाणेत्ता पत्तेयं २ हत्थिखंध जाव पडिबुडे अग्गं च पज्जं च
गहाय सन्विड्ढीए कं पिल्लपुराओ निगगच्छइ, निगगच्छित्ता जेणव ते वासुदेवपामोक्खा
बह्वे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताइं वासुदेवपामुक्खाइं
अग्घेण य पज्जेण य सक्कारेइ, सम्माणेइ) तयारपछा वासुदेव प्रमुअ दुन्दरे
राजओनुं आगमन सालणीने द्रुपद राज पोतना प्रधान ढाथी उपर सवार
थया अने घोडा, ढाथी, रथ तेमअ मडालटोना समूडनी साथे दरेके दरेक
राजने भाटे अर्घ्य-पीवा भाटे पाणी-लधने छत्र आमर वगेरे पोतानी राज-
विभूतिथी युक्ता थधने कपिल्यपुरथी अडार नीऊया अने नीऊगीने न्यां
वासुदेव प्रमुअ दुन्दरे राजओ इता त्या पडोअ्या. त्या अने तेमछे ते

यति, संमानयति, सत्कार्यं सत्कार कृत्वा, सामान्य तेषां वासुदेवप्रमुखाणां प्रत्येकं २ पृथक् २ आवासे 'विपरड' वितरति । ततः खलु ते वासुदेवप्रमुखाः यत्रैव स्वकाः २=निजा २ आवासास्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य हस्तिस्कन्धात् प्रत्यवरोहन्ति प्रत्यवरोह्य प्रत्येकं २ स्कन्धावारनिवेशं कुर्वन्ति, कृत्वा स्वके स्वके आवासेऽनुप्रविशन्ति, अनुप्रविश्य स्वकेषु स्वकेषु आवासेषु-आसनेषु च शयनेषु च सन्निपण्णा उपविष्टाश्च तथा 'संतुषट्वा' संतुष्वर्तिताः परिवर्तितपार्श्वार्थं बहुमिर्गन्धर्वैश्च ' नाड-एहि य ' नाटकैश्च ' उवगिज्जमाणा य ' उपगीयमानाश्च, ' उवगिज्जमाणा य '

और पाद्य से सत्कार किया-सन्मान किया । (सत्कारित्ता, सम्मानित्ता, तेषां वासुदेवप्रमुखाणां पत्तेयं २ आवासे विपरड, तएणं ते वासुदेव प्रामुखा जेणेव सया २ आवासा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हस्ति खंधाहिं तो पचचोरुहंति, पचचोरुहित्ता पत्तेय खंधावारनिवेशं करेति) सत्कार सन्मान करके उन्होंने उन सब वासुदेव प्रमुखों को प्रत्येक के लिये पृथक् २ आवास-स्थान-दिया, । इसके पश्चात् वे वासुदेव प्रमुख राजा जहां अपना २ स्थान नियत था-वहां गये । वहां जाकर के अपने २ हाथियों पर से नीचे उतरे और उतर करके उन्होंने अपनी २ स्कन्धा-वार स्थापित कर दी-अर्थात् सैन्य को ठहरा दिया । (करित्ता सए २ आवासे अणु०) ठहरा कर फिर वे अपने २ आवासों में प्रविष्ट हुए (अणुप्रविसित्ता सएसु २ आवासेसु य आसनेसु य सयनेसु य सन्नि-सन्ना य संतुषट्वा य वहुहिं गंधर्वेहिं य नाडएहि य उवगिज्जमाणा य

वासुदेव प्रमुख इनके शक्तियों अर्थात् अपने पाद्यों सत्कार तेमञ्ज सन्मान कर्तुं । (सत्कारित्ता सम्मानित्ता तेषां वासुदेवप्रामुखाणां पत्तेयं २ आवासे विपरड, तएणं ते वासुदेवप्रामुखा जेणेव सया २ आवासा तेणेव उवागच्छइ, उवा-गच्छित्ता हस्तिखंधाहितो पचचोरुहंति, पचचोरुहित्ता पत्तेयं खंधावारनिवेशं करेति) सत्कार तेमञ्ज सन्मान करीने तेमण्णे वासुदेव प्रमुख दरेके दरेके शक्तने णुडं णुडं आवास स्थान आण्युं त्थारपणी वासुदेव प्रमुख शक्तयो न्था पोतपोतानुं आवास स्थान नद्धा करवामा आण्युं इतुं त्या गया. त्यां ण्ठने तेओ पोतपोताना इथीओ उपरथी नीथे उतर्या अने उतरिने तेओओ पोतपोतानी स्कन्धावार-छावणी स्थापित करी ओट्ठे के सेनाने पडाव नाथ्ये. (करित्ता सए २ आवासे अणु०) छावणी नाथीने तेओ पोतपोताना आवास स्थानना प्रविष्ट थया (अणुप्रविसित्ता सएसु २ आवासेसु य आसनेसु य सयने-सु य सन्नि-सन्ना य संतुषट्वा य वहुहिं गंधर्वेहिं य नाडएहि य उवगिज्जमाणा य

उपनृत्यमानाश्च गीत श्राव्यमाणाश्च, नृत्यं दर्शयमानाश्च विहरन्ति । ततः रूलु स
द्रुपदो राजा कांपिल्यपुरं नगरमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य विपुलम्-अशनं पानं
स्वाद्यं स्वाद्यम् उपस्वारयति, संस्कारयति, उपस्कार्य कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति
शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत रूलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! विपुलम्, अशनं पानं
स्वाद्यं स्वाद्यं सुरां च मज्जं च मांसं च सीधुं च प्रसन्नां च सीधुः प्रसन्ना च मदिरा
विशेषे. तथा सुबहु पुष्पवत्स्रग्धमाल्यालंकारं च वासुदेवप्रमुखाणां राजसहस्राणाम्
आवासेषु 'साहरह' संहरत=उपनयत, तेऽपि कौटुम्बिकपुरुषारतथैव संहरन्ति ।

उवणच्चिज्जमाणा य विहरन्ति, तएणं से दुवए राया कंपिल्लपुरं नगरं
अणुपविसइ, अणुपविसित्ता विउलं असण ४ उवक्खडावेइ) प्रविष्ट
होकर के वे अपने अपने आवास स्थानों में आसनो पर एवं विस्तरों
पर जाकर अच्छी तरह बैठ गये लेट गये । वहाँ लेटे हुए उनकी अनेक
गंधर्वोंने, अनेक नाट्यकारों ने स्तुति की-उनकी प्रशंसा के गीत गाए,
नाटक दिखलाया । इसके बाद द्रुपद राजा कांपिल्यपुर नगर के भीतर
आये-वहाँ आकर के उन्होंने विपुलमात्रा में अशन, पान, स्वाद्य एवं
स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार तैयार करवाया-पकवाया । (उवक्खडावित्ता
कोडुवियपुरिसे सहावेइ सहावित्ता एवं वयासी-(गच्छह णं तुवमे देवाणु
प्पिया ! विउलं असणं ४ सुरं च मज्जं च सीधुं च पसणं च सुबहु
पुष्पवत्थ गंधमल्लालंकरं च वासुदेवपामोक्खाणं रायसहस्राणं आवासे
सु साहरह) तैयार करवा कर फिर उन्होंने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया
बुलाकर उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रियो तुमलोग जाओ और इस

उवणच्चिज्जमाणा य विहरन्ति, तएणं से दुवए राया कंपिल्लपुरं नगरं अणुप
विसइ अणुपविसित्ता विउलं असण ४ उवक्खडावेइ) प्रवेशीने तेओ पोतपोताना
आसनेो उपर सारी रीते ओसी गया, सूई गया त्यां सूई गयेला तेओनी
धणा गंधर्वोओ, धणा नाट्यकारोओ स्तुति करी, तेमनी प्रशंसाना गीतो गायां
अने नाटके लखोयां. तयारपछी द्रुपद राजा कांपिल्यपुर नगरमां आओया त्यां
आवीने तेओओ पुष्पण प्रमाणमां अशन, पान आद्य अने स्वाद्य रूप तयार
लतनेो आहार तैयार करावडाओ. (उवक्खडावित्ता कोडुवियपुरिसे सहावेइ,
सहावित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुवमे देवाणुप्पिया ! विउल असण ४ सुर च
मज्जं च मांसं च सीधुं च पसणं च सुबहुपुष्पवत्थगधमल्लालंकारं च वासु-
देवपामोक्खाणं रायसहस्राणं आवासेसु साहरह) तैयार करवीने तेमने कोटुम्बिक
पुरुषोने ओलाओया अने ओलावीने तेओने कल्लं के डे हेवानुप्रियो ! तसे

ततः खलु ते वासुदेवप्रमुखास्तद् विपुलम्, असनं पानं खाद्यं स्वाद्यं यावत् प्रसन्नां च ' आसायमाणा ' आस्वादन्तो विहरन्ति, अपि च खलु ' जिमिया ' जिमिताः-भुक्तवन्तः, ' भुत्तुत्तरागया ' भुक्तोत्तरागताः भुक्तोत्तरं=भोजनानन्तरम् आगताः भुवन्तेत्यत्र भावे क्तः भोजनस्थानादासन्नप्रदेशे मुखप्रक्षालनार्थमागताः सन्तः ' आयता ' आचान्ताः-कृतचुल्लङ्गाः, यावत्-सुखामनवरगताः=आसनवरे सुखो-

अशन, पान, खाद्य स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार को सुरा मद्य, सीधु और प्रसन्न मदिरा को और अनेक विध इन पुष्पों को वस्त्रों को गंधमाल्य एवं अलंकारों को वासुदेव प्रमुख राजसहस्रों के आवास स्थानों पर ले जाओ। (ते वि साहरन्ति) राजा की आज्ञानुसार वे सब उन अशनादिवस्तुओं को वहां पर ले गये। (तएणं ते वासुदेवपामु-क्त्वा तं विउलं असणं ४ जाव पसन्नं च आसायमाणा ४ विहरन्ति) इसके बाद उन वासुदेव प्रमुख राजाओं ने उस आनीत विपुल अशनादिरूप प्रसन्ना मदिरा तक की आहार की सामग्री को खाया (जिमिया भुत्तुत्तरागया वि य णं सयाणा जाव सुहासणवरगया बहूर्हि गंधवेहि जाव विहरन्ति) खा पी कर जब वे निश्चिन्त हो चुके और सुख प्रक्षालन के लिये भोजन स्थान से उठकर दूसरे निकट स्थान पर आये-तब उन्होंने कुल्ला किया-और फिर सुन्दर अपने २ आसनों पर जाति पूर्वक आकर बैठ गये। इनके बैठते ही धनोविनोद के लिये

दोहा न्तो अने आ अशन, पान, भाद्य, स्वाद्य इय आर नतना आडा- रने भुग, मद्य, मांस, श्रीधु अने प्रसन्न मदिराने अने धष्ठी नतना आ पुष्पाने, वस्त्राने, गंधमाल्य अने अलंकाराने वासुदेव प्रमुख राजसहस्राना आवास स्थाने पडोयाडो। (ते वि साहरन्ति) राजनी आशा प्रमाणे तेओ अधाओ ते भाद्य पदार्थाने राजओना आवास स्थाने पडोयाडी दीधा। (तएणं ते वासुदेवपामुक्त्वा तं विउलं असणं ४ जाव पसन्नं च आसायमाणा ४ विहरन्ति) त्पारपधी ते वासुदेव प्रमुख राजओओ त्यां पडोयाडवामां आवेला पुष्पण प्रमाणमां अशन वगेदेशी मांडीने प्रसन्न मदिरा सुधीना अधी नतना आडा-र सामग्री वगेदेनुं भूय इयिपूर्वक पान कर्युं।

(जिमिया भुत्तुत्तरागया वि य णं सयाणा आयन्ता जाव सुहासणवरगया बहूर्हि गंधवेहि जाव विहरन्ति)

जमी परवारीने न्यारे तेओ निश्चित थध चूक्यां त्यारे तेओ भुग प्रक्षालन माटे लोअन स्थानथी जिला थधने नील पासेना स्थाने गया। त्यां तेओओ डोगशा कर्या अने त्पारपधी तेओ इरी पोतपोताना सुद्धर आसने।

पविष्टाः बहुभिर्गन्धर्वैर्यावद् नाटकैश्चोपगीयमानाः उपनृत्यमानाश्च विहरन्ति-
आसते स्म इत्यर्थः ।

ततः खलु स द्रुपदो राजा पूर्वापराह्णकालसमये कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति,
शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु हे देवानुप्रियाः ! काम्पिल्यपुरे नगरे शृङ्गा-
टक यावत्-त्रिकचतुष्कचत्वर महापथपथेषु वासुदेवप्रमुखाणां च राजसहस्राणामावा-
सेषु आवाससमीपेषु हस्तिस्कन्धरगता महता र शब्देन-उच्चैः स्वरेण यावद्
उद्घोषयन्तः र एवं वदत-एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! कलये-आगामीनि द्वितीय-

गंधर्वों ने नाना प्रकार के स्तुत्यात्मक गीत गाये और नाट्यकारों ने
नृत्य दिखलाये । (तएणं से दुवए राया पुब्बावरण्हकालसमयंसि कोडुं
विद्यपुरिसे सदावेड,सदावित्ता, एवं वयासी, गच्छह णं तुमे देवाणुप्पिया !
कंपिल्लपुरे सिंघाडग जाव पहेसु वासुदेवपासुकखाण य राय सहस्राण
य आवासेसु हत्थि खंघवरगया महयांर सदेणं जाव उग्घोसेमाणा र
एवं वदह, एवं खलु देवानुप्पिया ! कललं पाउ० दुवयरस रण्णो धूयाए
चुलणीए देवीए अत्तयाए धट्टजुण्हसस भगिणीए दोवईए रायवरकन्नाए
सयंवरं भविस्सइ) इनके बाद द्रुपदराजा ने पूर्वापराह्ण काल के समय
में कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाया और बुलाकर उनसे ऐसा कहा-हे
देवानु प्रियों ! तुमलोग हाथी पर बैठकर कांपिल्यपुर नगर में जाओ
और वहाँ शृंगगाटक यावत् त्रिक चतुष्क चत्वर महापथ आदि मार्गों में
जो वासुदेव प्रमुख राजा के आवासस्थान हैं उनके समीप बडे जोर र

उपर शांतिपूर्वक गेयी गया तेमना भने-विनेद भाटे गंधर्वोअे अनेक
नतना स्तुत्यात्मक गीतो गायां अने नाट्यकारोअे नृत्य करी यताव्यां.

(तएणं से दुवए राया पुब्बावरण्हकालसमयंसि कौडुंविद्यपुरिसे सदावेड,
सदावित्ता, एवं वयासी, गच्छह णं तुमे देवाणुप्पिया !कंपिल्लपुरे सिंघाडग जाव
पहेसु वासुदेवपासुकखाण य महया र सदेणं जाव उग्घोसेमाणा र एवं वदह,
एवं खलु देवाणुप्पिया ! कललं पाउ० दुवयरस रण्णो धूयाए चुलणीए देवीए
अत्तयाए धट्टजुण्हसस भागणीए दोवईए रायवरकन्नाए सयंवरं भविस्सइ)

त्यारपछी द्रुपः राजाअे पूर्वापराह्ण कालना समये कौटुम्बिक पुरुषोअे
बोलाव्या अने बोलावीने तेमने आ प्रभाणे कहुं के हे देवानुप्रियो ! तमे
बोके हाथी उपर गेयीने कांपिल्यपुर नगरमां नअे अने त्यांना शृंगगाटक
यावत् त्रिक चतुष्क चत्वर महापथ वगेदे मार्गोमां-के मार्गोनी पासो वासुदेव
प्रमुख राजाअेना आवास घरो छे तेनी पासो अहु भोटा साहे आनतनी

दिवसे प्रादुर्भूतमभातायां रजन्यां तेजसा ज्वलति सूर्येऽभ्युदते द्रुपदस्य राज्ञो
 दुहितुः=पुत्र्याः, चुलन्यादेव्या आत्मजायाः, धृष्टद्युम्नस्य भगिन्या द्रौपद्या राजवर-
 कन्यायाः स्वयंवरो भविष्यति, ततः=तस्मात् खलु हे देवानुप्रिया ! गृह्यं द्रुपदं
 राजानमनुगृह्णन्तः रनाता यावत्-सर्वालङ्कारविभूषिता-हस्तिस्कन्धवरगताः सको-
 रण्टमाल्यदासना छत्रेण प्रियमाणेन श्वेतवरचामरैरुद्धूयमानैश्च युक्ताः हयग-
 जरथमहाभटकरेण चतुरङ्गदलेन यावत् परिक्षिताः=परिवृताः यत्रैव स्वयंवर-

से ऐसी घोषणा करते हुए कहो-कि हे देवानुप्रिय ! कल सूर्योदय होने
 पर द्रुपद राजा की पुत्री चुलनी देवी की आत्मजा और धृष्टद्युम्न की
 बहिन राजवर कन्या-द्रौपदी का स्वयंवर होगा (तं तुभ्ये णं देवानुप्रिया !
 द्रुपयं रायाणं अणुगिण्हेमाणा ष्हाया जाव विभूषिया हत्थिखंधवरगया
 सकोरण्टं सेयवर चामरं हय गयरहं सहया भडचडगरेणं जाव
 परिविखत्ता जेणेव स्वयंवर मंडवे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छिता पत्तेयं
 नामंक्रिएसु आसणेसु निस्सीयह २ दोवइं रायकण्णं पडिवालेमाणा २
 चिद्वह) इस लिये हे देवानुप्रियों ! आपलोग द्रुपदराजा के ऊपर कृपा
 करके स्नान आदि से निवट कर एवं समस्त अलंकारों से विभूषित
 होकर जहाँ स्वयंवर मंडप है वहाँ पधारें । आते समय हाथियों पर
 बैठकर आवें । कोरण्ट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित छत्र उभ
 समय आप सब के ऊपर तने हों और श्वेत सुन्दर चामर ऊपर धोरे जा
 रहे हों । हय, गज, रथ एवं महाभटों का समूहरूप चतुरंगदल आप

घोषणा करो के हे देवानुप्रियो ! आवती डावे सवार थता द्रुपद रान्दनी पुत्री
 चुलनी देवीनी आत्मजा अने धृष्टद्युम्ननी णडेन राजवर कन्या द्रौपदीने।
 स्वयंवर थशे.

(तं तुभ्ये णं देवानुप्रिया ! द्रुपयं रायाणं अणुगिण्हेमाणा ष्हाया जाव विभू-
 मिया हत्थिखंधवरगया सकोरण्टं सेयवरचामरं हय गय रहं सहया भडचड-
 गरेणं जाव परिविखत्ता जेणेव स्वयंवरमंडवे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छिता
 पत्तेयं नामंक्रिएसु आमणेसु निस्सीयह २ दोवइं रायकण्णं पडिवाले माणा २ चिद्वह)

ओथी हे देवानुप्रियो ! तमे लोके द्रुपद राजा उपर भडेरणानी करीने
 स्नान वगेरेथी परवारीने तथा समस्त अलंकारोथी विभूषित थधने न्यां
 स्वयंवर मंडप छे, त्या हाथीओ उपर सवार थधने पधारो. कौरंट पुष्पोनी
 माणाओनी शोभतुं छत्र ते वणते तमारा उपर ताणेलु डोखु लोथओ अने
 सड्ढे थभरो पणु तमारा उपर डेणाना डोवा लोथओ हाथी, रथ अने भडा-
 णोठाना समूह रथ अतुरगिणी मेना तमारी साथे डोवी लोथओ. स्वयंवर

मण्डपस्तत्रैवोपागच्छत, उपागत्य प्रत्येकं ' नामक्रियसु ' नामाङ्कितेषु स्व स्व-
नामाक्षरयुक्तेषु आरानेषु निदीदत, निषद्य द्रौपदीं राजकन्यां ' पडिवालेमाणा २ '
प्रतिपालयन्तः २ प्रतीक्षमाणाः २ तिष्ठत इति घोषणां घोषयत, घोषयित्वा
समैतामाङ्गलिकां प्रत्यर्पयत, ततः खलु ते कौटुम्बिकारतथैव यावत् प्रत्य
र्पयन्ति । ततः खलु स द्रुपदो राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा
एवमत्रादीद्-मच्छत खलु पूयं हे देवानुप्रियाः । स्वयंवरमण्डपम् " आसियसंम-
ज्जिओवलित्तं " आसित्तसंमार्जितोपलित्तम्=आसित्तम्-जलप्रक्षेपेणार्जितं, संमार्-
जितं-कवचप्रक्षेपेण संशोधितम्, उपलित्तं-मृद्गोमयादिभिरनुलित्तं, तथा-
सुगंधवरगंधियं ' सुगंधवरगन्धितं-अगुरुगुगुलकर्पूरसरलदाहादिजनितसुगन्धयुक्तं,
' पञ्चवर्णपुष्पपुञ्जोवयारकलियं ' पञ्चवर्णपुष्पपुञ्जापचारकलित्तं । ' कालागुरुपवर-
कुंदुरुकुरुकुरु-जात्र गन्धवद्विभूयं ' कालागुरुपवरकुन्दुरुकुरुकुरु-यावद्-गन्धवद्वि-
भूतं, अत्र यावच्छब्देन-यूवदञ्जंतमघनघंतगन्धुद्धुयाभिरामं ' इति बोध्यम् ।

सब के साथ ही । मण्डप में आकर प्रत्येक जन अपने अपने नामवाले
आसन पर बैठजावे । बैठकर फिर वहाँ वह राजवर कन्या द्रौपदी की
प्रतीक्षा करें । (घोषणं घोसेह २ सम एवमाणत्तियं पञ्चप्पिणह) इस
प्रकार की घोषणा करो और जब तुमलोग ऐसी घोषणा कर चुको तब
इसकी हमें पोछे खबर दो । (तएण ते कोडुविया तहेव जाव पञ्च-
प्पिणति) उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वृषाज्ञानुसार ऐसा ही किया-बाद
में हमलोग आपकी आज्ञानुसार घोषणा कर चुके हैं ऐसी सूचना राजा
के पास भेज दी । (तएणं से दुवए राया कोडुविय पुरिसे सदावेइ,
सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुग्गे देवाणुप्पिया ! स्वयंवरमण्डपं
आसियसंमज्जिओवलित्तं सुगंधवरगंधियं पञ्चवर्णपुष्पपुञ्जोवयार-
कलियं कालागुरुपवरकुंदुरुकुरुकुरु जात्र गन्धवद्विभूयं मंचाइमंचकलियं

मंडपमां आसने दरेके दरेके पोतपोताना नामवाणा आसन उपर भेसी जय.
त्यां भेसीने तेओ राजवर कन्या द्रौपदीना आगमननी प्रतीक्षा करे. (घोषणं
घोसेह २ सम एवमाणत्तियं पञ्चप्पिणह) आ रीते तमे घोषणा करे अने
आम थई जय त्पारे अने भअर आपे। (तएणं ते कोडुविया तहेव जाव
पञ्चप्पिणति) ते कौटुम्बिक पुरुषोअे राजनी आज्ञा प्रमाणे ज णधुं काम
पतावी दीधुं अने ' अमे दोडोअे आपनी आज्ञा अनुसार घोषणा करी छे '
अेवी भअर राजनी पास पडोआडी दीधी.

(तएणं से दुवए राया कोडुवियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-
गच्छह णं तुग्गे देवाणुप्पिया ! स्वयंवरमण्डपं आसियसंमज्जिओवलित्तं सुगंधवर-
गंधियं पञ्चवर्णपुष्पपुञ्जोवयारकलियं कालागुरुपवरकुंदुरुकुरुकुरु जात्र गंधवद्वि-

धूपद्वयमानमवमघायमानगन्धोद्धृताभिरामं, तत्र कालागुरुः कृष्णागुरुः, प्रवर-
कुन्दुरुष्कं-चीडानानको गन्धद्रव्यविशेषः, तुरुष्कं च सिल्लक, धूपश्च गन्धद्रव्य संयो-
गज इति द्वन्द्वः, यद्वा-एतत्प्रमन्थी यो धूपस्तस्य द्रव्यमानस्य यः सुरभिर्मघमघा-
यमानः-भतिशमान्, गन्ध उद्धृतस्तेनाभिरामो रमणीयः स तथा तं तथा-
गन्धार्तिपूजा गन्धि-गन्धद्रव्यगुणिका तद्द्रुतं-तत्स्वरूपं तीरभ्यातिशयात् तथा-
' मंचाइमंचकलियं ' मञ्चातिमञ्चकलियं कुरुत, कृत्वा वासुदेवमसुखाणां बहूनां

करेह, कारिता वासुदेव पाशुपत्वागं बहूगं रायसहस्त्रागं पत्तये २ नामं-
काइ आसगाइ अत्युपपच्चःयुवाइ रएह २ एयमागत्तियं पञ्चप्येगह)
हसके वाइ द्रुपदराजा ने कांडुम्बिक पुरुषां को बुलाया और बुलाकर
उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रिया ! तुमलोग जाओ-और स्वयंवर मंडप
को आसक्त कर-जलसिवन से आर्द्र करो, समार्जित करो-
कचवर आदि को उससे बाहिर कर उस साफ करो एवं उपलक्ष
करां मित्रो तथा गोबर स उल लींयां । सुगंधवरगंधित करो उसमें-
अगुरु, गुग्गुलु, कपूर आदि को जलाकर उनकी गंध से उसे सुगंध
युक्त बनाओ पंचवर्ग क पुष्पा क पुंज उसमें जगह २ रखो । कृष्णा-
गुरु प्रवर कुन्दुरुष्क, तुङ्गकौवान इनक वूर्ण को वहां आग्ने में
खूब जलाकर उनके गंध से उसे बहुत ही अधिक मनोभिराम
बनाओ जवाइ देवा-उस ऐसा करदा कि जिससे ऐसा ज्ञात हो कि
यह एक सुगंधित द्रव्यों को बानिका ह । वहां भवां के ऊपर मंचों को

भूयं मंचाइमंचकलियं करेह, कारिता वासुदेवपाशुपत्वागं बहूगं रायसहस्त्रागं पत्तये
२ नामंकाइ आसगाइ अत्युपपच्चःयुवाइ रएह २ एयमागत्तियं पञ्चप्येगह)

त्यारपणी द्रुपद राज्ञे दौष्टुम्बिक पुत्रोने जोलाव्या अने जोलापीने
कथु के डे देवानुप्रिया ! तमे दोडा नञ्जा अने स्वयंवर मंडपने आसिक्त
करो-पाणी छोडो, समार्जित करो, कचरो वगेरे साइ करो, अने उपलक्ष
करो, ओटवे के माटी तेमच छाबुथी लीयो. सुगंधवर गंधित करो ओटवे के
ते स्थाने अगुरु, गुग्गुलु, कपूर वगेरेनो धूप करीने तेनी सुगंधथी ते स्थानने
सुवासित करो. पचवर्षुना पुष्पपुंजना समूडा स्थाने स्थाने गोठवाने तमे मंडपनी
जोलाव्या अलिपृद्धि करो दृग्गुगुलु, प्रवर, कुंदरुष्क, तुङ्गक, जोलान आ
गंधा पदार्थोना धूने अग्निमा नापीने ते स्थानने सुगंधथी भूगच रम-
णीय बनार्थी हो. ते स्थानने तमे ओबु सरस सुगंधमय बनार्थी हो के जेथी
ते सुगंधित द्रव्योनी पतिंका (अगुरुभर्ती) जेबु लागे. त्या तमे मंचो उपर

राजसहस्राणां प्रत्येकं २ नामाङ्कितान्यासनानि ' अस्थुपचत्थुयाइ ' आस्तृत
 प्रत्यवस्तृतानि=आच्छादित प्रत्याच्छादितानि ' रएह ' रचयत्, रचयित्वा एतामा-
 ज्ञप्तिनां प्रत्यर्पयत्, तेऽपि=कौटुम्बिकपुरुषाः, यावत् प्रत्यर्पयन्ति । ' तएणं ते '
 वासुदेवप्रमुखाः बहुसहस्रसंख्यकाराजानः ' कल्लं ' कल्ये प्रादुर्भूतप्रभातायां रजन्वां
 यावत् तेजसा ज्वलति सूर्येऽभ्युद्गते स्नाता यावत् सर्वालंकारविभूषिता हस्ति-
 सन्धवरागता सकोरण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण त्रिषमाणेन श्वेतवराचामरैरुद्धूयमानैश्च
 युक्ता ह्य गज-यावत्-स्थपदातिसमूहेन परिवृत्ता सर्वद्वर्या यावत् ' सहृपणहपट-
 हादीनां रवेण यत्रैव स्थाने सयंवरमण्डपस्तत्रीवोपागच्छन्ति, उपागत्यानुप्रविशन्ति,
 अनुप्रविश्य प्रत्येकं २ ' नामंकिण्णसु ' नामाङ्कितेषु=स्वस्वनामाक्षरसुकृतेषु आमनेषु
 निषीदन्ति=उपविशन्ति, निषद्य द्रौपदीं राजवरकन्यां ' पडिवालेमाणा ' प्रति-
 पालयन्तः=प्रतीक्षमाणास्तितृण्ति ।

रखो । उन पर वासुदेव प्रमुख राजाओं के प्रत्येक के नाम के आसनों
 को आस्तृत-शुभ्रवल्त्र से ढककर प्रत्यवस्तृत-और द्वितीय शुभ्रवल्त्र से
 आच्छादित कर रखो । रख कर फिर हमें पीछे इस सब कार्य के समाप्त
 होने की खबर दो । (ते वि जाव पचवप्पिणंति) इस प्रकार राजा की
 आज्ञानुसार उन कौटुम्बिक पुरुषों ने सब कार्य उचित रूप में करके
 पीछे राजा को " सब कार्य आज्ञानुसार यथोचित हो चुका है " ऐसी
 खबर करदी । (तएणं ते वासुदेवपामुक्खा बहवे रायसहस्सा कल्लं
 पाउ० ण्हाया जाव विभूसिया हत्थिलंधवगया सकोरंट० सेयवर-
 चाभराहिं ह्य गय जाव परिवुडा सव्विड्डीए जाव रवेणं जेणेव सयंवरे
 तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुगविसंति, अणुपविसित्ता पत्तेयं
 नामंकिण्णसु आसणेसु निसीयंति, दोवइं रायवरकण्ण पडिवालेमाणा २

मथेनी गोठवणु करे। त्यां तमे वासुदेव प्रमुख दरडे दरडे राजना नामर्था
 अङ्कित थयेदा आसनोने आस्तृत-स्वच्छ वस्त्रथी ढांकीने, प्रत्यावस्तृत अने
 थील स्वच्छ वस्त्रथी ढांके आ अधुं काम पतावीने तमे अमने अणर आपो.
 (ते वि जाव पचवप्पिणंति) आ रीते राजनी आज्ञा सालणीने ते कौटुम्बिक
 पुरुषोअे ते मुज्जअ अधुं काम पतावी दीधुं अने ल्यारपळी ' तमारी आज्ञा
 मुज्जअ काम अधुं पती गयुं छे ' अेवी अणर राजनी पासे पडोयडी.

(तएणं ते वासुदेवपामुक्खा बहवे रायसहस्सा कल्लं पाउ० ण्हाया जाव
 विभूसिया हत्थिलंधवगया सकोरंट० सेयवरचाभराहिं ह्य गय जाव परिवुडा
 सव्विड्डीए जाव रवेणं जेणेव सयंवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुगवि-
 संति, अणुपविसित्ता पत्तेय नामंकिण्णसु आसणेसु निसीयंति, दोवइं रायवरकण्णं

ततः खलु 'पंडुए' पाण्डु नामको राजा 'कल्लं' कल्ये-प्रातः काळे स्नातो यावत् सर्वाङ्गद्वारविभूषितो दृष्टितस्कन्धवरगतः सकोरण्टमाल्यढाब्ना छत्रेण ध्रिय-माणेन श्वेतवरचामरैरुद्धूयमानैश्च युक्तो हयगजरथपदातिसमूहेन परिवृतः सर्व-द्वर्चा यावत्-रवेण काम्पिल्यपुरस्य नगरस्य मध्यसन्ध्येन मध्येभूत्वा निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव रायंमहस्यो यत्रैव वासुदेवप्रमुखा बहुसहस्रसंख्यका राजानरत-त्रयोवागच्छति, उपागत्य तेषां वासुदेवप्रमुखाणां करतलपरिचिह्नदीप्तदशनखं

चिह्नंति) इस के बाद वे वासुदेव प्रमुख हजारों राजा दूसरे दिन जब रात्रि समाप्त हो चुकी प्रातः काल हो गया-सूर्य उदित हो चुका तब स्नान यावत् समस्त अलंकारों से विभूषित होकर, हाथियों पर चढ़े हुए ध्रियमाण वोरंट पुणों की माला से विराजित छत्र से युक्त होते हुए उद्धूयमान श्वेत वरचामरों से वीज्यमान होते हुए एवं हय, गज यावत् रथ पदाति समूह से परिवृत्त होते हुए अपनी राज विभूति के अनुसार यावत् शंख पणच पट्ट आदि के साथ २ जहां वह स्वयंवर मंडप था-वहां आये। वहां आकर वे सब उसके भीतर प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर वे प्रत्येक जन अपने २ नाम से अंकित आसनों पर पृथक २ बैठ गये और राजवर कन्या द्रौपदी की प्रतीक्षा करने लगे। (तएणं से पंडुए राया कल्लं ण्हाए जाव विभूसिए सकारंठ० हयगय० कंपिल्लपुरं सज्जंयज्जेण निग्गच्छति-जेणेव सयंवरमंडवे जेगेव वासुदेव पासु क्खा बहुवे रायमहस्ता तेणेव उवागच्छह, उवागच्छत्ता तेसि वासुदेव

पडिवालेमाणा २ चिह्नंति)

त्यारपणी वासुदेव प्रमुख हजारों राजा दोनो दिवसे न्यारे रात्रि पमार धरं गरं अने सवार थतां सूर्य उदय थाभ्यो त्यारे स्नान वगेरेधी पग्वारीने पोताना गरीरने भधा आलूपणोथी शणुगारीने, डायीओ उपर सवार थ 'ने, मुणंघित करंठ पुधोनी भाणाओथी शोलित अने छत्रथी युक्त धरं उत्तम श्वेत चामरोथी वीज्यमान थता तेमज घोडा, डायी यावत् रथ पदाति समूडथी परिवृत थता पोताना सन्ध वैखव अनुसार यावत् शण पणुव पट्ट वगेरे वाळओनी साथे न्यां स्वयंवर मंडप डतो त्यां गया. त्यां न्धने तेओ भधा मंडपमा प्रविष्ट थथा अने प्रविष्ट थधने तेओ पोत-पोताना नभाधित लुण लुण अ सने उपर भेथी गया अने सारवर कन्या द्रौपदीनी प्रतीक्षा करवा लाग्या

(तएणं से पंडुए राया कल्लं ण्हाए जाव विभूसिए हणिसंघारगए सको-रंठ० हय गय० सयवामंडवे जेगेव वासुदेव पासुक्खा बहुवे रायमहस्या तेणेव

शिर आहतं मरुतकेऽञ्जलिं कृत्वा जयेन विजयेन वर्धयित्वा कृष्णस्य वासुदेवस्य श्वेतवराचमरं गृहीत्वा ' उव्वीयमाणे ' उव्वीजयन् चामराद्भूतनेन सेवमान-
स्तिष्ठति ॥ सू० २१ ॥

पाशुक्खाणं करयल वद्धावेत्ता कण्हस्स वासुदेवस्य सेववरचायरं गहाय उव्वीयमाणे चिद्धंति) इस के बाद पांडु नामक राजा प्रातः काल स्नान से विवृत कर और समस्त अलंकारों से विभूषित होकर अपने पट्ट गजराज पर चढ़ कर कांपिल्य पुर नगर के बीच से होते हुए उस स्वयंवर मंडप में आये। जब ये गजराज पर चढ़े हुए आरहे थे उस समय इन के ऊपर कोरंट पुष्पों की माला से विरजित छत्र, छत्रधारियों ने तान रखा था। चामर ढोरने वाले शुभ्र चामर ढोर रहे थे। हथ, गज, रथ एक पदादि समूहरूप चतुरंगिणी सेना इनके साथ चल रही थी। राजसी ढाटपाट से ये सुसज्जित थे। विविध बाजे साथ में बजते हुए आरहे थे। मंडप में आकर ये जहाँ वासुदेव प्रमुख हजारों राजा बैठे हुए थे- वहाँ गये। वहाँ जाकर उन्होंने उन वसुदेव प्रमुख हजारों राजाओं को दोनों हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता के साथ नमस्कार किया। जय विजय शब्दों द्वारा उन्हें बधाई दी। बधाई देकर फिर ये कृष्ण वासुदेव के ऊपर श्वेतचामर लेकर ढोरते हुए वहाँ बैठ गये ॥ सू० २० ॥

उवागच्छइ, उवागच्छत्ता तेसिं वासुदेवपाशुक्खाणं करयल वद्धावेत्ता कण्हस्स वासुदेवस्य सेववरचायरं गहाय उव्वीयमाणे चिद्धंति)

त्यारपछी पांडु नामक राजा सवारे स्नानथी परवारीने समस्त अलंकार-
शेथी पोताना शरीरने शण्णारीने अने पोताना मुष्ण गजराज उपर सवार
थछने कापिल्यपुर नगरनी वस्त्रेथी पसार थछने स्वयंवर मंडपमां आव्या.
न्यारे तेओ गजराज उपर भेसीने आवता उता त्यारे कोरंट पुष्पेनी माणा-
ओधी शोभित छत्र छत्रधारीओओ ताण्णेलु इतुं चामर ढोणनाराओ श्वेत
चामरे ढोणी रह्या उता, घोडा, हाथी, रथ अने पदाति समूह रूप चतुरंगिणी
सेना तेमनी साथे साथे आवी रडी उती राजसी ढाठथी तेओ सुसज्जित
उता, अनेक नतना वान्णओ वागी रह्यां उतां मंडपमा आवीने तेओ न्या
वासुदेव प्रमुख उन्नरे राजाओ भेठेला उता त्या गया. न्यां वासुदेव प्रमुख
राजाओ भेठेला उता त्या तेमनी पासे नछने तओओ वासुदेव प्रमुख सर्व
राजाओने भूण न नम्रपण्णे अने हाथ नेडीने नमस्कार कया न्य विन्य
शण्णोथी तेओने अलिनदित कया अलिनदित कया भाद तेओ कृष्ण वासु-
देवनी उपर श्वेत चामर ढोणता त्यां भेसी गया. ॥ सूत्र २० ॥

मूलम्—तएणं सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे
तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पहाया कयवलिकम्मा कय-
कोउयसंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं
पवरपरिहिया जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ, करित्ता जेणेव
अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ ॥ सू० २१ ॥

टीका—‘तएणं सा’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं सा द्रौपदी राजवरकन्या
यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य स्नाता ‘कयवलिकम्मा’ कृतवलि-
कर्मा अत्रादिषु वायसादिप्राणिनां संविभागो बलिकर्म तन् कृतं यथा सा तथा
कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तां ‘सुद्धप्पावेसाइं’ शुद्धप्रवेश्यानि शुद्धानि स्वच्छानि
प्रवेश्यानि—सभायां प्रवेष्टुं योग्यानि, यत्परिधानेन सभायां लोकाः मवेष्टुमर्हन्ती-
त्यर्थः, मङ्गलानि=शुभानि वस्त्राणि ‘पवरपरिहिय’ प्रवरपरिहिता—प्रवरविधिना
प्रवरंण जोभाकारेण विधिना परिहिता=परिधानेन धृतवती आर्षित्वात् कर्तरिक्तः,

‘तएण सा दोवई रायवर कन्ना’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इस के बाद (सा दोवई रायवर कन्ना) वह राजवर
कन्या द्रौपदी (जेणेव, मज्जणघरे) जहां स्नान घर था (तेणेव उवागच्छइ)
उस ओर गई (उवागच्छित्ता पहाया कयवलिकम्मा कयकोउयसंगल
पायच्छित्ता) वहां जाकर २ उसने स्नानघरमें स्नान किया, नहाकर फिर
उमने काक पक्षि आदि को अन्नदि का भाग देने रूप बलि कर्म किया
कौतुक मंगल प्रायश्चित्त क्रिये । (सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइ पवर
परिहिया) सभा में प्रवेश के योग्य ५ शुद्ध स्वच्छ सांगलिक वस्त्र
अच्छी तरह विधि के अनुसार पहिरी हुई (जिणपडिमाण अच्चणं करेइ)

‘तएण सा दोवई रायवरकन्ना’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्य. २५४ (सा दोवई रायवरकन्ना) ते रायवर कन्या द्रौपदी
(जेणेव मज्जणघरे) तथा स्नानघरं उतुं (तेणेव उवागच्छइ) त्यां गच्छ.
(उवागच्छित्ता पहाया कयवलिकम्मा कय कोउयसंगलपायच्छित्ता) त्यां गच्छने
तेणे स्नानघरमा स्नानं कथुं. स्नानं कथुं आह तेणे उवागच्छा वगेरे पक्षीओने
अन्नं वगेरेने भागं अर्पिते अलिकर्मं कथुं—कौतुक मंगल प्रायश्चित्तं कथुं.
(सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइ पवरपरिहिया मज्जणघराओ पडिनिक्खमड)
सभानां प्रवेशया योग्यं स्वच्छं सांगलिकं वस्त्रं तेणे भरसं रीते पडियां,
त्यारपणी ते स्नानघरधी णडार नीडणी (जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ) एव

वस्त्राणि परिधाय ' जिणपडिमाणं अञ्चणं करेइ ' जिनप्रतिमानां, कामदेव प्रति-
मानांमर्चनं करोति विवाहविधि निर्विघ्न संपन्नार्थ मिति भावः ' करित्ता ' कृत्वा
' जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ ' यत्रैवान्तःपुरं तत्रैवो- पागच्छति ॥सू० २१॥

द्रौपदीचर्चा

यत्तु—“ जिणपडिमाणं अञ्चणं करेइ ” इति पाठं समाश्रित्य भगवतोऽर्हतः
पूजनं जैनधर्मानुयायिभिः कर्तव्यमित्याहुस्तन्मिथ्यात्वविलसितम्, अस्य पाठस्य
चरितानुवादरूपत्वेन विधायकत्वासम्भवात् । विधिवाक्यं हि जिनाज्ञाया बोधक-
त्वेन विधायकं भवति, यथा—भगवता विधेयतयोपदिष्टं षड्विधावश्यकं चतुर्विध-

जिन प्रतिमा का कामदेव की प्रतिमा का निर्विघ्न विवाहकार्य के लिये
अर्चन करती है अर्चन कर के फिर वह (जेणेव अंते उरे तेणेव उवा-
गच्छइ) जहाँ अतःपुर था वहाँ चली गई ॥ सू० २१ ॥

द्रौपदी चर्चा

जो “जिणपडिमाणं अञ्चणं करेइ” इस पाठका आश्रय लेकर प्रति-
मापूजन की उपयोगिता कहते हुए यह कहते हैं, कि “ अर्हत भगवान
की प्रतिमा की पूजा जैनधर्म के पालकों को करना चाहिये” यह उनका
कथन मिथ्यात्व का विलास ही है । क्यों कि यह “ जिणपडिमाणं ”
इत्यादि वाक्य चरित का ही अनुवादक है—अतः ऐसे वाक्य किसी
मुख्य अर्थ के विधायक नहीं हुआ करते हैं । चारितानुवाद से तो सिर्फ
जिस व्यक्ति ने जो २ आचरण किया है उसका ही बोध होता है । शास्त्र
विहित मार्गके निर्देशक विधिवाक्य हुआ करते हैं—क्यों कि कि ऐसे
वाक्य जिन भगवान की आज्ञाके विधायक होते हैं । जिम प्रकार षट्

प्रतिमानुं कामदेवनी प्रतिमानुं निर्विघ्ने विवाहकार्यं संपन्नं यवानां हेतुथी
अर्थनं करे छे, अर्थनं करीने (जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ)
न्यां रणुवास छे ते तरइ नती रडी. ॥ सूत्र २१ ॥

द्रौपदी अर्थ

केटलाक “जिणपडिमाणं अञ्चणं करेइ” आ पाठना आधारे प्रतिमा पूज-
ननी उपयोगिता सिद्ध करतां आ प्रमाणे कडे छे के “ अर्हत भगवाननी
प्रतिमानुं पूजनं जैनधर्म पालन करनाराओओ करवुं न्नेधओ ” तेमनुं आ
कथन सत्यथी अहुं हर छे अटले के आ वात साव असत्यथी पूरुं छे. केमके
आ “ जिणपडिमाणं ” वगेरे वाक्य चरितना न अनुवादक छे अटला भाटे
ओवां वयने के छे विशेष अर्थने स्पष्ट करनारां होता नथी. चरितानुवादथी
तो इकत ने माणसे ने ते आचरणे कथुं छे, इकत तेनुं न ज्ञान थाय तेम
छे. शास्त्रविहित मार्गने पतावनारा तो विधि वाक्यो न थाय छे. नेवी रीते

संघस्य कर्तव्यं भवति ।

तथा चोक्तम्—समणेण सावएण य अवस्सकायव्वयं हवइ जम्हा ।

अंतो अहोनिस्स य, तम्हा आवस्सयं नाम ॥ १ ॥ इति (अनुयोगद्वा०)

छाया-श्रमणेन श्रावकेण च अवश्यकर्तव्यकं भवति यस्मात् ।

अन्तेऽहर्निशस्य च तस्माद् आवश्यकं नाम ॥ १ ॥

“ जं इमं समणे वा समणी वा सावए वा साविया वा ।

तच्चित्ते तम्मणे जाव उभओकालं छव्विहं आवस्सयं करेति (अनु०)

छाया-यदिदं श्रमणो वा श्रमणी वा श्रावको वा श्राविका वा ।

तच्चित्तः तन्मना यावद् उभयकालं पइविधमावश्यकं नाम ॥ २ ॥

आवश्यक कार्यों को प्रतिपादन करने वाले वाक्य जिन प्रश्न की आज्ञा के निर्देशक होने से साधु साध्वी श्रावक श्राविकारूप चतुर्विध संघ को उपादेय माने जाते हैं । शास्त्र में भी यही बात कही गई है

‘ समणे ण सावएण य ’ इत्यादि

शास्त्र विहित षट् आवश्यक कर्तव्य चतुर्विध श्रीसंघ को रात्री एवं दिनके अंतिमभागमें अवश्य करन चाहिये । उनके किये विना मुनि का मुनिपन नहीं और श्रावकका श्रावकपन नहीं । अतः षट् आवश्यक कार्य अवश्य करने योग्य होनेसे आवश्यक रूप से प्रतिपादित हुए हैं ।

“ जं इमं समणे वा समणी वा सावए वा साविया वा तच्चित्ते तम्मणे वा जाव उभओ कालं ” इत्यादि ।

इसलिये जब ये आवश्यक हैं तब चाहे साधु हो या साध्वी हो श्रावक हो या श्राविका हो कोई भी क्यों न हो उसका यह कर्तव्य हो

छ आवश्यक कार्योंका प्रतिपादन करना वाक्यो उन प्रश्नकी आज्ञानां निर्देशक होवाने कारणे साधु साध्वी श्रावक श्राविका इय चतुर्विध संघना माटे योग्य गणुया छे शास्त्रमां पणु आ प्रमाणे उडेवाभा आणुं छे—

“ समणेण सावएण य ’ इत्यादि

शास्त्रविहित छ प्रकारना आवश्यक कर्तव्यो चतुर्विध संघने रात्रि तेमज् द्विपसना अतिम भागमां योक्कस पणु आचरवां जेधये, तेना आचरण वगर मुनिपणु मुनिपणु नथी अने श्रावकनु श्रावकपणु नथी अटला माटे छ आवश्यक कार्य योक्कस करवा योग्य होवाथी आवश्यक इयथी प्रतिपादित करवाभां आणुया छे.

“ जं इमं समणे वा समणी वा सावए वा साविया वा तच्चित्ते तम्मणे जाव उभओ कालं ” इत्यादि—आ प्रमाणे न्यारे तेयो ‘ आवश्यक ’ छे, त्पारे लखे साधु होय के साध्वी होय तेमज् श्रावक होय के श्राविका होय गमे ते केम

चारितानुवादवचनस्य विधायकत्वाङ्गीकारे सूर्याभदेवचरिते शस्त्रादिवस्तु-
नामर्चनस्य श्रूयमाणतया तन्मते तदपि विधेयं स्यात् ।

द्रौपद्यऽपि तत्र खलु प्रतिमायां भगवतोऽर्हतः पूजनं न कृतम्, जैनप्रवचने
प्रतिमापूजनस्य विधानाभावात्, प्रतिमापूजनस्य षट्कायजीवर्हिंसासाध्यतया जैन-
धर्मत्वाभावाच्च ।

तथाहि—प्रतिमापूजाऽङ्गीकारे तदर्थं षट्कायर्हिंसाऽवश्यंभाविनी, एवं च
जाता है कि वह उन्हीं में चित्त लगाकर और मन को तन्मय करके
इसे उभय काल में अवश्य करे ।

चरित के अनुवादक कथन करने वाले—वाक्य को यदि विधेय रूप
से स्वीकार किया जाय तो सूर्याभदेवके चरित में सङ्गादि शस्त्र आदि
वस्तुओं की भी पूजा सुनी जाती है—अतः उनमें भी पूज्यता आजानी
चाहिये और इस प्रकार से पूजन के पक्षपातियों को उनका पूजन भी
विधेय कोटि में मानलेना चाहिये ।

द्रौपदी ने भी वहां प्रतिमा में जो भगवान अर्हत की पूजन नहीं
की उसका कारण यह है कि एक तो जैन प्रवचन में प्रतिमा पूजन के
विधान का अभाव है और दूसरे—यह प्रतिमा पूजन षट् काय के जीवों
की विराधना द्वारा साध्य होती है, इसलिये इस प्रतिमा पूजन में जिने-
न्द्र द्वारा प्रतिप्रादित-धर्म आत्मकल्याणसाधकरूप सम्यग्दर्शनादिक का
अभाव है । षट् काय के जीवों की विराधना से जो साध्य हुआ करता
है वहां सञ्चे धर्म के दर्शन तक भी दुर्लभ हैं अतः प्रतिमा पूजन

न डोय तेनी अे इरञ् थध पडे छे के ते तेओमां न पोतानुं चित्त परोवीने
भनने तद्वीन करीने तेने अंने काणमां अवश्य आचरे.

चरितने अनुवादक इपे अतावनार वाक्यने जे विधेय रूपमां स्वीकारवामां
आवे तो सूर्याभदेवना चरितमां शस्त्र वगेरे वस्तुओनी पणु पूजनी वात
सांलणवामां आवे छे. अेथी तेमनामां पणु पूज्यता आवी नवी जेधअे अने
आ रीते पूजनना पक्षपातीओअे तेमनी पूजा पणु विधेयना रूपमां मान्य
करवी जेधअे.

द्रौपदीअे पणु त्यां प्रतिमां लणवान अर्हतनुं पूजन कथुं नथी
तेनुं कारणु अे छे के प्रथम तो जैन प्रवचनमां प्रतिमा-पूजननुं विधान नथी
अने जीणुं आ प्रतिमा पूजन षट्कायना ओवीनी विराधना द्वारा संपन्न डोय
छे, तेथी आ प्रतिमा पूजनमां जेनेन्द्र वडे प्रतिप्रादित धर्म-आत्मकल्याणु
साधक रूप सम्यग्-दर्शन वगेरेने असाव छे. षट्कायना ओवीनी विराधनाधी

प्राणातिपातविरमणव्रतिनां मुनीनां प्रतिमापूजोपदेशे स्वधर्मस्य मूलोच्छेदः स्या-
देव । अत एव—जिनप्रणीतागमे प्रतिमापूजायाविधिर्नोपलभ्यते । प्रतिमास्थापनार्थं

अंगीकार करने में उस पूजन के समय में षट् काय के जीवों की विरा-
धना जब अवश्यंभावी है तब भला ! हम इसे विधेय मार्ग कैसे मान
सकते हैं, और कैसे यह स्वीकार किया जा सकता है कि इस पूजन
का कर्त्ता सच्चे धर्म का उपासक है तथा प्रतिमापूजन को धर्म माना
जावे तो एक बड़ा भारी दोष यह भी आकर उपस्थित होता है कि सर्व
प्रकार के हिंसादिक पापों से सर्वथा विरक्त महाव्रती मुनिजन जब इस
प्रतिमापूजनरूप धर्म का उपदेश करेंगे तब वे भी कारितादिरूप कराने
आदि रूप से इसके कर्त्ता होने के कारण अपने मुनिधर्म के मूलतः ही
विध्वंसक माने जायेंगे । मुनिजन हिंसादिक सावद्य व्यापारों के कृत,
कारित एवं अनुमोदना इन तीन करण एवं तीन योग से त्यागी हुआ
करते हैं । जब ये प्रतिमापूजन रूप धर्म का गृहस्थों के लिये व्याख्यान
देंगे तब उनके व्याख्यान से प्रेरित हो गृहस्थ जन उस ओर अपनी
प्रवृत्ति चालू करने वाले होंगे, और उस प्रकार के उनके व्यवहार से
इस कार्य में षट्काय के जीवों की विराधना होने से उस विराधना

के साध्य थाय छे तेमां तो साया धर्मना दर्शन सुद्धां दुर्लभ छे. अटला
भाटे प्रतिमा-पूजन स्वीकारवाभां ते पूजन करती वथते षट्कायना लुवानी
विराधना न्यारे योच्छसपणुे थवानी छे त्यारे अमे तेने विधेय मार्ग कथा
आधारे मान्य करीअे. अने अेनी साथे साथे अमे अे पणु केवी रीते स्वीकार
करीअे छे आ नतनुं पूजन करनार साया धर्मना उपासक छे ? जे प्रतिमा
पूजनने धर्म इपे स्वीकारीअे तो अेमां अेक लारे दोष अे छे छे सर्वां प्रका-
रनां हिंसा वगेरे पापोथी .सर्वथा विरक्त महाव्रती मुनिजनो न्यारे आ
प्रतिमा पूजन इप धर्मना उपदेश आपथे त्यारे तेअो पणु कारितादि इप
कराववा वगेरे इपथी अेना कर्ता इपे होवा अटल पोताना मुनि धर्मना मूलतः
विध्वंसक गलुथे. मुनिजनो हिंसा वगेरे सावद्य व्यापारोना कृत, कारित अने
अनुमोदना आ त्रषु करणु अने त्रषु योगना त्यागी होय छे. न्यारे तेअो
प्रतिमा-पूजन इप धर्मनुं गृहस्थोने भाटे व्याख्यान आपथे त्यारे तेमनां
व्याख्यानथी प्रेरार्थने गृहस्थो ते प्रभाणुे आचरथे न अने आ नतनां तेमनां
आचरथेथी आ काममा षट्काय लुवानी विराधना होवाथी ते विराधनाने
करावनारा आ उपदेशक मुनिअो न गलुथे त्यारे अेमना अहिंसा वगेरे महा-
मतो त्रियोग अने त्रिकरणु विशुद्ध इपे केवी रीते रही शकथे ? अेथी धर्म-
लासने धृच्छतां पणु तेअो आ नतना विचारोनी भूलमां न भोटी भूल करी

देवायतनप्रतिमाऽऽरामरूपादिकरणे तदुपदेशदाने च पृथिवीकायर्हिंसाया अवश्यभावः । देवायतनादिकरणे पूजाङ्गतयास्नान प्रतिमास्नपनवस्त्रक्षालनादिकरणे च तदुपदेशदाने चापूकायविराधनमपि, तथा-पूजाङ्गधूपदीपारात्रिकसम्पादनं चाग्निकायविराधनया विना न संभवति, वायुकायर्हिसनं तु धूपदीपारात्रिका-

के कराने वाले ये उपदेशक मुनिजन माने जायेंगे-तब इनके अहिंसादि महाव्रत त्रियोग और त्रिकरण विशुद्ध कैसे रह सकेंगे ? अतः लाभ की चाहना में इन विचारों की भूल में ही बड़ी भारी भूल होने से ये अपने धर्म के सच्चे आराधक नहीं माने जा सकेंगे । इसलिये यह बात अवश्य माननी चाहिये कि जिन प्रणीत आगम में प्रतिमापूजन की विधि नहीं पाई जाती है ।

इसी प्रकार प्रतिमा स्थापन, प्रतिमा प्रतिष्ठा करवाना, मंदिर वगैरह बनवाना एवं उस प्रतिमा की पूजा निमित्त वगीचा तथा कुआ आदि का करवाना ये बातें पृथिवी कायिक जीवों की हिंसा के कारण हैं अतः त्याज्य हैं । इनके बनवाने आदि का जो उपदेश करते हैं वे भी पृथिवीकायिक जीवों की हिंसा से मुक्त नहीं हो सकते हैं । इसी प्रकार पूजन का अंग होने से स्नान, प्रतिमा के अभिषेक तथा पूजन के बस्त्रों के धोने साफ करने में और उसके उपदेश देने में अपूकाय के जीवों की विराधना होती है, धूपखेना, दीपक जलाना, आरती उतारना ये सब बातें अग्निकायिक जीवों की विराधना के विना नहीं हो सकती है अर्थात् इनमें अग्निकायिक जीवों की विराधना अवश्यंभाविनी है ।

अस्ये अने तेऽप्यो पोताना धर्मना साया आराधक गणुशे नडि. अेटला भाटे आ वात योऽस्यपणुे मानी न लेवी न्नेधये के 'अन प्रणीत' आगममां प्रतिमा-पूजननी विधि भणती नथी.

आ प्रमाणे प्रतिमा-स्थापन, -प्रतिमा-प्रतिष्ठा करावणी, मंदिर वगैरे बनाववां अने ते प्रतिमानि पूज्य भाटे उद्यान तेमज वाव वगैरे तैयार कराववां अे पृथिवी-कायिक अुवोनी हिंसाना कारणु छे-अेटला भाटे त्याज्य छे. तेने बनाववा भाटे न्ने दोडो उपदेश आपे छे तेऽप्यो पणु पृथिवी-कायिक अुवोनी हिंसाथी मुक्त थछं शकता नथी. आ रीते न पूजनने भाटे स्नान, प्रतिमानो अभिषेक तेमज पूजनना वस्त्रोने धोवामां अने तेना उपदेशमां पणु अपूकायना अुवोनी विराधना डोय छे. धूप करवो, दीपक करवो, आरती उतारवी आ षधी विधियो अग्नि-कायिक अुवोनी विराधना वगर संभवी शकै तेम नथी अेटले के तेऽप्योमां अग्नि-कायिक अुवोनी विराधना योऽस्यपणुे

दिमिश्रामरादिवीजनैर्नृत्यगीतवादित्रैश्च सविशदं भवति, वनस्पतिकायविराधनं च प्रतिमापूजानिमित्तकेऽनन्तकायकोमलविविधफलपुष्पपत्रसंग्रहे नियतं भवति । पृथिवीकायाद्याश्रिता बहुविधनिरपराधहीनदीनदुर्बलप्रकृतिभीरुसंगोपितशरीरा द्वीन्द्रियादि पञ्चेन्द्रियान्तास्त्रसा जीवा अपि छेदनभेदनस्वाश्रयविनाशजनितानन्तदुःखैस्तीव्रतरवेदनामुपलभ्येतस्ततः स्वलितपतिता म्रियन्ते ।

धूपकेधुं आ से, दीप तथा आरती की ज्योति से चमर आदि के ढोरने से, नृत्य कराने से, गीत गाते समय मुख से निकले हुए गर्म वायु से, एवं वाजों के वजाने से वायुकायिक जीवों की विराधना होती हुई स्पष्ट मालूम देती है । वनस्पति कायिक जीवों की विराधना भी इस समय इस प्रकार से होती है, कि-मूर्ति पूजन के लिये उसके पूजक अनन्त कायिक ऐसे कोमल अनेक प्रकार के फल, पुष्प और पत्रों का संग्रह जो करता है इस प्रकार इस पूजन में षट्कायिक जीवों की हिंसा का आरंभ स्पष्ट देखा जाता है । तथा व्रस कायिक जीवों का भी इसके निमित्तहनन होना है और वह इस प्रकार से-कि जब पृथिवीकायिकादि जीवों का आरंभ प्रतिमा आदि के निर्माण में या देव आयतन (मन्दिर) आदि के कराने में किया जाता है तो उस समय उसके आश्रित जो बहुत से अनेक जाति के निरपराधी, हीन, दीन, दुर्बल, प्रकृति से भयशील तथा संगोपित शरीरवाले ऐसे द्वीन्द्रियादिकसे लेकर पंचेन्द्रिय तक जितने भी व्रस जीव रहते हैं वे सब के सब छेदन, भेदन, एवं स्वाश्रय के विनाश जनित अनन्त दुःखों से संतप्त होकर

धवानी न छे धूपना धूमाडाथी दीपक अने आरतीनी न्योतथी चमर वगेरेने ढाणवाथी तेमन वान्तओ वगाडवाथी वायुकायिक लोवानी विराधना थाय छे तेनी हरेकने स्पष्ट प्रतीति यती न रहे छे. वनस्पति-कायिक लोवानी विराधना पणु ते वभते आ प्रमाळे थाय छे के मूर्ति-पूजन भाटे पूज करनाराओ अनन्त-कायिक ओवा कोमण घणी लतनां इणो, पुष्पो अने पत्राने ओकडां करे छे आभ आ पूजमां पडू-कायिक लोवानी हिंसा स्पष्टपणु देषाय छे. व्रस-कायिक लोवानुं पणु तेने लीधे छनन डोय छे. जेभके न्यारे पृथिव-कायिक वगेरे लोवानी आरंभ प्रतिमा वगेरेना निर्माणमां अथवा तो देव-आयतन (मन्दिर) वगेने जनाववामां करवामां आवे छे त्यारे तेना आश्रित जे घणु अनेक लतना निरपराधि, हीन, दीन, दुर्बल, प्रकृतिथी भीकणु तेमन संगोपित शरीरवाण ओवा द्वीन्द्रियादिकथां मांडीने पंचेन्द्रिय सुधीना नेटलां व्रस लोवो रहे छे तेओ सबे छेदन, भेदन अने स्वाश्रयता विनाशथी अनन्त

धर्मस्य लक्षणं हि—जिनाज्ञाप्रयोज्यप्रवृत्तिकत्वम्, “आणाए मामगं धम्मं” इति भगवद्वचनात्, किं च—अगारानगारभेदेन धर्मस्य द्वैविध्यमभिधाय—भगवता—“अणगारधम्मो ताव” इत्यादिना सर्वप्राणातिपातविरमणादि—रात्रिभोजनान्तान् अनगारधर्मानुपदिश्य तदनन्तरमिदं कथितम्—

‘अयमाउसो ! अणगारसामइए धम्मे पणत्ते एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्टिए निग्गंथे वा निग्गंथी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवइ’ (औपपातिसूत्रम्) अयमायुष्मन् ! अनगारसामायिकः=अनगारसिद्धान्तविषयः, धर्मः प्रज्ञप्तः । एतस्य धर्मस्य ‘शिक्षायामुपस्थितः’=आराधकः, निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी वा विहर-

और वहां से गिर पड़कर अन्त में मर जाते हैं ।

जिनेन्द्र की आज्ञा में प्रवृत्ति करना यही धर्म का लक्षण है । भगवान का भी आचाराङ्गसूत्र अ-६ उ-२ सू-८ में यही कथन है “आणाए मामगं धम्मं” इति । प्रभु ने जिस समय धर्म का उपदेश दिया उस समय उन्होंने इस धर्मके दो भेद कहे हैं इनमें एक—१ सागारी गृहस्थका धर्म और दूसरा अनगार—मुनिका धर्म । “अनगार धम्मो ताव” इत्यादि सूत्र से समस्त जीवों की विराधना आदि से विरक्त होना यहां से लगाकर रात्रिभोजन का सर्वथा परिहार करना यहां तक जो कुछ कहा है वह सब अनगार धर्म को लेकर कहा गया है उसके बाद उन्होंने औपपातिक सूत्र में यह कहा है कि “अयमाउसो अणगारसामइए धम्मे पणत्ते, एयस्स धम्मस्स सिक्खाए, उवट्टिए निग्गंथे वा निग्गंथी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवइ” हे आयुष्मन् ! यह अनगारसामायिक—मुनियों का सिद्धान्त विषयक

हुःप्रेथी संतप्त थधने अने त्याथी पडी ऋधने, अण्ट थधने अंते मृत्युने लेटे छे.

जिनेन्द्रनी आज्ञा प्रमाणे अनुसरवुं अेव धर्मानुं लक्षणु छे. आचारांग सूत्र अ-६, उ-२, सू-८ मा पणु लगवाने आ प्रमाणे कहु छे के “आणाए मामगं धम्मं इति” प्रलुअे न्यारे धर्म विषे उपदेशे आप्थे। त्यारे तेभणु आ धर्माना अे लेट अताव्या छे १ सागार गृहस्थनो धर्म अने २ अनगार मुनिनो धर्म “अनगारधम्मो ताव” वगेरे सूत्रथी समस्त जिवानी विराधना वगेरेथी विरक्त थवुं अडीथी मांडी रात्रि-लोअननो संपूर्णपणु त्याग करवे। अडी सुधी ने कथ कहु छे ते अधुं अनगार धर्माने उदेशीने कडेवामा आव्यु छे त्यारपछी औपपातिक सूत्रमां तेअेश्रीअे आ प्रमाणे कहु छे के— (अयमाउसो अणगारसामइए धम्मे पणत्ते, एयस्स धम्मस्स सिक्खाए, उवट्टिए निग्गंथे वा निग्गंथी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवइ) हे आयुष्मन् !

માણ આજ્ઞાયા આરાધકો ભવતિ । એતસ્ય ધર્મસ્યારાધક એવાજ્ઞાયા આરાધક
 ઇત્યુક્ત્વાઽઽજ્ઞૈવ ધર્મસ્ય પ્રકાશકતયા મૂલમિતિ વોધિતમ્ । તદનન્તરં ચ ભગવતા-

“ અગારધમ્મં દુવાલસવિહં આહ્વલ્લઃ । તં જહા—પંચ અણુવ્વચાઈં, તિણ્ણિ-
 ગુણવ્વચાઈં ચત્તારિ સિક્ખાવચાઈં ” ઇત્યાદિના દ્વાદશવિધં ધર્મં નિરૂપ્ય કથિતમ્ ।

‘ અચમાડસો । અગારસામહ્ણ ધમ્મે પળ્ણત્તે ’ એયસ્સ ધમ્મસ્સ સિક્ખાણ ઉવ-
 ઢ્ઠિણ સમણોવાસણ વા સમણોવાસિયા વા વિહરમાણે આણાણ આરાહણ ભવહ્ ” ઇતિ ।

ધર્મ કહા ગયા હૈ—અર્થાત્ મુનિયોં કા યહ ધર્મ કહા ગયા હૈ । ઇસ
 ધર્મ કી શિક્ષા મેં જો ઉપસ્થિત હોતા હૈ અર્થાત્ જો ઇસ ધર્મ કી-
 આરાધના કરતે હૈં— યાહે વે સાધુ હોં યાહે સાધ્વી હોં કોઈ મી હો યે
 જિનેન્દ્ર ભગવાન કી આજ્ઞા કે આરાધક હોતે હૈં । ઇસ ધર્મ કી આરા-
 ધના કરનેવાલા જીવ હી જિનેન્દ્ર કી આજ્ઞા કા આરાધક માના ગયા હૈ
 ઇસ કથન સે “ જિસ વાત મેં ભગવાન કી આજ્ઞા હો વહી ધર્મ કા મૂલ
 હૈ અન્ય આજ્ઞા વિરુદ્ધ પ્રવૃત્તિ હૈ ” યહ વાત સમજાઈ ગઈ હૈ ઇસ કે
 ઘાદ ભગવાન ને “ અગારધમ્મં દુવાલસવિહં આહ્વલ્લઃ તં જહા—પંચ
 અણુવ્વચાઈં, તિણ્ણિગુણવ્વચાઈં ચત્તારિ સિક્ખાવચાઈં ” ઇસ સૂત્ર સે યહ
 પ્રકટ ક્રિયા હૈ કિ ગૃહસ્થ કા ધર્મ ૧૨ પ્રકાર કા હૈ ૫ અણુવ્રત, ૩ ગુણ-
 વ્રત ઓર ૪ શિક્ષાવ્રત । ઇસ પ્રકાર સે કથન કર “ અચમાડસો અગાર-
 સામહ્ણ ધમ્મે પળ્ણત્તે એયસ્સ ધમ્મસ્સ સિક્ખાણ, ઉવઢ્ઠિણ, સમણોવાસણ
 વા સમણોવાસિયા વા વિહરમાણે આણાણ આરાહણ ભવહ્ ” ઇતિ—હૈ

આ અનગાર સામાયિક મુનિયોનો સિદ્ધાન્ત વિષયક ધર્મ કહેવામાં આવ્યો છે
 એટલે કે આ મુનિઓનો ધર્મ કહેવામાં આવ્યો છે. આ ધર્મની શિક્ષામાં જે
 ઉપસ્થિત હોય છે એટલે કે આ ધર્મની આરાધના કરે છે—તેલે તેઓ સાધુ
 હોય કે સાધ્વીઓ ગમે તે કેમ ન હોય તેઓ જીનેન્દ્ર ભગવાનની આજ્ઞાના
 આરાધકો હોય છે આ ધર્મની આરાધના કરનારો જીવ જીનેન્દ્રના આરા-
 ધક ગણાય છે આ કથનથી એ વાત સમજાવવામાં આવી છે કે જે વાતમાં
 ભગવાનની આજ્ઞા હોય તે જ ધર્મ છે, આજ્ઞા વિરુદ્ધ બીજું આચરણ અધર્મ
 છે. ત્યારપછી ભગવાન વડે “ અગારધમ્મં દુવાલસવિહં આહ્વલ્લઃ તં જહા પંચ
 અણુવ્વચાઈં, તિણ્ણિ ગુણવ્વચાઈં ચત્તારિ સિક્ખાવચાઈં ” આ સૂત્ર ઠારા એ સ્પષ્ટ
 કરવામાં આવ્યું છે કે ગૃહસ્થનો ધર્મ ૧૨ પ્રકારનો છે—૫ અણુવ્રત, ૩ ગુણવ્રત
 અને ૪ શિક્ષાવ્રત. આ રીતે “ અચમાડસો અગારસામાહ્ણ ધમ્મે પળ્ણત્તે એયસ્સ
 ધમ્મસ્સ સિક્ખાણ ઉવઢ્ઠિણ, સમણોવાસણ વા સમણોવાસિયા વા વિહરમાણે

छाया—अयमायुष्मन् ! अगरसामयिको धर्मः प्रज्ञप्तः, एतस्य धर्मस्य शिक्षायामुपस्थितः'—आराधकः श्रमणोपासको वा श्रमणोपासिका वा विहरमाणा आज्ञाया आराधको भवति । इति ॥

अत्रापि एतस्य द्वादशविधस्य धर्मस्य आराधक एव श्रमणोपासक आज्ञाया आराधक इति बोधयताऽऽज्ञैव धर्मस्य मूलमिति बोधितम् ।

आचाराङ्गसूत्रेऽपि प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशे भगवताऽभिहितम्—“ जाए सद्दाए णिक्खंते तमेवमणुपालिज्जा-विजहिता विसोत्तियं पुव्वसंजोगं । पणया वीरा महावीहिं । लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं । ” इति

आयुष्यमन् ! यह गृहस्थ का धर्म कहा गया है । इस धर्म की शिक्षा में उपस्थित-श्रमणोपासक-मुनिजनों के भक्त ऐसे श्रावकजन अथवा श्राविकाजन तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा के आराधक माने जाते हैं । इस सूत्र में भी यही प्रकट किया गया है कि इस १२ प्रकार के धर्म का आराधक ही श्रमणोपासक-श्रावक, श्राविका तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा का आराधक है इस प्रकार समझानेवाले श्री जिनेन्द्र देव ने आज्ञा ही धर्म का मूल है यह समझाया है ।

आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययनके तृतीय उद्देशे में भगवान ने यह कहा है “ जाए सद्दाए णिक्खंते तमेव मणुपालिज्जा विजहिता विसोत्तियं पुव्वसंजोगं । पणया वीरा महावीहिं लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ” कि जिस श्रद्धा उत्साह से “अर्हत प्रभु द्वारा प्रतिपादित सम्यग्दर्शनादिक मोक्षके मार्ग है या नहीं है” इस प्रकार सर्व

आणाए आराहए भवइ ” डे आयुष्मन्त ! आ गृहस्थ धर्म 'भताववामां आण्ये छे. आ धर्मनी शिक्षामां उपस्थित श्रमणोपासक मुनिआना लकतजन-श्रावके अथवा तो श्राविकाओ तीर्थंकर प्रभुनी आज्ञाना आराधक गणाय छे. आ सूत्रमां पणु आ प्रमाणे व स्पष्ट करवामां आण्युं छे डे १२ प्रकारना धर्मना आराधके व श्रमणोपासक श्रावक श्राविका तीर्थंकर प्रभुनी आज्ञाने आराधके छे. आ रीते समलवनारा श्री जनेन्द्रदेवे आज्ञा व धर्मनुं मूण छे आम समलण्युं छे.

आचारांग सूत्रना पडेला अध्ययनना त्रीण उदेशकमां लगवाने आ प्रमाणे कथु छे—“ जाए सद्दाए णिक्खंते तमेवमणुपालिज्जा विजहिता विसोत्तियं पुव्वसंजोगं । पणया वीरा महावीहिं लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ” डे व श्रद्धा-उत्साहथी “अर्हत प्रभु वडे प्रतिप्रादित सम्यग् दर्शन वगेरे मोक्षना मार्ग छे डे नडि ” आ रीते सर्व आगम विषयक सर्व शंका तेमण

યયા શ્રદ્ધયા-સમ્યક્ત્વેન 'વિસોત્તિયં' વિસ્રોતસિકાં=શઙ્કાં-સર્વશઙ્કાં દેશ-
શઙ્કાં ચેત્યર્થઃ, યથા-'કિમાર્હતો મોક્ષમાર્ગોઽસ્તિ ન વા' ઇતિ સર્વાગમવિષયિકા
શઙ્કા સર્વશઙ્કા, તથા-"કિમપ્કાયાદયો જીવાઃ સન્તિ ન વા" ઇતિ દેશશઙ્કા ।
તથા 'પુવ્વસંજોગં' પૂર્વસંયોગં=માતાપિત્રાદિસમ્બન્ધં ધનધાન્યસ્વજનાદિસમ્બન્ધં
વા, ઇદમુપલક્ષણં-તેન પશ્ચાત્સંયોગમપિ શ્વશુરાદિકૃતં, 'વિજહિત્તા' વિહાય=પરિ-
ત્યજ્ય 'ગિત્ત્વંતે' નિક્રાન્તઃ=પ્રવ્રજિતઃ । 'તં' તાં શ્રદ્ધામ્ . 'અણુપાલિજ્જા
એવ' અણુપાલયેદેવ-નિરતિચારં રક્ષેદિત્યર્થઃ ।

અથ-'પરિશીલિતમાર્ગોઽનુગમ્યતે' ઇતિ લોકરીત્યા શિષ્યશ્રદ્ધાદૃઢીકરણાય
પૂર્વમહાપુરુપાચરિતોઽયં માર્ગં ઇતિ ।

વીરાઃ—ભાવવીરાઃ સંયમાનુષ્ઠાને વીર્યવન્તઃ 'મહાવીરિં' મહાવીરિં=
મહાવીરિઃ-સમ્યગ્દર્શનાદિલક્ષણો મહામાર્ગઃ મહાપુરુપસેવિત્ત્વાત્, તાંમહાવીરિં

આગમ વિષયક સર્વશંકા કા તથા "અપ્ કાચિકાદિક જીવ હૈં યા
નહીં" ઇસ પ્રકાર કી દેશશંકા ઓર માતા પિતા આદિ કે સાથ કે
સંબંધરૂપ પૂર્વ સંયોગ એવં ધન, ધાન્ય, સ્વજન આદિ સંબંધ, ઉપલક્ષણ
સે શ્વશુર આદિરૂપ પ્રશ્ચાત્ સંયોગ કા પરિત્યાગ કર યહ જીવ સંસાર
આદિ પદાર્થો કો હેય સમજ્ઞ ઉનસે સર્વથા વિરક્ત હો જાતા હૈં ઉસ
શ્રદ્ધા કા અતિચાર આદિ કોં સે રક્ષા કરની ચાહિયે-ઉસ શ્રદ્ધા કા
અતિચાર રહિફ હોકર મુનિ કો પાલન કરના ચાહિયે । જો માર્ગ પરિ-
શીલિત હોતા હૈં ઉસ પર અનેક પ્રાણી ચલતે હૈં યહ લૌકિકરીતિ હૈં ।
હસીરીતિ કે અનુસાર શિષ્યોં કી શ્રદ્ધા કો દૃઢ કરને કે લિયે "યહ
માર્ગ પૂર્વ મેં મહાપુરુપોં દ્વારા સેવિત ક્રિયા ગયા હૈં" હમેં સમજ્ઞાને કે
લિયે સૂત્રકાર "પણયા વીરા મહાવીરિં" ઇસ અંશ કા કથન કરતે હૈં

"અપ્કાચિક વગેરે જીવો છે કે નથી" આ બંતની દેશ શંકા અને માતા
પિતા વગેરેની સાથેના સંબંધ રૂપ પૂર્વ સંયોગ અને ધન, ધાન્ય, સ્વજન
વગેરે સંબંધ ઉપલક્ષણથી 'શ્વશુર' વગેરે રૂપ પશ્ચાત્ સંયોગનો પરિત્યાગ
કરીને આ જીવ સંસાર વગેરે પદાર્થોને હેય સમજ્ઞને તેમના તરફ અપૂર્ણપણે
વિરક્ત થઈ બંધ છે તે શ્રદ્ધાની અતિચાર વગેરેથી રક્ષા કરવી જોઈએ. તે
શ્રદ્ધાનું પાલન મુનિએ અતિચાર વગર થઈને કરવું જોઈએ જે માર્ગ પરિ-
શીલિત હોય છે તે તરફ ધણું પ્રાણીએ બંધ છે, આ લૌકિક પ્રથા છે. આ પ્રથા
પ્રમાણે શિષ્યોની શ્રદ્ધાને મન્યૂત બનાવવા માટે "આ માર્ગ મહા પુરુષો
વડે સેવવામાં આવ્યો છે." આ વાત સમજાવવા માટે સૂત્રકાર
"પણયા વીરા મહાવીરિં" આ વચનને ટાકે છે. વીર જે પ્રકારના હોય છે-

‘पणथा’ मृगताः=प्राप्ताः कठिनतरतपःसंयमाराधनेन प्राप्तवन्त इत्यर्थः । अयमेव मार्गो मोक्षावाप्तिकरोऽज्ञेयसंयमिसेवितत्वात्, तीर्थङ्करादिमहापुरुषा अपि मार्गमिममनुशीलितवन्त इति विश्वसनीयतया शिष्याणां श्रद्धापूर्वकं प्रवृत्तिर्यथा स्यादिति भावः ।

कश्चिन्मन्दधीः शिष्योऽनेकदृष्टान्तैर्वोध्यमानोऽपि अप्कायादिजीवेषु न श्रद्धयातीति तमुद्दिश्य कथयति—हे शिष्य ! तव मतिर्यद्यपि अप्कायजीवविषये न

वीर दो प्रकार के होते हैं ? द्रव्यवीर और दूसरे भाववीर । संयम के अनुष्ठान करने में जो शक्तिसंपन्न हैं वे भाववीर हैं । ये जीव सम्यग्दर्शन आदि लक्षणरूप इस महाविस्तृतमार्ग को कि जो महापुरुषों द्वारा सेवित हुआ है कठिनतर तप और संयम की आराधना से प्राप्त कर लिया करते हैं । कहनेका सार यही है कि भाववीर यही अपने चित्तमें विचार किया करते हैं कि सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र और सम्यग्गत्य रूप ही मार्ग है क्यों कि इसी से मुक्ति की प्राप्ति होती है—इसीलिये इस मार्गका समस्त संयमीजीवोंने पूर्व में सेवन किया है और तो क्या स्वयं तीर्थंकर प्रभु ने भी इसी मार्ग की परिशीलना की है । इसलिये इस मार्ग में प्रवृत्ति सर्वहित विधायी है इस प्रकार यह मार्ग विश्वास योग्य होने से शिष्यजन भी श्रद्धापूर्वक इसमें प्रवृत्ति करें ।

कोई मन्दबुद्धिवाला शिष्य अनेक दृष्टान्तों द्वारा समझाये जाने पर भी यदि अप्काय आदि जीवों की श्रद्धा से रहित होता है तो उसे

१ द्रव्य-वीर, २ भाव-वीर. संयमना अनुष्ठानमां ने शक्तिशाणी छे ते भाव वीर छे. आ भधा लुवे सम्यागू-दर्शन वगेरे लक्षण रुप आ विस्तृतमार्गने के ने भडापुत्रो वडे सेवामां आव्युं छे—कठण तप अने संयमनी आराधनाथी भेजवी ले छे. कडेवानी मतलभ अे छे के भाव-वीर। पोताना मनमां आ प्रभाणे न विचारो करता रहे छे के अरी रीते सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र रुप न मार्ग छे केभके मुक्तिनी प्राप्ति अेनाथी न थाय छे. अेटला भाटे न पडेलां थर्छ गयेला भधा लुवेअे आ मार्गनुं न अनुसरणु क्युं डतुं. तीर्थंकर प्रभुअे जते पणु आ मार्गनी न परिशीलता करी छे. अेथी आ मार्गमां प्रवृत्त थवुं ते भधी रीते डितावह छे. आ प्रभाणे आ मार्ग विश्वसनीय होवा भदल शिष्यो पणु श्रद्धा राप्तीने तेमां प्रवृत्त थाय.

कोईक मंद बुद्धि धरावनार शिष्य धणा दृष्टान्तो वडे स्पष्ट करवामां आववा छतां पणु ले अप्काय वगेरे लुवेनी श्रद्धाथी रहित होय छे तो

परिस्फुरति, तद्विषये विशेषज्ञानाभावात्, तथापि भगवदाज्ञया श्रद्धा नितरां विधेयेत्याशयेनाह—“ लोमं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ” इति ।

“ लोमं ” लोकम् अत्र लोकशब्देन प्रकरणवशादप्याय लोक एव गृह्यते, तमपूकायलोकं, च शब्देन अन्यांश्चापूकायाश्रितान् जीवान् “ आणाए ” आज्ञया तीर्थंकर वचनेन “ अभिसमेच्चा ” अभिसमेत्य आभिमुख्येन सम्यग्ज्ञात्वा, अपूकायादयो जीवाः सन्तीत्येवमवबुध्येत्यर्थः, “ अकुतोभयं ” नास्ति कुतश्चित्

समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्य ! तुम्हारी बुद्धि अपूकायिक आदि जीवोंकी श्रद्धा करनेमें उन विषयक विशेषज्ञानके अभावसे यदि समर्थ नहीं है, तौ भी भगवान् की आज्ञा से तुम्हें उनके विषय में अपनी श्रद्धा को दूषित नहीं होने देना चाहिये—अर्थात् भगवान् की आज्ञा प्रमाण मानकर तुम्हें उनके विषय में अपनी अतिशय श्रद्धा जाग्रत करनी चाहिये । सूत्रकार इसी अभिप्राय से कहते हैं कि “ लोमं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ” इति । अपूकाय रूप लोक को तथा “ च ” शब्द से अन्य अपूकाय के अश्रित जीवों को तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा से अच्छी तरह जानकर उनकी आज्ञानुसार उनका अस्तित्व मानकर आत्मकल्याण के अभिलाषी मुनियों को संयम का पालन करना चाहिये । सूत्रस्थलोक शब्द यहां प्रकरण के वश से अपूकाय का बोधक है । “ च ” शब्द से तदाश्रित अन्य जीवों का ग्रहण हुआ है । “ अकुतोभयं ” शब्द का अर्थ संयम है कहीं से भी किसी

तेने समजववा माटे सूत्रकार कडे छे के छे शिष्य ! तमारी बुद्धि अपूकायिक वगेरे लोवोनी श्रद्धा करवामा तेमना विषे सविशेष ज्ञानना अलावना लीधे जे समर्थ नथी तेा पणु भगवाननी आज्ञाथी ते प्रत्ये तमे पोतानी श्रद्धाने दूषित थवा देशे नहि ओटवे के भगवाननी आज्ञा प्रमाण मानीने मंद बुद्धिवाणा शिष्योञ्जे तेमना प्रत्ये पोतानी वधारेमां वधारे श्रद्धा नशत करवी जेधञ्जे. सूत्रकार आ प्रयोजनथी न कडे छे के “ लोमं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ” इति । अपूकाय रूप लोकने तेमन ‘ च ’ शब्दथी पील अपूकायाश्रित लोवोने तीर्थंकर प्रभुनी आज्ञाथी सारी पेठे समलने तेमनी आज्ञा मुज्ज तेमनुं आस्तित्व मानीने आत्मकल्याणने धञ्छनारा मुनि-ओञ्जे संयमनुं पालन करवु जेधञ्जे. सूत्रमां आवेलो ‘ लोक ’ शब्द अडीं प्रकरणु वशात् अपूकायनेा वाचक छे. ‘ च ’ शब्दथी तदाश्रित पील लोवोनुं शक्य धयु छे “ अकुतोभय ” शब्दनेा अर्थ संयम छे. केध पणु जग्या-ओथी केध पणु रीते लोवोने जेनाथी लय छेतो नथी ते अकुतोभय-संयम

केनापि प्रकारेण प्राणिनां भयं यस्मात् सोऽङ्कुतोभयः=संयमस्तम्, “अणुपालिज्जा” अनुपालयेत् इति पूर्वोक्तेन सम्बन्धः । सर्वदा जीवाभिरक्षणरूपसंयमानुपालने सावधानतया यत्नः कार्यः इत्यर्थः ।

अत्र “जाए सद्दाए निक्खंते तमेवमणुपालिज्जा विजहिता विसोत्तियं पुव्वसंजोगं” इत्यनेन श्रद्धाया आराध्यत्वे जिनाज्ञायाः सद्भावात् श्रद्धाया धर्मत्वं सिद्धम् ।

श्रद्धादृढीकरणमपि च धर्मस्तदर्थं “पणया वीरा महावीहिं” इति भगवदुपदेशस्य सद्भावात् ।

“लोगं च अणाए अभिसमेच्चा” इत्यनेनाज्ञायाः षट्कायजीवतत्त्वज्ञानहेतुत्वेन वर्णनात् तत्त्वज्ञानस्य धर्मत्वम् ।

भी प्रकार से जीवों को जिससे भय नहीं होता है वह अङ्कुतोभय-संयम है भाव इसका यही है कि आत्म कल्याण के इच्छुक सुनियों को जीवों के संरक्षण रूप संयम की आराधना करने में सावधानता पूर्वक प्रयत्नशील रहना चाहिये । यहां “जाए सद्दाए निक्खंते तमेवमणुपालिज्जा, विजहिता विसोत्तियं पुव्वसंजोगं” इस सूत्रांश से यह बात समझाई गई है कि श्रद्धा की आराधना में जिनेन्द्र की आज्ञा का सद्भाव है अतः वही धर्म है । अपि च श्रद्धा की दृढता करना यह भी धर्म है । इसी निमित्त “पणया वीरा महावीहिं” यह भगवान का उपदेश है ।

“लोगं च अणाए अभिसमेच्चा” इस सूत्रांश से यह प्रकट होता है कि जब जिनेन्द्र की आज्ञा षट् कायिक जीवों के वास्तविक ज्ञान होने में हेतुरूप से वर्णित हुई है तो इस स्थिति में तत्त्वज्ञान धर्म है ।

छे. मतलब अे छे के आत्मकल्याण धरंछनारा सुनिअोने अुवोनी रक्षा रुप संयमनी आराधना करवामां सावधान थधने प्रयत्न करतां रडेवु न्नेधअे. अडी “जाए” सद्दाए निक्खंते तमेवमणुपालिज्जा, विजहिता विसोत्तियं पुव्वसंजोगं” आ सूत्रांश वडे आ वात रुपष्ट करवामां आवी छे के श्रद्धानी आराधनामां अनेन्द्रनी आज्ञाने सद्भाव छे अेटला माटे तेज धर्म छे. अने श्रद्धाने भण्युत अनाववी ते पणु धर्म छे. आ निमित्ते ज “पणया वीरा महावीहिं” आ भगवानने उपदेश छे.

“लोगं च अणाए अभिसमेच्चा” आ सूत्रांश वडे आ वात रुपष्ट थाय छे के न्यारे अनेन्द्रनी आज्ञा षट्कायिक अुवो विधे वास्तविक ज्ञान कराववा माटे ज करवामां आवी छे त्यारे आवी परिस्थितिमां तत्त्वज्ञान धर्म छे.

‘अकृतोभयं’ इत्यस्य—“अणुपालिज्जा” इत्यनेनान्वयाद् अकृतोभयं-संयमम् अनुपालयेदित्यपि भगवदाज्ञैव, तथा च संयमस्याऽऽराध्यतया विधानात् संयमस्य धर्मत्वं बोध्यम् ।

अपरं च—उत्तराध्ययनसूत्रे—“धम्माणं कासवो मुह” इत्युक्तम् “धम्माणं” धर्माणां श्रुतधर्माणां चारित्रधर्माणां च “कासवो” काश्यपः काश्यपगोत्रीयः श्रीमहावीरवर्धमानस्वामी “मुह” मुखं वक्ता वर्तते ।

अहिंसादौ खलु भगवतोऽर्हत आज्ञा वर्तते, पश्यागमेषु । यथा—आचाराङ्गसूत्रे—
“से वेमि—जे य अतीता, जे य पडुप्पन्ना, जे य आगमिस्सा अरहंता भगवंतो, ते सव्वेवि एवमाहक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेति एवं परूवेति—

‘अकृतोभयं’ इस पद का “अणुपालिज्जा” इस क्रियापद के साथ अन्वय करने से यह अर्थ होता है कि अकृतोभयरूप संयम का पालन करना चाहिये, यह भी जब भगवान की आज्ञा ही है तो इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भगवान की आज्ञा से संयम आराधन करने लायक होने से धर्म रूप है । अपरं च—उत्तराध्ययन सूत्र में “धम्माणं कासवो मुहं” यह कहा है इसका भाव यह है कि श्रुत एवं चारित्र धर्मों के मुख-वक्ता-काश्यप गोत्रीय श्री महावीर वर्धमान स्वामी हैं । देखो उन्होंने ने आगमों में अहिंसादिक महाव्रतों के पालने का मुमुक्षुओं=मोक्षाभिलाषियों के लिये इस प्रकार आज्ञा प्रदान की है “से वेमि—जे य अतीता जे य पडुप्पन्ना जे य आगमिस्सा अरहंता भगवंतो ते सव्वे वि एवमाहक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेति एवं परूवेति” सव्वे

‘अकृतोभयं’ आ पढने ‘अणुपालिज्जा’ आ क्रियापढनी साथे अन्वय कर-वाधी आ प्रमाणे अर्थ थाय छे के अकृतोभय इय संयमनुं पालन करवुं लेधये. आ पणु लगवाननी जे आज्ञा छे ते अनाथी आ वात स्पष्ट थय लय छे के लगवाननी आज्ञाधी ‘संयम’ आरधवा योग्य होवाधी धर्मइय छे. अने वणी ‘उत्तराध्ययन सूत्र’ भां “धम्माणं कासवो मुहं” आ प्रमा-णुने उल्लेख छे. अने अर्थ अम थाय छे के श्रुत अने आरित्र धर्माना मुप्य-वक्ता-काश्यप गोत्रीय श्री महावीर वर्धमान स्वामी छे. तेअधीअे अहिंसा वगेरे महाव्रताना पालन करनारा मोक्ष छिछनारा लोकाने भाटे आग-भोभां आ लतनी आज्ञा करी छे के:—

“से वेमि—जे य अतीता जे य पडुप्पन्ना जे य आगमिस्सा अरहंता भगवंतो छे सव्वे वि एवमाहक्खंति एव भासंति एवं पण्णवेति एवं परूवेति सव्वे

सर्वे पाणा, सर्वे भूया, सर्वे जीवा, सर्वे सत्ता न हंतव्या न अज्जावेयव्या, न किलायव्या, न उद्वेयव्या ।

एस धम्मे सुद्धे णित्तिए सासए, समेच्चा लोयं खेयन्नेहिं पवेइए ।

आर्हतधर्मएव श्रद्धेय इति बोधयितु श्रीसुधर्मास्वामीप्राह—“ से वेमि ” इत्यादि । तीर्थवरैः स्वस्वशिष्येभ्यो यत् सम्यक्त्वमुक्तं तदहं ब्रवीमि । यद्वा— ‘से’ इत्यस्य ‘स’ इतिच्छाया । येन मया भगवतः श्री वर्धमानरवामिनस्तीर्थकरस्य सकाशे तद्वचनतरतत्त्वज्ञानं लब्धं, सोऽहं ब्रवीमि ।—भगदुक्तार्थमेव कथयामि, तस्मान्मम वाक्यं श्रद्धेयमितिभावः ।

पाणा, सर्वे भूया, सर्वे जीवा, सर्वे सत्ता न हंतव्या, न अज्जावेयव्या, न परिघेत्तव्या, न परितावेयव्या न किलामेयव्या, न उद्वेयव्या । एस धम्मे सुद्धे णित्तिए समेच्चा लोयं खेयन्नेहिं पवेइए ” (आ. सू० अ- ४ उ- १ सू० १) श्री सुधर्मा स्वामी इस सूत्र द्वारा जम्बूस्वामी को यह समझाते हैं कि अर्हतप्रभु द्वारा प्रतिपादित धर्म ही श्रद्धा करने योग्य हैं—वे इसमें कहते हैं कि तीर्थकर देवों ने अपने २ शिष्यों के लिये जिस सम्यक्त्व का कथन किया है वही तत्त्व उन तीर्थकर प्रभुके वचनों द्वारा श्रवण कर मैं तुम्हें समझाता हूँ अर्थात् मैं अपनी निजी कल्पना से इस विषय में कुछ भी न कह कर जो कुछ तुम्हें समझाऊँगा वह तीर्थकर प्रभु की मान्यतानुसार ही समझाऊँगा अतः इस में संदेह के लिये थोड़ी सी भी जगह नहीं है—इसलिये इस मेरे कथन का मूल-स्रोत जब श्री तीर्थकर प्रभु का उपदेशश्रवण है तब यह श्रद्धेय—श्रद्धा करने योग्य आवश्यक है भगवान् का यह आदेश है—कि जितने भी

पाणा, सर्वे भूया, सर्वे जीवा, सर्वे सत्ता न हंतव्या, न अज्जावेयव्या, न परिघेत्तव्या, न परितावेयव्या, न किलामेयव्या, न उद्वेयव्या । एस धम्मे सुद्धे णित्तिए समेच्चा लोयं खेयन्नेहिं पवेइए ” (आ. सू अ. ४ उ १ सू. १) श्री सुधर्मा स्वामी आ सूत्र वडे श्री ञ षू स्वामीने आ प्रमाणे समज्जवे छे के अर्हत प्रभु वडे प्रतिपादित धर्म ञ श्रद्धेय छे, तेओ आ सूत्रमां कडे छे के तीर्थकर देवोओ पोतपोताना शिष्यो माटे ञे सम्यक्त्वतुं निरूपणु कर्युं छे ते ञ तत्त्व तीर्थकर प्रभुना मुअथी श्रवणु कर्या पाह हु तमने समज्जवी रह्यो छुं. ओटले के हुं पोतानी भेणे आमां कर्छ पणु उमेर्या वगर तीर्थकर प्रभुनी मान्यता मुअथ ञ तमने समज्जवीश ओधी अ मां शंकांने माटे सडेण पणु स्थान नथी. आ प्रमाणे न्यारे भारा कथनने भूण स्रोत श्री तीर्थकर प्रभुनु उपदेश श्रवणु छे त्यारे ते श्रद्धेय ञ छे. भगवाननी आ प्रमाणे आज्ञा छे के

भगवदुक्तार्थमाह—“जे य अतीता” इत्यादि । ये च अतीताः=अतीतकालिकाः, ये च ‘पद्भुषणा’ प्रत्युत्पन्नाः=वर्तमानकालिकाः पञ्चभरतेषु पञ्चैरवतेषु पञ्चमहाविदेहेषु वर्तमानाः, ये च “आगमिस्मा” आगामिनः—भविष्यत्कालभास्विनः, ते सर्वेऽपि अर्हन्तो भगवन्तः एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण “आइकखंति” आख्यान्ति=परप्रश्नावसरे कथयन्ति । अत्र वर्तमानग्रहणमुपलक्षणं तेनातीतानाग-

भूतकाल में तीर्थंकर हुए हैं, वर्तमान काल में भी पांच भरत, पांच ऐरवत तथा पांच महाविदेह सम्बन्धी जितने भी तीर्थंकर हैं और भविष्यत काल में जो तीर्थंकर होंगे उन सब ने जब उनसे किसी ने प्रश्न किया, तो एक यही उत्तर दिया है देव एवं मनुष्यों की सभा में अपनी सर्वभाषा में परिणमित हुई अर्धमागधीरूप दिव्यध्वनि द्वारा उन्होंने ने समस्त जीवों को यही समझाया है, और हेतु, दृष्टान्तों द्वारा इसी बात की पुष्टि की है । वक्तव्य विषय के भेद और प्रभेदों को प्रकट करते हुए उन्होंने ने अच्छी तरह से यही प्ररूपणा की है कि समस्त प्राणी पृथिवी आदिक एकेन्द्रिय स्थावर जीवों से लेकर द्वीन्द्रियादिक पंचेन्द्रिय जीव पर्यन्त त्रस जीव, चतुर्दश भूतग्रामरूप समस्त भूत, नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति एवं देवगति के समस्त जीव, एवं अपने द्वारा किये गये कर्मों के उदय के फल स्वरूप सुख दुःख आदि का अनुभव करने वाले समस्त सत्व दण्ड आदि द्वारा कभी भी ताडन करने योग्य, घात करने योग्य, ये मेरे आधीन हैं ऐसा ख्याल

भूतकालमां जेटला तीर्थंकर थया छे, वर्तमानकालमां पञ्च पांच भरत, पांच ऐरवत तथा पांच महाविदेह संगंधी जेटला तीर्थंकरे छे अने भविष्यकालमां जेटला तीर्थंकरे थये ते गंधाभांथी न्यारे डोछये प्रश्न क्ये त्यारे जेक ज उत्तर आप्ये छे, देव अने माणुसोनी सभामां योतानी सर्व भाषाभां परिष्णुगित थयेली अर्ध मागधी इय दिव्यध्वनिमां तेजोअये गंधा लोवोने जेव वात भमजयी छे अने हेतु तेभज दृष्टांतो वडे आ वातनुं ज समर्थन क्युं छे. वक्तव्य विषयने भेद अने प्रभेदोने स्पष्ट करतां तेजोअये सरस रीते जेव प्रश्नपुा करी छे के समस्त प्राणीजो पृथिव वगेरे जेकेन्द्रिय स्थावर लोवेधी भांडीने द्वीन्द्रिय वगेरे पंचेन्द्रिय लोव सुधीना त्रस लोव, चतुर्दश भूतग्राम इय समस्त भूत, नरक गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति अने देव गतिना गंधा लोवो, अने योताना वडे करवाभां आवेलां कर्मोना उदयना इण इण रूप सुख दुःख वगेरेने अनुभवता गंधा सत्वो दंड वगेरेधी डोछ पञ्च वधत ताडन करवा योज्य के घात करवा योज्य, के जेजो भाग आधीन छे

तयोरपि ग्रहणम्, तथा च—‘ एवमाचख्युः, एवमाख्यास्यन्ति ’ इत्यापि योजनीयम् । एवं सर्वासु क्रियासु योजनीयम् । तथा—एवं “ भासन्ति ” भाषन्ते=सुर-
नरपरिषदि सर्वजीवानां स्वस्वभाषापरिणामिन्याऽर्धमागध्या भाषया ब्रुवन्ति ।
तथा—एवं “ पण्वेति ” प्रज्ञापयन्ति=हेतुदृष्टान्तादिना प्रकर्षेण बोधयन्ति । तथा—
एवं ‘ परूवेति ’ प्ररूपयन्ति=तत्तद्भेदं प्रदर्श्य प्रकर्षेण निर्णयन्ति ।

ननु सर्वेऽप्यर्हन्तो भगवन्तः—किमाख्यान्तीत्यादिजिज्ञासायामाह—‘ सव्वे-
पाणा ’ इत्यादि । सर्वे=निरवशेषाः, प्राणाः=प्राणिनः, पृथिव्यादयः स्थावरा

कर परिग्रह रूप से संग्रह करने योग्य, अन्न, पान आदि के निरोध एवं गर्मीसर्दी आदिमें रखने से कभी भी पीडा पहुँचाने योग्य और विषप्रदान एवं शस्त्र के आघात से विनाश करने योग्य नहीं हैं ।

सूत्र में “ आइक्खन्ति-आख्यान्ति ” यह वर्तमानकालिक-क्रिया पद अतीत और अनागतकालिक क्रियापद का उपलक्षक है । अतः इस से यह अर्थ प्रतीत होता है कि उन तीर्थंकर प्रभुओं ने वर्तमान में जैसा कहा है वैसा ही उन्होंने ने या अन्य भूत कालिक तीर्थंकरों ने भूत काल में भी कहा है एवं आगामी कालमें भी वे वैसा ही कहेंगे । इसी प्रकार “ भासन्ति, पण्वेति ” इत्यादि क्रियापदों के साथ भी अतीत और अनागत कालिक क्रियापदोंका संबंध कर लेना चाहिये । इस कथन से सूत्रकार ने उनके कथन में परस्पर में विरुद्ध अर्थकी प्ररूपणा का अभाव प्रदर्शित किया है जो कुछ उन्होंने ने कहा है । वह भूत, भविष्यत और वर्तमान काल में से किसी भी काल में किसी भी

એવું સમજીને પરિગ્રહ રૂપથી સંગ્રહ કરવા યોગ્ય, કે અન્ન, પાન વગેરેનો નિરોધ અને ગર્મી, ઠંડી વગેરેમાં રાખીને કોઈ પણ વખતે પીડિત કરવા યોગ્ય અને વિષ આપીને તેમજ શસ્ત્રના આઘાતથી વિનાશ કરવા યોગ્ય નથી.

સૂત્રમાં “ આઈક્ખન્તિ આખ્યાન્તિ ” આ વર્તમાનકાલિક ક્રિયાપદ અતીત તેમજ અનાગત કાલિક ક્રિયાપદનું ઉપલક્ષક છે. એથી એના વડે આ બતાવના અર્થની પ્રતીતિ થાય છે કે તે તીર્થંકર પ્રભુઓએ વર્તમાનકાળમાં જે પ્રમાણે કહ્યું છે, તે પ્રમાણે જ તેઓએ અથવા તે બીજા ભૂતકાલિક તીર્થંકરોએ ભૂત-કાળમાં પણ કહ્યું છે અને ભવિષ્યકાળમાં પણ તેઓ તે પ્રમાણે જ કહેશે. આ રીતે “ ભાસન્તિ, પણ્વેતિ ” વગેરે ક્રિયાપદોની સાથે પણ અતીત અને અનાગત કાલિક ક્રિયાપદોનો સંબંધ જોડવો જોઈએ. આ કથનથી સૂત્રકારે તેમના કથનમાં પરસ્પરમાં વિરુદ્ધ અર્થની પ્રરૂપણાનો અભાવ બતાવ્યો છે. તેમણે જે

इन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्ताहसाश्रेत्यर्थः, इन्द्रियादिप्राणानां यथासम्भवंधारणात् तेषु प्राणित्वमस्तीति भावः । तथा-सर्वे ' भूया ' भूताः=भवन्ति भविष्यन्त्यभूवन्निति भूताः-चतुर्दशभूतग्रामरूपाः, तथा-सर्वे जीवाः=जीवन्ति जीविष्यन्त्यजीविषु रिति जीवाः-नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवाः, तथा-सर्वे "सत्ता" सत्त्वाः=

प्रमाण द्वारा बाधित नहीं हो सकने से पूर्वापर विरोध रहित ही कहा है । " प्राण " शब्द से सूत्रकार ने त्रस और स्थावर प्राणियों का ग्रहण किया है । क्योंकि १० द्रव्य प्राणों में से इनको अपने २ योग्य प्राणों का सद्भाव पाया जाता है । अतः इनके सद्भाव से ही ये प्राणी कहे जाते हैं । " भवन्ति, भविष्यन्ति, अभूवन् " यह भूत शब्द की व्युत्पत्ति है । इसका भाव यही है कि जो वर्तमान में सत्ता विशिष्ट हैं, आगामी काल में सत्ता विशिष्ट रहेंगे एवं भूतकाल में भी जो सत्ता विशिष्ट थे । इस व्युत्पत्ति से सूत्रकार ने यह प्रदर्शित किया है कि प्रत्येक जीवादिक पदार्थ किसी भी काल में उत्पाद और व्यय धर्म विशिष्ट होते हुए भी अपनी २ सत्ता से रहित नहीं होते हैं । क्योंकि द्रव्य का " उत्पादव्ययध्रौव्यं सत् " उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये स्वभाव हैं । इससे यह बात निश्चित कोटि में आता है कि किसी भी नवीन पदार्थ का उत्पाद नहीं होता है और न सत् पदार्थ का विनाश ही होता है । " सतो विनाशः असत्तश्चोत्पादो न " " जीवन्ति, जीविष्यन्ति, अजीविषु " यह जीव शब्द की व्युत्पत्ति है ।

इंछ इछुं छे ते भूत भविष्यत अने वर्तमानक्षणमाथी डोर्छ पणु क्षणमां गभे ते प्रमाण द्वारा बाधित नहि होवा गदल पूर्वापर विरोध रहित न इछु छे, " प्राण " शब्द वडे सूत्रकारे त्रस अने स्थावर प्राणीयोनुं ग्रहण क्युं छे. डेभडे १० द्रव्य प्राणोमाथी ओमनामां पोतपोताने योग्य प्राणोने सद्भाव भणे छे ओथी ओमना सद्भावथी न तेओ प्राणी इछेवाय छे. " भवन्ति, भविष्यन्ति, अभूवन् " आ भूत शब्दनी व्युत्पत्ति छे ओने अर्थ आ प्रमाणे छे डे वर्तमानक्षणमां तेओ सत्ता विशिष्ट छे, तेओ भविष्यक्षणमां सत्ता विशिष्ट रहेशे अने भूतक्षणमा पणु तेओ सत्ता विशिष्ट डता. आ व्युत्पत्ति वडे सूत्रकारे ओ गताव्युं छे डे हरेडे हरेड एव वगेरे पदार्थ डोर्छ पणु क्षणमां उत्पाद अने व्ययधर्म विशिष्ट होवा छतांओ पोतपोतानी सत्ताथी रहित होता नथी. डेभडे द्रव्यने " उत्पादव्ययध्रौव्यं सत् " उत्पाद, व्यय अने ध्रौव्य स्वभाव छे ओथी ओ वात योद्धस रीते स्पष्ट थाय छे डे डोर्छ पणु नवीन पदार्थने उत्पाद थतो नथी अने सत् पदार्थने विनाश पणु थतो नथी. " सतो विनाशः असत्तश्चोत्पादो न " " जीवन्ति, जीविष्यन्ति, अजीविषु " आ

स्वकृतकर्मजन्यसुखदुःखानुभविनः । अत्र सर्वप्राणिषु पुनः पुनर्दयाकरणाय पर्यायशब्दप्रयोगः ।

‘ न हंतव्या ’ न हन्तव्याः=दण्डादिभिर्न ताडयितव्याः इत्यर्थः, “ न अज्जा-वेयव्या ” नाज्ञापयितव्याः=न घातयितव्या इत्यर्थः, “ न परिवेत्तव्या ” न परि-ग्रहीतव्याः=इमे ममायत्ता इति कृत्वा परिग्रहरूपेण न स्वीकर्तव्याः, “ न परिता-

जो जीते हैं, जीवेंगे और जिये है, इस कथन से सूत्रकार ने जीव में त्रिकाल में भी जीवनत्व धर्म का अभाव नहीं होता है यह प्रदर्शित किया है चाहे जीव एक इन्द्रिय अवस्थावाला भी हो तो भी वह जीवन अवस्था से रहित नहीं होता है इससे वृक्षादिकों में अचेतनता मानने वाले बौद्ध आदिकों का मन्तव्य खंडित होता है ।

सूत्र में प्राणी, भूत, और सत्त्व इन एकार्थक पर्यायवाची शब्दों का जो सूत्रकार ने प्रयोग किया है उनका मुख्य प्रयोजन “समस्त जीवों में बारंबार दया करनी चाहिये ” है ।

यह वीतरागप्रभु द्वारा प्रतिपादित प्राणातिपातविरमणरूप धर्मशुद्ध पापानुबन्ध रहित हैं । इस कथन से सूत्रकार ने इस बात की पुष्टि की है जो अवीतराग-शाक्य आदि द्वारा धर्मरूप से प्रतिपादित हुआ है तथा जिसे उन्होंने धर्मरूप से स्वीकार किया है वह वास्तविक धर्म नहीं है । कारण कि इनमें हिंसादिक दोषों का सद्भाव पाया जाता है इनके

अव शब्दनी व्युत्पत्ति छे. जेओ अवै छे, अवशे अने अव्या छे आ कथन वडे सूत्रकारे अवमां त्रिकाणमां पणु अवन्त्व धर्मने अलाव थतो नथी आ वात स्पष्ट करी छे लदे ते अव अक इन्द्रिय अवस्थावाणे डोय छातांजे ते अवन अवस्थाथी रडित थतो नथी. आ कथनथी वृक्ष वगेरेमां अचेनता भाननारा बौद्ध वगेरेना मतनुं अडन थध जय छे.

सूत्रकारे सूत्रमां जे प्राणी, भूत अने सत्त्व आ अथा अकार्थक पर्याय-वाची शब्दोने जे प्रयोग कर्यो छे तेनुं आस कारणु “ अथा अवोमां वारंवार सद्य रडेवुं जेधजे ” ते ज छे.

वीतराग प्रभु वडे प्रतिपादित प्राणातिपात विरमणु इय आ धर्म शुद्ध पापानुबन्ध रहित छे आ कथनथी सूत्रकारे जे वातने पुष्ट करी छे के जे अवीतराग-शाक्य वगेरे द्वारा धर्म-इपथी प्रतिपादित थयो छे तेमज तेमणे जेने धर्म-इपथी स्वीकार्यो छे ते अरेअर धर्म नथी. केमके तेमां हिंसा वगेरे दोषोने सदभाव छे. असर्वज्ञ तथा रागयुक्त दोषो द्वारा प्रतिपादित होवाने

વેયવ્વા” ન પરિતાપયિતવ્યા: = અન્નપાનાદ્યવરોધનેન ગ્રીષ્માતપાદૌ સ્થાપનેન ચ ન પીડનીયા: , “ ન ક્લિલામેયવ્વા ” ન ક્લામયિતવ્યા: = ન સ્વેદયિતવ્યા: = ન વિષ-શસ્ત્રાદિના મારયિતવ્યા: ।

एषः = अनन्तरोक्तः सर्वाहर्द्भगवत्प्ररूपितः, धर्मः = सर्वमाणिप्राणातिपातविरमण-रूपः, शुद्धः = निर्मलः - पापानुबन्धरहित - इत्यर्थः । आर्हतधर्मादन्यस्तु धर्मत्वेन यः शाक्यादेरभिमतः स खलु असर्वज्ञसरागोपदिष्टत्वेन हिंसादिदोषसद्भावेन च न शुद्ध इति भावः । अत एव - एष नित्यः = अविनाशी, सर्वदा पञ्चसु महाविदेहेषु

સદ્ભાવ કા કારણ ઉસમેં અસર્વજ્ઞ ઓર સરાગિયોં દ્વારા પ્રણીતતા હી હૈ પૂર્ણ જ્ઞાનીયોં દ્વારા પ્રદર્શિત માર્ગ હી શુદ્ધ હોતા હૈં ઇસકા કારણ ઉનમેં રાગ દ્વેષ કા સર્વથા અભાવ હી હોતા હૈ । અસર્વજ્ઞ યા રાગદ્વેષકલુષિત-ચિત્તવાલોં દ્વારા પ્રદર્શિત માર્ગ ઇસલિયે શુદ્ધ નહીં હોતા હૈ કિ વે એક તો ઉસ વિષય કે પૂર્ણ જ્ઞાતા નહીં હોતે, દૂસરી અપની રાગદ્વેષમયી પ્રવૃત્તિ કો પુષ્ટ કરને કે લિયે ઉસકી અન્યથા ખી પ્રરૂપણા કર દેતે હૈં । એસા ધર્મ શાશ્વતિક નિત્ય નહીં હોતા હૈ - ક્યોં કિ એસા ધર્મકા વિશિષ્ટ જ્ઞાનિયોં - કેવલજ્ઞાનિયોં દ્વારા જીવોં કા કલ્યાણ કી કામના સે નિરાકરણ કર દિયા જાતા હૈ । વીતરાગપ્રતિપાદિત ધર્મ હી અવિનાશી રહતા હૈ, ઓર ઉસીસે જીવોં કા સદા કલ્યાણ હોતા રહતા હૈ । ઇસમેં અન્ય-થાપ્રરૂપણાકે લિયે થોડી સી ખી જગહ નહીં મિલતી હૈ । પંચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રોંમેં અવ ખી ઇસ શુદ્ધ ધર્મકા સદ્ભાવ હૈ । ઇસી અપેક્ષા ઇસે સૂત્રકારને નિત્ય-અવિનાશી કહા હૈ । શાશ્વતગતિરૂપ સુક્તિ કા કારણ હોને સે

લીધે જ તેમાં હિંસા વગેરે સદોપતા છે. પૂર્ણજ્ઞાનીઓ વડે પ્રદર્શિત માર્ગે જ શુદ્ધ હોય છે. કેમકે તેઓમાં સંપૂર્ણપણે રાગદ્વેષનો અભાવ જ હોય છે. અસર્વજ્ઞ કે રાગદ્વેષ કલુષિત ચિત્તવાળા લોકો વડે પ્રતિપાદિત માર્ગ શુદ્ધ એટલા માટે હોતો નથી કે તેઓ પ્રથમ તો તે વિષયને સંપૂર્ણપણે બાણતા નથી અને ણીજી તેઓ પોતાની રાગદ્વેષમયી પ્રવૃત્તિને પુષ્ટ કરવા માટે તેની અન્યથા પ્રરૂપણા પણ કરી જોસે છે. એવો ધર્મ શાશ્વતિક-નિત્ય હોતો નથી કેમકે એવા ધર્મનું વિશિષ્ટ જ્ઞાનીઓ-કેવલજ્ઞાનીઓ-વડે જીવોની કલ્યાણ કામનાથી પ્રેરાઈને નિરાકરણ કરવામા આવે છે. વીતરાગ પ્રતિપાદિત ધર્મ જ અવિનાશી રહે છે, અને તેથી સર્વદા જીવોનું કલ્યાણ થતું રહે છે. આમાં અન્યથા પ્રરૂપણા માટે અવકાશ જ નથી. અત્યારે પણ પંચવિદેહ ક્ષેત્રમાં આ શુદ્ધ ધર્મનો સદ્ભાવ છે. આ ધર્મને આ દૃષ્ટિથી જ સૂત્રકારે નિત્ય-અવિનાશી કહ્યો છે. શાશ્વત ગતિ રૂપ સુક્તિનો કારણ હોવાથી આ ધર્મ શાશ્વત માન

सद्भावात् । तथा-शाश्वतः=शाश्वतगतिकारणत्वात् । यद्वा-यतो नित्यस्तस्माच्छाश्वत इति । अयमेव धर्मः श्रद्धेयो ग्राह्यश्चेत्यत्र हेतुं प्रदर्शयन् विशेषणान्तरमाह-समेत्य इत्यादि । लोकं षट् जीवनिकायं दुःखदावानलान्तःपतितं, समेत्य=केवलज्ञानेन प्रत्यक्षतया विज्ञान, खेदज्ञैः=सर्वप्राणिदुःखाभिज्ञैस्तीर्थकरैः प्रवेदितः=आदिष्टः । ' प्रवेदितः ' इत्यनेन धर्मोऽयं मया न स्वमनीषया कल्पितः ' इति च सुधर्मस्वामिना शिष्यमुद्दिष्य सूचितम् । अनुयोगद्वारे—

यह शाश्वत माना गया है अथवा हेतु हेतुमद्भाव से भी यों कह सकते हैं कि जिस कारण से यह नित्य है इसी कारण से यह शाश्वत माना गया है । अतः प्रत्येक सुसुक्ष्म जीवों द्वारा यह धर्म श्रद्धेय श्रद्धा करने योग्य एवं ग्राह्य-आराधन करने योग्य है इस विषय में पूर्वोक्तरूप से सूत्रकार हेतु का कथन कर उस धर्म की प्ररूपणा करने के कारण का प्रदर्शन करते हुए " समेत्य लोकं खेदज्ञैः प्रवेदितः " कहते हैं कि समस्त प्राणीयों के दुःखों के वेत्ता केवलज्ञानी प्रभु ने इस षट्जीव निकायरूप लोक को प्रत्यक्षरूप से साक्षात् दुःखरूपी दावानल से जलता हुआ देखकर इस शुद्ध, शाश्वतिक धर्म का कथन किया है ।

भावार्थ-अनंत सांसारिक दुःखों से संतप्त समस्त संसारी जीवों को साक्षात् हस्तामलकवत् देखकर दुःखों से उनके उद्धार के निमित्त वीतराग केवलज्ञानियों ने ही इस धर्म की प्ररूपणा की है । मैं ने अपनी ओर से इसका कथन नहीं किया है । इस प्रकार श्री सुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामी को समझाते हैं ।

वामां आ०ये। छे. अथवा हेतु-हेतु मद्भावाथी पणु अ०म कडी शकाय छे के ले कारणुने लधने आ नित्य छे ते कारणुथी न आ शाश्वत मानवामां आ०ये। छे. अथी दरेक मोक्षने ध्यनारा। एवे वडे आ धर्म श्रद्धेय-श्रद्धा करवा योग्य अने ग्राह्य आराधवा योग्य छे. आ विषे सूत्रकार पूर्वोक्त रूपे हेतुनुं कथन करीने ते धर्मनी प्ररूपणा करतां " समेत्य लोकं खेदज्ञैः प्रवेदितः " कडे छे के अथा प्राणीयोनां दुःखोने जणुनारा केवलज्ञानी प्रभुअे आ षट्जीव-निकाय रूप लोकने प्रत्यक्ष रूपमां साक्षात् दुःख रूपी दावानलमां सणगता जेधने शुद्ध, शाश्वतिक धर्मनुं कथन क्युं छे—

भावार्थ—संसारना अथा एवेने अनंत सांसारिक दुःखोथी हस्ता-मलकवत् संतप्त जेधने तेमना उद्धार भाटे वीतराग केवलज्ञानीअे अे न आ धर्मनुं निरूपणु क्युं छे. मे' पोतानी मेजे आ कथन क्युं नथी. श्री सुधर्मास्वामी पोताना शिष्य न'भू स्वामीने आ प्रभाणु समजवे छे.

“ જહ મમ ણ પિયં દુઃખં જાણિયં એવ સર્વજીવાણં ।
 ન હ્ણઙ ન હ્ણાવેઙ ય, સમમણઙ તેજ સો સમણો । ઇતિ ”
 છાયા-યથા મમ ન પ્રિયં દુઃખં, જ્ઞાત્વા એવમેવ સર્વજીવાનામ્ ।
 ન હન્તિ ન ઘાતયન્તિ ચ સમમ્ અણતિ તેન સ સમણઃ ॥

ચ શબ્દાત્ ઘનતશ્ચાન્યાન્ન સમણુજાનીત ઇત્યનેન પ્રકારેણ ‘સમમણતિ’ ત્તિ સર્વજીવેષુ તુલ્યં વર્તેતે યતસ્તેનાસૌ શ્રમણ ઇતિ ગાથાર્થઃ ।

‘એસ ધમ્મે સુદ્ધે’ ઇત્યનેન આર્હત ધર્મસ્ય હિંસાદિ દોષાભાવાદ્ભગવતા શુદ્ધ-
 ત્વમુક્તમ્ । શુદ્ધધર્મવોધકત્વાચ્ચ દ્વાદશાંગ્યાઃ પ્રવચનત્વમાગમત્વં સર્વોત્કૃષ્ટત્વં
 ચ સિદ્ધયતિ । પ્રવચનસ્ય સ્વરૂપં માહાત્મ્યં ચાઽઽગમેષુ ભગવતાઽભિહિતમ્ ।

અનુયોગદ્વાર મેં-

જહ મમ ણ પિયં દુઃખં જાણિયં એવ સર્વજીવાણં ।

ન હ્ણઙ ન હ્ણાવેઙ ય સમમણઙ તેજ સો સમણો ॥ ઇતિ ।

જિસ પ્રકાર દુઃખ સુદ્ધે ઇષ્ટ નહીં હૈ, ડસી તરહ વહ દુઃખ કિસી ખી સંસારી જીવોં કો ઇષ્ટ નહીં હૈ એસા સમજ્ઞ કર જો જીવોં કી વિરાધના સ્વયં નહીં કરતા ઓર ન દૂસરોં સે કરવાતા હૈ તથા સમસ્ત જીવોં મેં તુલ્યતા કી ભાવના રખતા હૈ વહી શ્રમણ હૈ । શ્રમણ હોને મેં યે પૂર્વોક્ત યાતે હેતુ-કારણ હૈં ।

“ એસ ધમ્મે સુદ્ધે ” ઇસ સૂત્રાંશ સે શ્રી સુધર્માસ્વામી ને તીર્થંકર કથિન ધર્મ મેં હિંસાદિક દોષોં કે અભાવ સે શુદ્ધતાં કા કથન ક્રિયા હૈં । ઇસ શુદ્ધ ધર્મ કા વોધક-વોધ કરાનેવાલી હોને સે હી દ્વાદશાંગી મેં પ્રવચનતા, આગમતા એવં સર્વોત્કૃષ્ટતા સિદ્ધ હોતી હૈં । ભગવાન ને

અનુયોગદ્વારમાં—જહ મમ ણ પિયં દુઃખં જાણિયં એવ સર્વજીવાણં ।

ન હ્ણઙ ન હ્ણાવેઙ ય સમમણઙ તેજ સો સમણો ॥ ઇતિ ।

જેમ મને દુઃખ ગમતું નથી તેમજ તે દુઃખ સંસારના ડોષ પણ હવને ગમે જ નહિ. આમ સમજીને જેઓ હવેની વિરાધના યોતે કરતા નથી અને ખીન્નઓથી કરાવતા નથી તેમજ બધા હવેમાં તુલ્યતા (સમાનતા) ની દૃષ્ટિ રાખે છે તેઓ જ ‘શ્રમણુ’ છે. આ ઉપરની વાતો શ્રમણુ થવા માટેઉતુ કારણુ છે.

“ એસ ધમ્મે સુદ્ધે ” આ સૂત્રાંશથી શ્રી સુધર્મા સ્વામીએ તીર્થંકર કથિત ધર્મમાં હિંસા વગેરે દોષોના અભાવથી શુદ્ધતાનું કથન કર્યું છે. આ શુદ્ધ ધર્મનો વોધક-વોધ કરાવનારી હોવાથી જ દ્વાદશાંગીમા પ્રવચનતા આગમતા અને સર્વો-
 ત્કૃષ્ટતા સિદ્ધ થાય છે. ભગવાને આગમોમાં પ્રવચનનું સ્વરૂપ અને તેનો પ્રભાવ

यथा भगवतीसूत्रे—

पवयणं भंते ! पवयणं, पावयणी पवयणं ? । “ गोयमा ! अरहा ताव णियमा पावयणी । पवयणं पुण दुवालसंगे गणिपिटगे । तं जहा-आयारो० जाव दिट्ठिवाओ । इति, (श० २० उ०८)

भंते ! हे भदन्त ! “ पवयणं ” प्रवचनं—किं प्रवचनं, उत—“ पावयणी ” प्रवचनी प्रवचनम् ? । “ गोयमा ! ” हे गौतम ! ‘ अरहा ’ अर्हन् ‘ ताव ’ तावत् नियमात्प्रवचनी । प्रवचनं पुनः ‘ दुवालसंगे ’ द्वादशाङ्गी “ गणिपिटगे ” गणिपिटकम् । तद् यथा—“ आयारो जाव दिट्ठिवाओ ” आचाराङ्गादि यावत् दृष्टिवादः । इति,

पुनस्तत्रैव—“ से नूणं भंते ! तमेव सच्चं नीसकं जं जिणेहिं पवेइयं ? ।

प्रवचन का स्वरूप और उसका प्रभाव—माहत्म्य आगमों में कहा है । जैसे भगवती सूत्र में “ पवयणं भंते ! पवयणं, पावयणी पवयणं ? गोयमा ! अरहा ताव णियमा पावयणी । पवयणं पुण दुवालसंगे गणिपिटगे । तं जहा-आयारे जाव दिट्ठिवाओ । इति (श० २० उ०८)

भावार्थ—गौतमस्वामी पूछते हैं हे भगवन् ! प्रवचन प्रवचन है—या प्रवचनी प्रवचन है ? इस अंश का समाधान करते हुए भगवान् कहते हैं—हे गौतम ! गणिपिटक जो आचारांग से लेकर दृष्टिवाद तक द्वादशांग आगम है वह समस्त प्रवचन है । इस प्रवचन को अर्थतः प्रकट करनेवाले श्री तीर्थकर प्रभु प्रवचनी हैं । उसी भगवती सूत्र में और भी यह कहा है कि—“ से नूणं भंते ! तमेव सच्चं निसकं जं जिणेहिं पवेइयं ! हंता गोयमा ! तमेव सच्चं से नूणं भंते ! एवं मणे

माहात्म्य इहो छे नेमके भगवती सूत्रमां “ पवयणं भंते ! पवयणं पावयणी पवयणं ? गोयमा ! अरहा ताव णियमा पावयणी । पवयणं पुण दुवालसंगे गणिपिटगे ! तं जहा-आयारो जाव दिट्ठिवाओ । इति (श. २० उ ८)

भावार्थ—गौतम स्वामी पूछे छे के छे भगवन् ! प्रवचन प्रवचन छे के प्रवचनी प्रवचन छे ? आ शंकातुं समाधान करतां भगवान् कहे छे—के छे गौतम ! गणिपिटक-के ने आचारांगथी मांडीने दृष्टिवाद सुधी द्वादशांग आगम छे ते समस्त प्रवचन छे अर्थतः आ प्रवचनने प्रकट करनारा श्री तीर्थकर प्रभु प्रवचनी छे ते भगवती सूत्रमां न आ प्रमाणे कहेवामां आबु छे के— (से नूणं भंते तमेव सच्चं नीसकं जं जिणेहिं पवेइयं ! हंता गोयमा ! तमेव सच्चं से नूणं भंते ! एवं मणे धारेमाणे एवं पकरेमाणे आणाए आराहए

हंता गोयमा ! तमेव सच्चं । से नूनं भंते ! एवं मणे धारेमाणे एवं पकरेमाणे आणाए आरोहए भवइ ? । हंता गोयमा ! तं चेव ” त्ति ।

छाया—अथ नूनं भदन्त ! तदेव सत्यं निश्शङ्कं यज्जिनैः प्रवेदितम् ? । हन्त गौतम ! तदेव सत्यम् । अथ नूनं भदन्त ? एवं मनसि धारयन् एवं प्रकुर्वन् आज्ञाया आराधको भवति ? हन्त गौतम ! तदेव ” इति ।

आवश्य सूत्रेऽपि—“इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुच्चं नेयाउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमसंदिद्धं । इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिच्चाएंति सब्बदुःखाणमंतं करंति ।

धारेमाणे एवं पकरेमाणे आणाए आरोहए भवइ ! हंता गोयमा ! तं चेव इति ” इस सूत्र का भावार्थ यह है कि प्रत्येक मुमुक्षु (मोक्षाभिलाषी) जन को अपने हृदय में इस बात का पूर्णदृढ विश्वास रखना चाहिये कि जो जिनेन्द्र देव ने प्रतिपादित किया है वही वास्तविक तत्त्व है—उसमें किसी भी प्रकार की शंका के लिये स्थान नहीं है इस प्रकार के दृढ विश्वास से उसे अपने मन में धारण करनेवाला और उसके अनुसार ही अपनी प्रवृत्ति करनेवाला मोक्षाभिलाषीजन तीर्थकरप्रभुकी आज्ञाका आराधक होता है आवश्यक सूत्रमें भी यही बात कही गई है

“ इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुच्चं नेयाउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमसंदिद्धं । इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिच्चाएंति सब्बदुःखाणमंतं करंति ।

भवइ ! हंता गोयमा ! तं चेव इति) आ सूत्रेणो भावार्थं आ प्रभावे छे के हरेक मोक्ष धिच्छनारी व्यक्तिये चोताना हृदयमां संपूर्णपणे आ वातनी भातरी यथी नेधणे के ने छनेन्द्र देवे प्रतिपादित कथुं छे ते न वास्तविक तत्व छे तेमां लगीरे शंका नथी. आ जतना दृढ विश्वासथी तेने चोताना मनमां करनार अने ते मुग्गण न आचरणु करनारी मोक्षने धिच्छनारी व्यक्ति प्रभुनी आज्ञानी आराधक होय छे आवश्यक सूत्रमां पणु अे न वात छडेवामां आवी छे—(इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुच्चं नेयाउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमसंदिद्धं ! इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिच्चाएंति सब्ब दुःखाणमंतं करंति ।

छाया—इदमेव निर्ग्रन्थं प्रवचनं सत्यम् अनुत्तरं, कैवलिकं, प्रतिपूर्णं, नैयायिकं, संशुद्धं, शल्यकर्त्तनं, सिद्धिमार्गः, मुक्तिमार्गः, निर्याणमार्गः, निर्वाणमार्गः, अवितथम्, असन्दिग्धम्, अत्र स्थिता जीवाः सिद्धयन्ति, बुध्यन्ते, मुच्यन्ते, परिनिर्वाणन्ति, सर्वं दुःखानामन्तं कुर्वन्ति ।

अन्यच्च—इमं च णं सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठाए पावयणं भगवया सुकहियं” इति (प्रश्न० संवर०)

छाया—‘ इदं च खलु सर्वजगज्जीवरक्षणदयार्थाय प्रवचनं भगवता सुकथितम्’ इति ।

धर्मध्यानस्याऽऽज्ञाविचयादि भेदेन चातुर्विध्यं प्रदर्शयता भगवता—प्राधान्यादाज्ञाविचयः प्राथम्येन प्रोक्तः ।

भावार्थ—इस का स्पष्ट है। इसमें सूत्रकार ने मुख्यरूप से यही बात प्रकट की है कि इस निर्ग्रन्थ प्रवचन मार्ग में स्थित जीव अष्ट कर्मोंका विनाश कर सिद्धदशासंपन्न हो जाते हैं। इस अवस्थाकी प्राप्ति होना ही जीवों के समस्त दुःखों का विनाश है।

अन्यच्च—इमं च णं सव्वजगजीवरक्खणद्वयाए पावयणं भगवया सुकहियं” इति—(प्रश्न. संवर०)

इस प्रवचन की प्ररूपणा करने का श्री तीर्थंकर प्रभु का यही एक उद्देश रहा है कि समस्त संसारीजन इस प्रवचन के अभ्यास से सर्व जगत के जीवों की रक्षा करे और उनकी दया पाएँ।

ध्यान का वर्णन करते हुए भगवान ने उस ध्यान के ४ भेद कहे हैं। उनमें धर्मध्यान के आज्ञाविचय आदि जो ४ पाये प्रकट किये

आ कथनने। लावार्थं स्पष्ट छे. आमां भास करीने सूत्रकारे अे ञ वात स्पष्ट रीते षतावी छे के आ निर्ग्रन्थ प्रवचन मार्गमां स्थित अुव अष्ट कर्मेना विनाश करीने सिद्धि दशा संपन्न थर्त्त न्दय छे. आ अवस्था मेणववी अे ञ अुवेना सधणा दुःखने विनाश छे.

अन्यच्च—इमं च णं सव्व जगजीवरक्खणदयट्ठाए पावयणं भगवया सुकहियं” इति—(प्रश्न० संवर०)

श्री तीर्थंकर प्रभुने आ प्रवचननी प्ररूपणा करवाने अे ञ उद्देश रह्यो छे के अथा संसारीजने आ प्रवचनना अभ्यासथी जगतना सर्वे अुवेनी रक्षा करे अने तेमनी दया पाणे.

ध्यानतुं वर्णन करतां लगवाने तेना चार लेहे। वर्णव्या छे. तेआमां धर्मध्यानना आज्ञा-विचय वगेरे चार उपलेहे स्पष्ट करवामां आव्या छे

યથા ભગવતી સૂત્રે--(શ૦ ૨૫ ઉ૦ ૭)

“ ધમ્મે જ્ઞાણે ચતુર્વિદ્ધે પળ્લણ્ણત્તે, તં જહા-આણાવિચ્છે ” અવાયવિચ્છે, વિવાગવિચ્છે, સંઠાણવિચ્છે ॥

છાયા—ધર્મધ્યાનં ચતુર્વિદ્ધં પ્રજ્ઞપ્તમ્ । તદ્ યથા-આજ્ઞાવિચ્ચયઃ, અપાય-વિચ્ચયઃ, વિપાકવિચ્ચયઃ, સસ્થાનવિચ્ચયઃ ।

અત્ર પ્રસન્નવશાદ્ આજ્ઞાવિચ્ચય એવ વ્યાખ્યાયતે—

આજ્ઞાવિચ્ચયશ્ચ-આજ્ઞાયાઃ પર્યાલોચનં, આજ્ઞા-સર્વજ્ઞપ્રણીત આગમઃ, તમાજ્ઞા-મિત્થં વિચિન્નુયાત્=પર્યાલોચયેત્ - પૂર્વાપરવિશુદ્ધમતિનિપુણામશેષજીવકાયહિતા

हैं उन में सर्व प्रथम आज्ञाविचय को जो कहा है उसका कारण यही है कि शेष तीन पायों (भेदों) में प्रधान है । भगवती सूत्र श. २५ उ-७ में देखो यह वर्णन इस प्रकार से हुआ है—धम्ममे ज्ञाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-आणाविचछे, अवायविचछे, विवागविचछे, संठाणविचछे ॥

अर्थ—धर्मध्यान ४ प्रकार का है (१) आज्ञाविचय (२) अपायविचय (३) विपाकविचय (४) संस्थानविचय ।

प्रसंगवश यहाँ आज्ञाविचय पर विवेचन किया जाता है—तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा का विचय-पर्यालोचन-विचार करना सो आज्ञाविचय है सर्वज्ञ कथित आगम का नाम आज्ञा है । उस आगमरूप आज्ञा का इस प्रकार से विचार करना चाहिये—यह प्रभु प्रतिपादित आगम पूर्वापर विरोध रहित होने से विशुद्ध है, प्रत्येक सूक्ष्म अन्तरित और दूरार्थ के प्रतिपादन करने में अतिनिपुण है, प्रत्येक जीवों का यह हितकारी

તેઓમાં ને સૌ પ્રથમ આજ્ઞા વિચયનો જે ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો છે તેનું કારણ એ જ છે કે ણાણી રહેલા ત્રણ ઉપલેદ્ધોમાં તે મુખ્ય છે ભગવતી સૂત્ર શ. ૨૫ ઉ. ૭ માં એના માટે નેવું નેધએ. ત્યાં આતું વણુંન કરવામાં આવ્યું છે—ધમ્મે જ્ઞાણે ચતુર્વિદ્ધે પળ્લણ્ણત્તે, તં જહા-આણાવિચ્છે, અવાયવિચ્છે, વિવાગવિચ્છે, સંઠાણવિચ્છે ॥

अर्थ—धर्मध्यानना चार प्रकार છે. (૧) આજ્ઞા-વિચય, (૨) અપાય વિચય, (૩) વિપાક વિચય, (૪) સંસ્થાન વિચય.

પ્રસંગવશ અહીં આજ્ઞાવિચય વિષે વણુંન કરવામાં આવે છે. તીર્થંકર પ્રભુની આજ્ઞાનો વિચય-પર્યાલોચન-વિચાર કરવો તે આજ્ઞાવિચય છે. સર્વજ્ઞકથિત આગમનું નામ આજ્ઞા છે તે આગમરૂપ આજ્ઞાનો આ રીતે વિચાર કરવો નેધએ કે આ પ્રભુ પ્રતિપાદિત આગમ પૂર્વાપર વિરોધ રહિત હોવા અદ્વિત વિશુદ્ધ છે, દરેક સૂક્ષ્મ અંતરિત અને દૂરાર્થના પ્રતિપાદન કરવામાં

है, अन्नबन्ध है, इस में प्रत्येक जीवादिक पदार्थ का विवेचन बहुत ही अच्छी तरह से किया गया है अतः यह महार्थ है इसका प्रभाव भी अद्वितीय है इसकी छत्रछाया में आने से प्रत्येक भव्य जीव आत्मक-ल्याण के अपने अन्तिम लक्ष्य की सिद्धि कर लिया करते हैं। इस में प्रतिपादित तत्त्व सामान्यजन नहीं ज्ञात कर सकते हैं—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयरूप दो दृष्टियां जिनके पास हैं—वे ही इसमें प्रतिपादित विषय को अच्छी तरह ज्ञात कर सकते हैं। इसमें जो भी कुछ कथन सर्वज्ञ भगवान् ने किया है वह इन्हीं दो दृष्टियों को सामने रखकर किया गया है यदि एक दृष्टि को ही प्रधान रखकर इसके तत्त्व को समझने की चेष्टा की जाय तो वह प्रतिपाद्य विषय ठीक २ नहीं समझा जा सकता है। तथा इस प्रकार की प्ररूपणा अन्यथा भी ज्ञात होने लगती है इसलिये दूसरी दृष्टि को सामने रखकर ही वह विषय ठीक २ रीति से समझ में आ सकता है, अतः इसी अभिप्रायसे इसे निपुण जनवेद्य कहा है तथा इस में प्रत्येक पदार्थ को उत्पादन व्यय और ध्रौव्य आत्मक कहा गया है—वह भी द्रव्य और पर्याय की अपेक्षा से ही कहा गया है द्रव्य की अपेक्षा से प्रत्येक जीवादिक पदार्थ ध्रौव्यरूप

अतीवकुशल छे. दरेके दरेक लुवे ने आ हीतकारी छे. अनवद्य छे, अेमां दरेके दरेक लुव वगेरे पदार्थनुं विवेचन णडुण सूक्ष्मता पूर्वक करवामां आव्युं छे अेथी आ महार्थ छे. आने। प्रभाव पणु अद्वितीय छे, आनी छत्र-छायामां आववाथी दरेक लव्यलुव आत्मकल्याणु विषयक पोतानी अंतिम लक्ष्यनी सिद्धि प्राप्तकरी वे छे. आमां प्रतिपादित तत्त्व सामान्य लोकें नखुी शकता नथी. द्रव्यार्थिक तेमण पर्यायार्थिक नयरूप अे दृष्टिअे नेनी पासे छे. तेअे न आमां प्रतिपादित विषयने सारी पेठे समलु शके छे. सर्वज्ञ लगवाने आमां ने कंठ कहुं छे ते णधु आ पूर्वोक्त णने दृष्टिअे ने पोतानी सामे राणीने न कहुं छे. ने अेक-दृष्टिने न प्रधान समलुने तेना तत्त्वने नखुवानी अेण्टा करवामां आवे तो ते प्रतिपाद्य विषय यथावत समलु शकय न नडि. तेमण आ नंतनी प्ररूपणा अन्यथा पणु माडुम थवा मांडे छे अेथी णीलु दृष्टिने पोतानी सामे राणीने न विचार करीअे तो विषय सरस रीते समलु शकय तेम छे. आ प्रयोणनथी न आने 'निपुणजन-वेद्य' कडेवामां आव्ये छे तेमण आमां ने दरेक पदार्थने उत्पाद, व्यय अने ध्रौव्य आत्मक कडेवामां आव्ये छे ते पणु द्रव्य अने पर्यायनी अपेक्षाथी न कडेवामां आव्ये छे. द्रव्यनी

मनवर्थां महार्थां महानुभवां निपुणजनविज्ञेयां द्रव्यपर्यायप्रपञ्चवतीमनाद्यनि-
धनाम् । अस्य प्रवचनस्याऽऽद्यन्तरहितत्वं च भगवता नन्दीसूत्रे निगदितम्—

“ इच्छेइयं दुवालसंगं गणिपिटगं न कयाइ णासी ॥ ”

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न कदापि नासीत् ॥ इत्यादि ।

है और पर्याय की अपेक्षा से उत्पादन व्ययरूप है, इसलिये भी जिन प्रतिपादित आगमरूप आज्ञा स्वयं द्रव्य और पर्याय के विस्तार वाली है। अथवा जीवादिक ममस्त ६ द्रव्यों की त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायें इसमें प्रतिपादित हुई हैं, अथवा कोई भी द्रव्य कभी भी पर्याय रहित नहीं हो सकता है—स्वभाव पर्यायें और व्यञ्जन पर्यायें, विभाव पर्यायें और अर्थपर्यायें प्रत्येकक्षण में समस्तद्रव्यों में होती रहती हैं, इत्यादिरूप से द्रव्य और पर्यायों का प्रतिपादन इस आज्ञा में भगवान ने प्रदर्शित किया है इस अपेक्षा भी यह द्रव्य और पर्याय के विस्तार वाली मानी गई है तथा यह अनादि अनन्त है न कभी इस आज्ञा की आदि हुई है और न कभी इसका विनाश होगा। नन्दीसूत्र में भी प्रवचन की अनादि अनन्तता के विषय में “ इच्छेइयं दुवालसंगं गणिपिटगं न कयाइनासी” यही कहा है—ऐसा कोई सा भी काल नहीं था कि जिस काल में इस द्वादशाङ्गरूप गणिपिटकका सद्भाव नहीं था।

अपेक्षाधी दरेक एव वगेरे पदार्थं ध्रौव्यरूपे छे. अने पर्यायनी अपेक्षाधी उत्पाद व्ययरूपे छे. ओटला भाटे पणु जिन प्रतिपादित आगामरूपे आज्ञा पोते द्रव्य अने पर्यायना प्रपञ्च (विस्तार) वाणी छे. अथवा तो एव वगेरे अथा ६ द्रव्येना त्रिकाल वर्ता समस्त पर्याये आमां प्रतिपादित थया छे, अथवा कोर्ध पणु द्रव्य कोर्ध पणु द्विवसे पर्याय रक्षित थय शकतुं नथी. स्वभाव पर्याये अने व्यञ्जन पर्याये, विभाव पर्याये अने अर्थ पर्याये दरेक क्षणुमां अथा द्रव्येमा धती रहे छे. इत्यादि रूपथी द्रव्य अने पर्यायोनुं प्रतिपादन आ आज्ञामां लगवाने अताव्युं छे. आ अपेक्षाधी पणु आ द्रव्य अने पर्यायना प्रपञ्च (विस्तार) वाणी मानवामां आवी छे. तेमज आ अनादि अनन्त छे. कोर्ध द्विवस आज्ञानी आदि थय नथी अने कोर्ध पणु द्विवसे आने विनाश थसे नडि. नन्दीसूत्रमा पणु प्रवचननी अनादि अनन्तताने लगती (इच्छे इयं दुवालसंगं गणिपिटगं न कयाइनासी) ओ ज वात कहेवामां आवी छे. ओवे कोर्ध पणु क्षण हुतो नडि के ते क्षणे आ द्वादशाङ्ग रूपे गणिपिटकने सदभाव हुतो नडि. आ रीते आ आगमनी महुत्ता अथवा तो अने मडा

इत्थं चागममाहात्म्यपर्यालोचनरूपस्य धर्मध्यानस्याऽऽ - हताऽऽज्ञाविष-
यत्वाद् धर्मध्यानस्य धर्मत्वं सिद्धम् । तथा-हिंसादि-दोषलेशेनाप्यसंपृक्तस्य शुद्ध-
धर्मस्य बोधकत्वाद्हिंसाप्रधानस्य प्रवचनस्य श्रद्धेयत्वं च सिद्धम् ।

अहिंसायामर्हतो भगवत आज्ञा प्रदर्शिता, एवं संयमेपि तदाज्ञा वर्तते । यथा
-ज्ञाताधर्मकथाऽङ्गसूत्रे-(प्रथमाध्ययने)

“ तएणं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ, जाव सयमेव
आयार जाव धम्ममाइक्खइ, एवं खलु देवाणुप्पिया ! गंतव्वं चिद्धियव्वं णिसीइयव्वं

इस प्रकार इस आगम की महत्ता अथवा उसके महात्म्य का विचार
करना यही आज्ञाविषय नामक धर्मध्यान का प्रथम भेद है । इस ध्यान
में अर्हतप्रभु की आज्ञा का ही विचार होता है-अतः इस ध्यान में उन
की आज्ञा का विषय करनेवाला होने से धर्मरूपता सिद्ध है तथा हिंसा-
दिक दोष के लेश से भी रहित ऐसे शुद्ध धर्म का बोधक होने से
अहिंसाप्रधान इस प्रवचन में श्रद्धेयता सिद्ध होती है ।

इस पूर्वोक्त प्रकार से अहिंसा में अर्हत भगवान् की आज्ञा का
प्रदर्शन कर अब संयममें भी उनकी आज्ञा इसी प्रकार की है यह प्रकट
करने के लिये सर्व प्रथम ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र से इस विषय की पुष्टि
करते हुए सूत्रकार कहते हैं ।

“ तएणं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ, जाव
धम्ममाइक्खइ, एवं खलु देवाणुप्पिया ! गंतव्वं चिद्धियव्वं णिसी-

त्थने लगतो विचार करवे। अथवा आज्ञा-विषय नामक धर्मध्यानने प्रथम
भेद छे। आ ध्यानमां अर्हत प्रभुनी आज्ञा विषे अ विचार होय छे। तेथी
आ ध्यानमां तेमनी आज्ञानो विषय प्रतिपादित थयो छे भाटे आमां धर्म
रूपता सिद्ध छे तेमअ हिंसा वगेरे दोषोथी पणु रडित शुद्ध धर्मने बोधक
होवाने कारणे अहिंसा प्रधान आ प्रवचनमां श्रद्धेयता सिद्ध थाय छे।

आ प्रमाणे पूर्वोक्त रीते अर्हत भगवाननी अहिंसाना विषे आज्ञा
प्रदर्शनी छे अथवा आगम सूत्रकार संयम भाटे पणु तेओश्रीनी आज्ञा आ रीते अ
छे। आ वात स्पष्ट करवाने भाटे सौ प्रथम ज्ञाता-धर्मकथाङ्ग सूत्रथी आ
विषयनी पुष्टि करतां कडे छे—

“ तए णं समणे भगवं महावीरे मेहं कुमारं सयमेव पव्वावेइ, जाव सय-
मेव आयार जाव धम्ममाइक्खइ, एवं खलु देवाणुप्पिया ! गंतव्वं चिद्धि-

तुयद्वियव्वं भुजियव्वं भासियव्वं, एवं उट्टाय उट्टाय पाणेहिं भूयेहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सि च णं अट्टे णो पमाएयव्वं ” इति, ।

ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरो मेघं कुमारं स्वयमेव प्रवाजयति, यावत् स्वयमेव आचार यावद् धर्ममाख्याति—एवं खलु हे देवानुप्रिय ! गन्तव्यं, स्थातव्यं' निपत्तव्यं, त्स्मृत्तव्यं भोक्तव्यं भाषितव्यत्, एवमुत्थाय उत्थाय प्राणेषु भूतेषु जीवेषु सत्त्वेषु संयमेन संयन्तव्यम्, अस्मिंश्च खलु अर्थे नो प्रमादयितव्यम् । इति, दशवैकालिक सूत्रे ऽपि—

“ जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जय सए ।

जयं भुंजंतो भासंतो पावकम्मं न बंधई ॥ ”

इयव्वं तुयद्वियव्वं भुजियव्वं भासियव्वं एवं उट्टाय उट्टाय पाणेहिं भूयेहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सि च णं अट्टे णो पमाएयव्वं”

श्रमण भगवान् महावीर ने स्वयं अपने ही हाथों से मेघकुमारको जय भागवती दीक्षा प्रदान की उसके लिये मुनि विषयक आचार आदि का जय उन्होने उपदेश दिया तब उन्होने उसे यही समझाया कि हे देवानुप्रिय ! चलते, ठहरते, बैठते, लेटते, आहारकरते और वात-चित्त करते समय प्राणियों, भूतों, जीवों, और मत्वों में सदा संयम से ही प्रवृत्ति करनी चाहिये । मुनि का यही कर्तव्य है कि वह प्रत्येक शारीरिक एवं वाचनिक क्रियाओं में, संयमित प्रवृत्ति करें । इस प्रकार की प्रवृत्तिशील होने से ही मुनि द्वारा अपने संयम की रक्षा होती है इस विषय में मुनि को कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिये । दशवैकालिक सूत्र में भी यही कहा है—“ जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं

यच्च णिसीइयव्वं तुयद्वियव्वं भुजियव्वं, भासियव्वं, एव उट्टाय उट्टाय पाणेहिं भूयेहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं अस्सि च णं अट्टे णो पमाएयव्वं ”

श्रमण भगवान् महावीर ने तेने पोताना हाथी न मेघकुमारने न्यारे लागवती दीक्षा आपी अने तेने मुनिविषयक आचार वगेरेने लगते उपदेश आपी न्यारे तेओथीने तेने उपदेशमां ओ न वात समजवी के हे देवानु-प्रिय ! आलता विसा रडेतां, पेसतां, सूध नता, आहार करतां अने वातचित्त करता प्राणीओ, भूतो, लुवो अने सत्वोमां हुंमेशा संयमथी न प्रवृत्ति करतां रडेपु लेधओ मुनिनी ओ न इरन छे के ते हरेक शारीरिक अने वाचनिक क्रिया-ओमा संयमित प्रवृत्ति करे. आ रीते प्रवृत्तिशील धधने रडेवाथी न मुनिओ पडे संयमनी रक्षा थाय छे. आ आमतमां मुनिओ कोठ पणु द्विसे प्रमाद करवो लेधओ नडि. दशवैकालिक सूत्रमां पणु ओन वात छडेवाभा आपी छे. (जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयंसए, जयं भुंजंतो भासंतो पावकम्मं न बंधई)

छाया-यतं चरेत् यतं तिष्ठेत्, यतमासीत् यतं शयीत् ।

यतं भुञ्जानो भाषमानः पापकर्म न बध्नाति ॥ १ ॥ इति ।

तत्रैव- 'संयमं निभृशो चर' इत्यादि । छाया-संयमं निभृतश्चर' इति ।

संयमे तीर्थकरस्याज्ञा प्रदर्शिता, इदानीं तपसि तदाज्ञा प्रदर्श्यते । यथा-दश-

वैकालिक सूत्रे-(द्वितीयाध्ययने)

“आयावयाही चय सोगमल्लं” इति । “आयावयाही” आतापय=आतापनारूपतपोधर्माराधनेन तस्य शोषय, “सोगमल्लं” सौकुमार्यं “चय” त्यजन् परिहर ।

सए, जयं भुञ्जतो भासंतो पावकर्मं न बंधई” सकल संयमियों को पूर्ण सावधानता पूर्वक ही चलना चाहिये और पूर्ण सावधानता पूर्वक ही बैठना चाहिये । उठने बैठने में तथा आहारादि क्रिया करने और बोलने चलने में सदा उसे अपनी यत्नाचारमय प्रवृत्ति पर ही लक्ष्य रखना चाहिये । इस प्रकार की प्रवृत्ति करने से वह साधु पापकर्म का बंध नहीं करता है । इसलिये हे मेघकुमार ! तुम “संयम निभृतश्चर” इस सकल संयम की अच्छी तरह से-यत्नाचारमय प्रवृत्ति से रक्षा करो-पालन करो । इस प्रकार से संयम की आराधना में तीर्थकर प्रभु की आज्ञा का प्रदर्शन सूत्रकार ने किया है । अब तप के आराधन करने में उनकी क्या आज्ञा है-वे यह स्पष्ट करते हैं “आयावयाही चय सोगमल्लं” (दशवैकालिक द्वितीय अध्ययन) ‘हे मुने ! सुकुमालपने को छोड़ आतापनाछे’ आतापनारूप तपधर्म की आराधना से मुनि को चाहिये

अथा संयमी लोकेऽपि संपूर्णपणे सावधान थधनेऽपि आलवुं लोकेऽपि अने पूर्ण सावधान थधने ऽपि असवुं लोकेऽपि. उठवा भेसवाभां तेमऽपि आहार वगेरे क्रिया करवाभां अने णोलवा आलवाभां हंमेशा तेने पोतानी यत्नाचारमय प्रवृत्ति उपर ऽपि लक्ष्य आपवुं लोकेऽपि. आ रीते प्रवृत्ति करवाथी ते साधु पाप-कर्मना अध करतो नथी. अथी हे मेघकुमार ! तमे “संयमं निभृतश्चर” आ सकल संयमनी सारी रीते यत्नाचारमयी प्रवृत्ति वडे रक्षा करो-आनुं पालन करो. आ रीते सूत्रकारे संयमनी आराधना विषे प्रभुनी आज्ञानुं प्रदर्शन कर्तुं छे. डवे तपनी आराधना करवाभा तेऽपि श्रीनी आज्ञा शी छे ? ते सूत्रकार अर्ही स्पष्ट करे छे-“आयावयाही चय सोगमल्लं” (दशवैकालिक द्वितीय अध्ययन) हे मुनि ! सुकुमालपने त्यजने आतापना स्वीकारे. आतापना इप तपधर्मनी आराधनाथी मुनि पोताना शरीरने कृश (दुर्बल) अनावे अने शारीरिक

किंच श्रमणस्य क्षान्त्यादिदशविधे धर्मे तपसः पाठो वर्तते, तस्मात् तपोधर्म इति विज्ञायते । तथाचोक्तं समवायाऽङ्गसूत्रे—(समवाय १०)

“ दसविधे समणधर्मे पणत्ते, तं जहा—(१) खंती, (२) मुत्ती (३) अज्जवे (४) मद्दवे (५) लाघवे (६) सच्चे (७) संजमे (८) तवे (९) चियाए (१०) वंभचेरवासे ।

अहिंसादीनां जिनाज्ञाप्रयोज्यप्रवृत्तिकत्वरूपस्य धर्मलक्षणस्य सद्भावाद् धर्मत्वं सिद्धं ।

उक्तं धर्मस्य लक्षणं, लक्ष्या अहिंसादयश्च प्रोक्ताः, तत्राहिंसासंयमतपोरूपो धर्म उत्कृष्ट मङ्गलं बोध्यम् ।

तथाचोक्तं दशवैकालिकसूत्रे—(प्र० अ० १)

“ धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।

देवात्रि तं नमंसंति जस्स धम्मो सया मणो ॥ ”

कि वह अपने शरीर को कृश करें एवं शारीरिक सुकुमारता का मोह छोड़े । उत्तम क्षमा आदिक जो श्रमणों के दशप्रकार के धर्म कहे गये हैं, उनमें तप का भी कथन आया है, अतः तप में धर्मरूपता सिद्ध ही होती है । समवायांग सूत्र में श्रमण के दश प्रकार के धर्मों का कथन करते हुए सूत्रकार ने यही कहा है—“ दसविधे समणधर्मे पणत्ते, तं जहा—खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे, सच्चे, संजमे, तवे, चियाए वंभचेरवासे ।

इन अहिंसादिक महाव्रतों में धर्मरूपता इसलिये सिद्ध होती है कि वहां पर जिनेन्द्र प्रभु की आज्ञा प्रयोज्य प्रवृत्तिरूप धर्म के लक्षण का सद्भाव पाया जाता है इस प्रकार धर्म का लक्षण और उसके लक्ष्यभूत अहिंसादिकों का कथन है । ये अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म ही

सुकुमारतानो मोह त्यज्ते हे. उत्तम क्षमा वगेरे श्रमणाना दश प्रकारना धर्म छडेवामा आच्छां छे तेओमां तपनुं कथन छे ओधी तपमां धर्मरूपता सिद्ध थाय न छे. सूत्रकारे समवायांग सूत्रमां श्रमणाना दश प्रकारना धर्मनुं कथन करतां आ प्रमाणे न कहु छे—

“ दसविधे समणधर्मे पणत्ते.—तं जहा—खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे, सच्चे संजमे, तवे चियाए वंभचेरवासे । ”

आ अहिंसा वगेरे महाव्रतोमां धर्मरूपता ओटला भाटे सिद्ध थाय छे हे तेओमां जिनेन्द्र प्रभुनी आज्ञा प्रयोज्य प्रवृत्ति रूप धर्मना लक्षणानो सद्भाव छे. आ रीते धर्मनुं लक्षण अने तेना लक्ष्यभूत अहिंसा वगेरेनुं कथन छे. अहिंसा, संयम अने तप रूप धर्म न उत्कृष्ट मंगल रूप छे. दशवैकालिक

छाया—धर्मो मङ्गलमुत्कृष्टम् अहिंसा संयमस्तपः ।

देवा अपि तं नमस्यन्ति, यस्य धर्मे सदा मनः ॥

नन्वहिंसा-संयम-तपो-रूपो धर्मो मङ्गलमुत्कृष्टमित्येतद्वचः किमाज्ञासिद्धम्
आहोस्विद् युक्तिसिद्धमपि ?

अत्रोच्यते—उभयसिद्धमपि, तथाहि-जिनवचनत्वा-दाज्ञासिद्धम् अनुमानम-
प्यत्रवर्तते—‘ अहिंसासंयमतपोरूपो-धर्मो मङ्गलमुत्कृष्टम् इति प्रतिज्ञा, ‘ देवादि

उत्कृष्ट मंगलरूप हैं दशवैकालिकसूत्र में यही कहा है “ धम्मो मंगल-
मुक्किट्टं अहिंसा संजमो तवो । देवा वि तं नमसंति जस्स धम्मो सया-
मणो ” धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है । अहिंसा संयम और तप ये ही धर्म
हैं । जिसका अन्तः करण इस धर्म से सदा युक्त रहता है उसके लिये
देव भी नमस्कार करते हैं ।

शंका-अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म में जो उत्कृष्ट मंगलरूपता
कही है वह आज्ञासिद्ध है इसलिये कही है कि युक्ति से सिद्ध है इस-
लिये कही है ? भावार्थ-अहिंसादिकों में उत्कृष्टमंगलता किस प्रमाण से
सिद्ध है ? आगम से या अनुमान से ?

उत्तर-इनमें उत्कृष्ट मंगलरूपता आगम और युक्ति दोनों से सिद्ध
है । जिनेन्द्र के वचन होने से इनमें आज्ञासिद्धता है तथा अनुमान से
प्रसिद्ध होने से युक्ति सिद्धता है । “ धम्मो मंगलमुक्किट्टं ” इत्यादि
गाथा द्वारा इनमें जिनेन्द्रवचनरूप आगमता पूर्व में ही प्रदर्शित की जा
चुकी है अनुमान प्रसिद्धता इस प्रकार है-अनुमान के पांच अंग होते

सूत्रमां ओ ञ वात कडेवाभां आवी छे—“ धम्मो मंगलमुक्किट्टं-अहिंसा संजमो
तवो । देवा वि तं नमसंति जस्स धम्मो सया मणो ” धर्मो ञ उत्कृष्ट मंगल
छे, अहिंसा संयम अने तप ओ ञ धर्म छे, जेतुं अन्तःकरण आ धर्मथी
सदा युक्त रहे छे तेने देवा पणु नमन करे छे.

शंका—अहिंसा, संयम अने तप उप धर्मने जे उत्कृष्ट मंगल रूप
कडेवाभां आव्यो छे ते आज्ञासिद्ध छे, भाटे कडेवाभां आवेल छे के युक्तिथी
सिद्ध छे अटला भाटे कडेवाभां आवे छे ? भावार्थ-अहिंसा वगेरेमां उत्कृष्ट
मंगलता क्या प्रमाणथी सिद्ध छे ? आगमथी के अनुमानथी ?

उत्तर—आमां उत्कृष्ट मंगलरूपता आगम अने युक्ति अनेथी सिद्ध छे,
जिनेन्द्रनाथने होवार्थी आमां आज्ञा सिद्धता छे तेमज अनुमानथी प्रसिद्ध
होवा पहल युक्ति सिद्धता छे, “ धम्मो मंगलमुक्किट्टं ” वगेरे गाथा वडे
आमां जिनेन्द्र प्रवचनरूप आगमता पहिलां अताववामा आवी ञ छे अने अनु-

मान्यत्वात्, इति हेतुः । अर्हदादिवत् इति दृष्टान्तः इह यो यो देवादिमान्यः स स उत्कृष्टं मङ्गलं यथाऽर्हदादयः, ' तथा चायं धर्मः ' इत्युपनयः, तस्माद् देवादिमान्यत्वादुत्कृष्टं मङ्गलमिति निगमनम् ।

वस्तुतस्तु धर्माधर्मस्वरूपं सूत्रमत्वाच्छब्दस्थैर्दुर्ज्ञेयं, केवलं सर्वज्ञेन रागादिदोषरहितेन पञ्चत्रिंशद्वचनातिशयसंपन्नेन केवललिना तीर्थकरेण केवलालोकेन सुज्ञेयं भवति । छद्मस्थानां तु भगवद्वचनमेव नियामकं, तथाचोक्तम्—

हैं—१ प्रतिज्ञा, २ हेतु, ३ दृष्टान्त, उपनय ४ और ५ निगमन । अर्हंत भगवान की तरह देवादिकों द्वारा मान्य होने से अहिंसा, तप और संयमरूप धर्म उत्कृष्ट मंगल हैं ।

इस अनुमान वाक्य में “ अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म उत्कृष्टमंगल है ” यह प्रतिज्ञा है “ देवादिकों द्वारा मान्य होने से ” यह हेतु है । “ अर्हन्त की तरह ” यह दृष्टान्त है पक्ष में हेतु के दुहराने से उपनय और प्रतिज्ञा के दुहराने से निगमन सिद्ध हैं जैसे—“ जो जो देवादिकों द्वारा मान्य होता है वह २ उत्कृष्ट मंगल होता है जैसे अर्हन्त प्रभु—ये भी देवादिकों द्वारा मान्य हैं । इस प्रकार पक्ष में हेतु के दुहराने रूप उपनय है इसलिये “ वे भी उत्कृष्ट मंगल स्वरूप हैं ” इस प्रकार प्रतिज्ञा के दुहराने रूप निगमनवाक्य है ।

वास्तव में तो धर्म और अधर्म का स्वरूप सूक्ष्म होने से हम छद्मस्थों के लिये अत्यंत परोक्ष है—इस लिये हम उसे सिर्फ अनुमान या

मान प्रसिद्धता या प्रभावे समझवी लेधये. अनुमानना पांच अंगो होय छे—प्रतिज्ञा १, हेतु २, दृष्टान्त ३, उपनय ४, अने निगमन ५,

अर्हन्त भगवाननी जेम देव वगेरे द्वारा मान्य होवा अदल अहिंसा, तप अने संयम रूप धर्म उत्कृष्ट-मंगल छे.

आ अनुमान वाक्यमां “ अहिंसा, संयम अने तप रूप उत्कृष्ट मंगल छे. ” आ प्रतिज्ञा छे. “ देव वगेरे द्वारा मान्य होवाथी आ हेतु छे. अर्हन्तनी जेम ” आ दृष्टान्त छे पक्षमां हेतुने भेवडाववाथी उपनय अने प्रतिज्ञाने भेवडाववाथी निगमन सिद्ध छे जेमके “ देव वगेरे द्वारा जे जे मान्य होय छे ते ते उत्कृष्ट-मंगल होय छे जेम अर्हन्त प्रभु पणु देव वगेरे द्वारा मान्य छे. आरीते पक्षमां हेतुने भेवडाववाथी उपनय छे, माटे “ तेओ पणु उत्कृष्ट मंगल स्वरूप छे ” आरीते प्रतिज्ञाने भेवडाववा रूप निगमन वाक्य छे.

वस्तुतः धर्म तेमज अधर्मनुं स्वरूप सूक्ष्म होवाथी अमारा जेवा छद्मस्थो माटे ते अतीव परोक्ष छे जेथी अमे इकत तेने अनुमान के आगमथी

“ धर्माधर्मव्यवस्थायाः, शास्त्रमेव नियामकम् ।
तदुक्ताऽऽसेवनाद् धर्मस्त्वधर्मस्तद्विपर्ययात् ॥ ” इति,

आगम से ही ज्ञात कर सकते हैं। घटपटादिकों की तरह उसे स्पष्ट रूप से देखनहीं सकते हैं। इसीलिये वह दुर्ज्ञेय है। जो अनुमान और आगम से गम्य होता है वह अग्नि आदि की तरह किसी न किसी के प्रत्यक्ष होता है यह स्पष्ट सिद्धान्त है। तीर्थंकर प्रभु ने कि जो राग और द्वेष से सर्वथा रहित हैं, त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंको जो हस्तामलकवत् स्पष्ट जानते हैं, ३५ वाणी के अतिशय से जो युक्त हैं अपने केवलज्ञान रूपी आलोक से उसे विशदरूप से जान लिया है। हम छद्मस्थों के लिये इनके वचनों के सिवाय इस विषय का नियामक और कुछ नहीं है। अतः उनके कथनानुसार ही धर्म और अधर्म का स्वरूप हम संसारी जीव जान सकते हैं या जानते हैं। “ धर्माधर्मव्यवस्थायाः शास्त्रमेव नियामकं, तदुक्ता सेवनात् धर्मस्त्वधर्मस्तद्विपर्ययात् ”-धर्म और अधर्म के स्वरूप की व्यवस्था करने वाले केवल सर्वज्ञभगवान् के वचन स्वरूप आगम ही हैं। अतः उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग का सेवन करना धर्म और उससे विपरीत मार्ग का सेवन करना अधर्म है

भावार्थ-जीवोंको धर्मकी प्राप्ति सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रदर्शित मार्ग

समस्त शक्ये छीये. ‘ घट पट ’ वगेरेनी जेम तेने स्पष्ट पणु जेध शकता नथी अथी न ते दुर्ज्ञेय छे. जे अनुमान अने आगमथी गम्य होय छे ते अग्नि वगेरेनी जेम कोधने कोधने प्रत्यक्ष होय छे आ ओक स्पष्ट सिद्धान्त छे. राग अने द्वेषथी संपूर्ण पणु रक्षित अवा तीर्थंकर प्रभुअ-के जेअ त्रिकाणवर्ती अथा पदार्थोने हस्तामलकवत् स्पष्ट रीते जणु छे, उप वाणीना अतिशयथी जेअ युक्त छे-पोताना केवलज्ञान रूपी आलोकथी तेने विशद रूपथी जणु दीधुं छे. अमारा जेवा छद्मस्थोने भाटे अमनां वचनो सिवाय आ विषयनो नियामक भीजे कोध नथी. अथी असे तेमना कथा मुज्ज न धर्म अने अधर्मनुं स्वरूप जणु शक्ये छीये “ धर्माधर्म-व्यवस्थायाः शास्त्रमेव नियामकं, तदुक्तासेवनात् धर्मस्त्वधर्मस्तद्विपर्ययात् ” धर्म अने अधर्मना स्वरूपनी व्यवस्था करनार इकत सर्वज्ञ भगवानना वचन स्वरूप आगामो न छे. अथी तेमना वडे दर्शाववामा आवेदा मार्गनुं सेवन करवुं अेध धर्म अने तेथी विरुद्ध मार्गनुं सेवन करवुं अधर्म छे. भावार्थ-सर्वज्ञ भगवान द्वारा

પર ચલનેસે હી હો સકતી હૈ, હસસે વિપરીત માર્ગ પર ચલને સે નહીં । અતઃ જો જીવ ધર્મ કો સાક્ષાત્કાર કરના ચાહતે હૈં ઉનકા કર્તવ્ય હૈ કિ વે સર્વજ્ઞ ભગવન દ્વારા કથિત માર્ગ કા સેવન કરેં ઓર ઉસ સે ભિન્ન માર્ગ કા પરિત્યાગ કરેં । હસ પ્રકાર કી પ્રવૃત્તિ સે વે ધર્મ ઓર અધર્મ કે સ્વરૂપ કે જ્ઞાતા બન જાતે હૈં । હસ કથન સે શંકાકાર કી હમ આગંકાકા યહાં પરિહાર ક્રિયા ગયા હૈ, કિ જો ઉસમેં પહિલે યહ પ્રશ્ન ક્રિયા કિ અહિંસાદિકોં મેં જો ઉત્કૃષ્ટ મંગલરૂપતા હૈ વહ કિસ પ્રમાણ સે હૈ । સૂત્રકારને આગમ ઓર અનુમાન દોનોં પ્રમાણોં સે ઉનમેં ઉત્કૃષ્ટ મંગલતા સિદ્ધ કી હૈ હસ કથન સે એક ઘાત ઓર હમેં યહ જ્ઞાત હોતી હૈ કિ સર્વજ્ઞ કથિત સિદ્ધાન્ત કી જાંચ કે લિયે જબતક તર્ક કા જોર ચલતા રહે બુદ્ધિમાન તબતક અપની તર્કણા કી કસોટી પર ઉસે કસતા રહે-પર જબ તર્ક કી સમાપ્તિ હો જાવે-તર્કણા શક્તિ કુંઠિત હો જાવે-તો ઉસ વ્યક્તિ કા કર્તવ્ય હૈ વહ આગમ પ્રમાણ સે હી ઉસ સિદ્ધાન્ત કા અનુસરણ કરેં । ફિર ઉસે ઉસ વિષય મેં તર્ક કરને કી આવશ્ય-કના નહીં હૈ ક્યોં કિ સૂક્ષ્માદિક પદોં સર્વજ્ઞ કે સિવાય છદ્મસ્થોં કે

પ્રદર્શિત માર્ગ ઉપર ચાલવાથી જ જીવો ને ધર્મની પ્રાપ્તિ થઈ શકે તેમ છે. એનાથી વિરુદ્ધ માર્ગના સેવન થી નહિ. એથી જ જીવો ધર્મનું પ્રત્યક્ષ દર્શન ઈચ્છતા હોય તેમની ફરજ છે કે તેઓ સર્વજ્ઞ ભગવાન દ્વારા કથિત માર્ગનું સેવન કરે અને તેના વિરુદ્ધ માર્ગનો ત્યાગ કરે આ બંનેની પ્રવૃત્તિથી તેઓ ધર્મ અને અધર્મના સ્વરૂપને બાણનારા થઈ બચ છે. આ કથનથી શંકાકારની એ આશંકાનો આહીં પરિહાર કરવામાં આવ્યો છે કે જે તેમાં પહેલાં આ પક્ષ કરવામાં આવ્યો છે કે અહિંસા વગેરે માં જે ઉત્કૃષ્ટ મંગળ રૂપતા છે તે કયા પ્રમાણના આધારે છે ? સૂત્રકારે આગમ તેમજ અનુમાન બંને-પ્રમાણો થી તેઓમાં ઉત્કૃષ્ટ મંગળતા સિદ્ધ કરી છે. એ કથન વડે ખીજા આ વાતનું પણ જ્ઞાન થાય છે કે સર્વજ્ઞ-કથિત સિદ્ધાન્તની પરીક્ષા માટે ન્યાં સુધી તર્કની શક્તિ કાયમ રહે બુદ્ધિમાનો ત્યાં સુધી પોતાની તર્કણી કસોટી ઉપર કસતા વહે-પણ ન્યારે તર્કની શક્તિ મંદ થઈ બચ-તર્કણા શક્તિ કુઠિત થઈ બચ ત્યારે તે વ્યક્તિ ની ફરજ છે કે તે આગળ પ્રમાણથી જ તે સિદ્ધાન્ત નું અનુ-સરણ કરે. પછી તે વિષયમાં જ તેને મીનમેષ કરવી બેઠએ નહિ કેમ કે સૂક્ષ્મ વગેરે પદોં સર્વજ્ઞ સિવાય છદ્મસ્થોના માટે સ્પષ્ટ રૂપથી બાણી મકામ

स्वयमेव भगवता-अहिंसासंयमतपसां धर्मत्वं, तथा - तेषामुत्कृष्टमङ्गलस्वरूप-
त्वेन प्राधान्यं च वर्णितं, तत्राप्यहिंसायाः-सर्वधर्ममूलत्वेन प्राधान्यात् प्रथमं स्थानं
प्रदत्तम् । तस्य सर्वप्रधानस्याऽहिंसाधर्मस्य षट्कायोपमर्दनसाध्ये मूर्तिपूजने
मूलतः समुच्छेदं केवलालोकेन साक्षात् पश्यन् भगवानर्हन् मूर्तिपूजनार्थमाज्ञां प्रद-
द्यादित्याकाशकुसुममिवात्यन्तमसदेव बोध्यम् ।

स्पष्ट रूप से ज्ञान के विषय नहीं हो सकते हैं । अतः ऐसे विषयों
में सर्वज्ञ के वचन ही प्रमाण कोटि में अंगीकार करना चाहिये ।

भगवान ने स्वयं ही अहिंसा, संयम और तप में धर्मरूपता तथा
उत्कृष्ट मंगलरूप होने से प्रधानता कही है । अहिंसा में जो प्रधान
रूपता कही गई है उसका मुख्य कारण यह है कि वह समस्तधर्मों
का मूल है और इसीलिये उसे उन्होंने ने सर्वप्रथमस्थान दिया है जब
यह बात है तो विचारना चाहिये कि भगवा मूर्तिपूजा की आज्ञा कैसे
दे सकते हैं । क्यों कि वह पूजा षट्काय के जीवों की विराधना से
साध्य होती है । इस विराधना में अहिंसा धर्म का मूलतः ही अभाव
समाया हुआ है । अर्थात् मूर्तिपूजा में उस प्रभुप्रतिपादित अहिंसा धर्म
का सर्वथा उच्छेद हो हो जाता है-मूर्तिपूजा करने वाला पूजक अहिंसा
धर्म का रक्षक नहीं हो सकता है-प्रत्युत उसे हिंसा का ही दोष लगता
है इस प्रकार स्वयं भगवान जब अपने केवल ज्ञान से इस बात को

तेम नथी. अथी अेवी षाणतोमां सर्वज्ञ नां वचनो न प्रमाणे इपमां स्वीका-
रवां लेधये.

भगवानने पोते न अहिंसा, संयम अने तपमां धर्म इपता तेमन
उत्कृष्ट मंगलरूप होवाथी प्रधानता अतावी छे. अहिंसामां ने प्रधान इपता
दर्शाववामां आवी छे, मुख्यत्वे तेनुं कारण आ प्रमाणे छे के ते अथा धर्मोनुं
भूण छे अने अथी तेने सौअे सौ प्रथम स्थान अप्थुं छे. न्यारे अेवी
वात छे त्तारे आपणे विचारवुंलेधये के भगवान मूर्तिपूजनी आज्ञा केवी रीते
आपी शके तेम छे ? केम के ते पूज तो षट्कायना अेवानी विराधनाथी साध्य
होय छे. आ विराधनामां अहिंसा धर्मतो, मुख्यत्वे अलावनो न समावेश
थयो छे तेम कही शकय छे. अेटवे के मूर्तिपूजमां ते प्रभु प्रतिपादित अहिंसा
धर्मनो संपूर्ण पणे उच्छेद न थयं नय छे. मूर्तिपूज करनार पूजरी अहिंसा
धर्मनो रक्षक थयं शकतो नथी अने भीअ रीते तो तेने हिंसानो दोष न
अेदवे पडे छे. आ रीते न्यारे पोते भगवान पोताना केवलज्ञानथी आ

एवं लक्ष्याः समालोचिताः, इदानीमलक्ष्या उच्यन्ते-हिंसादौ जिनाज्ञाविरुद्धा प्रवृत्तिर्भवति लोकानां तस्माद्धर्मा हिंसादय एव तस्य धर्मलक्षणस्यालक्ष्या भवन्ति। धर्माधर्मस्वरूपबोधनार्थं हि भगवताऽऽवश्यं नाम-स्थापनाद्रव्यभावभेदेन चतुर्विधो निक्षेपः प्रदर्शितः। तत्र भावावश्यंके एव तीर्थकराज्ञायाः सद्भावाद्

साक्षात् जानते हैं तो फिर वे ही मूर्तिपूजा करने की आज्ञा देंगे यह मान्यता आकाशपुष्पकी तरह सर्वथा असत्य ही है यह स्वयं समझने जैसी बात है जहाँ हिंसा है वहाँ धर्म नहीं है अहिंसामें ही सच्चाधर्म है।

इस प्रकार धर्म के लक्ष्यभूत अहिंसा आदि का यहां तक विचार किया। अब उससे विपरीत हिंसादिकों का विचार करते हैं-

हिंसा आदि पाप हैं-इन में प्रवृत्ति करने की आज्ञा जिन भगवान ने नहीं दी है फिर भी जो प्रवृत्ति करते हैं वे उस आज्ञा से वहिर्भूत हैं। अनः जिनाज्ञा से विरुद्ध प्रवृत्ति होने से जीवों के लिये धर्म प्राप्ति के बदले इनसे अधर्म की ही प्राप्ति होनी है। जिन से जीवों को अधर्म की प्राप्ति होती हो, वे स्वयं अधर्म हैं। हिंसादिक पापों में अधर्मता होने का कारण उनमें धर्म के लक्षण का अभाव है। इसीलिये ये धर्म के लक्षण के अलक्ष्य हुए हैं। इस धर्म और अधर्म के स्वरूप को समझाने के लिये भगवान ने आवश्यकमूत्र में नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव

વાતને સ્પષ્ટપણે પ્રત્યક્ષરૂપમાં બતાવે છે તે પછી તેઓ જ મૂર્તિપૂજા કરવાની આજ્ઞા આપે એવી માન્યતા આકાશ પુષ્પની જેમ સંપૂર્ણપણે અસત્ય જ સિદ્ધ થાય છે. આપણે પોતે પણ આ વાત સમજી શકીએ તેમ છીએ. કે ન્યાં હિંસા છે ત્યાં ધર્મ નથી. અહિંસામાં જ સાચો ધર્મ છે.

આ રીતે ધર્મના લક્ષ્યભૂત અહિંસા વગેરે ને માટે અહીં સુધી વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. હવે આગળ તેથી વિરુદ્ધ હિંસા વગેરેની બાબતમાં વિચાર કરવામાં આવે છે-

હિંસા વગેરે પાપ છે-આમાં પ્રવૃત્ત થવાની આજ્ઞા જિન ભગવાને દેાદને પણ આપી નથી છતાં જેઓ તેમાં પ્રવૃત્તિ કરે છે તેઓ તે આજ્ઞાથી બહિર્ભૂત છે. એથી જિનાજ્ઞાની પ્રતિકૂળ પ્રવૃત્તિ હોવાથી જીવોને ધર્મ પ્રાપ્તિના સ્થાને એમનાથી અધર્મની જ પ્રાપ્તિ થાય છે. જીવોને જેનાથી અધર્મની પ્રાપ્તિ થાય છે તે પોતે અધર્મ છે હિંસા વગેરે પાપોમાં અધર્મતા હોવાને લીધે તેઓમાં ધર્મના લક્ષણોનો અભાવ છે એટલા માટે જ તેઓ ધર્મના લક્ષણથી પ્રલક્ષ્ય થયા છે. આ ધર્મ અને અધર્મના સ્વરૂપને સમજાવવા માટે ભગવાને

धर्मत्वम्, अन्यविधेष्वभावशक्येषु रागद्वेषहिंसादिदोषसद्भावेन मोक्षमार्गोपदेशे प्रवृत्तस्य तीर्थंकरस्य चाऽऽज्ञाया अभावेन न तत्र धर्मलक्षणं समनुगच्छति, तेषां मोक्षसाधकत्वाभावाज्जैनधर्मपदं लब्धु-मनर्हत्वात् । तथाचोक्तमनुयोगद्वारे--

“से किं तं नामावरसयं ? । नामावरसयं जरस णं जीवस्स वा अजीवस्स वा

के भेद से ४ चार निक्षेपों का कथन किया है उनमें नाम स्थापना और द्रव्यरूप धर्म निक्षेप के आराधन करने की भगवान ने जीवों को आज्ञा नहीं दी है क्यों कि इनसे जीवों को धर्म की प्राप्ति नहीं होती है । धर्म की प्राप्ति कराने वाला केवल भाव निक्षेपरूप आवश्यक है । इसकी आराधना से ही जीवों को धर्म प्राप्त हुआ करता है-अतः इस में ही धर्मरूपता प्रकट की गई है बाकी के इसके अतिरिक्त निक्षेपों में-आवश्यकों में रागद्वेष और हिंसा आदि दोषों का सद्भाव होने से एवं मोक्ष मार्ग के उपदेशप्रदान करने में प्रवृत्त तीर्थंकरों की इनके आराधन करने में आज्ञा का अभाव होने से धर्म के लक्षण का समन्वय ही नहीं होता है । मुक्ति का जो साधक होता है वही जैन-धर्म है । इन ३ निक्षेपरूप आवश्यकों में मुक्ति की साधकता का अभाव है-इसलिये ये जैनधर्म के पदको स्वप्न में भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।

अनुयोगद्वार में यही बात कही गई है—

से किं तं नामावरसयं ? नामावरसयं जरस णं जीवस्स अजीवरस

आवश्यकसूत्रमां नाम, स्थापना द्रव्य अने भावना लेखी आर निक्षेपो तुं कथन कथुं छे. तेओमां नाम, स्थापना, अने द्रव्यरूप धर्म निक्षेपने आराधवानी लगवाने लुवने आज्ञा आपी नथी डेम डे अमनाथी लुवने धर्मनी प्राप्ति थती नथी धर्मनी प्राप्ति करवनारे डेवण भावनिक्षेपरूप आवश्यक छे. अनी आराधनाथी लुवने धर्मनी प्राप्ति थाय छे अथी आमां ल धर्मरूपता भताववामां आवी छे. अना सिवायना थीण निक्षेपोमां-आवश्यकोमां-रागद्वेष अने हिंसा वगेरे दोषोने सद्भाव होवाथी अने मोक्ष मार्गना उपदेश आपवामां प्रवृत्त तीर्थंकरानी अमनी आराधना करवानी आज्ञाने अभाव होवाथी धर्मना लक्षणने समन्वय ल थतो नथी. मुक्तिने ल साधक होय छे ते ल जैन-धर्म छे. आ उ निक्षेपरूप आवश्यकोमां मुक्तिनी साधकताने अभाव छे माटे अओ जैन धर्मना पदने स्वप्नमांथे भेणवी शके नेम नथी

अनुयोगद्वारमां अ ल वात कडेवामां आवी छे—

से किं तं नामावरसयं ? नामावरसयं जरस णं जीवस्स अजीवस्स वा जीवाणु वा

जीवाण वा अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा आवस्सएत्ति नामं कज्जइ, से तं नामावस्सयं ।

अथ किं तत् नामावश्यकं ? नामावश्यकं—यस्य खलु जीवस्य वा अजीवस्य वा जीवानां वा अजीवानां वा, तदुभयस्य वा तदुभयेर्पा वा आवश्यकमिति नाम क्रियते तदेतन्नामावश्यकम् ।

“ मे किं तं ठवणावस्सयं ? जणं कट्टकम्मे वा पोत्थकम्मे वा चित्तकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंधिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एगो वा अणेगो वा सव्भावठवणा वा असव्भावठवणा वा आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्जइ, से तं ठवणावस्सयं ।

छाया—अथ किं तत् स्थापनावश्यकम् ? स्थापनावश्यकं यत् खलु काष्ठकर्म वा पुस्तकर्म वा चित्रकर्म वा लेप्यकर्म वा ग्रन्थिमं वा वेष्टिमं वा पूरिमं वा सद्भातिमं

वा जीवाण वा अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा आवस्सएत्ति नामं कज्जइ से तं नामावस्सयं ।

से किं तं ठवणावस्सयं ? जणं कट्टकम्मे वा पोत्थकम्मे वा चित्तकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंधिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एगो वा सव्भावठवणा वा असव्भावठवणा वा आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्जइ, से तं ठवणावस्सयं

भावार्थ—जीव, अजीव अथवा तदुभय स्वरूप आदि पदार्थों में “ यह आवश्यक है ” इस प्रकार नाम संस्कार करना वह जीव अजीव आदि नाम आवश्यक है इस नाम आवश्यक में आवश्यक के वास्तविक गुणादि कुछ भी नहीं होते हैं—सिर्फ लोक व्यवहार के लिये ही इस प्रकार की वहाँ पर निक्षेपविधि करली जाती है काष्ठ, पुस्तक चित्र

अजीवाण वा तदुभयस्स वा तदुभयाण वा आवस्सएत्ति नामं कज्जइ से तं नामावस्सयं ।

मे किं तं ठवणावस्सयं ? जणं कट्टकम्मे वा पोत्थकम्मे वा चित्तकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंधिमे वा वेढिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराडए वा एगो वा अणेगो वा सव्भावठवणा वा असव्भावठवणा वा आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्जइ, से तं ठवणावस्सयं ।

भावार्थ—एव, अएव अथवा तदुभय स्वरूप वगेरे पदार्थों में “ आ आवश्यक छे ” आ दीते नाम संस्कार करवे। ने एव अएव वगेरे ‘ नाम आवश्यक ’ छे आ नाम आवश्यकमा आवश्यक ना वास्तविकगुण वगेरे क’छे न छे। ता नदी दूत लोकव्यवहार ना भाटे न आ नतनी त्या निक्षेपविधि करवामां

वा अक्षं वा वराटकं वा एको वा अनेको वा सद्भावस्थापना वा असद्भावस्थापना वा ' आवश्यक '—मिति स्थापना स्थाप्यते, तदेतत् स्थापनावश्यकम् ।

भाव आवश्यकस्वरूपशून्ये गोपालदारकादौ आवश्यकेति नामकरणे नाम्ना-
नाममात्रेणावश्यकं नामावश्यकं गोपालदारकादिर्भवति । स्थापनाऽपि भावावश्यक

एवं अक्ष-शतरंज की गोटी आदि में एक अथवा अनेक आवश्यक क्रिया करने वाले श्रावक आदि का तदाकार अथवा अतदाकार लिखित चित्र स्थापना आवश्यक (निक्षेप) है यह स्थापना दो प्रकार की है एक सद्भाव स्थापना और २ दूसरी असद्भावस्थापना । सद्भाव स्थापना में जिसकी स्थापना की जाती है उसकी सर्व आकृति कोतरी रहती है असद्भूत स्थापना में इस प्रकार की आकृति आदि नहीं रहती है वहाँ पर केवल संकेत ही है जैसे शतरंज की गोटियां में यह प्यादा है यह बजीर है, यह हाथी है इत्यादि सिर्फ कल्पना ही कल्पना रहती है—वहाँ उनका कोई भी आकार कोतरा नहीं रहता है । नाम निक्षेप में जिस प्रकार भाव आवश्यक शून्यता रहती है उसी प्रकार स्थापना में भी यही बात रहती है किसी गोपाल (ग्वालिये) के लड़के का " आव-
श्यक " इस प्रकार का नाम जिस प्रकार भाव आवश्यक रहित नाम निक्षेप में है उसी प्रकार भाव आवश्यक के स्वरूप से शून्य स्थापना निक्षेप में भी " यह आवश्यक है " यह स्थापना निक्षेप है ।

आवे छे, काष्ठ, पुस्तक, चित्र अने अक्ष-शतरंज नी सोगठी वगेरेमां अेक के अनेक आवश्यक क्रिया करनेार श्रावक वगेरेतु' तदाकार के अतदाकार लिखित चित्र-स्थापन आवश्यक (निक्षेप) छे. आ स्थापना जे प्रकारनी छे, अेक सद्भाव स्थापना अने भील असद्भाव स्थापना. सद्भाव स्थापनामां जेनी स्थापना करवामां आवे छे तेनी आकृति संपूर्णपणे केतरेल डोय छे. असद्-
भूत स्थापनामां आ जतनी आकृति वगेरे रहेती नथी त्यां इक्षत संकेत ज छे. जेम शतरंजनी सोगठीओमां आ पायदण छे, आ वलर छे, आ हाथी छे वगेरे इक्षत डोरी कल्पना ज डोय छे तेमां तेमनी डोयपणु जतनी आकृति केतरेली डोती नथी. नाम निक्षेपमां जेम भाव आवश्यक शून्यता रहे छे तेमज स्थापनामां पणु अे ज वात डोय छे. कोछ गोवाजियाना पुत्रनु ' आव-
श्यक ' आ जतनुं नाम जेम भाव आवश्यक रहित नाम निक्षेपमां छे ते अमाणे ज भाव आवश्यकना स्वरूपथी शून्य स्थापना निक्षेपमां पणु " आ
आवश्यक छे " आ स्थापना निक्षेप छे.

સ્વરૂપશૂન્યે કાષ્ટકર્માદૌ ક્રિયતે । અતો માદશૂન્યે ત્રિયમાણત્વાદિશેપાદનયો-
નાસ્તિ કશ્ચિદ્ ભેદ इत्याशयेनाह—

“ ગામદ્ઠવણાણં કો પદ્ધિસેસો ? । હાયા-નામસ્થાપનયોઃ કઃ પ્રતિવિશેપઃ ? ।
અત્રોત્તરમુચ્યતે—

‘ગામં આવકહિઅં, ઠવણા ઇત્તરિઆ વા હોજ્જા આવકહિઆ વા ’ ॥ હાયા-
નામ-યાવત્કથિકં, સ્થાપના-ઇત્વરિકા વા ભવેદ્ યાવત્કથિકા વા ।

‘ ગામં આવકહિઅં ’ નામ યાવત્કથિકં-સ્વાશ્રયદ્રવ્યસ્યાસ્તિત્વકથાં યાવ-
દનુવર્તતે इत्यर्थઃ, સ્થાપના તુ ‘ ઇત્તરિઆ વા ’ ઇત્વરિકા વા સ્વલ્પકાલરથાયિની
વા ‘ હોજ્જા ’ સ્યાત્, યાવત્કથિકા વા, અયં ભાવઃ-કાચિત્-સ્થાપના સ્વાશ્રય-
દ્રવ્યસ્ય સદ્ભાવેડપિ, મધ્યકાલ એવ નિવર્તતે, કાચિત્તુ-તત્સત્તાં યાદવતિષ્ઠતે

શંકા—જિસ્ પ્રકાર ભાવ આવશ્યક કે સ્વરૂપ સે શૂન્ય ગાપાલ કે
લઢકે આદિ મેં “ આવશ્યક ” હસ્ત પ્રકાર કા નામનિક્ષેપરૂપ આવશ્યક
હે ડસી પ્રકાર ભાવ આવશ્યકકે સ્વરૂપસે શૂન્ય કાષ્ટધર્મ આદિકોં મેં મી
યહી વાત હે । અતઃ ભાવ આવશ્યકકે સ્વરૂપકી શૂન્યતાકી અપેક્ષા સે
હન ડોનોંમેં કોઈ મી અન્તર નહીં હે । તો ફિર હન ડોનોંમે વ્યા ભેદ હે !

ઉત્તર—“ગામં આવકહિઅં ઠવણા ઇત્તરિઆ વા હોજ્જા આવકહિઆ-
વા ” હમ પ્રકાર કી શંકા ટીક નહીં-વયોં કિ નામ યાવત્કથિત હોતા
હે સ્થાપના ઇત્વરિકા ઓર યાવત્કથિકા ડોનોં પ્રકાર કી હોતી હે । અપને
આશ્રયમૂત દ્રવ્યકા જવતક અસ્તિત્વ-સદ્ભાવ રહતા હે તવતક નામનિ-
ક્ષેપ રહતા હે ! ઇત્વરિકા શબ્દ કા અર્થ અલ્પકાલીન હે ચિત્ર એવં અક્ષ
આદિકોં મેં યહ સ્થાપના અલ્પકાલીન હોતી હે । હસ્ત પ્રકાર નામ ઓર

શંકા—એમ ભાવ આવશ્યકના સ્વરૂપથી શૂન્ય ગોવાગિયાના પુત્ર વગે-
રેમાં “ આવશ્ય ” આ બતનું નામ નિક્ષેપ રૂપ આવશ્યક છે તેમજ ભાવ
આવશ્યકના સ્વરૂપથી શૂન્ય કાષ્ટકર્મ વગેરેમાં પણ એ જ વાત છે. એથી ભાવ
આવશ્યકના સ્વરૂપની શૂન્યતાની દૃષ્ટિએ આ બંનેમાં કોઈ પણ બતનો તકાવત
નથી, ત્યારે આ બંનેમાં ભેદ શેા છે ?

ઉત્તર—(ગામ આવકહિઅં ઠવણા ઇત્તરિઆ વા હોજ્જા આવકહિઆ વા)
શંકા યોગ્ય નથી કેમકે નામ યાવત્ કથિત હોય છે. સ્થાપના ઇત્વરિકા અને
યાવત્કથિત બંને પ્રકારની હોય છે. યોતાને આશ્રયમૂત દ્રવ્યનુ બ્યાં સુધી સદ્-
ભાવ-અસ્તિત્વ રહે છે ત્યાં લગી નામ નિક્ષેપ રહે છે । ઇત્વરિકા શબ્દનો અર્થ
અલ્પકાલીન છે. ચિત્ર અને અક્ષ (રમવાના પાસા) વગેરેમાં એ સ્થાપના
અલ્પકાળ માટે હોય છે. આ રીતે નામ અને સ્થાપનામાં ભાવ, નિક્ષેપની

इति । एवं च—नामस्थापनयोर्भावशून्यत्वेनाधारसाम्येऽपि भेदः स्वस्वावस्थानकाल-
कृत एव भगवता प्रदर्शितः । यद्यपि गोपालदारकादौ विद्यमानेऽपि कदाचिद-
नेकनामपरिवर्तनं लोके क्वचिद् दृश्यते, तथा च कालकृतोऽपि भेदो नास्ति,
तथापि—बहुशः स्थले नाम्नो यावत्कथिकत्वमेव दृश्यते, नाम्नः परावर्तनं तु
क्वचिद्विरलतयोपलभ्यते । अतोऽल्पस्थलव्यापित्वेन नाम्न इत्वरिकता भगवता
न विवक्षिता । नाम्नोऽल्पकालिकताकल्पने तूत्सूत्रप्ररूपणापत्तिरिति बोध्यम् ।

स्थापनायें भावनिक्षेपकी शून्यताकी अपेक्षासे समानता आती है तो भी
अपनेर कालकी अपेक्षासे इनमें इस प्रकार भेद-अन्तर माना गया है ।

शंका—नामनिक्षेप में जो यावत्कथिकता प्रदर्शित की गई है, वह
ठीक नहीं है—कारण कि हम देखते हैं नामवान द्रव्य-गोपालदारक
आदि के विद्यमान रहते हुए भी उस में अनेक नामों का परिवर्तन
होता रहता है । कभी उसका “ आवश्यक ” यह नाम होता है, तो
“ इन्द्र ” यह नाम रख लिया जाता है । फिर “ आवश्यक ” इस नाम
निक्षेप में यावत्कथिकता कैसे आ सकती है ?

उत्तर—शंका ठीक है इस प्रकार से विचार करने पर कालकृत
अन्तर यद्यपि उन दोनों में नहीं मालूम होता है—तौ भी इस बात की
यहां पर विवक्षा नहीं है इसका कारण यही है कि यह नामपरिवर्तन
अल्पस्थलवर्ती होनेसे व्याप्य है । यह बात सब जगह नहीं होती । कहीं
र ही होती है यहां सामान्यकथन है—विशेष नहीं । सामान्यरूप से नाम

शून्यतानी अपेक्षाथी समानता आवी नय छे, छताये पौतपौताना कणनी
अपेक्षाथी तेओमां आ नतने लेह अन्तर मानवामां आये छे.

शंका—नाम निक्षेपमां ने यावत्कथिकता अताववामां आवी छे, ते उचित
नथी. कारणु के नामवाणु गोपाणदारक वगेरेना विद्यमान रहता पणु तेमां
अनेक नामोतुं परिवर्तन थतुं रहें छे. कोछ वणते तेनुं नाम ‘ आवश्यक ’
राणवामां आवे छे तो कोछ वणत ‘ इन्द्र ’ नाम राणवामां आवे छे. तो
पछी ‘ आवश्यक ’ आ नाम निक्षेपमां यावत्कथित केवी रीते आवी शके छे ?

उत्तर—शंका उचित छे. आ रीते विचार करवथी ले के कणकृत अन्तर
तेओ अनेमां नणुतुं नथी छताये आ वातनी अर्धी विवक्षा नथी. अणुं
कारणु आ प्रमाणु छे के आ नाम परिवर्तन अल्प-स्थलवर्ती होवथी व्याप्य
छे, आ वात पछे स्थाने छौती नथी कोछक कोछक स्थाने न छौय छे. अर्धी

યત્તુ-ઉપલક્ષણમાત્રં ચેદં કાલભેદેનૈતયોર્ભેદકથનમ્-અપરસ્યાપિ વહુપકાર-
ભેદસ્ય સમ્ભવાત્, ઇત્યુક્તં, તદુત્સૂત્રપ્રરૂપણમ્ યથોત્સૂત્રપ્રરૂપણમિયાનામનિક્ષેપે
ઇત્વરિકતાયાઃ ક્વચિત્ સંભવેઽપિ ભગવતાઽનુક્તવાદુપલક્ષણમિતિ ન સ્વીકૃતં તથૈવ
સ્થાપનાયાં કાલાતિરિક્તસ્ય ભેદહેતોઃ કલ્પનેઽપ્યુત્સૂત્રપ્રરૂપણં પ્રસજ્યેત કાલાન્યકૃત-

યાવત્કથિકા હી હોતા હૈ । હસી અપેક્ષા કો લક્ષ્ય મેં રલ્લકર ભગવાન ને
ઉસમેં ઇત્વરિકતા કા કથન ન કર કેવલ યાવત્કથિકતા કા હી કથન
કિયા હૈ યદિ નામ મેં જો કેવલ ઇત્વરિકતા હી માની જાવેગી-તો યહ
વાત સિદ્ધાન્ત સે વહિર્ભૂત હોને સે માનને વાલે કે લિયે ઉત્સૂત્રપ્રરૂપણા
કરને કી આપત્તિ કા દોષ આવેગા-કયોં કિ શાસ્ત્ર મેં ભગવાન ને નામ
નિક્ષેપ મેં કેવલ યાવદ્રવ્ય ભવિતા હી પ્રદર્શિત કી હૈ ।

જો વ્યક્તિ હસ શંકા કા હસ પ્રકાર સે સમાધાન કરતે હૈં કિ
“ કાલ કે ભેદ સે જો નામ ઓર સ્થાપના મેં ભેદ કહા ગયા હૈં વહ
કેવલ ઉપલક્ષણ માત્ર હૈં-હસસે અન્ય અનેક પ્રકારોં સે હી હન દોનોં મેં
પરસ્પર ભેદ હૈં યહ વાત જાની જોતી હૈં ” સો ઉનકા યહ કથન શાસ્ત્ર-
મર્યાદા કે વિરુદ્ધ હૈં જિલ પ્રકાર નામ નિક્ષેપ મેં કહીં ૨ ઇત્વરિકતા
હોને પર હી ભગવાન દ્વારા સ્વીકૃત ન હોને સે વહ ઉપલક્ષણરૂપ સે
સ્વીકૃત નહીં કી ગઈ હૈં-ઉસી પ્રકાર સ્થાપના મેં હી કાલકૃત ભેદ કે

સામાન્ય કથન છે વિશેષ નહિ. સામાન્ય રૂપથી નામ યાવત્ કથિત જ હોય
છે આ વાતને સામે રાખીને જ ભગવાને તેમાં ઇત્વરિકતાનું કથન ન કરતા
ફક્ત યાવત્કથિકતાનું કથન કર્યું છે. જે નામમાં ફક્ત ઇત્વરિકતા જ માનવામાં
આવશે તો આ વાત સિદ્ધાન્તની ખડાર હોવાથી માનનાર માટે ઉત્સૂત્ર પ્રરૂ-
પણા કરવા રૂપ દોષ આવશે. કેમકે શાસ્ત્રમાં ભગવાને નામ નિક્ષેપમાં ફક્ત
યાવદ્-દ્રવ્ય-ભવિતા જ બતાવી છે.

જે માણસો આ શંકાનું સમાધાન આ પ્રમાણે કરે છે કે “ કાલના
ભેદથી જે નામ અને સ્થાપનામાં તદ્વાવત બતાવવામાં આવ્યો છે તે ફક્ત
ઉપલક્ષણ માત્ર છે. એથી બીજા અનેક પ્રકારથી પણ આ બંનેમાં પરસ્પર
તદ્વાવત છે આ વાત સ્પષ્ટ થાય છે. “ જેથી તેમનું આ કહેવું શાસ્ત્ર-મર્યાદાથી
વિપરીત છે, જેમ નામ-નિક્ષેપમાં કોઈક કોઈક ઠેકાણે ઇત્વરિકતા હોવા છતાંયે
ભગવાન વડે સ્વીકૃત ન હોવાથી તે ઉપલક્ષણ રૂપથી સ્વીકારવામાં આવી નથી,
તેમ સ્થાપનામાં પણ કાલકૃત ભેદ સિવાય બીજા વડે અન્તર-ભેદ-માનવામાં

भेदस्य भगवताऽनुक्तत्वात् । एतेन—“ यत् कैश्चिदुक्तं यथा प्रतिमारूपस्थापनादर्शनाद् भावः समुल्लसति नैवं नामश्रवणमात्रादिति नामस्थापनयोर्भेदः, यथा चेन्द्रादेः प्रतिमारूपस्थापनायां, लोकस्योपयाचितेच्छा पूजाप्रवृत्ति, समीहितलाभादयो-दृश्यन्ते, नैवं नामेन्द्रादौ, इत्यपि तयोर्भेदः । एवमन्यदपि वाच्यमिति तदुत्सूत्रप्ररू-

सिवाय अन्य द्वारा अन्तर भेद मानने में उत्सूत्र प्ररूपणा करने का दोष आता है, कारण कि भगवान ने कालकृत भेदके सिवाय स्थापना निक्षेप में अन्य और किसी दूसरी अपेक्षा से भेद का कथन नहीं किया है इस प्रकार के कथन से “ यह बात भी जो दूसरों ने कही है कि नाम और स्थापना में इस प्रकार से भी भेद है—कि “ जिस प्रकार अर्हत की प्रतिमारूपस्थापना के देखने-दर्शन करने से भावों की जागृति होती है, उस प्रकार नाम निक्षेपरूप अर्हत नाम के सुनने से भावों की जागृति नहीं होती है । अथवा—इन्द्रादिक की प्रतिमारूप स्थापना में जिस प्रकार से लौकिकजनों की उस प्रतिमा से कुछ सांगने की इच्छा उसके पूजन करने की भावना और उस प्रतिमा द्वारा उनके अभिलषित मनोरथों की पूर्ति होती हुई देखी जाती है उस प्रकार नामरूप इन्द्र में उनकी इस प्रकार की प्रवृत्ति और अभिलषित मनोरथों की पूर्ति होती हुई नहीं देखी जाती है । इसी तरह और भी ऐसी कई बातें हैं जो नाम और स्थापना में अन्तर कराती है । यह सब कालकृत भेद के सिवाय

उत्सूत्र प्ररूपण इय दोष थछ नय छे कारण के लगवाने कालकृत लेह सिवाय स्थापना निक्षेपमां भीछ कोछ अन्य दृष्टिये लेह—कथन कर्युं नथी. आ नतना कथनथी “ आ वात पणु ने भीनओअये कही छे के नाम अने स्थापनामां आ रीते पणु तक्षवत छे के “ नेम अर्द्धतनी प्रतिमा इय स्थापनाने नेवा अेटले के दर्शन करवाथी लावोनी नगृति थाय छे, तेम नाम निक्षेप इय अर्द्धतना नामने सांलणवाथी पणु लावोनी नगृति होती नथी. अथवा तो छन्द्र वगेरेनी प्रतिमा इय स्थापनामां नेम लौकिक भाणुसोनी ते प्रतिमाथी कंछक भागणी करवानी छच्छा, तेनी पूज करवानी लावना अने ते प्रतिमा वडे तेमना अलिषित मनोरथोनी पूर्ति थती देभाय छे तेम नाम इय छन्द्रमां तेमनी आ नतनी प्रवृत्ति अने अलिषित मनोरथोनी पूर्ति थती नेवामां आवती नथी. आ प्रभाणु भीछ पणु धणु भाभतो छे ने नाम अने स्थापनामां अंतर करावे छे.

पणा जनितानन्तसंसारजनकम् । आगमे यदिदमुपलभ्यते—“ तद्वाह्वानं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयसवणयाए महाफलं ।” इति, तत्र नास्ति नामनिक्षेपस्य विषयः । “ अरहंताणं भगवंताणं ” इत्युक्त्या तस्मिन्नर्थे प्रयुक्तस्य नाम्न एव श्रवणेन महाफलसंभवात्, गोपालदारकादौ प्रयुक्तस्य नाम्नः श्रवणेन तु गोपालदारकाद्यर्थस्यैव बोधादात्मपरिणामशुद्धिहेतुत्वं तस्य नास्तीति । नामनिक्षेपस्थले भगवतोऽर्हतः स्मरणासंभवः, तस्य भावशून्यत्वात्, अत्र तु नामगोत्राभ्यां भगवदर्हतः सम्बन्धं पृष्ठयन्तपदप्रयोगादेव दर्शयता भगवता नामनिक्षेपो न विवक्षितः । भावजिन-

नाम और स्थापना में भेद कल्पना का कथन उत्सूत्र प्ररूपक होने से अनन्त संसार का जनक है अतः हेय है । “ तद्वाह्वानं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयसवणयाए महाफलं ” आगम में जो यह सूत्र लिखा हुआ देखा है उसका अभिप्राय नामनिक्षेप परक नहीं है । अर्थात्—इस सूत्र से नाम निक्षेप की पुष्टि नहीं होती है । यदि सूत्रकार को इस सूत्र से जो नामनिक्षेप की पुष्टि करना इष्ट होता तो “ अरहंताणं भगवंताणं इस पद के स्वतन्त्र देने की कोई खास आवश्यकता नहीं थी । अतः यह जान माननी चाहिये कि अरहंत भगवान के ही नामगोत्र के श्रवण से महाफल होता है । किसी गोपाल के लड़के में निक्षेप “ अरहंत ” इन नाम के सुनने से नहीं । उस में प्रयुक्त भी उस नाम के श्रवण से तो केवल उस गोपाल दारकरूप अर्थ का ही बोध होता है । “ अरहंत ” यह नाम जिसरूप के संकेत से अरि-

आ णधुं कालकृत लेह सिवाय नाम अने स्थापनामा लेह इत्येवामुं कथन उत्सूत्र प्ररूपक होवाथी अनंत संसारतुं जनक छे अथी त्यान्य छे. “ तद्वाह्वानं अरहंताणं भगवंताण नाम गोयसवणयाए महाफलं ” आगममां ले आ सूत्र मणे तेना अलिप्राय नामनिक्षेपपरक नथी. अथे के आ सूत्र वडे नाम निक्षेप-पुष्टि धती नथी. ले सूत्रकारने आ सूत्र वडे नाम-निक्षेपनी पुष्टि करवुं इष्ट लागतुं छेत तो “ अरहंताणं भगवंताणं ” आ पढने स्वतंत्र रूपमां भूकवानी केर आस आवश्यकता छती नछि. अथी आ वात मानी देवी लेह अरहंत भगवानना नाम गोत्र-श्रवणथी भडाइण प्राप्त होय छे. केर गोपालना पुत्रमा निक्षेप “ अरहंत ” आ नामने आंलगवाथी नछि तेमा प्रमुक्त पवु ते नामना श्रवणथी तो इक्षत ते गोपालना पुत्र इप अर्थ-मो न बोध होय छे. “ अरहंत ” आ नाम ले इपना संकेतथी अरिहंत प्रभुमां संकेतित धरुं छे-ते इपना संकेतथी न गोपालना पुत्रमां संकेतित

हंत प्रभु में संकेतित हुआ है—उसी रूप से संकेत से गोपाल के पुत्र में संकेतित नहीं हुआ है ! लौकिक व्यवहारके लिये ही देवल "अरहंत" ऐसा उसका नाम करलिया गया है। नाम निक्षेप में जिसका निक्षेप किया जाता है उस जाति के द्रव्य, गुण और कर्म—क्रिया आदि निमित्त की अनपेक्षा रहती है इस निमित्त के सद्भाव में वह नाम निक्षेप का विषय नहीं माना जाता है। भाव निक्षेप का ही वह विषय होता है अतः यह निश्चित होता है कि अरहंत भगवान के ही नाम गोत्र के श्रवण के महाफल सूत्रकार ने प्रकट किया है यदि नामनिक्षेप से यह फल प्राप्त होने लगता तो फिर भावनिक्षेप की आवश्यकता ही क्या थी। उसके श्रवण मात्र से ही जीवों के आत्मिक भावों में शुद्धिरूप महाफल का लाभ होने लगता। तथा जिसका "अरिहंत" यह नाम है वह स्वयं अरिहंत प्रभु की तरह महापवित्र, ३४ अतिशयोक्ति ८ प्रतिहार्य आदि विभूति संपन्न हो जाता। परन्तु ऐसा नहीं होता है अतः यह मानना चाहिये कि यह सूत्र भावनिक्षेप की ही पुष्टि विधायक है—नामनिक्षेप का नहीं। नामनिक्षेप से भगवान अरिहंत की स्मृति भी नहीं कराई जाती है—कारण कि वह नामनिक्षेप स्वयं उस प्रकार के भावों से शून्य है। अनुभूत पदार्थ की स्मृति हुआ करती

थयुं नथी. लौकिक व्यवहार भाटे इत्त "अरहंत" आवुं नाम पाठवामां नामनिक्षेपमां जेना निक्षेप करवामां आवे छे ते जतिना द्रव्य, शुष्ण अने कर्म—क्रिया वगेरे निमित्तनी अपेक्षा रहे छे. आ निमित्तना सद्भावमां ते नाम-निक्षेपना विषय मानवामां आवतो नथी. भाव निक्षेपना ज ते विषय होय छे. अथी अ सिद्ध थाय छे के अरहंत लगवानना ज नाम गोत्रना श्रवणथी ज सूत्रकारे महाक्षण जताव्युं छे. जे नामनिक्षेपथी आ इण मणी शक्युं होत तो पछी भावनिक्षेपनी आवश्यकता ज शी हुती ? तेना श्रवण मात्रथी ज जेवानी आत्मिक भावोमां शुद्धि रूप महाक्षणना लाभ थवा मांडतो. तेमज जेनुं "अरिहंत" आ नाम छे ते पोते अरिहंत प्रभुनी जेम महापवित्र, ३४ अतिशयोक्ति सद्धित, ८ प्रतिहार्य वगेरे विभूतिअथी संपन्न थछे जत, पणु आवु थतुं नथी अथी जेम समलु देवुं जेठजे के आ सूत्रथी भावनिक्षेपनी ज पुष्टि थाय छे—नाम निक्षेपनी नछि. नाम निक्षेपथी लगवान अरिहंतनी स्मृति पणु करवामां आवती नथी कारण के ते नाम-निक्षेप जते ते जतना भावोथी रहत छे अनुभूत पदार्थनुं स्मरण थया करे छे जेद्रं

है जिसका “अरिहंत” यह नाम रखा गया है उसके देखने से अरिहंत की स्मृति हो भी कैसे सकती है—स्मृति तो अरिहंत की जब हो सकती कि जब उसमें उनकी स्मृति के चिह्न होते—वह स्वयं उस प्रकार के हेतु हो सकती है माना कि श्रवण कर्त्ता शास्त्र आदिकों में अरिहंतप्रभु के गुणों का वर्णन पढ़कर चित्त में उकेर कर भले ही “अरिहंत” इस नामके श्रवण से उनका स्मरण कर सकता है। परन्तु गोपालदारकादी में कृत नाम से उनका स्मरण उसे नहीं हो सकता—उस नाम से तो उसमें ही संकेतित उस शब्द से उस गोपाल दाररूप अर्थ का ही उसे बोध होगा। यदि अरिहंत नाम के सुनने से सुनने वाले को अरिहंत पदार्थ का भान होता है तो वह नाम निक्षेप का विषय नहीं माना गया है भावनिक्षेप का ही वह विषय है। थोड़ा बहुत भी किसी अपेक्षा से सादृश्य होने पर एक पदार्थ को देखकर सदृश दूसरे पदार्थ का स्मरण हो जाता है परन्तु प्रकृत में गोपालदाररूप अरिहंत नामनिक्षेप में ऐसा कौन सा सादृश्य है जो वह अरिहंत का स्मरण करा सके। अतः नाम और गोत्र के साथ साक्षात् भगवान् अरिहंत का संबंध षष्ठी विभक्ति द्वारा प्रदर्शित करने वाले सूत्रकार ने इस सूत्र में नामनिक्षेप का कोई

“अरिहंत” आ नाम शब्दवाचं आण्यं छे. तेने जेवाथी अरिहंत स्मृति पणु डेवी रीते थछ शके तेम छे? स्मृति तो अरिहंतनी त्यारे न थछ शके डे त्यारे तेमां तेमनी स्मृतिना जिहो होय, ते पोते आ जतना लावेथी रहित थयेको होय, त्यारे ते डेवी रीते तेमनी स्मृतिनुं डारणु थछ शके छे? आ वात आपणु स्वी-कारी शरीये तेम छीये डे श्रवणु—कर्त्ता शास्त्र वगेरेमां अरिहंत प्रभुना गुणानु वर्णन वाचीने चित्तमां डारणु डरीने लवे ‘अरिहंत’ आ नामना श्रवणुथी तेमनुं स्मरणु डरी शके छे. पणु गोपालदारक वगेरेमां कृत नामथी तेनुं स्मरणु थछ शकतुं नथी. ते नाम वटे तो तेमां न संकेतित ते शब्दथी ते गोपालदारक इप अर्थने न ते बोध थये जे अरिहंत नाम श्रवणुथी सांभजनारने अरिहंत पदार्थानुं ज्ञान थाय छे त्यारे ते नामनिक्षेपने विषय भानवामां आण्ये नथी भावनिक्षेपने न ते विषय छे केछ पणु रीते थोडुं पणु सरभापणुं होवाथी जेक पदार्थने जेधने तेना सरभा भीज पदार्थनुं स्मरणु थछ नय छे पणु प्रकृतमा गोपालदारक इप अरिहंत नामनिक्षेपमां जेवुं कछ जतनुं सरभापणुं छे डे जे ते अरिहंतनुं स्मरणु डरावी शके? जेथी नाम अने गोत्रनी साथे साक्षात् भगवान् अरिहंतने संबंध पछी विभक्ति वडे दर्शावनारा सूत्रकारे आ सूत्रमां नामनिक्षेपने केछ पणु विषय प्रतिपादित कये नथी. भावनिक्षेप-

बोधकस्य नाम्न एव श्रवणेन महाफलसंभवः । एवं स्थापनापि भावरूपार्थशून्या, स्थापनया भावरूपार्थस्य नास्ति कोऽपि सम्बन्धः । भावजिनशरीरवर्तिनी याऽऽकृतिरासीत्, तस्या आश्रयाश्रयिभावरूपसम्बन्धो भावजिनेन सह तदागीं विद्यमान आसीत् । यथा भावजिनं पश्यास्तदानीं भावोल्लासोऽपि कस्यचित् संजातः,

भी विषय प्रतिपादित नहीं किया है । भावनिक्षेप का ही विषय इसमें कहा है इसलिये भावजिन का बोध कराने वाले जिन 'अरिहंत' आदि नामों के सुनने से ही महाफल होता है ऐसा मानना चाहिये ।

इसी प्रकार स्थापना निक्षेप भी भावरूप अर्थ से शून्य है कारण कि इसका उसके साथ कोई संबंध नहीं है भावजिन की अवस्था की आकृति पाषाण आदि की मूर्ति में " यह वही है " इस प्रकार की कल्पना करने का नाम स्थापना है तीर्थंकर प्रकृति के उदयसे समवसरणादि विभूति सहित आत्मा का नाम भाव जिन है इस भाव जिन के शरीर की जो आकृति है उसका संबंध विचारिये उस पाषाण आदि की प्रतिमा में कैसे आसकता है । क्यों कि इस आकृति का संबंध आश्रय आश्रयी भावसे वे जिन जिसकाल में थे उसी काल में उनके साथ था । उनके नहीं रहने पर पाषाण आदि में इस तरह का आश्रय आश्रयी भाव संबंध मानना उचित कैसे कहा जा सकता है, भावजिन के सद्भाव में जिस प्रकार उनके साक्षात् दर्शन से प्राणियों को एक प्रकार

ने जो विषय तेमां भताव्ये छे अथी उनने बोध करावतार उन " अरिहंत " वगेरे नाम श्रवणुथी महाक्षण प्राप्त होय छे आम समजवुं जेधये आ प्रमाणे स्थापना निक्षेप पणु लाव इप अर्थथी रहित छे. कारणु छे आने तेनी साथे कोठ पणु नतने संबंध नथी. लावउननी अवस्थानी आकृति पथर वगेरेनी मूर्तिमां " आ तेओ न छे " आ नतनी कल्पना करवानुं नाम स्थापना छे. तीर्थंकरनी प्रकृतिना उदयथी समवसरणु वगेरे विभूति सहित आत्मानुं नाम लावउन छे आ लावउनना शरीरनी ने आकृति छे तेना विषे आपणु पणु विचार करीये छे पथर वगेरेनी प्रतिमां तेने संबंध केवी रीते आवी शके छे ? केमके ते आकृतिने संबंध आश्रय आश्रयी लावथी ते उन ने काणमां हुता ते काणमा न तेमनी साथे हुता. तेमनी जेरहाजरीमां पथर वगेरेमां आ नतने आश्रय-आश्रयी भाव संबंध मान्य राखवे। केवी रीते योग्य कही शक्य तेम छे ? लावउनना सद्भावमा जेम तेमना साक्षात् दर्शनथी प्राणीओमां ओक नतने लावेव्वास उद्वले

तथा भक्त्या तासाकृतिं स्मरतो जनस्य भावोल्लासः संभवतु, तदाऽऽकृतेर्भावजिनेन संवन्धात्, परंतु स्थापनाया आश्रयाश्रयिभावसम्बन्धो नास्ति भावजिनेन सह। भावजिनात्मनस्तत्रावाहनं स्थापनंतु जिनाज्ञावाद्य प्रवचनविरुद्धं कर्तुमशक्यं, कथं तर्हि-भावजिनसम्बन्धाभावे प्रतिमा भावजिनं तद्गुणं वा स्मारयितुं शक्ता भवेत्।

का भावोल्लास होता है, उसी प्रकार से भक्ति के आवेश से भी उनकी उस आकृति का उस समय स्मरण करने वाले प्राणी को उस प्रकार के भावोल्लास का सद्भाव हो सकता है। इसका निषेध नहीं है। क्यों कि स्मृति के आधारभूत जिन परमात्मा उस काल में स्वयं विद्यमान हैं। उन के अभाव में उन्हें नहीं देखने वाले प्राणियोंको भी उनकी उस प्रतिमा से उसी प्रकार का भावोल्लास होता है यह मान्यता केवल एक कल्पना मात्र है चारतविक नहीं। इसके समाधान के निमित्त जो यह कहा जाता है कि उस पाषाण प्रतिमा में जिन भगवान की आत्मा का मंत्रादिकों द्वारा आह्वान किया जाता है अतः उस प्रतिमा के दर्शन से साक्षात् भाव जिनके ही दर्शन होते हैं सो यह मान्यता सर्वथा असत्य है-कारण कि मोक्ष में प्राप्त आत्माओं का पाषाण आदि प्रतिमाओं में अपनी मान्यता सिद्ध करने के लिये आह्वान आदि मानना सर्वथा जिनसिद्धान्त से विरुद्ध है मोक्ष प्राप्त आत्माएँ कहीं पर भी किसी भी काल में आह्वान करने से नहीं आती हैं ऐसी जिन-शामन की आज्ञा है इस तरह से उस पाषाण आदि की आत्माओं का

छे, तेम लक्षितना आवेशथी पणु तेमनी जे आकृतितुं ते समये स्मरणु करनार प्राणीने ते जतना भावोल्लासनी अनुभूति थछ शके छे आने। निषेध नथी केमके स्मृतिगां ते आकृतिना आधारभूत एत परमात्मा ते क्षणमां जते विद्यमान छे. तेमना अभावमां तेमने नडि जेनारा प्राणीज्जेने पणु तेमनी ते प्रतिमाथी ते प्रमाणेने न भावोल्लास थाय छे, आ मान्यता इक्ष्ता जेक ठोरी इक्ष्पना न छे, वास्तविक नथी. जेना समाधान माटे जे आम कडेवामां आवे छे के ते पथरनी प्रतिमां एत भगवानना आत्मानुं मत्रे वगेदेथी आवाहन करवामा आवे छे, जेथी ते प्रतिमाना दर्शनथी प्रत्यक्ष सावएतना न दर्शन थाय छे, तो आ मान्यता साव असत्य छे कारण के मोक्षमां प्राप्त आत्माज्जेनुं पथर वगेदे प्रतिमाज्जेमां पोतानी मान्यता सिद्ध करवा माटे आइवाहन वगेदे मानवुं ते तो एत सिद्धांतथी साव विरुद्ध छे. मोक्ष प्राप्त आत्माज्जे कौछ पणु स्थाने जेने जेछ पणु क्षणे आवाहन करवाथी आवता नथी, जेथी एत शानननी आज्ञा छे, आ रीते ते पथर वगेदेनी प्रतिमां

सर्वथा कुप्रावचनिकद्रव्यावश्यकत्वं प्रतिमापूजनं कुर्वन्तः कारयन्तश्च मिथ्या-
दृष्टित्वं प्राप्नुवन्ति न तु सम्यक्त्वमिति ।

द्रव्यावश्यकं-द्विविधं-आगमतो नोआगमतश्च । यस्य जन्तोरावश्यकशास्त्रं
शिक्षितादिगुणोपेतं भवति, स जन्तुस्तत्रावश्यकशास्त्रे शिष्याध्यापनरूपया वाचनया
गुरुं प्रति प्रश्नलक्षणया प्रच्छनया, पुनः पुनः सूत्रार्थाभ्यासरूपया परावर्तनया, तथा

अह्वान होने से आना मान लिया जाय तो फिर उस प्रतिमा में सजी-
वता मानने में क्या दोष है इसलिये यह स्वीकार करना ही चाहिये ।
कि भावजिन के अभाव में वह प्रतिमा भावजिन एवं उनके गुणों का
स्मरण करवाने में सर्वथा समर्थही है । जब यह निश्चित सिद्धान्त है तो
फिर इसकी पूजनादि करने कराने से जो अनुष्य समकित की प्राप्ति
होना मानते हैं वे उस विधवा कि दशा जैसे हैं जो अपने पति की
फोटो या मूर्ति के दर्शन एवं सहवास आदि से सन्तान की उत्पत्ति की
कामना करती हो । इसलिये कुप्रावचनिक द्रव्य आवश्यक की तरह
यह प्रतिमापूजनादि कर्म करने कराने वाले दोनों ही जन मिथ्यात्वरूप
दृष्टि के ही पात्र हैं, सम्यक्त्व के नहीं ।

द्रव्य निक्षेपरूप आवश्यक, आगम और नोआगम के भेद से दो
प्रकार का है । उसमें जिस प्राणी के आवश्यक शास्त्र शिक्षितादिगुणों
से युक्त है वह प्राणी उस आवश्यक शास्त्र में, शिष्यों का पढानेरूप

ते आत्माद्योनुं आवाडन डोवाथी आवुं मानी लधये तो पछी ते प्रति-
माने सलुव मानवामां शेा वांधो छे ? अेटका भाटे आपणु आ वात स्वीका-
रवी न् लोधये के लावलनना अलावमां ते प्रतिमा लावलन अने तेमना
गुणोनुं स्मरणु कराववामां संपूर्णपणु समर्थ न् छे. न्यारे आ सिधधान्त निश्चित
इपे मान्य थयेदो छे त्यारे तेनु पूजन वगेरे कराववाथी न् दोडो समकितनी
प्राप्ति थवी माने छे तेमनी तो विधवा नेवी दशा छे के न् चोताना पतिनी
छणी के मूर्तिना दर्शन अने सहवास वगेरेथी संतान भेणववानी छच्छा करती
डोय ! अेटका भाटे कुप्रावचनिक द्रव्य आवश्यकनी नेम आ प्रतिमा पूजन
वगेरे कार्य करनार तेमन् कराववार अने माणुसो मिथ्यात्व इप दृष्टिनां न्
पात्र छे, सम्यक्त्वनां नथी.

द्रव्य निक्षेप इप आवश्यक आगम तेमन् नोआगमना लेहथी न्
प्रकार छे. तेमां न् प्राणी आवश्यक शास्त्र शिक्षित वगेरे गुणोथी युक्त छे ते
प्राणी ते आवश्यक शास्त्रमां शिष्योने लणुववा इप वाचनाथी, गुण-प्रति तद्

धर्मकथा वर्तमानोप्यनुपयोगे सति आगतो द्रव्यावश्यकम्, 'अणुवओगो द्रव्यं' इति वचनात् । अनुपयोगो भावशून्यता ।

वाचना से, गुरु के प्रति तद्विषयक प्रश्न लक्षणरूप पृच्छना से बार बार सूत्र और अर्थ के अभ्यासरूप परावर्तन से तथा धर्मकथा से वर्तमान होता हुआ भी अनुपयुक्त अवस्थासंपन्न होने से आगम की अपेक्षा द्रव्य आवश्यक है । अनुपयोग का नाम ही द्रव्य है ।

भावार्थ—“ भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके तद्द्रव्यम् ” यह द्रव्यनिक्षेप का लक्षण है । भूतपर्याय या भविष्यत् पर्याय का जो कारण आधार होता है, वह द्रव्य है जिस प्रकार किसी राजा के युवराज को राजा कह दिया जाता है यद्यपि वह अभी वर्तमान में राजारूपपर्याय से युक्त नहीं है—आगे उसे राजपर्याय प्राप्त होगी, परन्तु फिर भी उसे व्यवहार में लोग राजा कहते हैं । यह भविष्यत् पर्याय की अपेक्षा द्रव्य निक्षेपका विषय है । जो पहिले राजा था—कारण वश जब वह राजागद्दी का परित्याग कर देता है—तब भी लोग उसे राजा कहते हैं । यहां उस राजा में यद्यपि वर्तमान समय में राजपर्याय से युक्तता नहीं है तौ भी भूतकाल की अपेक्षा से ही उसे राजा कहा जाता है । यह भूतकाल की अपेक्षा से राजपर्याय का आधार होने के कारण द्रव्यनिक्षेप का विषय है प्रकृत में इस निक्षेप की आयोजना इस प्रकार से

विषयक प्रश्न लक्षण रूप पृच्छनाथी, बारबार सूत्र अने अर्थना अभ्यास रूप परावर्तनथी तथा धर्मकथाथी वर्तमान होवा छताये अनुपयुक्त अवस्था संपन्न होवाथी आगमनी अपेक्षा द्रव्य आवश्यक छे, अनुपयोगनुं नाम न द्रव्य छे

भावार्थ—“ भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके तद्द्रव्यम् ” आ द्रव्य निक्षेपनुं लक्षण छे. भूत-पर्याय छे भविष्यत् पर्यायने न्ने कारण आधार होय छे, ते द्रव्य छे. न्नेम कोर्ध राजना युवराजने राज कडी देवामां आवे छे. न्ने डे ते वर्तमानमा राज रूप पर्यायथी युक्त नथी. आगण तेने राज पर्याय प्राप्त थथे, छताये तेने व्यवहारमां लोके राज कडे छे. आ भविष्यत् पर्यायनी अपेक्षा द्रव्य निक्षेपने विषय छे न्ने पहिलां राज डतो-पणु कोर्ध आणुसर राजगदिने ते परित्याग करी दे छे, त्यारे पणु लोके तेने राज कडे छे. अर्डी ते राजमा न्ने डे वर्तमान समयमा राज पर्यायथी युक्तता नथी छताये भूतकालनी अपेक्षाथी तेने राज कडेवामां आवे छे आ भूतकालनी अपेक्षाथी तेने राज कडेवामा आवे छे आ भूतकालनी अपेक्षाथी राजपर्यायने आधार होवा अदल द्रव्य निक्षेपने विषय छे. प्रकृतमा आ निक्षेपनी आयो-

अथ नोआगमतो द्रव्यावश्यकमुच्यते-अत्र नो शब्दः सर्वथा प्रतिषेधे देशतः प्रतिषेधेऽपि च वर्तते । तथा च सर्वथा-आगमाभावमाश्रित्य द्रव्यावश्यकं, तथा होती है कि जो वर्तमान में आवश्यक शास्त्र का ज्ञान नहीं है आगे भविष्यत् काल में उस शास्त्र का ज्ञान होंगे उसे तथा जो भूतकाल में उस शास्त्र का ज्ञान था अब वर्तमान काल में उसका ज्ञान नहीं है-उसे आवश्यक इस प्रकार जानना या कहना यहद्रव्यनिक्षेप की अपेक्षा आवश्यक है । इसके मूल में दो भेद हैं ? आगम द्रव्य निक्षेप और दूसरा नोआगमद्रव्यनिक्षेप । आवश्यक शास्त्र आदि का जो ज्ञान हो, शिष्यों को जो उसे पढ़ाता हो, उस विषयक गुरु आदि के निकट जो तार्त्विक चर्चा आदि भी करता हो इस प्रकार वाचना, प्रच्छना-पर्यटना अनुप्रेक्षा और धर्मोपदेशरूप पांचो प्रकार के स्वाध्याय से जो उसकी पर्यालोचना कर रहा है-परन्तु उसमें उपयोग नहीं है-अनुपयुक्त है वह आगम की अपेक्षा द्रव्य आवश्यक है । इसमें आवश्यक शब्द के अर्थ का ज्ञान ही आगमरूप से विवक्षित है । अतः आवश्यक शास्त्र का ज्ञान होता हुआ भी उसमें अनुपयुक्त आत्मा आगम की अपेक्षा द्रव्य आवश्यक है यह बात निश्चित हुई ।

नो आगम की अपेक्षा द्रव्य आवश्यक इस प्रकार है-जहां आगम का सर्वथा अभाव या आगम के एक देश का अभाव विवक्षित होता

जना ये रीते डोय छे के वर्तमानमां ने आवश्यक शास्त्रनो ज्ञाना नथी, लविष्यकाणमां ते शास्त्रनो ज्ञाना थसे तेने तेमज्ज ने भूतकाणमां ते शास्त्रनो ज्ञाना डतो डमण्णु वर्तमानकाणमां तेनो ज्ञाना नथी तेने, 'आवश्यक' आ रीते जणुवु के डडेवुं आ द्रव्यनिक्षेपनी अपेक्षाये आवश्यक छे. जेना भूण इपे जे लेहो छे-१ आगम द्रव्य निक्षेप अने जीज्जे नोआगम द्रव्य निक्षेप. आवश्यक शास्त्र वगेरेनो जे ज्ञाना डोय, जे शिष्योने लण्णुवतो डोय, तद्-विषयक गुरु वगेरेनी पासे ज्जने जे तार्त्विक चर्चा वगेरे पणु करतो डोय, आ रीते वाचना, प्रच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा अने धर्मोपदेश इप पाये जतना स्वाध्यायथी जे तेनी पर्यालोचना करी रह्यो छे, पणु तेमां तेनो उप-योग नथी, अनुपयुक्त छे, ते आगमनी अपेक्षाद्रव्य 'आवश्यक' छे जेमा आवश्यक शब्दना अर्थनुं ज्ञान ज्ज आगम इपथी विवक्षित छे जेथी आवश्यक शास्त्रना ज्ञाना डोवा छताये तेमां अनुपयुक्त आत्मा आगमनी अपेक्षा द्रव्य आवश्यक छे, आ वात सिद्ध थछे छे.

नोआगमनी अपेक्षा द्रव्य आवश्यक जे प्रमाणे छे के जया आगमनो ल'पणु'पणु अभाव के आगमना जेक देशनो अभाव विवक्षित डोय छे ते नो

देशत आगमाभावमाश्रित्य द्रव्यावश्यकं च-तोआगमतो द्रव्यावश्यकम् । तत्-त्रिवि-
धम्-ज्ञशरीरद्रव्यावश्यकं, भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं, तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यकं चेति ।

है-वह नो आगम की अपेक्षा से द्रव्य आवश्यक माना गया है । “ नो आगम ” में नो शब्द स्वर्था आगम के अभाव का अथवा उसके एक देश के अभाव का बोधक है । इसके ज्ञशरीरद्रव्यावश्यक, भव्यशरीर-द्रव्यावश्यक, और तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक, इस प्रकार तीन भेद हैं । आवश्यक शास्त्र का जो पहिले (भूतकाल में) ज्ञाता था-तथा दूसरों के लिये इस शास्त्र का उपदेश आदि भी जिसने पहिले दिया है ऐसे जीव का अचेतन शरीर ज्ञशरीरद्रव्यावश्यक है जो जीव इस समय आवश्यक शास्त्र का ज्ञाता नहीं है भविष्यत् काल में उसका ज्ञाता बनेगा उनका वह अचेतन शरीर भविष्यत् काल में आवश्यक शास्त्र के ज्ञान का आधार होने की अपेक्षा से, भव्यशरीरद्रव्यावश्यक है । तद्व्यतिरिक्तद्रव्यावश्यक लौकिक कुप्रावचनिक और लोकोत्तर के भेद से ३ प्रकार का है । लौकिकजनों द्वारा आचरित आवश्यक कर्म लौकिक द्रव्यआवश्यक है । जैसे राजसभा में जाने वाले राजा, युवराज, तल-वर (कोटपाल) आदि जन प्रातः काल में उठकर राजसभा में जाने के लिये प्रथम प्राभातिक विधियों से निपटते हैं-मुख धोते हैं, दातों को

आगमनी अपेक्षाशी द्रव्य आवश्यक मानवामां आब्यो छे “ नोआगम ” मां नो शब्द आगमना संपूर्णपण्णे अभावना के तेना अेक देशना अभावना बोधक छे तेना जशरीर द्रव्यावश्यक, भव्यशरीर द्रव्यावश्यक अने तद्व्यति-रिक्त द्रव्यावश्यक आ प्रमाण्णे त्रणु लेदो छे आवश्यक शास्त्रना के पडेतां (भूतकालमां) ज्ञाता छेतो तेमज्ज णीज्जयो माटे आ शास्त्रना उपदेश वगेरे पणु केणे पडेतां आप्थो छे अेवा एवतुं अचेतन शरीर ज शरीर द्रव्यावश्यक छे. के एव अत्यारे आवश्यक शास्त्रना ज्ञाता नथी, भविष्यकालमां तेना ज्ञाता थये तेतुं ते अचेतन शरीर भविष्यकालमां आवश्यक शास्त्रना ज्ञानना आधार होवने शरत्ते भव्य शरीर द्रव्यावश्यक छे. तद्व्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक लौकिक कुप्रावचनिक अने लोकोत्तर अेम त्रणु प्रकारना छे लौकिक माणुसो वटे आचरित आवश्यक कर्म लौकिक द्रव्य आवश्यक छे अेम राजसभामां जनारा राजा, युवराज, तलवर (कोटपाल) वगेरे लोको सवारे उठीने राज-सभामां एवा माटे प्रथम प्राभातिक विधियोधी परवारे छे, मुण धुअे छे,

ज्ञातवानिति—ज्ञः, जस्य शरीरं-ज्ञशरीरं तदेव द्रव्यावश्यकमिति विग्रहः । जीव परित्यक्तमावश्यकशास्त्रज्ञानवतः शरीरं ज्ञशरीरद्रव्यावश्यकम् । यः कश्चिद् जीवः जन्मकालादारभ्य अनेनैव आत्तेन - गृहीतेन शरीरसमुच्छ्रयेण, त्रिनोपदिष्टेन भावेन आवश्यकमित्येतत् षट्=शालं आगामिनि काले शिक्षिष्यते न तावच्छिक्षते, तज्जीवाधिष्ठितं शरीरं भव्यशरीरद्रव्यावश्यकमिति । ज्ञशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यावश्यकं त्रिविधम्-लौकिकं, कुप्रावचनिकं, लोकोत्तरिकं, चेति ।

लौकिकं द्रव्यावश्यकम् “ ये राजेश्वरतलवरादयः प्रभातसमये-मुखधावन-दन्तप्रक्षालन-तैल-कङ्कतक-सर्षप-दूर्वा-दर्पण-धूप-पुष्प-माल्य-गन्ध-ताम्बूल-बस्त्रादिकानि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति, कृत्वा पश्चाद् राजकुलदेवकुलादौ गच्छन्ति, तत्-तेषां सम्बन्धिमुखधावनादि ।

कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकम् ‘ ये इमे चरकचीरिकादयः पाषण्डस्था, इन्द्र-स्कन्द-रुद्र-शिव-वैश्रवण-देव-नाग-यक्ष-भूत-सुकुन्दाऽऽर्या-दुर्गा-कोट्टक्रियाणाम् - उपलेपनसंमार्जनाऽऽवर्षणधूपपुष्पगन्धमाल्यादिकानि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति. तेषां तद् इन्द्रस्कन्दादेरुपलेपनादि । कुत्सितं प्रवचनं येषां ते कुप्रावचना स्तेपामिदं कुप्रावचनिकम् । उपलेपनं चन्दनपङ्केन, संमार्जनं-स्नपनानन्तरं वस्त्रेण जलप्रोञ्चनम् आवर्षणं=गन्धोदकेन, ‘ गुलावजल ’ इत्यादि भाषाप्रसिद्धेन ।

नामावश्यकम्-आवश्यकनामको गोपालदारकादिः, स्थापनावश्यकम्-आव-साफ करते हैं, स्नान करते हैं । सुगंधित तैल लगाते हैं इत्यादि आव-श्यक कार्य करते हैं । पीछे राजसभा में या देवकुल में जाते हैं । उनका यह मुख धावन आदि कार्य लौकिक द्रव्य आवश्यक है । चरक चीरिक आदि पाखंडियों द्वारा जो इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, वैश्रवण, देव, नाग और यक्षादिकों की मूर्तियों का चंदन से लेपन, अभिषेक कराने के बाद वस्त्र से मूर्तिस्थ जल का पोंछना मंदिर में या उन मूर्तियों पर गुलाव-जल का छिड़काव आदि करना ये सब कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक है ।

दांत साफ़ करे छे, स्नान करे छे, सुगंधित तेल लगावे छे, वगेरे आवश्यक कार्यो करे छे त्यारपछी राजसभामा अथवा तो देवकुलमा अथ छे तेमनुं सुअ धोवुं वगेरे काम लौकिक-द्रव्य आवश्यक छे अरक चीरिक वगेरे पाअं दीओ वडे ले इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, शिव, वैश्रवण, देव, नाग अने यक्षो वगेरेनी मूर्तिओनुं चंदनधी अभिषेक करओया आद वस्त्रधी मूर्तिना पाणीने लूँधवुं, मंदिरमा छे ते मूर्तिओ। उपर गुलावजलनुं सिअन वगेरे करवुं आ अधुं कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक छे. आ प्रभाणु नाम स्थापना अने द्रव्यना लेदधी आ

इयमक्रियादतः कस्यचित् काष्ठकर्मादिवु प्रतिकृतिः, द्रव्यावश्यकं च आवश्यक-
कोपयोगशून्या देहागमक्रिया, एवावश्यकेषु उपयोगाभावेन चणगुणरहितत्वेन
च कर्मनिर्जराजनरुताभावादागम्यत्वेन जिनाज्ञा नास्ति, तस्मादेतत् त्रिविधमाव-
श्यकं धर्मपदवाच्यं न भवतीति निश्चयादलक्ष्यमेव । लोकोत्तरिकद्रव्यावश्यकं पत्र-

इम प्रकार नाम, स्थापना और द्रव्य के भेद से यह आवश्यक तीन
प्रकार का होना है । किसी गोपाल के पुत्र का “ आवश्यक ” इस प्रकार
का कृतनाम संस्कार नाम आवश्यक है । आवश्यक क्रियाओं से युक्त
किसी व्यक्ति की काष्ठ आदि में तदाकार रूप से या अतदाकाररूप से
प्रतिकृतिको कल्पना करना या उसे बनालेना यह स्थापना आवश्यक है ।
आवश्यक में उपयोग से शून्य प्राणी की जो भी आगम और नो आगम
की अपेक्षा से क्रियाएँ हैं वे सब द्रव्य आवश्यक हैं । इन तीनों आव-
श्यकों में उपयोग-भावरूप-आवश्यक के अभाव से तथा चारित्रगुण
तदनुकूल प्रवृत्ति के आचरण से रहित होने से कर्मों की निर्जरा कराने
में साधकपना नहीं है । अतः जिनेन्द्रदेव ने इनके आराधन करने की
आज्ञा प्रदान नहीं की है । धर्म को ही आराधन करने की उन्होंने आज्ञा
दी है क्योंकि वही कर्मों की निर्जरा कराने में साधक है । इन तीनों
में कर्मों की निर्जरा कराने का अभाव होने से धर्मस्वरूपता नहीं है ।
धर्मपद वाच्य भी वे नहीं हैं । इसीलिये ये तीनों धर्म के लक्षण से शून्य
होने से उसके अलक्ष्य हैं, ऐसा समझना चाहिये । लोकोत्तरिक द्रव्य

आवश्यक पत्र प्रशस्तु होय छे कोर्ध गोपालना पुत्रना ‘ आवश्यक ’ आ
रीते करेको सस्कार नाम आवश्यक छे आवश्यक कियाओधी युक्त कोर्ध
व्यक्तितनी काष्ठ वगेरेमा तदाकार उपधी छे अतदाकार उपधी प्रतिकृतिनी कल्पना
करनी छे प्रतिकृतिनु निर्माण करु ते स्थापना आवश्यक छे, आवश्यकमा
उपयोगधी रहित प्राणीनी ले उपधी आगम अने नो आगमनी अपेक्षाधी
कियाओ छे ते अपधी द्रव्य आवश्यक छे, आ त्रणे आवश्यकमां उपयोग भाव
इय आवश्यकता अभावधी तेमत्र चारित्रगुण तदनुकूल प्रवृत्तिना आचरण वगर
धर्म जवाधी कर्मोनी निर्जरा करववामां साधकपलुं नथी तेथी जिनेन्द्र देव
नेगना आराधननी आज्ञा आधी नथी, धर्मनी आराधना करवनी न तेओ-
श्रीओ आज्ञा आगी छे के-के धर्मत्र कर्मोनी निर्जरा करववामां साधक छे
आ त्रणेमां कर्मोनी निर्जरा करववामां अभाव होवने काले धर्मस्वइयता
नथी ओ धर्मपद वाच्य पलु नथी तेथी आ त्रणे धर्मना लक्षणधी रहित
होवने काले तेना अलक्ष्य छे ओम समजवु लेधओ, आभाषिक वगेरे कोर्ध-

चनोक्तं सद्यपि जिनाज्ञावाह्यैः स्वच्छन्दविहारिभिर्भूलोत्तरगुणरहितैः षट्कायनिरनु-
कम्पैरनुपयोगपूर्वकं क्रियमाणं सामाधिक्यदिकम् तच्च धर्मपदवाच्यं न भवितुमर्हति,
तत्रापि निर्जराजनकत्वाभावेन विधेयतया जिनाज्ञाया आभावात् ।

एवमेव-नामजिनः स्थापनाजिनस्तथा द्रव्यजिनश्च निर्जराजनकत्वाभावा-
दाराध्यत्वेन जिनाज्ञाया अभावात् । तदाराधनं धर्मपदवाच्यं न भवितुमर्हति ।

आवश्यक समाधिक आदि हैं इनके करने का विधान यद्यपि प्रवचन
शास्त्र में विहित है तो भी इसे जो धर्म का अलक्ष्य बताया गया है
उसका कारण यह है कि ये जब जिनदेव की आज्ञा से बहिर्भूत बने
हुए, स्वच्छाचारी, सुलगुण और उत्तर गुणों से रहित एवं षट्काय
के जीवों की रक्षा करने में आसौवधान मनुष्यों द्वारा अनुपयोगपूर्वक
करने में आते हैं तब ये द्रव्य आवश्यकरूप से कहे जाते हैं । और
इसीलिये ये धर्मपद के वाच्य नहीं हैं अर्थात् धर्मरूप नहीं हैं । जहां
धर्मरूपता नहीं है वहां कर्मों की निर्जरा कारकत्व भी नहीं है । यह
सर्व सम्मत सिद्धान्त है । भगवान ने जो इस अवस्था में इन्हें विधेय
नहीं कहा है उसका यही कारण है । अतः जिस प्रकार नाम आव-
श्यक, स्थापना आवश्यक और द्रव्य आवश्यक ये तीन निक्षेप आरा-
ध्यरूप से तीर्थंकर प्रभु ने अनविधेय कहे हैं, उसी प्रकार से नामजिन
स्थापनाजिन तथा द्रव्यजिन भी आराध्य नहीं हैं । इनकी आराधना
करने से जो धर्म की प्राप्ति होना कहलें हैं या मानते हैं उन्हें 'जिन

त्तर द्रव्य आवश्यक छे प्रवचन शास्त्रमां जेमनां आचरणुनु' विधान विडित
छे छतांये जेने जे धर्मना अलक्ष्य रूपमां अताववामां आये छे. तेनी मत-
लभ जे छे जे ज्यारे ते अनदेवनी आज्ञाथी अडिभूत' अनेला स्वच्छाचारी,
भूणशु तेमज उत्तर शुणोथी रडित अने षट्काय जेवानी रक्षा
करवामां असावधान भाणुसो वडे अनुपयोग पूर्वक आचरवामां आवे
त्यारे ते द्रव्य आवश्यक रूपमा कडेवाय छे जेथी ते धर्मपद वाच्य
नथी. जेटवे जे धर्म रूप नथी जया धर्मरूपता नथी त्यां कर्मोनी निर्जरा
कारकता पणु नथी. आ सर्वमान्य सिद्धान्त छे. भगवाने जे आ अवस्थामा
जेमने विधेय कछा नथी तेनुं कारण पणु जे जे छे जेटला भाटे जेम नाम
आवश्यक, स्थापना आवश्यक अने द्रव्य आवश्यक आ त्रण निक्षेपोने आगध्य
रूपथी तीर्थंकर प्रभुजे अनविधेय कछा छे, तेमज नाम जिन, स्थापना जिन
तेमज द्रव्यजिन पणु आराध्य नथी. जेमनी आराधना करवामा जे धर्मनी
प्राप्ति थवी अताववामा आवे छे जे मानवामा आवे छे, तेमने जिन भगवाननी

एवं च प्रतिमापूजनमपि धर्मलक्षणस्य लक्ष्यं न भवति, तत्र धर्मत्वाभाव-
निश्चयात् । 'मोक्षकामो जिनप्रतिमां पूजयेत्' इत्येवमर्हतो भगवत आज्ञायाः प्रवचने-
ऽनुपलब्धेः । धर्मविषये सर्वत्र भगवदाज्ञोपलभ्यते-दृश्यते हि आवश्यकार्थं भगव-

भगवान् की आज्ञा से बहिर्भूत ही समझना चाहिये । यदि इन निक्षेपों की या स्थापनानिक्षेप की आराधना करने से आरोग्यक जीवों को धर्म का लाभ होता तो वे उनकी आराधना करने का अव्य जीवों को अथ उच्यते उपदेश देते । इस प्रकार की स्वप्नः कल्पित प्रवृत्ति से उनकी पूजा आदि करने में षट्काय के जीवों की कितनी विराधना होती है यह एक स्वानुभवगम्य बात है । अतः जहाँ आरंभ है वहाँ धर्म नहीं है । जहाँ धर्म नहीं है उसकी आराधना से कर्मों की निर्जरा भी नहीं हो सकती है । इस प्रकार से नाम स्थापना और द्रव्यजिन आदि तीन निक्षेप भी धर्म के लक्षण से गूण्य होने से उसके अलक्ष्य माने गये हैं । जब स्थापना जिन ही उसका अलक्ष्यभूत है, तो फिर जिन की प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा आदि कार्य भी धर्मलक्षण से शून्य होने से वह भी उसका अलक्ष्य है ऐसा निश्चित हो जाता है भगवान् ने इस प्रकार की आज्ञा शास्त्र में कहीं भी नहीं दी है "मोक्षकामो जिन-प्रतिमां पूजयेत्" कि मुक्ति की अभिलाषा वाला प्राणी जिन प्रतिमा की पूजा करे । धर्मकी आराधना करने की ही उन्होंने ने आगम में आज्ञा

आज्ञाधी णहिर्भूत न समन्वा लेधये. आ निक्षेपोनी के स्थापना निक्षेपोनी
आराधना इवार्थी आराधक एवोने धर्मने लाभ यतो ह्यय त्पारे तो तेओ
तेमनी आराधना इवार्थी भाटे लव्य एवोने ओच्छस उपदेश आपता. आ रीते
पोताना मनथी न इल्पना इरीने तेमनी पूजा वगेरे इवार्थी षट्काय एवोनी
केटली णधी विराधना होय छे ते लते न अनुभववा लेवी वात छे ओटला
भाटे ल्या आरंभ छे ल्या धर्म तो नथी न अने ल्यां धर्म नथी तेनी आरा-
धनाधी इर्मोनी निर्जरा पण धर्म शके तेम नथी. आ रीते नाम स्थापना अने
द्रव्य जिन वगेरे ऋषि निक्षेपो पण धर्मना लक्षणथी रक्षित होवा अहल तेने
अलक्ष्य मानवामा आऽया छे ल्यारे स्थापना जिन न तेना भाटे अलक्ष्यइप
छे, ल्यारे जिननी प्रतिमा णनावीने तेनी पूजा वगेरे इर्थो पण धर्मलक्षणथी
रक्षित होवथी ते पण तेना भाटे अलक्ष्यइप छे आवी ओच्छस आनी थध
व्य छे लजवाने आ लतनी आज्ञा शास्त्रमा डोर्ध पण स्थाने इरी नथी
"मोक्षकामो जिनप्रतिमा पूजयेत्" के मोक्षनी इच्छा राणतारे प्राणी जिन
प्रतिमानुं पूजने उः धर्मनी आराधना इवार्थी न तेओथ्रीओ आगममा आज्ञा

दाज्ञा, दर्शनार्थं ज्ञानार्थं च भगवदाज्ञा पुनरहिंसासंयमतपःसंवरादिविधिरपि शास्त्रे प्रदर्शितः परंतु प्रतिमापूजनार्थमाज्ञा क्वापि नोपलभ्यते शास्त्रेषु, प्रत्युत्-कुप्रावचनिकद्रव्यावश्यकलक्षणाक्रान्तत्वेन प्रतिमापूजनं जैनागमविरुद्धमिति सूचितम् । इन्द्रादिपूजनं हि कुप्रावचनिकस्य नोआगमतो द्रव्यावश्यकस्योदाह-रणतया भगवता प्रदर्शितम् । तेन सर्वं प्रतिमापूजनं कुप्रावचनिकं तादृशद्रव्याव-श्यकं भगवता निक्षिप्तमिति सुस्पष्टं प्रतीयते । षट्कायहिंसासाध्यायाः पूजाया

प्रदान की है जैसे-आवश्यक, दर्शन और ज्ञान की आराधना प्रत्येक मोक्षाभिलाषी भव्य जन को करना चाहिये-इस प्रकार के आवश्यक आदि की आराधना करने का स्पष्ट उल्लेख आगमों में मिलता है-तथा जिस प्रकार उन्होंने अहिंसा, संयम, तप और संवर आदि की विधि शास्त्रों में प्रदर्शित की है-उस प्रकार न तो उन्होंने प्रतिमा पूजन की कहीं न आज्ञा प्रदान की है और न उस की विधि ही कही है कुप्रा-वचनिक द्रव्य आवश्यक के लक्षण से युक्त होने से प्रत्युत् प्रतिमापूजन को जैन आगम से विरुद्ध ही सूचित किया है । कुप्रावचनियों द्वारा मान्य इन्द्रादिकों के पूजन को भगवान नो आगम की अपेक्षा से द्रव्य आवश्यक के उदाहरण रूप में प्रकट किया है इससे ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने अन्य समस्त प्रतिमा पूजन को भी इसी कुप्रा-वचनिक द्रव्य आवश्यक की तरह द्रव्य आवश्यक में रखा है । प्रवचन में कुत्सितता-खोटापन कुशास्त्रता हिंसादिक सांध्य पूजा आदि कार्यो

करी छे. जेम आवश्यक, दर्शन अने ज्ञाननी आराधना दरेके दरेके मोक्ष छच्छनारा लव्य जनने करवी घटे छे. जेम आवश्यक वगेरेनी आराधना करवा विधेने उल्लेख आगमोमां भजे छे, तेमज जेम तेमणे अहिंसा, संयम, तप अने संवर वगेरेनी विधि शास्त्रोमां भतावी छे तेम तेमणे केछ पणु स्थाने प्रतिमा पूजननी आज्ञा करी नथी अने तेनी विधि पणु भतावी नथी प्रतिमा पूजने कुप्रावचनिक द्रव्य आवश्यकना लक्षणथी युक्त होवा गदल जैन आगमोथी विरुद्ध भताववामां आवी छे. कुप्रावचनीओ वडे मान्य इन्द्र वगेरेना पूजनने लगवाने आगमनी अपेक्षाओ द्रव्य आवश्यकना उदाहरणु रूपमां भताव्युं छे ओथी आ वात स्पष्ट समल शक्य तेम छे के तेमणे भील पणु अधी प्रतिमा पूजने पणु आ कुप्रावचनिक द्रव्य आवश्यकनी जेम द्रव्य आवश्यकमां ज स्थान आय्यु छे प्रवचनमां कुत्सितता कुशास्त्रता हिंसा वगेरे सांध्य पूजा वगेरे कार्योनी पुष्टि करवाथी ज संलवे छे. भील अरु

विधायकतया प्रवचनस्य कृत्रित्वं, तेनैव चेन्द्रादिपूजनस्य कुप्रावचनिकत्वं भवति । एवं प्रवचयतो भगवतोऽर्हतः प्रतिमायाः पूजनस्य प्रसङ्ग एव तदानीं नामीन्-हिंसाभयशास्त्रपूजनस्य, तेन प्रवचने भगवता प्रतिमापूजनप्रतिषेधो विशिष्य नोक्तः । प्रतिषेधवाक्यं हि तदैव सार्थकं, यदाप्रतिषेध्यरूपोऽर्थः कथंचित् प्रसक्तो भवति । जिनप्रतिमापूजनं हि न तावल्लौकिकं द्रव्यावश्यकं, नापि लोकोत्तरिकं द्रव्यावश्यकं, जिनो हि लोकोत्तरो देवस्तत्पूजनमपि स्याच्चेत् लोकोत्तरिकमेव

की पुष्टि करने से ही आती है । अन्य चरक आदि समस्त प्रवचनों में इन्हीं हिंसादिक कर्मों के करने का विधान स्पष्टरूप से पाया जाता है । इसीलिये ये हुए प्रवचन माने गये हैं । इनके द्वारा प्रदर्शित इन्द्रादिक पूजन भी इसी निमित्त से कुप्रावचनिक कहा गया है । जैन शास्त्रों में प्रतिमापूजन के निषेध का स्पष्ट उल्लेख जो देखने में नहीं आता है, उसका यह कारण है कि जिस समय प्रभु ने इन्द्रादिक के पूजन का कुप्रावचनिक रूप मानकर निषेध किया उस समय उनके समक्ष अर्हत की प्रतिमा के पूजन का प्रसंग ही नहीं था, नहीं तो इसका भी वे स्वतन्त्र रूप से निषेध करते-दूसरे-प्रतिमा पूजन कार्य हिंसाभय कार्य हैं-भगवान ने धर्म के लिये भी हिंसा करने का आदेश नहीं दिया है अनः जब वीतराग शास्त्र में हिंसा का विधान ही नहीं है-तब इसका भी विधान कैसे वे करते प्रतिषेध वाक्य उसी समय सार्थक माना जाता है जब प्रतिषेध्यरूप पदार्थ किसी भी रूप से प्रसक्त होता है ।

चीरि वगेरे णधा प्रवचनेमा ओ न हिंसा वगेरे कर्मेनि कर्वातुं विधान स्पष्ट इयं लेखामा आवे छे. ओधी आ णधा कुप्रावचनिक मानवामा आवे छे. ओमना वडे प्रदर्शित इन्द्र वगेरेतुं पूजन पणु आ धारणुने लीधे न कुप्रावचनिक इडेयाय छे. जैन शास्त्रोमा प्रतिमा पूजनना निषेधना स्पष्टपणु ने उदलेष लेखामा आवता नधी तेतुं धारणु पणु ओ छे डे न्यारे प्रभुओ इन्द्र वगेरेना पूजनने कुप्रावचनिक इयं मानने निषेध इथो त्यारे तेमनी सामे अर्हतनी प्रतिमाना पूजननी वात न न हुती, नडितर तेओश्री ओ तेना पणु स्वतंत्र इथी निषेध इथो डान. पीछ वात ओ छे डे प्रतिमा पूजनतुं धार्य हिंसाभय छे, नगणन धर्मना माटे पणु हिंसा कर्वाणी आसा इरी नधी. ओटला माटे न्यारे वीतराग शास्त्रमा हिंसा विषेनुं विधान न नधी त्यारे आनुं विधान पणु तेना देवी रीते इरे. प्रतिषेध वाक्य त्यारे न सार्थक गणुय छे न्यारे प्रतिषेध्यरूप पदार्थ डेछ पणु इथी प्रसक्त डाय छे. आ प्रतिमा

स्यात् लोके तु तस्य समावेशानर्हतया लौकिकत्वासंभवात् । प्रवचने भगवता यत् सामायिकादि षड्विधावश्यकं प्ररूपितं तदेव स्वच्छन्दविहारिभिः षट्कायर्दिसकैर्जिनाज्ञावाह्यैः क्रियमाणं लोकोत्तरिक-द्रव्यावश्यकम् । तत्र षड्विधावश्यकके जिनप्रतिमा पूजनस्य प्रवेशात् तस्य लोकोत्तरिकद्रव्यावश्यकके समावेशो न संभवति ।

यह प्रतिमापूजनरूप कार्य न लौकिक द्रव्य अवश्यक है और न लोकोत्तर द्रव्य अवश्यक ही है ।

शंका—प्रतिमा पूजन लौकिक द्रव्य आवश्यक नहीं है यह तो आप का कहना ठीक है, क्यों कि यह लौकिक द्रव्य आवश्यकों से सर्वथा भिन्न है । परन्तु इसे लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक मानने में आपको क्या विवाद है । क्यों कि प्रभु स्वयं लोकोत्तर देव माने जाते अतः उनका पूजन भी लोकोत्तरिक ही मानना चाहिये ?

उत्तर—प्रवचन में भगवान जो सामायिक आदि छह प्रकार के आवश्यकों का वर्णन किया है—वे जब जिन आज्ञा वाह्य—स्वच्छन्दविहारी और षट्काय की विराधना करने में निरत अनुपयुक्त पुरुषों द्वारा करने में आते हैं लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक रूप से प्रतिपादित किये गये हैं । इन षट्प्रकार के आवश्यकों में प्रतिमापूजन का कोई अधिकार ही नहीं है । अतः इसे कैसे लोकोत्तरिक आवश्यक माना जा सकता है ।

पूजनरूप कार्य माटे न तो लौकिक द्रव्य आवश्यक छे अने न तो लोकोत्तर द्रव्य आवश्यक छे.

शंका:—प्रतिमा पूजन लौकिक द्रव्य आवश्यक नहीं. तमारी आ वात तो उचित छे. केम के आ लौकिक द्रव्य आवश्यकथी संपूर्णपणे लिनन छे. पणु अने लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक मानवामां तमने शे। वांधो छे ? केमके प्रभु जते लोकोत्तर देव मनाय छे. त्यारे तेमनुं पूजन पणु लोकोत्तरिक न मानवुं जेधये ?

उत्तर—प्रवचनमां लगवाने जे सामायिक वगेरे छ जतना आवश्यकोनुं पणुन कर्युं छे तेयो ज्यारे जिन—आज्ञा वाह्य स्वच्छंद विहारी अने षट्कायनी विराधना करवामा निरत अनुपयुक्त पुरुषो वडे आचरवामां आवे छे. लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक इथी प्रतिपादित करवामां आवे छे. आ छ जतना आवश्यकोमां प्रतिमा पूजननो कोछ अधिकार न थी. अटला माटे लोकोत्तरिक आवश्यक केवी रीते मानी शकय ?

कुप्रवचनेऽर्हत. पूजाविधानं विशिष्य नोक्तं तथापि कामपूरकमृतमनुष्यपूजनवत् तस्य पूजा प्रतिमायां क्रियमाणा कुप्रवचनिकीति वक्तुं शक्यते । तस्मिन् कुप्रवचने हि पूजाधारनिर्णयान्तरे सामान्यतः पूज्यस्य सर्वस्यापि पूजाधारः प्रतिमा-

भावार्थ—शंकाकार ने प्रतिमापूजन को लोकोत्तरिक आवश्यक मानकर द्रव्य आवश्यक में जो उसका समावेश करना चाहा है सो उसकी इस आशंका का समाधान करते हुए सूत्रकारने यह कहा है कि जिन आज्ञा बाह्य एवं सामायिक आदि में अनुपयुक्त पुरुषों द्वारा किये गये सामायिक आदि षट् विध आवश्यक कार्य ही लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक में परिगणित किये गये हैं। इनमें प्रतिमा पूजा का कोई संबंध ही नहीं है—प्रतिमा पूजा षट् विध आवश्यक कार्यों में परिगणित ही नहीं हुई है। अतः उसका वहां पर किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होने से उसे लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक में नहीं गिना जा सकता है अतः इसका समावेश केवल कुप्रवचनिक द्रव्य आवश्यक में ही हुआ है ऐसा मानना चाहिये।

शंका—कुप्रवचन में इन्द्रादिकों की पूजा करने के विधान की तरह प्रतिमा पूजा का विधान तो पाया नहीं जाता है फिर आप इसे कुप्रवचनिक में अन्तर्भूत कैसे कह सकते हैं ?

भावार्थः—शंकाकारे प्रतिमा पूजनने लोकोत्तरिक आवश्यक भानीने द्रव्य आवश्यकमां तेना समावेश करवानी ने छिन्ना भतावी छे. तेनी ते शंकातु समाधान करतां सूत्रकारे आ प्रभाषे उह्यु छे के जिन आज्ञा बाह्य अने सामायिक वगेरेमा अनुपयुक्त पुरुषो वडे करवामां आवेला सामायिक वगेरे छ जतना आवश्यक कार्यो न लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यकमां परिगणित करवामा आव्यां छे. अनाथी प्रतिमा पूजनने डोछ संबंध नथी. प्रतिमा पूज पश्विध आवश्यक कार्योमां परिगणित न थर नथी अटला भाटे त्यां तेना डोछ पणु रीते संबंध नहि होवाथी लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यकमां तेनी गणना थर शके तेम नथी. अथी इहा द्रव्य आवश्यकमां न थयो छे आम भानी लेवुं लेछंअे.

शंकाः—कुप्रवचनमां छंछ वगेरेनी पूज करवाना विधाननी नेम प्रतिमा पूजन विधान तो गणतुं नथी त्यारे तमे अने कुप्रवचनिकमां देवी रीते समाविष्ट करी शंका ?

चित्रादय इति प्ररूपितम् । एवं च जिनपूजनं-कुप्रावचनिकं-नोआगमतो द्रव्या-
वश्यकं प्रतिमायां क्रियमाणत्वात्, इन्द्रादिपूजनवत्, इत्यनुमानेनापि कुप्रावचनिक
द्रव्यावश्यकतया धर्मपदवाच्यं न भवतीति ।

उत्तर—यद्यपि कुप्रावचन में प्रतिमा पूजा का विधान स्वतन्त्ररूप
से नहीं किया गया है, तो भी कामपूरक प्रणियों के अनोरथ को पूर्ण
करने वाले-मनुष्य के मृत-निर्जीव देह की पूजा की तरह प्रतिमा में
होनी हुई पूजा भी कुप्रावचनन की है ।

इस प्रकार हम अनुमानसे कह सकते हैं । उसमें प्रवचनमें पूजाके
आधार का निर्णय करते समय सामान्यरूप से पूजा के आधारभूत
जितने भी प्रतिमा चित्र आदि पूज्य हैं वे सब गृहीत हुए हैं । इस
प्रकार प्रतिमा की सर्व पूजा का आधार प्रतिमा और चित्र आदि है ।
इसलिये वह कुप्रावचनिक है । इस प्रकार हम कहते हैं । इस कथन से
यह व्याप्ति सिद्ध होती है कि इन्द्रादिक पूजन की तरह प्रतिमा में जो
जो पूजाएँ की जाती हैं वे सब कुप्रावचनिकी हैं । अतः जिन पूजन भी
प्रतिमा में किये जाने पर नोआगम की अपेक्षा से कुप्रावचनिक द्रव्य
आवश्यक ही है, और इसीलिये वह धर्मपद का वाच्य नहीं है यह बात
स्पष्टरूप से सिद्ध हो जाती है इसमें अनुमान प्रयोग इस प्रकार से
करना चाहिए ।

उत्तर—जे के कुप्रावचनमा प्रतिमा पूजनतु विधान स्वतत्र रूपमा कर-
वामां आव्युं नथी छतांथ मानवीना मनोरथाने पूर्ण करनारा-माणुसना मृत
निर्ज्व शरीरनी पूजनी जेमज प्रतिमानी करवामां आवेदी पूज पणु कुप्रा-
वचनिकी छे आम अमे अनुमानथी कही शकीछे छीछे. ते कुप्रावचनमा
पूजना आधारने निर्णय करती वणते सामान्य रूपथी पूजना आधारभूत
जेटला प्रतिमा चित्र वगेरे पूज्य छे तेओ सर्वेनुं अडणु थयुं छे.

आ रीते प्रतिमानी सर्व पूजने आधार प्रतिमा अने चित्र वगेरे छे
जेटला माटे ते कुप्रावचनिक छे आम अमे कही शकीछे छीछे. आ कथनथी छे
व्य सिद्धि थाय छे के इन्द्र वगेरेना पूजननी जेम प्रतिमाओमां जे जे
पूजओ करवामां आवे छे तेओ सर्वे कुप्रावचनिकी छे जेटला माटे जिन
पूज पणु प्रतिमामां आवती होवथी आगमनी अपेक्षाथी कुप्रावचनिक द्रव्य
आवश्यक छे अने छेथी ते धर्मपदवाच्य नथी. आ वात स्पष्टपणु सिद्ध
थयुं जय छे. आमां अनुमानप्रयोग आ प्रमाणु कही शकय तेम छे.

अथ भावावश्यकमुच्यते—विवक्षितक्रियादुभवयुक्तो योऽर्थः स भावः, भाव तद्वनोरभेदोपचाराद् भावः । यथा—ऐश्वर्यरूपायाइन्दनक्रियाया अनुभवात् इन्द्रो भाव उच्यते । भावश्चासौ आवश्यकं च, भावमाश्रित्य वा आवश्यकं भावावश्यकम् ।

“ जिनपूजनं नो आगमतो कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकं प्रतिमायां क्रियमाणत्वात् इन्द्रादिपूजनवत् ” । अतः इस समयमें पूर्वोक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वह प्रतिमापूजन कार्य लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक रूप से भी प्रसक्त होता तो भगवान् इसका अवश्य प्रति-
पेध करते ।

अथ भावावश्यकमुच्यते - अब भाव आवश्यक क्या है इसका कथन सूत्रकार करते हैं—वर्तमान समय में उच्च विवक्षितरूप पर्याय से युक्त द्रव्य का नाम भाव है । भाव यद्यपि वर्तमान क्रिया रूप माना गया है, फिर भी यहां पर उस क्रिया से युक्त द्रव्य को जो भाव कहा है उसका कारण द्रव्य और पर्याय का अभेद संबंध है । भगवान् द्रव्य के बिना नहीं रह सकता है । भाव द्रव्य की एक पर्याय है, वह निराश्रय होती नहीं है—अतः जिस द्रव्य के आश्रय वह रहेगी उन दोनों में अभेदोपचार से उस पर्याय से उपलक्षित उस द्रव्य को ही भाव कह दिया है । जिस प्रकार ऐश्वर्यरूप इंदन (देदीप्यमान होना)

“ जिनपूजनं नो आगमतो कुप्रावचनिकं द्रव्यावश्यकं प्रतिमायां क्रियमाण-
त्वात् इन्द्रादिपूजनवत् ”

जेटला भाटे आ पूर्वोक्त कथनधी आ वात स्पष्ट थाय छे छे ते प्रतिमा पूजन अर्थ लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक पणु नधी, जे ते लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यकउपे पणु प्रसक्त छैत तो लगवान तेने बोधस प्रतिपेध करत.

‘ अथ भावावश्यकमुच्यते ’:—इवे आवश्यक शुं छे जेनुं स्पष्टीकरण सूत्रकार करे छे—वर्तमान समयमां ते विवक्षित रूप पर्यायधी युक्त द्रव्यतुं नाम भाव छे, जे छे भाव वर्तमान क्रिया रूप मानवामां आव्ये छे, छतांय अर्धी ते क्रियाधी युक्त द्रव्यने न भाव गताव्ये छे तेनुं कारण द्रव्य अने पर्यायना अभेद संबंध छे भाव लगवान द्रव्य वगर गही शकते नधी भाव द्रव्यनी जेठ पर्याय छे, ते निराश्रय छैतीन नधी, जेधी जे द्रव्यना आश्रये ते रह्ये तेजे अनेमां अभेदोपचाराधी ते पर्यायधी उपलक्षित ते द्रव्यने न भाव कही दीया छे, जेभ अर्थ इंदन (देदीप्यमान वस्तु) क्रियाना अनुभ-

तद् द्विविधम्- (१) आगमत. = आगममाश्रित्य, (२) नोआगमतः = आग-
माभावमाश्रित्य ।

आगमतो भावावश्यकमाह—

“ से किं तं आगमओ भावावस्सयं ? आगमओ भावावस्सयं जाणए उवउत्ते,
से तं आगमओ भावावस्सयं ” । (अनुयोग०)

अथ किं तदागमतो भावावश्यकम् ? उत्तरमाह—“ ज्ञायक उपयुक्त ” आग-
मतो भावावश्यकम् ।

अयमर्थः—आवश्यकपदार्थज्ञस्तज्जनितसंवेगेन विशुध्यमानपरिणामस्तत्र चो
पयुक्तः साधवादिरागमतो भावावश्यकम्, अत्रावश्यकार्थज्ञानरूपस्यागमस्यात्र

क्रिया के अनुभव से उपलक्षित शचीपति भाव इन्द्र कहा जाता है ।
इसी प्रकार जो आवश्यक रूप क्रिया के अनुभवसे युक्त है वही आत्मा
भावावश्यक कहलाता है । भावरूप जो आवश्यक है वह, अथवा भाव
को आश्रय करके जो आवश्यक है वह भावावश्यक है ।

यह भाव आवश्यक भी दो प्रकार का है—१ आगम की अपेक्षा
भाव आवश्यक और दूसरा नो आगम की अपेक्षा भाव आवश्यक ।
इनमें “ ज्ञायकः उपयुक्तः आगमतो भावावश्यकं ” ज्ञायक उपयुक्त
आत्मा आगम की अपेक्षा से भाव आवश्यक माना गया है । आव-
श्यकरूप पदार्थ का जो ज्ञाता है उसका नाम ज्ञायक है । आवश्यकरूप
पदार्थ के ज्ञान से जनित संवेग द्वारा विशुद्ध हुए परिणामों का नाम
उपयोग है । इस उपयोग से विशिष्ट जो साधु आदि जन हैं वे आगम
की अपेक्षा से भाव आवश्यक हैं । क्योंकि इनमें आवश्यकरूप पदार्थ

वधी उपलक्षित शचीपति भाव इन्द्र कहेवाय छे तेमने जे आवश्यकरूप क्रियाना
अनुभवधी युक्त छे ते आत्मा भावावश्यक कहेवाय छे. भावरूप जे आवश्यक
छे ते अथवा भावने आश्रय करीने जे आवश्यक छे ते भावावश्यक छे.

आ भाव आवश्यक पणु जे प्रकारने छे-१, आगमननी अपेक्षा भाव
आवश्यक अने २, नो आगमननी अपेक्षा भाव आवश्यक अनेनामा “ज्ञायक
उपयुक्तः आगमतो भावावश्यकं” ज्ञायक उपयुक्त आत्मा आगमनी अपेक्षार्थी
भाव आवश्यक मानवामा आव्ये छे आवश्यकरूप पदार्थने जे ज्ञाता छे तेनुं
नाम ज्ञायक छे आवश्यकरूप पदार्थना ज्ञानधी जनित संवेगवडे विशुद्धि
पामेक्षा परिणामेनु नाम उपयोग छे. आ उपयोगधी विशिष्ट जे साधु वगैरे
कोडे छे तेओ आगमनी अपेक्षार्थी भाव आवश्यक छे. केमडे तेओमां आव-

मत्त्वात्, भावावश्यकता चात्रावश्यकार्थज्ञानजनितोपयोगपरिणामवत्त्वाद्भा-
माश्रित्यावश्यकमिति व्युत्पत्तेः । इदमुक्तं भवति आवश्यकार्थज्ञस्य आवश्यकोप-
योगपरिणाम आगमतो भावावश्यकं, साध्वादिस्तु तादृशपरिणामवत्त्वादागमतो
भावावश्यकमुच्यते । इदमावश्यकोपयोगपरिणामरूपं भावावश्यकं धर्मपदवाच्यं,
श्रुतधर्मान्तर्गतत्वात्, अत्र जिनाज्ञायाः सत्त्वाद् ।

नोभागमतो भावावश्यकं त्रिविध-लौकिकं, कुप्रावचनिकं, लोकोत्तरिकं चेति
लौकिकं भावावश्यकं-पूर्वाह्ने भारतस्य वाचनं श्रवणं वा, अपराह्ने रामायणस्य

के ज्ञानरूप आगम का सद्भाव पाया जाता है । इसलिये साधु आदि
जनों में आगम की अपेक्षा से आवश्यकता और इस आवश्यक के
अर्थ ज्ञान से जनित उपयोगरूप परिणामों की विशिष्टता होने से भाव
रूपता आती है । अतः “ भाव को आश्रित करके जो आवश्यक है वह
भाव आवश्यक है ” यह कथन सुसंगत हो जाता है

भावार्थ-“आवश्यक” इस पद के अर्थज्ञान से विशिष्ट तथा तद-
नुकूल उपयोग परिणाम संपन्न आत्मा ही आगम की अपेक्षा से भावा-
वश्यक कहा गया है । ये भावावश्यक साधु आदि हैं । क्योंकि ये ही
उस प्रकार की परिणाम वाले होते हैं । अतः श्रुतधर्म के अन्तर्गत होने
से यह भावावश्यक ही धर्म पद का वाच्य कहा गया है और ऐसे ही
धर्म की आराधना करने की भगवानने आज्ञा प्रदान की है ।

नो आगम की अपेक्षा से भाव आवश्यक तीन प्रकार का माना
गया है । (१) लौकिक (२) कुप्रावचनिक और लोकोत्तरिक । पूर्वाह्ने में

अवश्यक पदार्थना ज्ञानरूप आगमनो सद्भाव भणे छे. अटला भाटे साधु
वगेरे लोकोत्तरां आगमनी अपेक्षाधी आवश्यकता अने आ आवश्यकताना अर्थ
ज्ञानधी जनित उपयोगरूप परिणामोनी विशिष्टता होवाधी भावरूपता आवे
छे. अटला भाटे “ भावने आश्रित करीने ने आवश्यक छे ते भाव आवश्यक
छे. ” आ उथ सुसंगत अर्थ पडे छे.

भावार्थः-“ आवश्यक ” आ पदना अर्थ ज्ञानधी विशिष्ट तेमने तद-
नुकूल उपयोग परिणाम संपन्न आत्मा न आगमनी अपेक्षाओ भाव आवश्यक
साधु वगेरे छे उभडे अ लोको न आ जननी परिणामिवाणा होय छे. अथी
श्रुतधर्मना अंतर्गत होवा अत्र आ भावावश्यक न धर्मपदवाच्य छेवाभां
आवे छे अने आ जनता धर्मनी आराधना करवानी लगवाने पणु आज्ञा करी छे.

नो आगमनी अपेक्षाओ भाव आवश्यकता त्रय प्रकारे छेः-(१) लौकिक
(२) कुप्रावचनिक (३) अने लोकोत्तरिक पूर्वाह्ना भारतनुं वाचन अथवा श्रवण

वाचनं श्रवणं वा । लोके हि भारतस्य वाचनं श्रवणं पूर्वाह्ने एव क्रियमाणं दृश्यते, तथा रामायणस्य वाचनं श्रवणमपराह्ण एव क्रियमाणं दृश्यते, वैपरीत्ये दोषदर्शनात् । ततश्चेत्थं लोकेऽवश्यकरणीयतयाऽऽवश्यकत्वं तद्वाचकस्य श्रोतुश्च तदर्थोपयोगपरिणामसत्त्वाद् भावत्वं, तद्वाचकः पुस्तकपत्रादिपरावर्तनरूपया हस्ताभिनयरूपया च क्रियया युक्तो भवति, श्रोतापि च गात्रसंयतत्व-करसंपुटीकरणादि

भारत का वांचना अथवा सुनना, अपराह्ण में रामायण का वांचना या सुनना ये सब लौकिक भाव आवश्यक हैं । लोक में भारत का वांचना अथवा सुनना पूर्वाह्णमें ही क्रिया जाता है । रामायणका वांचन और श्रवण अपराह्ण में ही होता हुआ देखा जाता है । इससे विरुद्ध प्रवृत्ति करने से अनेक प्रकार के दोषों का भाजन बनना पडता है, इस प्रकार लोक में भारतादिक ग्रन्थों का वांचना आदि कार्य नियमित समय में अवश्य करने योग्य होने की वजह से आवश्यक रूपमें माना गया है । अतः इसमें इस प्रकार से आवश्यकपना आ जाता है । तथा इनके वांचने चालो में या सुनने वालों में उनके अर्थ के प्रति उपयोगात्मक परिणाम के सद्भाव से भावरूपता आती है । क्यों कि जबतक उनके वांचने चाले में उनके अर्थ के प्रति उपयोगात्मक परिणाम की जागृति नहीं होगी, तब तक वे उन पुस्तकों के पत्रों आदि का परावर्तन करने रूप क्रिया और श्रोताओं को अनेक अर्थ की संगति बैठाने के लिये हस्त आदि के संचालनरूप अभिनय क्रिया का उपयोग ही

अपराह्णमां रामायणतु वाचन के श्रवणु आ णधुं लौकिक भाव आवश्यक छे. लोकमां भारततुं वाचन अथवा तो श्रवणु पूर्वाह्णमां न करवामां आवे छे. रामायणतुं वाचन अने श्रवणु अपराह्णमां न थतुं जेवामां आवे छे. अथी विशुद्ध आग्रणु करवाथी भाणुस धणी नतना दोषोने पात्र थछ पडे छे आ प्रभाणु भारत वगेरे अथेतुं वाचन वगेरे कार्य नियमित समयमां आवश्यक करवा योग्य होवा अदल आवश्यक रूपमां मानवामां आवे छे. अथी आमां आरीते आवश्यकपणुं आवी नथ छे. तेमन अथेतु वाचन करनाराओमा तेमना तरक उपयोगात्मक परिणामना सदभावथी भावरूपता आवे छे. केमके न्यासुधी तेमनुं वाचन करनाराओमां तेमना अर्थ प्रत्ये उपयोगात्मक परिणामनी नगृति थशे नछि, त्यां सुधी तेओ ते पुस्तकना पत्रो वगेरेना परावर्तन करवाइप क्रिया अने श्रोताओना भाटे अनेक नतना अर्थनी संगति जेसाउवा भाटे हाथ वगेरेना उदतनचलनरूप अभिनय क्रिया उपयोग न केवी रीते करी शके.

ક્રિયાવાનુ ભવતિ, એવં તયોઃ ક્રિયાવત્ત્વેન નોઆગમત્વં, “કિરિયાઽગમો નહોઈ”
 इति वचनात् । क्रियारूपे देशे आगमभावाद् नोआगमत्वमपि, अत्र नो शब्दस्य
 देशनिषेधबोधकत्वात् । लोके भारतादावागमत्वं व्यवह्रियते, तस्माद्देशत आगमो-
 ऽस्त्यपि । तस्माद् पूर्वाह्नेऽपराह्णे यथानिर्दिष्टकाले भारताद्युपयुक्तो यदवश्यं भारतादि
 वाचयति शृणोति वा, तद् वाचनं श्रवणं च लौकिकं भावावश्ययमिति बोध्यम् ।

કેસે કર સકતે હૈં । પરન્તુ ઉસ સમય ઇસ પ્રકાર કી યે સમસ્ત ક્રિયાઈ
 उनमें प्रत्यक्ष ही देखने में आती हैं । इसी प्रकार श्रोताजन भी अटल
 होकर उनके सुनने में तन्मय हो जाते हैं । समय २ पर हाथ जोड़ने
 रूप क्रियाई भी करते हैं । इस प्रकार की क्रियाई से युक्त होने से उन
 सुनने वांचने वालों में नो आगमता भी है क्यों कि “ किरिया आगमो
 न होइ ” क्रिया आगम नहीं मानी जाती है ऐसा सिद्धान्त का कथन
 है । “ नो आगम ” में नो शब्द आगम के एक देश का वाचक है ।
 इसलिये क्रियारूप एक देश में पूर्णरूप से आगम का अभाव होने से
 आगम की एक देशता उसमें मानने में आती है । भारतादिक पुस्तकों
 में आगमता का कथन लोक की अपेक्षा से ही किया गया जानना
 चाहिये । क्यों कि लोक में अन्य व्यवहारी जन इनमें आगमता का
 व्यवहार करते हुए देखे जाते हैं । इस प्रकार पूर्वाह्ण या अपराह्ण में
 किसी भी निर्दिष्ट समय में भारतादिक ग्रन्थों का ज्ञाता उनमें उपर्युक्त
 होकर जो उनका वांचना आदि कार्य करता है—या जो श्रोताजन उप-

પણ તે વખતે આ જાતની આ બધી ક્રિયાઓ તેઓમાં પ્રત્યક્ષરૂપે જોવામાં
 આવે છે આ રીતે શ્રોતાઓ પણ તલ્લીન થઈને સાલગવા માંડે છે. યોગ્ય
 મગથે તેઓ હાથ જોડવારૂપ ક્રિયાઓ પણ કરે છે. આ જાતની ક્રિયાઓથી
 યુક્ત હોવા બદલ તે વાંચનારા તેમજ સાલગનારાઓમાં નો આગમતા પણ
 છે કેમકે “ કિરિયા આગમો ન હોઈ ” ક્રિયા આગમ માનવામાં આવતી નથી
 આ સિદ્ધાન્તનું કથન છે. “ નો આગમ ” માં નો શબ્દ આગમના એક દેશને
 વાચક છે એટલા માટે ક્રિયારૂપ એકદેશમાં આગમને સંપૂર્ણપણે અભાવ
 હોવાથી તેના આગમની એકદેશતા માનવામાં આવે છે ભારત વગેરે ગ્રંથોમાં
 આગમતાનું કથન લોકની અપેક્ષાથી જ કરવામાં આવ્યું છે કેમકે લોકમાં
 બીજી વ્યવહારી લોકો પણ એના આગમતારૂપ વ્યવહાર કરતાં જોવાય છે. આ
 રીતે પૂર્વાહ કે અપરાહમાં કોઈ પણ નિર્દિષ્ટ સમયમાં ભારત વગેરે ગ્રંથો નો
 જ્ઞાતા તેઓમાં ઉપયુક્ત થઈને જે તેમનું વાચન વગેરે કાર્ય કરે છે અથવા તે

कुप्रावचनिकं भावावश्यकमुच्यते—ये इमे चरकचीरिकादयो यावत् पापण्डस्था उपयुक्तो यथावसरं यदवश्यम्—इज्याञ्जलि—होम—जपो—न्दुरुक्कनमस्कारादिकं भावरूपमावश्यकं कुर्वन्ति तेषां तत् कुप्रावचनिकं भावावश्यकम् ।

तत्र—इज्या—सन्ध्योपासनम्, अञ्जलिः—जलाञ्जलिः सूर्याय दीयते, होमः—नित्यहवनम्, जपः—गायत्र्याः, उन्दुरुक्कं—अयं देशीयः शब्दः धूपार्थकः, नमस्कारः=वन्दनम्, एतेषां चरकादिभिः पापण्डस्थैरवश्यं क्रियमाणत्वादावश्यकत्वम् । तदर्थोपयोगश्रद्धादिपरिणामसद्भावात् भावत्वम् । चरकादीनां तदर्थोप-

युक्त होकर उन्हें सुनते हैं वह सब वाचना सुनना आदि कार्य नो आगम की अपेक्षा से लौकिक भाव आवश्यक है ।

जो चरक चीरिकादि जन उपयुक्त होकर अपने आवश्यक कार्य स्वरूप इज्या, अंजलि, होम जप, उन्दुरुक्क, और नमस्कार आदि भावरूप आवश्यक करते हैं, उनके ये सब कार्य कुप्रावचनिक भाव आवश्यक हैं संध्या की उपासना करना इज्या है, सूर्य के लिये जलकी अंजलि देना अञ्जलि है, नित्य हवन करना होम, गायत्री का पाठ करना जब, धूप का खेना उन्दुरुक्क और नमस्कार करना वन्दना कर्म हैं । ये सब कार्य चरकादि जनों द्वारा प्रतिदिन अवश्य करने योग्य होते हैं—अतः इनमें उन्हीं की मान्यतानुसार आवश्यकपना कहा गया है इनके करने में उनके अन्तः कारण में उनके अर्थ के प्रति उपयोग एवं श्रद्धा आदिरूप परिणति का सद्भाव पाया जाता है । इस

ये श्रोताओ उपयुक्त थधने तेमनुं श्रवणु करे छे ते अधुं वांगन श्रवणु वगेरे कार्य नो आगमनी अपेक्षाओ लौकिक भाव आवश्यक छे.

ये चरक चीरिक वगेरे लोक ओ उपयुक्त थधने आवश्यक कार्यस्वरूप इज्या, अंजलि, होम, जप, उन्दुरुक्क अने नमस्कार वगेरे भावरूप आवश्यक करे छे, तेओना आ अधा कार्यो कुप्रावचनिकभाव आवश्यक छे. संध्यानी उपासना करवी ओ इज्या छे, सूर्यने भाटे पाणीनी अंजलि आपवी ते अजली छे, हररोज हवन करवो ते होम, गायत्री पाठ करवो ते जप अने धूप करवो ते उन्दुरुक्क अने नमस्कार ओ वन्दना कर्म छे. आ अधा कार्यो चरक वगेरे लोक वडे इमेशाअवश्य प्रवायोग्य होय छे. ओटला भाटे आमां तेमनी मान्यता मुजभ ओ आवश्यकपणुं कडेवामा आव्युं छे ओमना आचरणुथी तेमना हृदयमा तेना अर्थ प्रत्ये उपयोग अने श्रद्धा वगेरे रूप परिणति नो सद्भाव भजे छे. आ अपेक्षाओ त्यां भावता अने

योगरूपो देश आगमः, करशिरः संयोगादिक्रियारूपो देशस्तु नोआगमः, तथा च दैशिकागमाभावमाश्रित्य नो आगमत्वमपि, नांशब्दस्यात्रापि देशनिषेधपरत्वात् ।

लौकिकं कुप्रावचनिकं च नोआगमतो भावावश्यकं न धर्मपदवाच्यम्, तत्र जिनाज्ञाया अभावादिति बोध्यम् ।

अथ किं लोकोत्तरिकं नोआगमतो भावावश्यकम् ? उच्यते अनुयोगद्वारे ।

“ जणं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविया वा तच्चित्ते तम्मणे

अपेक्षा से वहाँ भावता और एकदेश से आगमता भी है । क्यों कि हाथों का जोड़ना नमस्कार करना आदि रूप जो भी क्रियाएँ हैं वे सब नो आगम हैं । इस अपेक्षा इनमें पूर्णरूप से आगमपना न होकर आगम की एक देशता ही है चरक चीरीकादि द्वारा मान्य ग्रन्थों की निर्दिष्ट क्रियाओं का ही वहाँ सद्भाव है और उन्हीं के अर्थ में उनका उपयोगादिरूप परिणाम है । इसलिये ये सब चरक चीरीकादि की क्रियाएँ नो आगम की अपेक्षा से भाव आवश्यक हैं । यहाँ पर भी नो शब्द देश निषेध परक है अर्थात् आगम के एक देश का वाचक है ये लौकिक और कुप्रावचनिक जिन्हें नो आगम की अपेक्षा से भावावश्यकरूप में प्रकट किया गया है धर्मपद के वाच्य नहीं हैं । क्यों कि इन की आगमना से जीवों के कर्मों की निर्जरा नहीं होती है । अतः तीर्थंकर प्रभु ने इनके आराधन करने की आज्ञा प्रदान नहीं की है ।

नो आगम की अपेक्षा से लोकोत्तरिक भाव आवश्यक इस प्रकार

अेकदेशथी आगमता पणु छे. केमके डथ जेडया, नमस्कार करवा वगेरे इप ले कियाओ छे ते सर्वे नोआगम छे आ दृष्टिओ अेमनामां आगमता सपूर्णपणे नथी इकत आगमनी अेकदेशना न छे. अरक थीरिड वगेरे वडे मान्य अयोनी निर्दिष्ट कियाओनो न त्यां सद्भाव छे अने तेमना न अर्थमां तेमनो उपयोग वगेरइप परिणाम छे अेटला भाटे आ गधा अरक थीरिडा वगेरेनी कियाओ नो आगमनी अपेक्षाथी लाव आवश्यक छे अडी पणु नो शण्ड देशनिषेध परक छे अेटले के आगमना अेकदेशनो वाचक छे आ लौकिक अने कुप्रावचनिको जेमने नो आगमनी दृष्टिओ लावावश्यक रुपमां प्रकट करवामा आव्य छे—धर्मपदना वाच्य नथी केमके अेमनी आराधनाथी एवेना कुमोनी निर्वाग यती नथी, अेटला भाटे तीर्थंकर प्रभुओ अेमने आराधनानी आज्ञा करी नथी.

नो आगमनी अपेक्षाओ लोकोत्तरिक लाव आवश्यक आ प्रमाणे छे:—

जणं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविया वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे

तल्लेसे तदज्ज्ञवसिए तत्तिव्वज्ज्ञवसाणे तदद्वोपउत्ते तदप्पियकरणे तव्भावणा-
भाविए अण्णत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे उभओकालं आवस्सयं करेइ, से तं लो-
गुत्तरियं भावावस्सयं, से तं नोआगमतो भावावस्सयं, से तं भावावस्सयं ॥ ”

छाया-यत्खलु श्रमणो वा श्रमणी वा श्रावको वा श्राविका वा तच्चित्तस्तन्म-
नस्कस्तल्लेइयस्तदध्यवसितस्तत्तीव्राध्यवसायस्तदर्थोपयुक्तस्तदर्पितकरणस्तद्भावना-
भावित अन्यत्र कुत्रचिन्मनोऽकुर्वन् उभयकालं यत् आवश्यकं सामायिकादि करोति
तेषां तल्लोकोत्तरिकं भावावश्यकम् । तेषां तद् नोआगमतो भावावश्यकम् तदे-
तद्भावावश्यकम् ।

अत्राप्यवश्य करणीयत्वादावश्यकत्वं, तर्थापयोगश्रद्धादिपरिणामस्य सद्भा-
वाद् भावत्वम्, रजोहरणप्रमार्जिकाव्यापारयथारात्तिकवन्दनकरणानन्तर सविधि

है-जणं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविया वा तच्चित्ते
तम्मणे तल्लेसे तदज्ज्ञवसिए तत्तिव्वज्ज्ञवसाणे तदद्वोपउत्ते तदप्पिअ-
करणे तव्भावणाभाविए अण्णत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे उभओकालं
आवस्सयं करेति, से तं लो-गुत्तरियं भावावस्सयं, से तं नो आगमतो
भावावस्सयं से तं भावावस्सयं (अनुयोगद्वार)

श्रमण अथवा श्रमणी श्रावक अथवा श्राविका जो सामायिक आदि
आवश्यक क्रियाओं को तच्चित्त होकर (उनमें ही चित्त लगाकर) तज्जन
होकर उनमें ही अन्तःकरणको एकाग्रकर इत्यादि सूत्रमें कथित विधिके
अनुसार दोनों कालों में करतेहैं वह उनका कार्य नो आगम की अपेक्षा
से लोकोत्तरिक भाव आवश्यक हैं । ये सामायिक आदि क्रियाएँ
अवश्य करने योग्य होने से आवश्यक है । कर्त्ता का उनके अर्थ में
उपयोग रूप एवं श्रद्धा आदि रूप परिणाम का सद्भाव होने से उनमें

तदज्ज्ञवसिए तत्तिव्वज्ज्ञवसाणे तदद्वोपउत्ते तदप्पिअकरणे तव्भावणाभाविए
अण्णत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे उभओकालं आवस्सयं करेति, से तं लो-
गुत्तरियं भावावस्सयं, से तं नो आगमतो भावावस्सयं, से तं भावावस्सयं (अनुयोगद्वार) ।

श्रमण अथवा श्रमणी श्रावक अथवा श्राविका जे सामायिक वगेरे आव-
श्यक क्रियाओने तच्चित्त थधने (तेमनामा मन परेवीने) तल्लीन थधने
तेमनामा न मन लगावीने वगेरे सूत्रमा कथित विधि मुज्जण ण ने वपत्त
करे छे तेमनु ते कार्य नो आगमनी अपेक्षाओ लोकोत्तरिक भाव आवश्यक
छे, आ सामायिक वगेरे क्रियाओ अवश्य करवा योग्य होवाथी आवश्यक छे
कर्त्ता तेमना अर्थमा उपयोगरूप परिणामनो सद्भाव होवाथी तेमनामा
भावता पणु छे, रत्तेइरणुथी भूमि वगेरेनु प्रभान्त करवुं, वदना वगेरे कृति

षट्त्रिंशद्विधककरणरूपायाः क्रियायाः अनागमत्वात् नोभागमत्वं बोध्यम्, अत्रापि नो-शब्दस्य देशतः प्रतिषेधपरत्वात् । इदम् लोकोत्तरिकं नो आगमतो भावावश्यकं धर्मपदवाच्यम् तत्र विशेषतया भगवतोऽर्हत आज्ञायाः सद्भावात् । अन्येऽपि धर्मलक्षणमेवमाहुः—

“ वचनादविरुद्धाद्य-दनुष्ठानं यथोदितम् ।

मैत्र्यादिभावसंमिश्रं तद्धर्म इति कीर्त्यते ” ॥ १ ॥

भावना भी है रजोहरण से भूमि आदि का प्रमार्जन करना, वंदना आदि कृति कर्म करना आदि विधि पूर्वक जो षट् विध आवश्यक करने रूप क्रियाएँ हैं वे सब “ किरिया आगमो न होइ ” इस नियम के अनुसार आगम नहीं हैं । अतः इन में आगम के एक देश अभाव की अपेक्षा से नो आगमता है । यहाँ पर भी नो शब्द सम्पूर्ण रूप से आगमका प्रतिषेध परक न होकर उसके एक देश का ही प्रतिषेधक है । अतः ये मानागिक आदि षट्त्रिंशद्विध आवश्यक नोआगम की अपेक्षा से लोकोत्तरीक भाव आवश्यक है ’ और इनके ही आराधन करने की जिनेन्द्र देवने भव्य जीवों को आज्ञा दी है । कारण कि ये धर्मपद के वाच्य हैं इनकी आराधना से भव्यजीवों के कर्मों की निर्जरा होती है ।

दुन्दरों ने भी इस प्रकार धर्म का लक्षण कहा है—

वचनादविरुद्धाद्यदनुष्ठानं यथोदितम् ।

मैत्र्यादिभावसंमिश्रं तद्धर्म इति कीर्त्यते ॥

धर्म वाच्यत्वा वगेरे विधिपूर्वक ने षट्त्रिंशद्विध आवश्यक करवाउप कियाओ छे तेओ भवे “ किरिया आगमो न होइ ” आ नियम मुज्ज आगम नथी ओटला भाटे ओभनामा आगमता ओकेदेश अलावनी अपेक्षाथी नो आगमता छे. अर्था पापु नो शण्ड संपूर्ण उपथी आगमनो प्रतिषेध परक नथी पणु तेना ओकेदेशनो न प्रतिषेधक छे ओटला भाटे सभायिक वगेरे आ षट्त्रिंशद्विध आवश्यक नो आगमनी अपेक्षा ओ लोकोत्तरिक भाव आवश्यक छे अने जिनेन्द्र देवे ओभनी आराधना करवानी न लव्य लवोने आज्ञा करी छे. केभके आ अथा धर्मपदना वाच्य छे ओभनी आराधनार्थी लव्य लवोना उभोनी निर्जरा यथ छे.

गी-तओओ पत्र आ जीने धर्मनुं लक्षण पताव्युं छे—

वचनादविरुद्धाद्यदनुष्ठानं यथोदितम् ।

मैत्र्यादि भावसंमिश्रं तद्धर्म इति कीर्त्यते ॥

अख्यव्याख्या वचनादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी, वचनमनुसृत्येत्यर्थः । वचनम्—
अमागः । कीदृशाद् वचनादित्याह—अविरुद्धात्-कषच्छेदतापेषु अविघटमानात्,
तत्र विधिप्रतिषेधयोर्बाहुल्येनोपवर्णनं कषशुद्धिः, पदे पदे तद्योगक्षेमकारिक्रियोपद-
र्शनं छेदशुद्धिः, विधिप्रतिषेधतद्विपद्याणां जीवादिपदार्थानां च स्याद्वादपरीक्षया
याथात्ययेन समर्थनं तापशुद्धिः । तच्चाविरुद्धं वचनं जिनप्रणीतमेव, निमित्तशुद्धेः

अविरुद्ध आगम से यथोदित एव मैत्री आदि भावनाओं से मिश्रित
जो अनुष्ठान है वह धर्म है । स्पष्टार्थ—वचन शब्द का अर्थ आगम है ।
आगम में अविरुद्धता कष, ताप, और छेद द्वारा परीक्षित होने पर ही
आती है । जिस प्रकार सुवर्ण की परीक्षा कष-कसोटी पर करने से
ताप-अग्नि में तपाने से और छेद-छैनी वगैरह द्वारा काटने से होती
है, उसी प्रकार आगम की शुद्धि की परीक्षा भी इन तीन उपायों द्वारा
की जाती है । विधि और प्रतिषेध का बहुलता से जिस शास्त्र में
वर्णन है, वह शास्त्रकष से शुद्ध कहा जाता है । पद पद पर जिस
शास्त्र में इनके योग और क्षेमकरि क्रियाओं का कथन किया गया
मिलता है वह शास्त्र छेदसे शुद्धमाना जाता है । विधि एवं प्रतिषेध तथा
इन के विषयभूत जीवादिक पदार्थों का स्याद्वाद ढंग से जहाँ पर यथार्थ
समर्थन किया जाता है सप्तभंगी द्वारा जहाँ पर इनका सुन्दर शैली से
विवेचन करने में आता है वह शास्त्र तप उपायद्वारा शुद्ध माना जाता

अविरुद्ध आगमथी यथोदित अने मैत्री वगेरे भावनाओथी मिश्रित ने
अनुष्ठान छे ते धर्म छे. स्पष्टार्थ—वचन शब्दनेो अर्थ आगम छे. आग-
ममां अविरुद्धता, कष, ताप अने छेद वडे परीक्षित तथा पछी न आवे छे.
नेम सोनानी परीक्षा कष-कसोटी उपर कसवाथी ताप अग्नि उपर तपाववाथी
अने छेद-छीण्णी वगेरेथी कपवाथी छेय छे, तेमन आगमनी शुद्धिनी परीक्षा
पणु आ त्रणे उपायो वडे करवामां आवे छे. विधि अने प्रतिषेधनुं सोटा
प्रमाणुमां ने शास्त्रमां वर्णन छे, ते शास्त्र कषथी शुद्ध कडेवाय छे. उगले ने
पगले ने शास्त्रणुं अमना योग अने क्षेमकरि क्रियाओनु कथन करवामां
आव्युं छे ते शास्त्र छेदथी शुद्ध मानवामां आवे छे विधि अने प्रतिषेध
तेमन अमना विषयभूत एव वगेरे पदार्थोनेो स्याद्वादना रूपथी न्यां यथार्थ
वर्णन करवामा आवे छे, सप्तभंगी वडे न्यां सुंदर शैलीमां अमनुं विवेचन
करवामां आवे छे, ते शास्त्र तप उपायवडे शुद्ध मानवामा आवे छे आ त्रणे

वचनस्य हि वक्ता निमित्तमन्तरङ्गम्, तस्य च रागद्वेषमोहपारतन्व्यमशुद्धिः, तेभ्यो वितथवचनप्रवृत्तेः, न चैषाऽशुद्धिर्जिने भगवति, जिनत्वविरोधात्, जयति रागद्वेष-मोहरूपान्तरङ्गान् रिपूनिति गन्दार्थानुपपत्तेः तपनदहनादिशब्दवत्, अन्वर्थतया चास्याभ्युपगमात्, निमित्तशुद्धयभावाद् नाजिनप्रणीतवचनमविरुद्धम् । यतः—

है। इन तीनों उपायों से परीक्षित आगम ही परिशुद्ध कहा गया है। अविरुद्ध वचन का नाम ही आगम है।

इन कथादिकों से जो आगम में शुद्धता आती है उसका कारण निमित्त की शुद्धि है। निमित्त शुद्ध जिन प्रणीत वचन ही हैं। अन्य प्रणीत वचन नहीं। निमित्त में भी शुद्धि का कारण राग, द्वेष और मोह का अभाव है। वचन का अन्तरंग कारण वक्ता ही हुआ करता है वक्ता की प्रमाणता से ही वचन-आगम में प्रमाणता आती है इसी-लिये राग द्वेष आदि से कल्पित व्यक्तियों के वचन प्रमाण कोटि में नहीं आते हैं। क्यों कि राग द्वेष आदिक सद्भाव में वचनों में परस्पर विरुद्ध अर्थ की प्ररूपकता रचयं ही आ जाती है अतः यह निश्चित सिद्धान्त है कि जहां पर इनका सर्वथा अभाव है वही सच्चा आगम का प्रणेता हो सकता है। और उसी आगम में अविरुद्धता है। ऐसा अविरुद्ध आगम जिन प्रणीत ही हो सकता है क्यों कि उनमें पूर्वोक्त राग-द्वेष आदि द्वारा अशुद्धि का सर्वथा अभाव हो चुका है इस के सर्वथा दूर होने से ही वे “जिन” हम प्रकार की संज्ञा वाले हुए हैं। “जयति

उपायेषु परीक्षित आगम न परिशुद्ध उडेवाभावात्वेन च अविरुद्ध वचनतुं नाम न आगम च। इयं वगेरेथी आगममां न शुद्धता आवे च तेतुं कारण निमित्तनी शुद्धि च। जिन प्रणीत वचनो न निमित्तशुद्धि च भीतव्यो वडे प्रणीत वचनो नहि निमित्तमां पणु शुद्धितुं कारण राग, द्वेष अने मोहने अभाव च वचनतुं अंतरंग कारण जोलनार न डोय च जोलनारा (वक्ता) नी प्रमाणताशी न वचन-आगममां प्रमाणता आवे च अटला भाटे न राग द्वेष वगेरेथी कल्पित भाषणेना वचनो प्रमाण कोटिमा आवतां नथी डेमडे रागद्वेष वगेरे सद्भाव वचनोमां परस्पर विरुद्ध अर्थनी प्रउपडता लते न आवी लय च। अटला भाटे आ निश्चित सिद्धांत च डे न्यां अमनो संपूर्ण-अभाव च ते न आथा आगमनो प्रवेता थर्श शडे च अने ते आगममां न अविरुद्धता च जेषु अविरुद्ध आगम जिनप्रणीत न थर्श शडे च डेमडे तेमतामां पूर्वोक्त रागद्वेष वगेरे वडे अशुद्धिने। संपूर्णपणे अभाव थर्श शुकथां च अशुद्धि नर्श डने नी नवार्थी तेव्यो ‘जिन’ संज्ञावाणा थया च।

कारणस्वरूपानुविधायि कार्यं, तत्र दुष्टकारणाऽऽरब्धं कार्यमदुष्टं भवितुमर्हति, निम्बबीजादिक्षु यष्टिरिवेति । अन्यथा-कारणव्यवस्थोपरमप्रसङ्गात् ।

यच्च-यदृच्छाप्रणयनप्रवृत्तेषु तीर्थान्तरीयेषु रागादिमत्स्वपि घुणाक्षरोत्किरण रागद्वेषमोहरूपान् अन्तरंगरिपून् इति जिनः ” राग द्वेष आदिक जो अन्तरंग शत्रु हैं इन पर जिसने विजय पायी है वे ही जिन कहलाते हैं जिस प्रकार तपन (सूर्य) दहन (अग्नि) आदि शब्द यथानाम तथा गुण वाले हुआ करते हैं, इसी प्रकार “ जिन ” यह नाम भी यथा नाम तथा गुण वाला है यथा नाम तथा गुण का होना ही नाम की सार्थकता है । जिन्होंने इन अन्तरंग शत्रुओं को परास्त नहीं किया उनके वचनों में परस्पर अविरोद्धार्थता नहीं आसकती है-क्यों कि वहाँ पर निमित्त की शुद्धि नहीं है । इसीलिये अजिन प्रणीत वचन अविरोद्ध नहीं होते हैं । लोक में भी जिस प्रकार नीम के बीज से इक्षु की उत्पत्ति देखने में नहीं आती उसी प्रकार सदोष कारण से उत्पन्न हुआ कार्य भी निर्दोष नहीं होता है । कार्य में निर्दोषता कारण कि निर्दोषता पर आधार रखती है । न्याय शास्त्र का भी यही सिद्धान्त है “ कारण स्वरूपानुविधायि कार्यं ” कि कार्य, कारण के स्वरूप का अनुविधायक होता है । यदि इस प्रकार की व्यवस्था न मानी जावे तो फिर कार्य कारण भाव की व्यवस्था ही नहीं बन सकती है । हर एक पदार्थ

“ जयति रागद्वेषमोहरूपान् अन्तरंगरिपून् इति जिनः ” रागद्वेष वगेरे जे अन्तरंग शत्रुओ छे तेमना उपर जेभणु विजय भेणुओ छे तेओ जे जिन कडेवाय छे, जेभ तपन (सूर्य) दहन (अग्नि) वगेरे शब्दो नाम जेवा जे गुणवाणा डाय छे, ते प्रमाणु जे “ जिन ” आ नाम पणु नाम प्रमाणु जे गुणवाणुं छे जेवुं नाम तेवा गुणो डोवा जे जे नामनी सार्थकता छे, जेभणु आ अन्तरंग शत्रुओने डराओया नथी तेमना वचनोभां परस्पर अविरोद्धार्थता आवी शकती नथी केम के त्यां निमित्तनी शुद्धि नथी अटला भाटे अजिन प्रणीत वचनो अविरोद्ध डोता नथी, लोकभां पणु जेभ दीमडाना जीजथी शेरडीनी उत्पत्ति जेवाभां आवती नथी तेमज सदोष कारणुथी उत्पन्न थयेलु कार्य पणु निर्दोष डोतुं नथी, कार्यभां निर्दोषता कारणुनी निर्दोषता उपर आधारित डाय छे, न्यायशास्त्रनो पणु जेज सिद्धान्त छे, “ कारणस्वरूपानुविधायिकार्यं ” के कार्य कारणुना स्वरूपनो अनुविधाता डाय छे, जे आ जतनी व्यवस्था मानवामां आवे

व्यवहारेण वचनं किञ्चिद्विरुद्धमपि वचनमुपलभ्यते, मार्गानुसारिणो वा प्राणिनि वचनं, तदपि जिनप्रणीतमेव, तन्मूलकत्वात् तस्य ।

हर एक का कार्य और कारण हो जायगा । अतः आगमरूप कार्य की शुद्धि के लिये निमित्त रूप कारण शुद्धि का होना अवश्य आवश्यक माना गया है ।

प्रश्न—आपने जो कहा कि आगम में अविरोधता उसके कारणभूत प्रणेता के अधीन है—सो यह बात हमें मान्य है । परन्तु इससे यह बात तो सिद्ध नहीं होती है कि वे अविरोध वचन जिन भगवान के ही हैं अन्य के नहीं—कारण कि अन्य सिद्धान्तकारों के वचनों में भी किसी अंगसे अविरोधार्थता देखी जाती है । अतः उन्हें लक्ष्य मान कर आप जो उनमें अनासता सिद्ध करते हैं सो यह बात कैसे मान्य हो सकती है ?

उत्तर—जो भी ठीक है—परन्तु विचार करने से इसका उत्तर भी सहज रूप में मिल जाता है । अन्य सिद्धान्तकारों ने जो कुछ रचनाएँ की हैं—वे सब उन्होंने अपनी इच्छानुसार ही की हैं । अपनी निज कल्पना में जो कुछ उन्हें सूझा वही उन्होंने लिखा है । उनकी रचनाओं में पूर्वापर विरोध स्पष्ट प्रतीत होता है इससे उनमें रागादिक दोषों का अस्तित्व सिद्ध होता है । अब रही उनके वचनों में शुणाक्षर

नहि तो शयं शरण्य तावन्ती व्यवस्था ननी शके तेम नथी. दरेक पहार्थ दरे-
कुं शयं अने शरण्य थर्थ नशे. अटला भाटे आगमरूप शयंनी शुद्धि भाटे
निमित्तउप शरण्य शुद्धि थवी योष्ठसपणे आवश्यकीय मानवामा आवी छे.

प्रश्न—तमे कहु के आगममां अविरोधता तेना शरण्यभूत प्रणेताना
अधीन छे—अे बात अेमने मान्य छे. पण अेनाथी आ वात तो सिद्ध थती
नथी के ते अविरोध वचने जिन भगवानना न छे, भीजअेना नहि. डेमके
भीन सिद्धान्तकारेना वचनेमां पण डेअं पण अंशे अविरोधार्थता जेवामां
आवे छे. अटला भाटे तेमने दोपयुक्त मानीने तमे जे तेमनामां अनाप्तता
निट करे छे आ वात डेवी रीते मान्य थथ शके तेम छे ।

उत्तर—जो तो हीक छे, पण विचार करवाथी आने नवाण पण सरण
रीते मणी शके तेम छे भीज सिद्धान्तकारेअे जे रचनाअे करी छे ते जधी
तेमने पानानी इच्छा मुज्जण न करी छे यातानी इच्छनाथी जे कंथ तेमने
योग्य ला गुं ते तेमने लभ्युं छे. तेमनी रचनाअेमां पूर्वापर विरोध स्पष्ट
रीते देखाई आवे छे. अेनाथी तेअेमां राग वजेशे दोषो छे अेवी वात सिद्ध
थाय छे. उवे शुणाक्षर न्यायथी डेअंके डेअंके स्थाने तेमना वचनेमां अविरोध

कीदृशमनुष्ठानं धर्मः? इत्याह—' यथोदितम् ' यथा येन प्रकारेण कालाघा-
राधनानुमाररूपेण—उदितं=प्रतिपादितं, तत्रैवाविरुद्धवचने इति गम्यम् ।

अन्यच्च—

जो जहवायं न कुणइ, गिच्छादिद्वी तओ उ को अब्बो ? ।

ब्रह्मेइ मिच्छत्तं, परस्स संकं जणेमाणो ॥ इति ।

छाया—यो यथावादं न करोति, मिथ्यादृष्टिस्ततस्तु कोऽन्यः ।

वर्धयति मिथ्यात्वं, परस्य शङ्काजनयन् ॥ इति ।

पुनरपि कीदृशमित्याह—' मैत्र्यादिभावसंमिश्रम् ' इति । मैत्र्यादयः=मैत्री
मुदिता करुणा माध्यस्थलक्षणा ये भावाः=अन्तःकरणपरिणामाः, तत्पूर्वकाश्च

न्याय से कही २ अविरुद्ध अर्थ प्रतिपादकता से वह उनकी निज की
घर की वस्तु नहीं है—उसका मूल स्रोत अविरुद्ध अर्थ का प्ररूपक जिन
प्रणीत आगम ही है । यही बात मार्गानुसारी बुद्धिवाले व्यक्ति में भी
समझ लेनी चाहिये । वह जो कुछ भी सत्यार्थ कहता है उसका मूल
कारण जिनप्रणीत आगम का सहारा ही है । श्लोक कथित "यथोदित"
पद इस बात का समर्थन करता है कि देश काल आदि की आराधना
के अनुसार जो आचार-अनुष्ठान प्रतिपादित किया गया है । उससे जो
अविरुद्ध कहा गया है—वही धर्म है इससे विपरीत नहीं । " मैत्र्यादि-
भाव संमिश्रम् " इस पद द्वारा सूत्रकार यह प्रतिपादित करते हैं कि
वह अनुष्ठान मैत्री, मुदिता, करुणा और माध्यस्थ इन चार लक्षणों से
युक्त होता है । ये धर्म के वाच्य चिह्न हैं । इनके सद्भाव से आत्मा में

अर्थ प्रतिपादकता पणु छे ते तेमनी पोतानी वस्तु तो नथी ज केमके तेनां
भूणियां तो अविरुद्ध अर्थना प्ररूपक जिनप्रणीत आगममा ज छे. ये ज वात
मार्गानुसारी बुद्धिवाणी व्यक्तिमां पणु समझ लेवी. लेधये. ते जे क'ध पणु
सत्यार्थ कडे छे तेनुं भूण कारण जिन प्रणीत आगम ज छे. श्लोक कथित
" यथोदित " पद आ वात ने स्पष्ट करे छे के देशकाल वगेरेनी आराधना
मुज्ज जे आचार-अनुष्ठान-प्रतिपादित करवामां आव्यां छे, तेनाथी जे अ-
विरुद्ध कडेवामां आव्यु छे ते धर्म छे. येनाथी विपरीत नहि. " मैत्र्यादि
भावसंमिश्रम् " आ पदवडे सूत्रकार आ वात स्पष्ट करे छे के ते अनुष्ठान-
मैत्री, मुदिता, करुणा अने माध्यस्थ आ चार लक्षणोथी युक्त होय छे. आ
अधा धर्मना वाच्य चिन्हो छे. येमना सद्भावथी आत्मां धर्मनुं अस्तित्व

वाच्यचेष्टाविशेषः, तैः संमिश्रं=संयुक्तं, यैः आदिभावानां निःश्रेयसाभ्युदयधर्ममूलत्वेन शास्त्रान्तरेषु प्रतिपादनात् । तदेवंविधमनुष्ठानं धर्म इति कीर्त्यते शक्यते सुधीभिरिति ।

नन्वेवं वचनाऽनुष्ठान धर्म इति प्राप्तं, तथा च प्रीतिभक्त्यसंगानुष्ठानेष्वव्याप्तिरिति चेन्न—इह तु वचनादित्यत्र वेदात् प्रवृत्तिरित्यत्रैव प्रयोज्यत्वार्थिका

धर्म का अस्तित्व जाना जाता है अन्य भिद्धान्तकारों ने भी इन्हें निःश्रेयस और स्वर्ग के कारणभूत धर्म का मूल कहा है । अतः जो आगम से अविरोध है, काल आदि की आराधना के अनुसार जो आराधित होता है और जो मैत्री आदि चार भावनाओं से गर्भित है ऐसा अनुष्ठान ही धर्म है । ऐसे ही धर्म की आराधना करने का गण-धर आदि का आदेश है ।

भावार्थ—तीर्थंकर कथित आगम के अनुसार होने वाले अनुष्ठान का नाम धर्म है । इसका फलितार्थ यही है कि जिस अनुष्ठान में तीर्थंकर प्रभु द्वारा कथित आगम से विरोध नहीं आता है वही धर्म है । तथा च—प्रीति भक्ति और असंग रूप अनुष्ठानों में इस लक्षण की अप्राप्ति नहीं होती है क्यों कि वहां पर भी इस लक्षण का सद्भाव पाया जाता है “ वाचनानुष्ठानं धर्मः ” इस प्रकार के कथन में “ वेदात् प्रवृत्तिः ” की तरह प्रयोज्य अर्थ में पंचमी विभक्ति हुई है अतः जिस प्रवृत्ति का प्रयोज्य वचन है वह धर्म है । (वचनानुष्ठानं धर्मः) यहां से लेकर (प्रीति भक्ति असंगानुष्ठान इत्यादि तक) लिखने की आवश्यकता

जायगा। आवे छे जीज सिद्धातशरेण्ये पणु आ भवाने निःश्रेयस अने स्वर्गना शरणभूत धर्मनु मूण गताव्यु छे ऐथी ले आगमथी अनिरुद्ध छे शाण वगेरेनी आगधना मुज्जण ले आराधित होय छे अने ले मैत्री वगेरे चर भावनाओधी युक्त छे ऐपुं अनुष्ठान न धर्म छे ऐवा न धर्मनी आगधना इवा माटे गणधर वगेरेनो आदेश छे

भावार्थ — तीर्थंकर कथित आगममुज्जण आशयसेवा अनुष्ठानतुं नाम धर्मछे अने अर्थ आ प्रमाणे इतित थयो छे हे ले अनुष्ठानमा तीर्थंकर प्रभु परे कथित आगमथी विरोध नष्पातो नथी ते न धर्म छे तेमन प्रीति, भक्ति अने असंग रूप अनुष्ठानोमां आ लक्षणनी अप्राप्ति पणु होती नथी हेमडे त्या पाणु आ लक्षणो न्दभाव भजे छे “ वाचनानुष्ठानं धर्मः ” आ वचनना कथनमा “ वेदान् प्रवृत्तिः ” नी लेम प्रयोज्य अर्थमा पंचमी विभक्ति थछे छे ऐपुंसा माटे ले प्रवृत्तितुं प्रयोज्य वचन छे ते धर्म छे (वचना अनुष्ठानं धर्मः) अर्धीधी भांशने प्रीति भक्ति असंगानुष्ठान वगेरे सुधी लभवानी

पञ्चमी, तथा च-वचनप्रयोज्यप्रवृत्तिकत्वं लक्षणमिति न कुत्राप्यव्याप्तिदोषावकाशः
प्रीतिभक्त्यसङ्गालुष्ठानानामपि वचनप्रयोज्यत्वाऽनपायादिति ।

किं च--हिंसादिपापपरिहारो धर्मसिद्धेर्लिङ्गमित्यार्हताः स्वीकुर्वन्ति ।
तथा चोक्तम्-

औदार्यं दाक्षिण्यं पापजुगुप्साऽथ निर्मलो बोधः ।

लिङ्गानि धर्मसिद्धेः, प्रायेण जनप्रियत्वं च ॥ इति ।

पापजुगुप्सा=पापपरिहारः ।

षट्कायवधसाध्यं प्रतिमापूजनं कुर्वतां धर्मसिद्धिः कथं स्यादिति विचारयन्तु
सुधियः । अपरं च—

प्रतीत नहीं होता है क्यों कि वचनानुष्ठान धर्म का अर्थ वचन के
अनुसार होने वाला अनुष्ठान धर्म है इसमें कोई जानका दोष
नहीं आता है । ”

किंच—हिंसादिक पांच पापों का परित्याग धर्म सिद्धि का चिह्न
है इस प्रकार की मान्यता जैनियों की है । शास्त्रान्तर में यही बात
प्रकट की गई है—

औदार्यं दाक्षिण्यं पापजुगुप्साऽथ निर्मलो बोधः ।

लिङ्गानि धर्मसिद्धेः प्रायेण जनप्रियत्वं च ॥ (षोडश-ग्रंथ ४ प्रकरण)

उदारता—हृदय की विषालता, दाक्षिण्य—सर्व जीवों के अलुहूल
प्रवृत्ति, पापजुगुप्सा—पाप का परित्याग, निर्मलबोध—तत्त्वज्ञान, और
जन प्रियत्व ये ५ धर्मसिद्धि के लक्षण हैं । अब यहाँ पर विचारने की
बात यह है कि जब पाप का परिहार करना यह धर्मसिद्धि का लक्षण

आवश्यकता लक्ष्मी नहीं उभडे वचनानुष्ठान धर्मने अर्थ वचन मुल्ल धनार
अनुष्ठान धर्म छे. आभां डेधं पणु नतने दोष नथी

किंच—हिंसा वगेरे पांच पापेने परित्याग धर्मसिद्धितुं चिह्न छे. आ
नतनी मान्यता जैनीओनी छे. शास्त्रान्तरभां पणु ओ न वात स्पष्ट
करवाभां आपी छे:—

औदार्यं दाक्षिण्यं पापजुगुप्साऽथ निर्मलो बोधः ।

लिङ्गानि धर्मसिद्धेः प्रायेण जनप्रियत्वं च ॥ (षोडशग्रंथ ४ प्रकरण)

उदारता—हृदयनी विशालता, दाक्षिण्य—अधा लुवेने अनुकूल यधं पडे
तेवी प्रवृत्ति, पाप लुगुप्सा—पापने त्याग, निर्मल बोध—तत्त्वज्ञान, अने
जनप्रियत्व आ प्राये धर्मसिद्धिना लक्षणो छे, डये आपणी सामे आ वात
विचार करवायेज्य छे डे न्यारे पापने परिहार करवे ओ धर्मसिद्धितुं लक्षण

पकेन्द्रियाद्वियङ्गीवनिक्कायजीवानां रक्षणं धर्मद्वय मूलमिति वदतामर्हतां
पट्टकायविराधनासाध्यायाः प्रतिमापूजायाः अङ्गीकारे जैनत्वमेव नश्यति, जैन
धर्मस्य मूलतन्त्रं ममुच्छेदान् ।

तथा चोक्तम्—जीवद्वयसञ्चयणं, परधनपरिवृज्जणं मुसीलं च ।

श्वती पंचिद्वयति—ग्गहो य धम्मस्य मूलाइं ॥ दर्शनशुद्धि—२ तत्त्व)

हैं तो प्रति मा का पूजन करने वाले के इसका परिहार कैसे हो सकता
है । क्यों कि यह पहिले ही प्रकट किया जा चुका है कि यह प्रतिमा-
पूजन कार्य पट्ट काय के आरंभ के बिना साध्य हो ही नहीं सकता ।
अतः प्रतिमापूजन वाले को धर्मसिद्धि का लाभ धानना यह एक मन्त्र
होगा कल्पना ही है—शास्त्रीय कल्पना नहीं । शास्त्र में तो यही जिनेन्द्र
देव की आज्ञा है कि पकेन्द्रिय आदि पट्ट निक्काय के जीवों की रक्षा
करना ही प्रत्येक जैन साधु का कर्तव्य है, और यही धर्म का मूल है
जब इस प्रकार की वीतराग प्रभु की आज्ञा है—तो फिर यह तो लोको
की पट्टनिक्काय ही विराधना से साध्य इस प्रतिमापूजन की मान्यता में
जैनत्व का रक्षण ही कैसे हो सकता है—। प्रत्युत जैनधर्म का इस प्रकार
की मान्यता से समुत्तः नाश ही हो जाता है ।

जीवद्वयसञ्चयणं परधनपरिवृज्जणं मुसीलं च ।

श्वती पंचिद्वयति निग्गहोय धम्मस्य मूलाइं ॥ (दर्शन शु २ तत्त्व)

छे त्पारे प्रतिमानी पूज्य इरनाराओ भाटे आनेो परिहार डेवी रीते थर्ध शके
तेम छे डेगडे आ वात पडेला व प्रगट इरवासा आवी छे डे आ प्रतिमा
पूजन कार्य पट्टाथना आरंभ वगर साध्य थर्ध शके तेम नथी ओथी प्रतिमा
पूजनवाणा भाटे धर्मसिद्धिनेो बाल समथ देवेो आ ओक जोटी इडपना
भाव छे, शास्त्रीय इडपना नथी शास्त्रभां तो जिनेन्द्रदेवनी ओ व आज्ञा छेडे
पकेन्द्रिय वगेरे पट्टाथना लुवेनी रक्षा इरवी व हरेके हरेक जैनतुं उर्तव्य
छे आने ओ व धर्मतु भूण रे, त्पारे आ जतनी वीतराग प्रभुनी आज्ञा छे
त्पारे आ वात उपर तो विचार इरीओ डे पट्टाथ निक्कायनी विराधनाथी साध्य
आ प्रतिमा पूजननी मान्यताभा जैनत्वतु रक्षथ व डेवी रीते थर्ध शके छे,
आ जतनी मान्यतागी तो जैन धर्मनेो भूणइपे विनाश व थर्ध जय छे,

जीवद्वयसञ्चयणं परधनपरिवृज्जणं मुसीलं च ।

श्वती पंचिद्वयति निग्गहोय धम्मस्य मूलाइं ॥ (दर्शन शु० २ तत्त्व)

जीवाश्चेतनादिलिङ्गव्यङ्ग्या एकेन्द्रियादयः तेषां दया=रक्षणं जीवदयेति ।
ह्रस्वत्वं प्राकृतप्रभवम् । धर्ममूलं भवतीति सर्वत्र क्रियाऽध्याहारः कार्यः ।

प्रतिमापूजनं विशुद्धपरिणामजनकत्वादुपादेयमितिकथनं निर्मूलम्--

धर्माङ्गेषु दयायाः प्राधान्यात् प्राथम्यं वर्तते । हिंसासाध्यायां प्रतिमापूजायां
दयाया अभावाद् धर्माङ्गत्वं न सिध्यति । तथा च विशुद्धात्मपरिणामरूपं धर्मं
प्रति कारणत्वं प्रतिमापूजनस्य न संभवति । अन्यच्च --

इस लोक में यही बात कही गई है । जीवों की दया करना सत्य
बोलना, पर धन के हरण करने का त्याग करना, कुशील का त्यागना,
क्षमाभाव रचना, पांचों इंद्रियों को वश में रखना ये सब धर्म के मूल
हैं । जिस प्रकार बिना मूल-जड़ के वृक्ष की स्थिति आदि नहीं हो
सकती है-उसी प्रकार उनके बिना भी धर्मरूपी महावृक्ष की जीवात्मा-
ओं में स्थिरता नहीं हो सकती है जो व्यक्ति "प्रतिमा के पूजने से
विशुद्ध परिणामों की आत्मा में जागृति होती है" इस बात का सम-
र्थन करते हुए उपयोगिता सिद्ध करते हैं उनका यह कथन बिलकुल ही
निर्मूल है क्यों कि धर्म में सर्वप्रथम स्थान दया को ही दिया गया है
जीवों की हिंसा से साध्य इस प्रतिमापूजन में उस दया का संरक्षण
ही नहीं होता है-इसलिये इसे धर्म का अंग कैसे माना जा सकता है
जो धर्म का ही अंग नहीं बनता है उससे कैसे परिणामों में विशुद्धता
की जागृति हो सकती है अतः यह प्रतिमापूजन धर्म प्राप्ति में कारण
नहीं है ऐसा मानना चाहिये ।

आ श्लोकमां ओ न वात यताववामां आवी छे के एव उपर द्या
करवी, सत्य मोक्षुं, पारधाना धनने लघं देवानी वृत्तिने हर करवी, कुशीलने
त्याग करवो, क्षमालाव राषवो, पांच धन्द्रियोने वशमां राषवी आ यधां
धर्मां मूण छे नेम मूण-जड वगर्नां वृक्षनी स्थिति वगेरे न थर् शडे
तेम नथी तेमन ओमना वगर पणु धर्मां मूण महावृक्षनी एवात्माओमां स्थिरता
थर् शडे तेम नथी. ने व्यक्ति "प्रतिमाना पूजनथी विशुद्ध परिणामोनी
आत्मां जागृति थाय छे." आ वातने योग्य मानीने आनी उपयोगिता
सिद्ध करे छे, तेमनुं आ कथन साव निर्मूल-व्यर्थ छे. केमके धर्मां सौ
प्रथम स्थान द्यानेन आपवामां आवे छे. एवोनी हिंसाथी साध्य आ प्रतिमा
पूजनमां ते द्यानी रक्षा न थती नथी, ओटला माटे आने धर्मां अंग केवी
रीते मानी शकिये. अने ने धर्मां न अंग थर् शकतुं नथी तेनाथी केवी रीते
परिणामोमां विशुद्धतानी जागृति थर् शके. ओटला माटे आ प्रतिमापूजन
धर्मप्राप्तिमा कारण नथी आम मानी लेवु नेधं ओ.

धर्मालम्बनानि स्थानाङ्गसूत्रे भगवता प्रज्ञप्तानि--

“ धम्मं णं चरमाणस्स पंच निस्साठाणा पणत्ता ।

तं जहा-उक्काया, गणो, राया, गिहवई, सरीरं ” ॥ इति ।

भगवता धर्मालम्बनानि पञ्चैव कथितानि । तत्र “ उक्काया ” इत्युक्त्या गणराजादीनामपि मंग्रहे रत्यपि पुनरतेषां विशिष्योपन्यासः प्राधान्यख्योपनार्थः

अन्यच्च-“ धम्मं चरमाणस्स पंच निस्साठाणा पणत्ता-तंजहा-उक्काया, गणो, राया, गिहवई, सरीरं ” इति-भगवान् ने धर्म के छहकाय, गण, राजा, गाथापति और शरीर इस प्रकार ये छह आलम्बन स्थान स्थानाङ्गसूत्र में कहे हैं । इनमें जिन प्रतिमा का कथन नहीं किया है-इससे यह भलीभांति विदित हो जाता है कि जिन प्रतिमा और उसका पूजन धर्म का अवलम्बन रूप नहीं है यदि जिन प्रतिमा का पूजन कार्य धर्म का अवलम्बनरूप सिद्धान्तकारों की दृष्टि में मान्य होता तो वे अवश्य इन स्थानों के कथन करते-जिस प्रकार छहकाय, गण, राजा इत्यादि का कथन किया है । यद्यपि “ छहकाय ” इस एक पद से ही गण, राजा आदि का स्वतः कथन सिद्ध हो जाता है, क्योंकि इन सब का समावेश उन्ही एक पद में हो जाता है । फिर भी इनका भिन्न २ रूप से जो नाम निर्दिष्ट किया है उसका कारण ये धर्म के प्रधान आलम्बन रूप हैं हम बात को प्रकट करने के लिये ही किया गया है । इसी प्रकार

अने णीनुं पणुं उद्युं छे के “धम्मं चरमाणस्स पंच निस्साठाणा पणत्ता-तं जहा उक्काया, गणो, राया, गिहवई, सरीरं ” इति, लगवाने धर्मानां छे उद्य, गण, राज, गाथापति अने शरीर आ रीते छे आलम्बनस्थान स्थानांग सूत्रमां उक्काया छे आ णधामां जिन प्रतिमानुं उद्यन उरवामां आव्यु नथी. अनाथी आ स्पष्ट रीते जणाय छे के जिनप्रतिमा अने तेनुं पूजन धर्मानुं अवलम्बन नथी. जे सिद्धान्तकारेनी दृष्टिमा जिन प्रतिमाना पूजननुं उद्य धर्माना अवलम्बन रूपमां मान्य होत तो तेओ ओक्कस आ स्थानाना उद्यननी साथे साथे तेमनुं पणुं उद्यन जेम छे उद्य, गण, राज वगेरेनुं उद्यन उद्युं छे तेम उद्युं होत जे के “ उक्काया ” आ ओक्क पदथी जे गण, राज वगेरेनुं स्वतः उद्यन सिद्ध उद्य नथे छे, केमके आ णधाने समावेश ते ओक्क पदमां जे उद्य नथे छे, उद्यन आ णधाने स्वतंत्र रूपमां जे नाम निर्देश करवामां आव्यो छे तेनुं मान्य आ छे के ते उद्य धर्माना प्रधान आलम्बनरूप छे, आ बातने प्रथम उद्यन उद्य उद्यनमां आव्यो छे. आ प्रभाणे जे जिनप्रतिमा पणुं

दर्शनवन्दनपूजनादिना जिनप्रतिमायाः सम्यक्त्वशुद्धिहेतुत्वाऽष्टकर्मक्षयहेतुत्व स्वीकारे तु अस्या अपि निश्रास्थानत्वेन निश्रास्थानेषु विशिष्य तदुपन्यासमकृत्वा “पंच निस्साठाणा पणत्ता” इति कथनं विरुध्यते । तस्मात् जिनप्रतिमाया निश्रास्थानेष्वनभिधानात् प्रतिमायां धर्मालम्बनत्वं न सिध्यति । एवं च तत्पूजनं कुशलात्मपरिणामविशेषस्य धर्मस्य कारणं नास्तीति विश्वसनीयम् ।

प्रतिमापूजायामारम्भः परिग्रहश्चावश्यं भावी । ताभ्यां विना पूजाया अस-
भवात् तथाऽपि-प्रतिमापूजोपदेशकाः एवं वदन्ति--

यदि जिन प्रतिमा भी दर्शनवन्दना और पूजादिक द्वारा सम्यक्त्वशुद्धि एवं अष्टकर्मों के क्षय का कारण होती तो उसका भी धर्म का आलम्बनरूप होने से यहां पर विशेषरूप से शास्त्रकार को कथन करना चाहिये था ! परन्तु ऐसा तो सूत्रकार ने किया नहीं है । फिर भी यदि उसे धर्म का अवलम्बनरूप स्वीकार किया जाय तो इस सूत्र में प्रतिपादित ‘ पांच ही निश्रास्थान हैं ’ इस कथन से विरोध आता है कारण कि उन स्थानों से अतिरिक्त एक और जिनप्रतिमापूजन धर्म का आलम्बन रूप स्थान बढ जाता है अतः ‘ पंच निस्साठाणा पणत्ता ’ इस सूत्र प्रदर्शित उपन्यास से यह बात पुष्ट होती है कि जिन प्रतिमा धर्म का आलम्बन स्थान नहीं है । यह तो उस के पक्षपातियों के ही दिमाग की एक उटपटांग सूझ है यह जानते हुए भी कि जिनप्रतिमापूजन में आरंभ और परिग्रह अवश्यंभावी है, इनके विना वह कथमपि साध्य हो नहीं सकती है, तो भी जिनपूजाके उपदेशक खेद है कि जनता को

दर्शन वन्दना अने पूजा वगैरे वडे सम्यक्त्व शुद्धि अने अष्ट कर्मोना क्षयनुं कारणु होत तो धर्मना आलंभनरूप होवा भदल अडी' विशेषरूपमां शास्त्र-
कारो वडे तेनुं कथन करवुं लेछये पणु सूत्रकारे आवुं क'ध कथुं' नथी.
छतांय ले तेने धर्मना अवलंभनरूपे स्वीकारिये तो आ सूत्रमां प्रतिपादित
“ पांच न निश्रास्थानो छे “ आ कथनथी विरोध जिलो थाय छे केमके ते
स्थानोथी अतिरिक्त अेक भील जिनप्रतिमा पूजन धर्मना आलंभनरूप
स्थाननी वृद्धि थछ जय छे अेथी “ पंच निस्साठाणा पणत्ता ” आ सूत्र
प्रदर्शित उपन्यासथी आ वात पुष्ट थाय छे के जिनप्रतिमा धर्मनुं आलंभन
स्थान नथी आ तो इक्त तेना तरक्षदारीअोना भस्तिष्कनी न व्यर्थनी कल्पना
छे. जिनप्रतिमा पूजनमां आरंभ अने परिग्रह अवश्यंभावी छे. अेना वगर
ते 'कोछ पणु सलेगे साध्य थछ शके तेम नथी आवु जलुवा छतां भडुं
हुःभ साथे कडेवु पडे छे के जिन पूजना उपदेशके समानने “ पूयाए काच

अपि च—“ पूयाए कायवहो, पडिकुट्टो सो उ किं तु जिणपूया ।

सम्मत्तसुद्धिहेउ, त्ति भावणीया उ गिरवज्जा ” ॥१॥

छाया—पूजायां कायवधः प्रतिकुष्ठः सतु किन्तु जिनपूजा ।

सम्यक्त्वबुद्धिहेतु—रिति भावनीया तु निरवद्या ॥१॥

सर्वमेतदुत्सृष्टप्ररूपणम्—श्रूयतां प्रवचनं तावत्—

दो दृणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवल्लिपणत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए ।
तं जहा—आरंभे चैव परिग्गहे चैव । दोदृणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवलं
बोधिं बुज्झिज्जा । तं जहा—आरंभे चैव परिग्गहे चैव ॥ (स्था. २ ठा. १उ.) इति

“ पूयाए कायवहो पडिकुट्टो सो उ किं तु जिणपूया । सम्मत्तसुद्धिहेउं,
त्ति भावणीया उ गिरवज्जा ॥ १ ॥ इस प्रकार की उत्सृष्ट प्ररूपणा द्वारा
भ्रम में ही डालते रहते हैं। हमें तो बुद्धि पर तरस आता है कि ये क्यों
नहीं इस सिद्धान्त को समझने की चेष्टा करते हैं कि—“ दोदृणाइं अप-
रियाणित्ता आया णो केवल्लिपणत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए । तं जहा-
आरंभे चैव परिग्गहे चैव । दोदृणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवल-
बोधिं बुज्झिज्जा तं जहा—आरंभे चैव परिग्गहे चैव (स्था. २ ठा. १ उ.)
ये दो धनधान्य आदि रूप परिग्रह और प्राणातिपात आदि रूप आरंभ
स्थान अनर्थ के कारण है । जब तक आत्मा ज परिज्ञा से इन्हें जान कर
और प्रत्याख्यान परिज्ञा से इनका परित्याग नहीं कर देती है तब वह
ब्रह्मदत्त की तरह केवलि द्वारा कथित धर्म के सुननेका अधिकारी नहीं
हो सकती है और न इन दोनों के त्याग किये बिना चक्र सम्यक्त्व को

वहो पडिकुट्टो सोउ किं तु जिणपूया । सम्मत्तसुद्धिहेउं, त्ति भावणीया उ गिर-
वज्जा ॥ १ ॥ आ जतनी उत्सृष्ट प्ररूपणा वडे भ्रमभां न नाणी राणे छे.
अभने तो तेभनी बुद्धि उपर दया आवे छे के तेओ। आ सिद्धांतने सम-
जवदानी डेशिश केम नडिं करुना डाय ? केमके “ दो दृणाइं अपरियाणित्ता
आयाणो केवल्लिपणत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए । तं जहा—आरंभे चैव परिग्गहे
चैव । दो दृणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवल्लिबोधिं बुज्झिज्जा तं जहा-
आरंभे चैव परिग्गहे चैव (स्था० २ ठा० १ उ०) आ ये धन धान्य वगेरे
रूप परिग्रह अने प्राणातिपात वगेरे रूप आरंभ स्थान अनर्थना कारण छे.
त्यां सुधी आत्मा न परिज्ञा वडे अभने जणीने अने प्रत्याख्यान परिज्ञावडे
अभने परित्याग करुनी नधी त्या सुधी ते ब्रह्मदत्तनी केम केवलिवडे कथित
धर्मने सांगववा भाटे अधिकारी (योग्य पात्र) गणाइं शके तेम नधी. अने
ते जनेना त्यां सुधी त्याग करे नडिं त्यां सुधी ते सम्यक्त्व भेगववा योग्य

‘दो द्वाणां’ द्वे स्थाने=द्वे वस्तुनी ‘अपरिघाणित्ता’ अपरिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ‘एतावारम्भपरिग्रहावनर्थाय’ इत्यत्रिज्ञाय अलं समाभ्यामिति परिहाराभिमुख्य-द्वारेण प्रत्याख्यानपरिज्ञया अप्रत्याख्याय च ब्रह्मदत्तवत् तयोः प्रवृत्तः, ‘आया’ आत्मा=जीवः, नो केवलत्रिज्ञप्तं=जिनोक्तं धर्मं लभेत श्रवणतया-श्रवणभावेन श्रोतुमित्यर्थः । जैनधर्मश्रवणानर्हो भवतीति भावः । तद् यथा आरम्भः-प्राणा-तिपातादिरूपः, पापस्थानम् परिग्रहः-धनधान्यादिसंग्रहः ।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय - ज्ञपरिज्ञयाऽनर्थकारणमज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया अप्रत्याख्याय च तत्र प्रवृत्तः ‘आया’ आत्मा-जीवः केवलं बोधिं=अर्थात् सम्यक्त्वं न बुध्येत=न प्राप्नुयादित्यर्थः ।

पाने के भी योग्य बन सकती है ” यह सूत्र हमें यह शिक्षा देता है कि अला जिस परिग्रह और आरंभयुक्त आत्मामें केवल प्रज्ञप्त धर्म सुनने तक की भी योग्यता नहीं है और न जिसमें सम्यक्त्व का अनुभव है, है उस आत्मा में “ वह प्रतिमा सम्यक्त्व की शुद्धि का कारण होता ” इस प्रकार की मान्यता आकाश के फूल के समान एक कल्पना मात्र ही है । अतः यह सिद्धान्त निश्चित होता है कि इस प्रतिमापूजन में न तो धर्म के कोई मौलिकतत्त्व का समावेश है और न धर्म का कोई अंग ही है । यह न तो धर्म का आलम्बनरूप है और न धर्म के लक्षण से ही युक्त है । फिर भी इसे धर्म पद का वाच्य मानना केवल स्पष्ट रूप से उत्सूत्र प्ररूपणामात्र है इस प्रकार शास्त्रीयमर्यादा के विरुद्ध इस प्रतिमा पूजन का उपदेश देने वाले तथा प्रतिमापूजन कराने वाले उप-

पनी शक्य तेम नथी. “ आ सूत्र अमने आ नतनी ललामणु करे छे के जे परिग्रह अने आरंभयुक्त आत्मां केवलि प्रज्ञप्त धर्म सांलणवा सुधीनी पणु योग्यता नथी अने जेमां सम्यक्त्वनी अनुभूति पणु नथी ते आत्मां “ ते प्रतिमा सम्यक्त्वनी शुद्धिनुं कारणु होय छे, ” आ नतनी मान्यता आकाशना पुष्पनी जेभ अेक जेटी कल्पना मात्र नथी तो भीणुं शुं छे ? अेटला माटे अे सिद्धान्त निश्चित थाय छे के आः प्रतिमापूजनमां धर्मना न केरि मौलिक तत्त्वानो समावेश छे अने न तो ते धर्मनुं केरि पणु अेक अंग छे. आ धर्मनुं आलंनरूप नथी अने धर्मना लक्षणथी युक्त पणु नथी. छतां य तेने धर्मपदवाच्य मानवुं ते स्पष्ट रीते उत्सूत्र प्ररूपणु मात्र छे. आ रीते शास्त्री मर्यादाथी विपरीत आ प्रतिमा पूजननो उपदेश आपनाराओ तेमन प्रतिमा

यत्र केवलप्रज्ञधर्मस्य श्रवणायापि योग्यता न भवति, सम्यक्त्वस्य च नानुभवः, तत्र सम्यक्त्वशुद्धिहेतुत्वं भगवन्कुसुमवन्मनोविकल्पमात्रम् । यस्य प्रतिमापूजनस्य नास्ति धर्ममूलत्वं न चास्ति धर्माङ्गत्वं, नापि धर्मालम्बनत्वं, न चापि धर्मलक्षणसमन्वितं, तस्य धर्मपदवाच्यत्वकल्पने — सुस्पष्टमेवोत्सूत्रप्ररूपणम् । भगवताऽर्हता-प्रवचने अनुपदिष्टस्य प्रतिमापूजनस्योपदेशकरणेन भ्रान्तिजनयतां प्रतिमापूजनकारयतां च कावतिः स्यादिति समालोचनीयं सुधीभिः । अपरं च—

दोहिं ठाणेहिं आया केवलपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए तं जहा खण्ण चेव उवसमेण चेव एवं जाव मणपज्जवनाणं उप्पाडेज्जा तं जहा—खण्ण चेव उवसमेण चेव । (स्था० २ ठा० ४ उ०)

“खण्ण चेव” इति ज्ञानावरणीयस्य दर्शनमोहनीयस्य च कर्मण उदयप्राप्तस्य क्षयेण, अनुदितस्य चोपगमेन=क्षयोपगमेनेत्यर्थः । अत्र पदद्वयेन क्षयोपशमत्पोऽर्थो गृह्यते । यावत् करणात्—“केवलं दोहिं कुञ्जेज्जा ।”

केवलप्रज्ञधर्मस्य श्रवणं तथा सम्यक्त्वं च ज्ञानावरणीयस्य दर्शनमोहनीयस्य च कर्मणः क्षयोपशमादेव लभ्यते इति भगवता प्रतिबोधितम् । इदमत्रबोधयन् नहि रुधिरलिप्तवस्त्रस्य रुधिरेण प्रक्षालने शुद्धिर्भवति प्रत्युत मलिनतरत्वमेव,

देगक तथा प्रेरक की वास्तविक वस्तुस्थिति से जनता को अंधकार में रखने के कारण क्या गति होगी यह स्वयं बुद्धिमानों को विचारने जैसी बात है ।

अपरं च—दोहिं ठाणेहिं आयाके वलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए-तं जहा इत्यादि सूत्र—

इसका भावार्थ यह है—जीव केवलियों द्वारा प्रज्ञस धर्म का श्रवण तथा सम्यक्त्व का लाभ ज्ञानावरणीय और दर्शनमोहनीय कर्म के क्षय और क्षयोपशम से ही करता है प्रतिमापूजन से नहीं । जिस प्रकार रुधिर से मैले वस्त्र की सफाई रुधिर में ही धोने से नहीं होती, उसी

पूजन श्रवणात् उपदेशके प्रेरकत्वे यद्यने यथार्थ वस्तुस्थितिसे समाजने अध्यात्म गमे छे ते भदस तेमनी शी दशा थशे ते विद्याने अभल शके छे.

अने जीवुं यापु छे—दोहिं ठाणेहिं आया केवलपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए-तं जहा—इत्यादि सूत्र—

आने भावार्थ आ प्रभाछे छे छे छे । दिव्यो वडे प्रज्ञस धर्मनुं श्रवणु तेमज्ज सम्यक्त्वना लाभ उव ज्ञानावरणीय अने दर्शन मोहनीय धर्मना क्षय अने क्षयोपशमनी छे छे । प्रतिमापूजनथी नहि लेम दोहीथी परउअला वरानी आइसुथी दोही वडे भावाथी यती नथी तेमज्ज सम्यक्त्वनी शुद्धि अधवा ते इनेने विनाश प्रतिमापूजनथी यतो नथी भदके लेम ते दोहीथी

तथा—सम्यक्त्वशुद्ध्यर्थं कर्मक्षयार्थं च प्रतिमापूजने प्रवृत्तस्य जीवस्य पट्टकायो-
पमर्दनसाध्यपूजया ज्ञानावरणीयस्य दर्शनमोहनीयस्य च कर्मणो वृद्धौ सन्यां सम्य-
क्त्वस्य केवलिप्रज्ञप्तधर्मस्याऽपि प्राप्तिः कालत्रयेऽपि न संभवति किं पुनः कर्मक्षयाशा

सम्यक्त्वमात्मनः क्षयोपशमिको भावः । प्रतिमा तु न क्षयोपशमस्वरूपा, न
चापि क्षयोपशमहेतुः, ज्ञानावरणीयदर्शनमोहनीयकर्मनिर्जराजनकत्वाभावात्,
देशतः कर्मक्षयो हि निर्जरा तां प्रति तपस एव कारणत्वात् । उक्तं चोत्तराध्ययनमूत्रे—

प्रकार सम्यक्त्व की शुद्धि अथवा कर्मों का विनाश प्रतिमापूजनसे नहीं
होता है, प्रत्युत जिस प्रकार वह रुधिरयुक्त बस्त्ररुधिर से साफ किये
जाने पर अधिक मलिन हो जाता है उसी प्रकार पट्टकाय की विराधना
साध्य इस प्रतिमापूजन में लवलीन जीव श्री ज्ञानावरणीय और दर्शन
मोहनीय कर्म की वृद्धि करता हुआ अधिकाधिक मलिन होता रहता है
वह कभी भी इनकी वृद्धिसे सम्यक्त्व और केवलि प्रज्ञप्त धर्म का पाने
वाला नहीं बन सकता है । इसलिये कर्मों के क्षय करने की आशा से
प्रतिमापूजन में लवलीन ननुष्य अपने कर्मों का इस कार्यसे क्षय करता
है यह एक दुराशासात्र है अरे ! जब इस कार्य से जीव सम्यक्त्व और
केवलिप्रज्ञप्त धर्म तक के भी लाभ से सदा वंचित रहता है तो उससे
फिर कर्म क्षय मानना यह कोरी कल्पना सात्र ही है । सम्यक्त्व यह
जीव का क्षयोपशमिक भाव है । प्रतिमा न क्षयोपशम स्वरूप है और
न उस क्षयोपशम में कारण रूप ही है । कारण कि इस से ज्ञानावर-
णीय और दर्शनमोहनीय कर्म की निर्जरा नहीं होती है । कर्मों का

भरडायेतु वस्त्र ढोडीवडे साइ उरवाथी मदिन थर्ध नय छे तेमज पट्टकायनी
विराधना साध्य आ प्रतिमापूजनमां तद्वलीन थयेदो एव पणु ज्ञानावरणीय
दर्शन मोहनीय कर्मनी वृद्धि करतो करतोवधारे वधारे मदिन थतो नय छे ते
कोई पणु समये येमनी वृद्धिमां सम्यक्त्व अने केवलिप्रज्ञप्त धर्मने मेणवी
शकनार थर्ध शकतो नथी. ऐटज्ञा भाटे कर्मोने क्षय करवानी आशाथी प्रतिमा
पूजनमां तद्वलीन माणुस पोताना कर्मोने आ कार्य (प्रतिमापूजन) थी क्षय
करवा मांगे छे ते इकत दुराशा मात्र छे. न्यारे आ कार्यथी एव सम्यक्त्व
अने केवलिप्रज्ञप्त धर्मना लाभथी पणु सदा हर रहे छे त्यारे तेनाथी कर्म
क्षयनी आशा राखवी ते जोटी दल्पना मात्र न छे. सम्यक्त्व एवने क्षयो-
पशमिक भाव छे. हवे न तो प्रतिमा क्षयोपशम स्वरूप छे अने न ते क्षयो-
पशममां शरणु इपे छे. केमके येनाथी ज्ञानावरणीय अने दर्शनमोहनीय

“મવકોડીસંચિયં કમ્મં તવસા નિજ્જરિજ્જહ” (અ ૩૦, ગા ૬) તત્ત્વાર્થ-
 સૂત્રેડવિ—

“તપમા નિર્જરા ચ” (અ ૧ સૂ ૪)

અત્ર ચક્રારઃ સંવરનમુચ્ચયાર્થઃ । સમિતિગુપ્તિધર્માનુપ્રેક્ષાપરીપહજયચારિત્રૈઃ
 મંવરો ભવતિ, તપમા તુ નિર્જરા સંવરોડવિ ચેતિ ભાવઃ સમ્યક્ત્વં નામ સમ્યગ્દર્શનં,
 તત્ત્વ ધ્યાનાગ્નસૂત્રમ્— (ધ્યા ૦ ૨૩૦ ૧) દ્વિવિધ પ્રોક્તં । નિસર્ગસમ્યગ્દર્શનમ્
 અભિગમયમ્યગ્દર્શનં ચેતિ । નિસર્ગતઃ=સ્વભાવતઃ—ન પરોપદેશતો ચદુત્પચ્ચતે,
 તન્નિર્ગતમ્પરગ્દર્શનમ્ । અભિગમાત્ — સદ્ગુરુરૂપદેશતો ચદુત્પચ્ચતે, તદભિગમ-
 સમ્યગ્દર્શનમ્ ।

एक दण द्वय होना निर्जरा है । इस निर्जरा के प्रति कारणता तो तप
 में बतलाई गई है । देखो उत्तराध्ययन सूत्र में यही बात कही है—

“ मवकोडी सचियं कम्मं तपसा निज्जरिज्जह ” करोडों भवों में
 सचित कर्मों की जीत तप से निर्जरा कर देता है । तत्त्वार्थ सूत्र में भी
 “ तपसा निर्जरा च ” इस सूत्र द्वारा यही बात कही गई है—तप से
 निर्जरा और संवर दोनों होते हैं । सूत्रस्थ “ च ” शब्द से संवर का
 ग्रहण हुआ है ।

આગ્રાર્થ—ઈસ્મકા ચત્તી છે કિ પાંચ સમિતિ, ૩ ગુપ્તિ, ૧૦ યતિધર્મ
 ૧૨, અનુપ્રેક્ષા, ૨૨ પરીપહોં કા જીતના એવં ૫ પ્રકાર કા ચારિત્ર પાલના-
 દનસં સંવર હોતા છે ઓર તપ સે સંવર એવં નિર્જરા દોનોં હી હાલે છે ।
 સ્થાનાગ્નસૂત્ર મેં સમ્યગ્દર્શન દો પ્રકાર કા કહા ગયા છે—૧ નિસર્ગ

કર્મના નિર્વજ ઘટ્ટ શકે તેમ નથી. કર્મોના એકદેશને ક્ષય થવો તે નિર્વજ
 પ્રત્યે શામ્ભુતા તો તપમા યતાવવામાં આવી છે, ભુઓ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં
 એ જ વાત સ્પષ્ટ કરી છે—

“ મવકોડી સચિયં કમ્મં તપસા નિજ્જરિજ્જહ ” કરોડો ભવોમાં સચિત
 કર્મોની નિર્વજ શુવ તપથી કરી નાંખે છે. તત્ત્વાર્થ સૂત્રમાં પણ “ તપસા
 નિર્જરા ચ ” આ સૂત્રવડે એ જ વાત કહેવામાં આવી છે કે તપથી નિર્વજ
 તેમજ સંવર બને થાય છે. “ સૂત્રમાં આવેલ “ ચ ” શબ્દથી સંવરનું અહત્વ
 કરવામાં આવ્યું છે

બાવાચ—આને આ પ્રમાણે છે કે પાંચ સમિતિ, ૩ ગુપ્તિ, ૧૦
 યતિધર્મ, ૧૨ અનુપ્રેક્ષા ૨૨ પરીપહોને છતવા અને ૫ પ્રકારના ચારિત્રનું
 પાલન કરવું આ યવાર્થી સંવર થાય છે. અને તપથી સંવર અને નિર્વજ
 બને થાય છે. ધ્યાનાગ્નસૂત્રમાં સમ્યગ્દર્શન બે પ્રકારનું યતાવવામાં આવ્યું

केचित्तु—अत्राभिगमशब्दार्थो निमित्तमपि, तच्च प्रतिमादि इति वदन्ति, तन्मोहनीयकर्मोदयविलक्तिदम् — अभिगमसम्यग्दर्शने हि प्रतिमानि-
मित्तकत्वं न संभवति श्रवणादिना क्षयोपशमहेतौरेव सद्गुरुरूपदेशस्यात्राभिगमन-

और दूसरा अभिगम । जो सम्यग्दर्शन जीवों को स्वभाव से ही होता है । सद्गुरु के उपदेश से जो जीव को प्राप्त होता है वह अभिगम सम्यग्दर्शन है । निसर्ग और अभिगम में अन्तरंग कारणदर्शन मोहनीय कर्म का क्षयोपशम आदि समान हैं परन्तु इसके होने पर भी जो जीव को सद्गुरु के उपदेश से प्राप्त होता है वह अभिगम और जो इसके बिना प्राप्त होता है वह निसर्ग सम्यग्दर्शन है कोई २ व्यक्ति अभिगम शब्द का अर्थ निमित्त परक भी करते हैं और वह निमित्त “प्रतिमा आदि हैं” ऐसा मानते हैं । परन्तु यह उनका कथन केवल मोह कर्म का ही विलास है क्यों कि अभिगम सम्यग्दर्शन में प्रतिमा रूप निमित्त कला संभवित नहीं होती है—वहाँ तो श्रवण आदि से दर्शन मोहनीय कर्म के क्षयोपशम के कारणरूप सद्गुण के उपदेश का ही अभिगम शब्द से ग्रहण हुआ है । यदि सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में वह कारण होता तो उस का ग्रहण निमित्तरूप से होता परन्तु ऐसा तो होता नहीं है—कारण कि वह अचेतन है उस से प्रवचन के अर्थ का उपदेश होता नहीं है । प्रवचन के अर्थ के उपदेश सुनेविना श्रोताओं को प्रवचन का अर्थ ज्ञान कैसे हो सकता है ? अर्थज्ञान हुए विना

छे. १ निसर्ग अने २ अलिगम सद्गुरुना उपदेशथी नहि पणु लुवने स्वभावथी न्ने सम्यग्दर्शन थाय छे ते निसर्ग सम्यग्दर्शन छे. सद्गुरुना उपदेशथी न्ने लुवने सम्यग्दर्शन प्राप्त थाय छे ते अलिगम सम्यग्दर्शन छे. निसर्ग अने अलिगममां अंतरंग कारण दर्शनमोहनीय कर्मना क्षयोपशम वगेरे समान न्ने छे पणु अना डोवा छतांय लुवने न्ने सद्गुरुना उपदेशथी भणे छे ते अलिगम अने न्ने अना वगर भणे ते निसर्ग सम्यग्दर्शन छे. डेटलीक व्यक्तियो अलिगम शब्दना अथ निमित्त परक पणु करे छे अने ते निमित्त “प्रतिमा वगेरे छे” अबुं माने छे. पणु आवुं कथन तेमना इकत मोह कर्मना न्ने विलास छे डेमके अलिगम सम्यग्दर्शनमां प्रतिमा इप निमित्तकता संभवित थछ शके तेम नथी त्यां तो श्रवण वगेरेथी दर्शनमोहनीय कर्मना क्षयोपशमना कारणरूप सद्गुणना उपदेशनुं न्ने अलिगम शब्दथी ग्रहण थयुं छे न्ने सम्यग्दर्शननी उत्पत्तिमां ते कारण डोत तो तेनुं ग्रहण निमित्त इपथी थात पणु आवु थतु नथी डेमके ते अचेतन छे तेनाथी प्रवचनना अर्थना उपदेश थछ शकते नथी. प्रवचनना अर्थना उपदेश सांलज्या विना

शब्देन ग्रहणात् सम्यक्त्वं हि तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं, तच्च प्रवचनार्थज्ञानादेव, प्रवचनार्थज्ञानं च निर्जरामूलकं, निर्जरा च विनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायरूपतपोविशेषेभ्यः, तत्र च सद्गुरुरूपदेशः कारणं, न तु प्रतिमा । सो हि सद्गुरुवत् प्रवचनार्थमुपदेष्टुमममर्था, तस्या जडत्वात्, । नापि सा निर्जराहेतुः, विनयादितपोरूपकर्मा की निर्जरा नहीं हो सकती है । निर्जरा के अभाव में दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय उपशम आदि रूप सम्यक्त्व की उत्पत्ति संभवित नहीं है । अतः अभिगम सम्यग्दर्शन में सद्गुरु का उपदेश ही निमित्त माना गया है और उसीका ग्रहण वहाँ पर उस शब्द से हुआ है प्रतिमा का नहीं—इसी का खुलाशा “ सम्यक्त्वं हि तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं, तच्च प्रवचनार्थज्ञानादेव, प्रवचनार्थज्ञानं च निर्जरामूलकं — निर्जरा च विनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायरूपतपोविशेषेभ्यः, तत्र च सद्गुरुरूपदेशः कारणं न तु प्रतिमा ” अर्थ इन पंक्तियों में लिखा गया है । तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सम्यक्त्व है । वह श्रद्धान प्रवचन के अर्थज्ञान से ही होता है और उस अर्थज्ञानका मूल कारण निर्जरा मानी गई है अपना प्रतिपक्षी कर्मों की निर्जरा हुए बिना तत्त्वज्ञान ही नहीं सकता है विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्यायरूपतपो विशेष निर्जरा के कारण हैं तपो की आराधना में सद्गुरु का उपदेश कारण है इस प्रकार परम्परा संबंध से अभिगम सम्यग्दर्शन में सद्गुरु का उपदेश ही निमित्तरूप से गृहीत हुआ है प्रतिमा नहीं—कारण वह सद्गुरु के उपदेश की तरह प्रवचन

श्रोताओने प्रवचननुं अर्थज्ञान डेवी रीते थड शडे? अर्थज्ञान वगर डर्भोनी निर्जरा पा। थड शडती नथी निर्जरा विना दर्शनमोहनीय डर्भना क्षय उपशम वगेरे इप सम्यक्त्वनी उत्पत्ति संभवित नथी ओटला भाटे अभिगम सम्यग्दर्शनमां सद्गुरुने उपदेश व निमित्तइपे मानवामा आये। छे. अने ते शण्डथो तेनुं व अडणु थयुं छे प्रतिमानुं नहि. आनुं व स्पष्टीकरण “ सम्यक्त्वं हि तत्त्वार्थश्रद्धानरूप, तच्च प्रवचनार्थज्ञानादेव, प्रवचनार्थज्ञानं निर्जरा लकं निर्जरा च विनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायरूपतपोविशेषेभ्यः, तत्र च सद्गुरुरूपदेशः कारणं न तु प्रतिमा ” आने अर्थ आ प्रभाणे छे, डे ते तत्त्वार्थनुं श्रद्धान करुं ते सम्यक्त्व छे ते श्रद्धान प्रवचन अर्थज्ञाननुं मूण डारणु निर्जरा व मानवामा आवे छे. पोताना प्रतिपक्षी डर्भोनी निर्जरा थया वगर तत्त्वज्ञान अर्थ व शडतु नथी. विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय इप तपो विशेष निर्जरा डारणु छे तपनी आराधनामां सद्गुरुने उपदेश डारणु छे. आ रीते परंपरा संबंधी अभिगम सम्यग्दर्शनमां सद्गुरुने उपदेश व निमित्त इपमां गृहीत थये। डे नादिडे प्रतिमा, डेसडे ते सद्गुरुना उपदेशनी नेम

त्वाभावात्, कथं तहि सम्यक्त्वं प्रतिमायाः संभवति ? कथमपि नहि । अत एवो-
पदेशस्य सम्यक्त्वं प्रति कारणत्वं प्रदर्शयन् भगवानवादीत्—उत्तराध्ययनसूत्रे-
(अ० २८ गा० १५)

“ तहियाणं तु भावाणं सवभावे उवएसणं ।

भावेणं सदहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहियं ॥ इति ।

छाया—तथ्यानां तु भावानां सद्भावे उपदेशनम् ।

भावेन श्रद्धतः सम्यक्त्वं तद् व्याख्यातम् ॥

जीवाजीवादिपदार्थानां सद्भावे यद् उपदेशनं=गुरोरुपदेशः, तद् भावेन-
अन्तःकरणेन श्रद्धतः सोहनीयकर्मणः क्षयेण क्षयोपशमेन वा याऽभिरुचिरुत्पद्यते,
तत् सम्यक्त्वं तीर्थकरैर्व्याख्यातम् ।

के अर्थ का उपदेश करने में अचेतन होने से सर्वथा असमर्थ है कर्मों
की निर्जरा में भी वह हेतु रूप नहीं होती है—कारण कि कर्मों की
निर्जरा के हेतु तो विनयादिक तप ही माने गये हैं, प्रतिमा विनयादि
तप स्वरूप नहीं है । अतः प्रतिमा में सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कारणता
किसी भी प्रकार संभवित नहीं होती है—उत्तराध्ययन सूत्र में सद्गुरु
के उपदेश को सम्यक्त्व के प्रति कारण प्रकट करते हुए सिद्धान्तकार
कहते हैं कि—तहियाणं तु भावा णं सवभावे उवएसणं ।

भावेणं सदहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहियं ॥ इति ॥

जीव और अजीव आदि पदार्थों का सद्गुरु ने जो यथावस्थित
स्वरूप प्रकट किया है, उसका उसीरूप से अन्तःकरण से श्रद्धान
करने वाले प्राणी के दर्शन सोहनीय कर्म के क्षय अथवा क्षयोपशम

प्रवचनना अर्थानो उपदेश करवामां अचेतन डोवा णदल स'पुणु'पणुे असमर्थ
छे. कारणु के कर्मोनी निर्जरा डेतु तो विनय वगेरे तपोन मानवामां आव्या
छे. प्रतिमा विनय वगेरे तप स्वरूप नथी, अटला भाटे प्रतिमामा सम्यक्त्वनी
उत्पत्तिमां कारणता डोड पणु रीते संलवी शके तेम नथी उत्तराध्ययन सूत्रमां
सद्गुरुना उपदेशने सम्यक्त्वना प्रति कारणु अतावतां सिद्धान्तकार डडे छे—

तहियाणं तु भावाणं सवभावे उवएसणं ।

भावेणं सदहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहियं ॥ इति ॥

अव अने अवण वगेरे पदार्थानुं वे यथावस्थित स्वरूप सद्गुरुं अे प्रकट
कथुं छे तेनुं ते इपथी अंतःकरणुथी श्रद्धा न करनारा प्राणीना दर्शन मोड-
नीय कर्मना क्षय के क्षयोपशमथी वे इचि उत्पन्न थाय छे, तेनुं नाम न

यदि प्रतिमाऽपि सम्यक्त्वलाभे निमित्तं स्यात्तर्हि भगवता स्थानाङ्गसूत्रे प्रतिमानिमित्तकत्वेन सम्यग्दर्शनस्य तृतीयभेदोऽपि वाच्यः, तस्यानुक्तत्वात् प्रतिमायाः सम्यक्त्वलाभे निमित्तत्वं नास्तीति बोध्यम् । किं च—

प्राणातिपातसाध्यायाः प्रतिमापूजायाः सम्यक्त्वशुद्धिहेतुत्वं वदन्तः स्व-दुर्गतिं न पश्यन्ति मोहान्धाः, स्थानाङ्गसूत्रे हि प्राणातिपातस्य दुर्गतिहेतुत्वं प्रदर्शितम्—

पंचहिं ठाणेहि जीवा दुग्गइं गच्छंति । तं तहा-पाणाइवाएणं, मुसावाएणं, अदिनाडाणेणं, मेहुणेणं, परिग्गहेणं ” इति । (स्था. ५ ठा. १ उ)

से जो क्वचि उत्पन्न होती है उसी का नाम सम्यग्दर्शन है ऐसा तीर्थंकर प्रभुने कहा है यदि सम्यक्त्व की प्राप्ति में प्रतिमा निमित्त होती तो स्थानाङ्ग सूत्र में जो “ दोहिं ठाणेहिं आया केवल्लि पन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सबणयाए ” ऐसा कहा है वहां यदि सम्यक्त्व के लाभ में प्रतिमा भी निमित्त होती तो उसके निमित्त होने से दो स्थानों की जगह सम्यक्त्व की प्राप्ति में तीन स्थानों का कथन सूत्रकार को करना चाहिये था परन्तु वहां दो स्थानों के अतिरिक्त तृतीयस्थान का कथन हुआ नहीं है, अतः हमसे यह निश्चय निश्चित होता है कि सम्यक्त्व के लाभ में प्रतिमा निमित्त नहीं है । फिर भी प्राणानिपात द्वारा साध्य प्रतिमा पूजन को मोह के आवेग से जंघे हुए व्यक्ति सम्यक्त्व की शुद्धि का कारण बतलाते हुए अपनी दुर्गति का कुछ भी खयाल नहीं करते हैं यही एक बड़े आश्चर्य की बात है देखो प्राणातिपात को स्थानाङ्ग सूत्र में दुर्गति

सम्यग्दर्शन छे, आम तीर्थंकर प्रभुणे उछु छे जे सम्यक्त्वनी प्राप्तिमां निमित्त इपे छेत तो स्थानांग-सूत्रमां जे “ दोहिं ठाणेहिं आया केवल्लिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सबणयाए ” आ प्रमाणे उछुं छे, त्यां जे सम्यक्त्वना लालमां प्रतिमा पणु निमित्त थयुं शकत तो तेने निमित्त इपे थवा णटल जे स्थानोनी नय्याजे सम्यक्त्वनी प्राप्तिमां तणु स्थानोनुं कथन सूत्रकारे करवु जेधतुं छेतुं, पणु त्यां तो जे स्थानो सिवाय त्रीन्त स्थानतुं कथन थयुं न थयी. जेथी आ सिद्धान्तनी भात्री थय छे ते सम्यक्त्वना लालमां प्रतिमा निमित्त नथी. छतां जे प्राणातिपात वडे साध्य प्रतिमा पूजनने अजाननी निद्रामां पडेती व्यङ्गिजे सम्यक्त्वनी शुद्धिनुं करवु णतावती चोतानी दुखस्था तरइ सडेन पणु जेती नथी ते जेके णहु नवाध जेवी वात छे. जेज्जे प्राणातिपातने स्थानांगसूत्रमां दुर्गतिनुं न करवु णतावतामां आव्युं छे—(पंचहिं ठाणेहिं

किं च-यथा लोके सुगधानां सुवर्णमात्रसाम्येना शुद्धसुवर्णेऽपि प्रवृत्तिमवलोक्य शुद्धाशुद्धपरीक्षणाय विचक्षणैः कपच्छेदतापा आद्रियन्ते तथाऽत्रापि परीक्षणीये श्रुतचारित्रलक्षणे धर्मे कषादयः समादरणीया भवन्ति ।

प्राणिवधादीनां पापस्थानानां यस्तु शास्त्रे प्रतिषेधः, तथा स्वाध्यायध्यानादीनां यश्च तत्र विधिः स धर्मरूपः । प्राणिवधसंपर्कवति पूजने तु धर्मत्वबुद्धिर्मोहवशादेव भवति, शास्त्रे प्राणिवधस्य प्रतिषेधात् । अतस्तत्र नास्ति कषशुद्धिः ।

का ही कारण कहा है “पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुग्गहं गच्छन्ति-तं जहा-पाणाइवाएणं, मुसावाएणं, अदिन्नादाणेणं, मेहुणेणं, परिग्गहेणं इति । (स्था ५ ठा- १ उ) इन पांचो स्थानों से जीव दुर्गति के पात्र बनले हैं - प्राणातिपात से, मृषावाद से, अदत्तादान से मैथुन से और परिग्रह से । किञ्च-लोक में जिस में जिस प्रकार भोले भाले व्यक्तियों की सुवर्णमात्र की समानता से अशुद्ध स्वर्ण में भी यह सच्चा सुवर्ण है इस प्रकारकी प्रवृत्ति को देखकर सुवर्णपरीक्षक जन उसके सम्यक्त्व और असम्यक्त्व परीक्षाके लिये कष छेद और तप रूप उपायों का अवलम्बन करते हैं उसी प्रकार परीक्षणीय इस श्रुतचारित्ररूप धर्म की परीक्षा के लिये सूत्रकारों ने कषादिक परीक्षा के साधनों का उपयोग किया है प्राणिवधादिक पापस्थानों का शास्त्र में जो निषेध का विधान हुआ है तथा स्वाध्याय एवं अध्ययन आदि का जो वहां पर विधान किया गया है यही धर्म का कष है पूजन में यह धर्म कष नहीं है क्यों कि वह प्राणि वध के संपर्क से दूषित है-अतः फिर भी जो उसमें धर्म

जीवा दुग्गहं गच्छन्ति-तजहा-पाणाइवाएणं, मुसावाएणं, अदिन्नादाणेणं, मेहुणेणं परिग्गहेण इति) (स्था. ५, ठा. १ उ.) आ पांचे स्थानोथी एव दुर्गतिने योग्य ठरे छे-प्राणातिपातथी, मृषावादथी, अदत्तादानथी, मैथुनथी अने परिग्रहथी. अने णीणुं पणुं के लोकमां जेम लोणा भाणुसेनी सुवर्णमात्रनी समानताथी अशुद्ध सुवर्णमां पणुं ‘आ सेणु भइ छे,’ आ जतनी प्रवृत्ति जेधने सुवर्ण परीक्षके तेना भरा-पोटानी परीक्षा भाटे कष, छेह अने ताप इय उपायेना आसरे दे छे तेमज परीक्षणीय आ श्रुतयरित्र इय धर्मनी परीक्षा भाटे सूत्रकारेअे कष वगेरे परीक्षाना साधनेना उपयोग इयो छे. प्राणि वध वगेरे पापस्थानोनुं शास्त्रमा जे निषेध इय विधान थयुं छे तेमज स्वाध्याय अने अध्ययन वगेरेनुं जे त्यां विधान करवामां आव्युं छे ते ज धर्मनी कसोटी-कष छे पूजनमा आ धर्म कष नहीं केमके ते प्राणिवधना संपर्कथी दूषित छे. छतां य तेमां धर्मत्वनी बुद्धि राभवामां आवे छे ते इक्षत

યત્ર વિધિઃ પ્રતિષેધથેતિ દ્વયં કદાચિત્ સ્વરૂપતો વૈપરીત્ય ન યાતિ, અર્થાત્-
સ્વાધ્યાયધ્યાનાદૌ નિયમતઃ પ્રવૃત્ત્યા વિધિપરિશુદ્ધિઃ, તથા હિંસાદૌ નિયમતો
નિવૃત્ત્યા પ્રતિષેધપરિશુદ્ધિર્ભવતિ, સ ધર્મચ્છેદ ઉચ્યતે । પ્રતિમાપૂજાયાં તુ નાસ્તિ
ચ્છેદશુદ્ધિઃ, તસ્યાઃ પટ્ટકાયોપમર્દનસાધ્યત્વેન પ્રતિષેધપરિશુદ્ધચભાવાત્ ।

પ્રવચને જીવાજીવાદીનાં તત્ત્વાનાં યથાવસ્થિતસ્વરૂપનિરૂપણં મોક્ષસાધક
મિત્યેવં નિશ્ચયસ્તાપશુદ્ધિઃ । યથા વહ્નો તાપનેન સુવર્ણસ્ય યથાવસ્થિતસ્વરૂપાવિ-
ર્ભાવઃ તથા-પ્રવચનોક્તતત્ત્વાનુસન્ધાનેન ધર્મસ્ય સ્વરૂપસાવિર્ભવતિ । અત્ર પ્રતિમા-
પૂજાયાં પ્રવચનોક્તસવરનિર્જરાતત્ત્વલક્ષણાનાક્રાન્તત્ત્વાન્નાસ્તિ તાપશુદ્ધિઃ ।

ત્વકી શુદ્ધિ હોતી હૈ વહ કેવલ મોહકા હી આવેશ હૈ । પ્રાણિવધ શાસ્ત્ર
સે નિષિદ્ધ હૈ । જહાં પર વિધિ ઓર પ્રતિષેધ યે દોનોં કમ્પી ખી અપને
સ્વરૂપ સે વિપરીતપને કો પ્રોસ નહીં હોતે હૈં વહાં પર છેદ સે શુદ્ધિ
માની જાતી હૈ જિસ પ્રકાર સ્વાધ્યાય ઓર અધ્યયન આદિ શુભ કાર્યોં
મેં નિયમ સે શાસ્ત્ર મેં પ્રવૃત્તિ પ્રદર્શિત કી ગઈ હૈ ઓર હિંસાદિ કાર્યોં
સે ડસમેં નિયમ સે નિવૃત્તિ કહી ગઈ હૈ । પ્રતિમા પૂજન મેં યહ છેદ
શુદ્ધિ નહીં હૈ । ક્યોં કિ હસમેં પ્રતિષેધ સે પરિશુદ્ધિ કા અભાવ હૈ ડસ
કા કારણ યહ હૈ કિ વહ પટ્ટકાય કે જીવોં કે ઘાત સે સાધ્યકાર્ય હૈ ।
પ્રવચન મેં જીવ ઓર અજીવ આદિ તત્ત્વોં કે યથાવસ્થિત સ્વરૂપ કા
વર્ણન હી મોક્ષમા સાધક હૈ ડસ પ્રકાર કા નિશ્ચય હી તાપ શુદ્ધિ હૈ ।
જિમ પ્રકાર અગ્નિ મેં તપાને સે સ્વર્ણ કા યથાવસ્થિત સ્વરૂપ પ્રકટ હોતા
હૈ । ડસી પ્રકાર પ્રવચન કથિત તત્ત્વોં કે અનુસન્ધાન સે ધર્મ કે સ્વરૂપ
કા અવિર્ભાવ હોતા હૈ ડસ પ્રતિમાપૂજન મેં ધર્મતત્ત્વકે અવિર્ભાવ કરને

અજાતનો જ ઊભરો છે. પ્રાણિ વધ શાસ્ત્રનિષિદ્ધ છે. ન્યા વિધિ અને પ્રતિષેધ
આ બંને કાંઈ પણ વખતે પોતાના સ્વરૂપથી વિપરીતાવસ્થામાં પરિવર્તિત થતા
નથી ત્યાં છેદથી શુદ્ધિ માનવામાં આવે છે જેમ સ્વાધ્યાય અને અધ્યયન
વગેરે શુભ કાર્યોમાં નિયમથી શાસ્ત્રમાં પ્રવૃત્તિ બતાવવામાં આવી છે અને
હિંસા વગેરે કાર્યોથી તેમાં નિયમથી નિવૃત્તિ બતાવવામાં આવી છે. પ્રતિમા
પૂજનમાં આ છેદ શુદ્ધિ નથી કેમકે આમાં પ્રતિષેધથી પરિશુદ્ધિનો અભાવ છે.
આનુ ક્રાન્તિ આ પ્રમાણે છે કે તે પટ્ટકાયના ઊભોના ઘાતથી સાધ્ય કાર્ય છે.
પ્રવચનમાં ઓર અને અઓર વગેરે તત્ત્વોના યથાવસ્થિત સ્વરૂપનું વર્ણન જ
મોક્ષનું સાધક છે. આ જાતનો નિશ્ચય જ તાપ શુદ્ધિ છે. જેમ અગ્નિમાં તપા-
વવાથી મોનાનું યથાવસ્થિત સ્વરૂપ પ્રકટ થાય છે તેમજ પ્રવચન કથિત તત્ત્વોના
અનુસન્ધાનથી ધર્મના સ્વરૂપનો આવિર્ભાવ થાય છે. આ પ્રતિમા પૂજનમાં ધર્મ

एभिः कृपादिभिः परिशुद्धस्यैव धर्मत्वं संभवति तादृशस्यैव धर्मफल-
जनकत्वात् ।

यथा-आधाकर्मादिदोषदूषिताहारादिदाने धर्मबुद्ध्या क्रियमाणे धर्म-
व्याघातः, यथा वा इन्द्रादिपूजादौ धर्मव्याघातः, तथैव धर्मबुद्ध्या प्रतिमापूजनेऽपि
धर्मव्याघातः स्यात्, तस्य जीवोपघातहेतुत्वात् ।

“ प्रतिमापूजा-धर्मव्याघातवती, आगमोक्तन्यायनिराकृतत्वात्, अयोग्य-
प्रव्रज्यादानवत्, इन्द्रादिपूजावद् वा ” इत्याद्यहुमानेनापि प्रतिमापूजायां धर्म-
व्याघातो भवतीति विश्वसनीयम् । उक्तं च—

की योग्यता तक भी नहीं है । कारण कि यह प्रवचन कथित संवर
और निर्जरा तत्त्व के लक्षण से युक्त नहीं है-अतः इसमें ताप शुद्धि
भी नहीं है । इन कृपादिकों द्वारा परिशुद्ध हुई वस्तु में ही धर्मता
आती है और वही यथार्थ से धर्म के फलका प्रदाना होता है । प्रतिमापू-
जन में यह बात नहीं है-अतः वह धर्मरूप नहीं है ।

किंच-धर्मबुद्धि से बनाये गये, परन्तु आधाकर्मा आदिदोषों से
दूषित ऐसे आहार के दान में तथा इन्द्र आदिकों का पूजन करने में जिस
प्रकार धर्म का व्याघात माना गया है, उसी प्रकार धर्मबुद्धि से की गई
प्रतिमा का पूजन में भी जीवों का घात होने से धर्म का व्याघात होता
है । इसलिये आगम कथित सिद्धान्त के अनुसार यह प्रतिमापूजन उपा-
देय कोटि में नहीं आता है । फिर भी जो इसे करते हैं-कराते हैं-वे
आगम कथित सिद्धान्त से सर्वथा बाह्य हैं-और धर्म का व्याघात कर-

तत्त्वने आविर्भूत करवा सुधीनी पणु क्षमता नथी, केमके आ प्रवचन कथित
संवर अने निर्जरा तत्त्वनां लक्षणथी युक्त नथी अेटला आटे आमां ताप
शुद्धि पणु नथी. आ कष वगेरे वडे परिशुद्ध थयेली वस्तुमां न धर्मता आवे
छे अने ते न साथा स्वइपमां धर्मता इणने आपनार छे प्रतिमा पूजनमां
आ वात नथी अेथी ते धर्म इप नथी.

धर्मबुद्धिथी तैयार करवामां आवेला, पणु आधाकर्मा वगेरे दोषो वडे
दूषित अेवा आहारना दानमां तेमन धन्द्र वगेरेनी पूजा करवामां नेम धर्मने
व्याघात मानवामां आव्ये छे, तेम न धर्मबुद्धि राणीने करवामां आवेला
प्रतिमा पूजनमां पणु अेवोने घात डोवाथी धर्मने व्याघात डोय छे अेटला
आटे आगम कथित सिद्धान्त सुणथ आ प्रतिमा पूजन उपादेय डेटिमा
आवतुं नथी. छता ये ने आने करे छे, करावे छे तेओ आगम कथित सिद्धान्त
तथी सर्वथा बाह्य छे अने धर्मना व्याघातछे अेथी अयेअ्यने आवेली

“ प्रव्रज्यादिविधाने च, शास्त्रोक्तन्यायवाधिते ।

द्रव्यादिभेदतो ज्ञेयो, धर्मव्याघात एव हि ” ॥ हारिभद्राष्टकम्

यत्तु—जिनप्रतिमाया दर्शनं वन्दनं चावश्यमेव साधुनामिति वन्दनाद्यकृत्वा
भक्तपानं न कल्पनं तेषामित्याहुस्तन्निर्मूलम्—

अहोरात्रकृत्येषु साधुवल्पेषु जिनप्रतिमादर्शनादेरनुक्तत्वात् । शृणु तावदहोरात्र-
कृत्यं साधुनाम्—

नेत्राले हैं अतः अयोग्य को दीक्षा दान की तरह अथवा इन्द्रादिक के
पूजन की तरह यह प्रतिमापूजन आगमोक्त न्याय से निराकृत होने से
धर्म का व्याघात करनेवाला है ऐसा विश्वास करना चाहिये । तथा च
अनुमानप्रयोगोऽयं—प्रतिमापूजा धर्मव्याघातवती आगमोक्तन्यायनिराकृ-
तत्वात् अयोग्यप्रव्रज्यादानवत् इन्द्रादिपूजनवद्वा । इत्य अलुमान में दिया
गया हेतु अस्मिन्न नहीं है—क्यों कि “ प्रव्रज्यादिविधाने च शास्त्रोक्तन्या-
यवाधिते — द्रव्यादिभेदतो ज्ञेयो धर्मव्याघात एव हि ” दृष्टान्त में इस
हेतु का उक्त श्लोक द्वारा कथित प्रकार से सद्भाव पाया ही जाता है ।

जो यह कहा जाता है कि जिनप्रतिमा के दर्शन वन्दन किये विना
साधुओं का आहार पानी करना कल्पनीय नहीं है—अतः उसका दर्शन
वन्दन करना साधुओं के लिये आवश्यक है वह तिलकुल निर्मूल है—
कारण कि दिनरात संबंधी जितने भी साधुओं के कल्प हैं उन में इस
वान का कर्ता भी कथन किया हुआ नहीं मिलता है—दिनरात संबंधी
साधुओं के च नृत्य हैं—

दीक्षानी केन अथवा तो छन्द वगेरेनी पूजननी जेग आ प्रतिमापूजन आगम
द्वयित न्याययी निराकृत होवा जदस धर्मना नाश करना छे आभ भानी ज
लेव नेउजे “ तथा च अनुमानप्रयोगोऽयं प्रतिमापूजा धर्मव्याघातवती आगमो-
क्तन्यायनिराकृतत्वात् अयोग्य-प्रव्रज्यादानवत् इन्द्रादिपूजनवद्वा । आ अनुमानमां
अपेक्ष हेतु अस्मिन्न नहीं, कण्ठु डे—प्रव्रज्यादिविधाने च शास्त्रोक्तन्यायवाधिते
—द्रव्यादिभेदतो ज्ञेयो धर्मव्याघात एव हि । दृष्टान्तमां आ हेतुनो आ श्लोक
पडे जे द्वयित प्रकार छे तेना अदभाव भजे छे

जे अेभ द्वयितमां आवे छे डे उन प्रतिमाना दर्शन कर्था वगर साधु-
आने आदः आनी इन्नु गान्य नथी, अथी तेना दर्शन वन्दन करवा साधु-
आना माटे आवश्यक छे ते साव जोटी बात छे, डेभडे दिवस अने रात्रिने
द्वयित साधुआने माटे नेटस दृश्य छे तेमा आ वातनुं कथन क्योथे नथी,
दिवस अने रात्रिना साधुआना आ नीथे लफ्या सुजण इत्यो छे—

पढमं पोरिसि सज्झायं, बीए ज्ञाणं झियायए ।
तइयाए भिक्खायरियं, चउत्थीए पुणो वि सज्झायं ॥
पढमं पोरिसि सज्झायं, बीए ज्ञाणं झियायए ।
तइयाए निहमोक्खं च, चउत्थीए पुणो वि सज्झाय ॥ इति,

(उत्तराध्ययनसूत्रे २६ अ.)

किं च-सामायिकाद्यावश्यकेष्वपि प्रतिमादर्शनादेरनुक्तत्वाद् जिनाज्ञाया एव च धर्ममूलत्वात्तस्य धर्मत्वं न सिध्यति ।

यत्तु-पुष्पादिसमर्थचर्चनलक्षणो द्रव्यस्तवः साधुना हेय एव श्रावकेण तु उपादेयोऽपि तथा चाह-भाष्यकारः-

अकस्मिणपवत्तगाणं, विरयाविरयाण एस खलु जुत्तो ।

संसारपयणुकरणो दव्वत्थए कूवदिट्ठंतो (भाष्यकारः ४२)

पढम पोरिसि सज्झायं बीए ज्ञाणं झियायए ।
तइयाए भिक्खायरियं चउत्थीए पुणो वि सज्झायं ॥
पढमं पोरिसि सज्झायं बीए ज्ञाणं झियायए ।
तइयाए निहमोक्खं च चउत्थीए पुणो वि सज्झायं ॥
(उत्तरा- सूत्र २६ अ-)

अर्थस्पष्ट है । इसी प्रकार साधुओं के जो सामायिक आदि आवश्यक कृत्य हैं, उनमें भी प्रतिमा के दर्शन आदि करना नहीं कहा है । धर्म का मूल तो जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा की आराधना करने में है इसलिये दर्शन वगैरह ये धर्म के मूल नहीं हैं । भाष्यकारने जो इस गाथा द्वारा " अकस्मिण पवत्तगाणं विरयाविरयाण एस खलु जुत्तो । संसार पयणुकरणो दव्वत्थए कूवदिट्ठंतो " (भाष्यकार ४२) यह कहा है कि

पढमे पोरिसि सज्झाय बीए ज्ञाणं झियायए ।
तइयाए भिक्खायरियं चउत्थीए पुणो वि सज्झायं ॥
पढमे पोरिसि सज्झायं बीए ज्ञाणं झियायए ।
तइयाए निहमोक्खं च चउत्थीए पुणो वि सज्झायं ॥ (उत्तरासूत्र-२६ अ.)

अर्थ सरण ७ छे आ रीते साधुओना ७े सामायिक वगेरे आवश्यक कृत्ये छे, तेमनामां पणु प्रतिमाना दर्शन वगेरे करवानी वात डही नथी. धर्मनुं मूण तो जनेन्द्र भगवाननी आज्ञाने आराधनामां आवे छे भाटे दर्शन वगेरे आ षधा धर्मनां मूण नथी. भाष्यकारे ७े आ गाथा वडे-(अकस्मिण पवत्तगाणं विरयाविरयाण एस खलु जुत्तो । संसारपयणुकरणो दव्वत्थए

अवृत्स्नप्रवर्तकानां अवृत्स्नसंयमप्रवृत्तिमतां विरताविरतानां=देगविरतीनां
 श्रावकाणाम् एष द्रव्यस्तवः खलु युक्त एव । किंभूतोऽयमित्याह-संसार प्रतनु-
 करणः=संसारक्षयकारकः इत्यर्थः । ननु द्रव्यस्तवो हेयः प्रकृत्यैवासुन्दरः स कथं
 श्रावकाणां युक्तः ? । इत्याशङ्क्याह-रूपदृष्टान्त इति-

यथा लोके क्रेऽपि जलाभावतत्तृष्णाकुलाः पिपासापनोदनाद्यर्थं कूपं खनन्ति
 ते कूपखनका मृत्तिकावर्द्धमादिभिश्च मलिना भवन्ति, पश्चात् तदुद्धवेन जलेन
 तेषां तृष्णायास्तथा मृत्वर्द्धमसलरय च नाशो भवति तदनन्तरमपि ते तदन्ये च

श्रवणों के लिये उपादेय भी पुष्प आदिकों द्वारा भगवान की पूजा स्व-
 रूप द्रव्यमत्तव साधुओं के लिये हेय ही हैं । क्यों कि साधु सर्व आरंभ
 और परिग्रह के सर्वथा त्यागी हैं-आयक नहीं वे देश विरति संपन्न हैं ।
 अतः उनके लिये द्रव्यस्तव संसार का क्षय कारक माना गया है कूप
 का दृष्टान्त देकर आप्यकार ने इस शंका का परिहार किया है कि जिस
 प्रकार जल के अभाव से पिपासा को दूर करने के लिये कोई २ मलुप्य
 कूप को खोदते हैं और उसे खोदते समय मिट्टी और कीचड़ से मलिन
 भी हो जाते हैं परन्तु पश्चात् उस कूप में निकले हुए जल से वे उस
 कीचड़ और लगी हुई मिट्टी को साफ कर देते हैं और समय २ पर
 अपनी पिपासा की भी जांति करते रहते हैं । दूसरे और भी लोक
 उमसे लाभ उठाते हैं । इस प्रकार उस जलयुक्त कूप से खोदने वाले
 व्यक्तियों को तथा और भी अन्यजनों को समय २ पर अनेक प्रकार से
 लाभ होना रहता है । ठीक इसी तरह इस द्रव्यस्तव में जो कि संयम

कृतद्विक्तो ।) (आप्यकार ४२) आ प्रभाषे उद्यु छे डे श्रावकाने माटे उभा-
 द्ये रोप्य छता पुष्प वगेरे वडे भगवाननी पूजत स्वर्ष्य द्रव्यस्तव साधुओंना
 माटे तो त्याग्य न छे, ईमडे साधु सर्व आरंभ अने परिग्रहना संपूर्णपणे
 त्यागी रोप्य छे. श्रावक नहीं, तेओ देश विरति संपन्न छे. अटला माटे तेभने
 नामे नाशीने विचार करीओ तो द्रव्यस्तव संसारने क्षय करनार मानवामं
 नाओगे छे. इपनु दृष्टान्त आनीने भाष्यकारे आ शंकांने हर करी छे डे नेम
 पाणीना अभावने ईद्वि पीछडने तरस मटाउवा माटे डेटलांके गाणुओ वाव
 ओडे छे अने ते वणत तेओ माटी अने डाडवधी भरलाई नय छे पणु त्पार
 पधी वावमांथी नीडणता पाणीथी न तेओ डीवड तेमज शरीरे थोटेकी माटीने
 साइ करी नामे छे अने वणने वणत गेतानी तरस पणु मटाडे छे. पीज
 पणु डेटलांके कोना तेनाथी लाभ भोगवे छे. आ रीते ते पाणी बरेडी वावधी

लोका जलेन सुखिनो भवन्ति एवं द्रव्यस्तवे यद्यप्यसंयमो भवति तथापि तत एव सा परिणामशुद्धिर्भवति, या तद् असंयमोपार्जितमन्यच्च निरवशेषं क्षपयति इति ।

“ तस्माद्द्विरताविरतैः श्रावकैरेप द्रव्यस्तवः कर्तव्यः ।

शुभानुबन्धी प्रभूतनिर्जराफल इति कृत्वा ” इत्युक्तम्-

तदसत्-अत्र हि कूपदृष्टान्तो न संघटते कूपखननेन जलमुत्पद्यते इति सकल लोकप्रत्यक्षं, किन्तु पट्टकायवधं कुर्वतः कारयतश्च धर्ममूलभूताया दयाया एव

की रक्षा नहीं होती है, तो भी यह कर्त्ता को परिणामों में शुद्धि का हेतु होता है । इससे कर्त्ता उस द्रव्यस्तव के करने में उद्भूत असंयम द्वारा उपार्जित पापों का सम्पूर्णरूप से विनाश कर देता है । इसलिये विरताविरत (एकदेश संयम की आराधना करनेवाले पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावकों द्वारा यह द्रव्यस्तव कर्त्तव्य कोटि में आने से उपादेय है । कारण कि यह उनके लिये शुभानुबन्धी और कर्मों की अधिक निर्जरारूप फल का प्रदाता होता है ” यह सब भाष्यकार का कथन ठीक नहीं है । कारण कि उन्होंने ने जो कूप का दृष्टान्त देकर इस विषय की पुष्टि करनी चाहिये, उससे प्रकृत विषय की वास्तविक पुष्टि नहीं होती है । यह तो प्रत्येक लौकिक जन के प्रत्यक्ष अनुभव में आने जैसी बात है कि कूप के खोदने से जल निकलता है इस में तो विवाद की कोई जरूरत ही नहीं है, किन्तु प्रतिमा की पूजा करने और करानेवालों से षट्-

जोहनार दोडोने तेमज भीज पणु धणा माणुसोने वणतो वणत धणी रीते दाब थता रडे छे. ठीक आ प्रमाणे ज द्रव्यस्तवमां जे डे संयमनी रक्षा थती नथी, छतां य ते कर्ताना माटे परिणाममां शुद्धितुं डारणु डोय छे. तेनाथी कर्ता ते द्रव्यस्तवना करवामां उद्भूत असंयम वडे भेणवेला पापोना संपूर्णपणे विनाश करी नाणे छे. अथी विरताविरत (एकदेश संयमनी आराधना करनार पंचम गुणस्थानवर्ती) श्रावको वडे आ द्रव्यस्तव कर्तव्य डोटिमा आववाथी उपादेय छे. डारणु डे ते तेमना माटे शुभानुबन्धी अने कर्मोनी वधादे निर्जरा क्णने आपनार छे. भाष्यकारनुं आ षडु कथन योग्य नथी, डारणु डे तेआअे जे वावनुं दृष्टान्त आपीने आ विषयनी पुष्टि करवा प्रयत्न कर्यो छे, तेनाथी प्रकृत विषयनी वास्तविक रूपमां पुष्टि थती जेवामां आवती नथी. हरेडे हरेड माणुसना माटे आ तो अेक प्रत्यक्ष अनुभव करी शकय तेवी उद्गीकृत छे डे वाव जोहवाथी पाणी नीकणे छे, आमां तो अर्थानी डोड वात जे जेणी थती नथी. पणु प्रतिमानी पूज करनार अने करवनाराअेथी

काय के जीवों की रक्षा नहीं हो सकती है—उनसे उनकी विराधना होती है। ऐसी परिस्थिति में धर्म के मूलभूत सिद्धान्त का ही जब वहाँ अभाव है तब उस पूजन कार्य के उनके परिणामों में शुद्धि मानना यह कथन शास्त्र से विरुद्ध और प्रत्यक्ष आदि समस्त प्रमाणों से बाधित होता हुआ किसी भी समझदार व्यक्ति को मान्य नहीं हो सकता है प्रतिमा पूजनके पक्षपाती जो इस प्रकार अपने पक्षमें तर्क करते हैं कि—

सम्यक् स्नात्वोचिते काले संस्नाप्य च जिनान् क्रमात् ।

पुष्पाहारस्तुतिभिश्च पूजयेदिति तद्विधिः ॥

तथा—जिनप्रभसूरिकृतपूजाविधौ—सरससुरहिचंदणेणं . अंगेषु पृथं काऊण पंचगकुसुमेहिं गंधवासेहिं च पूण्ड्रसद्वर्णैः सुगंधिभिः सरसैरभूपतितैर्विकाशिभिरसहितदलैः प्रत्यग्रैश्च प्रकीर्णैर्नानाप्रकारप्रथितैर्वा पुष्पैः पूजयेत् ” इति—तथा—कुसुमस्वयंगंधपर्श्वधूयनेवेज्जफलजलेहिं पुणो अट्टविहकम्मदलनी अट्टवचारा हवइ पूया ” इति किञ्च—

जिनभवनं जिनविम्बं जिनपूजां जिनमतं च यः कुर्यात् ।

तस्य नरामरशिवसुखफलानि करपल्लवस्थानि ॥

पक्षाय छवेलनी रक्षा थर् शकती नथी, ते कार्यथी तो तेमनी विराधना न् छाय छे आवी परिस्थितिमां धर्मां भूणभूत सिद्धान्तोने न् न्यारे अलाव छे त्थारे ते पूण्ड्र इय कार्यथी तेमना परिणामोमां शुद्धि मानवी आ वात शास्त्रधी विरुद्ध अने प्रत्यक्ष वगेरे थीण्ण अथा प्रमाद्योथी णाधित थती डेअ पणु समन्तु भाणुसना भाटे तो मान्य थर् शके तेम नथी. प्रतिमा पूजननी तरक्षदारी डरनाराओ पोतानी वातने पुट डरवा भाटे न् आ नतनी पोटी हवीसो आने भूडे छे हे—

सम्यक् स्नात्वोचिते काले संस्नाप्य च जिनान् क्रमात् ।

पुष्पाहारस्तुतिभिश्च पूजयेदिति तद्विधिः ॥

तथा—जिनप्रभसूरिकृतपूजाविधौ—सरस—सुरहिचंदणेणं अंगेषु पृथं काऊण पंचगकुसुमेहिं गंधवासेहिं च पूण्ड्रसद्वर्णैः सुगंधिभिः सरसैरभूपतितैर्विकाशिभिरसहित-दलैः प्रत्यग्रैश्च प्रकीर्णैर्नानाप्रकारप्रथितैर्वा पुष्पैः पूजयेत् । इति तथा कुसु-मस्वयंगंधपर्श्वधूयनेवेज्जफलजलेहिं पूणो अट्टविहकम्मदलनी अट्टवचारा हवइ पूया ” इति किञ्च—

जिनभवनं जिनविम्बं जिनपूजां जिनमतं च यः कुर्यात् ।

तस्य नरामरशिवसुखफलानि करपल्लवस्थानि ॥

समुच्छेदात् परिणामशुद्धिस्तपद्यत इति प्रवचनदिरुद्धं कल्पनं सर्वप्रमाणवाधितं कस्याल्लुप्तं भवेत् । अपि तु न कस्यापि ।

(आचाराङ्गसूत्रे भगवताऽभिहितम् (अ. १ उ. १)

“ इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव पुढविसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारंभावेइ,

भावार्थ—पूजक उचित समय में अच्छी तरह स्नान करके जिनेन्द्र का अभिषेक कर पुष्प आदिकों से उन की पूजा करें। जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित पूजाविधि में भी पूजा के विषय में यही विधि प्रदर्शित की गई है सरस सुगंधित चंदन से भगवान के नव अंगों में तिलकरूप पूजन कर पूजक सुगंधित, जमीन पर नहीं गिरे हुए, पत्र बिनाके ताजे पंच जाति ते पुष्पों द्वारा प्रभु की पूजा करें। पुष्प, अक्षत, गंध, प्रदीप, धूप, नैवेद्य फल और जल इन आठ द्रव्यों से आठ कर्मों को नाश करनेवाली अष्टप्रकारी पूजा होती है। जिनमंदिर, जिनप्रतिमा जिनपूजा और जिनमत को जो करता है, उस मनुष्य के हाथ में मनुष्यगति देवगति और मोक्ष के सुख आ जाते हैं—अर्थात् वह मनुष्य इन गतियों के सर्वोत्तम सुख भोग कर मोक्षसुख का भोक्ता बन जाता है—सो इस प्रकार का यह पूजन विषयक समस्त कथन प्रवचन सिद्ध ही है क्योंकि आचारांगसूत्र में भगवान ने “इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण माणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपरिघायहेउं से सयमेव पुढविस-

लावार्थ—पूजा करनार योग्य समये सारी रीते स्नान करीने अनेन्द्रो अलिषेक करे तेमज पुष्प वगेरेथी तेमनी पूजा करे. अनप्रभासूरि वडे विरचित पूजाविधिमां पणु पूजाणा विषयमां आ विधि ज अताववामां आवी छे. सरस सुगंधित चंदनथी लगवाननां नव अंगोमां तिलक रुप पूजन करी पूजा करनार सुवासयुक्त, जमीन उपर पडैलां नछि, पत्र वगरनां ताजा, पांथ जतिनां पुष्पोथी प्रभुनी पूजा करे. पुष्प, अक्षत, गंध, प्रदीप, धूप, नैवेद्य, इण अने पाणी आ आठ द्रव्योथी आठ कर्मोने नष्ट करनारी अष्ट प्रकारनी पूजा होय छे. अन मंदिर, अन प्रतिमा, अन पूजा अने अन मतने जे करे छे, ते भाणुसनी पासे मनुष्य गति, देवगति अने मोक्षनां सुभो आवी जय छे. अटले छे ते भाणुस आ गतिओनां सर्वोत्तम सुभो लोगवीने मोक्ष सुभने लोगवतार भनी जय छे, भाटे आ जतनुं आ पूजनने लगतुं अधुं कथन प्रवचन सिद्ध ज छे, केमके आचारांग सूत्रमां लगवाने—(इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणं माणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपरिघायहेउं से

अण्णे वा पुढविस्तृत्यं समारंभते समणुजाणइ । तं से अहियाए तं से अबोहीए ।” इति
 जीवः कस्मै प्रयोजनाय पृथिवीकायस्य समारम्भं करोतीत्याह—“ इमस्स
 चेत्र ” इत्यादि । अस्यैव=क्षणभङ्गुरस्य, “ जीवियस्स ” जीवनरय-जीवनस्यार्थे,
 तथा-परिवन्दनमाननपूजनाय=परिवन्दनं-प्रशंसा, तदर्थं यथाऽऽश्चर्यगृहादिकरणे,
 माननं=सत्कारः तदर्थं, यथा-कीर्तिस्तम्भादिकरणे, पूजनं=स्वपूजनं प्रतिमापूजनं
 च, तत्र स्वपूजनं-वस्त्ररत्नादिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, तथा-प्रतिमापूजनार्थं च प्रति-
 मादिरचने तथा-जातिमरणमोचनाय, तथा दुःखप्रतिवातहेतुं-दुःखविध्वंसार्थं ।

त्यं समारंभइ, अण्णेहिं वा पुढविस्तृत्यं समारंभावेइ, अण्णे वा पुढवि-
 स्तृत्यं समारंभते समणुजाणइ । तं से अहियाए तं से अबोहीए ” इति-
 इस मंत्र में “ जीव किस प्रयोजन के लिये पृथिवीकाय का समारंभ
 करता है ” इस प्रश्न का उत्तर देते हुए यह कहा है कि यह जीव इस
 क्षणभङ्गुर जीवन के लिये परिवन्दन-प्रशंसा के लिये-आश्चर्योत्पादक
 गृह आदि बनवाने में मान-सत्कार के लिये कीर्तिस्तम्भ आदि कराने
 में, अपनी प्रतिष्ठा के लिये वस्त्र रत्नकम्बल आदि पुरस्कार में तथा
 प्रतिमापूजन के लिये प्रतिमादि बनवाने में तथा जाति-परलोक में सुख-
 के लिये देवमन्दिर आदिके बनवाने में, मरण-जिनकी वृत्त्यु हो चुकी है
 ऐसे अपने पिता आदि की स्मृति के लिये स्तूप आदि की रचना कराने
 में, मोचन-मुक्ति प्राप्ति के लिये देव प्रतिमा आदि बनवाने में अथवा
 अनेक प्रकारके दुःखोंके विनाशके लिये वर्तमानकालमें स्वयं भी पृथिवी

समेव पुढविस्तृत्यं समारंभइ, अण्णेहिं वा पुढविस्तृत्यं समारंभावेइ, अण्णे वा
 पुढविस्तृत्यं समारंभते समणुजाणइ तं से अहियाए तं से अबोहीए) इति—
 “ एव शा माटे पृथिवीकायतो समारंभइ इरे छे ” ओ सवालनो जवाण
 आपतां आ प्रमाणे उडेवामा आवुं छे छे आ एव आ क्षणुल गुर एव
 माटे परिवन्दन-प्रशंसा माटे आश्चर्योत्पादक घर वगेरे बनाववामां, मान-सत्कार
 माटे कीर्तिस्तम्भ वगेरे तैयार कराववामां, पोतानी प्रतिष्ठा माटे वस्त्र, रत्न,
 क्षमण वगेरे इय पुरस्कार तेमज प्रतिमा पूजन माटे प्रतिमा वगेरे बना-
 ववामा जति परलोकमां सुख प्राप्ति थाय तेना माटे देव-मन्दिर वगेरे तैयार
 कराववामा, मरण-जिनकी वृत्त्यु पाव्या छे तेवा पोताना पिता वगेरेनी यादमां
 स्तूप, मनाधि वगेरे बनाववामां, मोचन-मुक्ति मेणववा माटे देव-प्रतिमा
 वगेरे बनाववामा अथवा तो धर्मी जतनां दुःखोना विनाश माटे वर्तमान
 क्षणमा पोते पद्य पृथिवीकायता विनाश स्वइय द्रव्यभाव शश्रनो व्यापार

सः जीवनपरिचन्दनमाननपूजनाद्यर्थं जनः स्वयमेव पृथिवीशस्त्रं समारभते
 =पृथिव्युपभर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं व्यापारयति । अन्यैर्वा पृथिवीशस्त्रं समारम्भयति
 =उद्योजयति । पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् समनुजानाति अनुमोदयति ।
 एवमतीतानागताभ्यां, तथा मनोवाक्यायैश्च पृथिवीशस्त्रसमारम्भभेदा अवगन्तव्याः ।
 पृथिवीशस्त्रं समारभमाणः किं फलं प्राप्नोतीत्याह—“ तं से अहियाए ” इत्यादि ।
 “ तं ” तत्=पृथिवीकायसमारम्भणं, “ से ” तस्य=पृथिवीशस्त्रं समारभमाणस्य
 “ अहियाए ” अहिताय=अकल्याणाय भवतीति शेषः । “ तं ” तत् = तदेव च
 पृथिवीकायसमारम्भणमेव च “ से ” तस्य पृथिवीशस्त्रं समारभमाणस्य “ अत्रो-
 हीए ” अवोधये सम्यक्त्वालाभाय जिनधर्मप्राप्त्यभावाय च भवति ।

पृथिवीकायसमारम्भणं हि—कृतकारितानुमोदितभेदेन त्रिविधम्, तस्यातीत-
 काय के बिनाशस्वरूप द्रव्य भाव शस्त्रका व्यापार करता है, दूसरों से
 कराता है और इस शस्त्र का प्रयोग करने वाले प्राणियोंकी अनुमोदना
 करता है इसी प्रकार भूत और अविष्यत काल में अनवचन और काय
 से(त्रियोग और त्रिकरणके संबंधसे) यह जीव पृथिवी कायका समारम्भ
 करने वाला हुआ है और होगा । अतः जिस प्रकार वर्तमान में त्रियोग
 और त्रिकरण के संबंध से इस पृथिवी काय समारम्भ के भेद होते हैं
 उसी प्रकार भूत और अविष्यत काल में भी उनके संबंध इसके भेद
 जानलेना चाहिये । यह पृथिवी काय का समारम्भरूप शस्त्रका प्रयोग
 प्रयोक्ता जीवको कभी भी कल्याण एवं सम्यक्त्व के लाभ जिनधर्म
 की प्राप्ति की प्राप्ति कराने वाला नहीं होता है ।

भावार्थ—पृथिवीकाय का समारम्भ कृत, कारित और अनुमोदना

(कार्य) करे छे, भील्लयो पासे करावे छे अने आ शस्त्रने प्रयोग करनार
 प्राणीओनी अनुमोदना करे छे. आ प्रमाणे भूत अने अविष्यकालमां मन,
 वचन अने कायथी (त्रियोग अने त्रिकरणना संबधथी) आ एव पृथिव
 कायने समारंभ करनार थये छे अने थये. अेटला माटे जेम वर्तमानकालमां
 त्रियोग अने त्रिकरणना संबधथी आ पृथिविकाय समारंभना लेद (प्रकार)
 होय छे तेमज भूत अने अविष्यत कालमां पणु तेमना संबध तेमज लेद
 लणी लेवा लेधये आ पृथिविकायना समारंभ इप शस्त्रने प्रयोग प्रयोक्ता
 एवना माटे कदापि कल्याण सम्यक्त्वने लाभ तेमज एन धर्मनी प्राप्ति
 करावनार थतो नथी.

भावार्थ—पृथिवीकायने समारंभ कृत, कारित अने अनुमोदनाना लेदथी
 त्रणु प्रकारने छे. अतीत अने अनागत कालना लेदथी तेना भील्ल त्रणु त्रणु

वर्तमानानागतभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये नवधा भवति । नवविधस्यापि पृथिवीकाय-
समारम्भणस्य मनोवाक्काययोगभेदेन प्रत्येकं त्रैविध्ये सप्तविंशतिर्भङ्गा भवन्ति । एवं
त्रिधपृथिवीकायसमारम्भप्रवृत्तः खलु पट्टकायारम्भसंपातजन्यघोरतरदुरितार्जनेन
दुर्गन्तसंसारदाशानलज्वालान्तःपात प्राप्यानन्तनरकनिगोदादिदुःखमनुभवच् न
कदाचित् कल्याणं शाश्वतमुखप्रदं मोक्षमार्गं प्राप्नोतीतिभावः ॥

भगवता पृथिवीकायसमारम्भणवदपूकायादिसमारम्भणमप्यहितायाबोधये
च भवतीत्यपि तत्रैव प्ररूपितम् । यत्रैकस्य पृथिवीकायस्य समारम्भणे सम्यक्त्व-
के भेद से तीन प्रकार का है-इसके अतीत और अनागत काल के भेद
से तीन ३ प्रकार का और हो जाते हैं इस प्रकार यह तीनों कालों की
अपेक्षा से ९ प्रकार का है । इन नव प्रकारों के साथ-मन वचन और
काय इन तीनों का गुणा करने से यह २७ प्रकार का माना गया है इस
प्रकार त्रिकरण और त्रियोग के संबन्ध से २७ प्रकार के इस पृथिवीकाय
के समारम्भ में प्रवृत्त जीव पट्टकाय के आरंभ के संपात जन्य घोरतर
पापों के अर्जन से दुरन्त संसार रूपी दावानल की ज्वाला के मध्य में
निमग्न बन अन्त में अनन्त नरक निगोदादिकों के दुःखों का अनुभव
करता हुआ कभी भी निज कल्याण का भोक्ता एवं शाश्वत सुख को
प्रदान करने वाले मोक्ष के मार्ग का पथिक नहीं बन सकता है पृथिवी-
काय के समारम्भ की तरह अपूकाय आदि का समारंभ भी इस
जीवात्मा को सदा अहितकारी और अवोध का दाता है यह बात भी
वहाँ पर (आचारसंग सूत्र में) भगवान ने कही है अब विचारिए-जब

भेदा थोड़े जल्द से आ सीते आ त्रणे क्षणेनी अपेक्षासे नव प्रकारने छे.
आ नव प्रकारने साथे मन, वचन अने काय अने त्रणेने गुण्डाकार इरवाधी
आ २७ प्रकारने मानवामां आये छे. आ प्रभासे त्रिकरण अने त्रियोगना
संबंधी २७ प्रकारना आ पृथिवीकायना समारंभमां प्रवृत्त एव पट्टकायना
आरंभना संपात जन्म घोरतर (लयंकर) पापेने डारखे दुर्गन्त संसार इपी
दावानलना अग्निमां पडीने छेवटे अन्त नरक निगोद वगेरे दुःखेने अनु-
भवने इरपि पोताना इध्याणुने लोडता थडने अने शाश्वत-सुखने आपनार
मोक्ष मार्गने पथिक (वटेभार्थु) गनी शकते नथी. पृथिवीकायना समारंभनी
जंग अपूकाय वगेरेने समारंभ पाणु आ एवात्मा भाटे दुमेशां अहितकारी
अने अवोध (अज्ञान) आपनारि छे आ वान पाणु आचारसंग सूत्रमां
भगवाने कही छे इवे आट्टु तो आपणे पाणु अमल शरीरे छीजे छे ल्यारे
एवना भाटे इका पृथिवीकायने समारंभ ज ल्यारे अहित इरनार अने मोक्षना

मलभ्यं, किं पुनस्तत्र पट्कायसमारम्भणे स्वर्गापवर्गलाभस्य संभवः । परिवन्दन-माननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं च ये जीवाः पृथिवीकायादि-समारम्भं कुर्वन्ति, ते तत्फलं विपरीतमेव लभन्ते यतोऽसौ समारम्भः अवोधिमहितं चोत्पादयतीत्युक्तं भगवता । परंतु तत्र प्रतिमापूजकाः शास्त्रविरुद्धमेवं कथयन्ति-प्रतिमापूजायां स्वाभ्युदयमोक्षार्थं क्रियमाणः पट्कायसमारम्भः खलु अवोधिम-

जीव के लिये यह अकेला पृथिवीकाय का समारंभ ही अहित का कर्त्ता और मोक्ष के मार्ग से वंचित रखनेवाला कहा गया है तो भला किस कार्य में षट्काय के जीवों का समारंभ होता है, उस कार्य से अथवा उस प्रकार के समारंभ से जीवों को स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) का लाभ कैसे हो सकता है ? अर्थात् किसी तरह नहीं हो सकता ।

जो मनुष्य परिवंदन मानन और पूजन के निमित्त तथा जाति और मरण के मोचन के निमित्त एवं दुःखो के विनाश करने के निमित्त पृथिवीकाय आदि का समारंभ करते हैं, वे उसका विपरीत ही फल भोगते हैं यह बात अच्छी तरह से प्रकट की जा चुकी है । क्यों कि प्रतिमापूजा बोध एवं हित प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर की जाती है -परन्तु इस लक्ष्य की सिद्धि न होकर उससे उल्टा कर्त्ता जीव अवोध एवं अहित का प्रापक ही होता है ऐसा श्री महावीर प्रभु का कथन है । फिर भी इसके पक्षपाती जन इस बात पर ध्यान न देकर शास्त्र विरुद्ध ही कथन करते हैं-वे यह कहते हैं " कि इस प्रतिमापूजनमें माना कि

भार्गथी हर ईंडी हेनार अताववामां आव्यो छे तयारे कया कथंमां षट्कायना
अवोना समारंभ होय छे, ते कथंथी अथवा तो ते अतना समारंभथी
अवने स्वर्ग अने अपवर्ग (मोक्ष) ने लाल केवी रीने संलवी शके तेभ
छे ? अटके के कोय पणु काणे अवने आ कथंथी स्वर्ग के मोक्षने लाल
थय शकते नथी

वे भाणुस परिवंदन, मानन अने पूजनना माटे तेभन अति अने
भरणना मोचन माटे अने दु जोना विनाश माटे पृथिवीकाय वगेरेना समा-
रंभ करे छे, तेओ तेनुं उदटुं इण लोगवे छे आ वात सारी रीते सम-
लववामां आवी छे, केभके प्रतिमा पूज बोध तेभन अहित प्राप्तिना लक्ष्यने
लधने न करवामां आवे छे. पणु आ लक्ष्यनी सिद्धि न थतां तेनाथी साव
विपरीत कर्त्ता अव अवोध अने अहितने भेणवे छे ओषु न श्री महावीर
प्रभुओ कहु छे. अतां य प्रतिमा पूजना केटलाक तरइहारीओ आ वातने लक्ष्यमां
न राणतां शास्त्र विरुद्ध न कथनने वणगी रहे छे. तेओ आ अभाणु उडे छे

दितं नोत्पादयति, प्रत्युत योर्वि नरामरशिवसुखरूपं दितं च सम्यग् जनयतीति, तदेतत् साक्षात् प्रवचनविरुद्धमिति ।

किं च आचाराङ्गसूत्रे पृथिवीकायसमारम्भस्य फलमुक्त्वा भगवता पुनरभिहितम्—‘ एष खलु गंधे, एष खलु मोहे एष खलु मारे, एष खलु गिरये, इच्चत्थं गड्डिए लोए, जमिणं विरुवरुवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगस्सवे पाणे विहिंसइ । ’ (आ० १ अ० २ उ०)

छाया— एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः इत्यर्थं गृहो लोमः, यद्विमं विरुपरूपैः शस्त्रैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण पृथिवीशब्दं पट्टकाय का खलारंभ होता है—परन्तु यह समारंभ स्वाभ्युदय एवं सुक्ति प्राप्ति के निमित्त ही किया जाता है—अतः यह कर्त्ता जीवों को न अहित का ही उत्पादक होता है और न बोधि के लाभ से वंचित रखता है प्रत्युत यह उन्हें बोधि एवं नर अमर और मोक्ष के मुख स्वरूप हित का प्रदान करने वाला ही होता है ” सो इस प्रकार का उनका यह कथन साक्षात् ज्ञात्र से विरुद्ध ही है—यह बात आचारंग सूत्र से भली भाँति पुष्ट होती है उसमें पूर्वोक्तरीति से पृथिवीकाय के समारंभ का फल कहकर फिर यह कहा गया है—“ एष खलु गंधे, एष खलु मोहे, एष खलु मारे, एष खलु नरये, एच्चत्थं गड्डिए लोए, जमिणं विरुवरुवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगस्सवे पाणे विहिंसइ ” (आ- १ अ- २ उ-) यह पृथिवीकाय का समारंभरूप शस्त्र निश्चय से जीवों को अष्टप्रकार के ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का बन्ध

डे—आपणे बोधो वणत्त माटे आस पणु भानी लक्षणे डे आ प्रतिभा पूर- नभा पट्टकायने समारंभ थाय छे—पणु आ समारंभ स्वाभ्युदय अने सुदितनी प्राप्ति माटे न करवाभां आवे छे ओटला माटे आ इती लोयेना माटे अडि- तने न्पाइ पणु होने नधी अने बोधिना लालथी पणु तेओने वंचित राणने नधी आ तो तेभने बोधि अने नर अमर अने मोक्षना सुण स्वउप- दितने आपनार न रोय छे पणु तेभनु आ इधन प्रत्यक्ष रूपमां शास्त्री विद्वद न छे आ बात आचारंग सूत्रधी सारी पैठे पुष्ट थरि लय छे तेमां पूर्वोक्त नीनधी पृथिवीकायना समारंभनुं इण णतावीने आ प्रभावे इधु छे—

‘ एष खलु गंधे, एष खलु मोहे, एष खलु मारे एष खलु नरये, एच्चत्थं गड्डिए लोए जमिणं विरुवरुवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगस्सवे पाणे विहिंसइ ” (आ. १ अ. २ उ.)

आ पृथिवीकाय-तु समारंभ इय शस्त्र बोधस्य लोयेना माटे आठ प्रकारना

समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विद्धिसति । एषः=पृथिवीशस्त्रसमारम्भः खलु निश्चयेन ग्रन्थः=ग्रथयते=वध्यते जीवोऽनेनेति ग्रन्थः, अष्टविधकर्मबन्धः, बन्धजनकत्वाद् ग्रन्थ इत्युच्यते । तथा-एष मोहः विपर्यासः विपरीतज्ञानरूप इत्यर्थः तथा-एष मारः=निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष खलु नरकः-नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् । इत्यर्थम्-एतदर्थं कर्मबन्ध-मोह मरण-नरकरूपं घोरं दुःखफलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः-लिप्सुरस्ति । यद्यपि विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं च पृथिवीशस्त्रसमारम्भं करोति, तथापि तत्फलं कर्मबन्धमोहमरणनरकरूपमेव लभते, अतः पृथिवीकर्मसमारम्भस्य तदेव फलं भवतीति भावः । तदेवं प्रवचनविरुद्धप्ररूपण-

करणे वाला होने से ग्रन्थस्वरूप, विपरीत ज्ञान का जनक होने से मोहरूप, निगोदादि जीवों का इस में मरण होता है-इसलिये मार स्वरूप तथा नारकियों की दश प्रकार की यातना का हेतु होने से यह नरकरूप माना गया है । इस प्रकार यह जीव इस पृथिवीकाय के समारंभरूप शस्त्र के फलस्वरूप कर्मबन्ध, मरण और नरकरूप घोरतर दुःखों को भोगता हुआ भी अज्ञान के आधीन होकर उसी शस्त्र के प्रयोग करने का फिर भी अभिलाषी हो रहा है । यद्यपि विषय भोगों में आसक्त बना हुआ यह जीव शरीर आदि की पुष्टि परिवंदन, मानन, पूजन एवं जाति और मरण के मोचन के लिये तथा दुःखों के विनाश के लिये पृथिवीकाय के समारंभरूप शस्त्र का प्रयोग करता है-परन्तु फिर भी इसका वह कर्मबन्ध, मोह, मरण, नरकरूप फल का ही भोक्ता बनता

ज्ञानावरणीय वगेरे कर्मेना अंध करावनार डोवा षट्ठल ग्रन्थ स्वरूप, विरुद्ध ज्ञानने उत्पन्न करनाइ डोवाथी मोड रूप, निगोद वगेरे लुयेनुं आमां मरणु थाय छे माटे मार स्वरूप तेमज नारकीओनी दश प्रकारनी यातनानु डारणु रूप डोवाथी आ नरक रूप मानवामां आ०युं छे. आ रीते आ लुव आ पृथिवीकायना समारंल रूप शस्त्रना रूप स्वरूप कर्मअंध, मरणु अने नरक रूप घोरतर दुःखोने लोगववा छतां पणु अज्ञानवश यधने तेज शस्त्रने प्रयोग करवा माटे इरी तैयार यध रह्यो छे. जे के विषय लोगोमां आसक्त अनेलो आ लुव शरीर वगेरेनी पुष्टि परिवदन, मानन, पूजन अने जाति मरणुना मोचन माटे तेमज दुःखोने दूर करवा माटे पृथिवीकायना समारंल रूप शस्त्रने प्रयोग करे छे पणु छतां ये ते कर्मअंध, मोड, मरणु अने नरक रूप रूपने लोगवनार ज अने छे. अटला माटे आपणु चोच्छस ढडी शकीओ तेम छीओ

पराः सर्वदोषनिर्मुक्तं शुद्धमद्वितीयमनवद्यं जैनधर्मं सावद्यपूजोपदेशेन कुप्रावचनिकोपमेयं कुर्वन्तः संसारदावानले जनान् पातयन्तः स्वयं च मोहनीयकर्मोदयवशाद्बन्धा इव सन्मार्गतो निपतन्तः स्वात्मानमहितेन मिथ्यात्वेन च पुनः पुनः संयोजयन्ति । यदि मृगतृष्णाऽपि केषांचित् पिपासाकुलानां स्वच्छजलधारावाहिनी भवेत्, तदा प्रतिमापूजापि तेषां द्रव्यलिङ्गिनां परिणामशुद्धिं संपादिनी अष्टविधकर्मदलनी नरामरशिवसुखविधायिनी भवेदिति बोध्यम् ।

है । अतः प्रतिमापूजन का उपदेश निश्चित है कि प्रवचनमार्ग से विरुद्ध है । इस विरुद्ध प्ररूपणा करने में तत्पर मनुष्य सर्व दोषों से रहित, शुद्ध और अद्वितीय एवं अनवद्य इस जैनधर्म को सावद्य पूजा के उपदेश से कुप्रावचनिक की तरह कलंकित-सदोष कर संसाररूपी दावानल में भोले भाले प्राणियों को डाल रहे हैं और स्वयं भी मोहनीय कर्म के उदय से अन्ध की तरह बन कर सन्मार्ग से विमुख होते हुए अपनी आत्मा को अहित और मिथ्यात्व के कलंक से कलुषित कर रहे हैं । अरे-कहीं मृगतृष्णा से भी प्यासे व्यक्तियों की प्यास बुझती हैं ? यदि नहीं, फिर मृगतृष्णा तुल्य इस प्रतिमा पूजन से कर्त्ता की सम्यक्त्व और हित की प्राप्ति होने रूप प्यास कैसे बुझ सकती है-सोचो । हां । यदि ऐसा होता कि मृगतृष्णा स्वच्छजल की धारा बहाकर प्यासे प्राणियों की तृप्ता को जान करती-तो वह प्रतिमा पूजन भी द्रव्यलिङ्गियों के परिणामों में शुद्धि करती हुई उनके अष्टकर्मों को दलने वाली और उन्हें नर, अमर एवं शिवसुख प्रदान करने वाली भी हो सकती ।

हे प्रतिमा पूजनेवाले उपदेश प्रवचन मार्गशी विरुद्ध है आ नतनी विरुद्ध प्ररूपणा करवाया तत्पर भाषुस गधा दोषोथी रहित, शुद्ध. अद्वितीय अने अनवद्य आ जैन धर्मने आवद्य पूजना उपदेशथी कुप्रावचनिकनी नेम कलंकित दोषयुक्त बनावीने संसार रुपी दावानलमां लेणा प्राणीओने न भी रह्यो छे अने नते पणु मोहनीय कर्मना उदयथी आंधणानी नेम यधने सन्मार्गथी हर यथा पोताना आत्माने अहित अने मिथ्यात्वना कलंकथी कलुषित करी सथो छे. मृगतृष्णथी पणु दोष द्विवये तरस्या भाषुओनी तरस भटी शक्ती छे ? ने आवद्य नथी तो यथी मृगतृष्ण नेवी आ प्रतिमा पूजनेथी कर्त्तानी सम्यक्त्व अने हितनी प्राप्ति यथा उप नरम देवी रीने भटी शक्ते तेम छे. नेमृगतृष्ण निर्भय प्राणीनां जने यधने तरस्या प्राणीओनी तरस भटी शक्ते तो आ प्रतिमा पूजने पणु द्रव्यलिङ्गिओना परिलुओमां शुद्धि करनारी तेमना आऽ कर्मोने न'ट इतारी अने नर, अमर अने शिव-सुख आपनारी पणु यथ शक्ते ?

यत्तु—ब्राह्मीलिपिरिव प्रतिमा वन्द्या, ' नमो वंभीए लिवीए " इतिपदं यद् व्याख्याप्रज्ञप्तेरादावुपन्यस्तं, तत्र ब्राह्मीलिपिरक्षरविन्यासः, सा यदि श्रुतज्ञानस्याऽऽकारस्थापना, तदा तद्वन्द्यत्वे साकारस्थापनाया भगवत्प्रतिमायाः स्पष्टमेव वन्द्यत्वम् तुल्यन्यायादित्युक्तं, तन्मोहनीयकर्मोदयविलसितम्—

श्रुतज्ञानरूपस्य भावश्रुतस्य स्थापना—श्रुतज्ञानवतः श्रुतपठनादिक्रियावतः साध्वादेश्चित्रादिकं भवति, श्रुततद्वतोरभेदोपचारात् साध्वादि. श्रुतमुच्यते । स्थापनावश्यकस्य स्थापनाश्रुतस्य च तथैवानुयोगद्वारे भगवता वर्णनात् । यदेवं लिपिः श्रुतज्ञानस्य स्थापनारूपत्वं न प्राप्नोति । तस्मात् प्रतिमायां ब्राह्मीलिपिदृष्टान्त प्रदर्शनमुत्सूत्रप्ररूपणम् ।

किञ्च—प्रतिमापूजन की पुष्टि के लिये " नमो वंभीए लिवीए " व्याख्याप्रज्ञप्ति की आदि में लिखे हुए इस सूत्र के बल पर जो उसके पक्षपाती जन यह कहते हैं—“ कि अक्षर विन्यासरूप ब्राह्मीलिपि जिस प्रकार श्रुतज्ञान के आकार की स्थानपारूप होकर वन्द्य-वन्दनीय मानी गई है उसी प्रकार साकार स्थापनारूप भगवान की प्रतिमा में भी वन्दनीयता स्पष्ट ही है ” सो यह कथन विचार करने पर ठीक नहीं बैठता है ।

तथाहि—श्रुतज्ञानरूप भावश्रुत की स्थापना—श्रुतज्ञानसंपन्न, और श्रुत के पठन की क्रिया विशिष्ट ऐसे जो साधु आदिजन हैं उनके चित्र आदि स्वरूप पड़ती है अर्थात् श्रुतज्ञानी साधु आदि के चित्रस्वरूप ही श्रुतज्ञानरूप भावश्रुतकी स्थापना होती है । ब्राह्मीलिपि अक्षर विन्यास है । वह श्रुतज्ञान की स्थापना है । यहाँ श्रुतज्ञानी साधु आदि को जो

अने णीणुं पणुं के—प्रतिमा पूजननी पुष्टि माटे " नमो वंभीए-लिवीए " व्याख्या प्रज्ञप्तिनी शङ्खातमां आवेला आ सूत्र मुञ्जण ने तेनी तरङ्गहारी करनारा माणुसो आम कडे छे के " अक्षर विन्यास इप आह्मि लिपि नेम श्रुतज्ञानना आकारनी स्थापना इप थछने वन्द्य-वन्दनीय मानवामां आवी छे, तेमज आकार-स्थापना इप लगवाननी प्रतिमाभां पणु वन्दनीयता स्पष्ट देणीती वात ज छे परंतु आ कथनने पणु विचार कर्या भाद योग्य लागतुं नथी. तेमज श्रुतज्ञान इप लावश्रुतनी स्थापना—श्रुतज्ञान संपन्न अने श्रुतना पठननी क्रिया विशिष्ट अेवा ने साधु वगेरे दोडे छे तेमना चित्र वगेरे स्वरूप डोय छे अेटदे के श्रुतज्ञानी साधु वगेरेना स्वरूप ज श्रुतज्ञान इप लावश्रुतनी स्थापना डोय छे आह्मि-लिपि अक्षर विन्यास छे. ते श्रुतज्ञाननी स्थापना छे अर्धी श्रुतज्ञानी साधु वगेरेने ने लावश्रुत इप कडेवामां आव्यो छे ते श्रुतज्ञान

यत्तु-अभयदेवीयवृत्तौ संज्ञाक्षररूपं द्रव्यं श्रुतं नमस्कुर्वन्नाह- 'णमो वंभीए लिवीए' इत्युक्तं तद् भ्रान्तिमूलकम् पुस्तकवर्तिन्या अकारादिवर्णसंकेतरूपाया लिपेरद्रव्यश्रुतत्व न संभवति यतः श्रुतं नाम द्वादशाक्षरीरूपमर्हतप्रवचनं शास्त्रं यस्य कस्यचिज्जीवरय शिषितं स्थितं जितं यावद् वाचनोपगतं भवति स जन्तुस्तत्र वाचनाप्रच्छनादिभिर्वर्तमानोऽपि श्रुतोपयोगामावादागममाश्रित्य द्रव्यश्रुतम्, आ

भावश्रुतरूप कहा गया है-वह श्रुतज्ञान और श्रुतवान् हैं' अभेद के उपचार से ही कहा गया समझाना चाहिये। इसी रूप से ही भगवान ने अनुयोग द्वार में स्थापना आवश्यक और स्थापना श्रुत का कथन किया है। अतः लिपि में भावश्रुत की कल्पना से श्रुतज्ञान की स्थापना मानना कथनपि युक्ति संगत नहीं है। इसी प्रकार लिपि में द्रव्यश्रुतता भी नहीं आती है। क्योंकि द्वादशाक्षरीरूप अर्हत प्रवचन का नाम श्रुत है। श्रुतज्ञान का ज्ञाना जब उसमें अनुपयुक्त अवस्थानवाला है। तब वही आगम की अपेक्षा द्रव्यश्रुत कहा जाता है। संज्ञा अक्षर रूप आकृति को द्रव्यश्रुत नहीं कहा है। इस कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि-अभयदेव विरचित वृत्ति में "णमो वंभीए लिवीए" इस पद का अर्थ संज्ञा अक्षररूप द्रव्यश्रुत परक मानकर जो नमस्कार किया गया है -वह भ्रान्तिमूलक है, क्योंकि पुस्तक में रही हुई संकेतित अकार आदि वर्ण की आकृति में द्रव्यश्रुतता संभवित नहीं होती है। वाचना, पृच्छना आदि से अधिगत श्रुत में अनुपयुक्तज्ञाता ही द्रव्यश्रुत है इसी

अने श्रुतवान्‌मां अभेदापचारधी न्‌ उडेवायेके। समग्रयो लोधये आ इपधीन्‌
 भगवाने अनुयोगद्वारमां स्थापना आवश्यक अने स्थापना श्रुतनुं इथन कथुं
 छे अएदवा माटे लिपिमा लावश्रुतनी उडेपदाधी श्रुतज्ञाननी स्थापना मानवी
 डेअ प; हीने योग्य नधी आ प्रमाणे न्‌ लिपिमा द्रव्यश्रुतता पए आवती
 नधी डेअके द्वादशाक्षरी इप अर्हंत प्रवचननुं नाम श्रुत छे आ श्रुतज्ञानने।
 ज्ञाना न्‌त्यारे तेमां अनुपयुक्त अवस्थाराणो डेअ छे त्पारे ते आगमनी
 अपेक्षये द्रव्यश्रुत डेवाय छे। संज्ञा अक्षर इप आकृतिने द्रव्यश्रुत उडी नधी।
 आ इथनधी आ वातनी पुष्टी थाय छे डे अभयदेव विरचित वृत्तिमा "णमो
 वंभीए लिवीए" आ पदने अर्थ संज्ञा अक्षर इप द्रव्य श्रुतपरक मानीने
 न्‌ नमस्कार डेवामां आव्या छे ते भ्रान्तिमय छे, डेअके पुस्तकमां उडेकी
 अ संकेतित अक्षर वगेरे श्रुतनी आकृतिमा द्रव्यश्रुतता संभवित नधी डेअती।
 वाचना, पृच्छना वगेरेधी अधिगत श्रुतमां अनुपयुक्त ज्ञाता न्‌ द्रव्यश्रुत छे

चाराङ्गादिकं प्रतिपूर्णघोषं ऋणोष्ठविप्रमुक्तं पठितवतः साध्यादेस्तदर्थज्ञानाभावे सति द्रव्यश्रुतत्वं भवति, तथैवानुयोगद्वारे द्रव्यश्रुतस्य वर्णनात् । वर्णसंकेतरूपा लिपिस्तु न शब्दात्मिका, यतो वर्णस्यैवोच्चारणमुपपद्यते, न तु तत्संकेतस्य लिपिमतः पुस्तकादेस्तु श्रुतं शिक्षितं यावद् वाचनोपगतं न भवितुमर्हति अतस्तस्य द्रव्यश्रुतत्वं न संभवति कथं पुनस्तद्गतलिपेस्तत्संभवः ? कथमपि नहि ।

किं च—द्रव्यश्रुतस्य वन्द्यत्वमेव नास्ति, अनुपयुक्तत्वाच्चरणगुणशून्यत्वाच्च, तस्माद् भावश्रुतस्यैव वन्द्यत्वप्राप्तौ द्रव्यश्रुतनमस्कारकल्पनं भ्रान्तिमूलकमेव । ' नमो बंभीए लिवीए' अस्यायमर्थः—वर्णात्मकभापासंकेतरूपा लिपिर्ब्राह्मीलिपिः

प्रकार द्रव्यश्रुत का वर्णन अनुयोगद्वार में किया गया मिलता है । अकार आदि वर्णरूप से संकेतित लिपि में शब्दान्मकता आभी नहीं सकती है—क्यों कि वर्ण का ही उच्चारण होता है—उसके संकेत का नहीं । लिपियुक्त पुस्तकादि में भी वाचना आदि कुछ नहीं होता है । क्यों कि वह जड़ है—चेतन में ही ये वाचना पृच्छना आदि होते हैं । अतः उस में द्रव्यश्रुतता मानना सर्वथा अयुक्त है इसलिये यह निश्चित होता है कि अकार आदि वर्णरूप से संकेतित लिपि में और इस लिपि विशिष्ट पुस्तकादिक में द्रव्यश्रुतता किंचित मात्र भी संभवित नहीं है ।

किञ्च—अनुपयुक्त होने से और चरणगुण शून्य होने से द्रव्यश्रुत में बंधता आ ही नहीं सकती है । भावश्रुत में ही उपयोग सहित और चरणगुण युक्तता होने से वंदता आती है—अतः द्रव्यश्रुत में नमस्कार करने की कल्पना करना केवल भ्रान्तिमूलक ही है “ नमो बंभीए

आ रीते द्रव्यश्रुतनुं वणुं न अनुयोग द्वारमां करवामां आंयुं छे अकार वगेरे वणुंइपथी संकेतित लिपिमां शब्दात्मकता आवी शके तेम नथी. केमके उच्यारणु तो द्रव्यनुं न थाय छे, तेना संकेतनुं नडि. लिपि युक्त पुस्तके वगेरेमां पणु वाचना वगेरे कंठ न डोतुं नथी. केमके ते नउ छे, चेतनमा न वाचना पृच्छना वगेरे थाय छे. अथी तेमां द्रव्यश्रुतता मानवी साव अयोग्य छे. अथी अे व.त योच्छस थाय छे के अकार वगेरे वणुंइपथी संकेतित लिपिमां अने आ लिपि विशिष्ट पुस्तके वगेरेमां द्रव्यश्रुतता थोडी पणु संभवित नथी.

अने भीणुं पणु के—अनुपयुक्त होवाथी अने चरणगुण शून्य होवाथी द्रव्यश्रुतमां बंधता आवी न शकती नथी. भावश्रुतमां न उपयोग सहित अने चरणगुण युक्तता होवाथी बंधता आवे छे अेटला भाटे द्रव्यश्रुतमां नमस्कार करवानी कल्पना करवी भ्रान्तिमूलक न छे. “ नमो बंभीए लिवीए ” आने अर्थ

બ્રાહ્મીશબ્દમ્ય ભાષાર્થકત્વાત્, ઉક્તં ચામરકોગે-‘બ્રાહ્મી તુ ભારતી ભાષા ગીર્વાણ્-
વાણી સરસ્વતી’ ઇતિ । યદ્વા-અષ્ટાદ્ગપકારા લિપિઃ શ્રીમદ્વાભેયજિનેન બ્રાહ્મીના-
મિકાં સ્મૃતાં પ્રદર્શિતા તસ્માન્ સા લિપિર્બ્રાહ્મીત્યુચ્યતે । લિપિજ્ઞાનસ્ય શ્રુતજ્ઞા-
નોપયોગિતયા ભાવશ્રુનહેતું લિપિજ્ઞાનરૂપં ભાવલિપિં વન્દમાનઃ શ્રીસુધર્મા સ્વા-
મી પ્રાદ-‘ નમો વંમીણ લિવીણ ’ ઇતિ । શ્રુતજ્ઞાનં પ્રતિ લિપિજ્ઞાનં કારણં, યતો
લિપિજ્ઞાનેન તત્ત્વંકેતિતશબ્દસ્મરણં, તત્તસ્તદર્થજ્ઞાનં જાયતે । તસ્માદ્ ભગવદુક્તા-
ર્થસ્ય પ્રતિવોધનાય તદ્વોધશબ્દજાતરૂપં શ્રુતં લિપિવદ્ધં કર્તુકામઃ શ્રુતવોધિકાં

લિવીણ ” દસકા અર્થે હસ પ્રકારસે સંગત વૈઠનાં હૈ-અકાર આદિ વર્ણા-
ત્મક ભાષા કે સંકેતરૂપ લિપિ કા નામ બ્રાહ્મી લિપિ હૈ-બ્રાહ્મી શબ્દ
હસ અર્થે મેં પ્રયુક્ત હુઆ હૈ અમર કોપ મેં મી યેહી વાત કહી હૈ-“ બ્રાહ્મી
તુ ભારતી ભાષા ગીર્વાણ્ વાણી સરસ્વતી ” । અથવા-શ્રી આદિનાથ
પ્રભુ ને અપની બ્રાહ્મી નામ કી પુત્રી કો ૧૮ પ્રકાર કી લિપિ કહી થી
હસલિપે મી ઉસ લિપિ કા નામ બ્રાહ્મી લિપિ હસ પ્રકાર સે પડ ગયા
હૈ । શ્રુતજ્ઞાન મેં ઉપયોગી હોને સે હસ લિપિ કે જ્ઞાન કો ભાવશ્રુન કા
કારણ માના હૈ । હસલિપે લિપિ જ્ઞાનરૂપ ભાવ લિપિ કો વન્દન કરતે
હુણ શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહતે હૈ “ નમો વંમીણ લિવીણ ” । શ્રુતજ્ઞાન કે
પ્રતિ લિપિ જ્ઞાન કારણ હૈ-કયોં કિ લિપિ કે જ્ઞાન સે અકારાદિ વર્ણા-
ત્મક લિપિ રૂપ સે સંકેતિત ઉસ ઉસ શબ્દ કા સ્મરણ હોતા હૈ ઓર
ઉમસે ઉમકે અર્થ કા જ્ઞાન હોતા હૈ । અતઃ ભગવાન દ્વારા પ્રતિપાદિત
અર્થ કો સમજાને કે લિપે ઉમ અર્થ કા પ્રતિપાદન કરને વાલે શબ્દોં કે

આ પ્રમાણે શ્રુતજ્ઞાન જેમી શકે છે કે-અકાર વગેરે વર્ણાત્મક ભાષાના સંકેત
રૂપ લિપિનું નામ બ્રાહ્મી લિપિ છે. બ્રાહ્મી શબ્દ ‘ ભાષા ’ આ અર્થમાં પ્રયુક્ત
થયો છે. અમરકોષમાં પણ એ જ વાત કહેવામાં આવી છે કે “ બ્રાહ્મી તુ
ભારતી ભાષા ગીર્વાણ્વાણી સરસ્વતી ” અથવા તે શ્રી આદિનાથ પ્રભુએ પોતાની
બ્રાહ્મી નામની પુત્રીને અકાર પ્રકારની લિપિઓ બતાવી હતી એટલા માટે
પણ આ લિપિનું નામ બ્રાહ્મી લિપિ પડી ગયું છે. શ્રુતજ્ઞાનમાં ઉપયોગી હોવાથી
આ લિપિના જ્ઞાનને ભાવશ્રુતનું શબ્દ માનવામાં આવ્યું છે. એથી લિપિજ્ઞાન
રૂપ ભાવલિપિને વન્દન કરતા શ્રીસુધર્માસ્વામી કહે છે કે “ નમો વંમીણ લિવીણ ”
અર્થ જ્ઞાન પ્રતિ લિપિજ્ઞાન કારણ છે કેતકે લિપિના જ્ઞાનથી અકાર વગેરે વર્ણાત્મક
લિપિ ઉપર ને સંકેતિત ને શબ્દનું સ્મરણ થાય છે. અને તેનાથી તેના અર્થનું જ્ઞાન
થાય છે એટલા માટે ભગવાનદ્વારા પ્રતિપાદિત અર્થને સમજાવવા માટે તે અર્થનું

भावलिपिं प्रति समुपजातभक्तिः श्रीसुधर्मा स्वामी लिपिज्ञानस्य माहात्म्यं प्रकट-
यन् भावश्रुतं प्रति भावलिपेः कारणतयाऽभ्यर्हितत्वेन ततः पूर्वं भावलिपिवन्दनं
कृतवान्, तत्पश्चाद् भावश्रुतं नमस्कुर्वन्नवादीत् ' नमः सुयस्स ' इति ।

यत्तु—अभयदेवसूरिणा स्वकृतटीकायामुक्तम् ' जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ ' इति एकस्यां वाचनानामेतावदेव दृश्यते । वाचनान्तरे तु—' ण्हाया जाव सव्वालं-
कारविभूसिया मज्जणघराओ पडिनिक्खमई पडिनिक्खमिता जेणामेव जिणघरे
तेणामेव उवागच्छइ उवागच्छिता जिणघरं अणुपविसइ २ ता, जिणपडिमाणं

समूहस्य श्रुत को लिपिवद्ध करने की इच्छा से श्री सुधर्मास्वामी कि
जिन की भक्ति श्रुतबोधक भावलिपि के प्रति जागृत हुई है लिपिज्ञान
के माहात्म्य को प्रकट करते हुए भावश्रुत को नमस्कार करने के पहिले
भावलिपि को ही नमस्कार करते हैं क्यों कि भावश्रुत के प्रति भाव-
लिपि को ही कारणता है, और इसी निमित्त से यह उसकी अपेक्षा
पूज्य मानी गई है भावलिपि को नमस्कार करने के पश्चात् ही उन्होंने ने
“ नम—सुयस्स ” भावश्रुत को नमस्कार इस सूत्र द्वारा किया
है । “ जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ ” इस पाठ को लेकर जो टीकाकार
अभयदेव सूरि ने जिनप्रतिमा कि पूजन करने की बात कही है—सो ठीक
नहीं हैं । क्यों कि मालूम होता है, कि उन्हें मूल पाठ का निश्चय ही
नहीं हुआ है—कारण कि एक वाचना में तो यही पाठ मिलता है—तब
कि दूसरी वाचना में “ ण्हाया जाव सव्वालंकारविभूसिया मज्जणव-
राओ पडिनिक्खमई, २ जेणामेव जिणघरे तेणामेव उवागच्छइ, २

प्रतिपादन करनारा शब्दोना समूहस्य श्रुतने लिपिवद्ध करवानी छिन्नाथी श्रीसुधर्मा
स्वामी—के जेमनी श्रुतबोधक भावलिपि प्रत्ये लक्षित उत्पन्न थछ छे—लिपि
ज्ञानना माहात्म्यने प्रकट करतां भावश्रुतने नमस्कार करतां पडैलां भावलिपि-
ने न नमस्कार कर्या छे केमके भावश्रुत प्रत्ये भावलिपि न कारणता छे अने
आ कारणथी न आ तेना करतां पूज्य मानवामा आवी छे. भावलिपिने नम-
स्कार कर्या पाद न तेमणे “ नम सुयस्स ” आ सूत्र वडे भावश्रुतने नम-
स्कार कर्या छे “ जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ ” आ पाठना आधारे जे टीका-
कार अलवदेवसूरिणे अनप्रतिमानी पूजनी बात कही छे ते योग्य नथी केमके
तेमने मूल पाठने निश्चय न थयो नथी जेम न्णुथ आवे छे कारण के अक
वाचनानां तो जे न पाठ भजे छे. तयारे भीण वाचनानां—

(ण्हाया जाव सव्वालंकारविभूसिया मज्जणघराओ पडिनिक्खमई, २ जेणा-
मेव जिणघरे तेणामेव उवागच्छइ, २ जिणघरं अणुपविसइ, जिणपडिमाणं आलोए

आलोण पणामं करेड २ ता, लोपहृत्थयं परामुसड २ ता, एवं जहा सूरियाभो जिणपडिमाओ अच्चेड तहेव भाणियव्वं जाव धुवं उहड ' ति । तेन मूलपाठस्य निश्चयम्नस्य नाभ्रदितं विज्ञायते ।

अतः परं च— वामं जाणुं अंचेड दाहिणं जाणुं धरणीयलंसि णिवेसेड २ ' इति प्रतिमापूजकैः स्वीकृतो मूलपाठस्तत्र वर्तते, टीकाकारस्तु— ' दाहिणं जाणुं धरणीतलंसि निहट्टु ' इति पाठं टीकायां विलिख्य निगदति— ' निहट्टु ' निहत्य स्थापयिन्नेत्यर्थः, ' णिवेसेड ' इत्यत्र— ' निहट्टु ' इति पाठभेदः कृतः । तेनाप्येतद् विदितं भवति— यस्य ग्राह्यं मनस्यभिरुचितं स तादृगनिह मूलपाठ प्रकल्पयति स्म इति ।

जिणवरं अणुपविणठ जिणपडिमापं आलोण पणामं करेड, २ लोपहृत्थयं परामुसड, २ एवं जहान् सूरियाभो जिणपडिमाओ अच्चेड तहेव भाणियव्वं जाव धुवं उहड " ति यह पाठ मिलता है । इसके बाद " वामं जाणुं धरणीयलंसि णिवेसेड २ " ऐसा पाठ मिलता है—और यही पाठ प्रतिमा पूजकों को संमत है । परन्तु टीकाकार श्री अभयसूरि ने " दाहिणं जाणुं धरणीतलंसि निहट्टु " ऐसा पाठ टीकामें रखकर ' निहट्टु ' इस पद की टीका " स्थापना करके " ऐसी की है । इस प्रकार " णिवेसेड " की जगह ' निहट्टु ' ऐसा पाठ भेद किया गया है । इसी प्रकार प्रतिमा पूजकों द्वारा स्वीकृत " निक्खुत्तो सुट्ठारणं धरणीयलंसि नमेड " इस मूल पाठ में भी परिवर्तन " नमेड " क्रिया पद से " निवेगयति " इस रूप से का दिया है । इसके यह वान निश्चित होती है कि जिस के मन

पणामं करेड, २ लोपहृत्थयं परामुसड, २ एवं जहा सूरियाभो जिणपडिमाओ अच्चेड तहेव भाणियव्वं जाव धुवं उहड) ति,
 आ पाठ मणं छे त्थारथी " वामं जाणु धरणीयलसि णिवेसेड २ " आ जतना पाठ मणं छे अने अे ७ पाठ प्रतिमा पूजना तरइतारीअेने भाटे अ मत उप छे. पणुं टीकाकारथी अणयदेवसूरिअे " दाहिण जाणुं धरणीतलंसि निहट्टु " आ जतना पाठ टीकाभा डरीने " निहट्टु " आ पदनी टीका-स्थापना डरीने आ अनाणे डरी छे. आ रीते " णिवेसेड " ना स्थाने " निहट्टु " आ जतना पाठ भेद डस्वामां अ अे छे आ रीते ७ प्रतिमा पूजना तरइतारीअेने पडे स्वीकृत (निक्खुत्तो सुट्ठारणं धरणीतलंसि नमेड) आ मूलपाठभा पणुं " नमेड " क्रियापदभा " निवेगयति " आ जतनुं पणि जतन डरी नापुं छे आथी आ जतनी आथी अय छे डे जेना मतना अेने पाठ मणं छे ते अभाणे ७ शब्दे तेम जेतानी स्थापनाथी मूल पाठभां

तदनन्तरं पुनः प्रतिमापूजकैः स्वीकृते-मूलपाठे-‘ तिवस्तुतो मुद्धानं धरणि-
यलंसि नमेइ ’ इति दृश्यते, ‘नमेइ’ इत्यत्र टीकाकारः-‘ निवेसेइ ’ इतिलिखित्वा
निवेशयतीत्यर्थ उक्तः, तेनात्र-मूलपाठस्य स्वस्वकपोलकल्पितत्वं सिध्यति, द्रौप-
द्याश्चरिते टीकाकृताऽभयदेवसूरिणा पुनरीदृशः पाठो लब्धः-

‘ईसि पञ्चुन्नमति रत्ता, करयल० जाव कट्टु एवं वयासी-नमोत्थु णं अरि-
हंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं वंदइ नमसइ २ जिणघराओ पडिनिक्खमइ ’ इति
इसं पाठं टीकायां त्रिलिख्य टीकाकारः प्राह—

‘तत्र वन्दते=चैत्यवन्दनविधिना प्रसिद्धेन, नमस्यति=पश्चात् प्रणिधानादियोगे-
नेति वृद्धाः । न च द्रौपद्याः प्रणिपातदण्डकमात्रं चैत्यवन्दनमभिहितं सूत्रे इति सूत्र-

र्थे जैसा पाठ लुका है उसने उसी प्रकार मूल पाठ में जिन कल्पना का
पाठ प्रक्षिप्त करके पाठ भेद कर दिया है । अतः स्वकपोलकल्पित होने
से असली मूल पाठ का निश्चय ही नहीं होता है, द्रौपदी के चरित में
टीकाकार अभयदेवसूरि को इस प्रकार का पाठ उपलब्ध हुआ-ईसि
पञ्चुन्नमति २, करयल० जाव कट्टु एवं वयासी-नमोत्थुणं अरिहंताणं
भगवंताणं जाव संपत्ताणं वंदइ, नमसइ २, जिणघराओ पडिनिक्खमइ
इति ” पाठ को लिखकर उन्होंने ने टीका की । वन्दते-नमस्यति पद के
अर्थ का खुलासा करते हुए वे कहते हैं कि प्रसिद्ध चैत्यवन्दन विधि के
अनुसार नमन करना वंदना और इसके बाद प्रणिधान आदि के योग
से नमस्कार करना नमन है ऐसा सिद्धान्त वृद्धों का है । सूत्र में जब
द्रौपदी का प्रणिपात दण्डक मात्र चैत्यवन्दन कहा है-अर्थात् दण्ड की
तरह प्रणाम करने रूप चैत्यवन्दन कहा गया है-तो इसी से यह

क'छु उभेरे करीने पाठ लेह करी नाग्ये छे. अटला भाटे स्वकपोलकल्पित
डोवा अहल असल भूणपाठने निश्चय न थअ शके तेम नथी. द्रौपदी चरितमां
टीकाकार अभयदेवसूरिने आ नतने पाठ भ०ये छे डे-(ईसि पञ्चुन्नमति
२, करयल० जाव कट्टु एवं वयासी-नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव
संपत्ताणं वंदइ, नमसइ २, जिणघराओ पडिनिक्खमइ इति) आ पाठने लभीने
तेमणे टीका करी छे. ‘ वन्दते ’ ‘ नमस्यति ’ पदना अर्थनुं स्पष्टीकरण करतां
तेआ उडे छे डे प्रसिद्ध चैत्य वंदन विधि मुख्य नमन करवुं वंदना अने
त्यारपणी प्रणिधान वगेरेना योगथी नमस्कार करवो नमन छे, वृद्धोने आ
नतने सिद्धान्त छे सूत्रमा न्यारे प्रणिपात दण्डक मात्र चैत्यवन्दन कहुं छे
त्यारे अनाथी न आ वात सिद्ध थअ नय छे डे भील श्रावडोने पणु आ

प्रामाण्यादन्यस्यापि श्रावकादेस्तावदेव तदिति मन्तव्यं, चरितानुवादरूपत्वादस्य, इति । न चैत्यस्य मन्तव्यमित्यत्रान्वयः । द्रौपदी प्रणिपातदण्डकमात्रं—दण्डवत्प्रणाममात्ररूपं चैत्यवन्दनं—प्रतिमावन्दनं कृतवतीत्यर्थं बुद्ध्वाऽन्योपि श्रावक एतत्सूत्रं प्रमाणमाश्रित्य तावदेव तत् प्रणिपातदण्डकमात्रं वन्दनं कुर्यादिति न मन्तव्यम्, तत्र कारणमाह ' चरितानुवादरूपत्वादस्य ' इति । अस्य एतत्सूत्रस्य चरितानुवादरूपत्वात् ज्ञातप्रदर्शकतया यथावृत्तस्य तत्तच्चरितस्यानुवादरूपत्वात्, न तु भगवता ' जयं चरे जयं चिद्धे ' इत्यादिवत् कचिदाज्ञा प्रदत्ता ।

तस्मादस्य विधिनिषेधबोधकत्वं न संभवतीत्याह—' न च चरितानुवादवच-

षान भी सिद्ध हो जाती है कि अन्य श्रावकों को भी इसी प्रकार वन्दन नमन करना चाहिये—सो इस प्रकार का कथन ठीक नहीं है । कारण कि यह चरितानुवाद रूप है ।

भावार्थ—कोई अन्य श्रावक जन ऐसा समझकर कि सूत्रमें जब द्रौपदी ने दण्डकी तरह होकर, चैत्यवन्दन किया है तो इसी सूत्रकी प्रमाणता लेकर हमें भी इसी तरहसे प्रणाम करना चाहिये सो इस प्रकार की मान्यता उनकी ठीक नहीं है कारण कि यह चरित का ही अनुवादक है । चरितका अनुवादक वाक्य विधेयरूप से मान्य नहीं होता है । यह सूत्र चरित का अनुवादक रूप है—इसका यह भाव है कि यह वाक्य ज्ञात अर्थ का प्रदर्शक होने से पहिले जो जो वानें २ जिस २ रूपमें हो चुकी हैं उन मन्त्र का अनुवादक रूप है । " जयं चरे जयं चिद्धे " इत्यादि सूत्र की तरह यह विधि वाक्य नहीं है । इन्हींलिखे भगवान ने प्रतिमा के पूजन और वन्दना, नमन करने आदि की आज्ञा कहीं भी सूत्र में नहीं दी

प्रमाणे न वन्दन नमन करवां लोभये. तो आ ज्ञातनुं कथन योग्य नहीं, केमके आ चरितानुवाद रूप है.

भावार्थ—जबसे तो श्रावक आम समझने के सूत्रमां लय रे द्रौपदीके दण्डके धरने चैत्य वंदन कथुं है तो आ सूत्रने न प्रमाण स्वश्य मानीने जगते पणु आ प्रमाणे न प्रणाम करवा लोभये तो तेमनी आ वात पणु हीट ही गहाय नम नहीं, केमके आ चरितने न अनुवादक है. चरितनुं अनुवादक वाक्य विधिय इपमा मान्य होतु नहीं आ सूत्र अगितने अनुवादक रूप है. आने भाव ये है के आ वाक्य ज्ञात अर्थने प्रदर्शक होतनी के के वाते के उपमां थई थूरी है तो ज्ञातनुं अनुवादक रूप है—' जयं चरे जयं चिद्धे ' इत्यादि सूत्रनी जेग आ विधिवाक्य नहीं ओटला मटे भगवाने प्रतिमाना पूजन अने वंदन, नमन करवा वगेरेनी आज्ञा सूत्रमां

नानि विधिनिषेधसाधकानि भवन्ति अन्यथा सूर्यादेवादिवक्तव्यतायां बहूनां शस्त्रादिवस्तूनामर्चनं श्रूयते इति तदपि विधेयं स्यात् ।

अत्रेदं बोध्यम्—‘ न च द्रौपद्याः प्रणिपातदण्डकमात्रं चैत्यवन्दनमभिहितं सूत्रे’ इत्यादि वाक्यसन्दर्भेण टीकाकारेणाभयदेवसूरिणा द्रौपद्या वन्दनमेव कृतं न तु पूजनादिकमिति बोधयता तावानेव पाठः स्वीकृत इति । तस्माद् विधिरूपेण प्रतिमापूजनाय भगवतोऽर्हत आज्ञा न लभ्यते इति वादस्तावदास्ताम्, चरितानुवाद-रूपेणापि शास्त्रे भगवताऽर्हतप्रतिमापूजनं कापि नोक्तमिति सिद्धम् । एवं चायमे-

है चरितानुवादरूप वाक्य में विधि और निषेध बोधकता संभवित नहीं होती है इसी ध्येय से “ न च चरितानुवादवचनानि विधिनिषेध-साधकानि भवन्ति ” ऐसा माना जाता है नहीं तो फिर, सूर्याभदेव द्वारा जिस प्रकार बहुत शस्त्र आदि वस्तुओं का पूजन करना सुना जाता है उसी प्रकार प्रतिमा पूजकों के लिये भी इनका पूजन विधेय मान लेना चाहिये ।

भावार्थ—“ न च द्रौपद्याः प्रणिपातदण्डकमात्रं चैत्यवन्दनमभिहितं सूत्रे ” इत्यादि वाक्य के द्वारा टीकाकार अभयसूरि ने इतना ही पाठ स्वीकृत किया है कि द्रौपदी ने सिर्फ वन्दना ही की है, प्रतिमापूजन नहीं इसलिये इससे यह बात सिद्ध हो जाती है जब चरितानुवाद रूप से भी शास्त्र में कहीं भी भगवान ने अर्हन की प्रतिमा का पूजन नहीं कहा है । तब विधिरूप से प्रतिमा पूजन के लिये भगवान अर्हत की आज्ञा है ऐसी मान्यता को ही कल्पनामात्र ही है । इस प्रकार स्थानक-

कोष्ठ पणु स्थाने करी नथी अरितानुवाद इप वाक्यमां विधि अने निषेध बोधकता संभवित थती नथी. आ ध्येयथी (न च चरितानुवादवचनानि विधि-निषेधसाधकानि भवन्ति) अेम मानवामां आवे छे नडितर पथी सूर्याभदेव पडे अेम वणु शस्त्रो वगेरे वस्तुअोनी पूज करेदी वात संलणाय छे तेमज प्रतिमा पूजकोना माटे पणु अेमनी पूज विधेय इपमा मानी देवी जेधअे.

भावार्थ—“ न च द्रौपद्याः प्रणिपातदण्डकमात्रं चैत्यवन्दनमभिहितं सूत्रे ” वगेरे वाक्य द्वारा टीकाकार अभयदेवसूरिअे आटला पाठने ज स्वीकार कर्यो छे के द्रौपदीअे इक्त वंदना ज करी छे, प्रतिमा पूज नाड. अेथी आ वात स्पष्ट रीते सिद्ध थड जय छे के ज्यारे अरितानुवाद इपथी पणु शास्त्रमां कोष्ठ पणु स्थाने लगवाने अडतनी प्रतिमाना पूजन विधे कथु नथी. त्यारे विधि इपथी प्रतिमा पूजन माटे लगवान अडतनी आज्ञा छे अेवी मान्यता इक्त कल्पना मात्र ज छे. आ प्रमाणे स्थानकवासी संप्रदायनी आ मान्यता

तद्वृषः स्यान्नयास्मिनां मिद्वान्तः शास्त्रानुक्कलः सत्य इति निश्चीयताम् । अर्हद्वन्द-
नमपि द्रौपद्या न कृतमित्यग्रे सप्रमाणं निरूपयिष्यामः ।

किं च—प्रतिष्ठापूजकानां प्रमाणभूते महानिशीथसूत्रेऽपि ‘प्रतिष्ठापूजायाः
सावयवतया तद्वयं जिनालयविधानं सावयवं भवतीति मत्वा द्रव्यलिङ्गिभिः पृष्टेन
दुबलयप्रभनाम्नाऽनगरेण निगदितं सावयमिदं दाहं वाङ्मात्रेणापि कुर्वे’ इति ।
तदेवमनेन गणतामता तीर्थकरनामगोत्रं कर्माजितम् । एकश्चावशेषीकृतश्च
भवोदसिः । ततस्तैः सर्वैरेकमतं कृत्वा तस्य सावयवाचार्य इति नाम दत्तं प्रसि-
द्धिनीन च । इति प्रतिबोधितम् ।

वाल्मीकिसंप्रदाय की यह सान्ध्यना निर्दोष एवं शास्त्रानुक्कल और सत्य है
कि अर्हत की प्रतिष्ठा बनाकर पूजा शास्त्र हिन्दुमार्ग से विपरीत मार्ग
है । अर्हत की प्रतिष्ठा की बन्दना भी द्रौपदी ने नहीं की है इस बात
को भी हम आगे प्रमाण देकर पुष्ट करेंगे ।

किञ्च—प्रतिष्ठापूजकों द्वारा प्रमाणरूप से स्वीकृत महानिशीथ सूत्र
में भी यही समझाया गया है कि प्रतिष्ठापूजन स्वयं एक सावयवकर्म है,
उसके निमित्त जिनालय आदि बनवाना भी सावयवकर्म हैं । ऐसा सम-
झकर—दुबलयप्रभनामक आचार्य ने द्रव्य लिङ्गियों द्वारा पूछे जाने पर
यही उत्तर दिया है कि ये सब सावयवकर्म हैं, मैं अपने बचनों से भी
उन विषय का जग भी संतन नहीं कर सकता हूँ ” इस प्रकार कहने
वाले उन दुबलयप्रभनामक आचार्यने तीर्थकर नाम गोत्र कर्म उपार्जन
करके एकमात्रवतारी बने । सावयवकर्म निषेध करने वाले होने से

निर्दोष तेमन् शास्त्रानुक्कल अने सत्य छे डे अर्हंतनी प्रतिष्ठा जनावीने पूजवी
शास्त्रनिहित मार्गोनी उदष्टो मार्ग छे अर्हंतनी प्रतिष्ठानी बंदना पणु द्रौप
दीछे करी नथी, आ बातने पणु असे आगमअप्रमाणसिद्ध करवा प्रयत्न करीशुं.

अने जीशुं पणु डे—प्रतिष्ठा पूजको वडे प्रमाणु उपे स्वीकृत महानिशीथ
सूत्रमा पणु डे न बात समस्तनयामा आवी छे डे प्रतिष्ठा पूजन वतते कोड
सावयव कर्म छे तेना निमित्त जिनालय वगैरे जनाववा ने पणु सावयव कर्म छे.
तेना उदष्टोनि न दुबलयप्रभ नामना आचार्ये द्रव्यलिङ्गियो वडे पूछाओला
प्रश्नमा उ-अमां आ प्रमाणु न उलु छे डे आ जणु सावयवकर्म छे. हुं भारा
पयनेगी पणु न विषयनु कराय पणु म उन करी शकुं तेम नथी. आ रीने
उद्वेसाव ने दुबलयप्रभ नामके आचार्ये तीर्थकर नाम गोत्रकर्म उपार्जन करीने
अधिकावतारी बन्था. सावयवकर्म निषेध करनार उवाची ते धीत्यवाभीओओ

भगवान् श्री वर्धमानस्वामी गौतमं प्रति कथयति—‘ अस्या ऋषभादिचतुर्विंशतिकायाः प्राक् अतीतकालेन याऽतीता चतुर्विंशतिका, तस्यां मत्सदृशः सप्तहस्त-तनुर्धर्मश्रीनामा नरमतीर्थङ्करो बभूव, तस्मिन् तीर्थङ्करे सप्ताश्रयाणि अभूवन् । असंयतपूजायां प्रवृत्तायामनेके श्राद्धेभ्यो गृहीतद्रव्येण स्वस्वकारितचैत्यनिवासिनोऽभूवन्, तत्रैको मरुतच्छविः कुवलयप्रभनामाऽनगरो महातपस्वी उग्रविहारी शिष्यगणपरिवृतः समागात्, तैर्वन्दित्वोक्तम्, तदेव तत्रत्यप्रकरणं प्रदर्श्यते, तथा हि—सहानिशीथजुत्रे पञ्चमाध्ययने—

जहा णं भयवं । जइ तुममिहाइ एगवामारत्तियं चाउम्मासिय पउंजियंताण-मिच्छाए अणेमे चेइयालया भवंति नूणं तज्झाणणत्तीए ता कीरउ अणुग्गहममहाणं

उन चैत्यवासियों ने मिलकर उनका नाम ‘सावद्याचार्य’ रख दिया, और प्रसिद्ध भी कर दिया । जैसे—भगवान् श्री वर्धमानस्वामी गौतम प्रति कहते हैं—इस ऋषभादि चौबीसी के पहले भूतकालमें जो चौबीसी होगई है उस चौबीसीमें मेरे जैसा सात हाथप्रमाण शरीर वाला धर्म श्री नामका अतिव तीर्थंकर हो गया है, उस तीर्थंकर के समयमें सात आश्रय हुए थे, उनमें “असंयतपूजा” नामका एक आश्रय था । उस असंयतपूजाकी प्रवृत्ति होनेपर बहुतसे साधु श्रावकों के पैसों से अपने अपने बनवाये हुवे चैत्योंमें निवास करते थे अर्थात् चैत्यवासी हो गये थे. वहां पर एक श्याम कान्तिवाले कुवलयप्रभ नाम के मुनि महातपस्वी उग्रविहारी शिष्यपरिवार सहित पधारे थे, उनको उन चैत्यवासियों ने वंदना कर के जो कहा सो इस प्रकार है । जिस पाठ का यह कथानक है वह पाठ इस प्रकार है—

तेमनुं नाम “सावद्याचार्य” ओ प्रभाणु राण्यु अने प्रसिद्ध पणु कथुं. नेमडे भगवान् श्री वर्धमानस्वामी गौतमने कडे छे के—आ ऋषभादि चौबी-सीना पडेला भूतकालमां ने चौबीसी थछ गछ छे ते चौबीसीमां मारा नेवा सात हाथ प्रमाण शरीरवाणा धर्मश्री नामना छेदला तीर्थंकर थछ गया छे ते तीर्थंकरना समयमां सात आश्रयो थया उता, तेमां “असंयतपूजा” नामनुं ओक आश्रय उतुं ते असंयत पूजाणी प्रवृत्ति थछ त्यारे अनेक साधु-श्रावकोना पैसाथी पोतपोताना माटे जनावरावेला चैत्योना वास करता उता अर्थात् चैत्यवासी थछ गया उता. त्या ओक श्याम वर्णवाणा कुवलयप्रभ नामना मुनिमडाराज के नेओ मडा तपस्वी, उग्र विहारी उता, तेओ पोताना शिष्य परिवार सहित त्यां पधार्या उता तेमने ते चैत्यवासीओओ वंदना करीने ने कछुं ते आ प्रभाणु छे—

इहेव चाउम्मासियं । ताहे भणिय तेण महाणुभागेणं - गोयमा ! जहा भो भो पियंवण ! जइ वि जिणालए तदा वि सावज्जमिणं णाहं वायामित्तेणं पि आयरिज्जा । एवं च समयसारपरं तत्तं जहद्वियं अविपरीतं णीसकं भणमाणेण तेसिं मिच्छद्विद्विङ्गिणीं साहुवेसधारीणं मज्जे गोयमा ! आसंकलियं तित्थयरनामकम्मगोयं तेणं कुवलयप्पभेणं, एगमवावसेसीकओ भवोयही ॥ इति ।

छाया-यथा खलु भगवन् ! यदि त्वमिहापि एकवर्षारात्रिकं चातुर्मासिकं प्रयो-
क्तृणामिच्छया अनेके चैत्यालया भवन्ति नूनं । तद्ध्ययानाज्ञप्त्या तस्मात् करोतु
अनुग्रहमगमकम् इहेव चातुर्मासिकम् । तदा भणितं तेन महाणुभागेण - गौतम !
यथा भो भो पियवंदा ! यद्यपि जिनालयः, तथापि सावद्यमिदं नाहं वाङ्मात्रे-
णापि आचरामि । एवं च समयमारवर तत्त्वं यथास्थितम् अविपरीतं निःशङ्कं
मगता नेपां मिच्छयाद्विद्विङ्गिणां साधुवेपधारिणां मध्ये गौतम ! आसंकलितं तीर्थ-
रुनामकमगोत्रं तेन कुवलयप्रभेण एकमवावशेषीकृतो भवोदधिः ॥ इति

“ जहा ण भयवं ? जइ तुममिहाइ एकवासारत्तियं चाउम्मा-
सियं पउंजियंणाणमिच्छाए अणेगे चेइयालया भवंति नूनं तज्जाण-
णत्तीए, ता कीरउ अणुगहममहाणं इहेव चाउम्मासिय । ताहे भणियं
तेण महाणुभागेणं गोयमा ! जहा भो भो पियंवण जइवि जिणालए
तदा वि सावज्जमिणं णाहं वायामित्तेणं पि आयरिज्जा । एवं च
समयसारपर तत्तं जहद्वियं अविपरीतं णीसकं भणमाणेण तेसिं मिच्छद्वि-
द्विङ्गिणीं साहुवेसधारीणं मज्जे गोयमा ! आसंकलियं तित्थयरनाम-
गोत्तं तेण कुवलयप्पभेणं एगमवावसेसीकओ भवोयही । इति (महा-
निशीथ पन्नम अव्ययन) इत्थं मूत्रका भावार्थं इत्थं प्रकारं है-

हे भगवन् ! आप यहां एक वर्षारात्रिक चारमहिने ठहरें

“ जहा णं भयव । जइ तुममिहाइ एकवासारत्तियं चाउम्मासियं पउं-
जियंताए मिच्छाए, अणेगे चेइयालया भवंति नूनं तज्जाणत्तीए ता कीरउ
अणुगहममहाणं इहेव चाउम्मासिय । ताहे भणिय तेण महाणुभागेण गोयमा ।
जहा भो भो पियंवण जइवि जिणालए तदावि सावज्जमिणं णाहं वायामित्तेणं
पि आयरिज्जा । एवं च समयसारपर तत्तं जहद्वियं अविपरीतं णीसकं
भणमाणेण तेसिं मिच्छद्विद्विङ्गिणीं साहुवेसधारीणं मज्जे गोयमा ? आसंकलियं
तित्थयरनामगोत्तं तेण कुवलयप्रभेणं एगमवावसेसीकओ भवोयही । इति
(महानिशीथ पन्नम अव्ययन) - १ मूत्रको भावार्थं आ प्रमाणे छे हे-हे भगवन् !

हे भगवन् ! इह यदि यथा खलु त्वम् एकवर्षारात्रिकं चातुर्मासिकं तिष्ठसि प्रयोक्तृणाम्=प्रवर्तकानाम् इच्छया-आज्ञया अनेके चैत्यालया नूनं भवन्ति=भविष्यन्ति, तत् तस्माद् निवासार्थमाज्ञामुपादाय इहैव चातुर्मासिकं कुरु तावदस्माक-मनुग्रहं कुरु भवदीयाज्ञया बहवश्चैत्यालया भविष्यन्ति। ततश्चारमाकमुपकारः क्रियतामिति भावः । तदा तेषां सावद्यपूजायां प्रवृत्तानां द्रव्यलिङ्गिनां वचनं श्रुत्वा तेन महानुभावेन कुवलयप्रभनाम्नाऽनगारेण भणितम्=उक्तम्, यथा-भो भो प्रियंवदाः । भो देवानुप्रियाः । यद्यपि जिनालयः, तथापि सावद्यमिदं जिनभवने कृते

-अर्थात् यहीं पर चौमासा व्यतीत करे। प्रवर्तकों की आज्ञा से यहाँ पर अनेक चैत्यालय बन जायेंगे। इस लिये आप यहीं पर चौमासा व्यतीत करने का अनुग्रह करें। हमारे ऊपर आपका बड़ा ही अनुग्रह होगा। आपके उपदेश से निश्चय समझिये अनेक चैत्यालयों का निर्माण हो जायगा। इस प्रकार से उन द्रव्यलिङ्गियों से प्रार्थित होने पर महानुभाव कुवलयप्रभ आचार्य ने कहा कि हे देवानुप्रिय ! यद्यपि तुम जिनालय के विषय में कहते हो-परन्तु-मैं इस कार्य को करवाने में श्रेय नहीं देखता हूँ-कारण कि यह सावद्यकार्य है जिन भवन बनवाना और उसके बनवाने की प्रेरणा करना इन दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों में पृथिवीकाय आदि छह प्रकारके जीवों की विराधना होती है इसी प्रकार से पूजन करने में भी षट्काय के जीविकायों का आरंभ अवश्यंभावी है। इसलिये अनेक प्रकार के षट्काय के जीवों के विघात का हेतु होने से पूजन के निमित्त भी जिन भवन का बनवाना सावद्यतर कार्य है ऐसे सावद्यतर कार्य का मैं किसी भी प्रकारसे उपदेश नहीं दूंगा। मैं कभी भी ऐसा उपदेश नहीं दूंगा कि

तमे अर्धी ओकवर्षारात्रिक-आर मास-शेकाओ-ओटले के अर्धी तमे योमासु' पुर करे। प्रवर्तकेनी आज्ञाथी अर्धी धरु। गैत्यालयो जनी जशे. ओथी तमे अर्धी ज योमासु पुर करवानी कृपा करे, अमारा उपर तमारे लारे अनुग्रह थशे तमारा उपदेशथी अमने ओकस आत्री छे के धरु। गैत्यालयोतुं निर्माण थर्ष जशे. आ रीते द्रव्य लिङ्गियोनी प्रार्थना सांलणीने मडानुभाव कुवलयप्रभ आचार्ये कछु के डे देवानुप्रिय ! ने के तमे जनालयना विषे कडे छे, पणु मने आ काम करवनामा श्रेय लागतुं नथी, केमडे आ सावद्यकर्म छे अन-लवन बनाववु अने तेने बनाववानी प्रेरणा आपवी आ जने जतनी प्रवृ-त्तियोमा पृथिवीकाय वगेरे छे जतना जवोनी विराधना धाय छे आ रीते पूज करवामां पणु षट्कायना जवनिकायोने आरंभ अवश्यंभावी छे ओटला माटे धरु। जतना षट्कायना जवोना विघातना माटे हेतुइप डोवा जटल पूजना माटे पणु अनलवन बनाववुं सावद्यतर कार्य छे. ओवा सावद्यतर कार्य

काग्निं च पृथिवीकायाद्विषद्जीवनिकायविराधना, तथैव जिनपूजायामपि तस्मात्
 पूजार्थं कदाञ्चिन्नमनविधानं सावद्यतर, बहुतरपट्कायजीवोपघातहेतुत्वात् नाहं
 वाट्मात्रेणाऽपि उपदेशदानरूपेण वाग्योगमात्रेणापि आचरामि=कुर्वे जिनालयं कर्तु-
 मुपदेशं न करिष्यामीत्यर्थः । एवं च=अनेन प्रकारेण, समयसारपरं ब्राह्मसिद्धान्त-
 नाराऽज्ञेपश्राष्टं तत्त्वं त्रिकरणत्रियोगैः प्राणानिपातो वर्जनीय इत्यादिरूपं यथास्थितं
 यथावस्थितस्वरूपं प्रमाणभूतं, अविपरीतं=विपर्ययज्ञानाविषयं, निश्शङ्कं=संशयवर्जितं
 वचन भणना=कथयता, तेषां मिथ्यादृष्टिलिङ्गिनां मिथ्यादृष्टयः कुतीर्थिकास्तद्वज्जी-
 वोपघातकारिणां साधुवेषधारिणां=मध्ये हे गौतम ! आसंकलितम्=सम्यक् संगृ-
 हीतम् उपार्जितमित्यर्थः । किमुपार्जितमित्याह-तीर्थकरनामगोत्रं तेन कुशल्यप्र-
 भेण, एकभवावशेषी कृतो भवोदधिः । सुगममेतत् ।

जिस में जिनालय बनवाने का विधान हो । इस प्रकार प्रवचन सिद्धान्त की स्वरभूत वस्तुस्थिति को यथार्थ रूप से बिना किसी संकोच के प्रकट करने वाले उन मुनिराज ने उन साधुवेष धारी द्रव्यलिंगियों के बीच कि जो मिथ्यादृष्टियों की तरह जीवों की हिंसा करने में प्रवृत्त थे उनके सामने इस प्रकार शुद्ध प्रवचन करनेसे हे गौतम ! तीर्थकर नाम गोत्र कर्म का बंध किया-और संसार भी उनका एक भव मात्र बाकी रह गया उस उद्धारण से यही समझना चाहिये-कि जब प्रतिमा पूजन के लिये भी मंदिर बनवाने लावद्य कर्म है और इस सावद्यकार्य का उपदेश देना भी स्यात् क लिये वर्जनीय है-इसी अभिप्राय से कुशल्यप्रभ मुरि ने हर कार्य का निषेध किया-इस निषेध से उन्हें तीर्थकर नाम-गोत्र कर्म का बंध हुआ और संसार भी उनका एक भव मात्र बाकी बचा-तो फिर सर्व प्रकार से सावद्य कर्मों का परित्याग

माटे से डेड पत्तु रीने उपदेश आपका तैयार नहीं, दु आ बनने उपदेश डेडपत्तु बनने आपका तैयार नहीं है लेमा छतातय पताववानु विधान न-सुय ऐय. आ रीने प्रवचन सिद्धांतनी सारभूत वस्तुस्थितिने साया उपमा बरत डेड पत्तु बनने अंकेवे-प्रगत करनाश ते मुनिराजे ते साधु वेषधारी द्रव्य लिङ्गितनी आने के लेजा मिथ्यादृष्टिवाजाओनी लेम छवोनी सिंया मथ्यानां प्राण रता-शुद्ध प्रवचन डरी. आ रीने शुद्ध प्रवचन करवाधी छे जीवमा तीर्थकर नाम-गोत्रकर्मनो पध छथी अने संसार पण अेड लव केडके न डेय को आ उनादजगुधी आपणे अेर वात समन्वी केडको के ल्याने प्रतिमा पूजन माटे पण मंदिर पतावद्य सावद्यकर्म छे अने आ न-सुयऐयने उपदेश स्यात् साधु साधुता माटे त्याक्य छे आ छेनुधी व उपदेशप्रवचन प आ अयना निषेध छथी छे. आ निषेधधी तयने तीर्थकर

अत्रेदं बोध्यम्—यत्र प्रतिमापूजार्थं क्रियमाणस्य जिनालयस्य वाचोपदेशकरणं सावधमिति जानता तत्परिवर्जने कृते तीर्थंकर नामगोत्रं कर्म समुपार्जितं, तत्र सर्वथा सावधमार्गं परिवर्जयतां सर्वप्राणिरक्षणार्थमहिंसाधर्मं सर्वतः प्रचारयतां प्रवचन-सिद्धान्तसारं विजानतां संयममार्गं प्रवृत्तिमतां सम्यक्त्वशुद्धिमतां प्रति-मापूजामकुर्वतां तन्निषेधयतां किं नामात्मनः कल्याणकरं कार्यमवशिष्टम्, इति ।

अथ विवाहसमये द्रौपदी सम्यक्त्ववती नासीदिति वर्णयते—जैनागमानां विद्वांसः=सम्यग्दिदं वदन्ति—सनिदानस्य, जीवस्य निदानफलप्राप्तिर्यावन्न भवति, तावदसौ सम्यक्त्ववञ्चितो जैनधर्माद् दूर एवावतिष्ठते ।

करने वाले, स्वस्त प्राणियों की रक्षा के निमित्त अहिंसाधर्म का प्रचार करने वाले, प्रवचन सिद्धान्त के सार को जानने वाले, संयममार्ग में प्रवृत्ति वाले, सम्यक्त्व की शुद्धि से विशिष्ट और प्रतिमा की पूजा नहीं करने वाले एवं उसका निषेध करने वाले ऐसे संयमियों का अब और कौनसा ऐसा कार्य बाकी रहा है जो उनकी आत्मा के लिये कल्याण का साधन न हो ।

अब यहां इस बात का वर्णन किया जाता है कि विवाह के समय द्रौपदी सम्यक्त्ववाली नहीं थी ।

जैन आगमों का भलीभाँति परिशीलन करने वाले विद्वान् इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि जिस जीव ने जो निदान किया है—जबतक उसके फल की प्राप्ति उस जीव को नहीं हो जाती—तबतक वह जीव सम्यक्त्व से वञ्चित रहकर जिनधर्म से दूर ही रहता है ।

नाम-गोत्र कर्मना अध थये अने संसार यणु तेमने भाटे अेकलव नेट-
दो न शेष रह्यो हुतो. तो पछी सर्व रीते सावधकर्मना परित्याग करना
अधा प्राणीओनी रक्षाना निमित्ते अहिंसा धर्मना प्रचार करना प्रवचन
सिद्धान्तना सारने जणुनारा, संयम मार्गमा प्रवृत्ति करना, सम्यक्त्वनी
शुद्धिथी विशिष्ट अने प्रतिमा पूजा नहि करना अने तेने निषेध करना
अेवा संयमीओनु अेवु क्यु काम शेष रह्यु छे के ने तेमना आत्माना कल्याणुनु
साधनरूप न होय ?

हुवे अहीं आ वातनु वणुन करवामां आवे छे के लशना वणते द्रौपदी
सम्यक्त्ववाणी न हुती

जैन आगमोनु सारी रीते परिशीलन करना विद्वानो आ वातने सारी
येके जणु छे के ने अवे ने निदान क्युं छे-ज्यां सुधी तेना इणनी प्राप्ति
ते अवेने थध नती नथी त्यां सुधी ते अवे सम्यक्त्वथी वञ्चित रहीने अन-
धर्मथी दूर रहे छे.

“पुत्रकथनियोगेण चोद्भज्यमाणी २ जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता ते पंच पंडवे तेणं दसद्ववण्णेणं कुसुमदामेणं आवेदियपरिवेदियं करेड, करित्ता, एवं वयासी-एण णं मए पंच पंडवा वरिया ।” इति सूत्रपाठ प्रामाण्याद् विवाहसमये पूर्वकृतनिदानाधीनतया सम्यक्त्वराहित्यं द्रौपद्या आसीत् अतस्तस्यास्मदानीं आधिकात्वं न सिध्यति युगपत् पञ्चानां पतीनां वरणेन तस्याः पूर्वसंस्कारोदयवगाद् विपुलसुखभोगलालसाऽपि स्वाभाविकी, अतः सा कौमारे वयमि आधिका नासीदिति युक्तिसिद्धमर्थस्यापलापः केन शक्यते कर्तुम् ।

द्रौपदी अस्य पूजनं कृतवतीति जिज्ञासायां निर्णीयते—

“पुत्रकथनियोगेण चोद्भज्यमाणी २ जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता ते पंच पंडवे तेणं दसद्ववण्णेणं कुसुमदामेणं आवेदिय परिवेदियं करेड । करित्ता एवं वयासी-एणं मए पंच पंडवा वरिया” इस प्रकार के इस प्रमाणिक सूत्र पाठ से यह स्पष्टरीति से विदित हो जाता है कि विवाह के समय पूर्वकृत निदान के अधीन होने से द्रौपदी सम्यक्त्व रहित थी इसी लिये उस समय उस में आधिकापना भी निद्व नहीं होता है । तथा एक ही साथ पांच पांडवों को पतिरूप से वरण करने से उसके पूर्व संस्कार के उदय से विपुल सुख भोगने की लालसा भी स्वाभाविकी जात होती है इसलिये वह कुमार अवस्था में आधिका नहीं थी इस युक्ति सिद्ध अर्थ का अपलाप कौन कर सकता है !

द्रौपदी ने किम की पूजा की इस प्रकार की जिज्ञासा होने पर

“पुत्रकथनियोगेण चोद्भज्यमाणी २ जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता, ते पंच पंडवे तेणं दसद्ववण्णेणं कुसुमदामेणं आवेदियपरिवेदियं करेड । करित्ता एवं वयासी-एण मए पंच पंडवा वरिया”

आ जतनी आ प्रामाणिक सूत्रपाठही आ स्पष्ट रूपमा मालुम थरुं नथरुं छे डे वरिणा वरिणे पूर्वकृत निदानने स्वाधीन होवाने शरुणुं द्रौपदी सम्यक्त्व रहित जनी ओरुडा माटे ते समये तेमा आधिकापणुं सिद्ध थरुं छे डे तेम नथी तेमज ओरी साथे पांचे पांडवाने पतिरुपमां वरुणुं शरुवाथी तेमा पूर्व संस्कारने उदयथी विपुल सुख भोगववानी छुंछा पणुं स्वाभाविकी म युग साथ छे ओथी ते कुमार अवस्थामा आधिका हुती नछि, आ युक्ति अर्थने परिधाने डोणुं करी थरुं तेम छे

द्रौपदीने डोनी पूजा करी ? आ जतनी जिज्ञासाने साथे शधीने धीका-

अखण्डसौभाग्यप्रचुरभोगकामनया कामदेवस्यैव पूजनं तदानीमुपपद्यते । कामपूजनं विवाहोत्सवे विस्तरतो भवतीति लोके प्रसिद्धमस्तीति प्रतिमापूजकोऽपि श्री वर्धमानसूरिः प्रोक्तवान् । स्पष्टं चैतत् तद्विभक्तिते आचारदिनकरे द्वितीय-विभागे—“ परसमये गणपतिकन्दर्पस्थापनम् । गणपतिकन्दर्पस्थापनं सुगमं लोकप्रसिद्धम् । ” इति ।

टीकाकार निर्णय करते हैं—

अखंड सौभाग्य एवं प्रचुर भोग की इच्छा से कामदेव का ही पूजन उस समय द्रौपदी ने किया है—यही बात संगत बैठती है । लोक में भी यही व्यवहार देखा जाता है कि विवाह के समय अच्छी तरह गाजे वाजे के साथ काम देवका पूजन लोग किया करते हैं । इस बात को वर्धमान सूरि भी जो प्रतिमापूजन के पक्षपाती हैं स्वीकार करते हैं और ऐसा ही कहते हैं । इसी बात का स्पष्टीकरण उन्होंने ने स्वनिर्मित आचारदिनकर के द्वितीय विभाग में किया है—वे लिखते हैं कि—“ परसमये गणपतिकंदर्पस्थापनम् । गणपतिकंदर्पस्थापनं सुगमं लोकप्रसिद्धम् ” इति ।

लौकिक शास्त्रमें गणपति एवं कंदर्प (कामदेव) की स्थापना होती है अतः गणपति और कन्दर्पका स्थापन करना सुगम और लोकप्रसिद्ध है ।

कार निश्चय करतां कडे छे के—

अखंड सौभाग्य तेमज प्रचुर लोगनी धम्छाथी ज ते समये द्रौपदीजे कामदेवतुं ज पूजन कथुं छे, आ वात ज योग्य लागे छे लोकमां पणु आ जतने ज वडेवार जेवामां आवे छे के लक्ष्मणा वणते वान्छोनी साथे सारी शीते कामदेवतुं पूजन लोकता रडे छे आ वातने वर्धमानसूरि पणु के जेओ प्रतिमा पूजनना तरङ्गार छे—स्वीकार करे छे अने आ प्रमाणे ज कडे छे, आ वाततुं स्पष्टीकरण तेमणे स्वनिर्मित आचार दिनकरना णीज विला-गमां कथुं छे, तेओ लगे छे के—

“ परसमये गणपतिकंदर्पस्थापनम् । गणपतिकंदर्पस्थापनं सुगम लोक प्रसिद्धम् ” इति ।

लौकिक शास्त्रमां गणपति अने कंदर्प (कामदेव) नी स्थापना थाय छे, तेथी गणपति कंदर्पनी स्थापना करवी तेज सुगम अने लोकप्रसिद्ध छे,

“ जिनपडिमाणं अच्चणं करेइ ” अत्र जिनशब्दः कामदेवपरः । जिनशब्दस्य चतुर्विधाः कोशादौ प्रसिद्धाः सन्ति । यथा—

अर्हन्नपि जिनश्चैव, जिनः सामान्यकेवली ।

कन्दर्पोऽपि जिनश्चैव, जिनो नारायणो हरिः ॥ इति (हैमी नाममाला)

विजयगच्छीयः श्रीगुणसागरमूरिरपि ढालसागरनामके काव्ये षष्ठखण्डे द्रौपद्याः पूज्यदेवं निर्णीतवान् । उक्तं च तेन—

करि पूजा कामदेवनी भांखे द्रुपदी नार ।

देव दया करी मुझने भलो देजो भरतार ॥ १ ॥

अर्हन् सकलकर्म कषायमोहपरीषद्वात् जयतीति जिन उच्यते । सामान्य

“ जिनपडिमाणं अच्चणं करेइ ” इस सूत्र में जिन शब्द जिनेन्द्र भगवान का वाचक नहीं है, किन्तु कामदेव का वाचक है क्यों कि जिन शब्द के अनेक अर्थ कोषादिक ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं—यथा—

अर्हन्नपि जिनश्चैव जिनः सामान्यकेवली ।

कन्दर्पोऽपि जिनश्चैव जिनो नारायणो हरिः ॥

इति (हैमीय नाममाला)

विजय गच्छीय श्री गुणसागर मूरि ने भी “ ढालसागर ” नाम के काव्य में छठवें खंड में द्रौपदी के आराध्य देव का निर्णय किया है । उन्होंने लिखा है—

करि पूजा कामदेव नी भांखे द्रुपदी नार ।

देव ! दया करी मुझने भलो देजो भरतार ॥१॥

इस सूत्र में अर्हन्त भगवान को ‘ जिन ’ इसलिये कहा गया है

“ जिनपडिमाणं अच्चणं करेइ ”

आ अत्रमां उत शब्द एनेद्र भगवानने वाचक नथी यणु कामदेवने वाचक छे केभडे उत शब्दोना यणु अर्थो डोप वगेरे ग्रन्थोमां प्रसिद्ध छे केभडे—
अर्हन्नपि जिनश्चैव जिनः सामान्यकेवली ।

कन्दर्पोऽपि जिनश्चैव जिनो नारायणो हरिः ॥ इति (हैमीय नाममाला)

विजयगच्छीय श्री गुणसागरमूरिओ यणु ‘ ढालसागर ’ नामना काव्यना छट्टा खण्डमां द्रौपदीना आराध्यदेवने निर्णय करता तेभणु डहु छे के—

करि पूजा कामदेवनी भांखे द्रुपदिनार ।

देव ! दया करी मुझने भलो देजो भरतार ॥ १ ॥

आ अत्रमां अर्हन्त भगवानने ‘ उत ’ ओटला भाटे डया छे के तेभणु

केवली घनघातककर्मचतुष्टयं जयतीति जिन उच्यते । विष्णुः स्वभुजवलेन खण्ड-
त्रयं जयतीति जिन उच्यते । जिनशब्दस्य कामदेवोऽर्थश्चापि सगतः, यतः संसा-
रिणां कामदेववशवर्तित्वेन लोकजयकारित्वाज्जिनत्वं कामस्योपपद्यते । रूपरहित-
स्यापि सिद्धस्य प्रतिमां पूज्यत्वेन शास्त्रानुक्तामपि प्रतिमापूजकाः प्रकल्पयन्ति,
तद्वदनङ्गस्यापि कामस्य लौकिकशास्त्रप्रसिद्ध तद्वचानमनुसृत्य प्रतिमा प्रकल्पयत इति

कि उन्हां ने समस्त कषाय, कर्म, मोह और परीषहों को जीता है । सामान्य केवली 'जिन' इसलिये कहे गये हैं कि उन्हीं ने चार घनघा-
तिया कर्मों को अपनी आत्मा से समूल नष्ट कर दिया है । विष्णु
'जिन' इसलिये कहलाये कि उन्हीं ने अपने भुजवल से भरतरखंड
के छह खंडों में से तीन खंडों को अपने वश किया है इसी लिये ये
अर्द्धचक्री भी कहलाते हैं । कामदेव को 'जिन' इस लिये कहा गया है
कि इसके वश समस्त त्रिलोक है त्रिलोक में कोई भी प्राणी ऐसा नहीं
बचा कि जिसे इस ने अपने वश में न किया हो ।

शंका—द्रौपदी ने कामदेव की मूर्ति की पूजा की—आप की यह
वात उस समय मानी जा सकती—जब कि कामदेव की मूर्ति बन
सकती होती ? परन्तु कामदेव की मूर्ति तो बन नहीं सकती क्यों कि
वह तो अमूर्तिक—अशरीर—अनङ्ग है । अंगवाले की ही मूर्ति बनती
है—अनंग की नहीं ।

अथा कषाय कर्म, मोह अने परिषडोने अत्या छे सामान्य केवली "अन"
अटला भाटे कडेवामां आव्या छे के तेमणे चार घनपतिअना कर्मोने पोताना
आत्माथी समूल नष्ट करी नाख्या छे विष्णु 'अन' अटला भाटे कडेवाय
छे के तेमणे पोताना बुज अणथी भरतअना छ अडोमांथी त्रणु अडोने
पोताने वश कर्या छे अथी तेअो अर्द्धचक्री पणु कडेवाय छे. कामदेवने 'अन'
अटला भाटे कडेवामां आव्ये छे के तेना वशमां त्रणे दोडे छे त्रणे दोडेमां
अबुं केअ प्राणी रह्युं नथी के नेने कामदेवे पोताना वशमां कथुं न डाय.

शंका—द्रौपदीअे कामदेवनी मूर्तिनी पूजा करी ते तमारी आ वात त्पारेअ
योग्य कही शक्या के न्यारे कामदेवनी मूर्ति अनी शकती डेय ? पणु कामदेवनी
मूर्ति तो तैयार थअ शके तेम नथी केअके ते तो अमूर्तिक—अशरीर अनंग
छे. अंगवाजानी अ मूर्ति अने छे, अनंगनी नहि

नास्त्यत्र मंगय. । लक्ष्मीगौर्यादिदेव्या अपि स्वाभीष्टपतिप्राप्तिकामनया पूजनं लोके प्रसिद्धमस्ति । लौकिकमन्त्रशास्त्रे मन्त्ररत्नमञ्जूपायां कामदेवाराधनस्याभीष्टपतिप्राप्तयेतुत्वं निगदितम्—

“ कन्यामिष्टामवाप्नोति, सापीष्ट पतिमाप्नुयात् ॥ ” इति ।

अगुनाऽपि परिणयनसमये कुलदेवपूजनं लोके क्रियमाणं दृश्यते । कामदेवोऽपि

उत्तर—यह कहना ठीक नहीं है. क्यों कि मूर्ति पूजक जन अनङ्ग-मिदों की भी तो मूर्ति बनाकर उसकी पूजा किया करते हैं । यद्यपि मिदों की मूर्ति बनाने की आज्ञा शास्त्रों में नहीं कही गई है—तौ भी मूर्तिपूजक जन अपनी कल्पना से उनकी भी मूर्ति बनाकर पूजा करते ही हैं—

उसी प्रकार लौकिकशास्त्र प्रसिद्ध अनङ्ग कामदेव की भी लोग अपनी कल्पनामय मूर्ति बनाकर पूजते हैं । इस में आपत्ति की कौनसी बात है ।

लक्ष्मी, गौरी आदि देवियों की भी पूजा लोक में अपने को अभिलषित पति प्राप्ति की कामना से स्त्रियों द्वारा की ही जाती है । लौकिक मन्त्र शास्त्र में मन्त्ररत्नमञ्जूपा में कामदेव का आराधन—“ कन्यामिष्टामवाप्नोति सापीष्टं पतिमाप्नुयात् ’ इस श्लोकार्थद्वारा इच्छित पति प्राप्ति का कारण कहा गया है ।

वर्तमान समय में भी देखो ! विवाह के समय में लोक में कुल देवता का पूजन किया ही जाना है यह कुल देवता का पूजन ही एक

उत्तर—आ बात योग्य नहीं, केभडे मूर्ति पूजा करनेवा लोको अनङ्ग मिदोनी मूर्ति बनावीने तेनी पूजा करता रहे छे जे के शास्त्रोभां सिध्दोनी मूर्ति बनाववानी आज्ञा करवाभां आवी नहीं छताय मूर्ति पूजक लोको चेतानी इष्टपतार्थी तेमनी पति मूर्ति बनावीने पूजा करे छे. तेमज लौकिक शास्त्र प्रसिद्ध अनङ्ग कामदेवनी पति लोको चेतानी इष्टपता मुञ्ज मूर्ति बनावीने तेने पूजे छे. आमा बाधा जेवी कोई बात नहीं

लक्ष्मी, गौरी वगैरे देवीजोनी पूजा से काम चेतानी इच्छा मुञ्ज पति प्राप्तववानी कामनाथी स्त्रीजो वडे करवाभां आवे छे लौकिक मंत्र शास्त्रभां मंत्र रत्न मञ्जूपाभां कामदेवतुं आराधन “ कन्यामिष्टामवाप्नोति साभीष्ट पति माप्नुयात् ’ आ अइसके इच्छित पतिप्र सिद्ध कर । बनाववामां आव्युं छे.

वर्तमान समयमें पति आपणे रोइजे तो करवा समये लोकभां कुल देवतातुं पूजा करवाभां आवे छे आ कुलदेवतातुं पूजा करे छे रीते

रागवतां गृहस्थानां कुलदेवत्वेन व्यवहियमाण आसीत् । द्रौपद्याऽपि स्वकुलदेवः पूजित इति युक्तमुत्पश्यामः ।

अत्र—“ नमोऽस्थु णं अरिहंताणं ” इति पाठस्तु प्रवचनविरुद्ध एव वर्तते, लौकिककुलदेवप्रतिमाऽर्चनप्रकरणे लोकोत्तरस्य भगवतोऽर्हतः प्रसङ्गाभावात् । पूर्वभवकृतनिदानवत्याः कामभोगानुरक्त्या द्रौपद्याः कामदेवार्चनसमये कामभोगविरतस्य वीतरागमार्गोपदेशकस्य वीतरागस्य भगवतोऽर्हतो वन्दनं नैव शास्त्रानुकूलम् । अत्र परिणयावसरे कुलदेवपूजनप्रसङ्गे भगवतोऽर्हतः प्रसङ्गएव नास्ति,

तरह से कामदेव का पूजन अनुसरण है । एक समय था कि जब कामदेव ही, रागशाली गृहस्थ जनों के लिये कुल देवता के रूप से वैवाहिक व्यवहार में मान्य होता था । द्रौपदीने भी उस समय जो कुल देवता का पूजन किया—वह कामदेव का ही पूजन किया यही युक्ति संगत बैठती है । इस पूजन के प्रकरण में जो “ नमोऽस्थुणं अरिहंताणं ” यह पाठ आता है वह प्रवचन विरुद्ध ही है क्योंकि लौकिक कुलदेवता की प्रतिमा के अर्चन-प्रकरण में लोकोत्तर अर्हत भगवान के प्रकरण का संबंध ही क्या है । उस समय जब कि वह पूर्व भव में किये गये निदान से युक्त थी—और कामभोग में अनुरक्त हृदयवाली थी उस के लिये कामदेवका अर्चन(पूजन) करनेका समय ही स्पष्टरूपसे ज्ञात होता है कामभोगों से विरत वीतराग मार्ग के उपदेशक वीतरागप्रभु अर्हत भगवान की पूजन वंदना का नहीं । यही सिद्धान्त शास्त्रानुकूल है—अन्य नहीं । अरे कहीं

कामदेवना पूजननु अनुसरणु छे अक वषत अवे। इतो के न्यारे कामदेव, रागशाली गृहस्थ लोकाने माटे कुण देवताना इपमां लभ-संभंधी व्यवहारमां मान्य गणतो इतो. द्रौपदीअे पणु ते समये अे कुण देवतानुं पूजन कर्युं ते कामदेवनुं अे पूजन कर्युं इतुं अे अे वात भरोभर लागे छे. आ पूजनना प्रकरणमां अे “ नमोऽस्थुणं अरिहंताणं ” आ पाठ आवे छे ते प्रवचन विरुद्ध अे छे केअके लौकिक कुणदेवतानी प्रतिमाना अर्चन-प्रकरणमां लोकोत्तर अर्हत भगवानना प्रकरणने संभंध अे शी रीते योग्य कही शकय. ते वषते के न्यारे ते पूर्व लवमां करेला निदानथी युक्त इती अने कामभोगमां अनु-रक्त हृदयवाणी इती अेवी स्थितिमां तो तेना माटे कामदेवनी अर्चना कर वाने वषत अे स्पष्ट इये अणुअ आवे छे. कामभोगोथी विरत वीतराग मार्गना उपदेशक वीतराग प्रभु अर्हत भगवाननी पूज वंदना माटे ते वषत योग्य कही शकय नहि आ सिध्दांत अे शास्त्रानुकूल छे अीअे नहि. युधमां

द्रौपद्याः पूर्वभवकृतनिदानफलप्राप्त्यभावेन सम्यक्त्वरहितत्वात् । यस्य पूजनं तस्यैव वन्दनं तु न्यायोपपन्नं भवति, अत्र पूजनं कुलदेवतायाः, वन्दनं तु वीतरागस्यार्हत इति लोकन्यायविरुद्धम् । तस्माद् द्रौपद्या वीतरागस्यार्हतो वन्दनमपि तदानीं न कृतमिति सर्वप्रमाणसिद्धम् ।

अत्राभयदेवमृगिणा स्वकृतवृत्तौ यदुक्तम् एकस्यां वाचनायामेतावदेव दृश्यते “ जिणपडिमाणं अच्छणं करेड ” इति ।

वीररमके सिवाय युद्धमें जानेवाले वीरके लिये, सहारराग भी आनंददायी हो सकता है ? । कभी-कभी परिणय-विवाहके अवसर में कुलदेवता की ही पूजा करने का प्रसंग होता है-न कि भगवान अर्हत की । अतः इस प्रकार का प्रसंग मानना एक मनगढ़ंत कल्पना मात्र ही है ! क्यों कि इस समय द्रौपदी पूर्वभव में किये हुए निदान की फल प्राप्ति के अभाव से सम्यक्त्व रहित थी, फिर उसे उस समय कामदेव की ही इच्छित फल प्राप्ति के लिये पूजा की सज्जेगी, या उसके अभाव को करने वाले जिन भगवान की पूजा की । यह स्वयं विचारने जैसी बात है जिन का पूजन किया जाता है उसी की वंदना की जाती है-पूजन तो ही कुलदेवतारूप कामदेव का और वंदना की जाय वीतराग प्रभु श्री अर्हित देव की । इस प्रकार की मान्यता तो लौकिकरीति से भी विरुद्ध पड़ती है । इसलिये सर्व प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि द्रौपदी ने जिनप्रतिमा का पूजन नहीं किया ।

जिनार लडवेया भाटे वीर रस सिवायने भट्टार राग पशु शु आनंद पमा-
जिनार थड थडे छे ? नडींन लतना समये तो लगवान आर्हतनी पूज करतां तो
दुमदेवतानी पूज करवाने प्रसंगन योग्य लेणाय छे. ओटला भाटे आ लतना
प्रसंगनी बात मानवी ओ मनमानी कल्पना मात्र छे. केभडे आ समये
द्रौपदी पूर्वभवमा डरेला निदाननी क्षण प्राप्तिना अभावने लीधे सम्यक्त्वथी
रहित लनी गने ओधी स्थितिमां इच्छित क्षण प्राप्ति भाटे तेने कामदेवनी
पूज करवाने इच्छा थाय डे तेनाधी । वरुध्द क्षण आपनार उन लगवाननी
पूजनी ? आ लतने विचार करवा योग्य बात छे. लेनी पूज करवामां आवे छे.
तेने न वंदना करवामां आवे छे. पूज तो दुम देवतारूप कामदेवनी थाय गने
वंदना वीतराग प्रभु श्री अर्हित देवनी करवामां आवे. आ लतनी मान्यता
तो लीधे रीतिमी पशु विरुध्द छे. आ प्रमाणे लधी रीते विचारतां आ
निध्द थाय डे डे द्रौपदीना उन प्रतिमां पूजन कथुं नथी.

वाचनान्तरे तु 'पहाया' इत्यादि, तथा-द्रौपद्याः प्रणिपातदण्डकमात्रं चैत्यवन्दनमभिहितं सूत्रे इति, तदप्यत्र पाठे सिद्धान्तविरुद्धपाठप्रक्षेपसंभावनां प्रद्योतयति । अत्र यद्वाच्यं तत्प्रागेव निगदितम् ।

मूलम्—तएणं तं दोवइरायवरकण्ठं अंतेउरियाओ सठ्वा-
लंकारविभूसियं करेति किं ते ? वरपायपत्तणेउरा जाव चेडिया-
चक्कवालमयहरगविंदपरिविखत्ता अंतेउराओ पडिणिकखमइ-
पडिणिकखमित्ता जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव चाउ-
ग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता किड्ढावियाए
लेहियाए सद्धिं चाउग्घंटे आसरहं दुरूहइ, तएणं से धट्टज्जुणे
कुमारे दोवईए कण्णाए सारत्थं करेइ, तएणं सा दोवई राय-
वरकण्णा कंपिल्लपुरं नयरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सयवरमंडवे तेणेव
उवागच्छइ उवागच्छित्ता रहं ठवेइ रहाओ पच्चोरुहइ पच्चोरु-

अभयदेव सूरि ने स्वरचित वृत्ति में जो यह कहा है कि एक वाचना में "जिनपडिमाणं अचणं करेइ" दूसरी अन्य वाचना में "पहाया इत्यादि-तथा द्रौपद्याः प्रणिपात दण्डकमात्रं चैत्यवन्दनमभिहितं सूत्रे इति" सो यह उनका कथन इस बात की संभावना को प्रकट करता है कि इस पाठ में सिद्धान्त से विरुद्ध पाठ का प्रक्षेप हुआ है । इस विषय में जो कुछ हमें समाधान करना था वह हमने पहिले ही कर दिया है ।

॥ द्रौपदी पूजाचर्चा समाप्त ॥

अभयदेवसूरिने स्वरचित वृत्तिमां ने ओ कहुं छे. के ओक वाचनामां
"जिनपडिमाणं अचवणं करेइ" णी ७ वाचनामां "पहाया इत्यादि-तथा द्रौपद्याः
प्रणिपातदण्डकमात्रं चैत्यवन्दनमभिहितं सूत्रे इति ।" ते। तेभनुं आ कथन आ
वातने प्रकट करे छे के आ पाठमां सिद्धान्तथी विरुद्ध ओवा पाठने प्रक्षेप
थये छे. आ [वने ने क'थं योग्य स्पष्टीकरण करवानुं छेतुं ते अमे पडैलां
करी दीधुं छे.

द्रौपदी पूजा अर्थाः समाप्त.

हिता किड्वावियाए लोहियाए य सद्धिं सयंवरमंडपं अणुप-
 विसइ अणुपविसित्ता करयल तेसिं वासुदेवपामुक्खाणं बहूणं
 रायवरसहस्साणं पणामं करेइ, तएणं सा दोवई रायवर० एणं
 महं सिरिदामगंडं किं ते ? पाडलमल्लियचंपय जाव सत्तच्छया-
 ईहिं गंधद्वाणिं सुयंतं परमसुहफासं दरिसणिज्जं गिणहइ, तएणं
 सा किड्वाविया जाव सुरूवा जाव वामहत्थेणं चिह्लगं दप्पणं
 गहेऊण सललियं दप्पणसंकंतबिंबसंदंसिए य से दाहिणेणं
 हत्थेणं दरिसए पवररायसीहे फुडविसयविसुद्धरिभियगंभीर महु-
 रभणिया सा तेसिं सव्वेसिं पत्थिवाणं अम्मापिऊणं वंससत्तसा-
 मत्थगोत्तविक्रंतिकंति बहुविह आगसमाहप्परूवजाव्वणगुण-
 लावणकुलसीलजाणिया कित्तणं करेइ, पढमं ताव वणिहपुंगवाणं
 दसदसारवीरपुरिसाणं तेलोक्कवलवगाणं सत्तुसयसहस्समाणा-
 वमद्दगाणं भवसिद्धिपवरपुंडरीयाणं चिह्लगाणं वलवीरियरूव-
 जाव्वणगुणलावन्नकित्तिया कित्तणं करेइ, ततो पुणो उग्गसेण-
 माईणं जायवाणं, भणइ य—सोहग्गरूवकलिए वरेहि वरपुरिस-
 गंधहत्थीणं । जो हु ते होइ हिययद्दओ, तएणं सा दोवई
 रायवरकन्नगा बहूणं रायवरसहस्साणं मज्झं मज्झेणं समतिच्छ-
 माणीं पुव्वकयणियाणेणं चोइज्जमाणीं २ जेणेव पंच पंडवा
 तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता ते पंचपंडवे तेणं दसद्ववण्णेणं
 कुमुमदामेणं आवेढियपरिवंढियं करेइ करित्ता एवं वयासी-
 एणं मए पंच पंडवा वरिया, तएणं तेसिं वासुदेवपामुक्खाणं

बहूणि रायसहस्साणि महयाः सदेणं उग्घोसेमाणाः एवं वयंति
सुवरियं खलु भो ! दोवइए रायवरकन्नाएः त्तिकट्टु सयंवरमंड-
वाओ पडिनिक्खमंति पडिनिक्खमित्ता जेणेव सयाः आवासा
तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता, तएणं धट्टज्जुण्णे कुमारे पंच
पंडवे दोवइं रायवरकण्णं चाउग्घटं आसरहं दुरूहइ दुरूहित्ता
कंपिह्लपुरं मज्झं मज्झेणं जाव सयं भवणं अणुपविसइ, तएणं
दुवए राया पंच पंडवं देवइं रायवरकन्नं पट्टयं दुरूहेइ दुरूहित्ता
सेया पीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ मज्जावित्ता अग्गिहोमं कारवेइ
पचण्हं पंडवाणं दोवइए य पाणिग्गणं करावेइ तएणं
से दुवए राया दोवइए रायवरकण्णयाए इमं एयारूवं
पीईदाणं दलयइ, तं जहा - अट्टु हिरण्णकोडीओ जाव अट्टु
पेसणकारीओ दासचेडीओ, अण्णं च विउलं धणकणग जाव
दलयइ तएणं से दुवए राया ताइं वासुदेवपामोक्खाणं विउ-
लेणं असण्ठ वत्थगंध जाव पडिविसज्जेइ ॥ सू० २१ ॥

टीका—‘ तएणं तं ’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु तां द्रौपदीं राजवरकन्यां
‘ अंतेउरियाओ ’ आन्तः पुरिक्यः= अन्तःपुरवर्तिन्यः स्त्रियः सर्वालंकारविभू-
षितां कुर्वन्ति, ‘ किं ते ’ तत्-तत्सौन्दर्यं किं वर्णयामि तद् वाचाऽभिलषितुं न

तए णं तं दोवइं रायवरकन्नं इत्यादि ।

टीकार्थ—(तए णं) इसके बाद (तं दोवइं रायवरकन्नं) उस राजवर कन्या
द्रौपदी को (अंतेउरियाओ सर्वालंकारविभूषियं करेति) अतः पुर
की स्त्रियों ने समस्त अलंकारों से विभूषित किया । (किंते) उस समय

तएणं तं दोवइं रायवरकन्नं इत्यादि—

टीकार्थ—(तए णं) त्याःपथी (तं दोवइं रायवरकन्नं) ते राजवर कन्या
द्रौपदीने (अंते उरियाओ-सर्वालंकारविभूषियं करेति) रणुवासनी स्त्रीयेऽप्ये
समस्त अलंकारैश्च शशुगारी. (किंते) ते समयता तेना सौंदर्यं तुं वल्लुन

शक्यत इत्यर्थः । ' वरपायपत्तणेउरा ' वरपादपासनूपुरा=वरणस्थापित प्रशस्त-
 नूपुरा यावत्-चेडियाचक्रवालमयहरगविन्दपरिक्लिप्ता चेडिकाचक्रवालमहतरक
 वृन्देन-अनेकदासीमहत्तरसमूहेन परिक्षिप्ता-परिवृता, अन्तःपुरात् प्रतिनिष्क्रामति
 -निः सरति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव वाह्या=वहिः प्रदेशस्था ' उवट्टाणसाला ' उप-
 स्थानशाब्दा=आस्थानमण्डप-समामण्डइत्यर्थः, यत्रैव चातुर्घण्टोऽश्वरथस्तत्रैवोपाग-
 च्छति, उपागत्य ' किड्ढावियाए ' क्रीडिकया-क्रीडनधात्र्या कीडइया कीडिकया-
 इत्याह ' लेहियाए ' इति लेखिकया=राजकुलवंशनामादिपरिचारिकया सार्ध

के उमके सान्दर्य का हम क्या वर्णन करें । वह वाणी द्वारा कहने के
 योग्य नहीं है अर्थात् वाणी से उसका वर्णन नहीं हो सकता है । (वर
 पायपत्तणेउरा जाव चेडियाचक्रवालमयहरगविन्दपरिक्लिप्ता अंते
 उगओ पडिणिक्रमइ) चरणों में स्थापित किये गये हैं-पहिराये गये
 हैं-प्रशस्तनूपुर जिमको ऐसी वह द्रौपदी यावत् अनेक समझदार
 दामियों के सहोमहिम समूह से परिक्षिप्त होकर-अंतःपुर से बाहिर
 निकली । (पडिणिक्रमिक्ता जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव
 चाउग्वट्टे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता किड्ढावियाए लेहि-
 याए सद्धि चाउग्वट्टं आसरहं दुरुहइ) बाहिर निकलकर वह जहाँ
 बाहिर में समामंडप और उसमें भी जहाँ चारघंटों वाला अश्वरथ था
 वहाँ आई । वहाँ आकर वह अपनी क्रीडनधात्री के कि जो लेखिका
 राजकुल, वंश नाम आदि की परिचायिका थी साथ उस चारघंटोंवाले

आपणें उंची शीते करी शकिये वाणी वडे तेनुं वणुंन अशक्य छे अट्टे
 के वाणीनां अट्टी शक्ति नथी के तेना सौह्यनुं सचोए वणुंन करी शके.

(वरपायपत्तणेउरा जाव चेडियाचक्रवालमयहरगविन्दपरिक्लिप्ता अंतेउराओ
 पडिणिक्रमइ)

अणोमा जेणे सुंदर नूपुर धरियां छे अची ते द्रौपदी धणी अतुर दासी-
 संधी वीट्टाडनें रणुवासधी गडार नीडणी.

(पडिणिक्रमिक्ता जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव चाउग्वट्टे आसरहे तेणेव
 उवागच्छइ, उवागच्छिता किड्ढावियाए लेहियाए सद्धि चाउग्वट्टं आसरहं दुरुहइ)

अदार नीडणीने ते ल्यां अदारना सला-भउपमां आर घंटवाणे अश्व-
 रथ रनेा त्यां आची. त्यां आचीने ते पोताथी डीडन धात्री-के ले लेणिका
 राजकुल, वंश नाम वगैरेनी परिचारिका उनी-तेनी साथे ते आर घंटवाणा
 अश्वरथ उपर सवार थई गइ.

चातुर्घण्टमश्वरथं ' दुरुहइ ' दूरोहति=आरोहति । ततस्तदनन्तरं धृष्टद्युम्नः कुमारो द्रौपद्याः कन्यायाः ' सारथ्यं ' सारथ्यं-सारथिकर्म करोति, ततः खलु सा द्रौपदी राजवरकन्या काम्पित्यपुरस्य नगरस्य मध्यमध्येन यत्रैव स्वयंवरमण्डपस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य रथं स्थापयति रथात् प्रत्यवरोहति प्रत्यवरुह्य क्रीडिकया लेखिकया च सार्धं स्वयंवरमण्डपम् अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य करतलपरिगृहीत दशनखं शिरआवर्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा तेषां वासुदेवप्रमुखाणां बहूण राजवरसह-

अश्वरथ में सवार हो गई । (तएणं से धट्टज्जुण्णे कुमारे दोवईए कन्नाए सारथ्यं करेइ, तएणं सा दोवइ रायवरकण्णा कंपिल्लपुरं नयरं मज्झं-मज्झेणं जेणेव सयंवरमंडवे तेणेव उवागच्छइ) उस के सवार होते ही धृष्टद्युम्न कुमार ने उस द्रौपदी कन्या का सारथ्य किया-उसके रथ पर सारथि का काम किया-द्रौपदी के रथ को हांका । इस तरह धृष्टद्युम्न के द्वारा हांके गये रथ पर बैठी हुई वह राजवर कन्या द्रौपदी कांपित्य पुर नगर के बीच से होकर जहां स्वयंवर-मंडप था उस ओर चल दी । (उवागच्छित्ता रहं ठवेइ रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता किड्ढावियाए लेहियाए सद्धिं सयंवरमंडवं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता करयल तेसिं वासुदेवपामुक्खाणं बहूणं रायवरसहस्साणं पणामं करेइ) वहां पहुंचकर उसने रथ को खड़ा करवा दिया-रथके खड़े होते ही वह उससे नीचे उतरी, नीचे उतर कर वह उस लेखिका क्रीडन धात्री के साथ स्वयंवर मंडप में प्रविष्ट हुई । प्रविष्ट होकर के उसने अपने दोनों हाथों को जोड़ कर उन वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं को प्रमाण

(तएणं से धट्टज्जुण्णे कुमारे दोवईए कन्नाए सागथ्यं करेइ, तएणं सा दोवइ रायवरकण्णा कंपिल्लपुरं नगरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सयंवरमंडवे तेणेव उवागच्छइ)

कन्या के ते सवार थरुं गछं त्थारे कुमार धृष्टद्युम्ने ते द्रौपदी राजवर कन्याना रथ उपर जेसीने सारथीतुं काम सलाज्जु. आ प्रमाणे धृष्ट मन वडे हांकाभां आवेदा ते रथ उपर सवार थरुने ते राजवर कन्या द्रौपदी कांपित्यपुर नगरनी वरुये थरुने कन्यां स्वयंवर मंडप उतो त्या रवाना थरुं

(उवागच्छित्ता रहं ठवेइ रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता किड्ढावियाए लेहियाए सद्धिं सयंवरमंडवं अणुपविसइ, अणुवविसित्ता करयल तेसिं वासुदेव पामुक्खाणं बहूणं रायवरसहस्साणं पणामं करेइ)

त्यां पछेअंथीने तेणे रथने थोलावडाव्यो, कन्नारे रथ थोलेयो त्थारे ते रथ उपरथी नीचे उतरी, नीचे उतरीने ते लेखिका क्रीडन धात्रीनी साथे स्वयंवर मंडपमां प्रविष्ट थरुं. प्रविष्ट थरुने तेणे वासुदेव प्रमुख उल्लसे राजक्योने थोताना थरुने हाथ जेडीने नमस्कार कर्था.

न्नाणां प्रणामं करोति, ततः खलु सा द्रौपदी राजवरकन्या एकं महत् श्रीदामकाण्डं
 ' किं ते ' किं तत्-तत्सौन्दर्यसौगन्ध्यवर्णनं किं करोमि ? तद् अपूर्वमितिभावः ।
 ' पाटलमल्लियचंपय जाव सत्तच्छयाईहिं ' पाटलमल्लिकाचम्पक-यावत् सप्तच्छ-
 दादिभिः ' गंधद्वाणि ' गन्धध्राणि गन्धतृप्तिं ' सुयंतं ' मुञ्चत्=ददत् प्रकाशयदित्यर्थः
 परमसुखस्पर्शं दर्शनीयं गृह्णाति । ततः खलु सा क्रीडिका=क्रीडनधारी यावत्-
 मूर्तुपा जाव ' वामहस्त्येणं चिल्लगं दप्पणं ' यावत् वामहस्तेन चिल्लगं दर्पणम् अत्र
 यावच्छब्देनेद् बोध्यम्-साभावियघंसं चोद्धहजणस्स उस्सुयकरं विचित्तमणिरयण-
 यद्धच्छरुहं ' इति । स्वाभाविकघर्षणं=स्वाभाविको नैसर्गिको घर्षो घर्षणं यत्र स तथा
 तं दर्पणमित्यन्वयः । स्वभावादेव चिक्रणमित्यर्थः, तथा-चतुर्दशजनस्यौत्सुक्यकरं=
 तरुणलोकरय प्रेक्षणामिलापजनकं, तथा-विचित्रमणिरत्नवद्धच्छरुहं=विचित्रमणि-
 रत्नैर्बद्धः छरुहो-मुष्टि ग्रहणस्थानं, यस्य स तथा तं, तथा-' चिल्लगं ' देदीप्य-
 मानं, दर्पणं-वामहस्तेन " गहेउण " गृहीत्वा ' सल्लियं ' सललितं ' दप्पण-

किया ' (तए णं सा दोवई रायवरकन्ना एगं महं सिरिदामगंडं किंते ?
 पाटलमल्लियचंपय जाव सत्तच्छयाईहिं गंधद्वाणि सुयंतं परमसुहफासं
 दरिसणिज्जं जेण्हइ) इसके बाद उस राजवर कन्या द्रौपदी ने एक
 षट्हा विस्तृत श्री दामकांड-जिस की सुन्दरता और सुगंधि का हम क्या
 वर्णन करें-जो अपूर्व था-पाटक-गुलाब के पुष्पों से, मल्लिका-मोंघरा के
 पुष्पों से यावत् सप्तच्छद वृक्ष के पुष्पों के गंधा गया था, और जिस में
 से नासिका को तृप्ति करने वाली गंध निकल रही थी ।

जिसका स्पर्श परम सुखदायक था-तथा जो दर्शनीय था अपने हाथ
 में लिया (तएणं मा किट्ठाविया जाव सुख्वा जाव वामहस्त्येणं चिल्लगं-
 दप्पणं गहेउण सल्लिय दप्पणसंकेन विवसंदंमिए य से दाहिणेणं

(तए णं सा दोवई रायवरकन्ना एगं महं सिरिदामगंडं किं ते । पाटलम-
 ल्लिय चंपय जाव सत्तच्छयाईहिं गंधद्वाणि सुयंतं परमसुहफासं दरिसणिज्जं जेण्हइ)

त्याग्यथी ते राजवर कन्या द्रौपदीञ्चो ओह णहु मोटो लारे श्रीदामकांडने
 हे जेनी सुहतरानुं वर्णन धरि शके तेम नथी अने जे अपूर्व हुतो-पाटल
 सुवायना पुष्पोथी, मल्लिका-मोंघराणा पुष्पोथी, यम्पाना पुष्पोथी यावत्
 सप्तच्छद वृक्षना पुष्पोथी ते तैयार करवाभां आव्हे हुतो अने जेभांथी
 नासिकाने तृप्ति थाय तेवी सुवास प्रसरी रही हुती जेना स्पर्श अत्यंत
 सुखदायी तेमञ्च जे दर्शनीय हुतो-हाथमां लीघा.

(तएणं मा किट्ठा विया जाव सुख्वा जाव वामहस्त्येणं चिल्लगं दप्पणं गहे-
 उणं सल्लियं दप्पणसंकेन विवसंदंमिए य से दाहिणेणं हस्त्येणं दरिसए पवर-

संकंतविवसंदंसिए य ' दर्पणसंक्रान्तविम्बसंदर्शितान्=दर्पणे संक्रान्तानि यानि राज्ञां विम्बानि-प्रतिविम्बानि, तैः संदर्शिताः=प्रतिबोधितास्तांश्च, प्रवरराजसिंहान् सिंहसदृशशूरान् श्रेष्ठनृपान् दक्षिणेन हस्तेन ' से ' तस्याः द्रौपद्याः ' दरिसिए ' दर्शयति इह कर्मणः सम्बन्धमात्रविवक्षायां पष्ठी । तथा-' फुडविसयविसुद्धरिभियगंभीरमहुरभणिया ' स्फुटविशदविधुद्धरिभितगम्भीरमधुरभणिता= अर्थतः

हत्थेणं दरिसिए पवररायसीहे फुडविसयविसुद्धरिभियगंभीरमहुरभणिया सा तेसिं सव्वेसिं पत्थिवाणं अम्मापिऊणं वंससत्तसामत्थगोत्तविक्कंतिकंतियहुविहआगममहप्परुवजोव्वणगुणलावणं कुलजाणिया कित्तणं करेइ) इसके बाद उस क्रीडन धाय ने अपने हाथ में एक चमकता हुआ दर्पण लिया । यहां दर्पण के इन और विशेषणों का यावत् शब्द से ग्रहण हुआ है वे विशेषण ये हैं ' सामावियधंसं चोदहजणस्स उस्सुयकरं विचित्तमणिरयणवद्धच्छरुहं " इनका अर्थ इस प्रकार है-यह दर्पण स्वभावतः चिकना था । तथा तरुणजनों के चित्त में अपने को देखने की अभिलाषा का जनक था । मुष्टि से पकड़ने का जो इसका स्थान था वह विचित्र मणि-रत्नों से निर्मित था । उस दर्पण में जिन २ सिंह जैसे शूरवीर राजाओं के उस समय प्रतिविम्ब पड़े हुए थे उन प्रतिविम्बों को लेकर उस धायने उन श्रेष्ठ राजाओं को उस द्रौपदी के लिये अपने दक्षिण हाथ से बतलाया ! बतलाते समय उन्हें दिखाते समय-वह धात्री बिलकुल अर्थ की अपेक्षा स्फुट एवं वर्ण

रायसीहे फुडविसयविसुद्धरिभियगंभीरमहुरभणिया सा तेसिं सव्वेसिं पत्थिवाणं अम्मापिऊणं वंससत्तसामत्थगोत्तविक्कंतिकंतियहुविहआगममहाप्परुवजोव्वणगुणलावणं कुलजाणिया कित्तणं करेइ)

त्यारपथी ते डीउनधात्रीअे पोताना डायभां अेक यमकतो अरीसो दीधो. अडीं ' अरीसा ' भाटे य वत् शब्दथी नीचे लभ्या मुज्ज्ज विशेषणानुं पणु अडणु समज्जुं लेधअे (सामावियधंसं चोदहजणस्स उस्सुयकरं विचित्तमणिरयणवद्धच्छरुहं) आ विशेषणानुं स्पष्टीकरणु आ प्रभाणु छे-ते अरीसो स्वाभाविक रीते दीसो डतो, तेमज्ज तरुणु स्त्रीअेना चित्तमां तेने लेवानी सडणु लावे धरुअा नअत थाय तेथो डतो. ते अरीसानो डथो विचित्र मण्णीरत्तोथी जडेवो डतो. ते अरीसामां सिंडे वेवा शूरवीर जे जे राजअो देभाया ते धात्रीअे ते राजअेने पोताना जमणु डायथी सडेत करीने अताव्या. अतावती वअने अने समज्जवती वअते ते धाय अर्थनी अपेक्षाथी

स्फुटं, वर्णतो निजदं स्फुटविशदं-गन्धार्थदोषरहितं, रिभितं-स्वरयुक्तं गम्भीरं-
 मेघध्वनिवत्, मधुरं-प्रियं श्रवणसुखदं, भणितं भाषित यस्याः क्रीडिकायाः सा
 तथा, सा क्रीडिका तेषां सर्वेषां पार्यिवानां ' अम्मापिऊणं ' मातापित्रोः
 ' वंससत्तसामत्थगोत्तविक्रंतिकंतिवहुविहआगममाहप्पस्वजोव्वणगुणलावणकुलसी-
 लजाणिया ' वंससत्त्वसामत्थ्यगोत्रविक्रान्तिकान्तिवहुविभागममाहात्म्यरूपयौवनगु-
 णलावण्यकुलजीलहायिका=वंशं-हरिवंशादिकं, सत्त्वम्-आपत्सु धैर्यम् सामर्थ्यं=
 वलं गोत्रं=गौतमगोत्रादि, विक्रान्ति-विक्रमं, कान्ति-प्रभां, बहुविभागं अनेक-
 शास्त्रविज्ञानं, माहात्म्यं-महालुभावतां, तथा-रूपयौवनगुणलावण्यानि च तथा-
 कुलं-वंशस्यान्तरभेदं, जीलं च-स्वभावं च जानाति या सा ' कित्तणं ' कीर्तनं=
 वंशादिवर्णनं करोति स्म । प्रथमं तावत्-' वण्हिपुंगवाणं ' वृष्णिपुङ्गवानां ' दस-
 दमारवीरपुग्गिमाणं ' दशानां दगार्हाणां समुद्रविजयादीनां वीरपुरुषाणां, ' तेल्लो-
 कवलवगाणं ' त्रैलोक्यवलवतां ' सत्तुसयसहस्समाणावमद्दगाणं ' शत्रुशतसहस्रमानाव-
 मर्दकानां, तथा-' भवसिद्धिपवरपुंडरीयाणं ' भवसिद्धिकवरपुण्डरीकाणां=भवति-

की अपेक्षा विशद ऐसी विशुद्ध-गन्धार्थ दोष रहित-स्वर युक्त मेघ
 ध्वनि न्यमान गंभीर मधुर वाणी से भाषण करती जाती थी । उस
 भाषण में वह इन सब राजाओं के माता, पिता, वंश, सत्त्व, सामर्थ्य,
 गोत्र, विक्रम, कान्ति, अनेक शास्त्रों का ज्ञातृत्व, माहात्म्य, तथा रूप,
 यौवन गुण, लावण्य, कुल एवं जील की ज्ञाना होने के कारण इन सब
 का वर्णन करती जाती थी । वंश से हरिवंश आदि का और कुल
 से वंशके अन्तर भेद का कथन होता है । (पदमं ताव वण्हिपुं
 गवाणं दसदमारवीरपुग्गिमाणं तेल्लोकवलवगाणं सत्तुसयसहस्समाणाव
 मद्दगाणं भवसिद्धिपवरपुंडरीयाणं चिल्लगाणं वलवीरियस्वजोव्वणं

शब्दम रदुट् अने वार्त्तनी अपेक्षाथी विशद ऐवी विशुद्ध ऐट्त्वे डे शब्दार्थ
 दोषरहित-स्वरयुक्त, मेघध्वनि ऐवी गंभीर मधुरवाणीनुं उच्चारणु करी रही
 रती. जोताना भाषणु वडे ते धाय णधा सन्तऐतना माता पिता वंश, सत्त्व,
 सामर्थ्य, गोत्र, विक्रम, कान्ति, शास्त्रज्ञान, माहात्म्य तेमन् इय, यौवन, गुण,
 लावण्य, कुल अने शील वगेरेनी भाषणतमां लक्षणर हुती ऐट्त्वे णधुं वार्त्तन
 इन्ती रती रती. वंशथी हरिवंश वगेरे अने कुणथी वंशने अन्तर लेद्धनुं
 उक्तं ताव डे

पदमं ताव वण्हिपुंगवाणं दसदमारवीरपुग्गिमाणं त्रैलोक्यवलवगाणं सत्तु-
 सयसहस्रमाणावमद्दगाणं भवसिद्धिपवरपुंडरीयाणं चिल्लगाणं वलवीरियस्व-

भाविनी सिद्धिर्येषां, ते भवसिद्धिकास्तेषां मध्ये वरपुण्डरीकाणीव ये श्रेष्ठास्ते तथा तेषां, तथा 'चिह्नगणं' तेजसा देदीप्यमानानां 'चिह्नग' इति देशी शब्दः । तथा— 'बलवीरियरूत्रजोव्वणगुणलावणकित्तिया' बलवीर्यरूपयौवन-गुणलावण्य कीर्तिका=बलं-कायिकं, वीर्यम्-उत्साहः, रूपं-सौन्दर्यं, यौवनं-तारुण्यं, गुणान्-औदार्यगाभीर्यादीन्, लावण्य-यौवनवयोजन्यं कान्तिविशेषं, कीर्तयति या सा तथा, सा क्रीडिकाधायी कीर्तनं करोति स्मेत्यर्थः । अत्र पूर्वोक्तमपि विशेषणं किञ्चिद् विशेषबोधनार्थं पुनः कथितम् ।

ततस्तदनन्तरं पुनः सा क्रीडनधायी 'उगसेणमार्इणं जायवाणं' उग्रसेनादीनां यादवानां बलवीर्यादि कीर्तनं करोति कृत्वा भणति च=सा धायी द्रौपदीं

गुणलावण्य कित्तियाकित्तणं करेइ) सबसे पहिले उस क्रीडन धायी ने वृष्णिवंश के पुंगव समुद्रविजय आदिदश दशार्हों के कि जो त्रैलोक्य में भी विशिष्ट बलशाली माने जाते थे, लाखों शत्रुओं के भान को मर्दन करने वाले थे, भवसिद्धिक पुरुषों में जो श्रेष्ठ कमल के जैसे माने गये हैं, और जो अपने स्वाभाविक तेज से सदा दमकते रहते थे बल का, वीर्य का, रूप का, यौवन का, गुणों का, लावण्य का, कीर्तिका होने के कारण कीर्तन-वर्णन किया । शारीरिक शक्तिका नाम बल, उत्साह का नाम वीर्य, सौन्दर्य का नाम रूप तारुण्य का नाम यौवन है । औदार्य गांभीर्य आदि गुण है । यौवन वय से जन्य जो कान्ति शरीर में आती है वह लावण्य है (तओ पुणो उगसेणमार्इणं जायवाण भणइ य सोहग्गख्वकलिए वरेहि वर पुरिसगंधहत्थीणं जो हु ते होइ हिययदइओ तएणं तं दोवई रायवरकन्नगा बहूणं रायवरसहस्साणं मज्झं

जोव्वणगुणलावण्यकित्तिया कित्तणं करेइ)

ते क्रीडन धायीमे सौ पडेतां वृष्णि वंशमां पुंगव (श्रेष्ठ) समुद्र विजय वगेरे दश दशार्होतुं-के जेओ त्रणे दोओमां पणु विशिष्ट शक्तिशाली गणुता डता, लाणे शत्रुओना भानतुं मर्दन करनारा डता, भवसिद्धिक पुरषोमा जेओ कमणनी जेम श्रेष्ठ गणुता डता अने जेओ पोताना स्वाभाविक तेजथी डमेशां प्रकाशता रडेता डता, भण, वीर्य, रूप, यौवन, गुणो, लावण्य, कीर्ति वगेरेथी संपन्न डता-वर्णन कथुं. शारीरिक शक्तिनुं नाम भण, उत्साहनुं नाम वीर्य, सौन्दर्यनुं नाम रूप अने तारुण्यनुं नाम यौवन छे. औदार्य, गांभीर्य गुणो छे. युवावस्थामां जे शरीर अतिवाणुं थाय छे तेने लावण्य कडेवामां आवे छे.

(तओ पुणो उगसेणमार्इणं जायवाणं भणइ य सोहग्गख्वकलिए वरेहि वरपुरिसगंधहत्थीणं जो हु ते होइ हिययदइओ तएणं तं दोवई रायवरकन्नगा

पुनराह— 'सोहृगख्वकल्लिए' इत्यादि, एवमत्रान्वयमुखेनन्याख्या—'वरपुरि-
मगंधहृत्वीणं' वीरपुरुषगन्धहस्तिना=हस्तिषु गन्धहस्तिन इव ये विशिष्टगुणसद्भा-
वात् पुरुषेषु सर्वतः श्रेष्ठास्ते वरपुरुषगन्धहस्तिनस्तेषां मध्ये 'सोहृगख्वकल्लिए'
सौभाग्यरूपकलितः—अतिशयेन सौभाग्यसौन्दर्यसमन्वितः, यः खलु ते तव हृदय-
दयितः=हृदयप्रियः 'होइ' भवति, तं 'वरेहि' वरय=पतिभावेन स्वीकुरु इत्यर्थः ।

ततस्तदनन्तरं खलु द्रौपदी राजवरकन्या बहूनां राजवरसहस्राणां मध्यमध्येन
'ममच्छमाणी २' समतिक्रामन्ती=गच्छन्ती 'पुव्वकयणियाणेणं' पूर्वकृतनि-
दानेन=सुकुमारिकाभवे भर्तृपञ्चकाभिलाषरूपं निदानं कृतं तेन, 'चोइज्जमाणी २'
प्रेर्यमाणा २ यत्रैव पञ्च पाण्डवास्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य तान् दशार्धवर्णेन-
पञ्चवर्णेन कुसुमदाम्ना 'आवेदियपरिवेदिए' आवेष्टितपरिवेष्टितान् करोति,
मज्जेणं ममतिच्छमाणी २ पुव्वकयणियाणेणं चोइज्जमाणी २ जेणेव
पंचपंडवा तेणेव उवागच्छइ) इसके बाद उस क्रीडन धाय ने यादव
वगवाले उग्रसेन आदि यादवों के बलवीर्य आदि का वर्णन किया—
उसने द्रौपदी से कहा যে जैसे हाथियों में गंधहस्ती श्रेष्ठ होता है उसी
तरह ये पुरुषों में विशिष्ट गुणोंके सद्भाव के कारण सर्व प्रकार से श्रेष्ठ
हैं—उनके बीच में जो तुझे सौभाग्यरूप संकलित प्रतीत हो और तेरे
हृदय को प्याग लगे—उसे तू पतिरूप से बरले । इसके बाद वह राजवर
कन्या द्रौपदी उन हजारों राजाओं के बीच से होती हुई सुकुमारिका के
भव में कृत निदान के प्रभाव से चार २ प्रेरित होकर जहां पांच पांडव
थे—वहां पहुँची—(उवागच्छित्ता ते पंच पांडवे तेणं दसद्ववण्णेणं कुसुम-
दामेणं आवेदियपरिवेदियं करेइ, करित्ता एवं वयासी, एणं मए पंच
वर्णं राजवरसहस्राण मज्जेणं मज्जेणं ममतिच्छमाणी २ पुव्वकयणियाणेणं चोइ-
ज्जमाणी २ जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ)

त्यापशी डीएन धात्रीओ उअमेन वगेरेतुं वधुंन उथुं अने कथु डे-
आपीओभा केम गंध हस्ती उत्तम गण्णाय छे तेमए पुइयोभां अविशेष
अण्णान ओवा ओओ णभी रीते आरा छे, आ णधामां तने ने सौभाग्य-
शामी आगता डाय अने तने ओओ गभता ऐय तेओने तुं पति इपमां
नीडनी दे त्यापशी ते राजवर कन्या द्रौपदी ते डउतरे राजओनी वओथी
यमए यइने पाताना सुकुमारिकाना लवमां इरेवा अमिलापथी प्रेगइने न्यां
पाच पाटवे इना त्यां पडिंणी।

(उवागच्छित्ता ते पंच पांडवे तेणं दसद्ववण्णेणं कुसुमदामेणं आवेदिय
परिवेदियं करेइ, करित्ता एवं वयासी, एणं मए पंचपंडवा चरिया, तएणं

कृत्वा एवमवादीत्-एते खलु पञ्च पाण्डवा मया वृता इति । ततः खलु ' ताइं वासुदेवपामोक्त्वाइं बहूणि रायसहस्साणि ' तानि वासुदेवप्रमुखाणि बहूनि राज-सहस्रसंख्यका वासुदेवप्रमुखा राजान इत्यर्थः । महता २ शब्देनोद्धोपयन्त एवं वदन्ति-सुवृत्तं खलु भोः ! द्रौपद्या राजवरकन्यया इति कृत्वा-इत्युक्त्वा स्वयंवर-मण्डपात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, निर्गच्छन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव स्वका स्वका आवा-सास्तत्रैवोपागच्छन्ति । ततः खलु धृष्टद्युम्नः कुमारः पञ्च पाण्डवान् द्रौपदीं राजवरकन्यां चातुर्घण्टमश्वरथं ' दुरूहइ ' दूरोहयति=आरोहयति दूरोह्य काम्पि-

पंडवा वरियो, तएणं तेसिं वासुदेवपामोक्त्वाणं बहूणि रायसहस्साणि, महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयंति, सुवरियं खलु भो ! दोवइए रायवरकन्नाए त्ति कइहु सयंवरमंडवाओ पडिनिकखमंति, पडि-निकखमित्ता जेणेव सया २ आवासा तेणेव उवागच्छइ) वहां पहूंच कर उसने उन पांचो पांडवों को उस पंचवर्णवाली माला से अवेष्टिन परिवेष्टिन कर दिया । करके फिर वह इस प्रकार कहने लगी-ये पांच पांडव मैंने पतिरूप से वर लिये हैं । इसके बाद उन वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं ने बड़े २ जोर के शब्दों से ऐसा कहा इस राजवर कन्या द्रौपदीने बहुत अच्छे वर वरे ऐसा कहकर वे उस स्वयंवर मंडप से बाहिर हो गये । बाहिर आकर फिर वे जहां अपने २ आवास स्थान थे वहां चले आये । (उवागच्छित्ता तएणं धट्ज्जुण्णे कुमारे पंच पंडवे दोवइं रायवरकण्णं चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ, दुरूहित्ता कपिल्लपुरं

तेसिं वासुदेवपामोक्त्वाणं बहूणि रायसहस्साणि, महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयंति, सुवरियं खलु भो ! दोवइए रायवरकन्नाए २ त्ति कइहु सयंवरमंड-वाओ पडिनिकखमंति, पडिनिकखमित्ता जेणेव सया २ आवासा तेणेव उवागच्छइ)

त्यां पडोंशीने तेणे ते पांथ पांडवेने पांथ वण्णवाणी भाणाथी अवे-ष्टित, परिवेष्टित करी दीधा. त्यारपछी तेणेने कडेवा लागी के डे पांथ पांडवे । मे' तमने पति रुपमां वरी दीधा छे. त्यारणाह ते वासुदेव प्रमुख डमरे राजणेअे अहु भोटा सादथी आ प्रभाणे कहुं के आ राजवर कन्या द्रौपदीअे अहु ज सारा वरे पसंह कर्या छे. आस कडीने तेणे सवे स्वयंवर मंडपमांथी अडार नीकणी गया. अडार नीकणीने तेणे न्यां पोताना आवास स्थानो डतां त्या जता रद्या.

(उवागच्छित्ता तएणं धट्ज्जुण्णे कुमारे पंचपंडवे दोवइं रायवरकण्णं चाउ-ग्घंटं आसरहं दुरूहइ, दुरूहित्ता कपिल्लपुरं मज्झं मज्झे णं जाव सयं भवणं अणु-

ल्यपुत्रस्य मध्यमध्येन यावत् स्वर्कं भवनमनुप्रविशति, ततः खलु द्रुपदो राजा पञ्च पाण्डवान् द्रौपदीं राजवरकन्यां 'पट्टयं' पट्टकं=पट्टकोपरि 'दुरूहेइ' दूरो-द्वयति=आरोहयति, दूरोह्य श्वेतपीतैः कलशैः 'मज्जावेइ' मज्जयति=स्नपयति अग्निहोमं विवाहविधिनाऽग्नीं होमं कारयति, पञ्चानां पाण्डवानां द्रौपद्याश्च पाणि-ग्रहणं कारयति, अत्र पञ्चानां पाण्डवानामिति सम्बन्धसामान्ये पठ्ठी । ततः खलु स द्रुपदो राजा द्रौपद्या राजवरकन्यायाः इममेतद्रूपं प्रीतिदानं यौतुकदानं ददाति,

मज्जं मज्जेणं जाय सयं भवणं अणुपविसइ, तण्णं दुवए राया पंच पंडवे दोवटं रायवरकन्यं पट्टयं दुरूहेइ, दुरूहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावित्ता अग्निहोमं कारवेइ, पंचणं पंडवाणं दोवइए य पाणिगहणं करावेइ,) इसके बाद वृष्टद्युम्नकुमार ने उन पांच पांडवों को एवं राजवर कन्या द्रौपदी को चारघंटों से युक्त उस अश्वरथ पर बैठाया-बैठाकर कांपिल्यपुर नगर के बीच से होता हुआ वह जहां अपना भवन था वहां आया वहां आकर वह उसमें उन सब के साथ प्रविष्ट हुआ । इसके बाद द्रुपद राजा ने उन पांचों पांडवों को और राजवर कन्या उस द्रौपदी को एक पट्टक पर बैठा दिया-बैठाकर फिर उसने उनका श्वेत पीत कलशों से चांदी सोने के घड़ों से-अभिषेक करवाया अभिषेक करवा कर फिर उसने अग्नि होम करवाया-और उसकी माश्री पूर्वक पांचों-पांडवों के साथ अपनी कन्या द्रौपदी का पाणि ग्रहण संकार करवा दिया । (तण्णं से दुवए राया दोवइए राय-

पविसइ, तण्णं दुवए राया पंच पंडवे दोवइं रायवरकन्यं पट्टयं दुरूहेइ, दुरूहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ मज्जावित्ता अग्निहोमं कारवेइ, पंचणं पंडवाणं दोवइए य पाणिगहणं करावेइ)

त्यारपथी वृष्टद्युम्न कुमारे ते पांच पांडवोने अने राजवर कन्या द्रौपदीने साथ घंटवाणा ते सम्बन्ध उपर जेसाउथा अने जेसाडीने इपिन्द्रपुर नगरनी पन्धे घटने गया पोतातु भवन इतुं त्या गया. त्यां जईने तेओ अयें तेमां प्रविष्ट थया. त्यारपथी इपिन्द्र राजाते ते पांचे पांडवोने अने राजवर कन्या ते द्रौपदीने ओइ पट्टक उपर जेसाडी दीथा अने जेसाडीने तेहे तेमनेो मईइ, अने पीणा इणशोथी-ओइके डे आंठी अने मोनाना इणशोथी अन्वियेः इणवराओये अन्वियेइ इरायाने तेहे अग्निहोम इणवराओये अने तेनी माश्रीमां पोतानी कन्या द्रौपदीने इस्तभेगाप तेओनी साथे इरायो दीथि

(तण्णं से दुवए राया दोवइए रायवरकन्याया इमं एयाह्वं प्रीतिदानं

तद् यथा-अष्ट हिरण्यकोटीः, यावत्=अष्ट रजतकोटी, अष्ट सुवर्णकोटीः, अष्ट 'पेसणकारीओ' प्रेषणकारिणीः, आज्ञाकारिणीः दासचेटीः-दासपुत्रीः, अन्नं च विपुलं धनकनक-यावत् धनं-गणिमादिकं, कनकम् अघटितस्वर्णं, यावच्छब्देन-रत्ननि-कर्केतनादीनि, मणयश्चन्द्रकान्ताद्याः मौक्तिकानि च शङ्खश्च प्रतीत एव शिलाप्रवालानि च विद्रुमाणि रक्तरत्नानि-पद्मरागादीनि तान्येव सद् विद्यमानं यत् सारं=प्रधानं स्वापतेयं द्रव्यं तद् ददाति स्म ।

ततः खलु स द्रुपदो राजा तान् वासुदेवप्रमुखान् बहुसहस्रसंख्यकान् राज्ञः विपुलेन अशनपानस्वाद्यस्वाद्येन भोजयति, भोजयित्वा वस्त्रगन्धादिभिर्यावत् सत्कारयति संमानयति, सत्कार्यं संमान्य प्रतिविसर्जयति ॥ सू० २२ ॥

चरकणयाए इमं एयाख्वं पीईदाणं दलयइ, तं जहा-अट्टहिरण्यकोडीओ जाव अट्टपेसणकारिओ दासचेडीओ, अण्णं च विउलं-धणकणग जाव दलयइ, तएणं से दुवए राया ताई वासुदेव पामोक्खाणं विउलेणं असण ४ वत्थगंध जाव पडिविसज्जेइ) इसके बाद द्रुपद राजाने राजवर कन्या उस द्रौपदी के लिये इतना इस प्रकार प्रीति दान दिया आठ हिरण्य कोटि-चांदी के बने हुए आठ करोड आभूषण, सुवर्ण के बने हुए आठ करोड आभूषण यावत् आज्ञा कारिणी ८ आठ दासियों और भी बहुत सा गणिमादिक रूप धन, अघटित सुवर्ण, कर्केतनादि रत्न, चन्द्रकान्त आदि मणि, मौक्तिक, शंख, विद्रुम, पद्मरागादि रक्त रत्न । यह सब सारभूत द्रव्य उसके लिये प्रदोन किया । इसके बाद द्रुपदराजा ने उन वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं को अशन, पान, स्वाद्य एवं स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार एवं वस्त्र गंध आदि से सत्कृत सन्मानित कर अपने यहां से विदा कर दिया ॥ सू० २२ ॥

दलयइ, तं जहा अट्ट हिरण्यकोडीओ जाव अट्ट पेसणकारीओ दासचेडीओ, अण्णं च विउलं धणकणग जाव दलयइ, तएणं से दुवए राया ताई वासुदेव पामोक्खाणं विउलेणं असण ४ वत्थ गंध जाव पडिविसज्जेइ)

त्यारपथी द्रुपद राज्ञे राजवर कन्या द्रौपदीने आ प्रमाणे प्रीतिदान आभ्युं के आठ हिरण्य-कोटि-चांदीना आठ करोड आभूषणो यावत् आज्ञामा रडेनारी आठ दासीओ अने भीष्मं पणु धणुं गणुिम वगेरे ३५. धन, अघटित सुवर्ण, कर्केतन वगेरे रत्न, चन्द्रकान्त वगेरे मणि, मौक्तिक, शंख, विद्रुम, पद्मराग वगेरे रक्त रत्नो आभ्या. आ षधुं सारभूत धन द्रौपदीने आभ्युं. त्यारपथी द्रुपद राज्ञे ते वासुदेव प्रमुख उल्लरो राज्ञोने अशन, पान, आद्य, अने स्वाद्य ३५ तार नतना आहारो अने वस्त्र, गंध वगेरेथी सत्कृत सन्मानित करीने पोताना नगरथी विहाय कथा. ॥ सूत्र २२ ॥

मूलम्—तएणं से पंडू राया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं
 राय० करयल एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! हत्थि-
 णाउरे नयरे पंचण्हं पंडवाणं दोवइए य देवीए कल्लाणकरे
 भविस्सइ तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! ममं अणुगिण्हमाणा
 अकालपरिहीणं सुसोसरह, तएणं वासुदेवपामोक्खा पत्तेयं२
 जाव पहारेत्थ गमणाए । तएणं से पंडुराया कोडुंबियपुरिसे
 सदा० २ एवं वयासी-गच्छहणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! हत्थि-
 णाउरे पंचण्हं पंडवाणं पंच पासायवडिसए कारेह अब्भु-
 ग्गयमृसिय वण्णओ जाव पडिरूवे, तएणं ते कोडुंबियपुरिसा
 पडिसुणेंति जाव करावेंति, तएणं से पंडुए पंचहिं पंडवेहिं
 दोवइए देवीए सद्धिं हयगयसंपरिवुडे कंपिल्लपुराओ पडि-
 निक्खमइ२ जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए, तएणं से
 पंडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता
 कोडुंबि० सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे
 देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरस्स नयरस्स वहिया वासुदेवपा-
 मुक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे कारेह अणेगखंभसय
 तेहेव जाव पच्चप्पिणंति, तएणं ते वासुदेवपामोक्खा वहवे
 रायसहस्सा जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागच्छइ, तएणं
 से पंडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता
 हट्टुट्टे ण्हाए कयवलि० जहा दुवए जाव जहारिहं आवासे
 दलयइ, तएणं ते वासुदेव पा० वहवे रायसहस्सा जेणेव

सयाइं२ आवासाइं तेणेव उवा० तहेव जाव विहरंति, तएणं से पंडुराया हत्थिणाउरणयरं अणुपविसइ अणुपविसित्ता कोडुंबिय० सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-तुब्भेणं देवाणु-
प्पिया ! विउलं असण४ तहेव जाव उवणेति, तएणं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे राया पहाया कयवलिकम्मा तं विउलं असणं४ तहेव जाव विहरंति, तएणं से पंडुराया पंच पंडवे दोवइं च देविं पट्टयं दुरुहेइ दुरुहित्ता सेयपी-
एहिं कलसेहिं पहावेति पहावित्ता कल्लाणकारि करेइ करित्ता ते वासुदेवपामोक्खे बहवे रायसहस्से विउलेणं असण४ पुप्फवरथेणं सक्कारेइ सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ, तएणं ताइं वासुदेवपामोक्खाइं बहूहिं जाव पडिगयाइं ॥ सू० २३ ॥

टीका-‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु पाण्डू राजा तेषां वासुदेव-
प्रमुखाणां बहूनां राजसहस्राणां करतलपरिवृष्टीतं दशनखं शिर आवर्तं मस्तकेऽञ्जलिं
कृत्वा एवमवादीत्-एवं खलु हे देवानुपियाः ! इस्तिनापुरे नगरे पञ्चानां पाण्ड-
वानां द्रौपद्याश्च देव्याः कल्याणकरो भविष्यति तत्-तस्मात् यूयं खलु हे देवानु-
पियाः मामनुगृह्णतः, अकालपरिहीनं=कालविलम्बरहितं-शीघ्रं समवसरत=आग-

‘ तएणं से पंडुराया ’ इत्यादि ।

टीकार्थ-(तएणं) इसके बाद (से पंडुराया) उस पांडुराजा ने (तेभिं
वासुदेव पामोक्खा णं) उन वासुदेव प्रमुख (बहूणं राय० करयल
एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया । हात्थिणाउरे नयरे पंचणं पंडवाणं
दोवइए देवीए कल्लाणकरे भविस्सइ तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! मम

तएण से पंडुराया इत्यादि—

टीकार्थ-(तएण) त्या०प० (से पंडुराया) ते पांडु राजान्ये (ते सि
वासुदेवपामोक्खाणं) ते वासुदेव प्रमुख

(बहूणं राय० करयल एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! हात्थिणाउरे
नयरे पंचणं पंडवाणं दोवइए, देवीए कल्लाणकरे भविस्सइ तं तुब्भेणं देवाणु-
प्पिया । मम अणुगिण्ढमाणा अकालपरिहीणं समोसरह)

मनं कुरुत । ततः खलु वासुदेवप्रमुखाः प्रत्येकं २ यावत् प्राधारयद् गमनाय= हस्तिनापुरं नगरं गन्तुं प्रवृत्ता इत्यर्थः ।

ततः खलु स पाण्डुनामको राजा कौटुम्बिकपुरूपान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! हस्तिनापुरे पञ्चानां पाण्डवानां पञ्च ' पासायवडिसए ' प्रासादावतंसकान् कारयत् । किं भूतानित्याह-' अब्भु- गयमूसिय ' अभ्युद्गतोच्छ्रितान्-अत्युच्चानित्यर्थः । वर्णकः-प्रथमाध्ययनोक्त-

अणुगिणहमाणा अकालपरिहीणं समोसरह) हजारों राजाओं से अपने दोनों हाथों की अंजलि करके और उसे शिर पर रखकर के बड़ी नम्रता के साथ नमस्कार करके-इस प्रकार कहा हे देवानुप्रियो ! हस्तिनापुर नगर में पांच पांडवों और द्रौपदी देवी का कल्याणकारी उत्सव होगा इसलिये हे देवानुप्रियो ! आप सब मेरे ऊपर अनुग्रह करके शीघ्र से शीघ्र पधारें । (तएणं वासुदेवपामोक्खा पत्तेयं २ जाव पहारेत्थ गम- णाए) इस के बाद वे वासुदेव प्रमुख प्रत्येक जन वहाँ हस्तिना पुर जाने के लिये प्रस्थित हो गये । (तएणं से पंडुराया कोडुम्बियपुरिसं सदावेह २ एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया हत्थिणाउरे पंचण्हं पंडवाणं पंच पासायवडिसए कारेह, अब्भुग्गयमुसिय वण्णओ जाव पडि- रुवे) इतने में पांडुराजा ने कौटुम्बिकपुरुषों को बुलाया ओर बुलाकर उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रियो ! तुम लोग हस्तिना पुर जाओ वहाँ जाकर पांचों पांडवों के लिये पांच श्रेष्ठ प्रासाद बनवाओ । ये प्रासाद

डुन्दरो राणओने पोताना भने डोथोनी अंजलि भनावीने अने तेने भस्तके भूडीने ञ्ण नम्रपणे नमस्कार कर्या अने आ प्रमाणे विनंती करी के डे देवानुप्रियो ! हस्तिनापुर नगरमां पांचे पांडवो तेमञ्च द्रौपदी देवीने कल्याणकारी उत्सव थसे ओथी डे देवानुप्रियो ! तमे सौ मारा उपर कृपा करीने सत्वरे त्यां पधारो. (तएणं वासुदेवपामोक्खा पत्तेयं २ जाव पहारेत्थ गमणाए) त्थारपथी ते वासुदेव प्रमुख दरेक राण त्यांथी हस्तिनापुर ञ्वा उपडी गया.

तएणं से पंडुराया कोडु वियपुरिसं सदावेह २ एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया हत्थिणाउरे पंचण्हं पंडवाणं पंच पासायवडिसए कारेह, अब्भुग्गयमुसिय वण्णओ जाव पडिरुवे)

ते वभते पांडु राणओ कौटुम्बिक पुरुषोने ओलाओया अने ओलाओने तेओने कहु के डे देवानुप्रियो ! तमे हस्तिनापुर णओ अने त्यां ञ्धने

मेघकुमार-प्रासादवद् वर्णनं विज्ञेयम् यावद् अनेकस्तम्भशतसंनिविष्टान् प्रति-
रूपान्=शोभासौन्दर्यसम्पन्नान् । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः-‘ तथाऽस्तु ’
इत्युक्त्वा प्रतिशृण्वन्ति=आज्ञां स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य हस्तिनापुरं गत्वा पञ्च
प्रासादावतंसकान् यावत् कारयन्ति । ततस्तदनन्तरं पाण्डुराजा पञ्चभिः पाण्डवै
द्रौपद्या देव्या च सार्धं हयगजरथपदातिसंपरिवृतः काम्पिल्यपुरात् प्रतिनिष्क्रामति-
प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव हस्तिनापुरं नगरं तत्रैवोपागतः ।

ततः खलु स पाण्डुराजा तेषां वासुदेवप्रमुखाणामागमनं ज्ञात्वा कौटुम्बिक-
पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुमियाः !

बहुत ऊँचे हो । इन प्रासादों का वर्णन प्रथम अध्ययन में उक्त मेघ
कुमार के प्रासादों जैसा जानना चाहिये । यावत् ये प्रासाद अनेक स्तं-
भशत से युक्त हों-शोभा सौन्दर्य से संपन्न हों । (तएणं ते कौटुम्बिक
पुरिसा पडिसुणेंति, जा करावेति) राजा की इस प्रकार की आज्ञा को
उन कौटुम्बिक पुरुषों ने मान लिया और हस्तिनापुर जाकर उन्होंने
पांच प्रासाद कथित रूपसे बनवा दिये । (तएणं से पंडुए पंचहिं पंडवेहिं
दोवइए देवीए मद्धि हय गय संपरिवुडे कंपिल्लपुराओ पडिनिक्खमइ २
जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए) इसके बाद वे पांडुराजा पांडवों
और द्रौपदी देवी को साथ लेकर हय, गज, आदि चतुरंगिणी सेना के
साथ २ काम्पिल्यपुर नगर से चल दिये-चलकर जहां हस्तिनापुर नगर
था-वहां आये (तएणं से पंडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं

पांचे पांडवे भाटे पाच उत्तम मडेल अनावडावे. मडेल अंथा डोवा नेधये.
आ मडेलोतुं वर्णन पडेला अध्ययनमां वर्णववामां आवेला मेघ कुमारोना
मडेलो नेवुं न्णणी देवुं नेधये. यावत् आ अथा मडेलो घणु सेंडडे थांलला-
ओथी युक्त तेमअ शोभा तथा सौंदर्य संपन्न डोवा नेधये. (तएणं ते
कौटुम्बिक पुरिसा पडिसुणेंति जाव करावेति) आ नतनी राजनी आज्ञाने
कौटुम्बिक पुरुषोअे स्वीकारी लीधी अने हस्तिनापुर नधने तेओअे डडेवा
मुअअ पांच मडेलो तैयार करावी दीधा.

(तएणं से पंडुए पंचहिं पंडवेहिं दोवइए देवीए मद्धि हयगयसंपरिवुडे
कंपिल्लपुराओ पडिनिक्खमइ २ जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए)

त्यारपणी ते पांडु राज पांचे पांडवे अने द्रौपदी देवीने लधने साथे
घोडा, हाथी वगैरेनी चतुरंगिणी सेनानी साथे काम्पिल्यपुर नगरनी अडार
नीकअ्या अने नीकणीने अ्यां हस्तिनापुर नगर डतुं त्यां पडेअ्या.

(तएणं से पंडुराया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता कौटुम्बिक०

हस्तिनापुरस्य नगरस्य बहिः प्रदेशे वामुदेवप्रमुखाणां बहूनां राजसहस्राणामावा-
सान् कारयत्, कीदृशानावासान् इत्याह—‘ अणेगखंभ ’ इत्यादि । अनेकस्तम्भ-
शतसंनिविष्टान् , तथैव—यथाऽऽवासान् कारयितुं पाण्डुना कथितं, तथैव कारयित्वा
कौटुम्बिकपुरुषा यावत् प्रत्यर्पयन्ति=राज्ञे निवेदयन्ति स्म । ततः खलु वामुदेव-
प्रमुखा बहु सहस्रसंख्यका राजानो यत्रैव स्वकाः स्वका आवसास्तत्रैवोपागच्छन्ति,

जागित्ता कोटुंबिय० सदावेह सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुव्भे
देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरस्स नयरस्स बहिया वामुदेवपामोक्खाणं
बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह) वहां आकर उन पांडुराजा ने उन
वामुदेव प्रमुख हजारों राजाओं का आगमन जानकर कौटुम्बिक पुरुषों
को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम
लोग जाओ और हस्तिनापुर नगर के बाहिर वामुदेव प्रमुख हजारों
राजाओं को ठहरने के लिये आवासों को बनवाओ (अणेगखंभस्य
तहेव जाव पच्चप्पिणंति, तएणं ते वामुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा
जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागच्छंति) ये आवास अनेक सैंकडोंस्तम्भों
से युक्त हों । इस प्रकार जैसे आवासों को बनवाने के लिये पांडु राजा
ने उन कौटुम्बिक पुरुषों से कहा था—वैसे ही आवास उन कौटुम्बिक
पुरुषों ने बनवादिये और बनवाकर पीछे इसकी खबर भी राजा को
करदी । इसके बाद वे वामुदेव प्रमुख हजारों राजा जहां हस्तिनापुर

सदावेड, सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुव्भे देवाणुप्पिया । हत्थिणाउरस्स
नयरस्स बहिया वामुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह)

त्या आवीने ते पाडु राज्ञे ते वामुदेव प्रमुष उन्नेरा राज्ञेने
आवी गयेला लक्ष्मीने पोताना कौटुम्बिक पुरुषेने जोलाव्या अने जोलावीने
तेमने आ प्रभाषे उधु के डे हेवानुप्रियो ! तमे दोडे लक्ष्मी अने हस्तिनापुर
नगरनी अडार वामुदेव प्रमुष उन्नेरा राज्ञेने रडेवा भाटे आवासो अनावो ।

(अणेगखंभस्य० तहेव जाव पच्चप्पिणंति, तए णं ते वामुदेवपामोक्खा
बहवे रायसहस्सा जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागच्छंति)

आ अथा आवासो सेकडे स्तलोधी युक्त डोवा लेछ्मे आ रीते पाडु
राज्जेने जे नतना आवासो अनावडाववानो डुकम कर्यो डतो ते कौटुम्बिक
पुरुषेने ते न नतना आवासो अनावडावी दीधा अने अनावडावीने काम पुर
थं नवानी राजने अथर आपी त्थारपछी ते वामुदेव प्रमुष उन्नेरा राज्ञेने
ज्यां हस्तिनापुर नगर डतुं त्यां आवी गया ।

उपागत्य तथैव यावद् विहरन्ति । ततः खलु स पाण्डू राजा हस्तिनापुरं नगर-
मनुप्रविशति, अनुप्रविश्य कौटुम्बिकपुरुषान् शङ्कयति, शङ्कयित्वा एवमत्रादीत्-
यूयं खलु हे देवानुप्रियाः ! विपुलम् अशनपानपानखाद्यस्वाद्यं, उपस्कारयत,
उपस्कार्य यत्रैव वासुदेवममुखास्तत्रैवोपनयत । तथैव यावद् उपनयन्ति, ततस्ते
कौटुम्बिकपुरुषास्तथैव विपुलमशनादि चतुर्विधाऽऽहारमुपरस्कारयन्ति उपस्कार्य
यावद् वासुदेवादीनामन्ति क्रे-उपनयन्ति=उपस्थापयन्ति ।

नगर था वहां आगये । (तएणं से पंडुराराया तेसि वासुदेवपामोकखा
णं आगमण जाणित्ता हट्टतुट्टे ण्हाए कयवलिकम्मे जहा दुवए जाव जहा
रिहं आवासे दलयंति, तएणं ते वासुदेव पा० बहवे रायसहस्सा जेणेव
सयाइं २ आवासाइं तेणेव उवाग० तहेव जाव विहरंति) वासुदेव
प्रमुख उन हजारों राजाओं का आगमन जानकर पांडुराजाने हर्षित एवं
संतुष्ट होकर स्नान किया वायसादि पक्षियों के लिये अन्नादि का देने
रूप बलि कर्म किया— जिस प्रकार द्रुपद राजाने यथा योग्य आवास-
स्थान इन्हीं के लिये दिये थे उसी तरह पांडुराजा ने भी उन्हें जो जिस
के योग्य स्थान था वह आवासस्थान दिया । पश्चात् वे वासुदेव प्रमुख
हजारों राजा जहां अपने २ ठहरने के लिये आवासस्थान थे वहां गये
वहां जाकर वे उसी तरह से ठहर गये । (तएणं से पंडुराराया हत्थिणा-
उरं नयरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता, कोडुंविद्य० सदावेइ, सदावित्ता
एवं वयासी-तुब्भेणं देवाणुप्पिया ! विउलं असणं ४ तहेव जाव उव-

(तएणं से पंडुराराया तेसि वासुदेवपामोकखाणं आगमणं जाणित्ता हट्टतुट्टे
ण्हाए कयवलिकम्मे जहा दुवए जाव जहारिहं आवासे दलयंति, तएणं ते वासुदेव
पा० बहवे रायसहस्सा जेणेव सयाइं २ आवासाइं तेणेव उवाग० तहेव
जाव विहरंति)

वासुदेव प्रमुख ते इन्द्रो राज्ञोऽनुं आगमन सांलणीने उर्षित तेमञ्ज
संतुष्ट यधने पांडु राज्ञे स्नान कथु. कागडा वगेरे पक्षीओना माटे अन्न
वगेरेना भाग अर्पीने णत्तिकर्म कथुं. द्रुपद राज्ञे नेम ते राज्ञोऽने यथा-
योग्य आवास स्थानो रडेवा माटे आभ्या उता तेमञ्ज पांडु राज्ञे पणु
तेओ णधाने उचित आवासे आभ्या. त्थारपधी तेओ वासुदेव प्रमुख इन्द्रो
राज्ञो न्यां पोतपोताना रोकवाना आवासे उता त्यां गया, त्यां पडोथीने
तेओ त्यां रोकार्थ गया.

(तएणं से पांडुराराया हत्थिणाउरं नयरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता,
कोडुंविद्य० सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-तुब्भेणं देवाणुप्पिया ! विउलं असणं

ततः खलु ते वासुदेवप्रमुखा बहवो राजानः स्नाताः कृतवलिकर्माणः॥=
काकादिजीवेभ्यः कृतान्नादिसंविभागाः, तद् विपुलम् अशनं पानं स्वाद्यं स्वाद्यं
तथैव-आस्वादयन्तो विस्वादयन्तः परिभुञ्जाना यावद् विहरन्ति=आसतेस्म ।
ततस्तदनन्तरं स पाण्डुराजा तान् पञ्च पाण्डवान् द्रौपदीं च देवीं 'पट्टयं' पट्टकं=
पट्टकोपरि 'दुरूहेइ' दूरोहयन्ति=आरोहयति । आरोह्य श्वेतपीतैः कलशैः स्नपयन्ति,

पौंति, तएणं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे राया ण्हाया कयवलिकम्मा तं
विउलं असणं ४ तहेव जाव विहरन्ति-तएणं से पंडुराया पंचपंडवे दोवईं
च दोविं पट्टयं दुरूहेइ, दुरूहिता सेयपीएहिं ण्हावेति, ण्हावित्ता कल्लाण
कारि करेइ) इस के बाद पांडुराजा ने हस्तिनापुर नगर में प्रवेश किया
प्रवेश कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया बुलाकर उनसे ऐसा कहा हे
देवानुप्रियो ! तुम लोग विपुल मात्रामें अशनादि रूप चतुर्विध आहार
वनवाओ वनवाकर फिर उसे जहां वासुदेव प्रमुख राजा ठहरे हुए हैं
वहां लेजाओ । इस प्रकार की अपने राजाकी आज्ञानुसार उन्होंने वैसा
ही किया-चतुर्विध आहार बनवाया और फिर उसे वासुदेव आदि
राजाओं के पास पहुँचा दिया । आहार के पहुँचने पर उन वासुदेव
प्रमुख राजाओं ने स्नान किया घलिकर्म किया-काक आदि जीवों के
लिये कृत अन्नमें से विभाग देनेरूप कियाकी-बादमें उन्होंने उस चतु-
र्विध आहार को किया । इसके पश्चात् पांडुराजा ने उन पाँचों पांडवों

४ तहेव जाव उवणैति, तएणं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे राया ण्हाया कयवलिक
कम्मा तं विउलं असणं ४ तहेव जाव विहरन्ति-तएणं से पंडुराया पंच पंडवे दोवईं
च देविं पट्टयं दुरूहेइ, दुरूहिता सेयपीएहिं कलसेहिं ण्हावेति ण्हावित्ता
कल्लाणकारि करेइ)

त्यारपणी पांडुराज्ज इस्तिनापुर नगरमां प्रविष्ट थया प्रविष्ट थधने
तेओओे कौटुम्बिक पुरुषेने ओलाओया अने ओलाओीने तेओेने आ प्रमाणे उधुं
के इ देवानुप्रियो ! तमे दोके विपुल मात्रामां अशन वगेरे इय त्थार नतने
आहार अनापडाओे. अनापडाओीने तमे ते आहारने न्या वासुदेव प्रमुख
राज्जओे रोकाया छे त्यां लथ नओे, आ रीते पोताना राज्जनी आशा सांल-
जीने ते दोकेओे ते प्रमाणे न कथुं. तेओेओे त्थार नतना आहारि अना-
पडाओया अने त्यारपणी ते आहारिने वासुदेव प्रमुख राज्जओेनी पासे पडा-
ओ्याडी हीथा. आहार पडाओ्याडी हीथा णाह ते वासुदेव प्रमुख राज्जओेओे स्नान
कथुं अने कागडा वगेरे पक्षीओेने अन्न लाग अपीने अलिकर्म कथुं. त्यार
पणी तेओेओे ते त्थार नतना आहारने नओ्या. त्यारणाह पांडु राज्जओे ते

स्नपयित्वा ' कल्याणकारि ' कल्याणकारि-शुभकारकं कर्म कारयति, कारयित्वा तान् वासुदेवप्रमुखान् बहुसहस्रसंख्यकान् राज्ञो विपुलेन अशनपानखाद्यस्वाद्येन भोजयति, भोजयित्वा पुष्पवस्त्रादिभिः सत्कारयति, संमानयति, सत्कार्यं संमान्य यावत् प्रतिविसर्जयति । ततः खलु ते वासुदेवप्रमुखा बहुसहस्रसंख्यका राजानो यावत् प्रतिगताः ॥ सू० २३ ॥

मूलम्—तएणं ते पंच पंडवा दोवईए देवीए सद्धिं कल्ला-
कल्लिं वारंवारणं ओरालाइं भोगभोगाइं जाव विहरंति, तएणं
से पंडू राया अन्नया कयाइं पंचहिं पंडवेहिं कोंतीए देवीए

को और द्रौपदी देवी को एक पट्टक पर बैठाया-बैठाकर उन का श्वेत पीत कलशों से चांदी और सोने के घडों से स्नान करवाया स्नान करवाकर फिर उसने उनका शुभकारक कर्म करवाया । (करित्ता ते वासुदेव पामोकखे वहवे रायसहस्से विउलेणं असण ४ पुष्पवत्थेणं सक्कारेइ सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ, तएणं ताइं वासुदेवपामोकखाइं बहूहिं जाव पडिगयाइं) शुभकारक कर्म करवाकर बाद में उन वासुदेव प्रमुख हजारों राजाओं का उस पांडुराज ने विपुल अशन पान आदिरूप चतुर्विध आहार से एवं पुष्प वस्त्रादि से खूब सत्कार किया सम्मान किया । यावत् फिर उन्हें अपने यहांसे अच्छी तरह से बिदा कर दिया । इसके बाद वे वासुदेव प्रमुख हजारों राजा जहां २ से जो २ आये थे वहां २ चले गये ॥ सू० २३ ॥

पांचे पांडवे अने द्रौपदी देवीने एक पट्टक उपर जेसाउया अने जेसाडीने सक्के तेमज पीणा कणशोथी ओटले के चांदी अने सोनाना कणशोथी तेमने स्नान कराव्युं. स्नान कराव्या बाद तेमणे तेमनी पांचेथी शुभ कर्मे करावडाव्यां.

(करित्ता ते वासुदेवपामोकखे वहवे रायसहस्से विउलेणं असण पुष्पवत्थेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ तएण ताइं वासुदेवपामोकखाइं बहूहिं जाव पडिगयाइं)

शुभ कर्मे कराव्या बाद ते वासुदेव प्रमुख डन्नेरो राजाओने ते पांडु राजाओ विपुल अशन-पान वगेरे इय चतुर्विध आहारथी तेमज पुष्प वस्त्र वगेरेथीभूषण सत्कार कर्मे अने सम्मान कर्मु. यावत् तयारपछी तेओने त्याथी सारी रीते विहाय कर्था. वासुदेव प्रमुख डन्नेरो राजाओ पाणु न्याथी आव्या इता त्यां नता रद्या. ॥ सूत्र २३ ॥

दोवइए देवीए य सद्धिं अंतो अंतेउरपरियालसद्धि संपरिवुडे
 सीहासणवरगए यावि विहरइ, इमं च णं कच्छुल्लणारए दंस-
 णेणं अइभइए विणीए अंतो२ य कल्लसहियए मज्झत्थोवत्थिए
 य अल्लीणसोमपियदंसणे सुखुवे अमइलसगलपरिहिए काल-
 मियचम्मउत्तरासंवरइथवच्छे दण्डकमण्डलुहत्थे जडामउडदि-
 त्तसिए जल्लोवइयगणेत्तियमुंजमेहलवागलघरे हत्थकयकच्छभीए
 पियगंधव्वे धरणिगोयरप्पहाणे संवरणावरणिओवयणिउप्पयणि
 लेसणीसु य संकासणिअभिओगपणत्ति गमणीथंभणीसु य
 बहुसु विज्जाहरीसु विज्जासु विस्सुयजसे इट्ठे रामस्स य केस-
 वस्स य षड्जुल्लपईवसंवअनिरुद्धणिसठ-उम्मुयसारणगयसुमुह-
 दुम्मुयहातीण जायवाणं अद्धुट्ठाण कुमारकोडीणं हिययदइए
 संथवए कलहजुद्धकोलाहलप्पिए भंडणाभिलासी बहुसु य सम-
 रसयसंपराएसु दंसणरए समंतओ कलहंसदक्खणं अणुगवेस-
 माणे असमाहिकरे दसारवरवीरपुरिसत्तिलोक्कवलवगाणं आमं-
 तेऊण तं भगवई पक्कमणिं गगणगमणदच्छं उप्पइओ गगणमभि-
 लंघयंतो गामागरनगरनिगमग्गेडकब्बडमडंबदोणसुहपट्टणासम-
 संवाहसहस्समंडियं थिमियमेइणीतलं वसुहं ओलोइंतो रम्मं हत्थि-
 णाउरं उवागए पंडुरायभवणंसि अइवेगेण समोवइए, तएणं से
 पंडुराया कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ पासित्ता पंचहिं पंड-
 वेहिं कुंतीए य देवीए सद्धिं आसणाओ अवमुट्ठेइ अवमुट्ठित्ता
 कच्छुल्लनारयं सत्तट्ठपयाइं पच्चुग्गच्छइ पच्चुग्गच्छित्ता तिक्खु-

तो आयाहिणपयाहिणं करेइ करित्ता वंदइ णमंसइ महरिहेणं
 आसणेणं उवणिमंतेइ, तएणं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफासियाए
 दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए णिसीयइ, णिसीयित्ता पंडुरायं
 रज्जे जाव अंतेउरेय कुसलोदंतं पुच्छइ, तएणं से पंडूराया कौंती-
 देवी पंच य पंडवा कच्छुल्लणारयं आढंति जाव पज्जुवासंति,
 तएणं सा दोवई कच्छुल्लनारयं असंजय अविरय अपडिहयप-
 च्चक्खायपावकम्मै त्तिकहु नो आढाइ नो परियाणइ नो अब्भु-
 ट्ठेइ नो पज्जुवासइ ॥ सू० २४ ॥

टीका—‘ तएणं ते ’ इत्यादि । ततस्तस्तदनन्तर खलु ते पञ्चपाण्डवा
 द्रौपद्या देव्या सार्धं ‘ कल्लाकल्लि ’ कल्याकल्ये प्रतिदिवसं वारंवारं उदारान्
 भोगभोगान् यावद् भुञ्जाना विहरन्ति । ततः खलु स पण्डू राजाऽन्यदा कदाचित्
 पञ्चभिः पाण्डवैः कुन्त्या देव्या द्रौपद्या देव्या च सार्धं ‘ अंतो अंतेउरपरियाल ’

‘ तएणं ते पंच पंडवा ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते पंच पंडवा) वे पांचों पांडव (दोवईए
 देवीए) द्रौपदी देवी के साथ—(कल्लाकल्लि वारंवारं ओरालाइं भोग
 भोगाइं जाव विहरंति—तए णं से पंडूराया अन्नया कयाई पंचहिं पंडवेहिं
 कौंतीए देवीए दोवईए देवीए य सद्धि अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे
 सीहासणवरगए यावि विहरइ) प्रतिदिन बारी बारी से उदारकाम
 भोगों को भोगने लगे एक दिन की बात है—कि पांडु राजा किसी एक
 समय पांचों पांडवों एवं अपनी पत्नी कुन्ती देवी और पुत्रवधु द्रौपदी

टीकार्थ—“ तएणं ते पंच पंडवा इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (ते पंच पंडवा) ते पांच पांडवो (दोवईए
 देवीए) द्रौपदी देवीनी साथे

(कल्लाकल्लि वारंवारं ओरालाइं भोगभोगाइं जाव विहरंति—तएणं
 से पंडूराया अन्नया कयाई पंचहिं पंडवेहिं कौंतीए देवीए दोवईए देवीए य
 सद्धि अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे सीहासणवरगए यावि विहरइ)

हरेश्वर वाराहरती उदार शालोग लोगत्वा लाग्या. अेक दिवसनी बात

अन्तः=अन्तःपुरस्य प्रासादमध्ये अन्तःपुरपरिवारेण 'परियाल' इति लुप्तवृत्त-यान्तं सार्धं संपरिवृतः सिंहासनवरगतश्चापि विहरति । 'इमं च' अस्मिन् समये खलु 'कच्छुल्लणारण' कच्छुल्लनाम्नाप्रसिद्धो नारदः दर्शनेन 'अइभदए' अतिभद्रकः=भद्रदर्शनः 'विणीए' विनीतः=नम्रो ब्राह्मणः 'अंतो य' अन्तश्च-कलुषहृदयः, 'मज्जत्थोवत्थिए य' माध्यस्थोपस्थितः=ब्राह्मणो मध्यस्थभावं प्राप्तः 'अल्लीणसोमपियदंसणे' आलीनसौम्यप्रियदर्शनः आलीनानामाश्रितानां सौम्यम् =आह्लादकं, प्रियं = प्रीतिकारकं दर्शनं यस्य स तथा, सुरूपः - सुन्दराकृतिकः, तथा-'अमइलसगलपरिहिए' अमलिनसकलपरिहितः=अमलिनं सकलम्-अखण्डम् परिहितं-बलकलवस्त्ररूपं परिधानं यस्य स तथा, 'कालमियचम्मउत्तरासंग-

के साथ अंतःपुर के प्रासाद के भीतर अन्तःपुरपरिवार के साथ सिंहासन पर बैठे हुए थे-कि (इमंच णं) इसी समय (कच्छुल्लणारण पंडुरायभवणंसि अइवेगेण समोवइए दंसणे णं अइभदए, विणीए, अंतोय कलुसहियए मज्जत्थोवत्थिए य, अल्लीणसोमपियदंसणे सुरूवे अमइलसगलपरिहिए) पांडुराजा के भवन में कच्छुल्लनाम से प्रसिद्ध नारद गगन-आकाश-मार्ग से बड़े वेगसे उतर कर आये। नारद देखने में अति भद्र थे। ऊपर से बड़े विनीत थे। परन्तु भीतर में इनका हृदय बहुत अधिक कलुषित था। केवल ऊपर से ये माध्यस्थ भाव संपन्न थे। अपने आश्रित व्यक्तियों को इनका दर्शन आह्लादक एवं प्रीति कारक होता था। आकृति उनकी बड़ी सुन्दर थी। इनका बलकल रूप परिधान अमलिन-सोफ स्वच्छ और खण्ड रहित था। (कालमिय

छे के ते पांडु राज्ञे केअ ओक वण्णे पाये पांडवे, पोतानी यत्नी कुंती देवी अने पुत्र वधु द्रौपदीनी साथे रणुवासना मडेलनी अंदर पोताना परिवारनी साथे सिंहासन उपर ओठा इता. (इमं च णं) ते वण्णे

(कच्छुल्लणारण पंडुरायभवणंसि अइवेगेण, समोवइए दंसणे णं अइभदए विणीए अंतोय कलुसहियए मज्जत्थोवत्थिए य, अल्लीणसोमपियदंसणे सुरूवे अमइलसगलपरिहिए)

पांडु राजाना लवनमां उच्छुल्ल नामथी पंकायेला नारद गगन-आकाश मार्गथी अहुं व वेगथी उतरिने आव्या. नारद देभावमां अत्यंत लद्र इता. उपर उपरथी तेओ ओकदम विनम्र इता. पणु अंतर तेमनुं मन षूण व कुलुषित इतुं. इत्ता उपर उपरथी व तेओ माध्यस्थे लाव संपन्न इता. आश्रित व्यक्तियोने तेमनुं दर्शन आह्लादक अने प्रीतिकारक इतुं. तेमनी आकृति षूण व सुंदर इती तेमनुं वदकल इप परिधान, ओकदम स्वच्छ-निर्मण इतुं अने अंडरहित इतुं.

रइयवच्छे' कालमृगचर्मोत्तरासंगरचितवक्षाः—कृष्णमृगचर्मोत्तरासङ्गेन रचितं शोभितं वक्षो यस्य स तथा, कृष्णमृगचर्मोत्तरीयवस्त्रधारकः । तथा—' दण्डकमण्डलुहस्थे ' दण्डकमण्डलुहस्तः—' जडामउडदित्तसिरए ' जटामुकुटदीप्तशिरस्कः, जण्णोवइयगणेत्तियमुंजमेहलावागलधरे ' यज्ञोपवीतगणेत्रिकासुज्जमेखलावलकलधरः—तत्र यज्ञोपवीतं यज्ञसूत्रं गणेत्रिका—रुद्राक्षकृतं कलाचिकाभरणं, मुज्जमेखला—मुज्जमयं कटिवन्धनसूत्रं वल्कलं वृक्षत्वक्, तेषां धारकः स्कन्धोपरियज्ञसूत्रधारी, करमूले धृतरुद्राक्षमालः, मुज्जमयकटिसूत्रधारी, शरीरे परिधृतवल्कल इत्यर्थः । ' हत्थकयकच्छभीए ' हस्तकृतकच्छपिकः—हस्ते कृता कच्छपिका—वीणा येन स तथा, ' पियगंधव्वे ' प्रियगन्धर्वः—गानप्रियः, ' धरणिगोयरप्पहाणे ' धरणिगोचरप्रधानः—धरणिगोचराणां—भूमिचारिणां जनानां मध्ये प्रधानस्तस्या काशेऽपि विहरणशीलत्वात्

चम्मउत्तरासंगरइयवच्छे दण्डकमण्डलुहस्थे, जडामउडदित्तसिरए, जन्नोवइयगणेत्तिय मुंजमेहलवागलधरे, हत्थकयकच्छभीए, पियगंधव्वे, धरणिगोयरप्पहाणे, संवरणावरणिओवयणिउप्पयणी लेसणीसुयसंक्रामणि अभिओगपण्णत्ति गमणीथंभणीसु य बहुसु विज्जाहरीसु विज्जासु विस्सुयजसे) इनका वक्षस्थल काले मृग के चर्म रूप उत्तरासंग से सुशोभित था । दण्ड और कमण्डलु इनके हाथोंमें था । जटारूपी मुकुट से इनका मस्तक दीप्त हो रहा था । यज्ञसूत्र—जनेऊ, गणेत्रिका कलाई का आभरण रूप रुद्राक्ष की माला, मुज्जमेखला—मुंज का बना हुआ कटि बन्धन सूत्र, और वृक्ष की छाल इन्होंने धारण कररक्खी थी । हाथमें कच्छपिका—वीणा ले रक्खी थी । गान इन्हें बहुत प्रिय था । भूमि गोचरियों के बीच में ये प्रधान थे—क्यों कि ये आकाश में भी विहार

(कालमियचम्मउत्तरासंगरइयवच्छे दण्डकमण्डलुहस्थे जडामउडदित्तसिरए, जन्नोवइय गणेत्तियमुंजमेहलवागलधरे, हत्थकयकच्छभीए पियगंधव्वे, धरणिगोयरप्पहाणे, संवरणावरणिओवयणिउप्पयणिलेसणीसु य संक्रामणि अभिओगपण्णत्ति गमणीथंभणीसुय बहुसु विज्जाहरीसु विज्जासु विस्सुयजसे)

तेमनुं वक्षस्थल काणा डरणुना अर्भइय उत्तरासंगथी शोसतुं डतुं. दंड अने कमंडलु तेमनां हाथोमां डता. जटा इपी मुकुटथी तेमनुं मस्तक प्रकाशित थर् रहुं डतुं. यज्ञ सूत्र—जनेऊ, गणेत्रिका—कांडामा पडेखानी आल-रणु इय रुद्राक्षनी माला, मुंज—मेखला—मुंजनुं अनेतुं डेडमां पडेवानुं अंधन सूत्र अने वृक्षकनी छाल तेओओ धारणु करेदी डती. हाथमां तेओओ कच्छ-पिका—वीणा धारणु करेदी डती. संगीत तेमने प्रथम गमतुं डतुं. भूमि गोचरीओने वन्धे तेओओ प्रधान डता डेसके तेओओ आकाशमां विहरणु करता

“ संवरणावरणिओवयणिउप्पयणिलेसणीसु य ” संवरण्यावरण्यवपतन्युत्पतनी-
श्लेषणीषु च ' संवरणी-स्वस्यान्तर्धानकारिणी विद्या, आवरणी-परस्यान्तर्धान-
कारिणी विद्या, अवपतनीअधोऽवतरणी विद्या, उत्पतनी-ऊर्ध्वगमनकारिणी विद्या,
श्लेषणी-वज्रलेपादिवत् सन्धानकारिणी विद्या, तासु, तथा- ' संक्रामणि अभि-
ओगपणत्ति गमणीथंभणीसु य ' संक्रमण्यभियोगप्रज्ञप्तिगमनीस्तम्भनीषु च-
संक्रामणी-विद्या-विशेषः यया-परशरीरादौ प्रवेष्टुं शक्नोति, सा विद्या, अभि-
योगः स्वर्णादिनिर्माणविद्या वशीकरणविद्या च, प्रज्ञप्तिः=अविदितार्थबोधिनी गमनी

करते थे। संवरणी, आवरणी अवपतनी, उत्पतनी, श्लेषणी इन विद्या-
ओं में तथा संक्रमणी, अभियोग, प्रज्ञप्ति, गमनी स्तम्भनी इन नाना
प्रकार की विद्याधर संबन्धी विद्याओं में इनकी कीर्ति विख्यात थी।
जिस विद्या के प्रभाव से अपने आपको अन्तर्धान कर दिया जाता
जाता है उसका नाम संवरणी विद्या है। दूसरा जिस विद्या से अन्त-
र्धान करदिया जाता है उस विद्या का नाम आवरणी विद्या है। जिस
विद्या के प्रभाव से ऊपर से नीचे उतरा जाता है उसका नाम अव-
पतनी और जिसके प्रभाव से ऊर्ध्व में गमन किया जाता है उसका
नाम उत्पतनी विद्या है। वज्रलेप आदि की तरह जो चिपका देती है
वह श्लेषणी विद्या है। जिस विद्या के बल से दूसरे के शरीरमें प्रविष्ट
होना होता है-ऐसी परशरीरप्रवेशकारिणी विद्याका नाम संक्रमणी
विद्या है। स्वर्ण आदि के बनाने की जो निपुणता है-एवं परको

हता. संवरणी, आवरणी, अवपतनी, उत्पतनी, श्लेषणी आ षष्ठी विद्या-
ओमां तेमञ् संक्रमणी, अभियोग, प्रज्ञप्ति, गमनी, स्तम्भनी आ अनेक
वतनी विद्याधर संबन्धी विद्याओमां तेमनी कीर्ति ओमेर प्रसरेली हती जे
विद्याना प्रभावथी पोतानी वतने अदृश्य करी शक्य छे ते संवरणी विद्या
छे. जे विद्याथी भीजने अदृश्य करी शक्य छे ते आवरणी कहेवाय छे. जे
विद्याना प्रभावथी उपरथी नीचे उतरि शक्य छे ते अवपतनी अने जेना
प्रभावथी ऊर्ध्व (आकाश) मां गमन करी शक्य छे ते विद्यानुं नाम उत्प-
तनी छे. वज्र लेप वगेरेनी जेम जे ओटाडी दे छे ते श्लेषणी विद्या छे. जे
विद्याना षष्ठी भीजना शरीरमा प्रवेशी शक्य ओवी परकाय प्रवेश करिणी
विद्यानुं नाम संक्रमणी विद्या छे. ओनुं वगेरे जनाववामां जे निपुणता छे
अने भीजने वशवर्ती करवानी जे शक्ति छे ते विद्यानुं नाम अभियोग

—गमनप्रकर्षसाधिका—आकाशगामिनी च विद्याविशेषः—स्तम्भनी—स्तम्भनकारिणी विद्या, तासु 'बहुसु विज्जाहरीसु विज्जासु' बहुषु—नानाविधासु विद्याधरीषु=विद्या-धर सम्यन्त्रिषु विद्यासु 'विस्मयजसे' विश्रुतयशाः—विद्यासु नैपुण्या=विख्यातकीर्तिः, इष्टः=प्रियः, रामस्य=बलदेवस्य केशवस्य=कृष्णवासुदेवस्य च पुनः केषां प्रियइ-त्याह—'पञ्जुन्नपईवसंब अनिरुद्धनिसढउस्सुयसारणगयसुमुहदुस्मुहाईणं जायवाणं' प्रद्युम्न प्रतीपशाम्बानिरुद्धनिपथोत्सुकसारणगजसुमुखदुर्मुखादीनां यादवानाम्, प्रद्युम्नादीनां संख्यामाह—प्रद्युम्नः, प्रतीपः, शाम्बः, अनिरुद्धः, निषधः, उत्सुकः,

वश में करने कि जो शक्ति है उस विद्या का नाम अभियोग विद्या है। अविदित अर्थ जिस के प्रभाव से विदित हो जावे वह प्रज्ञप्ति विद्या गमन प्रकर्ष की साधक तथा आकाश में गमन कराने वाली विद्या गमनी विद्या स्तम्भन कराने वाली विद्यास्तम्भनी विद्या है। (इदं रामस्य य केशवस्य य पञ्जुन्नपईवसंब अनिरुद्धनिसढउस्सुय सारण गयसुमुह दुस्मुहातीण जायवाणं अद्भुट्टाण कुमारकोडीणं हिययदइए संथवए कलहजुद्धकोलाहलप्पिए, भंडणाभिलासी, बहुसु य समर सयसंपराएसु दंसणरए, समंतओ कलहंसदक्खणं अणुगवेसमाणे, असमाहिकरे दसारवरवीरपुरिसतिलोक्कवलवगाणं, आमंतेऊण तं भगवईं पक्कमणि गगणगमणदच्छं उप्पइओ गगणमभिलंघयंतो गामागरनगरनिगमखेडकवडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंवाहसहस्समंडियं थिमियमेइणीतलं वसुहं आलोइंतो रम्मं हत्थिणाउरं उवागए) बलदेव एवं कृष्ण वासुदेव को ये इष्ट थे तथा साढे तीन करोड, प्रद्युम्न, प्रतीप, शाम्ब, अनिरुद्ध निषध उत्सुक, सारण, गज सुकुमाल सुमुख दुर्मुख

विद्या छे अविदित अर्थ जेना प्रभावथी जाणी शक्य ते प्रज्ञप्ति विद्या, गमन प्रकर्षनी साधिका तेमज आकाशमां गमन करनारी विद्या गमनी विद्या कडे-वाय छे. स्तंभन करानारी विद्या स्तंभनी विद्या छे. (इदं रामस्य य केश-वास्य य पञ्जुन्नपईवसंब अनिरुद्धनिसढउस्सुयसारणगयसुमुहदुस्मुहातीण जायवाणं अद्भुट्टाणकुमारकोडीणं हिययदइए संथवए कलहजुद्धकोलाहलप्पिए, भंडणाभिलासी, बहुसयसमरसयसंपराएसु दंसणरए समंतओ कलहंसदक्खणं अणुगवेसमाणे अस-माहिकरे दसारवरवीरपुरिसतिलोक्कवलवगाणं, आमंतेऊण तं भगवईं, पक्कमणि गगणगमणदच्छं उप्पइओ गगणमभिलंघयंतो गामागरनगरनिगमखेडकवडमडंबदोण-मुहपट्टणासमसंवाहसहस्समंडियं थिमिय मेइणीतलं वसुहं आलोइंतो रम्मं हत्थिणाउरं उवागए) अणुदेव तेमज कृष्ण वासुदेवने तेओ इष्ट इता अने साढे त्रयु करेउ प्रद्युम्न, प्रतीप, शाम्भ, अनिरुद्ध, निषध, उत्सुक, सारण, गज सुकुमाल, सुमुख दुर्मुख अणुदेवने पदाय कुमारोने भाटे तेओ इत्यहयित इता अटले के भूष ज प्रिय इता. अटला

सारणः, गजसुकुमालः, सुमुवः, दुर्मुवः, इत्यादयो यादवकुमारास्तेषां ' अद्दुट्टाणं
कुमारकोडीणं ' अर्धचतुर्थीनां कुमारकोटीनां च सार्धत्रिकोटिप्रमितानां यादव-
कुमाराणामित्यर्थः ' हिययदइए ' हृदयदयितः=हृदयप्रियः, ' संथावए ' संस्ता-
वकः-यादवानां प्रशंसकः, तथा-कलहयुद्धकोलाहलप्रियः=कलहो=विवादः, युद्धं=
शस्त्रादिभिः प्रहरणं, कोलाहलो=जनानां महाध्वनिः, एते प्रियाः प्रमोदजनका
यस्य स तथा, ' भण्डणाभिलासी ' भण्डनाभिलापी=भण्डनं राटिः-कलहः ' राइ '
इति भाषायां तस्याभिलापी तथा-बहुषु च समरशतमंपरायेषु=समरशतसंग्रामेषु
दर्शनरतः=दर्शनाऽऽसक्तः, ' समंतभो ' समन्ततः सर्वप्रकारेण-परस्परं च कलहं
' सदाखणं ' सदाक्षणं=सर्वस्मिन् क्षणे ' अणुगवेसमाणे ' अनुगवेपयन्=अन्वेप-
यन्, ' असमाहिकरे ' असमाधिकरः-चित्तविक्षेपकारकः चित्तस्यास्थैर्यकरः केषां
चित्तस्य विक्षेपकइत्याह—' दसारवरवीरपुरिसतिलोकवलवगाणं ' दशार्हवरवीर-
पुरुवर्त्रलोक्यवलवगां-दशार्हाः-समुद्रविजयादयो दशसंख्यकाः त एव वराः श्रेष्ठाः

इत्यादि यादवकुमारों के लिये ये हृदय दयित थे-अत्यंत प्रिय थे। इसी
कारण यादवोंके प्रशंसक थे। कलहविवाद युद्ध एवं मनुष्यों का कोलाहल
ये सब इन्हें बहुत अधिक अच्छे लगते थे। आनन्द जनक होते थे। राइ
(लडाई) के ये अभिलापी बने रहते थे। अर्थात् हर एक जगह किसी न
किसी रूप में परस्पर में लोगों में तकरार, कजिया कैसे उत्पन्न हो इस
घात का इन्हें विशेष ध्यान रहता था। समर शतसंग्राम के देखने में
इन्हें विशेष हर्षोल्लास होता था। सब प्रकार से परस्पर में सब समय
में ये कलह की गवेपणा करने में ही लगे रहते थे। नेमिनाथ की अपेक्षा
त्रैलोक्य में विशिष्ट बलवाली जो श्रेष्ठ वीर पुरुष समुद्र विजयादि दश

भाटे न तेजो यादवोनां वभाषु करनारा डता. कलह-कंकास, विवाद, युद्ध
अने भाषुसेनो शोरभङ्गेर आ अंधु तेमने णहु न गमतुं डतुं. आ अघाथी
तेमने भूण न मन्त पडती डती, कल्यो तेमने भूणन गमतो डतो अटले
के हरेक स्थाने गमे ते कारणने लीधे वरये परस्पर कलह-कंकास कल्यो
केवी रीते शङ् थाय आ वातनी तेजो तक लेता रहेता डता. सेकडो युद्धोना
धीलत्स दृश्य लेवामां तेमने भूण न आनदने अनुभव थतो डतो. तेजो
अधी रीते रात अने दिवस अेकधीमने लडाववानी शोधमां न थोटी रहेता
डता. नेमिनाथनी अपेक्षा त्रैलोक्यमां सविशेष अणवान श्रेष्ठ वीर पुरुष समुद्र-
विजय वगेरे दश दशाडो डता तेमना चित्तने तेजो कष्ट आपनारा डता.

वीराः पुरुषास्त्रैलोक्ये बलवन्तः नैमिनाथापेक्षया तेषाम्, 'आमंतेऊण तं भगवई' आमन्त्र्य=प्रयुज्य तां भगवतीं-विद्यां, कीदृशीं विद्यामित्याह—'पक्रमणि' प्रक्रमणीं=प्रकृष्टगमनशक्ति-शालिनीं 'गगणगमणदच्छं' गगनगमनदक्षाम्=आकाशे गमने समर्थाम् 'उप्पइओ' उत्पतितः, गगनमभिलङ्घयन् उड्डीय गमनेनाकाशतलमुल्लङ्घयन् 'ग्रामागरनगरनिगमखेटकर्वटमडंबद्रोणमुखपत्तनाश्रमसंवाहसहस्रमण्डियं' ग्रामाकरनगरनिगमखेटकर्वटमडंबद्रोणमुखपत्तनाश्रमसंवाहसहस्रमण्डितं, तत्र-अष्टादशकरग्राह्यो ग्रामः, आकरः=स्वर्णाद्युत्पत्तिभूमिः, अविद्यमानकरं नगरं, निगमं=वणिग्रामं खेटं=धूलीप्रकारं, कर्वटं=कुत्सितनगरं, यत्र योजनान्तराले ग्रामादिनास्ति तन्मडम्बं यत्र जलस्थलमार्गाभ्यां, भाण्डान्यागच्छंति तत् द्रोणमुखं, पत्तनं=द्वधा-जलपत्तनं स्थलपत्तनं, यत्र पर्वतादिदुर्गे लोका धान्यानि संवहंति स संवाह एतैः सहस्रैर्मण्डितं, स्तिमितमेदिनीतलं, 'वसुहं' वसुधां भूमिं 'ओलोइंतो' अवलोकयन्=पश्यन् रम्यं हस्तिनापुरं नगरमुपागतः पाण्डुराजभवनेऽतिवेगेन समुपेतः=गगनादवतीर्ण इत्यर्थः ।

ततः खलु स पाण्डुराजा कच्छुल्लनारयं' कच्छुल्लनारदम् आगच्छन्तं पश्यति-दृष्ट्वा पञ्चभिः पाण्डवैः कुन्त्या च देव्यासार्धमासनादभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय दशार्हं ये उनके ये सदा चित्त के विक्षेप कारक बने रहते थे । गमन में विशिष्ट शक्ति प्रदान करने वाली एवं आकाश में उठाकर ले चलने वाली उस भगवती प्रक्रमणी विद्या को प्रयुक्त करके ये आकाश में उड़ा करते थे । ये नारद, गमन से आकाशतल को उल्लंघन करते हुए ग्राम, आकर, नगर, निगम खेट, कर्वट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, संवाह इनके सहस्रों से मंडित हुई ऐसी स्तिमितमेदनीतलवाली वसुधा-भूमि को देखते हुए रम्य हस्तिनापुर नगर में आये और वहाँ से गगनमार्ग से होकर फिर ये पाण्डुराज के भवन में पहुँचे । ऐसा संबंध यहाँ लगाना (तएणं से पाण्डुराया कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ) इस के बाद पाण्डुराजा ने कच्छुल्ल इन नारद को आते हुए जब देखा (पासित्ता) तो

गमनमां विशिष्ट शक्ति आपनारी अने आकाशमां उडाडीने लध ननार ते भगवती प्रक्रमणी विद्याना अणथी तेओ आकाशमा उडता रडेता उता. आरीते आ नारद गमनथी आकाशने ओणगीने सडसो ग्राम, आकर नगर, निगम खेट कर्वट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन, संवाहोथी, मंडित अने स्तिमित पृथ्वीने लेता रमणीय हस्तिनापुर नगरमां आओया अने त्यांथी आकाश मार्गमां थधने पाण्डुराजना लवनमां पडोअ्या. (तएणं से पाण्डुराया कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ) त्यारभाड पाण्डुराजने कच्छुल्लनारदने न्यारे आवता लेया (पासित्ता) त्यारे लेधने (पंचहिं पंडवेहिं कुंतीए देवीए मडिं आसणामो

कच्छुल्लनारदं सप्ताष्टपदानि प्रत्युद्गच्छति, नारदाभिमुखमायाति, प्रत्युद्गत्य 'तिक्खुत्तो' त्रिः कृत्वः - त्रिवारं, 'आयाहिणपयाहिणं' आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा वन्दते, नमस्यति वंदित्वा, नत्वा, महार्हेण-महतां योग्येन आसनेन उपनिमन्त्रयति । उपवेशनार्थं प्रार्थयति । ततः खलु स कच्छुल्लनारदः 'उदगपरिफासियाए' उदकपरिस्पृष्टायां जलच्छटेन मिक्तायां 'दम्भोवरिपच्चत्थुयाए' दम्भोपरिप्रत्यवस्तृतायां कुजे पर्यास्तीर्णायां 'भिसियाए' वृष्यां आसनविशेषे निपीदति=उपविशति, निपद्य पाण्डुं राजानं राज्ये यावदन्तः पुरे च कुसलोदन्तं-कुशलवार्तां पृच्छति, ततः खलु स पाण्डुराजा कुन्तीं देवीं पञ्च च पाण्डवा, कच्छुल्लनारदं 'आहंति' आद्रियन्ते यावत् पर्युपासते=सेवन्ते स्म । ततः खलु सा द्रौपदी कच्छुल्लनारदम् 'असंजयअचिरयअपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे-त्तिकद्दु' असंयताविरतापतिहताप्रत्याख्यातपापकमेति कृत्वा, तत्र-अपंयतः-वर्तमानकालिकसर्वसावधानुष्ठाननिवृत्तः

देवकर (पंचहिं पंडवेहिं कुंतीए देवीए सद्धिं आसणाओ अब्भुट्टेह) ये पांचो पांडवो एवं कुन्ती के साथ अपने आसन से उठे। (अब्भुट्टित्ता कच्छुल्लनारयं सत्तट्टपयाइं पच्चुग्गच्छइ) और उठकर सात आठ पैर कच्छुल्लनारद के सामने स्वागत निमित्त गये (पच्चुग्गच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेइ तएणं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफासियाए दम्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए णिसीयइ, णिसीयित्ता पंडुरायं रज्जे जाव अंते-उरेय कुसलोदंनं पुच्छइ, तएणं से पंडुराया कौंतीदेवी पंचय पंडवा कच्छुल्लनारयं आहंति जाव पञ्जुवासंति, तएणं सा दोवई कच्छुल्लनारयं असंजयअचिरयअपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे त्ति कद्दु नो आहाइ नो परियाणइ नो अब्भुट्टेइ, नो पञ्जुवासइ) जाकर के इन्होंने

अब्भुट्टेइ) तेओ पाथे पाउवेो अने कुंतीनी साथे पोताना आसन उपरथी ळिभा थया. (अब्भुट्टित्ता कच्छुल्लनारयं सत्तट्टपयाइं पच्चुग्गच्छइ) अने ळिभा थधने उच्छुल्ल नारदना स्वागत भाटे सात आठ उगलां सामे गया.

(पच्चुग्गच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, महरिहेणं आमणेणं उवणिमंतेइ, तएणं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफासियाए दम्भोपरिपच्चत्थुयाए भिसियाए णिसीयइं, णिसीयित्ता पंडुरायं रज्जे जाव अंते-उरेय कुसलोदंनं पुच्छइ तएणं से पंडुराया कौंतीदेवी पंचय पंडवा कच्छुल्लनारयं आहंति जाव, पञ्जुवासंति, तएणं सा दोवई कच्छुल्लनारयं असंजयअचिरयअपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे त्ति कद्दु नो आहाइ नो परियाणइ नो अब्भुट्टेइ, नो पञ्जुवासइ)

संयतस्तथा विधो न भवति यः सोऽसंयतः=संयमरहित इत्यर्थः, अविरतः=अतीत कालिकपापाञ्जुगुप्सापूर्वकं, भविष्यति च संवरपूर्वकमुपरतो निवृत्तो विरतस्तथा विधो न भवति यः सोऽविरतः, विरतिरहितः, अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा प्रतिहतं=वर्तमानकाले स्थित्यनुभागहासेन नाशितं तथा प्रत्याख्यातं=पूर्वकृताति-

उनके लिये तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण किया—करके उनको वंदनाकी नमस्कार किया। वंदना नमस्कार करके फिर उन्होंने उनसे सहान् पुरुषों के बैठने योग्य आसन पर बैठने के लिये प्रार्थना की—इस के बाद वे कच्छुल्ल नारद जल के छीटों से सिक्त हुए आसन पर कि जो दर्भ के ऊपर आस्तीर्ण था बैठ गये। बैठकर उन्होंने पांडु राजा से राज्य की यावत् अंतः पुर की कुशल वर्ता पूछी। उनके पूछने पर पांडु राजाने कुन्ती देवी ने एवं पांचों पांडवों ने उन कच्छुल्ल नारद को खूब आदर किया यावत् अच्छी तरह से उनकी पर्युपासना की। द्रौपदी ने उन्हें असंयत, अविरत एवं अप्रतिहत प्रत्याख्यतपापकर्मा जानकर उनका आदर नहीं किया, उनके आगमन की अनुमोदना नहीं की और न वह उनके आने पर उठी। वर्तमान कालिक सर्व सावद्य अनुष्ठान से जो निवृत्त होता है वह संयत है—ऐसा संयत जो नहीं होता है वह असंयत कहलाता है। अतीत काल में हुए पापों से जुगुप्सा पूर्वक और भविष्यत्काल में उनसे संवर पूर्वक जो उपरत होता

सामे ळधने तेमणे त्रणुवार तेमनी येमेर आदक्षिणु प्रदक्षिणु करी. त्यारपधी तेमणे वंदन तेमणे नमन कर्थां अने पधी तेमने पोताना करतां मोटा माणुसोने गेसवा योग्य आसन उपर गेसवानी विनंती करी. त्यारणाद ते कच्छुल्ल नारद पाणीना छांटायेथी लीना पाथरेला दर्भना आसन उपर गेमी गया. गेसीने तेयेये पांडुराजने राज्यनी यावत् रणुवासनी कुशलवार्ता पूछी. पांडुराज, कुन्तीदेवी अने पांचे पांडवोये कच्छुल्ल नारदने भूषण आदर कर्थे यावत् सारी रीते तेमनी पर्युपासना करी तेमने असंयत, अविरत अने अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा ळणीने द्रौपदीये तेमने आदर कर्थे नहि, तेमना आगमननी अनुमोदना करी नहि अने न्यारे तेये आंव्या त्यारे पणु ते गेली थध नहि. वर्तमानकालिक सर्व सावद्य अनुष्ठानथी ने निवृत्त होय छे ते संयत छे, आ व्याख्या मुळण ने संयत नथी ते असंयत कडेवाय छे. लूतकाणमां थध गयेला पापकर्माथी जुगुप्सापूर्वक अने भविष्यत्कालमां तेमनाथी संवरपूर्वक ने उपरत होय छे ते विरत छे, येये ने नथी ते अविरत छे, येदे के विरतिथी रडित छे. वर्तमानकाणमां नेमां

चारनिन्द्या भविष्यत्यकरणेन निराकृतम् , अनयोः कर्मधारये प्रतिहतप्रत्याख्यातं ततो नञ्त्तत्पुरुषः, न प्रतिहतप्रत्याख्यातम्-अप्रतिहतप्रत्याख्यातं-न प्रतिहतं नापि-प्रत्याख्यातं पापकर्म येन सोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा, इति कृत्वा-एवं मत्वा 'नो आढाङ्' नो आद्रियते, नो परिजानाति=नानुमोदयति नो अभ्युत्तिष्ठति नो पर्युपास्ते स्म ॥ सू०२४ ॥

है वह विरत है। ऐसा जो नहीं होता है वह अविरत है-विरति से रहित है। वर्तमान काल में जिसमें पापकर्मों को स्थिति और अनुभाग के हास से नाश कर दिया है, तथा पूर्वकृत अतिचारों की निंदा से भविष्यत् काल में अकरण से जिसने उन्हें निराकृत कर दिया है ऐसा प्राणी प्रतिहत प्रत्याख्यात पापकर्म कहलाता है। ऐसा जो नहीं करता है-पापकर्मों को न प्रतिहत करता है और न प्रत्याख्यात करता है-वह अप्रतिहत प्रत्याख्यात पापकर्मा है-। अष्टादश कर ग्राह्य (करसे युक्त) जो होता है वह ग्राम है। स्वर्ण आदि की उत्पत्तिकी खाने जिसमें हो वह आकर है। जिसमें अठारह तरह का टेक्स कर नहीं लगता है वह नगर है। जहां पर वणिक्रजनों का निवास हो वह निगम है। धूली का प्राकार जिसमें होता है-अर्थात् धूलि के परकोटे से जो घिरा होता है वह खेट है। कुत्सित नगर का नाम [कर्वट है- जहां एक अढाई कोस के अन्तराल में (चारों दिशा से) ग्राम आदि नहीं पाये जाते हैं वह मडम्ब है। जहां पर स्थलमार्ग से एवं जल मार्ग से भाण्ड (वस्तु) आते हैं वह द्रोणमुख है। जल पत्तन और स्थलपत्तन के भेद से पत्तन दो प्रकार का होता है। जहां तापसलोग निवास करते हों वह

पापकर्मोनि स्थिति अने अनुलागना हासथी नाश कथी छे तेमज् पूर्वकृत अतिचारोनी निंदाथी भविष्यकाणमां अकरणथी जेजे तेमने निराकृत करी दीधा छे जेजुं प्राणी प्रतिहतप्रत्याख्यात पापकर्मा कडेवाय छे, जेजुं जे करतो नथी जेटवे के जे पापकर्मोनि प्रतिहत करतो नथी अने प्रत्याख्यात पणु करतो नथी ते अप्रतिहत पापकर्मा छे, जेमां सामान्य भाणुसे वसे ते ग्राम छे, सोना वगेरेनी आणु। न्यां डोयते आकर छे, जेमां डोडपणु जतनेो वेरो नाभवामां आवतो नथी ते नगर छे, न्यां वाणीयाजोने निवास डोय ते निगम छे, भाटीनी लीत जेमेर अनावेली डोय ते जेट छे, कुत्सित नगरनुं नाम कर्वट छे, न्यां अढि गाठ सुधीमां थारे तरङ् ग्राम वगेरे डोतां नथी ते मडम्ब छे, न्यां स्थल मार्गथी अने जण मार्गथी वाहनो आवे छे ते द्रोणमुख छे, जलपत्तन

मूलम्—तएणं तस्स कच्छुल्लणारयस्स इमेयारूवे अज्झ-
 तिण्णं चिंतिण्णं पत्तिण्णं मणोगण्णं संकप्पे समुप्पज्जित्था अहोणं
 दोवइं देवी रूवेणं जाव लावणणेण य पंचहिंपंडवेहिं अणुबद्धा
 समाणी ममं णो आढाइ जाव नो पज्जुवासइ तं सेयं खलु मम
 दोवइण्णं देवीण्णं विप्पियं करित्तण्णं त्तिकट्टु एवं संपेहेइ संपेहिन्ता
 पंडुयरायं आपुच्छइ आपुच्छित्ता उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ
 आवाहित्ता ताण्णं उक्किट्टाण्णं जाव विज्जाहरगईण्णं लवणसमुहं
 मज्झंमज्झेणं पुरत्थाभिमुहे वीइवइउं पयत्ते यावि होत्था ।
 तेणं कालेणं तेणं समण्णं घायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धदाहिणइ
 भरहवासे अमरकंकाणामरायहाणी होत्था, तएणं अमरकंकाण्णं
 रायहाणीण्णं पउमणाभे णामं राया होत्था महया हिमवंतं
 वणगओ, तस्स णं पउमनाभस्स रत्तो सत्त देवीसयाइं ओरोहे
 होत्था, तस्स णं पउमनाभस्सरण्णो सुनाभे नामं पुत्ते जुवराया
 यावि होत्था, तएणं से पउमणाभे राया अंतो अंतेउरंसि ओ-
 रोहसंपरिवुडे सिंहासणवरगण्णं विहरइ, तएणं से कच्छुल्लणारण्णं
 जेणेव अमरकंका रायहाणी जेणेव पउमनाभस्स भवणे तेणेव
 उवागच्छइ उवागच्छित्ता पउमनाभस्स रत्तो भवणंसि ज्ञत्तिं
 वेगेणं समोवइण्णं, तएणं से पउमनाभे राया कच्छुल्लं नारयं

आश्रम है जहां पर पर्वत आदि दुर्गम स्थानोंमें मनुष्य धान्य आदि
 रखते हैं—वह संवाह है अर्थात् नगर के बाहर का प्रदेश जहां आभीर
 वगेरे लोग निवास करते हो ॥ सूत्र २४ ॥

स्थलपत्तननी दृष्टिमे पत्तनना णे प्रकारे छे, ज्यां पर्वत वगेरे दुर्गम स्थानोमां
 माणुस धान्य वगेरेनी राणे छे ते संवाड उडेवाय छे. अर्थात् नगरनी षडा-
 रनेा प्रदेश के ज्यां लखाड विगेरेनेा वास डाय छे. ॥ सूत्र २४ ॥

एङ्गमाणं पासइ पासित्ता आसणाओ अब्भुट्टेइ अब्भुट्टित्ता
 अग्घेणं जाव आसणेणं उवणिमंतेइ, तएणं से कच्छुल्लणारए
 उद्गपरिफासियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ
 जाव कुसलोदंतं आपुच्छइ, तएणं से पउमनाभे राया णियग-
 ओरोहे जायविस्सहए कच्छुल्लणारयं एवं वयासी-तुब्भं देवाणु-
 प्पिया ! बहूणि गामाणि जाव गेहाइं अणुपविससि, तं अत्थि
 आइं ते कर्हिचि देवाणुप्पिया ! एरिसए ओरोहे दिट्ठुपुव्वे जा-
 रिसए णं मम ओरोहे ?, तएणं से कच्छुल्लणारए पउमनाभेणं
 रत्ता एवं बुत्ते समाणे ईसिं विहसियं करेइ करित्ता एवं वयासी
 -सरिसे णं तुमं पउमणाभा ! तस्स अगडदइदुरस्स, के णं
 देवाणुप्पिया ! से अगडदइदुरे ?, एवं जहा मल्लिगाए एवं खल्लु
 देवाणुप्पिया ! जंबूदीवे दीवे भारहेवासे हत्थिणाउरे दुवयस्स
 रण्णो धूया चूलणीए देवीए अत्तया पंडुस्स सुण्हा पंचण्हं पंड-
 वाणं भारिया दोवई देवी रूवेण य जाव उक्किट्टसरीरा दोवईए
 णं देवीए छिन्नस्स वि पायंगुट्टयस्स अयं तव ओरोहो सतिमंपि
 कलं ण अग्घंतित्तिक्कट्टु, पउमणाभं आपुच्छइ आपुच्छित्ता जाव
 पडिगए, तएणं से पउमणाभे राया कच्छुल्लणारयस्स अंतिए
 एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म दोवईए देवीए रूवे यइ मुच्छिए ४
 दोवइए अङ्गोववन्ने जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ
 उवागच्छित्ता पोसहसालं जाव पुव्वसंगइयं देवं एवं वयासी-
 एवं खल्लु देवाणुप्पिया ! जंबूदीवे दीवे भारहेवासे हत्थिणाउरे

जाव सरीरा तं इच्छामिणं देवाणुपिया ! दोवई देवीं इहमा-
 णियं, तएणं पुव्वसंगइए देवीए पउमनाभं एवं वयासी - नो
 खलु देवाणुपिया ! एयं भूयं वा भव्वं वा भविस्सं वा जण्णं
 दोवई देवी पंचपंडवे मोत्तूण अन्नेणं पुरिसेणं सद्धिं ओरालाई
 जाव विहरिस्सइ, तथा वि य णं अहं तव पियट्टतयाए दोवई
 देविं इहं हव्वमाणेमि त्तिकहु पउमणाभं आपुच्छइ आपुच्छित्ता
 ताए उक्किट्ठाए जाव लवणसमुदे मज्झंमज्झेणं जेणेव हत्थिणा-
 उरे णयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तेणं कालेणं तेणं समएणं
 हत्थिणाउरे जुहिट्टिल्ले राया दोवईएसद्धिं उप्पिं आगासतलंसि
 सुहपसुत्ते यावि होत्था, तएणं से पुव्वसंगइए देवे जेणेव जुहि-
 ट्टिल्ले राया जेणेव दोवई देवी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 दोवईए देवीए ओसोवणियं दलयइ दलित्ता दोवईं देवीं
 गिणहइ गिणिहत्ता ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव अमरकंका जेणेव
 पउमणाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पउमणा-
 भस्स भवणांसि असोगवणियाए दोवईं देवीं ठावेइ ठावित्ता
 ओसोवणिं अवहरइ अवहरित्ता जेणेव पउमणाभे तेणेव उवा-
 गच्छइ उवागच्छित्ता एवं वयासी-एसणं देवाणुपिया मए
 हत्थिणाउराओ दोवई इह हव्वमाणीया तव असोगवणियाए
 चिट्ठइ, अतो परं तुमं जाणसित्तिकहु जामेव दिसिं पाउब्भूए
 तामेव दिसिं पडिगए ॥ सू० २५ ॥

टीका-‘ तएणं तस्स ’ इत्यादि । ततः खलु तस्य कच्छुल्लनारदस्य अयमेत-
द्रूपः आध्यात्मिकचिन्तितः प्रार्थितः कल्पितो मनोगतः संकल्पः समुत्पद्यत, अहो !
खलु द्रौपदी देवी रूपेण यावत् लावण्येन च पञ्चभिः पाण्डवैरनुवद्भासती मां नो
आद्रियते यावत् नो पर्युपास्ते, तत्=नस्मात् श्रेयः खलु मम द्रौपद्या देव्याः ‘ वि-
प्रियं करित्तए ’ विप्रियं कर्तुम्, पाण्डवकृतसत्कारसंमानगर्विता विवेकरहिता जाता-

-:तएणं तस्स कच्छुल्लनारयस्स इत्यादि ।

टीकार्थ-(तएणं) इसके बाद (तस्स कच्छुल्लनारयस्स) उन कच्छुल्ल
नारदको (इमेयारूवे) यह इस रूप (अज्जत्थिए, चित्थिए, पत्थिए, मणो-
गए, संकप्पे समुत्पज्जित्था) आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत
संकल्प उत्पन्न हुआ । (अहोणं दोवईदेवी रूपेणं जाव लावण्येणं य पंचहिं
पंडवेहिं अणुवद्दा समाणी मम णो आढाइ, जाव नो पज्जुवासइ तं
सेयं खलु मम दोवईए देवीए विप्रियं करित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ,
संपेहित्ता पंडुरायं आपुच्छइ आपुच्छित्ता उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ
आवाहित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव विज्जाहरगईए लवणसमुदं मज्जं
मज्जेणं पुरत्थाभिमुहे वीइवइउं पयत्ते यावि होत्था) देखो-यह कितने
आश्चर्य की बात है कि द्रौपदी देवी ने रूप यावत् लावण्य से पांचों
पांडवों के साथ भोगासक्त बनकर मेरा कोई आदर नहीं किया है यावत्
किसी भी प्रकार की पर्युपासना नहीं की है । इसलिये अब मुझे यही
उचित- श्रेयस्कर है कि मैं इस द्रौपदी देवी का विप्रिय करूँ-अनिष्टकरूँ

तएणं तस्स कच्छुल्लनारयस्स इत्यादि ॥

टीकार्थ-(तएणं) त्थारपथी (तस्स कच्छुल्लनारयस्स) ते कच्छुल्ल नारदने
(इमेयारूवे) आ नतने (अज्जत्थिए, चित्थिए, पत्थिए, मणोगए, संकप्पे
समुत्पज्जित्था) आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्नो के

(अहोणं दोवई देवी रूपेणं जाव लावण्येणं य पंचहिं पंडवेहिं अणुवद्दा
समाणी मम णो आढाइ, जाव नो पज्जुवासइ तं सेयं खलु मम दोवईए देवीए
विप्रियं करित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता पंडुरायं आपुच्छइ आपुच्छित्ता
उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ आवाहित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव विज्जाहरगईए लवण-
समुदं मज्जं मज्जेणं पुरत्थाभिमुहे वीइवइउं पयत्ते याविहोत्था)

बुझो, आ देवी नवाधनी वात छे के देवी देवीये इय यावत् लाव
ण्यथी पाये पांडवोनी साथे भोगासक्त थधने भारे कोध पणु रीते आदर
करो नथी यावत् कोध पणु नतनी पर्युपासना करी नथी ओथी इवे भने
ओ न थोअ न्थाय छे के भने ते रीते द्रौपदीनु विप्रिय-अहित-कइ. डमथुं

तस्मान्मदापहरणेन अस्याः प्रतिकूलाचरणं श्रेयः इति भावः । इति कृत्वा=इति मनसि निधाय एवं संप्रेक्षते=पर्यालोचयति, संप्रेक्ष्य पाण्डुं राजानमापृच्छद्य 'उत्प-
यर्णि विज्जं' उत्पतनीम्-विद्याम् 'आवाहेइ' आवाहयति-स्मरति आवाह्य, मत्वा
तया उत्कृष्टया यावद् विद्याधरगत्या लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन पौरस्त्याभिमुखः=
पूर्वदिगभिमुखः, 'वीइवइउं पयत्ते' व्यतिव्रजितुं प्रवृत्तः=गमनतत्परश्चाप्यभवत् ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये 'धायईसंडे' धातकीषण्डे धातकीषण्डनामके,
द्वीपे 'पुरत्थिमद्धदाहिणडुभरहवासे' पौरस्त्यार्धदक्षिणार्ध-भारतवर्षे=पूर्वदिग्-
तिनि दक्षिणार्धभरतक्षेत्रे अमरकंका नाम राजधानी आसीत् । ततः खलु अमर-
कंकायां राजधान्यां पद्मनाभो नाम राजाऽभवत् । स कीदृश इत्याह-'महया हिम-
वंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे' महा-हिमवन्महामलयमन्दरमहेन्द्रसारः=महाहिम-
वानिव तथा-महामलयमन्दरमहेन्द्रवत् सारः=प्रधानः । अन्यनृपापेक्षयाऽधिकम-
हत्त्वादिगुणत्रिवैश्वर्यसम्पन्न इत्यर्थः, विस्तरतस्तु व्याख्यानं प्रथमाध्ययने कृतम्,

यह इस समय पांडवों द्वारा कृत सत्कार सम्मान से गर्विष्ठ बनी हुई
है-सो विवेक रहित बन गई है-इसलिये इसके मद को उतारना चाहिये
अतः इसके प्रतिकूल आचरण करना यही मुझे श्रेयस्कर है । इस प्रकार
मन में रखकर उन्होंने ने विचार कियो-विचार करके फिर उन्होंने ने पांडु-
राज से पूछा हे राजन् हम जाते हैं-पूछकर उन्होंने ने उत्पतनी नाम की
विद्या का आह्वान किया स्मरण किया-स्मरण कर के उस उत्कृष्ट यावत्
विद्याधर संबन्धी गति से वहां से पूर्व दिशा की तरफ मुख कर के वे
उड़ने में प्रवृत्त भी हो गये-(तेणं कालेणं तेणं समएणं धायईसंडे दीवे
पुरत्थिमद्धदाहिणडुभरहे वासे अमरकंका णाम रायहाणी होत्था-तएणं
अमरकंकाए रायहाणीए पउमणाभे णामं राया होत्था, महया हिमवंत०

ते आ पांडवो वडे सत्कृत तेभञ्ज सन्मानीत थधने गर्विष्ठा णनी गध छे तेथी
ते अविवेक्षी थध पडी छे, अथी डवे अना मधने उतारवो जेधअ, अना
विइद्ध आचरवुं जेधअ, आ प्रभाणु तेअोअे मनमां विचार कर्यो. विचार करीने
तेमणु पांडुरायने पूछयुं के डे राजन् ! अमे जधअ, अे प्रभाणु पूछीने तेअोअे
उत्पतनी नामनी विधानुं आह्वान कर्युं, स्मरणु कर्युं. स्मरणु करीने ते उत्कृष्ट
यावत् विद्याधर संबन्धी गतिथी त्यांथी पूर्व दिशा लणी मुख करीने उडवा लाग्या.

(तेणं कालेणं तेणं समएणं धायईसंडे दीवे पुरत्थिमद्धदाहिणडुभरहे वासे अम-
रकंका णाम रायहाणी होत्था तएणं अमरकंकाए रायहाणीए पउमणाभे णामं राया

वर्णकः=वर्णनं पूर्वोक्तवद् बोध्यम्, तस्य खलु पद्मनाभस्य राज्ञः 'सत्तदेवीसयाइं' सप्तदेवीशतानि=देवीनां राज्ञीनां शतानि-सप्तशतानिभार्याः 'ओरोहे' अवरोधे=अन्तःपुरे आसन् तस्य खलु पद्मनाभस्य राज्ञः सुनाभो नाम पुत्रो युवराजश्चाप्यभवत् । ततः खलु स पद्मनाभो राजा अन्तःप्रदेशे 'अंतेउरंसि' अन्तःपुरे 'आरोहसंपरिवुडे' अवरोधसंपरिवृतः - स्त्रीपरिवारसंपरिवृतः, सिंहासनवरगतो विहरति-आस्तेस्म ।

वण्णओ तस्सणं पडमनाभस्स रण्णो सत्तदेवीसयाइं ओरोहे होत्था तस्स णं पडमनाभस्स रण्णो सुनाभे नामं पुत्ते जुवराया यावि होत्था तएणं से पडमणाभे राया अंतो अंतेउरंसि ओरोहसंपरिवुडे सिंहासणवरगए विहरइ) उस काल और उस समय में धातकी षंड नाम के द्वीप में पूर्व दिग्बर्ती दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र में अमरकंका नाम की राजधानी थी। उस अमरकंका नाम की राजधानी में पद्मनाभ नाम का राजा रहता था। यह राजा महा हिमवान् पर्वत की तरह तथा महा मलय, मन्दर एवं माहेन्द्र की तरह अन्य राजाओं की अपेक्षा अधिक महत्त्वादिगुणों से विभव से एवं ऐश्वर्य से संपन्न था। इन पदों का विस्तार पूर्वक वर्णन प्रथम मेघकुमार अध्ययन में किया जा चुका है। इस राजा का वर्णन पहिले की तरह जानना चाहिये। उस पद्मनाभ राजा के अंतःपुर में ७०० सात सौ रानियां थीं। सुनाभ नाम का पुत्र था जो युवराज था, पद्मनाभ राजा के यहां एक दिन की बात है

होत्था, महया हिमवंतवण्णओ, तस्सणं पडमनाभस्स रण्णो सत्तदेवी सयाइं ओरोहे होत्था तस्स णं पडमनाभस्स रण्णो सुनाभे नामं पुत्ते जुवराया यावि होत्था तएणं से पडमणाभे राया अंतो अंते उरंसि ओरोहसंपरिवुडे सिंहासणवरगए विहरइ)

ते ङणे अने ते सभये धातडी षंड नामे द्वीपमां पूर्व दिशा तस्सिना दक्षिणार्ध भरत क्षेत्रमां अमरकंका नामे राजधानी इती. ते अमरकंका नामे राजधानीमां पद्मनाभ नामे राजा रहतेता इतो. ते राजा महा हिमवान् पर्वतानी जेम तेमज महामलय, मंदर अने महेन्द्रनी जेम पील्ल राज्या करतां पधारे महत्त्व वगेरे गुणोथी, वैभवथी अने ऐश्वर्यथी संपन्न इतो. आ पट्टेनुं सविस्तार वर्णन प्रथम मेघकुमार अध्ययनमां करवामां आओंछे. आ राजानु वर्णन पल्लु पडेलानी जेम ज सभजुं जेधये. ते पद्मनाभ राजाना रणुवासमां ७०० राणीयो इती, सुनाभ नामे तेने पुत्र इतो, जे युवराज इतो. ओक दिवसनी बात छे के ते पद्मनाभ राजा रणुवासमां श्री परिवारनी साथे सिंहासन उपर जेठा इता.

ततः खलु स कच्छुल्लनारदो यत्रैवामरकङ्काराजधानी यत्रैव पद्मनाभस्य भवनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पद्मनाभस्य राज्ञो भवने ' झत्ति ' झटिति वेगेन ' समोवइए ' समुपेतः=आकाशादवतीर्णः । ततः खलु स पद्मनाभो राजा कच्छुल्लं नारदं एजमानम्-आगच्छन्तं पश्यति, दृष्ट्वा आसनादभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थायाध्वेण यावदासनेन उपनिमन्त्रयति-जलमासनं च ग्रहीतुं प्रार्थयति । ततः खलु स कच्छुल्ल-

कि अतःपुर के भीतर स्त्री परिवार के साथ सिंहासन पर बैठे हुए थे । (तएणं से कच्छुल्लनारए जेणेव अमरकंका रायहाणी जेणेव पउम नाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमणाभस्स रण्णो भवणंसि झत्तिवेगेणं समोवइए, तएणं से पउमनाभे राया कच्छुल्लं नारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अग्घेणं जाव आसणेणं उवणिमंतेइ, तएणं से कच्छुल्लनारए उदग परिफासियाए दम्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ जाव कुसलोदंतं आपुच्छइ) वे कच्छुल्ल नारद जहां अमर कंका राजधानी थी, जहां पद्मनाभ का भवन था वहां आये । आकर के वे पद्मनाभ राजा के भवन में बहुत शीघ्र वेग से उतरे । पद्मनाभ राजा ने जैसे ही कच्छुल्ल नारद को आते हुए देखा तो देखकर के अपने आसन से उठे और उठकर के उन्होंने ने उन्हे अध्वं यावत् आसन से आमंत्रित किया ।

(तएणं से कच्छुल्लनारए जेणेव अमरकंका रायहाणी जेणेव पउमनाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमणाभस्स रण्णो भवणंसि झत्तिवेगेणं समोवइए, तएणं से पउमनाभे राया कच्छुल्लं नारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अग्घेणं जाव आसणेणं उवणिमंतेइ, तएणं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफासियाए दम्भोपरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ जाव कुसलोदंतं आपुच्छइ)

ते कच्छुल्ल नारद ज्यां अमरकंका राजधानी હતી, ज्याં પદ્મનાભનું ભવન હતું ત્યાં આવ્યા, આવીને તે પદ્મનાભ રાજના ભવનમાં શીઘ્ર વેગથી ઉતર્યા પદ્મનાભ રાજાએ જ્યારે કચ્છુલ્લ નારદને આવતા જોયા ત્યારે તેઓ પોતાના આસન ઉપરથી ઊભા થયા અને ઊભા થઈને તેમણે તેઓને અધ્વં યાવત્

नारदः उदकपरिस्पृष्टायां-जलाभिषिक्तायां दर्भोपरि प्रत्यवस्तृतायां वृष्याम् आस-
नशेषे निपीदति, यावत् कुशलोदन्तं=कुशलवार्ताम् आपृच्छति=सुखोपविष्टं तं
कच्छुल्लनारदं पद्मनाभः कुशलवार्तां पृच्छतीत्यर्थः । ततः खलु स पद्मनाभो राजा-
निजकावरोधे स्त्रीपरिवारे जातविस्मयः=समुत्पन्नगर्वः, कच्छुल्लनारदम् एवं-
वक्ष्यमाणक्रमेण, अवादीत्-हे देवानुप्रिय ! त्वं बहून् ग्रामान् यावत् गृहाणि अनु-
प्रविशति, तत्=तस्माद् अस्ति ' आइं ' इति वाक्यालङ्कारे ते=त्वया कुत्रचिद् हे

इसके बाद वे कच्छुल्लनारद जल के छींटो से सिंचित आसन पर जो
दर्भ के ऊपर बिछा हुआ था बैठ गये-बैठकर उन्होंने ने पद्मनाभ राजा
से कुशलवार्ता पूछा। पद्मनाभ राजा ने भी सुख पूर्वक बैठे हुए उन
कच्छुल्ल नारद से उन के कुशल समाचार पूछे। (तएणं से पउमनाभे
राया णियगओरो हे जायविम्हए कच्छुल्लणारयं एवं वयासी-तुवमं
देवाणुप्पिया ! बहूणि गामाणि जाव गेहाइं अणुपविससि तं अत्थि आइं
तेकहिं चि देवाणुप्पिया ! एरिसए ओरोहे दिट्ठुपूव्वे, जारिसए णं मम
ओरोहे ? तएणं से कच्छुल्लणारए पउमनाभेणं रत्ता एवं वुत्ते समाणे ईसिं
विहसियं करेइ, करित्ता एवं वयासी-सरिसेणं तुमं पउमणाभा ! तस्स
अगडददुदुरस्स, केणं देवाणुप्पिया ! से अगडददुदुरे ! एवं जहा मल्लि-
णाए एवं खलु देवाणुप्पिया !) इसके बाद पद्मनाभ राजा ने अपने
अतःपुर में विस्मित बनकर कच्छुल्लनारद से इस प्रकार

आसन उपर भेसवा भाटे विनंती करी. त्यारपछी ते कच्छुल्ल नारद पाणीना
छांटाओथी सिंचित दर्भना उपर पाथरेला आसन उपर भेसीने पद्मनाभ राजने
तेओना परिवारनी कुशलताना सभाओरो पूछया. पद्मनाभ राजओे पणु आसन
उपर सुभेथी भेठेला ते कच्छुल्लनारदने कुशल सभाओरो पूछया.

(तएणं से पउमनाभे राया णियगओरोहे जायविम्हए कच्छुल्लणारयं
एवं वयासी-तुवमं देवाणुप्पिया ! बहूणि गामाणि जाव गेहाइं अणुपविससि, तं
अत्थि आइं ते कहिं चि देवाणुप्पिया ! एरिसए ओरोहे दिट्ठुपूव्वे जारिसए णं मम
ओरोहे ? तएणं से कच्छुल्लणारए पउमनाभेणं रत्ता एवं वुत्ते समाणे ईसिं विह-
सियं करेइ, करित्ता एवं वयासी-सरिसेणं तुमं पउमणाभा ! तस्स अगडददुदुरस्स
केणं देवाणुप्पिया ! से अगडददुदुरे ? एवं जहा मल्लिणाए एवं खलु देवाणुप्पिया !)

त्यारपछी पद्मनाभ राजओे पोताना रणुवासना वैलवने लेधने आश्रयं
थधने कच्छुल्ल नारदने आ प्रभाणे उहुं के डे देवानुप्रिय ! तमे धणा आभ
यावत् धरोभां आवण करता नडे छे ते डे देवानुप्रिय ! शुं तमे पडेलां

देवानुप्रिय ! ईदृशोऽवरोधो दृष्टपूर्वो यादृशः खलु ममावरोधः ? ममान्तः पुरे यादृश्यः स्त्रियो वर्तन्ते, तादृश्यः स्त्रियः कुत्रापि भवता दृष्टा इति पृच्छतीत्यर्थः । ततः खलु स कच्छुल्लनारदः पद्मनाभेन राज्ञा एवमुक्तः सन् ' ईषद् विहसितं ' मन्दहासं करोति, कृत्वा एवमवादीत्—हे पद्मनाभ ! सदृशस्त्वं खलु तस्य ' अगडददुर्दुरस्य ' अगडददुर्दुरस्य=कूपमण्डूकस्य यथा कूपमण्डूकः कूपाद् बहिः प्रदेशे विद्यमानं न किमपि जानाति, तद्वत् त्वमपि स्वभवनाद् बहिरन्यत्रावस्थितं किमपि वस्तु न वेत्सीति भावः । कच्छुल्लनारदस्य वचनं श्रुत्वा पद्मनाभः कच्छुल्लनारदं पृच्छति—' के णं देवाणुप्पिया ! से अगडददुर्दुरे ' इति । हे देवानुप्रिय ! कः खलु सोऽगडददुर्दुरः ? एवं पद्मनाभेन राज्ञा पृष्ठः सन् कच्छुल्लनारदः प्राह—' एवं यथा मल्लिगाए ' यथा मल्लिज्ञाते वर्णितमेवमत्र बोध्यम् समुद्रददुरकूपददुरयोः परस्परवार्तालापो यथा संजातस्तथा कच्छुल्लनारदेन कथित इत्यर्थः । पुनः कच्छुल्ल-

कहा—हे देवानुप्रिय ! तुम अनेक ग्राम यावत् से घरों में आते जाते रहते हो—तो क्या हे देवानुप्रिय ! तुमने कहीं पर क्या ऐसा अंतः पुर पहिले कभी देखा है—जैसा मेरा अन्तः पुर है ? पद्मनाभ राजा के द्वारा इस प्रकार पूछे गये वे कच्छुल्ल नारद कुछ हँसने लगे—हँसकर तब उन्होंने ने उनसे इस प्रकार कहा—हे पद्मनाभ ! तुम उस कूपमं डूक के समान हो—जो अपने निवासस्थान भूत कुंए से बाहिरी प्रदेश में विद्यमान कुछभी नहीं जानते हो । कच्छुल्ल नारद के वचन सुनकर के पद्मनाभ ने उन कच्छुल्ल नारद से पूछा—देवानुप्रिय ! वह अगडददुर्दुर का आख्यान कैसा है ? तब नारद ने उनसे कहा—मल्लि नाम के अध्ययन में कूपमं डूक और समुद्र मंडूक के परस्पर में वार्तालाप के रूप में यह आख्यान वर्णित किया हुआ है—सो नारद ने यह आख्यान जैसे का तैसा उन्हें सुना दिया— पुनः कच्छुल्ल नारद उनसे

केरु पणु स्थाने अने केरु पणु द्विवसे आवो मारा जेवो रणुवास जेयो छे ? पद्मनाभ राजा वडे आ रीते प्रश्न पूछायेला ते कच्छुल्ल नारद हसवा लाय्या, हसीने तेज्येजे तेमने आ प्रभाणे कथुं के छे पद्मनाभ ! तमे ते कूप मंडूक जेवा छे के जे पोताना निवासस्थान कूपथी षडारना प्रदेश विषे थोडुं पणु ज्ञान धरावतो नथी. कच्छुल्ल नारदना वचन सांलणीने पद्मनाभे ते कच्छुल्ल नारदने पूछयुं के छे देवानुप्रिय ! ते अगड ददुरकनुं आभ्यान केयी रीते छे ? त्यारे नारदे तेमने मल्लि नामे अध्ययनसां वणुववासां आवेला कूप मंडूक अने समुद्र मंडूकना वार्तालाप रुपे ते संपूणु आभ्यान तेमने कही सांलणावुं

नारदोवदति—एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण खलु हे देवानुप्रिय । जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते
वर्षे हस्तिनापुरे नगरे द्रुपदस्य राज्ञो दुहिता चूलन्या देव्या आत्मजा पाण्डोः
स्तुषा पञ्चानां पाण्डवानां भार्या द्रौपदी देवी रूपेण च यावद् उत्कृष्ट शरीरा वर्तते
द्रौपद्याः खलु देव्याश्छिन्नस्यापि पादाङ्गुलकस्यायं तवावरोधः तवान्तःपुरवर्तिनी
काचिदपि देवी 'सयतमंपि कलं' शततमामपि कलां नार्हति, इति कृत्वा—एवं
ज्ञात्वा कथयामि—द्रौपदीसदृशी नास्ति काचिदपीति । ततः कच्छुल्लनारदोगन्तुकामः

कहते हैं कि हे देवानुप्रिय । सुनो—वात इस प्रकार है—(जंबू द्वीपे द्वीपे
भारहे वासे हत्थिणाउरे दुवयस्स रण्णो धूया, चूलणीए देवीए अत्तया
पंडुस्स सुण्हा, पंचणं पंडवाणं भारिया दोवई देवी रूपेण य जाव उक्किट्ट
सरीरा, दोवईए णं देवीए छिन्नस्स वि पायंगुट्टयस्स अयं तव अवरोहो सय-
न्नमपि कलं ण अग्वई त्ति कट्टु पउमणाभं आपुच्छइ आपुच्छित्ता जाव पडि-
गए, तएणं से पउमणाभे राया कच्छुल्लगारयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा
णिसम्म दोवइए, देवीए रूपे य च्छिण्ण ४ दोवईए अज्जोववन्ने जेणेव पोस-
हसाला तेणेव उवागच्छइ) जंबूद्वीप नाम के प्रथम द्वीप (मध्य जंबूद्वीप
में) में भारतवर्ष में, हस्तिनापुर नाम के नगर में द्रुपद राजा की पुत्री
चूलनी देवी की आत्मजा, पांडु राजा की स्तुषा—पुत्रवधु—पांच पांडवों
की भार्या द्रौपदी देवी है । यह रूप से यावत् उत्कृष्ट शरीर है । तुम्हारा
यह अंतःपुर उसका कटे हुए पैर के अंगूठे के सौंवे अंश के बराबर

अने त्थारपथी कच्छुल्ल तेभने कडेवा लाग्या के हे देवानुप्रिय ! सांखणो,
वात अेवी छे के—

(जंबू द्वीपे द्वीपे भारहेवासे हत्थिणाउरे दुवयस्स रण्णो धूया, चूलणीए
देवीए अत्तया पंडुस्स सुण्हा, पंचणं पंडवाणं भारिया दोवई देवी रूपेण य जाव
उक्किट्टसरीरा, दोवईए णं देवीए छिन्नस्स वि पायंगुट्टयस्स अयं तव अवरोहो
सयन्नमपि कलं ण अग्वई त्ति कट्टु पउमणाभं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता जाव पडि-
गए, तएणं से पउमणाभे राया कच्छुल्लगारयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म
दोवईए, देवीए रूपेय मुच्छिण्ण ४ दोवईए अज्जोववन्ने जेणेव पोसहसाला
तेणेव उवागच्छइ)

जंबू द्वीप नामना प्रथम द्वीपमां भारत वर्षमां हस्तिनापुर नामे नग-
रमां द्रुपद राजनी पुत्री चूलनी देवीनी आत्मजा, पांडु राजनी स्तुषा—पुत्रवधु
पांच पांडवानी पत्नी द्रौपदीदेवी छे. ते इपथी यावत् उत्कृष्ट शरीरवाणी छे.
तमारो आ रथुवास तेना कथायेल। अंगुठाना सोमा लागनी अरोअर पथु
नथी, आ अधुं हु विचारपूर्वकं कडी रह्यो छुं. द्रौपदी देवी नारी कौं पथु

पद्मनाभमापृच्छति, पृष्ट्वा यावत् पद्मनाभेन राज्ञा सत्कारं प्राप्य प्रतिगतः=उत्पतनी विद्यया गगनमुद्ध्वयन् प्रतिगत इत्यर्थः ।

ततः खलु स पद्मनाभो राजा कञ्छुल्लनारदस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा= आकर्ण्य निश्चय्य ह्यवधार्य द्रौपद्या देव्या रूपे च यौवने च लावण्ये च मूर्च्छितः= आसक्तः, गृद्धः = लोलुपः, ग्रथितः=निबद्धचित्तः, अध्युपपन्नः = एकाग्रचित्तः सन् यत्रैव पौषधशाला तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पौषधशालां प्रमाज्यं यावदष्टम- भक्तं कृत्वा ' पूर्वसंगतिकं ' पूर्वमित्रं देवम् एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे हस्तिनापुरे पाण्डवभार्या द्रौपदी देवी यावत्-उत्कृष्टशरीरा वर्तते, तद्=तस्माद् इच्छामि खलु हे देवानुप्रिय !

भी नहीं है। ऐसा मैं जानकर ही कह रहा हूँ। द्रौपदी के जैसी कोई भी नारी नहीं है। इस प्रकार कहकर वे कञ्छुल्ल नारद वहाँ से चलने के लिये अभिलाषी बन गये-तब उन्होंने पद्मनाभ राजा से जाने के लिये पूछा पूछकर यावत् वे वहाँ से पद्मनाभ राजा से सत्कृत होकर उत्पतनी विद्या के प्रभाव से गगन तल को उल्लंघन करते हुए वापिस चले गये। इसके बाद वे पद्मनाभ राजा कञ्छुल्ल नारद के मुख से इस समाचार रूप अर्थ को सुनकर और उसे हृदय में धारण कर द्रौपदी देवी के रूप, यौवन एवं लावण्य में मूर्च्छित ४ बन गये, यावत् उनका चित्त उन में बिलकुल एकाग्र हो गया। इस तरह होकर, वे जहाँ पौषधशाला थी वहाँ गये। (उवागच्छिता पोमहसालं जाव पुव्वसंगइयं देवं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबूद्वीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे जाव सरीरा तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया !

नथी. आ प्रभाणे कहीने ते कञ्छुल्ल नारद त्यांथी आलवा माटे तैरया थछ गया. तेमणे पद्मनाल राजने जवा माटे पूछयुं, पूछीने यावत् त्यांथी तेओ पद्मनाल राजनी पांसेथी सत्कृत थछने उत्पतनी विद्याना प्रभावथी आका- शने ओणंगता जता रहा. त्यारपछी ते पद्मनाल राज कञ्छुल्ल नारदना मुपथी आ समाचारने सांलणीने अने तेने हृदयभां धारण करीने द्रौपदी देवीना रूप, यौवन अने लावण्यथी मूर्च्छित ४ थछ गया, यावत् तेमनुं मन तेमां ओकडम ओंटी गयुं. आ स्थितिभां तेओ जथां पौषधशाणा छती त्यां गया.

(उवागच्छिता पोमहसालं जाव पुव्वसंगइयं देवं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबू द्वीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे जाव सरीरा तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! दोबई देवीं इहमाणियं तएणं पुव्वसंगइए देवे पद्मनाभं एवं

द्रौपदीं देवीम् ' इह माणियं ' इहानेतुम् । ततः खलु पूर्वसंगतिको देवः पद्मनाभं नृपम् एवमवादीत्—हे देवानुप्रिय ! नो खलु एतद् भूतं वा भवद् वा भविष्यद् वा, यत् खलु द्रौपदी देवी पञ्च पाण्डवान् मुक्त्वाऽन्येन पुरुषेण सार्धमुदारान् भोगान् यावद् विहरति, तथापि च खलु अहं तत्र प्रीत्यर्थं द्रौपदीं देवीमिह हव्यप्रानयामीति

दोवईं देवीं इहमाणियं तएणं पुव्वसंगहए देवे पउमनाभं एवं वघासी—नो खलु देवाणुप्पिया ! एयं भूयं वा भव्यं वा भविस्सं वा जणं दोवईं देवी पंच पंडवे मोत्तुग अन्नेणं पुरिसेणं सद्धिं ओरालाईं जाव विहरिस्सह) वहां जाकर उन्होंने ने उस पौपध शाला को रजोहरण से साफ किया यावत् अष्टम भक्त कर के पूर्व संगति देव का आवाहन किया देवी के आनेपर पूर्व संगतिक देव से इस प्रकार कहा हे देवानुप्रिय ! जंबूद्वीप नाम के द्वीप में भारत वर्ष में हस्तिनापुर नगर में पांडवों की भार्या द्रौपदी देवी है । यह यावत् उत्कृष्ट शरीर है । इसलिये हे देवानुप्रिय ! मैं उस द्रौपदी देवी को तुमसे यहां ले आने के लिये चाहता हूँ । पद्मनाभ की इस बात को सुनकर पूर्वभक्त के मित्र उस देव ने उस से तब ऐसा कहा—हे देवानुप्रिय ! ऐसी बात द्रौपदी के साथ न पहिले हुई है, न आगे होगी—और न अब वर्तमान में हो सकती है, जो द्रौपदी देवी पांच पांडवों को छोड़कर अन्य किसी दूसरे पुरुष के साथ उदार यावत् मनुष्य भव सवन्वी काम सुखों को भोगे (तहावि-

वयासी नो खलु देवाणुप्पिया ! एयं भूयं वा भव्यं वा भविस्सं वा जणं दोवईं देवी पंच पंडवे मोत्तुग अन्नेणं पुरिसेणं सद्धिं ओरालाईं जाव, विहरिस्सह)

त्यां जघने तेमण्णे ते पौपधशाणाने रणेडरण्णथी साक्क करी यावत् अष्टम लकत करीने पूर्वं संगति देवनुं आवाहनं कथुं । देव जयारे आवी गये । तयारे तेमण्णे पूर्वसंगतिक देवने आ प्रमाणे कल्लु के डे देवानुप्रिय ! जंबूद्वीप नामना द्वीपमां भारत वर्षमां हस्तिनापुर नगरमां पांडवोनी पत्नी द्रौपदीदेवी छे, ते यावत् उत्कृष्ट शरीरवाणी छे, अथी डे देवानुप्रिय ! ते द्रौपदी देवीने तमे अर्द्धी लघं आवे । अथी भारी धञ्छ छे । पद्मनाभनी आ वातने सांलणीने पूर्वलवना मित्र ते देवे तेमने आ प्रमाणे कल्लु के डे देवानुप्रिय ! द्रौपदी देवीनी साथे आ जतनुं आचरण्ण न पडेवां थयुं छे न लविष्यमां थशे अने न वर्तमानमां थवानी शक्यता छे द्रौपदी देवी पांचे पांडवो सिवाय भील कोई पुत्रपत्नी साथे उदार यावत् मनुष्यलव संबंधी कामसुभो लोगवे आ वात तदन असंलपित छे ।

कृत्वा=उक्त्वा पद्मनाभम् आपृच्छति आपृच्छ्य तया उत्कृष्टया देवसम्बन्धिन्या गत्या यावत् लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन=उपरिभागेन गगनमार्गेण, यत्रैव हस्तिनापुरं नगरं तत्रैव प्राधारयद् गमनाय ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये हस्तिनापुरे नगरे युधिष्ठिरो राजा द्रौपद्या सार्धमुपरि आकाशतले=प्रासादादालिकोपरि सुखप्रसुप्तश्चाप्यासीत्, ततः खलु स पूर्वसंगतिको देवो यत्रैव युधिष्ठिरो राजा यत्रैव द्रौपदीदेवी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य द्रौपद्यै

य णं अहं तव पियद्वतयाए दोवईं देवीं इहं हव्वमाणेमि त्तिकट्टु पउमणाभं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता ताए उक्किट्टाए जाव लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं जेणेव हत्थिणाउरे णयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए) फिर भी मैं तुम्हारी प्रीति के निमित्त द्रौपदी देवी को यहाँ शीघ्र लेकर आता हूँ । ऐसा कहकर उसने जाने के लिये उन पद्मनाभ से पूछा, पूछकर फिर वह उस उत्कृष्ट देवभवसंबन्धी गति से यावत् लवण समुद्र के बीच से होकर जहाँ हस्तिनापुर नगर था उस और चल दिया ! (तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणाउरे जुहिट्टिले राया, दोवईए सद्धि उप्पि आगासतलंसि सुहपसुत्ते यावि होत्था, तएणं से पुव्वसंगइए देवे जेणेव जुहिट्टिले राया जेणेव दोवईं देवी तेणेव उवागच्छइ) उस काल और उस समय में हस्तिनापुर नगरमें युधिष्ठिर राजाके साथ द्रौपदी आकाशतलमें-प्रासाद की अट्टालिका के ऊपर सोये हुए थे । वह पूर्व संगतिक देव जहाँ वे युधिष्ठिर राजा और जहाँ वह द्रौपदी देवी थी वहाँ आया-(उवागच्छित्ता

(तहावि य णं अहं तव पियद्वतयाए दोवईं देवीं इहं हव्वमाणेमि त्तिकट्टु पउमणाभं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता ताए उक्किट्टाए जाव लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं जेणेव हत्थिणाउरे णयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए)

छतांये तमने पुश करवा माटे हुं द्रौपदी देवीने शीघ्र ँडीं लध आबुं छुं. आभ कडीने तेणे नवा माटे पद्मनाभ राजने पूछयुं. पूछीने ते चोतानी उत्कृष्ट देवलव संबन्धी गतिथी यावत् लवण समुद्रनी वर्ये थधने न्यां हस्तिनापुर नगर हुतुं ते तरइ रवाना थयो.

(तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणाउरे जुहिट्टिले राया, देवईए सद्धि उप्पि आगासतलंसि सुहपसुत्ते यावि होत्था तएणं से पुव्वसंगइए देवे जेणेव जुहिट्टिले राया जेणेव दोवईं देवी तेणेव उवागच्छइ)

ते काले अने ते समये हस्तिनापुर नगरमां युधिष्ठिर राज अने द्रौपदी देवी भडेलनी अगाशी उपर सूता हुता ते पूर्व संगतिक देव न्यां ते युधिष्ठिर राज अने न्यां ते द्रौपदी देवी हुती त्यां आव्यो.

देव्यै ' आसोवणियं ' अवस्वापनीं निद्रां ' दलयइ ' ददाति सुखप्रसुप्तां द्रौपदीं
गाढनिद्रयाऽऽक्रान्तां कृतवानित्यर्थः । दत्त्वा-गाढनिद्रावतीं कृत्वा द्रौपदीं देवीं
गृहीत्वा तथा उत्कृष्टया देवसम्बन्धिन्यागत्या यावत् यत्रैवामरकंका राजधानी
यत्रैव पद्मनाभस्य भवनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पद्मनाभस्य भवने ' असोगव-
णियाए ' अशोकवटिकायाम् अशोकवाटिकायां द्रौपदीं देवीं स्थापयति,
स्थापयित्वा ' आसोवणिं अवहरइ ' अवस्वापनीं निद्रामपहरति, अपहृत्य

दोवईए देवीए ओसोवणियं दलयइ, दलित्ता दोवई देविं गिण्हइ, गिण्हत्ता
तीए उक्किट्टाए जाव जेणेव अमरकंका जेणेव पउमणाभस्स भवणे
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमणाभस्स भवणंसि असोगवणि-
याए दोवइ देवीं ठवेइ ठावित्ता ओसोवणिं अवहरइ, अवहरित्ता जेणेव
पउमणाभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी-एस णं देवाणु-
प्पिया । मए हत्थिणाउराओ दोवई इह हव्वमाणीया, तव असोगवणियाए
चिट्ठइ, अतोपुरं तुमं जाणिसि त्तिकट्टुजामेव दिंसि पाउव्भूए तामेव
दिसि पडिगए) वहां आकर उसने द्रौपदी देवी को गाढ निद्रा में सुला
दिया, सुलाकर फिर उसने उस द्रौपदी को वहां से उठाया-और उठा-
कर फिर वह उस उत्कृष्ट देवभवसंबन्धी गति से चलकर यावत् जहां
अमरकंका नगरी और जहां पद्मनाभ राजा का भवन था वहां आया-।
वहां आकर के उसने पद्मनाभ के भवन में अशोकवाटिका में द्रौपदी
देवी को रखदिया । रखकर के फिर उसने उसे गाढ निद्रा से रहित कर

(उवागच्छित्ता दोवईए देवीए ओसोवणियं दलयइ, दलित्ता दोवई देविं
गिण्हइ, गिण्हित्ता ताए उक्किट्टाए जाव जेणेव अमरकंका जेणेव पउमणाभस्स
भवणे-तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पउमणाभस्स भवणंसि असोगवणियाए
दोवइ देवीं ठवेइ ठावित्ता ओसोवणिं अवहरइ, अवहरित्ता जेणेव पउमणाभे तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी-एसणं देवाणुप्पिया मए हत्थिणाउराओ
दोवई इह हव्वमाणीया, तव असोगवणियाए चिट्ठइ, अतोपुरं तुमं जाणिसि त्तिक
जामेव दिंसि पाउव्भूए तामेव दिंसि पडिगए)

त्यां आवीने तेण्हे द्रौपदीने गाढ निद्राभां सूवाडी दीधी, सुवाडीने तेण्हे
ते द्रौपदीने त्याथी उठावी अने उठावीने ते उत्कृष्ट देवलव संबन्धी गतिथी
थावीने यावत् त्या अमरकंका नगरी अने त्यां पद्मनाभ राजानुं अभवन हुतुं
त्यां आव्यो. त्यां आवीने तेण्हे पद्मनाभना लवनमा अशोक-वाटिकाभां द्रौपदी
देवीने भूडी दीधी, भूडीने तेण्हे गाढ निद्रा हर करी दीधी, गाढ निद्रा हर

यत्रैव पद्मनाभस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य एवमवादीत्—एषा खलु हे देवानुप्रिय ! मया हस्तिनापुराद् द्रौपदी इह हव्यमानीता तवाशोकवनिकायां तिष्ठति, अतः परं त्वं जानासि ' इति कृत्वा=उक्त्वा, यस्या एव दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः ॥ सू० २५ ॥

मूलम्—तएणं सा दोवई देवी तओ सुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी तं भवणं असोगवणियं च अपचचभिजाणमाणी एवं वयासी—नो खलु अम्हं एसे सए भवणे णो खलु एसा अम्हं सगा असोगवणिया, तं ण णज्जइ णं अहं केणइ देवेण वा दाणवेणं वा किं पुरिसेणवा महोरगेण वा गंधवेण वा अन्नस्स रण्णो असोगवणियं साहरियत्तिकट्टु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ, तएणं से पउमणाभे राया षहाए जाव सठ्वालंकार विभूसिए अंतेउरपरियालं संपरिवुडे जेणेव असोगवणिया जेणेव दोवई देवी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता दोवई देवी ओहय० जाव झियायमाणीं पासइ पासित्ता एवं वयासी—किण्णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहय जाव झियाहि, एवं

दिया—गाढ निद्रा से रहित कर फिर वह वहाँ से जहाँ पद्मनाभ राजा थे वहाँ गया—वहाँ जाकर उसने उनसे ऐसा कहा—हे देवानुप्रिय ! मैं हस्तिनापुर नगर से द्रौपदी को यहाँ ले आया हूँ। वह तुम्हारी अशोक वाटिका में ठहरी है, अतः अब तुम जानो। ऐसा कहकर वह देव जिस दिशा से प्रकट हुआ था—उसी दिशा की ओर वापिस चला गया। सू- २५

करीने ते न्यां पद्मनाभ राजा इता त्यां गये। त्यां न्धने तेणु तेमने आ प्रमाणे कहुं 'के डे डे देवानुप्रिय ! हस्तिनापुर नगरथी द्रौपदी देवीने हुं अडीं लध आये। छुं' ते तमारी अशोक-वाटिकां छे, अथी डेवे तमे लणु। आ प्रमाणे कडीने ते देव ने दिशा तरइथी प्रकट थये। इतो ते न दिशा तरइ पाछे नतो रह्यो ॥ सूत्र २५ ॥

खलु तुमं देवाणुप्पिया ! मम पुव्वसंगइएणं देवेणं जंबूदी-
वाओ २ भारहाओ वासाओ हत्थिणापुराओ नयराओ जुहिट्ठि-
हस्स रणो भवणाओ साहरिया तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया !
ओहय० जाव झियाहि, तुमं मए सद्धिं विपुलाइं भोगभोगाइं
जाव विहराहि, तएणं सा दोवई देवी पउमणाभं एवं वयासी
एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबूदीवे दीवे भारहे वासे वारवइए
णयरीए कणहे णामं वासुदेवे ममप्पियभाउए परिवसइ, तं णं
से छणहं मासाणं मम कूवं नो हव्वमागच्छइ तएणं अहं देवा-
णुप्पिया ! जं तुमं वदसि तस्स आणाओवायवयणाणिदेसेचिट्ठि-
स्सामि, तएणं से पउमे दोवईए एयमट्टं पडिसुणित्ता २ दोवइं
देविं कण्णंतेउरे ठवेइ, तएणं सा दोवई देवी छट्टं छट्टेणं अनि-
विखत्तेणं आयंबिलपरिग्गहिणं तवोकम्मेषं अप्पाणं भावेमाणे
विहरइ ॥ सू० २६ ॥

टीका—‘ तएणं सा ’ इत्यादि । ततः खलु सा द्रौपदी देवी ततो मुहूर्त्तान्तरे
प्रतिबुद्धा=जागरिता सती तद् भवनम् अशोकवनिकां च ‘ अपञ्चभिजाणमाणी ’
अप्रत्यभिजानन्ती भवनादिकमपरिचितं जानन्ती एवमवादीत्-नो खलु अस्माक-

—तएणं सा दोवई देवी इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (सा दोवईदेवी) वह द्रौपदीदेवी (ताओ
मुहुत्तंतरस्स पडिवुद्धा समाणी) ? मुहूर्त्त के बाद जगी सो जग कर
उसने (तं भवणं असोगवणियं च अपञ्चभिजाणमाणी एवं वयासी)
उस भवन को एवं उस अशोकवाटिका को अपरिचित जानकर अपने
मन में ऐसा विचार किया—(नो खलु अहं एसे सएभवणे, णो खलु

तएणं सा दोवई देवी इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपणी (सा दोवई देवी) ते द्रौपदी देवी (ताओ मुहुत्तरस्स
पडिवुद्धा समाणी) ओक मुहुत्तं पणी जगी अने जगीने तेणे (तं भवणं
असोगवाणियं च अपञ्चभिजाणमाणी एवं वयासी) ते लवन अने ते अशोक
वाटिकाने अपरिचित जणीने पोताना मनमां आ जतने विचार करे के—

मेतद् भवनं नो खलु एषाऽस्माकं 'सगा' स्वका=स्वकीया, अशोकवनिका, तद् न ज्ञायते खलु-अहं केनापि देवेन वा दानवेन वा किं पुरुषेण वा किन्नरेण वा महोरगेण वा गन्धर्वेण वा अन्यस्य राज्ञोऽशोकवनिकायां 'साहरिया' संहता-आनीताऽस्मि' इति कृत्वा=इति विचार्य, अपहतमनःसंकल्पा=अनिष्टयोगेन भग्न-मनोरथा विषादप्रपगतैत्यर्थः यावद् ध्यायति=आर्तध्यानं करोति ।

ततः खलु पद्मनाभो राजा स्नातो यावत् सर्वालंकारविभूषितोऽन्तःपुरपरि-वारसंपरिवृतो यत्रैवाशोकवनिका यत्रैव द्रौपदी देवी, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य

एसा अम्हं सगा असोगवणिया, तं ण णज्जइ, णं अहं केणई देवेणवा दाणवेण वा किं पुरिसेण वा किन्नरेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा अन्नस्स रण्णो असोगवणियं साहरियत्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा जाव झियायइ) यह मेरा निज का भवन नहीं है, यह मेरी निज की अशोक वाटिका नहीं है। तो पता नहीं पड़ता क्या मैं किसी दूसरे राजा की अशोकवाटिका में किसी देव, दानव, किंपुरुष, किन्नर महो-रग अथवा, गंधर्व के द्वारा हरण कर लाई गई हूँ। इस प्रकार के विचार से उस का मनः संकल्प अपहत हो गया-अनिष्ट के योग से उस का मनोरथ भग्न हो गया और वह खेदखिन्न हो गई यावत् आर्तध्यान करने लगी। (तएणं से पउमणाभे राया ण्हाए जाव सव्वालंकारविभू-सिए अंतेउरपरियालं संपिबुडे, जेणेव असोगवणिया जेणेव दोवई देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता दोवई देवीं ओहय० जाव झिया-

(नो खलु अम्हं एसे सएभवणे णो खलु एसा अम्हं सगा असोगवणिया, तं ण णज्जइ णं अहं केणई देवेण वा दाणवेण वा किंपुरिसेण वा किन्नरेण वा महो-रगेण वा गंधव्वेण वा अन्नस्स रण्णो असोगवणियं साहरियत्ति कट्टु ओहयमण संकप्पा जाव झियायइ)

आ भाइं लवन नथी, आ भारी अशोक वाटिका नथी. कंठ थपर पउती नथी, शुं हुं भील्ल डोई रान्नी अशोक वाटिकाभां डोई देव, दानव, किंपुरुष किन्नर, महोरग अथवा तो गंधर्व वडे अपहृत थधने लई ज्वाभां आवी छुं. आ जतना विचारोथी तेनु मन उदास थध गथुं, अनिष्टना योगथी तेनो मनोरथ लज्ज थध गथे। अने ते जेइ-थिन्न थध गध यावत् आर्तध्यान करवा लागी.

(तएणं से पउमणाभे राया ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए अंतेउरपरियालं संपिबुडे, जेणेव असोगवणिया जेणेव दोवई देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवाग-

द्रौपदीं देवीमपहतमनःसंकल्पां यावद् ध्यायन्तीं=आर्तध्यानं कुर्वतीं पश्यति दृष्ट्वा एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अवादीत्-हे देवानुप्रिये ! किं खलु त्वं ' ओहय० जाव झियाहि ' अपहतमनः संकल्पा यावद् ध्यायसि=विपीदसि एवं खलु त्वं हे देवानुप्रिये ! मम पूर्वसंगतिकेन देवेन जम्बूद्वीपाद् द्वीपाद् भारताद् वर्षाद् हस्तिनापुराद् नगगाद् युधिष्ठिरस्य राज्ञो भवनात् संहता=अपहताऽसि, ततस्तस्माद् मा

यमाणी पासइ, पासित्ता एवं वयासी, किण्णं तुमं देवाणुप्पिया ! मम पुव्वसंगइएणं देवेणं जंबूद्वीवाओ २ भारहाओ वासाओ हत्थिणापुराओ नगराओ जुहिठ्ठिल्लस्स रण्णो भवणाओ साहरिया, तं माणं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहय० जाव झियाहि तुमं मए सद्धिं विपुलाइं भोग-भोगाइं जाव विहराहि) इसके बाद वह पद्मनाभ राजा नहा धोकर यावत् सर्वालंकारो से विभूषित हो अपने अंतःपुर परिवार से संपरि-वृत होकर जहां वह अशोक वाटिका थी-और उसमें भी जहां वह द्रौपदी देवी बैठी थी-वहां आया-वहां आकर के उसने द्रौपदी देवी से अपहत मनः संकल्पवाली यावत् आर्तध्यान करती हुई देखकर इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिये ! तुम क्यों अपहत मनः संकल्प होकर यावत् आर्तध्यान कर रही हो-खेद खिन्न हो रही हो तुम यहां हे देवानुप्रिय ! मेरे पूर्व भव के मित्र देव के द्वारा जंबूद्वीप नाम के द्वीप से भारतवर्ष के हस्तिनापुर नगर से युधिष्ठिर राजा के भवन से हरण कर ले आई

च्छित्ता दोवईं देवीं ओहय० जाव झियायमाणी पासइ, पासित्ता एवं वयासी किण्णं तुमं देवाणुप्पिया ! ममपुव्वसंगइएणं देवेणं जंबूद्वीवाओ २ भारहाओ वासाओ हत्थिणापुराओ नगराओ जुहिठ्ठिल्लस्स रण्णो भवणाओ साहरिया, तं माणं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहय० जाव झियाहि तुमं मए सद्धिं विपुलाइं भोग-भोगाइं जाव विहराहि)

त्यारपणी ते पद्मनाभराज्ज स्नान करीने यावत् सर्वालंकारोथी विभूषित थधने पोताना रणुवास-परिवारने साथे लधने न्यां अशोक वाटिका उती अने तेमां पणु न्यां ते द्रौपदी देवी जेठी उती त्यां आव्यो. त्यां आवीने तेजे द्रौपदी देवीने अपहतमनः संकल्पवाणी यावत् आर्तध्यान करती जेधने आ प्रमाणे कहुं के हे देवानुप्रिये ! तमे शा माटे अपहतमनः संकल्पा थधने यावत् आर्तध्यान करी रही छे ? जेह-भिन्न थध रह्या छे ? हे देवानुप्रिये ! भारा पूर्वलवना मित्र देव वडे तमे जंबूद्वीप नामना द्वीपना, भारत वर्षना हस्तिनापुर नगरना युधिष्ठिर राजाना लवनाथी अपहत थधने आईं लाववासां

खलु त्वं हे देवानुप्रिये ! अपहतमनःसंकल्पा यावद् ध्याय, आर्तध्यानं मा कुरु त्वं मया सार्धं विपुलान् भोगभोगान् यावद् भुञ्जाना विहर=मदीयप्रासादे तिष्ठ' इति ।

ततः खलु सा द्रौपदी देवी पद्मनाभमेवमवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे द्वाश्वत्यां नगर्यां कृष्णो नाम वासुदेवो मम प्रियभातृकः=ममप्रियस्य भर्तुर्भ्राता परिवसति, तद् यदि खलु स षण्णां मासानां मध्ये 'ममं' मां 'कूवं' देशीशब्दोऽयम्, अन्वेषयितुं ग्रहीतुं वा नो शीघ्रमागच्छति-ततः खलु

गई हो । इसलिये हे देवानुप्रिये ! तुम आपहतमनःसंकल्प बनकर यावत् आर्तध्यान मत करो । तुम तो अब मेरे साथ विपुल कामभोगों को भोगती हुई मेरे प्रासाद में रहो । (तएणं सा दोवई देवी पउमणाभं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबूद्वीपे दीवे भारहे वासे वारवइए णयरीए कण्णे णामं वासुदेवे ममप्पियभाउए परिवसइ, तं जइणं से छण्हं मासाणं मम कूवं णो हव्व मागच्छइ, तएणं अहं देवाणुप्पिया ! जं तुमं वदसि तस्स आणाओवायवयणणिहेसे चिट्ठिस्सामि तएणं से पउमे दोवईए एयमट्ठं पडिसुणेइ २ दोवइं देवीं कण्णंतेउरे ठवेइ; तएणं सा दोवई देवी छट्ठं छट्ठेणं अणिविखत्तेणं आयंबिलपरिग्गहिणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ) इसके बाद उस द्रौपदी देवी ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिय ! सुनो-जंबूद्वीप नाम के द्वीप में भारतवर्षमें द्वाश्वती नगरी में कृष्ण वासुदेव मेरे प्रिय पतिके भ्राता रहते हैं । वे यदि छह मासके भीतर मुझे अन्वेषण करनेके लिये या

आवी छे अथी छे देवानुप्रिये ! तमे अपहतमनः संकल्पा थधने यावत् आर्तध्यान न करो तमे अनुप्यलव संधी काम लेगे। लोगतां भारा भडेलमां रडे।

(तएणं सा दोवई देवी पउमणाभं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबू द्वीपे दीवे, भारहे वासे वारवइए णयरीए कण्णे णामं वासुदेवे मम पियभाउए परिवसइ, तं जइणं से छण्हं मासाणं मम कूवं णो हव्व मागच्छइ, तएणं अहं देवाणुप्पिया ! जं तुमं वदसि तस्स आणाओवायवयणणिहेसे चिट्ठिस्सामि तएणं से पउमे दोवईए एयमट्ठं पडिसुणित्ता २ दोवई देवीं कण्णंतेउरे ठवेइ, तएणं सा दोवई देवी छट्ठं छट्ठेणं अणिविखत्तेणं आयंबिलपरिग्गहिणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ)

त्यारपधी द्रौपदी देवीअे पद्मनाभने आ प्रभाणे उहुं के देवानुप्रिय ! सांलणे, जंबूद्वीप नामना द्वीपमां भारत वर्षमां द्वाश्वती नगरीमां कृष्ण-वासुदेव भारा प्रिय पतिना लार्ध रडे छे. तेअे छ भडीनानी अंहर. भारी तपास

अहं हे देवानुप्रिय ! यत् त्वं वदसि=वदिष्यसि ' तस्स ' तत्र ' आणाओवायवय-
णणिद्देसे ' आज्ञावपातवचननिर्देशे स्थास्यामि, तवाज्ञाकारिणी वशवर्तिनी भवि-
ष्यामीत्यर्थः, आज्ञा-अवश्य विधेयतया आदेशः, उपपातवचनं सेवावचनं, निर्देशः-
कार्याणि प्रति प्रश्नेकृते यन्निपतार्थमुत्तरम्, एषां समाहारद्वन्द्वः तत्र, ततः खलु
स पद्मनाभो राजा द्रौपद्या एतमर्थं प्रतिश्रुत्य=स्वीकृत्य द्रौपदीं देवीं ' कण्ठतेउरे '
कन्यान्तः पुरे स्थापयति, ततः खलु सा द्रौपदीदेवी ' छट्टं छट्टेणं ' षष्ठपष्ठेन
षष्ठभक्तानन्तरं पुनः षष्ठभक्तेन, ' अनिक्खित्तेणं ' अनिक्षिप्तेन=विरामरहितेन
अन्तररहितेनेत्यर्थः, ' आयं विलपरिगृहीणं ' आयं विलपरिगृहीतेन तपः कर्मणा
आत्मानं भावयन्ती विहरति ॥ सू० २६ ॥

मूलम्—तएणं से जुहूद्विह्णे रायातओ सुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धे
समाणे दोवइं देविंपासे अपाससाणो सयणिज्जाओ उट्टेइ उट्टित्ता
दोवईए देवीए सव्वओ समंता भग्गणगवेसणं करेइ करित्ता
दोवईए देवीए कथइ सुइं वा खुइं वा पवत्ति वा अलभमाणे
जेणेव पंडुराया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पंडुरायं एवं वयासी
एवं—खलु ताओ ! ममं आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ

छेने के लिये यहां जल्दी से नहीं आयेगे तो उसके बाद हे देवानुप्रिय !
जैसा तुम कहोगे वैसा मैं करूंगी—तुम्हारी आज्ञा कारिणी वशवर्तिनी
यन जाऊंगी। ऐसा अर्थ " आणाओवायवयणणिद्देसे " इन पदों का
निकलता है। इसके बाद पद्मनाभ राजा ने द्रौपदी के इस कथन को
स्वीकार करके उसे कन्या के अन्तः पुर में रख दिया। वहां वह द्रौपदी
देवी आयं विल परिगृहीत छट्ट छट्ट की अन्तर रहित तपस्या से अपने
आप को भावित करती हुई रहने लगी। सू० २६

करतां करतां अर्धी नडि आवी शके तो त्थारपणी छे देवानुप्रिय ! तमे नेम
कडेशे। तेम करीश, हुं तमारी आज्ञाकारिणी वशवर्तिनी भनी न्धश. " आणा
ओवायवयणणिद्देसे " आ पदोथी आ नतने। अर्थ नीकणे छे. त्थारपणी
पद्मनाभ राजा ने द्रौपदीना ते कथने स्वीकारी दीधुं अने तेने कन्याना अन्तः
पुरमां भूडी दीधी. त्यां ते द्रौपदी देवी आयं विल परिगृहीत छट्ट छट्टनी अन्तर
रहित तपस्याथी पोतानी नतने भावित करती रहेवा लागी, ॥ सूत्र २६ ॥

दोवइ देवी ण णज्जइ केणइ देवेण वा दाणवेण वा किन्नरेण
वा किं पुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा णीया वा
अवक्खित्ता वा !, इच्छामि णं ताओ ! दोवईए देवीए सव्वओ
समंता मग्गणभव्वेसणं कयं, तएणं से पंडुराया कोडुंबियपुरिसे
सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया !
हत्थिणाउरे नयरे सिंघाडगतियचउक्कचच्चरमहापहपहेसु महया२
सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयासी-एवं खल्लु देवाणुप्पिया !
जुहिट्टिह्लस्स रण्णो आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई
देवी ण णज्जइ केणइ देवेण वा दाणवेण वा किन्नरेण वा किं-
पुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा नीया वा
अवक्खित्ता वा, तं जो णं देवाणुप्पिया ! दोवइए देवीए सुइं
वा जाव पवित्तिं वा परिकहेइ तस्स णं पंडुराया विउलं अत्थ-
संपयाणं दाणं दलयइ त्तिकट्टु घोसणं घोसावेहर एयमाणत्तियं
पच्चप्पिणह, तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति,
तएणं से पंडुराया दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा जाव अलभ-
माणे कोत्तीं देवीं सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं
तुमं देवाणुप्पिया ! बारवइं णयरिं कणहस्स वासुदेवस्स एयमट्टं
णिवेदेहि कणह णं परं वासुदेवे दोवइए मग्गणभव्वेसणं करेज्जा
अन्नहा न नज्जइ दोवइए देवीए सुतीं वा खुतीं वा पवत्तीं वा
उवलभेज्जा, तएणं सा कोत्ती देवी पंडुरण्णा एवं वुत्ता समाणी
जाव पडिसुणेइ पडिसुणित्ता ण्हाया कयवलिकम्मा हत्थिखंध-

वरगया हत्थिणाउरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ णिग्गच्छित्ता कुरु-
 जणवये मज्झंमज्झेणं जेणेव सुरट्टजणवए जेणेव वारवई णयरी
 जेणेव अग्गुजाणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ
 पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता कोडुंवियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं
 वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! जेणेव वारवई णयरी
 तेणेव अणुपविसह, अणुपविसित्ता कण्हं वासुदेवं करयल० एवं
 वयह-एवं खलु सामी ! तुब्भं पिउच्छा कौंती देवी हत्थिणा-
 उराओ नयराओ इह हव्वमागया तुब्भं दंसणं कंखइ, तएणं
 ते कोडुंवियपुरिसा जाव कहेंति, तएणं कण्हे वासुदेवे कोडुंवि-
 यपुरिसाणं अंतिए सोच्चा णिसम्म हत्थिखंधवरगए हयगय
 वारवईए य मज्झंमज्झेणं जेणेव कौंती देवी तेणेव उवागच्छइ
 उवागच्छित्ताहत्थिखंधाओ पच्चोरुह पच्चोरुहित्ता कौंतीए देवीए
 पायग्गहणं करेइ करित्ता कौंतीए देवीए सद्धिं हत्थिखंधं दुरुहइ
 दुरुहित्ता वारावइए णयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव
 उवागच्छइ उवागच्छित्ता सयं गिहं अणुपविसइ । तएणं से
 कण्हे वासुदेवे कौंती देविं णहायं कयवलिकम्मं जिमियभुत्त-
 रागयं जाव सुहासणवरगयं एवं वयासी संदिसउ णं पिउच्छा !
 किमागमणपओयणं ?, तएणं सा कौंती देवी कण्हं वासुदेवं
 एवं वयासी-एवं खलु पुत्ता ! हत्थिणाउरे णयरे जुहिट्टिल्लस
 आगासतले सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी ण णज्जइ केणइ
 अवहिया जाव अवक्खित्ता वा, तं इच्छामि णं पुत्ता ! दोवईए

देवीए मग्गणगवेसणं करित्तए, तएणं से कणहे वासुदेवे कौंती
पिउच्छि एवं वयासी-जं णवरं पिउच्छा ! दोवइए देवीए कत्थइ
सुइं वा जाव लभामि तो णं अहं पायालाओ वा भवणाओ
अद्धभरहाओ वा समंतओ दोवइं साहत्थि उवणेमित्तिकहु कौंती
पिउत्थि सक्कारेइ समाणेइ जाव पडिविसज्जेइ, तएणं सा कौंती
देवी कणहेणं वासुदेवेणं पडिविसज्जिया समाणी जामेव दिसिं
पाउ० तामेव दिसिं पडिगया ॥ सू० २५ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स युधिष्ठिरो राजा ततो मुहूर्तान्तरे प्रतिबुद्धः सन् द्रौपदीं देवीं पार्श्वे ‘ अपासमाणो ’ अपश्यन्=अनवलोकयन् शयनीयादुत्तिष्ठति, उत्थाय द्रौपद्या देव्याः सर्वतः समन्ताद् मार्गणगवेषणं करोति, कृत्वा द्रोपद्या देव्या ‘ कत्थइ ’ कुत्रापि ‘ सुइं ’ श्रुतिं सामान्यवृत्तान्तं वा, ‘ खुइं ’ क्षुतिं छिकादि शब्दं वा ‘ पवत्ति ’ प्रवृत्तिं वा विशेषवृत्तान्तं अलभमानो

तएणं से जुहिट्टिल्ले राया इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से जुहिट्टिल्ले राया) वे युधिष्ठिर राजा (तओ मुहुत्तंतरस्स) एक मुहूर्त के बाद (पडिवुद्धे समाणे) जगे-और जगकर उन्होंने (दोवई देवीं) द्रौपदी देवी को (पासे अपासमाणो सयणिज्जाओ उट्टेइ, उट्टित्ता दोवईए सव्वओ समंतां मग्गणगवेसणं करेइ) अपने पास जब नहीं देखा तो वे अपनी शय्या से उठे और उठकर द्रौपदी देवीकी सबओरसे उन्होंने मार्गणा गवेषणाकी (करित्ता दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा खुइं वा पवत्ति वा अलभमाणे जेणेव पंडुराया

‘तएणं से जुहिट्टिल्ले राया ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपथी (से जुहिट्टिल्ले राया) ते युधिष्ठिर राजा (तओ मुहुत्तंतरस्स) अक ‘मुहुत्तं’ आइ (पडिवुद्धे समाणे) लग्या. अने लगीने तेभण्णे (दोवई देवी) द्रौपदी देवीने,

(पासे अपासमाणो सयणिज्जाओ उट्टेइ, उट्टित्ता दोवईए सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ)

न्यारे पोतानी पासे लेठ नडि त्यारे पोतानी शय्या उपरथी लला थया अने लला थरने द्रौपदी देवीनी चोभेर मार्गणा गवेषणा करी.

(करित्ता दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा खुइं वा पवत्ति वा अलभमाणे

यत्रैव पाण्डुराजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पाण्डुं राजानमेवमवादीत्— हे तात ! एवं खलु ममाकाशतले प्रासादादालिकोपरि ' सुहृपसुत्तस्स ' सुखंप्रसुप्तस्य पार्श्वोद् द्रौपदी देवी ' ण णज्जइ ' न ज्ञायते केनापि देवेन वा दानवेन वा किन्नरेण वा किंपुरुषेण वा गन्धर्वेण वा हता वा नीता=अन्यत्र प्रापिता वा अवक्षिप्ता वा= ? कूपगर्तादौ कुचित् पातिता वा इत्यर्थः, तत्-तस्माद् इच्छामि खलु हे तातः ! द्रौपद्या देव्याः सर्वतः समन्ताद् मार्गणगवेषणं कर्तुम् ।

तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंडुरायं एवं वयासी एवं खलु ताओ ममं आगासतलगंसि सुहृपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी ण णज्जइ, केणइ देवेण वा दाणवेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधर्वेण वा हिया वा णीया वा अवक्खित्ता वा) मार्गणा गवेषणा करके जब उसने द्रौपदी देवी की कहीं भी शोध, सामान्य खबर को उस के चिह्नस्वरूप छिक्का आदि के शब्द को, अथवा प्रवृत्ति-विशेष वृत्तान्त को नहीं पाया तब वे जहाँ पांडुराजा थे वहाँ गये-वहाँ जाकर के उन्होंने पांडुराजा से इस प्रकार कहा-हे तात ! जब मैं प्रासाद की अदालिकाके ऊपर सुखसे सो रहा था-तब मेरे पाससे न मालूम द्रौपदी देवी को किसी देवने, दानवने, किन्नरने, किंपुरुषने, महोरगने, गंधर्वने हरण कर कहाँ रख दिया है ।-या उसे किसी कुएँ में या खड्डे में डाल दिया है (इच्छामि णं ताओ दोवईए देवीए सव्वओ समन्ता मग्गण गवेषणं कयं) इस लिए हे तात ! मैं द्रौपदी देवी की सब तरफ से

जेणेव पंडुराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंडुरायं एवं वयासी एवं खलु ताओ ममं आगासतलगंसि सुहृपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी ण णज्जइ, केणइ देवेण वा दाणवेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधर्वेण वा हिया वा णीया वा अवक्खित्ता वा)

मार्गणा गवेषणा कयां आह पणु न्यारे तेमणे द्रौपदी देवीनी केधपणु रीते, सामान्य षण्णर अने चिह्न स्वरूप छीक वगेरे शब्दने अथवा तो प्रवृत्ति-विशेष वृत्तान्त-नी पणु णणु थध नडि त्त्यारे तेणो न्यां पांडुराज्ज हता त्यां गया, त्यां ञ्छने तेमणे पांडुराज्जने आ प्रभाणे कहुं के हे तात ! न्यारे हुं भडेदनी अगाशीमां सूध रद्धो हतो त्त्यारे भारी पासे न णणे केणु द्रौपदी देवीतुं केध देवे, दानवे के किन्नरे के किंपुरुषे के महोरगे के गंधर्वे उरणु कथुं छे. अथवा तो द्रौपदी देवीने केधये क्खामां के णाडामां नाणी दीधी छे. (इच्छामि णं ताओ दोवईए देवीए सव्वओ समन्तो मग्गण-

ततः खलु स पाण्डुराजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा एवमवा-
दीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! हस्तिनापुरे नगरे गृङ्गाटकत्रिकचतुष्क-
चत्वरमहापथपथेषु महता महता शब्देनोद्धोषयन्तः एवं वदत-एवं खलु हे देवानु-
प्रियाः ! युधिष्ठिरस्य राज्ञ आकाशतलके सुखमसुप्तस्य पार्श्वान् द्रौपदी देवी न
ज्ञायते केनापि देवेन वा दानवेन वा किं पुरुषेण वा किन्नरेण वा महोरगेण वा

और सब प्रकार से मार्गणा और गवेषणा करना चाहता हूँ । (तए णं
से पंडुरायां कौटुम्बिकपुरिसे सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी गच्छहाणं
तुम्हे देवाणुप्पिया ! हत्थिगाउरे नयरे, सिंघाडगतीय चउक्कचच्चर महा
पहपहेसु महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयासी-एवं खलु देवा-
णुप्पिया ! जुहिट्टिल्लस्स रण्णो आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ
दोवई देवी ण णज्जइ, केणइ, देवेण वा दानवेण वा किन्नरेण वा किंपुरि-
सेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा नीया वा अवक्खित्ता वा)
इस बात को सुनकर के उन पांडुराजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया
और बुलाकर उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रियो ! तुम लोग हस्तिनापुर
नगर में जाओ-और वहां के श्रृंगाटक, त्रिक चतुष्क, चत्वर, महापथ
इन समस्त मार्गों में बड़े जोर २ से ऐसी घोषणा बार २ करो कि हे
देवाणुप्रियो ! सुनो प्रासादकी अट्टालिका पर सुखपूर्वक सोये हुए युधिष्ठिर
राजा के पास से न मालूम किसी देवने, या दानवने, किसी, किन्नरने,

गवेषणं कयं) अत्रेत्था माटे डे तात । हुं चोभेर अधी रीते द्रौपदी देवीनी
मार्गणा अने गवेषणा करवा धम्भुं छुं.

(तए णं से पंडुराया कौटुम्बिकपुरिसे सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी गच्छह णं
तुम्हे देवाणुप्पिया ! हत्थिगाउरे नयरे, सिंघाडगतीयचउक्कचच्चरमहापह-
पहेसु महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया !
जुहिट्टिल्लस्स रण्णो आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी ण
णज्जइ, केणइ देवेण वा दानवेर वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेणं वा
गंधव्वेण वा हिया वा नीया वा अवक्खित्ता वा)

आ वातने सांलणीने पांडु रान्णे कौटुम्बिक पुरुषाने आलाव्या अने
आलावीने तेमने आ प्रभाणु कळुं के डे देवानुप्रियो ! तमे लोके हस्तिनापुर
नगरमां लण्णे अने त्यांना श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, महापथ आ अथा
मार्गोमां आटा साहे आ लतनी घोषणा करो के डे देवानुप्रियो ! सांलणो,
महेलनी अगाशी उपर सुजेथी सूता युधिष्ठिर रान्णी पांसेथी न लण्णे कोथ
देवे के दानवे अथवा तो कोथ किन्नरे के किंपुरुषे अथवा कोथ महोरगे के

गन्धर्वेण वा हता वा नीता वा अवक्षिप्ता वा, तत्=तस्माद् यः खलु हे देवानु-
प्रियाः ! द्रौपद्या देव्याः श्रुतिं वा क्षुतिं वा प्रवृत्तिं वा परिकथयति, तस्य खलु
पाण्डू राजा विपुलमर्थसंप्रदानं दानं ददाति=इति कृत्वा-इत्युक्त्वा घोषणां घोष-
यत, घोषयित्वा एतामज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषास्त-
थैव घोषणां कृत्वा यावदाज्ञां प्रत्यर्पयन्ति=हे स्वामिन् ! भवदाज्ञया घोषणा
कृताऽस्माभिरिति निवेदयन्ति ।

या किसी किंपुरुष ने या किसी महोरग ने या किसी गंधर्व ने द्रौपदी
देवी को हरण कर लिया है-या हरणकर उसे कहीं रख दिया है अथवा
किसी कुँ में या खड्डे में डाल दिया है (तं जो णं देवाणुप्पिया । दोव-
ईए देवीए सुइं वा जाव पवत्ति वा परिकहेइ, तस्स णं पंडुराया विउलं
अत्थसंपयाणं दाणं दलयइ, त्ति कट्टु घोसणं घोसावेह २ एयमाणत्तियं
पच्चप्पिणह, तएणं ते कौडुंबिय पुरिसा जाव पच्चप्पिणंति-तएणं से
पंडुराया दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा जाव अलभमाणे कौतीं देवीं
सदावेइ) तो हे देवानुप्रियो ! जो कोई भी मनुष्य द्रौपदी देवी की शोध
करेगा यावत् उसके विशेषवृत्तान्त को लाकर देगा-हम से आकर
कहेगा, उसको पांडुराजा बहुत अधिक मात्रा में अर्थ संप्रदान-दान-
देगा । इस प्रकार की तुम घोसषणा करो, और घोषणा कर के फिर
हमें इसकी पीछे खबर दो । इस प्रकार राजा की आज्ञा पाकर उन
कौटुम्बिक पुरुषों ने इसी प्रकारकी घोषणा करके इस की खबर राजाके

गंधर्वे द्रौपदी देवीनु अपहरणु कथुं छे के हरणु करीने तेने कथांक भूडी हीधी
छे के केड धूषाभां अथवा तो आडाभां नाभी हीधी छे.

(तं जो णं देवाणुप्पिया । दोवईए देवीए सुइं वा जाव पवत्ति वा परिकहेइ,
तस्सणं पंडुराया विउलं अत्थसंपयाणं दाणं दलयइ, त्ति कट्टु घोसणं घोसावेह २
एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह, तएणं ते कौडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति-तएणं से
पंडुराया दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा जाव अलभमाणे कौतीं देवीं सदावेइ)

तो हे देवानुप्रियो ! जे केड पथु भाणुस द्रौपदी देवीनी शोध करशे यावत्
तेना विषे सविशेष सभाआर न्णणीने अमने अमर आपसे, अमने कडेशे,
तेने पांडु राज भूष ज द्रव्य-धन आपसे. आ रीते तसे घोषणा करे अने
घोषणा थर्ध न्वानी अमने अमर पथु आपो. आ रीते राजनी आज्ञा
सांलणीने ते कौटुम्बिक पुरुषोअे आ प्रभाणु ज घोषणा करीने तेनी अमर
राजने आयी त्यारपथी न्यारे पांडु राजअे द्रौपदी देवीनी केडपथु स्थाने

ततः खलु स पाण्डू राजा द्रौपद्या देव्याः कुत्रापि श्रुतिं वा यावत् प्रवृत्तिम् अलभमानः कुन्तीं देवीं शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादीत्—गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिये ! द्वारावतीं नगरीं कृष्णस्य वासुदेवस्य एतमर्थं निवेदय=सुखप्रसुप्ता द्रौपदी केनाऽपि हता नीता कृपादौ प्रक्षिप्ता वेति न ज्ञायते इत्येतद्रूपं वृत्तान्तं कथय, कृष्णः खलु परं वासुदेवो द्रौपद्या मार्गणगवेषणं कुर्यात् अन्यथा न ज्ञायते द्रौपद्या देव्याः श्रुतिं वा प्रवृत्तिं वा क्षुत्तिं वा उपलभेत ।

पास भेजदी ! इसके बाद जब पांडुराजा ने द्रौपदी देवी की कहीं पर भी श्रुती यावत् प्रवृत्ति नहीं पाई तब उन्होंने ने कुन्ति देवी को बुलाया— (सहावि० ए० वयासी) और बुलाकर उन से ऐसा कहा—(गच्छहणं तुमं देवाणुप्पिया ! वारवइं नयरिं कण्हस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं णिवेदेहि, कण्हेणं परं वासुदेवे दोवईए मग्गणगवेसणं करेज्जा—अन्नहा न नज्जई, दोवईए देवीए सुतीं वा खुतीं वा पवत्तीं वा उवलभेज्जा) हे देवानुप्रियो ! तुम द्वारावती नगरी में कृष्ण वायुदेव के पास जाओ—और उनसे इस अर्थका निवेदन करो कि सुख प्रसुप्त द्रौपदी को किसी ने हरलिया है । हरण कर उसे कहीं पहुँचा दिया है या किसी कुँए में या खड्डे में डाल दिया है । पता नहीं पड़ता है । वे कृष्ण वासुदेव अवश्य २ ही द्रौपदी की मार्गणा गवेषणा करेंगे । नहीं तो द्रौपदी देवी की श्रुति, क्षुत्ति अथवा प्रवृत्ति हमें प्राप्त हो जावेगी—यह नहीं कहा जा सकता है ।

श्रुति यावत् प्रवृत्ति भेजवी नडि त्थारे तेमण्णे कुन्ती देवीने भोलावी. (सहा वि० ए० वयासी) अने भोलावीने तेमने आ प्रमाणे कथुं—

(गच्छहणं तुमं देवाणुप्पिया ! वारवइं नयरिं कण्हस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं णिवेदेहि, कण्हेणं परं वासुदेवे दोवईए मग्गणगवेसणं करेज्जा अन्नहा न नज्जई, दोवईए देवीए सुतीं वा खुतीं वा पवत्तीं वा उवलभेज्जा)

हे देवानुप्रिये ! तमे द्वारावती नगरीमां कृष्णवासुदेवनी पासे लब्धे अने तेमने आ प्रमाणे विनंती करे के सुभधी सुतेवी द्रौपदीनुं केधये डरणु करी वीधुं छे. डरणु करीने तेने क्यांक भूकी वीधी छे अथवा तो केध कृवामां के भाडामां नाणी वीधी छे. न लण्णे शुं थध गयुं छे ? कृष्णवासुदेव भने भात्री छे के योक्कस द्रौपदी देवीनी मार्गणा गवेषणा करशे नडितर द्रौपदी देवीनी श्रुति, क्षुत्ति अथवा प्रवृत्तिनी लण्णे अमने थशे अवी शक्यता लण्णती नथी.

ततः खलु सा कुन्ती देवी पाण्डुना राज्ञा एवमुक्ता सती यावत् प्रतिश्रुणोति= पाण्डुवृषस्याज्ञां स्वीकरोति, प्रतिश्रुत्य-स्वीकृत्य रनाता कृतबलिकर्मा हस्तिस्कन्ध-वरगता हस्तिनापुरस्य मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य कुरुजनपदस्य=कुरुनाम-कस्य देशस्य मध्यमध्येन यत्रैव सौराष्ट्रजनपदः, यत्रैव द्वारावती नगरी, यत्रैवाग्रो-द्यानं=यत्रान्यस्थानादागतानां स्थित्यर्थमावासो विद्यते तादृशं वहिः प्रदेशवर्त्युपव-नम्, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य हस्तिस्कन्धात् प्रत्यवरोहति=प्रत्यघतरति, प्रत्य-वस्त्व सौदुम्बिकपुरूपान शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे

(तएणं सा कौंती देवी पंडुरण्णा एवं वुत्ता समाणी जाव पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता, पहाया कयवलिकम्मा हत्थिखंधवरगया हत्थिणाउरं मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ णिगच्छित्ता कुरुजणवयं मज्झं मज्झेणं जेणेव सुरट्ट जणवए जेणेव वारवई णयरी जेणेव अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ उवा-गच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहिता कोडुंबियपुरिसे सहा-वेइ, सहावित्ता एवं वयासी) इस के बाद पांडुराजा द्वारा इस प्रकार कही गई कुन्ती देवी ने पांडुराजा की आज्ञा को स्वीकार कर लिया-और स्वीकार कर के उसने स्नान किया-काक आदि पक्षियों के लिये अन्न देने रूप बलि कर्म किया । बाद में वह हाथी के ऊपर बैठकर हस्तिनापुर नगर के बीच से होकर निकली -निकलकर वह कुरुदेश के बीच से होती हुई जहाँ सौराष्ट्र जनपद था और उसमें भी जहाँ द्वारावती नगरी थी-वहाँ पर भी जहाँ वह अग्रउद्यान था कि जिसमें बाहरसे आये हुए पथिक विश्राम के लिये ठहर जाते थे-वहाँ गई । वहाँ जाकर

(तए णं सा कौंती देवी पंडुरण्णा एवं वुत्ता समाणी जाव पडिसुणेइ, पडिसुणित्त', पहाया कयवलिकम्मा हत्थिखंधवरगया हत्थिणाउरं मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ, णिगच्छित्ता कुरुजाणवयं मज्झं मज्झेणं जेणेव सुरट्टजणवए जेणेव वारवई णयरी जेणेव अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता कोडुंबियपुरिसे सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी) तयारपणी पांडुराज्ज वडे आ प्रमाणे आज्ञापित थयेली कुंती देवीअे पांडुराज्जनी आज्ञाने स्वीकारी लीधी अने स्वीकारीने तेणे स्नान क्युं. डागडा वगेरे पक्षीअेअे अन्नलाग अर्पीने बलिकर्म क्युं तयारपणी ते हाथी उपर सवार थधने हस्तिनापुर नगरनी वर्ये थधने नीकणी. नीकणीने ते कुइदेशनी वर्ये थधने न्यां सौराष्ट्र जनपद इतुं अने तेमां पणु न्यां अथ उद्यान इतुं-के जेमां गडारथी आवनारा पथिके विश्राम भाटे रोकता इता-तेमां

देवानुप्रियाः । यत्रैव द्वारवती नगरी तत्रैवानुप्रविशत, अलुप्रविश्य कृष्णं वासुदेवं करतलपरिगृहीतदशनखं शिर आवर्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवं वदत एवं खलु हे स्वामिन् ! युष्माकं पितृष्वसा कुन्ती देवी हस्तिनापुराद् नगराद् इह हव्यसागता युष्माकं दर्शनं काङ्क्षति । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषा यावत् कथयन्ति=कृष्ण-वासुदेवस्य समीपे कुन्तीकथितं वचनं निवेदयन्तीत्यर्थः । ततः खलु कृष्णो वासु-

वह हाथी से नीचे उतरी और उत्तर कर के उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया- बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा-(गच्छह णं तुव्भे देवाणु-प्पिया ! जेणेव बारवईणयरी, तेणेव अणुपविससह, अणुपविसित्ता कणह वासुदेवं करयल० एवं वयह, एवं खलु सामी ! तुव्भं पिउच्छा कौंती देवी हत्थिणाउराओ नयराओ इह हव्वसागया, -तुव्भं दंसणं कंसह, तएणं ते कोडुंबिय पुरिसाणं अंतिए सोच्चा णिसम्म हत्थिखंधवरगए हयगयवारवईए य मज्झं मज्झेणं जेणेव कौंती देवी-तेणेव उवागच्छह) हे देवानुप्रियो ! तुम द्वारवती नगरी में जाओ-वहां जाकर कृष्ण वासुदेव को दोनों हाथोंकी अंजलि बनाकर और उसे मस्तक पर रख-कर शिर झुकाते हुए नमस्कार करना-बादमें उनसे ऐसा कहना-कि हे स्वामिन् ! आपकी पितृष्वसा-सुआ-कुंती देवी हस्तिनापुर नगर से यहां अभी -आई है-वे आपके दर्शन करना चाहती हैं। उन कोटु-म्बिक पुरुषोंने कुंती देवी की इस आज्ञा को शिरोधार्य कर श्री कृष्ण

शेकाध. त्यां वधने ते हाथी उपरथी नीचे उतरी अने उतरीने तेणे कौटुम्बिक पुरुषोने बोलाव्या अने बोलावीने तेमने आ प्रभाणे कहुं के—

(गच्छह णं तुव्भे देवाणुप्पिया ! जेणेव बारवई णयरी, तेणेव अणुपविसह, अणुपविसित्ता कणहं वासुदेवं करयल० एवं वयह एवं खलु सामी ! तुव्भं पिउच्छा कौंती देवी हत्थिणाउराओ नयराओ इह हव्वसागया, तुव्भं दंसणं कंसह, तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव कहेति, तएणं कणहे वासुदेवे कोडुंबिय पुरि-साणं अंतिए सोच्चा णिसम्म हत्थिखंधवरगए हयगयवारवईए य मज्झं मज्झेणं जेणेव कौंती देवी-तेणेव उवागच्छह)

हे देवानुप्रियो ! तमे द्वारवती नगरीमां लब्धो, त्यां वधने कृष्णुवासु-देवने णंने हाथोनी अंजलि बनावीने अने तेने मस्तके मूडीने माथुं नीचे नभावीने नमस्कार करले तयारपणी तेमने आ प्रभाणे वितती करले हे हे स्वामिन् ! तमारी पितृष्वसा-इह कुंती देवी हस्तिनापुर नगरथी अत्यारे अर्धी आव्या छे तेओ। तमने लोवा भाणे छे ते कौटुम्बिक पुरुषोअे कुंती देवीनी आ आज्ञाने स्वीकारीने श्रीकृष्णु वासुदेवने आ सभाचारनी अणर थापी

देवः कौटुम्बिकपुरुषाणामन्तिके श्रुत्वा निशम्य हस्तिस्कन्धवरगतो ह्यगजरथ-
पदातिसंपरिवृतो द्वारवत्या नगर्या मध्यमध्येन यत्रैव कुन्ती देवी तत्रैवोपागच्छति,
उपागत्य हस्तिस्कन्धात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य कुन्त्या देव्याः पादग्रहणं करोति,
कृत्वा कुन्त्या देव्या सार्धं हस्तिस्कन्धं ' दुरुहइ ' दूरोहति=आरोहतीत्यर्थः । दूरुह्य
द्वारवत्या नगर्या मध्यमध्येन यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य स्वकं
गृहमनुप्रविशति ।

वासुदेव के लिये इस समाचार की खबर करदी कृष्ण वासुदेव कौटु-
म्बिक पुरुषों के पास से इस समाचार को सुनकर और उसे हृदय में
धारण कर हाथी पर बैठ, ह्यगज, रथ एवं पदातियों के साथ २ द्वारा
वती नगरी के बीच से होते हुए जहाँ कुन्तीदेवी थी वहाँ आये । (उवा-
गच्छित्ता हत्थिखंधाओ पचचोरुहइ, पचचोरुहित्ता कौंतीए देवीए पाय-
ग्ग्रहणं करेइ, करित्ता कौंतीए देवीए सद्धि हत्थिखंधं दुरुहइ, दुरुहित्ता
बारवईए णयरीए मज्झं मज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता सयं गिहं अणुपविसइ, तएणं से कण्हे वासुदेवे कौंतीदेवीं
ण्हायं कयवलिकम्मं जिमियभुत्तुरागयं जाव सुहासणवरगयं एवं
वयासी) वहाँ आकर वे हाथी पर से नीचे उतरे और उतरकर कुन्ती
देवी के चरणों में नमन किया—चरण स्पर्श करके कुन्तीदेवी के साथ २
हाथी पर बैठ गये—बैठ कर के द्वारावती नगरी के ठीक भीतर से होकर
जहाँ अपना गृह—प्रासाद—था वहाँ आये—वहाँ आकर प्रासाद के भीतर

दीधी. कृष्णवासुदेवे कौटुम्बिक पुत्रेणी पांसेथी आ सभायारे सांभणीने तेने
हृदयमां धारण करीने, हाथी उपर सवार थईने, घोडा, हाथी, रथ अने पाय-
दणेनी साथे द्वारावती नगरीनी वच्चे थईने ज्यां कुंती देवी हातां त्यां आव्या.
(उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पचचोरुहइ पचचोरुहि । कौंतीए देवीए पायग्ग्रहणं
करेइ, करित्ता कौंतीए देवीए सद्धि हत्थिखंधं दुरुहइ, दुरुहित्ता बारवईए णयरीए
मज्झं मज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, सयं गिहं अणु
पविसइ, तएणंसे कण्हे वासुदेवे कौंती देवी ण्हायं कयवलिकम्मं जिमियभुत्तु-
रागय जाव सिहासणवरगयं एवं वयासी)

त्यां पडोन्तीने तेज्जे हाथी उपरथी नीचे उतर्यां अने उतरिने कुंती
देवीने पगे लाग्या अने पगे लागीने कुंती देवीनी साथे हाथी उपर सवार
थया. सवार थईने ज्यां पोतातुं लवनं हातुं त्यां आव्या, त्यां आवीने लवननी

ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कुन्तीं देवीं स्नातां कृतवलिर्माणं काकादिभ्यः कृतान्नसंविभागा जिमित्तशुक्तोत्तरागतां जिमिता-भोजनं कृतवती शुक्तोत्तरागता-शुक्तोत्तरकालं-भोजनोत्तरकालम्-आगता, तां तथा, यावत् सुखासनवरगता=सुख-पूर्वकं विशिष्टासनोपविष्टाम् एवमवादीत्-हे पितृष्वसः ! संदिशन्तु किमागमनप्रयो-जनम् ?, ततः खलु सा कुन्ती देवी कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्-एवं खलु हे पुत्र ! हस्तिनापुरे नगरे युधिष्ठिरस्याकाशतले सुखप्रसुप्तस्य पार्श्वेद् द्रौपदी देवी न ज्ञायते केनापि अपहता यावद् अवक्षिप्ता वा, तत् तस्माद् इच्छामि खलु हे पुत्र !

चले गये । कुन्ती ने वहाँ जाकर स्नान क्रिया बलिकर्म क्रिया । बाद में चतुर्विध आहार को जीमकर जब वे सुखपूर्वक बैठ गई तब कृष्ण वासुदेव ने उनसे कहा (संदिसउ णं पिउच्छा ! किमागमणपओयणं ? तएणं सा कोंती देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी एवं खलु पुत्ता ! हत्थि णाउरे जुहिद्विहस्स अगासतले सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी ण णज्जइ, केणइ अवहिया जाव अवक्खित्ता वा तं इच्छामिणं पुत्ता ! दोवई ए देवीए मग्गणगवेसणं करित्ते) हे शुआजी ! कहिये-किस कारण से आप यहाँ पधारीं हैं ? इस प्रकार कृष्ण वासुदेव के पूछने पर उस कुन्तीने उन कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा-पुत्र ! सुनो-आने का कारण इस प्रकार है-हस्तिनापुर नगरमें प्रासाद की अट्टालिका के ऊपर सुखके साथ सोये हुए युधिष्ठिर के पास से द्रौपदी देवी न मालूम किसीने हरण करली है-यावत् किसी कुंए से या खड्डे में डाल दी है ।

अंदर गया. कुन्तीने त्यां पडोन्तीने स्नान कथुं अने अलिकर्म कथुं. त्यार पधी चार नतना आडारे नभीने न्यारे ते सुपेथी स्वस्थ थधने भेसी गया त्यारे कृष्ण वासुदेवे तेमने कहुं केः—

(संदिसउ णं पिउच्छा ! किमागमणपओयणं ? तएणं सा कोंती देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी एवं खलु पुत्ता ! हत्थिणाउरे णयरे जुहिद्विहस्स अगासतले सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवीण णज्जइ, केणइ अवहिया जाव अवक्खित्ता वा तं इच्छामिणं पुत्ता ! दोवईए मग्गणगवेसणं करित्ते)

कडो, शा डारणुथी तमे अहीं आव्या छे ? आ रीते कृष्ण वासुदेवना प्रश्नने सांलणीने कुन्ती देवीने कृष्ण वासुदेवने आ प्रभाणे कहुं के छे पुत्र ! सांलणे, हुं अटला भाटे अहीं आवी छुं के हस्तिनापुर नगरमा भडेयनी अगाशी उपरथी सुपेथी सूतेला युधिष्ठिरनी पासेथी न न्णु के छे द्रौपदी देवीनु डरणु करी लीधु छे यावत् केअ कूवामा अे के आउमां नाणी दीधी छे. अथी छे पुत्र ! हुं धम्धुं छुं केः—द्रौपदी देवीनी शोधणेण थवी न्णुअे.

द्रौपद्या देव्या मार्गणगवेषणं ' करिच्छे ' कर्तुम् इति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कुन्तीं ' पिउच्छि ' पितृष्वसारमेवमवादीत्—यत् नवरं हे पितृष्वसः । यदि द्रौपद्या देव्याः कुत्रापि श्रुतिं वा क्षुतिं वा प्रवृत्तिं वा यावत् लभे, ' तो णं ' तर्हि खलु, अहं पातालाद् भवनाद् वा अर्धभरताद् वा=खण्डत्रयमध्यात् समन्तात्=सर्वतः स्थानाद्, द्रौपदीं देवीं ' साहत्थि ' स्वहस्तेन ' उवणेमि ' उपनयामि, इति कृत्वा==इत्युक्त्वा कुन्तीं ' पिउत्थि ' पितृष्वसारं सत्कायति संमानयति, सत्कार्यं

इस लिये हे पुत्र ! मैं चाहती हूँ कि द्रौपदी की मार्गणा एवं गवेषणा होनी चाहिये । (तएणं से कण्हे वासुदेवे कोतीं पिउच्छि एवं वयासी-जं णवरं पिउच्छी दोवइए देवीए कत्थइं सुइं वा जाव लभामि तो णं अहं पायालाओ वा भवणाओ अद्ध भरहाओ वा, समंतओ दोवइं साहत्थि उवणेमि त्ति कट्टु कोती पिउच्छि सक्कारेइ सम्माणेइ, जाव पडिविसज्जेइ, तएणं सा कोती देवी कण्हेणं वासुदेवेणं पडिविसज्जियां, समानी जामेव दिस्सि पाउ० तामेव दिस्सि पडिगया) तव कृष्ण वासुदेव ने अपनी सुआ कुन्ती देवी से इस प्रकार कहा—हे सुआ ! मैं और अधिक तो क्या कहूँ—द्रौपदी देवी की यदि मैं कहीं पर भी श्रुतिक्षुति, और प्रवृत्ति पा लेता हूँ तो मैं चाहे वह पाताल में हो, या किसीके भवन में हो, या अर्ध भरत क्षेत्र में से कहीं पर भी क्यों न हो—उस द्रौपदी देवी को सब जगह से अपने हाथों से ला कर दूँगा । इस प्रकार कहकर उन कृष्ण वासुदेव ने अपनी पितृष्वसा कुन्ती देवी का सत्कार किया,

(तएणं से कण्हे वासुदेवे कोत पिउच्छि एवं वयासी जं णवरं पिउच्छा दोवइए देवीए कत्थइं सु' वा जाव लभामि तो णं अहं पायालाओ वा भवणाओ अद्ध भरहाओ वा, समंतओ दोवइं साहत्थि उवणेमित्ति कट्टु कोती पिउच्छि सक्कारेइ सम्माणेइ, जाव पडिविसज्जेइ, तएणं सा कोती देवी कण्हेणं वासुदेवेणं पडिविसज्जिया समानी जामेव दिस्सि पाउ० तामेव दिस्सि पडिगया)

त्यारे कृष्ण वासुदेवे चोताना श्रेष्ठ कुन्ती देवीने आ प्रभाणु कहुं के हे श्रेष्ठ ! हुं वधारे शुं भुं, द्रौपदी देवीनी जे हुं केष्ठ पणु स्थाने श्रुति, क्षुति अने प्रवृत्ति भेणवी लभश तो लले ते पाताणमां डोय, केष्ठना लवनमां डोय के अर्ध भरत क्षेत्रमां गमे त्यां केम न डोय ते द्रौपदी देवीने गमे त्यांथी हुं दावी आपने आपीश तेम छुं. आ प्रभाणु कहीने ते कृष्ण वासुदेवे चोताना श्रेष्ठ पितृष्वसा—कुन्तीदेवीने सत्कार कथे अने सम्मान कथुं. सत्कार तेमञ्च सम्मान

समान्य यावत्-प्रतिविसर्जयति । ततः खलु सा कुन्ती देवी कृष्णेन वासुदेवेन प्रतिविसर्जिता सती यस्या एव दिशः प्रादुर्भूता तामेव दिशं प्रतिगता ॥ सू० २७ ॥

मूलम्-तएणं से कणहे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बार-वइं एवं जहा-पंडू तहा घोसणं घोसावेति जाव पच्चप्पिणंति, पंडुस्स जहा तएणं से कणहे वासुदेवे अन्नया अंतो अंतेउ-रगए ओरोहे जाव विहरइ, इमं च णं कच्छुल्लए जाव समो-वइए जाव णिसीइत्ता कणहं वासुदेवं कुसलोदंतं पुच्छइ, तएणं से कणहे वासुदेवे कच्छुल्लं एवं वयासी-तुमं णं देवा-णुप्पिया ! बहूणि गामा जाव अणुपविससि, तं अत्थि याइं ते कहिं वि दौवइए देवीए सुतीं वा जाव उवलद्धा ?, तएणं से कच्छुल्ले कणहं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु देवाणु-प्पिया ! अन्नया कयाइं धायईसंडे दीवे पुरत्थिमद्धं दाहिण-डुभरहवासं अवरकंकारायहाणि गए, तत्थ णं मए पउसना-भस्स रन्नो भवणंसि दौवई देवी जारिसिया दिट्ठुप्पुवा यावि होत्था तएणं कणहे वासुदेवे कच्छुल्लं एवं वयासी-तुब्भं चेव णं देवाणुप्पिया ! एवं पुव्वकम्मं, तएणं से कच्छुल्ल-नारए कणहेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे उप्पयणिं विज्जं

सन्मान किया, सत्कार सम्मान कर यावत् उन्हें प्रति विसर्जित कर दिया । इसके बाद वे कुन्ती देवी वहां से प्रतिविसर्जित होकर जिस दिशा से प्रकट हुई थीं-उसी दिशा की ओर चली गई ॥ सू० २७ ॥

क्रीने तेमने विहाय क्थीं, त्थारपछी ते कुन्तीदेवी त्यांथी विहाय भेणवीने ने दिशा तरक्थी आंवां डतां ते ने तरक्थ पाछां रवाना थयां ॥ सूत्र २७ ॥ तएणं से कणहे वासुदेवे इत्यादि ॥ सूत्र २८ ॥

आवाहेइ आवाहिता जामेव दिसि पाउब्भूए तामेव दिसिं
 पडिगए, तएणं से कण्हे वासुदेवे दूयं सदावेइ सदावित्ता
 एवं वयासी—गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरं पंडुस्स
 रत्तो एयमंठुं निवेदेहि एवं खल्लु देवाणुप्पिया ! धायइसंडे
 दीवे पुरच्छिमद्धे अवरकंकाए रायहाणीए पउमणाभभवणांसि
 दोवइए देवीए पउत्ती उवलद्धा, तं गच्छंतु पंच पंडवा
 चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा पुरत्थिमवेयालीए
 ममं पडिवालेमाणा चिट्ठंतु, तएणं से दूए जाव भणइ,
 पडिवालेमाणा चिट्ठह ते वि जाव चिट्ठंति, तएणं से कण्हे
 वासुदेवे कोडुंवियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी—
 गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सन्नाहियं भेरिंताडेह, ते वि
 -तालेति, तएणं तेसिं सण्णाहियाए भेरीए सहं सोच्चा
 समुद्विजयपामोक्खा दसदसारा जाव छप्पणं वलवयसा-
 हस्सीओ सन्नद्धवद्ध जाव गहियाउहपहरणा अप्पेगइया
 हयगया गयगया जाव वग्गुरापरिक्खित्ता जेणैव सभा सु-
 हम्मा जेणैव कण्हे वासुदेवे तेणैव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 करयल जाव वद्धावेति, तएणं कण्हे वासुदेवे हत्थिखंधवर-
 गए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं० सेयवर० हयगय० महया
 भडचडगरपहकरेणं वारवईए णयरीए मज्झं मज्झेणं णिग्ग-
 च्छइ, जेणैव पुरत्थिमवेयाली तेणैव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं एगयओमिलित्ता खंधावारणिवेसं करेइ

करित्ता पोसहसालं अणुपविसइ अणुपविसित्ता सुट्टियं देवं
मणसि करेमाणेर चिट्ठइ, तएणं कणहस्स वासुदेवस्स अट्ट-
मभत्तंसि परिणममाणंसि सुट्टिओ आगओ, भणदेवाणु-
प्पिया ! जं मए कायव्वं, तएणं से कणहे वासुदेवे सुट्टियं
एवं वयासी-एवं खल्ल देवाणुप्पिया ! दोवई देवी जाव पउ-
मनाभस्स भवणंसि साहरिया तणं तुमं देवाणुप्पिया ! मस
पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे
मग्गं वियरेहि, जणं अहं अमरकंकारायहाणां दोवईए कूवं
गच्छामि, तएणं से सुट्टिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-
किण्हं देवाणुप्पिया ! जहा चेव पउमणाभस्स रत्तो पुव्वसं-
गइएणं देवेणं दोवई जाव संहरिया तहा चेव दोवई देविं
धायइसंडाओ दीवाओ भारहाओ जाव हत्थिणापुरं साह-
रामि, उदाहु पउमणाभं रायं सपुरबलवाहणं लवणसमुद्दे
पक्खिवामि !, तएणं कणहे वासुदेवे सुट्टियं देवं एवं वयासी
-मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव साहराहि तुमं णं देवा-
णुप्पिया ! लवणसमुद्दे अप्पच्छट्टस्स छण्हं रहाणं मग्गं विय-
राहि, सयमेव णं अहं दोवईए कूवं गच्छामि, तएणं से
सुट्टिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं होउ, पंचहिं
पंडवेहिं अप्पच्छट्टस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे मग्गं वियरइ,
तएणं से कणहे वासुदेवे चाउरंगिणसिणं पडिविसज्जेइ-पडिवि-
सज्जित्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टे छहिं रहेहिं लवणसमुद्दं

मज्झमज्जेणं वीइवयइ वीइवइत्ता जेणेव अमरकंका राय-
 हाणी जेणेव अमरकंकाए अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ उवा-
 गच्छित्ता रहं ठवेइ ठवित्ता दारुयं सारहिं सदावेइ सदावित्ता
 एवं वयासी-गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! अमरकंकारायहाणीं
 अणुपविसाहिं पउमणाभस्स रण्णो वामेणं पाएणं पायपीढं
 अक्कमित्ता कुंतग्गेणं लेहं पणामेहि तिवलियं भिउडिं णिडाले
 साहट्टु आसुरुत्ते रुट्टे कुट्टे कुविए चंडिकिए एवं वयासी--हं भो
 पउमणाहा ! अपत्थियपत्थिया दुरंतपंतलक्खणा हीणपुन्नचा-
 उदसा सिरीहिरिधी परिवज्जिया अज्ज ण भवसि किञ्चं तुमं ण
 चाणासि कण्हस्स वासुदेवस्स अहव णं जुद्धसजे णिग्गच्छाहि
 एस णं कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं अप्पछट्टे दोवई देवीए
 कूवं हव्वमागए, तएणं से दारुए सारही कण्हेणं वासुदेवेणं
 एवं वुत्ते समाणे हट्टुट्टे जाव पडिसुणेइ पडिसुणित्ता अमरकंका
 रायहाणिं अणुपविसइ अणुपविसित्ता जेणेव पउमनाहे
 तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेत्ता एवं
 वयासी--एस णं सामी ! मम विणयपडिवित्ती इमा अन्ना मम
 सामिस्स समुहाणत्तित्तिक्कट्टु आसुरुत्ते वामपाएणं पायपीढं
 अणुक्कमइ अणुक्कमित्ता कुंतग्गेणं लेहं पणामइ पणामित्ता
 जाव कूवं हव्वमागए, तएणं से पउमणाभे दारुणेणं सारहिणा
 एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते तिवलिं भिउडिं निडाले साहट्टु
 एवं वयासी--णो अप्पिणामि णं अहं देवाणुप्पिया ! कण्हस्स

वासुदेवस्स दोवई, एस्सणं अहं सयमेव जुज्झसज्जो णिग्गच्छामि
त्तिकट्ठु दारुयं सारहिं एवं वयासी-केवलं भो ! रायसत्थेसु दूये
अवज्झे त्तिकट्ठु असक्कारिय असम्माणिय अवहारेणं णिच्छुभा-
वइ, तएणं से दारुए सारही पउमणाभेणं असक्कारिय जाव
णिच्छूढे समाणे जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ उवा-
गच्छित्ता करयलण कण्हं जाव एवं वयासी--एवं खलु अहं
सामी ! तुब्भं वयणेणं जाव णिच्छुभावेइ ॥ सू० २८ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कौटुम्बिकपु-
रुवान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत् गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रिय ! द्वार-
वतीं नगरीम्, ‘ एवं यथा पाण्डुस्तथा घोषणां घोषयत ’—यथा पाण्डु राजा हस्ति-
नापुरे घोषणां कारितवान् तद्वदित्यर्थः । तेषुपि कौटुम्बिकपुरपास्तथैव घोषणां

—तएणं से कण्हे वासुदेवे इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से कण्हे वासुदेवे) उन कृष्ण वासुदेव
ने (कौटुम्बिकपुरसे सदावेइ) कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया (सदावित्ता)
बुलाकर (एवं वयासी) उन से ऐसा कहा (गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया
वारवइं) हे देवानुप्रियों ! तुम द्वारावती नगर में जाओ (एवं जहा पंडु
तहा घोसणं घोसावेति जाव पच्चप्पिणंति पंडुस्स जहा) वहां पांडु
राजाकी तरह घोषणा करो—अर्थात् पांडु राजाने जिस प्रकार द्रौपदी की
खबर लानेवाले के लिये अर्थ प्रदान का घोषणा अपने कौटुम्बिक पुरुषों
द्वारा हस्तिनापुर नगर में करवाई थी—इसी प्रकार की घोषणा करने के

‘ तएणं से कण्हे वासुदेवे ’ इत्यादि.

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (से कण्हे वासुदेवे) ते कृष्णु वासुदेवे (कौटुम्बिक
पुरसे सदावेइ) कौटुम्बिक पुरुषोने भोलाया (सदावित्ता) भोलावीने (एवं
वयासी) तेभने आ प्रमाणे क्खु के—(गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया वारवईं)
हे देवानुप्रियो ! तभे द्वारावती नगरीमां जाओ (एवं जहा पंडु तहा घोसणं
घोसावेति जाव पच्चप्पिणंति पंडुस्स जहा) त्यां पांडु राजानी जेम ज घोषणा
करे अट्ठे के पांडु राजाणे जेम द्रौपदीनी शोध करवा भाटेनी द्रव्य आप-
वानी घोषणा हस्तिनापुर नगरमां करावी उत्ती ते प्रमाणे ज घोषणा करवा

कृत्वा ' जाव पञ्चपिपंति ' यावत् प्रत्यर्पयन्ति-घोषणां कृत्वा-कृष्णस्य वासुदेव-
स्यान्तिके ते कौटुम्बिकपुरुषा निवेदयन्ति-द्वारवत्यां नगर्यां सर्वत्र घोषणाकृता-
ऽस्माभिरिति । ' पंडुस्स जहा ' पाण्डोर्यथा यथा पाण्डो नृपस्य वर्णकस्तथाऽत्रापि
बोध्यः । यथा पाण्डुराजा द्रौपद्याः श्रुतिं यावत् प्रवृत्तिं न लब्धवान्, तथा कृष्णत्रा-
सुदेवोऽपि द्रौपद्याः श्रुत्यादिकं न प्राप्तवानिति भावः । ततः खलु कृष्णो वासुदेवः
अन्यदा=अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित् समये ' अंतो ' अन्तः-स्वप्रासादे अन्तःपुरगतो-
ऽवरोधे यावद् विहरति । ' इमं च णं ' अस्मिन् समये च खलु ' कच्छुल्लए ' कच्छु-
ल्लको नारदो यावत् समवसृतः= गगनतलादवतरन् कृष्णसञ्चनि समागतः यावत्
निपद्य=उपविश्य गगनतलादवतरन् कृष्णसञ्चनि समागतः, यावत् निपद्य=उपविश्य

लिये कृष्ण वासुदेव ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को आदेश दिया कि वे
भी द्वारावती में इसी तरह की घोषणा करें। अपने राजा की आज्ञानु-
सार उन्होंने द्वारावती में घोषणा कर दी और इस की खबर पीछे कृष्ण
वासुदेव को कर दी। यहां अवशिष्ट वर्णन पांडु राजा के जैसा वर्णन
है वैसा ही जानना चाहिये। अर्थात् घोषणा कराने पर भी द्रौपदी की
किसी भी प्रकार की खबर वगैरह का कोई भी समाचार पांडु राजा को
नहीं मिला वैसा कृष्ण वासुदेव को भी नहीं मिला (तएणं) तव (से
कण्हे वासुदेवे अन्नया अतो अतेउरगए ओरोहे जाव विहरइ इमं च
णं कच्छुल्लए जाव समोसरए) वे कृष्ण वासुदेव एक दिन की बात है
कि अपने अन्तः पुर के प्रासाद के भीतर अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ
बैठे हुए थे कि इसी समय वे कच्छुल्ल नाम के नारद आकाश मार्ग से

भाटे कृष्ण वासुदेवे पोताना कौटुम्बिक पुरुषोंने आज्ञा करी के तेओ पणु
द्वारावती नगरीमां आ प्रभाणे न घोषणा करे. पोताना राजनी आज्ञा प्रभाणे
ते बोडोओ द्वारावती नगरीमां घोषणा करी अने घोषणातुं काम थर्ध गयुं छे
तेनी अगरे पणु कृष्ण वासुदेवनी पांसे पडोआडी दीधी. अही अवशिष्ट वर्णन
पांडु राजतुं लेवुं छे ते प्रभाणे न समए लेवुं नेधओ. ओटले के घोषणा कर्या
पधी पणु पांडु राजने द्रौपदी देवीनी केध पणु नतनी अगरे के समाचार
मज्या नडि ते प्रभाणे कृष्ण वासुदेवने पणु केध पणु समाचारे घोषणा
आद मज्या नडि. (तएणं) तारे (से कण्हे वासुदेवे अन्नया अंतो अते-
उरगए ओरोहे जाव विहरइ, इमं च णं कच्छुल्लए जाव समोसरए) ओक दिवसनी
वात छे के ते कृष्ण वासुदेव पोताना भडेलनी अंदर रणवासनी स्त्रीओनी
साथे ओका डता ते वथते कच्छुल्ल नामे नारद आकाश मार्गथी उतरिने त्यां

कृष्णं वासुदेवं कुशलोदन्तं=कुशलवार्तां पृच्छति, ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कच्छुल्लं नारदमेवमवादीत्—हे देवानुप्रिय ! त्वं खलु बहूनि ग्रामाकरादीनि परिभ्राम्यसि, तत्र बहूनि गृहाणि यात्रदनुप्रविशसि. तत् तस्मादस्ति ' आइं ' इति वाक्यालंकारे ते त्वया यदि कुत्रचिद् द्रौपद्यादेव्याः श्रुतिर्ना यावद् उपलब्धा=ज्ञाता ? तर्हि कथय' इति भावः । ततः खलु स कच्छुल्लनारदः कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्—एवं खलु हे देवानुप्रियाः अहमन्यदाकदाचिद् धातकीपण्डे द्वीपे पौररत्यार्थे=पूर्वदिग्भागव-वर्तिनि, दक्षिणार्धभरतवर्षे—अमरकंकानाम्नीं राजधानीं गतः । तत्र खलु मया

उत्तरकर वहां आये—(जाव गिसी इत्ता कण्हं वासुदेवं कुशलोदन्तं पुच्छइ, तएणं से कणहे वासुदेवे कच्छुल्लं एवं वयासी—तुमं णं देवाणुप्पिया ! बहूणि गामागर जाव अणुपविससि तं अत्थि आइं ते कहिं वि दोवईए देवीए सुतीं वा जाव उवलद्धा तएणं से कच्छुल्ले कण्हं वासुदेवं एवं वयासी) यावत् बैठकर उन्हीं ने कृष्ण वासुदेव से कुशल वृत्तान्त पूछा—कृष्णवासुदेव ने तव कच्छुल्ल नारद से ऐसा कहा—हे देवानुप्रिय ! तुम अनेक ग्राम आकर आदिस्थानों में परिभ्रमण करते रहते हो—अनेक गृहादिकों में आते जाते रहते हो तो कहो—कहीं पर क्या तुम्हें द्रौपदी देवी की श्रुति उपलब्ध हुई है—उसकी तुम्हें किसी प्रकार की कोई खबर मिली है—उसका किसी भी प्रकार का कोई चिन्ह उपलब्ध हुआ है ? इस प्रकार कृष्ण वासुदेव के पूछने पर कच्छुल्ल नारद ने उन कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—(एवं खलु देवाणुप्पिया ! अन्नया कयाइं

आव्या. (जाव गिसीइत्ता कण्हं वासुदेवं कुशलोदन्तं पुच्छइ, तएणं से कणहे वासुदेवे कच्छुल्लं एवं वयासी, तुमं णं देवाणुप्पिया ! बहूणि गामागर जाव अणु-पविससि तं अत्थि आइं ते कहिं वि दोवईए देवीए सुतीं वा जाव उवलद्धा—तएणं से कच्छुल्ले कण्हं वासुदेवं एवं वयासी) त्यां आवीने भेडा अने भेसीने तेभण्णे कृष्णु वासुदेवने कुशाण वार्ता पूछी. वासुदेवे त्त्यारे कच्छुल्ल नारदने आ प्रभाण्णे कहुं के डे देवानुप्रिय ! तमे धणुं ग्राम, आकर वगेरे स्थानेमां परि-भ्रमणु करता रडेा छे, धणु धरेा वगेरेमां आवणु करता रडेा छे तो कडेा, केअ पणु स्थाने तमने द्रौपदी देवीनी श्रुति भणी छे—तेना तमने केअ पणु नतना समाचारे भण्था छे, तेनुं केअ पणु नतनुं थिह तमने मण्थुं छे ? आ रीते कृष्णु वासुदेवना प्रश्नने सांलणीने कच्छुल्ल नारदे ते कृष्णु वासुदेवने आ प्रभाण्णे कहुं केः—

(एवं खलु देवाणुप्पिया ! अन्नया कयाइं धायईसंडे दीवे पुरण्यिमद्धं

पद्मनाभस्य राज्ञो भवने द्रौपदीदेवी यादृशी दृष्टपूर्वा चाप्यभवत्, अयं भावः—
 काचिद्द्रौपदीसदृशी देवी पद्मनाभस्य राज्ञोभवने दृष्टा कितु सा मया न सम्पग्-
 ज्ञाता नापि सम्यग्परिचिता, इति । ततः खलु कृष्णो वासुदेवः कच्छुल्लनारदमेव-
 मवादीत्—हे देवानुप्रियाः युष्माकमेव खलु ' एवम् ' इदं ' पुत्रकर्म ' पूर्वकर्म
 —पूर्वकृतं कर्म, युष्माभिरैवेदं कर्म पूर्वं कृतमित्यर्थः । ततः खलु स कच्छुल्लनारदः
 कृष्णेन वासुदेवेनैवयुक्तः सन् उत्पतनीं विद्यामावाहयति । आवाह्य यस्याः एवदिशः
 प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवो दृतं शब्दयति—

धायईसंडे दीवे पुरत्थिनद्धं दाहिणद्धभरहवासं अमरकंका रायहाणिं गए
 तत्थ णं मए पउमनाभस्स रण्णो भवणंसि दोवई देवी जारिसिया दिट्ठ-
 पुच्चा यावि होत्था, तएणं कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लं एवं वयासी-तुब्भं
 चेव णं देवानुप्पिया ! एवं पुत्रकर्म-तएणं से कच्छुल्लनारए कण्हेणं
 वासुदेवेणं एवं बुत्ते समाणे उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहिता
 जामेव दिस्सिं पाउब्भुए तामेव दिस्सिं पडिगए) सुनो मैं तुम्हें वताता हूँ
 —हे देवानुप्रिय ! मैं किसी एक समय द्वितीय धातकी खंड द्वीप में पूर्व
 दिग्भागवतीं दक्षिणार्धं भरतक्षेत्र में अमरकंका नाम की राजधानी में
 गया हुआ था वहाँ मैंने पद्मनाभ राजा के भयन में द्रौपदी देवी जैसी
 एक नारी देखी थी—परन्तु मैं उसे अच्छी तरह नहीं जान सका—और
 न उससे परिचित ही हो सका—। नारद की ऐसी वान सुमकर कृष्ण
 वासुदेव ने उनसे कहा हे देवानुप्रिय ! आपने ही ऐसा कार्य सब से
 पहिले किया है—इसके बाद उन कच्छुल्ल नारदने कृष्ण वासुदेवके द्वारा

दाहिणद्धभरहवासं अमरकंका रायहाणिं गए, तत्थणं मए पउमनाभस्स रण्णो
 भवणंसि दोवई देवी, जारिसिया दिट्ठपुच्चा यावि होत्था, तएणं कण्हे वासुदेवे
 कच्छुल्लं एवं वयासी-तुब्भं चेवणं देवानुप्पिया ! एवं पुत्र कर्म-तएणं से कच्छुल्ल
 नारए कण्हेणं वासुदेवेणं एवं बुत्ते समाणे उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहिता
 जामेव दिस्सिं पाउब्भुए तामेव दिस्सिं पडिगए)

सांख्यो, तमने हुं अधी विगत गतापुं छुं. हे देवानुप्रिय ! कुछ कुछ
 वभते हुं धातकी पंडकीपमां, पूर्व दिशा तरङ्गना दक्षिणार्धं भरत क्षेत्रमां,
 अमरकंका नामे राजधानीमां गथो हुतो. त्यां मे पद्मनाभ राजना लवनमां
 द्रौपदी देवी देवी कुछ नारी लेई हुती. पणु हुं तेने सारी चेठे आणणी
 शक्यो नहिं अने न तेनाथी परिचित थइ शक्यो नारदनी आ वात सांख्यीने
 इण्णुवासुदेवे तेमने उधुं हे हे देवानुप्रिय ! सौ पडेवां तमे न आ डाम उथुं छे.
 त्थारपणी ते उण्णुदत्तनारदे इण्णु वासुदेवनी आ वात सांख्यीने पोतानी उत्पतनी

आह्वयति, शब्दयित्वा—एवमवादीत्—गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रियाः ! हस्तिनापुरं पाण्डोराज्ञ एतमर्थं निवेदय—एवं खलु हे देवानुप्रिय ! धातकीषण्डे द्वीपे ' पुर-
त्थिमद्वे ' पौरस्त्यार्थे पूर्वदिग्भागवर्तिनि अमरकंकायां राजधान्यां पद्मनाभभवने
द्रौपद्या देव्याः प्रवृत्तिरूपलब्धा, तत्=तस्मात् गच्छन्तु पञ्च पाण्डवाश्चतुरङ्गिण्या
सेनया सार्धं संपरिवृता ' पुरत्थिमवेयालीए ' ' पौरस्त्यवेलायां—पूर्वदिग्वर्तिनि
लक्षणसमुद्रे भां ' पडिवालेमाणा ' प्रतिपालयन्तः—प्रतीक्षमाणा स्तिष्ठन्तु, ततस्त-
दनन्तरं स दूतो यावत् पाण्डोरग्रे गत्वा कृष्णवासुदेवोक्तं वचनं भणति=कथयति=
' पडिवालेमाणा चिद्वह ' अयं भावः—' धातकीषण्डे द्वीपे पूर्वदिग्भागवर्तिनि अम-
रकंकायां राजधान्यां पद्मनाभभवने द्रौपद्याः प्रवृत्तिरूपलब्धा, तस्मात् पञ्च पाण्ड-

इस प्रकार कहे जाने पर अपनी उत्पत्तनीविद्याका स्मरण किया। स्मरण
करके फिर वे जिस दिशा से प्रकट हुए थे उसी दिशा की ओर चले
गये। (तएणं से कण्हे वासुदेवे दूयं सद्वावेइ सद्वावित्ता एवं वयासी
गच्छणं तुमं देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरं पंडुस्स रण्णो एयमद्वं निवेदेहि)
इसके बाद उन कृष्ण वासुदेव ने दूत को बुलाया—बुलाकर उससे ऐसा
कहा—हे देवानुप्रिय ! तुम हस्तिनापुर नगर जाओ—वहाँ पांडु राजा से
ऐसा कहना—(एवं खलु देवाणुप्पिया ! घायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्वे
अमरकंकाए रायहाणीए पउमणाभभवणंसि दोवईए देवीए पउत्ती
उवलद्धा—तं गच्छंतु पंच पंडवा चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा
पुरत्थिमवेयालीए ममं पडिवालेमाणा चिद्वंतु) हे देवानुप्रिय ! वह वक्तव्य
विषय यह है—धातकी षंड नाम के द्वीप में पूर्व दिग्भागवर्ती दक्षिणार्ध
भरत क्षेत्र में वर्तमान अमरकंका नाम की राजधानी में पद्मनाभ राजा

विधानुं स्मरणु कथुं'. स्मरणु करीने पछी तेओ ने दिशा तरइथी आओ
उता ते न दिशा तरइ पाछा रवाना थछ गया. (तएणं से कण्हे वासुदेवे दूयं
सद्वावेइ, सद्वावित्ता एवं वयासी—गच्छणं तुमं देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरं पंडुस्स
रण्णो एयमद्वं निवेदेहि) त्थारपछी ते कृण्णु वासुदेवे इतने ओलाओ आने
ओलावीने तेने आ प्रभाणे कहुं के डे देवानुप्रिय ! तमे उस्तिनापुर नगरमां
ओओ—अने त्यां पांडु राजने आ प्रभाणे उछे के—

(एवं खलु देवाणुप्पिया ! घायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्वे अमरकंकाए राय
हाणीए पउमणाभा भवणंसि दोवईए देवीए पउत्ती उवलद्धा—तं गच्छंतु पंच पंडवा
चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा पुरत्थिमवेयालीए ममं पडिवाले माणा
चिद्वंतु) हे देवानुप्रिय ! धातकी षंड नामे द्वीपमां पूर्व दिशा तरइना दक्षिणार्ध
भरत क्षेत्रमां विद्यमान अमरकंका नामनी राजधानीमां पद्मनाभ राजाना भव-

वाश्चतुरङ्गिण्या सेनया साथं संपरिवृताः पौरस्त्यवेलायां मां प्रतिपालयन्तस्ति-
ष्ठन्तु ' इति । एवं दूतमुखात् कृष्णवासुदेवोक्तं वचनं श्रुत्वा तेऽपि=पञ्च पाण्डवा
यावत् तिष्ठन्ति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति,

के भवन में द्रौपदी देवी की खबर मिली है-इसलिये पांचो पांडव
चतुरंगिणी सेना के साथ युक्त होकर लवण समुद्र की पूर्व दिग्भाग-
वर्तिनी वेला पर जाकर वहाँ मेरी प्रतीक्षा करें । (तएणं से दूए जाव
भणइ, पडिवालेमाण्णा चिट्ठह, ते वि जाव चिट्ठति, तएणं से कण्हे वासु-
देवे कोडुंविण्यपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुव्भे
देवाणुप्पिया । सन्नाहियं भेरिं ताडेह ते वि ताडेति, तएणं तीसे सण्णा-
हियाए भेरिए सहं सोच्चा विजयपामोक्खा, दस दसारा जाव छप्पणं
बलवयसाहस्सीओ सन्नद्धवद्ध जाव गहियाउहपहरणा अप्पेगइया
हयगया, गयगया, जाव वग्गुरा परिक्वित्ता जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव
कण्णे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ) इस प्रकार अपने राजा कृष्णवासु-
देव की आज्ञा लेकर वह दूत हस्तिनापुर गया वहाँ जाकर उसने इस
समाचार को पांडुराजा से कह दिया । वे पांचों पांडव इस समाचार को
दूत के मुख से सुनकर चतुरंगिणी सेना के साथ लवण समुद्र के पूर्व
दिग्भागवर्ती तट पर जाकर कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा में ठहर गये-
इसके बाद कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया-बुलाकर

नमां द्रौपदी देवीना वावड सज्जा छे तो डवे पांचे पांडवो चतुरंगिणी सेनानी
साथे प्रयाणु करीने लवण समुद्रना पूर्व दिनारा उपर पडोन्तीने भारी प्रतीक्षा करे.

(तएणं से दूए जाव भणइ, पडिवाले माणा चिट्ठह ते वि जाव चिट्ठति,
तएणं से कण्हे वासुदेवे कोडुंविण्य पुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी गच्छह
णं तुव्भे देवाणुप्पिया । सन्नाहियं भेरिं ताडेह ते वि ताडेति, तएणं से सण्णा-
हियाए भेरिए सहं सोच्चा समुद्रविजयपामोक्खा, दस दसारा जाव छप्पणं बल वय
साहस्सीओ सन्नद्धवद्धजाव गहियाउहपहरणा अप्पेगइया हयगया, गयगया, जाव
वग्गुरापरिक्वित्ता जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव कण्णे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ)

आ रीते पोताना राजन् कृष्ण वासुदेवनी आज्ञा भेगवीने ते दूत हस्ति-
नापुर तरङ्ग रवाना थयो त्यां पडोन्तीने तेणु पांडु राजने अधा समाचारो
कही संलगाव्या. पांचे पांडवो इतना सुभधी आ समाचार सांलणीने पोतानी
चतुरंगिणी सेना साथे त्यांथी प्रयाणु करीने लवण समुद्रना पूर्व दिनारा उपर
पडोन्तीने त्यां कृष्ण वासुदेवनी प्रतीक्षा करता रोकथ गया. त्थारपणी कृष्ण
वासुदेवे कौटुम्बिक पुरुषोने बोलाव्या अने बोलावीने तेमने आ प्रभाणु कइं

शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः सांनाहि कीं सैनिकानां सज्जीभवनार्थं नादो यस्यास्तां भेरीं ताडयत तेऽपि ताडयन्ति, ततः खलु तस्याः सांनाहिक्या भेर्याः शब्दं श्रुत्वा समुद्रविजयप्रमुखा दश दशार्हा यावत् 'छप्पणं बलवयसाहस्सीओ' षट् पञ्चाशद् बलवत्साहस्र्याः=षट्पञ्चाशत्सहस्रप्रमिता बलवन्त इत्यर्थः 'सन्नद्धबद्ध-जाव गाहियाउहपहरणा' अत्र यावच्छब्देनैवं द्रष्टव्यम्-सन्नद्धबद्धवर्मितकवचा उत्पीडितशरासनपट्टकाः पिनद्धग्रैवेयकवद्वाविद्धविमलवरचिह्नपटाः गृहीतायुधप्रहरणा इति । व्याख्याऽस्मिन्नेवाध्ययने पूर्वमुक्ता अप्ये-किकाः=केचिद् हयगताः केचिद् गजगताः यावद् वागुरापरिक्षिप्ताः=मनुष्यवृन्दैः परिवृताः, यत्रैव कृष्णो वासुदेवस्तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य करतल० यावद् जयेन विजयेन वर्धयन्ति । ततः खलु कृष्णो वासुदेवो हस्तिस्कन्धवरगतः सको-

उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रियों ! तुम सुधर्मा सभा में जाओ वहाँ जाकर तुम सांनाहिकी भेरी बजाओ-। कौटुम्बिक पुरुषोंने ऐसा ही किया सुधर्मा सभामें जाकर उस सांनाहिकी भेरीको बजाया-। इस सांनाहिकी भेरीकी गर्जनाको सुनकर समुद्रविजय आदि दश दशार्हा यावत् ५६, हजार प्रमित बलवीर पुरुष सन्नद्ध बद्धर्मिवतकवच होकर, यावत् आयुध प्रहरणों को लेकर तैयार सुसज्जित हो गये । यहाँ यावत् शब्द से उत्पीडितशरासन पट्टकाः, " पिनद्धग्रैवेयकवद्वाविद्धविमलवरचिह्नपटाः " इस पाठ का संग्रह हुआ है । इन शब्दों की व्याख्या इसी अध्ययन में पहिले की जा चुकी है । इनमें कितनेक घोड़ों पर, कितनेक हाथियों पर, बैठकर अन्य मनुष्यों के समूह से परिवृत्त हो जहाँ वह सुधर्मा सभा और जहाँ वे कृष्णवासुदेव थे वहाँ आये । (उवागच्छित्ता करतल जाव

हे हे देवानुप्रियो ! तमे सुधर्मा सभामां गच्छे, त्यां गच्छने तमे सांनाहिकी भेरी वगाडो, ते कौटुम्बिक पुरुषोऽपि पणु ते प्रमाणे न आज्ञानुं पादान कथुं. सुधर्मा सभामां गच्छने तेऽप्ये सांनाहिकी भेरी वगाडी. सांनाहिकी भेरीने अपाव सांलणीने समुद्रविजय वगेरे दश दशार्हा यावत् ५६ हजार प्रमित अणवीर पुरुषो कवचो वगेरेथी सुसज्जित थधने यावत् आयुध प्रहरणोने लधने तैयार थध गया. अर्ही यावत् शब्दथी " उत्पीडितशरासनपट्टकाः, पिनद्ध ग्रैवेयक-वद्वाविद्धविमलवरचिह्नपटाः " आ पाठने संग्रह थथे छे. आ शब्दोनी व्याख्या आ अध्ययनमां न पडेलां करवामां आवी छे. आमां केटलाक घोडाओ उपर, केटलाक हाथीओ उपर गेसीने तेम न केटलाक भाणुसोना समूहोथी परिवृत्त थधने न्या ते सुधर्मा, सभा अने न्यां कृष्ण-वासुदेव इता त्यां आव्या.

रण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण धार्यमाणेन श्वेतवरचामरैरुद्धूयमानैः, हयगजरथपदाति
संपरिवृतो महाभटचटकरप्रकरेण द्वारवत्या नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति,
यत्रैव पौरस्त्यवेला तत्रैवोपागच्छति उपागत्य पञ्चभिः पाण्डवैः सह ' एगयओ '

बद्धावेति, तएणं कण्हे वासुदेवे हत्थिखंधवरणए सकोरेंटमल्लदामेणं
छत्तेण० सेयवर० हयगय० महया भडचडगरपहकरेणं वारवईए णयरीए
मज्झं मज्जेण णिगच्छइ, जेणेव पुरत्थिमवेयाली तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता पंचहिं पंडवेहि सद्धि एगयओ मिलइ, मिलित्ता खंधावा-
रणिवेसं करेइ, करित्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता सुद्धियं
देवं मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ, तएणं कण्हस्स वासुदेवस्स अट्टमभत्तंसि
परिणममाणंसि सुद्धिओ आगओ भण देवाणुप्पिया । जं मए कायव्वं)
वहां आकर उन सवने कृष्णवासुदेव को दोनों हाथ जोड़कर बड़े विनय
के साथ नमस्कार करते हुए जय विजय शब्दों द्वारा वधाई दी ! इसके
बाद वे कृष्णवासुदेव हाथी पर सवार हुए । सवार होते ही छत्र धारियों
ने उन पर कोरेंट पुष्पों की माला से विराजित छत्र ताना, चामर ढोरने
वालों ने उनपर श्वेत चामर ढोरना प्रारंभ करदिया । इस प्रकार हय,
गज, रथ, एवं पैदलसेना से घिरे हुए वे कृष्णवासुदेव महाभटों के
समूह के साथ २ द्वारावती नगरी के बीच से होकर निकले, निकलकर
जहां वह लज्जसमुद्र की पूर्व दिग्भागवर्तिनी बेला थी वहां पहुँचे ।

(उवागच्छित्ता करयल जाव बद्धावेति, तएणं कण्हे वासुदेवे हत्थि खंध-
वरणए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेण० सेयवर० हयगय महया भडचडगरपहकरेणं
वारवईए णयरीए मज्झं मज्जेणं णिगच्छइ जेणेव पुरत्थिमवेयाली तेणेव उवा-
गच्छइ, उवागच्छित्ता पंचहिं पंडवेहि सद्धि एगयओ मिलइ, मिलित्ता खंधावा-
रणिवेसं करेइ, करित्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता, सुद्धियं देवं मणसि
करेमाणे २ चिट्ठइ, तएणं कण्हस्स वासुदेवस्स अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि सुद्धिओ
आगओ भण देवाणुप्पिया ! जं मए कायव्वं)

त्यां पडोय्थीने ते अधाओ अने हाथ नेडीने अडु न वित्तअताथी नम-
स्कार करतां जयविजय शब्दोथी तेभने वधामणी आपी. त्थारपथी ते कृष्ण
वासुदेव हाथी उपर सवार थया सवार थतां न छत्रधारीओओ तेभनी उपर
कोरेंट पुष्पोनी भाणाथी शेअतुं छत्र ताएयुं तेभन आभर ढाणनाराओओ
आ २ ढाणवानी शइआत करी आ प्रभाणे घोडा, हाथी, रथ अने पायदणथी
परिवृत्त थथेसा ते कृष्ण-वासुदेव भडालटोना समूडनी साथे साथे द्वारावती
नगरीनी वन्हे थधने पत्तार थया अने न्यां ते लवणु समुद्रनेा पूर्वी डितादे।

एकतः एकस्मिन् स्थाने मिलति, मिलित्वा स्कन्धावारनिवेशं=सैनिकानामावासं करोति कृत्वा पौषधशालामनुप्रविशति, अनुप्रविश्य " सुद्विय देवं " सुस्थितं-सुस्थितनामानं देवं लवणसमुद्राधिपितं मनसि कुर्वन्=स्मरन् तिष्ठति, ततः खलु कृष्णस्य वासुदेवस्याष्टमभवते परिणममाणे सुस्थितो देव आगतः, आगत्य वदति-हे देवानुप्रियाः ! भणन्तु कथयन्तु यन्मया कर्तव्यमिति ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः सुस्थितदेवमेवमवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिय ! द्रौपदी देवी यावत् पद्मनाभस्य भवने संहता, तत्=तस्मात् खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! मम पञ्चभिः पाण्डवैः सार्धं ' अप्पच्छट्टस्स ' आत्मपण्डस्य-आत्मा-अहं पण्डो यत्र तस्य समुदायस्य-अस्माकं पण्णामित्यर्थः, पण्णां स्थानां लवणसमुद्रे मार्गं वित्तर=देहि, येनाहममरकङ्कां राजधानीं द्रौपद्या देव्याः ' कूवं ' प्रत्यानयनकर्तुं गच्छामि ।

वहाँ पहुँचकर वे पाँच पांडवों के साथ एक स्थान पर संमिलित हुए । संमिलित होकर उन्होंने अपनी सेना को ठहरने का स्थान नियत किया-स्थान नियतकर के फिर वे पौषधशाला में प्रविष्ट हो गये वहाँ प्रविष्ट होकर उन्होंने ने लवण समुद्र के अधिपति सुस्थित देव का स्मरण किया-। इसके बाद जब कृष्णवासुदेव का अष्टमभक्त समाप्त हो रहा था-तब वह सुस्थित देव उनके पास आया-और कहने लगा-हे देवानुप्रिय ! कहिये-मेरे लायक क्या काम है ? (तएणं से कण्हे वासुदेवे सुद्वियं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! दोवई देवी, जाव पउमनाभस्स भवणंसि साहरिया, तएणं तुमं देवाणुप्पिया मम पंचहि पंडवेहि सद्धिं अप्पच्छट्टस्स छण्हं रहाणं लवणसमुदे मग्गं वियरेहि, जण्णं अहं अमरकंकारायहाणी दोवईए कूवं गच्छामि, तएणं से सुद्विए देवे कण्हं

इतो त्यां पडोअ्या. त्यां पडोअीने तेओ पांचे पांडवोनी साथे ओक स्थाने ओकत्र थया. ओकत्र थधने तेमणे पोताना सैन्यना पडावतुं स्थान नक्की कथुं. स्थान नक्की करीने तेओ पौषधशाणामां प्रविष्ट थया. त्यां जधने तेओओे लवण समुद्रना अधिपति सुस्थित देवतुं स्मरणु कथुं. त्यारभाह न्यारे कृष्णवासुदेवो अष्टम लक्ष्म पूरो थध रहो इतो, त्यारे ते सुस्थित देव तेमनी पासे आओे अने उडेवा लाग्ये. के हे देवानुप्रिय ! ओलो, मारा लायक शु काम छे ?

(तएणं से कण्हे वासुदेवे सुद्वियं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया । दोवईदेवी, जाव पउमनाभस्स भवणंसि साहरिया, तएणं तुमं देवाणुप्पिया मम पंचहि पंडवेहि सद्धिं अप्पच्छट्टस्स छण्हं रहाणं लवणसमुदे मग्गं वियरेहि, जण्णं अहं अमरकंकारायहाणीं दोवईए कूवं गच्छामि, तएणं से सुद्विए देवे कण्हं

ततः खलु स सुस्थितो देवः कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्—हे देवानुप्रिय ! किं खलु यथैव पद्मनाभस्य राज्ञः पूर्वसंगतिकेन देवेन द्रौपदी यावत् संहता, तथैव द्रौपदीं देवीं धातकीपण्डाद् द्वीपाद् भारताद् यावद् हस्तिनापुरं संहरामि । ' उदाहृ ' उताहो ! =अथवा, कथय, पद्मनाभं राजानं सपुरबलवाहनं=नगरसैनिकवाहन-सहितं लवणसमुद्रे प्रक्षिपामि ? ततः खलु कृष्णो वासुदेवः सुस्थितं देवम् एव-

वासुदेवं एवं वयासी किण्हं देवाणुप्पिया । जहा चेव पउमणा मस्स रत्तो पुव्वसंगइएणं देवेणं दोवई जाव संहरिया, तहा चेव दोवईं देविं धायईसंडाओ दीवाओ भारहाओ जाव हत्थिणापुरं साहरामि, उदाहृ पउमणाभं रायंसपुरबलवाहणं लवणसमुदे पक्खिखवामि ?) तव कृष्णवासुदेव ने उस सुस्थित देव से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! सुनो—द्रौपदी देवी यावत् पद्मनाभ के भवन में हरण कर रखी गई है इसलिये हे देवानुप्रिय ! तुम आत्मपष्ठ मेरे पांच पांडवों के साथ छहों रथों को लवण समुद्र में मार्ग प्रदान करो । अर्थात् पांच पांडवों के और छठे मेरे इस प्रकार हमारे छह रथों को जाने के लिये रास्ता दो—कि जिससे मैं अमरकंका राजधानी में द्रौपदीदेवी को वापिस ले आने के लिये जा सकूं । तव सुस्थित देव ने उन कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार पद्मनाभ राजा के पूर्व संगतिक देवने द्रौपदीदेवी का यावत् हरण किया है, उसी तरह मैं भी द्रौपदी देवी को धातकी खंड द्वीप के भरन क्षेत्र से यावत् हस्तिनापुर में हरणकर ला सकता हूँ—

वासुदेवं एवं वयासी किण्हं देवाणुप्पिया ! जहा चेव पउमणा मस्स रत्तो पुव्वसंगइएणं देवेणं दोवई जाव संहरिया, तहा चेव दोवईं देविं धायईसंडाओ दीवाओ भारहाओ जाव हत्थिणापुरं साहरामि, उदाहृ पउमणाभं रायंसपुरबलवाहणं लवणसमुदे पक्खिखवामि ?)

त्यारे इण्णु-वासुदेवे ते सुस्थित देवने आ प्रमाणे उहं उ हे देवानुप्रिय ! सालणे, द्रौपदी देवी यावत् पद्मनाभना लवनमां हरणु कराधने राणवामां आवी छे ओटला भाटे हे देवानुप्रिय ! तमे ' आत्मपष्ठ ' मारा तेमज पांचे पांडवोना छ रथोने लवण समुद्रमां धरने पसार थवा भाटे मार्ग आवो. ओटवे हे पांचे पांडवोना अने छहा मारा आम छओ रथोने पसार थवा भाटे रत्तो आवो. जेशी हु द्रौपदी देवीने पाछा लाववा भाटे अमरकंका राजधानीमा जई शकुं. त्यारे सुस्थित देवे ते इण्णु-वासुदेवने आ प्रमाणे उहं उ हे देवानुप्रिय ! पद्मनाभ राजाना पूर्वसंगतिक देवे जेम द्रौपदी देवीनु यावत् हरणु उरुं छे, तेमज हुं पणु द्रौपदी देवीने धातकी अंडद्वीपना भरत क्षेत्रमाथी यावत् हस्तिनापुरमां हरणु करेने लावी शकुं तेम छुं अने जे

मवादीत्—मा खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! यावत् संहर, त्वं खलु हे देवानुप्रिय ! लवणसमुद्रे आत्मपष्ठस्य पण्णां रथानां मार्गं ' वियराहि ' वितर=देहि, स्वयमेव खल्वहं द्रौपद्या देव्याः ' क्वं ' प्रत्यानयनकर्तुं गच्छामि, ततः खलु स सुस्थितो

अथवा—आपकी आज्ञा ही तो नगर, सैनिक, और वाहन सहित पद्मनाभ राजा को लवण समुद्र में डुबा दे सकती हूँ (तएणं कण्हे वासुदेवे सुद्वियं देवं एवं वयासी) जब कृष्णवासुदेव ने उस स्वस्तिक देव से इस प्रकार कहा—(माणं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव साहराहि तुमं णं देवाणुप्पिया ! लवणसमुद्रे अप्पच्छट्ठस्स छण्हं रथाणं लवणसमुद्रे मग्गं वियराहि सयमेव णं अहं दोवईए क्वं गच्छामि, तएणं से सुद्विए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी, एवं होउ, पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्ठस्स छण्हं रथाणं लवणसमुद्रे मग्गं वियरइ तएणं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणीसेणं पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जित्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्ठे छहिं रहेहिं लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं वीइवयइ, वीइवइत्ता जेणेव अमरकंका रायहाणी, जेणेव अमरकंकाए अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ) हे देवानुप्रिय ! तुम ऐसा मत करो—अर्थात् पद्मनाभ के अवन से द्रौपदी देवी को हरण मत करो, और न पद्मनाभ राजा को नगर, सैनिक एवं वाहन सहित लवणसमुद्र में प्रक्षिप्त करो, तुम तो केवल हे देवानुप्रिय ! हमारे छहों रथों को लवणसमुद्र में मार्ग दे दो । मैं

तमारी आज्ञा डाय तो नगर, सैनिक अने वाहन सहित पद्मनाभ राजाने लवणसमुद्रमां डुभाडी शकुं तेम छुं. (तएणं कण्हे वासुदेवे सुद्वियं देवं एवं वयासी) त्यारे कृष्ण-वासुदेवे ते स्वस्तिक देवने आ प्रमाणे कहुं डे—

(माणं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव साहराहि तुमं णं देवाणुप्पिया ! लवणसमुद्रे अप्पच्छट्ठस्स छण्हं रथाणं लवणसमुद्रे मग्गं वियराहि सयमेव णं अहं दोवईए क्वं गच्छामि, तएणं से सुद्विए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी, एवं होउ, पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्ठस्स छण्हं रथाणं लवणसमुद्रे मग्गं वियरइ, तएणं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणी सेणं पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जित्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छट्ठे छहिं रहेहिं लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं वीइवयइ, वीइवइत्ता जेणेव अमरकंका रायहाणी, जेणेव अमरकंकाए अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ)

हे देवानुप्रिय ! तमे आ प्रमाणे करवानी तस्ही दो नडि उटवे डे पद्मनाभना लवनमांथी द्रौपदी देवीतुं डरणु करे नडि तेमअ पद्मनाभ राजाने नगर, सैनिक अने वाहन सहित लवण समुद्रमां डेके पणु नडि. तमे तो हे देवानुप्रिय ! इत्त अमारा छमे रथे माटे लवण समुद्रमां मार्ग आपे.

देवः कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्—एवं भवतु इति, ततोऽसौ पञ्चभिः पाण्डवैः सार्धम् आत्मपष्ठस्य पण्णां रथानां लवणसमुद्रे मार्गं वितरति ततः खलु स कृष्णो वासु- देवश्चतुरङ्गिणीं सेनां प्रतिविसर्जयति, प्रतिविसर्ज्य पञ्चभिः पाण्डवैः सार्धमात्म- पष्ठः पद्भीरयैर्लवणसमुद्रं मध्मध्येन ' वीङ्गवद् ' व्यतिव्रजति—गच्छति, व्यति- व्रज्य यत्रौवासरकङ्का राजधानी, यत्रौवासरकङ्काया अग्रोद्यानं तत्रौवोपागच्छति, उपागत्य रथं स्थापयति, स्थापयित्वा दारुकं सारथिं शब्दयति, शब्दयित्वा एव- मवादीत्—गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! अमरकङ्काराजधानीमनुप्रविश, अनु-

स्वयं ही द्रौपदी देवी को वहां से वापिस ले आऊंगा । अथवा मैं स्वयं ही द्रौपदी देवी को लेने के लिये जाऊंगा तब उस सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—अच्छो ऐसा ही हो—इस प्रकार कह कर उसने आत्म पष्ठ के छहों रथों को लवणसमुद्र में मार्ग वितरित कर दिया । तब कृष्णवासुदेव ने अपनी चतुरंगिणी सेना को वहां से वापिस करदिया वापिस कर फिर वे पांच पांडवों के साथ छहों रथों को—१ एक अपने रथको और पांच पांडवोंके रथोंको—लेकर लवणसमुद्रके भीतरसे होकर चलने लगे । चलते २ वे जहां अमरकंकाराजधानी थीं—और उसमें भी जहां वह अग्रोद्यान था वहां पहुँचे । (उवाग्गच्छित्ता रहं ठवेइ) वहां पहुँच कर उन्होंने अपने रथ को रोक दिया—(ठवित्ता दारुयं सारहिं सद्वावेइ, सद्वावित्ता एवं वयासी गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! अमरकंकारायहाणी अणुपविसाहि २ पउमणाभस्स रण्णो वामेणं पाएणं

त्यां जधने हुं जते ज द्रौपदी देवीने त्यांथी पाछी लध आवीश जेट्ठे के हुं जते ज द्रौपदी देवीने लेवा भाटे जधश. त्यारे ते सुस्थित देवे कृष्णु- वासुदेवने कहुं के साइं, आम ज करो. आ प्रभाण्णे कडीने तेण्णे आत्मपष्ठना छजे रथेने लवणु समुद्रमां रस्ते आभ्ये. त्थारपछी कृष्णु—वासुदेवे पोतानी चतुरंगिणी सेनाने त्यांथी पाछी वणावी हीधी अने पाछी वणावीने तेज्जे पाये पांडवोनी साथे छजे रथेने—जेक पोताना रथने अने पांच पांडवोना रथेने— लधने लवणु समुद्रनी वरये थधने पसार थवा लाग्या. आम पसार थतां तेज्जे न्यां अमरकंका राजधानी अने तेमां पणु न्यां ते अग्रोद्यान उतुं त्यां पडेण्ण्या. (उवाग्गच्छित्ता रहं ठवेइ) त्यां पडेण्णीने तेमण्णे पोताना रथने जिले राज्ये.

(ठवित्ता दारुयं सारहिं सद्वावेइ, सद्वावित्ता एवं वयासी, गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! अमरकंका रायहाणीं अणुपविसाहि २ पउमणाभस्स रण्णो वामेणं

प्रविश्य पद्मनाभस्य राज्ञो वामेन पादेन ' पायपीठ ' पादपीठम् सिंहासनसंलग्न-
सोपानम् आक्रम्य कुन्ताग्रेण लेखं पत्रिकां ' पणामेहि ' अर्पय=देहि अर्पयित्वा
' तिवलियं ' त्रिवलिकां रेखात्रययुक्तां ' भिउडिं ' भ्रुकुटिं- ' गिडाळे ' ललाटे
' साहदुट्टु ' संहत्य-उन्नीय ' आसुरुत्ते ' आशुरुप्तः=शीघ्रं क्रोधाविष्टः ' रुद्धं '
रुष्टः ' कुद्धे ' क्रुद्धः ' कुविए ' कुपितः चंडिकिए ' चाण्डिकियतः-रोपयुक्तः,
एवमवादीत्-हं भो ! पद्मनाभ ! ' अपत्थियपत्थिया ' अप्रार्थितप्रार्थित !-मर-
णवाञ्छक ! ' दुरंतपंतलक्खण ! ' दुरन्तप्रान्तलक्षण ! पूर्व व्याख्यातमेतत् ,

पायपीठं अक्रमिता कुन्ताग्रेण लेहं पणामेहि, तिवलियं भिउडिं गिडाळे
साहदुट्टु आसुरुत्ते रुद्धे कुद्धे कुविए चंडिकिए एवं वयासी हं भो पउमणाहा
अपत्थियपत्थिया ! दुरंतपंतलक्खणा ! हीणपुण्णचाउदसा ! सिरिहिरि
धी परिवज्जिया ! अज्ज ण भवसि किन्नं तुमं ण याणासि, कण्हस्स
वासुदेवस्स अहवणं जुद्धसज्जे णिगच्छाहि) रथ को रोककर वहां
स्थापित कर-दारुक सारथि को बुलाया बुलाकर के उससे ऐसा कहा-
हे देवानुप्रिय तुम जाओ-अमरकंका राजधानी में जाओ वहां जाकर
पद्मनाभ राजाके पादपीठको वाम पादसे आक्रमित कर, कुन्त (आला)के
अग्रभाग से उसे पत्रिका दो देकर के अपनी भ्रुकुटी को आलपर चढा-
कर, इकदम गुस्से में आकर, रुष्ट, कुपित एवं क्रुद्ध होकर क्रोध के
आवेश से तम तमाते हुए तुम उससे ऐसा कहों-अरे ओ पद्मनाभ !
अप्रार्थित प्रार्थित ! मरणवाञ्छक-! दुरंतप्रान्त लक्षण ! मालुम होता है

पाएणं पायपीठं अक्रमिता कुन्ताग्रेण लेहं पणामेहि, तिवलियं भिउडिं गिडाळे
साहदुट्टु आसुरुत्ते रुद्धे कुद्धे कुविए चंडिकिए एवं वयासी हं भो पउमणाहा !
अपत्थियपत्थिया ! दुरंतपंतलक्खणा ! हीणपुण्णचाउदसा ! सिरि हिरिधी
परिवज्जिया ! अज्ज ण भवसि किन्नं तुमं ण याणासि, कण्हस्स वासुदेवस्स
अहवणं जुद्धसज्जे णिगच्छाहि)

रथने गिलो राणीने, त्यां न रथने भूमीने दारुक सारथिने जोलाव्यो.
अने जोलावीने तेने आ प्रभाणु कहु के डे देवानुप्रिय ! तमे अमरकंका
राजधानीमां लयो अने त्यां नथने पद्मनाभ राजाना पादपीठने उभा पगथी
आक्रमित करीने कुन्तना अथ लागथी तेने पत्रिका आपो. पत्रिका आपीने
तमे पोतानी लभरो यदावीने, अकदम लादयोण थधने रुष्ट, कुपित अने
क्रुद्ध थधने क्रोधना आवेशमां आवीने तेने आ प्रभाणु कहु के अरे ओ
पद्मनाभ ! अप्रार्थित प्रार्थित ! मरथु पांछक ! दुरंत प्रात लक्षणु ! (नीयु

‘हीनपुत्रचाउद्दसा !’ हीनपुण्यचातुर्दशिकः - अलब्धपुण्यचातुर्दशिकजन्मा, चतुर्दशीजातो हि भाग्यवान् भवति । तथा-‘सिरी हिरि धी परिवर्जिता !’ श्री ह्री धी परिवर्जित ! लक्ष्मी लज्जा बुद्धि रहित !, अद्य न भवसि, किं खलु त्वं न जानासि, कृष्णस्य वासुदेवस्य मग्निं द्रौपदीं देवीमिह ‘ह्रवं आणमाणे’ हव्यमानयत्, ‘तं’ तत्-तस्मात् ‘एयमपि’ एतामपि=आनीतामपि आङ् पूर्व-काद् इण्गती’ इत्यस्मात् क्त प्रत्ययः, ‘अह्व’ अथवा खलु ‘जुद्ध सज्जे’ युद्ध-सज्जः-युद्धाय सज्जः=सन्नद्धः सन् ‘णिग्गच्छाहि’ निर्गच्छ-वहिर्निःसर एष खलु कृष्णो वासुदेवः पञ्चभिः पाण्डवैः सह ‘अप्पच्छे’ आत्मपण्ठः=आत्मा पण्ठी यत्र स समूहे, द्रौपदी देव्याः ‘कूवं’ प्रत्यानयनं कर्तुं हव्यमागतः ।

तू अलब्ध पुण्य चातुर्दशिक जन्म वाला है-तू-चतुर्दशी में उत्पन्न हुआ नहीं है-क्यों कि चतुर्दशी के दिन उत्पन्न हुआ व्यक्ति भाग्यशाली होता है किन्तु तू ऐसा नहीं है अर्थात् अभाग्य है तू श्री ह्री, बुद्धि से रहित है । याद रख-या तो आज तू नहीं है या मैं नहीं हूँ तुझे यह ख्याल नहीं है-कि यह द्रौपदी देवी कृष्ण वासुदेव की बहिन है जिसे तूने यहां हरण करवा कर मंगवाई है । अतः यदि अपनी कुशल चाहता है, तो तू इस हरण करवा कर अपने यहां मंगवाई गई द्रौपदी देवी को कृष्ण वासुदेव के पास जाकर पीछे वापिस पहुँचा दे । नहीं तो युद्ध के लिये सज्जित होकर घर से बाहिर निकल आ । (एरणं कण्हे वासुदेवे) ये कृष्ण वासुदेव (पंचहि पंडवेहि अप्पच्छे दोवई देवीए कूवं हव्यमागए, तएणं से दारुए सारही कण्हे णं वासुदेवे णं एवं वुत्ते

विचारो तेमन् नीय लक्षणो युक्त) अमने अम लागे छे के तु अलब्ध पुण्य चातुर्दशिकः जन्मवाणो छे, अटले के तु अौदशने द्विसे जन्मयो नथी केमके अौदशने द्विसे उत्पन्न थनारी व्यक्ति लाग्यशाणी डोय छे. तुं श्री, ह्री अने बुद्धि वगरनो छे. अरणर सांलणी ले के आणे कां तो तुं नडि के कां हुं नडि. तने अटली पणु अमर नथी के आ द्रौपदी देवी कृष्ण-वासुदेवनी णडेन छे-के लेने ते उरणु उरावीने अही मंगावी छे. डवे ले तुं पोतातुं ललु धिच्छतो डोय तो तुं आ उरणु उरावीने पोताने त्यां राकी राणेदी द्रौपदी देवीने कृष्ण-वासुदेवनी पासे जधने पाछी सोपी हे. नडितर युद्धना माटे तैयार थधने णडार मेदानमां आवी न. (एस णं कण्हे वासुदेवे) आ कृष्णवासुदेव

(पंचहि पंडवेहि अप्पच्छे दोवई देवीए कूवं हव्य मागए, तएणं से दारुए

ततः खलु स दारुकः सारथिः कृष्णेन वासुदेवेनैवमुक्तः सन् हृष्टतुष्टो यावत् प्रतिश्रुणोति ' तथाऽस्तु ' इति कृत्वाऽऽज्ञां स्वीकरोति प्रतिश्रुत्य=अमरकङ्काराजधानीमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य यत्रैव पद्मनाभस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य करतलपरिगृहीतदशनखं शिरावर्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा यावद् वर्धयति-जयेन विजयेन चाभिनन्दयति । वर्धयित्वा-अभिनन्द्य एवमवादीत्-एषा खलु हे स्वामिन् ! मम विनयप्रतिपत्तिः इयमन्या मम स्वामिनो विनयप्रतिपत्तिः, " समु-

समाणे हृष्टतुष्टे जाव पडिसुणैह, पडिसुणित्ता, अमरकंका रायहारिणि अणुपविसिह, अणुपविसित्ता जेणेव पउमनाहे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता, करयल जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी-एसणं सामी मम विणयपडिवित्ती, इमा अन्ना मम सामिस्स समुहाणत्ति त्ति कद्दु असुरुत्ते नाम पाएणं पायपीढं अणुक्कमइ) पांच पांडवों के साथ आत्म षष्ठ होकर द्रौपदी देवी को लेने के लिये अभी अभी आये हुए हैं । इस प्रकार कृष्णवासुदेव के द्वारा कहे गये उस दारुक सारथि ने हृष्ट तुष्ट होकर कृष्णवासुदेव की आज्ञा स्वीकार करली । स्वीकार कर के फिर वह अमरकंका राजधानी में प्रवेश किया वहाँ प्रवेश कर वह वहाँ पहुँचा जहाँ पद्मनाभ राजा थे । उनके समीप जाकर उस ने पहिले उन्हें दोनों हाथों की अंजलि बना कर और उसे मस्तक पर रखकर नमस्कार किया-जय विजय शब्दों से उन्हें बधाया-वाद में उसने इस प्रकार कहना प्रारंभ किया-हे स्वामिन् ! यह तो मेरी विनय प्रतिपत्ति है-दूत

सारही कण्हेणं वासुदेवेणं एवं बुत्ते समाणे हृष्टतुष्टे जाव पडिसुणैह पडिसुणित्ता, अमरकंका रायहारिणि अणुपविसिह, अणुपविसित्ता जेणेव पउमनाहे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता, करयल जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी-एसणं सामी मम विणयपडिवित्ती, इमा अन्ना मम सामिस्स समुहाणत्ति त्ति कद्दु आसुरुत्ते वामपाएणं पायपीढं अणुक्कमइ)

यात्रे पांडवानी साथे आत्मषष्ठ थधने द्रौपदी देवीने देवा भाटे अत्यारे आवी गया छे. आ प्रमाणे कृष्ण-वासुदेव वडे कडेवासां आवेलां वयने। सालणीने हृष्ट-तुष्ट थधने ते दारुक सारथीअे तेमनी आज्ञा स्वीकारी लीधी. स्वीकारीने ते अमरकंका राजधानीमां प्रविष्ट थयो. प्रविष्ट थधने ते न्यां पद्मनाभ राजा उता तेमनी पासे जधने सौ पडेलां तेथे थने हाथोनी अंजलि थनावीने अने तेने मस्तके भूडीने नमस्कार कर्यो अने जय विजय शब्दोथी राजने वधाभाणी आयी. त्थारयधी तेथे आ प्रमाणे कडेवानी शत्रुआत करी के हे स्वामी ! आ तो मारी विनय प्रतिपत्ति छे. दूतनी करण थलावतां मे

हाणति " स्वमुखाद्गृप्तिः-स्वमुखेन कथिता आज्ञापितः-आज्ञा ' इति कृत्वा 'आसु-
रुत्ते ' आशुरूपतः शीघ्रं क्रोधादिष्टः, वामपादेन पादपीठं ' अणुकमइ ' अनुक्रा-
मति, अनुक्रम्य कुन्ताग्रेण लेखं-पत्रिकां ' पणामइ ' अर्पयति । अर्पयित्वा यावत्
' कूर्वं ' प्रत्यानयनं कर्तुं हव्यमागतः । ततः खलु स पञ्चनाभो दाहकेण सार-
थिना एवमुक्तः सन् अशुरूपतः=शीघ्रः क्रोधाक्रान्तं, त्रिवलिकां रेखात्रययुक्तां
भुक्कुटिं-' निडाले ' ललाटे-भालप्रदेशे 'साहदूटु' संहृत्प-उन्नीय, एवमवादीत्-
नो अर्पयामि खलु अहं हे देवानुप्रिय कृष्णस्य वासुदेवस्य द्रौपदीम्, एष खलु
अहं सयमेव युद्धमज्जो निर्गच्छामि=अधुनैव युद्धार्थं वहिर्निःसरामि इतिकृत्वा

के कर्तव्य अनुस्मार मँने यह आपको नस्परकार किया है जय विजय आदि
शब्दों द्वारा वधाई दी है-परन्तु मेरे स्वामीकी उनके मुखसे आपके लिये
जो आज्ञा दी गई है वह दूसरी है-और वह इस प्रकार है-इस प्रकार
अपने मुख से कहकर वह शीघ्र क्रोध से भर गया, और वामपाद से
उसके पादपीठ पर चढ़ गया । (अवकमिन्ता) चढ़कर फिर (कौतग्रेण
लेहं पणामइ) फिर उसने उसके लिये कुन्त के अग्रभाग से पत्रिका
अर्पित की । (पणामिन्ता जाव कूर्वं हव्यमागए) पत्रिका अर्पित करके
यावत् कृष्णवासुदेव पांचो पांडवों के साथ यहां द्रौपदी देवी को वापिस
लेने के लिये हव्य-अभी अभी-आये हैं यह सब समाचार उसे सुना-
दिया । (तएणं से पउमणाभे दाहएणं सारहिणा एवंधुत्ते समाणे आसु
रुत्ते त्रिवलिं भिउडिं निडाले साहदूटु एवं वयासी णो अप्पिणामि, णं
अहं देवाणुप्पिया ! कण्हस्स वासुदेवस्स दोवई, एस णं अहं सयमेव

विनयोपचार भाटे नमस्कार कर्थो छे तेमज्ज जय विजय विजय शब्दो द्वारा
तमने वधामणी आपी छे. परंतु मारा स्वामीजे तेमना सुभथी तमारे भाटे
जे कंठ आसा आपी छे ते कंठक भीञ्ज छे अने ते आ प्रमाणे छे हे-
इत आभ कहीने अेकदम क्रोधमां लालयेण थई गयो अने उआ पगथी
तेना पादासन उपर थडी गयो । (अवकमिन्ता) थडीने (कौतग्रेण लेहं पणा-
मइ) तेजे सानने कुंत (लाला) ना अग्रलागथी पत्रिका आपी. (पणामिन्ता
जाव कूर्वं हव्यमागए) पत्रिका आपीने यावत् कृष्ण-वासुदेव पांचे पांडवोनी
साथे अडीं द्रौपदी देवीने देवा भाटे अत्यारे आल्या छे. आ जतना अधा
समाचारे तेने कही संलगाव्या.

(तएणं से पउमणाभे दाहएणं सारहिणा एवं धुत्ते समाणे आसुरुत्ते त्रि-
वलिं भिउडिं निडाले साहदूटु एवं वयासी-णो अप्पिणामि, णं अहं देवाणुप्पिया ।

दारुकं सारथिमेवमवादीत्—

केवलं भोः ! ' रायसत्येसु ' राजशास्त्रेषु—राजनीतिषु दूतः ' अवज्ज्ञे ' अवध्यः= न हन्तव्यः, इत्युक्तमस्ति तस्मात् त्वां मुञ्चामि इति कृत्वा=इत्युक्त्वा तं दूतम् असत्कार्यं, असम्मान्य अपद्वारेण ' णिच्छुभावेइ ' निक्षोभयति—निष्कासयति, ततः खलु स दारुकः सारथिः पद्मनाभेनासत्कार्यं यावत्—' णिच्छूढे ' निक्षोभितः— निःसारितः ' समाणे ' सन्, यत्रैव कृष्णो वासुदेवस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य करतलपरिगृहीतदशनखं शिरआवर्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा कृष्णं यावद् एवमवादीत्—

जुद्धसज्जो णिगच्छामि, त्ति कट्टु दारुयं सारथ्यं एवं वयासी—केवलं भो रायसत्येसु दूये अवज्ज्ञे त्ति कट्टु असत्कारिय असम्मानिय अवद्वारेणं णिच्छुभावेइ) तत्र वह पद्मनाभ जब दारुक सारथि ने इस प्रकार कहा तो इकदम क्रोधित होकर त्रिवलि युक्त शूकृटि को माथे पर चढा कर इस प्रकार कहने लगा हे देवानुप्रिय ! मैं द्रौपदी को कृष्णवासुदेव के लिये अर्पित नहीं करता हूँ—पीछी नहीं देता हूँ—। इसके लिये मैं अभी स्वयं ही युद्ध करने को तैयार हूँ—। इस प्रकार कहकर फिर उसने उस दारुक सारथि से ऐसा कहा अरे ! राजनीति के शास्त्रों में दूत अवध्य कहा गया है—इस लिये तुझे छोड़ देना हूँ । इस तरह कहकर उसने दूत को असत्कृत और असंमानित कर पीछे के दरवाजे से बाहिर निकलवा दिया । (तएणं दारुए सारही पउमणाभे णं असत्कारिय जाव णिच्छूढे समाणे जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवा

कण्हस्स वासुदेवस्स दोवई, एसणं अहं सयमेव जुद्धसज्जो णिगच्छामि त्ति कट्टु दारुयं सारहिं एवं वयासी—केवलं भो ! रायसत्येसु दूये अवज्ज्ञे त्ति कट्टु असत्कारिय असम्मानिय अवद्वारेणं णिच्छुभावेइ)

दारुक सारथिना आ प्रभाणु वयने सांलणीने पद्मनाभ जेकदम क्रोधमां लावयोण थध गयो. अने लम्भरो चढावीने आ प्रभाणु कडेवा लाग्यो के डे देवानुप्रिय ! हुं कृष्ण-वासुदेवने द्रौपदी केधपणु स्थितिमां सोपवा तैयार नथी. अेना माटे हुं अत्यारे पणु युद्ध करवा तैयार छुं. आ प्रभाणु कडीने तेणु दारुक सारथीने कहुं के अरे ! राजनीतिना शास्त्रोमां दूत अवध्य कडेवामां आग्यो छे अथी तने नतो कइं छुं. आ प्रभाणु कडीने तेणु दूतने असत्कृत अने असंमानित करीने पाछला पारणुथी पडार कढावी भूक्यो.

(तएणं दारुए सारही पउमणाभेणं असत्कारिय जाव णिच्छूढे समाणे जेणेव कण्णे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता करयल० कण्हं जाव एवं

एवं खलु अहं हे स्वामिन् । युष्माकं वचनेन यावत् ' णिच्छुभावेइ ' निक्षोभयति= पद्मनाभः क्रोधाविष्टः सन् द्रौपदीं न दास्यामीत्युक्त्वा दूतो न दन्तव्य इति कृत्वा मामसत्कार्यं, असमान्यापद्वारेण निःसारयति स्म ' इत्यर्थः ॥ २८ ॥

मूलम्—तएणं से पउमणाभे बलवाउयं सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी--खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया । आभिलेक्कं हत्थिर-यणं पडिकप्पेह, तयाणंतरं च णं से बलवाउए छेयायरियउव-देसमइविकप्पणा विगप्पेहिं निउणेहिं जाव उवणेइ, तएणं से पउमनाहे सन्नद्धं अमिसेयं दूरुहइ दूरुहित्ता हयमय जेणेव कणहे वासुदेवे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तएणं से कणहे वासु-देवे पउमणाभं रायाणं एज्जमाणं पासइ पासित्ता तं पंच पंडवे

गच्छह, उवागच्छित्ता करयलं कणहं जाव एवं वयासी—एवं खलु अहं सामी ? तुवमं वयणेणं जाव णिच्छुभावेइ) इस प्रकार जब वह दारुक सारथि पद्मनाभ के द्वारा असत्कृत यावत् होकर बाहिर निकलवा दिया, तब वह वहाँ से चलकर जहाँ कृष्णवासुदेव थे वहाँ आया । वहाँ आकर उसने दोनों हाथों की अंजलि बनाकर और उसे मस्तक पर रखकर कृष्णवासुदेव से इस प्रकार कहा—हे स्वामिन् ? मैंने पद्मनाभ राजा से आपके वचन जैसे ही कहे वैसे ही उसने “ क्रोध में आकर ” मैं नहीं दूंगा, दूतभारने योग्य नहीं होता है—इत्यादि कहकर मुझे असत्कृत एवं असमानित कर अपने यहाँ से पीछे के दरवाजे से बाहिर निकलवा दिया है ॥ सूत्र २८ ॥

वयासी—एवं खलु अहं सामी ! तुवमं वयणेणं जाव णिच्छुभावेइ)

आ प्रभाणु न्यारे ते दारुक सारथि पद्मनाभ राजा वडे असत्कृत यावत् असमानित थधने गडार कडावी भूकथे। त्यारे ते त्यांथी गडार आवीने न्यां कृष्ण-वासुदेव हुता त्यां आव्ये। त्यां आवीने तेणे अने डाथेथी अंजलि अनावीने अने तेने मस्तके भूकीने कृष्ण-वासुदेवने आ प्रभाणु कहुं डे डे स्वामी ! पद्मनाभ राजने मे न्यारे तमारो संदेश कही संभज्जाव्ये। त्यारे सांभज्जातांनी साथे न ते क्रोधमां लराधने “ हुं द्रौपदी देवी पछी आपीश नडि, यावत् इत अवध्य डाय छे ” वगेरे वचनेथी असत्कृत तेमज्ज असमानित करीने मने तेणे पोताना लवनना पाछला पारण्येथी गडार कडावी भूकथे छे. ॥ सू. २८ ॥

एवं वयासी--हं भौ दारगा ! किन्नं तुब्भे पउमनाभेणं सद्धिं
जुज्झहिह उयाहु पेच्छहिह ?, तएणं ते पंच पंडवा कण्हं
वासुदेवं एवं वयासी--अम्हे णं सामी ! जुज्झामो तुब्भे पेच्छह
तएणं पंच पंडवे सण्णद्ध जाव पहरणा रहे दुरूहंति दुरुहित्ता
जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता एवं
वयासी--अम्हे वा पउमणाभे वा रायत्तिकट्टु पउमनाभेणं सद्धिं
संपलग्गा थावि होत्था, तएणं से पउमनाभे राया तं पंच पंडवे
खिप्पामेव हयमहिय पवर निवडिय चिन्धद्धूयपडागा जाव
दिसोदिसिं पडिसेहेइत्ति, तएणं ते पंच पंडवा पउमनाभेणं रन्ना
हयमहियपवरनिवडिय जाव पडिसेहिया समाणा अत्थामा
जाव आधारणिज्जत्तिकट्टु जेणेव कणहे वासुदेवे तेणेव उवा०,
तएणं से कणहे वासुदेवे ते पंच पंडवे एवं वयासी--कहणं
तुब्भे देवाणुप्पिया ! पउमणाभेणं रन्ना सद्धिं संपलग्गा ?,
तएणं ते पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी--एवं खलु
देवाणुप्पिया ! अम्हे तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणा सन्नद्ध०
रहे दुरुहामो२ जेणेव पउमनाभे जाव पडिसेहेइ, तएणं से
कणहे वासुदेवे तं पंच पंडवे एवं वयासी--जइ णं तुब्भे देवाणु-
प्पिया ! एवं वयंता अम्हे णो पउमणाभे रायत्तिकट्टु पउमना-
भेणं सद्धिं संपलग्गं ताओ णं तुब्भे णो पउमणाहे हयमहिय-
पवर जाव पडिसेहंते, तं पेच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! अहं
नो पउमणाभे रायत्तिकट्टु पउमनाभेणं रन्ना सद्धिं जुज्झामि रहं

दुरुहइ दुरुहित्ता जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छइ
 उवागच्छित्ता सेयं गोखीरहारधवलं तणसोह्लियसिंदुवारकुंदेंदुस-
 न्निगासं निययवलस्स हरिसजणणं रिउसेण्णविणासकरं पंच-
 जण्णं संखं परामुसइ परामुसित्ता मुहवायपुरियं करेइ, तएणं तस्स
 पउमणाहस्स तेणं संखसद्देणं बलइभाए हयजाव पडिसेहिए, तएणं
 से कण्हे वासुदेवे धणुं परामुसइ वेढो धणुं पूरेइ पूरित्ता धणुसहं करेइ,
 तएणं तस्स पउमनाभस्स दोच्चे बलइभाए तेणं धणुसद्देणं
 हयमहिय जाव पडिसेहिए, तएणं से पउमणाभे राया तिभाग-
 वलावसेसे अत्थामे अवले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे
 अधारणिजत्तिक सिग्धं तुरियं जेणेव अमरकंका तेणेव उवा-
 गच्छइ उवागच्छित्ता अमरकंकां रायहाणिं अणुपविसइ अणुप-
 विसित्ता दाराइं पिहेइ पिहित्ता रोहसज्जे चिट्ठइ, तएणं से कण्हे
 वासुदेवे जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता रहं
 ठवेइ ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता देउवियसमु-
 ग्घाएणं समोहणइ, एणं महं णरसीहरुवं विउव्वइ विउव्वित्ता महया
 महया सद्देणं पादद्वरयं करेइ, तएणं से कण्हेणं वासुदेवेणं
 महया महया सद्देणं पादद्वरणं कएणं समाणेणं अमरकंका
 रायहाणी संभग्गपागारगोपुराट्टालयच्चरियतोरणपल्हत्थियपव-
 रभवणसिरिघरा सरस्सरस्स धरणियले सन्निवइया, तएणं
 से पउमणाभे राया अमरकंकां रायहाणिं संभग्ग जाव
 पासित्ता भीए दोवईए देवीए सरणं उवेइ तएणं सा

दोवईदेवी पउमनाभं रायं एवं वयासी—किण्णं तुमं देवा-
 णुप्पिया ! न जाणसि कण्हस्स वासुदेवस्स उत्तमपुरिसस्स
 विप्पियं करेमाणे ममं इहं हवमाणेसि, तं एवमवि गए
 गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! णहाए उल्लपडसाडए अवचूलग-
 वत्थणियत्थे अंतेउरपरियालसंपरिवुडे अग्गाइं वराइं रयणाइं
 गहाय ममं पुरओ काउं कण्हं वासुदेवं करयलपायपडिए सरणं
 उवेहि, णिक्कइयवच्छला णं देवाणुप्पिया ! उत्तमपुरिसा, तएणं
 से पउमनाभे, दोवइए देवीए एयमहं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता
 णहाए जाव सरणं उवेइ उवित्ता करयल० एवं वयासी—दिट्ठाणं
 देवाणुप्पियाणं इड्डीजावपरक्कमे तं खामोमि णं देवाणुप्पिया!
 जाव खमंतु णं जाव णाहं भुज्जो२ एवं करणयाएत्तिकहु पंज-
 लिवुडे पायवाडिए कण्हस्स वासुदेवस्स दोवइं देविं साहत्थि
 उवणेइ, तएणं से कणहे वासुदेवे पउमणाभं एवं वयासी—हं
 भो पउमणाभा ! अप्पत्थियपत्थिया४ किण्णं तुमं ण जाणसि
 मम भगिणिं दोवइंदेवीं इह हवमाणमाणे तं एवमवि गए णत्थि
 ते ममाहितो इयाणिं भयमत्थि त्तिकहुपउमणाभं पडिविसज्जेइ
 पडिविसज्जित्ता दोवइं देविं णिणहइ णिणित्ता रहं दुरूहेइ दुरूहित्ता
 जेणेव पंच पंडवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पंचण्हं पंडवाणं
 दोवइं देविं साहत्थि उवणेइ, तएणं से कणहे पंचहिं पंडवेहिं सच्चिं
 अप्पच्छे छहिं रहेहिं लवणसमुइं मज्झं मज्झेणं जेणेव जंबूद्वीवे
 दीवे जेणेव भारहे वासे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० २९ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स पद्मनाभः ‘ बलवाउयं ’ बलव्या-
पृतं-सैन्यनायकं शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव-शीघ्रमेव भो
देवानुप्रिय ! ‘ आभिसेकं ’ आभिषेक्यं प्रधानं हस्तिरत्नं ‘ पडिकप्पेह ’ प्रतिक-
ल्पय सुसज्जितं कुरु, तदनन्तरं च स बलव्यापृतः खलु “ छेयायरियउवदेसमइ-
विकप्पणाविगप्पेहिं ” छेकाचार्योपदेशमतिविकल्पनाविकल्पैः—तत्र छेकः—निपुणः,
आचार्यः—कलाशिक्षकः, तस्योपदेशाद् या मतिं ‘ द्विस्तस्या विकल्पना-विचारणा,
तज्जनितो विकल्पः—विशिष्ट रचनाशक्तिर्येषां तः, ‘ जाव उवणेइ ’ यावद् उपत-

—तएणं से पउमणाभे इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से पउमणाभे) उन पद्मनाभ राजा ने
(बलवाउयं सदावेह) अपने सैन्य नायक को बुलाया (सदावित्ता) और
बुलाकर फिर उससे (एवं वयासी) इस प्रकार कहा—(खिप्पामेव भो
देवानुप्पिया ! आभिसेकं हत्थिरयणं पडिकप्पेह) हे देवानुप्रिय ! तुम
शीघ्र ही प्रधान हस्तिरत्न को सुसज्जित करो । (तयाणंतरं च णं से
बलवाउए छेयायरिय उवदेसमइ विकप्पणा विगप्पेहिं निउणेहिं जाव
उवणेइ) इसके बाद उस सैन्य नायक ने निपुणकला शिक्षक के उपदेश
से प्राप्त बुद्धि की कल्पना से उत्पन्न हुई है विशिष्ट रचना की शक्ति
जिन्हों को ऐसे अनुप्य से कि जो शोभा करने में अत्यन्त निपुण थे उस
हस्तिरत्न को सुसज्जित करवाया । जब उन्होंने ने उस हस्तिरत्न को चम-
कीले निर्मल वेष से शीघ्र परिवस्त्रित-करदिया । वस्त्राच्छादन द्वारा

तएणं से पउमणाभे इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपणी (से पउमणाभे) ते पद्मनाभ राजाणे (बलवाउयं
सदावेह) पोताना सैन्य नायकने बोलाव्यो. (सदावित्ता) अने बोलावीने तेने
(एवं वयासी) आ प्रमाणे उहुं के (खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! आभिसेकं
हत्थिरयणं पडिकप्पेह) हे देवानुप्रिय ! तमे सत्तरे प्रधान उस्तिरत्तने
सुसज्ज करे. (तयाणंतरं च णं से बलवाउए छेयायरियउवदेसमइविकप्पणा
विगप्पेहिं निउणेहिं जाव उवणेइ) त्थारपणी ते सैन्य नायके निपुण कलाशिक्ष-
कना उपदेशथी नेमणे विशिष्ट रचना भाटे बुद्धि तेमज्ज कल्पना शक्ति मेणवी
छे, तेमज्ज श्रृंगार कलाभा नेमो अतीव अतुर छे तेवा भाणुसो वडे
उस्तिरत्तने सुसज्जित कराव्यो. न्यारे सत्तरे तेमणे ते उस्तिरत्तने अमकता
निर्मल वेषथी परिवस्त्रित करी दीयो—वस्त्राच्छादन वडे आच्छादित करीने सुशो-

यति—अत्र यावच्छब्देनैवं बोध्यम्—मुनिउणेहिं नरेहिं हस्तिरयणं परिकल्पेइ, उज्ज-
लनेवत्थ ह्ववपरिवत्थियं सुसज्ज इत्यादि परिकल्पित्ता ' इति मुनिपुणैः=शोभा-
करणचतुरैः, नरैर्हस्तिरत्नं परिकल्पयति—शोभयति किं भूतं हस्तिरत्नं—उज्ज्वल-
नेपथ्यहव्यपरिवत्थितं उज्ज्वलनेपथ्येन—द्युतिमन्निर्मलवेषेण शीघ्रं परिवत्थितः
वस्त्राच्छादनसुशोभितः, तथा—सुसज्जं—घण्टाभरणादिभिः समलङ्कृतं, एवं परि-
कल्प्य सवलव्यापृतः पद्मनाभनृपस्यान्तिके तं हस्तिरत्नमुपनयति, आनयति ।
ततः खलु स पद्मनाभः सन्नद्धवद्धवर्मितकवचः—आभिषेक्यं हस्तिरत्नं दूरोहति—
आरोहति दूरुह्य हयगजरथपदातिपरिवृतः यत्रैव कृष्णो वासुदेवस्तत्रैव प्राधारयद्
गमनाय ।

ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः पद्मनाभं राजानम् एजमानम्=आगच्छन्तं
पश्यति । दृष्ट्वा च तान् पञ्च पाण्डवान् एवमवदत—हं भो ! दारकाः भो वत्साः !

आच्छादित कर सुशोभित करदिया—अर्थात्—झूल वगैरह डालकर उसे
बहुत अच्छी तरह सजा दिया, तथा घंटा आभरण आदि से उसे अलं-
कृत करदिया, तब वह सैन्य नायक उस हस्ति रत्न को लेकर पद्मनाभ
राजा के पास पहुँचा (तएणं से पउमणाभे सन्नद्ध० अभिसेय० दूरुहइ,
दूरुहित्ता हयगय जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तएणं
से कण्हे वासुदेवे पउमणाभरायाणं एज्जमाणं पासइ पासित्ता ते पंच पंडवे
एवं वयासी) इसके बाद वह पद्मनाभ राजा सन्नद्ध, बद्ध, वर्मित कवच
वाला होकर उस प्रधान हस्तिरत्न पर आरूढ हो गया और आरूढ
होकर हय, गज, रथ, एवं पैदल सैन्य को साथ लेकर जहाँ कृष्णवासुदेव
थे उस और चल दिया । जब कृष्णवासुदेव ने पद्मनाभ राजा को आता
हुआ देखा तो देखकर उन्होंने ने पांच पांडवों से ऐसा कहा—(हं भो

लित करी दीधो अट्ठे के अल वगेरे नाभीने गहुण सरस रीते सुसन्नित
करी दीधो तेमञ्च घंट, आभरणो वगेरेथी तेने अलंकृत करी दीधो. त्पारे ते
सैन्य नायक ते हस्तिरत्नने लधने पद्मनाभ राजनी पासे गयो.

(तएणं से पउमणाभे सन्नद्ध० अभिसेय० दूरुहइ दूरुहित्ता हयगय जेणेव
कण्हे वासुदेवे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तएणं से कण्हे वासुदेवे पउमणाभरायाणं
एज्जमाणं पासइ, पासित्ता ते पंच पंडवे एवं वयासी)

त्यारपणी ते पद्मनाभ राज कवच तेमञ्च भील शओथी सन्न थधने
ते प्रधान हस्तिरत्न उपर सवार थध गयो अने सवार थधने घोडा, डायी,
रथ अने पायदण सेनाने साथे लधने कृष्ण-वासुदेव डता ते तरइ स्वाना
थयो. कृष्ण-वासुदेवे न्यादे पद्मनाभ राजने आवतो लोयो त्पारे तेने लोधने पांचे

किं खलु यूयं पद्मनाभेन सार्धं ' जुञ्जिहिह ' युध्यथ । ' उयाहु ' उताहो-अथवा ' पेच्छिहिह ' प्रेक्षध्वे, ? ततः खलु ते पञ्च पाण्डवा कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्-ययं खलु हे स्वामिन् ! युध्यामः, यूयं प्रेक्षध्वम् । ततः खलु पञ्च पाण्डवाः सन्नद्धवद्वर्मितकवचा यावद् गृहीतायुधप्रहरणाः रथान्=रथ स्व रथोपरि दूरो-हन्ति=आरोहन्ति दूरोह्य यत्रैव पद्मनाभो राजा तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य एव-मवदन्-'अम्हे वा पउमणाभे वा राया ' वयं वा अयामः पद्मनाभो वा राजा, इति

दारगा ! किन्नं तुम्हे पउमनाभेणं सद्धिं जुञ्जिहिह उयाह पेच्छिहिह ? तएणं ते पंडवा कण्णं वासुदेवं एवं वयासी) हे वत्सो ! क्या तुमलोग पद्मनाभ के साथ युद्ध करोगे-या युद्ध को देखोगे ? तब उन पांडवों ने कृष्णवासुदेव से इस प्रकार कहा-(अम्हेणं सामी ! जुञ्जामो, तुम्हे पेच्छह, तएणं पंच पंडवे सन्नद्ध जाव पहरणा रहे दुरूहंति, दुरुहित्ता जेणेव पउमणाभे राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता एवं वयासी, अम्हे वा पउमणाभे वा रायत्ति कद्दु पउमणाभेणं सद्धिं संपलगा यावि होत्था) हे स्वामिन् ! हम तो युद्ध करेंगे-आप उस का निरीक्षण करें । इसके बाद वे पांचों पांडव सन्नद्धवद्वर्मित कवचवाले होकर यावत् आयुध प्रहरणों को ले २ कर अपने २ रथों पर सवार हो गये । सवार होकर फिर वे जहाँ पद्मनाभ राजा थे-उस और गये-वहाँ जाकर उन्हीं ने पद्मनाभ राजा से इस प्रकार कहा-यां तो आज हम नहीं या पद्म-

पांडवोंने आ प्रमाणे कहु-(हं भो दारगा ! किन्नं तुम्हे पउमनाभेणं सद्धिं जुञ्जिहिह उयाहु पेच्छिहिह ? तएणं ते पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी) हे वत्स ! शुं तमे पद्मनाभ राजनी साथे भेदाने उतरशो ? हे इत्थं युद्धने लेशो ' त्यारे ते पांडवोअे कृष्ण-वासुदेवने आ प्रमाणे कहु केः—

(अम्हेणं सामी ! जुञ्जामो, तुम्हे पेच्छह, तएणं पंच पंडवे सन्नद्ध जाव पहरणा रहे दुरूहंति, दुरुहित्ता जेणेव पउमणाभे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी, अम्हे वा पउमणाभे वा रायत्ति कद्दु पउमणाभेणं सद्धिं संपलगा यावि होत्था)

हे स्वामी ! अमे तो युद्ध भेडीशुं, तमे अमारा युद्धने णुओ. त्यार-पथी ते पांचे पांडवे कवचथी सुसन्नद्ध थधने आयुध प्रहरणोने लधने पोत-पोताना रथो उपर सवार थध गया. सवार थधने तेओ पद्मनाभ राज तरक्ष रवाना थया. पद्मनाभ राजनी पासे पडोथीने तेणु आ प्रमाणे कहु के— " आओ डा तो अमे नडिं अने डां पद्मनाभ नडिं. " आम डडीने तेओ पद्मनाभ राजनी साथे युद्ध करवा लाग्या

कृत्वा=इत्युक्त्वा-पद्मनाभेन सार्धं योद्धुं संप्रलम्बनाथाप्यभवन्, ततः खलु स पद्मनाभो राजा तान् पञ्च पाण्डवान् क्षिप्रमेव 'हयमहियपवरनिवडियचिन्धद्वयपङ्गा' हयमथितप्रवरनिपतितचिह्नध्वजपताकान्-तत्र हयाः-अथवा सथिता-पीडिताः, प्रवराः-प्रशस्ताः, चिह्नध्वजपताका निपातिता येषां तान्, शस्त्रास्त्रप्रहारजनित प्राप्तान् इत्यर्थः, यावद् दिशो दिशं=सर्वतः 'पडिसेहेइ' प्रतिषेधयति=प्रतिनिवर्तयति स्मेत्यर्थः । ततः खलु ते पञ्च पाण्डवाः पद्मनाभेन राज्ञा हयमथितप्रवरनिपतित यावत् प्रतिषेधिताः सन्तः 'अत्थामा' अस्थामानः-बलरहिताः, 'जाव अधारणिज्जा' अत्र यावच्छब्देन-'अवला अवीर्या' इत्यनयोः संग्रहः । अवलाः-

नाभ राजा ही नहीं" ऐसा कहकर वे पद्मनाभ राजा के साथ युद्ध करने में संलग्न हो गये । (तएणं से पउमनाभे राया ते पंच पंडवे खिप्पामेव हयमहियपवर निवडिय जाव पडिसेहिया, समाणा, अत्थामा जाव अधारणिज्ज त्ति कट्टु जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवा०, तएणं से वासुदेवे ते पंच पंडवे एवं वयासी कहणं तुव्भे देवाणुप्पिया ! पउमनाभेणं रत्ता सद्धि संपलग्गा ? तएणं ते पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया । अम्हे तुव्भेहिं अब्भणुत्ताया समाणा समद्ध० रहे दुरूहामो २ जेणेव पउमणाभे जाव पडिसेहेइ) तब पद्मनाभ राजा ने उन पांचो पांडवों को बहुत जल्दी पीडित घोड़ों वाला एवं निपातित प्रशस्त चिह्नध्वज पताका वाला कर दिया । यावत् एक दिशा से दूसरी दिशा में जाने से भी उन्हें रोक दिया अथवा-एक दिशा से दूसरी दिशा में खदेड़ दिया । इस तरह वे पांचो पांडव पद्मनाभ राजा के द्वारा पीडित घोड़ोवाले, एवं निपातित प्रशस्त चिह्न ध्वज पताका वाले जब बन गये और एक दिशा से दूसरी दिशा में जाने से रोक दिये गये-अथवा खदेड़ दिये गये तब बलरहित बनकर यावत्

(तएणं से पउमनाभे राया ते पंच पंडवे खिप्पामेव हयमहियपवरं निवडिय जाव पडिसेहिया समाणा, अत्थामा जाव अधारणिज्ज त्ति कट्टु जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवा०, तएणं से कण्हे वासुदेवे ते पंच पंडवे एवं वयासी कहणं तुव्भे देवाणुप्पिया ! पउमनाभेणं रत्ता सद्धि संपलग्गा ? तएणं ते पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया । अम्हे तुव्भेहिं अब्भणुत्ताया समाणा समद्ध० रहे दुरूहामो २ जेणेव पउमणाभे जाव पडिसेहेइ)

त्यारपधी पद्मनाभ राजासे ते पांचे पांडवोंने थोडा वणतमांज पीडित थोडाओवाणा तेमंज निपातित प्रशस्त चिह्नध्वज पताकावाणा गनावी दीधा यावत ओक दिशाभांथी थीं ओ दिशा तरक् ऋथ शके नडि तेम तेओसे रस्ता रोक दीधा, अथवा तो ओक दिशाभांथी थीं ओ दिशा तरक् लगाडी भूक्या. आवी

सन्वदीनाः अत्रीर्याः-आन्तरिकशक्तिरहिताः, उत्साहहीनाइत्यर्थः, तथा-अधा
रणीयाः=आत्मानं रणभूमौ धारयितुमशक्ताः, इति कृत्वा-इति विचार्य, यत्रैव
कृष्णो वासुदेवस्तत्रैवोपागच्छन्ति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवस्तान् पञ्च
पाण्डवान् एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण, अगदीत्-‘ कद्वणं ’ कथं खलु यूयं हे देवानु-
प्रियाः ! पञ्चनाभेन राज्ञा सार्धं योद्ध्यु संप्रलम्भाः १, ततः खलु ते पञ्च पाण्डवाः
कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! वयं युष्माभिरभ्यनुज्ञाताः
सन्तः सन्नद्धवद्वर्णितकवचाः रथान् ‘ दुरुहामो ’ दूरोहामः-आरोहामः आरूढाः,
आरूढ्य यत्रैव पञ्चनाभस्तत्रैव गत्या युद्धाय संप्रलम्भाः ततः पराजयं प्राप्ता यावत्
प्रतिषेधिता ’ इति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवस्तान् पञ्च पाण्डवान् एवमवा-

रणभूमि में अपने आपको टीका ने में भी असमर्थ जानकर जहाँ कृष्ण-
वासुदेव थे वहाँ आये । वहाँ पहुँचते ही कृष्णवासुदेवने उनसे-उन पाँचों
पाण्डवों से-इस प्रकार कहा- जब आपलोग पराजित हो गये तो पञ्च-
नाभ राजा के साथ युद्धरत हुए-लड़े-तब उन पाँचों पाण्डवों ने कृष्ण-
वासुदेव से इस प्रकार कहा, हे देवानुप्रिय ! हमलोगों ने आप से अभ्य-
नुज्ञान होकर ही कवच आदि से सुसज्जित हो रथों पर आरोहण
किया, और आरोहण कर जहाँ पञ्चनाभ राजा था वहाँ हमलोग पहुँचे ।
वहाँ पहुँचकर हमलोग उनके साथ युद्धरत हो गये । वाद में पराजित
हो गये । और पराजित होकर फिर ऐसे बन गये जो उसने हमें एक
दिशा से दूसरी दिशा में खदेड़ दिया या जाने से रोक दिया । (तएणं
से कण्हे वासुदेवे ते पं. पं.) तब कृष्णवासुदेव ने उन पाँचों पाण्डवों से

परिस्थितिमां लायार थर्धने यावत् युद्धलूमिमां पोतानी जतने टकावी शक-
वामां पणु असमर्थं जण्णीने पाये पांडवो न्यां कृष्ण-वासुदेव इता त्यां
आव्या त्यां पडोयतां न कृष्ण-वासुदेवे पाये पांडवोने आ प्रभाणु कहुं के
तमे लोके पञ्चनाभ राजनी साथे युद्धरत थर्धने परालत थर्ध गया छे ? त्यारे
ते पाये पांडवोअे कृष्ण-वासुदेवने आ प्रभाणु कहुं के छे देवानुप्रिय ! अमे
अधा आपनी आरा भेगवीने कवच वगेरेथी सुसज्जित थर्धने रथे उपर
सवार थया सवार थर्धने अमे न्यां पञ्चनाभ राज इतो त्यां गथे त्यां
पडोयनीने अमे अधा तेनी साथे युद्ध करवा लाग्या अने तेने परिणुअे अमे
डारी गया छीअे डार पाभीने अमे अेवी लयंकर परिस्थितिमां सपडाथ
गया इता के अेथी अेक दिशा तरक्षथी भील दिशा तरक्ष नवामां पणु असमर्थ
थर्ध गया अथवा तो तेले अमने अेक दिशाभांथी भील दिशा तरक्ष भगाडी
भूक्या छे. (तएणं से कण्हे वासुदेवे ते पं. पं.) त्यारे कृष्ण-वासुदेवे ते पांथ
पांडवोने आ प्रभाणु कहुं के-

दीत्-यदि खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! पूर्वमेवं वक्तारो भवत, ' अम्हे, ' णो पउमणाभे राया ' इति ' वयं भवामः, नो पञ्जनाभो राजा ' इति " वयमेवजेष्यामो न तु पञ्जनाभो राजा ' इत्यर्थः. तथा-यदि पूर्वम्-इति कृत्वा=इत्यैव निश्चयं मनसि निधाय, पञ्जनाभेन सार्धं ' संपलग्गता ' युद्धाय संपलग्गता भवत, ' तो णं ' तर्हि खलु ' तुब्भे, णो पउमणाहे ' यूयं नो पञ्जनाभः=यूयमेव जेतारो भवेत, न तु पञ्जनाभः, तथा यूयं तं हयमथितप्रवरनिपतित चिह्नञ्चजपताकं यावत्-पञ्जनाभं ' पडिसेहंते ' प्रतिषेधयेत=प्रतिनिवर्तयेत । तत्=तस्मात् ' पेच्छह ' प्रेक्षध्वं, खलु

इस प्रकार कहा-(जइणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! एवं वयंता अम्हे णो पउमणाभे राय त्ति कट्टु पउमणाभेणं सद्धिं संपलग्गताओ णं तुब्भे णो पउमणाहे, हय-महिय-पवर-जाव.पडिसेहंते, तं पेच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! अहं णो पउमणाभे राय त्ति कट्टु पउमणाभेणं रन्ना सद्धिं जुज्झामि, रहं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव पउमणाभे राया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सेयं गोखीरहारधवलंतणसोल्लियसिंदुवारकुंदेदु सन्निगासं निययवलस्स हरिसज्जणं रिउसेण्णविणासकरं पंचजणं संखं परामुसइ) हे देवानुप्रिय ! तुम तो पहिले ऐसा कहते थे कि हय जीतेगे, पद्मनाभ राजा नहीं जीतेगा-और ऐसा ही मन में विचार कर-निश्चय कर-तुमलोगों ने पद्मनाभ राजा के साथ युद्ध करना प्रारंभ किया-तो तुमलोगों को ही जीतना चाहिये था । पद्मनाभ राजा को नहीं-और तुम्हीं लोग उसे पीडित घोड़ों वाला एवं निपातितप्रश-

(जइणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! एवं वयंता अम्हे णो पउमणाभे राय त्ति कट्टु पउमणाभेणं सद्धिं संपलग्गताओ णं तुब्भे णो पउमणाहे, हयमहियपवर जाव पडिसेहंते, तं पेच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! अहं णो पउमणाभे रायत्ति कट्टु पउमणाभेणं रन्ना सद्धिं जुज्झामि, रहं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव पउमणाभे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेयं गोखीरहारधवलंतणसोल्लियसिंदुवार कुंदेदु सन्निगासं निययवलस्स हरिसज्जणं रिउसेण्णविणासकरं पंचजणं संखं परामुसइ)

हे देवानुप्रिय ! तमे तो पडेलेथी न आ प्रमाणे कुडेता उता डे अमेन एतीशुं, पञ्जनाभ राजा एतथे नडि. अने आ प्रमाणे विचार करीने न तमे दोडोअे पञ्जनाभ राजानी साथे युद्धनी शइआत करी उती, आवी परिस्थिभां तो तमारे एत मेणववी नेधअे. पञ्जनाभ राजानी एत नडि थवी नेधअे तमे दोडो तेने पीडित घोडाओवाणेो अनावत, तमने ते नडि पणु आ णधी तमारी मननी धरुआ सक्ख थरु शक्की नडि. अथी हे देवानुप्रियो ! डवे बुओ,

यूयं हे देवानुप्रियाः । ' अहं नो पद्मनाभे राया ' ' अहं नो पद्मनाभो राजा '=
 अहमेव जेता भवामि, न तु पद्मनाभो राजा, इति कृत्वा पद्मनाभेन राज्ञा साथं
 युध्यामि, इत्युक्त्वा रथं ' दुरुहइ ' दूरोहति-आरोहति-स कृष्ण वामुदेवः पद्म-
 नाभेन सह योद्धुं रथमारूढवान् इत्यर्थः । आरूढ यत्रैव पद्मनाभो राजा तत्रैवो
 पागच्छति, उपागत्य ' सेयं ' श्वेतं-गोक्षीरहारधवलं=गोदुग्धवत्-हारवच्च धवलं
 भृक्लं ' तणसोल्लिपसिंदुवारकुंदेंदुमन्निगासं ' ' तणसोल्लिया ' मल्लिका अयं
 देशीयः शब्दः सिन्दुवारो=निर्गुण्डी, कुन्दं-कुन्दनाम्ना प्रसिद्धः श्वेतपुष्पविशेषः,
 इन्दुश्चन्द्रस्तद्वत् संनिकाशः-प्रभा यस्य स तं, निययवलस्म ' निजकवलस्य स्वकी-
 यसेनाय ' हरिमज्जणं ' हर्षजननं-हर्षोत्पादकं, ' रिउसेण विणासकरं ' रिपुमैन्य
 विनासकरं=शत्रुसैन्यवलहारकं पाञ्चजन्यं शङ्खं पाञ्चजन्यनामकं शङ्ख ' परामुपइ'परा-
 मृशति हस्ते गृह्णाति, परामृश्य ' मुहवायपूरियं करेइ ' मुखत्रातपूरितं मुहवातेन ध्नातं
 करोति-वाद्यतीत्यर्थः । ततः खलु तस्य पद्मनाभस्य तेन शङ्खशब्देन ' वल-

स्त चिह्नध्वज पताका वाला बनाते-वह तुम्हें ऐसा नहीं बनाता-परन्तु
 ऐसा तुम लोगों का मन में धारा विचार सफली भूत नहीं हुआ अतः
 देवानुप्रियो ! अब देखो-मैं उसके साथ युद्धरत होता हूँ इसमें मैं ही
 जीतूंगा पद्मनाभ राजा नहीं । ऐसा कहकर वे कृष्णवासुदेव रथपर
 सवार हो गये । और सवार होकर वे वहाँ पहुँचे जहाँ पद्मनाभ राजा
 था । वहाँ पहुँच कर उन्होंने ने अपने पांचजन्य श्वेतशंख को जो अपनी
 सेनाको हर्ष का जनक एवं शत्रु सेना का संहारक था एवं गोक्षीर तथा
 हार के जैसा धवल वर्णवाला था उठाया । इसकी प्रभा मल्लिका निर्गुण्डी
 कुंदपुष्प एवं चन्द्रमाके जैसी उज्ज्वल थी । (परामुसित्ता मुहवायपूरियं करेइ)
 उसे उठाकर उन्होंने ने मुँह से बजाया-(तणं तस्स पञ्जणाहस्स तेणं
 संखमहेणं वलइभाए हय जाव पडिसेहिए) तब उस पद्मनाभ की सेना

तेनी साथे हु डवे मेदाने पडुं छुं आभां विजय भने न प्राप्त थये, पद्म-
 नाभ राजने नडि. आभ कहीने कृष्ण-वासुदेव रथ उपर सवार थय गया
 अने सवार थयने त्यां पद्मनाभ राज डते त्यां पडोन्था त्यां पडोन्थीने
 तेमणे पोताना पांचजन्य सङ्ख शंभने-के ने तेमनी सेना माटे डपोत्पादक
 तेमञ् शत्रुओनी सेना माटे संहार इप डते तथा गायना इध अने डारना
 नेवे सङ्ख डते-डायभां लीधे. ते शंभनी डति भडिलडा निशुं डी कुंद पुष्प
 अने चन्द्र नेथी डती. (परामुसित्ता मुहवायपूरियं करेइ) डधने तेमणे
 मुभधी वगाडथे. (तणं तस्स पञ्जणाहस्स तेणं संखमहेणं वलइभाए हय
 जाव पडिसेहिए) ते वभते ते पद्मनाभ राजनी सेनाने त्रिभाग शंभना

तिभाए हते ' बलत्रिभागो हतः—सैन्यस्य तृतीयांशो हतमथित यावत् दिशोदिशं प्रतिषेधित.—प्रतिनिवृत्तः पलायित इत्यर्थः । ततस्तदनन्तरं खलु स कृष्णो वासु-
देवो धनुः परामृशति गृह्णाति, परामृश्य ' वेढो ' वेष्टः वर्णकः धनुर्विषयकं वर्णनं
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तितो विज्ञेयमित्यर्थः, ' धणुं पूरेइ ' धनुः पूरयति धनुषि गुणमारो-
पयति पूरयित्वा धनुः शब्दं करोति ततः खलु तस्य पद्मनाभस्य द्वितीयवारं ' बल-
तिभाए ' बलत्रिभाग बलस्य सैन्यस्य तृतीयोभागस्तेन धनुः शब्देन ' ह्यमहिय
पवरनिवडिय चिन्धद्रूपपडागे ' ह्यमथितप्रवरत्रिपतितचिह्नध्वजपताको यावद्

का त्रिभाग उस शंख के शब्द से हत हो गया भथित हो गया यावत्
एक दिशा से दूसरी दिशा की तरफ भाग गया । तएणं से कण्हे वासु-
देवे धणुं परामुसइ, वेढोधणुं पूरेइ, पूरित्ता धणुसइं करेइ) इसके बाद
कृष्ण वासुदेवने धनुष को उठाया । इस धनुष को वर्णन जंबूद्वीप प्रज्ञ-
प्ति में किया गया है । सो वहां से जानना चाहिये उठाकर उन्होंने उस
पर ज्या का आरोपण किया फिर उसे चढाया—सो उससे शब्द हुआ
(तएणं तस्स पउमनाभस्स दोच्चे बलइभाए तेणं धणुसइणं ह्यमहिय जाव
पडिसेहिए, तएणं से पउमणाभे राया तिभागवलावसेसे अत्थामे
अवले, अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जत्ति कट्टु सिग्घं
तुरियं जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ) तब उस पद्मनाभ राजा
की सैन्य का तृतीयभाग उस धनुष के शब्द से हत हो गया, भथित
हो गया, उस की प्रवर चिन्ह स्वरूप ध्वजापताकाएँ सब गिर गई यावत्

शब्दथी न् उत थर् गथो, भथित थर् गथो यावत् ओइ दिशा तरइथी णीउ
दिशा तरइ नाशी गथो. (तएणं से कण्हे वासुदेवे धणुं परामुसइ, वेढो धणुं
पूरेइ, पूरित्ता धणुसइं करेइ) त्थारपथी कृष्ण-वासुदेवे धनुष उठाव्युं आ
धनुषतुं वरुणं न्पूद्वीप प्रज्ञप्तिमां इरवामां आव्युं छे. निशासुओओ त्थांथी
नल्ली देवुं लेधओ. उठावीने तेओओ तेनी उपर प्रत्यंथा चढावी. त्थारपथी
धनुषने चढाव्युं अने तेनाथी शब्द थथो—

(तएणं तस्स पउमनाभस्स दोच्चे बलइभाए तेणं धणुसइणं ह्यमहिय जाव
पडिसेहिए, तएणं से पउमणाभे राया तिभागवलावसेसे अत्थामे अवले,
अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जत्ति कट्टु सिग्घं तुरियं जेणेव अमर-
कंका तेणेव उवागच्छइ)

ते पद्मनाभ राजनी सेनानो त्रीणे लाग ते धनुषना शब्दथी न् उत थर्
गथो, भथित थर् गथो, तेनी प्रवर चिह्न-स्वरूप ध्वज पताकाओ षधी पडी

दिशो दिशं प्रतिषेधितः, ततः खलु स पद्मनाभो राजा ' त्रिभागवलावसेसे ' त्रिभागवलावशेषः तृतीयांशावशिष्टसैन्यवान् सन् अस्थामा, अवलः, अवीर्यः, अस्थामेत्यादि प्राग्व्याख्यातम् अपुरुषकारपराक्रमः-पौरुषपराक्रमरहितः, अधारणीयः-प्राणान् धारयितुमशक्तः, इति कृत्वा=इति विचार्य शीघ्रं त्वरितं यत्रैवा मरकंका तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अमरकंकां राजधानीमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य द्वाराणि ' पिहेइ ' विधत्ते, रोहसज्जः=दुर्गं निगम्य तिष्ठति, ततः खलु स कृष्णो

वह एकदिशा से दूसरी दिशा में भाग गया अथवा भागने में असमर्थ बन गया। इस के बाद तृतीयांशावशिष्ट सेना वाला होकर वह पद्मनाभराजा बल रहित हो गया, पर्याप्त सैन्य रहित हो गया एवं अन्तरिक शक्ति-उत्साह हीन हो गया। अतः वह पौरुष पराक्रम से रहित होने के कारण रणभूमि में ठहरने के योग्य नहीं रहा। अथवा प्राणों को धारण करने में भी असमर्थ बन गया। इसलिये वह वहां से शीघ्र बढ़ी उतावली से जहां अमरकंका नगरी थी वहां आ गया। (उवागच्छित्ता अमरकंकां रावहाणि अणुपविसइ, अणुपविसित्ता दाराइं पिहेइ पिहित्ता रोहसज्जे चिह्वइ, तएणं से कण्हे वासुदेवे, जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ) वहां आकर वह अमरकंका राजधानी में गया। जाकर उसने दरवाजोंको बंद करवा दिया। बंद करवाकर फिर वह अपने दुर्ग (किल्ला) की रक्षा करता हुआ वहां ठहरा। इसके बाद कृष्णवासुदेव

गर्ध यावत् ते सेनानो लाग्ग अेक दिशा तरक्षथी णीअदिशा तरक्ष नाशी गये। अथवा तो ते नाशी ज्वामां पणु असमर्थं थं गये। त्थारपणी त्रीण भाग जेटली सेना जेनी पासे रही छे अेवे। ते पद्मनाभ राज साव निर्णण थं गये, पर्याप्त सैन्य रहित थं गये अने आंतरिक शक्ति-उत्साह रहित थं गये। ते पौरुष पराक्रम वगरने थं ते रणभूमिमां टकी शकं तेम पणु रक्षो नहि अथवा तो ते प्राणोने धारणु करवामां पणु असमर्थं थं गये। अथी ते सत्तरे न्यां अमरकंका नगरी इती त्यां आवी गये।

(उवागच्छित्ता अमरकंकां रावहाणि अणुपविसइ, अणुपविसित्ता-दाराइं पिहेइ, पिहित्ता रोहसज्जे चिह्वइ, तएणं से कण्हे वासुदेवे, जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ)

त्यां आवीने ते अमरकंका राजधानीमां गये, त्यां जधने तेणु दरवाजोने अंध करावी दीधा. अंध करावीने ते पेताना दुर्गनी रक्षा करतां त्यां न्द्रोक्षये। त्थारपणी कृष्ण-वासुदेव न्यां ते अमरकंका नामे नगरी इती त्यां

वासुदेवो यत्रैवामकृङ्गा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य रथं स्थापयति, रथात् प्रत्यव-
रोहति प्रत्यवरुह्य, 'वेउव्वियसमुग्घाएणं' वैक्रियसमुद्घातेन वैक्रियशरीरं निर्मातुं
मात्मप्रदेशानां वहिर्नि सारणेन खलु 'समोहणइ' समुद्घातं करोति समुद्घन्ति
एकं महत् 'णरसीहरुवं' नरसिंहरूपं 'विउव्वइ' विकुर्वते दिव्यसामर्थ्येन
करोति विकुर्व्य महता २ शब्देन 'पाददहरयं' पाददहरकं=भूमौ चरणाघातं
करोति, ततः खलु स कृष्णेन वासुदेवेन महता २ शब्देन पादददरकेण=भूमौ
चरणाघातेन कृतेन सता अमरकङ्काराजधानी 'संभग्गपागारगोपुराट्टालयचरिय-
तोरणपल्हत्थियपवरभवणसिरिधरा' सम्भग्गनप्राकारगोपुराट्टालकचरिकातोरणपर्य-
स्तितपवरभवनश्रीगृहा=तत्र संभग्गानि-प्राकारश्च गोपुराणि च अट्टालकाश्च चरिका

जहांवह अमरकंका थी वहां गये (उवा०) वहां जाकर के (रहं ठवेइ,
ठवित्ता रहाओ पचोरुहइ, पचोरुहित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोह-
णइ) उन्होंने अपने रथको खड़ा किया-खड़ा करके फिर वे उससे नीचे
उतरे। नीचे उतर कर वैक्रिय समुद्घात किया। वैक्रियशरीरको निर्माण
करने के लिये जो आत्मप्रदेशों का बाहिर निकालना होता है-उसको
नम वैक्रिय समुद्घात है। (एगं महं णरसिहरुवं विउव्वइ विउव्वित्ता
महया २ सदेणं पाददहरएणं कएणं समाणेणं अमरकंका रायहाणी संभग्ग
पागारगोपुराट्टालचरियतोरणं पल्हत्थियपवरभवणसिरिधरा सरस्स-
रस्स धरणियले संन्निवइया) इस समुद्घातके द्वारा उन्होंने एक विशाल
काय नरसिंहरूप की विकुर्वणा की नरसिंहरूप की विकुर्वणा करके
अपनी अद्यंकर गर्जना से भूमि पर चरणों द्वारा आघात किया। इस
तरह गर्जना पूर्वक किये गये चरणाघात से अमरकंका राजधानी की

गया. (उवा०) त्या जेधने (रहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पचोरुहइ, पचोरुहित्ता
वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ) तेमणे पोताना रथने जेले राचये, जेले
राणीने तेजे तेमांथी नीचे उतर्यां. नीचे उतरिने तेमणे वैक्रिय समुद्घात क्यो.
वैक्रिय शरीरने अनाववा भाटे जे आत्मप्रदेशोने अडार डाढवाभां आवे छे ते
वैक्रिय समुद्घात कडेवाय छे.

(एगं महं णरसिहरुवं विउव्वइ, विउव्वित्ता महया २ सदेणं पाददहरएणं
कएणं समाणेणं अमरकंका रायहाणी संभग्गपागारगोपुराट्टालयचरियतोरणं
पल्हत्थियपवरभवणसिरिधरा सरस्सरस्स धरणियले संन्निवइया)

आ समुद्घात वडे तेमणे अेक विशाल काय नरसिंह अपनी विकुर्वणा
करी. नरसिंह अपनी विकुर्वणा करीने पोतानी लयंकर गर्जनाथी भूमि उपर
अरणेने आघात क्यो. आ रीते गर्जनापूर्वक करायेला अरणाघातथी अमर-

च तोरणानि च यस्यां सा तथा, तत्र गोपुराणि-प्रतोल्यः अट्टालकाः-प्राकारो-परिस्थान् विशेषाः, चरिका-नगरप्राकारान्तरेऽष्टहस्तोमार्गः । तथा-पर्यस्तितानि-सर्वतः क्षिप्तानि प्रवरभवनानि श्रीगृहाणि-भण्डागाराणि क्रीशागाराणि च यस्यां सा तथा, ततो द्विपदः कर्मधारयः । कृष्णवासुदेवेन भूमौ चरणाघातशब्देन अमर-कंकाराजधान्याः प्राकारगोपुरादिकं विध्वंसितमित्यर्थः, तथा-‘सरस्सरस्स’ अनुकरणशब्दोऽयम् निपतनक्रियाविशेषणं धरणितले संनिपतिता=अमरकंकां राजधानी सरस्सरस्सेति शब्दं कुर्वाणा भूमौ पतितेत्यर्थः । ततः खलु स पद्मनाभो राजा अमरकंकां राजधानीं संभग्नप्राकारादिकां यावत्-धरणितले संनिपतितां दृष्ट्वा भीतः त्रस्तः, उद्विग्नः, संजातभयः, द्रौपद्या देव्या शरणमुपैति प्राप्नोति, ततः खलु सा द्रौपदी देवी पद्मनाभं राजानमेवमवादीत्-किं खलु त्वं हे देवानु-प्रिय ! न जानासि कृष्णस्य वासुदेवस्योत्तमपुरुषस्य त्रिप्रियं कुर्वन् मामिह अत्र

गलियों को अटारियों को, चरिकाओं को, श्री गृहों को कोशागारों को श्री कृष्ण ने ध्वंस कर दिया। तथा वह अमरकंका राजधानी भी सरसर शब्द करती हुई उस गर्जना पूर्वक किये गये चरणाघात से जमीन पर गिर पड़ी। (तएणं से पउमणांभे राया, अमरकंका रायहारिं संभग्न-जाव पासित्ता, भीए दोवईए देवीए सरणं उवेइ) तब पद्मनाभ राजा अमरकंका राजधानी को प्राकार गोपुर आदि की ध्वस्त अवस्थावाली देखकर अत्यन्त भीत हुआ त्रस्त हुआ, उद्विग्न हुआ। और संजात-भय संपन्न होकर द्रौपदी देवी की शरण में पहुँचा। (तएणं सा दोवई देवी, पउमनाभं रायं एवं वयासी) तब उस द्रौपदी देवी ने पद्मनाभ राजा से इस प्रकार कहा- (किण्णं तुमं देवाणुप्पिया ! न जानासि कण्ह-

डंठा राजधानीनी शेरिओने, अटारीओने, चरिकाओने, श्रीगृहोने, कोशा-गारोने श्रीकृष्णे नए डरी नाय्या तेमज्जे ते अमरकंका राजधानी पणु सरसर शब्द करती गर्जनापूर्वक करवामां आवेला चरणाघातथी जमीनहोस्त थर्ध गध.

(तएणं से पउमणांभे राया, अमरकंका रायहारिं संभग्न जाव पासित्ता, भीए दोवईए देवीए सरणं उवेइ)

पद्मनाभ राजा अमरकंका राजधानीना प्राकार, गोपुर वगेरेना विनाश लेधने भूण ज लयणीत थर्ध गयो, त्रस्त थर्ध गयो तेमज्जे उद्विग्न थर्ध गयो अने संभतलय संपन्न थधने द्रौपदी देवीनी शरणे पडोंओ. (तएणं सा दोवई देवी पउमनाभं रायं एवं वयासी) त्यारे ते द्रौपदी देवीओ पद्मनाभ राजाने आ प्रभाणु डधु डे-

हव्यं-शीघ्रम् आनयसि-आनीतवानसि तत्-तस्मात्-‘ एवमवि गए ’ एवमपि गते-इत्थंममापहरणे कृतेऽपि, गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! स्नातः ‘ उल्लपडसाडए ’ आर्द्रपट्टसाटकः स्नानेनाऽऽर्द्रीकृतोत्तरीयपरिधानवस्त्रधारी ‘ अवचूलगवत्थणियत्थे ’ अवचूलकवस्त्रणियत्थः=अवचूलकम्-अधोमुखं नीचैर्लम्बमानं चूलं-वस्त्राञ्चलं-वस्त्रप्राप्तं यथा भवति तथा ‘ णियत्थं ’ परिहितं वस्त्रं येन स तथा-स्त्रीणां परिधानमिव चरणपर्यन्तलम्बितवस्त्रान्तं यथास्यात्तथा परिहितवस्त्र इत्यर्थः । ‘ अंतेउरपरियालसंपरिवुडे ’ अन्तःपुरपरिवारसंपरिवृतः=स्त्री परिवारेण सहितः, ‘ अग्गाइं ’ अश्याणि वराणि रत्नानि गृहीत्वा मां पुगतः ‘ काउं ’ कृत्वा कृष्णं

रस वा सुदेवस्स उत्तमपुरिसस्स विप्पियं करे माणे ममं इह हव्वमाणेसि) हे देवानुप्रिय ! क्या तुम उत्तम पुरुष कृष्णवासुदेव को नहीं जानते हो जो उनको अनिष्ट कर तुम सुझे यहां ले आये हो । (तं एवमविगए गच्छहणं तुमं देवाणुप्पिया ! णहाए उल्लपडसाडए अवचूलगवत्थणियत्थे अंतेउरपरियालसंपरिवुडे, अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय, ममं पुरओ, काउं कण्हं वासुदेवं करयलपायपडिए सरणं उवेहि) खैर अब इस बात को जाने दो-हे देवानुप्रिय ! तुम स्नान करो, और गीले वस्त्र पहिने हुए ही श्री कृष्णवासुदेव की शरण में जाओ । जाते समय तुम स्त्रियों के परिधान के समान चरण पर्यन्त लटकते हुए वस्त्र पहिनकर जाना । अकेले मत जाना किन्तु अपने अंतःपुर की समस्त स्त्रियों को साथ में ले जाना । रीते हाथ भी मत जाना किन्तु भेट निमित्त वेश कीमती रत्नों को लेकर और सुझे आगे करके चलना ।

(किष्णं तुमं देवाणुप्पिया ! न जाणासि कण्हस्स वासुदेवस्स उत्तमपुरिसस्स विप्पियं करेमाणे ममं इह हव्वमाणेसि)

हे देवानुप्रिय ! शुं तमे उत्तम पुरुष कृष्ण-वासुदेवने ओणभता नथी. मने अहीं लावीने तमे तेमनुं न अनिष्ट करुं छे.

(तं एवमविगए गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! णहाए उल्लपडसाडए अवचूलगवत्थणियत्थे अंतेउरपरियालसंपरिवुडे, अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय, ममं पुरतो, काउं कण्हं वासुदेवं करयलपायपडिए सरणं उवेहि)

जेर, छोडा ओ वातने. हे देवानुप्रिय ! तमे हुवे स्नान करे. अने बीना वस्त्रोथी न श्रीकृष्ण वासुदेवनी शरणुमां नओ. नती वभते तमे स्त्रीओना परिधान (अशुध्या) नी नेमन पग सुधी लटकता वसो पडेरने. तमे अकला नता नडि परंतु रणुवासनी अधी स्त्रीओने साथे लधने नने. तमे भावी हाथे तेमनी पासे नता नडि पणु कंधंके लेट स्वइप किमती वस्त्रोने लधने

वासुदेवं ' करयलपायपडिए ' करतलपादपतितः—संयोजितकरतलद्वयः, पादयोः पतितः सन् शरणं उपैहि—त्रायस्वमामितिषदन् उपगतो भवेत्थर्थः । हे देवानु-प्रिय । ' पणिवइयवच्छला ' प्रणिपतितवत्सला—चरणोपरिनिपतितानां वत्सलाः स्नेहवन्तः खलु उत्तमपुरुषाः भवन्ति प्रणाममात्रेण महापुरुषाः प्रसीदन्तीत्यर्थः । ततस्तदनन्तरं स पद्मनाभो राजा द्रौपद्या देव्या एतमर्थं=उक्तकथनरूपमर्थं प्रति-श्रुगोति—स्वीकरोति, प्रतिश्रुत्य स्नातो यावत् शरणमुपैति द्रौपदीवचनमनुसृत्य पद्मनाभो राजा कृष्णवासुदेवस्य शरणमुपगत इत्यर्थः । उपेत्य करतलपरिगृहीत-दशनखं शिर आवर्त मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अत्रादीद्=दृष्ट्वा

वहाँ पहुँच कर तुम दोनों हाथ जोड़ कर उनके चरणों में गिर जाना (पणिवइयवच्छला णं देवाणुप्पिया उत्तमपुरिसा तएणं से पउमनाभे दोवइए देवोए एयमहं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता ण्हाए जाव सरणं उवेइ, उवित्ता, करयल०एवं वयासी दिट्ठाणं देवाणुप्पियाणं इड्डी, जाव परक्कमे तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ।) हे देवाणुप्रिय । उत्तम पुरुष जो हुआ करते हैं वे प्रणिपतितवत्सल हुआ करते हैं—प्रणाममात्रसे महापुरुष प्रसन्न हो जाया करते हैं—अर्थात् नमन करनेवालेको वे नहीं मारते तब पद्मनाभ राजाने द्रौपदी देवीके इस शिक्षाप्रद कथनरूप अर्थको स्वीकार कर लिया । स्वीकार कर बादमें उसने स्नान किया, यावत् वह द्रौपदीके कहे अनुसार कृष्णवासुदेव की शरणमें पहुँच गया । शरण में पहुँच कर उसने अपने दोनों हाथों को जोड़कर अंजलि बनाई और आदक्षिण प्रदक्षिण करके उसे शिरपर रखा । फिर इस प्रकार बोला—आप देवानुप्रियकी मैंने ऋद्धि

तेमन्न मने आगण राणीने आलणे. त्यां पडोंचीने तमे णंने हाथ नेडीने तेमना पणे पडणे.

(पणिवइय वच्छलाणं देवाणुप्पिया उत्तमपुरिसा, तएणं से पउमनाभे दोवइए देवोए एयमहं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता ण्हाए जाव सरणं उवेइ, उवित्ता करयल० एव वयासी, दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं इड्डी जाव परक्कमे तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ।)

हे देवानुप्रिय । उत्तम पुरुषो तेमनी सामे विनम्र थयेला भाषुसेा प्रत्ये ओकदम वत्सल थर्ष लय छे. इत्त नमस्कार करवाथीज तेओ प्रसन्न थर्ष लय छे. आ णधुं सांलणीने पद्मनाभ रान्तये द्रौपदीना आ शिक्षाप्रद कथन इय अर्थने स्वीकारी लीयो. स्वीकार करीने तेणे स्नान क्युं यावत् ते द्रौपदीना कथा सुणथ व कृष्ण-वासुदेवनी शरणुमां गयो. शरणुमां जधने तेणे चोताना णने हाथ नेडीने अंजलि णनावी अने आदक्षिण प्रदक्षिणा करीने तेना भाथा उपर भूडी अने त्यारणाद ते आ प्रभाषे कडेवा लाग्ये हे-देवानुप्रिय । तभारी

खलु देवानुप्रियाणाम् ऋद्धिर्यावत् पराक्रमः—तत्=तस्मात् क्षमयामि खलु हे देवानुप्रियाः ! यावत् क्षमन्तु खलु यावत् नाहं भूयो भूयः एवं करणतया=पुनरेवं न करिष्यामि, इति कृत्वा—इत्युक्त्वा—‘ पंजलिबुडे ’ प्राञ्जलिपुटः—संयोजित—करतलद्वयः पादपतितः कृष्णस्य वासुदेवस्य द्रौपदीं ‘ साहत्थि ’ स्वहस्तेन, उपनयति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः पद्मनाभमेवमवादीत्—हं भोः ! पद्मनाभ ! अप्रार्थितप्रार्थित !—हे सरणवाञ्छक ! ४ किं खलु त्वं न जानासि मम भगिणीं द्रौपदीं देवीमिहहव्यमानयन्, ‘ त ’ तत्—तस्मात् ‘ एवमवि गए ’ एवमपिगते अनेन प्रकारेण शरणं प्राप्ते सति, नास्ति ते तत्र मद्भयमिदानीमिति कृत्वा प्रतिविसर्जयति । प्रतिविसृज्य द्रौपदीं देवीं गृह्णाति, गृहीत्वा रथं दूरोहति=आरोहयति

देखली, यावत् पराक्रम देख लिया । हे देवानुप्रिय ! मैं अपने अपराध की क्षमा मांगता हूँ । (जाव खमंतु) यावत् आप मुझे क्षमा दें । (णं जाव णा हं भुज्जो २ एवं करणाए) अब मैं पुनः ऐसा नहीं करूंगा । (त्ति कट्टु पंजलिबुडे पायवडिए कणहस्स वासुदेवस्स दोवइं देविं साहत्थि उवणेइ) इस प्रकार कहकर वह दोनों हाथ जोड़ उन कृष्णवासुदेव के पैरों पर गिर पड़ा और अपने हाथ से ही उसने फिर उनके लिये द्रौपदी सौंपदी । (तएणं से कण्हे वासुदेवे पउमणाभं एवं वयासी—हं भो ! पउमणाभा ! अपत्थियपत्थिया ४ किण्णं तुमं ण जाणासि मम भगिणि दोवइं देविं इह हव्व माणमाणे तं एवमविगए, णत्थि ते ममाहितो इयाणिं भयमत्थि त्ति कट्टु पउमणाभं पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जित्ता दोवइं देविं गिण्हइ, गिण्हित्ता रहं दुरुहेइ, दुरुहित्ता जेणेव

मे' ऋद्धि लेध दीधी छे, यावत् तमाइ पराक्रम पणु मे' लेध दीधु छे. हे देवानुप्रिय ! हुं मारा अपराध भदल क्षमा मांशु छुं (जाव खमंतु) यावत् तमे भने क्षमा करे. (णं जाव णाहं भुज्जो २ एवं करणाए) उवे करी हुं आबुं कदापि नहिं करे (त्ति कट्टु पंजलिबुडे पायवडिए कणहस्स वासुदेवस्स दोवइं देविं साहत्थि उवणेइ) आ प्रभाणु कळीने ते अने हाथ लेडीने कृष्ण—वासुदेवना पणेमां आणेटी गये अने तयारपछी तेणु चेताना हाथथीञ्च द्रौपदी तेभने सोंपी दीधी.

(तएणं से कण्हे वासुदेवे पउमणाभं एवं वयासी—हं भो ! पउमणाभा ! अपत्थियपत्थिया ४ किण्णं तुमं ण जाणासि मम भगिणिं दोवइं देविं इह, हव्व माणमाणे त एवमपि गए, णत्थि ते ममाहितो इयाणिं भयमत्थि त्ति कट्टु पउमणाभं पडिविसज्जेइ पडिविसज्जित्ता दोवइं देविं गिण्हइ, गिण्हित्ता रहं दुरुहेइ,

आरोह्य यत्रैव पञ्च पाण्डवास्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पञ्चानां पाण्डवानां द्रौपदीं देवीं 'साहसि' स्वहस्तेन, उपनयति=ददाति । ततः खलु स कृष्णः पञ्चभिः पाण्डवैः मार्धमात्मपष्ठः पद्भिरथैर्लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन यत्रैव जम्बूद्वीपो द्वीपः, यत्रैव भारतं वर्षं तत्रैव प्राधारयद् गमनाय=गन्तुं प्रवृत्तः ॥ सू० २९॥

पंच पंडवे तेजेव उवागच्छद्, उवागच्छित्ता पंचणहं पंडवाणं दोवहं देवि साहसि उवणेह) तव कृष्णवासुदेव ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा अरे ओ पद्मनाभ ! तुम इस तरह से अकाल में ही मरण के अधिलाषी क्यों बने षक्यातुझे यह पता नहीं था कि द्रौपदी मेरी बहिन है । क्यों तू इस को यहाँ ले आया ! खैर-जब तू इस रूप में मेरी शरण में आचुका है-तो अब तुझे किसी भी प्रकार का मेरी तरफ से भय नहीं रहा-ऐसा कहकर कृष्णवासुदेव ने उसे विसर्जित कर दिया-अपने स्थान पर उसे जाने की आज्ञा देदी-। बाद में द्रौपदी को साथ में लिया और लेकर वे रथ पर आरूढ हुए । आरूढ होकर फिर वे, वहाँ आये-जहाँ पांचों पांडव थे वहाँ आकर उन्होंने ने द्रौपदी को अपने हाथों से पांचों पांडवों के लुपुर्द कर दिया । (तएणं कण्हे पंचेहिं पंडवेहिं सद्धि अप्प छट्ठे छहिं रहेहिं लवणसमुदं मज्झं मज्जेणं जेणेव जंबूद्वीवे दीवे जेणेव भारहे वासे तेजेव पहारेत्थ गमणाए) इसके बाद वे कृष्णवासुदेव पांचों पांडवों के साथ आत्मषष्ठ होकर छहों रथों को ले लवण समुद्र से बीचों

दुरुहित्ता जेणेव पंच पंडवे तेजेव उवागच्छद् उवागच्छित्ता पंचणहं पंडवाणं दोवहं देवि साहसि उवणेह)

त्यारे कृष्ण-वासुदेवे पद्मनाभने आ प्रभाणे क्खुं के अरे ओ ! पद्मनाभ ! तमे आ प्रभाणे असमयमां न मरणना असिलापी केम अनि गया छे, तुं तमने अप्पर नडाती के द्रौपदी भारी जडेन छे तुं अने अडीं शा माटे लध आव्यो ? जेर, तुं न्यारे आ स्थितिमां भारी पासे आव्यो छे तो डवे तारे भारा तरक्थी केध पणु नतने लय राभवो जेधअे नडि. आम कडीने कृष्ण वासुदेवे तेने विदाय कर्यो त्यारपणी द्रौपदीने साथे लधने तेओ रथ उपर सवार थया. सवार थधने तेओ न्यां पांचे पांडवो डता त्यां आव्या. त्यां आवीने तेमणे पोताना डधथी द्रौपदीने पांचे पांडवोने सोंपी दीधी.

(तएणं से कण्हे पंचेहिं पंडवेहिं सद्धि अप्प छट्ठे छहिं रहेहिं लवणसमुदं मज्झं मज्जेणं जेणेव जंबूद्वीवे दीवे जेणेव भारहेवासे तेजेव पहारेत्थ गमणाए) त्यारआड ते कृष्ण-वासुदेव पांचे पांडवोनी साथे आत्मषष्ठ थधने छअे

मूलम्-तेणं कालेणं तेणं समएणं धायइसंडे दीवे पुरत्थि-
मिद्धे भारहे वासे चंपाणामं णयरी होत्था, पुण्णभदे चेइए, तत्थ
णं चंपाए नयरीए कविले णामं वासुदेवे राया होत्था, महिया
हिमवंत० वण्णओ, तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए
अरहा चंपाए पुण्णभदे समोसढे, कपिले वासुदेवे धम्मं सुणेइ
तएणं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयस्स अरहओ धम्मं सुणे-
माणे कण्हस्स वासुदेवस्स संखसहं सुणेइ, तएणं तस्स कवि-
लस्स वासुदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था - किं
मण्णे धायइसंडे दीवे भारहे वासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे ?
जस्स णं अयं संखसहे ममंपिव मुहवायपूरिए वीयं भवइ, तएणं
मुणिसुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी-से णूणं ते
कविला वासुदेवा ! मम अंतिए धम्मं णिसामेमाणस्स संखसहं
आकण्णिन्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए किं मन्ने जाव वीयं भवइ, से
णूणं कविला वासुदेवा ! अयमट्ठे समट्ठे ? हंता ! अत्थि, नो
कविला ! एवं भूयं वाइ जन्नं एगे खत्ते एगे जुगे समए दुवे
अरहंता वा चक्खवट्ठी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उप्पज्जिसु
उप्पज्जित्ति उप्पज्जिजस्संति वा, एवं खलु वासुदेवा ! जंबूद्वीवाओ
भारहाओ वासाओ हत्थिणाउरणयराओ पंडुस्स रण्णो पुव्व-

बीच हो जहां जंबूद्वीप नाम का द्वीप, जहां भरतक्षेत्र नाम का क्षेत्र था
उस ओर चल दिये ॥ सू० २९ ॥

रथाने लधने लवणु समुद्रनी वरुचे थधने न्यां जंबूद्वीप नामे द्वीप, अने
तेमां पणु न्यां भारतवर्ष नामे क्षेत्रे हंतुं ते तरइ रवाना थया. ॥ सूत्र २९ ॥

संगइएणं देवेणं अमरकंकाणयरिं साहरिया, तएणं से कणहे
वासुदेवे पंचहि पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छे छहिं रहेहि अमरकं
रायहाणिं दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए, तएणं तस्स कणहस्स
वासुदेवस्स पउमणाभेणं रण्णा सद्धिं संगामे संगामेमाणस्स
अयं संखसहे तव मुहवाया० इव वीइं भवइ, तएणं से कविले
वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदइए एवं वयासी-गच्छामि णं अहं
भंते ! कणहे वासुदेवे उत्तमपुरिसं सरिसपुरिसं पासामि, तएणं
मुणिसुव्वए अरहा कविले वासुदेवे एवं वयासी - नो खलु
देवाणुप्पिया ! एवं भूयं वाइ जणं अरहंतो वा अरहंतं पासइ
चक्कवट्ठी वा चक्कवट्ठिं पासइ बलदेवा वा बलदेवं पासइ वासु-
देवो वा वासुदेवं पासइ, तहविय णं तुमं कणहस्स वासुदेवस्स
लवणसमुदं मज्झंमज्जेणं वीइवयमाणस्स सेयापीयाइं धयग्गाइं
पासिहिंसि, तएणं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदइ नमंसइ
वंदित्ता नमंसित्ता हत्थिखंधं दुरुहइ दुरुहित्ता सिग्घं जेणेव वेला-
उले तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता कणहस्स वासुदेवस्स लवण-
समुदं मज्झंमज्जेणं वीइवयमाणस्स सेयापीयाइं धयग्गाइं पासइ
पासित्ता एवं वयइ-एसणं मम सरिसपुरिसे उत्तमपुरिसे कणहे वासु-
देवे लवणसमुदं मज्झं मज्जेणं वीइवयइत्तिकट्टु पंचजन्नं संखं
परासुसइ परामुसित्ता मुहवायपूरियं करेइ, तएणं से कणहे
वासुदेवे कविलस्स वासुदेवस्स संखसदं आयत्तेइ आयत्तित्ता
पंचजन्नं जाव पूरियं करेइ, तएणं दोवि वासुदेवा संखसदसा-

मायारिं करेइ, तएणं से कविले वासुदेवे जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अमरकंका रायहाणिं संभग्गतोरणं जाव पासइ पासित्ता पउमणाभं एवं वयासी—किन्नं देवाणुप्पिया ! एसा अमरकंका संभग्ग जाव सन्निवइया ?, तएणं से पउमणाहे कविलं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु सामी ! जंबूदीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ इहं हव्वमागम्म कणहेणं वासुदेवेणं तुब्भे परिभूए अमरकंका जाव सन्निवाडिया, तएणं से कविले वासुदेवे पउमणाहस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा पउमणाहं एवं वयासी हं भो ! पउमणाभा ! अपत्थियपत्थिया किन्नं तुमं न जाणसि मम सरिसपुरिसस्स कणहस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणे ?, आसुरुत्ते जाव पउमणाहं णिविसयं आणवेइ, पउमणाहस्स पुत्ते अमरकंका रायहाणीए महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ जाव पडिगए ॥ सू० ३० ॥

टीका—‘ तेणं कालेणं ’ इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये धातकीषण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्थे भारते वर्षे चम्पा नाम नगरी आसीत् । तस्या बहिर्भागे पूर्णभद्रं नाम चैत्यम्=उद्यानम्, आसीत् । तत्र=तस्यां खलु चम्पानगर्यां

‘ तेणं कालेणं तेणं समएणं ’ इत्यादि ॥

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस कालमें और उस समयमें (धातइसंडे दीवे, पुरत्थिमद्धे भारहेवासे चंपा णामं णयरी होत्था, पुण्णभद्दे चेइए) धातकी षड द्वीप मे पूर्व दिग्भागवर्ती भरत क्षेत्र में चंपा

‘ तेणं कालेणं तेणं समएणं ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले अने ते समये (धातइ स डे दीवे, पुरत्थिमद्धे भारहेवासे चंपा णामं णयरी होत्था, पुण्णभद्दे चेइए) धातकी षड द्वीपमां पूर्व दिग्भागवर्ती भरतक्षेत्रमां चंपा नगरी इती, तेमां पूर्णभद्र नामे उद्यान इतुं.

‘ कविले णामं’ कपिलो नाम वासुदेवो राजाऽऽसीत् ‘ महया हिमवंत० ’ वण्णओ ’ महाहिमवानित्यादि वर्णकः=वर्णनं पूर्वोक्तवद् बोध्यम् ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये मुनिसुव्रतोऽर्हन् चम्पायां नगर्यां पूर्णभद्रे नाम्नि चैत्ये समवसृतः । तस्य समीपे कपिलो नाम वासुदेवो धर्मं शृणोति । ततः खलु स कपिलो वासुदेवः मुनिसुव्रतस्यार्हतोऽन्तिके धर्मं शृण्वन् कृष्णस्य वासुदेवस्य शङ्खसदं शृणोति ततः खलु तस्य कपिलस्य वासुदेवस्य अयमेतद्रूपः=वक्ष्यमाणस्वरूपः, ‘ अञ्जत्थिए ’ आध्यात्मिकः=आत्मगतः संकल्पो=विचारः, यावद् समुद्रपद्यत-किम्-अन्यो धातकीपण्डे द्वीपे भारते वर्षे द्वितीयो वासुदेवः

नामकी नगरी थी। उसमें पूर्णभद्र नाम का उद्यान था। (तत्थणं चंपाए नयरीए कपिले नाम वासुदेवे राया होत्था, महया हिमवंत वण्णओ तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए अरहा, चंपाए पुण्णभदे समोसडे) उस चंपानगरीमें कपिल नाम के वासुदेव राज्य करते थे। ये महा हिमवान् पर्वत जैसे गुणोंसे पूर्ण थे। पहिले जैसा वर्णन राजाओंका भिन्न २ जगह किया गया है वैसा ही वर्णन इसका भी जानना चाहिये। उस काल और उस समय में मुनि सुव्रत तीर्थंकर चंपा नगरी में इस पूर्ण भद्र उद्यान में आये हुए थे (कविले वासुदेवे धम्मं सुणेइ, तएणं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयस्स अरहाओ धम्मं सुणेमाणे कण्हस्स वासुदेवस्स संखसदं सुणेइ, तएणं तस्स कविलस्स वासुदेवस्स इमेयाख्वे अञ्जत्थिए समुप्पज्जित्था-किं मण्णे धायइसंडे दीवे भारहे वासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे ? जस्स णं अयं संखसदे ममंपिव मुहवायपूरिए वीयं

(तत्थणं चंपाए नयरीए कपिले नाम वासुदेवे राया होत्था, महया हिमवंत वण्णओ, तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए अरहा, चंपाए पुण्णभदे समोसडे)

ते चंपा नगरीमां इपिद नामे वासुदेव राज् करता हुता. तेओ महा हिमवान् वगेरे नेवा मणवान हुता. पडेला बुदा बुदा राजओनुं ने प्रमाणे वरुण्ण इशामां आवुं छे ते प्रमाणे आ राजनु पशु वरुण्ण जाणी देवुं नेधओ ते डणे अने ते सभये मुनिसुव्रत तीर्थंकर चंपा नगरीमां ते पूरुण्णभद्र उद्यानमा पधार्या हुता.

(कविले वासुदेवे धम्मं सुणेइ, तएणं से कविले वासुदेवे मुणि सुव्वयस्स अरहाओ धम्मं सुणेमाणे, कण्हरस वासुदेवस्स संखसदं सुणेइ, तए णं तस्स कविलस्स वासुदेवस्स इमेयाख्वे अञ्जत्थिए समुप्पज्जित्था-किं मण्णे धायइसंडे दीवे भारहेवासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे ? जस्स णं अयं संखसदे ममं पिव मुहवाय-पूरिए वीयं भवइ)

समुत्पन्नः ? यस्य वासुदेवस्य खलु अयं शङ्खशब्दो ममेव मुखवातपूरितः—मद्वादित-
शङ्खध्वनिरिवेत्यर्थः, ' वीयं भवइ ' द्वितीयो भवति । ततः खलु मुनिसुव्रतोऽहं न
कपिलं वासुदेवम् एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अवादीत्—' से पूणं इत्यादि—' से '
नूनं ते तव हे कपिल वासुदेव ! ममान्तिके धर्मं 'णिसामेमाणस्स' निशामयतः=
शृण्वतः, शङ्खशब्दम् ' आकणित्ता ' आकर्ष्य=श्रुत्वा ' इमेयारूवे ' अयमेतद्रूपः
आध्यात्मिकः संकल्पो विचारः समुदपद्यत—किमन्यो वासुदेवः समुत्पन्नः, यस्यायं
शङ्खशब्दो यावद् द्वितीयो भवति ' से ' अथ नूनं हे कपिलवासुदेव ! अयमर्थः
समर्थः=किं सत्यः ? , कपिल वासुदेवः प्राह—हंता ! अत्थि इति हन्त ! हे प्रभो !
अयमर्थः सत्योऽस्ति । मुनिसुव्रतो भगवानाह—हे कपिल वासुदेव ! नो खलु एवम्=
ईदृशं, ' भूयं वा ' भूतं वा=अतीतं वा, भवद् वा=वर्तमानं वा भविष्यद् वा अना-
गतं वा कालत्रयेऽप्येवं न भवतीत्यर्थः, ' जन्नं ' यत् खलु एकस्मिन् क्षेत्रे, एक-

भवइ) उनके पास वे कपिल वासुदेव धर्मका उपदेश सुन रहे थे । सो उस
कपिल वासुदेवने मुनि सुव्रत प्रभुके पास धर्मका उपदेश सुनते हुए कृष्ण
वासुदेवकी शंखध्वनि सुनि । तब उस कपिल वासुदेवको इस प्रकार
आध्यात्मिक यावत् मनोगत विचारः उत्पन्न हुआ—क्या धातकी पंड नामके
द्वीपमें वर्तमान भरतक्षेत्र में कोई और दूसरा वासुदेव उत्पन्न हुआ है ?
कि जिसके शंखका यह शब्द मेरे द्वारा बजाये गये शंखके शब्द जैसा
हुआ है ? (तएणं मुणि सुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी—से पूणं
ते कविला वासुदेवा ! मम अंतिए धम्मं णिसामेमाणस्स संखसहं आक-
णित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए किं मण्णे जाव वीयं भवइ से पूणं कविला
वासुदेव ! अयमट्ठे समट्ठे ? हंता अत्थि, नो खलु कविला एयं भूयं वा ३ जन्नं

तेमनी पासे ते कपिल वासुदेव धर्मोपदेश सांखणी रक्षा उता. ते कपिल
वासुदेवे मुनिसुव्रत प्रभुनी पासे धर्मोपदेश स लणतां ७ कृष्णवासुदेवना शंभने
ध्वनि स लण्ये. त्तारे ते कपिल वासुदेवने आ लतने आध्यात्मिक यावत्
मनोगत संकल्प उत्पन्न थये के शु धातकी पंड नामना द्वीपमां विद्यमान
भरतक्षेत्रमां केठ थिले वासुदेव उत्पन्न थये छे ? केमके तेना शंभने आ
ध्वनि भारा वडे वगाडवामां आवेला शंभना ध्वनि जेवे ७ छे.

(तएणं मुणि सुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी—से पूणं ते कवि-
लावासुदेवा ! मम अंतिए धम्मं णिसामेमाणस्स संखसहं आकणित्ता इमेयारूवे
अज्झत्थिए किं मण्णे जाव वीयं भवइ, से पूणं कविला वासुदेवा ! अयमट्ठे
समट्ठे ? हंता, अत्थि, नो खलु कविला एयं भूयं वा ३ जन्नं एगखेत्ते एगे जुगे

स्मिन् युगे, एकस्मिन् समये द्वावर्हन्तौ वा चक्रवर्तिनौ वा बलदेवौ वा वासुदेवौ वा
'उप्पज्जिसु' उदपच्चेताम्, 'उपज्जिति' उत्पच्चेते 'उपज्जिस्संति' उत्पत्स्येते
वा, एवं खलु हे वासुदेव ! जम्बूद्वीपाद् भारताद् वर्षाद् हस्तिनापुरनगरात् पाण्डो
राज्ञः 'सुण्हा' स्तुपा=पुत्रवधुः, पञ्चानां पाण्डवानां भार्या द्रौपदी देवी तव पद्म

एगे खेत्ते एगे जुगे एगे समए दुवे अरहंता वा, चक्रवर्ती वा, बलदेवा वा,
वासुदेवा वा उप्पज्जिसु, उप्पज्जिति, उप्पज्जिस्संति वा,) तव मुनिसुव्रत
तीर्थंकर प्रभुने उन कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा हे कपिल वासु-
देव ! मेरे पास धर्म को सुनते समय तुम्हें शंख शब्द श्रवण कर इस
प्रकार का यह आध्यात्मिक संकल्प-विचार उत्पन्न हुआ है, कि क्या
कोई दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है-जिसके शंख का शब्द मुझे
सुनाई दिया है। कहो कपिल वासुदेव ! यही बात है न ? तव कपिल
वासुदेवने कहा-हां प्रभो ! यही बात है-ऐसा ही विचार उत्पन्न हुआ
है-तव मुनिसुव्रत भगवान्ने कपिल वासुदेवसे कहा-हे कपिल वासुदेव
ऐसी बात न भूतकाल में हुई है और न भविष्यकाल में होगी-न वर्त-
मान में होती है कि जो एक ही क्षेत्रमें एक ही युगमें एक ही समय में
दो अर्हत प्रभु, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव, दो वासुदेव, उत्पन्न हो रहे हों,
उत्पन्न हुए हों और आगे उत्पन्न हों ! (एवं खलु वासुदेवा ! जंबूद्वीवा-
ओ भारद्वाओ वासाओ हत्थिणाउरणयाओ, पंडुस्सरणो सुण्हा
एगे समए दुवे अरहंता वा चक्रवर्ती वा, वासुदेवा वा उप्पज्जिसु, उप्पज्जिति,
उप्पज्जिस्संति वा)

त्यारे मुनिसुव्रत तीर्थंकर प्रभुणे ते कपिल वासुदेवने आ प्रभाणे कळुं
डे डे कपिलवासुदेव भारी पासे धर्मने सांलणतां शंभ-शब्द सांलणीने तमने
आ नतने आध्यात्मिक संकल्प-विचार उत्पन्न थये छे डे, शुं कोठं धीने
वासुदेव उत्पन्न थये छे-जेना शंभने ध्वनि मने सांलणार्थ रह्यो छे. जोडो,
कपिल वासुदेवे कळुं डे डा, प्रभु ! जे न वात छे. भारा मनमां जे न नतने
विचार उद्भव्यो छे. त्यारे मुनिसुव्रत लगवाने कपिल वासुदेवने कळुं डे डे
कपिल वासुदेव ! आवी वात लूतकाणमां थर्ध नथी अने लविष्यकाणमां थशे
नडि अने वर्तमानकाणमां सांभवी शडे तेम पणु नथी डे जे जे जे क्षेत्रमां,
जेक न युगमां, जेक न समयमां जे अर्द्धं त प्रभु, जे चक्रवर्ती, जे बलदेव, जे वासु-
देव उत्पन्न थया होय, उत्पन्न थय रह्या होय अने आगण उत्पन्न थवाना होय.

(एवं खलु वासुदेवा ! जंबू द्वीवाओ भारद्वाओ वासाओ हत्थिणाउरणया-
राओ, पंडुस्सरणो, सुण्हा पंचहं पंडवाणं भारिया दीवई देवी तव पउमनाभस्स

नाभस्य राज्ञः पूर्वसंगतिकेन देवेनामरकङ्कानगरीं ' साहरिया ' संहता=आनीता, ततः खलु सः कृष्णो वासुदेवः पञ्चभिः पाण्डवैः सधं आत्मषष्ठः पङ्भीरथैरमरकंकां राजधानीं द्रौपद्या देव्याः ' कूवं ' देशी शब्दोयं प्रत्यानयनार्थकः प्रत्यानयनं कर्तुं हव्यमागतः, ततः खलु तस्य कृष्णस्य वासुदेवस्य पद्मनाभेन राज्ञा सार्धं ' संगामं ' संग्रामं=युद्धं ' संगामेमाणस्स ' युध्यत, अयं शब्दशब्दस्तवमुखवातपूरित इव द्वितीयो भवति । ततः खलु स कपिलो वासुदेवो मुनिसुव्रतं वन्दते, नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्-गच्छामि खलु अहं हे

पंचणहं पंडवाणं भारिया दोवईदेवी तव पउमनाभस्स रण्णो पुव्वसंगइएणं देवेणं अमरकंका नयरिं साहरिया, तएणं से कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छे छहिं रहेहिं अमरकंकां रायहाणिं दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए, तएणं तस्स कण्णस्स वासुदेवस्स पउमणाभेणं रण्णा सद्धिं संगामं, संगामेमाणस्स अयं संखसद्दे तव मुहवाया० इव वीयं भवइ) सुनो बात इस प्रकार है जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में वर्तमान हस्तिनापुर नगर से पांडुराजा की पुत्रवधु पांच पांडवों की पत्नी द्रौपदी देवी को तुम्हारे पद्मनाभ राजा का पूर्व भवीय मित्र कोई देव हरण कर अमरकंका नगरी में ले आया । तब भरत क्षेत्र के वासुदेव कृष्ण पांच पांडवों के साथ आत्मषष्ठ होकर छह रथों से उस अमरकंका नगरी में द्रौपदी देवी को वापिस ले जाने के लिये बहुत जल्दी आये । तब उन कृष्ण वासुदेव के, पद्मनाभ राजा के साथ युद्ध करते समय शंख का यह शब्द तुम्हारे शंख के शब्द जैसा हुआ है । (तएणं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदंति, २ एवं वयासी गच्छामि णं

रण्णो पुव्वसंगइएणं देवेणं अमरकंका नयरिं साहरिया तएणं से कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पच्छे छहिं रहेहिं अमरकंकां रायहाणिं दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए, तएणं तस्स कण्णस्स वासुदेवस्स पउमणाभेणं रण्णा सद्धिं संगामं, संगामे माणस्स अयं संखसद्दे तव मुहवाया० इव वीयं भवइ)

सांभणो, विगत येवी छे के जंबूद्वीपना भरतक्षेत्रमां विद्यमान इस्तिनापुर नगरथी पांडुराजनी पुत्रवधु पांचे पांडवोनी पत्नी द्रौपदी देवीने तभारा पद्मनाभ राजाना पूर्वभवनेो मित्र कोई देव इरीने अमरकंका नगरीमां लई आयेो इतो. त्थारपछी भरतक्षेत्रना वासुदेव कृष्ण पांचे पांडवोनी साथे आत्मषष्ठ थअने छ रथेो उपर सवार थया अने सत्वरे द्रौपदी देवीने पाछां भेणववा भाटे त्यां पछोंथी गया पद्मनाभ राजनी साथे युद्ध करतां कृष्णवासुदेवे जे शंखध्वनि कयो छे ते तभारा शंखना ध्वनि जेवो छे.

(तएणं से कविले वासुदेवे मुणि सुव्वयं वंदंति, २ एवं वयासी, गच्छामि

भदन्त ! कृष्णं वासुदेवमुत्तमपुरुषं पश्यामि ततः खलु मुनिसुव्रतोऽर्हन् कपिलं वासुदेवम् एवमवादीत्—नो खलु हे देवानुप्रिय ! एवं भूतं वा, भवति वा भविष्यति वा यत् खलु अर्हन् अर्हन्तं पश्यति, चक्रवर्ती वा चक्रवर्तिनं पश्यति बलदेवो वा बलदेवं पश्यति वासुदेवो वा वासुदेवं पश्यति, तथा ऽपि च खलु त्वं

अह भन्ते ! कण्हं वासुदेवं उत्तमपुरिसं सरिसपुरिसं पासामि) इस प्रकार सुनकर उस कपिल वासुदेव ने मुनि सुव्रत प्रभु को वंदना की—नमस्कार किया वंदना नमस्कार करके फिर उनसे इस प्रकार कहा—हे भदन्त ! मैं जाता हूँ और उत्तम पुरुष उन कृष्णवासुदेव से कि जो मेरे जैसे पुरुष हैं—वासुदेव पद के धारक हैं—जाकर मिलता हूँ । (तएणं मुणि सुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी) तब मुनि सुव्रत प्रभु ने उस कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा—(नो खलु देवाणुप्पिया ! एवं भूयं वा ६ जण्णं अरहंतो, वा अरहंतं पासइ, चक्रवट्टी वा चक्रवट्टिं पासइ, बलदेवो वा, बलदेवं पासइ, वासुदेवो वा वासुदेवं पासइ) हे देवानुप्रिय ! ऐसी बात न हुई है, वर्तमानमें न होती है और न भविष्यत्काल में होनेवाली है कि जो एक तीर्थंकर दूसरे तीर्थंकर से मिलें, एक चक्रवर्ती दूसरे चक्रवर्ती से मिले, एक बलदेव दूसरे बलदेव से मिले, एक वासुदेव दूसरे वासुदेव से मिले । ऐसा सिद्धान्त का नियम है कि एक तीर्थंकर का दूसरे तीर्थंकर से कभी भी मिलाप नहीं होता है ।

णं अहभन्ते ! कण्हं वासुदेवं उत्तमपुरिसं सरिसपुरिसं पासामि)

आ प्रभाणुे सांलणीने ते कपिलवासुदेवे मुनिसुव्रत प्रभुने वंदन तेमण्णं नमन कर्यां. वंदन अने नमन करीने तेमनी आमे आ प्रभाणुे विनंती अस्तां कधुं के डे लहतं ! इ उठि छुं अने जधने मारा जेवा ते उत्तम पुरुष कृष्ण वासुदेव के जेओ वासुदेव पदने शोभावे छे—तेमने मणुं छुं. (तएणं मुणि सुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी) त्पारे मुनिसुव्रत प्रभुओ ते कपिल वासुदेवने आ प्रभाणुे कधुं के—

(नो खलु देवाणुप्पिया ! एवं भूयं वा ३ जण्णं अरहंतो वा अरहंतं पासइ, चक्रवट्टी वा चक्रवट्टिं पासइ, बलदेवो वा, बलदेवं पासइ, वासुदेवो वा वासुदेवं पासइ)

हे देवानुप्रिय ! जेवी बात केछि पणु दिवसे संलवी नथी, वर्तमानमां पणु संलवी शके तेम नथी अने भविष्यकाणमां पणु संलवी शकसे नहि के जेछ तीर्थंकर भील तीर्थंकरने मजे, जेक चक्रवर्ती भील चक्रवर्तीने मजे, जेक जणदेव भील जणदेवने मजे. आ जतने सिद्धान्तने नियम छे के जेक

कृष्णस्य वासुदेवस्य लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजतः श्वेतपीतानि-ध्वजा-
ग्राणि ' पासिहिसि ' द्रक्ष्यसि । ततः खलु स कपिलो वासुदेवो मुनि सुव्रतं वन्दते,
नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा हस्तिस्कन्धं दूरोहति=आरोहति आरुह्य शीघ्रं २
यत्रैव ' वेलाउले ' वेलाकूलं=समुद्रवेला तटं वर्तते, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य
कृष्णस्य वासुदेवस्य लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन ' वीङ्चयमाणस्स ' व्यतिव्रजतः=
गच्छतः, श्वेतपीतानि ध्वजाग्राणि पश्यति, दृष्ट्वा एवं वदति एसणं मम सदृशपुरुषः
उत्तमपुरुषः कृष्णो वासुदेवो लवणसमुद्रस्य मध्यमध्येन ' वीङ्चयइ ' व्यतिव्रजति=
गच्छति, इति कृत्वा पाञ्चजन्यं शङ्खं परामृशति=गृह्णाति, गृहीत्वा मुखत्रातपूरितं
करोति=कपिलवासुदेवः स्वशङ्खं वादयति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कपि-

चक्रवर्ती का दूसरे और चक्रवर्ती से बलदेव का दूसरे और किसी बल-
देव से, वासुदेव का दूसरे और वासुदेव से कभी भी मिलाप नहीं होता
है । (तह वि य णं तुमं कणहस्स वासुदेवस्स लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं
वीङ्चयमाणस्स सेया पीयाइं धयग्गाइं पासिहिसि) हां, इतना हो सकता
हैं कि जब वे कृष्णवासुदेव लवणसमुद्रके बीचसे होकर जा रहे हों तब
तु मउनकी श्वेत पीत ध्वजाओंके अग्र भाग को देख सकते हा । (तएणं
से कविळे वासुदेवेमुणिसुव्वयं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता, हत्थि-
खंधं दुरुहइ, दुरुहित्ता सिग्धं २ जेणेव वेलाउले, तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता कणहस्स वासुदेवस्स लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं वीङ्चयमाणस्स
सेयापीयाहिं धयग्गाइं पासइ, पासित्ता एवं वयइ-एसणं मम सरिसपुरिसे
उत्तमपुरिसे कण्हे वासुदेवे लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं वीङ्चयइत्ति कट्टु

तीर्थं करनी साथे भील तीर्थं करने। मेणाप केध पणु संजेगेमां थतो नथी।
अेक अकवर्तीने। भील अकवर्तीनी साथे, अेक अणदेवने। भील अणदेवनी साथे
तेमअ अेक वासुदेवने। भील केध पणु वासुदेवनी साथे कहापि मेणाप थतो
नथी। (तह वि य णं तुमं कणहस्स वासुदेवस्स लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं वीङ्
चयमाणस्स सेयापीयाइं धयग्गाइं पासिहिसि) डा, अेम थध शके छे के न्यारे
ते कृष्णवासुदेव लवण समुद्रनी वच्चे थधने पसार थना डाय त्यारे तमे तेमनी
सइइ, पीणी धवलअेना अग्रभागने जेध शके छे। (तएणं से)

कविळे वासुदेवे मुणिसुव्वयं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता हत्थिखंधं दुरुहइ,
दुरुहित्ता सिग्धं २ जेणेव वेलाउले, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कणहस्स
वासुदेवस्स लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं वीङ्चयमाणस्स सेयापीयाहिं धयग्गाइं
पासइ, पासित्ता एवं वयइ, एसणं मम सरिसपुरिसे उत्तमपुरिसे कण्हे वासुदेवे

लस्य वासुदेवस्य शङ्खशब्दम् ' आयन्नेइ ' आकर्णयति=शृणोति, आकर्ण्य पाञ्च-
जन्यं यावत् मुखवातपूरितं करोति=कृष्णो वासुदेवः स्वकीयं शङ्खं वादयति, ततः
खलु द्वावपि वासुदेवौ ' संखसदसामायारि ' शङ्खशब्दसामाचारि=शङ्खशब्देन
परस्परमिलनं कुरुतः ।

पंचघनं संखं परामुसइ, परामुसित्ता मुहवायपूरियं करेइ) इस प्रकार
प्रभु का आदेश सुनकर उन कपिलवासुदेव ने उन प्रभु मुनिसुव्रत
भगवंत को वंदना की, नमस्कार किया । वंदना नमस्कार करके फिर वे
अपने प्रधान हस्ती पर आरूढ हुए । और आरूढ होकर शीघ्र जहाँ
लवणसमुद्र का वेलातट था -वहाँ पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने लवण-
समुद्र के बीच से होकर जाते हुए कृष्णवासुदेव की श्वेत पीत ध्वजाओं
के अग्रभाग को देखा देखकर तब मनमें विचार-क्रिया ये ही मेरे जैसे
उत्तम पुरुष कृष्णवासुदेव लवणसमुद्र के बीच से होकर जा रहे हैं-
ऐसा विचार कर उन्होंने ने अपने पांचजन्य शंख को उठाया और उठा-
कर उसे अपने मुख की वायु से पूरित किया (तएणं से कण्हे वासुदेवे
कविलस्स वासुदेवस्स संखसदं आयन्नेइ, आयन्नित्ता, पंचजन्ने, जाव
पूरियं करेइ, तएणं दो वि वासुदेवा संखसदसामायारिं करेइ, तएणं

लवणसमुदं मज्झं मज्झेणं वीइवयइत्ति कहु पंचजन्नं संखं परामुसइ परामुसित्ता
मुहवायपूरियं करेइ)

आ रीते प्रभुनी आजा सांभणीने ते कपिल वासुदेवे ते प्रभु मुनिसुव्रत
भगवंतने वंदन अने नमस्कार कर्था. वंदन अने नमस्कार करीने तेओ पोताना
प्रधान डाथी उपर सवार थया अने सवार थधने जल्दी न्यां लवणु समु-
द्रनेो छिनादेो छतो त्यां पडोअ्या. त्यां पडोअ्याने तेमणे लवणुसमुद्रनी वच्चे
थधने पसार थता कृष्णुवासुदेवनी सङ्केह-पीणी ध्वन्नेओना अग्रभागने लेथो
अने लेधने मनमां विचार कथो के भारा जेवा उत्तम पुरुष कृष्णुवासुदेव
ओ ज छे के जेओ लवणु-समुद्रनी वच्चे थधने पसार थध रक्षा छे. आम
विचार करीने तेमणे पांच जन्य शंखने उठाओये अने उठावीने पोताना मुथना
पवनथी तेने पूरित कथो.

(तएणं से कण्हे वासुदेवे कविलस्स वासुदेवस्स संखसदं आयन्नेइ, आय-
न्नित्ता, पंचजन्नं जाव पूरियं करेइ तएणं दो वि वासुदेवा संखसदं सामायारिं
करेइ, तएणं से कविले वासुदेवे जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता

ततस्तदनन्तरं स कपिलो वासुदेवो यत्रैवामरकङ्काराजधानी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्यामरकङ्कां राजधानीं संभग्नतोरणां यावत् पश्यति, दृष्ट्वा पद्मनाभमेवमवादीत्—किं—कस्मात् खलु हे देवानुप्रिय ! एषा अमरकंकां संभग्नतोरणा यावत्—सन्निपतिता ? ततः खलु स पद्मनाभः कपिलं वासुदेवमेवमवादीत्—एवं खलु हे स्वामिन् ! जम्बूद्वीपाद् द्वीपाद् भारताद् वर्षाद् इह हव्यमागत्य कृष्णेन वासुदेवेन ' तुवभे परिभूए ' युष्मान् परिभूय=अनादृत्य कपिलवासुदेवेन मम काऽपि हानिर्न शक्यते कर्तुमिति मनसि निधायेत्यर्थः, अमरकङ्का यावत् संनिपतिता ।

से कविले वासुदेवे जेणेव अमरकंका तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता अमरकंकां रायहाणि संभग्नतोरणं जाव पासह, पासित्ता पउमणाभं एवं वयासी) तव कृष्ण वासुदेव ने कपिलं वासुदेव के शंख शब्द को सुना सुनकर उन्होंने ने भी पांचजन्य शंख को अपने मुख की वायु से पूरित किया—बजाया—इस तरह वे दोनों वासुदेव साक्षात् रूप में न मिलकर शंख के शब्द से परस्पर में मिले । अब वे कपिल वासुदेव जहां वह अमरकंका नगरी थी वहां आये । वहां आकर उन्होंने अमरकंका राजधानी को संभग्न तोरण आदि वाला देखा । देखकर तब पद्मनाभ राजा से इस प्रकार कहा—(किष्णं देवाणुप्पिया ! एसा अमरकंका संभग्न जाव सन्निवइया ? तएणं से पउमणाहे कविलं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु सामी ? जंबूद्वीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ इहं हव्वमागम्म कण्हेणं वासुदेवेणं तुवभे परिभूए अमरकंका जाव सन्निवाडिया) हे देवानुप्रिय ! यह अमरकंका नगरी क्या कारण है—जो

अमरकंकारायहाणि संभग्नतोरणं जाव पासह, पासित्ता पउमणाभं एवं वयासी)

न्यारे कृष्णवासुदेवे कपिल वासुदेवना शंभने ध्वनि सांलये। त्यारे तेमळे पळु येताना पांचजन्य शंभने मुखना पवनथी पूरित कर्ये अने वगाडये। आ रीते तेमळे भंने वासुदेव प्रत्यक्ष रीते नडि पळु शंभना ध्वनिथी परस्पर मळ्या। त्यारपळी ते कपिल वासुदेव न्यां ते अमरकंका नगरी डुती त्यां आल्या त्यां आधीने तेमळे अमरकंका राजधानीने धळये। वगे-रेथी नष्ट थयेली जेध, जेधने तेमळे पद्मनाभ राजने आ प्रभाळे कळुं के—

(किष्णं देवाणुप्पिया एसा अमरकंका संभग्न जाव सन्निवइया ? तएणं से पउमणाहे कविलं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु सामी ! जंबूद्वीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ इहं हव्वमागम्म कण्हेणं वासुदेवेणं तुवभे परिभूए अमरकंका जाव सन्निवाडिया)

ततः खलु स कपिलो वासुदेवः पद्मनाभस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा पद्मनाभम् एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण, अवादीत्-हं भो ! पद्मनाभ ! अप्रार्थितं प्रार्थित ! =मरण वाञ्छक !, किं खलु त्वं न जानासि मम सदृशपुरुषस्य वासुदेवस्य विप्रियं=विरुद्धं कुर्वत् ? इत्युक्त्वा आशुरुप्तः=शीघ्रं क्रोधाऽऽक्रान्तः, यावत् पद्मनाभं ' णिव्विसयं ' निर्विषयं=विषयात् स्वराज्याद् निर्गतं-निष्कासितं कर्तुम् ' आणवेइ ' आज्ञापयति पद्मनाभस्य पुत्रममरकङ्काराजधान्यां महता महता राज्याभिषेकेण अभिषिञ्चति,

संभ्रम तोरण आदि वाली होकर भूमिसात् हो गई है। तब पद्मनाभ राजा ने उस कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा-हे स्वामिन् ! इसका कारण इस प्रकार है-जंबूद्वीप नाम के प्रथम द्वीप से भरतक्षेत्र से यहाँ बहुत ही शीघ्र आकर कृष्ण वासुदेव ने आपकी कुछ भी परवाह न करके-कपिल वासुदेव हमारी कुछ भी हानि नहीं कर सकते हैं-ऐसा अपने मन में समझ करके-अमरकंका में आकर-उसे पहिले संभ्रम तोरण वाली किया-और बाद में विध्वस्त कर दिया। (तएणं से कविले वासुदेवे पउमणाहस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा पउमणाहं एवं वयासी) तब पद्मनाभ राजा के मुख से इस समाचार को सुनकर के उस कपिल वासुदेव ने उस पद्मनाभ राजा से इस प्रकार कहा-(हं भो ! पउमणाभा ! अपत्थियपत्थिया ! किन्नं तुमं न जाणासि मम सरिसपुरिसस्स कण्हस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणे ? असुरुत्ते जाव पउमणाहं णिव्विसयं आणवेइ, पउमणाहस्स पुत्तं अमरकंका राघहाणीए महया

हे देवानुप्रिय ! शां डारण्ठी आ अमरकंका नगरीनी धनञ्जो वगेरे पणु तूटी गध छे अने संपूणु नगरी विनष्ट थछ गध छे ! त्तारे पद्मनाभ राजन्जे ते कपिल वासुदेवने आ प्रमाणे कथुं के हे स्वामी ! वात जेवी छे के जंबूद्वीप नामना प्रथम द्वीपना भरतक्षेत्रथी अछी अहुं जे जल्दी आवीने कृष्णवासुदेवे तभारी जराजे दरडार कर्या वगर “ कपिल वासुदेव अभाइं कंठज करी शकथे नहि ” आ जतने पोताना मनमां विचार करीने पडेलं तो अमरकंकाना तोरणो नष्ट कर्यां अने त्तारपछी आ नगरीने पणु जंभीनहोस्त करी नाभी छे (तएणं से कविले वासुदेवे पउमणाहस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा पउमणाहं एवं वयासी) त्तारे पद्मनाभ राजाना मुण्थी आ अथी विगत सांभणीने ते कपिलवासुदेवे ते पद्मनाभ राजने आ प्रमाणे कथुं के—

(हं भो ! पउमणाभा ! अपत्थियपत्थिया ! किन्नं तुमं न जाणासि मम सरिस पुरिसस्स कण्हस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणे ? असुरुत्ते जाव पउमणाहं णिव्वि-

यावत् प्रतिगत = पद्मनाभस्य पुत्रं राज्येऽभिषिच्य कपिलवासुदेवो यस्यादिशः
प्रादुर्भूतस्तां दिशं प्रतिगत इति भावः ॥ सू०३० ॥

मूलम्—तए णं से कण्हे वासुदेवे लवणसमुद्दं मज्झं मज्झेणं
वीडवयइ, तं पंच पंडवे एवं वयासी-गच्छह णं तुब्भे देवानु-
प्पिया ! गंगामहानइं उत्तरह जाव ताव अहं सुट्टियं लवणा-
हिवइं पासामि, तए णं तं पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं
वुत्ता समाणा जेणेव गंगामहानइं तेणेव उवागच्छंति उवाग-
च्छित्ता एगट्टियाए णावाए मग्गणगवेसणं करेति करित्ता एग-
ट्टियाए नावाए गंगामहानइं उत्तरंति उत्तरित्ता अणमणणं एवं
वयंति—पहू णं देवाणुप्पिया ! कण्हे वासुदेवे गंगामहाणइं बाहाहिं
उत्तरित्तए उदाहु णो पभू उत्तरित्तएत्ति कट्टु एगट्टियाओ नावाओ

महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ जाव पडिगए) अरेओ मरणवाञ्छक
पद्मनाभ ! अरे जैसे पुरुष कृष्ण वासुदेव का विप्रिय-अनिष्ट-करते हुए
तुमने मेरा कुछभी ख्याल नहीं किया ? इस प्रकार कह कर वे उस पर
बहुत अधिक कुपित हो गये । यावत् उस पद्मनाभ राजा को उन्हों ने
अपने देश से बाहिर भी निकालदिया । तथा-उसका जो पुत्र सुनाभ
था । उस को बड़े भारी उत्सवके साथ राज्य में अभिषिक्त किया । इस
प्रकार पद्मनाभ के पुत्र को राज्य में अभिषिक्त करके वे कपिल वासु-
देव जिस दिशासे आये थे उस दिशाकी ओर वापिस चले गये ॥ सू०३० ॥

सयं आणवेइ, पउमणाइस्स पुत्तं अमरकंका रायहाणीए महया महया रायाभिसे-
एणं अभिसिंचइ, जाव पडिगए)

अरे, ओ मृत्युने धरुणार पद्मनाभ ! भाशे जेवा पुरुष कृष्णवासुदेवतुं
भुइं करतां ते' भारी पणु दरुकार करी नहि ? आ प्रभाणु कहीने तेओ भूण
कोधित थइ गया. यावत् ते पद्मनाभ राजने चेताना देशथी णहार पणु नसाडी
भूइयो. त्थारपणी तेना पुत्र सुनाभने लारे उत्सवनी साथे राज्याभिषेक कर्यो.
आ रीते पद्मनाभना पुत्रने राज्याभने अलिषिक्त करीने कपिल वासुदेव जे
दिशा तरुथी आण्वा हुता ते दिशा तरु पाछा जता रथा. ॥ सूत्र ३० ॥

णूमेति णूमित्ता कण्हं वासुदेवं पडिवालेमाणार चिट्ठंति, तएणं
 से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं लवणाहिवइं पासइ पासित्ता जेणेव
 गंगामहाणइं तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता एगट्ठियाए सब्बओ
 समंता मग्गणगवेसणं करेइ करित्ता एगट्ठियं अपासमाणे एगाए
 बाहाए रहं सत्तुरगं ससारहिं गेण्हइ एगाए बाहाए गंगं महाणइं
 वासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिन्नं उत्तरित्तं पयत्ते यावि
 होत्था, तएणं से कण्हे वासुदेवे गंगामहाणइंए बहुमज्झदेस-
 भागं संपत्ते समाणे संते तंते परित्तंते बद्धसेए जाए यावि होत्था
 तएणं कण्हस्स वासुदेवस्स इमे एयारूवे अब्झत्थिए जाव
 समुप्पज्जित्था अहो णं पंच पंडवा महाबलवगा जेहिं गंगा-
 महाणइं वासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिण्णा बाहाहिं
 उत्तिण्णा, इत्थं भूएहिं णं पंचहिं पंडवेहिं पउमणाभे राया जाव
 णो पडिसेहिए, तएणं गंगादेवी कण्हस्स वासुदेवस्स इमं एया-
 रूवं अब्झत्थियं जाव जाणित्ता थाहं वितरइ, तएणं से कण्हे
 वासुदेवे सुहुत्तंतरं समासासइ समासासित्ता गंगामहाणइं वावट्ठिं
 जाव उत्तरइ उत्तरित्ता जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ उवा-
 गच्छित्ता पंच पंडवे एवं वयासी-अहो णं तुब्भे देवाणुप्पिया !
 महाबलवगा जेणं तुब्भेहिं गंगामहाणइं वासट्ठिं जाव उत्तिण्णा,
 इत्थं भूएहिं तुब्भेहिं पउमं जाव णो पडिसेहिए, तएणं ते पंच
 पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा कण्हं वासुदेवं एवं
 वयासी-एवं खल्ल देवाणुप्पिया ! अम्हे तुब्भेहिं विसज्जिया समाणा

जेणेव महाणई तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता एगट्टियाए
मग्गणगवेसणं तं चेव जाव णूमेमो तुब्भे पडिवालेमाणा चिट्टामो
तएणं से कण्हे वासुदेवे तेसिं पंचण्हं पांडवाणं एयमट्टं सोच्चा
णिसम्म आसुरुत्ते जाव तिवालियं एवं वयासी—अहो णं जया
मए लवणसमुदं दुवे जोयणसयसहस्सा विच्छिण्णं वीइवइत्ता
पउमणाभं हयमहिय जाव पडिसेहित्ता अमरकंका संभग्गं दोवई
साहत्थिं उवणीया तथा णं तुब्भेहिं मम महप्पं ण विण्णायं
इयाणि जाणिस्सहत्तिकहु लोहदंडं परामुसइ, पंचण्हं पांडवाणं
रहे चूरेइ चूरित्ता णिव्विसए आणवेइ आणवित्ता तत्थ णं रह
मइणे णामं कोड्डे णिव्विट्ठे, तएणं से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए
खंधावारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता सएणं खंधावारेणं सद्धिं
अभिसमन्नागए यावि होत्था, तएणं से कण्हे वासुदेवे जेणेव बार-
वई णयरी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता अणुपविसइ ॥सू० ३१॥

टीका—‘ तएणं से इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु स कृष्णो वासुदेवो लवण-
समुद्रस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजति=गच्छति व्यतिव्रज्य तान् पञ्च पाण्डवान् एव-
मवादीत्—गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! गङ्गामहानदीमुत्तरत्त=उत्तीर्णा भवत,

तएणं से कण्हे वासुदेवे इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से कण्हे वासुदेवे) उन कृष्णवासुदेवने
(लवणसमुद्रं) जब लवण समुद्र में (मज्झं मज्झेणं वीइवयइ) बीच से
होकर वे चले जा रहे थे । (ते पंच पांडवे एवं वयासी) तब पांच पांडवों
से ऐसा कहा—(गच्छहणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! गंगामहानइ उत्तरह जाव

तएणं से कण्हे वासुदेवे इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपणी (से कण्हे वासुदेवे) ते कृष्णवासुदेवे (लवणसमुद्रं)
के न्यारे तेओ लवण समुद्रनी (मज्झं मज्झेणं वीइवयइ) वरुत्ते थधने पसार
थता उता त्थारे (ते पंच पांडवे एवं वयासी) पांचे पांडवाने आ प्रभाण्णे
उधुं (गच्छहणं तुब्भे देवाणुप्पिया ! गंगा महानदि उत्तरह जाव ताव अहं सुट्टियं

यावत् तावदहं सुस्थितं देवं लवणाधिपतिं पश्यामि, सुस्थितेन देवेन सह मिलित्वा तमापृच्छ्यागच्छामि, ततः खलु ते पञ्चपाण्डवा कृष्णेन वासुदेवेन एवमुक्ताः सन्तो यत्रैव गङ्गामहानदी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य ' एगट्टियाए ' एकार्थिकायाः=महानौकासमानकार्यकारिण्याः ' नावाए ' नावः=नौकाया मार्गणगवेषणं कुर्वन्ति । कृत्वा=मार्गणगवेषणं कृत्वा नौकायामारुह्य ते पञ्च पाण्डवा एकार्थिकया नावा गङ्गामहानदीं मुत्तरन्ति, उत्तीर्य अन्योन्यम्=परस्परमेवं वदन्ति—' पहू ' प्रभुः=समर्थः, खलु हे देवानुप्रियाः ! कृष्णो वासुदेवो गङ्गामहानदीं ' वाहाहिं ' बाहुभ्यां=भुजाभ्याम् ' उत्तरित्ताए ' उत्तरीतुम् ' उदाहु ' उताहो—अथवा नो

ताव अहं सुद्वियं लवणाहिवहं पासामि) हे देवानुप्रिया ! तुमलोग जाओ—और गंगानदी को पार करो तबतक मैं लवणसमुद्राधिपति सुस्थित देव से मिलकर और उनकी आज्ञा लेकर आता हूँ । (तएणं ते पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं बुत्ता समाणा जेणेव गंगा महानई तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता एगट्टियाए नावाए मग्गणगवेषणं करेति, करित्ता एगट्टियाए गंगामहानइं उत्तरंति) इस तरह कृष्ण वासुदेव द्वारा कहे गये वे पांचों पांडव जहां गंगा महानदी थी—वहां आये । वहां आकर के उन्होंने एकार्थिक—महानौकासे जैसी कार्य साधक—नौका मार्गणा एवं गवेषणा की, मार्गणा गवेषणा कर के वे पांचों पांडव नौका पर चढ़ गंगा महानदीसे पार हो गये । (उत्तरित्ता अण्णमण्णं एवं वयंति पङ्गणं देवाणुप्पिया ! कण्हे वासुदेवे गंगा महानई वाहाहिं उत्तरि-

लवणाहिवहं पासामि) हे देवानुप्रियो ! तमे लोके ङवे लब्धो अने गंगा नदीने ञ्णो गो त्यांसुधी हु लवणु समुद्रना अधिपति सुस्थित देवने भणीने अने तेभनी आज्ञा प्राप्त करीने आवुं छुं ।

(तएणं ते पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं बुत्ता समाणा, जेणेव गंगा महानई तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता एगट्टियाए नावाए मग्गणगवेषणं करेति, करित्ता एगट्टियाए नावाए गंगा महानइं उत्तरंति)

आ रीते दृष्टुवासुदेव वडे आज्ञापित थयेला ते पांचे पांडवो त्यां गंगा भडा नदी छती त्यां आव्या. त्यां आवीने तेभणे ऐकार्थिक भडानौका लेवी कामभां आवी शडे तेवी नौकानी भागंणु तेभण गवेषणा करी. भागंणु तेभण गवेषणा करीने ते पांचे पांडवो नौका छपर सवार थडने गंगा भडा नदीने पार छतरी गया.

(उत्तरित्ता अण्णमण्णं एवं वयंति पङ्गणं देवाणुप्पिया ! कण्हे वासुदेवे गंगा-

प्रभुः=समर्थ उत्तरीतुम्, इति कृत्वा गङ्गामहानद्या बाहुभ्यामुत्तरणे कृष्णवासु-
वदेस्य सामर्थ्यमस्ति, नास्ति वा तद् विजानामीति विचार्य एकार्थिकां नावं=
नौकां 'णूमेति' गोपयन्ति । गोपयित्वा कृष्णं वासुदेवं 'पडिवालेमाणा' प्रति-
पालयन्तः=प्रतीक्षमाणाः तिष्ठन्ति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः सुस्थितं देवं
लवणाधिपतिं पश्यति=सुस्थितेन साकं मिलति दृष्ट्वा तमापृच्छद्य यत्रैव गङ्गामहा-
नदी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य एकार्थिकाया नावः=नौकाया मार्गणगवेषणं
करोति, कृत्वा, एकार्थिकां नावमपश्यन् एकेन बाहुना रथं सतुरगं=सहाश्वं,

त्तए उदाहृणो पभू उत्तरित्तए त्तिकट्टु एगट्टियाओ णावाओ णूमेति,
णूमित्ता कण्हं वासुदेवं पडिवाले माणा २ चिट्ठंति, तएणं से कण्हे वासु-
देवे सुट्टियं लवणाहिवइं, पासइ, पासित्ता जेणेव गंगा महाणई तेणेव
उवागच्छइ) जब पार होकर वे तट पर पहुँच चुके-तब परस्पर में
उन्होंने ऐसा विचार किया-हे देवानुप्रियो ! देखो कृष्ण वासुदेव गंगा
महानदी को हाथों से तैरकर पार करने में समर्थ हो सकते हैं
या नहीं हो सकते हैं ? इस प्रकार विचार करके उन्होंने ने उस एकार्थि
नौका को कृष्ण वासुदेव के आने के लिये वापिस उस पार भेजा नहीं
वहीं पर छिपा दिया । और छिपाकर कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करते
वे वहीं ठहरे रहे । उधर-कृष्ण वासुदेव लवणसमुद्राधिपति सुस्थित
देव से जाकर मिले और उसकी आज्ञा लेकर जहाँ गंगा नदी थी वहाँ
आये । (उवागच्छित्ता एगट्टियाए सव्वओ समंता मग्गणगवेषणं करेइ,
करित्ता एगट्टियं अपासमाणे एगाए बाहाए रहं सतुरगं ससारहिं गेण्हइ

महानई वाहाहिं उत्तरित्तए, उदाहृ णो पभू उत्तरित्तए त्तिकट्टु एगट्टियाओ णावाओ
णूमेति, णूमित्ता कण्हं वासुदेवं पडिवालेमाणार चिट्ठंति, तए णं से कण्हे वासुदेवे
सुट्टियं लवणाहिवइं, पासइ, पासित्ता जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छइ)

पार उतरीने न्यारे तेओ किनारे पडोन्थी गया, त्यारे तेभण्णे परस्पर
विचार करीं के हे देवानुप्रियो ! कृष्णवासुदेव गंगा महानदीने हाथो वडे
तरीने पार करीं शके के नडि ? आम विचार करीने तेभण्णे ते 'एकार्थि'
नौकाने कृष्णवासुदेवने दाववा भाटे पाछी भोक्खी नडि पणु त्यांज छुपावी
हीधी. अने छुपावीने तेओ त्यांज कृष्णवासुदेवनी प्रतीक्षा करता रोकाई गया.
कृष्णवासुदेव लवण समुद्राधिपति सुस्थितदेवने मज्या अने तेनी आज्ञा प्राप्त
करीने न्यां गंगा नदी डती त्यां आन्थी.

(उवागच्छित्ता एगट्टियाए सव्वओ समंता मग्गणगवेषणं करेइ, करित्ता
एगट्टियं अपासमाणे एगाए बाहाए रहं सतुरगं ससारहिं गेण्हइ, एगाए बाहाए

ससारथि गृह्णाति एकेन वाहुना गङ्गां महानदीं ' वासट्टि ' द्वापट्टि योजनानि अर्थयोजनं च ' वित्थिन्नं ' विस्तीर्णाम्, उत्तरितुं प्रवृत्तश्चाप्यभवत्, ततः खलु स कृष्णो वासुदेवो गङ्गामहानद्या बहुमध्यदेशभागं संप्राप्तः सन् ' संते ' श्रान्तः= श्रमंप्राप्तः, ' तंते ' तान्तः=खिन्नः ' परितंते ' परितान्तः=सर्वथा खिन्नः ' वद्धसेए ' संप्राप्तभवेदः, जातश्चाप्यभवत् ।

ततः खलु कृष्णस्य वासुदेवस्यायमेतद्रूप आध्यात्मिको यावत् मनोगत संकल्पः समुद्रपद्यत-अहो खलु पञ्च पाण्डवा महाबलवन्तः, यैर्गङ्गामहानदी द्वापट्टि योजनानि अर्थयोजनं च वित्थिना-विस्तीर्णा वाहुभ्यामुत्तीर्णा, ' इत्थंभूएहि ' इत्थंभूतैः-ईदृशपराक्रमशालिभिः खलु पञ्चभिः पाण्डवैः पद्मनाभो राजा यावत् नो

एगाए वाहाए गंगं महाणइं वासट्टिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिन्नं उत्तरिपयत्ते यावि होत्था) चहां आकर के उन्होंने ने एकार्थिक नौका की सब तरफ सब प्रकारसे मार्गणा गवेपणा की 'मार्गणागवेपण करके जब उनके दंन्वने में एकार्थिक नौका नहीं आई, तब सारथि और घोड़ों से युक्त रथ को उन्होंने ने एक हाथ से पकड़ा और एक हाथ से ६२॥, साढे वासठ, योजन विस्तीर्ण उस गंगा महानदी को तैरकर पार करना प्रारंभ किया । (तएणं से कण्हे वासुदेवे गंगा महाणइंए बहुमज्जदेस-भागं संपत्ते समाणे संते, तंते, परितंते, वद्धसेए जाए यावि होत्था, तएणं कण्हस्स वासुदेवस्स इमे एयास्सवे अज्जत्थिए जाव समुप्पज्जित्था -अहोणं पंच पंडवा महाबलवगा, जेहिं गंगामहाणइं वासट्टिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिण्णा वाहाहिं उत्तिण्णा इत्थंभूएहिं णं पंचहिं पंड

गंगं महाणइं वासट्टिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिन्नं उत्तरिपयत्ते यावि होत्था) त्यां आवीने तेमणे ' अकार्थिक ' नौकानी आभेर पधी रीते मार्गणा गवेपणा करी. मार्गणा तेमण गवेपणा करीने न्यारे ' अकार्थिक ' नौका तेमना जेवामां आवी नहि त्यारे सारथि अने घोडाथी युक्त रथने तेमणे अक साधमां उपाउथे अने अक साध वडे ६२" योजन विस्तीर्ण ते गंगा महा नदीने तरिने पार करवा लाग्या.

(तएणं से कण्हे वासुदेवे गंगा महाणइंए बहुमज्जदेस भागं संपत्ते समाणे संते, तंते, परितंते, वद्धसेए जाए यावि होत्था, तएणं कण्हस्स वासुदे वस्स इमे एयास्सवे अज्जत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-अहोणं पंच पंडवा महाबलवगा जेहिं गंगा महाणइं वासट्टिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विच्छिण्णा वाहाहिं उत्तिण्णा इत्थं

प्रतिषेधितः=नो पराजितः, इदमाश्चर्यम्, ततः खलु गङ्गादेवी कृष्णस्य वासुदेवस्य इममेतद्रूपमाध्यात्मिकं यावत् मनोगतं संकल्पं ज्ञात्वा 'थाहं' स्ताघं-गाधं वितरति,=ददाति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवो मुहूर्तान्तरे 'समासासइ' समाश्वसिति-विश्रामं प्राप्नोति समाश्वस्य गङ्गामहानदीं द्वाषष्टिं यावद् उत्तरति, उत्तीर्य

वेहिं पद्मनाभे राया जाव णो पडिसेहिए-तएणं गंगादेवी कणहस्स वासुदेवस्स इमं एयारुवं अज्झत्थिए जाव जाणित्ता थाहं वितरइ) तैरते २ जब वे कृष्णवासुदेव गंगा महानदी के ठीक मज्झ-मध्य भाग में आये-तब वहां तक आते २ वे श्रम प्राप्त हो गये, खेदखिन्न बन गये, और सर्वथा थक गये । यहां तक कि उनके शरीर भर में थकावट की बजह से पसीना २ हो गया । तब उन कृष्णवासुदेव को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ । देखो-ये पांचो पांडव बड़े बलिष्ठ हैं-जिन्होंने देखा, योजन विस्तीर्ण इस गंगा महानदी को हाथों से तैरकर पार कर दिया परन्तु यह बड़े आश्चर्य की बात हैं-कि ऐसे पराक्रम से युक्त होते हुए भी इन पांडवों से वह पद्मनाभ राजा प्रतिषेधित नहीं हो सका-जीता नहीं जा सका । इस प्रकार के उन कृष्णवासुदेव के इस रूप इस आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प को गंगादेवी ने जानकर उन्हें थाह दे दी (अधार दिया) । (तएणं से कणहे वासुदेवे मुहुत्तंत्तरं समासासइ) थाह प्राप्त कर कृष्णवासुदेव ने वहां

भूएहिं णं पंचहिं पंडवेहिं पद्मनाभे राया जाव णो पडिसेहिए-तएणं गंगादेवी कणहस्स वासुदेवस्स इमं एयारुवं अज्झत्थिए जाव जाणित्ता थाहं वितरइ)

तरतां तरतां न्यारे कृष्णवासुदेव गंगा महानदीना ऐकहम मध्यमां आन्धा-त्यांसुधी आवतां आवतां तो तेओ थाकी गया, जेदभित्त थई गया, अने ऐकहम थाकी गया. थाकने लीधे तेमजुं संपूर्ण शरीर परसेवाथी तरणेण थई गयु. त्यारे ते कृष्णवासुदेवने आ जतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उद्भवये के जुओ आ पांचे पांडवो केटला भधा जद्विष्ठ छे के जेमणे ६२" योजन विस्तीर्ण आ गंगा महानदीने डाथे वडे तरीने पार करी छे पणु ऐनी साथे आ पणु ऐक नवार्थ जेवी वात छे के ऐवा पराक्रमी डोवा छतांऐ आ पांडवोथी ते पद्मनाभ राजा यावत् पराजित करी सकाये नडि. कृष्णवासुदेवना गंगा महानदीये आ जतना आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प जणीने तेमना भाटे थाड आपी (तएणं से कणहे वासुदेवे मुहुत्तंत्तरं समासासइ) थाड जेणवीने कृष्णवासुदेवे थोडीवार त्यां विश्राम कर्यो (समासा०) विश्राम कर्या थाड तेमणे

यत्रैव पञ्च पाण्डवास्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पञ्च पाण्डवान् एवमवादीत्—
अहो खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! महाबलवन्तः येन युष्माभिर्गङ्गा महानदी द्वाषष्टि
योजनानि अर्धयोजनं च विस्तीर्णा यावद् उत्तीर्णा, इत्थंभूतैर्युष्माभिः पद्म-
नाभो यावत् नो प्रतिषेधितः=पराजयं न प्रापितः, ततः खलु ते पञ्च पाण्डवाः

थोड़ी देर तक विश्राम किया (समासा०) विश्राम करके फिर उन्होंने (गंगा
महाणई वावट्टि जाव उत्तरइ, उत्तरित्ता जेणेव पंचपंडवा तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता पंच पंडवे एवं वयासी-अहोणं तुव्भे देवाणुप्पिया ! महा-
बलवगा जेणं तुव्भेहिं गंगा महाणई वासट्टि जाव उत्तिण्णा, इत्थंभूएहिं
तुव्भेहिं पउम जाव णो पडिसेहिए, तएणं ते पंचपंडवा कण्हे णं वासु
देवेणं एवं वुत्ता समाणा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु देवाणु-
प्पिया ! अम्हे तुव्भेहिं विसज्जिया समाणा जेणेव गंगा महाणई तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एगट्टियाए मग्गणगवेसणं तं चेव जाव
णूमेमो तुव्भे पडिवाले माणा चिट्ठामो) साठे बासठ योजन विस्तीर्ण
उस गंगा महानदी को तैरकर पार कर दिया। पार करके फिर वे वहां
आये-जहाँ ये पांचो पांडव थे। वहां आकर उन्होंने ने उन पांचो पांडवों
से इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियों ! तुमलोग बहुत ही अधिक बलशाली
हो जो तुमलोगों ने ६२॥ योजन विस्तीर्ण इस गंगा महानदी को बाहुओं
से तैरकर पार कर दिया। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि इतने बल-
शाली होकर भी जो तुम से पद्मनाभ राजा पराजित नहीं हो सका।

(गंगा महाणई वावट्टि जाव उत्तरइ, उत्तरित्ता जेणेव पंच पंडवा तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंच पंडवे एवं वयासी-अहोणं तुव्भे देवाणुप्पिया !
महाबलवगा जेणं तुव्भेहिं गंगा महाणई वासट्टि जाव उत्तिण्णा इत्थं भूएहिं तुव्भेहिं
पउमं जाव णो पडिसेहिए, तएणं ते पंच पंडवा कण्हे णं वासुदेवेणं एवं वुत्ता
समाणा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे तुव्भेहिं विस-
ज्जिया समाणा जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एगट्टियाए
मग्गण गवेसणं तं चेव जाव णूमेमो तुव्भे पडिवाले माणा चिट्ठामो)

६२" योजन विस्तीर्णुं ते गंगा महानदीने तरीने पार पडोंची गया
पार पडोचीने तेओ न्यां पाये पांडवो डता त्या आव्या. त्यां आवीने तेमणे
पांचे पांडवोने आ प्रभाणे कथुं के डे देवानुप्रियो ! तमे णहुं अणवान् छे
केमके तमे दोडोओ ६२" योजन विस्तीर्णुं आ गंगा महानदीने डथो वडे
तरीने पार करी छे. पथुं ओनी साथे आ ओक नवाध् जेरी वात छे के तमे
आटला अथा अणवान् डोवा छतां पथुं पन्नल रानने डरावी शक्या नडि.

कृष्णेन वासुदेवेनैवमुक्ताः सन्तः कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्—एवं खलु हे देवानु-
प्रियाः ! वयं युष्माभिर्विसर्जिताः सन्तो यत्रैव गङ्गा महानदी तत्रैवोपागच्छामः,
उपागत्य ' एगद्वियाए ' एकार्थिकाया नावो मार्गणगवेषणं कृत्वा ' तं चेव
जाव णूमेमो ' तदेव=यदुक्तं पूर्वं तदेवात्र बोध्यमित्यर्थः—तां नावमधिरुह्य वयं
गङ्गामहानदीमुत्तीर्णाः, ततः खलु हे देवानुप्रियाः ! गङ्गां महानदीं बाहुभ्या-
मुत्तरितुं भवन्तः शक्नुवन्ति नवा, इति ज्ञातुं वयसेकार्थिकां नौकां यावद् ' णूमेमो '
गीपयामः, युष्मान् ' पडिवालेमाणा ' प्रतिपालयन्तः—प्रतीक्षमाणा वयं तिष्ठामः ।

ततः खलु स कृष्णो वासुदेवस्तेषां पञ्चानां पाण्डवानाम् एतमर्थं श्रुत्वा
आकर्ष्य निशम्य हृद्यवधार्य आशुरुष्माः—शीघ्रं संजातकोपः, यावत् त्रिवलिकां=रेखा-

इस प्रकार जब कृष्णवासुदेवने उन पांचो पांडवों से कहा तब उन्होंने ने
कृष्णवासुदेव से ऐसा कहा हे देवानुप्रिय ! सुनिये—बात इस प्रकार है
जब हमलोगों को आपने वहां से विसर्जित कर दिया—तब हमलोग
जहां गंगा महानदी थी—वहां आये—वहां आकर हमलोगों ने एकार्थिक
नौका की मार्गणा गवेषणा की—नाव के मिलते ही हमलोग उसपर चढ़-
कर यहाँ गंगा नदी को पार कर आये हैं । हमलोगों ने यहाँ आकर
फिर हे देवानुप्रिय ! ऐसा विचार किया — कि — कृष्णवासुदेव गंगा
महानदी को हाथों से पार कर सकते है या नहीं—इसी बात को जानने
के लिये हमलोगों ने उस एकार्थिक नौका को यहीं छिपा कर रख दिया
है । और आपकी प्रतीक्षा में यहाँ ठहरे हुए हैं । (तएणं से कण्हे वासु-
देवे तेसि पंचण्हं पांडवाणं एयमद्वं सोच्चा णिसम्म आसुरुत्ते जाव तिव-

आ रीते न्यारे कृष्णवासुदेवे ते पांचे पांडवोने कहुं त्यारे तेमण्णे कृष्णवासु
देवने आ प्रमाणे कहुं के हे देवानुप्रिय ! सांभणो, वात अेवी छे के अभने
अधाने तमे न्यारे विदाय कयो त्यारे अमे लोके न्यां गंगा महानदी इती
त्यां आव्या त्यां आवीने अधाने अेकार्थिक नौकानी मार्गणा गवेषणा करी.
नौका प्राप्त यतां अे अमे अधा तेमां अेसीने गंगा महानदीने पार करीने आ
तरक्ष आवी गया, आ तरक्ष आवीने हे देवानुप्रिय ! अमे लोकेअे आ प्रमाणे
विचार कर्यो के—कृष्णवासुदेव गंगा महानदीने हाथे पडे तरीने पार करी शकथे
के केम ? आ वात अणुवा भाटे अे अमे लोकेअे ते अेकार्थिक नौकाने छुपावीने
तभारी प्रतीक्षा करतां अमे अहीं अे अेसी रह्यां इता.

(तए णं से कण्हे वासुदेवे तेसि पंचण्हं पांडवाणं एयमद्वं सोच्चा णिसम्म
आसुरुत्ते जाव तिवलियं एवं वयासी—अहोणं जया मए लवणसमृद्धं दुवे जोयण

त्रयुक्तां भृकुटिं ललाटे उन्नीय प्रदर्श्य, एवमवादीत्-अहो-आश्चर्यं खलु ' जया ' यदा-यस्मिन् समये, मया लवणसमुद्रं ' दुवे जोयणसयसहस्ता विच्छिन्नं ' द्वियोजनशतसहस्रविस्तीर्णं द्विलक्षयोजनपरिमितं विस्तीर्णं ' वीइवइत्ता ' व्यतिव्रज्य-समुल्लङ्घ्य, पद्मनाभं राजानं ' हयमहिय-जाव पडिसेहिता ' हतमथित-यावत्

लियं एवं चयासी-अहोणं जया मए लवणसमुद्रं दुवे जोयणसयसहस्ता विच्छिन्नं वीइवइत्ता पउमणाभं हयमहिय जाव पडिसेहिता अमरकंका संभग० दोवई साहत्थि उवणीया तथा णं तुव्भेहिं मम माहप्यं ण विण्णायं इयाणि जाणिस्सह, त्ति कइडु लोहदंडं परामुसइ, पंचण्हं पंडवाणं रहे चूरेइ, चूरित्ता णिव्विसए आणवेइ आणवित्ता तत्थ णं रहमइणे णामं कोइडे णिवेडे, तएणं से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खंधावारे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सएणं खंधावारेणं सद्धि अभिसमन्नागए यावि होत्था, से कण्हे वासुदेवे जेणेव वारवईए णयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुपविसइ) उन पांचो पांडवों के मुख से इस कथन रूप अर्थ को सुनकर और उसे अपने हृदय में अवधारित कर उन कृष्णवासुदेव को इकदम क्रोध आ गया। त्रिवलियुक्त उनकी दोनों शृकुटियां ललाटतट पर चढ़ गईं। उसी समय उन्होंने ने उन पांडवों से कहा यह वड़े आश्चर्य की बात है-जिस समय मैंने २ दो लाख योजन विस्तारवाले लवणसमुद्र को उल्लंघन कर पद्मनाभ राजा को संग्राम में जीता-उस की सेना को हत मथित किया-राजचिन्हस्वरूप उसकी

सयसहस्ता विच्छिन्नं वीइवइत्ता पउमणाभं हय महिय जाव पडिसेहिता अमरकंका संभग० दोवई साहत्थि उवणीया तथा णं तुव्भेहिं मम माहप्यं ण विण्णायं इयाणि जाणिस्सह, त्ति कइडु लोहदंडं परामुसइ, पंचण्हं पंडवाणं रहे चूरेइ, चूरित्ता णिव्विसए आणवेइ आणवित्ता तत्थणं रहमइणे णामं कोइडे णिवेडे, तएणं से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खंधावारे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सएणं खंधावारेणं सद्धि अभिसमन्नागए यावि होत्था तएणं से कण्हे वासुदेवे जेणेव वारवइ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुपविसइ)

ते पांचे पांडवोना भुषधी आ कथनरूप अर्थने सांभणीने अने तेने पोताना हृदयमां अवधारित करीने ते कृष्णवासुदेव अकदम क्रोधाविष्ट थई गया त्रिवलियुक्त तेभना णंने लभभरे वड थई गया. तेभणे तेव समये पांडवोने आ प्रभाणे कहु के आ अरेणर नवाधं जेवी वात छे के न्यारे में २ लाख योजन विस्तीर्णं लवण समुद्रने ओणंगीने पद्मनाभ राजने युद्धमां लुत्थे, तेनी सेनाने मधी नाभी, राजचिह्न स्वरूप तेनी प्रशस्त ध्वज पताकाओने

प्रतिषेध्य-द्वतमथितप्रवरवीरघातितनिपतितचिह्नध्वजपताकं यावत् प्रतिषेध्य = संग्रामात् प्रतिनिवर्त्य-पन्ननाभं विजित्येत्यर्थः, अमरकंकां राजधानीं संभग्नतोरणा यावद् विनिपातिता-विध्वंसिता, तथा-द्रौपदी स्वहस्तेनोपनीता=भवद्भयः प्रदत्ताः, 'तथाणं' तदा=तस्मिन् समये खलु युष्माभिर्मम 'माहृष्यं' माहात्म्यं=महत्त्वं बलं, 'ण विष्णायं' न विज्ञातम् 'इयार्णि' इदानीम्-अस्मिन् समये 'जाणि-स्सह' ज्ञास्यथ, इति कृत्वा=इत्युक्त्वा, लोहदण्डं 'परामुसइ' परामुशति-गृह्णाति पञ्चानां पाण्डवानां रथान् चूर्णयति, चूर्णयित्वा 'णिर्विसए आणवेइ' निर्विष-यान् आज्ञापयति-विषयात् स्वदेशतो निर्गताः बहिर्याता इति निर्विषयास्तान्, यूयं मम देशात् निर्विगच्छत, इत्याज्ञापयति स्म 'इत्यर्थः । आज्ञाप्य तत्र खलु 'रथमर्दणे णामं कोष्टे णिविष्टे' रथमर्दननामा कोष्ठो निविष्टः-रथमर्दनपुरं नाम नगरं स्थापितम् ।

ततरतदनन्तरं स कृष्णो वासुदेवो यत्रैव स्वकः=निजः, 'खंधावारे' स्कन्धा-वारः-सेनानिवेशस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य स्वकेन स्कन्धावारेण-सोपकरण-सैनिकेन सार्धम् अभिसमन्वागतः=मिलितश्चाप्यभवत् । ततः खलु स कृष्णो वासु-देवो यत्रैव द्वारवती नगरी, तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य, अनुपविशति ॥मृ० ३१॥

प्रशरत ध्वजा पताकाओं को जमीन में मिलादिया-उस की राजधानी अमरकंका नगरी को ध्वस्त कर दिया, तथा उससे द्रौपदी को अपने हाथ से लाकर तुम लोगों को दिया उस समय तुम लोगों ने मेरे बल को नहीं जाना ? जो अब जानोगे-ऐसा कहकर उन वासुदेव कृष्ण ने लोह दंडे को उठाया-और उससे पांचों पांडवों के रथों को चूर २ कर दिया । चूर २ कर के फिर उन्हें देश से बाहिर हो जाने की आज्ञा देदी । आज्ञा देकर उन कृष्ण वासुदेव ने वहीं पर एक रथमर्दन नाम का नगर बसा दिया । इस के बाद वे कृष्ण वासुदेव जहाँ अपना स्कंधादार था वहाँ

जमीनहोस्त करी नाभी तेनी राजधानी अमरकंका नगरीने नष्ट करी नाभी अने तेनी पासेथी द्रौपदीने लावरीने तमने सोंपी दीधी ते वणते तमे लोडो भारा अणने ञ्णी शक्या नडि तो डवे भारा अणने तमे शुञ्चो-आम कडीने ते कृष्णवासुदेवे लोडडंडने डायमां दीधी अने तेनाथी तेमणे पांचे पांडवोना रथोना भूकेभूका उडावी दीधा. रथोने नष्ट करीने तेमणे पांचे पांडवोने देशथी अडार जता रडेवानी आज्ञा आपी. आज्ञा आपीने ते कृष्णवासुदेवे ते स्थणेअ ओक रथमर्दन नामे नगर बसाव्युं. त्यारपछी ते कृष्णवासुदेव ज्यां पोताना सैन्यनी छावणी उती त्यां आव्या. त्या आवीने तेज्यो पोताना सैनिकोने

मूलम्—तएणं ते पंच पंडवा जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवा-
 गच्छंति उवागच्छित्ता जेणेव पंडू तेणेव उवागच्छंति उवाग-
 च्छित्ता करयल एवं वयासी—एवं खलु ताओ ! अम्हे कणहेणं
 णिविसया आणत्ता, तएणं पंडुराया तेपंच पंडवे एवं वयासी—
 कहणं पुत्ता ! तुब्भे कणहेणं वासुदेवेणं णिविसया आणत्ता?,
 तएणं ते पंच पंडवा पंडुरायं एवं वयासी—एवं खलु ताओ !
 अम्हे अमरकंकाओ पडिणियत्ता लवणसमुदं दोन्नि जोयणसय-
 सहस्साइं वीडवइत्ता तएणं से कणहं अम्हे एवं वयासी—गच्छह
 णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! गंगामहाणइं उत्तरह जाव चिट्ठह ताव
 अहं एवं तहेव जाव चिट्ठामो, तएणं से कणहे वासुदेवे सुट्ठियं
 लवणाहिवइं दट्ठणं तं च्चेव सव्वं नवरं कणहस्स चिंता ण जुज्जइ
 जाव अम्हे णिविसए आणवेइ, तएणं से पंडुराया तेपंच पंडवे एवं
 वयासा—दुट्ठु णं पुत्ता ! कयं कणहस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमा-
 णेहिं, तएणं से पंडुराया कोत्तिं देविं सदावेइ सदावि त्ता एवं
 वयासी—गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! बारवइं कणहस्स वासुदे-
 वस्स णिवेदेहि—एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुम्हे पंच पंडवा णिवि-
 सया आणत्ता तुमं च णं देवाणुप्पिया ! दाहिणड्ढभरहस्स सामी
 तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया पंच पंडवा कयरं दिस्सिं वा विदिसं

आये । वहाँ आकर वे अपने सैनिकों के साथ मिले । बाद में जहाँ
 द्वारावती नगरी थी उस ओर चल दिये वहाँ पहुँच कर वे द्वारावती
 नगरी में प्रविष्ट हुए ॥ सू० ३१ ॥

अर्था, त्थारणाह तेओ जे तरश् द्वारावती नगरी छती ते तरश् रवाना थया.
 त्यां पडोअीने तेओ द्वारावती नगरीमां प्रविष्ट थया. ॥ सूत्र ३१ ॥

वा गच्छंतु ? , तएणं सा कौंती पंडुणा एवं वुत्ता समाणी हत्थि-
खंधं दुरूहइ दुरूहिता जहा हेट्टा जाव संदिसंतु णं पिउत्था !
किमागमणपओयणं ? , तएणं सा कौंती कण्हं वासुदेवं एवं
वयासी-एवं खलु पुत्ता ! तुमं पंच पंडवा णिविसया आणत्ता
तुमं च णं दाहिणडुभरह जाव विदिसं वा० गच्छंतु ? , तएणं
से कण्हे वासुदेवे कौंतिं देविं एवं वयासी-अपूर्इवयणाणं पिउ-
त्था ! उत्तमपुरिसा वासुदेवा बलदेवा चक्कवट्टी तं गच्छंतु णं
देवाणुप्पिया ! पंच पंडवा दाहिणिहं वेलाऊलं तत्थ पंडुमहुरं
णिवेसंतु ममं अदिट्टसेवगा भवंतु त्तिकट्टु कौंतिं देविं सक्कारेइ
सम्माणेइ जाव पडिविसज्जेइ, तएणं सा कौंती देवी जाव पंडुस्स
एयमट्टं णिवेदेइ, तएणं पंडू पंच पंडवे सदावेइ सदावित्ता एवं
वयासी-गच्छह णं तुब्भे पुत्ता ! दाहिणिहं वेलाऊलं तत्थ णं
तुब्भे पंडुमहुरं णिवेसेह, तएणं पंच पंडवा पंडुस्स रण्णो जाव
तहात्ति पडिसुणेति सबलवाहणा ह्यगय० हत्थिणाउराओ पडि-
णिक्रखमंति पडिणिक्रखमित्ता जेणेव दक्खिणिह्ले वेयाली तेणेव उवा-
गच्छइ उवागच्छित्ता पंडुमहुरं नगरिं निवेसेति निवेसित्ता तत्थ
णं तेविपुलभोगसमिति समण्णागया यावि होत्था ॥ सू० ३२ ॥

टीका—‘ तएणं ते इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु ते पञ्च पाण्डवा यत्रैव
हस्तिनापुरं नगरं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य यत्रैव पाण्डू राजा तत्रैवोपागच्छन्ति,

—: तएणं ते पंच पंडवा इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते पंच पंडवा) वे पांचों पांडव (जेणेव
हत्थिणा उरे) जहां हस्तिनापुर नगर था (तेणेव उवागच्छंति) वहां

तएणं ते पंच पंडवा इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपधी (ते पंच पंडवा) ते पांचे पांडवो (जेणेव हत्थिणा
उरे) न्यां हस्तिनापुर नगर उतुं (तेणेव उवागच्छंति) त्यां आ०या (उवा-

उपागत्य करतलपरिगृहीतदशनखं शिरधावर्त मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा, एवं=वक्ष्य-
माणमकारेण, अथादिषुः-एवं खलु हे तात ! वयं कृष्णेन निर्विषयाः=विषयाद्
मम देशाद् वहिर्निर्गताः आज्ञप्ताः=कृष्णोऽस्मान् देशाद् वहिर्निर्गन्तुमाज्ञप्तवानि-
त्यर्थः । ततः खलु पाण्डू राजा तान् पञ्च पाण्डवान् एवमवादीत्-‘ कर्हणं’ कथं-
केन कारणेन खलु हे पुत्र ! वयं कृष्णेन निर्विषया आज्ञप्ताः ? ततः खलु ते
पञ्च पाण्डवाः पाण्डुं राजानम् एवमवदन्-एवं खलु हे तात ! वयममरकङ्कातः प्रति-
निवृत्ता लवणसमुद्रं ‘ दोन्निजोयणसय सहस्साइं ’ द्वियोजनशतसहस्राणि द्विलक्ष-
योजनपरिमितं ‘ वीह्वइत्ता ’ व्यतिव्रजिताः-उल्लङ्घिताः । ततः खलु स कृष्णो-

आगए (उवागच्छित्ता) वहां आकर के (जेणेव पंडू) वे जहां पांडु
राजा थे (तेणेव उवागच्छंति) वहां गये (उवागच्छित्ता) वहां जाकर
(करयल० एवं वयासी) उन्हों ने अपने २ दोनों हाथों कों जोड़कर उनसे
इस प्रकार कहा-(एवं खलु ताओ !) हे पिताजी ! सुनो-(अम्हे कर्हणं
णिन्विसया आणत्ता) हमलोगों को कृष्ण वासुदेव ने देश से निकल
जाने को कहा है (तएणं पंडुराया पंच पंडवे एवं वयासी) तब पांडु राजा
ने उन पांचों पांडवों से इस प्रकार कहा-(कर्हणं पुत्ता तुव्भे कर्हणं
वासुदेवेणं णिन्विसया आणत्ता) हे पुत्रो ! किस कारण को लेकर कृष्ण
वासुदेव ने तुमलोगों को देश से बाहिर निकल जाने को कहा है (तएणं
ते पंच पंडवा पंडुराया एवं वयासी) तब उन पांचों पांडवों ने पांडु
राजा से इस प्रकार कहा-(एवं खलु ताओ ! अम्हे अमरकंकाओ पडि-
णियत्ता लवणसमुद्रं दोन्नि जोयणसयसहस्साइं वीह्वइत्ता) हे तात !

गच्छित्ता) त्यां आवीने (जेणेव पंडू) तेओ त्यां पांडु राजा उता (तेणेव
उवागच्छंति) त्यां गया (उवागच्छित्ता) त्यां गधने (करयल० एवं वयासी)
तेमणे पोतपोताना ण ने हाथो नेडीने तेमने आ प्रभाणे विनंती करी डे
(एवं खलु ताओ) हे पिता ! सांभणे, (अम्हे कर्हणं णिन्विसया आणत्ता)
कृष्णवासुदेवे अभने देशथी णडार जता रडेवानी आत्ता आपी छे. (तएणं पंडु
राया पंच पंडवे एवं वयासी) त्यारे पांडु राजाओ पांचे पांडवोने आ प्रभाणे डधु
डे-(कर्हणं पुत्ता तुव्भे कर्हणं वासुदेवेणं णिन्विसया आणत्ता) हे पुत्रो !
कृष्णवासुदेवे शा डारण्थी तेमने देशमाथी णडार जता रडेवानी आत्ता आपी
छे ? (तएणं ते पंच पंडवा पंडुराया एवं वयासी) त्यारे ते पांचे पांडवोओ
पांडु राजाते आ प्रभाणे डधु डे-(एवं खलु ताओ ! अम्हे अमरकंकाओ पडि-
णियत्ता लवण-समुद्रं दोन्नि जोयणसयसहस्साइं वीह्वइत्ता) हे पिता ! सांभणे,

उस्मान् एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! गङ्गामहानदीमुत्तरत, यावत् तिष्ठत । ताव अहं एवं तद्देव ' जाव चिद्दामो ' एवं यथा कृष्णवासुदेवस्य वाक्यं पूर्वमुक्तं तथैवात्र बोध्यम्-तावदहं सुरिथतं लवणाधिपतिं पश्यामीति । ' जाव चिद्दामो ' यावत्तिष्ठामः-अत्र यावच्छब्देनैवं योजनीयम्-ततः खलु वयं कृष्णवासुदेवेनैवमुक्ताः सन्तो नौकया गङ्गामहानदीमुत्तीर्य, कृष्णो बाहुभ्यां गङ्गामहानदीमुत्तरितुं समर्थो न वेति विज्ञातुं तां नौकां संगोपितवन्तः, ततः कृष्णं प्रतीक्षमाणास्तिष्ठाम इति । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः सुस्थितं लवणाधिपतिं दृष्ट्वा, ' तं चेव सर्व्वं ' तदेव सर्व्वं-गङ्गामहानद्यास्तटे समागत्य, एकार्थिकां नाव-

सुनो-वान इस प्रकार है-जब हमलोग अमरकंका नगरी से पीछे आकर २, दो लाख योजन विस्तार वाले लवणसमुद्र को पार कर चुके (तएणं) तब (से कण्हे अम्हं एवं वयासी) उन कृष्ण वासुदेव ने हमलोगों से इस प्रकार कहा-(गच्छह णं तुव्मे देवाणुप्पिया । गंगा महानइं उत्तरह जाव चिद्दह-ताव-अहं एवं तद्देव जाव चिद्दामो) हे देवानुप्रियो ! तुम लोग चलो और गंगा महानदी को पारकरो-तब तक मैं सुस्थित देव से मिलकर और आज्ञा प्राप्तकर आता हूँ । कृष्ण वासुदेव द्वारा इस प्रकार आज्ञा हुए हमलोगों ने नौका से गंगा महानदी को पार करके वहीं पर उस नौका को छुपा दिया-इस अभिप्रायसे कि देखें कृष्ण वासुदेव अपने हाथों से तैर कर इस गंगा महानदी को पार कर ले में समर्थ हो सकते हैं या नहीं । नौका को छिपाकर हमलोग वहीं पर उनकी प्रतीक्षा करते हुए ठहरे । (तएणं से कण्हे वासुदेवे सुद्धियं लवणाहिवइं

वात आ प्रमाणे छे के न्यारे अमे अमरकंका नगरीथी पाछा वणतां २ लाख योजन नेटला विस्तारवाणा लवण समुद्रने पार करी थूक्या (तएणं) त्यारे (से कण्हे अम्हं एवं वयासी) ते कृष्णवासुदेवे अमने आ प्रमाणे कहुं के- (गच्छह णं तुव्मे देवाणुप्पिया ! गंगा महानइ उत्तरह जाव चिद्दह-ताव अहं एवं तद्देव जाव चिद्दामो) हे देवानुप्रियो ! तमे नत्थे अने गंगा-महानदीने पार करे तेटलामां हुं सुस्थित देवने मणीने अने तेमनी पासैथी आज्ञा मेणवीने आवुं छुं. आ प्रमाणे कृष्णवासुदेव वडे आज्ञापित थयेला अमे नौका वडे गंगा महानदीने पार करीने त्या न ते नौकाने छुपावी वीधी. नौकाने छुपाववा पाछण अमारो अ नतने आशय हुतो के कृष्णवासुदेव चोताना हाथैथी तरीने गंगा महानदीने पार करी शके छे के नडि ? नौकाने छुपावीने अमे त्यां न तेमनी प्रतीक्षा करता शकई गया. (तएणं से कण्हे वासुदेवे सुद्धियं

मदृष्ट्वा एकेन वाहुना रथं सतुरगं ससारथिं गृहीत्वा, एकेन वाहुना गङ्गामहानदीं मुत्तीर्य, समागतः । ' नवरं कण्हस्स चिन्ता न बुज्झइ ' नवरं कृष्णस्य चिन्ता न बुध्यते नवरं=विशेषस्तु हे तात ! नौकायां संगोपितायां सत्यां कृष्णः केनोपायेन गङ्गामहानदीं तरिष्यति इति चिन्ताऽस्माभिर्न बुध्यते=न क्रियतेस्म, अनेनापराधेन ' जाव अम्हे णिव्विसए आणवेइ ' यावत्-रथांश्चूर्णीकृत्याऽस्मान् निर्विषयान् आज्ञापयति । ततस्तदनन्तरं स पाण्डू राजा तान् पञ्चपाण्डवानेवमवादीत्- ' दुट्टुणं ' दुट्टु=भ्रशोभनं खलु हे पुत्राः ! तं युष्माभिः कृष्णस्य वासुदेवस्य विष्पियं ' विष्पियम्-अनिष्टम् कुर्वद्भिः, ततः खलु स पाण्डू राजा कुन्तीं देवीं शब्दयति, शब्दयित्वा, एवमवादीत्-गच्छ खलु त्वं हे देवानुप्रिये ! द्वारवतीं

ददृष्टुण तंचेव सव्वं-नवरं कण्हस्स चिन्ता न जुज्जति जाव अम्हे णिव्विसये आणवेइ) बाद में कृष्ण वासुदेव लवणसमुद्राधिपति सुस्थित देव से मिलकर ज्यों ही गंगा महानदी के तट पर आये-तो उन्हें वह नौका नहीं मिली-इस कारण वे ? एक हाथ से तुरग एवं सारथि युक्त रथ को ले दूसरे हाथ से गंगा महानदी को तैर कर जहां हमलोग थे-वहां आ गये । " कृष्णजी किस तरह गंगा महानदी को पार करेंगे " यह विचार हमवोगों ने नौका को छिपाते समय नहीं किया । इसी अपराध से उन्होंने ने हमारे रथों को चकना चूर कर देश से बाहिर निकल जाने के लिये आज्ञा दी है । (तएणं से पंडुराया ते पंच पंडवा एवं वयासी-दुट्टुणं पुत्ता ! कयं कण्हस्स वासुदेवस्स विष्पियं करेमाणेहिं-तएणं से पंडुराया कीर्तिं देविं सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुमं

लवणाहिरइं ददृष्टुण तं चेव सव्वं-नवरं कण्हस्स चिन्ता न जुज्जति जाव अम्हे णिव्विसये आणवेइ) त्थारपथी कृष्णवासुदेव लवण समुद्रना अधिपति सुस्थित-देवने मणीने त्थारे गंगा महानदीना किनारा उपर आव्या त्थारे तेमने नौका नडी नडि. त्थारे तेओ ओक हाथमां वोडा अने सारथि सहित रथने उथ-डीने भीज्ज हाथथी गंगा महानदीने तरीने न्थ्यां अमे हुता त्थ्यां आवी गया. ' कृष्णवासुदेव देवी रीते गंगा महानदीने पार करेशे " नौकाने छुपावतां अमे आ विषे विचार न करी नडोतो. आ अपराधथी तेमणे अमारा रथोने नष्ट करी नाअथा अने अमने देशनी पडार नता रडेवानी आज्ञा करी छे.

(तएणं से पंडुराया ते पंच पंडवे एवं वयासी-दुट्टुणं पुत्ता ! कयं कण्हस्स वासुदेवस्स विष्पियं करेमाणेहिं-तएणं से पंडुराया कीर्तिं देविं सदावेइ, सदा-

नगरीं, कृष्णस्य वासुदेवस्य निवेदय, एवं खलु हे देवानुप्रियाः । युष्माभिः पञ्च पाण्डवा निर्विषयाः देशनिष्कासिताः आज्ञाः, यूयं च खलु हे देवानुप्रियाः ! दक्षिणार्धभरतस्य स्वामिनः । ' तं ' तत्=तस्मात् संदिशन्तु=कथयन्तु हे देवानुप्रियाः ! ते पञ्च पाण्डवाः कतरां दिशं विदिशं वा गच्छन्तु ? भवतामेव सर्वे देशाः, तर्हि इमे कुत्र गमिष्यन्तीति कथयन्तु भवन्तः । ततः खलु सा कुन्ती पाण्डुना राज्ञैवगुक्ता सती हस्तिस्कन्धं दूरोहति-आरोहयति-दूख्य ' जहाहेद्वा '

देवाणुप्पिया ! वारवइं कण्हस्स वासुदेवस्स निवेदेहिं एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुम्हे पंच पंडवा णिव्विसया आणत्ता, तुमं च णं देवाणुप्पिया ! दाहिणडुभरहस्स सामी, तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! ते पंच पंडवा कयरं दिस्सि वा विदिसं वा गच्छंतु ?) तव पांडु राजा ने उन पांचों पांडवों से इस प्रकार कहा तुम लोगों ने यह सुन्दर काम नहीं किया जो इस प्रकार से कृष्ण वासुदेव का अनिष्ट किया-उन्हें नहीं रुचने वाला काम किया इस प्रकार कहकर पांडु राजा ने उसी समय कुन्ती देवी को बुलाया-बुलाकर उससे ऐसा कहा-हे देवानुप्रिये ! तुम द्वारावती नगरी में कृष्ण वासुदेव के पास जाओ और उनसे निवेदन करो -कि आपने पांच पांडवों को देश से बाहिर निकल जानेके लिये आज्ञा दी है-सो हेदेवानुप्रिय ! आप दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र के अधिपति हैं-अतः कहें कि वे कौनसी दिशा अथवा विदिशा की ओर जावें । जब आपके ही सर्व देश हैं-तो ये कहाँ जावें आर कहें । (तएणं सा कौन्ती

वित्ता एव वयांसी-गच्छइं णं तुमं देवाणुप्पिया ! वारव कण्हस्स वासुदेवस्स निवेदेहिं एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुम्हे पंच पंडवा णिव्विसया आणत्ता, तुमं च णं देवाणुप्पिया ! दाहिणडुभरहस्स सामी, तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! ते पंच पंडवा कयरं दिस्सि वा विदिसं वा गच्छंतु ?)

त्यारे पांडु राज्ञे ते पांचे पांडवोने आ प्रमाणे कहु के तमे लोकोञ्जे कृष्णवासुदेवतुं भुइं करीने साइं कथुं नथी तेमने अणुगमतुं काम तमे कथुं छे. आ प्रमाणे कहीने पांडु राज्ञे ते न वपते कुती देवीने भोलावी भोलावीने तेमने आ प्रमाणे कहुं के डे देवानुप्रिये ! तमे द्वारावती नगरीमां कृष्णवासुदेवनी पांसे लञ्जे अने तेमने त्रिनंती करे के तमे पांचे पांडवोने देशथी अहार नीकणी नवानी आज्ञा आपी छे. डे देवानुप्रिय ! तमे दक्षिणार्ध भरतक्षेत्रना अधिपति छे तो भतावो के तेञ्जे कथ दिशा के विदिशा तरइ लय. न्यारे अथा देशो तभारा न छे त्यारे भतावो के आ लोको कथां लय ?

यथा अधः, यथापूर्वं द्वारवतीमागता तथाऽत्रापि बोध्यम् यावत् संदिशन्तु—अत्र यावदित्यनेनैवं बोध्यम्—द्वारवतीं नगरीमागत्य कृष्णेन सत्कृता स्नाता कृतभोजना-सुखासनवसगताऽभवत् इति, ततस्तां कृष्णः पृच्छति संदिशन्तु=रुथयन्तु खलु हे

पंडुणा एव वृत्ता समाणी, हृत्थिखंधं दुरुहइ, दुरुहत्ता जहा हेट्टा जाव संदिसंतु णं पिउत्था । किमागमणपओयणं ? तएणं सा कोती कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु पुत्ता ! तुमे पंच पंडवा णिव्विसया आणत्ता, तुमं च णं दाहिणडु भरह जाव विदिसं वा गच्छंतु ? तएणं से ऋणहे वासुदेवे कोतीदेविं एवं वयामी अपूर्इवयणा णं पिउत्था ! उत्तम पुरिसा वासुदेवा, बलदेवा, चक्रवट्टी तं गच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! पंच पंडवा दाहिणिल्लं वेलाउलं तत्थ पंडुमहुरं णिव्वेसंतु ममं अदिट्ठसेवगा भवंतु त्ति कट्टु कोतीदेविं सक्कारेइ, सम्माणेइ, जाव पडिदिसज्जेइ) पांडु के द्वारा इस प्रकार कही गई वह देवी हाथी पर चढ़ी और चढ़ कर जिस प्रकार पहिले यह द्वारवती आई थी उसी तरह अब भी यह वहां पहुँची । यहां यावत् शब्द से इस प्रकार पाठका संबंध लगा लेना चाहिये—जब कुंती द्वारवती नगरी में आई—तब कृष्ण वासुदेवने उनका खूब मनमाना सत्कार किया । बड़े ठाट वाट से उनका प्रवेशोत्सव मनाया—) कुंतीने स्नान आदि दैनिक कार्यों से निवृत्त कर आनंद के साथ चतुर्विध आहार किया बाद में विश्राम के निमित्त सुखासन पर

(तएणं सा कोती पंडुणा एवं वृत्ता समाणि, हृत्थिखंधं दुरुहइ, दुरुहत्ता जहा हेट्टा जाव संदिसंतु णं पिउत्था । किमागमणपओयणं ? तएणं सा कोती कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु पुत्ता ! तुमे पंच पंडवा णिव्विसया आणत्ता, तुमं च णं दाहिणडु भरह जाव विदिसं वा गच्छंतु ? तएणं से कणहे वासुदेवे कोती देविं एवं वयासी—अपूर्इ वयणा णं पिउत्था उत्तमपुरिसा देवा, बलदेवा, चक्रवट्टी तं गच्छंतु ण देवाणुप्पिया ! पंच पंडवा दाहिणिल्लं वेलाउलं तत्थ पंडुमहुरं णिव्वेसंतु ममं अदिट्ठसेवगा भवंतु त्ति कट्टु कोती देविं सक्कारेइ, सम्माणेइ, जाव पडिदिसज्जेइ)

आ प्रभाषे पांडु वडे आसापित थयेवी कुंतीं देवी हाथी उपर सवार थर्थ अने सवार थर्थने पडेवां जेम ते द्वारवती नगरी गछ छती तेमज्ज अत्थारे पणु पडेवांथी. अडी यावत् शण्डथी आ जतने पाठ समज्जे जेधंजे डे ल्यारे कुंती द्वारवती नगरीमां आवी त्यारे कृष्णवासुदेवे तेमने भूमज्ज अन्कार इथी णडु व हाथी तेमने प्रवेशोत्सव उज्जेयो. कुंतीजे पणु स्नान वगेरे नित्यकमेथी परवारीने सुजेथी चतुर्विध आहार इथी. त्यारपणी विश्राम

पितृष्वसः ! किमागमनप्रयोजनम् ? ततः खलु सा कुन्ती कृष्णं वासुदेवमेवमवादीत्—एवं खलु हे पुत्र ! त्वया पञ्च पाण्डवा निर्धिषया आज्ञताः त्वं च खलु दक्षिणार्धभरतस्य यावत् स्वामी, तत् कथय ते पञ्च पाण्डवाः कतरां दिशं विदिशं वा गच्छन्तु ? । ततः खलु स कृष्णो वासुदेवः कुन्तीं देवीमेवमवादीत्—‘अपूङ्गवयणा णं’ अपूतिवचनाः=सकृद्वचनाः खलु हे पितृष्वसः ! उत्तमपुरुषाः वासुदेवा बलदेवाश्चक्रवर्तिनः, ‘त’ तत्-तस्मात् गच्छन्तु खलु हे देवानुप्रिये ! पञ्च पाण्डवाः ‘दाहिणिल्लं’ वेलाऊलं’ दक्षिणात्यं वेलाकूलं—दक्षिणसमुद्रतटम्, तत्र ‘पंडुमहुरं’ पाण्डुमथुरां नगरीं ‘णिवेसंतु’ निवेशयन्तु, समादृष्टसेवका भवन्तु,

उन्होंने आराम किया । इतने में कृष्ण वासुदेव ने जब वे विश्राम कर चुकीं उन से पूछा—रुहिये भुआ जी ! किस प्रयोजन को लेकर यहाँ आपका आगमन हुआ है तब कुन्ती ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा हे पुत्र ! आनेका प्रयोजन इस प्रकार है—तुमने जो पाँचों पांडवों को अपने देश से बाहिर निकल जाने की आज्ञा दी है—सो इस विषय में यह पूछना है कि तुम तो दक्षिणार्ध भरत के अधिपति हो अतः हमें समझाइये कौनसी दिशा या विदिशा में जावें ? इस प्रकार कुन्तीदेवीके मुखसे सुनकर कृष्ण वासुदेव ने उससे ऐसा कहा—हे भुआ जी—उत्तम पुरुष, वासुदेव, बलदेव, एवं चक्रवर्ती ये सब अपूतिवचन वाले होते हैं—जो कुछ कहते हैं वह एक ही बार कहते हैं—उसमें परिवर्तन नहीं होता है—इसलिये हे देवानुप्रिय ! पाँचों पांडव दक्षिणसमुद्र पर जावें और वहाँ पांडु मथुरा नगरी को बसावें—स्थापित करें—और मेरे अदृष्ट सेवक

भाटे तेमणे सुभासान उपर आराम कर्यो न्यारे तेजो सारी रीने विश्राम करी चूक्या त्यारे तेमने कृष्णवासुदेवे पूछ्युं के—भाढो, झेधणा, शा काण्ठुथी तमे अर्धी पधार्या छो ! त्यारे कुन्तीजे कृष्णवासुदेवने आ प्रभाणे कहुं के छे पुत्र ! हुं अेटवा भाटे आवी छुं के तमे पांचे पांडवेने पोताना देशमांथी षडार नीकणी नवानी आज्ञा करी छे तो आ विषे भारे आ वातनुं अपधी-करणु करवुं छे के तमे तो दक्षिणार्ध भरतना अधिपति छो, तो आवी परि-स्थितिमां तमे न अमने अतावे के तेजो कथ दिशा के विदिशा तरङ्ग नय ? आ प्रभाणे कुन्ती देवीना सुभथी अधी वान सांभणीने कृष्णवासुदेवे तेमने आ प्रभाणे कहुं के छे झेधणा ! वासुदेव, अणदेव अने चक्रवर्ती आ अधा उत्तम पुरुषो अपूति वचनवाणा होय छे—तेजो ने क'ध'पणु कडे छे ते अेकन वार कडे छे तेमां क'ध' पणु नतने झेरकार थध शकतो नथी. अेटवा भाटे छे देवानुप्रिये ! पांचे पांडवे दक्षिण समुद्र तरङ्ग नय अने त्यां पांडु मथुरा

इति कृत्वा कुन्तीं देवीं सत्कारयति संमानयति, सत्कार्यं, संमान्य यावद् विसर्ज-
यति । ततः खलु सा कुन्ती देवी हस्तिनं समाख्य हस्तिनापुरमागता यावत् पाण्डो
राज्ञ एतमर्थं निवेदयति । ततः खलु पाण्डु राजा पञ्च पाण्डवान् शब्दयति शब्द-
यित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे पुत्राः ! ' दाहिणिल्लं वेलाऊलं ' दाहि-
णात्यवेलाऊलं-दक्षिणसमुद्रतटं, तत्र खलु यूयं पाण्डुमथुरां नगरीं निवेशयत ।

होकर रहे । इस प्रकार कहकर उन्होंने ने कुन्तीदेवी का सत्कार किया
सन्मान किया । सत्कार सन्मान करके फिर उन्हें अपने यहां से विदा
दिया । (तएणं सा कौंती देवी जाव पंडुस्स एयमट्ठं निवेदेह, तएणं पंडू
पंच पंडवे सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुव्भे पुत्ता ! दाहि-
णिल्लं वेलाऊलं तत्थणं तुव्भे पंडुमहुरं णिवेसेह तएणं पंच पंडवा पंडुस्स
रण्णो जाव तहत्ति पडिस्सुणेंति, सबलवाहणा ह्य गज० हत्थिणाउराओ
पडिणिकखमंति, पडिणिकखमित्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वेयाली तेणेव उवा-
गच्छह, उवागच्छित्ता पंडुमहुरं नगरिं णिवेसेंति, निवेसित्ता तत्थ णं ते
विउलभोगसमितिसमण्णागया यावि होत्था) वहां से हाथी के ऊपर बैठ
कर कुन्तीदेवी हस्तिनापुरमें आ गई, यावत् पांडुराजासे कृष्णवासुदेव के
कथितआदेश को उन्होंने ने सुना दिया । इसके बाद पांडु राजा ने पांचों
पांडवों को बुलाया-और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा-हे पुत्रों-तुम
यहां से दक्षिण दिग्बर्नी समुद्र तट पर जाओ और वहां पांडु मथुरां

नगरीने वसावे अने भारा अक्षय सेवडे थधने त्या निवास करे. आ प्रभाणे
धडीने तेमणे कुंती देवीने सत्कार करी अने सन्मान करुं. सत्कार तेमज
सन्मान करीने तेमणे कुंतीदेवीने त्यांथी विदाय करीं.

(तएणं सा कौंती देवी जाव पंडुस्स एयमट्ठं निवेदेह, तएणं पंडू पंच पंडवे
सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुव्भे पुत्ता ! दाहिणिल्लं वेलाऊल
तत्थणं तुव्भे पंडुमहुरं णिवेसेह तएणं पंच पंडवा पंडुस्स रण्णो जाव तहत्ति पडि
स्सुणेंति, सबलवाहणा ह्य गज० हत्थिणाउराओ पडिणिकखमंति, पडिणिकखमित्ता
जेणेव दक्खिणिल्ले वेयाली तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता पंडुमहुरं नगरिं
णिवेसेंति निवेसित्ता, तत्थणं ते विउलभोगसमितिसमण्णागया यावि होत्था)
त्यांथी हाथी ऊपर सवार थधने कुंतीदेवी हस्तिनापुर आवी गयां. यावत्
कृष्णवासुदेवनी ने कथ आजा इती ते पांडु राजाने कडी संलग्गावी. त्थारपछी
पांडु राजाने पांचे पांडवाने बोलाव्या अने बोलावीने तेमने आ प्रभाणे
कहुं हे हे पुत्रा ! तमे अडींथी दक्षिण दिशा तरङ्गना समुद्रना तिनारा ऊपर
जाओ अने त्यां पांडु-मथुरा नगरीने वसाओ. पिता पांडु राजानी आ प्रभाणे

ततः खलु पञ्च पाण्डवाः पाण्डो राज्ञो वचनं यावत्-‘ तहत्ति ’ तथाऽस्तु ’ इति कृत्वा प्रतिश्रृण्वन्ति = स्त्रीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य सवलत्राहनाः-सैन्ययानसहिताः, हयगजरथपदातिसंपरिवृताः, हस्तिनापुरात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रनिनिष्क्रम्य यत्रैव ‘ दाहिणिल्लं वेलाऊलं ’ दाक्षिणात्यं वेलाकूल तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य पाण्डुमथुरां नगरीं निवेशयन्ति निवेश्य तत्र खलु ते विपुलभोगसमिति समत्वा-गताश्चाप्यभवन् ॥ सू०३२ ॥

मूलम्-तएणं सा दोवई देवी अन्नया कयाइं आवणसत्ता जाया यावि होत्था, तएणं सा दोवई देवी णवणहं सासाणं जाव सुहवं दारगं पयाया सूमालणिव्वत्तवारसाहस्स इमं एयारुवं गुणनिष्फन्नं नामधिज्जं करेति जम्हाणं अम्हं एस दारए पंचणहं पंडवाणं पुत्ते दोवईए अत्तए तं होउ अम्हं इमस्स दारगस्स णमधेज्जं पंडुसेणै, तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधेज्जं करेति पंडुसेणत्ति, वावत्तरिं कलाओ जाव भोगसमत्थे जाए जुवराया जाव विहरइ, थेरा समो-सढा परिसा निग्गया पंडवा निग्गया धम्मं सोच्चा एवं जं णवरं देवाणुप्पिया ! दोवईं देविं आपुच्छामो पंडुसेणं च

नगरी को वसाओ । पिता पांडु राजा की इस आज्ञा को उन पांचों पांडवों ने “ तहत्ति ” कहकर स्वीकार कर लिया । स्वीकार करके फिर वे हय, गज, रथ, एवं पदातिरूप चतुरंगिणी सेना से परिवृत्त होकर हस्तिनापुर नगर से निकले और निकलकर जहां दाक्षिणात्य वेलाकूल था वहां आये-वहां आकर उन्होंने ने पांडु मथुरा नगरी को वसाया । वसाकर वहां के विपुल भोगों को भोगते हुए रहने लगे ॥ सू०३२ ॥

आज्ञाने ते पांचे पांडवोऽपि “ तहत्ति ” कहीने स्वीकारी लीधी. स्वीकार करीने तेऽपि घोडा, हाथी, रथ अने पायदणवाणी चतुरंगिणी सेनानी साथे हस्तिनापुर नगरथी भंडार नीकल्या-अने नीकलीने नयां दक्षिण दिशाने समुद्रने किनारे डते। त्यां पडोऽपि, त्यां पडोऽपिने तेभणु पांडु-मथुरा नगरी वसावी. वसावीने तेऽपि त्यां युष्कण कामभोगो भोगवतां रहेवा लाग्या. ॥ सूत्र ३२ ॥

कुमारं रज्जे ठावेसो तओ पच्छा देवाणुप्पिया ! अंतिए मुंडे
 भवित्ता जाव पव्वयामो, अहासुहं देवाणुप्पिया !, तएणं
 ते पंच पंडवा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ उवाग-
 च्छित्ता दोवइं देविं सदावेति सदावित्ता एवं वयासी—एवं
 खल्लु देवाणुप्पिया ! अस्हेहिं थेराणं अंतिए धम्मं णिसंते
 जाव पव्वयामो तुमं देवाणुप्पिए ! किं करेसि ?, तएणं सा
 दोवइं देवी ते पंच पंडवे एवं वयासी—जइणं तुव्वभे देवाणु-
 प्पिया ! संसारभउव्विग्गा पव्वयह ममं के अण्णे आलंवे
 वा जाव भविस्सइ ?, अहंपि य णं संसारभउव्विग्गा देवा-
 णुप्पिएहिं सच्चिं पव्वइस्सामि, तएणं ते पंच पंडवा पंडुसे-
 णस्स अभिसेओ राधा जाए जाव रज्जे पसाहेमाणे विहरइ,
 तएणं ते पंच पंडवा दोवइं य देवी अन्नया कयाइं पंडुसेणं
 राधाणं आपुच्छंति, तएणं से पंडुसेणं राधाकोडुंवियपुरिसे
 सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो ! देवाणु-
 प्पिया ! निक्खमणाभिसेयं जाव उवट्टवेह पुरिससहस्सवाहि-
 णीओ सिवियाओ जाव पच्चोरुहंति पच्चोरुहित्ता जेणेव थेरा
 तेणेव० आलित्ते णं जाव ससणा जाया चोहस्स पुव्वाइं अहि-
 ज्जंति अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि छट्टट्टमदसमदुवालसेहिं
 मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ॥सू०३२॥

टीका—‘ तएणं सा ’ इत्यादि । ततः खलु सा द्रौपदीदेवी अन्यदा कदा-
चित् ‘ आवणसत्ता ’ आपन्नसत्त्वा=गर्भवती जाता चाप्यभवत् । ततः खलु सा
द्रौपदीदेवी नवसु मासेषु संपूर्णेषु सार्धाष्टमदिवसेषु व्यतिक्रान्तेषु सत्सु यावत्
सुरूपं सुन्दरं दारकं=बालकं ‘ पयाया ’ प्रजाता=प्रजनितवती, किं भूतं दारकं-
सूमाल=सुकुमारपाणिपादं, ‘ णिव्वत्तवारसाहस्स ’ निर्द्वत्तद्वादशाहस्स-संप्राप्त
द्वादशदिवसस्य दारकस्य इदमेतद्रूपं गुणनिष्पन्नं नामधेयं कुर्वन्ति यस्मात् खलु
अस्माकमेष दारकः पञ्चानां पाण्डवानां पुत्रो द्रौपद्या आत्मजः, ‘ तं ’ तत्-तस्माद्

-:तएणं सा दोवई देवी इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (सा दोवई देवी) वह द्रौपदीदेवी (अन्नया
कयाइं) किसी एक समय (आवणसत्ता जाया यावि होत्था) गर्भा-
वस्थासे संपन्न हुई । (तएणं सा दोवई देवी णवणहं मासाणं जाव सुरूपं
दारगं पयाया) जब गर्भ ९ नौमास ७॥ दिन का हो गया तब उस
द्रौपदी देवी ने पुत्र को जन्म दिया । यह बालक बहुत ही अधिक
सुन्दर था । (सूमालणिव्वत्तवारसाहस्सइमं एयारुवं गुणनिष्पन्नं
नामधिज्जं करेति जम्हाणं अम्हं एस दारए पंचणहं पंडवाणं पुत्ते दोवईए
अत्तए तं होउ अम्हं इमस्स दारगस्स णामधेज्जं पंडुसेणे) इसके करच-
रण आदि अवयव सब ही अधिक सुकुमार थे । जब बारहवां दिन लगा
-तब माता पिताओं ने इस पुत्र का गुणनिष्पन्न होने से यह नाम रक्खा
यस्मात्-यह पुत्र हम पांचो पांडवों का है तथा द्रौपदी की कुक्षि से

तएणं सा दोवई देवी इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (सा दोवई देवी) ते द्रौपदी देवी (अन्नया कयाइं)
केअं अेअ वअते (आवणसत्ता जाया यावि होत्था) सगर्भा थअं. (तएणं
सा दोवई देवी णवणहं मासाणं जाव सुरूपं दारगं पयाया) न्थारे गअं नव
मास ७॥ दिवसनेो थअं गयेो त्थारे ते द्रौपदी देवीअे पुत्रने जन्म आअेो,
ते आणअ भूअ न सुन्दर अंतु.

(सूमालणिव्वत्तवारसाहस्स इमं एयारुवं गुणनिष्पन्नं नामधिज्जं करेति,
जम्हाणं अम्हं एसदारए पंचणहं पंडवाणं पुत्ते दोवईए अत्तए तं होउ अम्हं इमस्स
दारगस्स णामधेज्जे पंडुसेणे)

तेना हाथ पग वगेरे अथा अवयवो भूअ न सुकोमण अंता. न्थारे
आरमेो दिवस आअेो त्थारे माता-पिताअे ते पुत्रअं नाम तेना गुणो विअे
विअार करतां आ प्रभाणु राअ्थुं अे आ पुत्र अमारा पांअे पांडवोनेो अे,

भवन्तु अस्माकमस्य दारकस्य नामधेयं ' पाण्डुसेन ' इति । ततः खलु तस्य दारकस्याम्बापितरौ नामधेयं कुर्वन्ति—'पाण्डुसेन ' इति । ' वावत्तरिं कलाओ ' द्वासप्ततिं कलाः शिक्षिताः, यावद् भोगसमर्थो जातः, राजकन्यां परिणीय युवराजो यावत् मनुष्यकान् भोगान् भुञ्जानो विहरति—आस्ते ।

उत्पन्न हुआ है—अतः हमारे इस पुत्र का नाम पांडुसेन होना चाहिये (तएणं तस्म दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेत्ति पंडुसेणत्ति) इस ख्याल से उन्होंने ने उस नवजात पुत्र का नाम पांडुसेन रख दिया । (वावत्तरिं कलाओ जाव भोगसमत्थे जाए जुवराया जाव विहरइ थेरा समोसढा, परिसा निग्गया, पंडवा निग्गया, धम्म सोच्चा एवं वयासी जं णवरं देवानुप्पिया ! दोवइं देविं आपुच्छामो पंडुसेणं च कुमारं रज्जे ठावेमो तओ पच्छा देवानुप्पिया ! अंतिए सुंढे भवित्ता जाव पव्वयामो) पांडुसेन कुमार को ७२ कलाओं में निपुण बनाने के लिये माता पिताने उसे कलाचार्य के पास भेज दिया । धीरे २ वह ७२, कलाओं में निष्णात बन गया । यावत् भोग भोगने के लायक अवस्था संपन्न भी हो गया । राजकन्याओं के साथ इसका वैवाहिक संबन्ध कर के पिताओं ने, इसे युवराज पद प्रदान भी कर दिया—यावत् यह मनुष्यभव संबन्धी काम सुखों को अनुभव करता हुआ अपने समय को आनन्द के साथ

तेमञ्च द्रौपदी देवीना गर्लथी तेनो जन्म थये छे, छेटला भाटे अमार आ पुत्रतुं नाम पांडुसेन छोवुं लेछये.

(तएणं तस्म दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेत्ति पंडुसेणत्ति)
आ त्थिरथी तेमञ्छे ते नवज्जन पुत्रतुं नाम पांडुसेन राभ्युं.

(वावत्तरिं कलाओ जाव भोगसमत्थे जाए जुवराया जाव विहरइ, थेरा समोसढा, परिसा निग्गया, पंडवा निग्गया, धम्म सोच्चा एवं वयासी जं णवरं देवानुप्पिया ! दोवइं देविं आपुच्छामो पंडुसेणं च कुमारं रज्जे ठावेमो तओपच्छा देवानुप्पिया ! अंतिए सुंढे भवित्ता जाव पव्वयामो)

पांडुसेन कुमारने ७२ कलाओमां निपुणु णनाववा भाटे मातापिताओओ कलाआर्यनी पासो भोक्कथेओ आम धीमे धीमे ते ७२ कलाओमां निष्णात णनी गथेओ. यावत् ते संसारना लोको लोकाववा योग्य अवस्थावाणो पणु थछ गथेओ. राजकन्याओनी साथे लसो करवीने पिताओओ तेने युवराज पद पणु सोंपी दीधुं. यावत् ते मनुष्य-भव संबन्धी कामसुखोने अनुभवतेओ. पिताना वधतने सुखेथी पसार करवा लाग्थेओ. ओक वधतनी वात छे के पांडु-भथुरा नगरीमां

अथ कदाचित् तत्र—‘थेरा समोसङ्गा’ स्थविराः समवसृताः, परिपन्निर्गता, पाण्डवा अपि स्थविराणां वन्दनार्थं निर्गताः, धर्मं श्रुत्वा ते पाण्डवाः प्रतिबुद्धाः सन्त एवमदन्—यत् नवरं हे देवानुप्रियाः द्रौपदीं देवीमापृच्छामः, पाण्डुसेनं च कुमारं राज्ये स्थापयामः, ततः पश्चात् देवानुप्रियाणामन्तिके गुण्डाभूत्वा यावत् प्रव्रजामः प्रव्रज्यां गृहीमः, तदा स्थविरा ऊचुः—‘अहासुहं देवानुप्पिया !’ हे देवानुप्रियाः यथासुखं=सुखं यथा भवति तथा कुरुत, अलं विलम्बेन, इति भावः । ततः खलु ते पञ्च पाण्डवा यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य द्रौपदीं देवीं शब्दयन्ति, शब्दयित्वा, एवमवदन्—एवं खलु हे देवानुप्रिये ! वयं स्थविरा-

व्यतीत करने लगा । एक समय की बात है कि पाण्डु मथुरा नगरी में स्थविरों का आगमन हुआ । स्थविरों का आगमन सुनकर नगरी का समस्त जन उनकी वंदना एवं धर्मोपदेश सुनने के निमित्त अपने-अपने घर से निकले पांचों पाण्डव भी निकले—परिषद् को आयी हुई देखकर स्थविरों ने उसे धर्म का उपदेश दिया । उपदेश श्रवण कर परिषद् पीछे चली गई । पाण्डव लोग उस धर्म के उपदेश का पानकर प्रतिबोध को प्राप्त हो गये—उसी समय उन्होंने उन स्थविरों से कहा—हे देवानुप्रियों ! हमलोग द्रौपदी देवी को पूछकर और पाण्डुसेन कुमार को राज्य में स्थापित कर आप देवानुप्रियों के समीपसुंडित होकर यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहते हैं । पाण्डवों की इस प्रकार हार्दिक भावना देखकर उन स्थविरों ने पाण्डवों से इस प्रकार कहा—(अहासुहं देवाणुप्पिया ! तएणं ते पंच पंडवा जेणेव सएगिहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोवइं देविं सदावेति, सदावित्ता एवं वयासी एवं खलु देवणुप्पिया !

स्थविरा पधार्या स्वविरोना आगमननी जणु थता नगरीना अथा लोके तेमनी वंदना तेमज तेमनी पासेथी धर्मोपदेश सांलणवा भाटे पोतपोताना घेरथी निकल्या, पांचे पांडवे पणु त्यां पडोअथा परिषदने आवेडी जेधने स्थविराजे धर्मने उपदेश आप्थे. उपदेश सांलणीने परिषद जती रही पांडवे ते धर्मने उपदेश सांलणीने प्रतिपोधित थध गया. तेमणे तेज समये स्थविरा ने विनंती करतां कहुं के हे देवानुप्रिये ! अमे द्रौपदी देवीने पूछी तेमज पाण्डुसेन कुमारने राज्यासने अलिषिक्त करीने तमारी पासे सुंडित थधने यावत् प्रव्रज्या अडणु करवानी अलिषावा राभीजे छीजे. पांडवानी आ जतनी डाहिंके धर्या जणुने ते स्थविराजे ते पांचे पांडवेने आ प्रभाणे कहुं के—

(अहासुहं देवाणुप्पिया ! तएणं ते पंच पंडवा जेणेव सए गिहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोवइं देविं सदावेति, सदावित्ता एवं वयासी, एवं

णामन्तिके धर्मं श्रुतवन्तो यावत् प्रव्रजामः, त्वं हे देवानुप्रिये ! किं करोषि किं करिष्यसि ? । ततः खलु सा द्रौपदी तान् पञ्च पाण्डवान् एवमवादीत्-यदि खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! संसारभयोद्विग्नाः=जन्ममरणादि दृखाद् भीताः सन्तो यावत् प्रव्रजथ, मम कोऽन्य आलम्बो वा यावद् भविष्यति ?, अहमपि च खलु संसारभयोद्विग्ना देवानुप्रियैः सार्धं प्रव्रजिष्यामि, ततः खलु ते पञ्च पाण्डवाः पाण्डुसेनस्य अभिषेकं=राज्याभिषेकं कृत्वा स्वराज्ये स्थापितवन्तः, यावद् राजा जातः, यावद् राज्यं प्रमादयन्=पालयन् विहरति=आस्तेस्म ।

अम्हेहि धैराणं अंति ए धम्मं णिसंते जाव पव्वयामो-तुमं देवाणुप्पिए ! किं करेसि) हे देवानुप्रियों ! जिस प्रकार तुम्हें सुख मिले वैसा तुम करो ! अच्छे काम में विलम्ब मत करो । इसके बाद-वे पांचों पांडव जहाँ अपना घर था वहाँ आये-वहाँ आकर के उन्होंने ने द्रौपदी देवी को बुलाया-बुलाकर उससे ऐसा कहा-हे देवानुप्रिये ! सुनो वान इस प्रकार है-हमलोगों ने स्थविरोंके पास धर्मका श्रवण किया है । अतः हमलोगों की भावना मुंडित होकर उनके पास प्रव्रजित होने की है । अब-तुम्हारी भावना क्या है-हे देवानुप्रिये कृपे तुम हमारे बाद क्या करोगी-(तएणं सा दोवई देवी ते पंच पंडवे एवं वयासी-जइ णं तुव्भे देवाणु प्पिया ! संसारभउद्विग्गा पव्वयह ममं के अण्णे आलंबे वा जाव भविस्सह ? अहं पि य णं संसारभउद्विग्गा देवाणुप्पिएहिं सद्धिं पव्वहस्सामि, तएणं ते पंच पंडवा पंडुसेणम्म अभिसेओ जाव राया जाए, जाव रज्जं पसाहे खलु देवाणुप्पिया । अम्हेहि धैराणं अंति ए धम्मं णिसंते जाव पव्वयामो तुमं देवाणुप्पिए ! किं करेसि)

हे देवानुप्रिये ! जेम तमने भुण्ण भणे तेम करे, सारा काममां भोडुं करे नडि त्थारपणी तेओ पाचे पाडवे न्यां पे तानुं धर उतुं त्यां आंया. त्यां आवीने तेमणे द्रौपदी देवीने बोलावी. बोलावीने तेने आ प्रमाणे कहुं हे देवानुप्रिये ! सावणे, वात जेनी छे के अमोअे स्थविरानी पसेथी धर्मनुं श्रवणुं करुं छे, जेटला भाटे अमारी छंछा मुंडित धधने तेमनी पसेथी प्रव्रज्या अडणु करवानी छे उवे तमारी शी छंछा छे ? हे देवानुप्रिये ! अमने कडे. अमे प्रव्रज्या अडणु करी लडणुं त्थारणाह तमे शुं करेशे ?

(तएणं सा दोवई देवी ते पंच पंडवे एवं वयासी-जइणं तुव्भे देवाणुप्पिया ! संसारभउद्विग्गा पव्वयह, ममं के अण्णे आलंबे वा जाव भविस्सह ? अहं पि य णं संसारभउद्विग्गा, देवाणुप्पिएहिं सद्धिं पव्वहस्सामि, तएणं ते पंच पंडवा पंडुसेणस्स अभिसेओ जाव राया जाए, जाव रज्जं पसाहेमाणे विहरइ)

ततः खलु ते पञ्च पाण्डवा द्रौपदी च देवी अन्यदा कदाचित् पाण्डुसेन राजा-
नमापृच्छन्ति, ततः खलु स पाण्डुसेनो राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्द-
यित्वा, एवमवादीत्-क्षिप्रमेव भो ! देवानुप्रियाः ! निष्क्रमणाभिषेकं=दीक्षोपयोग-
वस्तूनि यावद् उपस्थापयत, पुरुषसहस्रवाहिनीः शिविका उपस्थापयत, ' यावत्
प्रत्यवरोहन्ति=अत्र यावच्छब्देनेदं बोध्यम्, ततः पाण्डुसेनस्य राज्ञोवचनमाकर्ण्य ते

माणे विहरइ) इस प्रकार पांडवों का कहना सुनकर द्रौपदी देवी ने
उन पांचों पांडवों से इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियों ! तुमलोग यदि
संसार भय से उद्विग्न होकर प्रव्रजित होना चाहते हो, तो फिर मेरे
लिये आप के सिवाय और कौन दूसरा आलंबन अथवा आधार होगा ।
अतः मैंभी आप देवानुप्रियों के साथ संसार भय से उद्विग्न होकर
दीक्षित होऊँगी । इस प्रकार द्रौपदी देवी का कथन सुनकर उन पांचों
पांडवों ने पाण्डुसेन कुमार का राज्याभिषेक करके उसे राज्यपद में स्था-
पित किया । इस तरह पांडुकुमार राजा हो गया । यावत् राज्य का वह
अच्छी तरह पालन करने लगा । (तएणं ते पंच पंडवा दोवईय देवी
अन्नया कयाइं पंडुसेणरायाणं आपुच्छंति, तएणं से पंडुसेणे राया कोडुं-
विय पुरिसे सदावेह, सदावित्ता, एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणु-
प्पिया ! निक्खमाणाभिसेयं जाव उवट्टवेह, पुरिससहस्सवाहणीओ
सिवियाओ उवट्टवेह, जाव पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्तां जेणेव थेरा उवा-

आ प्रभाण्णे पांडवोनुं कथन सांभणीने द्रौपदी देवीअे ते पांचे पांडवोने
आ प्रभाण्णे कहुं के डे देवानुप्रियो ! तभे न्यारे संसारलयथी उद्विअ थधने
प्रवन्त्या थडणु करवा धरुछे छे त्यारे तभारा वगर भारा भाटे आ संसारभां
धीणुं क्यु आलंभन अथवा तो भीजे कथे आधार थरे ? अेटला भाटे हुं
पणु तभारी साथे संसारभयथी उद्विअ थधने दीक्षा थडणु करवा धरुछुं छुं.
आ प्रभाण्णे द्रौपदी देवीनुं कथन सांभणीने ते पांचे पांडवोअे पांडुसेन कुमारने।
राज्याभिषेक करीने तेने राज्यासने जेसाडी दीघे। आ प्रभाण्णे पांडुसेन कुमार
राज थध गथे यावत् ते राज्यानुं सारी रीते रक्षणु करवा लाग्ये..

(तएणं ते पंच पंडवा दोवईय देवी अन्नया कयाइं पंडुसेणरायाणं आपुच्छंति,
तएणं से पंडुसेणे राया कोडुं वियपुरिसे सदावेह, सदावित्ता एवं वयासी, खिप्पामेव
भो देवाणुप्पिया ! निक्खमाणाभिसेयं जाव उवट्टवेह, पुरिससहस्सवाहणीओ
सिवियाओ उवट्टवेह, जाव पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता जेणेव थेरा तेणेव उवाग०
आलित्तेणं जाव समणा जाया, चोदस्सपुव्वाइं अहिज्जंति, अहिज्जित्ता वहूणि

कौटुम्बिकपुरुषास्तथास्तु ' इत्युक्त्वा तथैव यावदुपस्थापयन्ति, तदा ते पञ्च पाण्डवाः पुरुषसहस्रवाहिनीः शिविका आरूढ्य, पाण्डुमथुराया नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य शिविकाभ्यः प्रत्यवरोहन्ति=प्रत्यवतरन्ति । प्रत्यवरूढ्य, 'जेणेव' यत्रैव स्थविरास्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य एवमवादिषुः—' आलित्ते णं जाव समणा

गच्छइ आलित्तेणं जाव समणा जाया, चोइसपुठ्वाइं अहिज्जंति, अहिज्जित्ता, बहूणि वासाइं छट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति) इसके बाद पांचो पांडवों ने और द्रौपदी देवी ने किसी एक समय पाण्डुसेन राजा से दीक्षित होने के लिये पूछा । तब पाण्डुसेन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया बुलाकर उनसे ऐसा कहा—भो देवानुप्रियो ! तुमलोग शीघ्र ही दीक्षा में उपयोग आनेवाली वस्तुओं को लाकर उपस्थित करो—तथा पुरुष सहस्रवाहिनी शिविकाओं को भी उपस्थित करो—इस प्रकार पाण्डुसेन राजा के बचन सुनकर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने “ तथास्तु ” कहकर उनकी आज्ञा को स्वीकार कर लिया—और दीक्षा में उपयोगी समस्त सामग्री को एवं पुरुष सहस्रवाहिनी शिविकाओं को लाकर उपस्थित कर दिया । तब वे पांचो पांडव उन पुरुष सहस्रवाहिनी शिविकाओं पर आरूढ होकर पाण्डु मथुरा नगरी के बीच से होकर निकले । वहाँ से निकलकर वे जहाँ स्थविर ठहरे हुए थे—वहाँ—आये—वहाँ आकर सबके सब शिविकाओं से

वासाइं छट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति)

त्यारपथी पांचे पांडवोञ्जे अने द्रौपदी देवीञ्जे कोइ अक वणते पांडुसेन राजने दीक्षा अड्डणु करवा माटे पूछथुं. त्यारे पांडुसेन राजञ्जे कौटुम्बिक पुरुषोने जोलाव्या जोलावीने तेमने आ प्रभाणु कहुं के डे देवानुप्रियो ! तमे लोको दीक्षा वणते उपयोगमां आवनारी णधी वस्तुञ्जे जइदी लध आवो तेमज पुरुष सहस्रवाहिनी पादणी पणु लध आवो. आ प्रभाणु पांडुसेन राजनना वयन सांभणीने ते कौटुम्बिक पुरुषोञ्जे ' तथास्तु ' कहीने तेमनी आज्ञा स्वीकारी लीधी अने दीक्षा माटे उपयोगी अेवी णधी वस्तुञ्जे तेमज पुरुष—सहस्रवाहिनी पादणी लध आव्या. त्यारपथी ते पांचे पांडवो ते पुरुष सहस्रवाहिनी पादणीञ्जे उपर सवार थधने पांडु—मथुरा नगरीनी वञ्जे थधने नीकल्या. त्यांथी नीकणीने तेञ्जे न्यां स्थविर हुता त्यां पडोन्त्या, त्यां पडोन्त्याने तेञ्जे णधा पादणीञ्जेमांधी नीचे इतथां, नीचे उतरीने स्थविरानी

जाया ' आदीप्तोऽयं लोकः खलु इत्यादि । यावद् श्रमणाः जाताः, चतुर्दशपूर्वाणि अधीयते स्म, अधीत्य बहूनि वर्षाणि षष्ठाष्टमदशम द्वादशैर्मासार्धमासक्षणैस्तपोभिरात्मानं भावयन्तो विहरन्ति ॥ सू० ३३ ॥

मूलम्—तएणं सा दोवई देवी सीयाओ पच्चोरुहइ जाव पव्वइया सुव्वयाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए दलयइ, इक्कारस अंगाइं अहिज्जइ बहूणि वासाणि छट्ठमदसमदुवालसेहिं जाव विहरइ ॥ सू० ३४ ॥

टीका—' तएणं सा ' इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु सा द्रौपदी देवी शिविकातः प्रत्यवरोहति प्रत्यवतरति, प्रत्यवतीर्य यावत् प्रव्रजिता—दीक्षां गृहीतवती । ' सुव्वयाए ' सुव्रतायै=सुव्रतानामधेयायै ' अज्जाए ' आर्यायै ' सिस्सिणीयत्ताए'

नीचे उतरे । नीचे उतरकर स्थविरो के पास पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने ने स्थविरो से इस प्रकार कहा—हे भद्रत ! यह समस्त लोक आदीप्त—हो रहा है इत्यादिरूप से अपनी भावना प्रदर्शित कर यावत् वे श्रमण हो गये । चौदह पूर्वों का उन्होंने ने अध्ययन किया । अध्ययन करके अनेक वर्षों तक षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, मास अर्धमास की तपस्याओं को वे करते हुए विचरने लगे ॥ सू० ३३ ॥

' तएणं सा दोवई ' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (दोवई देवी) द्रौपदीदेवी (सीयाओ पच्चोरुहइ) अपनी शिविका से नीचे उतरी—(जा पव्वइया, सुव्वयाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए दलयइ, इक्कारसअंगाइं अहिज्जइ, बहूणि वासाइं

पासे पडोन्था. त्यां पडोन्थीने तेमण्णे स्थविरोने विनंती करतां आ प्रमाणे कहुं के डे लदन्त ! आ संपूणुं जगत सण्णी रहं छे वगेरे इपथी पोतानी लावना प्रकट करीने यावत् तेओ श्रमणु थछ गया. चौद पूर्वोनुं तेमण्णे अध्ययन कयुं, अध्ययन करीने घणुं वर्षो सुधी तेओ षष्ठ, अष्टम. दशम, द्वादश, मास अर्धमासनी तपस्याओ करता रखा. ॥ सूत्र ३३ ॥

तएणं सा दोवई इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपथी (दोवई देवी) द्रौपदी देवी (सीयाओ पच्चोरुहइ) पोतानी पादणीमां नीचे उतरी.

(जा पव्वइया, सुव्वयाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए दलयइ, इक्कारसअंगाइं

शिष्यातया ददाति पाण्डुसेनो राजा द्रौपदीं सुव्रतायै शिष्यारूपेण दत्तवानिति-
भावः । एकादशाङ्गानि अधीते, बहूनि वर्षाणि पष्टाऽष्टमदशमद्वादशैस्तपोभिर्याव-
दात्मानं भावयन्ती विहरति ॥ सू० ३४ ॥

मूलम्—तएणं थेरा भगवंतो अन्नया कयाई पंडुमहुराओ
णयरीओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिकखमंति पडि-
णिकखमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति, तेणं कालेणं
तेणं समएणं अरिहा अरिट्टुनेमी जेणैव सुरट्टाजणवए तेणैव
उवागच्छइ उवागच्छित्ता सुरट्टाजणवयंसि संजमेणं तवसा
अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तएणं बहुजणो अन्नमन्नस्स
एवमाइक्खइ०—एवं खलु देवाणुप्पिया! अरिहा अरिट्टुनेमी
सुरट्टाजणवए जाव वि०, तएणं ते जुहिट्टिल्लपामोक्खा पंच
अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा अन्नमन्नं
सदावेति सहावित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया!
अरहा अरिट्टुनेमी पुव्वाणु० जाव विहरइ, तं सेयं खलु
अम्हं थेरा आपुच्छित्ता अरहं अरिट्टुनेमिं वंदणाए गमित्तए

छट्टमदसमदुवालसेहिं जाव विहरइ) नीचे उतरकर यावत् वह भी
प्रव्रजित हो गई । पांडुसेन राजा ने उसे—द्रौपदी को सुव्रता नाम की
साध्वी के शिष्यारूप से प्रदान किया । द्रौपदी आर्या ने ग्यारह अंगों
का अध्ययन किया । वाद में अनेक वर्षों तक छट्ट अष्टम, दशम, द्वादश
तपस्याओं से अपने आपको उसने भावित किया ॥ सू० ३४ ॥

अट्टिज्जइ, बहुणि वासाइं छट्टमदसमदुवालसेहिं जाव विहरइ)

नीचे उतरने यावत् ते पणु प्रव्रजित थर्ध गथ पांडुसेन राजाओ
द्रौपदीने सुव्रता नामनी साध्वीने शिष्याना इपमां अपिं करी. द्रौपदी आर्याओ
अगियार अंगोनुं अध्ययन कथुं. त्थारपछी वणुं वर्षो सुधी छु, अष्टम,
दशम, द्वादश तपस्याओधी पोताना आत्माने तेणु भावित कथो. ॥ सू ३४ ॥

अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडिसुणेंति पडिसुणित्ता जेणेव थेरा
 भगवंतो तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता थेरं भगवंतं वंदंति
 णमंसंति वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामो णं तुब्भेहिं
 अब्भणुन्नाया समाणा अरहं अरिट्टनेमिं जाव गमित्तए,
 अहासुहं देवाणुप्पिया ! तएणं ते जुहिट्टिल्लपासोक्खा पंच
 अणगारा थेरेहिं भगवंतेहिं अब्भणुन्नाया समाणा । थेरे
 भगवंते वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता थेराणं अंतियाओ
 पडिणिक्खमंति मासंमासेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मणेणं गा-
 माणुगामं दूईज्जमाणा जाव जेणेव हत्थिकप्पे नयरे तेणेव
 उवा० हत्थिकप्पस्स बहिया सहसंबवणे उज्जाणे जाव विह-
 रंति, तएणं ते जुहिट्टिलवज्जा चत्तारि अणगारा मासख-
 मणपारणए पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेति बीयाए एवं
 जहा गोयमसामी णवरं जुहिट्टिल्लं आपुच्छंति जाव अड-
 माणा बहुजणसहं णिसामेंति, एवं खलु देवाणुप्पिया !
 अरहा अरिट्टनेमी उज्जितसेल्लसिहरे मासिएणं भत्तेणं
 अपाणएणं पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं कालगए
 जाव पहीणे, तएणं ते जुहिट्टिलवज्जा चत्तारि अणगारा
 बहुजणस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा हत्थिकप्पाओ पडिणि-
 क्खमंति पडिणिक्खमित्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जेणेव
 जुहिट्टिल्ले अणगारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता भत्तपाणं
 पच्चक्खंति पच्चक्खित्ता गमणागमणस्स पडिक्खमंति पडि-

कृमिन्ना एसणमणेसणं आलोएंति आलोइत्ता भत्तपाणं
 पडिदंसेंति पडिदंसित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया !
 जाव कालगए तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! इमं
 पुव्वगहियं भत्तपाणं परिट्टवेत्तासेत्तुंजं पव्वयं सणियं सणियं
 दुरूहित्तए 'संलेहणा झूसणा झूसियाणं' कालं अणवकंख-
 माणाणं विहरित्तएत्तिकु अणमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेति
 पडिसुणित्ता तं पुव्वगहियं भत्तपाणं एगंते परिट्टवेति परि-
 ट्टवित्ता जेणेव सेत्तुंजे पव्वए तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता
 सेत्तुंजं पव्वयं दुरूहंति दुरूहित्ता जाव कालं अणवकंखमाणा
 विहरंति । तएणं ते जुहिट्टिल्लपांमोक्खा पंच अणगारा
 सामाइयमाइयाइं चोइसपुव्वाइं० बहूणि वासाणि० दोमा-
 सियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसित्ता जस्सट्टाए कीरइणग्ग-
 भावे जाव तमट्टमाराहेति तमट्टमाराहित्ता अणंते जाव
 केवलवरणाणदंसणे समुप्पन्ने जाव सिद्धा ॥ सू० ३३ ॥

टीका—' तएणं थेरा ' इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु स्थविरा भगवन्तोऽ
 न्यदाकदाचित् पाण्डुमथुरातो नगरीतो सहस्राश्रवणादुद्यानात् प्रतिनिष्क्रामन्ति=
 निर्गच्छन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य, वहिर्जनपदविहारं विहरन्ति ।

-:तएणं थेरा भगवंता इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (थेरा भगवंतो) उन स्थविर भगवंतोने
 (अन्नया कयाइं) किसी एक समय (पंडुमथुराओ) पांडु मथुरा (णय-
 रीओ) नगरी से (सहसंबवणाओ) सहस्राश्रवन नाम के (उज्जा-

तएणं थेरा भगवंता इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्पारभाट (थेरा भगवंतो) ते स्थविर भगवंतोऽन्ने (अन्नया
 कयाइं) के।थं अेक वधते (पंडु मथुराओ) पांडु मथुरा (णयरीओ) नगरीथी
 (सहस्राश्रवणाओ) सहस्राश्रवन नामना (उज्जाणाओ) उद्यानभां (पडि-

तस्मिन् काले तस्मिन् समयेऽर्हन् अरिष्टनेमिर्यत्रैव सौराष्ट्रजनपदस्तत्रैवोपा-
गच्छति, उपागत्य सौराष्ट्रजनपदे संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति । ततः
खलु बहुजनोऽन्योन्यमेवमाख्याति=वक्ति, एवं भाषते, एवं प्ररूपयति एवं प्रज्ञाप-
यति—एवं खलु हे देवानुप्रिय ! अर्हन् अरिष्टनेमिः सौराष्ट्रजनपदे यावद् विहरति ।
ततः खलु ते युधिष्ठिरप्रमुखाः पञ्चानगारा बहुजनस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वाऽन्योन्यं
शब्दयन्ति, शब्दयित्वा एवमवदन्, एवं खलु हे देवानुप्रिय ! अर्हन् अरिष्टनेमिः पूर्वा-

णाओ) उद्यान से (पडिणिक्खमंति) विहार क्रिया (पडिणिक्खमित्ता)
विहार करके (बहिया जणवयविहारं विहरंति) बाहिर के जनपदों
में विचरने लगे (तेणं कालेणं तेणं समएणं अरिहा अरिष्टनेमी जेणेव
सुरट्ठा जणवए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्ठा जणवयंसि
संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तएणं बहुजणो अन्नमन्नस्स
एवमाइक्खइ) उस काल में और उस समय में अर्हत अरिष्टनेमि
प्रभु विहार करते हुए जहां सौराष्ट्र जनपद था—वहां आये वहां आकर
के वे उस सौराष्ट्र जनपद में संयम और तप से अपने आत्मा को
भावित करते हुए विचरने लगे । जब वहां के अनेक लोगों को इसकी
खबर हुई तब वे परस्पर में इस प्रकार कहने लगे (एवं खलु देवाणु-
प्पिया ! अरिहा । अरिष्टनेमी सुरट्ठा जणवए जाव वि० तएणं ते जुहि-
ट्टिल्लपामोक्खा पंच अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अन्न-

णिक्खमंति) विहार क्यो. (पडिणिक्खमित्ता) विहार करीने तेओ. (बहिया
जणवयविहारं विहरंति) अहारना जनपदोभां विहार करवा लाग्या.

(तेणं कालेणं तेणं समएणं अरिहा अरिष्टनेमी जेणेव सुरट्ठा जणवए
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्ठा जणवयंसि संजमेणं तवसा अप्पाणं भावे-
माणे एवमाइक्खइ)

ते काले अने ते समये अर्हन्त अरिष्टनेमि प्रभु विहार करतां करतां न्यां
सौराष्ट्र जनपद इतो त्यां आत्त्या. त्यां आवीने तेओ. ते सौराष्ट्र जनपदभां
संयम अने तपथी पोताना आत्माने भावित करतां विचरणु करवा लाग्या.
न्यारे त्यांना घणु दोडेने आ वातनी न्णु थर्ह त्यारे तेओ. परस्पर आ
प्रमाणे उडेवा लाग्ये. के—

(एवं खलु देवाणुप्पिया ! अरिहा अरिष्टनेमी सुरट्ठाजणवए जाव वि० तएणं
ते जुहिट्टिल्लपामोक्खा पंच अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अन्नमन्नं
सदावेत्ति, सदावित्ता एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! अरिहा अरिष्टनेमी

नुपूर्व्या=तीर्थकराणां मर्यादया यावद् विहरति, 'तं' तत्-तस्माद् 'सेयं' श्रेयः खलु
 अस्माकं यत् स्थविरान् आपृच्छ्यार्हन्तमरिष्टनेमिं वन्दनायै गन्तुम् । अन्योन्यस्य
 =परस्परस्यैतमर्थं सर्वे पञ्चानगाराः प्रतिशृण्वन्ति, स्वीकुर्वन्ति प्रतिश्रुत्य यत्रैव स्थ-
 विरा भगवन्तस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य तान् स्थविरान् भगवतो वन्दन्ते नम-
 स्यन्ति च वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादिषु-इच्छामः खलु युष्माभिरभ्यनुज्ञाताः
 सन्तोऽर्हन्तमरिष्टनेमिं यावद् गन्तुम् । स्थविरा ऊचुः यथासुखं हे देवानुप्रिया !

मन्नं सदावेति, सदावित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया । अरिहा
 अरिष्टनेमी पुन्वाणु जाव विहरइ, तं सेयं खलु अम्हं थेरा आपुच्छित्ता
 अरहं अरिष्टनेमिं वंदणाए गमित्तए) हे देवानुप्रियो ! सुनो-अर्हत अरि-
 ष्टनेमि प्रभु तीर्थकर परम्परानुसार विहार करते हुए यावत् सौराष्ट्र जन-
 पद में आये हुए हैं । लोगों के मुख से इस बात को उन पाँच युधिष्ठिर
 आदि अनगारो ने सुना-तब आपस में एक दूसरे को-बुलाया-और
 बुलाकर इस प्रकार कहा-देवानुप्रियो ! सौराष्ट्र जनपद में तीर्थकर पर-
 म्परा के अनुसार भगवान् अरिष्टनेमि विहार कर रहे हैं-अतः हमलोगों
 को स्थविरो की आज्ञा लेकर अर्हत अरिष्टनेमि को वंदना करने के लिये
 चलना बहुत अच्छा है-उचित है-(अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति,
 पडिसुणित्ता जेणेव थेरा भगवंतो, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे
 भगवंते वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामो णं

पुन्वाणु० जाव विहरइ, तं सेयं खलु अम्हं थेरा आपुच्छित्ता अरहं अरिष्टनेमिं वंद-
 णाए गमित्तए)

हे देवानुप्रियो ! सांभणो, अर्हत अरिष्टनेमि प्रभु तीर्थकर परंपरा
 मुज्जम विहार करतां यावत् सौराष्ट्र जनपदमां पधारेता छे. दोडोना मुज्जथी
 आ वातने ते पाये युधिष्ठिर वगेरे अनगारोअे सांभणी. त्तारे तेअोअे
 परस्पर अेक भीलअोने जोलाव्या अने जोलावीने आ प्रभाणे कहुं के हे
 देवानुप्रियो ! सौराष्ट्र जनपदमां तीर्थकर परंपरा मुज्जम लगवान् अरिष्टनेमि
 विहार करी रहा छे अेथी स्थविरोनी आसा भेणवीने अरिष्टनेमिने वंदन
 करवा भाटे अभादे ज्जुं लेधअे.

(अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जेणेव थेरा भगवंतो, तेणेव
 उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं
 वयासी-इच्छामो णं तुम्हेहिं अन्नणुआया समाणा अरहं अरिष्टनेमिं जाव गमित्तए

ततः खलु ते युधिष्ठिरप्रमुखाः पञ्चानगाराः स्थविरैर्भगवद्भिरभ्यनुज्ञाताः सन्तः
स्थविरान् भगवतो वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा स्थविराणामन्तिकात्
प्रतिनिष्क्रामन्ति, मास-मासेन 'अणिक्विखत्तेण' अनिक्षिप्तेन=अन्तररहितेन तपः

तुभेहिं अब्भुणुन्नाया समाना अरहं अरिद्विनेमि जाव गमित्तए अहासुहं
देवाणुप्पिया ! तएणं ते जुहिद्विल्लपामोक्खा पंच अणगारा थेरेहिं भग-
वंतेहिं अब्भुणुन्नाया समाना थेरे भगवंते वंदइ णमंसइ वंदित्ता णम-
सित्ता थेराणं अंतियाओ पडिणिक्वमंति, मासं मासेणं अणिक्विखत्ते
णं त त्कस्मेणं गामाणुगामं दूईज्जमाणा जाव जेणेव हत्थिकप्पे नयरे
तेणेव उवा० हत्थिकप्पस्स वहिया सहसंबवणे उज्जाणे जाव
विहरंति-तएणं ते जुहिद्विल्लवज्जा चत्तारि अणगारा मासखमणपार-
णए पढमाए पोरसीए सज्जायं करेति, बीयाए जहा गोयमसामी,
णवरं जुहिद्विलं आपुच्छंति जाव अडमाणा बहुजणसदं णिसामेति) इस
प्रकार का परस्पर का यह विचार उन्होंने ने स्वीकार कर लिया-स्वीकार
करके फिर वे जहां स्थविर भगवंत थे-वहां गये-वहां जाकर उन्होंने ने
उन स्थविर भगवंतों को वंदना की नमस्कार किया। वंदना नमस्कार
कर फिर उनसे इस प्रकार कहा हम्मलोग आप भगवंतों से आज्ञा प्राप्त
कर अर्हत नेमिनाथ प्रभु को वंदना करने के लिये सौराष्ट्र जनपद जाना
चाहते हैं। तब उन स्थविर भगवंतों ने उनसे कहा हे देवानुप्रियो !
यथासुखम्-तुम्हें जैसे सुख हो-वैसा करो इस प्रकार उनस्थविर भग

अहासुहं देवाणुप्पिया ! तएणं ते जुहिद्विल्लपामोक्खा पंच अणगारा, थेरेहिं भग-
वंतेहिं अब्भुणुन्नाया समाना थेरे भगवंते वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता थेराणं
अंतियाओ पडिणिक्वमंति, मासंमासेणं अणिक्विखत्तेणं तवोक्स्मेणं गामाणुगामं
दूईज्जमाणा जाव जेणेव हत्थिकप्पे नयरे तेणेव उवा० हत्थिकप्पस्स वहिया सह-
संबवणे उज्जाणे जाव विहरंति तएणं ते जुहिद्विल्लवज्जा चत्तारि अणगारा मास
खमणपारणए पढमाए पोरसीए सज्जायं करेति, बीयाए एवं जहा गोयमसामी,
णवरं जुहिद्विलं आपुच्छंति जाव अडमाणा बहुजणसदं णिसामेति)

आ रीते तेज्जाञ्जे अकथीज्जना विचारोने स्वीकारी लीधा, स्वीकारीने
तेज्जा न्यां स्थविर भगवंत हुता त्यां गया. त्यां ज्जने तेमणे ते स्थविर
भगवंतोने वदन अने नमस्कार कर्या वंदन अने नमस्कार करीने तेमने आ
प्रमाणे विनंती करी के अमे आप भगवंतनी आज्ञा भेणवीने अर्हत नेमि-
नाथ प्रभुना वंदन माटे सौराष्ट्र जनपदमां ज्वा धञ्जीञ्जे धीञ्जे त्यारे ते
स्थविर भगतोञ्जे तेमने आ प्रमाणे आज्ञा करी के हे देवानुप्रियो ! ' यथा
सुखम् ' तमने जे काममां आनंद प्राप्त थाय ते करे. आ प्रमाणे ते स्थविर

कर्मणा ग्रामानुग्रामं ' दृड्ज्जमाणा ' द्रवन्तः=गच्छन्तः, यावत् यत्रैव ' हस्तिकल्पे नगरे ' हस्तिकल्पं नगरं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य हस्तिकल्पस्य वहिः सहस्रा-
 म्रवणे उद्याने यावद् विहरन्ति । ततः खलु ते युधिष्ठिरवज्जर्जाश्चत्वारोऽनगारा मास
 क्षपणपारणके प्रथमायां पौरुष्यां स्वाध्यायं कुर्वन्ति, ' वीयाए ' द्वितीयायां पौरु-
 ष्यां ध्यानं ध्यायन्ति तृतीयायां पौरुष्यामत्वरितमचपलमसंभ्रान्तसदोरकमुख-
 वस्त्रिकां प्रतिलेखयन्ति, भाजनवस्त्राणि प्रतिलेखयन्ति, भाजनानि च-पात्राणि
 प्रमार्जयन्ति, भाजनान्यवगृह्णन्ति, गृहीत्वा एवं यथा गौतमस्वामी श्रमणं प्रहावीर-
 मापृच्छति नवरं-अथमत्र विशेषः अत्र चत्वारोऽनगाराः युधिष्ठिरमापृच्छन्ति यावत्

वंतों से आज्ञा प्राप्त कर वे युधिष्ठिर प्रमुख पांच अनगार उन स्थविर
 भगवंत को वंदना नमस्कार करके उनके पास से चले आये और निर-
 न्तर मास मास खमण करते हुए एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार
 करने लगे । इस तरह ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे पांचों अनगार
 जहाँ हस्तिकल्पनाम का नगर था वहाँ आये । वहाँ आकर वे हस्तिकल्प
 नगर के बाहिर सहस्राम्रवन उद्यान में जाकर ठहर गये । इसके बाद वे
 युधिष्ठिर के सिवाय चारों अनगार मासक्षपण के दिन प्रथम पौरुषी में
 स्वाध्याय करते, द्वितीय पौरुषी में ध्यान करते, और तृतीय पौरुषी में
 अत्वरित, अचपल एवं असंभ्रान्त होकर सदोरकमुखवस्त्रिकाकी प्रतिले-
 खना करते, भाजन और वस्त्रोंकी प्रतिलेखना करते-फिर उन्हें उठाते-
 और लेकर जिस प्रकार गौतम स्वामी श्रमण प्रहावीर स्वामी से पूछकर
 गोचरी के लिये निकलते उसी प्रकार ये भी युधिष्ठिर से पूछ कर हस्ति

लगवतानी आज्ञा भेगवीने ते युधिष्ठिर प्रमुख पांचे अनगारे ते स्थविर
 लगवताने वदन तेमज नमस्कार करीने तेमनी पासेधी आवता रहा अने
 सतत मास भमणु करतां ओड गामथी भीजे गाम विहार करवा लाग्या. आ
 रीते ग्रामानुग्राम विहार करतां ते पांचे अनगारे त्यां हस्तिकल्प नामे नगर
 हतुं त्यां आव्या. त्यां आवीने तेओ हस्तिकल्प नगरनी गडार सहस्राम्रवन
 उद्यानमां जधने मुकाम कर्यो. त्यारणाह ते युधिष्ठिर सिवायना आरे अनगारे
 मासक्षपण पारणाना दिवसे प्रथम पौरुषीमां स्वाध्याय करता, द्वितीय पौरुषीमां
 ध्यान करता अने तृतीय पौरुषीमां गोचरी माटे नीकणती वभते पणु अथपण
 असंभ्रात धधने सदोरकमुखवस्त्रिकानी प्रतिक्षेपना करता, लाजन अने वस्त्रोनी
 प्रतिक्षेपना करता, त्यारणाह तेमने उपाडता अने उपाडीने जेम गौतम स्वामी
 श्रमणु लगवान महावीर स्वामीनी आज्ञा भेगवीने गोचरी माटे नीकणता
 तेमज तेओ पणु युधिष्ठिरनी आज्ञा भेगवीने हस्तिकल्प नगरमां उच्य, नीच,

हस्तिकल्पे नगरे उच्चनीचमध्यमकुलानि 'अडमाणा' अटन्तः बहुजनशब्दं निशामयन्ति-शृण्वन्ति=किं शृण्वन्तीत्याह- 'एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! अर्हन् अरिष्टनेमिः 'उज्जितसेलसिहरे' उज्जयन्तशैलशिखरे-गिरनारपर्वतोपरिभागे मासिकेन भक्तेन भक्तप्रत्याख्यानेन पानकेन-पानीयरहितेन चतुर्विधाहारपरित्यागेनेत्यर्थः 'पञ्चहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं' पञ्चभिः षट्त्रिंशताऽनगारशतैः=षट्त्रिंशदधिकपञ्चशतसंख्यकैरनगारैः सार्धं कालगतो यावत्-सिद्धोबुद्धः परिनिर्वृतः सर्वदुःखमहीणो जातः' ।

'तएणं' ति 'ततः खलु ते युधिष्ठिरवर्जाश्चत्वारोऽनगारा बहुजनस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा हस्तिकल्पाद् नगरात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव सहस्रा-

कल्प नगर में उच्च, नीच एवं मध्यम कुलों में गोचरी के लिये आये। उस समय इन्होंने अनेक मनुष्यों के सुख से इस प्रकार समाचार सुने (एवं देवानुप्रिया ! अरहा अरिष्टनेमी उज्जितसेलसिहरे मासिएणं भक्तेणं अपाणएणं पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं कालगए जाव पहीणे, तएणं ते जुहिद्धिल्लवज्जा चत्तारि अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमद्धं सोच्चा हत्थिकप्पाओ पडिणिकखमंति) देवानुप्रियो ! अर्हत अरिष्टनेमि ऊर्जयंतशैल शिखर पर-गिरनार पर्वत के ऊपर एक मास के चतुरविध आहार के परित्यागरूप भक्तप्रत्याख्यान से ५३६ अनगारों के साथ कालगत यावत् सिद्ध, बुद्ध, परिनिर्वृत हो कर सर्व दुःखों से रहित हो गये हैं। इस प्रकार अनेक मनुष्यों के सुख से इस समाचार को सुनकर वे युधिष्ठिर वर्ज चारों अनगार उस हस्तिकल्पनगर से निकले (पडिणिकखमिन्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जेणेव

अने मध्यम कुलोमां गोचरी भाटे आंव्या. ते समये तेभण्णे घण्णा भाणुसेना भुभथी अे नतना समाचारे सांलज्या के—

(एवं देवानुप्रिया ! अरहा अरिष्टनेमी उज्जितसेलसिहरे मासिएणं भक्तेणं अपाणएणं पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं कालगए जाव पहीणे, तएणं ते जुहिद्धिल्लवज्जा चत्तारि अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमद्धं सोच्चा हत्थिकप्पाओ पडिणिकखमंति)

हे देवानुप्रियो ! अर्हत अरिष्टनेमिऊर्जयंत शैलशिखर उपर-गिरनार पर्वत उपर-एके मासना चारे नतना आडारना परित्याग इप लक्ता प्रत्याख्यानथी पउ६ अनगारोनी साथे काणगत यावत् सिद्ध, बुद्ध, परिनिर्वृत थधने सर्व दुःखोथी मुक्त थध गया छे. आ प्रमाण्णे घण्णा भाणुसेना भुभथी आ नतना समाचारे सांलणीने ते युधिष्ठिर वगरना चारे अनगारे ते हस्तिकल्प नगरथी नीकज्या.

अणगमुद्यानं यत्रैव युधिष्ठिरोऽनगरस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य भक्तपानं 'पच्च-
 व्रखन्ति' प्रत्याख्यान्ति=प्रत्याख्याय 'गमनागमनस्स' गमनागमनं प्रतिक्रामन्ति
 ईर्यापथिकीं कुर्वन्ति प्रतिक्रम्य 'एणमणेसणं' एणमनेपणाम् आलोचयन्ति,
 आलोच्य भक्तपानं-प्रतिदर्शयन्ति-युधिष्ठिरस्य पुरोऽवस्थाप्य प्रतिदर्शयन्ति, प्रति-
 दर्श्य एवमवादिषुः-एवं खलु हे देवानुप्रिय ! यावत् कालगतः=अर्हन् अरिष्टनेमि
 मोक्षं प्राप्सः, 'तं' तस्मात् श्रेयः खलु अरमाकं हे देवानुप्रियाः ! इमं पूर्वगृहीतं

जुहिष्ठिल्ले अणगारे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता भक्तपाणं पच्च-
 क्वन्ति, पच्चक्खित्ता गमणागमणस्स पडिक्कमन्ति पडिक्कमित्ता एसणम-
 नेसणं आलोएन्ति, आलोइत्ता भक्तपाणं पडिदंसेन्ति पडिदंसित्ता एवं
 वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! जाव कालगए तं सेयं खलु अम्हं देवा-
 णुप्पिया ! इमं पुव्वगहियं भक्तपाणं परिट्टवेत्ता सेत्तुंज पव्वयं सणियं
 सणियं दुरुहित्तए) निकलकर वे जहां सहस्राअवन नाम का उद्यान था
 और उस में श्री जहां युधिष्ठिर अनगर विराजमान थे, वहां आये।
 वहां आकर उन्होंने ने उनकी साक्षी से भक्त प्रत्याख्यान करदिया और
 भक्त प्रत्याख्यान करके फिर उन्होंने ने ईर्यापथ शुद्धि की। शुद्धि करके
 एणमनेपणा की आलोचना करके फिर उन्होंने लाये हुए उस
 आहार को युधिष्ठिर अनगर के समक्ष रख कर दिखलाया। दिखलाकर
 फिर वे इस प्रकार कहने लगे। हे देवानुप्रिय ! अर्हन् अरिष्टनेमि मुक्ति
 को प्राप्त हो चुके हैं-इसलिये हे देवानुप्रिय ! हमको अब यही उचित

(पडिनिकखमित्ता जेणेव सहसंववणे उज्जाणे जेणेव जुहिष्ठिल्ले अणगारे
 तेणेव उवागच्छन्ति उवागच्छित्ता भक्तपाणं पच्चक्खन्ति पच्चक्खित्ता गमणागमणस्स
 पडिक्कमन्ति, पडिक्कमित्ता एसणमनेसणं आलोएन्ति, आलोइत्ता भक्तपाणं पडिदंसेन्ति
 पडिदंसित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! जाव कालगए तं सेयं खलु
 अम्हं देवाणुप्पिया ! इमं पुव्वगहियं भक्तपाणं परिट्टवेत्ता सेत्तुंज पव्वयं सणियं
 सणियं दुरुहित्तए)

नीकणीने तेओ न्यां सहस्राअवन नामे उद्यान इतुं अने तेमां पणु
 न्यां युधिष्ठिर अनगर इता त्यां आत्था. त्यां आवीने तेमणे तेमनी सामे
 लक्षा पानतुं प्रत्याभ्यान करी दीधुं प्रत्याभ्यान करीने तेमणे धर्यापथनी शुद्धि
 करी. शुद्धि करीने एणमने अने अनेपणा करी, आलोचना करी. आलोचना
 करीने तेमणे लक्ष आवेत्ता ते आहारने युधिष्ठिर अनगरनी सामे भूझीने
 पताव्या. पताव्या णाद तेओ आ प्रमाणे कडेवा लाग्या के डे देवानुप्रिय !
 अर्हन् अरिष्टनेमि प्रभुओ मुक्ति भेणवी छे अटला भाटे डे देवानुप्रिय !

भक्तपानं परिष्ठाप्य ' सेत्तुंजं ' शत्रुंजयं-शत्रुंजयनामकं पर्वतं शनैः शनैर्दूरोहितुम् =आरोहितुम्, तथा-' संलेहणाञ्जसणाञ्जसियाणं ' संलेखना जोषणाजुष्टानां=सलेखनायां कषायशरीरकृषीकरणे या जोषणा-प्रीतिः सेवा वा तथा जुष्टाः-सेवितास्तेषां=संलेखनातपःकारिणामित्यर्थः-कालम्-अनवकाङ्क्षमाणानाम् - अनिच्छताम् विहर्तुम्, इति कृत्वाऽन्योन्यस्यैतमर्थं प्रतिश्रुण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य तद् पूर्वगृहीतं भक्तपानम् एकान्ते=प्रासुके स्थाने परिष्ठापयन्ति, परिष्ठाप्य यत्रैव शत्रुंजयः पर्वतस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य शत्रुंजयं पर्वतं शनैः शनैर्दूरोहन्ति आरोहन्ति, दूरुह्य यावत्-कालमनवकाङ्क्षमाणा विहरन्ति ।

है कि हम इस पूर्व गृहीत भक्त पान का परिष्ठापन कर शत्रुंजय नामके पर्वत पर धीरे धीरे चढे (संलेहणा ङ्जसणा ङ्जसियाणं कालं अणवकंख-माणानं विहरित्तए त्तिकट्टु अणमणस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसु-णित्ता तं पुव्वगहियं भक्तपाणं एगंते परिट्ठवेंति, परिट्ठवित्ता जेणेव सेत्तुंजं पव्वए तेणेव उवागच्छंति) और वहाँ काय और कषाय को कृश करनेवाली संलेखना मरणाशंसा से रहित होकर प्रीति पूर्वक धारण करे इस प्रकार विचार करके उन्होंने ने परस्पर के इस विचार रूप अर्थ को स्वीकार कर लिया । स्वीकार करके फिर उस पूर्व गृहीत भक्त पान को उन्होंने एकान्त स्थान में परिष्ठापित कर दिया और परिष्ठापित करके वे सब जहाँ शत्रुंजय पर्वत था वहाँ चले गये (उवागच्छित्ता) वहाँ जाकर के (सेत्तुंजं पव्वयं दूरुहंति, दूरुहित्ता जाव कालं अणव-

डुवे अमने अे ञ वात योग्य लागे छे के अमे आ पूर्वगृहीत भक्तपाननुं परिष्ठापन करीने शत्रुंजय नामना पर्वत उपर धीमे धीमे चढीये.

(संलेहणा ङ्जसणा ङ्जसियाणं कालं अणवकंखमाणानं विहरित्तए त्तिकट्टु अणमणस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता तं पुव्वगहियं भक्तपाणं एगंते परिट्ठवेंति, परिट्ठवित्ता जेणेव सेत्तुंजं पव्वए तेणेव उवागच्छंति)

अने त्यां काय अने कषायने कृश करनारी संलेखनाने मरणाशंसाथी रहित यधने प्रेमपूर्वक धारण करीये. आ प्रभावे विचार करीने तेमणे अेक भीलना आ विचार रूप अर्थने स्वीकारी लीये. स्वीकार करीने तेमणे ते पूर्वगृहीत भक्तपानने अेकान्त स्थाने परिष्ठापित करी लीये. अने परिष्ठापित करीने तेमणे सवे न्यां शत्रुंजय पर्वत डतो त्यां यादया गया. (उवागच्छित्ता) त्यां ञधने—

(सेत्तुंजं पव्वयं दूरुहंति, दूरुहित्ता जाव कालं अणवकंखमाणा विहरंति,

ततः खलु ते युधिष्ठिरप्रमुखाः पञ्चानगाराः 'सामाह्यमाह्याइं' सामायिक-
कादीनि चतुर्दशपूर्वाणि अधीत्य बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा षष्ठाष्ट-
मादितपः कृत्वा द्विमासिकया संलेखनयाऽऽत्मानं 'ज्ञोसित्ता' जुष्ट्वा सेवित्वा
यस्यार्थाय क्रियते नग्नभावो=निर्ग्रन्थभावः यावत् तमर्थमारोधयन्ति, आराध्य
अनन्तम् अनन्तार्थविषयकं यावत् 'केवलवरणाणदंसणे' केवलवरज्ञानदर्शनं समु-
त्पन्नं यावत् सिद्धाः=सिद्धिगतिं प्राप्ता इत्यर्थः ॥ सू० ३५ ॥

कंखमाणा विहरन्ति, तएणं ते जुहिद्विल्लपामोक्खा पंच अणगारा सामा-
ह्यमाह्याइं चोदसपुव्वाइं बहूणि वासाणि० दो मासियाए संलेहणाए
अत्ताणं ज्ञोसित्ता जस्सट्टाए कीरइ, णग्गभावे जाव तमट्टमारोहंति,
तमट्टमाराहिच्चा अणंते जाव केवलवरणाणदंसणे समुत्पन्ने जाव सिद्धो)
वे शत्रुंजय पर्वत पर चढे चढकर के उन्होंने मरणाशंसा से रहित होकर
संलेखना धारण करली । इस तरह उन युधिष्ठिर प्रमुख पंच अनगारोंने
सामायिक आदिचतुर्दश पूर्वोका अध्ययन करके अनेक वर्षों तक श्राम-
ण्य पर्याय का पालन करके तथा षष्ठ, अष्टम, आदि तपस्याओं को
करके अन्त में दो मास की संलेखना से अपने आप की प्रीति पूर्वक
सेवित किया और जिस निमित्त नग्न भाव-निर्ग्रन्थ अवस्था धारण की
थी उस अर्थ को उन्होंने ने सिद्ध कर लिया । सिद्ध करके-आरोधित कर
के अनन्त अर्थ को विषय करने वाले केवलवरज्ञानदर्शन को उत्पन्नकर
यावत् वे सिद्धि गति को प्राप्त हो गये ॥ सूत्र ३५ ॥

तएणं ते जुहिद्विल्लपामोक्खा पंच अणगारा सामाह्यमाह्याइं चोदसपुव्वाइं०
बहूणि वासाणि० दोमासियाए संलेहणाए अत्ताणे ज्ञोसित्ता जस्सट्टाए कीरइ,
णग्गभावे जाव तमट्टमारोहंति, तमट्टमाराहिच्चा अणंते जाव केवलवरणाण
दंसणे समुत्पन्ने जाव सिद्धो)

तेजो शत्रुंजय पर्वत उपर चढया अने चढीने तेमणे मरणुश साथी
रहित थडने सलेखना धारणु करी लीधी आ प्रमाणे ते युधिष्ठिर प्रमुख
पांचे अनगारोणे सामायिक वगेरे चतुर्दश पूर्वोक्तुं अध्ययन करीने घणुं वर्षो
सुधी श्रामण्य-पर्यायतुं पालन करीने तेमणु षष्ठ, अष्टम वगेरे तपस्याणेने
करीने छेवटे जे मासनी सलेखनाथी प्रेमपूर्वक चोतानी नतने सेवित करी
अने जे निमित्तने लडने नग्नभाव-निर्ग्रन्थ अवस्था धारणु करी छती ते
अर्थने तेमणे सिद्ध करी लीधी. सिद्ध करीने आरोधित करीने अनन्त अर्थने
विषयरूप णतावनार देवणज्ञान दर्शनने उत्पन्न करीने यावत् तेजोणे सिद्धगति
मेणवी लीधी. ॥ सूत्र ३५ ॥

मूलम्—तएणं सा दोवई अज्जा सुव्वयाणं अज्जियाणं अंतिए
सामाइयमाइयाइं एकारसअंगाइं अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूणि
वासाणि० मासियाए संलेहणाए० आलोइयपडिक्कंता कालमासे
कालं किच्चा वंभलोए उव्वन्ना, तत्थ णं अत्थेमइयाणं देवाणं
दस सागरोवमाइं ठिई पणत्ता तत्थ णं दुवयस्स देवस्स दस
सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता, से णं भंते ! दुवए देवे ताओ जाव
महाविदेहे वासे सिज्जइ जाव काहिइ । एवं खलु जंबू ! सम-
णैणं जाव संपत्तेणं सोलमस्स णायज्जयणस्स अयमट्ठे पणत्ते
त्तिबेसि ॥ सू० ३४ ॥ सोलसमं नायज्जयणं समत्तं ॥ १६ ॥

टीका—‘ तएणं सा ’ इत्यादि । ततस्तदनन्तरं खलु सा द्रौपदी आर्या
साध्वी सुव्रतानामार्यिकाणामन्तिके सामायिकादिकानि एकादशाङ्गानि अधीते,
अधीत्य बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा मासिकया संलेखनया आलोचित
प्रतिक्रान्ता कालमासे कालं कृत्वा ‘वंभलोए’ पंचमे ब्रह्मलोके देवत्वेन ‘ उव्वन्ना ’

‘ तएणं सा दोवई ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (सा दोवई अज्जा) उस द्रौपदी आर्याने
(सुव्वयाणं अज्जियाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एकारसअंगाइं अहि-
ज्जइ) सुव्रता आर्या के पास सामायिक आदि ११ अंगों का अध्ययन
किया (अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि० मासियाए संलेहणाए० आलोइय-
पडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा वंभलोए उव्वन्ना) अध्ययन करके
अनेक वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर एक मास की संलेखना

तएणं सा दोवई इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (सा दोवई अज्जा) ते द्रौपदी आर्याणे (सुव्व-
याणं अज्जियाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एकारसअंगाइं अहिज्जइ) सुव्रता
आर्यानी पासे सामायिक वगेरे ११ अंगोत्तुं अध्ययन कथुं.

(अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि० मासियाए संलेहणाए० आलोइय पडिक्कतां
कालमासे कालंकिच्चा वंभलोए उव्वन्ना)

अध्ययन करीने धणुं वर्षो सुधी श्रामण्य पर्यायत्तुं पालन कथुं. त्थार-

उत्तान्ना, तत्र तस्मिन् देवलोके-खलु अस्त्येकेपां=केषांचिद्देवानाम् दशसागरोप-
मानि स्थितिः प्रज्ञप्ता, तत्र खलु द्रौपदेवस्यस्य दशसागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता तत्र
खलु गौतमः पृच्छति-हे भदन्त ! स खलु द्रौपदी देव आयुर्भवस्थितिक्षयेण 'ताओ'
तस्माद् देवलोकाच्च्युत्वा कुत्रगमिष्यति कुत्रोत्पत्स्यते ? भगवान् प्राह-' जाव '
इति यावन्महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति, यावत् सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति ।

से आलोचित प्रतिक्रान्त बन वे काल अवसर काल कर के पांचवें ब्रह्म-
लोक में देव की पर्याय से उत्पन्न हुई । (तत्थ णं अत्थे गइयाणं देवाणं
दस सागरोवमाइं ठिई पणत्ता, तत्थ णं दुवयस्स देवस्स दस सागरो-
वमाइं ठिई पणत्ता, सेणं भंते ! दुवए देवे ताओ जाव महाविदेहे वासे
सिज्झइ, जाव काहिइ । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं सोलसम-
स्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते त्तिवेमि) उस देवलोक में कितनेक
देवों की दश सागर की स्थिति प्रज्ञप्त हुई है । सो वहां द्रौपदी देव की
दश सागर की स्थिति हुई । अब गौतम पूछते हैं हे भदन्त ! वह द्रौपदी
देव आयु एवं भवस्थिति के क्षय होने पर वहां से चव कर कहां जावे-
गा-कहां उत्पन्न होगा ? उत्तर में भगवान कहते हैं-हे गौतम ! वह
द्रौपदी देव वहां से चव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा और वहीं
से सिद्ध बनेगा यावत् समस्त दुःखों का अंत करेगा ।

पछी ओक भासनी संक्षेपनाथी आलोचित प्रतिक्रान्त भनीने तेओ डाण अव-
सरे डाण करीने पायभा अक्षलोकभां देवना पर्यायथी जन्म पाभी.

(तत्थ णं अत्येगइयाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पणत्ता, तत्थ णं
दुवयस्स देवस्स दस सागरोवमाइं ठिई पणत्ता, सेणं भंते ! दुवए देवे ताओ
जाव महाविदेहे वासे सिज्झइ, जाव काहिइ । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव
संपत्तेणं सोलसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते त्तिवेमि)

ते देवलोकभां डेटटाक देवे नी दश सागरनी स्थिति प्रज्ञप्त थई छे. आ
प्रभाओ द्रौपदी देवीनी त्यां दश सागरनी स्थिति प्रज्ञप्त थई.

हुवे गौतम स्वाभी प्रश्न करे छे डे डे लहन्त ! ते द्रौपदी देवीनी आयु
अने भवस्थिति पूरी थया भाह यवीने क्यां जशे ? क्यां उत्पन्न थशे ?

तेना उत्तरभां भगवान डडेवा लाग्या डे डे गौतम ! ते द्रौपदी देव
त्यांथी यवीने महाविदेह क्षेत्रभां उत्पन्न थशे अने त्यांथी ज सिद्ध भनशे
यावत् तेओ पोताना समस्त दुःखोने अंत करशे.

सुधर्मास्वामी कथयति—‘ एवं खलु ’ इत्यादि । एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तेन षोडशस्य ज्ञाताध्ययनस्यायं=पूर्वकथितः अर्थः=द्रौपदीदृष्टान्तरूपो भावः प्रज्ञप्तः, प्ररूपितः, इति ब्रवीमि व्याख्यापूर्ववत् ॥ ३४ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितक-
लापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूच्छ-
त्रपतिकोल्हापुरराजमदत्त-‘ जैनशास्त्राचार्य ’ पदभूषित-कोल्हापुरराज-
गुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकरपूज्यश्री-घासीलाल-
व्रतिविरचितायां-ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रस्या, नगारधर्माभृतवर्षि-
ण्याख्यायां व्याख्यायां षोडशमध्ययनं समाप्तं ॥ १६ ॥

सुधर्मा स्वामी कहते हैं हे जंबू ! श्रमण भगवान महावीर ने जो सिद्धि गतिनामक स्थान को प्राप्त हो चुके हैं इस षोडश ज्ञानाध्ययन का यह पूर्वोक्त द्रौपदी दृष्टान्त रूप भाव अर्थ प्ररूपित किया है । ऐसा मैं उन्हीं श्रमण भगवान महावीर के द्वारा कहे श्रुत उपदेश के अनुसार कहता हूँ ॥ सूत्र ३६ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर पूज्य श्री घासीलालजी महाराज कृत
“ ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र ” की अनगारधर्माभृतवर्षिणी व्याख्याका
सोलहवां अध्ययन समाप्त ॥ १६ ॥

सुधर्मा स्वामी कहे छे डे डे डे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीरे डे जेन्ने
सिद्धगति नामक स्थानने भेणवी श्रुतया छे आ सोणमा ज्ञाताध्ययनने आ पूवे
वणुवेले। द्रौपदी दृष्टान्त रूप भाव अर्थ प्ररूपित कये छे. ते श्रमण भगवान
महावीर वडे कहेवाजेला श्रुत उपदेश मुज्ज न तमने हुं कहीःह्यो छुं. ॥सू० ३६॥
श्री जैनाचार्य घासीलाल महाराज कृत ज्ञातासूत्रनी अनगारधर्माभृतवर्षिणी
व्याख्यानुं सोणमुं अध्ययन समाप्त ॥ १६ ॥

॥ अथ सप्तदशाध्ययनम् ॥

व्याख्यातं षोडशाध्ययनम्, साम्प्रतं सप्तदशं व्याख्यायते । पूर्वस्मिन्नध्ययने द्रौपद्या नागश्रीभवे कुत्सितदानेन तस्या एव सुकुमारिकाभवे निदानेन चानर्थः प्रोक्तः, साम्प्रतमवशेन्द्रियत्वेनानर्थो भवतीत्युच्यते, इति सम्बन्धेन सम्बद्धस्यास्याध्ययनस्येदमादिसंज्ञम्—‘ जज्ञं भंते । ’ इत्यादि ।

मूलम्—जज्ञं भंते ! सप्तमेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सोलस्यस्स णायजज्ञयणस्स अयसट्टे पणत्ते सत्तरसमस्स णं भंते ! णायजज्ञयणस्स सप्तमेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे पत्तत्ते !, एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं

सत्रहवां अध्ययन का प्रारंभ

—:आक्षीर्णं-जातिमान् घोड़े का सत्रहवां अध्ययन प्रारंभ:-

सोलहवां अध्ययन संपूर्ण हुआ-अब सत्रहवां अध्ययन कहा जाता है । पूर्व अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि द्रौपदी ने नागश्री के भव में कुत्सित दान दिया था-कडवे तुंबेका आहार मुनिराज को दिया था-तथा जब वह सुकुमारिका के भव में उत्पन्न हुई थी तो उसने निदानबंध किया था इससे उसे महान् अनर्थ की प्राप्ति हुई । अब इस अध्ययन में यह विषय स्पष्ट किया जावेगा-कि जो अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रखते हैं-वे अनर्थ के भागी होते हैं । इसी संबंध से सम्बन्धित हुए इस अध्ययन का यह भादिस सूत्र है-

सत्तरमा अध्ययनतो प्रारंभ

—: आक्षीर्णं जातिमान् घोडानुं सत्तरमुं अध्ययन प्रारंभ :-

सोणमुं अध्ययन पूर थयं गयुं छे, डवे सत्तरमा अध्ययननी शङ्खात् थाय छे. सोणमा अध्ययनमां ओ वातनुं स्पष्टीकरणुं करवामां आण्युं छे डे द्रौपदीओ नागश्रीना लवमां कुत्सित (घोडुं) दान क्युं हुंतुं. कडवा तुंभानो आहार मुनिराजने आप्थो हुतो. तेमज न्यारे ते सुकुमारिकाना लवमां उत्पन्न थयं हुती त्यारे तेणुं निदान अंध क्यो हुतो. तेथी तेने महान् अनर्थनी प्राप्ति थयं हुती डवे आ सत्तरमा अध्ययनमां ओ वात स्पष्ट करवामां आवशे डे ओओ पोतानी इन्द्रियोने वशमां राणता नथी-तेओ अनर्थं लोगवे छे. ओ न वातने स्पष्ट करतुं सत्तरमा अध्ययननुं आ पडेसु सूत्र छे.

समएणं हत्थिसीसे नयरे होत्था, वणओ, तत्थ णं कणगकेऊ
 णामं राया होत्था, वणओ, तत्थणं हत्थिसीसे णयरे बहवे
 संजत्ता णावावाणियगा परिवसंति अड्ढा जाव बहुजणस्स अप-
 रिभूया यावि होत्था, तएणं तेसिं संजत्ता णावा वाणियगाणं
 अन्नया एगयओ जहा अरहणओ जाव लवणसमुहं अणैगाइं
 जोयणसयाइं ओगाढा यावि होत्था तएणं तेसिं जाव बहूणि
 उप्पाइयसयाइं जहा भागंदियदारगाणं जाव कालियवाए य तत्थ
 समुत्थिए, तएणं सा णावा तेणं कालियवाएणं आघोलिज्ज-
 म्माणी२, संचालिज्जम्माणी२, संखोहिज्जम्माणी२, तत्थेव परिभ-
 म्मइ, तएणं से णिज्जामए णट्टमइए णट्टसुइए णट्टसण्णे मूढ-
 दिसाभाए जाए यावि होत्था, ण जाणइ कयरं देसं वा दिसं
 वा विदिसं वा पोयवहणे अवहिए त्तिकट्टु ओहयमणसंकप्पे
 जाव झियायइ, तएणं ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य
 गविमल्लगा य संजत्ताणावावाणियगा य जेणैव से णिज्जामए
 तेणैव उवागच्छइ उवागच्छत्ता एवं वयासी-किन्नं तुमं देवा-
 णुप्पिया ! ओहयमणसंकप्पा जाव झियायह ?, तएणं से
 णिज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य ४ एवं वयासी-एवं खलु
 देवाणुप्पिया ! णट्टमइए जाव अवहिए त्ति कट्टु तओ ओहय-
 मणसंकप्पे जाव झियासि, तएणं ते कुच्छिधाराय ४ तस्स
 णिज्जामयस्स अंतिए एयसट्टं सोच्चा णिसम्म भिया ४ णहाया
 कयबालिकम्मा करयल बहूणं इंदाण य खंधाण य जहा मल्लि-

नाए जाव उवायमाणार चिट्ठंति, तएणं से णिज्जामए तओ
 मुहुत्तंतरस्स लद्धमइए३ अमूढदिसाभाए जाए यावि होत्था,
 तएणं से णिज्जामए ते वहवे कुच्छिधारा य ४ एवं वयासी-
 एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! लद्धमइए जाव अमूढदिसाभाए
 जाए, अम्हे णं देवाणुप्पिया ! कालियदीवे तेणं संबूढा एस्सणं
 कालियदीवे आलोक्कइ, तएणं ते कुच्छिधारा य४ तस्स णिज्जा-
 मगस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा हट्टुट्टा पयक्खिणाणुकूलेणं वा-
 एणं जेणेव कालियदीवे तेणैव उवागच्छंति उवागच्छित्ता पोय-
 वहणं लवेति लवित्ता एगट्टियाहिं कालियदीवं उत्तरंति, तत्थ
 णं ते वहवे हिरण्णागरे य सुवण्णागरे य रयणागरे य वइरा-
 गरे य वहवे तत्थ आसे पासंति, किं ते ?, हरिरेणुसोणिसुत्तगा
 आइण्णवेढा, तएणं ते आसा ते वाणियए पासंति पासित्ता
 तेसिं गंधं अग्घायंति अग्घायित्ता भीया तत्था उव्विग्गमणा
 तओ अणेगाइं उव्वमंति, तेणं तत्थ पउरतणपाणिया निव्वभया
 निरुव्विग्गा सुहं सुहेणं विहरंति ॥ सू० १ ॥

टीका—जम्बूस्वामी पृच्छति—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता महावी-
 रेण यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं सम्प्राप्तेन षोडशस्य ज्ञाताध्ययनस्यायमर्थः=

—जइणं भंते ! इत्यादि ।

टीकार्थ—(भंते ! हे भदन्त ! (जइणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव
 संपत्तेणं) यदि श्रमण भगवान् महावीरने कि जो सिद्धिगति नामकस्थान
 को प्राप्तकर चुके हैं (सोलससस्स णायज्झयणस्स अयमट्टे पणत्ते सत्तर-

जइण भंते ! इत्यादि—

टीकार्थ—(भंते !) हे भदन्त ! (जइणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव
 संपत्तेणं) ने श्रमणु भगवान् महावीरे के-नेयो सिद्धगति नामना स्थानने
 भेणवी युध्या छे.

पूर्वोक्तो भावः प्रज्ञप्तः ? सुधर्मास्वामीप्राह-एवं खलु हे जम्बूः ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये हस्तिशीर्षं नाम नगरमासीत् । ' वण्णओ ' वर्णकः=' ऋद्धे ' त्यादि-नगरवर्णनम् पूर्ववद् विज्ञेयम् । तत्र खलु कनककेतुर्नाम राजाऽऽसीत् ' वण्णओ ' वर्णकः-' महयाहिमवंते ' त्यादि राजवर्णनं पूर्ववद् बोध्यम् । तत्र खलु हस्तिशीर्षं

मस्स णं भंते ! णायज्झयणस्स सभणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे पणत्ते) सोलहवें ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्तरूप से अर्थ प्ररूपित किया है-तो सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए उन्हीं श्रमण भगवान् महावीर ने सत्रहवें ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ प्ररूपित किया है (एवं खलु जंबू !) इस प्रकार जंबू स्वामी के पूछने पर सुधर्मा स्वामी अब उन्हें समझाते हैं-वे कहते हैं हे जंबू ! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है:-

(तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे नयरे होत्था, वण्णओ, तत्थ, णं कणगकेऊणांमं राया होत्था, वण्णओ, तत्थ, णं हत्थिसीसे णयरे बहवे संजत्ता णावा वाणियगा परिवसंति, अट्टा जाव बहुजणस्स अपरिभूया यावि होत्था) उस काल और उस समय में हस्तिशीर्ष नाम का नगर था । "ऋद्ध" इत्यादि रूपसे पूर्व अध्ययनों में वर्णित पाठ की तरह इस नगर का वर्णन जानना चाहिये । उस नगर में कनक केतु नामका राजा रहता था । इसका भी वर्णन " महया हिमवंत " इत्यादिरूप से पहिले के अध्ययनोंमें वर्णित राजाओंके वर्णन जैसा ही जानना चाहिये । उस

(सोलसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्टे पणत्ते सत्तरमस्स णं भंते ! णायज्झयणस्स सभणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे पणत्ते)

सोणमा ज्ञाताध्ययनने पूर्वोक्त इये अर्थ प्ररूपित कर्यो छे त्यारे सिद्ध-गति स्थानने सेणवी बूडेला ते जे श्रमणु लगवान महावीरे सत्तरमां ज्ञाता-ध्ययनने शो। अर्थ प्ररूपित कर्यो छे.

(एवं खलु जंबू) आ रीते ज'भूना प्रश्नने सांलणीने तेभने समभवतां सुधर्मा स्वामी कडेवा लाग्या के डे ज'भू ! तमारा प्रश्नने जवाण आ प्रमाणे छे के:-

(तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे नयरे होत्था, वण्णओ, तत्थणं कण-गकेऊणांमं राया होत्था, वण्णओ, तत्थणं हत्थिसीसे णयरे बहवे संजत्ता णावा वाणियगा परिवसंति, अट्टा जाव बहुजणस्स अपरिभूया यावि होत्था)

ते काले अने ते समये हस्तिशीर्षं नामे नगर उतुं. " ऋद्ध " वगेरे इपमां पडेलांना अध्ययनोमां वर्णन करवामां आवेला पाठनी जेम आ नगरतुं वर्णन पणु जण्णी देवुं जेधये. ते नगरमां कनककेतु नामे राजा रहतेता उते.

नगरे बहवः ' संजज्ञाणावावाणियगा ' संयात्रानौकावाणिजकाः=सं=सज्ञता
यात्रा=देगान्तरगमनं संयात्रा, तत्प्रधाना नौकावाणिजकाः=पोतवणिजः-संयात्रा-
नौका वाणिजकाः परिवसन्ति कीदृशाः ? इत्याह-आढ्या यावत् ' बहुजणस्स '
बहुजनस्य सम्बन्धमामान्ये पट्टीजनसमुदायेनेत्यर्थः ' अपरिभूया ' अपरिभूताः=
परामवरहिता चाप्यासन् । ततः खलु तेषां संयात्रानौका वाणिजकानाम् अन्यदा=
अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित्तमये ' एगयाओ ' एकतः एकत्रमिलित्वा ' जहा अरहणओ '
यथा अर्द्धस्रकः=अत्रैवाष्टमाध्ययनोक्ताह्वकवत् यावत् लवणसमुद्रमनेकानि योजन-
गतानि ' ओगाढा ' अवगाढाः=उत्तीर्णाश्चप्यामन् । ततः=तत्र खलु तेषां यावत्
बहूनि ' उप्पाइयसयाइं ' औत्पातिकगतानि=आकस्मिकोत्पातगतानि यथा माक-
न्दिकदारकयोः-जिनरक्षितजिनपालितयोः संजातानि तथैवास्यापि यावत् ' कालि-
यवाए ' कालिकवातः प्रलयकालिकवत्प्रचण्डवातश्च तत्र समुत्थितः । ततः=तदन-
न्तरं खलु सा नौका तेन कालिकवातेन ' आघोलिज्जमाणी २ ' आघूर्ण्यमाना
२ पुनः पुनर्भ्राम्यन्ती ' संचालिज्जमाणी २ ' संचाल्यमाना २ पुनः पुनश्चाल्य-

हरितशीर्षं नगरमें अनेक पोत वणिक् (नावसे व्यापार करने वाले) रहते
थे । ये एक साथ मिलकर ही परदेस में जाकर व्यापार किया करते थे ।
इनकी उस नगर में अच्छी प्रतिष्ठा थी-कारण ये सब के सब लक्ष्मीदेवी
के विशेष रूप से कृपापात्र थे । (तएणं तेसिं संजज्ञा णावा वाणिजगाणं
अन्नया एगयाओ जहा अरहणओ जाव लवणसमुद्धं अणेगाइं जोयण-
सयाइं ओगाढा यावि होत्था, तएणं तेसिं जाव बहूणि उप्पाइयसयाइं
जहा मागंदियदारगाणं जाव कालियवाए य तत्थ समुत्थिए, तएणं सा
तेणं कलियवाएणं आघोलिज्जमाणी २ संचालिज्जमाणी २ संखोहिज्जमाणी

या शल्लतुं वणुंन पणु " महया हिमवत " वगेरे इपमां पडैलांना अद्य-
यनोमां वणित शल्लओना वणुंन वेपुं अ न्नाणी देपुं नेधओ. ते हस्तिशीर्षं
नगरमा धणुा पोतवणुिके (वडाणु वडे वेपार करनारा) रडेता डता तेओ
सवें ओधी साथे भणीने परदेशमां जाता अने त्यां वेपार करता डता. ते
नगरमां तेमनी सारी ओधी प्रतिष्ठा डती. डेमडे पास करीने तेओ सवें
लक्ष्मीना कृपापात्र डता.

(तएणं तेसिं संजज्ञा णावा वाणिजगाणं अन्नया एगयाओ जहा अरहणओ
जाव लवणसमुद्धं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढा यावि होत्था, तएणं तेसिं जाव
बहूणि उप्पाइयसयाइं जहा मागंदियदारगाणं जाव कालियवाए य तत्थ समु-
त्थिए तएणं सा णावा तेणं कलियवाएणं आघोलिज्जमाणी २ संचालिज्जमाणी

माना ' संखोहिज्जमाणी २ ' संक्षोभ्यमाणा २ पुनः पुनः क्षोभं प्राप्यमाणा सती तत्रैव=एकस्थान एवेतस्ततः परिभ्रास्यति किन्तु ततः परं गन्तुं न प्रभवतीति भावः । ततः खलु स निर्यामकः=नाविकः ' गट्टमइए ' नष्टमतिकः-मतिज्ञानरहितः ' गट्टसुइए ' नष्टश्रुतिकः-विस्मृतनिर्यामकशास्त्रः दिग्निर्णयं कर्तुमशक्तत्वात् ' गट्टसण्णे ' नष्टसञ्ज्ञः=मार्गज्ञानरहितः ' सूढदिसाभाए ' सूढदिग्भागः=पूर्वादि-दिग्दिग्भागज्ञानरहितः जातश्चप्यासीत्, पुनश्च स न जानाति यत् कतरं=कं देशं

२ तत्थेव परिभ्रमइ, तएणं से णिज्जामए गट्टमइए गट्ट सुइए गट्ट सण्णे सूढदिसभाए जाए यावि होत्था) एक दिनकी बात है कि जब ये सांघा-त्रिक पोत वणिक एक जगह मिलकर बैठे हुए थे तब अष्टम अध्ययन में वर्णित अरहन्नक सेठ की तरह इनका लवण समुद्रसे होकर परदेश में व्यापार निमित्त जाने का विचार हुआ । विचार स्थिर होते ही ये जब नौका द्वारा लवण समुद्र में सैंकडों योजन तक निकल चुके तब इनके लिये जिन रक्षित और जिनपालितकी तरह आकस्मिक अनेक उत्पातशाल (सैंकडों)हुए । उस समय प्रलय कालकी तरह प्रचण्ड वायु उठी । उससे उनकी नौका बार २ डगमगा ने लगी इधर से उधर फिर ने लगी । बार २ चञ्चल होकर बार २ क्षुब्धित होकर एक ही स्थान पर नीची ऊँची होने लगी-उससे आगे वह नहीं बढी । इससे निर्यामिक-नाविक-मतिज्ञान से रहित हो गया । दिशाओं का निर्णय करने का ज्ञान उसका जाता रहा । वह मार्ग ज्ञान रहित होकर दिग्मूढ बन गया । (ण जोगइ

२ संखोहिज्जमाणी १ तत्थे वपरिभ्रमइ, तएणं से णिज्जामए गट्टमइए गट्टसुइए गट्टसण्णे सूढ दिसाभाए जाए यावि होत्था) -

એક દિવસની વાત છે કે બ્યારે તેઓ સર્વે સાંઘાત્રિક પોતવણિકો એક સ્થાને એકત્ર થઇને બેઠા હતા ત્યારે આઠમા અધ્યયનમાં વર્ણિત અરહન્નક શેઠની જેમ તેમનો પણ લવણ સમુદ્રમાં થઇને પરદેશમાં વેપાર માટે જવાનો વિચાર થયો. વિચાર સ્થિર થતાં જ તેઓ બ્યારે નૌકા વડે લવણ સમુદ્રમાં સેંકડો યોજન સુધી પહોંચી ગયા ત્યારે જનપાલિત અને જનરક્ષિતની જેમજ તેમના માટે પણ સેંકડો આચિંતા ઉપદ્રવો ઉત્પન્ન થયા. તે વખતે પ્રલય કાળના જેવો પ્રચંડ વાયુ કુંકાવા લાગ્યો. તેથી તેમની નૌકા વારંવાર ડગમગવા લાગી, આમથી તેમ ફરવા લાગી વારેઘડીએ ચંચળ થઇને, વારવાર ક્ષુબ્ધિત થઇને એક જ સ્થાન ઉપર નીચે ઉપર થવા લાગી, તેનાથી આગળ વધી નહિ. તેથી નિર્યામિક-નાવિક મતિજ્ઞાનથી રહિત થઈ ગયો. દિશા-ઓને બાણવાનું તેનું જ્ઞાન જતું રહ્યું. માર્ગજ્ઞાનથી રહિત થઇને દિગ્મૂઢ બની

वा दिशं वा विदिशं वा प्रति मे पोतवहनम् नौकायानं ' अवहिए ' अपहतम् महा
 वानेन नीतम् , इति । इति कृत्या=इतिमनसि निधाय अपहतमनः संकल्पो यावद्
 ध्यायति=आर्त्तध्यानं करोति । ततः खलु ते बहवः कुक्षिधाराश्च=पार्श्वतो नौका
 चालकाः कर्णधाराश्च=नाविकाः । ' गम्भिल्लगाय ' गार्भेयकाश्च नौमध्ये यथाव-
 सर कर्मकराः, संयात्रानौका वाणिजकाः=माण्डपतयश्च यत्रैव स निर्यायकः=नौका-
 धिपतिवृत्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य एवमवादिषुः-किं खलु यूयं हे देवानुप्रियाः !
 अपहतमनःसंकल्पाः निरुत्साहमनस्काः यावत् ' झियायह ' ध्यायथ आर्त्तध्यानं
 कुरुथ, आदरार्थं बहुवचनम् । ततः खलु स निर्यामकस्तान् बहून् कुक्षिधारांश्च ४

करं देसं वा दिशं वा विदिशं वा पोयवहणे अवहिए त्ति कट्टु) अतः
 जब उसे इस बात का भी ज्ञान नहीं रहा कि यह महाबात मेरी नौका
 को किस दिशा अथवा विदिशा की ओर ले गया है-तब इस प्रकार
 मन में विचार कर के वह (ओहयमणसंकल्पे जाव झियायह) अपहत
 मनः संकल्पवाला बनकर यावत् आर्त्तध्यान करने लगा । (तएणं ते
 बहवे कुच्छिधारा य कणधारा य गम्भिल्लगा य संजत्ता णावा वाणि-
 यगा य जेणेव से णिज्जामए तेणेव उवागच्छइ) इतने में अनेक कुक्षि-
 धर-पार्श्व में बैठकर नौका चलाने वाले कर्णधर-नाविक, गार्भेयक-नौका
 के भीतर यथावसर काल करने वाले और सांयात्रिक पौन वणिक जहां
 वह निर्यायिक था-वहां आये । (उवागच्छित्ता एवं वयासी-किन्नं तुमं
 देवानुप्रिया ओहयमणसंकल्पं जाव झियायह-तएणं से णिज्जामए

गथे। (ण जाणाइ करं देसं वा दिशं वा विदिशं वा पोयवहणे अवहिएत्ति कट्टु)
 जेथी न्यारे तेने आ वातनी पणु अणर रही नडि के आ भडावात अमारी
 नौकाने इध दिशा अथवा तो विदिशा तरइ लध गथे छे. त्यादे मनमां आ
 वातने विचार करीने ते (ओहयमणसंकल्पे जाव झियायह) अपहतमनः
 संकल्पवाणे थडने यावत् आर्त्तध्यान करवा लाग्थे।

(तएणं ते बहवे कुच्छिधारा य कणधारा य गम्भिल्लगा य संजत्ता
 णावा वाणियगा य जेणेव से णिज्जामए तेणेव उवागच्छइ)

ओटलमां धणा कुक्षिधर-पार्श्वमां जेसीने नौका अलावनारा, कुक्षिधर
 नाविक, गार्भेयक-नौकामां यथा समय काम करनारा अने सांयात्रिको-पोत-
 वणिको न्य ते निर्यायक हुते त्यां गया।

(उवागच्छित्ता एवं वयासी-किन्नं तुमं देवानुप्रिया ओहयमणसंकल्पा
 जाव झियायह-तएण से णिज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य ४ एवं वयासी-

एवमवादीत् एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! अहं नष्टमतिक्रुः यावत् न ज्ञायते कं देशं वा दिशं वा विदिशं वा प्रतिपोतवहनम् 'अवहिए' अपहतं=महावातेन नीतम् ? इति कृत्वा=इति विचार्य ततः=तस्मात्कारणात् अपहतमनःसङ्कल्पो यावत् ध्यायामि=आर्तध्यानं करोति । ततः खलु ते कुक्षिधाराश्च ४ सर्वे तस्य निर्यामकस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निश्चय्य भीताः, त्रस्ताः, त्रसिताः, उद्विग्नाः, सञ्जातभयाः सन्नः स्नाताः कृतबलिकर्माणः 'करयल०' करतलपरिगृहीतं गिर आवर्त्त दशनखं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा बहूनां इन्द्राणां च स्कन्दानां च यथा मल्लिजाते तथैव यावत्-बहूनां रुद्रादीनां देवानां देवीनां च=उपयाचितशतानि अनेकविध-

ते बहवे कुच्छिधारा य ४ एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! णट्टमइए जाव अवहिए त्ति कट्टु तओ ओहयमणसंकप्पे जाव झियामि) वहां आकर के उन्हीं ने उस से इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिय ! क्या कारण है जो तुम अपहतमनःसंकल्प यावत् होकर आर्तध्यान कर रहे हो । उन सब की ऐसी बात सुनकर उस निर्यामक ने उन अनेक कुक्षिधार ४ आदिकों से इस प्रकार कहा-सुनो बात इस प्रकार है-मैं इस समय नष्ट मतिज्ञान आदि वाला हो रहा हूँ-सुझे यह पता नहीं पड रहा है कि मेरी यह नौका महावातके द्वारा किस देशमें और किस दिशाअथवा विदिशा में ले आई गई है-इस कारण मैं इस समय निरुत्साह मन-वाला आदि बन रहा हूँ । (तएणं ते कुच्छिधारा य ४ तस्स णिज्जामयस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म भीया ५ ण्हाया कयवलिकम्मा करयल बहूणं इंदाण य खंधाण य जहा मल्लिनाए जाव उवायमाणा २

एवं खलु देवाणुप्पिया णट्टमइए जाव अवहिए त्ति कट्टु तओ ओहयमणसंकप्पे जाव झियामि)

त्यां नधने तेमण्णे तेने आ प्रभाण्णे क्खुं के डे देवानुप्रिय ! शा कारणुधी तमे अपहतमनः संकल्पवाणा यधने आर्तध्यान करी रक्षा छे । तेओ सर्वेनी आ वात सांखणीने नियामके ते घण्णा कुक्षिधार ४ वगेरे यधने आ प्रभाण्णे क्खुं के सांखणो, वात ओवी छे के अत्यारे डु नष्ट मतिज्ञानवाणो यध गये । छुं मने ओ जतनी पणु समण पडती नथी के आ भारी नौका महावात पडे प्रेराधने क्या देशमां अने कथं दिशा अथवा तो विदिशामां तण्णं आवी छे । ओटला भाटे डु अत्यारे निराश मनवाणो यध गये । छुं ।

(तएणं ते कुच्छिधारा य ४ तस्स णिज्जामयस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म भीया ५ ण्हाया कयवलिकम्मा करयलबहूणं इंदाण य खंधाण य जहा मल्लिनाए जाव उवायमाणा २ चिट्ठत्ति, तएणं से णिज्जामए तओ मुहुत्तंतरस्स

मान्यतागतानि ' उच्चीयमाणा २ ' उपयाचमानाः २ पुनः पुनः कुर्वाणाः-तत्त-
त्प्रमादनार्थमनेकविधां प्रतिज्ञां कुर्वन्तस्तिष्ठन्ति, ततः खलु स निर्यामकः ततो-
मुहूर्तान्तरात्=मुहूर्तानन्तरं लब्धमतिकः लब्धश्रुतिकः, लब्धसञ्ज्ञः, अमूढदिग्भागः
सर्वथा समुपलब्धसंज्ञ इत्यर्थः जातश्चाप्यासीत् । ततः खलु स निर्यामकस्तान् बहून्

चिद्वृत्ति तएणं से णिज्जामए तओ सुहुत्तंतरस्स लद्धमइए ३ अमूढदि-
साभाए जाए यावि होत्था) इस तरह वे कुक्षिधार वगैरह उस निर्या-
मक के मुख से इस प्रकार के वचन सुनकर और उन्हें हृदय में अव-
धारण कर भीत, प्रस्त, त्रसित उद्विग्न एवं उत्पन्न भयवाले हो गये ।
उन्होंने उसी समय स्नान एवं वायसादि पक्षियों को अन्नादि देने रूप
वलिकर्म करके अपने २ हाथों की अंजलि बनाई और उसे मस्तक पर
रखकर अनेक इन्द्रों की स्कन्दों की, अनेक रुद्रादिक देवताओं की अनेक
देवियों की जैसा कि मल्लिनामक अध्ययन में कहा है-सैकड़ों तरह की
चार २ मनौती की, उनके प्रसाद के लिये अनेक प्रकार की प्रतिज्ञाएँ
की । इस के बाद उस निर्यामक की मति ठिकाने आ गई । वह दिशाओं
के ज्ञान करने में समर्थ बन गया । मार्ग का ज्ञान उसे ही गया । तथा
यह पूर्व दिशा है यह पश्चिम दिशा है इत्यादि रूप से उसे दिशाओं
के विभाग का भी ज्ञान हो गया । (तएणं से णिज्जामए ते बहवे
कुच्चिधारा य ४ एवं वयासी एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! लद्धमइए

लद्धमइए ३ अमूढदिसाभाए जाए यावि होत्था)

ते कुक्षिधार वगेरे बोडोअे निर्यामकना सुभथी आ प्रभाणे वयने।
सांलणीने अने तेमने इद्वयमां धारशु करीने भीत, प्रस्त, उद्विग्न अने
उत्पन्न भयवाणा थर्छ गया. तेओअे तत्काण स्नान तेमञ्च डागडा वगेरे पक्षी-
ओने अन्नलाग वगेरे आपीने वलिकर्म क्युं अने त्यारपथी तेओअे पोताना
छायोनी अंजलि जनावी अने तेने मस्तके मूझीने धण्णा इन्द्रोनी, धण्णा इद्र
वगेरे देवताओनी धण्णी देवीओनी-मह्वी नामक अध्ययनमां जे प्रभाणे वरुण
करवामां आवेलु छे ते प्रभाणे सैकडा जतनी चारंवार मानताओ मानी,
तेमने प्रसाद यदावधानी अनेक जतनी प्रतिज्ञाओ करी. त्यारपथी ते निर्या-
मकनी विवेक शक्ति जअत थर्छ गछ. तेने दिशाओनुं ज्ञान थवा लाग्यु.
मार्गनुं ज्ञान तेने थर्छ गयुं तेमञ्च आ पूर्व दिशा छे, आ पश्चिम दिशा
छे, वगेरे इपथी पणु तेने दिशाओना विलाओनुं ज्ञान थर्छ गयुं.

(तएणं से णिज्जामए ते बहवे कुच्चिधारा य ४ एवं वयासी एवं खलु
अहं देवाणुप्पिया ! लद्धमइए जाव अमूढदिसाभाए जाए-अम्हेणं देवाणुप्पिया !

कुक्षिधारांश्च ४ एवमवादीत्-एवं खलु अहं हे देवानुप्रियाः ! अधुना लब्धमतिको यावद् असूढदिग्भागे जातोऽस्मि-वयं खलु हे देवानुप्रियाः ! ' कालियदीवं-तेणं ' कालिकद्वीपान्ते=कालिकद्वीपसमीपे खलु ' संवूढा ' संव्यूढाः=संप्राप्ताः, एषः=अग्रे वर्तमानोऽयं खलु कालिकद्वीपः ' आलोक्य' आलोक्यते=दृश्यते । ततः खलु ते कुक्षिधाराश्च ५ सर्वे तस्य निर्यामकस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा हृष्टतुष्टाः प्रदक्षिणानुकूलेन=पृष्ठप्रदेशागमनशीलत्वात्सानुकूलेन वातेन यत्रैव कालिकद्वीपस्त-त्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य पोतवहनं लंबेति=लम्बयन्ति=शृङ्खलाभिर्वध्नन्ति स्थिरी कुर्वन्ति-इत्यर्थः, लम्बयित्वा ' एगद्वियार्हि ' एकार्थिकाभिः-एकः=समानः प्रव-

जाव असूढदिसाभाए जाए-अस्हेणं देवानुप्रिया ! कालियदीवंतेणं संवूढा, एसणं कालियदीवे आलोक्यह, तएणं ते कुच्छिधारा ४ य तस्स णिज्जामगस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा हट्टतुट्टा पायक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छंति) इस के बाद उस निर्यामक ने उन अनेक कुक्षिधार आदिकों से ऐसा कहा हे देवानुप्रियों ! मैं लब्धम-तिवाला हो गया हूँ मेरी बुद्धि ठिकाने आ गई है । यावत् अब मैं पूर्वादि दिशाओं का विभाग कर सकता हूँ । इस समय हमलोग कालिक द्वीप के पास आ गये हैं । देखों यह सामने कालिक द्वीप ही दिखलाई दे रहा है । इस तरह उस निर्यामक के मुख से सुनकर वे सब कुच्छिधार आदि बड़े प्रसन्न हुए, उन्हें बड़ा अधिक संतोष हुआ । इसी समय अनुकूल वायु ने उन सब को जहाँ वह कालिक द्वीप था वहाँ पहुँचा दिया । (उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेति, लंबित्ता एगद्वियार्हि कालिय-

कालियदीवं तेणं संवूढा, एसणं कालियदीवे आलोक्यह, तएणं ते कुच्छिधारा ४ य तस्स णिज्जामगस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा हट्ट तुट्टा पायक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छंति)

त्यारणाह ते निर्यामके ते घण्टा कुक्षिधार वगेरे दोकेने आ प्रभाणु उहुं के डे देवानुप्रियो ! भारी बुद्धि शक्ति इरी जयत थर्ध गध छे. भारी बुद्धि व्यवस्थित थर्ध गध छे. यावत् डवे डुं पूर्व वगेरे दिशाओनुं विलाजन पणु समणु शकुं छुं. अत्यारे अमे कालिक द्वीपनी पासे आवी गया छीओ. बुओ आ सामे कालिक द्वीपन देणाछ रह्यो छे. आ प्रभाणु ते निर्यामकना मुपथी सांलणीने ते षधा कुक्षिधार वगेरे दोके भूषण प्रसन्न थया, तेओने भूषण संतोष थयो. ओ न वणते अनुकूल पवने तेओने न्यां कालिकद्वीप डते त्यां पडोआडी दीधा.

(उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेति, लंबित्ता एगद्वियार्हि कालियदीवं उत्त-

हणतुल्यः अर्थः=प्रयोजनं यासां तास्तथा, ताभिः=सहायिकाभिल्लघुनौकाभिः
कालिकद्वीपम् उत्तरन्ति स्म । तत्र खलु ते बहून् हिरण्याकरान्=रजताकरान्
सुवर्णाकरांश्च, रत्नाकरांश्च, वज्राकरान्=वज्राख्यरत्नखनीरित्यर्थः, तथा बहून्
तत्राश्वांश्च पश्यन्ति, किं ते=किम्भूतास्ते ? इत्याह-‘ हरिरेणुसोणिसुत्तगा ’
हरिद्रेणुगोणिसुत्रकाः=हरिद्वर्णधूलिकृतकटिसूत्राः ‘ आङ्गणवेढा ’ आकीर्णवेष्टः-
वर्णनग्रन्थो-अत्र वाच्यः-‘ हरिरेणुसोणिसुत्तगा ’ इत्यादिरूपं वर्णनं सर्वमत्र कथनी
यमित्यर्थः । ततः खलु तेऽश्वास्तान् पश्यन्ति, दृष्ट्वा तेषां गन्धम् ‘ अग्रायन्ति ’
आजिग्रन्ति, आघ्राय भीताः=भयं प्राप्ताः, त्रस्ताः=त्रासं प्राप्ताः त्रसिताः=विशेष-

दीवं उत्तरन्ति, तत्स्थणं ते बह्वे हिरण्णागरे य सुवर्णागरे य रघणागरे
य चहरागरे य बह्वे तत्स्थ आसे पासन्ति, किं ते ? हरिरेणुसोणिसुत्तगा-
आङ्गणवेढा, तएणं ते आसा ते वाणियए पासन्ति पासित्ता तेसिं गंधं
अग्रायन्ति, अग्रायित्ता भीया तत्था उच्चिग्गा उच्चिग्गमणा तओ
अणेगाइं जोयणाइं उवमसन्ति) वहां पहुँच कर उन्होंने लंगर डाल दिया।
अर्थात् जहाज को साँकलों से बांधकर वहाँ स्थिर कर दिया। बाद में
वे एकार्थिक-समान प्रयोजन साधक-छोटी २ नौकाओं से उस कालिक
द्वीप में उतरे। वहाँ पर उन्होंने अनेक हिरण्य की खानों को सुवर्ण की
खानों को, रत्न की खानों को, हीरे की खानोंको तथा अनेक घोड़ों को
देखा। उन पर कटिसूत्र हरिद्वर्ण वाली धूलि से रचा गया था। ये सब
जात्यश्व थे। उन जात्यश्वों ने उन पौनवणिकों को देखा। उनकी गंध
को उन्होंने सूँघा। सूँघ कर वे सबके सब भयभीत हो गये। त्रस्त हो

रन्ति, तत्स्थणं ते बह्वे हिरण्णागरे य सुवर्णागरे य रघणागरे य चहरागरे य बह्वे
तत्स्थ आसे पासन्ति, किं ते ? हरिरेणुसोणिसुत्तगा आङ्गणवेढा, तएणं ते आसा ते
वाणियए पासन्ति, पासित्ता तेसिं गंधं अग्रायन्ति, अग्रायित्ता भीया तत्था
उच्चिग्गा उच्चिग्गमणा तओ अणेगाइं जोयणाइं उवमसन्ति)

त्यां पडोथीने तेमणे लंगर नाभ्युं. ओट्टे डे वडाणुने सांकेणे वडे
गांधीने त्या ळिणुं राभ्युं. त्थारपथी तेओ अकार्थिक नानी नानी नौकाओ वडे
ते अक्षिक द्वीपमां उतर्या त्यां तेमणे घण्णी डिरुयनी भाणु, सुवर्णुनी भाणु।
तेमन् घण्णा घोडाओने जेया. घोडाओ उपर कटिसूत्र लीला रंगनी माटी
वडे अनायवामा आव्युं डतुं. आ अथा न्दत्यश्वो डता ते न्दत्याश्वोओ ते
पोतवाणिकेने जेया. तेमणे तेमनी गंधने सूंधी सूंधीने तेओ गधा लय-
शीत थड गया. त्रस्त थड गया. विशेषइपथी तेमना चित्तमां लयतु संथरथु

तस्मात्सं प्राप्ताः, उद्विग्नाः=उद्वेगं प्राप्ताः उद्विग्नमनसः=व्याकुलमानसः सन्तः ततः= तस्मात्स्थानात् अनेकानि योजनानि=अनेकयोजनदूरम्, ' उव्भसन्ति ' उव्भ्रा-
म्यन्ति=पलायन्ते स्म ।-ते=अश्वाः खलु तत्र वने ' पउरगोयरा ' प्रचुरगोचराः-
प्रचुरः=बहुलः गोचरः=संचरणभूमिभागो येषां ते तथा, स तु तृणजलरहितोऽपि
भवतीत्याह-' पउरतणपाणिया ' प्रचुरतृणपानीयाः-प्रचुराणि=प्रभूतानि तृणानि
पानीयानि च येषु ते तथा, निर्भयाः=श्वापदादिभयरहिताः, अतएव ' निरुव्विग्गा '
निरुद्विग्नाः=मनः क्षोभरहिताः सन्तः सुखं सुखेन विहरन्ति ॥ सू० १ ॥

मूलम्-तण्णं ते संजत्तानावावाणियगा अण्णमण्णं एवं
वयासी-किण्णं अम्हं देवाणुप्पिया ! आसेहिं ?, इमे णं बहवे
हिरण्णागरा य सुवण्णागरा य रयणागरा य वड्ढरागरा य तं
सेयं खलु अम्हं हिरण्णस्स य सुवण्णस्स य रयणस्स य वड्ढरस्स
य पोयवहणं भरित्तए त्तिकट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेति
पडिसुणित्ता हिरण्णस्स य सुवण्णस्स य रयणस्स य वड्ढरस्स य
तणस्स य अण्णस्स य कट्टुस्स य पाणियस्स य पोयवहणं भरेति

गये । विशेषरूप से उनके चित्त में भय का संचार हो गया । उनका
मन उद्विग्न हो गया । इस तरह होकर वे सब वहां से अनेक योजन
दूर तक वन में भाग गये । (तणं तत्थ पउरगोयरा पउरतणपाणिया
निव्भया, निरुव्विग्गा सुहं सुहेणं विहरन्ति) वहां वन में उनको विचरण
करने के लिये बहुत अधिक विस्तृत भूमिभाग था तृण जल की वहां
सर्व प्रकार से प्रचुरता थी । अतः वे उस वन में श्वापद आदि के भय
से निर्मुक्त होकर विना किसी मनः क्षोभ के आनन्द के साथ विचरण
करने लगे ॥ सूत्र १ ॥

थध गयुं तेमनुं मन उद्विग्न थध गयुं आ प्रमाणे तेओ भधा त्याथी धणा
येओनेो इर सुधी वनमां नासी गया. (तणं तत्थ पउरगोयरा पउरतण-
पाणिया निव्भया, निरुव्विग्गा सुहं सुहेणं विहरन्ति) त्यां वनमां विचरणु करवा
भाटे भडुं विस्तृत भूमिभाग इतो. धास, पाणीनी त्यां गधी रीते सरस
सगवड इती. ओटला भाटे तेओ वनमां डिंसके प्राणीओना लयथी मुक्त थधने
क्षोभरहित थधने सुणेथी विचरणु करवा लाग्या. ॥ सूत्र १ ॥

भरित्ता पयक्खिण्णाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरपोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता पोयवहणं लंवेति लम्बित्ता सगडी-
सागडं सज्जेति सज्जित्ता तं हिरण्णं जाव वइरं च एगट्टियाहिं
पोयवणाओ संचारेति संचारित्ता सगडीसागडं भरेति भरित्ता
संजाइंति संजोइत्ता जेणेव हत्थिसीसए नयरे तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छित्ता हत्थिसीसयस्स नयरस्स बहिया अग्गुज्जाणे
सत्थणिवेसं करेति करित्ता सगडीसागडं मोएंति मोइत्ता महत्थं
जाव पाहुडं गेणहंति गेण्हित्ता हत्थि सीसं नगरं अणुपविसंति
अणुपविसित्ता जेणेव कणगकेऊराया तेणेव उवागच्छइ उवाग-
च्छित्ता जाव उववेति ॥ सू० २ ॥

टीका—‘ तएणं ते संजत्ता ’ इत्यादि । ततः खलु ते संयात्रानौकावाणि-
जका अन्योन्यमेवमवादिषुः—किं खलु अस्माकं हे देवानुप्रियाः ! अश्वैः—इमे खलु
वहवो हिरण्याकराश्च, सुवर्णाकराश्च, रत्नाकराश्च वज्राकराश्च सन्ति, तत् श्रेयः
खलु अस्माकं हिरण्यस्य च सुवर्णस्य च रत्नस्य च वज्रस्य च पोतवहनं भर्तुम् इति

‘ तएणं ते संजत्ता नावा वाणियगा ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (ते संजत्ता नावावाणियगा) उन सांया-
त्रिक नौका वाणिक जनों ने (अणमणं एवं वयासी) परस्पर में इस
प्रकार से विचार किया—(किणं अम्हं देवाणुप्पिया ! आसेहिं ? इमे णं
वहवे हिरण्णागरा य सुवण्णागरा य रयणागरा य वइरागरा य तं सेयं
खलु अम्हं हिरण्णस्स य सुवण्णस्स य रयणस्स य वइरस्स य पोयवहणं

तएण ते संजत्ता नावा वाणियगा, इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (ते संजत्ता नावा वाणियगा) ते सांयात्रिक
नौका वणिक्जनोश्च (अणमणं एवं वयासी) अथ पीतनी साथे आ प्रभावे
विचार इर्थे ३—

(किणं अम्हं देवाणुप्पिया ! आसेहिं ? इमेणं वहवे हिरण्णागरा य सुव-
ण्णागरा य रयणागरा य वइरागरा य तं सेयं खलु अम्हं हिरण्णस्स य सुवण्णस्स

कृत्वा=इति विचार्य अन्योन्यस्य एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य हिर-
ण्यस्य च सुवर्णस्य च रत्नस्य च वज्रस्य च तृणस्य च अन्नस्य च वाण्यस्य च पानी-
यस्य च पोतवहनं भरन्ति, भृत्वा प्रदक्षिणानुकूलेन=पृष्ठतः समागच्छताऽनुकूलेन
वातेन यत्रैव ' गंभीरपोयपट्टणे ' गम्भीरपोतपत्तनं=पोतावतरणस्थानं वर्त्तते तत्रै-
वोपागच्छन्ति, उपागत्य पोतवहनं ' लंबेति ' लम्बयन्ति=शृङ्खलापातादिना स्थाप-
यन्ति, लम्बयित्वा=स्थापयित्वा शकटीशाकटं सज्जयन्ति, सज्जयित्वा ' तं ' तद्
हिरण्यं यावद् वज्रं च ' एगद्वियाहिं ' एकार्थिकाभिः=लघुमौकाभिः पोतवहनात्
' संचारेति ' संचारयन्ति=हिरण्यादिकमवतारयन्ति, संचार्य,=अवतार्य तैः शकटी-

भरित्त्वा ए त्ति कद्दु अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडिस्सुणेति पडिस्सु० हिरण्यस्स
रण्यस्स य वहरस्स य तणस्स य अण्णस्स य कट्टस्स य पाणियस्स पोय-
वहणं भरेति) हे देवानुप्रियो ! हमें इन अश्वों से क्या तात्पर्य है । ये
जो हिरण्य की खानें हैं, सुवर्ण की खानें हैं, रत्न की खानें हैं वज्र की
खानें हैं उनमें से हिरण्य, सुवर्ण, रत्न एवं वज्रों को लेकर पोत भर
लेने में आनंद है इस प्रकार विचार कर उन्होंने एक दूसरेकी इस बात
को मान लिया । मान करके फिर उन्होंने हिरण्य को सुवर्ण को रत्न
को वज्र को तृण को अनाज को काष्ठ लकड़ी-और पानीको जहाज में
भर लिया । (भरित्त्वा पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीर पोयपट्ट-
णे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेति, लंबित्तां,
सगडीमागडं सज्जेति सज्जित्ता तं हिरण्यं जाव वहरं च एगद्वियाहि

य रण्यस्स य वहरस्स य पोयवहणं भरित्त्वा ए त्ति कद्दु अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडि-
सुणेति पडिस्सु० हिरण्यस्स रण्यस्स य वहरस्स य तणस्स य अण्णस्स य कट्टस्स
य पाणियस्स पोयवहणं भरेति)

हे देवानुप्रियो ! आ घोडाओथी अमा रे शी निस्थत छे ? आने डि र
इयनी आणे छे, सुवर्णथी आणे छे, रत्ननी आणे छे, वज्रनी आणे छे,
ते ओमांथी डि रइय, सुवर्ण, रत्नो, अने वज्रोने लधने वडाणुने लरी लेवा-
मां न आनंद छे. आ प्रमाणे विचार करीने तेमणे ओक णीलनी वातने
स्वीकारी लीधी. स्वीकारीने तेमणे डि रइय, सुवर्ण, रत्नो, वज्रो, तृण, अनाज,
काष्ठ-लाकडांओ, अने पाणीने वडाणुमां लरी लीधां.

(भरित्त्वा पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीर पोयपट्टणे तेणेव उवाग-
च्छन्ति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेति, लंबित्ता, सगडीमागडं सज्जेति सज्जित्ता
तं हिरण्यं जाव वहरं च एगद्वियाहिं पोयवहणाओ संचारेति, संचारित्ता सगडी

शाकटं भरन्ति, भृत्वा शकटीशाकट संयोजयन्ति संयोज्य यत्रैव हस्तिशीर्षकं नगरं तत्रैत्रोपागच्छन्ति, उपागत्य हस्तिशीर्षकस्य नगरस्य वहिः 'अग्गुज्जाणे' अद्योद्याने=आगन्तु रुनिवामोद्याने सार्थनिवेशं कुर्वन्ति, कृत्वा शकटीशाकटं मोचयन्ति, मोचयित्वा, महार्थं यावत् प्राभृतं गृह्णन्ति, गृहीत्वा हस्तिशीर्षं नगरमनु-

पोयवद्गणाभो संचारैति, संचारित्ता सगडीसागडं भरैति, भरित्ता संजोडंति, संजोडत्ता जेणेव हत्थिसीसए णयरे तेणेव उवागच्छंति) भरकर के फिर वे लोग अपने पृष्ठ आग से होकर आनेवाली अनुकूल वायु की सहायता से जहां पोत के ठहरने का स्थान बंदरगाह-था वहां आये। वहां आकर के उन्होंने अपने पोत को लंगर डालकर ठहरा दिया। पोत ठहरा करके फिर उन्होंने शकटी-गाड़ी और शकटों-गाडों को सज्जित किया-रस्सी आदि बांध कर उन्हें तैयार किया। जब वे अच्छी तरह सुसज्जित हो चुके-तब बाद में उन लोगों ने छोटी २ नौकाओं से उस पोत-नाव पर रखे हुए हिरण्य आदि वज्र पर्यंत के समस्त सामान को उतार लिया और उतार कर उन शकटी-गाड़ी शकटों-गाडों में उसे भर दिया। भरने के बाद फिर उन्होंने उन शकटी शाकटों को जोत दिया-जोतकर फिर वे जहां हस्तिशीर्ष नगर था वहां आये (उवागच्छित्ता हत्थिसीसयस्स नयरस्स वहिया अग्गुज्जाणे सत्थणिवेसं करैति, करित्ता सगडी सागडं मोपंति, मोइत्ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हंति, गेण्हित्ता हत्थिसीसं नगरं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता जेणेव

सागडं, भरैति, भरित्ता सजोडंति, संजोडत्ता जेणेव हत्थिसीसए णयरे तेणेव उवागच्छड)

लरीने तेओ णधा पोतानी पीठ तरइथी वडेटा अनुइण पवननी सहायताथी त्यां वडाणु णिभुं राणवानु स्थान-णंदर डतुं त्यां आण्या. त्यां आवीने तेमणे पोताना वडाणुने लंगर नाभीने लांगयुं वडाणुने लांगरी तेमणे शकटी-गाडी, अने शकटो-गा।ओने सुमन्न इयां. दोरी वगेरेथी णांधीने तेमने तैयार इयां त्यारे ते सारी रीने सुमन्न थई गयां त्यारे ते दोडाओ नानी नानी नौआओथी ते वडाणुमां भूडेवा डिरेण्यथी भांडीने वण सुधीना णधा आमानने उतारी लीघा, अने उतारीने ते शकटी-गाडी अने शकटो-गाडाओमां लरी दीघा लयां पछी तेमणे ते शकटी-गाडी अने शकटो-गाडाओने जेतथां अने जेतरीने तेओ न्या हस्तिशीर्ष नगर डतुं त्यां गया.

(उवागच्छित्ता हत्थिसीसयस्स नयरस्स वहिया अग्गुज्जाणे सत्थणिवेसं करैति, करित्ता सगडीसागडं मोपंति, मोइत्ता महत्थं जाव पाहुडं गेण्हंति गेण्हित्ता

प्रविशन्ति, अनुप्रविश्य यत्रैव कनककेतू राजा तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य यावत् तत्प्राभृतम् ' उवर्षेति ' उपनयन्ति भूपसमीपे स्थापयन्ति ॥ सू० २ ॥

मूलम्—तएणं से कणगकेऊ राया तेसिं संजत्ताणावावाणि-
यगाणं तं सहत्थं जाव पडिच्छइ पडिच्छित्ता तं संजत्ताणावा-
वाणियगा एवं वयासी तुब्भेणं देवाणुप्पियां ! गामागार जाव
अहिंडह लवणसमुदं च अभिक्खणं२ पोयवहणेणं ओगाहह
तं अत्थि आइं केइ भे कहिंचि अच्छेरए दिट्ठुप्पुवे ?, तएणं ते
संजत्ताणावावाणियगा कणगकेऊं एवं वयासी—एवं खलु अम्हे
देवाणुप्पिया ! इहेव हत्थिसीसे नयरे परिवसामो तं चेव जाव
कालियदीवं तेणं संवूढा, तत्थ णं बहवे हिरण्णागरा य जाव

कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव उवर्षेति) वहाँ आकर के वे लोग उस हस्तिशीर्ष नगर के बाहर के प्रधान उद्यान में ठहर गये वहाँ ठहर उन्होंने ने वहाँ पर शकटी-गाड़ी शाकटो-गाड़ों की ढील-ठहरा दिया। ढीलकर के बाद में महार्थ-महाप्रयोजन साधक भूत-यावत् प्राभृत भेंट को उन्होंने ने अपने २ हाथों में लिया-और लेकर के वे हस्तिशीर्ष नगर में प्रविष्ट हुए नगर में प्रविष्ट होकर वे जहाँ कनक केतु राजा थे वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ने उस महाप्रयोजन साधक भूत प्राभृत को राजा के पास रख दिया ॥ सू० २ ॥

हत्थिसीसं नगरं अणुपविसंति, अणुपविसित्ता, जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवा गच्छइ, उवागच्छित्ता जाव उवर्षेति)

त्यां आवीने तेओ णधा ते हस्तिशीर्ष नगरनी णडारना सुभ्य उधा-
नमां शेकाध गथा, त्यां शेकाधने तेमणे त्यां न शकटी-गाडी अने शाकटो-
गाडांओने छोडी भूक्यां. त्थारणाए तेमणे महार्थ-महाप्रयोजन साधक भूत
यावत् खेटने पोतपोताना डाथोमां दीधी अने लधने तेओ हस्तिशीर्ष नग-
रमां प्रविष्ट थया. नगरमां प्रविष्ट थधने तेओ न्यां कनककेतु राजा हतो त्यां
पडोन्था. त्यां पडोन्थीने तेमणे ते महाप्रयोजन साधक इपं खेटने राजनी
साभे भूडी दीधी. ॥ सूत्र २ ॥

वहवे तत्थ आसा किं ते ?, हरिरेणु जाव अणेगाइं जोयणाइं
 उव्वमंति, तएणं सामी अम्हेहिं कालियदीवे ते आसा अच्छे-
 रए दिट्टपुव्वे, तएणं से कणगकेऊ राया तेसिं संजत्तगाणं
 अंतिए एयमट्टं सोच्चा ते संजत्तए एवं वयासी-गच्छहणं तुव्वे
 देवाणुप्पिया मम कोडुंबियपुरिसेहिं सद्धिं कालियदीवाओ ते
 आसे आणेह, तएणं ते संजत्ताणावावाणियगा कणगकेऊं रायं
 एवं वयासी-एवं सामि त्तिकट्टु आणाए पडिसुणेंति,
 तएणं कणगकेऊ राया कोडुंबियपुरिसे सहावेइ सदावित्ता
 एवं वयासी-गच्छह णं तुव्वे देवाणुप्पिया ! संजत्तिएहिं सद्धिं
 कालियदीवाओ मम आसे आणेह, ते वि पडिसुणेंति, तएणं
 ते कोडुंबिय० सगडीसागडं सज्जेति सज्जित्ता तत्थ णं बहूणं
 वीणाण य वल्लकीण य भामरीण य कच्छभीण य भंभाण य
 छव्वभामरीण य वित्तवीणाण य अन्नेसिं च बहूणं सोतिंदिय-
 पाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति भरित्ता बहूणं किण्हाण
 य जाव सुक्किलाणं य कट्टुकम्माण य ४ गंथिमाण य ४ जाव
 संघाइमाण य अन्नेसिं च बहूणं चविंखदियपाउग्गाणं दव्वाणं
 सगडीसागडं भरेति बहूणं कोट्टपुडाण य केयईपुडाण य जाव
 अन्नेसिं च बहूणं घाणिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं
 भरेति बहुस्स खंडस्स य गुलस्स य सक्कराए य सच्छंडियाए
 य पुप्फुत्तर पउमुत्तराण य अन्नेसिं च जिंविंभदियपाउग्गाणं
 दव्वाणं सगडीसागडं भरेति । बहूणं कोयवियाण य कंवलाण

य पावरणाण य नवतयाण य भलयाण य मसूराण य सिला-
 वट्टाण य जाव हंसगढभाण य अन्नेसिं च फासिंदिय पाउग्गाणं
 दव्वाणं लगडीसागडं भरेति भरित्ता सगडीसागडं जोएंति
 जोइत्ता जेणेव गंभीरए पोयट्टाणे तेणेव उवागच्छंति उवागं-
 च्छित्ता सगडीसागडं भोएंति सोइत्ता पोयवहणं सज्जेति सज्जित्तां
 तेसिं उक्किट्टाणं सहफरिसरसरुवगंधाणं कट्टस्स य तणस्स य
 पाणियस्स य तंदुलाण य समियस्स य गोरसस्स य जाव अन्नेसिं
 च बहूणं पोयवहणपाउग्गाणं पोयवहणं भरेति भरित्ता दक्खि-
 णाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छइ उवा-
 गच्छित्ता पोयवहणं लंवेति लंबित्ता ताइं उक्किट्टाइं सहफरिसरस-
 रुवगंधाइं एगट्टियाहिं कालियदीवे उत्तरेति । जहिं २ च णं
 ते आसा आसायंति वा सयंति वा चिट्ठंति वा तुयट्ठंति वा
 तहिं २ च णं ते कोडुंबियपुरिसा ताओ वीणाओ य जाव वित्त-
 वीणाओ य अन्नाणि य बहूणि सोइंदियपाउग्गाणि य दव्वाणि
 समुदीरेमाणा चिट्ठंति तेसिं परिपरंतेणं पासए ठवेति ठवित्ता
 णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया चिट्ठंति, जत्थ २ ते आसा आसयंति
 वा जाव तुयट्ठंति वा तत्थ तत्थ णं ते कोडुंबियपुरिसा बहूणि
 किण्हाणि य ५ कट्टकम्माणि य जाव संघाइमाणि य अन्नाणि
 य बहूणि च्चक्खिंदियपाउग्गाणि य दव्वाणि ठवेति तेसिं परि-
 परंतेणं पासए ठवेति ठवित्ता णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया
 चिट्ठंति जत्थ २ ते आसा आसयंति ४ तत्थ २ णं तेसिं बहूणं

कोट्टुपुडाण य जाव अन्नेसिं च बहूणं घाणिंदियपाउग्गाणं
दव्वाणं पुंजे य णियरे य करेति करित्ता तेसिं परिपेरंतेणं जाव
चिट्ठंति जत्थ २ णं ते आसा आसयंति ४ तत्थ २ णं गुलस्स
जाव अन्नेसिं च बहूणं जिब्बिंदियपाउग्गायं दव्वाणं पुंजे य
निकरे य करेति करित्ता विवरए खणंति खणित्ता गुलपाणगस्स
खंडपाणगस्स जाव अन्नेसिं च बहूणं पाणगाणं विररे भरेति
भरित्ता तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेति जाव चिट्ठंति, जहिं २
च णं ते आसा आस० तहिं २ च णं ते बहवे कोयविया य
जाव हंसगवभा य अण्णाणि य बहूणि फासिंदिय पाउग्गाइं
अत्थुयपच्चत्थुयाइं ठवेति ठवित्ता तेसिं परिपेरंतेणं जाव चिट्ठंति,
तएणं ते आसा जेणेव एते उक्किट्ठा सदफरिसरसरूवगंधा तेणेव
उवागच्छंति उवागच्छित्ता तत्थणं अत्थेगइया आसा अपुव्वा
णं इमे सदफरिसरसरूवगंधा इतिकट्टु तेसु उक्किट्ठेसु सदफरिस-
सरूवगंधेसु अमुच्छिया ४ तेसिं उक्किट्ठाणं सद जाव गंधाणं
दूरंदूरेणं अवक्कमंति, तेणं तत्थ पउरगोयरा पउरतणपाणिया
णिब्भया णिरुव्विग्गा सुहंसुहेणंविहरंति, एवामेव समणाउसो!
जो अम्हं णिग्गंथो वा णिग्गंथी वा जाव सदफरिसरसरूवगंधेसु
णो सज्जइ णो रज्जइ णो गिज्जइ, णो मुज्जइ णो अज्जोववजेइ
से णं इहलोए चैव बहूणं समणाणं ४ अच्चणिजे जाव वीइ-
वइस्सइ ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स कनककेतू राजा तेषां संयात्र-
नौकावाणिजकानां तन्महार्थं यावत् प्राभृतं ‘ पडिच्छइ ’ प्रतीच्छति=स्वीकरोति
प्रतीष्य तान् संयात्रनौकावाणिजकान् एवमवादीत्-यूयं खलु हे देवानुप्रियाः !
‘ गामागर जाव अहिंडह ’ ग्रामाकर यावत् - ग्रामाकरनगरादिषु आहिण्डथ=
गच्छत, लवणसमुद्रं च अभीक्षणं २ पोतवहनेन अवगाहध्वे ‘ तं ’ तत्=तर्हि
अस्मि ‘ आइं ’ इतिवाक्यालङ्कारे किमपि ‘ भे ’ युष्माभिः ‘ कर्हिचि ’ कुत्रचिद्
‘ अच्छेरए ’ आश्चर्यकर्म=आश्चर्यजनकवस्तु ‘ दिट्टपुव्वे ’ दृष्टपूर्वम् ? यदि दृष्टमस्ति
तर्हि कथयतेतिभावः । ततः खलु ते संयात्रनौकावाणिजकाः कनककेतुमेवमव-

-तएणं से कणगकेऊ राया इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से कणगकेऊ राया) उस कनककेतु राजा
ने (तेसिं संजत्ता णावा वाणियगाणं तं महत्थं जाव पडिच्छइ, पडि-
च्छित्ता-ते संजत्ता णावा वाणियगा एवं वयासी-तुव्वेणं देवाणुप्पिया !
गामगर जाव अहिंडह लवणसमुद्रं च अभिक्खणं २ पोयवहणेणं
ओगाहह तं अत्थिआइं केइं भे कर्हिचि अच्छेरए दिट्टपुव्वे ?) उन
सांघात्रिक पोतवणिक जनों की उस महार्थसाधक भेंट को स्वीकार कर
लिया और स्वीकार करके फिर उन सांघात्रिक पोतवणिक जनों से इस
प्रकार कहा हे देवानुप्रियो तुमलोग अनेक ग्राम आकर नगर आदि
स्थानों में जाते रहते हो और बार २ पोतवहन द्वारा लवणसमुद्र में
अवगाहन करते रहते हो तो कहो कहीं पर तुम ने यदि कोई आश्चर्य
कारी वस्तु देखी हो तो कहो—(तएणं ते संजत्ता णावा वाणियगा कण-

तएणं से कणगकेऊ राया इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपथी (से कणगकेऊ राया) ते कनककेतु राजाये

(तेसिं संजत्ता णावा वाणियगाणं तं महत्थं जाव पडिच्छइ, पडिच्छित्ता-
ते संजत्ता णावा वाणियगा एवं वयासी-तुव्वेणं देवाणुप्पिया ! गामागर जाव
अहिंडह लवणसमुद्रं च अभिक्खणं २ पोयवहणेणं ओगाहह तं अत्थि आइं केइं
भे कर्हिचि अच्छेरए दिट्टपुव्वे ?)

ते सांघात्रिक पोतवणिकजनोंनी ते महार्थ साधक लेटने स्वीकारी लीधी.
अने स्वीकारीने ते सांघात्रिक पोतवणिकजनोंने आ प्रभाणु कळु के डे देवानु
प्रिया ! तमे लोके धणुं गाम, आकर, नगर वगेरे स्थानोभा आवण करता
रडे छे अने वडाणु वडे लवणु समुद्रनी वारंवार यात्रा करता रडे छे ते
अमने कडे के तमे कडे नवाध पमाडे तेवी अद्वलुत वस्तु लेध छे ?

दन्-एवं खलु वयं हे देवानुप्रियाः ! इहैव हस्तिशीर्षे नगरे परिवसामः, 'तंचेव'
तदेव पूर्वोक्तवर्णनं सर्वमत्र वाच्यम् 'जाव' यावत् कालिकद्वीपान्ते=कालिक-
द्वीपसमीपे खलु 'संवृढा' संव्यूढाः-प्राप्ताः, तत्र खलु बहवो हिरण्याकराश्च यावद्
बहवस्तत्राश्वाः सन्ति, किंते' किम्भूतास्ते ? इत्याह- 'हरिरेणु जाव' हरिद्रेणु शोणि-
सूत्रज्ञाः यावद्-तेऽस्मद्गन्धमात्राय भीताः सन्तः अनेकानि योजनानि दूरम् 'उव्भ-
मंति' उद्भ्रमन्ति पलायन्ते स्म, ततः खलु हे स्वामिन् ! अहमाभि. " कालिक-
द्वीपे तेऽश्वाः सन्ति " तदेव 'अच्छेरए' आश्चर्यकं दृष्टपूर्वमिति । ततः खलु स

गकेऊं एवं वयासी एवं खलु अम्हे देवाणुप्पिया ! इहेव हत्थिसीसे नयरे
वसामो तं चेव जाव कालियदीवं तेणं संवृढा तत्थ णं बहवे हिरण्णागरा
य जाव बहवे तत्थ आसा किंते ? हरिणेणु जाव अणेगाइं जोयणाइं उव्भ-
मंति-तएणं सामी अम्हे हि कालियदीवे ते आसा अच्छेरए दिट्ठपुव्वे)
इस प्रकार राजा की बात सुनकर उन सांघात्रिक पोतवणिग्जनों ने
उन कनककेतु राजा से कहा हे देवानुप्रिय ! हमलोग इसी हस्तिशीर्ष
नगर में रहते हैं । हमलोग यहाँ से लवणसमुद्र में होकर व्यापार के
निमित्त बाहर परदेश गये हुए थे-। मार्ग में हमलोगों को अनेक प्रकार
के सैकड़ों उपद्रव हुए-उनसे जिस किसी तरह सुरक्षित हो हमलोग
कालिकद्वीप के समीप पहुँच गये । वहाँ हमने अनेक हिरण्य आदि की
खानों को एवं अनेक अश्वों को कि जिनका कटिभाग हरिद्वर्णवाली धूलि
से रचित कटिसूत्रसे चिन्हित था देखा, वे हमलोगों की गंध को सूघ-

(तएणं ते संजत्ता णाया वाणियगा कणगकेऊं एवं वयासी-एवं खलु
अम्हे देवाणुप्पिया ! इहेव हत्थिसीसे नयरे वसामो तं चेव जाव, कालिय दीवं
तेणं संवृढा, तत्थ णं बहवे हिरण्णागरा य जाव बहवे तत्थ आसा किं ते ? हरि-
रेणु जाव अणेगाइं जोयणाइं उव्भमंति-तएणं सामी अम्हेहि कालियदीवे ते
आसा अच्छेरए दिट्ठपुव्वे)

आ प्रभाणु रामनी वात सांलणीने ते सांघात्रिक पोतवणिक्जनोअे ते
कनककेतु राजने धलुं के हे देवानुप्रिय ! अमे अथा आ हस्तिशीर्षे नगर
मां न रहीअे छीअे. अमे अथा व्यापार जेऽवा माटे अड्डीथी लवणु समुद्रमां
धरने अडार परदेशमां गया हता. रस्तामां धण्णी नतना सेकडे उपद्रवो
धया. छेवटे अमे तेम करीने सुरक्षित रूपमां अमे अथा कालिकद्वीपनी पासे
गया. त्यां अमेअे धण्णी हिरण्य वगेरेणी भाणुने अने धण्णा अश्वोने-के
जेमना कटिलागे लीला रंगनी माटीथी अनावेला कटिसूत्रथी चिहित हता-
नेया. अमाशी गंधने सूंधीने ते अश्वो त्याथी कटलाक येअने अर सुधी

कनककेतु राजा तेषां ' संजत्तिगाणं ' सांयात्रिकाणामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा तान् सांयात्रिकान् एवमवदत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! मम कौटुम्बिक-पुरुषैः सार्द्धं कालिकद्वीपात्तानश्वानानयत । ततः खलु ते संयात्रानौकावाणिजका कनककेतुं राजानमेवमवादिषुः हे स्वामिन् ! एवमस्तु ' त्ति कट्टु ' इति कृत्वा= इत्युक्त्वा ' आणाए ' आज्ञायाः=आज्ञामित्यर्थ, —' पडिसुणेंति ' प्रतिश्रृण्वन्ति=

कर वहाँसे कहें योजन दूरतक जंगलमें भाग गये । अनः हे देवानुप्रिय " कालिकद्वीप में हमलोगों ने उन घोड़ों रूपी आश्चर्य को देखा है । (तएणं से कणगकेऊ राया तेसिं संजत्तगाणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा ते संजत्तए एवं वयासी-गच्छह णं तुव्भे देवाणुप्पिया ! मम कोडुंबिय पुरि-सेहिं सद्धिं कालियदीवाओ ते आसे आणेह तएणं ते संजत्ता णावा वाणियगा कणगकेऊं रायं एवं वयासी एवं सामित्ति कट्टु आणाए पडिसुणेंति, तएणं कणगकेऊ राया कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुव्भे देवाणुप्पिया । संजत्तिएहिं सद्धिं कालिय-दीवाओ मम आसे आणेह, ते वि पडिसुणेंति) हमके दाद कनक केतु राजा ने उन सांयात्रिक पोतवणिकुजनों के सुख से इस अर्थ को सुन-कर उन सांयात्रिकों से इस प्रकार कहा हे देवानुप्रियों ! तुमलोग जाओ और मेरे कौटुम्बिक पुरुषों के साथ कालिकद्वीप से उन अश्वों को लाओ । इस प्रकार सुनकर पोतवणिकु जनों ने कनक केतु राजा से ऐसा कहा

वनमां नासी गया. हे देवानुप्रिय ! अमोअे कालिक द्वीपमां ते अश्व ३पी अइलुत वस्तुने लेई छे.

(तएणं से कणगकेऊ राया तेसिं संजत्तिगाणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा ते संजत्तए एवं वयासी-गच्छहणं तुव्भे देवाणुप्पिया ! मम कोडुंबियपुरिसेहिं सद्धिं कालियदीवाओ ते आसे आणेह, तएणं ते संजत्ता णावा वाणियगा कणग-केऊं रायं एवं वयासी एवं सामी त्ति कट्टु आणाए पडिसुणेंति, तएणं कणगकेऊ राया कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-गच्छहणं तुव्भे देवाणु-प्पिया ! संजत्तिएहिं सद्धिं कालियदीवाओ मम आसे आणेह, ते वि पडिसुणेंति)

त्यारभाइ कनककेतु राजाअे ते सांयात्रिक पोतवणिकुजनोंना भुअथी आ वातने सांलणीने ते सायात्रिकेने आ प्रमाणे कहुं के हे देवानुप्रियो ! तमे दोडे मारा कौटुम्बिक पुरुषोनी साथे कालिक द्वीपमां लअे अने त्यांथी ते अश्वोने लावे. आ प्रमाणे कनककेतुनी आज्ञा सांलणीने ते पोतवणिकुजनोंअे तेमने आ प्रमाणे कहुं के हे स्वामी ! तमारी आज्ञा अमारा भाटे प्रमाणे स्वइय छे. आस कहीने तेमणे कनककेतु राजानी आज्ञा स्वीकारी लीधी. त्यार

स्वीकुर्वन्ति । ततः खलु कनककेतु राजा कौटुम्बिकपुराणान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! सांयात्रिकैः सार्द्धं कालिकद्वीपात् मह्यम् अश्वानानयत । तेऽपि=कौटुम्बिकपुरुषाः 'पडिसुणोति' प्रतिश्रुण्वन्ति 'तथास्तु' इत्युक्त्वा राजाज्ञां स्वीकुर्वन्ति । ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः शकटीशाकटं 'सज्जेति' सज्जयन्ति=कालिकद्वीपे गमनार्थं सज्जीकुर्वन्ति, सज्जयित्वा तत्र खलु शकटीशाकटे बहूनां च वल्लकीनां च, भ्रामरीणां च 'कच्छभीण य' कच्छभीनां च- 'कच्छभी' इति कच्छपाकारवीणाविशेषः, भंभानां=भेरीणां च, पद्भ्रामरीणां च,

हे-स्वामिन् । हमें आपकी आज्ञा प्रमाण है-ऐसा कहकर उन्होंने ने कनक केतु राजा की आज्ञा को स्वीकार कर लिया । इसके बाद कनक केतु राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया-और बुलाकर उनसे ऐसा कहा-हे देवानुप्रियों ! तुम सांयात्रिक पोतवणिकु जनों के साथ जाओ -और कालिकद्वीप से मेरे लिये घोड़ों को ले आओ । राजा की इस आज्ञा को उन लोगों ने भी स्वीकार कर लिया । (तएणं ते कौटुम्बियपुरिसा सगडीसागडं सज्जेति, सज्जित्ता तत्थणं बहूणं वीणाण य वल्लकीण य भ्रामरीण य कच्छभीण य भंभाण य छवभामरीण य वित्तवीणाण य अन्नेसिं च बहूणं सोइंदिय पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी सागडं भरेति, भरित्ता बहूणं क्किण्हाणं य जाव संघाइमाण य अन्नेसिं च बहूणं चक्खिदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति) इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषों ने गाड़ी और गाड़ों को सज्जित किया-सज्जित करके उनमें उन्होंने ने अनेक वीणाओं को, वल्लकियों को, भ्रामरियों को, कच्छप

आद कनककेतु राजासे पोताना कौटुम्बिक पुरुषोने ओलाव्या अने ओलावीने तेमने आ प्रभाणे कहु के डे देवानुप्रियो । तमे सांयात्रिक पोतवणिकुनेनी आये ज्ञेओ अने कालिक द्वीपमार्थी मारा भाटे घोडाओने लावे। राजनी आ आज्ञाने ते लोकोसे पणु स्वीकारी लीधी।

(तएणं ते कौटुम्बियपुरिसा सगडीसागडं सज्जेति, सज्जित्ता तत्थणं बहूण वीणाण य वल्लकीण य भ्रामरीणय कच्छभीणय भंभाण य छवभामरीण य वित्तवीणाण य अन्नेसिं च बहूणं सोइंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति, भरित्ता बहूणं क्किण्हाणं य जाव संघाइमाण य अन्नेसिं च बहूणं चक्खिदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति)

त्यारपथी ते कौटुम्बिक पुरुषोसे गाडी अने गाडांओने जेतथां जेत-राने तेमा तेमणे थणी वीणाओ, वल्लकीओ भ्रामरीओ, कच्छपाणा आकार

‘चित्तवीणाणय’ वृत्तवीणानां=गोलाकार वीणानां च-अन्येषां च बहूनां नानाविधानां ;
 ‘सोइंदियपाउग्गाणं’ श्रोत्रेन्द्रिय प्रायोग्याणां=कर्णेन्द्रियसुखजनकानां द्रव्याणां=
 तन्व्यादिरूपाणां शकटीशाकटं भरन्ति तैर्वीणादिभिरित्यर्थः, भृत्या बहूनां ‘किण्हा-
 णय जाव सुक्काणय’ कृष्णानां यावत्-नीलानां पीतानां रक्तानां शुक्लानां च
 कृष्णादिपञ्चवर्णशुक्तानां ‘कट्टकम्माणय’ काष्ठकर्मणां=काष्ठनिर्मितपुत्तलिकादी-
 नाम्, ‘पोत्थकम्माणय’ पुस्तपु कर्मणां-पुस्तपु=वस्त्रताडपत्रकर्मणांलादिषु कर्माणि=
 लेखनकर्माणि, तेषाम्, ‘चित्तकम्माणय’ चित्रकर्मणां=पट्टकादिषु चित्ररूपा-
 णाम्, ‘लेप्यकम्माणय’ लेप्यकर्मणां=मृत्तिकासेटिकादिना वल्ल्याद्याकाररचना,
 विशेषरूपाणाम्, तथा-‘ग्रन्थिमाणय’ ग्रन्थिमानां=कौशलातिशयेन ग्रन्थिसमु-
 दायनिष्पादितानाम्-यावत्-‘वेढिमाणय’ वेष्टिमानां=लतादि वेष्टनतो निष्पा-
 दितानाम्, ‘पूरिमाणय’ पूरिमाणं=रुनकादिषु पुत्तलिकावत् छिद्रादिपूरणेन

के आकार जैसी वीणाओं को, भभाओं भेरियों-को, षड् भ्रामरियों को
 -गोलाकार वीणाओं को, तथा और भी अनेक विधश्रोत्रेन्द्रिय सुखज-
 नक तंत्री आदिरूप द्रव्यों को, भरा-भर करके फिर नीले, पीले, रक्त,
 शुक्ल और कृष्ण रंग से रंगे हुए काठ के बने हुए खिलौनों को, पुस्त-
 कर्मों को-वल्ल, ताडपत्र एवं कागज आदि पर लिखे विविध प्रकार के
 लेखों को, निबन्धों को उपदेश पूर्ण-दोहे चौपाइ आदि में लिखी हुई
 कविता आदि कों को-चित्रकर्मों को-पटिया आदि पर उकेरे गये विविध
 चित्रों को-लेप्यकर्मों को-मृत्तिका सेटिका आदि से बली आदि रूप में
 बनाये गये चित्रों को, ग्रंथियों को विशेष चतुराई के साथ गांठों से
 बनाये गये खिलौनों को, लताओं आदि द्वारा वेष्टित करके २ रचीं गईं
 चीजों को,-टोपियों को, हाथों की पैरों की अंगुलियों में पहिरने योग्य

वेवी वीणुओ, लंलाओ-लेरीओ (नगाराओ) षड्-भ्रामरीओ, गोण आकार-
 वाणी वीणुओ तेमञ्ज थील पणु धणु कर्णेन्द्रियने सुभ आये तेवा तंत्री
 वगेरे साधनेने लयां. लरीने लीला, पीणा, राता, सङ्केह अने काणा रंगेथी
 रंगाओलां लाकडांनाने अनेलां रमकडांने, पुस्तकमेने-वस्त्र ताडपत्र अने कागज
 वगेरे उपर लणुओला नतनतना लेणेने, निभंधेने, दूडा, योपाध वगेरेमां-
 लणुओली उपदेशक कविताओ वगेरेने, चित्र कर्मेने-इलक वगेरे उपर चित्रित
 करेलां धणुं चित्रेने लेप्य कर्मेने, भाटी सेटिका वगेरेथी लता वगेरे रूपमां
 अनाववामां आवेला चित्रेने, ग्रंथिमेने-विशेष आतुर्यथी गांठेथी अनाववामां
 आवेलां रमकडांने, लताओ वगेरे वडे वेष्टित करीने अनाववामां आवेली वस्तु-

निष्पादितानाम्, 'संघात्मानं य' सङ्घातिमानां=लोहकाष्ठादिभी रथादिवद् वस्तु-
समूहैर्निष्पादितानाम्, तथा-अन्येषां च बहूनां ' चर्षिद्विद्यपाउग्गाणं ' चक्षुरि-
न्द्रियप्रायोग्याणां=नयनानन्दजनकानां द्रव्याणां शकटीशाकटं भरन्ति । तथा
बहूनां ' कोट्टपुडाण य ' कोट्टपुटानां = सुगन्धिद्रव्यविशेषाणां च केतकीपुटानां
च यावत्-एलापुटानां च, कुङ्कुमपुटानां च, उगीरपुटानां=' खस ' इतिभाषा
प्रसिद्धसुगन्धिद्रव्याणां च, लवङ्गपुटानां चेत्यादि । अन्येषां च बहूनां घ्राणेन्द्रिय-
प्रायोग्याणां द्रव्याणां शकटीशाकटं भरन्ति । तथा बहोः खण्डस्य च गुडस्य च
शर्करायाश्च ' मिसरी ' इति भाषा प्रसिद्धायाः ' मच्छंडियाए य ' मत्स्यण्डिकायाः=
' कालपीमिसरी ' इति भाषा प्रसिद्धायाः, पुष्पोत्तर-पञ्चोत्तराणां=गुलकन्द ' इति
प्रसिद्धानां च, अन्येषां च जिह्वेन्द्रियप्रायोग्याणां द्रव्याणां शकटीशाकटं भरन्ति ।
तथा बहूनां ' कोयवियाण य ' कोयविकानां = रूतपूरितपावरणविशेषाणां
' रजाई ' इति प्रसिद्धानाम्, कम्बलानां=रत्नकम्बलानाम्, पावरणानां=शाटिकानां
' चदर ' इति प्रसिद्धानाम्, ' नवतयाण य ' नवतकानाम्=ऊर्णाभयपर्याणानां

आभूषण आदि कों को-पुत्तलिका की तरह जो सुवर्ण आदि के पतरों
पर कृत्त छिद्रादिकों के पूरने से चित्र बनाये जाते हैं वे पूरिभ हैं इन
पूरिभों को और संघातिसों को-लोहकाष्ठ आदि की तरह अनेक वस्तुओं
के समुदाय से निष्पादित चित्रों को तथा और भी नेत्र इन्द्रिय को
सुहावने लगने वाले द्रव्यों को भरा । (बहूणं कोट्टपुडाण य, केयई पुडा-
ण य जाव अन्नेसि च बहूणं घार्णिद्विद्यपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं
भरेति, बहुस्स खंडस्स य गुलस्स सक्कराए य मच्छंडियाए य पुष्फुत्तर
पउमुत्तराणय अन्नेसि च जिर्विन्द्रिय पाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं
भरेति बहूणं कोयवियाण य केवलाणय पावरणाण य नवतयाण य

ओने-टोपीकाने, डाश्री, पगे अने आंगणीओमां पडेरवानां आबूषणु वगे-
रेने पृतणीनी नेम ने सुवर्ण वगेरेना पतरां उपर काष्ठां पाडीने तेमने
पूरीने अनाववाभां आवेला चित्रो अटवे के पूरिभोने अने संघातिभोने
कोभउ, काष्ठ वगेरेथी अनाववाभां आवेला रथ वगेरेनी नेम धष्ठी वस्तुओने
अधत्रित करीने तेमना वडे अनाववाभां आवेलां चित्रोने तेमज् णीणं पणु
धष्ठां नेत्र इन्द्रियने गमे तेवा द्रव्योने लयां ।

(बहूणं कोट्टपुडाण य, केयई पुडाण य जाव अन्नेसि च बहूणं घार्णिद्विद्य
पाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति, बहुस्स खंडस्स य गुलस्स सक्कराए य
मच्छंडियाए य पुष्फुत्तरपउमुत्तराण य अन्नेसि च जिर्विन्द्रियपाउग्गाणं दव्वाणं
सगडीसागडं भरेति बहूणं कोयवियाण य केवलाण य पावरणाण य नवतयाण

‘ जीन ’ इति प्रसिद्धानाम्, मलयानां च=मलयदेशोत्पन्नवस्त्रविशेषाणाम्, ‘ मसू-
राण य ’ मसूरकाणां=वस्त्रादिनिर्मित वृत्ताकारासनविशेषाणाम्, ‘ सिलावट्टाण य ’
शिलापट्टानां=पट्टाकारचिकणशिलानां यावत् हंसगर्भाणां=हंसः=चतुरिन्द्रियकृमि-
विशेषः, गर्भः=तन्निर्मित कोसिहारोरुतरूपः, तन्मयवस्त्राप्यपि हंसगर्भाणीत्यु-

मलयाण य मसूराण य सिलावट्टाण य जाव हंसगवभाण य अन्नेसि च
फासिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति) इसी तरह अनेक
कोष्ठपुटों को-सुगंधित द्रव्य विशेषों को केतकीपुटों को-सुगंधित पुष्पों
यावत् एलापुटों को-इलायचियों को, उखीरपुटों को, खश के समुदाय
को-कुंकुमपुटों को तथा और भी अनेक, घ्राणेन्द्रिय को तृप्ति कारक
द्रव्यों को उन लोगों ने गाड़ी और गाड़ों में भरा। बहुत सी खांड,
बहुत से गुड़ बहुत सी शर्करा- मिसरी-बहुत सी मत्स्यण्डी-कालपी
मिसरी बहुत से गुलकंद, बहुतसे पद्मपाक को तथा और भी जिह्वाइ-
न्द्रिय को तृप्ति करने वाले द्रव्यों को उन लोगों ने गाड़ी और गाड़ों में
भरा। इसी तरह स्पर्शन इन्द्रिय को आनंददेने वाले कोयविकों को-रुई
कपास-से भरे हुए प्रावरण विशेषों को-रजाइयों को-कम्बलों को-रत्न
कम्बलों को-प्रावरणों को-चदरों को-नवलकों को-जन के बने हुए
पल्लेचों को-जीनों को-मलयदेश के बने हुए वस्त्रों को, मसूरकों को-वस्त्रों
से बनाये हुए गोलाकार आसनों को-शिलापट्टों को-पट्टाकार चिकनी

य मलयाणय मसूराण य सिलावट्टाण य जाव हंसगवभाण य अन्नेसि च फासि-
दियपाउग्गाणं दव्वाणं सगडीसागडं भरेति)

आ प्रमाणे घण्टा कोष्ठ पुटकेने-सुगंधित द्रव्य-विशेषेने, केतकी पुटोने
केवडानां पुष्पेने यावत् एलापुटोने, ऐलथीओने, उशीर पुटोने-अशना
समुदायेने, कुंकुम पुटोने तेमञ्ज णीळ पणु घण्टा घ्राणेन्द्रिय (नाड) ने तृप्ति
पमाडनारा द्रव्येने तेओओ गाडी अने गाडाओमां लयां. अहुञ्च पुष्कण
प्रमाणुमां खांड, गोण, साकर-मिश्री, मत्स्य डी-कालपी मिश्री, (उंची नतनी साकर)
गुलकंद, पद्मपाके तेमञ्ज णीळ पणु घण्टा अह्वार्ध इन्द्रिय (अल) ने तृप्ति आप-
नार द्रव्येने ते लोकेओ गाडी अने गाडाओमां लयां. आ प्रमाणे स्पर्शेन्द्रियने
सुअ आपनारी केयविकेने इथी लरेला प्रावरणु विशेषेने-रत्नधओने, काम-
णेने, रत्न कामणेने, प्रावरणुने, आदरेने, नवलकेने, जनथी जनाववामां
आवेलां पक्षेओओने-अनेने-मलय देशना वस्त्रेने, मसूरकेने-वस्त्रो वडे
जनाववामां आवेला गोण आशार आसनेने, शिलापट्टकेने-पट्टना आशारनी

च्यन्ते, तेषां कौशेयवस्त्राणां ' रेशमीवस्त्र ' इति भाषा प्रसिद्धानां च, तथा-
 अन्येषां च स्पर्शेन्द्रियप्रायोग्याणां द्रव्याणां शकटीशाकटं भरन्ति, भृत्वा शकटीशाकटं
 योजयन्ति, योजयित्वा यत्रैव गम्भीरकं=गम्भीरनामकं पोतस्थानं तत्रैवोपागच्छन्ति,
 उपागत्य शकटीशाकटं मोचयन्ति, मोचयित्वा ' पोयवहणं ' पोतवहनं=नौकां
 सज्जयन्ति, सज्जयित्वा तेषाम् ' उक्किट्टाणं ' उत्कृष्टाणां=श्रेष्ठानां शब्दस्पर्शरसरूप-
 गन्धानां काष्ठस्य च पानीयस्य च तन्दुलानां च ' सामियस्स य ' समीतस्य=

शिलाओं को, हंस गभों को-रेशमी वस्त्रों को, तथा और भी स्पर्शन
 इन्द्रिय को आनन्द देने वाली वस्तुओं को उन लोगों ने गाडी और
 गाडों में भरा। (भरित्ता सगडीसागडं जोएंति, जोइत्ता जेणेव गंभी-
 रए पोयट्टाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सगडीसागडं मोएंति,
 मोइत्ता पोयवहणे सज्जेति, सज्जित्ता तेसि उक्किट्टाणं सदफरिसरस-
 र्वगंधाणं कट्टस्स य तणस्स य पाणियस्स य तंदुलाणय समियस्स
 य गोमस्स य जाव अन्नेसि च वहूणं पोयवहणपाउग्गा णं पोयवहणं
 भरेति) भरकर के फिर उन लोगों ने गाडी और गाडों को जोत दिया।
 जोतकर के फिर वे वहाँ आये-जहाँ गंभीर नाम का पोतस्थान था-बंद-
 रगाह था। वहाँ आकर के उन लोगों ने गाडी और गाडों को ढील-रोक
 दिया। और फिर नौकाओंको सजाया-तैयार किया। और तैयार करके
 वादमें उन्होंने उन श्रेष्ठ शब्द, स्पर्श, रस, रूप, एवं गंधोंको काष्ठको तृण
 को पानीय द्रव्य को तंदूलों को, गेहूँ के आटे को, गोरस घृतादिक-को

वीक्षी शिलाओने, हंस गभोंने-रेशमी वस्त्रोंने तेमज्जं पीणं पणुं धण्णुं स्पर्शे-
 न्द्रियने सुभ पमाडे तेवी धण्णु वस्तुओने ते दोकेओ गाडी अने गाडाओमां लरी.

(भरित्ता सगडीसागडं जोएंति, जोइत्ता जेणेव गंभीरए पोयट्टाणे तेणेव
 उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सगडीसागडं मोएंति मोइत्ता पोयवहणं सज्जेति,
 सज्जित्ता तेसि उक्किट्टाणं सदफरिसरसरूपगंधाणं कट्टस्स य तणस्स य पाणि-
 यस्स य तंदुलाण य समियस्स य गोरमस्स य जाव अन्नेसि च वहूणं पोयवहण
 पाउग्गाणं पोयवहणं भरेति)

लरीने ते दोकेओ गाडी अने गाडाओने नेतर्या. नेतररीने तेओ
 त्यांधी न्यां गंभीर नामे पोतस्थान (बंदर) इतुं त्यां आव्या. त्यां आवीने
 ते दोकेओ गाडी अने गाडाओने छोडी भूक्या. अने त्यारपणी नौकाओने
 सुसज्जित इरी. सुसज्जित इर्या षाढ तेमणे ते उत्तम शब्द, स्पर्श, रस,
 रूप अने गंधोने, शयने, घासने, पाणीवाणा द्रव्योने, तंदुलो (चाभा) ने,

गोधूमादीनामदृकरस्य ' आटा ' इति प्रसिद्धस्य, ' गोरसस्त य ' गोरसस्य=घृता-
दिकस्य च यावत् अन्येषां च बहूनां पोतवहनप्रायोग्याणां द्रव्याणां पोतवहनं
भरन्ति, भृत्वा ' दक्खिणाणुकूलेण ' दक्षिणानुकूलेन=सानुकूलेन वातेन यत्रैव
कालिकद्वीपस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य तत्र पोतवहनं ' लंबेति ' लम्बयन्ति=
तीरस्थापितशङ्कुषु बध्नन्ति, बद्ध्या तान्=नौकास्थितान् उत्कृष्टान्=उत्तमोत्तमान्
शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान् ' एगट्टियार्हि ' एकार्थिकाभिः=लघुनौकाभिः ' कालिय-
दीवे ' कालिकद्वीपे ' उत्तारेति ' उत्तारयन्ति=नौकातो निस्सार्य भूमौ स्थापयन्ति ।

यावत् और अनेक पोतवहन प्रायोग्य द्रव्यों को उस नौका में भरदिया।
(भरित्ता दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेति, लंबित्ता ताइं उक्किट्ठाइं सदफरिसरस-
रूप गंधाइं एगट्टियार्हि कालियदीवे उत्तारेति । जहिं २ च णं ते आसा
आसायंति वा सयति वा चिट्ठंति वा तुयट्ठंति वा तहिं २ च णं ते कोडुं
वियपुरिसा ताओ वीणाओ य जाव वित्तवीणाओ य अन्नाणि य बहूणि
सोइंदिय पाउग्गाणि समुदीरेमाणा चिट्ठंति) भर करके फिर ये लोग जब
पीछे से आनेवाला अनुकूल वायु वहा तब वहां से चलकर जहां
कालिक द्वीप था वहां आये-वहां आकर के इन लोगों ने
लंगर डाल दिया-लंगर डालकर पोत में से शब्द के साधन भूत वीणा
आदिकों को, अच्छे स्पर्श के साधनभूत रूई से भरे हुए रजाई आदि
वस्त्रों को रसनाइन्द्रिय को सुहावने लगनेवाले खांड आदि पदार्थों को

धठना डोटने, गोरस धी वगेरेने यावत् भील पणु धणु वडाणु यात्रामा
काम लागे तेवां द्रव्येने ते नौकाभां लयां ।

(भरित्ता दक्खिणाणुकूले णं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेति, लंबित्ता ताइं उक्किट्ठाइं सदफरिसरस-
रूपगंधाइं एगट्टियार्हि कालियदीवे उत्तारेति । जहिं २ च णं ते आसा आसायंति वा
सयति वा चिट्ठंति वा तुयट्ठंति वा तहिं २ च णं ते कोडु वियपुरिसा ताओ
वीणाओ य जाव वित्तवीणाओ य अन्नाणि य बहूणि सोइंदिय पाउग्गाणि य
दन्वाणि समुदीरेमाणा चिट्ठंति)

लरीने तेओ अधा न्यारे पाछणथी वडेते। अनुकूल पवन वडेवा लाग्ये।

त्यारे त्यांथी रवाना थधने न्यां कालिक द्वीप डते। त्यां आव्या त्यां आवीने
ते डोकेओ लंगर नाण्युं। लंगर नाणीने वडाणुमाथी शण्डना साधन इप

वीणु वगेरेने, कामण स्पर्शना साधनभूत इथी लरेला रलथ वगेरे वस्त्रोने,
रसना (लल) इन्द्रियने गभता भांड वगेरे पदार्थोने, नेत्र इन्द्रियने आनंठ

‘ जहिं २ च णं ’ यत्र यत्र च वने खलु ते ‘ आसा ’ अधाः=जात्या अध्वाः
 ‘ आसयंति वा ’ आसते=उपविशन्ति ‘सयंति वा’ शेरतेस्पपन्ति वा ‘ चिद्वंति वा ’
 तिष्ठन्ति वा, ‘ तुयद्वंति वा ’ त्वग्वर्त्तयन्ति=शरीरं प्रसार्य स्वपन्ति वा ‘ तहिं २
 तत्र तत्र च खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः ‘ ताओ ’ ताः=हस्तिशीर्षनगरादानीता
 वीणाश्च यावत्-वृत्तवीणाश्च, तथा अन्यानि च वह्नि श्रोत्रेन्द्रियप्रायोग्याणि च
 द्रव्याणि ‘ समुदीरेमाणा ’ समुदीरयन्तः=मधुरध्वनिना वादयन्तः तिष्ठन्ति, तेषा-
 मश्वानां ‘ परिपेरंतेणं ’ परिपर्यन्तेन=सर्वतः समन्तात् चतुर्दिक्षु इत्यर्थः ‘ पासए ’
 पार्श्वे समीपे वीणादीनि स्थापयन्ति, स्थापयित्वा ते पुरुषाः ‘ निच्चला ’
 निश्चलाः=चलनक्रियारहिताः ‘ णिफ्फंदा ’ निः स्पन्दाः=हस्ताद्यवयवसंचाररहिताः
 ‘ तुसिणीया ’ वचन व्यापाररहिताः ‘ चिद्वंति ’ तिष्ठन्ति ।

तथा-यत्र यत्र तेऽश्वः आसते वा यावत् त्वग्वर्त्तयन्ति=लुठन्ति तत्र तत्र खलु
 ते कौटुम्बिकपुरुषाः वह्नि कृष्णानि च ५=कृष्णनीलपीतरक्तशुक्लवर्णानि काष्ठ-

नेत्र इन्द्रिय को आनंद देनेवाले नीले पीले आदि रंगवाले चित्रों को एवं
 घ्राणइन्द्रियों को सुखकारक काष्ठपुट आदि सुगंधित द्रव्यों को छोटी २
 नौकाओं द्वारा पोत में से उतार कर कालिक द्वीप में रख दिया । बाद
 में जहां २ वे जाति अश्व बैठते थे सोते थे, ठहरते थे, लेटते थे, वहां २
 वे कौटुम्बिक पुरुष उन हस्तिशीर्ष नगर से लाये हुए वीणा से लेकर
 वृत्तवीणा पर्यन्त के साधनो को तथा और भी श्रोत्र इन्द्रिय को सुहा-
 वनी लगनेवाली साधन सामग्री को मधुर ध्वनि से बजाते हुए ठहर
 गये । और (तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेति, ठवित्ता णिच्चला, णिफ्फंदा,
 तुसिणीया चिद्वंति, जत्थ २ ते आसा आसयंति वा जाव तुयद्वंति वा
 तत्थ २ णं ते कौटुम्बिय पुरिसा वह्णि क्किण्हाणि य ५ कट्टकम्माणि य

पमाउनार नीला, पीला वगैरे रंगना चित्राने अने घ्राण (नाक) इन्द्रियने
 सुख आये तेषा काष्ठपुट वगैरे सुगंधित द्रव्योने वडाणुमांथी नानी नानी
 छोडीओमा भूडीने कालिक द्वीप उपर भूडी दीधी. त्थारपछी ज्थां ते जाति
 अश्वो जेसता उता, सूता उता, रडेता उता, आराम करता उता त्थां ते
 कौटुम्बिक पुरुषो ते हस्तिशीर्ष नगरथी लध आवेली वीणाथी मांडीने वृत्त-
 वीणा सुधीना साधनोने तेमज्ज णीज्ज पणु श्रोत्र (जान) इन्द्रियने गमे
 तेथी साधन सामग्रीने मधुर ध्वनिथी वगाउतां त्थां देकाध गथा अने—

(तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेति, ठवित्ता णिच्चला, णिफ्फंदा, तुसिणीया
 चिद्वंति, जत्थ २ ते आसा आसयंति वा जाव तुयद्वंति वा तत्थ २ णं ते कौटुं-

कर्माणि यावत् संघातिमानि च अन्यानि च बहूनि चक्षुरिन्द्रियप्रायोग्याणि च द्रव्याणि स्थापयन्ति=एकत्री कुर्वन्ति, तेषामश्वानां परिपर्यन्तेन=सर्वतः सप्रन्तात् पार्श्वे स्थापयन्ति च, स्थापयित्वा ते निश्चलाः, निस्पन्दाः, तूष्णीकास्तिष्ठन्ति २ ।

तथा—यत्र यत्र तेऽश्वा आसते स्वपन्ति तिष्ठन्ति त्वग्वर्त्तयन्ति च तत्र तत्र खलु तेषां बहूनां कोठपुटानां च यावद् अन्येषां च बहूनां घ्राणेन्द्रियप्रायोग्याणां

जाव संघाद्भाणि य अन्नाणि य बहूणि चक्षुस्त्रिदिय पाउग्गाणि य दव्वाणि ठवेति, ठवित्ता तेसिं परिपेरंतेण पासए ठवेति, ठवित्ता णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया चिट्ठन्ति) उस के चारों तरफ चारों दिशाओं में— वीणा आदिकों को स्थापित करते रहे । स्थापित करके फिर वे वहीं पर निश्चल-चलन क्रिया से रहित होकर हस्तादि अवयव को कंपित क्रिये विना ही चुपचाप बैठ गये ।

इस तरह—जिस २ वनमें वे अश्व बैठते थे, सोते थे, ठहरते थे, लेटते थे, वहां २ उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उस आनीत बहुतसी कृष्ण, नील, पीत, रक्त, शुक्ल वर्णवाली काष्ठकर्म आदि संघातिम पर्यंत की सामग्री को जो चक्षुइन्द्रिय को आनन्दप्रद थी, तथा और भी चक्षुइन्द्रि को सुहावनी लगनेवाली जो वस्तुएँ थीं उन को एकत्रित किया और उन्हें उन अश्वों की चारों दिशाओं में रख दिया । रखकर के फिर वे निश्चल, निस्पन्द होकर चुपचाप बैठ गये । (जत्थ २ ते आसा आसयंति ४ तत्थ

विय पुरिसा बहूणि किण्हाणि य ५ कट्टकम्मणिय जाव संघाद्भाणि य अन्नाणि य बहूणि चक्षुस्त्रिदिय पाउग्गाणि य दव्वाणि ठवेति, ठवित्ता तेसिं परिपेरंतेण पासए ठवेति ठवित्ता णिच्चला, णिप्फंदा तुसिणीया चिट्ठन्ति)

तेमनी योमेर, आरे आर दिशाओमा वीण्णोमा वगेरे भूडी. भूडीने तेओ त्यां ७ निश्चल-डहन चलननी क्रियाथी रडित थधने अंगोने डलाव्या वगर चुपचाप त्यां भेसी गया आ प्रमाणे ७ ७ वनमां अश्वो (घोडाओ) भेसता डता, सूता डता, रडेता डता, आराम करता डता ते ते वनमा ते कौटुम्बिक पुरुषोओ साथे लावेली घण्णी काणी, नीली, पीणी राती, सद्धेद रगनी काष्ठकर्म वगेरे संघातिम सुधीनी अधी वस्तुओने डे ७ओओ यक्षु (आप) धन्द्रियने सुभ आपनारी डती तेम ७ णीण पणु यक्षु धन्द्रियने सुभ आपनारी ७टली सारी वस्तुओ डती तेमने लेगी डरी अने अश्वोनी योमेर तेमने गोठवी द्वधी गोठवीने तेओ त्यां ७ निश्चल, निस्पंद थधने चुपचाप त्यां ७ भेसी गया.

(जत्थ २ ते आसा आसयंति ४ तत्थ २ णं तेसिं बहूणं फोडुपुडाणं य जाव अन्नेसिं च बहूणं घाणिदियपाउग्गाणं दव्वाणं पुजेय णियरे य करेति,

द्रव्याणां पुञ्जांश्च एरुवस्तुसमूहरूपान् निकरांश्च नानाविधवस्तुराशिरूपान् कुर्वन्ति, कृत्वा तेषामश्वानां परिपर्यन्तेन=मर्वादिक्षु यावत् तूष्णीकास्तिष्ठन्ति ३ ।

यत्र यत्र च ग्वलु तेऽश्वा आसते ४ तत्र तत्र खलु गुडस्य यावद् अन्येषां च बहूनां जिह्वेन्द्रियप्रयोग्याणां द्रव्याणां पुञ्जांश्च निकरांश्च कुर्वन्ति कृत्वा ' विय-

२ णं तैस्मि बहूण फोड्डुपुडाणं य जाव अन्नेस्मि च बहूणं घ्राणिदिय पाउग्गाणं दव्वाणं पुंजेय गियरे य करेति करित्ता तैस्मि परिपेरतेणं जाव चिट्ठेते, जत्थ जत्थ णं ते आसा आसयंति ४ तत्थ २ णं गुलस्स जाव अन्नेस्मि च बहूणं जिर्विभदिय पाउग्गाणं दव्वाणं पुंजे य गियरे य करेति, करित्ता वियरेण खणंति, खणित्ता गुलपाणगस्स खंडपाणगस्स जाव अन्नेस्मि च बहूणं पाणगाणं वियरे भरेति-भरित्ता तैस्मि परिपेरतेणं पासए ठवेति जाव चिट्ठेति जहिं २ च णं ते आसा आस० तहिं २ णं ते बह्वे कोयविया य जाव गव्माय अण्णाणि य बहूणि फासिंदियपाउग्गाइं अत्थुय पच्चत्थुयाइं ठवेति, ठवित्ता तैस्मि परिपेरतेणं जाव चिट्ठेति) जहां जहां वे घोडे बैठते थे, सोते थे, ठहरते थे, लेटते थे, वहां २ उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उन अनेक कोष्ठ पुटों के यावत् अन्य और घ्राणेन्द्रिय प्रयोग्य द्रव्यों, के पुजों को निकरो को एकाग्रित कर दिया और करके फिर वे उन अश्वों की चारों दिशाओं में यावत् चुपचाप बैठ गये । जहां २ वे घोडे बैठते थे, सोते थे, ठहरते थे, लेटते थे, वहां २ उन कौटुम्बिक पुरुषों ने गुड़ के यावत् दूसरे और रस्सनेन्द्रिय आलहादक

करित्ता तैस्मि परिपेरतेणं जाव चिट्ठेति, जत्थ जत्थ णंते आसा आसयंति ४ तत्थ २ णं गुलस्स जाव अन्नेस्मि च बहूणं जिर्विभदिय पाउग्गाणं दव्वाणं पुंजे य गियरे य करेति, करित्ता वियरेण खणंति, खणित्ता गुलपाणगस्स खंडपाणगस्स जाव अन्नेस्मि च बहूणं पाणगाणं वियरे भरेति-भरित्ता तैस्मि परिपेरतेणं पासए ठवेति जाव चिट्ठेति जहिं २ च णं ते आसा आस० तहिं २ च णं ते बह्वे कोयविया य जाव गव्माय अण्णाणि य बहूणि फासिंदिय पाउग्गाइं अत्थुयपच्चत्थुयाइं ठवेति, ठवित्ता तैस्मि परिपेरतेणं जाव चिट्ठेति)

न्यां न्यां ते घोडाओ जेसता हुता, सूता हुता, रडेता हुता, आराम करता हुता त्यां त्यां ते कौटुम्बिक पुरुषोओ ते वण्णा केष्ठ पुटकेने यावत् भीष्म पक्षु धणी घ्राणेन्द्रिय (नाक) ने सुथ पमाडे तेवी वस्तुओने पुष्कण प्रमा-
एमां त्या गोठवी दीधी, ओकठी करी दीधी अने ओकठी करीने तेओ ते घोडा-
ओने आरे तन्ध यावत् चुपचाप थधने जेसी गया ते घोडाओ न्यां न्यां
जेसता हुता, सूता हुता, रडेता हुता, आराम करता हुता त्यां त्यां ते कौटु-

ए' विवराणि=गर्त्तानि खनन्ति, खनित्वा गुडपानकस्य खण्डपानकस्य यावद् अन्येषां च बहूनां पानकानां विवराणि भरन्ति, भृत्वा तेषां परिपर्यन्तेन पार्श्वे स्थापयन्ति यावत् तूष्णीकास्तिष्ठन्ति ४ ।

यत्र यत्र च खलु तेऽथा आसते ४ तत्र तत्र च खलु ते=कौटुम्बिकपुरुषाः बहून् कोयविकान्=रूतपूरितप्रावरणविशेषान् यावत् हंसगर्भान्=कौशेयवस्त्रविशेषान् अन्यानि च बहूनि स्पर्शेन्द्रियप्रायोग्याणि वस्त्रादीनि 'अथुय पचत्थुयाइ' आसृष्टप्रत्यवस्तृतानि=श्लक्ष्णप्रावरणप्रावृतानि कृत्वा स्थापयन्ति, स्थापयित्वा तेषां परिपर्यन्तेन यावत् तूष्णीकास्तिष्ठन्ति ५ ।

ततः खलु तेऽथा यत्रैव एते उत्कृष्टाः शब्दस्पर्शरसरूपगन्धास्तत्रैवोपागच्छन्ति,

द्रव्योंके पुंज एवं निकर लगाकर खड़े कर दिये । एक ही वस्तुओंकी जो राशि होती है उसका नाम पुंज तथा भिन्न वस्तुओं की राशि का नाम निकर है । बाद में वहीँ पर उन्हीं ने अनेक गर्त खड़े किये । गर्त करके उनमें गुडपानक खण्डपानक यावत् और भी अनेक पानक भर दिये । बाद में वहाँ पर उनकी चारो दिशाओं में निश्चल-निस्पन्द होकर चुपचाप बैठ गये । इसी तरह जिन २ वनो में वे घोड़े बैठते थे, सोते थे, टहरते थे, एवं लेटते थे, वहाँ २ उन कौटुम्बिक पुरुषों ने अनेक रूई के भरे हुए प्रावरणों को यावत् हंसगर्भों को-रेशमी वस्त्रों को तथा-और भी अनेक स्पर्शनन्द्रिय को सुखदायक वस्त्रों को चिकने प्रावरणों से ढककर रख दिया । बाद में वे उनके चारों ओर यावत् चुपचाप बैठ गये (तएणं ते आसा जेणेव एए उक्किट्ठा सदफरिसरसरुवर्गंधा तेणेव उवा-

जिक पुरुषोअे गोणना यावत् णीणं धणुं रसनेन्द्रिय (७७) ने सुण पभाडे तेवां द्रव्येणा पुणे अने निकरो लगावीने षड्डी दीधां. अेक ञ वस्तुना ढगलाने पुण तेमण जुही जुही वस्तुअेना ढगलाअेने निकर कडे छे. त्थारपछी ते ढोडोअे त्यां ञ धणु आडाअे तैथार कर्या. ते आडाअेमां तेअेअे गोण पानक, षांडपानक, यावत् णीण पणु धणुी णतना पानके लरी दीधां त्थार आद तेअे त्यां ञ तेमनी थारे तरक्ष निश्चल-निस्पंद थधने चुपचाप जेसी गया. आ प्रभाणुे जे जे वनेमां ते घोडाअे भेसता उता, सूता उता, रडेता उता अने आराम करता उता त्यां त्यां ते कौटुम्बिक पुरुषोअे धणुं इना प्रावरणुेने यावत् हंसगर्भानि, रेशमी वस्त्राने तेमण णीण पणु धणुं स्पर्शेन्द्रियने सुण आपे तेवां वस्त्राने लीसां प्रावरणुेथी आच्छादित करी दीधां. त्थारपछी तेअे णधा चुपचाप तेनी थारे तरक्ष जेसी गया

(तएणं ते आसा जेणेव एए उक्किट्ठा सदफरिसरसरुवर्गंधा तेणेव उवाग-

उपागत्य तत्र खलु—‘अत्येगइया’ अस्त्येके=केचिद् अश्वाः—‘अपूर्वाः=अदृष्टपूर्वाः खलु इमे शब्दस्पर्शरसरूपगन्धाः सन्ति’ इति कृत्वा=इति विचिन्त्य तेषु उत्कृष्टेषु=आकर्षकेषु शब्दस्पर्शरसरूपगन्धेषु ‘अमुच्छ्रिया’ अमूर्च्छिताः=मूर्छारहिताः, प्राप्तहेयोपादेयविवेकाः अमृद्धा=असक्तिरहिताः, अग्रथिताः=लोभतन्तुभिरवद्धाः, अनध्युपपन्नाः=तदेकाग्रतारहिताः किञ्चिन्मात्रमपि तेष्व्वासक्तिमकुर्वाणाः सन्तः तेषामुत्कृष्टानां ‘सह जात्र गंधाणं’ शब्दस्पर्शरसरूपगन्धानां दूरंदूरेण=अतिदूरत एव ‘अवक्कमंति’ अपक्रामन्ति=पलायन्ते स्म । ते च खलु तत्र प्रचुरगोचराः=प्रचुरचरणभूपयः प्रचुरतृणपानीयाः, निर्भयाः, निरुद्विग्नाः ‘सुहं सुहेणं’ सुखं सुखेन=सुखपूर्वकं विहरन्ति ।

गच्छन्ति, उवागच्छित्ता तत्थ णं अत्ये गइया आसा अपुव्वा णं इमे सहफरिसरसरूवगंधाइं त्ति कइहु तेषु उक्किट्ठेषु सहफरिसरसरूवगंधेषु अमुच्छ्रिया ४ तेषि उक्किट्ठाणं सह जात्र गंधाणं दूरं दूरेणं अवक्कमंति) वादमें वे अश्व जहां ये पूर्वोक्त उत्कृष्ट शब्द, स्पर्शा, रस, रूप गंध और स्पर्शवाले पदार्थ थे वहां पर आये वहां आकर के इनमें कितनेक अश्व “ये शब्द, स्पर्शा, रस, रूप, गंध अदृष्टपूर्व है” ऐसा विचार कर उन आकर्षक शब्द रूप, रस, स्पर्शा एवं गंधों में—उन पदार्थों में—मूर्च्छित नहीं बने । हेय उपादेय के विवेक से युक्त बने हुए वे कितनेक अश्व उन में आसक्ति से रहित ही रहे लोभरूपतन्तु से बन्धे नहीं । तथा किञ्चिन्मात्र भी उनमें आसक्ति नहीं करते हुए वे उन शब्द, स्पर्शा रूप, और गंधों को बहुत ही दूर से छोड़कर चल दिये । (तेणं तत्थ पउरगोयरा

च्छन्ति, उवागच्छित्ता तत्थणं अत्येगइया आसा अपुव्वा णं इमे सहफरिसरसरूवत्ति कइहु तेषु उक्किट्ठेषु सहफरिसरसरूवगंधेषु अमुच्छ्रिया ४ तेषि उक्किट्ठाणं सह जात्र गंधाणं दूरं दूरेणं अवक्कमंति)

त्यारपछी ते घोडाओ आ भधा पूर्वे मूडेला उत्कृष्ट शब्द, स्पर्शा, रस इप अने गंधवाणा पदार्थो हुता त्यां आब्या. त्यां आवीने तेओभांथी डेटलाक घोडाओ ‘आ शब्द, स्पर्शा, रस, इप अने गंध अदृष्टपूर्व छे.’ आभ विचार करीने ते आकर्षक शब्द, इप, रस, स्पर्शा अने गंधवाणा ते पदार्थोभां मूर्छित (भोडाध-वोलुप) थया नडि. हेय अने उपादेयना विवेकथी सावध अनेला डेटलाक घोडाओ ते पदार्थोभां निरासक्त न रह्या. तेओ लोभ इपी दोरीथी गंधाया नडि घोडी पणु आसक्ति अताव्या वगर तेओ ते शब्द, स्पर्शा, रस, इप अने गंधवाणा पदार्थोने भूअ इरथी न छोडीने नता रह्या (तेणं तत्थ पउरगोयरा पउरत्तणराणिया णिअभया णिरुद्विग्गा सुहं

अथोपनयं प्रदर्शयति,—‘ एवामेव ’ एवमेव=शब्दाद्यमूर्च्छिताकीर्णाश्वक्त् ‘ सम-
णाउसो ’ हे आयुष्मन्तः श्रमणाः । योऽस्माकं निर्ग्रन्थी वा यावत्-आचार्योपा-
ध्यायानामन्तिके प्रव्रजितः सन् शब्दस्पर्शरसरूपगन्धेषु ‘ नो सज्जइ ’ नो सज्जते=
आसक्तिमान् न भवति ‘ नो रज्जइ ’ नो रज्यते अनुरक्तो न भवति, नो गृध्यति,
न वाञ्छति, नो मुह्यति=न मूर्च्छति, नो अध्युपपद्यते=न तल्लीनो भवति, स खलु
इह लोक एव बहूनां श्रमणादीनां चतुर्विधसङ्घस्य अर्चनीयः=संमाननीयः यावत्
चातुरन्तसंसारकान्तारं ‘ वीइवइस्सइ ’ व्यतिव्रजिष्यति=उल्लङ्घयिष्यति-पारं
गमिष्यतीत्यर्थः ॥ सू० ३ ॥

पउरत्तणपाणिआ णिब्भया णिरुव्विग्गा सुहं सुहेणं विहरंति) और
जंगल में ही जो प्रचुरचरने की जमीन थी-जिसमें अधिक से अधिक
मात्रा में तृण और पानी भरा हुआ रहता था उसमें ही निर्भय, निरु-
द्विग्न होकर सुखपूर्वक रहे । अब इस दृष्टान्त का उपनय प्रदर्शिन करने
के लिये सूत्रकार कहते हैं-। (एवामेवसमणाउसो । जो अम्हं णिग्गंथो
वा णिग्गंथी वा जाव सह फरिसरसरुवगंधेषु णो सज्जइ णो
णो रज्जइ, जो गिज्जइ, णो मुज्जइ, णो अज्झोववज्जेइ, से णं इह-
लोए चेव बहूणं समणाणं ४ अच्चणिज्जे जाव वीइवइस्सइ) हे आयु
ष्मन्त श्रमणो ! इसी तरह जो हमारा निर्ग्रन्थ साधुजन एवं निर्ग्रन्थी
साध्वी जन आचार्य उपाध्यय के पास प्रव्रजित होकर शब्द स्पर्शा, रस,
रूप, और गंध इन पाँचों इन्द्रियों के विषयो में आसक्ति युक्त नहीं
होता है, अनुरक्त नहीं बनता है, उन्हें चाहता नहीं है, उनमें मूर्च्छित
नहीं होता है, उनमें तल्लीन नहीं होता है, वह इस लोक में ही अनेक

सुहेणं विहरंति) अने वनमां ४ प्रचुर चरवानी ४भीन डती, ज्यां वधादेमां
वधादे घास अने पाणी डतां त्यां ४ निर्भय, निद्विग्न थधने सुखथी रडेवा
लाग्या. डवे आ दृष्टान्तने। उपनय स्पष्ट करवा माटे सूत्रकार कडे छे डे:—

(एवामेव समणाउसो जो अम्हं णिग्गंथो वा णिग्गंथी वा जाव सहफरिस-
रसरुवगंधेषु णो सज्जइ णो रज्जइ, जो गिज्जइ, णो मुज्जइ, णो अज्झोववज्जेइ,
से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं ४ अच्चणिज्जे जाव वीइवइस्सइ)

डे आयुष्मन्त श्रमणे ! आ प्रमाणे ४ ४े अमारा निर्ग्रन्थ साधुओ
डे निर्ग्रन्थ साध्वीओ । आचार्य डे उपाध्यायनी पासे प्रव्रजित थधने शप्ट,
स्पर्शा, रस, रूप अने गंध आ पांचे इन्द्रियोना विषयोमां आसक्त थता
नथी, अनुरक्त थता नथी, तेमने धञ्छता नथी, तेओमां मूर्च्छित थता नथी

मूलम्-तत्थ णं अत्थेगइया आसा जेणेव उक्किट्ठा सहपरिस-
 रसरूवगंधा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता तेसु उक्किट्ठेसु
 सहपरिसे ५ मुच्छिया जाव अज्झोववण्णा आसेविउं पयत्ता
 यावि होत्था, तएणं ते आसा ते उक्किट्ठे सह ५ आसेवमाणा
 तेहिं वहूहिं कूडेहि य पासेहि य गलएसु य पाएसु य
 वज्झंति, तएणं ते कोडुंवियपुरिसा ते आसे गिण्हंति गिण्हित्ता
 एगट्ठियाहिं पोयवहणे संचारंति संचारित्ता तणस्स कट्टस्स
 जाव भेरंति, तएणं ते संजत्तानावावाणियगा दक्खिणाणु-
 कूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरपोयट्ठणे तेणेव उवागच्छइ उवा-
 गच्छित्ता पोयवहणं लंवेति लंवित्ता ते आसे उत्तारंति उत्ता-
 रित्ता जेणेव हत्थिसीसे णयरे जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव
 उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयल जाव वद्धावेति वद्धावित्ता
 ते आसे उवणंति, तएणं से कणगकेऊ तेसिं संजत्तानावा-
 वाणियगाणं उस्सुककं वियरइ वियरित्ता सक्कारंति सम्माणंति
 सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ, तएणं से कणगकेऊ
 कोडुंवियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता सक्कारंति० पडिविस-
 ज्जेइ, तएणं से कणगकेऊ राया आसमदए सदावेइ सदा-
 वित्ता एवं वयासी-तुब्भेणं देवाणुप्पिया ! मम आसे विण-

श्रमण आदि जनोंका तथा चतुर्विध संघका संमाननीय होता है । यावत्
 वह इस चतुर्गति संसार कान्तारको पार कर देने वाला होता है ॥सू०३॥

ते आ लोकमांज धणा श्रमणु वगेरेथी तेमज्ज चतुर्विध संघथी संमान प्राप्त
 करे छे. यावत् ते आ चतुर्गति इय संसार कान्तारने पार करनार थर
 पत्थ छे. ॥ सूत्र ३ ॥

एह, तएणं ते आसमद्गता तहत्ति पडिसुणंति पडिसुणित्ता ते
 आसे बहूहिं मुहबंधेहिं य कण्णबंधेहिं य णासाबंधेहिं य
 खुरबंधेहिं य खलिणबंधेहिं य अहिलाणेहिं य पडियाणेहिं य
 अंकणाहिं य वित्तप्पहारेहिं य लयप्पहारेहिं य कसप्पहारेहिं य
 छिवप्पहारेहिं य विणयंति विणयित्ता कणगकेउस्स रन्नो
 उवणेंति । तएणं से कणगकेउ राया ते आसमद्दए सक्का-
 रेइ सक्कारित्ता - पडिविसज्जेइ, तएणं ते आसा बहूहिं मुह-
 बंधेहिं य जाव छिवप्पहारेहिं य बहूणि सारीरमाणसाणि
 दुक्खाइं पावेति, एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निगंथो
 वा निगंथी वा पव्वइए समाणे इट्ठेसु सद्दफरिसरसरूवगंधेसु
 य सज्जइ रज्जइ गिज्जइ मुज्जइ अज्झोववज्जइ से णं इह-
 लोए चेव बहूणं समणाण य जाव सावियाण य हीलणिज्जे
 जाव अणुपरियट्ठिस्सइ ॥ सू० ४ ॥

टीका- ' तत्थ णं ' इत्यादि । तत्र खलु ' अत्थेगइया ' अस्त्येके=केचित्
 अश्वा यत्रैव उत्कृष्टाः शब्दस्पर्शरसरूपगन्धास्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य तेषु उत्कृ-
 ष्टेषु=शब्दस्पर्शरसरूपगन्धेषु मुच्छिताः यावत्-अध्युपपन्नाः=तत्तद्विषयेषु एकाग्रतां
 प्राप्ताः सन्तस्तान् आसेवितुं प्रवृत्ताश्चाप्यभवन् । ततः खलु तेऽश्वा एतान् उत्कृष्टान्

' तत्थणं अत्थे गइया ' इत्यादि ।

टीकार्थ-(तत्थणं अत्थेगइया आसा जेणेव उक्किट्ठो सद्दफरिसरसरूव-
 गंधा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेषु उक्किट्ठेसु सद्दफरिसे ५ मुच्छिया
 जाव अज्झोववण्णा आसेविउं पयत्ता याविहोत्था) उस जंगल में उन

तत्थणं अत्थेगइया इत्यादि—

टीकार्थ-(तत्थ णं अत्थेगइया आसा जेणेव उक्किट्ठासद्दफरिसरसरूवगंधा
 तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेषु उक्किट्ठेषु सद्दफरिसे ५ मुच्छिया जाव अज्झो-
 ववण्णा आसेविउं पयत्ता यावि होत्था)

ते वनमां ते घोडाओमां डेटलाड घोडाओ ओवा पथु डता डे नेओ

शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान् ' आसेवमाणा ' आसेवमानाः तत्सुखानुभवं कुर्याणाः तैर्व-
हुमिः कूटैश्च बन्धनविशेषैः, पाशैश्च रज्ज्वादिरूपैः गलएषु=गलेषु=कण्ठेषु पादेषु च
' वज्जंति ' वध्यन्ते-ते कौटुम्बिकपुरुषास्तानश्वान् वधन्ति स्मेर्यर्थः । ततः

घोड़ों में से कितनेक घोड़े ऐसे भी थे जो जहां वे उत्कृष्ट शब्द स्पर्श
रस, रूप एवं गंध ये पांचों इन्द्रियों के आकर्षक विषय थे वहां आकर
उन उत्कृष्ट शब्द स्पर्श आदि विषयों में मूर्छित यावत् तल्लीन बनगये।
और उन्हें सेवन करने में प्रवृत्त भी हो गये। (तएणं ते आसा ते
उक्किट्टे सद ५ आसेवमाणा तेसि बहूहि कूडेहि य पासेहि य गलएसु य
पाएसु य वज्जंति, तएणं ते कोडुं वियपुरिसा ते आसेः गिण्हंति गिण्हत्ता
एगट्टियाहिं य पोयवहणे संचारंति, संचारित्ता तणस्स कट्टस्स जाव
भरंति, तएणं ते संजत्ता णावा वाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं
जेणेव गंभीरपोयपट्टणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंवेति-
लंवित्ता ते आसे उत्तारंति) इसके बाद वे घोड़े उन उत्कृष्ट शब्द स्पर्श
रस, रूप, एवं गंध इन पांचों इन्द्रियों के विषयों को सेवन करते हुए
रज्ज्वादिरूपबन्धन विशेषों द्वारा कंटों और पैरोंमें बांध लिये गये। अर्थात्
उन कौटुम्बिक पुरुषों ने इन घोड़ों को उस समय रस्सियों द्वारा बांध-
लिया। बांध करके फिर उन कौटुम्बिक पुरुषोंने उन्हें पकड़ लिया पकड़

त्यां ते उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप अने गंध आ पांचे इन्द्रियोना
आकर्षक विषयो उता त्यां आवीने ते उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श वगेरे विषयोमां
मूर्छित (आसकत) यावत् तल्लीन थई गया अने तेमना सेवनमां प्रवृत्त
पणु थई गया.

(तएणं ते आसा ते उक्किट्टे सद ५ आसेवमाणा तेसि बहूहि कूडेहिं य
पासेहिय गलएसु य पाएसु य वज्जंति, तएणं ते कोडु वियपुरिसा ते आसे
गिण्हंति गिण्हत्ता एगट्टियाहिं य पोयवहणे संचारंति, संचारित्ता तणरस कट्टस्स
जाव भरंति, तएणं ते संजत्ता णावा वाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं
जेणेव गंभीरपोयपट्टणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंवेति-लंवित्ता ते
आसे उत्तारंति)

त्यारप ग्री ते घोडाओ उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप अने गंध आ
पांचे इन्द्रियोना विषयोनुं सेवन करतां दोरडाओ वगेरे रूप गंधन विशेषथी
डाके अने पयोमां बांधाई गया. ओटले के ते शीटुं गिक पुरुषोओ ते घोडा-
ओने दोरडाओथी बांधी बीधा. बांधीने ते शीटुं गिक पुरुषोओ ते घोडाओने

खलु ते कौटुम्बिकपुरुपास्तानश्वान् गृह्णन्ति, गृहीत्वा 'एगद्वियाहिं' एकार्थिवाभिः= लघुनौकाभिः पोतवहने=बृहन्नौकायां 'संचारंति' सञ्चारयन्ति=आरोहयन्ति सञ्चार्य तृणस्य काष्ठस्य च यावत् पोतवहन भरन्ति तृणकाष्ठादिभिरिति भावः । ततः खलु ते संयात्रनौकावाणिजकाः दक्षिणानुकूलेन=स्वानुकूलेन वातेन यत्रैव गम्भीरपोतपत्तनं=पोतलम्बनस्थानं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य पोतवहनं 'लंबंति' लम्बयन्ति=शंकुषु वद्ध्वा स्थापयन्ति, लम्बयित्वा तान्=अश्वान् 'उत्तारंति' उत्तारयन्ति, उत्तार्य यत्रैव हस्तिशीर्षं नगरं यत्रैव कनककेतू राजा तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य 'करयल जाव' करतलपरिगृहीतं शिरआवत्तं दशनखं मस्तके-

कर फिर उन्हें छोटी २ नौकाओं द्वारा लाकर बड़ी नौका में चढाया-चढा करके फिर उसमें तृण और काष्ठ आदि को भरा । इसके बाद वे सांघात्रिकं पोतवणिक दक्षिणानुकूल वायु के चलने पर जहां गंभीर नामका पोतपट्टण (बन्दरगाह) था वहां आये । वहां आकर के उन्होंने ने अपने पोत को लंगर डालकर ठहरा दिया । ठहरा कर उन अश्वों को उस पोत से फिर उन्होंने ने नीचे उतार लिया । (उत्तारित्ता जेणेव हत्थिसीसे णयरे जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयल जाव बद्धावेति, बद्धावित्ता ते आसे उवणेंति, तएणं से कणगकेऊ तेसि संजत्ता णावावाणियमाणं उस्सुक्कं वियरह, वियरित्ता सक्कारेइ संमाणेइ सक्कारित्ता संमाणित्ता पडिविसज्जेइ) उतार कर फिर वे वहां उन्हें ले गये जहां हस्तिशीर्षं नगर और उसमें भी

पकडी लीधा. पकडीने तेमणे नानी नानी डोडीओ वडे मोटा वडाणुमां यढाव्या. यढाव्या आह तेओओ तेमां घास ओने काष्ठ लयां. त्थारपथी ते सांघात्रिक पोतवणिके दक्षिणुने अनुकूल पवन वडेवा लाग्ये त्यारे त्यांथी रवाना थधने न्यां गंभीर नामे पोतपट्टण (बंदर) हुतुं त्यां आव्या. त्यां आवीने तेमणे पोताना वडाणुने लंगर नाभीने रोड्युं. त्थारणाह तेमणे घोडाओने वडाणु-मांथी नीचे उतार्या.

(उत्तारित्ता जेणेव हत्थिसीसे णयरे जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव बद्धावेति, बद्धावित्ता ते आसे उवणेंति, तएणं से कणगकेऊ तेसि संजत्ता णावा वाणियमाणं उस्सुक्कं वियरह, वियरित्ता सक्कारेइ, संमाणेइ, सक्कारित्ता, संमाणित्ता पडिविसज्जेइ)

नीचे उतारीने तेओ ते घोडाओने हस्तिशीर्षं नगरमां न्यां कनककेतु राजा हुतो त्यां लध गया. त्यां लधने पडेलां तेमणे अंने हाथ लोडीने राज

‘ लयप्पहारेहि य ’ लताप्रहारैश्च, ‘ कसप्पहारेहि य ’ कशाप्रहारैश्च ‘ कशा ’—
चाबुक ’ इति भाषायाम्, ‘ छिवप्पहारेहि य ’ छिवाप्रहारैः=चर्ममयचिकणकशा-
प्रहारैश्च ‘ विणयंति ’ विनयन्ति=शिक्षयन्ति, विनीय=शिक्षयित्वा कनककेतो राज्ञ
उपनयन्ति । ततः खलु सः कनककेतू राजा तान् अश्वमर्दकान् सत्करोति सम्मा-
नयति, सत्कृत्य सम्मान्य प्रतिविसर्जयति । ततः खलु तेऽथाः बहुभिर्मुखवन्धैश्च
यावत्—छिवाप्रहारैश्च बहूनि शारीरमानसानि दुःखानि प्राप्नुवन्ति ।

‘ एवामेव ’ एवमेव=शब्दादिविषयमूर्च्छिताकीर्णाश्ववत् ‘ समणाउसो ’ हे
आयुष्मन्तः श्रमणाः ! योऽस्माकं निर्गन्थो वा निर्गन्थी वा आचार्योपाध्यायानाम-
न्तिके प्रव्रजितः सन् इष्टेषु शब्दरपर्शरसरूपगन्धेषु ‘ सज्जइ ’ सज्जते=आसक्तो

प्रहारों से, छिपा-चर्म की बनी हुई चिकनी कशाओं के प्रहारों से उन
घोड़ों को शिक्षित बना दिया । (विणयित्ता कणगकेऊरस रणो उवणेंति
तएणं से कणगकेऊराया ते आसमदए सक्कारेइ सक्कारित्ता पडिविस
जेइ, तएणं ते आसा बहूहि सुहबंधेहि जाव छिवप्पहारेहि य बहूणि
सारीरमानसाणी दुक्खाइं पावेंति) शिक्षित बनाकर फिर वे उन
घोड़ों को कनककेतु राजा के पास ले गये । बादमें राजा कनककेतु ने
उन अश्वमर्दकों का सत्कार सन्मान किया । सत्कार सन्मान करके फिर
उन्हें विसर्जित कर दिया । वे घोड़े लेकर अनेक विध उन मुख बंधनों
से यावत् चर्ममय चिकणकशाओं के प्रहारों से नाना प्रकार के शा-
रीरिक एवं मानसिक दुखों को पाने लगे । (एवामेव समणाउसो !
जो अहं निर्गन्थो वा निर्गन्थी वा पव्वइए समाणे इट्ठेसु सदफरिसरस

ओना प्रहारोथी, आयुक्ता प्रहारोनी, छिपा आमडाना अनेदा वीसा आयु-
डाना प्रहारोथी ते घोडाओने डेणव्या

(विणयित्ता कणगकेऊ राया ते आसमदए सक्कारेइ, सक्कारित्ता पडिविस-
ज्जेइ तएणं ते आसा बहूहि सुह बंधेहि जाव छिवप्पहारेहि य बहूणि सारीर-
मानसाणि दुक्खाइं पावेंति)

डेणवीने-शिक्षित बनावीने ते घोडाओने तेओ कनककेतु राजा पासे
लध गया. त्पारपणी कनककेतुओ ते अश्वमर्दकेओ सत्कार तेमण सन्मान कथुं.
सत्कार अने सन्मान करीने तेमने विसर्जित कथा. ते घोडाओ धणा सुअ
बंधनेथी यावत् आमडाना वीसा आयुडाना प्रहारोथी अनेक नतना शारी-
रिअने मानसिक दु.ओ भोगवा लाग्या

(एवामेव समणाउसो ! जो अहं निर्गन्थो वा निर्गन्थी वा पव्वइए समाणे
इट्ठेसु सदफरिसरसरूपगंधेषु य सज्जइ, रज्जइ, गिज्जइ, मुज्जइ, अज्झोववज्जइ,

भवति, ' रज्जइ ' रज्यते=अनुरक्तो भवति, ' गिज्जइ ' गृध्यति=तद्राज्ज्यासक्तो भवति, ' मुज्जइ ' मुह्यति=मूर्च्छितो भवति, ' अज्जोववज्जइ ' अद्युपपद्यते=सर्वथा तल्लीनो भवति, स खलु इह लोक एव बहूनां श्रमणानां च यावत्-श्रमणीनां श्रावकाणां श्राविकाणां च ' हीलणिज्जे ' हीलनीयः यावत् चातुरन्तसंसारकान्ता-रम् ' अणुपरियट्टिस्सइ ' अनुपर्यटिष्यति=भ्रमिष्यतीति भावः ॥सू०४॥

मूलम्—कलरिभियमहुर तंतीतलतालवंसकउहाभिरामेसु ।

सहेसु रज्जाणा रमांति सोइंदियवसट्टा ॥ १ ॥

सोइंदियदुहन्तत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।

दीविगरुयमसहंसो वहबंधं तित्तिरो पत्तो ॥ २ ॥

टीका—अथेन्द्रियासंवरणदोषान् गाथाभिः प्रदर्शयति—' कलरिभिय० ' इत्यादि कलरिभितमधुरतन्त्री तल तालवंसककुदाभिरामेषु ।

रुवगंधेषु य सज्जइ, रज्जइ, गिज्जइ, मुज्जइ, अज्जोववज्जइ, सेणं इहलोहे चैव बहूणं समाणाण य जाव सावियाण य हीलणिज्जे जाव अणुपरियट्टिस्सइ) इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणों ! जो हमारा निर्ग्रन्थ साधुजन अथवा साध्वीजन आचार्य उपाध्याय के पास प्रव्रजित होता हुआ इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध इन पांचों इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होता है, अनुरक्त होता है, उनकी चाह से बंधता है, उनमें मूर्च्छित बनता है, सर्व प्रकार से उनमें तल्लीन होता है वह इस लोक में ही अनेक श्रमणजनों द्वारा श्रमणी, श्रावक और श्राविकाओं द्वारा हीलनीय-निन्दा का पात्र-होता है यावत् वह चतुर्गतिरूप इस संसार कान्तार में भटकता है ॥ सू०४ ॥

सेणं इहलोए चैव बहूणं समाणाण य जाव सावियाण य हीलणिज्जे जाव अणुपरियट्टिस्सइ)

आ प्रमाणे हे आयुष्मन्त श्रमणे ! जे अमारा निर्ग्रन्थ साधुजनो हे साध्वीजनो आचार्य अथवा उपाध्यायनी पासे प्रव्रजित थउने इष्ट, शब्द, स्पर्श, रस, रूप अने गंध आ पांचे इन्द्रियोना विषयोमां आसक्त होय छे, अनुरक्त होय छे, तेमनी धरिछा करीने तेओमां बंधार्थ लय छे, तेओमां मूर्च्छित भनी लय छे, अधी रीते तेओमां तल्लीन भनी लय छे. ते आ लोकमां ज घणु श्रमणे वडे तेमज घणु श्रमणी, श्रावक अने श्राविकाओ वडे हीलनीय-निन्दनीय-होय छे यावत् ते चतुर्गति रूप आ संसार-कान्तारमां भटकते रहै छे. ॥ सूत्र ४ ॥

शब्देषु रज्यमाना, रमन्ते श्रोत्रेन्द्रियवशात्ताः ॥ १ ॥

श्रोत्रेन्द्रियदुर्दान्तत्वस्य अथ एतावान् भवति दोषः ।

द्वीपिकारुतमसहमानो, -वधवन्धं तित्तिरः प्राप्तः ॥ २ ॥

श्रोत्रेन्द्रियवशात्ताः=कर्णेन्द्रियवशवर्तिनः कलाः श्रवणसुखदाः रिभिताः स्वर-
घोलनाविशेषयुक्ताः मधुराः-प्रियाः कलरिभितमधुरध्वनिजनकत्वात् तद्रूपा ये तन्त्री-
तलतालवंशाः-वीणा-करताल वेणवस्तैः समुद्भाषितत्वात्-ककुद्-प्रधानाः, अभि-
रामाः-मनोहरास्तेषु-शब्देषु रज्यमानाः=अनुरक्ताः सन्तः रमन्ते=मोदन्ते ॥ १ ॥
' सोइंदिये ' त्यादि । ' सोइंदियदुदंतत्तणस्स ' श्रोत्रेन्द्रियदुर्दान्तत्वस्य श्रोत्रेन्द्रियं
दुर्दान्तं यस्य स श्रोत्रेन्द्रियदुर्दान्तः=श्रोत्रेन्द्रियस्य जेतुमशक्यतया तद्वशवर्तीत्यर्थः,
तस्य भावस्त्वचं, तस्य, श्रोत्रेन्द्रियाधीनतायाः, ' एत्तिओ ' एतावान्=वक्ष्यमाण-
प्रकारकः दोषो भवति । तं सदृष्टान्तं प्रदर्शयति-'दीविगरुयमसहंतो ' द्वीपिकारु
तमसहमानः-द्वीपिका=व्याध पञ्जरस्थतित्तिरः, तस्याः रूतं शब्दम् असहमानः=

' कलरिभिय ' इत्यादि ।

अब सूत्रकार, इन्द्रियों के असंवरण से जो दोष उत्पन्न होते हैं उन्हें इन गाथाओं द्वारा प्रदर्शित करते हैं-कर्णेन्द्रिय के वशवर्ती बने हुए प्राणी फल-श्रवण सुखदा, रिभित-स्वरों के घोलना विशेष से युक्त ऐसे मधुरप्रिय, तंत्री-वीणा, तलताल-करताल, वंशवासुरी इन से उत्पन्न होने की वजह से ककुद्-अत्यन्त, अभिराम-मनोहर ऐसे शब्दों में अनुरक्त होते हुए यद्यपि मुदितमन होते हैं परन्तु श्रोत्रेन्द्रिय उनकी दुर्दमन होनेके कारण-श्रोत्रेन्द्रिय उनकी जितनेमें अशक्य होनेके कारण तद्वशवर्ती बने हुए वे प्राणी जिस तरह व्याध के पंजर में रही हुई तित्तिरी के शब्द को सुनकर तीतरपक्षी-कामराग के वश से आकृष्ट

' कलरिभिय ' इत्यादि—

सूत्रकार ऊँचे इन्द्रियोना असंवरणथी जे दोषो उत्पन्न थाय छे तेमने आ गाथाओ वडे प्रदर्शित करे छे. कर्णेन्द्रियना वशमां थयेला प्राणीओ कल-श्रवण सुखदा, रिभित स्वराने विशेष रूपमां भेणववाथी उत्पन्न थयेला ध्वनि, मधुर-प्रिय, तंत्री-वीणा, तलताल-करताल, वंश-वांसणी ओमनाथी उत्पन्न होवा गदल ककुद्-अत्यन्त, अभिराम-मनोहर ओवा शब्दोमां अनुरक्त थया जे छे तेओ मुदितमन-प्रसन्न थाय छे. परंतु तेमनी श्रोत्रेन्द्रिय (कान) दुर्दमनीय होवा गदल ओटवे छे मश्रोत्रेन्द्रिय उपर कानु भेणववानुं काम तेमना भाटे अशक्य होवा गदल तेने वश थयेला प्राणीओ जेम व्याध-शिकारीना पीञ्जराभा सपठाठ गयेला तित्तिरीना शब्दने सांलणीने तीतर पक्षी कामरागना

तित्तिरः बंधं=मरणं बन्धं=पञ्जरादि बन्धनं प्राप्तिः-प्राप्नोतीत्यर्थः 'अथ'
वाक्यालङ्कारे ॥ २ ॥

मूलम्-थणजहणवयणकरचरणणयणगवियविलासियगईसु ।

रूपेषु रज्जमाना रमन्ति चक्खिदियवसट्ठा ॥ ३ ॥

चक्खिदियदुर्दान्तत्तणस्स अह एत्तिओ भवइ दोसो ।

जं जलणंमि जलंते पडइ पयंगो अबुद्धीओ ॥ ४ ॥

टीका-स्तनजघनवदनकरचरणनयनगर्वितविलासितगतिषु ।

रूपेषु रज्यमाना, -रमन्ते चक्षुरिन्द्रियवशात्ताः ॥ ३ ॥

चक्षुरिन्द्रियदुर्दान्तत्वस्य अथ एतावान् भवति दोषः ।

यद्वज्वलने ज्वलति, पतति पतङ्गः अबुद्धिकः ॥ ४ ॥

'थणे' त्यादि । चक्षुरिन्द्रियवशात्ताः स्त्रीणां स्तनजघनादि रूपेषु रज्यमानाः
=अनुरक्ता रमन्ते ॥ ३ ॥

ज्वलने=अग्नौ । शेषं सुगमम् ॥ ४ ॥

होकर बंध और बंधन को पाता है उसी तरह नाना प्रकार के बंध बंधनों
को पाया करते हैं ॥ गा० १-२ ॥

'थणजहण, चक्खिदिय' इत्यादि ।

यद्यपि चक्षुर्इन्द्रिय के विषय की प्राप्ति करने में व्याकुल हुए प्राणी
उस विषय की प्राप्ति होने पर आनन्दमग्न बन जाया करते हैं-वे स्त्रियों
के स्तन, जघन, वदन, कर, चरण, नयन, गर्वित विलासयुक्त गमना-
दिरूप चक्षुर्इन्द्रिय के विषय को बार बार देखकर आसक्त होते हैं-
परन्तु यह इन्द्रिय जब दुर्दान्त बन जाया करती है-तब ऐसे प्राणी जिस

आवेशमां आर्षाने मृत्यु तेमज्ज अंधनने प्राप्ति करे छे, तेमज्ज अनेक जतना
बंधबंधनो भेणवे छे. " गा. १-२ "

थण जहण चक्खिदिय इत्यादि—

जे छे चक्षुर्इन्द्रियोना विषयोने भेणववा भाटे अत्यंत उत्सुक भनेदा
प्राणीओ ते विषयोनी प्राप्ति थछ जवा आह आनंदमग्न थछ जय छे-तेओ
स्त्रीओना स्तन, जघन, मुण, डाय, यरण, नयन, गर्वित विलास-युक्त गमन
वगेरे इय चक्षुर्इन्द्रियोना विषयोने बारंवार जेछने आसक्त थज्ज जय छे, परंतु आ
धन्द्रिय न्यारे दुर्दान्त भनी जय छे त्यारे ओवा प्राणीओ अज्ञानी पतंगनी

मूलम्—अगुरुवरपवरधूपण उउय मल्लाणुलेवणविहीसु ।

गंधेषु रज्यमाना रमंति घाणिंदियवसट्टा ॥ ५ ॥

घाणिंदियदुदंतत्तणस्स अहं एत्तिओ हवइ दोसो ।

जं ओसहिगंधेणं विलाओ निच्चावइ उरगो ॥ ६ ॥

टीका—अगुरुवरपवरधूपन ऋतुजमालयानुलेपनविधिषु ।

गन्धेषु रज्यमाना,—रमन्ते घ्राणेन्द्रियवशात्ताः ॥ ५ ॥

घ्राणेन्द्रियदुर्दान्तत्वस्य अय एतावान् भवति दोषः ।

यद् औपधिगन्धेन विलाद् निर्धावति उरगः ॥ ६ ॥

घ्राणेन्द्रियवशात्ताः अगुरुवरः=कृष्णागुरुः, पवरधूपनं=दशाङ्गादिरूपो धूपः, 'उउयमल्ल' ऋतुजमालयानि=उत्तद्ऋतुजानपुष्पाणि, अनुलेपनानि=चन्दनकुङ्कुमादिरूपाणि, तेषां विधयः=प्रकारा येषु गन्धेषु तत्र रज्यमानाः=अनुरक्ताः सन्तो रमन्ते ॥ ५ ॥

‘ ओसहिगंधेणं ’ औपधिगन्धेन=केतक्यादिवनस्पतिसुगन्धानुरागवशेन

प्रकार अज्ञानी पतंग अपने प्राणों को अग्नि में डाल देता है उसी प्रकार उसी विषय में अपने प्राणों का नाश करते हैं ॥ गा० ॥ ३-४ ॥

अगुरुवर, घाणिय इत्यादि ।

घ्राणन्द्रिय के वशवर्ती बने हुए प्राणी अगुरुवर-कृष्णागुरु, पवर, धूपन, -दशाङ्गादिरूप धूप, ऋतुजमालय-तत्तद्ऋतु के पुष्प, अनुलेपन-चन्दन कुङ्कुम आदि के विविध लेप रूप गंध में अनुरक्त होते हुए हर्षित मन होते हैं, परन्तु वे इस इन्द्रिय की दुर्दमनता का कुछ भी विचार नहीं करते हैं। जब यह इन्द्रिय दुर्दमन बन जाती है—तब ऐसे प्राणी

जैसे पोताना प्राणोने अग्निमां डोभी दे छे, तेमज ते पणु ते विषयमां ज पोताना प्राणोने नष्ट करी नाछे छे. “ गा. ३-४ ”

अगुरुवर, घाणिंदिय इत्यादि ।

घ्राणुन्द्रियना वशमां पडोला प्राणीओ अगुरुवर-कृष्णागुरु, पवर, धूपन दशाङ्गादि रूप धूप ऋतु ज मालय-तत्तद् ऋतुना पुष्पो, अनुलेपन-चन्दन-कुङ्कुम वजरेना नतनतना लेपना गंधमां अनुरक्त यथने हर्षित यथ नय छे, परंतु दुर्दमनता तो तेओ ते इन्द्रियनी दुर्दमता विषेना डोछ पणु नतनो विचार करता ज नथी. न्यारे ते इन्द्रिय दुर्दम यनी नय छे न्यारे ओवा प्राणीओ

उरगः=सर्पः विलात् 'निधावई' निर्धावति=निस्सरति, ततो वधं वन्धनं च प्राप्नो-
तीति भावः । शेषं स्पष्टम् ॥ ६ ॥

मूलम्—तित्तकडुय कसायं वमहुखज्जपेज्जलेज्जेसु ।

आसाएसु य गिद्धा रमंति जिब्भिमदियवसट्टा ॥ ७ ॥

जिब्भिमदिय दुइंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।

जं गललग्गुक्खित्तो फुरइ थरविरल्लिओ मच्छो ॥ ८ ॥

छाया—तित्तकडुककषायाम्लमधुरवहुखाद्यपेयलेह्येषु ।

आस्वादिषु च गृद्धा, रमन्ते जिह्वेन्द्रियवशात्तर्षाः ॥ ७ ॥

जिह्वेन्द्रियदुर्दान्तत्वस्य, अथ एतावान् भवति दोषः ।

यद् गललग्नोत्क्षिप्तः, स्फुरति स्थलविरल्लितो मत्स्यः ॥ ८ ॥

टीका—जिह्वेन्द्रियवशात्तर्षाः—तित्तं=मरीचादिक, कडुकं=कारबेलादिकं, कषायः=
आमलकादिकम्, अम्लं=करम्बादिकं, मधुरं=मोदकादिकं, बहु=अनेकविधं 'खज्ज'
खाद्यं=कदलीफलादिकं, 'पेज्जं' पेयं=दुग्धादिकं, 'लेज्जं' लेह्यं=दधिशर्करादि-

केतकी आदि की गंध से आकृष्ट बनकर जिस प्रकार विल से निकला
सर्प वधवंधन आदि कण्टों को पाता है वैसे कण्ट पाते है ॥ गा० ५-६ ॥

'तित्तकडुय जिब्भिमय' इत्यादि ।

जो प्राणी जिह्वाइन्द्रिय के वशवर्ती बना रहता है वह मरीच आदि
के जैसे तित्त स्वाद में करेला के जैसे कडुक स्वाद में, आमल आदि के
जैसे कषायरस में करम्बादिके जैसे अम्ल-खट्व रस में, मोदकादि के
जैसे मधुर स्वाद में तथा विविध प्रकार के कदली फलादिक खाद्य पदार्थों
में, दुग्धादि पेयपदार्थों में, एवं दधि और शक्कर आदि से निष्पन्न हुए

केतकी वगेरेनी गंधथी आकृष्ट थयने जेम दरमांथी नीकण्ठेत्ते। साय वधमंधन
वगेरे कण्ठेने प्राप्न करे छे तेमज्ज कष्ट प्राप्न करे छे ॥ गा. ५-६ ॥

तित्तकडुय जिब्भिमदिय इत्यादि ।

जे प्राणी लुइवा इन्द्रिय (लुल) ने वश थयेत्ते। छाय छे, ते मरयुं
वगेरेना जेवा तीष्ण स्वादमां, करेला जेवा कडवा स्वादमां, आमली वगेरेना
जेवा कषाय रसमां, करंभादिना जेवा अम्ल-खाटा रसमां, लाउवा वगेरेना
जेवा मधुर स्वादमां तेमज्ज जतजतनां केणा वगेरेना आद्य पदार्थमां, इध
वगेरे जेवा पेय पदार्थमां, अने हडीं तेमज्ज आउ वगेरेथी तैयार थयेत्ते।

निष्पन्नं श्रीखण्डादिकम्, एतेषां द्वन्द्वः, तेषु आस्वादेषु=आस्वाद्यन्ते इति आस्वादाः रसास्तेषु गृह्याः=आसक्ताः सन्तः रमन्ते ॥ ७ ॥

‘जिर्दिमदिये’ त्यादि । पूर्वं गले=मत्स्यवेधने लग्नः, मत्स्यवेधनेन मुखे विद्ध इत्यर्थः, पश्चाद् उत्क्षिप्तः=जलादुद्धृतः इति कर्मधारयः, एवंभूतो मत्स्यः स्थलविरल्लितः=स्थले निपातितः सन् स्फुरति व्याकुलो भूत्वा भूमौ लुठति । शेषं स्पष्टम् ॥ ८ ॥

मूलम्—उउभयमाणा सुहेसु य सविभवहिययमणनिव्वुइकरेसु ।

फासेसु रज्जमाणा रमन्ति फासिंदियवसट्टा ॥ ९ ॥

फासिंदिय दुइंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो ।

जं खणइ मत्थयं कुंजरस्स लोहंकुसो तिक्खो ॥ १० ॥

छाया—ऋतुभज्यमानमुखेषु च, सविभवहृदयमनोनिर्वृत्तिकरेषु ।

स्पर्शेषु रज्यमाना, रमन्ते स्पर्शेन्द्रियवशात्तः ॥ ९ ॥

स्पर्शेन्द्रिय दुर्दान्तत्वस्य, अथ एतावान् भवति दोषः ।

यत् खनति मस्तकं कुञ्जरस्य लोहाङ्कुशस्तीक्ष्णः ॥ १० ॥

टीका—‘उउभये’ त्यादि । स्पर्शेन्द्रियवशात्तः—‘उउभयमाणसुहेसु य’ ऋतुभज्यमानमुखेषु ऋतुषु=हेमन्तादिषु भज्यमानानि=सेव्यमानानि सुखानि, येषु ते,

श्री ग्वंड ओदि लेह्य पटार्थो में आसक्तमति होकर बड़ा हर्ष मनाया करते हैं । परन्तु जब इनकी यह इन्द्रिय दुर्दान्त बन जाती है तब ऐसे प्राणी जैसे मत्स्यवेधन से—मछली पकड़ने के कांटे—वंशी—से मुख में विद्ध हुआ मत्स्य जल में से ग्वींचकर बाहर भूमिपर डाल दिया जाता है और वह भूमिपर तड़प् २ कर मर जाता है उस इन्द्रिय के विषय में फँसकर तड़प् २ कर मर जाया करते हैं ॥ गा० ७-८ ॥

श्रीगण्ड वगेरे लेह्य (चाटीने भाई शक्य तेवा) पटार्थोमां आसक्त धर्मे ऋण न डर्पिन थना रडे छे. परंतु न्यारे तेमनी आ इन्द्रिय दुर्दान्त णनी नय छे, त्यारे जेवा प्राणी जेम मत्स्यवेधनथी—माछडी पकडवाना छंटाथी सुभमा विद्ध धयेदुं माछतु पाणीमांथी अडार जेचिने अडार नमीन उपर नाणवामां आवे छे अने ते नमीन उपर तडपी तडपीने मृत्युवश थाय छे, तेमन ते इन्द्रियना विषयमां इसाधने तडपी तडपीने मृत्युवश थाय छे. ॥ गा. ७-८ ॥

तेषु तथोक्तेषु तथा सविभवानां-संपत्तिशालिनां हृदयस्य मनसश्च निर्वृत्तिकरेषु सुखकरेषु । एवं भूतेषु स्पर्शेषु रज्यमानाः=अनुरक्ताः रमन्ते ॥ ९ ॥

‘फार्सिदिये’ त्यादि । कुञ्जरस्य=करिणीस्पर्शलुब्धस्य हस्तिनो मस्तकं तीक्ष्णो-
लोहाङ्कुशः खनति=विदारयति । शेषं सुगमम् ॥ १० ॥ ५ ॥ सू० ॥

मूलम्—कलरिभिय महुरतंतीतलतालवंसकउहाभिरामेसु । ।

सद्वेसु जं न गिद्धा वसट्टमरणं न ते मरण ॥ ११ ॥

थणजहणवयणकरचरणनयणगठिवयविलासियगईसु ।

रूवेसु न रत्ता वसट्टमरणं न ते मरण ॥ १२ ॥

अगुरुवरपवरधूवण उउयमल्लाणुलेवणविहीसु ।

गंधेसु जे न गिद्धा वसट्टमरणं न ते मरण ॥ १३ ॥

तित्तकडुयकसायंबमहुरवहुखज्जपेज्जलेज्जेसु ।

आसाएसु न-गिद्धा वसट्टमरणं न ते मरण ॥ १४ ॥

(उ उ भयमाणं, फार्सिदियदुहंत इत्यादि,

टीकार्य—जो प्राणी स्पर्शन इन्द्रियके वशवर्ती होते हैं वे अपनी स्पर्श-
नेन्द्रियकी लोलुपतासे हेमन्त आदि प्रत्येक ऋतु संबन्धी सुख भोगते हैं ।
तथा संपत्तिशालियों के हृदय में और मन सुखकर स्पर्शों में अनुरक्त
बने रहते हैं । इस तरह करते २ जब इनकी यह स्पर्शन इन्द्रिय दुर्दान्त
बन जाती है तब वे प्राणी जिस प्रकार तीक्ष्ण लोहे का अङ्कुश करिणी
(हस्तिनी) के स्पर्श करने में लुब्धक बने हुए मत्त गजराज के मस्तक
को विदार देता है उसी तरह इस स्पर्शन इन्द्रिय के द्वारा विनष्ट कर
दिये जाते हैं ॥ गा० ९-१० ॥

उ उ भयमाण, फार्सिदियदुहंत इत्यादि ।

वे प्राणीयो स्पर्शेन्द्रियने वश थाय छे, तेओ पोतानी स्पर्शेन्द्रियनी
लोळुपताथी हेमंत वजेरे दरेके दरेके ऋतुओना सुओ लोगवे छे. तेमज
संपत्तिवाणाओना हृदय अने मनसुअद स्पर्शोमां आसकत अनीने रडे छे.
आम करतां करता न्यारे तेमनी आ स्पर्शेन्द्रिय दुर्दांत अनी जय छे त्यादे
ते प्राणीओ (हाथिथी) ने स्पर्शोमां लुब्धक अनेदो. मत्त गजराजना
मस्तकने विदीर्ण करी नाओ छे तेमज आ स्पर्शेन्द्रिय वडे विनष्ट करी
नाथोमां आवे छे. ॥ गा. ९-१० ॥

उउभयमाणसुहेसु य सविभवहिययमणनिव्वुइकरेसु ।

फासेसु जे न गिद्धा वसट्टमरणं न ते मरण ॥ १५ ॥

टीका—शब्दादिविषयेष्वनासक्तानां वशार्त्तमरणं न भवतीति पञ्चभिर्गाथाभिः प्राह—‘कलरिभिय’ इत्यादि ।

कलरिभितमधुरतन्त्रीतलतालवंशककुदाभिरामेषु ।

शब्देषु ये न गृद्धा,—वशार्त्तमरणं न ते म्रियन्ते ॥ ११ ॥

स्तनजघनवदनकरचरणनयनगर्वितविलासितगतिषु ।

रूपेषु ये न रक्ता,—वशार्त्तमरणं न ते म्रियन्ते ॥ १२ ॥

अगुरुवरप्रवरधूपन,—ऋतुजमालयानुलेपनविधिषु ।

गन्धेषु ये न गृद्धा,—वशार्त्तमरणं न ते म्रियन्ते ॥ १३ ॥

तिक्तकटुककषायाम्ल, मधुरबहुखाद्यपेय लेह्येषु ।

आस्वादेषु न गृद्धा,—वशार्त्तमरणं न ते म्रियन्ते ॥ १४ ॥

ऋतुभज्यमानमुखेषु च, सविभव हृदयमनोनिर्वृत्तिकरेषु ।

स्पर्शेषु ये न गृद्धा,—वशार्त्तमरणं न ते म्रियन्ते ॥ १५ ॥

आसाम् व्याख्या सुगमा ॥ १५ ॥ सू० ६ ॥

(‘कलरिभिय’, धणजहण, अगुरुवरपवर, तिक्तकडुय, उउभयमाण, इत्यादि ।

इन गाथाओं द्वारा सूत्रकार यह प्रदर्शित करते हैं कि जो शब्दादि पांच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त नहीं बनते हैं उनका वशार्त्तमरण नहीं होता है । इन गाथाओं की व्याख्या सुगम है ।

जो प्राणी कर्णइन्द्रिय के विषयभूत शब्द में, चक्षुइन्द्रिय के विषयभूत रूप में नासिका इन्द्रियके विषयभूत गंध में जिह्वाइन्द्रिय के विषयभूत रस में, तथा स्पर्शन इन्द्रिय के विषयभूत स्पर्श में आसक्त-गृद्ध-नहीं होते हैं ॥ गा० ११-१५ ॥

कलरिभिय, धणजहण, अगुरुवरपवर, तिक्त कडुय उ उ भयमाण, इत्यादि ।

आ गाथाओ वडे सूत्रकार आ वात स्पष्ट करना भागे छे के ने शब्द वगेदे पाये धन्द्रियोना विषयोमां आसक्त यतां नथी, तेमनुं वशार्त्तमरणु यत्तुं नथी, आ गाथाओनी व्याख्या सरण छे.

ने प्राणी कर्णधन्द्रियोना विषयभूत रूपमां, नासिका धन्द्रियोना, विषयभूत गंधमां, जिह्वा धन्द्रियोना विषयभूत रसमां तेमने स्पर्शन धन्द्रियोना विषयभूत स्पर्शमा अत्यंत आसक्त-गृद्ध यता नथी, तेओ वशार्त्तमरणुने प्राप्त करता नथी. ॥ गा. ११-१५ ॥

मूलम्—सद्देशु य भद्रपावणसु सोयविसयं उवागणसु ।

तुष्टेण व रुष्टेण व समणेण सया ण होयव्वं ॥ १६ ॥

रूवेसुय भद्रपावणसु चक्खुविसय उवगणसु ।

तुष्टेण व रुष्टेण व समणेण सया ण होयव्वं ॥ १७ ॥

गंधेसु य भद्रपावणसु घाणविसयं उवागणसु ।

तुष्टेण व रुष्टेण व समणेण सया ण होयव्वं ॥ १८ ॥

रसेसु य भद्रपावणसु जिब्भविसय उवगणसु ।

तुष्टेण व रुष्टेण व समणेण सया ण होयव्वं ॥ १९ ॥

फासेसु य भद्रपावणसु कायविसयं उवगणसु ।

तुष्टेण व रुष्टेण व समणेण सया ण होयव्वं ॥ २० ॥

एवं खलु जंबू ! समणेण भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं
सत्तरसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्टे पन्नत्ते त्तिवेमि ।

॥ सत्तरसमं नायज्झयणं समत्तं ॥ १७ ॥

टीका—अनुकूल प्रतिकूलशब्दादिषु रागद्वेषवर्जनं पञ्चभिर्गाथाभिः प्रतिबोध-
यति—'सद्देशु य' इत्यादि ।

शब्देषु च भद्रकपापकेषु श्रोत्रविषयमुपगतेषु ।

तुष्टेन वा रुष्टेन वा, श्रमणेन सदा न भवितव्यम् ॥ १६ ॥

सद्देशुय; फासेसुय इत्यादि ।

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सत्त-
रसमस्स नायज्झयणस्स अयमट्टे पणत्ते त्तिवेमि ॥

अब सूत्रकार इन पांच गाथाओं द्वारा अनुकूल प्रतिकूल-शब्दादि
विषयों में श्रमणजन को कभी भी रागद्वेष नहीं करना चाहिये—इस

सद्देशुय, फासेसुय इत्यादि

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सत्तरसमस्स
नायज्झयणस्स अयमट्टे पणत्ते त्ति वेमि ॥

सूत्रकार डबे आ पांच गाथाओं वडे ओ वात स्पष्ट करवा छिछे छे
के अनुकूल-प्रतिकूल शब्दादि विषयोमां श्रमणजनोने कदापि राग-द्वेष नहि

रूपेषु च भद्रकपापकेषु, चक्षुर्विषयमुपगतेषु ।

तुष्टेन वा रुष्टेन वा, श्रमणेन सदा न भवितव्यम् ॥ १७ ॥

१-भद्रकपापकेषु=अनुकूल-प्रतिकूलेषु ।

गन्धेषु च भद्रकपापकेषु, घ्राणविषयमुपगतेषु ।

तुष्टेन वा रुष्टेन वा, श्रमणेन सदा न भवितव्यम् ॥ १८ ॥

रसेषु च भद्रकपापकेषु, जिह्वाविषयमुपगतेषु ।

तुष्टेन वा रुष्टेन वा, श्रमणेन सदा न भवितव्यम् ॥ १९ ॥

स्पर्शेषु च भद्रकपापकेषु, कायविषयमुपगतेषु ।

तुष्टेन वा रुष्टेन वा, श्रमणेन सदा न भवितव्यम् ॥ २० ॥

विषय को समझाते हैं यहाँ भद्रक शब्द का अर्थ अनुकूल और पापक शब्द का अर्थ प्रतिकूल है । जब शब्द रूप विषय श्रोत्रेन्द्रिय का हो तो उस समय चाहे वह मनोज्ञ हो या अमनोज्ञ हो कैसा ही क्यों न हो उसमें श्रमण-साधु-को कभी भी तुष्ट अथवा रुष्ट नहीं होना चाहिये ॥ गा० ॥ १६ ॥

चक्षुर्इन्द्रिय का विषयभूतरूप जब उस इन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने में आवे-तब वह चाहे मनोज्ञ हो या अमनोज्ञ हो उसमें श्रमण जन को कभी भी हर्ष विषाद-तुष्ट रुष्ट-नहीं होना चाहिये ॥ गा० १७ ॥

मनोज्ञ एवं अमनोज्ञ गंध जब घ्राणइन्द्रिय का विषय हो तब साधु को उस विषय में कभी भी तुष्ट रुष्ट नहीं होना चाहिये ॥ गा० १८ ॥

मनोज्ञ अथवा अमनोज्ञ रस जिह्वाइन्द्रिय का विषय हो-तब उसमें श्रमण जन को कभी भी तुष्ट और रुष्ट नहीं होना चाहिये ॥ गा० १९ ॥

० करवा- लोभ्ये अर्थात् भद्रक शब्दको अर्थ अनुकूल अने पापक शब्दको अर्थ प्रतिकूल छे. न्यारे शब्दरूप विषय श्रोत्र इन्द्रियको होय तो लोभ्ये ते मनोज्ञ होय के अमनोज्ञ होय, गमे तेवा केम न होय, तेमां श्रमण-साधु-ने कदापि तुष्ट के इष्ट थवुं लोभ्ये नडि. ॥ गा. १६ ॥

चक्षु इन्द्रियना विषयभूत रूप न्यारे ते इन्द्रिय वडे अडणु करवामां आवे त्यारे ते मनोज्ञ होय के अमनोज्ञ होय, श्रमणने कदापि तेमां हर्ष-विषाद-तुष्ट-इष्ट नडि थवुं लोभ्ये ॥ गा. १७ ॥

मनोज्ञ अने अमनोज्ञ गंध न्यारे घ्राण इन्द्रियको विषय होय त्यारे साधुने ते विषयमा कदापि तुष्ट के इष्ट नडि थवुं लोभ्ये. ॥ १८ ॥

मनोज्ञ अथवा तो अमनोज्ञ रस न्यारे जिह्वा इन्द्रियको विषय होय त्यारे तेमां श्रमण-जनने कदापि तुष्ट अने इष्ट थवुं लोभ्ये नडि. ॥ गा. १९ ॥

‘सदेसु य’ इत्यादि गाथा पञ्चकं सुगमम् ॥

सुधर्मास्वामी प्राह—‘एवं खलु हे खस्वूः । श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत्संप्राप्तेन सप्तदशस्य ज्ञाताध्ययनस्य अयमर्थः=पूर्वोक्तो भावः प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः । इति ब्रवीमि—व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० ७ ॥

इति श्री विश्वविख्यात — जगद्बल्लभ—प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलित-
ललितकलापालापक — प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक—वादिमानमर्दक
श्रीशाहू छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ‘जैनशास्त्राचार्य’ पदभूषित—
कोल्हापुरराजगुरु—वालब्रह्मचारि जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकरपूज्यश्री
घासीलालव्रतिविरचितायां श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रस्यानगारधर्माभृ-
तवर्षिण्याख्यायां व्याख्यायां सप्तदशमध्ययनं समाप्तं ॥ १७ ॥

८ आठ प्रकार का स्पर्श चाहे वह अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल हो—
जब २ स्पर्शन इन्द्रिय का विषय हो उसमें साधु को किसी भी तरह से
कभी भी तुष्ट एवं रुष्ट नहीं होना चाहिये ॥ २० ॥

इस प्रकार हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर ने कि जो सिद्धगति
नामक स्थान को प्राप्त कर चुके हैं इस सत्रहवें ज्ञाताध्ययन का यह
पूर्वोक्त रूप से अर्थ प्ररूपित किया है । ऐसा मैं उन्हीं के कहे अनुसार
कह रहा हूँ ।

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर श्री घासीलालजी महाराज कृत ‘ज्ञाता
धर्मकथाङ्गसूत्र’ की अनगार धर्माभृतवर्षिणी व्याख्या का सत्रहवां
अध्ययन समाप्त ॥ १७ ॥

८ जतनेा स्पर्श—लदे ते अनुकूण के प्रतिकूण गमे तेवे केम न डोय
न्यारे न्यारे ते स्पर्शन इन्द्रियेना विषय डोय तेमां साधुने केठ पणु रीते
कहापि तुष्टं अने इष्ट थवुं लेठ अे नडि ॥ गा. २० ॥

आ प्रमाणे डे नंणु ! श्रमणु भगवान् महावीरे डे नेमणु सिद्धगति
नामक स्थानने मेणणुं छे—आ सत्तरभा ज्ञाताध्ययनने आ पूर्वोक्त रूपमां
अर्थ प्ररूपित कर्यो छे. आवुं हुं तेमना कहा मुण्ण न तमने कही रह्यो छुं.

श्री जैनाचार्य घासीलालजी महाराज कृत ‘ज्ञातासूत्रनी अनगारधर्माभृतवर्षिणी
व्याख्यानुं सत्तरभुं अध्ययन समाप्त ॥ १७ ॥

॥ अथाष्टादशमध्ययनम् ॥

अथाष्टादशमारभ्यते, अस्य च पूर्वेण सहायमभिसम्बन्धः—पूर्वस्मिन् अध्ययने इन्द्रियवशवर्तिनाम् वशीकृतेन्द्रियाणां च अनर्थार्थी प्रोक्तौ, इह तु लोभाविष्टानां लोभरहितानां च तावेवोच्येते, इत्येवं पूर्वेण सह संबद्धमिदमध्ययनम्, तस्येदमादिमं सूत्रम्—‘जड्णं भंते’ इत्यादि—

मूलम्—जड् णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तरसमस्स णाय-
ज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते, अट्टारमस्स णं भंते ! णायज्झय-
णस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ? एवं खल्लु जंबू !
तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहं णामं णयरे होत्था ।
वणणओ० । तत्थ णं धण्णे णामं सत्थवाहे । भद्दाभारिया तस्स
णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए अत्तया पंचसत्थवाह-

अठारहवां अध्ययन प्रारंभ

सुंसमादारिका का वर्णन

सत्रहवां अध्ययन समाप्त हो चुका हैं। अब १८ वां अध्ययन प्रारंभ होता है। इस अध्ययन का पूर्व अध्ययन के साथ इस प्रकार से संबन्ध है—कि पूर्व अध्ययन में इन्द्रियवशवर्ती तथा वशीकृत इन्द्रियवाले जीवों को अर्थ की प्राप्ति होना कहा गया है। अब इस अध्ययन में सूत्रकार यह कहेंगे कि जो लोभ कषायसे युक्त तथा लोभ कषाय से रहित जीव होते हैं वे अनर्थ और अर्थ प्राप्ति से योग्य होते हैं। इस अध्ययन का सर्व प्रथम सूत्र यह है—‘जड्णं भंते’ इत्यादि।

अठारमा अध्ययनने। प्रारंभ

सुंसमादारिकानुं वर्णन

सत्तरमुं अध्ययन पुर्णं थयुं छे. उवे अठारमा अध्ययननी शङ्खात् थाय छे. आ अध्ययनने। पडेला अध्ययननी साथे आ न्तने। संबंध छे के पडेला अध्ययनमां इन्द्रिय वशवर्ती तेमज् वशीकृत इन्द्रियोवाणां लोभने अर्थनी प्राप्ति थाय छे, ते विषे डडेवामां आण्युं छे. सूत्रकार उवे आ अध्ययनमां आ वातनुं स्पष्टीकरषु करशे के ने लोभे लोभकषायथी तेमज् लोभकषायथी श्चित्तो छाय छे. तेओ अनर्थं अने अर्थं प्राप्तिने लायक ठरे छे. आ अध्ययननुं पडेनुं सूत्र आ छे—जड्णं भंते समणेणं महावीरेणं इत्यादि—

दारगा होत्था, तं जहा—धण्णे धणपाले, धणदेवे, धणगोवे, धणर-
 खिए । तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्सधूया भद्दाए अत्तया
 पंचण्हं पुत्ताणं अणुमग्गजातीया सुंसुमाणामं दारिया होत्था,
 सूमालपाणिपाया, तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स चिलाए नामं
 दासचेडे होत्था, अहीणपंचिंदियसरीरे मंसोवचिए बालकीलाव-
 णकुसले यावि होत्था। तएणं से चिलाए दासचेडे सुंसुमाए दारियाए
 बालग्गाहे जाए यावि होत्था । सुंसुमं दारियं कडीए गिण्हइ,
 गिण्हत्ता, बहूहिं दारएहि य दारियाहि य बालेहिं बालियाहि य
 डिंभएहि य डिंभियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं
 आभिरममाणे२ विहरइ । तएणं से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूणं
 दारियाण य जाव अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ, एवं वट्टइ
 आगेलियाओ, तेंदुसए, पोतुल्लए, साडोल्लए, अप्पेगइयाणं
 आभरणमल्लालंकारं अवहरइ अप्पेगइए आउस्सइ, एवं अवहसइ
 निच्छोडेइ, निब्भच्छेइ तज्जेइ, अप्पेगइए तालेइ । तएणं ते
 बहवे दारगा य ६ जाव रोयमाणा य कंदमाणा य साणं २
 अम्मापिकुणं णिवेदेति । तएणं तेसिं बहूणं दारगाणय ६
 जाव अम्मापियरो जेणेव धन्ने सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति,
 उवागच्छित्ता धन्ने सत्थवाहे बहूहिं खिज्जणाहि य संटणाहि
 य उवलंभणाहि य खिज्जमाणाहिय संटमाणाहि य उवलंभमाणा
 य धणस्स एयमट्टं णिवेदेति ॥ सू० १ ॥

टीका—' जह्णं भन्ते ! ' इत्यादि । जम्बूस्वामीपृच्छति—यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावन्मोक्षं संप्राप्तेन सप्तदशस्य ज्ञाताध्ययनस्य अयमर्थः जितेन्द्रियाऽजितेन्द्रियाणामर्थान्तर्यमाप्तिरूपो भावः प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः, अष्टादशस्य तु ज्ञाताध्ययनस्य श्रमणेन यावन्मोक्षं संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः? सुधर्मास्वामी प्राह—एवं खलु हे जम्बू! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृह नाम नगरमासीत्, 'वण्णओ' वर्णकः=नगरवर्णनं पूर्ववद् विज्ञेयम् । तत्र खलु धन्यो नाम सार्थवाहः परिवसति । तस्य भद्रा नाम भार्याऽसीत् । तस्य खलु धन्यस्य सार्थवाहस्य पुत्राः, भद्राया आत्मजाः पञ्च सार्थवाहदारका आसन् । तेषां नामान्याह—' तं जहा ' तद्यथा—

टीकार्थ—जंबू स्वामी श्री सुधर्मास्वामीसे पूछते हैं कि—(जह्णं भन्ते ! समणेण जाव संपत्तेण सत्तरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते अट्ठारसमस्स ण भन्ते णायज्झयणस्स समणेण जाव संपत्तेण के अट्ठे पणत्ते ?) हे भदन्त ! श्रमण भगवान महावीर ने जो किं सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त कर चुके हैं मंत्रहवे ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्त रूप से अर्थ प्रज्ञप्त किया है—तो उन्हीं सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए श्रमण भगवान महावीर ने १८ वें ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ-प्ररूपित किया है ? (एवं खलु जंबू !) इस प्रकार जंबू स्वामी के पूछने पर सुधर्मास्वामी उनसे कहते हैं कि जंबू ! 'सुनो' तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—(तेणं कालेणं तेणं समणं रायगिहे णामं णयरे होत्था । वण्णओ० तत्थणं धण्णे णामं सत्थवाहे—भद्दा भारिया—तस्सणं धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए अत्तया पंच सत्थवाहदारका होत्था, तं जहा—

टीकार्थ—७ पू—स्वामी श्री सुधर्मा स्वामीने पूछे छे डे—

(जह्णं भन्ते ! समणेण जाव संपत्तेणं सत्तरसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते अट्ठारसमस्स णं भन्ते णायज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते—?)

हे भदन्त ! श्रमण भगवान महावीरे डे—७ ओ । सिद्धिगति नामक स्थानने भगवाणी चुक्या छे—सत्तरमा ज्ञाताध्ययननो आ पूर्वोक्त रूपे अर्थ निरूपित कियो छे तो ते १८ मा ज्ञाताध्ययननो शो अर्थ प्ररूपित कियो छे ?

(एवं खलु जंबू !) आ प्रभाषे ७ पू स्वामीसे प्रश्न पूछ्यो त्थारणाद श्री सुधर्मा स्वामी तेभने डडे छे डे डे डे ७ पू । सांभणो, तमार प्रश्ननो जवाप आ प्रभाषे छे—

(तेणं कालेणं तेणं समणं रायगिहे णामं णयरे होत्था । वण्णओ० तत्थणं धण्णे णामं सत्थवाहे—भद्दा भारिया—तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए

धनः १ धनपालः २ धनदेवः ३ धनगोपः ४ धनरक्षितः ५ इति । तस्या खलु धन्यस्य सार्थवाहस्य दुहिता भद्रायाः सार्थवाहा आत्मजा धनादीनां पञ्चानां पुत्राणाम् 'अणुमगजाइया' अनुमार्गजातिका=जाता एव जातिका, अनुमार्ग जातिका=अनुमार्गजातिका=पश्चाज्जाता सुंसुमा नाम दारिका आसीत् । कीदृशी सा ?—'सूमालपाणिपाया' सुकुमार पाणिपादा=कोमलकरचरणा । तस्य खलु धन्यस्य सार्थवाहस्य चिलातो नाम दासचेटः=दासपुत्र आसीत् । योहि 'अहिण-

घण्णे २- धणपाले-२ धणदेवे ३, धणगोवे-४ धणरक्खिए-५) उस काल और उस समयमें राजगृह नाम का नगर था । इसका वर्णन पहले जैसा ही जानना चाहिये । उस नगर में धन्य नामका सार्थवाह रहता था । इसकी पत्नी का नाम भद्रा था । इस भद्रा भार्या से उत्पन्न हुए धन्य सार्थवाह के ये पाँच पुत्र थे-धन-१ धनपाल-२ धनदेव-३ धन-गोप-४ और धनरक्षित-५ ।

(तस्सणं धणस्स सत्थवाहस्स धूया भद्दाए अत्तया पंचण्हं पुत्ताणं अणुमगजातीया सुंसुमा णामं दारिया, होत्था, सूमालपाणिपाया, तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स चिलाएणामं दासचेडे होत्था, अहं णं पंचेदिय सरिरे मंसोवचिए, बालकीलावणकुसले यावि होत्था) इस धन्य सार्थवाह के भद्रा भार्या की कुक्षि से उत्पन्न एक सुंसुमा नामकी पुत्री थी- जो धनादिक पाँच पुत्रों के पीछे उत्पन्न हुई थी । इसके कर, चरण बड़े कोमल थे । इस धन्य सार्थवाह का एक दासचेट-दास पुत्र-था-जिस

अत्तया पंच सत्थवाहदारगा होत्था, तं जहा-धण्णे १, धणपाले २, धणदेवे ३, धणगोवे-४, धणरक्खिए-५)

ते काले अने ते समये राजगृह नामे नगर હતું. તેનું વર્ણન પહેલાંની જેમ સમજી લેવું જોઈએ. તે નગરમાં ધન્ય નામે સાર્થવાહ રહેતો હતો. તેની પત્નીનું નામ ભદ્રા હતું. તે ભદ્રા ભાર્યાના ગર્ભથી જન્મ પામેલા પાંચ પુત્રો હતા, તેમના નામ આ પ્રમાણે છે-ધન-૧, ધનપાલ-૨, ધનદેવ-૩, ધનગોપ-૪, અને ધનરક્ષિત-૫.

(તસ્સ ણં ધણસ્સ સત્થવાહસ્સ ધૂયા ભદ્દાએ અત્તયા પંચણ્હં પુત્તાણં અણુ-મગજાતીયા સુસુમા ણામં દારિયા, હોત્થા, સૂમાલપાણિપાયા, તસ્સ ણં ધણસ્સ સત્થવાહસ્સ ચિલાએ ણામં દાસચેડે હોત્થા, અહં ણં પંચેદિય સરીરે મંસોવચિએ, બાલકીલાવણકુસલે યાવિ હોત્થા)

તે ધન્ય સાર્થવાહની ભદ્રા-ભાર્યાના ગર્ભથી જન્મ પામેલી સુસુમા નામે એક પુત્રી હતી. તે ધન વગેરે પોતાના ભાઈઓ બાદ ઉત્પન્ન થઈ હતી. તેના હાથ-પગ ખડું જ કોમળ હતા. તે ધન્યસાર્થવાહનો એક દાસીપુત્ર હતો તેનું

पचिदियसरीरे ' अहीनपञ्चेन्द्रियशरीरः=प्रतिपूर्णसर्वेन्द्रियशरीरः, ' मंसोवचिए ' मांसोपचितः=मांसैरुपचितः, पुष्टशरीर इत्यर्थः, पुनः ' बालक्रीलावणकुसले ' बालक्रीडनकुशलश्चापि आसीत् । ततः खलु स दासचेटः सुंसुमाया दारिकायाः ' बालगगाहे ' बालग्राहः यो हि बालक्रीडयितुं नियुक्तो भृत्यः स ' बालग्राहः ' इत्युच्यते जाताश्चाप्यभवत् । सहि चिलातः सुंसुमां दारिकां कट्यां गृह्णाति, गृहीत्वा, बहुभिर्दारिकैश्च दारिकाभिश्च बालकैश्च बालिकाभिश्च, डिम्भकैश्च डिम्भिकाभिश्च कुमारैश्च कुमारिकाभिश्च सार्द्धम्=दारकडिभकबालककुमाराणां अल्प, बहु, बहुतर कालकृतभेदो विज्ञेयः, अभिरममाणः २ = पुनः पुनः क्रीडन् विहरति । ततः खलु स चिलातो दासचेटः तेषां बहूनां ' दाराण जाव ' दारकाणां यावत्=दारकाणां दारिकाणां डिम्भकानां डिम्भिकानां कुमाराणां कुमारिकाणां

का नाम चिलात था । जो प्रमाणोपेत पांचों इन्द्रियों से परिपूर्ण शरीर वाला था । मांसोपचित था पुष्ट देहवाला था । यह बालकों को खिलाने में विशेष कुशल था । (तएणं से चिलाए दासचेडे सुंसुमाए दारियाए बालगगाहे जाए यावि होत्था सुंसुमदारियं कडीए गिण्हइ, गिण्हित्ता व्हर्हि, दारएहि य दारियाहि य विहरइ-तेसिं बहणं दारियाण य जाव अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ, एवं वदए आडोलियाओ तेंदुरुए पोत्तुल्लए, साडोल्लए, अप्पेगइयाणं आभरणमल्लालंकारं अवहरइ, अप्पेगइयाए आउस्सइ, एवं अवहरइ, निच्छेडेइ, निव्वच्छेइ तज्जेइ अप्पेगइए तालेइ) इसलिये वह दासचेट सुंसुमा दारिकाके खिलाने के लिये नियुक्त हो गया । अतः वह चिलान दास चेटक सुंसुमादारिका को गोदी में लेकर अनेक दारक दारिकाओं के साथ बालक बालिकाओं के साथ डिम्भक डिम्भिकों के साथ और कुमार कुमारिकों

नाम चिलात इतुं ते सप्रमाणु पाथे धन्द्रियेथी परिपूर्णु शरीरवाणे इतो ते मांसव तेमञ्च पुष्ट शरीरवाणे इतो ते पाणकाने रमाउवामां सविशेषचतुर इतो.

(तएणं से चिलाए दासचेडे सुंसुमाए दारियाए बालगगाहे जाए यावि होत्था सुंसुम दारियं कडीए गिण्हइ, गिण्हित्ता व्हर्हि, दारएहि य दारियाहि य विहरइ तेसिं बहणं दारियाण य जाव अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ, एवं वदए आडोलियाओ तेंदुरुए पोत्तुल्लए, साडोल्लए, अप्पेगइयाणं आभरणं मल्लालंकारं अवहरइ, अप्पेगइए, आउस्सइ, एवं अवहरइ, निच्छेडेइ, निव्वच्छेइ, तज्जेइ, अप्पेगइए तालेइ)
 तेथी ते दासचेर सुसमा दारिकाने रमाउवा माटे नियुक्त इवामां आव्थे आ प्रमाणे ते चिलात दास चेटक सुसमा दारिकाने पाणामां पेसा-
 रीने धञ्जा दारक दारिकाने साथे पाणक तेमञ्च पाणान्नेनी साथे डिम्भक

च मध्ये 'अप्येगइयाणं' अप्येकेषाम् 'खुल्लए' खुल्लकान्=कपर्दकविशेषान् 'कोडी' इति भाषा प्रसिद्धान् अपहरति=चोरयति। एवं 'वट्टए' वर्तकान्=जत्वादिमयगोलकान् 'आडोलियाओ' आडोलिका इति नाम्ना प्रसिद्धान् बाल क्रीडनवस्तुविशेषान् 'तेंदूसए' देशीशब्दोऽयम्-गेन्दुकान् 'पोत्तुल्लए' वस्त्रमयपुत्तल्लिकाः, 'साडोल्लए' उत्तरीयवस्त्राणि चोरयति। तथा अप्येकेषाम् आभरणमालयालङ्कारान् अपहरति। अनन्तरम् 'अप्पेगइए' अप्येककान् 'आउस्सइ' आक्रुश्यति=निष्ठुरवचनेन 'एवं' अवहसइ' अपहसति=अपशब्दमुच्चार्य हास्यं करोति, 'निच्छोडेइ' निच्छोटयति= 'यदि त्वं किमपि वदिष्यसि तदा त्वां वहिर्निष्काशयिष्यामीत्यादि शब्दैस्तान् भीषयति, तथा 'णिब्भच्छेइ' निर्भर्त्सयति=तेषां निर्भर्त्सनां करोति, एव 'तइजेइ' तर्जयति 'मया कृतं किमपिकार्यं यदि स्व मातापितृभ्यो यूयं वदिष्यथ

के साथ वार २ खेलने में लगा रहता। खेलते २ वह चिलात दास-चेटक उन अनेक दारक दारिका, डिम्भका, डिम्भिका, कुमार कुमारिकाओं में से कितनेक बच्चों के खेलने के साधन भूत कपर्दक विशेषों को कौडियों को चुरा लेता कितनेक के जतुके बने हुए चपेटों को, कितनेक के अडोलिक नाम से प्रसिद्ध खिलोनों को, कितनेक बच्चों की गेंदों को कितनेक बच्चों की वस्त्र के बनी हुई गुडियों को, तथा कितनेक बच्चों के उत्तरीयवस्त्रों-को फरियों को चुरालेता था। कितनेक बच्चों के आभरणों को मालाओं को और अलंकारों को भी चुरालिया करता था कितनेक बच्चों को गाली देता कितनेक बच्चों की वह निष्ठुर बचनों को उच्चारण कर हँसी मजाक करने लग जाता था। यदि तू कुछ कहेगातां मैं तुझे यहाँ से बाहिर निकाल दूंगा इत्यादि शब्दों से कितनेक बच्चों को वह डरा दिया करता था। कितनेक बच्चों को

अने डिलिकओ साथे अने कुमार कुमारिकाओनी साथे वारवार रमवामां न खांटी रहेतो। डतो। ते चिलात दासचेर रमतां रमतां धणुं दारक-दारिक, डिलिक-डिलिक, कुमार-कुमारिकाओमांथी डेटलाक भाणकेनां रमवानां साधन कपर्दक विशेषाने-कोडीओने शारी देतो, डेटलाकनां लाभना अनेला चपेटा-ओने, डेटलाकनां अडोलिक नामथी प्रसिद्ध ओवा रमकडांओने, डेटलाक भाणकेनी दडीओने, डेटलाक भाणकेनी वस्त्रथी अनेली हींगलीओने तेमन डेटलाक भाणकेना उत्तरीय वस्त्रोने शारी नते। डतो। ते डेटलाक भाणकेना आलखोने, भाणओने अने धरेणुंओने पणु शारी नते। डतो। ते डेटलाक भाणकेने गाणो हेतो अने डेटलाक भाणकेनी निष्ठुर वचनेओलीने डडा-भक्षरी करवा लागतो। डतो। "ने तुं कर्ध पणु ओलसे तो हुं तने अर्डीथी अडार कोडी

तदायुष्माकं प्राणान् अपहरिष्यामीत्येवंरूपैर्वावयैरङ्गुलिनिर्देशपूर्वकं तेषु भीतिमुत्पा-
दयति । तथा अप्येककान् बालकान् ' तालेइ ' ताडयति चपेटादिभिः । ततः खलु
ते बहवो दारकश्च यावत्-कुमारिकाश्च सर्वे बाला ' रोयमाणा य ' रुदन्तश्च ' कंद-
माणा य ' क्रन्दन्तश्च=उच्चैः स्वरेण चीत्कारं कुर्वन्तः ' साणं २ ' स्वेषाम् २
' अस्मापिञ्जण ' अस्वापितृभ्यः इदमर्थं निवेदयन्ति । ततः खलु तेषां बहूनां=दार-

वह निर्भर्त्सित कर देता " मेरा किया हुआ कुछ भी काम यदि तुम-
लोग अपने माना पिता से कहोगे-तो याद रखना मैं तुम्हारे प्राणों को
ले लूंगा-तुम्हें जान से मार डालूंगा " इस तरह कितनेक बालकों को
वह अंगुलि दिखा २ कर भयभीत कर दिया करता । कितनेक बालकों
को वह धप्पड़ आदि भी मार देता । (तएणं ते बहवे दारगा-
य जाव रोयमाणा य कंदमाणा य ४ सायं २ अस्मापिञ्जणं निवेदेति,
तएणं तेसिं बहूणं दारगाण य ६ जाव अस्मापितरो जेणेव धण्णे सत्थ-
वाहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं बहूहिं खिज्ज-
णाहिं य रुटणाहिं य उवलंभणाहिं य खिज्जमाणा य रुटमाणा य उवलं
भेमाणा य धण्णस्स एयमट्टं निवेदेति) इस तरह वे अनेक दारक यावत्
कुमारिकाएँ सब ही रो रो कर के आक्रंदन करके-उच्चस्वर से चीत्-
कार करके-अपने २ माना पिताओं से उस दासचेटक की इस वर्ताव

भूमीश वगेरे वयनेधी केटलांक भाणकेने ते भीवडावी देतो डतो. केटलांक
भाणकेनी ते लत्सना पणु करतो डतो-भारी केड पणु वात तमे तमारा
भातापिताने डडेशे तो याद राभजे हुं तमने उवता नडि छोडुं. तमने हुं
नतधी भारी नाभीश. " आ प्रभाणे केटलांक भाणकेनी सामे ते आंगणीओ
चीधी चीधीने भीवडावी देतो डतो. केटलांक भाणकेने ते तमाओ वगेरे पणु
लगावी देतो डतो.

(तएणं ते बहवे दारगा य ६ जाव रोयमाणा य कंदमाणा य ४ सायं २
अस्मापिञ्जणं निवेदेति, तएणं तेसिं बहूणं दारगाण य ६ जाव अस्मापितरो जेणेव
धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं बहूहिं खिज्ज-
णाहिं य रुटणाहिं य उवलंभणाहिं य खिज्जमाणा य रुटमाणा य उवलंभेमाणा य
धण्णस्स एयमट्टं निवेदेति)

आ प्रभाणे ते धणु दारक यावत् कुमारिकाओ रुतां रुतां, आकंठ
न रुतां रुता, भेटा सादे चीत्कार करीने पोतपोतानां भातापिताने ते दास-
चेटकी भराभ वर्तलुक विवे इरियादो करवा लायां. पोतानां भाणकेने

कादीनां अम्वापितरः यत्रैव धन्यः सार्थवाहस्तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य धन्यं सार्थवाहं बहुभिः 'खिज्जणाहि य' खेदनाभिश्च=खेदजनकवाग्भिः 'रुंटनाहि य' रोदनाभिः साश्रुदितवाग्भिः, 'उवलंभणाहि' उपालम्भनाभिः=किमेतदुचितम्? भवादृशाम्? इत्यादि वाग्भिश्च 'खेज्जमाणा' खेदयन्तः स्वखेदं प्रकाशयन्तः 'रुंत्माणा य' रूदन्त उवलंभमाणा य' उपालम्भयन्तश्च धन्याय सार्थवाहाय एतमर्थं=चिलातकृताऽपराधरूपमर्थं निवेदयन्ति ॥ सू०१ ॥

मूलम्-तएणं से धणणे सत्थवाहे चिलायं दासचेडं एय-
मट्टं भुज्जो भुज्जो णिवारेइं, णो चेव णं चिलाए दासचेडे
उवरमइ। तएणं से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूणं दारगाण
य ६ अप्पेगइयाणं खुल्लए अवहरइ जाव तालेइ। तएणं ते
बहवे दारगा य जाव रीयमाणा य जाव अम्मापिऊणं जाव
णिवेदेति। तएणं ते आसुरुत्ता जेणैव धणणे सत्थवाहे तेणैव

की शिकायत करने लगे। अपने २ बालकों के सुख से इस प्रकार की दासचेटक थी हरकत सुनकर उन दारक आदि को के माता पिता जहां धन्य सार्थवाह होता था वहां आते और आकर के धन्य सार्थवाह को अनेक खेदजनक वचनों द्वारा रोते २ उपालंभ=उलहना दिया करते-क्या आप जैसे व्यक्तियों को यह उचित-है-इस तरह से उससे कहा करते। इस तरह वे खेदजनक तथा अश्रु भरकर कही गई वाणियों द्वारा अपना खेदप्रकाशित करते हुए रोते हुए एवं उलहना देते हुए धन्यसार्थवाह के लिये चिलातकृत अपराध रूप अर्थ की निवेदना करते ॥सू०१॥

भुपेथी आ प्रभाणु दास चेटकनी भराभ वर्तणुक् विषेनी विगत सांलणीने ते दारक वगेरेनां मातापिता न्यां धन्यसार्थवाड डो। त्यां आवता अने आवीने धन्यसार्थवाडने धणुं कठोर वचनेथी रडतां रडतां ठपके आपतां रडेतां डतां। "शु तमारी नेवी व्यक्तितने आ वात शोले छे?" आ प्रभाणु ते कथ्यां करतां डतां आ प्रभाणु तेओ। जेदजनक तेमज अश्रुलीनी डालतमां कडेती वाणीओ वडे पोतानुं दुःख प्रकट करतां, रडतां तेमज ठपके आपतां धन्य सार्थवाडने चिलाते ने कंठ भराभ वर्तणुक् करी डोय ते भडल इरियाडो करतां रडेतां डतां। ॥ सूत्र १ ॥

उवागच्छइ, उवागच्छिता बहूहिं खेज्जणाहिं जाव एयमट्टं
 णिवेदेति । तएणं से धण्णे सत्थवाहे बहूणं दारगाणं ६
 अम्मापिरुणं अंतिए एयमट्टं सोच्चा आसुरुत्ते चिलायं दासचेडं
 उच्चावयाहिं आउसणाहिं आउसइ, उच्चंसइ, णिब्भच्छेइ
 निच्छोडेइ, तज्जेइ उच्चावयाहिं तालणाहिं तालेइ, साओ
 गिहाओ णिच्छुभइ । तएणं से चिलाए दासचेडे साओ
 गिहाओ निच्छूढे समाणे रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव
 पहेसु देवकुलेसु य सभासु य पवासु य जूयखलएसु य
 वेसाघरेसु य पाणघरेसु य सुहं सुहेणंपरिवड्ढइ ॥सू० २॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु धन्यः सार्थवाहः चिलातं दास-
 चेडम् ‘ एयमट्टं ’ एतमर्थम्=एतस्मादर्थान् दारकादीनां कपर्दकापहरणादिरूपाद-
 र्थान् भूयोभूयो निवारयति । नो चैव खलु दासचेड एतस्माद्दुष्कृत्यादुपरमते ।
 ततः खलु स चिलातो दासचेडः तेषां बहूनां ‘ दारगाण य ’ दारकाणां च=दार-

तएणं से धण्णे सत्थवाहे इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं से धण्णे सत्थवाहे) इसके बाद उस धन्यसार्थवाहने
 (चिलायं दासचेडं) चिलात दास पुत्र को (एयमट्टं भुज्जो २ णिवारेइ)
 घालकों के कपर्दक आदि चुराने रूप अर्थ से वार २ मना किया, परन्तु
 (णो चैव णं चिलाए दासचेडे उवरमइ) वह चिलात दारक उस काम
 से विरक्त नहीं हुआ । (तएणं से दासचेडे तेसिं बहूणं दारगाण य ६

तएणं से धण्णे सत्थवाहे इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं से धण्णे सत्थवाहे) त्थारणाद ते धन्य सार्थवाहे (चिलायं दास
 चेड) चिलात दासपुत्रने (एयमट्टं भुज्जो २ णिवारेइ) आणकेनी केडीओ
 वगेरेने चोरी ज्वा णदल वारंवार मनाथ करी, परंतु (णो चैव णं चिलाए
 दासचेडे उवरमइ) ते चिलात दारक पोतानी अर.प.वर्तल्लुके ओडीने सुधर्यो नडि.
 (तएणं से चिलाए दासचेडे तेसिं बहूणं दारगाण य ६ अप्पेगइयाणं

कादीनां मध्ये अप्येकेषां 'खुल्लए' खुल्लकान्=कपर्दकविशेषान् अपहरति
'जाव तालेइ' यावत्ताडयति=पूर्वोक्तक्रमेण एव कपर्दकाद्यपहरणं यावत्तर्जनं
ताडनं च करोति । ततः खलु बहवो दारकाश्च दारकादयो रुदन्तश्च यावत् स्वेपां
२ अम्बापितृभ्यो निवेदयन्ति । ततः खलु ते आशुरुताः=स्व पुत्रवचनं श्रुत्वा झटिति
क्रोधाविष्टमानसा यत्रैव धन्यः सार्थवाहः तत्रैव उपागच्छन्ति उपागत्य बहूभिः
'खेज्जणाहि जाव एयमट्टं' खेदनाभिर्यावत् एतमर्थम्=खेदसंभूचनाभिर्यावत्
उपालम्भनयुक्ताभिर्याग्भिः चिलातदासचेटक कृताऽपराधलक्षणम् अर्थम् निवेदयन्ति ।
ततः खलु धन्यः सार्थवाहो बहूनां 'दारगाणं' दारकाणां ६=दारकादीनाम्
अम्बापितृणामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य आशुरुतः चिलातः दासचेटम् 'उच्चा-
वचाभिः=अनेकविधाभिः 'आउमणाहि' आक्रोशनाभिः=क्रोपजनकैर्वचनैः
'आउसइ' आक्रुश्यति=आक्षिपति 'उद्धंसइ' उद्धर्षयति=नामगोत्रादिनाऽधः
पातयति-निन्दतीत्यर्थः । नेत्रमुखादि वक्रीकमणेन 'णिबभच्छेइ' निर्भर्त्सयति=

अप्येगइयाणं खुल्लए अवहरइ जाव तालेइ, तएणं ते बहवे दारगा य
जाव रोयमाणा य जाव अम्मापिऊणं जाव णिवेदेति) इस तरह सम-
झाने पर भी वह चिलात दासचेट उन अनेक दारकों आदि में से
कितनेक दारक आदिकों के कपर्दक (कौड़ी) विशेषों को चुराता रहा
यावत् उन्हें ताडित करता रहा-मारता पीटता रहा । और वे बालक
आदि भी रोते हुए अपने २ माता पिताओं से उस के अपराध को जा
२ कर कह देते रहे । (तएणं ते आशुरुत्ता जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, बहूहिं खेज्जणाहिं जाव एयमट्टं णिवेदेति,
तएणं से धण्णे सत्थवाहे बहूणं दारगाणं अम्मापिऊणं अतिए एयमट्टं
सोच्चा आशुरुत्ते चिलायदासचेडं उच्चावचाहिं आउमणाहिं आउसइ
उद्धंसइ णिबभच्छेइ,) इस प्रकार अपने २ बालकों के मुख से धार २

खुल्लए अवहरइ जाव तालेइ, तएणं ते बहवे दारगा य जाव रोयमाणा य जाव
अम्मापिऊणं जाव णिवेदेति)

आ प्रभाणु सभन्नववा छतांअे ते चिलात दासचेटक धण्णु दाउके वगे
रेभां डेटलाक दाउके वगेरेनी डेडीअेने यारतो न रह्यो यावत् ते णणकेने
ताडित कर्तो रह्यो, तेभन भारतो पीटतो रह्यो अने ते आणके वगेरे पण्णु
रउतां रउतां पोतपोतानां मातापिताने आनी इरियादो कर्तां न रहां.

(तएणं ते आशुरुत्ता जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
बहूहिं खेज्जणाहिं जाव एयमट्टं णिवेदेति, तएण से धण्णे सत्थवाहे बहूणं दार-
गाणं अम्मापिऊणं अतिए एयमट्टं सोच्चा आशुरुत्ते चिलाय दासचेडं उच्चावचाहिं
आउसणाहिं आउसइ उद्धंसइ, णिबभच्छेइ)

तिरस्करोति, ' निच्छोडेइ ' निश्छोटयति=त्यजति, ' तज्जेइ ' तर्जयति=
 ' निस्सर मम गृहात् नोवेत्त्वां ताडयिष्यामि ' इत्यादि वचनेन भर्त्सयति ' उच्चा-
 वयाहिं तालणाहिं ' उच्चावचाभिर्यष्टिमुष्ट्याद्यनेकविधाभिस्ताडनाभिः ' तालेइ '
 ताडयति ' साओ गिहाओ ' स्वस्माद् गृहात् ' णिच्छुभइ ' निक्षिपति=निः सार-
 यति । ततः खलु स चिलातो दासचेटः तेन सार्थवाहेन स्वस्माद् गृहात्
 ' णिच्छूढे ' निक्षिप्तः=निः सारितः सन् राजगृहे नगरे सिंघाडग जाव गहेसु
 श्रृङ्गाटक यावन्महापथपथेषु चतुष्पथादिषु सर्वत्र स्थलेषु, देवकुलेषु च समासु च

चिलात दासचेटक की पूर्वोक्त अपराधों को जब २ वे सुना करते तब
 वे गुस्से में भर २ कर जहाँ धन्यसार्थवाह होता वहाँ चले जाते
 रहे । और वहाँ जाकर बड़े खेद के साथ रोते हुए अपने २ दुःखों को
 प्रकट करते रहे इस तरह बार २ उन दारक आदि के माता पिताओं के
 मुख से इस दासचेटक के दुष्कृत्य को सुनकर वह धन्य सार्थवाह क्रोध
 में आकर उस दासचेटक चिलात को अनेक विधकोप जनक ऊँचे नीचे
 शब्दों से धिक्कार ने लगते थे उसका नाम गोत्र आदि की निंदा करने
 लग जाते थे । नेत्र, मुख, आदि को टेडा करके उसका तिरस्कार भी
 करते थे । (णिच्छोडेइ, तज्जेइ, उच्चावयाहिं तालणाहिं तालेइ, साओ
 गिहाओ णिच्छुभइ, तएणं से चिलाए दासचेडे साओ गिहाओ निच्छूढे
 समाणे रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव पहेसु देवकुलेसु जाव समासु

आ प्रभाणु पोतपोतानां णाणकेने भुण्थी वारंवार चिलात दासचेटकनी
 इरियादो न्यारे न्यारे तेओ सांभणतां त्यारे त्यारे तेओ गुस्से थधने न्यां
 धन्यसार्थवाड डता त्यां नता डता. अने त्यां नधने तेओ अहु न
 दुःखनी माथे रडतां रडतां पोतपोताना दुःखेने प्रकट करता रडेता डता. आ
 प्रभाणु वारवार ते दारक वगेरेना मातापिताना भुण्थी ते दासचेटकनी अराण
 वर्तल्लुक विधेनी विगन सांभणानि ते धन्यसार्थवाड क्रोधमां लराधने ते दास-
 चेटक चिलातने धणु क्रोध उत्पन्न करे तेवा अराण वयनेथी धिक्कारवा
 लागतो डतो तेमन तेनां नाम गोत्र वगेरेनी निंदा करवा लागतो डतो.
 आओ भुण वगेरे णगाडीने तेना तिरस्कार पणु करता रडेता डता.

(णिच्छोडेइ, तज्जेइ, उच्चावयाहिं तालणाहिं तालेइ, साओ गिहाओ
 णिच्छुभइ, तएणं से चिलाए दासचेडे साओ गिहाओ निच्छूढे समाणे रायगिहे
 णयरे सिंघाडग जाव पहेसु देवकुलेसु जाव समासु च पवासु च जूय खलपसु च
 वेसा धरेसु च पाणधरेसु च सुइं सुदेणं परिवहदइ)

प्रपासु=पानीयशालासु च 'जूय खलएसु' द्यूतखलकेषु=द्यूतक्रीडनस्थानेषु च 'वेसाघरेसु' वेश्यागृहेषु च पाणघरेसु 'पानगृहेषु=मद्यपानगृहेषु च सुखं सुखेन परिवड्डुइ' परिवर्द्धते=वृद्धिं प्राप्नोति ॥ सू० २ ॥

मूलम्—तएणं से चिलाए दासचेडे अणोहट्टिए अणिवारिए सच्छंदमई सइरप्पयारी सज्जप्पसंगी चोज्जप्पसंगी मंसपसंगी जुयप्पसंगी वेसापसंगी परदारप्पसंगी जाए यावि

य पवासु य जूयखलएसु य वेसाघरेसु य पाणघरेसु य सुहंसुहेणं परिवड्डुइ) और यहाँ तक हुआ कि कभी २ वह उसे छोड़ भी देता रहा और कभी २ तू मेरे घर में से निकल जा नहीं तो मैं तुझे मारूँगा इस तरह के वचनों से उस को तिरस्कार भी कर देते थे। परन्तु जब इस की शिक्षाओं का या भय प्रदर्शक वाक्यों का उस चिलात दासचेटक पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा तब अन्त में धन्य सार्थवाह ने हताश होकर उसे अनेक विध यष्टि सुष्टि आदिकी ताडनाओं से ताडित कर अपने घर से बाहिर निकाल दिया। इस तरह जब धन्य सार्थवाह ने इसे अपने घर से बाहिर निकाल दिया—तब यह राजगृह नगरमें श्रृंगाटक आदि मार्गोंमें अवारा (स्वच्छन्दगामी) फिरने लगा और देवकुलों में सभास्थानों में, पानीय शालाओं में—प्याऊ घरों में, जुआ खेलने के स्थानों में वेश्याओं के घरोंमें, और शराब पीने की जगहों में घूम फिर कर जिस किसी भी तरह से अपना पालन पोषण करने लगा ॥सू०२॥

अने छेवटे आ वात त्यां सुधी पडोंथी के केअ केअ वणते ते तेने णडार पणु काढी भूकतेो इतो. अने केअ केअ वणते तेने आ नतनां वथ-नाथी कपकेो पणु आपतेो रडेतेो इतो के तुं मारा घरमांथी नीकणी ण नडि-तर तने हुं मारी नाभीश. परंतु न्यारे आ नतनी शिक्षाओनी के भय प्रदर्शननी ते दास चेटक उपर कशी असर थई नडि त्यारे छेवटे धन्यसार्थ-वाडे इताश थछने तेने लाकडी, मुक्कीओ वगेरेथी ताडित करीने पोताना घेरथी णडार काढी भूकथेो. आ प्रमाणे न्यारे धन्य सार्थवाडे तेने पोताना घेरथी णडार काढी भूकथेो त्यारे ते राजगृह नगरनां श्रृंगाटक वगेरे रस्ताओमां रण्ठेएनी नेम लटकवा लाग्थेो अने देवकुणोमां, सलास्थानोमां, परओमां, णुगारना अड्ठाओमां, वेश्याओनां घरोमां अने शराभणानाओमां लटकीने नेम तेम करीने पोतानुं पालन-पोषणु करवा लाग्थेो. ॥ सूत्र २ ॥

होत्था । तएणं रायगिहस्स नयरस्स अदूरसामंते दाहिण-
 पुरत्थिमे दिस्सीभाए सीहगुहा नामं चोरपल्ली होत्था, विसम-
 गिरिकडगकोडंबसंनिविट्ठा, वंसी कलंकपागारपरिविखत्ता
 छिण्णसेलविसमप्पवायफलिहोवगूढा एगदुवारा अणेग-
 खंडी विदियजणणिग्गमपवेसा अविंभतरपाणिया सुदुल्ल-
 भजलपेरंता सुवट्टस्स वि कुवियवलस्स आयगस्स दुप्पहंसा
 यावि होत्था । तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए विजए णामं
 चोरसेणावई परिवसइ अहम्मिंए जाव अधम्मकेऊ समुट्टिए
 वट्टुणगरणिग्गयजसे सूरे द्ढप्पहारी साहसिए सद्दवेही । से
 णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचणहं चोरसयाणं आहेव-
 च्चं जाव विहरइ । तएणं से विजए तक्करे चोरसेणावई
 वट्टुणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयगाण य संधि-
 च्छेयगाण य खत्तखणगाण य रायावगारीण य अणधारगाण
 य बालवायगाण य विसंभवायगाण य जूयकाराण य
 खंडरक्खाण य अन्नेसिं च वट्टुणं छिन्नभिन्नवहिराययाणं
 कुडंगे यावि होत्था । तएणं से विजए तक्करे चोर-
 सेणावई रायगिहस्स दाहिणपुरत्थिमे जणवयं वट्टुहिं
 गामघाएहि य नगरघाएहि य गोग्गहणेहि य वंदिग्गहणेहि
 य खत्तखणोहि य पंथकुट्टोहि य उवीलेमाणे २ विद्धंसे-
 माणे २ णित्थाणं णिद्धणं करेमाणे विहरइ । तएणं से
 थिलाए दासचेडे रायगिहे वट्टुहिं अत्थाभि संकीहि य चोज्जामि

संकीहिय दाराभिसंकीहि य धणिएहि य जूइकरेहि य पर-
बभवमाणेर रायगिहाओ नगराओ णिग्गच्छइ, णिग्गच्छत्ता,
जेणेव सीहगुहा चोरपल्ली तेणेव उवागच्छइ उवागच्छत्ता
विजयं चोरसेणावइं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ॥ सू०३ ॥

टीका—‘ तएणं से इत्यादि । ततः खलु स चिलातो दासचेटः ‘ अणोह-
ट्टिए ’ अनपघट्टितः, यो हि दुष्कृतौ प्रवर्तमानं कमपि हस्तौ धृत्वा निवारयति,
सोऽपघट्टकः, निवार्यमाणस्तु अपघट्टितः, अयं हि निवारयितुरभावात् अनपघट्टितः=
निरङ्कुशः ‘ अणिवारिए ’ अनिवारितः, हितोपदेशकस्याभावात् अनिवारितः,

‘ तएणं से चिलाए दासचेडे’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से चिलाए दासचेडे) वह चिलात दासचे
टक (अणोहट्टिए अणिवारिए सच्छंदमई सहरप्पयारी मज्जप्पसंगी चोज्ज-
प्पसंगी मंसप्पसंगी, जूयप्पसंगी, वेसापसंगी, परदारप्पसंगी जाए यावि
होत्था) अनपघट्टित—निरङ्कुश बन गया—जो दुष्कर्म में प्रवर्तमान किसी
को भी हाथ पकडकर उससे निवारित कर देता है उसका नाम अपघट्टक
और जो दूर किया जाता है वह अपघट्टित कहलाता है । निवारण कर
नेवाले का अभाव होने से यह चिलात दासचेटक अनपघट्टित इसी
कारण से बन गया । हितोपदेशक कोई उसका रहा नहीं अतः यह
कुत्सित काम करने से पीछे नहीं हटता—इसलिये यह अनिवारित होकर
जो मन में आता उसे कर डालता—अतः उदण्ड बन गया । स्वच्छन्द

तएणं से चिलाए दासचेडे इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपणी (से चिलाए दासचेडे) ते चिलात दास चेटक
(अणोहट्टिए अणिवारिए सच्छंदमई, सहरप्पयारी मज्जप्पसंगी, चोज्जप्पसंगी मंस-
प्पसंगी, जूयप्पसंगी, वेसापसंगी, परदारप्पसंगी, जाए यावि होत्था)

अनपघट्टित—स्वच्छंद भनी गयो, दुष्कर्ममां पडेला गमे तेने ने हाथ
पकडीने तेमांथी तेने हर करे छे तेनुं नाम अपघट्टक :अने ने हर
करवामां आवे छे ते अपघट्टित कडेवाय छे. चिलात दासचेटकने जोटा कामोथी
हर लथ बनार—तेने निवारणु करनार कोर्ध हुतुं नडि अथी ते अनपट्टित
थर्ध गयो हुतो. तेने कोर्ध डितोपदेशक हुतो नडि तेथी ते कुत्सित काम कर-
वामां पणु पीछेकठ करतो न हुतो, अराय कामोथी तेने रोकनार नडि डोवाने
कारणु ते मनमां आवे तेम करतो हुतो अथी ते उदंड भनी गयो हुतो. ते

‘ सच्छन्दमई ’ स्वच्छन्दमतिः=स्वाभिप्रायवर्ती-उद्दण्डइत्यर्थः, अतएव ‘ सइरप्प-
 यारी ’ स्वैरप्रचारी = स्वच्छन्दविहारी ‘ मज्जप्पसंगी ’ मद्यप्रसङ्गी मद्यपायी,
 ‘ चोवज्जप्पसंगी ’ चौर्यप्रसङ्गी=चौर्यकर्मणि परायणः, ‘ मांसप्पसंगी ’ मांसप्रसङ्गी=
 मांसभक्षणशीलः, ‘ जूयप्पसंगी ’ द्यूतप्रसङ्गी-द्यूतक्रीडाप्रसक्तः, ‘ वेसापसंगी ’
 वेश्यालम्पटः, एवं ‘ परदारप्पसंगी ’ परदारप्रसङ्गी=परदाररतो जातश्चापि आसीत् ।
 ततः खलु राजगृहस्य नगरस्य अदूरसामन्ते दक्षिणपौरस्त्ये दिग्भागे अग्निकोणे
 सिंहगुहानाम चोरपल्ली आसीत्, या हि पल्ली ‘ विसमगिरिकडगकोडंबसन्नि-
 विद्धा ’ विषमगिरिकटककोडम्बसन्निविष्टा=विषमो निम्नोन्नतो यो गिरिकटकः=
 पर्वत मध्यभागः, तस्य यः कोडम्बः प्रान्तभागः, तत्र सन्निविष्टा=स्थिता आसीत् ।
 पुनः ‘ वंसीकलंकपागारपरिक्खत्ता ’ वंशीकलंकपाकारपरिक्षिप्ता=वंशीकलङ्का
 वंशजालमयी वृत्तिः, सैव प्राकारः, तेन परिक्षिप्ता=परिवेष्टिता=वंशनिर्मितजाल-
 मयप्राकारैः समन्तात्-परिवेष्टिता, ‘ छिण्णसेलविसमप्पघायफालिहोवगूढा ’=
 छिन्नशैलविषमप्रपातपरिखोपगूढा=छिन्नोऽवयवान्तरापेक्षया विभक्तो यः शैलः=
 पर्वतः, तन्सम्बन्धिनो ये विषमाः प्रपाता गर्ताः, त एव परिखाः तथा उपगूढा=
 आश्लिष्टा परिवेष्टिता-विभक्तशैलावयवनिर्गतविषमप्रपातरूपपरिखापरिवेष्टितेत्यर्थः
 ‘ एगदुवारा ’ एकद्वारा=एकं द्वारं=प्रवेशनिर्गमरूपं यस्याः सा=एकप्रवेशनिर्गमा,
 ‘ अणेगखंडी ’ अनेकखण्डा=अनेकानि खण्डानि=विभागा रक्षाहेतोर्यस्यां सा
 अनेकखण्डा, यत्र=स्वरक्षार्थं अनेकानि स्थानानि सन्ति, ‘ विदियजणणिग्गमपवेसा’

विहारी हो गया-मद्यप्रसंगी हो गया-मदिरा पीने लग गया । मांस
 खाने लग गया, चोरी करने लगा, जूआ खेलने लगा, वेश्यासेवन करने
 लगा, और परदार सेवन करने में भी लंपट हो गया । (तएणं राय-
 गिहस्स नयरस्स अदूरसामन्ते दाहिणपुरत्थिमे ‘दिसीभाए सीहगुहा
 नामं चोरपल्ली होत्था-विसमगिरिकडगकोडंबसन्निविद्धा वंसीकलंक
 पागारपरिक्खत्ता छिण्णसेलविसमप्पघायफालिहोवगूढा रग्गदुवारा,
 अणेगखंडी, विदियजणणिग्गमपवेसा अर्द्धिभतरपाणिया सुदुत्तलभजल

स्वच्छन्द विहारी थर्ध गथेो હતો, દારૂ પિનારો થર્ધ ગથેો હતો. તે માંસ
 ખાવાલાગ્યેો, ચોરી કરવા લાગ્યેો, ભુગાર રમવા લાગ્યેો, વેશ્યા-સેવન કરવા
 લાગ્યેો અને પરશ્રી સેવનમાં પણ લ પટ થર્ધ ગથેો હતો.

(तएणं रायगिहस्स नयरस्स अदूरसामन्ते दाहिणपुरत्थिमे दिसीभाए सीहगुहा नामं
 चोरपल्ली होत्था-विसमगिरिकडगकोडंबसन्निविद्धा वंसीकलंकपागारपरिक्खत्ता, छिण्णा
 सेल विसमप्पघायफालिहोवगूढा एगदुवारा, अणेगखंडी, विदियजणणिग्गमपवेसा

विदितजननिर्गमप्रवेशा=विदितजनानामेव=विश्वासव्रतामेव निर्गमप्रवेशौ यस्यां सा=
विश्वस्तजननिर्गमप्रवेशवती ' अर्बिभतरपाणिया ' अभ्यन्तरपानीया=मध्यस्थित-

पेरंता, सुबहस्स विकूवियवलस्स आगयस्स दुप्पहंसा, यावि होत्था तत्थ
सीहगुहाए चोरपल्लीए विजए णामं चोरसेणावई परिवसई, अहम्मिय
जाव अहम्मकेऊसमुट्टिए बहुणगरणिगयजसे, सूरे दढप्पहारी
साहसिए सहवेही-सेणं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचणं चोर
सयाणं आहिवच्चं जाव विहरइ) उसी राजगृह नगर के न अधिक दूर
पर और न अधिक पास में दक्षिण पौरस्त्य दिग्विभाग में-अग्निक्लोन
में-सिंहगुहा नाम की एक चोर पल्ली थी-यह चोरपल्ली विषम गिरि-
कंटक के प्रान्त भाग में-निम्नोन्नतपर्वत के मध्यभाग के अन्त भाग में
स्थित थी । इसके चारों ओर वासों की बाड़ थी-यह बाड़ ही इसका
प्राकार (किला) था-उससे यह घिरी हुई थी । अवयवान्तरों की अपेक्षा
से विभक्त जो पर्वत तत्संबन्धी जो विषम प्रपात खड़ा उन विषम
खड्डेरूप परिखा से यह परिवेष्टित थी । निकलने का और आने का इस
में एक ही द्वार था । इसमें रक्षा के निमित्त चोरोंने अनेक स्थान बना
रखे थे । परिचित-विश्वासवाले-व्यक्ति ही इसमें आ जा सकते थे ।

अर्बिभतरपाणिया, सुदुल्लभजलपेरंता, सुबहस्स वि कूवियवलस्स आगयस्स दुप्पहंसा,
यावि होत्था तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए विजए णामं चोरसेणावई परिवसई, अह-
म्मिय जाव अहम्मकेऊ समुट्टिए बहुणगरणिगयजसे, सूरे दढप्पहारी, साहसिए
सहवेही सेणं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचणं चोरसयाणं अहिवच्चं जाव विहरइ)

ते राजगृह नगरथी घणुं दूर पणुं नडि अने घणुी नल्लक पणुं नडि
अपी, दक्षिण पौरस्त्य दिग्विभागमां अग्निक्लोनमां-सिंहगुहा नामे अक
चोरपल्ली इती ते चोरपल्ली इथी नीथी गिरिभाणामेना प्रात लागमां
निम्नोन्नत पर्वतना मध्यभागमां आवेली इती तेनी चामे
वासोनी वाड इती. ते वाड न तेना डोट (डिक्को) इतो तेनाथी ते घरा-
अपी इती अवयवांतरानी अपेक्षाअे विलकत न्ने पर्वत अने तत्संबंधी न्ने
विषम प्रपात-भाडा-ते विषम भाडाइपी परिभाथी ते परिवेष्टित इती.
आववा अने न्ना माटे तेमां अक न्ने दरवाअे इतो. चोरोअे पोतानी रक्षा
माटे घणुं स्थानो अनावेतां इतां. परिचित विश्वासु भाणुसो न्ने तेमां आवज
करी शकता इता. पाणुी माटे तेनी पञ्चे अक न्नेणाशय इतुं, तेनी अडार

जलाशया 'सुदुर्लभजलपेरंता' सुदुर्लभजलयन्ता=सुदुर्लभं जलं पर्यन्ते=प्रान्त-
 भागे=वदिर्भागे यस्याः सा=जलरहितवदिर्भागा 'सुवहुस्स वि' सुवहोरपि
 कूवियवलस्स 'कूपिकवलस्य=चोरगवेपकसैन्यस्य 'आगयस्स' आगतस्य 'दुप्प-
 हंसा' दुप्पध्वंसा दुर्धर्पणीया चापि आसीत् । तत्र खलु सिंहगुहायां चोरपल्ल्यां
 विजयो नाम चोरसेनापतिः=चोरनायकः परिवसति यो हि 'अधम्मिण जाव'
 अधार्मिको यावत्=अधर्मेण चरति अधार्मिकः अधर्माचरणशीलः-अत्र यावत्पदेन-
 इतश्चरथ्य 'घायाए वहाए अच्छायणाए' इत्यन्तः पाठो ग्राह्यः, तथाहि-'अध-
 म्मिण्ठे' अधर्मिष्ठः=सर्वथा धर्मरहितः, 'अधम्मक्खाई' अधर्माख्यायी-अधर्मक-
 यकः, 'अधम्माणुगे' अधर्मानुगः=अधर्मानुगामी 'अधम्मपलोई' अधर्मप्रलोकी=
 अधर्मदर्शी 'अधम्मपलज्जणे' अधर्मप्ररञ्जनः=अधर्मानुरक्तः, 'अधम्मशीलसमु-
 दायारे' अधर्मशीलसमुदाचारः=अधर्म एव शीलं स्वभावः समुदाचारश्च यस्य सः,

पानी के लिये इसमें बीच में एक जलाशय था-इसके बाहिरी भाग में
 जल नहीं था। अनेक भी चोर गवेषक सेनाजन यहां आजावे तो भी
 वे इस पल्ली का नाश नहीं कर सकते थे। इस सिंहगुहा नामकी चोर
 पल्ली में विजय नाम का एक चोर सेनापति रहता था। यह अधार्मि
 क यावत् अधर्म केतुग्रह जैसा उदित हुआ था। यहां यावत् शब्द से
 "घायाए वहाए अच्छायणाए" यहां तक का पाठ ग्रहण किया गया
 है-इस का खुलागा भाव इस प्रकार है-अधार्मिक शब्द का अर्थ होता
 है अधर्माचरणशील-यह विजय नामका चोर अधर्माचरणशील था। अध-
 र्मिष्ठ था-सर्वथा धर्मसे रहित था, अधर्माख्यायी था-अधर्मका कथन कर-
 नेवाला था, अधर्मानुग था-अधर्म का अनुगामी था, अधर्मप्रलोकी था-
 अधर्म का ही देखने वाला था-अधर्मप्ररञ्जन था अधर्म में अनुरक्त था

पाणीं उदुं नडि धणु। योरेनी शोध करता है। नैतिके त्यां आवे छांते ते
 पल्लीने' नाश करी शकता न हुना. ते सिंहगुहा नामनी चोरपल्लीमां विजय
 नामे अक चोर सेनापति रहेतो हुतो. ते अधार्मिक यावत् अधर्म केतुग्रहनी
 जेम उदय पायेो हुने। अही यावत् शब्दथी "घायाए वहाए अच्छायणाए"
 अही सुधीने। पाठ ग्रहण करवामां आव्ये छे तेनुं स्पष्टीकरण आ प्रमाणे
 छे:-अधार्मिक शब्दने अधर्मा-चरणशील होय छे. ते विजय नामे चोर
 अधर्माचरणशील हुतो, अधर्मिष्ठ हुतो, साव धर्मरहित हुतो, अधर्माख्यायी
 हुते, अधर्मनी बात कहेनार हुते, अधर्मानुगामी हुते, अधर्मने अनुगामी
 अटले के अधर्मने अनुसरनार हुते, अधर्मप्रदोषी हुते, अधर्मने न लेनार
 हुते, अधर्मप्ररञ्जन हुते, अधर्ममां आसक्त हुते, अधर्मशील समुदाचारी

अधर्मशीलोऽधर्माचरणश्चेत्यर्थः, 'अधर्मेण चैव विर्त्ति कल्पे माणे विहरइ' अधर्मेणैव वृत्ति कल्पयन् विहरति=अधर्मेणैव सावधानुष्ठानेनैव, वृत्ति कल्पयन्=जीविका-सुपार्जनयन् 'विहरइ' विहरति=आस्ते । पुनः 'हणछिंदभिदवियत्तए' जहिछिन्धि भिन्धि विकर्त्तकः='हण' जहि=मारय यष्ट्यादिना 'छिंद' छिन्धि=छेदय-खड्गादिना, 'भिद' भिन्धि=भेदय भल्लादिना, इतिशब्दैः स्वानुयायिनः प्रेरयन् प्राणिनो विकृन्तति यः सः, जहि छिन्धिभिन्धि विकर्त्तकः, इति, 'लोहियपाणी' लोहितपाणिः=लोहितौ पाणी यस्य सः, रक्तरञ्जितकरयुगलः 'चंडे' चण्डः उत्कटरोपः 'रुदे' रौद्रः=भयानकः 'छुल्ले' छुद्रः=क्षुद्रकर्मचारी 'उक्कंचणवंचणमायानियडिकवडकूडसाइसंपयोगवहुले' उत्कञ्चनवञ्चनमायानिकृत्तिकपटकूटसाइसंपयोग-

अधर्मशील समुदाचारवाला था-अर्थात् इसका स्वभाव और आचरण दोनों अधर्ममय थे-अधर्म ही इस का स्वभाव था और अधर्म ही इस का आचरण था । अतः अपनी जीविका का निर्वाह सावध अनुष्ठानों (अधर्म) द्वारा ही किया करता था । यष्ट्यादि द्वारा इसे मारो, खड्गादि द्वारा इसे छेदो भल्लादि द्वारा इसे भेदो इस प्रकार के शब्दों से यह अपने अनुयायियों को सदा प्रेरित करता हुआ स्वयं जीवों का छेदन भेद न किया करता था । इसके दोनों हाथ रक्त से रंजित रहते थे । इस का क्रोध बहुत प्रचंड था देखने में यह बड़ा भयानक दिग्गता था । क्षुद्र कर्मकारी था । "उक्कंचणवंचणमायानियडिकवडकूडसाइसंपयोग वहुले" उत्कंचन, वंचन, माया, निकृति, कपट, कूट, साइ, इनका व्यव-

होता-अटके के तेना स्वभाव अने आचरण अने अधर्ममय हुतां. अधर्म अ तेना स्वभाव हुतो अने अधर्म अ तेनुं आचरण हुतुं. अथी ते पोतानुं अवन सावध अनुष्ठानो वडे अटके के अधर्मनुं आचरण करीने पुर करतो हुतो. लाकडी वगेरथी अने भारो, तरवार वगेरथी अने कापी नापो, लालाओ वगेरथी अने लेही नापो आ जतना शब्दोथी ते पोताना अनुययीओने हवेशां हुकम करतो रडेतो हुतो. ते पोते पण अवेनुं छेदन-लेदन करतो रडेतो हुतो. तेना अने डाथो दोहीथी भरडाओला रडेता हुता. तेना क्रोध अत्यंत प्रचंड हुतो. हेभावमां ते भूम अ लयानक लागतो हुतो, ते क्षुद्र कर्म करनार हुतो.

(उक्कंचणवंचणमायानियडिकवडकूडसाइसंपयोगवहुले) उत्कंचन, वंचन, माया, निकृति, कपट, कूट, साइ आ अधानो वडेवार तेना अवनमां

राजद्रोहिणां ' अणधारगाणय ' ऋणधारकाणाम् बालघातकानां ' वीसंभवायगाणय ' विश्रम्भघातकानां=विश्वासघातिनां द्यूतकारकाणां ' खंडकखाणय ' खण्डरक्षाणां=राजविरोधेन भूमिखण्डधारिणाम् एवम् अन्येषां च बहूनां ' छिन्नभिन्नवहिराहयाणं ' छिन्नभिन्नवहिराहतानाम्-छिन्ना=छिन्नहस्तादिकाः, भिन्नाः=भिन्नकर्णनासिकादिकाः, वहिराहता=राजापराधेन देशनिष्काशिताः, एतेषां द्वन्द्वः, तेषां च ' कुटुम्बे ' कुटङ्कः=कुटङ्कः इव कुटङ्कः - वंगवनं रक्षार्थमाश्रयणीयत्वसाम्यात्

' निवृणगाणय वीसंभवायगाणय जूयकाराणय खंडरक्खाणय अ-
 बालघातकाणां (अणधारगाणय वहिराययाणं कुटुम्बे याविहोत्या) वह विजय
 न्नेसि बहूणं छिन्नभिन्नवहिराययाणं चोरो का अनेक परस्त्री लंपटों का ग्रन्थि
 तस्कर चोर सेनापति अनेकपृष्ठपातक, फोडकर धनका अपह-
 भेद को का, संधिच्छेदकों का-मकान का फोडकर धनका अपह-
 रण करनेवालों का, क्षात्रखनकों का संधि रहित भीत को फोडकर
 चोरी करनेवालों का, राजा का अपकार करने वालों का-राजद्रोहियों
 का, ऋण करने वालों का बाल हत्या करने वालों का विश्वासघात करने
 वालों का जुआ खेलनेवालों का, राजा की आज्ञा लिये विना ही कुछ
 जमीन को अपने अधिकार में करनेवालों का, तथा और भी अनेक
 छिन्न, भिन्न वहिराहत व्यक्तियों का यह कुटंक जैसा था। जिन के हाथ
 आदि काटदिये गये हैं ऐसे प्राणी, छिन्न शब्द से जिनकी नाक आदि
 काट दी गई है ऐसे प्राणी भिन्न शब्द से एवं राजापराध के कारण जो
 देश से बाहिर निकाल दिये गये हैं ऐसे मनुष्य यहाँ वहि आहत शब्द

धारगाणय बालघातकाणय वीसंभवायगाणय जूयकाराणय खंडरक्खाणय अ-
 न्नेसि बहूणं छिन्नभिन्नवहिराययाणं कुटुम्बे यावि होत्या)

ते विजय तस्कर चोर सेनापति धन चोर, धन परस्त्री लंपटो,
 अधिभेदको, संधिच्छेदको-भाडेइ पाडीने धननुं अपहरण करनाराओ, क्षात्र-
 भनडो-संधिभाग वगरनी सीतमां भाडेइ पाडीने चोरी करनाराओ, राजना
 अपघाटो-राजद्रोहीओ, ऋण करनाराओ (देवादारो) भाणइत्या करनाराओ,
 भाणइत्या करनाराओ, विश्वासघात करनाराओ, जुगार रमनाराओ, राजनी
 आज्ञा लीया वगरन चोरी जमीनने पोताना अधिधरमां लेनाराओ तेमज
 जीनत पनु धन्य छिन्न, विन्न अडिराहत बोडेना माटे ते कुटंक लेवेो डनेो.
 लेगना दाध पग वगेरे हापी नाभवामां आव्या छे जेवां प्राणीओ, छिन्न
 शब्द वटे लेमनां नाक वगेरे हायवामां आव्यां छे जेवां प्राणीओ, विन्न शब्द
 वटे अने राजापराध अहत ले देशमांथी अडार डाढी भूधवामां आव्या छे
 जेवां भाण्यो अदी " अद्रिः आडन " शब्द वटे संधिघात करवामां आव्या

चापि अभूत् । ततः खलु स विजयस्तस्करः चोरसेनापतिः राजगृहस्य ' दाहिण
पुरत्थिमं ' दक्षिणपौरस्त्यं अग्निकोणस्थितं जनपदं बहुभिः ' गामघाएहिं ' ग्राम-
घातैः=ग्रामविनाशैश्च, नगरघातैश्च, ' गोग्गहणेहिय ' गो ग्रहणैः=गवां लुण्ठनैः,
वंदिग्गहणेहिय ' वन्दिग्रहणैः=लुण्ठने ये जना गृहीतास्ते वन्दिनउच्यन्ते, तेषां
ग्रहणैः=स्वकारायां स्थापनैः, ' खत्तखणणेहिय ' क्षाप्रखननैश्च एवं विधैषुकृत्यैः

से प्रतिबोधित किये गये हैं । रक्षणार्थ आश्रयणीय होने की सम्मानता
से इसे कुटंक-वंशवन-जैसा कहा गया है । (तएणं से विजए तक्करे
चोरसेणावई रायगिहस्स दाहिणपुरत्थिमं जणवयं बहूहिं गामघाएहिं य
नगरघाएहिं य गोग्गहणेहि य वंदिग्गहणेहि य खत्तखणणेहिय, पंथकु-
हणेहि य उवीले माणे २ विद्धंसणे माणे २ णित्थाणं, णिद्धण करेमाणे
विहरइ, तएणं से चिलाए दासचेडे रायगिहे बहूहिं अत्थाभिसंकीहि य
चोज्जाभिसंकीहि य दाराभिसंकीहि य घणिएहि य जूयकरेहि य पर-
वभवमाणे २ रायगिहाओ नगराओ णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव
सीहगुहा चोरपल्ली तेणेव उवागच्छइ, उवाच्छित्ता विजयं चोरसेणावइं
उवसंपज्जित्ताणं विहरइ) चोरों का सेनापति वह विजय तस्कर राज-
गृह नगर के अग्निकोण में स्थित जनपदों को, अनेक ग्रामों के विनाश
से नगरों के घात से, गावों के लूटने से, लूटते समय पकड़े गये मनुष्य
को अपने कारागार में बंद करने से, क्षत्रखनन से-मकानों में खातदेने

छे, रक्षणु भाटे आश्रयणीय होवाना साम्यथी तेने कुटंक-वांसनावन'नी जेम
भताववाभां आये छे.

(तएणं से विजए तक्करे चोरसेणावई रायगिहस्स दाहिणपुरत्थिमं जणवयं
बहूहिं गामघाएहि य नगरघाएहि य गोग्गहणेहि य वंदिग्गहणेहि य खत्तखणणेहि य
पंथकुहणेहि य उवीलेमाणे २ विद्धंसणे माणे २ णित्थाणं, णिद्धणं करेमाणे विहरइ,
तएणं से चिलाए दास चेडे रायगिहे बहूहिं अत्थामिसंकीहि य चोज्जाभिसंकी-
हि य घणियेहि य जूयकरेहि य परवभवमाणे २ रायगिहाओ नगराओ णिग्गच्छइ,
णिग्गच्छित्ता जेणेव सीहगुहा चोरपल्ली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विजयं
चोरसेणावइं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ)

शोरानो सेनापति ते विजय तस्कर राजगृह नगरना अग्निकोणुना
जनपदोने, धणुं आमोने विनाश करीने नगरानो घात करीने गाथोने लूटीने
लूटी वणते पकडी पाडेक्ष माणुसोने पोताना कारागारमां पूरी छने, क्षत्र
भतन करीने, भकानोमां भातर पाडीने अने भुसाक्षराने मारीने निरंतर

‘पथकुट्टणेदिय’ पान्यकुट्टनैः=पथिकजनमारणैश्च ‘उवीलेमाणे २’ उत्पीडयन्
 २=सन्वतमुत्पीडनं कुर्वन्, ‘विध्वंसेमाणे २’ विध्वंसयन् २=सर्वदा विध्वंसं
 कुर्वन्, ‘णित्थाणं’ तिः स्थानं=गृहरहितं, ‘णिद्धणं’ निर्धनम्=धनरहितं कुर्वन्
 विहरति । ततः खलु स चिलातो दासचेटः राजगृहे बहुभिः ‘अत्थाभिसंकीहिय’
 अर्थाभिगच्छिभिः=अयं चिलातो मदीयमर्थं गृहीतवान्, ग्रहीष्यति वा इत्यभिगच्छन्-
 गीलैः ‘चोञ्जाभिमंकीहिय’ चौर्याभिगच्छिभिः=अयं मम गृहे चौर्यं कृतवान्
 करिष्यति वेत्यभिगच्छन् गीलैश्च ‘दाराभिसंकीहि’ दाराभिगच्छिभिः=‘अयं मम
 दारान् दूषितवान् दूषयिष्यति वेत्यभिगच्छन् गीलैः तथा धनिकैश्च घूतकरैश्च परा-
 भूयमाणः २= पुनः पुनः परामवं प्राप्यमाणो राजगृहात् नगराद् बहिः निर्गच्छति,
 निर्गत्य, यत्रैव सिंहगुहा चोरपल्ली तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य विजयं चोरसेना-
 पतिम् उपसंपद्य=प्राप्य विहरति ॥ सू० ३ ॥

से, एवं पथिकजनों के मा/ने से, निरन्तर पीडित करता विध्वंस करता
 करता और गृह विहिन करता रहता था । इस के पश्चात् वह दासचेटक
 चिलात राजगृह नगर में अनेक अर्थाभिगच्छ-इस चिलात ने हमलोगों
 के द्रव्य को हरण किया है तथा इसी तरह से यह आगे भी करेगा-
 प्रकार की शंका करने वाले, चौर्याभिगच्छी इसने हमलोगों के घर में
 घुमकर पहिले चोरी की है-तथा इसी तरह यह आगे भी करेगा-इस
 प्रकार की आशंका करने वाले, दाराभिगच्छी-इसने पहिले हमारी स्त्रियों
 के साथ बलात्कार किया है-इसी तरह से यह आगे भी करेगा इस
 तरह की अपनी स्त्रियों के साथ बलात्कार करने की आशंकावाले पुरुषों
 के द्वारा तथा धनिक व्यक्तियों के द्वारा, जुआ खेलने वाले ज्वारियों
 के द्वारा पुनः पुनः पराभूत होना हुआ राजगृह नगर से बाहर निकला

पीडित करने, विध्वंस करने और गृहविहीन बनायी भूझता डते। त्पारपछी
 ते दासचेटक चिलाते राजगृह नगरमां घण्टा अर्थाभिगच्छ-आ चिलाते आभारा
 द्रव्यनुं हन्युं कथुं छे तेमज आ प्रमाणे लविष्यमां पणु डरणु करथे, आ
 लतनी शंका करनागओ वडे, चौर्याभिगच्छी-ओणु आभारा धरोमां पेसीने
 पहिला चोरी करी एनी तेमज लविष्यमां पणु ते चोरी करथे ज-आ लतनी
 चोरीनी आशंका करनागओ वडे, दाराभिगच्छी-ओणु पहिलां आभारी श्रीओ
 उपर बलात्कार कथे छे, आ प्रमाणे लविष्यमां पणु ते ओकस आणुं कर-
 थे ज, आ दीने चेतानी श्रीओ उपर बलात्कारनी आशंकावाणा पुदयो वडे
 तेमज धनिकाने वडे, जुगार रमतारा जुगारीओ वडे, वारंवार पराभूत थते।

मूलम्—तएणं से चिलाए दासचेडे विजयस्स चोरसेणा-
वइस्स अग्गे असिलढुग्गाहे जाए यावि होत्था, जाहे वि य णं
से विजए चोरसेणावई गामघायं वा जाव पंथकोट्टिं वा काउं
वच्चइ ताहे वि य णं से चिलाए दासचेडे सुबहुंपि हु कुवियवलं
हयविमहिय जाव पडिसेहेइ । पुणरवि लद्धटे कयकज्जे अणह
समग्गे सीहगुहं चोरपल्लि हव्वमागच्छइ । तएणं से विजए
चोरसेणावई चिलायं तक्करं बहुईओ चोरविजाओ य चोरमंते
य चोरमायाओ चोरनिगडीओ य सिक्खावेइ । तएणं से
विजए चोरसेणावई अन्नया कयाइं कालधम्मुणा संजुत्ते यावि
होत्था । तएणं ताइं पंचचोरसयाइं विजयस्स चोरसेणावइस्स
महया२ इट्ठीसक्कारसमुदएणं णीहरणं करेति, करित्ता बहुईं
लोइयाइं मयकिच्चाइं करेति, करित्ता जाव विगयसोया जाया
यावि होत्था । तएणं ताइं पंच चोरसयाइं अन्नमन्नं सदावेति,
सदावित्ता एवं वयासी—एवं खलु अम्मं देवाणुप्पिया ! विजए
चोरसेणावई कालधम्मुणा संजुत्ते, अयं च णं चिलाए तक्करे
विजएणं चोरसेणावइणा बहुईओ चोरविजाओ य जाव सिक्खा-
विए, तं सेयं खलु अम्मं देवाणुप्पिया ! चिलायं तक्करं सीह-
गुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचित्तए त्तिकहु
अन्नमन्नस्स एयमइं पडिसुणेति, पडिसुणित्ता चिलायं तीए
सीहगुहाए चोरसेणावइत्ताए अभिसिञ्चंति । तएणं से चिलाए

और निकल कर जहां वह सिंहगुहा नाम की चोरपल्ली थी वहां आया
वहां आकर वह चोर सेनपति के घाद रहने लगा ॥ सूत्र-३ ॥

शङ्खगुड नगरथी भडार नीकल्ये। अने नीकणीने न्यां ते सिंहगुडा नामे चोरपल्ली
हुती त्यां आये, त्यां आवीने चोर सेनापतिनी साथे रडेवा लाग्ये। ॥सू०३॥

चोरसेणावई जाए अहम्मिए जाव विहरइ । तएणं से चिलाए
चोरसेणावई चोराणय जाव कुडंगे यावि होत्था । से णं तत्थ
सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचणहं चोरसयाण य एवं जहा विजअरे
तहेव सव्वं जाव रायगिहस्स दाहिणपुरत्थिमिल्लं जणवयं
जाव नित्थाणं निज्जणं करेसाणे विहरइ ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘ तएणं ’ इत्यादि । ततः खलु स चिलातो दासचेटो विजयस्य
चोरसेनापतेरभ्यः=प्रधानः ‘ असिच्छुग्गाहे ’ असियष्टिग्राहः=असिः=रुवालः,
यष्टि=वंशदण्डः, तां गृह्णातीति, असियष्टिग्राहः=असियष्ट्यादिप्रचालनचतुरो
जातश्चापि अभूत् । ‘ जाहे वि यणं ’ यदाऽपि च खलु स विजयश्चोर सेनापतिः

तएणं से चिलाए दासचेडे इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) हमके बाद (से चिलाए दासचेडे) वह दासचेटक
चिलात (विजयस्स चोरसेणावइस्स) चोर सेनापति उस विजय तस्कर
का (अगो यावि हो०) सब से प्रधान असि, यष्टि, ग्रह-तलवार
और लाठी के चलाने में चतुर-बन गया । (जाहे वि य णं से विजए
चोरसेणावईगामयायं वा जाव पंथकोट्टिं वा काउं वच्चइ, ताहे वि य णं
से चिलाए दासचेडे सुवहुं पि हु कूवियवलं हयविमहिय जाव पडिसेहेइ,
पुणरवि लद्धे कयकज्जे अणहसमग्गे सीहगुहं चोरपल्लि हव्वमाग-
च्छइ) जब वह चोर सेनापति विजय, ग्रामों का घात करने के लिये,

(तएणं से चिलाए दासचेडे इत्यादि—

टीकार्थ—(तएण) त्थारपल्ली (से चिलाए दासचेडे) ते दास चेटक चिलात
(विजयस्स चोरसेणावइस्स) चोर सेनापति ते विजय तस्करने। (अगो....
यावि हो०) भीषी प्रधान आसि, यष्टि (लाठी) आह, तलवार अने लाठी
यथावथाभां यतुर भनी गयो।

(जाहे वि य णं से विजए चोरसेणावई गामयायं वा जाव पंथकोट्टिं वा
काउं वच्चइ, ताहे वि य णं से चिलाए दासचेडे सुवहुं पि हु कूवियवलं हयविम-
हिय जाव पडिसेहेइ, पुणरवि लद्धे कयकज्जे अणहसमग्गे सीहगुहं चोरपल्लि
हव्वमागच्छइ)

त्यादे ते धार सेनापति विजय अःसेना घात भाटे यावत् पधिकाने
हुंत्वा भाटे नीक्षणे। इतो त्यादे ते दास चेटक चिलात थोदने पक्षवा भाटे

ग्रामघातं वा यावत् 'पंथकोरि' पान्थकुट्टिम्=पथिकजनलुण्टनं वा 'काउं' कर्तुं 'वच्चइ' व्रजति=गच्छति 'ताहेवि य' तदाऽपि च खलु स चिलातो दासचेटः सुबहु अपि 'हुं' इति वाक्यालङ्कारे कूत्रियबलं 'कूपिकबलं=चोरगवेषकसैन्यं 'हयविमहिय जाव' हतविमथित यावत्-सर्वथा विध्वस्त कृत्वा 'पडिसेहेइ' प्रतिषेधयति=निवारयति । पुनरपि 'लद्धदूठे' लब्धार्थः=लब्धः प्राप्तः, अर्थः=स्वाभिलषितं येन सः=प्राप्तस्वाभिलषितः, अत एव 'कयकज्जे' कृतकार्यः=कृतं कार्यं येन सः, कृतनिजकृत्यः 'अणहसमग्गे' अनघसमग्रः=अनघम्=अक्षतम्-अन्तराले केनाप्यनपहतं समग्रं=समस्तं चौर्याद्यपहतवस्तुजातं यस्य सः=अलुण्टित सर्वस्वः सिंहगुहां चोरपल्लि 'हव्वं' शीघ्रमागच्छति । ततः खलु स विजयश्चोर-सेनापतिः चिलातं तस्करं बह्वीः चोरविद्याश्च चोरमन्त्रांश्च चोरमायाश्चोरनिकृतीश्च मायायाः प्रच्छादनार्थं या माया सा 'निकृतिः' उच्यते ताः 'सिक्खावेइ'

यावत् पथिक जनो को लूटने के लिये चलता था-तब वह दास चेटक चिलात भी चोर गवेषक सैन्य को हत, विमथित यावत् सर्वथा विध्वस्त करके पीछे भगा देता था-और स्वाभिलषित अर्थ को प्राप्तकर अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर लिया करता था । इस तरह वह चोरी में मिले हुए द्रव्य को सुरक्षित रखता हुआ-बीच में किसी के भी द्वारा द्रव्य की छीना झपटी से रहित होता हुआ उस सिंहगुहा नाम के चोरपल्ली में बहुत जल्दी लौट आता था ! (तएणं से विजए चोर सेनावई चिलायं तस्करं बहूईओ चोरविज्जाओ य चोरमंते :य चोर मायाओ चोर निगडीओ य सिक्खावेइ) उस चोर सेनापति विजय तस्कर ने चिलात चोर के अनेक चोर विद्याओ को, अनेक चोरमंत्रों को अनेक विध चोर सम्बन्धी मायाचारी को और मायो को छिपाने के

आवेला सैन्यने हत, विमथित यावत् संपूर्ण रीते विध्वस्त करीने लगाडी भूकतो हतो अने पोताना धञ्छित अर्थने प्राप्त करीने पोताना कार्यमां सङ्गता भेजवतो हतो. आ प्रमाणे ते चोरीमां भेजवेला द्रव्यने सुरक्षित राखतो वच्चे कोर पणु भीण वडे द्रव्यनी लूट-पाट न थाय-तेम पोतानी नतने सुरक्षित राखतो ते शीघ्र सिंहगुहा नामे चोरपल्लीमां पाछे आवतो रडेतो हतो.

(तएणं से विजए चोरसेनावई चिलाय तस्करं बहूईओ चोरविज्जाओ य चोरमंते य चोरमायाओ चोरनिगडीओ य सिक्खावेइ)

ते चोर सेनापति विजय तस्करे चिलात चोरने धणुी चोर विद्याओने, धणुा चोरमंत्रोने, धणुी चोर सम्बंधी मायाचारीओने अने मायाने छुपाववा भाटे भीणु मायाचारीओ शीणवाडी.

विजयति । ततः खलु स विजयो चोरसेनापतिः अन्यदा कदाचित् 'कालधर्मगुणा'
 कालधर्मगुण=मृत्युना संयुक्तश्चापि अभवत् मृतइत्यर्थः । ततः खलु तानि पञ्चचोर-
 शतानि=रञ्जितपञ्चकाश्वीराः, विजयस्य चोरसेनापतेः मत्ता २ इडिसकार-
 समुदणं' ऋद्धिमत्कारसमुदयेन 'णीहरणं' निर्हरणं=अज्ञानभूमिनयनं 'करेति'
 कुर्वन्ति, कुन्वा वृद्धि लौकिकानि मृतकृत्यानि कुर्वन्ति, कृत्वा यावत् विगत-
 शोका जाग्राथापि अभवन् । ततः खलु तानि पञ्चचोरशतानि अन्योऽन्यं शब्द-
 यति शब्दयित्वा एवमवादिषुः-सर्वे मित्रित्वा परस्परमेवं विचारितवन्तइत्यर्थः एवं

लिये दूसरी और माया चारी को सिखला दिया । (तएणं से विजए
 चोरसेणावई अन्नया कयाइं कालधर्मगुणा संजुत्ते यावि होत्था, तएणं
 ताइं पंचचोरसयाइं विजयस्स चोरसेणावइस्स महया २ इड्ठी सकार
 समुदणं णीहरणं करेति करित्ता वृद्धं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेति,
 करित्ता जाव विगयमोया जाया यावि होत्था । तएणं ताइं पंच चोर
 सयाइं अन्नमन्नं सदावेति, सदावित्ता एवं वयासी) इस से बाद वह
 चोर सेनापति विजय किमी एक दिन कालधर्मगत हो गया । तब उन
 पांच सौ चोरों ने चोर सेनापति विजय तस्कर की वड़े ठाट वाट के
 साथ अर्थी-अज्ञान यात्रा निकाली बादमें उन्होंने ने भूल्यसंबन्धी जितने
 भी लौकिक कृत्य होते हैं वे सब किये । लौकिक कृत्य करके सबके साथ
 धीरे २ शोक रहित जब वन चूके-तब उन पांच सौ चोरों ने परस्पर में
 एक दूसरे को डुलाया-और बुलाकर उन से इस प्रकार कथा-विचार

(तएणं से विजए चोरसेणावई अन्नया कयाइं कालधर्मगुणा संजुत्ते
 यावि होत्था, तएणं ताइं पंच चोरसयाइं विजयस्स चोरसेणावइस्स महया
 २ इड्ठी सकारसमुदणं णीहरणं करेति करित्ता वृद्धं लोइयाइं मयकिच्चाइं
 करेति, करित्ता जाव विगयमोया जाया यावि होत्था । तएणं ताइं पंच चोर
 सयाइं अन्नमन्नं सदावेति, सदावित्ता एवं वयासी)

त्याचरणी ने चोर सेनापति विजय को एक दिने मृत्यु प्राप्ते। त्यारे
 ने पचमेस से चोरे चोर सेनापति विजय तस्करनी बादे हाथी अज्ञानयात्रा
 करी त्याचरणी नेमजे तेना मृत्यु संबन्धी लौकिक कृत्ये करी। लौकिक कृत्ये
 पूरे तब जब धीरे धीरे त्यारे तथा शोक रहित थया त्यारे ते पाचसेस
 से से से परस्पर मेंभी तने ओहाया अने ओड स्थाने ओडत्र थडने तेमजे
 का प्रसंग विचार करी है—

खलु अस्माकं हे देवानुप्रियाः ! विजयश्चोरसेनापतिः कालधर्मेण संयुक्तः=मृत इत्यर्थः । अयं च खलु चिलातः तस्करो विजयेन चोरसेनापतिना ' बहूर्द्धो चोर-विज्जाओ जाव ' वहूव्यः चोरविद्या यावत्-चोरविद्यादि चोरनिकृतिपर्यन्तासु सकलचोरशिक्षासु ' सिक्खिए ' शिक्षितः=पारङ्गमितः, ' तं ' तस्मात् कारणात् ' सेयं ' श्रेयः खलु अस्माकं हे देवानुप्रियाः ! चिलातं तस्करं सिंहगुहायाश्चोर-पल्लयाश्चोरसेनापतितयाऽभिपिञ्चितुम्, अर्थात् अयं चिलातः तस्करोऽस्माभिः चोर सेनापतिपदे नियोज्यः, ' त्तिक्कट्टु ' इति कृत्वा=इति मनसि विधाय ' अन्नमन्नस्स ' अन्योऽन्यस्य ' एयमट्टं ' एतमर्थम्=चिलातस्य चोरसेनापतिपदे नियोजनरूपमर्थम्

किया-(एवं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! विजए चोरसेणावई कालधम्मुणा संजुत्ते, अयं च णं चिलाए तक्करे विजएणं चोरसेणावइणा बहूर्द्धो चोरविज्जाओ य जाव सिक्खाविए, तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! चिलायं तस्करं सीहगुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचित्तए त्तिक्कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता चिलायं तीसे सीहगुहाए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचति) देवानुप्रियो । देखो-हमारे नायक चोर सेनापति विजय तो अब मर चुके हैं । उन्होंने इस चिलात चोर को अनेक चोर विद्याएँ आदि सब कुछ सिखलाही दिया है । अतः हमलोगों को अब यही उचित है कि हमलोग चिलात चोर को सिंह गुहा नामकी इस चोर पल्ली का चोर सेनापति के रूप में नियुक्त करलें अर्थात् चोरसेनापति के पद पर इस चिलात चोर को नियुक्त करलें इस प्रकार विचार करके उन्होंने एक दूसरे के विचार रूप अर्थ को

(एवं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! विजए चोरसेणावई कालधम्मुणा संजुत्ते, अयं च णं चिलाए तक्करे विजएणं चोरसेणावइणा बहूर्द्धो चोरविज्जाओ य जाव सिक्खाविए, तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! चिलायं तस्करं सीहगुहाए चोरपल्लीए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचित्तए त्तिक्कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्टं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता, चिलायं तीसे सीहगुहाए चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचति)

हे देवानुप्रियो ! तुम्हो, अमारा नायक चोर सेनापति विजय तो डबे मरगु पाग्या छे. तेमण्णे आ चिलात चोरने धणी चोर विद्याओ वगेरे अधुं शीअन्थुं न छे. अट्ठका माटे डबे अभने ओ न योग्य लागे छे के अभे दोक्के चिलात चोरने आ सिंहगुडा नामनी चोरपल्लीना चोर सेनापति अनावी लधओ. अट्ठके के चोर सेनापतिना स्थाने आ चिलात चोरनी नीम-लुंके करी लधओ. आ प्रमाणे विचार करीने तेमण्णे ओके भीजना विचार इय

‘ पडिमुणेति ’ प्रतिश्रुण्वन्ति=स्त्रीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य, चिलातं तस्करं चोरसेना-
पतितया अर्थात् चोरसेनापतिपदे अभिविश्चति । ततः खलु स चिलातः चोरसेना-
पतिर्जातः, कीदृशः ? इत्याह—‘ अहम्मिए जाव ’ अधार्मिको यावत्—विजयचोर-
सेनापतिवदधार्मिको यावदधर्मकेतुर्भवन् विहरति । ततः खलु स चिलातः चोर-
सेनापतिः ‘ चोराण य जाव ’ चोराणां च यावत्=चोरपारदारिकादीनां च
‘ कुडंगे ’ कुडङ्गः आश्रयस्थानं चाऽपि आसीत् । स खलु तत्र सिंहगुहायां चोर-
पत्न्यां पञ्चानां चोरशतानां च एवं यथा विजयरतथैव सर्वं यावत्=विजयवत् पञ्च-
शतानां चोराणामुपरि आधिपत्यं कुर्वन्, राजगृहस्य दक्षिणपौरस्तम्=अग्निकोणस्थं

स्वीकार कर लिया । और स्वीकार करके उस चिलात चोर को अन्त में
उस सिंहगुहा नामकी चोर पत्नी का उन्हीं ने चोर सेनापति के रूप में
अभिषेक कर दिया । (तएणं से चिलाए चोरसेणावई जाए अहम्मिए
जाव विहरइ तएणं से चोर से० चोराण य जाव कुडंगे यावि होत्था,
से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपत्नीए पंचणं चोरसयाणं य एवं जहा
विजओ तहेव सव्वं जाव रायगिहस्स दाहिणपुरत्थिमिल्लं जणवयं
जाव णित्थाण निद्वणं करेमाणे विहरइ) इस तरह वह चिलात चोर
सेनापति बन गया । चोरसेनापति बनकर वह विजय चोर सेनापति
की तरह अधार्मिक यावत् अधर्मकेतु जैसा हो गया । अतः वह चिलात
चोर सेनापति चोरों का यावत् पारदारिक आदिकों का कुडंग की तरह
वामों के दन के समान—आश्रयस्थान बन गया और उस सिंहगुहा
नामकी पत्नी में पांचसौ चोरों का आधिपत्य करता हुआ विजय तस्कर

अर्थने स्वीकारी दीधो अने स्वीकारीने छेवटे ते चिलात चोरने ते सिङ्गुडा
नामनी ओऽपत्नीने तेमते चोर सेनापतिना रूपमां अलिगेक करी दीधो ।

(तएणं से चिलाए चोरसेणावई जाए अहम्मिए जाव विहरइ तएणं से
चोर से० चोराण य जाव कुडंगे यावि होत्था, सेणं तत्थ सीहगुहाए चोरपत्नीए
पंचणं चोरसयाणं य एवं जहा विजओ तहेव सव्वं जाव रायगिहस्स दाहिण-
पुरत्थिमिल्लं जणवयं जाव णित्थाणं निद्वणं करेमाणे विहरइ)

आ प्रमाणे ते चिलात चोर चोर सेनापति थछ गये। चोर सेनापति
जानीने ते विजय चोर सेनापतिनी लेम अधार्मिक यावत् अधर्मकेतु लेवे
थछ गये। तेही ने चिलात चोर सेनापति चोरसेना यावत् पारदारिक चोरसेना
कुडंगनी लेम—गजोता बननी लेम—आश्रयस्थान बनी गये। अने ते सिङ्गुडा

जनपदं ' नित्याणं निद्रणं ' निस्थानं निर्धनं गृहरहितं धनरहितं च कुर्वन्
विहरति ॥ सू०४ ॥

मूलम्—तएणं से चिलाए चोरसेणावई अन्नया कयाइं विउलं
असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावेत्ता पंचचोरसए आमंतेइ ।
तथो पच्छा णहाए कयवलिकम्मभोयणमंडवंसि तेहिं पंचहिं
चोरसएहिं सद्धिं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च
जाव पसणं च आसाएमाणे४ विहरइ, जिमिय भुत्तुत्तरागए
ते पंच चोरसए विउलेणं धूवपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ,
सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवा-
णुप्पिया ! रायगिहे णयरे धणणे णामं सत्थवाहे अड्ढे०, तस्स
णं धूया, भद्दाए अत्तया पंचणं पुत्ताणं अणुमग्गजाइया सुंसुमा
णामं दारिया यावि होत्था, अहीण जाव सुरूवा, तं गच्छामो
णं देवाणुप्पिया ! धणणस्स सत्थवाहस्स गिहं विलुंयामो, तुब्भं
विउले धणकणग जाव सिलप्पवाले ममं सुंसुमा दारिया । तएणं ते
पंच चोरसया चिलायस्स चोरसेणावइस्स एयमट्ठं पडिसुणेति ।
तएणं से चिलाए चोरसेणावई तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं
अल्लचम्मं दुरूहइ, दुरूहित्ता पुट्वावरणहकालसमयंसि पंचहिं
चोरसएहिं सद्धिं सण्णद्ध जाव गहियाउहपहरणे साइयगोमु-
हिएहिं फलएहिं णिकट्टाहिं अस्सिलट्टीहिं अंसगएहिं तोणेहिं

की तरह राजगृह नगर के बाहिर के अग्निकोणस्थ जनपदों को गृह
रहित और धन रहित करने लग गया । सूत्र ४ ॥

नामनी चारपट्टीमां पांचसे चोराने अधिपति धधने विजय तस्करनी जेस
राजगृह नगरनी गडारना अग्निकोण तरफना जनपदोने गृहरहित अने धन-
रहित ओटवे के अरणाह करवा लाग्या । सूत्र ४ ॥

‘ पडिसुणोति ’ प्रतिश्रुण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य, चिलातं तस्करं चोरसेना-
पतितया अर्थात् चोरसेनापतिपदे अभिपिञ्चति । ततः खलु स चिलातः चोरसेना-
पतिर्जातः, कीदृशः ? इत्याह—‘ अहम्मिए जाव ’ अधार्मिको यावत्—विजयचोर-
सेनापतिवदधार्मिको यावदधर्मकेतुर्भवन् विहरति । ततः खलु स चिलातः चोर-
सेनापतिः ‘ चोराण य जाव ’ चोराणां च यावत्=चोरपारदारिकादीनां च
‘ कुडंगे ’ कुडङ्गः आश्रयस्थानं चाऽपि आसीत् । स खलु तत्र सिंहगुहायां चोर-
पल्ल्यां पञ्चानां चोरशतानां च एवं यथा विजयस्तथैव सर्वं यावत्=विजयवत् पञ्च-
शतानां चोराणामुपरि आधिपत्यं कुर्वन्, राजगृहस्य दक्षिणपौरस्तम्भ=अग्निकोणस्थं

स्वीकार कर लिया । और स्वीकार करके उस चिलात चोर को अन्त में
उस सिंहगुहा नामकी चोर पल्ली का उन्होंने ने चोर सेनापति के रूप में
अभिषेक कर दिया । (तएणं से चिलाए चोरसेणावई जाए अहम्मिए
जाव विहरइ तएणं से चोर से० चोराण य जाव कुडंगे यावि होत्था,
से णं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए पंचण्हं चोरसयाणं य एवं जहा
विजओ तहेव सव्वं जाव रायगिहरस्स दाहिणपुरत्थिमिल्लं जणवयं
जाव णित्थाणं निद्वणं करेमाणे विहरइ) इस तरह वह चिलात चोर
सेनापति बन गया । चोरसेनापति बनकर वह विजय चोर सेनापति
की तरह अधार्मिक यावत् अधर्मकेतु जैसा हो गया । अतः वह चिलात
चोर सेनापति चोरों का यावत् पारदारिक आदिकों का कुडंग की तरह
वासों के बन के समान-आश्रयस्थान बन गया और उस सिंहगुहा
नामकी पल्ली में पांचसौ चोरों का आधिपत्य करता हुआ विजय तस्कर

अर्धने स्वीकारी दीधो अने स्वीकारीने छेवटे ते चिलात चोरने ते सिङ्गुडा
नामनी चोरपट्टीने तेमणे चोर सेनापतिना इपमां अभिषेक करी दीधो ।

(तएणं से चिलाए चोरसेणावई जाए अहम्मिए जाव विहरइ तएणं से
चोर से० चोराण य जाव कुडंगे यावि होत्था, सेणं तत्थ सीहगुहाए चोरपल्लीए
पंचण्हं चोरसयाणं य एवं जहा विजओ तहेव सव्वं जाव रायगिहरस्स दाहिण-
पुरत्थिमिल्लं जणवयं जाव णित्थाणं निद्वणं करेमाणे विहरइ)

आ प्रमाणे ते चिलात चोर चोर सेनापति थछ गये। चोर सेनापति
बनीने ते विजय चोर सेनापतिनी नेम अधार्मिक यावत् अधर्मकेतु नेवे
थछ गये। तेथी ते चिलात चोर सेनापति चोरसेना यावत् पारदारिक वगेरेने
कुडंगनी नेम-वासोना बननी नेम-आश्रयस्थान बनी गये। अने ते सिङ्गुडा

जनपदं 'निस्थाणं निद्रणं' निस्थानं निर्धनं गृहरहितं धनरहितं च कुर्वन्
विहरति ॥ सू०४ ॥

मूलम्—तएणं से चिलाए चोरसेणावई अन्नया कयाइं विउलं
असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावेत्ता पंचचोरसए आसंतेइ ।
तओ पच्छा णहाए कयवलिकस्सेभोयणमंडवंसि तेहिं पंचहिं
चोरसएहिं सद्धिं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च
जाव पसणं च आसाएमाणे४ विहरइ, जिमिय भुत्तुत्तरागए
ते पंच चोरसए विउलेणं धूवपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ,
सस्माणेइ, सक्कारित्ता सस्माणित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवा-
णुप्पिया ! रायगिहे णयरे धणणे णामं सत्थवाहे अड्ढे०, तस्स
णं धूया, भद्दाए अत्तया पंचणहं पुत्ताणंअणुमग्गजाइया सुंसुमा
णामं दारिया यावि होत्था, अहीण जाव सुख्खा, तं गच्छामो
णं देवाणुप्पिया ! धणणस्स सत्थवाहस्स गिहं विलुंयामो, तुब्भं
विउले धणकणम जाव सिलप्पवालेसमं सुंसुमा दारिया । तएणं ते
पंच चोरसया चिलायस्स चोरसेणावइस्स एयमद्वं पडिसुणेंति ।
तएणं से चिलाए चोरसेणावई तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं
अल्लचम्मं दुरूहइ, दुरूहित्ता पुट्वावरणहकालसमयंसि पंचहिं
चोरसएहिं सद्धिं सण्णच्च जाव गहियाउहपहरणे साइयगोमु-
हिएहिं फलएहिं णिकट्टाहिं अत्तिलट्टीहिं अंसगएहिं तोणेहिं

की तरह राजगृह नगर के बाहिर के अश्रिकोणस्थ जनपदों को गृह
रहित और धन रहित करने लग गया । सूत्र ४ ॥

नामनी चोरपद्वीमां पांचसे चोरानो अधिपति धधने विजय तस्करनी जेम
राजगृह नगरनी णडारना अश्रिकोणु तस्करना जनपदोने गृहरहित अने धन-
रहित ओट्टे के अरणाठ करवा दाग्या. ॥ सूत्र ४ ॥

सजीवेहिं धणूहिं समुक्खित्तेहिं सरेहिं समुल्लालिच्चाहिं दीहाहिं
ओमारियाहिं उरुवंटयाहिं छिप्पतूरेहिं वज्जमाणेहिं महया महया
उक्किट्टसीहणाय चोरकलकलरवं समुद्धरवभूयं करेमाणे सीहगु-
हाओ चोरपल्लीओ पडिणिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव राय-
गिहे नयरं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहस्स नयरस्स
अदूरसामंते एगं महं गहणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता, दिवसं
ग्वेमाणे चिट्ठइ ॥ सू० ५ ॥

टीका— 'तणं से' इत्यादि । ततः खलु म चिलातश्चोरसेनापतिः अन्यदा
कदाचित् विपुलम् अन्नपानखादिमस्वादिमम् 'उवक्खवेत्ता' उपस्कार्य=निष्पाद्य
पञ्च चोरानानि आमन्त्रयति । ततः पश्चात् स्नातः 'कयवल्लि कम्मे' कृतवलि-
कर्म=कृतं बलिकर्म येन सः, काकादीनां कृतेदत्त भोजनोपहारो भोजनमण्डपे तैः
पश्चिमिः चोरान्तः सार्धं 'विडलं' विपुलम्=अत्यर्थम्, अन्नं पानं खाद्यस्वाद्यं सुरां
च यावत् प्रयत्नां च 'आसाएमाणे' आस्वादयन् विहरति । पुनश्च 'जिमिय

'तणं से चिलाए चोरसेणावई' इत्यादि ।

टीकार्थ— (तणं) इमके बाद (चोर सेणावई चिलाए) चोर सेना-
पति चिलात चोर ने (अन्नया कयाइ) किसी एक समय (विडलं असण-
पाणखाइमसाइमं उवक्खवावेत्ता पंचचोरसए आमंतेइ - तओ पच्छा
पहाए कयवल्लिकम्मे, भोजनमंडपंवि तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं विडलं
असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च जाव पसणं च आसाए माणे ४
विहरइ. जिमियभुत्तुत्तगगए ते पंच चोरसए विडलेणं धूवपुप्फगंधम-

तणं से चिलाए चोरसेणावई इत्यादि—

टीकार्थ— (तणं) त्पारपथी (चोरसेणावई चिलाए) ये २ सेनापति
चिलात चोरे (अन्नया कयाइ) दोधं दोधं वणते (विडल असणपाणखाइमसाइमं
उवक्खवावेत्ता पंच चोरसए आमंतेइ-तओ पच्छा पहाए कयवल्लिकम्मे, भोजन-
मंडपंवि तेहिं पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं विडलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं
च जाव पसणं च आसाए माणे ४ विहरइ, जिमिय भुत्तुत्तगगए ते पंच चोरसए विड
लेणं धूवपुप्फगंधमन्ल्लंकारेणं सफारेइ, सम्माणेइ, सफारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी)

भुत्तुत्तरागए ' जिमितभुत्तोत्तरागतः=जिमितः=कृतभोजनः भुत्तोत्तरकालमागतः
यावत् परमशुचिभूतः सुखासनवरगतः सन् तानि पञ्च चोरशतानि विपुलेन=अत्य-
र्थेन ' धूपपुष्पगंधमल्लालंकारेण '=धूप पुष्पगन्धमाल्यालंकारेण=धूपः=सुगन्धित
द्रव्येण उत्पन्नो धूमः, पुष्पं=कुसुमम्, गन्धः=चन्दनादि माल्यम्-माला, अलङ्का-
राणि=आभरणानि, एतेषां च समाहारद्वन्द्वः, तेन सत्करोति, सम्मानयति,
सत्कृत्य सम्मान्य एवम्-अवदत्-एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! राजगृहे नगरे धन्यो

ल्लालंकारेण सत्कारेण, सम्मानेण, सत्कारित्वा सम्मानित्वा एवं वयासी) विपुल मात्रा में, अशन पान, खादिम एवं स्वादिमरूप चारों प्रकार का आहार बनवा कर उन पांचसौ चोरो को आमंत्रित किया। जब वे सब आचुके-तब उस चिलात चोर ने स्नान से निवट कर और बाघसादि को अन्नादिका भाग देनेरूपवलिकर्म आदि कर भोजन मंडपमें बैठकर उन पांच सौ चोरों के साथ उस विपुलमात्रा में निष्पन्न हुए अशन, पान, खादिम, एवं स्वादिमरूप चारों प्रकार के आहार को तथा सुरा, यावत् प्रसन्न मदिरा को खूब मनमाने रूप में पिया खाया जब वे सब के सब अच्छी तरह भोजन कर उत्तर काल में परमशुचिभूत होकर आनंद के साथ एक स्थान पर आकर बैठचुके तब उस चिलात चोर सेनापति ने उनका धूप से-सुगंधित द्रव्य से निष्पन्न हुए धूप से, पुष्पों से, चंदन आदि से, मालाओं से, और आभरणों से सत्कार किया सन्मान किया। सत्कार सन्मान करके फिर उनसे उसने इस प्रकार

पुष्पण प्रमाणुमां अशन, पान, खादिम अने स्वादिम त्थारे जतने आहार बनावडावीने ते पांचसो चोराने आमंत्रित कर्था. न्यारे तेज्जो अधा आवी गया त्थारे ते चिलात चारे स्नान कर्तुं अने त्थारपछी तेज्जो डागडा वगेरे पक्षीज्जोने अन्न वगेरेने लाग अर्पाने अलिकर्म वगेरे कर्तुं. त्थारणाह तेज्जो लोअन मंडपमां भेसीने ते पांचसो चोरानी साथे ते पुष्पण प्रमाणुमां बनावडावेला, अशन, पान, खादिम अने स्वादिम इय त्थारे प्रकारना आहारने तेभज सुरा यावत् प्रसन्न मदिराने पूण धराध धराधने आधा-पीधां. न्यारे तेज्जो अधा सारी रीते जभीने परमशुचीभूत थधने आनंदपूर्वक अेक स्थान उपर आवीने अेकठा थथा-भेसी गया, त्थारे ते चिलात चार सेनापतिजे तेभने धूपथी, पुष्पोथी, चंदन वगेरेथी, भाणाज्जोथी अने आलर-ल्लोथी सत्कार कर्था अने सन्मान कर्तुं. सत्कार तेभज सन्मान करीने तेज्जो तेभने आ प्रमाणे कलु हे—

નામ સાર્થવાહ આઠ્યોઽસ્તિ । તમ્ય ચલુ દુહિતા ભદ્રાયા આત્મજા પશ્ચાનાં પુત્રા-
નામનુસાર્ગજાતિઃ=પશ્ચાનાં પુત્રાણાં જનનાન્તરં સમુત્પન્ના સુસુમા નામ દારિકા
ચાપિ અસ્તિ, કીદ્વતી સા ? ' અહીણ જાવ સુરુવા ' અહીન યાવત્ સુરુપા=અહીન
પશ્ચેન્દ્રિયગીરા ચાવત્ સુરુપવતી, ' તં ' તત્=તસ્માદ્ ગચ્છામઃ ચલુ હે દેવાનુ-
પ્રિયાઃ ! ધન્યસ્ય સાર્થવાહસ્ય ગૃહં વિલુમ્પામઃ=લુઠામઃ, યુષ્માકં ધનકનક

કહા-(એવં ચલુ દેવાણુપ્રિયા ! રાયગિહે ણયરે ધણે ણામં સત્થવાહે
અહ્લે ૦ તસ્મ ણં ધૂયા મદાણ અત્તયા પંચણં પુત્તાણં અણુમગગાહ્યા
સુંસના ણામં દારિયા યાવિ હોત્થા, અહીણ જાવ સુરુવા તં ગચ્છામોણં
દેવાણુપ્રિયા ! ધણસસ સત્થવાહસસ ગિહં વિલુંયામો તુઠ્ઠમં વિડલે
ધણકણમ જાવ સિલપ્પવાલે, મમં સુંસુમા દારિયા ! તણં તે પંચ
ચોરસયા ચિલાયસસ ચોરસેણવઈસસ ઇયમદ્દં પહિસુણેતિ । તણં સે-
ચિલાણ ચોરસેણાવઈ તેહિં પંચહિં ચોરસહિં સદ્ધિં અલ્લચમ્મં દુરુહહ,
દુરુહિત્તા પુઠ્ઠાવરણ્ઠકાલસમયંસિ પંચહિં ચોરસણ્ણિં સદ્ધિં) હે દેવાનુ-
પ્રિયો ! સુનો-એક વાત કહના હૈ-વહ ઇસ પ્રવાર હૈ-રાજગૃહ નગર મેં
ધન્ય નામ કા એક ધનિક એવં સર્વજન માન્ય સાર્થવાહ રહતા હૈ । ઇસ
કી એક લઢકી હૈ । જિસકા નામ સુંસમા હૈ । યહ ઉસકી પત્ની મદ્રા
માર્ગા સે પાંચ પુત્રોં કે વાદ ઉત્પન્ન હુઈ હૈ । યહ અહીન પાંચોં ઇન્દ્રિયોં સે
યુક્ત શરીરવાલી હૈ તથા વહુન અધિક સુકુમાર એવં સુન્દર હૈ । ઇસલિયે
-ચલો હે દેવાનુપ્રિયોં ! હમ સવ ચલેં ઓર ધન્ય સાર્થવાહ કે ઘર કો

(એવં ચલુ દેવાણુપ્રિયા ! રાયગિહે ણયરે ધણે ણામં સત્થવાહે અહ્લે ૦
તસ્મ ણં ધૂયા મદાણ અત્તયા પંચણં પુત્તાણં અણુમગગાહ્યા સુંસમા ણામ દારિયા
યાવિ હોત્થા અહીણ જાવ સુરુવા તં ગચ્છામો ણ દેવાણુપ્રિયા ! ધણસસ સત્થ-
વાહમ્મ ગિહં વિલુંયામો, તુઠ્ઠમં વિડલે ધણકણમ જાવ સિલપ્પવાલે, મમં સુસમા
દારિયા ! તણં તે પંચ ચોરસયા ચિલાયસસ ચોરસેણાવઈસસ ઇયમદ્દં પહિ
સુણેતિ । તણં સે ચિલાણ ચોરસેણ વઈ તેહિં પંચહિં ચોરસણ્ણિં સદ્ધિં અલ્લચમ્મં
દુરુહહ દુરુહિત્તા પુઠ્ઠાવરણ્ઠકાલસમયંસિ પંચહિં ચોરસણ્ણિં સદ્ધિં)

હે દેવાનુપ્રિયો ! નાંબણો, તમને મારે એક વાત કહેવી છે તે આ
પ્રમાણે છે કે રાજગૃહ નગરમાં ધન્ય નામે એક ધનિક અને સર્વજનમાન્ય
સાર્થવાહ રહે છે તેને એક પુત્રી છે, તેનું નામ સુંસમા છે. ધન્યની પત્ની
મદ્રાસાર્થવાહ ગર્ભથી તે પુત્રી પાંચે લાઇઓ ણાદ જન્મ પામી છે. તે અહીન
પાંચે ઇન્દ્રિયથી યુક્ત શરીરવાળી છે તેમજ યુગ જ સુકુમાર અને સુન્દર છે.

यावत् शिलाप्रवालः, मम सुंसुमा दारिका-लुण्ठितेषु वस्तुषु मध्ये धनकनकमणि-
मौक्तिकशिलाप्रवालादि वस्तुजातानि युष्माकं भवन्तु, मम तु एका सुंसुमा दारिका
भविष्यति । ततः खलु तानि पञ्च चोरशतानि चिलातस्य चोरसेनापतेः एतमर्थं
प्रतिश्रुण्वन्ति=स्वीकुर्वन्ति । ततः खलु स चिलातश्चोरसेनापतिः तैः पञ्चभिः
चोरशतैः सार्द्धं ' अल्लचर्मम् ' आर्द्रचर्मं दूरोहति, लुण्ठकाहि लुण्ठनप्रस्थानात्
पूर्वं माङ्गल्यार्थं सार्द्रचर्मण्यारोहन्तीति तेषां व्यवहारः, दूरुह्य, ' पुत्रावरणकालसम-
यंसि ' पूर्वापराङ्गकालसमये '=दिनस्य चतुर्थप्रहरे पञ्चमिश्चोरशतैः सार्द्धं
' सण्णद्ध जाव गहियाउहपहरणे ' सन्नद्ध यावत् गृहीतायुधप्रहरणः=सन्नद्धवद्ध-
वर्मितकवचः=संनद्धः=सज्जीकृतः, वद्धः=कशावन्धनेन संबद्धः, वर्मितः=अङ्गे परि-
हितः कवचो येन स तथोक्तः, ' गृहीतायुधप्रहरणः ' गृहीतानि आयुधप्रहरणानि

लूटें-जो वस्तु हम तुम लूटेंगे उनमें से तुम्हारी तो धन, कनक, मणि,
मौक्तिक शिलाप्रवाल आदि चीजें होगी-और मेरी केवल एवं वह सुंस-
मादारिका होगी-। इस तरह उन पांचसौ चोरों ने अपने सेनापति
चिलात चोर की इस बात को मान लिया । इसके बाद यह चोर सेना-
पति चिलात, उन पांचसौ चोरों के साथ गीले चमड़े पर बैठ गया ।
लुटेरे लूटने के लिये जब प्रस्थान करते हैं तब वे पहिले गीले चमड़े पर
शुभ शकुन मानने के निमित्त बैठते हैं ऐसा उनमें व्यवहार है बैठकर
फिर वह दिन के चतुर्थप्रहर में पांचसौ चोरों के साथ (सीहगुहाओ
चोरपल्लीओ पडिनिकखमइ) उस सिंहगुहा नाम की चोरपल्ली से
निकला । (सण्णद्ध जाव गहियाउहपहरणे माइयगोसुहिएहिं फलएहिं

अटका माटे यादो तैयार थाओ, डे देवानुप्रियो । आपणे भधा त्यां न्छओ
अने धन्य सार्थवाडना धरने लुटी लछओ, जे वस्तुओ आपणे गंधा लुटीशुं
तेमांथी धन, कणुक, मणि, मौक्तिक, शिलाप्रवाल वगेरे वस्तुओ तमारी थशे
अने इकत ते सुंसुमा दारिका भारी थशे आ प्रभाणे ते पांचसो चोरओ
पोताना सेनापति चिलात चोरनी आ वात स्वीकारी लीधी. तयारपछी ते चोर
सेनापति चिलात, ते पांचसो चोरानी साथे साथे बीना थामडा उपर जेसी
गयो. लुंटायाओ लुंटाया माटे न्यारे घेरथी नीकणे छे तयारे तेओ पडेकां शुभ
शकुन माटे बीना थामडा उपर जेसे छे, आ नतने तेओमां रिवाज छे
बीना थामडा उपर जेसीने ते दिवसना थोथा पडोरमां पांचसो चोरानी
साथे (सीहगुहाओ चोरपल्लीओ पडिनिकखमइ) ते सिंडगुडा नामनी
चोरपल्लीमांथी नीकज्यो.

येन म', गृही-ऽज्वगन्वः ' माडयगोमुहिवेहि ' माडकगोमुखितैः = माडकानि =
 पक्ष्मन्नि, गोमुखितानि = गोमुखाकाराणि = माडकानि च तानि गोमुखितानि
 तैः = उदरकार्यं भद्रकृत्तुमात्रैर्गोमुखाकारैः ' फलएहिं ' फलकैः = पट्टिकेति प्रसिद्धः
 ' गिकट्टाहिं अमिलट्टीहिं ' निःकृष्टाभिः असिपट्टिभिः, कोशवहिष्कृतैः खड्गैः,
 ' अंसगएहिं तोणेहिं ' अंसगतैस्तृणैः = स्वन्यस्थितैस्तृणीरैः, ' मजीवेहिं धणूहिं '
 मजीवैर्धनुभिः = शोथारोपितप्रत्यञ्चैर्धनुभिः, ' समुक्खित्तेहिं सरेहिं ' समुत्क्षिप्तैः
 शरैः = तृणीरन्तकान्निष्काशितैर्वर्णैः, ' समुल्लालियाहिं दीहाहिं ' समुल्लालि-
 ताभिः दीहाभिः = समुच्छालितैः शस्त्रविशेषैः ' ओसारियाहिं ' अवस्वरिताभिः =
 नादित्याभिः ' उरुवंटियाहिं ' उरुवण्टिकाभिः = विगालघण्टाभिः ' छिप्पतूरेहिं

गिकट्टाहिं अमिलट्टीहिं अंसगएहिं तोणेहिं मजीवेहिं धणूहिं, समुक्खि-
 त्तेहिं सरेहिं समुल्लालियाहिं दीहाहिं, ओसारियाहिं उरुवंटियाहिं छिप्प-
 तूरेहिं वज्रमाणेहिं महयार उक्किट्टी सीहणाये चोरकलकल रवं समुहरवं
 भूयं करेमाणे, चोरपल्ली से वह किस तरह की स्थिति में निकला-यही
 यान सूत्रकार इन पंक्तियों में कह रहे हैं-वे कहते हैं कि जब वह अपनी
 चोरपल्ली में से निकला तो उस समय उसने अपने शरीर पर कवच
 को सजित करके कजाबंधन से अच्छी तरह बांध रखा था " गृही-
 तायुधप्रहरण " आयुध और प्रहरण उसके दोनों हाथों में थे। रीछ के
 राम से युक्त गोदुखाकार पट्टिका से, म्यान से बाहिर खेंची हुई तलवारों
 से, कंधों पर लटकते हुए भायोंतृणीरों-से जघापर चढ़े हुए धनुषों से,
 तृणीर से निकाले गये बाणों से ऊपर उछाले गये शस्त्र विशेषों से,

(एण्ह जाव गहियाचहपहरणे माडयगोमुहिवेहिं फलएहिं गिकट्टाहिं
 अमिलट्टीहिं अंसगएहिं तोणेहिं मजीवेहिं धणूहिं समुक्खित्तेहिं सरेहिं समुल्लालि-
 लियाहिं विहाहिं ओसारियाहिं उरुवरियाहिं छिप्पतूरेहिं वज्रमाणेहिं महया र
 उक्किट्टीसीहणाये चोरकलकलरवं समुहरवं भूयं करेमाणे)

माडयगोमुहिवेहिं नेत्रो देया रीने गडार नीडल्या ज्ये वात सूत्रकार
 आ पंक्तिनेमां स्पष्ट करी च्या छे तेज्यो इहे छे हे न्यारे ते पोतानी
 चोरपल्लीनांथी नीडल्या त्यारे तेज्यो पोताना शरीर उपर उच्य धारणु करीने
 तेने उजाब धनधी गारी रीते जांधी राण्यु इतुं " गृहितायुधप्रहरणः "
 आयुध जने प्रदरुत्तु नेना जने लाथोमां इना. रीछना रामधी युक्त गोमु-
 थाकार पट्टिकाधी, म्यानमाधी गडार हाडेवी तन्वारोधी, अंसाज्यो उपर लट-
 कता तृणीरधी, ल्या उपर चढेवा धनुषोधी, तृणीरमांधी हाडवाभां आवेलां
 भाणोधी, उपर उक्किट्टाभां आवेलां शस्त्र विशेषोधी, शब्द करता-मोटा घटोधी

वज्रमाणेहि ' क्षिप्रतूर्यैः वाद्यमानैः=द्रुतं वाद्यमानैः तूर्यैः उपलक्षितः सन् ' महया-
महया उक्किट्टसीहगाये चोरकलकलरवं ' महामहोत्कृष्टसिंहनादचोरकलकलरवं-
अत्यन्तोत्कृष्टसिंहनादचोरकलकलशब्दं समुद्रवभूतं=समुद्रवेलावृद्धिसमये ध्वनि-
मिवकुर्वन्, यद्वा महता महता उत्कृष्टसिंहनादेन-' लुप्ततृतीयान्तं पदम् '
स्वकृतोत्कृष्टसिंहनादेनेत्यर्थः, शेषं पूर्ववत् । सिंहगुहातश्चोरपल्लीतः प्रतिनिष्क्रा-
म्यति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव राजगृहं नगरं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य राजगृहस्य
नगरस्य अदूरसामन्ते एकं महद् ' गहणं ' गहनम्=वनम् अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य,
दिवसम्=शेषदिवसभागं क्षपयन्=व्यतियन् तिष्ठति ॥ सू०५ ॥

शब्दायमान-बड़े २ घंटों से जल्दी २ बजते हुए बाजोंसे वह उपलक्षित
-युक्त था । तथा उसके निकलने पर जो चोरों का कलकल रव हुआ-वह
सिंह की गर्जना के जैसा महान उच्चस्वर था-। तथा जिस समय समुद्र
बढता है उस समय जैसा उसका शब्द होता है-वैसा ही वह कल २
रव गर्भीर था । (पडिनिक्खमित्ता जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवाग-
च्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहस्स नयरस्स अदूर सामन्ते एगं महं गहणं
अणुपविसइ, अणुपविसित्ता दिवसं खवेमाणे चिट्ठइ) चोरपल्ली से
निकलकर वह जहां राजगृह नगर था वहां आया-वहां आकर के वह
राजगृह नगर के अदूरसामन्त-न अति दूर न अति समीप रहे हुए एक
महान जंगल में छिप रहे वहां छिपकर उसने अपना वह दिवस वहीं
पर ठहर कर समाप्त कर दिया ॥ सू०५ ॥

जल्दी जल्दी वागतां वाण्णोत्थी ते युक्तं इतो. तेमज्ज न्यारे ते नीकल्लो
त्यारे चोरोने जे घांघाट थयो ते सिंङ्गनी गज्जना जेवो मड्डा ध्वनि इतो.
तेमज्ज न्यारे समुद्रमां लरती आवे छे अने त्यारे जेवो तेनो ध्वनि डोय
छे, ते भाणुसोनेो ध्वनि पणु तेवो ज्ज गंभीर इतो. (पडिनिक्खमित्ता जेणेव
रायगिहे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहस्स नयरस्स अदूरसामन्ते
एगं महं गहणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता दिवसं खवेमाणे चिट्ठइ) चोरपल्लीमांथी
नीकणीने न्यां राजगृह नगर इतुं त्यां ते आण्यो. त्यां आवीने ते राजगृह
नगरथी धणु दूर पणु नडि अने धणु नल्लक पणु नडि जेवा जेक मोटा वनमां
छुपाठने रह्या त्यां छुपाठने तेणु पोतानो ते दिवस त्यां ज्ज पसार करी दीधो. ॥सू०५॥

मृलम्-तएणं से चिलाए चोरसेणावई अद्धरत्तकालसमयांसि
 निसंत पडिनिसंतंसि पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं साइयगोमुहिएहिं
 फलएहिं जाव मूइआहिं उरुघंटियाहिं जेणेव रायगिहस्स
 नयरस्स पुरत्थिमिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
 उदगवत्थिं परासुसइ, आयंते चोक्खे सुइभूए तालुग्घाडणिविज्जं
 आवाहेइ, आवाहित्ता, रायगिहस्स दुवारकवाडे उद-
 एण अच्छोडेइ, कवाडं विहाडेइ विहाडित्ता रायगिहं अणुप-
 विसइ, अणुपविसित्ता, महयार सद्धेणं उग्घोसेमाणेर एवं वयासी
 -एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! चिलाए णासं चोरसेणावई
 पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इह हव्वमागए
 धणणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाउकामे, तं जोणं णवियाएमाउ-
 याएदुद्धं पाउकामे से णं णिगच्छउ त्तिकट्टु जेणेव धणणस्स सत्थ-
 वाहस्स गिहं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धणणस्स गिहं विहा-
 डेइ। तएणंसे धणणे चिलाएणं चोरसेणावइणा पंचहिं चोरसएहिं
 सद्धिं गिहं घाइज्जमाणं पासइ, पासित्ता भीए तत्थेऽ पंचहिं
 पुत्तेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कसइ । तएणं से चिलाए चोरसेणावई
 धणणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाएइ घाइत्ता, सुवट्टु धणकणग
 जाव सावएज्जं सुंसुमं च दारियं गेणहइ, गेणित्ता, रायगिहाओ
 पडिणिकखमइ, पडिनिकखसित्ता, जेणेव सीहगुहा तेणेव
 पहारेत्थ गमणाए ॥ सू० ६ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स चिलातश्चोरसेनापतिः ‘ अद्ध-
रत्तकालसमयंसि ’ अर्धरात्रकालसमये=मध्यरात्रे, कीदृशे ‘ निसंतपडिनिसंते ’ निशान्त-
प्रतिनिशान्ते=निशान्तं=जनध्वनिरहितं प्रतिनिशान्तं=प्रत्येकं गृहं यस्मिन् तस्मिन्,
जने प्रसुप्ते सतीत्यर्थः, पञ्चभिश्चोरशतै सार्द्धम् ‘ माइयगोमुहिएहिं ’ माइकगोमु-
खितैः, उदररक्षार्थं भल्लूकरोमावृतैर्गोमुखाकारैः ‘ फलएहिं ’ फलकैः=पट्टकैः उदरब-
द्धकाष्ठफलकैरित्यर्थः, यावत् ‘ मूइआहिं उरुघंटियाहिं ’ मूकिताभिरुरुघंटिकाभिः=
निः शब्दी कृताभिः विशालघण्टाभिर्युक्तः यत्रैव राजगृहस्य नगरस्य पौरस्त्यं द्वारं
तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, ‘ उदगवत्थिं ’ उदकवर्तिं=चर्ममयजलपात्रम्, ‘ मसक ’
इति प्रसिद्धम् ‘ परामुसइ ’ परामृशति=गृह्णाति, अनन्तरम् ‘ आयंते ’ आचान्तः=
कृतमुखादि प्रक्षालनः ‘ चोक्खे ’ चोक्षः=स्वच्छः अतएव ‘ तालुग्घाडणिं विज्जं ’

‘ तएणं से चिलाए चोरसेणावई ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (चोरसेणावई से चिलाए) चोरसेनापति
वह चिलात चोर (निसंतपडिनिसंते अद्धरत्तकालसमयंसि) जब जन
ध्वनिरहित प्रत्येक घर हो गया ऐसे मध्यरात्रिके समयमें (पंचहिं चोर-
सएहिं सद्धिं) उन पांचसौ चोरों के साथ (माइय गोमुहिएहिं फलएहिं
जाव मूइआहिं उरुघंटियाहिं जेणेव रायगिहस्स नयरस्स पुरत्थिमिल्ले
दुवारे तेणेव उवागच्छइ) अपने उदर की रक्षा के निमित्त बद्धभल्लूक
के रोमों से आवृत हुए गोमुखकार काष्ठफलकों से यावत् निःशब्दीभूत
विशाल घंटिकाओं से युक्त होकर जहां राजगृह नगर का पूर्वदिशा का
द्वार था वहां आया । (उवागच्छत्ता उदगवत्थिं परामुसइ, आयंते,
चोक्खे, सुइभूए, तालुग्घाडणिंविज्जं आवाहेइ, आवाहित्ता रायगिहस्स

‘ तएणं से चिलाए चोरसेणावई ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारभाइ (चोरसेणावई से चिलाए) चोर सेनापति ते
थिदात चोर (निसंतपडिनिसंते अद्धरत्तकालसमयंसि) न्थारे दरेडे दरेड
धरमां भाणुसेना अवाण् अेकदम अंध थध गथे, अेवा ते मध्यरात्रिना
समथे (पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं) ते पांचसे चोरानी साथे

(माइय गोमुहिएहिं फलएहिं जाव मूइआहिं उरुघंटियाहिं जेणेव राय
गिहस्स नयरस्स पुरत्थिमिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ)

चेताना चेटनी रक्षा भाटे रीछना रोमेथी आवृत्त थथेदा गोमुभाकार
काष्ठ इलकेथी यावत् शांत थध गथेदी मोटी घंटिकाओथी युक्त थधने न्थां
राजगृह नगरनुं पूर्व दिशानुं द्वार डंतुं त्यां आव्था. (उवागच्छत्ता उदगवत्थिं
परामुसइ आयंते चोक्खे सुइभूए, तालुग्घाडणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहित्ता

तालोद्घाटिनीं विद्याम् ' आवाहेट ' आवाहयति=स्मरति ' आवाहिता ' आवाह्य=
 मृत्वा राजगृहम् द्वारकपाटानि उदकेन ' आच्छोडेइ ' आच्छोटयति=अभिपि-
 त्त्रति, ' आच्छोडिता ' आच्छोटय=अभिपिच्य, कपाटं ' विहाडेइ ' विघाटयति=
 उद्घाटयति, विघाटय सकलचोरैः सहितः राजगृहमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य महता
 महता=अनिमहता शब्देन ' उग्घोसमाणे २ ' उद्घोषयन् २=गुह्यगुह्योपणां कुर्वन्
 एवमवदन्, घोषणाप्रकारमाह-एवं खलु अहं हे देवानुप्रियाः ! चिलातो नाम
 चोरसेनापतिः पञ्चभिः चोरशतैः सार्द्धम् सिंहगुहातथोरपल्लीत इह ' हव्वं ' हव्वं=

द्वारे कवाडे उदणं अच्छोडेइ कवाडं विहाडेइ, विहाडिता रायगिहं
 अणुपविसह अणुपविसिता महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयासी
 -एवं खलु अहं देवानुप्रिया चिलाण नामं चोरसेणावेई पंचहिं चोरस-
 णहिं सहिं सिंहगुहाओ चोरपल्लीओ इह हव्वमाणए धण्णस्स सत्यवा-
 हस्स गिहं घाउंकामे) वहां आकर के उसने चर्ममय जलपात्र को-भसक
 को-अपने हाथ में लिया-और उसके जल से आचमन किया-आचमन
 करके जब वह शुद्ध परमशुचीभूत हो चुका-तब उसने तालोद्घाटिनी
 विद्या का आवाहन किया-स्मरण किया-और स्मरण करके राजगृह के
 द्वार कपाटों को उदक के छीटों से मिश्रित किया। मिश्रित करके फिर
 उमने उन कवाडों को खोला और खोल करके फिर वह समस्त चोरों
 के साथ राजगृह नगर के भीतर प्रविष्ट हो गया। प्रविष्ट होकर के
 उमने वहां वट्टेर आवाजसे वारंवार घोषणा करते हुए इस प्रकार कहा-हे
 देवानुप्रिया ! सुनो-मैं चोरसेनापति चिलात नाम का चोर हूँ-अभी २

रायगिहम् द्वारकवाटे उदणं अच्छोडेइ कवाडं विहाडेइ, विहाडिता रायगिहं
 अणुपविसिह, अणुपविसिता महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयासी-एवं खलु
 अहं देवानुप्रिया चिलाण नामं चोरसेणावेई पंचहिं चोरसणहिं सहिं सिंहगुहाओ
 चोरपल्लीओ इह हव्वमाणए धण्णम सत्यवाहस्स गिहं घाउंकामे)

त्यां आवीने तेणे आमडानी वेडी-भशक-ने पोताना डायमां लीधी
 अने नेना पाणीधी आचमन कथुं आचमन करीने न्यारे ते शुद्ध परम
 शुचीभूत थई वृत्थे त्यारे तेणे तालोद्घाटिनी विद्यातुं आवाहन कथुं-स्मरण
 कथुं, अने स्मरण करीने राजगृहना म्घान्तनां कमाडोने पाणीधी सिश्रित
 करीने तेणे ते कमाडोने उघाट्यां. उघाडीने ते णथा आरेनी साथे राजगृह
 नगरनी अहं प्रविष्ट थई गथे प्रविष्ट थईने तेणे त्यां मोटा आडे वारंवार
 घोषणा करीनां आ प्रमाणुं कथुं हे हे देवानुप्रिया ! सालणा, हे चोर सेनापति

शीघ्रम् आगतः धन्यस्य सार्थवाहस्य गृहं 'घाउकामे' घानयितुकामः=लुण्ठयितुकामः हे देवानुप्रियाः । यूयं शृणुत, पञ्चशतचौरैः सहाहं चिलातश्चोरसेनापतिरत्रधन्यस्य सार्थवाहस्य गृहं लुण्ठयितुमागतोऽस्मीति भावः, 'तं' तत्=तस्मात् कारणात् 'जो णं' यः खलु 'णवियाए माउआए' न व्यायाः मातृकायाः 'दुद्धं पाउकामे' दुग्धं पातुकामः=यः खलु मदीयहस्तान्मृत्युं प्राप्य पुनर्भाविभवभाविन्या नूतनाया मातृदुग्धाभिलाषीभवेत् 'सेणं' स खलु 'णिग्गच्छउ' निर्गच्छतु मम संमुख मागच्छतु 'त्ति कट्टु' इतिकृत्वा=इत्थमुक्त्वा यत्रैव धन्यस्य सार्थवाहस्य गृहं तत्रैव

पांचसौ चोरों के साथ यहां सिंहगुहा नाम की चोरपल्ली से आया हुआ हूँ। मेरी इच्छा धन्यसार्थवाह के घर को लूटने की है—(तं) इसलिये—(जो णं णवियाए, माउयाए, दुद्धं पाउकामे सेणं णिग्गच्छउ, त्तिकट्टु जेणेव धणस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गिहं विहाडेइ। तएणं से धण्णे चिलाएणं चोरसेणावइणा पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं गिहं घाइज्जमाणं पासइ, पासित्ता भीए तत्थे ४ पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमइ,। तएणं से चिलाए चोरसेणावई धणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाएइ, घाइत्ता सुवहुधणक्कणग जाव सावएज्जं सुंसमं च दारियं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सीहगुहा तेणेव पहारेत्थ गमणाए) जो नवीन माता का दूध पीना चाहता हो—मेरे हाथ से मृत्यु को प्राप्त कर पुनः भाविभव में होनेवाली जननी का दुग्ध पान करने का जो अभिलाषी बन रहा हो

चिलात नामे चोर छुं डमणुं ७ हुं पांचसो चोरानी साथे अही सिङ्गुडा नामनी चोरपल्लीथी आये छुं. धन्य सार्थवाहना घरने लूटवानी मारी धच्छ छे. (तं) माटे

(जोणं णवियाए, माउयाए, दुद्धं पाउकामे सेणं णिग्गच्छउ, त्ति कट्टु जेणेव धणस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धणस्स गिहं विहाडेइ, तएणं से धण्णे चिलाएणं चोरसेणावइणा पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं गिहं घाइज्जमाणं पासइ, पासित्ता भीए तत्थे ४ पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमइ। तएणं से चिलाए चोरसेणावई धणस्स सत्थवाहस्स गिहं घाएइ, घाइत्ता सुवहु धणक्कणग जाव सावएज्जं सुंसमं च दारियं गेण्हइ, गेण्हित्ता रायगिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिक्खमित्ता जेणेव सीह गुहा तेणेव पहारेत्थ गमणाए)

७ नवी मातातुं दूध पीवा धच्छे छे अट्ठे छे मारा डायथी मृत्यु पाभीने इरी भीण लवमां थनारी मातातुं दूध पीवा ७ धच्छतो डाय ते

उपागच्छति, उपागन्त्य धन्यस्य गृहं ' विहाडेइ ' विघाटयति=उद्धाटयति । ततः खलु न धन्यः सार्थवाहः चिलातेन चोरसेनापतिना पञ्चभिः चोरशतैः सार्द्धं गृहं ' वाङ्जमाणं ' घात्यमानं=लुण्ठयमानं पश्यति, दृष्ट्वा, भीतः=भयं प्राप्तः, त्रस्तः=त्रासंगतः, त्रमितः=विशेषतस्त्रासं प्राप्तः ' उद्विग्ने ' उद्विग्नः=अयमस्माकं सर्वस्वमपहरति अहमय किमपि कर्तुं न शक्नोमीति हेतोः परमचिन्तामापन्नः, पञ्चभिः पुत्रैः सार्थम् ' एगंतं ' एकान्तम्=भयरहितं स्थानम् ' अवकमइ ' अपक्राम्यति=अपगच्छति । ततः खलु न चिन्ततः चोरसेनापतिः धन्यस्य सार्थवाहस्य गृहं घातयति=लुण्ठयति वातयित्वा लुण्ठयित्वा सुवहुं ' धनकणक जात्र सावएज्जं ' धनकनक यावत् स्त्रापतेयम्=वनकनक मणिमौक्तिकादिकं द्रव्यं सुंसुमां च दारिकां गृह्णाति, गृहीत्वा राजगृहात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव सिंहगृहा तत्रैव प्राधारयद् गमनाय=गन्तुमुद्यतोऽभूत् ॥ सू०६ ॥

-वही घरे सम्मुख आवे-इस प्रकार कहकर वह जहाँ धन्यसार्थवाह का घर था वहाँ गया-वहाँ जाकर उसने धन्यसार्थवाह के घर को खोला जब धन्यसार्थवाह ने पांचसौ चोर के साथ चोरों सेनापति चिलात के छाग अपने घर को लुटता हुआ देखा-तो देखकर वह भय को प्राप्त हो गया-और त्रस्त एवं त्रसित-विशेष त्रास को प्राप्त होकर अन्त में वह उद्विग्न बन गया यह हमारा सर्वस्व हरण कर रहा है और मैं इसका कुछ भी नहीं कर सकता हूँ-इस ध्यान से वह चिन्ताकुल हो गया-और चिन्ताकुल होकर अपने पांचों पुत्रों के साथ वहाँ से निर्धन स्थान में चला गया । चोर सेनापति चिलात ने धन्य सार्थवाह को खूब मनमाना लूटा और लूट करके उममेंले बहुत सा धन कनक, मणि, मौक्तिक आदि द्रव्यों को एवं सुंसुमादारिका को ले लिया-। लेकर वह राजगृह नगर से

भारी साथे आवे आ प्रमाणे कडीने ते त्यां धन्य सार्थवाडनुं घर डतुं त्यां गये. त्यां नधने तेणे धन्य सार्थवाडना घरने उघाड्युं न्यादे धन्य सार्थवाडे पांचसौ चोरानी साथे चोर सेनापति चिलात वडे पोताना घरने लुटातुं जेथुं त्यादे जेकने ते लयभीत थड गये. अने त्रस्त तेमज त्रासित (विशेष त्रास) प्राप्त कडीने छेवटे उद्विग्न थड गये. आ अमाइ सर्वस्व हरण करी रह्यो छे अने तुं जेनुं कडंज जगाडी शकतो नयी आ जतने विचार कडीने ते चिन्ताकुल थड गये अने चिन्ताकुल थडने ते पोताना पांचे पुत्रानी साथे त्यांथी निर्धन स्थानमां जतो रह्यो चोर सेनापति चिलाते धन्य सार्थवाडना घरने जण छंछा मुज्जण लूट्युं अने लूटीने तेमांथी धणुं धन, कनक, मणि, मोती वजेरे द्रव्ये तेमज सुसमा दारिकाने लड लीधी. लडने ते राजगृह

मूलम्—तएणं से धन्ने सत्थवाहे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुबहुं धणकणगं सुंसुमं च दारियं अवहरियं जाणित्ता, महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं गहाय जेणेव णगरगुत्तिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, तं महत्थंमहग्घं महरिहं पाहुडं जाव उवणेति, उवणित्ता, एवं वयासी—एवंखलु देवाणुप्पिया ! चिलाए चोरसेणावई सीहगुहाओ चोरपल्लीओ इहं हव्वमागम्म पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं समगिहं घाएत्ता धणकणगं सुंसुमं च दारियं गहाय जाव पडिगए । तं इच्छामो णं देवाणुप्पिया ! सुंसुमा दारियाए कूवं गमित्तए, तुब्भं णं देवाणुप्पिया ! से विउले धणकणगे, ममं सुंसुमा दारिया । तएणं ते णगरगुत्तिया धणस्स एयसट्टं पडिसुणेति, पीडसुणित्ता संनद्ध जाव गहियाउहपहरणा सहयार उक्किट्टुं जाव समुदरवभूयं पिव करेमाणा रायगिहाओ णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता, जेणेव चिलाए चोरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता, चिलाएणं चोरसेणावइणा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था । तएणं ते णगरगुत्तिया चिलायं चोरसेणावइं हयमहिय जाव पडिसैहेति । तएणं ते पंच चोरसया णयरगोत्तिएहिं हयमहिय जाव पडिसैहिया समाणा तं विउलं धणकणगं विच्छड्ढेमाणा य विप्पकिरेमाणा य सव्वओ

वापिस निकला—और निकल करके जहां सिंहगुहा नाम की चोरपल्ली थी—उस ओर चलने के लिये उद्यत हो गया ॥ सू०६ ॥

नगरमांथी पाछे षडार आये। अने आवीने नयां सिंडगुडा नामे चोरपल्ली छती ते तरक्ख रवाना थवा तैयार थछ गये। ॥ सूत्र ६ ॥

समंता विष्पलाइत्था । तएणं ते णगरगुत्तिया ते विउलं धण-
 वणगं गेण्हंति, गेण्हत्ता जेणेव रायगिहे तेणेव उवागच्छंति ।
 तएणं से चिलाए तं चोरसेणं तेहिं णयरगुत्तिएहिं हयमहिय
 जाव भीए तत्थे सुंसुमं दारियं गहाय एगं महं अग्गामियं दीह-
 मद्धं अडविं अणुप्पविट्ठे । तएणं धण्णे सत्थवाहे सुंसुमं दारियं
 चिलाएणं अडवीसुहं अवहीरमाणिं पासित्ताणं पंचहिं पुत्तेहिं
 सद्धिं अप्पच्छट्ठे सन्नद्धवद्धं चिलायस्स पदमग्गवीहिं अणुगच्छ-
 माणे अभिगज्जंते हक्कारेमाणे पुक्कारेमाणे अभितज्जेमाणे
 अभितासेमाणे पिट्ठो अणुगच्छइ । तएणं से चिलाए तं धणं
 सत्थवाहं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छट्ठं सन्नद्धवद्धं समणुगच्छ-
 माणं पासइ, पासित्ता अत्थासे अवले अवीरिए अपुरिसक्कार-
 पक्कमे जाहे णो संचाएइ सुंसुमं दारियं णिव्वाहित्तए, ताहे
 संते तंते परितंते नीलुप्पलं असिं परामुसइ, परामुसित्ता
 सुंसुमाए दारियाए उत्तसंगं छिंदइ, छिंदित्ता, तं गहाय तं
 अग्गामियं अडविं अणुप्पविट्ठं । तएणं से चिलाए तीसे अगा-
 मियाए अडवीए तण्हाए अभिभूए समाणे पम्हुट्ठ दिसाभाए,
 सीहगुहं चोरपछिं असंपत्ते अंतरा चेव कालगए ।

एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे इमस्स ओ-
 गलियसरीस्स वंतासवस्स जाव विद्धंसणधम्मस्स वण्णहेउं
 जाव आहारं आहारेइ, से णं इहलोए चेव वहुणं समणाणं४
 हिलणिज्जे ३ जाव अणुपरियट्ठिस्सइ, जहा व से चिलाए
 तक्करं ॥ सू० ७ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स धन्यः सार्थवाही यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य सुबहुं धनकणकं सुंसुमां च दारिकाम् अपहृतां ज्ञात्वा ‘ महत्थं महग्घं महरिहं ’ महार्थं महार्घं महार्हम्=महानर्थः प्रयोजनं यस्मिन् तत्=महार्थं=महाप्रयोजनकम्, बहुमूल्यं पुनः महतां योग्यम् ‘ पाहुडं ’ प्राभृतं=उपायनं गृहीत्वा यत्रैव ‘ णगरगुत्तिया ’ नगरगोप्तृकाः=नगररक्षकाः कोट्टपालादयः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तत् महार्थं यावत्=महार्घं महार्हं प्राभृतम् ‘ उवणेइ ’ उवनयति=समर्पयति, उपनीय=समर्प्य एवमवदत्—एवं खलु हे देवानु-

‘ तएणं से धन्ने सत्थवाहे ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से धन्ने सत्थवाहे) वह धन्य सार्थवाह (जेणेव सएगिहे तेणेव उवागच्छइ) जहां अपना घर था वहां आया (उवागच्छित्ता सुबहुं धनकणकं सुंसुमां च दारियं अवहरियं जाणित्ता महत्थं महग्घं महरियं पाहुडं गहाय जेणेव नगर गुत्तिया तेणेव उवागच्छइ) वहां आकरके उसने अपने घरमें से बहुत सा धन कनक एवं सुंसुमा दारिका को हरण किया हुआ जब जाना तब वह महार्थ बहुमूल्य एवं महापुरुषों के योग्य भेंट लेकर जहां नगर रक्षक—कोट्टपाल—आदि थे वहां गया—(उवागच्छित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं जाव उवणेति, उवणित्ता एवं वयासी) वहां जाकर उसने उस महाप्रयोजन साधक भूत बहुमूल्य तथा महापुरुषों के योग्य भेंट को उनके समक्ष रखदिया—और रखकर उनसे उसने इस प्रकार कहा—(एवं

‘ तएणं से धन्ने सत्थवाहे ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपणी (से धन्ने सत्थवाहे) ते धन्य सार्थवाह (जेणेव सएगिहे तेणेव उवागच्छइ) जहां पोतानुं घर डतुं त्यां आव्यो.

(उवागच्छित्ता सुबहु धनकणकं सुंसुमां च दारियं अवहरियं जाणित्ता महत्थं महग्घं महरियं पाहुडं गहाय जेणेव नगर गुत्तिया तेणेव उवागच्छइ)

त्यां आवीने तेणु पोताना घरमांधी पुष्कण प्रमाणुमां धन, कनक अने सुंसुमा दारिकानु डरणु करवामां आवेल्लु ळणीने ते मडार्थ, ळहु किमती अने मडापुरुषोने योग्य लेट लधने ज्थां नगर—रक्षक—कोट्टपाल—वणेरे डता त्यां गथो. (उवागच्छित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं पाहुडं जाव उवणेति, उवणित्ता एवं वयासी) त्यां जधने तेणु ते मडाप्रयोजन साधकभूत ळहु किमती तेमज मडा पुरुषोने योग्य लेटने तेमनी सामे भूकी दीधी अने भूकीने तेमने तेणु आ प्रमाणु विनंती करतां डल्लु डे—

प्रियाः ' चित्वातथोग्नेनापतिः मिहगुहायाथोरपल्याः इह हव्यमागत्य पञ्चभिश्चोर-
यतैः गार्ह्यम् मम गृहं ' घाएत्ता ' नातदित्वा=लुण्ठयित्वा सुवहुं धनकनकं सुंसुमां
च दारियां गृहीत्वा ' जाव पडिगए ' नावन् प्रतिगतः=पञ्चभिश्चोरयतैः साथं
मिहगुहां चोग्पन्थीं प्रतिनिवृत्त इत्यर्थः, ' तं ' तत्=तस्मात् कारणात् इच्छामः
खलु हे देवानुप्रियाः ! ' सुंसुमा दारियाए सुंसुमा दारिकाया ' कूवं ' प्रत्यान-
यन् ' गमित्तए ' गन्तुम् । ' तुम्भेणं देवाणुप्पिया । ' युष्माकं खलु हे देवानु-
प्रिया ! तन=अपहतं विपुलं धनकनकम्=हे देवानुप्रियाः ! चोराऽपहतं धनकना-
दिकं गर्व युष्माकं भयन्, मम सुंसुमा दारिका भवतु । ततः खलु ते नगरगोप्तकाः

खलु देवाणुप्पिया ! चित्वाए चोरसेणावई सीहगुहाओ चोरपल्लीओ
इहं हव्यमागम्म पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं मम गिहं घाएत्ता, सुवहुं धण-
कणगं सुंसुमं च दारियं गहाय जाव पडिगए-तं इच्छामो णं देवाणु-
प्पिया ! सुंसुमा दारियाए कूवं गमित्तए-तुम्भं णं देवाणुप्पिया । से विउले
धणकणगे ममं सुंसुमा दारिया) हे देवानुप्रियो सुंसुमा चोर सेनापति
चित्वात चोर ने मिहगुहा नाम की चोरपल्ली से यहां शीघ्र आकर
पांचसौ चोरों के साथ मेरे घर पर डांका डाला है । उसमें उसने बहुत
सा धन, कनक एवं सुंसुमा दारिका को लूटा है और-लूटकर वह वहां
वापिस अपने स्थान पर चला गया है । अतः हे देवानुप्रियो ! मैं चाहता
हूँ कि आप लोग उस सुंसुमा दारिका को लेने के लिये जावें, मिलने पर
वह हन धनकनक आदि सब आपका रहे-और सुंसुमा दारिका मेरी

(एवं खलु देवाणुप्पिया ! चित्वाए चोरसेणावई सीहगुहाओ चोरपल्लीओ
इहं हव्यमागम्म पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं मम गिहं घाएत्ता, सुवहुं धणकणगं सुंसुमं
च दारियं गहाय जाव पडिगए तं इच्छामो णं देवाणुप्पिया । सुंसुमा दारियाए
कूवं गमित्तए-तुम्भं णं देवाणुप्पिया । से विउले धणकणगे ममं सुंसुमा दारिया)

हे देवानुप्रियो । अंबणो, चोर सेनापति चित्वात चोरे सिहगुहा नामनी
चोरपल्लीओ अएत्ता अदी आदीने पांचसो ओदानी साथे मारा घरमां घाउ
पायी छे तेमा तेहिं गार्ह्यं धन, कनक अने सुंसुमा दारिकानी लूट करी छे.
लूट करीने ते पाछे पोताना स्थाने गयो रह्यो छे अथी छे देवानुप्रियो ।
मदी अएत्ता छे हे तमे सुंसुमा दारिकाने पायी देवा माटे ज्ञाओ अने तेने
मेघवी लीधा पाद ते नपपदुन धरायेनु धन कनक वगेरे गधु तमे गणजे अने
सुंसुमा दारिकाने मने देवापी हेने

पुरुषाः धन्यस्य एतमर्थं प्रतिश्रुत्वन्ति=स्वीकृवन्ति, प्रतिश्रुत्य=स्वीकृत्य 'सन्नद्ध जाव गहियाउहपहरणा' सन्नद्ध यावत् गृहीतायुधप्रहरणाः=सन्नद्धबद्धवर्मितकवचा यावद् गृहीतायुधप्रहरणा इत्यस्य व्याख्या पूर्ववद् बोध्या, 'महया २ उक्किट्ट जाव समुद्रवभूर्यपिब' महा महोत्कृष्ट यावत् समुद्रवभूतमिव, वेलावृद्धिसमये समुद्रध्वनिमिव महाध्वनि 'करेमाणा' कुर्वन्तो राजगृहात् निर्गच्छन्ति, निर्गत्य

रहे। (तएणं ते णगरगुत्तिया धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सन्नद्ध जाव गहियाउहपहरणा महया २ उक्किट्ट० जाव समुद्रवभूर्यं पिबकरेमाणा रायगिहाओ णिगगच्छंति णिगच्छित्ता जेणेव चिलाए चोरे-तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चिलाएण चोरसेणावइणा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था तएणं ते णगरगुत्तिया चिलायं चोरसेणावइं हयमहिय जाव पडिसेहेंति, तएणं ते पंच चोरसया णयरगोत्ति-एहिं हयमहिय जाव पडिसेहिया समाणा तं विउलं धणकणगं विच्छडेमाणा य विप्पकिरेमाणा य सव्वओ समंता विप्पलाइत्था) धन्य सार्थवाह की इस बात को सुनकर उन नगर रक्षकों ने स्वीकार कर लिया। और स्वीकार करके उसी समय उन्होंने ने अपने २ शरीरपर कवच को सज्जित करके कशाबंधन से बांध लिया यावत् आयुध और प्रहरणों को ले लिया-। वेलावृद्धिके समय में जिस प्रकार समुद्र की ध्वनि होती है-उसी प्रकार की महाध्वनि करते हुए फिर वे राजगृह नगर

(तएणं ते णगरगुत्तिया धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सन्नद्ध जाव गहियाउहपरणा महया २ उक्किट्ट० जाव समुद्रवभूर्यं पिबकरेमाणा रायगिहाओ णिगगच्छंति, णिगच्छित्ता जेणेव चिलाए चोरे-तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चिलाएणं चोरसेणावइणा सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था-तएणं ते णगरगुत्तिया चिलायं चोरसेणावइं हयमहिय जाव पडिसेहेंति, तएणं ते पंच चोरसया णयरगोत्ति-एहिं हयमहिय जाव पडिसेहिया समाणा तं विउलं धणकणगं विच्छडेमाणा य विप्पकिरेमाणा य सव्वओ समंता विप्पलाइत्था)

धन्य सार्थवाहनी ते वातने सांलणीने नगर रक्षकओ तेने स्वीकारी लीधी अने स्वीकारीने तेभण्णे तरत ७ पोतपोताना शरीरे। उपर कवचो पडेरीने कशा बंधनोथी बांध्यां यावत् आयुध अने प्रहरणोने साथे लध लीधां। लरतीना समये जेवो समुद्रने ध्वनि डोय छे तेवो ७ महाध्वनि करतां तेओ। राजगृह नगरभांथी गडार नीकण्या अने नीकणीने न्यां चोर सेनापति ते

यत्रैव चिलातशोरः, तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य चिलातेन चोरसेनापतिना
 मार्गं 'संपत्तगा' संपन्नताः=युद्धं कर्तुं प्रवृत्ताश्चापि अभवन् । ततः खलु नगर-
 गोप्तृकाः चिलातं चोरसेनापतिं 'हयमहियं जात्र' हतमथित यावत्=हतम-
 थित प्रवरवीरघातितनिपतितचिह्नध्वजपताकं=हता=मारिताः, मथिताः=निशेषतां
 प्राप्तिताः, प्रवरवीराः=श्रेष्ठवीरा यस्यासौ हतमथितप्रवरवीरः, घातितः=घातः
 गन्नादिप्रदारेण क्षतिः, स संजानोऽस्य घातितः क्षत इत्यर्थः, निपतिता=भूमौ
 पतिता चिह्नध्वज पताकाः यस्याऽसौ, निपतितचिह्नध्वजपताकः, एतेषां कर्म-
 धारयः, तम्, यावत् प्रतिषेधयन्ति=निवारयन्ति । ततः खलु ते 'पंचचोरसया'
 पञ्चघनवीरा. 'णगरगोत्तिर्हि' नगरगोप्तृकैः=नगररक्षकैः पुरुषैः 'हयमहिय
 जात्र पडिसेहिया' हतमथितयावत्प्रतिषेधिताः=प्रतिषेधिताः सन्तः तत् त्रिपुलं
 धनकनक=धनकनकमणिमौक्तिकादिकं 'विच्छड्डेमागा' विच्छर्दयन्त=प्रक्षिपन्तः
 'विप्रकिरेमाणा य' विप्रकिरन्तश्च=उतस्ततो विकिरणं कुर्वन्तः 'सव्वओ समता'
 मर्वतः समन्तात्=चतुर्दिक्षु 'विप्पलाऽत्था' विप्लायन्तः=पलायिताः ततः खलु ते

से बाहर निकले-और निकलकर जहां चोर सेनापति वह चिलात चोर
 था वहां गये-वहां पहुँचते ही उनका चोर सेनापति उस चिलात चोर
 के साथ युद्ध होना प्रारंभ हो गया-उस युद्ध में उन्होंने ने उस चिलात
 के सैन्य को पहिले खूब मारा-पीटा-याद में उन्हें विलकुल नष्ट भ्रष्ट कर
 दिया । किननेक चोरों को उन्होंने ने क्षत किया । उसकी चिह्न ध्वजपता-
 काओं को जमीन पर डाल दिया । इस प्रकार उसे हरतरह परास्त कर
 दिया । जब वे पांचसौ चोर नगररक्षक पुरुषों द्वारा हर प्रकारसे हतमथित
 यावत् प्रतिषेधित हो चुके तब वे उस त्रिपुल धनकनक मणिमौक्तिक
 आदिको छोड़कर तथा हथियार उधर डालकर सर्व प्रकारसे चारों दिशाओंमें
 उधर उधर भाग गये । (तएणं ते णगरगुत्तिचा तं विउलं धणकणगं

चिलात चोर दतो त्यां गया त्या जतानी साथे ज चोर सेनापति चिलातनी
 साथे तेमनु युद्ध शउ थर्ध गथुं. युद्धमा तेमले पडेलां तो चिलातनी सेना
 साथे षण मार-पीट करी अने त्थारपथी तेने नष्ट-भ्रष्ट करी नाथी. डेटलाड
 चोराने तो तेमले क्षत (धवायेला) कर्यां. तेमनी चिह्नभूत ध्वज पताकाओंने
 जमीनदोस्त करी नाथी आ प्रभाते तेने गधी रीते उशवी दीधे न्यादे ते
 पांचमे चोराने नगर रक्षक पुरुषो वडे सर्व रीते क्षत, मथित यावत् प्रतिषेधित
 थर्ध गया त्यादे तेओ ते युद्धग धन, क्षत, मणी, मोती वगेदने त्यां ज
 भूमीने आगतेम नाथीने चार दिशाओंमां आगतेम पलायन थर्ध गया.

नगरगोप्तृकाः=नगररक्षकाः=तं विपुलं धनकनकं=धनकनकादिकं गृह्णन्ति, गृहीत्वा, यत्रैव राजगृहं नगरं तत्रैव उपागच्छन्ति । ततः खलु स चिन्तातः तां चोरसेनां 'हयमहिय जाव' हतमथित यावत्=हतमथितप्रवलीरघातितनिपतित चिह्नध्वजपताकाम् यावद् दृष्ट्वा भीतस्त्रस्तः सुंसुमां दारिकां गृहीत्वा एकां महतीम् 'अग्रामियं' अग्रामिकाम्=ग्रामरहिताम् 'दीहमद्र' दीर्घां=दीर्घमार्गाम् 'अडविं' अटवीम्-अनुप्रविष्टः । ततः खलु धन्यः सार्थवाहः सुंसुमां दारिकां चिलातेन 'अडवीमुहं' अटवीमुखम्=अरण्यसन्मुखम् 'अवहीरमार्णि' अपह्रियमाणाम्-नीयमानां 'पासित्ता' दृष्ट्वा पञ्चभिः पुत्रैः सार्द्धम् 'अप्पच्छे' आत्मपण्ठः 'सन्नद्धवद्ध' सन्नद्धवद्धवर्मितकवचः चिन्तातस्य 'पदमग्गवीहि' पद-

गेण्हन्ति, गेण्हित्ता, जेणेव रायगिहे तेणेव उवागच्छन्ति । तएणं से चिलाए तं चोरसेणं तेहिं णयरगुत्तिएहिं हयमहिय जाव भीए तत्थे सुंसमं दारियं गहाय एणं महं अग्रामियं दीहमद्रं अडविं अणुप्पविट्ठे) उन नगर रक्षकों ने उस विपुल धन कनक आदिको ले लिया और लेकर राजगृह नगर में वापिस आ गये । इस के बाद वह चिलात चोर अपनी उस सेना को नगर रक्षकों द्वारा हत मथित प्रवली बीरवाली एवं घातित तथा निपतित चिह्न ध्वज पताका वाली देखकर त्रस्त हो गया और सुंसुमादारिका को लेकर एक बड़ी भारी ग्रामरहित अटवी में घुस गया (तएणं धण्णे सत्थवाहे सुंसमं दारियं चिलाएणं अडवीमुहं अवहिरमार्णि पासित्ता णं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छे सन्नद्धवद्ध चिलायस्स पदमग्गवीहिं अणुगच्छमाणे अभिगज्जंते हाक्कारेमाणे अभितज्जेमाणे

(तएणं ते णयर गुत्तिया तं विउलं धणकणगं गेण्हन्ति, गेण्हित्ता, जेणेव रायगिहे तेणेव उवागच्छन्ति । तएणं से चिलाए तं चोरसेणं तेहिं णयरगुत्तिएहिं हयमहिय जाव भीए तत्थे सुंसमं दारियं गहाय एणं महं अग्रामियं दीहमद्रं अडविं अणुप्पविट्ठे)

ते नगर रक्षकोअे ते पुष्कण प्रमाणुमां पडेलां धन, कनक वगेरेने लध लीधु अने लधने राजगृह नगरमां पाछा आवी गया. त्थारपणी ते चिलात चोरे पोतानी ते चोर सेनाने नगर रक्षको वडे डत, मथित तेमज घातित अने निपतित चिह्नध्वज पताकाओवाणी लेधने त्रस्त थर्ध गथे अने सुंसुमा दारिकाने लधने अेक लारे मोटी ग्रामरहित अटवीमां पेसी गथे.

(तएणं धण्णे सत्थवाहे सुंसमं दारियं चिलाएणं अडवीमुहं अवहीरमार्णि पासित्ता णं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छे सन्नद्धवद्धचिलायस्स पदमग्गवीहिं अणुगच्छमाणे अभिगज्जंते हाक्कारेमाणे पुक्कारेमाणे अभितज्जेमाणे अभिहासे-

मार्गविधि=यद्मार्गप्रचारम्=हरणचिह्नम् 'अणुगच्छमाणे' अनुगच्छन्=पृष्ठतो धावन्
 'अणुगज्जेमाणे' अनुगर्जन्=मेघवद्गर्जनां कुर्वन् 'हकारेमाणे' 'हंभो' दुष्ट !
 विष्ट-निष्ट ' इत्यादि, वाक्यैः हकारयन्=आकारयन् 'पुकारेमाणे' पूत्कारयन्
 'निष्ट २, नोचं च्यां हनिष्यामीत्यादिवाक्यैः तमाह्वयन् 'अभितज्जेमाणे' अभि-
 तर्जन्='रे निर्लेज्ज' इत्यादि वाक्यैरतर्जनां कुर्वन्, 'अभितासेमाणे' अभि-
 त्रामयन्=शस्त्रगत्वादिद्वर्गनेन त्रासमुत्पादयन् 'पिट्ठो' पृष्ठतः=चिलातचोरस्य
 पृष्ठदेजवः अनुगच्छति=शवाद्भावति । ततः खलु स चिलातः तं धन्यं सार्थवाहं
 पञ्चभिः पुत्रैः साद्धर्मम् 'अप्पच्छट्टं' आत्मपण्डं 'सन्नद्धवद्धवर्षितकवचं यावत्
 समणुगच्छन्तं=शवाद्भावन्तं पश्यति, दृष्ट्वा 'अत्थामे ४' अस्थामा=आत्मबल-
 रहितः, अवलः=तैन्परहितः, अवीर्यः = उत्साहरहितः, अपुरुषकारपराक्रमः सन्

अभितासेमाणे पिट्ठाओ अणुगच्छइ) धन्यसार्थवाह ने जब सुंसमा
 दारिका को चिलात चोर द्वारा अटवी के मध्य में हरणकर ले जाई गई
 जब जाना-तब वह अपने पांचों पुत्रों के साथ आत्मपण्ड होकर कवच
 बाध उस चिलात के पीछे २ पद चिह्नों का अनुसरण करता हुआ, मेघ
 के जैसी गर्जना करता हुआ, अरे ओ दुष्ट ! ठहर ठहर इस प्रकार से
 कहता हुआ, पुकार करता हुआ ठहर जा ठहर जा-नहीं तो मैं तुझे
 मार डालूंगा इस प्रकार के वाक्यों से उसे बुलाता हुआ रे निर्लेज्ज !
 हम प्रकार से उसे तर्जित करता हुआ, तथा अस्त्र शस्त्र आदि के
 दिग्दान से उसे त्रास उत्पन्न करता हुआ चला ।

(तण्णं से चिलाए तं धण्णं सत्थवाहं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं
 अप्पच्छट्टं अन्नद्धवद्धं । समणुगच्छमाणं पासइ, पासित्ता अत्थामे अवले

माणे पिट्ठाओ अणुगच्छइ)

त्यारे धन्य सार्थवाहे सुभमा दारिकाने चिलात चोर वडे अटवीमां
 यगु डरीने लठ ववायेसी लणी, त्यारे ते पोताना पांचे पुत्रोनी साथे आत्म-
 पण्ड धर्मे धवय णाधीने ते चिलात चोरनी पाछण तेना पड चिह्नोंनुं अनु-
 सण्ण इत्ते मेघना जेवी ध्वनि इत्ते " अरे ओ दुष्ट ! ओलोरे, ओलोरे, "
 आ प्रभाते छेत्ते " ओलोरे, ओलोरे, नडितर मरी गयेसे लयणे " आ
 प्रभाते छेत्ते इत्ते, तेने णोदावते " अरे निर्लेज्ज ! " आभ तर्जित इत्ते
 तेभन् अन्न अन्न वगेरेने गतावीने तेने त्रशित इत्ते आत्थे

(तण्णं से चिलाए तं धण्णं सत्थवाहं पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टं सन्नद्ध
 वद्धं । समणुगच्छमाणं पासइ, पासित्ता अत्थामे अवले अवीरिए अपुरिसक्कार

पुरुषकारः=पौरुषम्, पराक्रमः=सामर्थ्यं, तद्रहितः सन् 'जाहे' यदा नो शक्नोति
सुसुमां दारिकां 'णिन्वाहित्तए' निर्वाहयितुं=बोद्धुम्, 'ताहे' तदा 'संते'
श्रान्तः=परिश्रमं गतः, 'तंते' तान्तः=ग्लानिं प्राप्तः, 'परितंते' परितान्तः=
सर्वतोभावेन खिन्नतामुपगतः, 'नीलुप्पल०' नीलोत्पल०=नीलोत्पलवल्गुलि-
कादि विशेषणविशिष्टमतितीक्ष्णम् 'असिं' करवालं 'परामुसइ' परामुसति=
कोशान्निःसारयति, परामुसइ, सुसुमाया दारिकायाः 'उत्तमंगं' उत्तमाङ्गं=शिरः

अवीरिए अपुरिसकारपरक्कमे जाहे णो संचाएइ सुसुमं दारियं णिन्वा
हित्तए, ताहे संते तंते परितंते निलुप्पल० असिं परामुसइ, परामुसित्ता
सुसुमाए दारियाए उत्तमंगं छिदइ, छिदित्ता, तं गहाय तं अग्गामियं
अडविं अणुपविट्ठे, तएणं से, चिलाए तीसे आग्गामियाए अडवीए
तण्हाए अभिभूए समाणे पम्हुट्टदिसाभाए सीहं गुहं चोरपल्लिं असं-
पत्ते अंतराचेव कालगए) जब चिलात चोर ने उस धन्यसार्थवाह को
पांचो पुत्रों के साथ आत्मपष्ट होकर एवं कवच आदि से सुसज्जित
होकर अपने पीछे २ आता हुआ देखा-तब वह देख कर आत्मबल
रहित हो गया। इस तरह सैन्य रहित, उत्साह रहित तथा पौरुष और
पराक्रम रहित बना हुआ वह जब सुसुमा दारिका को अपने पास रखने
के लिये शक्तिशाली नहीं हो सका तब उसने श्रान्त, तान्त-ग्लानि
युक्त और परितान्त सर्वतोभावेन खिन्नता को प्राप्त होकर नीलोत्पल,
गवलगुलिका, आदि विशेषणों वाली अपनी तलवार को उठाया-भ्यान

परक्कमे जाहे णो संचाएइ सुसुमं दारियं णिन्वाहित्तए, ताहे संते तंते परितंते
नीलुप्पल० असिं परामुसइ, परामुसित्ता सुसुमाए दारियाए उत्तमंगं छिदइ,
छिदित्ता, तं गहाय तं अग्गामियं अडविं अणुपविट्ठे, तएणं से, चिलाए तीसे
आग्गामियाए अडवीए तण्हाए अभिभूए समाणे पम्हुट्टदिसाभाए सीहगुहं
चोरपल्लिं असंपत्ते अंतरा चेव कालगए)

न्यारे चिलात चारे ते धन्य सार्थवाहने पांचे पुत्रोनी साथे आत्मपष्ट
थधने तेमज्ज कवच वगेरेथी सुसन्निज्जत थधने पोतानी पाछण पाछण आवतो
जेथे त्यारे ते जेधने आत्मभण वगरनेो थधं गयेो. आ प्रमाणे सेना रडित
उत्साह रडित तेमज्ज पौरुष अने पराक्रम रडित थधं गयेदो ते न्यारे सुसुमा
दारिकाने पोतानी पासे राणवामां पणु असमर्थं थधं गयेो त्यारे तेणु श्रान्त,
तांत, ग्लानि युक्त अने परितांत तेमज्ज अधी रीते भिन्नता प्राप्त करीने
नीलोत्पल, गवल गुलिका वगेरे विशेषणोवाणी पोतानी तरवारने उपाडी अने
भ्यानमांथी षडार काढी अने षडार काढीने सुसुमा दारिकावु माथुं कापी

छिनत्ति, छिन्त्वा, ' तं ' तत्=उत्तमार्गं गृहीत्वा ताम् अग्रामिकाम्=जनावासरहि-
ताम् अटनीमनुमन्विष्टः=पवेशं कृतवान् । ततः खलु चिलातः तस्यामग्रामिकाया-
मदभ्या ' तृष्णाए ' तृष्णया=पिपासया अभिभूतः सन् ' विम्हुद्दिसाभाए ' विस्मृ-
तदिग्भागः=पूर्वादिदिग्गविवेकविकूलः सन् सिंहगुहां चोरपल्लीम् ' अमंपत्ते ' अस-
म्पामः ' अंतरात्रेव ' अन्तरा एव=मध्य एव ' कालंगए ' कालंगतः=असौ चोरो
मृत्युं प्राप्नोति । अस्य शेषचरितं ग्रन्थान्तरादवसेयम् , गात्रेतु-उपयोगि चरितं
तावन्मात्रं भगवतोपदिष्टम् ।

अथ चिलातदृष्टान्तेन भगवान् निर्ग्रन्थादीन् संबोध्य प्रतिबोधयति — ' एवा-
मेव ' एवमेव=अनेन प्रकारेणैव ' समणाउसो ' आयुज्जतः श्रमणाः । ' जाव पव्व-
टण समाणे ' यावत् प्रव्रजितः सन्=योऽस्माकं निर्यन्थो वा निर्ग्रन्थी वा आचार्यो-
पाध्यायानां समीपे प्रव्रजितः सन् ' इमस्स ' अस्य ' ओरालियसरीरस्स '
ओंदारिकगरीरस्य दान्तासवस्स यावद् विद्धंसनधम्मस्स ' वण्णहेउं ' वर्णहेतुं =
ज्ञानविवेकप्राप्त्यर्थम् , यावत्- ' व्वहेउं ' रूपहेतुं=सौन्दर्यार्थम् , ' वल्लहेउं '

से बाहर किया और उठाकर सुंसमा दारिका के सस्तक को काट डाला।
उस कटे हुए सस्तक को लेकर फिर निर्जन अटवी में प्रवेश कर गया।
उस अटवी में पिपासा से व्याकुल होकर वह पूर्वादि दिशाओं के
विवेक से रहित हो गया—इस तरह वह पुनः वहाँ से पीछे वापिस
अपनी सिंहगुहा नामकी चोर पल्ली में नहीं आ सका—और बीच ही में
काल बचलित बन गया। इसका अवशिष्ट चरित्र ग्रन्थान्तर से जान
लेना चाहिये। यहाँ तो भगवान् ने जितना चरित्र इसका उपयोगी
जाना उननाही उपदिष्ट किया है!—(एवामेव समणाउसो । जाव पव्व-
टण समाणे इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतासवस्स जाव विद्धंसण-
धम्मस्स वण्णहेउ जाव आहार आहारेइसे णं इहलोए चैव बह्वणं सम-

नाण्यु. ते व्याज्जेइ भायाने लधने ते निर्यन्-अयंउर अटवीमां चेत्ती गथो.
अटवीमां ते तरअथी व्याडुण थधने पूर्वं पगेरे दिशाज्जेना विवेकथी रहित
थधं गथो अने आ प्रमाणे ते इरी त्याथी ते पोतानी सिंहगुहा नामनी चोर-
पल्लीमा उअं पण्ण दिवने पाछे आवी शकथो नहि अने वन्थे व अत्यु पागथो.
तेनुं णं इीनु अग्नि पीत्त अथमाथी वल्ली लेवुं जेधंजे, अहीं तो लगवाने
अटवु अग्नि तेनुं उपयुत्ता वल्लु तेरवुं धवुं छे.

(एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वटण समाणे इमस्स ओरालियसरीरस्स
वंतासवस्स जाव सिद्धंसणधम्मस्स वण्णहेउ जाव आहार आहारेइ सेणं इहलोए

बलहेतुं=शरीरबलवर्धनार्थम्, 'वीरियहेतुं' वीर्यहेतुम्=आन्तरिकशक्तिसम्पादनार्थम्, आहारम् आहारयति, स खलु इह लोके एव बहूनां श्रमणानां श्रमणीनां श्रावकाणां श्राविकाणां च 'हीलणिज्जे जाव' हीलनीयो यावत्, यावत्पदेन, निन्दनीयः, खिसनीयः गर्हणीयो भवेत्, परलोकेऽपि दुःखं प्राप्नोति, यावत्-चातुरन्तसंसारकान्तारम् 'अणुपरियट्टिस्सइ' अनुपर्यटिष्यति=अभिष्यति, यथा स चिलातस्तस्करः-चिलाततस्करवदिति भावः ॥सू०७॥

मूलम्-तएणं से धणणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्प-छट्टे चिलायं परिधाडेमाणैर तणहाए लुहाए य संते तंते परितंते

णाणं ४ हीलणिज्जे ३ जाव अणुपरियट्टिस्सइ जहाव से चिलाए तक्करे) अब प्रभु इस चिलात के दृष्टान्त से निर्ग्रन्थ आदिकों को संबोधित कर प्रतिबोधित करते हैं-हे आयुष्मंत श्रमणों ! इसी तरह जो हमारा निर्ग्रन्थ श्रमण अथवा श्रमणीजन आचार्य उपाध्याय के पास प्रव्रजित होकर वान्तास्रववाले यावत् विध्वंसन धर्मवाले इस औदारिक शरीर में कान्ति विशेष प्राप्ति के लिये सौन्दर्य आदिरूप विशेष के लिये, बलवर्धन के लिये तथा आन्तरिक शक्ति वृद्धिके लिये आहार को लेना है-करता है- वह इस लोक में अनेक श्रमण श्रमणी, श्रावक तथा श्राविका जनों द्वारा हीलनीय यावत् निन्दनीय, खिसनीय गर्हणीय तो होता ही है-परन्तु पर भवमें भी वह दुःखों कोही पाता है। यावत् ऐसा जीव इस चतुर्गतिरूप संसार कान्तार में चिलात चोर की तरह परिश्रमण ही करता रहता है ॥ सूत्र ७ ॥

चेव बहूणं समणाणं ४ हीलणिज्जे २ जाव अणुपरियट्टिस्सइ, जहाव से चिलाए तक्करे)

७वे प्रभु ते चिदातना दृष्टान्तने सामे राणीने तिग्रंथ वगेरेने स षो-धित करीने आज्ञा करे छे के छे छे आयुष्मंत श्रमणो ! आ प्रमाणे जे अमारा निर्ग्रंथ श्रमण अथवा श्रमणीजन आचार्य के उपाध्यायनी पासे प्रव्रजित थरने वान्तास्रववाणा यावत् विध्वंसन धर्मवाणा आ औदारिक शरीरमा कति विशेषनी प्राप्ति माटे, सौंदर्य वगेरे रूप विशेषना माटे, अणवर्धन माटे तेमज आंतरिक शक्तिने वधारवा माटे आहार ग्रहण करे छे. ते आ लोकमां धणा श्रमण, श्रमणी, श्रावक तेमज श्राविकाओ वडे हीलनीय यावत् निन्दनीय, खिसनीय अने गर्हणीय तो छेय जे छे पण साथे साथे ते परलवमां पण दुःख जे भेजवे छे .यावत् जेवो जेव आ चतुर्गति रूप संसार कान्तारमां चिलात चोरनी जेम लटकतो जे रडे छे. ॥ सूत्र ७ ॥

नो संचाएइ चिलायं चोरसेणाइइं साहत्थिं गिण्हत्तए । से णं
 तओ पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता जेणेव सा सुंसुमा दारिया
 चिलाएणं जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ, उवाग-
 च्छित्ता, सुंसुमं दारियं चिलाएणं जीवियाओ ववरोवियं पासइ,
 पासित्ता परसुनियत्तेव चंपगवरपायवे धसत्तिधरणियलंसि निव-
 डइ । तएणं से धणणे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टे
 आसत्थे कूयमाणे कंदमाणे विलवमाणे महयार सद्धेणं कुहूर
 सुपरुत्ते सुचियं कालं वाहसोक्खं करेइ । तएणं से धणणे सत्थवाहे
 पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टे चिलायं तीसे अग्गामियाए अडवीए
 सव्वओ समंता परिधाडेमाणे तण्हाए लुहाए य परिभूए समाणे
 तीसे अग्गामियाए अडवीए सव्वओ समंता उदग्गस्स मग्गण-
 गवेसणं करेइ, करित्ता संते तंते परितंते, णिव्विन्ने, तीसे अग्गा-
 मियाए अडवीए उदग्गस्स मग्गणगवेसणं करेमाणे नो चेव णं
 उदग्गं आसादेइ । तएणं से धणणे सत्थवाहे अप्पच्छट्टे उदग्गं
 अणासाएमाणे जेणेव सुंसुमा जीवियाओ ववरोविया तेणेव
 उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जेदं पुत्तं धणदत्तं सदावेइ, सदावित्ता
 एवं वयामी-एवं खलु पुत्ता ! अम्हे सुंसुमाए दारियाए अट्टाए
 चिलायं तकरं सव्वओ समंता परिधाडेमाणा तण्हाए लुहाए
 य आभिभूया समाणा इमीसे अग्गामियाए अडवीए उदग्गस्स
 मग्गणगवेसणं करेमाणा णो चेव णं उदग्गं आसादेसो, तएणं
 उदग्गं, अणासाएमाणा णो संचाएसो रायगिहं संपावित्तए, तण्णं

तुम्हे ममं देवाणुप्पिया ! जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं
च आहारेइ, आहारित्ता, तेणं आहारेणं अविद्धत्था समाणा
तओ पच्छा इमं अग्गामियं अडविं णित्थरिहिह, रायगिहं च
संपावेहिह, मित्तणाइ० य अभिसमागच्छिहिह, अत्थस्स य
धम्मस्स य पुण्णस्स य आभागी भविस्सह । तएणं से जेट्टुपुत्ते
धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे धण्णं सत्थवाहं वयासी-
तुब्भे णं ताओ ! अस्हे पिया गुरुज्जण य देवभूया ठावगा पइ-
ट्ठावगा संरक्खणा संगोवगा तं कहण्णं अस्हे ताओ ! तुब्भे जीवि-
याओ ववरोवेमो, तुब्भे णं मंसं च सोणियं च आहारेमो ? तं
तुब्भे णं तातो ! ममं जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च
आहारेह, अग्गामियं अडविं णित्थरह, तं चैव सव्वं भणइ जाव
अत्थस्स जाव पुण्णस्स आभागी भविस्सह । तएणं धण्णं सत्थ-
वाहं दोच्चे पुत्ते एवं वयासी-मा णं ताओ ! अस्हे जेट्टं भायरं
गुरुदेवयं जीवियाओ ववरोवेमो, तुब्भे णं ताओ ! ममं जीवि-
याओ ववरोवेह जाव आभागी भविस्सह । एवं पंचमे पुत्ते तएणं
से धण्णे सत्थवाहे पंचण्हं पुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता, तं पचं
पुत्ते एवं वयासी-मा णं अस्हे पुत्ता ! एगमविजीवियाओ वव-
रोवेमो, एसणं सुसुमाए दारियाए णिप्पाणे णिच्चेट्टे जाव विप्प-
जटे, तं सेयं खलु पुत्ता ! अस्हे सुसुमाए दारियाए मंसं च
सोणियं च आहारेत्तए । तएणं अस्हे तेणं आहारेणं अविद्ध;
त्थासमाणा रायगिहं संपाउणिस्सासो । तएणं तं पंच पुत्ता

धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा एयमहं पडिसुणेति ।
 तएणं धण्णे सत्थवाहे पंचहिंपुत्तेहिं सद्धिं अरणिं करेइ, करित्ता,
 सरणं च करेइ, करित्ता, सरएणं अरणिं महेइ, महित्ता अग्गि-
 पाडेइ, पाडित्ता, अग्गिं संधुक्खेइ, संधुक्खित्ता दारुयाइं परि-
 क्खेवेइ, परिक्खेवित्ता, अग्गिंपज्जालेइ, पज्जालित्ता, सुंसुमाए
 दारियाए संसं च सोणियं च आहारेंति । ते णं आहारेण अवि-
 द्धत्था समाणा रायगिहं नयरं संपत्ता सिन्तणाइ० अभिसमणा-
 गया तस्स य विउलस्स धणकणगरयण जाव आभागी जाया
 यावि होत्था । तएणं से धण्णे सत्थवाहे सुंसुमाए दारियाए
 वहूइं लोइयाइं जाव विगयसोए जाए यावि होत्था ॥ सू०८ ॥

टीका—‘ तएणं से’ इत्यादि । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः पञ्चभिः पुत्रैः
 सह आत्मपुत्रः चिलातं ‘ परिधाडेमाणे २ ’ परिधावन् २=चिलातं ग्रहीतुकामस्त-
 ष्पुत्रोऽनुवावन् ‘ तण्हाए छुहाए य ’ तृणया क्षुधया च ‘ संते ’ श्रान्तः,=मनसा
 खिन्नः, ‘ तंते ’ तान्तः=शरीरेण क्लान्तः, ‘ परितंते’ परितान्तः=मनसा शरीरेण च

—तएणं से धण्णे सत्थवाहे । इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टे से
 धण्णे सत्थवाहे) पांचो पुत्रों के साथ छठा बना हुआ वह धन्यसार्थवाह
 (चिलायं परिधाडेमाणे २) चिलातचोर को पकड़ने की इच्छा से उस
 के पीछे २ घार २घार दौड़ता हुआ, (तण्हाए छुहाए य संते तंते परितंते
 नो संचाए चिलायं चोरसेणावई साहत्थि गिण्हित्तए) पिपासा और

‘तएण से धण्णे सत्थवाहे’ इत्यादि—

टीकार्थ—(तएण) त्थारपथी (पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छट्टे से धण्णे
 सत्थवाहे) पांचे पुत्रानी साथे छट्टे ते धन्य सार्थवाहु (चिलायं परिधाडेमाणे २)
 शिवात चोरनी पाछण पाछण तेने पकडी पाउवा माटे वारंवार होउतां होउतां
 (तण्हाए छुहाए य संते तंते परितंते नो संचाए चिलायं चोरसेणावई साहत्थि
 गिण्हित्तए) तस्स अने बूण्णथी श्रान्त थर्र गथे, णिन्न णनी गथे, तांत थर्र

खिन्नः, ' नो संचाण्ड ' नो शक्नोति चिलातं चोरसेनापतिं ' साहस्यि ' स्वह-
स्तेन ग्रहीतुम् । तदा स खलु ' तओ ' ततः=चिलातग्रहणव्यापारात् , ' पडि-
नियत्तइ ' प्रति निवर्तते, प्रतिनिवृत्य, यत्रैव सा सुंसुमा दारिका चिलातेन जीवि-
ताद् ' ववरोविया ' व्यपरोपिता=पृथक्कृता=मारिता सती पतिता आसीत् तत्रैव
उपागच्छति, उपागत्य सुंसुमां दारिकां चिलातेन जीविताद् व्यपरोपितां पश्यति,
दृष्ट्वा ' परसुनियत्तेव ' परशुनिकृत्त इव=परशुच्छिन्नो यथा चम्पकवरपादपस्तद्वत्

क्षुधा से श्रान्त हो गया-खिन्न बन गया, तान्त हो गया-शरीर से
मुरझा गया-परितान्त हो गया-इकदम उत्साह रहित बन गया-सो वह
उसे अपने हाथ से पकड़ने के लिये शक्तिशाली नहीं हो सका-(सेणं
तओ पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता जेणेव सो सुंसुमा दारिया चिलाएणं
जीवियाओ ववरोविया-तेणेव उवागच्छइ) अतः-वह वहाँ से लौट
आयो-और लौटकर वहाँ गया जहाँ वह अपनी पुत्री सुंसुमा चिलातचोर
के द्वारा-जीवन से रहित की गई पड़ी थी । (उवागच्छित्ता सुंसुमा
दारियं चिलाएणं जीवियाओ ववरोवियं पासइ, पासित्ता परसुनियत्तेव
चंपगवरपायवे धसत्ति धरणियलंसि निवडइ-तएणं से धण्णे सत्थवाहे
पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छट्ठे आसत्थे कूयमाणे कंदमाणे विलवमाणे
महया २ सद्देणं कुहू २ सुपरुन्ने सुचिरं कालं वाहमोक्खं करेइ) वहाँ
जाकर उसने सुंसुमा दारिका को चिलातचोर के द्वारा जीवन से रहित
की गई देखा । देखते ही वह पुत्रों सहित परशु से काटे गये उत्तम

गयो-शरीर तेनुं थिमडाधं गयुं परितांत थधं गयो-साव निइत्साडी णनी
गयो. अेवी डालतमां ते पोताना डायथी तेने पडडी पाडवामां समर्थं थधं
शक्ये नडि (से णं तओ पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता जेणेव सा सुंसुमा
दारिया चिलाएणं जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ) तेथी ते त्यांथी पाछे
इरी गयो. अने पाछे इरीने ते ण्यां चिलात चोर वडे उण्णायेली पोतानी
पुत्री सुंसुमा दारिका पडी डती त्यां गयो.

(उवागच्छित्ता सुंसुमा दारियं चिलाएणं जीवियाओ ववरोवियं पासइ
पासित्ता परसुनियत्तेव चंपगवरपायवे धसत्ति धरणियलंसि निवडइ,-तएणं से
धण्णे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छट्ठे आसत्थे कूयमाणे कंदमाणे विलव-
माणे महया २ सद्देणं कुहू २ सुपरुन्ने सुचिरं कालं वाहमोक्खं करेइ)

त्यां ञ्छने तेण्णे सुंसुमा दारिकाने चिलात चोर वडे उण्णायेली ञ्छे.
नेतानी साथे ञ् ते पुत्रोनी साथे परशु वडे क्कपाअेला उत्तम अंपक वृक्षणी

नपुत्रो धन्यः सार्थवाहः ' धमत्ति ' धस ' इति शब्दपूर्वकं धरणीतले निपतति । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः आत्मपष्ठः ' आश्वस्त ' आश्वस्त=उच्छ्वासं मुञ्चन् सचेष्टः सन् ' कृवमाणे ' कृजन् = अव्यक्तशब्दं कुर्व ' कंदमाणे ' क्रन्दन् उच्चस्वरेण, पुनः ' विलपमाणे ' विलपन्=विलापं कुर्वन् ' महया महया सदेणं ' महतामहता शब्देन=मृत्युञ्जैः शब्देन ' कुहू २ सुपरुन्ने ' कुहू २ सुपरुदन्-कुहू कुहू इति शब्दमुच्चार्यत्ययं रुदितः सन् सुचिरं कालं=बहुकालपर्यन्तं ' वाहमोक्त्वं ' चापमोक्षम्=अश्रुमोचनं करोति । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः पञ्चभिः पुत्रैः सह आत्मपष्ठः चिलातं तस्यामग्रामिकायाम् अटव्यां सर्वतः समन्तात् ' परिधाडे

चंपक वृक्ष के समान " धस " इस शब्द पूर्वक भूमिपर गिर पड़ा । बाद में पांच अपने पुत्रों के साथ आत्मपष्ठ बना हुआ वह धन्यसार्थवाह आश्वस्त, उच्छ्वास छोड़ता हुआ सचेष्ट-हो गया सो अव्यक्त शब्द करता हुआ खूब जोर २ से रोने लगा, विलाप करने लगा । एवं बहुत ऊँचे २ शब्दों से कुहू कुहू करता हुआ-हाय सांसे लेता हुआ-बहुत देरतक रोता रहा-अश्रुमोचन पूर्वक आक्रंदन करता रहा-(तएणं से धण्णे सत्यवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छे चिलायं तीसे अग्गामियाए अडवीए सव्वओ समंता परिधाडेमाणे तण्हाए छुहाए य परिभूए स तीसे अग्गामियाए अडवीए सव्वओ समंता उदगस्स मग्गणगवे करेइ) इसके बाद पांचों पुत्रों के साथ आत्मपष्ठ बना हुआ वह धन्य सार्थवाह उस अग्रामवाली अटवी में चिलातचोर के पीछे पीछे वा दौड़ता हुआ तृपा और क्षुधा से पीड़ित होकर उस अग्रामवाली अ

नेम " धस " शब्दनी साथे जमीन उपर पडी गयो. त्थारपछी पांचे पु तेम ५ छुट्टे ते धन्यसार्थवाह आश्वस्त-उच्छ्वास छोडतो-निसासा नाथतो सचेष्ट धरि गयो अने अव्यक्त शब्द करतो धूसडे धूसडे भूण नेरथी रडवा लाग्यो, विलाप करवा लाग्यो अने गलु मोटा साहे ' कुहू कुहू ' करतो डाय डाय करिने थ्यामे लेने घण्टीवार भुधी रडने रछो तेमज आंसू पाडतो आडंड करतो रछो.

(तएणं से धण्णे सत्यवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धिं अप्पच्छे चिलायं तीसे अग्गामियाए अडवीए सव्वओ समंता परिधाडेमाणे तण्हाए छुहाए य परिभूए समाणे तीसे अग्गामियाए अडवीए सव्वओ समंता उदगस्स मग्गणगवेसणं करेइ)

त्थारणाड पांचे पुत्रोनी साथे छुट्टे ते धन्यसार्थवाह ते गाम वगरनी निजंन अटवीमा चिलात चोरनी पाछण पाछण वारंवार होडतो होडतो तृपा

माणे ' परिधावन् तृष्णया क्षुधया च ' परिभूए ' परिभूतः सन् तस्यामग्रामिकायामटव्यां सर्वतः समन्तात्=चतुर्दिक्षु ' उदगस्स ' उदकस्य=जलस्य ' मग्गण-गवेसणं ' मार्गणगवेसणम्=अन्वेषणं करोति, कृत्वा श्रान्तः, तान्तः, परितान्तः ' णिव्विन्ने ' निर्विण्णः=औदासीन्यं प्राप्तः । तस्यामग्रामिकायामटव्यामुदकस्य मार्गणगवेसणं कुर्वन् नो चैव खलु उदकम् ' आसादेइ ' आसादयति=प्राप्नोति । ततः खलु स धन्यः सार्थवाह आत्मषष्ठः उदकमनासादयन् पानीयमप्राप्नुवन् यत्रैव सुंसुमा जीविताद् व्यपरोपिता सारिता सती पतिताऽऽसीत् तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य ज्येष्ठं पुत्रं धनदत्तं शब्दयति, शब्दयित्वा, एवमवदत्-एवं खलु से चारो दिशाओ मेँ जल की मार्गणा और गवेसणा करने लगा (करित्ता संते तंते परितंते णिव्विन्ने तीसे अग्गासियाए अडवीए उदगस्स मग्गण-गवेसणं करेमाणे णो चैव णं उदगं आसाएइ) मार्गणा गवेसणा करके वह श्रान्त, मन से खिन्न, तान्तशरीर से खिन्न और परितान्त-बन गया शरीर एवं मन इन दोनों से खिन्न हो गया इस तरह उस अग्रामवाली अटवी में उदकपानी की मार्गणा और गवेसणा करते हुए भी उसे जल नहीं मिला (तएणं से धण्णे सत्थवाहे अप्पच्छे उदगं अणासाएमाणे जेणेव सुंसुमा दारिया जीवियाओ ववरोविया-तेणेव उवागच्छइ) तब आत्मषष्ठ बना हुआ वह धन्यसार्थवाह उदक प्राप्त नहीं करता हुआ जहाँ सुंसुमादारिका का शव पड़ा हुआ-था वहाँ आया -(उवागच्छित्ता जेहं पुत्तं धणदत्तं सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी)

अने क्षुधा (तरस अने लूभ) थी पीडाधने ते गाम वगरनी अटवीमां योमेर पाणीनी मार्गणा अने गवेसणा करवा लाग्ये।

(करित्ता संते तंते परितंते णिव्विन्ने तीसे अग्गासियाए अडवीए उदगस्स मग्गणगवेसणं करेमाणे णो चैव णं उदगं आसाएइ)

मार्गणा तेभज गवेसणा करीने ते श्रान्त, मनथी भिन्न, तांत शरीरथी भिन्न अने परितांत भनी गयो. शरीर तेभज मन आ अनेथी ते भिन्न थर्ध गयो. आ प्रमाणे ते गाम वगरनी अटवीमां उदक-पाणी-नी मार्गणा गवेसणा करतां तेने पाणी मज्जु नडि.

(तएणं से धण्णे सत्थवाहे अप्पच्छे उदगं अणासाएमाणे जेणेव सुंसुमा दारिया जीवियाओ ववरोविया तेणेव उवागच्छइ)

त्यारे आत्मषष्ठ अनेयो ते धन्य सार्थवाह पाणी न भेजवतां न्यां सुसमा दारिकातुं मडहं पड्युं इतुं त्यां आये. (उवागच्छित्ता जेहं पुत्तं धणदत्तं सहावेइ सहावित्ता एवं वयासी) त्यां आवीने तेणे पोताना मोटा पुत्र धनदत्तने ओलाये अने ओलावीने तेणे आ प्रमाणे कहुं के—

हे पुत्राः ! चवं सुंसुमाया दारिकायाः ' अट्टाए ' अर्थाय=निमित्तं चिलातं तस्करं
 प्रति ' सव्वओ नमना ' सर्वतः समन्तात्=अट्टव्यां चतुर्दिक्षु ' परिधाडेमाणा '
 परिहारनाः ' तण्हाए ' तृष्णया=पिपासया, ' छुहाए ' क्षुधया च अभिभूतोः
 सन्तः अन्यामग्रामिकायामट्टव्यामुदकस्य मार्गणगवेपणं कुर्वन्तो नो चैव खलु
 उदकमायादयामः. ततः खलु उदकम् अनोसादयन्तः=अलभमानाः नो शक्नुमो
 राजगृहं गन्तास्तुम्, ' तण्णं ' तत्खलु=तस्मात् कारणात् खलु यूयं मां हे देवानु-
 प्रियाः ! जीविताद् व्यपरोपयत, मांसं च सोणितं च ' आहारेह ' आहारयत,
 प्राहार्यं=मुसत्या ' तेणं आहारेणं ' तेन आहारेण ' अविद्धत्या ' अविध्वस्ताः=
 शरीरनाशमप्राप्ताः सन्तः तुष्ठा सन्तः ' तओपच्छा ' ततः पश्चात् इमामग्रामिका-

वनां आकर के उसने अपने जेष्ठ पुत्र धनदत्त को बुलाया-और बुलाकर
 उससे इस प्रकार कहा-(एवं खलु पुत्ता ! अम्हे सुंसुमाए दारियाए
 अट्टाए चिलायं तस्करं सव्वओ समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए य
 अभिसुया समाणा इमी से अग्गामियाए अडवीए उदगस्स मग्गण-
 गवेसण करेमाणा णो चैव णं उदगं आसाएमो-तएणं उदगं अणासा-
 एमाणा णो संचाएमो रायगिहं संपावित्ताए) हे पुत्र सुनो अपने लोग
 सुंसुमा दारिका के निमित्त चिलानचोर के पीछे २ सब तरफ सब प्रकार
 से दौड़ते २ प्यास और भूख से दुःखी हो गये हैं हमने इस अग्राम-
 वाली अट्टवी में पानी की मार्गणा और गवेपणा भी की-परन्तु वह मिला
 नहीं अतः पानी की प्राप्ति के अभाव में अब राजगृह नगर में पहुँचने
 के लिये हम अस्मभ्यं वन चुके हैं । (तएणं तुम्हे ममं देवाणुप्पिया !
 जीवियाओ चवगेवेह मंसं च सोणियं च आहारेह, आहारित्ता तेणं
 आहारेण अविद्धत्या समाणा तओ पच्छा इमं अग्गामियं अडवि णित्थ-

(एवं खलु पुत्ता ! अम्हे सुंसुमाए दारियाए अट्टाए चिलायं तस्करं सव्वओ
 समंता परिधाडेमाणा तण्हाए छुहाए य अभिसुया समाणा इमीसे अग्गामियाए
 अडवीए उदगस्स मग्गणगवेसणं करेमाणा णो चैव णं उदगं आसाए मो-तएणं
 उदगं अणामाएमाणा णो संचाएमो रायगिहं संपावित्ताए)

हे पुत्र ! मार्गण, अग्गे सुंसुमा दारिकाने भेजववा भाटे चिलात शेरनी
 पाछण पाछण आगनेम आदे तरस लट्टनां लट्टनां तरस अने लूणथी दुःधी
 थसं मया पीजे. अग्गेजे आ गम वगरनी अट्टवीमां पाणीनी मार्गणा अने
 गवेपणा पर करी छे, परु अग्गे उउ भेजवी शक्या नथी. जेथी हवे पाणीना
 अगणमा अग्गे राजगृह नगरमां पछेव्वी शक्यु तेम वागतुं नथी.

(तएणं तुम्हे ममं देवाणुप्पिया ! जीवियाओ चवगेवेह, मंसं च सोणियं च
 आहारेह, आहारित्ता तेणं आहारेणं अविद्धत्या समाणा तओ पच्छा इमं अग्गामियं

मटवीं ' गित्थरिहिह ' निस्तरिष्यथ=पारङ्गमिष्यथ, राजगृहं च ' संपावेहिह ' संप्राप्स्यथ ' मित्तणाई० य ' मित्रज्ञातिश्च=मित्रज्ञातिस्वजनसम्बन्धिपरिजनान् ' अभिसमागच्छिहिह ' अभिसमागमिष्यथ=मित्रज्ञातिप्रभृतिभिः सह संगता भविष्यथ, तथा च ' अत्थस्स ' अर्थस्य=धनस्य च धर्मस्य च पुण्यस्य च ' आभागी ' अभागिनो = भोक्तारो भविष्यथ । ततः खलु स ज्येष्ठपुत्रो धन्येन सार्थवाहेन एव मुक्तः = अनेन प्रकारेण कथितः सन् धन्यं सार्थवाहमेव मवदत्-हे तात ! यूयं खलु अस्माकं पिता ' गुरुजणदेवयभूया ' गुरुजन-दैवतभूताः=देवगुरुजनसदृशाः ' ठावका ' स्थापकाः नीतिधर्मादौ ' पइटा-वका' प्रतिष्ठापकाः=राजादिसमक्षं स्वपदस्थापनेन प्रतिष्ठाकारकाः तथा 'संरक्खगा'

रिहिय रायगिहं च संपावेहिह) इसलिये हे देवानुप्रियों ! तुम मुझे मारडालो और मेरे मांस और रक्त से तुम अपने प्राणोंकी रक्षाकर शरीर के विनाश होने से बचाकर इस अग्रामिक अटवी से पार हो जाओगे-एवं राजगृह नगर पहुँच जाओगे । (मित्तणाइ० य अभिसमागच्छिहिह अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य आभागी भविस्सह, तएणं से जेट्ठे पुत्ते) वहाँ पहुँचकर तुम अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन, संबन्धी परिजनों के साथ मिलोगे तथा धन, धर्म और पुण्य के भोक्ता भी बनोगे-इसके बाद उस ज्येष्ठ पुत्र धनदत्त ने (धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी) धन्यसार्थवाह के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उन अपने पिता धन्यसार्थवाह से इस प्रकार कहा (तुब्भे णं ताओ ! अहं पिया गुरुजणयदेवभूया ठावगा

अडविं गित्थरिहिह रायगिह च संपावेहिह)

अथी हे देवानुप्रिय ! तमे मने भारी नापे। अने भारा भांस अने रक्तने आवे, पीवे। आधां-पीधां पछी तमे शरीरना विनाशथी उगरी जशे। अने तृप्ति भेजवीने आ गामवगरनी अटवीने पार करी जशे। अने छेवटे राजगृह नगरभां पडोथी जशे।

(मित्तणाइ य अभिसमागच्छिहिह अत्थस्स य धम्मस्स य पुण्णस्स य आभागी भविस्सह, तएणं से जेट्ठे पुत्ते)

त्यां पडोथीने तमे पो-ना मित्र, ज्ञाति, स्वजन, संबन्धी परिजनोनी साथे भजशे। तेमज धन, धर्म अने पुष्योने। उपसोग करशे। त्थारपछी मोटा पुत्र धनदत्ते

(धण्णेणं सत्थवाहेणं एवे वुत्ते समाणे धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी

धन्य सार्थवाह वडे आ प्रभाणे उडेवाया आद पोताना पिता धन्य सार्थवाहने आ प्रभाणे उल्लुं डे—

संरक्षकः वदन्त्याप्रवृत्तेः 'संगोपका' संगोपका दृश्यरितप्रवृत्तेः, 'तं' तत्=तस्मात्
 क्षाम्नात् 'वृत्तं' कथं खलु=केन प्रकारेण खलु हे तात ! वयं युष्मान् जीवि-
 काश्च द्यवरोरयामः=मान्यामः, युष्मार्कं खलु मांसं च शोणितं च कपस् आहार-
 गमः ? 'तं' तत्=तस्मात् वृत्तं खलु हे तात ! मां धनदत्तनामानं जीविताद् व्य-
 प्तोपयत=कारयत मम मांसं च शोणितं च आहारयत, अप्रामिकाप्रवृत्तीं ' गित्य-

पट्टावगा संरक्षणा संगोपका तं कण्ठं अम्हे ताओ ! तुम्हे जीवियाओ
 ववरोवेमो तुम्हं णं संसं च शोणियं च आहारमो अगमियं अडवि
 गित्यरह तं चैव सव्वं भणइ जाव अत्यस्स जाव पुण्णस्म आभागी भवि-
 न्णह) हे तात ! आप हमारे पिता हैं इसलिये आप मेरे लिये देव, गुरु-
 जन के स्थान भूत हैं। नीति धर्म आदि में मुझे स्थापित करते रहते हैं।
 राज आदि संरक्ष आप अपने पद पर मुझे बैठाते हैं इसलिये आप मेरे
 लिये स्थापक एवं प्रतिष्ठापक हैं वयेच्छा प्रवृत्ति से आप हमारी सदा
 रक्षा करते रहते हैं इसलिये आप मेरे संरक्षक हैं, दृश्यरित-प्रवृत्ति से
 आप हमें रोकते रहते हैं इसलिये आप मेरे संगोपक हैं, तो कैसे मैं हे
 तात ! आप को जीवन से रक्षित कर सकता हूँ। और कैसे आप के
 शोणित और मांस को खा सकता हूँ। इसलिये हे तात ! आप ही मुझे
 जीवन से रक्षित कर दीजिये और मेरे खून और मांस को आप खाइये
 ताकि आप उस अप्रामिका अटवी को पार कर सकें और राजगृह नगर

(तुम्हें ताओ ! अम्हं पिया गुरुजन्यदेवभूया ठागना पट्टावगा संरक्षणा
 संगोपका तं कण्ठं अम्हे ताओ ! तुम्हे जीवियाओ ववरोवेमो तुम्हं णं संसं च
 शोणियं च आहारमो अगमियं अडवि गित्यरह तं चैव सव्वं भणइ जाव अत्यस्स
 जाव पुण्णस्म आभागी भविष्णह)

हे तात ! तमे अमान पिता छे। ओथी तमे अमास देव अने गुठना
 अने छे तमे मने नीति धर्म वगेदमां प्रवृत्त पद्य करता रहे। छे। सन्त
 वगेदनी छे तमे प्येत न। स्थने मने ओसाया छे ओथी तमे मास स्थापक
 अने प्रतिष्ठापक छे। वयेच्छा प्रवृत्तिथी तमे मानी रक्षा करता रहे। छे ओथी
 तमे मांस रक्षक छे। दृश्यरित प्रवृत्तिथी तमे मने रोकता रहे। छे, ओथी
 तमे मांस संगोपक छे। तो आप ही पदस्थितिमां हे तात ! तुं तमने देवी
 दीने उपयत रक्षित अमान। मांस अने देवी दीने तमान शोणित अने मांसतुं
 लक्षण देवी मांस रक्षी हे तात ! तमे अज धनदत्तने ज जीवन रक्षित
 पदस्थी छे अने मास, पूस अने मांसतु तमे लक्षण देवी ओथी तमे आ
 मास वगदनी अप्रामिका पद देवी अने सजगुड नगरमां पट्टावगा तयां

रह ' निस्तरत=पारंगच्छत, ' तंचेव सव्वं भणइ ' तदेवसर्वं भणति=यथा धन्य सार्थवाहो ज्येष्ठं पुत्रमवदत्, तथैवायमपि तदेव सर्वं कथयति, यावत् अर्थस्य धर्मस्य पुण्यस्य च आभागिनो भविष्यथ । ततः खलु धन्यं सार्थवाहं ' दोच्चे ' द्वितीयः पुत्रधनपालनामा एवमवदत्-मा खलु हे तात ! अस्माकं ज्येष्ठं भ्रातरं ' गुरुदेवयं ' गुरुदेवतं=देव-गुरुसदृशम्, जीविताद् व्यपरोपयामः=मारयामः, यूयं खलु हे तात ! ' ममं ' मां=धनपालनामानं जीविताद् व्यपरोपयत यावत् अर्थादिफलभाजो भविष्यथ । ' एवं '=अनेन प्रकारेण ' जाव पंचमेपुत्ते ' यावत्

पहुंच कर वहां अपने मित्रादि परिजनों के साथ मिल सके । तथा धन धर्म एवं पुण्य के भोक्ता बन सके । " तं चेव सव्वं भणइ " इसका तात्पर्य यही है कि जिस प्रकार धन्यसार्थवाह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र, धनदत्त से कहा-उसी प्रकार धनदत्त ने भी अपने पिता से वैसाही कहा- (तएणं धणं सत्थवाहं दोच्चे पुत्ते एवं वयासी-माणं ताओ ! अम्हे जेट्ठे भायरं गुरुदेवयं जीवियाओ ववरोवेमो-तुव्वेणं ताओ ! ममं जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, अग्गामियं अडविं णित्थरह तं चेव सव्वं भणइ जाव अत्थस्स जाव पुण्णस्स आभागी भविस्सह) इसके बाद धन्यसार्थवाह से उसके द्वितीय पुत्र ने इस प्रकार कहा-हे तात ! आप हमारे गुरु देवनातुल्य ज्येष्ठ भाई को जीवन से रहित मत कीजिये किन्तु आप तो हे तात ! मुझे ही जीवितसे रहित कर दीजिये-और मेरे ही रक्त एवं मांस को आप खाईये पीईये-ताकि इस अग्रामिक अटवी से पार हो सके इत्यादि पहिले जैसा ही इसने

पोताना मित्रो वगेरे परिजनोनी साथे भणी शके। तेमज धन धर्म अने पुण्यना लोडता अनी शके। " तं चेव सव्वं भणइ " आने अर्थ आम थाय छे के जेभ धन्य सार्थवाडे पोताना मोटा पुत्र धनदत्तने कहुं तेमज धनदत्ते पण्ण पोताना पिताने कहुं।

(तएणं धणं सत्थवाहं दोच्चे पुत्ते एवं वयासी-माणं ताओ ! अम्हे जेट्ठे भायरं गुरुदेवयं जीवियाओ ववरोवेमो, तुव्वेणं ताओ ! ममं जीवियाओ ववरोवेह, मंसं च सोणियं च आहारेह, अग्गामियं अडविं णित्थरह तं चेव सव्वं भणइ जाव अत्थस्स जाव पुण्णस्स आभागी भविस्सह)

त्यारपछी धन्य सार्थवाडने तेना भीज पुत्रे आ प्रमाणे कहुं के छे तात ! तमे अमारा गुरुदेवता जेवा मोटा लाडने अवन रहित न करे पण्ण छे तात ! तमे मने ज भारी नाणे अने भास ज दोही अने मांसने तमे भाओ पीओ, जेथी तमे आ गाम वगरनी अटवीने पार करी शके, आम

पञ्चमः पुत्रः=तृतीयो धनदेवश्चतुर्थो धनगोपः, पञ्चमो धनरक्षितश्चाऽप्यवदत् । ततः इत्थं तेषां वचनश्रवणानन्तरं, खलु स धन्यः सार्थवाहः पञ्चपुत्राणां 'हियइच्छियं' हृदयेष्टम्=हृदयेऽस्मिन् ज्ञान्वा तान् पुत्रान् एवमवादीत्-मा खलु वयं हे पुत्राः ! एवमपि अस्माकं मध्येऽपि जीविताद् व्यपरोपयामः एतत् खलु सुंसुमाया दारिकायाः शरीरं 'णिष्पाणं' निष्पाणं=प्राणरहितम्, 'णिच्चेष्टं' निश्चेष्टं=चेष्टारहितम् 'जीवविप्पजडे' जीवविप्रत्यक्तम्=जीवहीनम्, सर्वथा मृतमस्तीत्यर्थः, तच्छ्रेयं=उचितं खलु हे पुत्राः 'अमहं' अस्माकम् सुंसुमाया दारिकाया मांसं च शोणितं च आहर्तुम्, ततः=तदनन्तरं च खलु वयं तेन आहारेण 'अ-

सुव कथा (एवं पंचमे पुत्रे) इसी तरह उससे तृतीय धनदेवने चतुर्थ धनगोपने एवं पांचवे धनरक्षित ने भी कहा-(तएणं से धण्णे सत्थवाहे पंचण्हं पुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता तं पंचपुत्ते एवं वयासी) इस के पाद उम धन्यसार्थवाह ने पांचों पुत्रों के अभिप्राय को जानकर उन अपने पांचों ही पुत्रों से इस प्रकार कहा-(माणं अमहे पुत्ता ! एगमवि जीवियाओ ववरोवेमो एसणं सुंसमाए दारियाए सर्रीए णिष्पाए णिच्चेष्टं जीवविप्पजडे-तं सेयं खलु पुत्ता ! अमहं सुंसमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेत्तए) हे मेरे पुत्रों ! मैं एक को भी जीवन से रहित नहीं करना चाहता हूँ किन्तु यह सुंसमादारिका का शरीर जो कि निष्प्राण, निश्चेष्ट, और जीवन से रहित बन गया है-इसलिये हमें उचित है कि हे पुत्रों ! हम इस सुंसमदारिका का मांस एवं शोणित

तेने! पडेइशानी जेम न् अथुं इह्यु. (एवं पंचमे पुत्रे) आ प्रमाहे न् तेने त्रीन धनदेवे, त्राधा धनगोपे अने पायभा धनरक्षिते पथु इह्यु.

(तएणं से धण्णे सत्थवाहे पंचण्हं पुत्ताणं हियइच्छियं जाणित्ता तं पंच पुत्ते एवं वयासी)

न्यारपथी ते धन्य सार्थवाडे पांचे पुत्रोनी इइथनी अलिवापा ज्जलीने पोताना ते पांचे पुत्रोने आ प्रमाहे इह्यु डे—

(माणं अमहे पुत्ता ! एगमवि जीवियाओ ववरोवेमो एसणं सुंसमाए दारियाए सर्रीए णिष्पाए णिच्चेष्टं जीवविप्पजडे-तं सेयं खलु पुत्ता ! अमहं सुंसमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेत्तए)

हे माता पुत्रो ! तमारमाधी ओइने पथु तुं मारवा भागते नथी. परंतु आ सुंसमा दारिकानुं शरीर डे ने निष्प्राणु, निश्चेष्ट अने निहिव धनी गथुं डे-ओइवा माटे अमार माटे डे पुत्रो ! ओ न् थोव्य डे डे आपहे आ सुंसमा दारिकानां मांस अने शोणितने आइओ.

विद्वत्था समाणा ' अत्रिध्वस्ताः=शरीरनाशमप्राप्ताः सन्तः राजगृहं ' संपाउणि-
स्सामो ' संप्राप्स्यामः । ततः खलु ते पञ्चपुत्राः धन्येन सार्थवाहेन एवमुक्ताः
सन्तः ' एयमट्टं ' एतमर्थम् पूर्वोक्तरूपम् ' पडिसुणेति ' प्रतिशृण्वन्ति=स्वीकु-
र्वन्ति । ततः खलु स धन्यः सार्थवाहः पञ्चभिः पुत्रैः सार्द्धम् ' अरणिं ' अरणिं
यस्मिन् मध्यमानेऽग्निरुत्पद्यते तत्काष्ठम् ' करेइ ' करोति=संगृह्णाति, कृत्वा ' सरगं'
सरकम्=निर्मथनकाष्ठं करोति=आनयति कृत्वा, सरकेण अरणिं मथ्नाति=घर्षयति
मथित्वा, ' अग्निं पाडेइ ' पातयति=मथनवशादग्निमुत्पादयति ' पाडित्ता ' पात-

खावे । (तएण अम्हे तेणं आहारेणं अविद्वत्था समाणा रायगिहं संपाउ-
णिस्सामो-तएणं ते पंच पुत्ता धण्णेणं सत्थवाहेणं एवंवुत्ता समाणा
एयमट्टं पडिसुणेति) इस से हमलोग उस आहार से शरीर नाश को
अप्राप्त होकर राजगृह नगर में पहुँच जावेंगे । इस प्रकार धन्यसार्थवाह
के द्वारा कहे गये उन पाँचों पुत्रों ने धन्यसार्थवाह के इस कथन को स्वी-
कार कर लिया । (तएणं धण्णे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धि अरणिं क-
रेइ, करित्ता सरगंच करेइ, करित्ता सरएणं अरणिं महेइ, महित्ता अ-
ग्निं पाडेइ, पाडित्ता अग्निं संधुक्खेइ, संधुक्खित्ता दारुयाइं परिक्खवेइ
परिक्खवित्ता अग्निं पज्जालेइ पज्जालित्ता सुंसमाए मंसं च सोणियं
च आहारेति) इस के बाद धन्यसार्थवाह ने पाँचों पुत्रों के साथ मिल-
कर अरणिकाष्ठ को एकत्रित किया । एकत्रित कर के फिर वह सरक
काष्ठ को निर्मथनकाष्ठ को ले आया-उसे लेकर के उसने उससे अरणि
का घर्षण किया । इस तरह घर्षण से अग्नि उत्पन्न हो गई । अग्नि के

(तएणं अम्हे तेणं आहारेण अविद्वत्था समाणा रायगिहं संपाउणिस्सामो
तएणं ते पंच पुत्ता धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्तासमाणा एयमट्टं पणिसुणेति)

अथी आपणे अथा आ आडारथी शरीर नाशथी अगरी अथने राज-
गृहं नगरमां पडेअथी अथंशुं. आ प्रभाणे धन्य सार्थवाह वडे उडेवायेवा पांचे
पुत्रेअथे धन्य सार्थवाहनी ते वातने स्वीकारी दीधी.

(तएणं धण्णे सत्थवाहे पंचहिं पुत्तेहिं सद्धि अरणिं करेइ, करित्ता, सरगं च
करेइ, करित्ता सरएणं अरणिं महेइ, महित्ता अग्निं पाडेइ, पाडित्ता अग्निं संधु-
क्खेइ, संधुक्खित्ता दारुयाइं परिक्खवेइ, परिक्खवित्ता अग्निं पज्जालेइ, पज्जा-
लित्ता सुंसमाए दारियाए मंसं च सोणियं च आहारेति)

त्यारपथी धन्य सार्थवाडे पांचे पुत्रेानी साथे भणीने अरणिं काष्ठने
अेकटुं कथुं. अेकटुं करीने तेअे सरक काष्ठने-निर्मथन काष्ठने लध आव्या.
तेने लधने तेअे तेथी अरणिका काष्ठनुं घर्षणु कथुं. आ प्रभाणे घर्षणुथी अग्नि

पिन्वा=उन्पाय अग्नि 'संपुस्खेड' संशुक्षयति=उद्दीपयति, संशुक्षय=उद्दीप्य 'दारु-
याडं' दारुजाणि=उन्वनानि तत्र 'परिक्लिखवइ' परिक्षिपति, परिक्षिप्य, अग्नि
प्रज्वालयति, प्रज्वाल्य, सुंमुमाया दारिकाया भर्जितं मांसं च शोणितं च 'आहा-
रेण' आहारयति । अनन्तर तेन आहारेण 'अविद्धत्था' अविध्वस्ताः=शरीरना-
शमप्राप्ताः मन्तो राजगृहं नगरं संप्राप्ताः 'मित्तणाई० अभिसमण्णागया' मित्र-
ज्ञाति=मित्रज्ञानिस्वजनसम्पन्निपरिजनैः सह 'अभिसमण्णागया' अभिसमन्वागताः=
संमिलिताः सन्तः तस्य च त्रिपुल्लस्य 'धणकणगरयण जाव' धनकनक रत्न यावत्
=धनकनकरत्नादिकस्य 'आभागी जाया यावि होत्था' आभागिनो जाताश्चा-
प्यभवन् । ततः खलु स धन्यः सार्थवाह. सुंमुमाया दारिकाया बहूनि लौकिकानि

उन्पन्न होने पर उसने फिर उसे धोंका-उद्दीपित किया-जब वह उद्दी-
पित हो चुकी-तब उसने उसमें लकड़ियों को लगाया-। इस तरह की
क्रिया से जब अग्नि अच्छी तरह प्रज्वलित हो चुकी-तब उसमें सुंसमा
दारिका के मांस को और खून को भूँजा-भूजकर उसे सवने खाया
पीया-(तेणं आहारेणं अविद्धत्था समाणा रायगिहं नयरं संपत्ता मित्त-
णाइ० अभिसमण्णागया तस्स च त्रिउलस्स धणकणगरयण जाव
आभागी-जाया यावि होत्था तण्णं से धण्णे सत्थवाहे सुंसमाए दारिया
ए बहूइं लोइयाइं जाव विगयसीए याविहोत्था) इस प्रकार उस आहार
की सहायता से अविध्वस्त शरीर होकर वे वहाँ से चल कर राजगृह
नगर में आ गये । वहाँ अकार वे अपने मित्रज्ञाति आदि परिजनों से
खुब हिले मिले । एवं धनकनक आदि द्रव्य के भोक्ता भी बन गये ।

उन्पन्न धर्म गये। अग्नि उत्पन्न धया णाह तेणु तेने उद्दीपित धर्यो. न्यारे ते
उद्दीपित धर्म गये त्यारे तेणु तेमा लाडडीओ भूडी. आ रीते न्यारे सारी
रीने अग्नि प्रज्वलित धर्म गये त्यारे तेमा सुंसमा दारिकाना मांसने अने
दाहाने श्रेष्ठया, श्रेष्ठया णाह तेने णधाओ णाधां-पीधां

(तेणं आहारेण अविद्धत्था समाणा रायगिहं नयरं संपत्ता, मित्तणाइ०
अभिसमणा गया, तस्स च त्रिउलस्स धणकणगरयण जाव आभागीजाया यावि
होत्था तण्णं से धण्णे सत्थवाहे सुंसमाए दारियाए बहूइं लोइयाइं जाव विगय-
सीए यावि होत्था)

आ प्रभाने ते आहारनी सहायताधी अविनष्ट शरीरवाणा धर्मने तेओ
त्यांधी स्वाना धर्मने राजगृह नगरमां आवी गया. त्यां आवाने तेओ पोताना
मित्र ज्ञानि वगेदे परिजनानी साथे भूण आतंठ-पूर्वक भया, अने धन,
कनक वगेदे द्रव्याने लोगवया लाओ. सुंसमा दारिकाना भरलु पथीना नेटवां

मृतकृत्यानि कृत्वा कालान्तरे ' विगयसोगे ' विगतशोकः=सुंसुमामरणजनितशोक-
रहितो जातश्चास्यभूत् ॥ सू० ८ ॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे
गुणसिलए चेइए समोसढे । से णं धण्णे सत्थवाहे सपुत्ते धम्मं
सोच्चा पठ्वइए, एक्कारसंगवी । मासियाए संलेहणाए सोहम्मे
उववण्णो, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ । जहा वि य णं जम्बू !
धण्णेणं सत्थवाहेणं णो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बलहेउं
वा नो विसयहेउं वा सुंसुमाए मंससोणिए आहारिए, नन्नत्थ
एगाए रायगिहं संपावणट्टयाए । एवामेव समणाउसो ! जो
अरुहं निग्गंथो वा निग्गंथी वा इमस्स ओरालियसरीरस्स वंता-
सवस्स पित्तासवस्स सुक्कासवस्स सोणियासवस्स जाव अवस्सं
विप्पजहियव्वस्स वा नो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बल-
हेउं वा नो विसयहेउं वा आहारे आहारेइ, नन्नत्थ एगाए
सिद्धिगमणसंपावणट्टयाए, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं
बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं अच्चणिज्जे
जाव वीइवइस्सइ ।

एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं
अट्टारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्टे पणत्ते त्तिवेमि ॥सू०९॥

॥ अट्टारसमं अज्झयणं समत्तं ॥

टीका—' तणं कालेणं ' इत्यादि । तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो
भगवान् महावीरो गुणशिलके चैत्ये ' समोसढे ' समवसृतः=तीर्थकरपरम्परया

सुंसुमा दारिका के मरणोत्तर काल में जो भी लौकिक कृत्य किये जाते
—वे सब भी उन्होंने किये और धीरे २ विगत शोक भी हो गए । सू० ८ ।

लौकिक कृत्यो कर्त्वां लोभये ते सर्वे—तेभ्यो पताव्या अने धीमे धीमे तेभ्यो
शोकरहित पण्यु णनी गया. ॥ सूत्र ८ ॥

समागतः । अन्नतरं स धन्यः सार्थवाहः सपुत्रो धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजितः, प्रव्रज्यान्-
 न्तम् ' एकारमंगरी ' एकादशाब्दवित्=एकादशाब्दाभित्तो जातः ' मासियाए '
 मासिया संलेखनया कालं कृत्वा ' सोहम्मे ' सौधर्मं कल्पे ' उपपन्नः ' । पुनः तत-
 श्च्युतः महाविदेहे वरैः ' मिञ्जिद्विडि ' सेत्स्यति-मुक्तिं प्राप्स्यति । सम्प्रति धन्यसार्थ-
 वाहदृष्टान्तेन जम्बूद्वीपमिति सम्बोध्य श्रीसुधर्मास्वामीप्राह ' जहा वि इत्यादिना-

' तेजं कालेणं तेणं समणं इत्यादि ।

टीकार्थ—(तेजं कालेणं तेणं समणं) उस काल और उस समय
 में (समणे भगवं महावीरे) श्रमण भगवान् महावीर (गुणशिलए
 चेदए समोसदे, से णं धण्णे सत्थवाहे सपुत्ते धम्मं सोच्चा पव्वइए-एक्का
 रमंगरी-मासियाए संलेहणाए सोहम्मे उववण्णे, महाविदेहे वासे सि-
 ञ्जिद्विडि) गुणशिलक उद्यान में आये । उनसे धर्म का उपदेश सुनकर
 वह धन्यसार्थवाह अपने पाँचों पुत्रों सहित उनके पास प्रव्रजित हो
 गया । प्रव्रजित होकर धीरे २ वह एकादशांगों का ज्ञाता भी हो गया ।
 अन्न समय में उसने एक मास की संलेखना धारणकर काल अवसर
 काल किया-तो उसके प्रभाव से वह सौधर्म कल्प में उत्पन्न हो गया-
 वहाँ से चक्र कर अब वह महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति को प्राप्त करेगा ।
 इस धन्यसार्थवाह के दृष्टान्त से जंबू स्वामीको संबोधितकर के श्री

' तेजं कालेणं तेणं समणं ' इत्यादि—

टीकार्थ—(तेजं कालेणं तेणं समणं) ते धाणे अने ते सभये (समणे
 भगवं महावीरे) श्रमण भगवान् महावीर

(गुणशिलए चेदए समोसदे । सेणं धण्णे सत्थवाहे सपुत्ते धम्मं सोच्चा
 पव्वइए-एक्कारमंगरी-मासियाए संलेहणाए सोहम्मे उववण्णे, महाविदेहे वासे
 मिञ्जिद्विडि)

गुणशिलक उद्यानमां आग्या. तेमनी पानेथी धर्मोपदेशे आंलणीने ते
 धन्य सार्थवाह, पेताना पाथे पुत्रोनी साथे तेमनी पासे प्रव्रजित थई गयो.
 प्रव्रजित थईने ते धीमे धीमे ओइइइ (अजियार) अंगोने जाता पए
 थई गयो. उवइए सपुत्तु सभये ओइइ भासनी संलेखना धारणु डरीने धाण अव-
 सरे तेहे करे थयो. ते तेना प्रभावथी सौधर्म कल्पमां उत्पन्न थई गयो.
 तथी वसीने जडे ने महाविदेह क्षेत्रमां मुक्ति प्राप्त करे. आ धन्य सार्थ
 वाहन दृष्टान्तेने साथे जम्बूद्वीपे श्रीसुधर्मास्वामीके जंबू स्वामीने संबोधित

जहावि य णं' यथाऽपि च खलु=येन प्रकारेण खलु हे जम्बू! धन्येन सार्थवाहेन नो वर्णहेतोः = नो रूपहेतोः बलहेतोः=नो विषयहेतोः. सुसुमाया दारिकाया मांस-शोणितमाहारितम्, एगाए रायगिहसंपावणद्वयाए' एकस्य राजगृह संप्रापणार्थताया अन्यत्र न, किन्तु-अहं राजगृहं संप्राप्नुगाम् इति हेतोरेव-तेन पुत्रैः सह तद् आहारितमिति भावः ।

भगवानाह—' एवामेव ' एवमेव=अनेन प्रकारेणैव ' समणाउसो ' हे आयुष्मन्तः श्रमणाः योऽस्माकं निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी वा अस्य वान्तास्रवस्य पित्ता-

सुधर्मा स्वामी ने उनसे कहा—(जहां वि य णं जंबू ! धण्णेणं सत्थवाहेणं णो वण्णहेउं वा नो रूपहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं वा सुसुमाए मंससोणिए आहारिए नन्नत्थ एगाए रायगिहं संपावणद्वयाए-एवामेव समणाउसो ! जो अहं निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थीवा इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतास्रवस्स पित्तास्रवस्स सुक्कास्रवस्स सोणियास्रवस्स जाव अवस्सं विप्पजहियव्वरस नो वण्णहेउं वा नो रूपहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं [आहारं अहारेइ, नन्नत्थएगाए सिद्धिगमणसंपावणद्वयाए) हे जंबू ! जिस तरह धन्यसार्थवाह ने अपने शरीर में कान्ति विशेष बढ़ाने के लिये, बल बढ़ाने के लिये, अथवा विषय सेवन की शक्ति बढ़ाने के लिये सुसुमा दारिका का मांस एवं शोणित नहीं खाया । किन्तु मैं पुत्रों के सहित राजगृह नगर में पहुँच जाऊँ इसी एक अभि-प्राय से सुसुमा दारिका का अपने पुत्रों सहित मांस शोणित सेवन किया—इसी तरह हे आयुष्मन्त श्रमणो ! जो हमरा निर्ग्रन्थ श्रमण जन अथवा श्रमणी जन है—वह इस वान्तास्रववाले, पित्तास्रववाले, शुक्तास्र-

करीने आ प्रभाणु क्खु के—

(जहा वि य णं जंबू ! धण्णेणं सत्थवाहेणं णो वण्णहेउं वा नो रूपहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं वा सुसुमाए मंससोणिए आहारिए नन्नत्थ एगाए राय-गिहं, संपावणद्वयाए एवामेव समणाउसो ! जो अहं निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी वा इमस्स ओरालियसरीरस्स वंतास्रवस्स पित्तास्रवस्स सुक्कास्रवस्स सोणियास्रवस्स जाव अवस्से विप्पजहियव्वरस नो वण्णहेउं वा नो रूपहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं वा आहारं अहारेइ, नन्नत्थ एगाए सिद्धिगमणसंपावणद्वयाए)

हे जंबू ! जेभ धन्य सार्थवाडे पोताना शरीरमां कान्ति विशेषनी वृद्धि करवा भाटे अजनी वृद्धि भाटे अथवा विषय सेवननी शक्तिना वर्धन भाटे सुसुमा दारिकानां मांस अने शोणित नडि पाधां, पणु पुत्रो सहित हुं राज-गृह नगरमां पहुँची जडि आ अेक ज मतलअथी पोताना पुत्रोनी साथे सुसुमा दारिकाना मांस-शोणित सेवन कर्यां. आ प्रभाणु हे आयुष्मन्त श्रमणो ! जे अमारा निर्ग्रन्थ श्रमणजन अथवा श्रमणीजनो छे तेओ आ वान्ता-

स्रवस्य शुक्रास्रस्य ' जाव आस्रं विपत्रहियव्वस्स ' यावद् अवश्यं विप्रत्या-
ज्यस्य औदारिकशरीरस्य नो वर्णहेतोर्वा, नो रूपहेतोर्वा नो बलहेतोर्वा, नो
विषयहेतोर्वा, आहारमाहरति=आहारं करोति, ' एगाए सिद्धिगमणसंपावणद्वयाए'
एकस्याः सिद्धिगमनसंप्रापणार्थतायाः ' नन्नत्थ ' अन्यत्र न, मोक्षप्राप्तिरूपं प्रयो-
जनं विहाय वर्णादिप्रयोजनेन आहारं नाहरतीति भावः । स =निर्ग्रन्थो वा निर्ग्रन्थी
वा खलु ' इहभवे चेव ' इहभवे एव=अस्मिन् जन्मन्येव बहूनां श्रमणानां बहूनां
श्रमणीनां बहूनां श्रावकाणां बहूनां श्राविकाणाम् ' अच्चणिज्जे ' अर्चनीयः=
आदरणीयः ' जाव वीइवइस्सइ यावद् व्यतिव्रजिप्यति=चातुरन्तसंसारकान्तार-
मूललङ्घयिष्यति-संसारपार गमिष्यतीत्यर्थः ।

वाले, यावत् अवश्य परित्याग होने की योग्यतावाले इस औदारिक
शरीर में कान्ति विशेष बढ़ाने के लिये बल बढ़ाने के लिये, अथवा
विषय की प्रवृत्ति चालू रखने के लिये आहार नहीं लेता है किन्तु-एक-
केवल सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त करने के लिये ही आहार लेता
है । मोक्ष प्राप्तिरूप प्रयोजन को छोड़कर और किसी कान्ति आदि बढ़ाने
के अभिप्राकरूप प्रयोजन से निर्ग्रन्थ श्रमण श्रमणी जन अहार नहीं
लिया करते हैं-(सेणं) ऐसे निर्ग्रन्थ श्रमण श्रमणी जन (इहभवे चेव
बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं अच्च-
णिज्जे जाव वीइवइस्सइ) इस भव में ही अनेक श्रमण, श्रमणी, जनों
द्वारा तथा श्रावक श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय-आदरणीय यावत् इस
चतुर्गतिरूप संसार कान्तार को पारकरने वाले होते हैं । (एवं खलु

स्रववाणा, पित्तास्रववाणा, शुक्रास्रववाणा यावत् योश्चस नष्ट धनारा आ
औदारिक शरीरमां कान्ति विशेषनी वृद्धि माटे, अणनी वृद्धि माटे अथवा तो
विषयनी प्रवृत्ति चालू राभवा माटे आहार लेतो नथी पणु इधन ओइ व
सिद्धगति नामक स्थानने भेणववा माटे व आहार अडणु करे छे मोक्षप्राप्ति
इय प्रयोजन वगर वृणीवु कौथ कानि वगेरेनी वृद्धिनी अभिलाषा राभीने
निर्ग्रथ-श्रमणीजन आहार अडणु करता नथी. (सेणं) अथा निर्ग्रथ
श्रमणु श्रमणीजनो—

(इहभवे चेव बहूणं समणाणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं
अच्चणिज्जे जाव वीइवइस्सइ)

आ भवमां व धया श्रमणु श्रमणीजनो वडे तेमव श्रवथ-श्राविकाओ
वडे अर्थनीय, आदरणीय यावत् आ चतुर्गति इय संसार कान्तारने पार
करी जनारा होय छे.

सुधर्मास्वामीप्राह— ' एवं ' अनेन पूर्वोक्तप्रकारेण खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण 'जात्र संपत्तेण' यावत् संप्राप्तेन=मोक्षंगतेन अष्टादशस्य ज्ञाता-ध्ययनस्य ' अयमट्टे ' अयमर्थः=पूर्वोक्तरूपोऽर्थः प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः, ' त्ति वेमि ' इति ब्रवीमि=अस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० ९ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितक-लापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूच्छ-त्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त-'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुरराज-गुरु-वालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकरपूज्यश्री-घासीलाल-व्रतिविरचितायां-ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रस्यानंगारधर्माभृतवर्षि-ण्याख्यायां व्याख्यायामष्टादशमध्ययनं समाप्तं ॥ १८ ॥

जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जात्र संपत्तेणं अट्टारसमस्स णाय-ज्झयणस्स अयमट्टे पण्णत्तिवेमि) इस प्रकार से हे जंबू ! श्रमण भग-वान् महावीरने जो सिद्धि गति नमक स्थान को प्राप्त हो चुके हैं इस अठारहवें ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्तरूप से अर्थ प्ररूपित किया है। ऐसा जो मैंने कहा है वह उन्हीं के श्री मुख निर्गतवाणी को सुनकर ही कहा है-अपनी और से इसमें कुछ भी मिलाकर नहीं कहा है ॥ सू० ९ ॥ श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर पूज्य श्री घासीलालजी महाराज कृत " ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र " की अनंगारधर्माभृतवर्षिणी व्याख्याका अठारहवां अध्ययन समाप्त ॥ १८ ॥

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जात्र संपत्तेणं अट्टारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्टे पण्णत्तिवेमि)

आ प्रभाणे डे जंबू ! श्रमणु लगवान महावीरे-के जेओ सिद्धगति नामक स्थानने भेणवी युक्क्या छे-आ अठारमा ज्ञाताध्ययनने आ पूर्वोक्त इथी अर्थ प्ररूपित कयो छे. आवुं जे मे' कहुं छे, ते तेमना ज श्रीमुअथी नीकणेदी वाष्णीने सांलणीने ज कहुं छे. पोताना तरइथी उमेरीने मे' कहुं नथी. ॥ सूत्र ९ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर पूज्य श्री घासीलाल महाराज कृत

" ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र " नी अनंगारधर्माभृतवर्षिणी व्याख्यानुं

अठारहवें अध्ययन समाप्त ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंशतितममध्ययनम्—

गतमष्टादशमध्ययनम्, साम्प्रतमेकोनविंशतितमं व्याख्यायते, अस्य च पूर्वेण सह अयमभिसम्बन्धः—पूर्वस्मिन्नध्ययने असंवृतास्रस्य तदितरस्य च अनर्थार्थौ उक्तौ, इह तु चिरं संवृतास्रत्रोऽपि यः पश्चादन्यथा स्यात्तस्य अल्पकालं संवृतास्रवस्य च अनर्थार्थौ प्रोच्येते, इत्येवं सम्बन्धेनायातस्यास्येदमादिसूत्रम्—‘जङ्गंभंते’ इत्यादि ।

॥ पुण्डरीक-कण्डरीक नाम का उन्नीसवां अध्ययन प्रारंभ ॥

अठारहवां अध्ययन समाप्त हो चुका—अब १९ वां अध्ययन प्रारंभ होता है—इस अध्ययन का पूर्व अध्ययन के साथ इस प्रकार का संबन्ध है पूर्व अध्ययन में असंवृतास्रव अथवा संवृतास्रव वाले प्राणी को अर्थ एवं अनर्थ की प्राप्ति होना समर्थित किया गया है—अर्थात् असंवर वालेको अनर्थ की प्राप्ति होती है और संवरवाले को इष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है । अब इस अध्ययन में सूत्रकार यह प्रदर्शित कर रहे हैं कि जिस प्राणी ने चिरकाल से आस्रवको संवृत कर दिया है—परन्तु यदि वह पीछे से असंवृतास्रव वाला बन जाता है तो उसके अनर्थ की प्राप्ति तथा अल्प काल भी जिसने आस्रव को संवृत कर दिया है उसके अर्थ की प्राप्ति होती है । इस संबंध को लेकर प्रारंभ किये गये इस अध्ययन का यह सर्व प्रथम सूत्र है ।

पुण्डरीक-कण्डरीक नामे ओगणुसिमुं अध्ययन प्रारंभ

अठारसु अध्ययन पुश्चर्थ गयुं छे डवे ओगणुसिमुं अध्ययन शरु थाय छे आ अध्ययनने ओना पूर्वना अध्ययननी साथे आ नतनेो संबंध छे के पूर्व अध्ययनमां असंवृतास्रव अथवा संवृतस्रववाणा प्राणीने अर्थ अने अनर्थनी प्राप्ति थाय छे, ते वातनुं समर्थन करवामां आव्यु छे. ओटवे के असंवरवाणाओने अनर्थनी प्राप्ति डोय छे अने संवरवाणाओने इष्ट-अर्थनी प्राप्ति डोय छे डवे आ अध्ययनमां सूत्रकार आ वातनुं स्पष्टीकरणु करी रह्या छे के ने प्राणीओे चिरकाणथी ओटवे के णहु लांभा वणतथी आस्रवने संवृत करी दीघो छे, परंतु ने ते पाछणथी ओटवे के लविण्यमां असंवृतास्रववाणो णनी नय छे तो तेने अनर्थनी प्राप्ति तेमज थोडा वणत सुधी पणु नेणु आस्रवने संवृत करी दीघो छे तेने अर्थनी प्राप्ति थाय छे. आ वातने लधने आरंभाओेला आ अध्ययननुं आ पडेलु सूत्र छे:—

मूलम्—जइणं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव
संपत्तेणं अट्टारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्टे पणत्ते, एगूण-
वीसइमस्स णायज्झयणस्स के अट्टे पणत्ते ? एवं खल्लु जंबू !
तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूदीवे दीवे पुव्वविदेहेवासे
सीयाए महाणईए उत्तरिह्ले कूले नीलवंतस्स दाहिणेणं उत्तरि-
ह्लस्स सीयामुहवणसंडस्स पच्चत्थिमेणं एगसेलगस्स वक्खारपव्व-
यस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं पुक्खलावई णामं विजए पन्नत्ते ।
तत्थ णं पुंडरिगिणी णामं रायहाणी पन्नत्ता णवजोयणवित्थि-
ण्णा दुवालसजोयणायामा जावपच्चक्खं देवलोगभूया पासाईया
दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा । तीसेणं पुंडरिगिणीए णयरीए
उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए णलिणिवणे णामं उज्जाणे । तत्थ णं
पुंडरिगिणीए रायहाणीए महापउमे णामं राया होत्था, तस्स
णं पउमावई णामं देवी होत्था । तस्स णं महापउमस्स रन्नो
पुत्ता पउमावईए देवीए अत्तया दुवे कुमारा होत्था, तं जहा-
पुंडरीए य कंडरीए य, सुकुमालपाणिपाया० । पुंडरीए जुव-
राया । तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं, महापउमे राया
णिग्गए धम्मं सोच्चा, पोंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए पोंडरीए
राया जाए, कंडरीए जुवराया, महापउमे अणगारे चोइसपुव्वाइं
अहिज्जइ, तएणं थेरा बहिया जणवयविहारं विहरंति, तएणं
से महापउमे बहूणि वासाइं जाव सिद्धे ॥ सू० १ ॥

टीका—‘ जङ्घं भंते ’ इत्यादि । यदि खलु हे भदन्त ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत्संप्राप्तेन अष्टादशस्य ज्ञाताऽध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः, पुनः खलु हे भदन्त ! एकोनविंशतितमस्य ज्ञाताऽध्ययनस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? इति जम्बूस्वामी-प्रश्नानन्तरं सुधर्मास्वामी कथयति—एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहैव ‘ जंबूदीवे दीवे ’ जम्बूद्वीपे द्वीपे=मध्यजम्बूद्वीपे ‘ पुव्वविदेहेवासे ’ पूर्वविदेहे वर्षे शीताया महानद्याः ‘ उत्तरीये=उत्तरदिक् स्थिते कूले=तीरे ‘ नील-वंतस्स दाहिणेणं ’ नीलवतो दक्षिणे=नीलवतः पर्वतस्य दक्षिणेभागे ‘ उत्तरिल्लस्स ’ उत्तरीयस्य=उत्तरदिक् स्थितस्य ‘ सीयामुहवणसण्डस्स ’ सीतामुखवनपण्डस्य=शीताया नद्या यन्मुखमुद्गमस्थान, तत्र यद् वनपण्डम् तस्य, ‘ पच्चत्थिमेणं ’

‘ जङ्घं भंते । समणेणं भगवया महावीरेण ’ इत्यादि ।

टीकार्थः—जंबू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि (जङ्घं भंते समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्टारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते एगूणवीसइमस्स णायज्झयणस्स के अट्ठे पणत्ते ?) हे भदन्त ! यदि श्रमण भगवान् महावीरने कि जो सिद्धि गति नामक मुक्तिस्थान को प्राप्त कर चुके हैं अठारहवें ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्तरूप से अर्थ निरूपित किया है—तो उन्हीं श्रमण भगवान् महावीरने १९ वें ज्ञाताध्ययन का क्या भाव-अर्थ निरूपित किया है ? (एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूदीवे दीवे पुव्वविदेह वासे सीयाए महाणईए उत्तरिल्ले कूले नीलवंतस्स दाहिणेणं उत्तरिल्लस्स सीयामुहवणसंडस्स पच्चत्थिमेणं एगसेलगस्स वक्खारपव्वयस्स

‘ जङ्घं भंते ! समणेण भगवया महावीरेणं—

टीकार्थः—जंबू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामीने पूछे छे के :

(जङ्घं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं अट्टारसमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते एगूणवीसइमस्स णायज्झयणस्स के अट्ठे पणत्ते ?)

हे भदन्त ! जे श्रमणु लगवान महावीरे—के जेभणु सिद्धिगति नामक मुक्तिस्थानने भेजवी लीधुं छे—अठारभा ज्ञाताध्ययनने आ पूर्वोक्त रूपमां अर्थ निरूपित कथी छे त्तारे ते जे श्रमणु लगवान महावीरे ओगणीसभा ज्ञाताध्ययनने शे लाव-अर्थ निरूपित कथी छे ?

(एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबू दीवे दीवे पुव्व-विदेहवासे सीयाए महाणईए उत्तरिल्ले कूले नीलवंतस्स दाहिणेणं उत्तरिल्लस्स

पाश्चात्ये=पश्चिमेभागे ' एगसेलगस्स ' एकशैलकस्य=मध्यजम्बूद्वीपमेरुपर्वतसमीप-
स्थस्य एक शैलकनामकस्य ' वक्खारपव्वयस्स ' वक्षस्कारपर्वतस्य ' पुरत्थिमेणं '
पौरस्त्ये=पूर्वस्यां दिशि ' एत्थणं ' अत्र खलु पुष्कलावती नाम विजयः प्रज्ञप्तः ।
तत्र खलु पुण्डरीविष्णी नाम राजधानी प्रज्ञप्ता, सा ' णवजोयणवित्थिण्णा '
नवयोजनविस्तीर्णा = नवयोजनविस्तारवती ' दुवालसजोयणायामा ' द्वादश-
योजनायामा=द्वादशयोजनानि आयामो दैर्घ्वं यस्याः सा=द्वादशयोजनदीर्घेत्यर्थः,
पुनः ' जाव पच्चक्खं देवलोयभूया यावत् प्रत्यक्षदेवलोकभूता=साक्षात् स्वर्गसदृशा-
पुनः प्रासादीया, दर्शनीया, अभिरूपा, प्रतिरूपा । तस्याः खलु पुण्डरीकिण्याः

पुरत्थिमेणं एत्थणं पुष्कलावती नाम विजयं पणत्ते) इस प्रकार जंबूस्वामी
के पूछने पर सुधर्मा स्वामी उनसे कहते हैं-खुनो-तुम्हारे प्रश्न का
उत्तर इस प्रकार है उस काल और उस समय में इस जंबूद्वीप नाम के
द्वीप में पूर्व विदेह क्षेत्रमें, शीत महानदी के उत्तरदिग्वर्ती तीर पर स्थित
नील पर्वत के दक्षिण दिग्भाग में, तथा उत्तर दिग्वर्ती शीतामुखवनषंड
के पश्चिम भाग में, तथा एक शैलक नाम वाले वक्षस्कार पर्वत की पूर्व
दिशा में पुष्कलावती इस नाम का विजय है । शीतामुखवनषंड
का तात्पर्य यह है-कि जहां से शीतानदी निकली है उस उद्गमस्थान
पर एक वनषंड है । मध्य जंबूद्वीप और मेरुपर्वत के समीप में रहा
हुआ एक शैलक नाम का वक्षस्कार पर्वत है ।-(तएणं पुण्डरिगिणीणामं
रायहाणी पन्नत्ता, णवजोयणवित्थिण्णा दुवालसजोयणायामा, जाव पच्च-
क्खं देवलोयभूया पासार्इया, दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा) उस

सीयामुहवणसंडस्स पच्चत्थिमेणं एगसेलगस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं
एत्थणं पुष्कलावती नामं विजयं पणत्ते)

आ प्रमाणे जंबू स्वामीना प्रश्नने सांलणीने श्री सुधर्मा तेमने कडेवा
लाग्या के डे जंबू ! सांलणो, तमारा सवालनो जवाण आ प्रमाणे छे के
ते काणे अने ते समये आ जंबूद्वीप नामक द्वीपमां पूर्व विदेह क्षेत्रमां,
शीता महा नदीना उत्तर दिशा तरइना किनारा उपर आवेला नील पर्वतना
दक्षिण दिग्भागमां तेमज उत्तर दिशामां आवेला सीता मुखवनषंडना पश्चिम
भागमां, तेमज ओक शैलक नामवाणा वक्षस्कार पर्वतनी पूर्व दिशामां पुष्क-
लावती नामे ओक विजय छे. सीता मुखवन-षंडनो अर्थ आम समजवे
जेधजे के जयांथी शीता नदी निकली छे, ते उद्गम स्थान उपर ओक वनषंड छे.
मध्य जंबूद्वीप अने मेरुपर्वतनी पांसे आवेला ओकशैलक नामे वक्षस्कार पर्वत छे.

(तएत्थणं पुण्डरिगिणीणामं रायहाणी पन्नत्ता, णव जोयणवित्थिण्णा दुवालसजो-
यणायामा, जाव पच्चक्खं देवलोयभूया पासार्इया, दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा)

नगर्याः उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे नलिनीवनं नाम उद्यानम् । तत्र खलु पुण्डरीकिण्यां राजधान्यां महापद्मो नाम राजाऽऽसीत् । तस्य खलु पद्मावती नाम देवी आसीत् । तस्य खलु महापद्मस्य राज्ञः पुत्रो पद्मावत्या देव्या आत्मजा द्वौ कुमारौ आस्ताम् । 'तं जहा' तद्यथा तयोर्नामरूपे, तदाह—'पुंडरीए य कंडरीए य सुकुमालपाणिपाया' पुण्डरीकश्च कण्डरीकश्च सुकुमारपाणिपादौ कोमलकरचरणौ । तयोर्मध्ये पुण्डरीको युवराजाऽऽसीत् । तस्मिन् काले तस्मिन् समये 'थेरागमणं'

पुष्कलावती विजय में पुंडरी किनी नाम राजधानी थी । यह नव योजन विस्तारवाली तथा १२ योजन की लंबी है यह साक्षात् स्वर्ग जैसी प्रतीत होती है । प्रासादीयचिह्न एवं अन्तःकरण को यह प्रसन्न करने वाली है, दर्शनीय-नेत्रों को तृप्ति करने वाली है, अभिरूप-असाधारण रचना से युक्त हैं एवं प्रतिरूप है—इसके जैसी और दूसरी कोई नगरी नहीं हैं ऐसी । (तीसेणं पुंडरिगिणीए गयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए णलिणिवणे णामं उज्जोणे-तत्थ णं पुंडरिगिणीए रायहाणीए महापउमे णामं राया होत्था-तस्सणं पउमावईणामं देवी होत्था, तस्स णं महापउमस्स रण्णो पुत्ता पउमावईए देवीए अत्तया दुवे कुमारा होत्था) उस पुंडरीकिणी नगरी के उत्तर पौरस्त्य दिग्भाग में नलिनीवन नाम का एक उद्यान था । उस पुंडरीकिणी राजधानी में महापद्मनाम का एक राजा रहता था । उसकी देवी का नाम पद्मावती था । उस महापद्म राजा के यहां पद्मावती की कुक्षि से उत्पन्न हुए दो कुमार थे (तं जहा पुंडरीए य, कंडरीए य—सुकुमालपाणि पाया० । पुंडरीए जुवराया तेणं कालेणं

ते पुष्कलावती विजयमां पुंडरीकिनी नामे राजधानी इती ते नव योजन जेटला विस्तारवाणी तेभञ्ज णार योजन जेटली लांणी छे ते प्रत्यक्ष स्वर्ग जेवी ज लागे छे । ते प्रासादीयचिह्न अने अन्तःकरणे ते प्रसन्न करनारी छे, दर्शनीय-आंजोने ते तृप्त करनारी छे, अभिरूप ते असाधारण (अपूर्व) रचनावाणी छे, अने प्रतिरूप-अना जेवी णीए छे। ई नगरी नथी जेवी छे ।

(तीसेणं पुंडरिगिणीए गयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए णलिणिवणे णामं उज्जोणे-तत्थणं पुंडरिगिणीए रायहाणीए महापउमे णामं राया होत्था-तस्सणं पउमावईणामं देवी होत्था, तस्सणं महापउमस्स रण्णो पुत्ता पउमावईए देवीए अत्तया दुवे कुमारा होत्था)

ते पुंडरीकिणी नगरीना उत्तर पौरस्त्य दिग्दिशागमां नलिनीवन नामे एक उद्यान इतो ते पुंडरीकिणी राजधानीमां महापद्म नामे एक राजा रहतेता इतो तेनी राणीनुं नाम पद्मावती इतुं ते महापद्म राजने त्यां पद्मवती देवीना गर्लथी उत्पन्न थयेला जे राजकुमार इता ।

स्थविरागमन=तस्या राजधान्या नलिनीवने उद्याने स्थविराणामागमनमभूत् । महापद्मो राजा धर्मं श्रोतुं निर्गतः, धर्मं श्रुत्वा संजातवैराग्यः पुण्डरीकं राज्ये स्थापयित्वा प्रव्रजितः । अनन्तर पुण्डरीको राजा जातः, कण्डरीको युवराजः । महापद्मऽनगारः चतुर्दशपूर्वाणि अधीते । ततः खलु स्थविरा बहिर्जयविहारं विहरन्ति । ततः खलु स महापद्मो बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा यावद् सिद्धः॥मू० १॥

तेणं समएणं थेरागमणं, महापउमे राया णिग्गए, धम्मं सोच्चा पोंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए । पोंडरीए राया जाए, कंडरीए जुवराया । महापउमे अणगारे चोदसपुव्वाइं अहिज्जइ, तएणं थेरा बहिया जणवयविहारं विहरंति, तएणं से महापउमे बहूणि वासाइं जाव सिद्धे) उनके नाम इस प्रकार है-१ पुंडरीक और दूसरा कंडरीक-ये दोनों पुत्र सुकुमार करचणवाले थे । पुंडरीक को पिता ने युवराज पदप्रदान किया था । उस काल में और उस समय वहाँ स्थविरों का आगमन हुआ । महापद्मराजा धर्म का व्याख्यान सुनने के लिये अपने महल से निकलकर नलिनीवन उद्यान में आये । वहाँ धर्म का उपदेश सुनकर उन्हे वैराग्यभाव उत्पन्न हो गया-सो वे पुंडरीक को राज्य में स्थापितकर दीक्षित हो गये । पुंडरीक राजा बन गया-और कंडरीक युवराज हो गया । महापद्मराजर्षि ने चौदह पूर्वों का अध्ययन कर लिया । इसके बाद वहाँ से स्थविरों ने

(तं जहा-पुंडरीए य, कंडरीए य-सुकुमालपाणिपाया० । पुंडरीए जुवराया तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरागमणं, महापउमे राया णिग्गए, धम्मं सोच्चा पोंडरीयं रज्जे ठवेत्ता पव्वइए । पोंडरीए राया जाए, कंडरीए जुवराया । महापउमे अणगारे चोदसपुव्वाइं अहिज्जइ, तएणं थेरा बहिया, जणवयविहारं विहरंति, तएणं से महापउमे बहूणि वासाइं जाव सिद्धे)

तेमनां नामो आ प्रभाणु छे-१ पुंडरीक, अने २ कंडरीक आ अने पुत्रो सुकुमार उद्य-पगवाणा उता. राज्जे पुंडरीकने युवराजपद प्रदान कथुं उतुं. ते काले अने ते समये त्यां स्थविरानुं आगमन थयुं. मडापद्म राज धर्मनुं व्याख्यान सांलणवा भाटे योताना मडेलथी नीकणीने नलिनीवन उद्यानमां आण्यो. त्यां धर्मपदेश सांलणीने तेने वैराग्यभाव उत्पन्न थछ गयो. छेवटे पुंडरीकने राज्यासने स्थापित करीने तेओ दीक्षित थछ गया पुंडरीक राज थछ गयो अने कंडरीक युवराज थछ गयो. मडापद्म राजर्षिओ चौदह पूर्वानुं अध्ययन करी लीधु. त्यारपछी स्थविरा त्याथी गडार जनपदोमां विहार

मूळम्—तएणं थेरा अन्नया कयाइं पुणरवि पुंडरिगिणीए रायहाणीए णलिणिवणे उज्जाणे लमोसढा, पोंडरीए राया णिग्गए । कंडरीए महाजणसइं सोच्चा जहा महावलो जाव पज्जुवासइ । थेरा धम्मं परिकहेति पुंडरीए समणोवासए जाए जाव पडिगए । तएणं से कंडरीए उट्टाए उट्टेइ, उट्टाए उट्टित्ता जाव से जहेयं तुव्भे वदह जं णवरं पुण्डरीयं रायं आपुच्छामि, जाव पव्वयामि । अहासुहं देवाणुप्पिया ! तएणं से कंडरीए जाव थेरे वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता तस्से च्चाउग्घटं आसरहं दुरुहइ जाव पच्चोरुहइ, जेणोव पुण्डरीए राया तणेव उवागच्छइ करयल जाव पुंडरीयं एवं वयासी—एवं खल्ल देवाणुप्पिया ! मए थेराणं अंतिए जाव धम्मे निसंते से धम्मे जाव अभिरुइए, तएणं देवाणुप्पिया ! जाव पव्वइत्तए । तएणं से पुंडरीए कंडरीए एवं वयासी—साणं तुमं देवाणुप्पिया ! इयाणिं मुंडे जाव पव्वयाहि, अहं णं तुमं सहयार रायाभिसेएणं अभिसिंचामि । तएणं से कंडरीए पुंडरीयस्स रण्णो एयमट्ठं णो आढाइ णो-परिजाणइ तुसिणीए संचिट्ठइ । तएणं पुण्डरीए राया कंडरीयं दोच्चंपि लच्चंपि एवं वयासी—जाव तुसिणीए संचिट्ठइ । तएणं पुण्डरीए कंडरीयं कुमारं जाहे नो संचाएइ, वड्ढहिं आववणाहि

वाहिर जनपदों में विहार कर दिया। महापद्म अनगार ने अनेक वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर चोवत् सिद्धपद को प्राप्त कर लिया ॥ सू० १ ॥

भाटे नीउणी पउया. महापद्म अनगारे धणां वर्षो सुधी श्रामण्य पर्यायतुं पासन उदीने यावत् सिद्धपदने प्राप्त उरी वीधु ॥ सूत्र १ ॥

य पणवणाहि यः ताहे अकामए चेव एयमट्टं अणुमन्नित्था जाव णिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ जाव थेराणं सीसभिव्खं दलयइ । पवइए अणगारे जाए एगारसंगविऊ । तएणं थेरा भगवंतो अन्नया कयाइं पुंडरिगिणीओ नयरीओ णलिणीवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति पडिणिक्खमिन्ता वहिया जणवय-विहारं विहरंति ॥ सू० २ ॥

टीका—‘ तएणं ते ’ इत्यादि । ततः खलु ते स्थविरा अन्यदा कदाचित् पुण्डरीकिण्या राजधान्या नलिनीवने उद्याने समवसृताः=समगताः । तेषां समागमनं श्रुत्वा पुण्डरीको राजा तान् वन्दितुं निर्गतः । अनन्तरम्—कण्डरीको ‘ महाजणसदं ’ महाजनशब्दं=स्थविरान् वन्दितुं कामानां गच्छतां बहूनां जनानां कोलाहलं श्रुत्वा ‘ जहा महावलो जाव पपज्जुवासइ ’ यथामहावलो यावत्पर्युपास्ते । महावल इव स्थविराणां समीपे गत्वा तान् वन्दित्वा नमस्वित्वा सेवते । स्थविरा धर्मं ‘ परिकर्हेति ’ परिकथयन्ति=उपदिशन्तीत्यर्थः । तैरुपदिष्टं धर्मं श्रुत्वा पुण्डरीकः श्रमणोपासको जातः ‘ जाव पडिगए ’ यावत्प्रतिगतः=स्थविरान् वन्दित्वा

‘ तएणं ते थेरा अन्नया कयाइं ’ इत्यादि ।

टीकार्थः—(तएणं) इसके बाद (ते थेरा) वे स्थविर (अन्नया कयाइं) किसी एक समय (पुणरवि) फिर से (पुंडरिगीणीए रायहाणीए णलिणिवणे उज्जाणे समोसदा, पोंडरीए रायाणिग्गए) पुंडरीकिणी राजधानी में आये । वहां वे नलिनीवन उद्यान में ठहरे । पुंडरीक राजा उनका आगमन सुनकर धर्म सुनने की इच्छा से वहां जाने के लिये अपने महल से निकले । (कंडरीए महाजणसदं सोच्चा जहा महावलो जाव पज्जुवासइ, थेरा धम्मं परिकर्हेति, पुंडरीए समणोवासए जाए जाव

‘ तएणं ते थेरा अन्नया कयाइं ’ इत्यादि—

टीकार्थः—(तएणं) त्पारपधी (ते थेरा) ते स्थविरे (अन्नया कयाइं) केरु केरु वभते (पुणरवि) इरी (पुंडरिगीणीए रायहाणीए णलिणिवणे उज्जाणे समोसदा, पोंडरीए रायाणिग्गए) पुंडरीकिणी राजधानीमां आया. त्यां तेओ नलिनीवन उद्यानमां रेकाया. पुंडरीक राज तेमनुं आगमन सांलणीने धर्मनुं व्याभ्यान सांलणवानी धम्मथी त्यां जवा भाटे पोताना मडेदथी नीकया. (कंडरीए महाजणसदं सोच्चा जहा महावलो जाव पज्जुवासइ, थेरा धम्मं परि-

नमस्यित्वा प्रतिनिवृत्तः । ततः खलु कण्डरीकः ' उट्टाए ' उत्थया=उत्थानशक्त्या उत्तिष्ठति, उत्थया उत्थाय ' जाव ' यावत् स्थविरान् वन्दित्वा नमस्यित्वा एव-मवदन्- ' से जहेयं तुवमे वदह ' तद्यथेदं यूयं वदथ=हे देवानुप्रियाः ! यूयं यथा यद् वदथ, तत्तथैव, ' जं णवरं ' यन्नवर=यो विशेष सचैवम्-यदहं पूर्वं पुण्डरीकं राजानम् आपुच्छामि । ततः खलु ' जाव पव्वयामि ' पावत् प्रव्रजामि ।

पडिगए) इसके बाद कंडरीक युवराज स्थविरो को वंदना करने के लिये जानेवाले अनेक मनुष्यों का कोलाहल सुनकर महाबल राजा की तरह स्थविरो के पास गया-वहां जाकर उसने उनकी वंदना की-नमस्कार किया । वंदना नमस्कार कर फिर उसने उनकी पर्युपासना की । स्थविरो ने धर्म का उपदेश दिया । उस उपदेश को सुनकर पुंडरीक श्रमणोपासक बन गया । बाद में वह स्थविरो को वंदना और नमस्कार कर अपने स्थान पर वापिस वहां से लौट आया । (तएणं से कंडरीए उट्टाए उट्टेइ, उट्टाए उट्टित्ता जाव से जहेयं तुवमे वदह, जं णवरं पुंडरीयं रायं आपुच्छामि, तएणं जाव पव्वयामि-अहासुहं देवानुप्पिया । तएणं से कंडरीए जाव थेरे वदह, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ) इसके बाद कंडरीक उत्थानशक्ति से उठा-उत्थानशक्ति-उठने की शक्ति से उठकर उसने स्थविरो को वंदना की-नमस्कार किया । वंदना नमस्कार करके फिर उसने उनसे इस प्रकार कहा-हे

कहेत्ति, पुंडरीए समणोवानए जाए जाव पडिगए) त्थारपथी कंडरीक युवराज स्थविरोनी वंदना करवा भाटे उपडेवा अनेक भावुसोने घोघाट सांभणीने भडाअइ रावनी लेम स्थविरोनी पासे गये। त्यां न्धने तेणे तेमने वंदन अने नमस्कार कर्या वंदना अने नमस्कार करीने तेणे तेमनी पर्युपासना करी। स्थविरोअे धर्मोपदेश आये, ते उपदेशने सांभणीने पुंडरीक श्रमणोपासक णनी गये। त्थारपथी ते स्थविरोने वदन तेमन नमन करीते पोताना निवास-स्थाने पाछे आवतो रह्यो।

(तएणं से कंडरीए उट्टाए उट्टेइ, उट्टाए उट्टित्ता जाव से जहेयं तुवमे वदह जं णवरं पुंडरीयं रायं आपुच्छामि, तएणं जाव पव्वयामि-अहासुहं देवानुप्पिया । तएणं से कंडरीए जाव थेरे वदह, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ)

त्थारपथी कंडरीक उत्थान शक्ति वडे ओसो थये, उत्थान शक्ति-ओभा थवानी शक्ति वडे ओसो थधने तेणे स्थविरोने वदन तेमन नमस्कार कर्या। वंदना अने नमस्कार करीने तेणे तेमने आ प्रमाणे विनंती करतां इद्धं के

इति तद् वचनं श्रुत्वा ते स्थविराः प्रोचुः ' अहासुहं देवाणुप्पिया ' यथासुखं हे देवानुप्रिया । हे देवानुप्रिय । यथा तव सुखकरं भवेत् तथा कुरु । ततः खलु स कण्डरीको यावत् स्थविरान् वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा स्थविराणामन्तिकत्=समीपात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य, तमेव ' चाउगघंटं ' चतुर्वर्णं=चतस्रो घण्टा यस्मिन् स तस्=घण्टा चतुष्टयोपेतम् अश्वरथं दूरोहति, यावत् प्रत्यवरोहति=स्थादवतरति । अवतरणानन्तरं यत्रैव पुण्डरीको राजा तत्रैव उपागच्छति, ' करयल जाव ' करतल यावत्=करतलपरिगृहीतं शिर आवत्तं दशनखं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा पुण्डरीकमेवमवादीत्-एवं खलु हे देवानुप्रिय ! मया स्थविराणामन्तिके यावद्धर्मो निशान्तः=श्रुतः, स धर्मः=स्थविरप्रोक्तो धर्मः यावत् अभिरुचितः । तत् खलु हे देवानुप्रिय ! ' जाव पव्वइत्तए ' यावत् प्रव्रजितुम्=हे देवानुप्रियाः ! भवद्भिरभ्यनुज्ञातो स्थविराणामन्तिके प्रव्रजितुमिच्छामीतिभावः ।

देवानुप्रियो ! आप जैसा कहते हैं-वह वैसा ही है-मेरी भावना उसे सुनकर संयम लेने की हो गई है-अतः संयम धारण करने के पहिले मैं पुंडरीक राजा से इस विषय में पूछ आता हूँ उसके बाद संयम धारण करना चाहता हूँ । इस प्रकार उसके वचन सुनकर उन स्थविरों ने उससे कहा-हे देवानुप्रिय । तुम्हे जैसे सुख हो-तुम वैसा करो-इसके बाद कंडरीक ने स्थविरों को वंदना की-नमस्कार किया और वंदना नमस्कारकर वह उनके पास से चला आया (पडिनिक्खमित्ता) आकर के (तमेवचाउगघंटं आसरहं दुरुहइ, जाव पच्चोरुहइ, जेणेव पुंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, करयल जाव पुंडरीयं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया । मए थेराणं अंतिए जाव धम्मं निसंते से धम्मं जाव अभिरुइए

हे देवानुप्रियो ! तमे जेम कडे छो ते णरेणर तेम छे आ णधुं सांलणीने संयम थडणु करवानी मारी धंछा थधं गध छे अटला भाटे संयम धारणु करतां पडेलां हु पुंडरीक राजने आ विषे पूछी आवुं छुं त्पारपछी हु संयम धारणु करवा याहु छुं । आ प्रमाणे तेनां वयने। सांलणीने ते स्थविराणे तेने कहुं के हे देवानुप्रिय ! तमने जेमां सुण भणे तेम करे त्पारपछी कंडरीके स्थविराणे वंदन तेमज नमस्कार करीने ते तेमनी पासेथी आवतो रद्धो । (पडिनिक्खमित्ता) आवीने,

(तमेव चाउगघंटं आसरहं दुरुहइ, जाव पच्चोरुहइ, जेणेव पुंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, करयल पुंडरीयं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया । मए थेराणं अंतिए जाव धम्मं निसंते से धम्मं जाव अभिरुइए-तणं देवाणुप्पिया ।

ततः पुण्डरीकः कण्डरीकमेवमवादीत्-मा खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! भ्रातः इदानीं मुण्डो यावत् प्रव्रज अहं खलु त्वां महता २ ' रायाभिसेएणं ' राजाभिपेकेण ' अभिसिंचामि=अभिषेचयामि । ततः खलु स कण्डरीको युवराजः पुण्डरीकस्य राज्ञ एतमर्थं नो आद्रियते=स्वस्य राज्याभिषेकरूपमर्थं नो मनुते, ' नो परिजाणइ ' नो प्रतिजानाति=न स्वीकरोति ' तुसिणीए संचिइइ ' तूष्णीकः

-तण्णं देवाणुप्पिया । पव्वइत्तए । तएणं से पुंडरीए कंडरीए एवं वयासी-
-माणं तुमं देवाणुप्पिया ! इयाणि मुंडे जाव पव्वयाहि-अहं णं तुमं
महया २ रायाभिसेएणं अभिसिंचामि) वह वहां आया-जहां चतुर्घटो
पेत अपना अश्वरथ रखा हुआ था । वहां आकर वह उसपर चढ़ गया
-घटकर वह जहां पुंडरीक राजा थे वहां आया-वहां आते ही वह रथ
से नीचे उतरा । नीचे उतरकर पुंडरीक राजा के पास गया-
वहां जाकर उसने पुंडरीक राजा को दोनों हाथ जोड़कर नम-
स्कार किया-वाद में इस प्रकार कहने लगा-हे देवानुप्रिय मैंने स्थ-
विरो के पास धर्म का उपदेश सुना है-वह मुझे बहुत रूचा है इसलिये
हे देवानुप्रिय ! मैं आपसे आज्ञापित होकर उन स्थविरो के पास संयम
लेना चाहता हूँ-इस प्रकार कंडरीक की बात सुनकर पुंडरीकने उससे
इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रिय ! तुम इस समय मुंडित होकर स्थविरो
के पास संयम धारण मत करो मैं बड़े जोर जोर के उत्सव के साथ
तुम्हारा राज्याभिषेक करना चाहता हूँ । (तएणं से कंडरीए पुंडरीयस्स

जाव पव्वइत्तए । तएणं सेःपुंडरीए कंडरीए एवं वयासी-माणं तुमं देवाणुप्पिया ।
इयाणिमुंडे जाव पव्वयाहि अहं णं तुमं महया २ रायाभिसेएणं अभिसिंचामि)

ते त्यां आब्धे न्यां अतुर्घटवाणे पोताने अश्वरथ उतो त्यां आब्धिने
ते तेमां भेसी गयो, अने भेसीने ते न्यां पुंडरीक राज्ज उतो त्यां गयो त्यां
पहोअयता २ ते रथ उपरथी नीचे उतर्यो, नीचे उतरिने पुंडरीक राज्जनी पासे
गयो. त्यां न्धने तेणे णने हाथ जोडीने पुंडरीक राज्जने नमस्कार कर्या अने
त्यारपणी तेणे तेमने विनंती करतां आ प्रमाणे क्खु के हे देवानुप्रिय । मे
स्थविरोनी पासेथी धर्मोपदेश सांभल्यो छे ते मने भूग न गभी गयो छे.
अधी हे देवानुप्रिय ! हुं तमारी आज्ञा भेगवीने स्थविरोनी पासेथी संयम
अकण्ठ करवा छंछुं छु. आ प्रमाणे कंडरीकनी बात सांभलीने पुंडरीके तेने आ
प्रमाणे क्खु के हे देवानुप्रिय । तमे उमणुं मुंडित थंने स्थविरोनी पासेथी संयम
धारणु करे नहि. हुं मोटा उत्सव साथे तमारो राज्याभिषेक करवा आइ छुं.

सतिष्ठते=तमर्थं न स्वीकृतवान् केवल मौनमवलम्ब्य स्थितः । ततः खलु पुण्ड-
रीको राजा कण्डरीकं भ्रातरं द्वितीयमपि तृतीयमपि वारम् ' एवं 'पूर्वोक्तरूपेण
अवादीत्- ' जाव तुसिणीए संचिद्धइ ' यावत्-तुष्णीकः संतिष्ठते । ततः खलु
पुण्डरीकः कण्डरीकं यदा ' नो संचाएइ ' नो शक्नोति = न समर्थो भवति
बहुभिः ' आघवणाहि य ' आख्यापनाभिश्च-आख्यापनाभिः-प्रब्रज्याविरोधिभि-
राख्यानैः ' पणवणाहि य ' प्रज्ञापनाभिश्च ' अहं तत्र ज्येष्ठभ्राताऽस्मि, तव हितं
येन भवति, तदेव कथयामि, इत्यादि रूपैः प्रज्ञापनवाक्यैः एवं ' विणवणाहि य '
विज्ञापनाभिः विनितमृदुवचनावलिरूपैर्वाक्यप्रबन्धैः, तथा ' सणवणाहि य '
संज्ञापनाभिः ' प्रब्रज्यायां महान् कष्टो भवति ' इत्यादि स्वाभीप्सितसंज्ञापकैर्वाक्यैश्च

रणो एयमट्टं णो आढाइ, णो परिजाणइ, तुसिणीए संचिद्धइ, तएणं पुंड-
रीए राया कंडरीयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी जाव तुसिणीए संचि-
द्धइ, तएणं पुंडरीए कंडरीयं कुमारं जाहे नो संचाएई, बहूहि आघवणाहि
य पणवणाहि य ४ ताहे अकामए चेव एयमट्टं अणुमन्नित्था जाव
णिकखमणाभिसेएणं अभिसिचइ जाव थेराणं सीसभिवखं दलयइ)
कंडरीक कुमारने पुंडरीक राजा की इस बात को आदर की दृष्टि से
नहीं देखा-नहीं माना-और न उसे स्वीकार ही किया-केवल चुपचाप
ही रहा । पुंडरीक राजा ने जब कंडरीक कुमार को चुपचाप देखा-तब
उसने दुबारा और तिवारा भी उससे ऐसा ही कहा-परन्तु उसने इस
बात पर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया केवल चुपचाप ही रहा-। अतः
जब पुंडरीक राजा कंडरीक कुमार को उसके ध्येय से विचलित करने

(तएणं से कंडरीए पुंडरीयस्स रणो एयमट्टं णो आढाइ, णो परिजाणइ,
तुसिणीए संचिद्धइ, तएणं पुंडरीए राया कंडरीयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी
जाव तुसिणीए संचिद्धइ, तएणं पुंडरीए कंडरीयं कुमारं जाहे नो संचाएई, बहूहि
आघवणाहि य पणवणाहि य ४ ताहे अकामए चेव एयमट्टं अणुमन्नित्था जाव
णिकखमणाभिसेएणं अभिसिचइ जाव थेराणं सीसभिवखं दलयइ)

कंडरीक कुमारे पुंडरीक राजानी आ वातनुं सन्मानं कथुं नडि-मानी
नडि अने तेना स्वीकार पणु कथो नडि, इत्त ते भूंगो थधने जेसी ज रह्यो.
पुंडरीक राजाजे न्यारे कंडरीक कुमारने भूंगो भूंगो जेसी रडेयो जेयो त्यारे
तेमणे भीज वार अने त्रीज वार पणु तेने आ प्रभाणे ज क्खु परंतु तेणे
आ वातनी सडज पणु दरकार करी नही, इत्त भूंगो थधने जेसी ज रह्यो.
छेपटे न्यारे पुंडरीक राजा कंडरीक कुमारने तेना ध्येयथी भक्केम विचारथी

‘आयवित्तए’ आख्यापयितुं ४=मर्वथापविरोधयितुं न गवनोतीति पूर्वेण सम्बन्धः,
 ‘ताहे’ तदा ‘अकामए चैव’ अकामक एव=अनिच्छ एव ‘एयमह’ एतम-
 र्थम्—कण्ठीकाभिलपितं प्रव्रज्यारूपम्, ‘अणुमन्नित्था’ अन्नमन्यत=स्वीकृत-
 वान्, ‘जाव जिक्खमणाभिसेएणं’ यावत् निष्क्रमणाभिपेकेण ‘स्वीकरणानन्तरं
 निष्क्रमणोपयोगि वस्तुजातमुपनीय सविधि दीक्षाभिपेकेण अक्षिपिञ्चति, ‘जाव
 येराणं मीमभिव्वं दलयइ’ यावत्-स्थविरेभ्यः शिष्यभिक्षाम्=अभिषेकानन्तरं स
 पुण्डरीको राजा कण्ठीकं शिविकायां समुपवेज्य महता समारोहेण सह नलिनी-
 वने उद्याने समायाति, तत्र स्थितेभ्यः स्थविरेभ्यः स्वच्छुभ्रातरं शिष्यभिक्षां
 ददाति । अनन्तरं स कण्ठीकः प्रव्रजित सन् अनगारो जातः । तथा ‘एका-
 रसंगविज्ज’ एकादगाद्दवित्=एकादगाद्गजानवान् जातः । ततः खलु स्थविरा भग

के लिये आख्यापनाओं द्वारा, प्रज्ञापनाओं द्वारा विज्ञापनाओं द्वारा
 संज्ञापनाओं द्वारा, समर्थ नहीं हो सके-तब उन्होंने बिना इच्छा के ही
 कण्ठीक कुमार को दीक्षा ग्रहण करने रूप अर्थ की स्वीकृति देने के
 बाद निष्क्रमणोपयोगी समस्त वस्तुओं को उन्होंने संगवाया-जब वे आ-
 चुकी-तब उन्होंने उसका सविधि दीक्षाभिषेक से अभिसिंचन किया ।
 अभिषेक के बाद पुण्डरीक राजा कण्ठीक को शिविका में बैठाकर बड़े
 समारोह के साथ नलिनीवन में आये । वहाँ आकर उन्होंने स्थविरों के
 लिये आने लघुभाई को शिष्य की भिक्षा रूप से प्रदान किया । इसके
 बाद कण्ठीक (पञ्चइए अणगारेजाए) प्रव्रजित होकर अनगारावस्था
 संग्रह हो गये । (एगारसंगविज्ज,—तएणं येरा भगवंतो अन्नया कयाइं
 पुंडरिगिणीओ नयरीओ णलिणीवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खयंति,

वियदित करत माटे आख्यापनाओ, प्रजापनाओ, विज्ञापनाओ, संज्ञाप-
 नाओ वडे पणु समर्थ थर् शक्या नहि त्थारे तेमणे धिछा न ढुंवा छताओ
 कण्ठीक कुमारने दिक्षाग्रहण करवानी स्वीकृति आपी दीधी स्वीकृति आख्या-
 पाए तेमणे निष्क्रमणने लगती भन्नी वस्तुओ भगावी. न्यारे वस्तु ओ आवी
 गध त्थारे तेमणे तेनु विधिअर दीक्षाभिषेक वडे अभिसिंचन कथुं अभिषेक
 कथा बाद पुण्डरीक राज कण्ठीकने पादभीमां जेसाडीने लारे समारोहनी साथे
 नलिनी वनमां आव्या त्या आवीने तेमणे स्थविरेने पोताना नाना लार्धने
 शिष्यता इपमा आपी दीधो. त्थारपणी कण्ठीक (पञ्चइए अणगारे जाए)
 प्रव्रजित थर्धने अनगारावस्था संग्रह थर्ध गयो.

(एगारसंगविज्ज—तएणं येरा भगवंतो अन्नया कयाइं पुंडरिगिणीओ नय-

वन्तो ज्यदा कदाचित् पुण्डरीकिण्या नगरीं नलिनीवनात् उद्यानात् प्रतिनिष्का-
म्यन्ति, प्रतिनिष्कस्य बहिर्जनपदविहारं विहरन्ति ॥ सू० २ ॥

मूलम्—तएणं तस्स कंडरीयस्स अणगारस्स तेहिं अंतेहिं य
पंतेहिं य जहा सेलागस्स जाव दाहवक्कंतिए थावि विहरइ ।
तएणं थेरा अन्नया कयाइं जेणेव पोंडसिगिणी तेणेव उवाग-
च्छइ, उवागच्छत्ता, णलिणिवणे समोसढा, पोंडरीए णिग्गए
धम्मं सुणेह । तएणं पोंडरीए राया धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए
अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता कंडरीयं अणगारं
वंदइ णसंसइ वंदित्ता णसंसित्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं
सव्वावाहं सरोयं पासइ, पासित्ता, जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छत्ता, थेरे भगवंते वंदइ, णसंसइ, वंदित्ता
णसंसित्ता एवं वयासी—अहणणं भंते ! कंडरीयस्स अणगारस्स
अहा पवत्तेहिं ओसहभेसजेहिं जाव तेइच्छं आउट्टामि, तं
तुब्भे णं भंते ! मम जाणसालासु समोसरह । तएणं थेरा भग-
वंतो पुंडरीयस्स पडिसुणेति, पडिसुणित्ता, जाव उवसंपज्जित्ताणं

पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरन्ति) धीरे २ वे ग्यारह
अंगोंके पाठी भी बनगये इसके बाद उन स्थविर भगवंतों ने किसी एक
दिन पुंडरीकिणी नगरी के उस नलिनीवन नामके उद्यान से विहार किया
सो विहार कर वे बाहिर के जनपदों में विचरने लगे ॥ सू० २ ॥

रीओ णलिणीवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता बहिया
जणवयविहारं विहरन्ति)

धीमे धीमे तेमणे अणियार अंगोतुं अध्ययन करी लीधु. त्यारभाह ते
स्थविर भगवंतोओ कोछ ओइ द्विसे पुंडरीकिणी नगरीता ते नलिनीवन नामना
उद्यानथी विहार कर्यो, विहार करीने तेओ अहारना जनपदोमां विचरणु
करवा लाग्या. ॥ सूत्र २ ॥

विहरन्ति। तएणं पुंडरीए राया जहा मंडुए सेलागस्स जाव
वलियसरीरे जाए । तएणं थेरा भगवंतो पोंडरीयं रायं पुच्छंति,
पुच्छित्ता वहिया जणवयविहारं विहरन्ति । तएणं से कंडरीए
ताओ रोयायंकाओ विप्पमुक्के समाणे तंसि मणुण्णांसि अस-
णपाणखाइमसाइमंसि मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्जोववण्णे णो
संचाएइ पोंडरीयं रायं आपुच्छित्ता वहिया अब्भुज्जएणं जण-
वयविहारं विहरित्तए । तत्थेव ओसण्णे जाए । तएणं से पोंड-
रीए इमीसे कहाए लद्धट्टे समाणे णहाए अंतेउरपरियालसंप-
रिवुडे राया जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छित्ता, कंडरीयं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं
करेइ करित्ता वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता, एवं वयासी-
धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्मजीवियफले
जे णं तुमं रज्जं च जाव अंतेउरं चावि छड्डुयित्ता जाव विगो-
वत्ता जाव पव्वइए । अहण्णं अहण्णे अकयपुन्ने रज्जे जाव
अन्तेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए जाव अज्जो-
ववन्ने नो संचाएमि जाव पव्वइत्तए । तं धन्नेसि णं तुमं देवा-
णुप्पिया ! जाव जीवियफले । तएणं से कंडरीए अणगारे पुंड-
रीयस्स एयसट्ठं णो आढाइ जाव संचिट्ठइ । तएणं कंडरीए पोंड-
रीएणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे अकामए अवस्सवसे
लज्जाए गारवेणय पोंडरीयं रायं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता थेरेहिं
सद्धिं वहिया जणवयविहारं विहरइ ॥ सू०३ ॥

टीका—‘ तएणं तस्स ’ इत्यादि । ततः खलु तस्य कण्डरीकस्य अनगारस्य तैः ‘ अंतेहि य ’ अन्तैश्च=बल्लचणकादिभिः, ‘ पंतेहि य ’ प्रान्तैश्च=पर्युषितैः, नीरसैः स्वादवर्जितैर्वा अशनादिभिः यथा शैलकस्य राजर्षिस्तथा ऽस्याऽपितथा-विधमाहारं कुर्वतो यावत्प्रकृतिस्सुकुमारकस्य सुखोपचितस्य शरीरे वेदना प्रादुर्भूता, कीदृशीत्याह - उज्ज्वला- यावद् दुरधिसह्या = सोढुमशक्या पुनः सुखलेशरहिता कण्डरीकः ‘ दाहवक्कंतिए ’ दाहव्युत्क्रान्तिकः=दाहस्य शरीरसन्तापरूपरोगस्य व्युत्क्रान्तिः=उत्पत्तिर्यस्यासौ दाहव्युत्क्रान्तिकः=करचरणादिज्वलनवान् चापि विहरति । ततः खलु स्थविरा अन्यदा कदाचित् यत्रैव पुण्डरीकिणी नगरी तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य, नलिनीवने समवसृताः । पुण्डरीकस्तद्दर्शनार्थं स्वभवना-

‘ तएणं तस्स कंडरीयस्स ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (तस्स कंडरीयस्स अणगास्स तेहि अंतेहि पंतेहि य जहासेलगस्स जाव दाहवक्कंतिए यावि विहरइ) उस कंडरीक अनगारके बल्लचणक आदि रूप अन्ताहार करनेसे तथा पर्युषित अथवा नीरस आहाररूप प्रान्ताहार करनेसे शैलक राजर्षिकी तरह प्रकृतिसे सुकुमार सुखोपचित होने के कारण शरीरमें वेदना उत्पन्न हो गई । जो उज्ज्वला एवं सोढुमशक्या थी । इस तरह शरीर सन्तापरूप रोग की उत्पत्ति से वे कंडरीक अनगार कर चरण आदि में जलन होने के कारण सुख के लेश से भी वर्जित हो गये । (तएणं येरा अन्नया कयाइं जेणेव पोंडरिणिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णलिणिवणे समोसढा पोंडरीए

तएणं तस्स कंडरीयस्स इत्यादि—

टीकार्थ—(तएणं) त्पारपछी,

(तस्स कंडरीयस्स अणगास्स तेहि अंतेहि पंतेहि य जहा सेलगस्स जाव दाहवक्कंतिए यावि विहरइ)

ते कंडरीक अनगारना शरीरमां भदलचणुक वगेरे इय अन्ताहार करवाथी तेमव पर्युषित अथवा नीरस आहार इय प्रान्ताहार करवाथी शैलक राजर्षिनी जेभ प्रकृतिथी सुकुमार अने सुखोपचित होवा भदल वेदना उत्पन्न थई गछ. ते वेदना अत्यंत उग्र अने असह्य हती. आ प्रभाणु शरीर सन्ताप इय शोणनी-उत्पत्तिथी ते कंडरीक अनगार हाथ पगमां भणतराने लीधे थोडी सुभशांति पणु भेजवी शक्या नडि.

(तएणं येरा अन्नया कयाइं जेणेव पोंडरिणिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णलिणिवणे समोसढा पोंडरीए निगए धम्मं सुणेइ, तएणं पोंडरीए राया

निर्गत नत्र गत्वा धर्म श्रुणोति । ततः खलु पुण्डरीको राजा धर्मं श्रुत्वा यत्रै
कण्डरीकोऽनगारस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, कण्डरीकं वन्दते नमस्यति
वन्दित्वा नमस्यत्वा कण्डरीकस्य अनगारस्य शरीर 'सव्वावाहं' 'सव्यावाधं-
पीडासहित' 'सरोयं' सरोगं=रोगमदित 'पामड' पश्यति, दृष्ट्वा यत्रैव स्थविर
भगवन्तस्त्रैव उपागच्छति, उपागत्य स्थविरान् भगवतो वन्दते नमस्यति, वन्दित्त्वं
नमस्यत्वा एवमवादीत्- 'अहण्ण भंते !' अहं खलु हे भद्रन्त ! कण्डरीकस्य

निर्गम्य धम्मं सुणेह, तण्णं पोंडरीए राया धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए
अणगारे तेणेव उवागच्छह उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं वंदह नमं
सह, वंदित्ता नमंसित्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं सव्वावाहं
सरोयं पासह) किसी एक समय वे स्थविर पुंडरीकिणी नगरी में विहार
करते हुए आये। वहाँ आकर वे नलिनीवन नाम के उद्यान में ठहर
गये। आगमन सुनकर पुंडरीक राजा उन को वंदना एवं उनसे धर्मश्र-
वण करने की भावना से अपने राजमहल से निकलकर उस नलिनीवन
उद्यान में आये-स्थविरों ने उन्हें धर्म का उपदेश दिया। धर्म का उप-
देश श्रवण कर फिर वे जहाँ कंडरीक अनगार थे उनके पास आये।
वहाँ आकर उन्होंने उनको वंदना की नमस्कार किया-। वंदना नमस्कार
करके उन्होंने कंडरीक अनगारके शरीर को पीडामहित एवं रोगसहित
देखा-(पासित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता
थेरे भगवंते वंदह णमंसह, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-अहण्णं भंते !

धम्मं सोच्चा जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता कंडरीयं
अणगारं वंदह नमंसह, वंदित्ता नमंसित्ता कंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगं सव्वा-
वाहं सरोयं पासह)

इति श्लोके वक्षते ते स्थविर पुंडरीकिणी नगरीम विहार कृत्वा कृत्वा आभ्यां-
त्या आसीने तेष्वा नलिनीवन नामना उद्यानमां शोकाया. तेभ्यं आगमन
सांभजीने पुंडरीक राजा तेभने वंदन कृत्वा माटे तथा तेभनी पासिथी धर्मो-
पदेश सांभजवा माटे पाताना राजमहलथी नीकजीने ते नलिनीवन उद्यानमां-
आभ्यां स्थविरेश्चे तेभने धर्मोपदेश आभ्यां, धर्मोपदेश सांभजीने तेष्वा
त्यां इंडरीक अनगार इता तेभनी पासि गया त्या ज्जने तेभण्णे, तेभने वंदन
अने नमस्कार कर्था. वंदन अने नमस्कार कर्त्तने तेभण्णे इंडरीक अनगारना
शरीरने पीडा सहित अने शोकायुक्त ज्ञेयं

(पासित्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता थेरे भग-
वंते वंदह, णमंसह, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-अहण्णं भंते ! कंडरीयस्स अण-

अनगारस्य 'अहापवत्तेहि' यथा प्रवृत्तैः=प्रासुकैरित्यर्थः 'ओसहभेसज्जेहि' औषधभैषज्यैः 'जावतेइच्छं' यावत् चिकित्साम् 'आउट्टामि' आवर्तयामि=कारयामि, 'तं' तत्=तस्मात् कारणात् यूयं खलु हे भदन्त ! मम यानशालासु समवसरत=आगच्छत । ततः खलु स्थविरा भगवन्तः पुण्डरीकस्य एतमर्थं प्रतिश्रुण्वन्ति=एतद्वचनं स्वीकुर्वन्ति, प्रतिश्रुत्य=स्वीकृत्य यावत्-उपसंपद्य=यानशालां समाश्रित्य विहरन्ति । ततः खलु पुण्डरीको राजा 'जहा मंडुए सेलगस्स जाव वलियसरीरे जाए' यथा मण्डूकः शौलकस्य यावद् बलिकशरीरो जातः =

कंडरीयस्स अनगारस्स अहापवत्तेहि ओसहभेसज्जेहि जाव तेइच्छं आउट्टामि-तं तुव्भे णं भंते ! मम जाणशालासु समोसरह-तएणं थेरा भगवंतो पुंडरीयस्स पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जाव उपसंपज्जित्ताणं विहरंति) देखकर जहाँ स्थविर भगवंत विराजमान थे-वहाँ पर वे आये वहाँ आकर उन्होंने ने स्थविर भगवंतों को वंदना एवं नमस्कार किया-। वंदना नमस्कार करके फिर उन्होंने ने उनसे इस प्रकार कहा हे भदंत ! मैं कंडरीक अनगार की यथा प्रवृत्त-प्रासुक-औषध, भैषज्यों द्वारा यावत् चिकित्सा करवाऊंगा-अतः हे भदंत ! आपलोग मेरी यानशाला में यहाँ से विहार कर पधारें-वहीं ठहरें-। इस प्रकार पुंडरीक राजा की प्रार्थना को उन स्थविर भगवंतों ने स्वीकार कर लिया-और वहाँ से विहार कर वे पुंडरीक राजा की यानशाला में आकर ठहर गये । (तएणं पुंडरीए राया जहामंडुए सेलगस्स जाव वलियसरीरे जाए तएणं थेरा

गारस्स अहापवत्तेहि ओसहभेसज्जेहि जाव तेइच्छं आउट्टामि तं तुव्भेणं भंते मम जाणशालासु समोसरह-तएणं थेरा भगवंतो पुंडरीयस्स पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता जाव उपसंपज्जित्ताणं विहरंति)

नेधने तेओ न्यां स्थविर भगवंत विराजमान डता त्यां आओया. त्यां आपीने तेभणे स्थविर भगवतोने वंदन अने नमस्कार कर्या. वंदन अने नमस्कार करीने तेभणे तेभने आ प्रभाणे विनंती करी के डे लहन्ते ! डु कंडरीक अनगारनी यथाप्रवृत्त-प्रासुक-औषध-भैषज्ये (दवाओ) पडे यावत् चिकित्सा (धलाज) करवा माणु छुं. अेटला माटे डे लहन्त ! तमे सौ अडीथी विहार करीने मारी यानशाणांभां आवो अने त्यांज रोकाओ आ प्रभाणे पुंडरीक राजनी विनंतीने ते स्थविर भगवंतोअे स्वीकार करी दीघो अने त्यांथी विहार करीने तेओ पुंडरीक राजनी यानशाणांभां आवीन रोकाध गया. (तएणं पुंडरीए राया जहा मंडुए सेलगस्स जाव वलियसरीरे जाए तएणं थेरा

यथा मण्डूको राजा शौलंकस्य राजर्षेः प्रासुकैरौषधभैषज्यैश्चिकित्सामकारयत्, तथैव पुण्डरीकोऽपि कण्डरीकस्यानगारस्य यथा योग्यैरौषधभैषज्यैश्चिकित्सां कारयतिस्म यावत् कृतिपर्यैर्दिनेः कण्डरीको वलितशरीरः=निरामयो जातः । ततः खलु स्थविरा भगवन्तः पुण्डरीकं राजानं आपृच्छन्ति, आपृच्छ्य वहिर्जनपदविहारं विहरन्ति । ततः खलु स कण्डरीकः तस्मात् 'रोगायंकाओ' रोगातङ्काद् विपमुक्तः सन् तस्मिन् 'मनुष्णंसि' मनोज्ञे=रमणीये अशनपानखाद्यस्वाद्ये चतुर्विधे आहारे 'मुच्छिष्टे' मूर्च्छितः=मूर्च्छां प्राप्तः=आसक्त इत्यर्थः, 'गिद्धे' गृद्धः=आकाङ्क्षावान्, 'गद्विष्टे' ग्रन्थितः=रसास्वादे निवद्धमानसः, 'अज्ज्ञोववण्णे'

भगवन्तो पुण्डरीकं रायं पुच्छन्ति, पुच्छित्ता वहिया जणवयविहारं विहरन्ति, तएणं से कण्डरीए ताओ रोगायंकाओ विप्पमुक्के समाणे तंसि मणुष्णंसि असणपाणखाइमसाइमंसि मुच्छिष्टे गिद्धे गद्विष्टे अज्ज्ञोववण्णे णो संचाएइ पुण्डरीकं रायं आपुच्छित्ता वहिया अम्भुज्जएणं जणवयविहारं विहरित्तए) इसके बाद मंडूक ने जिस प्रकार शौलकराजर्षि की प्रासुक औषध, भैषज्यों द्वारा चिकित्सा करवाई थी उसी प्रकार पुण्डरीकराजा ने भी कण्डरीक अनगार की यथायोग्य औषध भैषज्यों द्वारा चिकित्सा करवाई—इस से वे वलितशरीर निरोग हो गये । इसके अनन्तर उन स्थविर भगवन्तो ने वहां से विहार करने के लिये पुण्डरीक राजा से पूछा—। बाद में वे वहां से वाहिर जनपदों में विहार कर गये । कण्डरीक अनगार कि जो रोगातंकसे निर्मुक्त हो चुके थे मनोज्ञ अशन, पान, खाद्य, एवं स्वाद्यरूप चतुर्विध आहार में इतने अधिक आसक्त हो गये—

भगवन्तो पुण्डरीकं रायं पुच्छन्ति, पुच्छित्ता वहिया जणवयविहारं विहरन्ति, तएणं से कण्डरीए ताओ रोगायंकाओ विप्पमुक्के समाणे तंसि मणुष्णंसि—असणपाणखाइमसाइमंसि मुच्छिष्टे गिद्धे गद्विष्टे अज्ज्ञोववण्णे णो संचाएइ पुण्डरीकं रायं आपुच्छित्ता वहिया अम्भुज्जएणं जणवयविहारं विहरित्तए)

त्यारपणी मंडूके जेम शौलंक राजर्षिनी प्रासुक, औषध, अने लैषज्ये वडे चिकित्सा करावडावी हुती तेमज्ज पुण्डरीक राज्ञे पणु कण्डरीक अनगारनी उचित औषध-लैषज्ये (दवाओ) वडे चिकित्सा करावडावी. तेथी तेओ निरोग-सणण णनी गया. त्यारपणी ते स्थविर लजवतोओ त्यांथी विहार करवा माटे पुण्डरीक राजने पूछ्युं. त्यारभाइ तेओ अण्डारना जनपदोमां विहार करी गया रोगातगोथी निर्मुक्त थइ गयेला कण्डरीक अनगार ते मनोज्ञ, अशन, पान, आद्य अने स्वाद्यरूप त्थार नतना आण्डारमां अटला अथा आसक्त थइ गया—गृद्ध अनी गया, अथित-रसना आस्वादनमां निवद्धमान-

अध्युपपन्नः=सर्वथा आसक्तः सन् नो शक्नोति पुण्डरीकं राजानमापृच्छच्च 'बहिया' बहिः 'अभ्युज्जणं' अभ्युद्यतेन=उग्रविहारेण खलु विहर्तुम्, किन्तु 'तत्थेव' तत्रैव=यानशालायामेव 'ओसण्णे' अवसन्नः,=शिथिलसाधुसमाचारीवान् जातः। तत खलु स पुण्डरीको राजा 'इमीसे कहाए' अस्या, कथायाः=कण्डरीकोऽनगारोऽवसन्नो जातः' इति वृत्तान्तस्य लब्धार्थः सन् स्नातः 'अंतेउरपरियालसंपरिवुडे' अन्तःपुरपरिवारसंपरिवृतः, यत्रैव कण्डरीकोऽनगारस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, कण्डरीकं त्रिः कृत्व आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा, वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा वमस्यित्वा एवमवादीत्-धन्योऽसि खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! यतस्त्वम् 'कयट्टे' कृतार्थः=विहितजीवनकृत्यः 'कयपुन्ने' कृतपुण्यः=विहितप्रव्रजितवेपः। पुनः सुलद्धे' सुलब्धं=सुष्ठुतया प्राप्तं खलु हे देवानुप्रिय ! 'तव' त्वया 'माणुस्सए' मानुष्यकं=मनुष्यसम्बन्धि, 'जम्मजीवियफले' जन्मजीवितफलम्-जन्म-

-गृह्य वन गये ग्रथित-रसास्वाद में निबद्धमानसवाले हो गये, और अध्युपपन्न बन गये-अर्थात् सर्वथा आसक्त बन गये कि वहाँ से बाहिर उग्र विहार करने के लिये उनका मन ही नहीं हुआ-अतः उन्होंने ने पुण्डरीक नरेश से विहार करने की कोई बात ही नहीं पूछी किन्तु (तत्थेव-ओसन्ने जाए) वहीं पर वे रहते २ शिथिल साधुसमाचारीवाले बन गये। (तएणं से पौंडरीए इमीसे कहाए लद्धट्टे समाणे ण्हाए अंते-उरपरियालसंपरिवुडे राया जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं त्तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-धन्नेसिणं तुमं देवाणुप्पिया ! कयत्थे कयपुन्ने कयलक्खणे सुलद्धेणं देवाणुप्पिया ! तव माणुस्सजन्मजीवियफले जेणं तुमं रज्जं च जाव अंतेउर चावि छड्डुइत्ता

सवाणा थं गया अने अध्युपपन्न अनी गया अेट्ठे के तेओ। अेकहम आसक्त थं गया के त्यांथी अडार उग्र विहार करवा भाटे पणु तेओ तैयार थया नडि अेथी तेभणु पुंडरीक राजने विहार करवानी आणतमां कंथं पूछथुं नडि पणु (तत्थेव ओसन्ने जाए) त्यां रडेतां रडेतां तेओ शिथिल साधु समाचारी थं गया अेट्ठे के साधुओना आचारमां तेओ शिथिल थं गया

(तएणं से पौंडरीए-इमीसे कहाए लद्धट्टे समाणे ण्हाए अंतेउरपरियाल-संपरिवुडे राया जेणेव कंडरीए अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं त्तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-धन्नेसि णं तुमं देवणुप्पिया ! कयत्थे कयपुन्ने कयलक्खणे

मानवयोनी उत्पत्तिः, जयितम्=जीवनम्=माणधारणम्, तयोः फलम्=जन्मजीवि-
तफलम्=प्रव्रज्याग्रहणमेव मनुष्यजन्मसारः, तदेव स्पष्टयति-यः खलु त्वं राज्यं च
यावदन्तः पुरं च छड्डइत्ता ' छड्डयित्वा=त्यक्त्वा ' विगोवइत्ता ' विगोप्य=तिर-
स्कृत्य यावत् प्रव्रजितः अहं खलु अधन्यः अकृतपुण्यो राज्ये यावत् अन्तः
पुरे च मानुष्यकेषु च कामभोगेषु मूर्च्छितो यावत् अध्युपपन्नो नो शक्नोमि
यावत् प्रव्रजितुम् = राज्येऽन्तः = पुरे मानुष्यकेषु च कामभोगेषु निमग्न-
मानसोऽहं न शक्नोमि प्रव्रज्यां ग्रहीतुम् इति भावः । ' तं ' तत् = तस्मात्

विगोवइत्ता जाव पव्वइए) जव पुंडरीक राजा को " कंडरीक अनगार
अवसन्न हो गये है " यह समाचार ज्ञात हुआ-तो वे स्नान कर अपने
अन्त पुर परिवार को साथ, लेकर जहां कंडरीक अनगार थे वहां आये
वहां आकर उन्होंने ने कंडरीक अनगार को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण
करके वंदना की नमस्कार किया। वंदना नमस्कार करके फिर उनसे वे
इस प्रकार कहने लगे-हे देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो, तुम कृतार्थ हो, तुम
कृतलक्षण हो। हे देवानुप्रिय ! तुमने मनुष्यभव संबंधी जन्म और
जीवन का फल अच्छी तरह पालिया है। जो तुम राज्य यावत् अन्तःपुर
का परित्याग एवं तिरस्कार कर प्रव्रजित हो गये हो। (अहण्ण अहण्णे
अकयपुन्ने रज्जे जाव अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए
जाव अज्झोववन्ने नो संचाएमि जाव पव्वइत्तए । तं धन्नेसि णं तुमं

सुल्लेणं देमाणुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्म जीवियफळे जेणं तुमं रज्जं च जाव
अंतेउरं चावि छड्डइत्ता विगोवइत्ता जाव पव्वइए)

त्यारे पुंडरीक राजने कंडरीक अनगारना अवसन्न थधं जवाना समा
त्यारे भया त्यारे तेओ स्नान करीने पोताना रणुवासना परिवारने साथे
लधने लथं कंडरीक अनगार हुता त्यां आव्या. त्यां आवीने तेमणे कंडरीक
अनगारने त्रणु वपन आदक्षिण प्रदक्षिणा करीने वंदन तेमज नमस्कार
कया. वंदन अने नमस्कार करीने तेओ तेमने आ प्रमाणे कडेवा प्राग्या के
हे देवानुप्रिय ! तमे धन्य छे, कृतार्थ छे, कृत-लक्षण छे. हे देवानुप्रिय !
मनुष्य भवना जन्म अने जवनना इणने सारी पेठ भेगवी लीधु छे केमके
तमे अरेअर राजेय यावत् रणुवासने त्यज्जे तेने तिरस्कृत करीने प्रव्रजित
थधं गया छे.

(अहण्णं अहण्णे अकयपुन्ने रज्जे जाव अंतेउरे य माणुस्सएसु य काम-
भोगेसु मुच्छिए जाव अज्झोववन्ने नो संचाएमि जाव पव्वइत्तए ! तं धन्नेसि णं

कारणात् खलु ब्रवीमि यत् धन्योऽसि त्वं हे देवानुप्रिय ! ' जाव सुलब्धं जन्म-
जीवितफलम् , ततः खलु स कण्डरीकोऽनगारः पुण्डरीकस्य एतमर्थं=विहाराभि-
प्रायकमर्थं, नो आद्रियते यावत् तूष्णीकः संतिष्ठते मौनमवलम्ब्य तिष्ठति । ततः
खलु कण्डरीकः पुण्डरीकेण द्वितीयमपि तृतीयमपि=द्वित्रिवारम् , एव=पूर्वोक्त-
प्रकारेण, उक्तः सन् ' अकामए ' अकामकः=कामनारहितः ' अवस्सवसे ' अप-

देवाणुप्पिया ! जाव जीवियफले तएणं से कंडरीए अनगारे पुंडरीयस्स
एयमट्ठं णो आढाह जाव संचिद्धइ, तएणं कंडरीए पौंडरीएणं दोच्चंपि
तच्चंपि एवं वुत्ते समाने अकामए अवस्सवसे लज्जाए गारवेण य पौंड-
रीयं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता थेरेहिं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरइ)
मैं अधन्य हूँ अकृतपुण्य हूँ । जो राज्य में यावत् अन्तःपुर में तथा मनुष्य
संबंधी कामभोगोंमें मूर्छित यावत् अध्युपपन्न बना हुआ हूँ । इसीलिये
प्रव्रज्या ग्रहण करने में असमर्थ हो रहा हूँ । इसी कारण से मैं यह कह
रहा हूँ कि तुम धन्य हो, हे देवानुप्रिय ! तुमने ही जन्म और जीवन
का फल जो प्रव्रज्या का ग्रहण करना है—वह अच्छी तरह पा लिया है ।
पुंडरीक राजा की विहार करने के अभिप्रायवाली इस बात को सुनकर
कंडरीक अनगार ने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया—उसे आदर की दृष्टि
से नहीं देखा—किन्तु वे उसे सुनकर भी चुपचाप बैठ रहे । कंडरीक
अनगार की इस स्थिति को देखकर पुंडरीक ने दूसरी बार और तीसरी

तुमं देवाणुप्पिया ! जाव जीवियफले तएणं से कंडरीए अनगारे पुंडरीयस्स
एयमट्ठं णो आढाह जाव संचिद्धइ, तएणं कंडरीए पौंडरीएणं दोच्चंपि तच्चंपि
एवंवुत्ते समाने अकामए अवस्सवसे लज्जाए गारवेण य पौंडरीयं रायं आपुच्छइ,
आपुच्छित्ता थेरेहिं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरइ)

हुं तो अधन्य अने अकृतपुण्य छुं केमके हुं तो रान्यमां यावत्
रणवासमां तेमञ्ज मनुष्यलवना कामलोगोमां मूर्छित यावत् अध्युपपन्न भनी
रह्यो छुं, अएत्ता माटे ञ प्रव्रज्या ग्रहण करवामां असमर्थं थध रह्यो छुं.
अथी ञ हुं आ कही रह्यो छुं—के तमे थरेथर धन्य छे. हे देवानुप्रिय !
तमे ञ जन्म अने जवनतुं इण के ञे प्रव्रज्या ग्रहण करवा इप छे—ते सारी
रीते मेणवी लीधुं छे. तेओ त्यांथी विहार करी जय ते आशयथी कडेत्ता ते
पुंडरीकना वयने सांलणीने कंडरीक अनगारे तेनी कशी ञ दरकार करी नहिं
ते वातने तेमण्णे सन्माननी दृष्टिअे स्वीकारी नहिं. आ थधु सांलणीने पणु
तेओ त्यांञ्ज मूंगा थधने गेसीञ्ज रह्या. कंडरीक अनगारनी आ स्थिति नेधने

स्वव्रगः=अपगतस्वातन्त्र्यः सन् ' लज्जाए ' लज्जया, ' गौरवेण ' गौरवेण=
साधुत्वगौरवेण च पुण्डरीकं राजानमापृच्छति, आपृच्छय स्थविरैः साद्धं बहिर्जन-
पदविहारं विहरति ॥ सू० ३ ॥

मूलम्--तएणं से कंडरीए थेरेहिं सद्धिं किंचिकालं उग्गं
उग्गेणं विहरइ । तओ पच्छा समणत्तणपरितंते समणत्तण-
णिव्विण्णे समणत्तणणिव्वभच्छिए समणगुणमुक्कजोगी,
थेराणं अंतियाओ सणियं२ पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता, जेणेव
पुंडरिगिणी णयरी जेणेव पुंडरीयस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता, असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे
पुढविसिलापट्टयांसि णिसीयइ णिसीइत्ता, ओहयमणसंकप्पे
जाव झियायमाणे संचिट्ठइ । तएणं तस्स पोंडरीयस्स अम्म-
धाई जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
कंडरीयं अणगारं असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्ट-
यांसि ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता
जेणेव पोंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
पोंडरीयं रायं एवं-वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! तव
पिउभाउए कंडरीए अणगारे असोगवणियाए असोगवर-

वार जब उनसे पूर्वोक्त प्रकारसे कहा-तब उन्होंने ने नहीं इच्छा होने पर
भी स्ववशनाका अभाव होनेके कारण लज्जावश होकर साधुत्वके गौरवके
ख्याल से-पुंडरीक राजा से विहार करनेकी बात पूछी-पूछकर फिर वे
वहां से स्थविरोंके साथ बाहिरके जनपदों में विहार कर गये ॥सू० ३ ॥

पुंडरीके भीष्म अने श्रीष्म वार पणु न्यादे पडेक्षां मुञ्जथ न वात कही त्यादे
तेभणु चोतानी धम्मि नडि डोवा छतांओ दावार थधने, लज्जित थधने,
साधुत्वना गौरवने लक्ष्यभां राभीने पुंडरीक राजने विहार करवानी वात पूछी.
पूछीने तेओ त्यांथी स्थविरेनी साथे अडारना जनपदोभां विहार करी गया. सू ३

पायवस्स अहे पुढविसिलावट्टे ओहयमणसंकप्पे जाव झिया-
यइं । तएणं पोंडरीए अम्मधाईए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म
तहेव संभंते समाणे उट्टाए उट्टेइ, उट्टित्ता, अंतेउरपरियाल-
संपरिवुडे जेणेव असोगवणिया जाव कंडरीयं तिवखुत्तो
आयाहिणं पयाहिणं करेइ करित्ता, एवं वयासी-धण्णेसि णं
तुमं देवाणुप्पिया ! जाव पव्वइए । अहण्णं अधण्णेइ जाव
नो पव्वइत्तए । तं धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव
जीवियफले । तएणं कंडरीए पुंडरीएणं एवं वुत्ते समाणे
तुसिणीए संचिट्टइ, दोच्चंपि तच्चंपि जाव संचिट्टइ । तएणं
पोंडरीए कंडरीयं एवं वयासी-अट्टो भंते ! भोगेहिं ? हंता
अट्टो तएणं से पोंडरीए राया कोडुंबियपुरिसे सदावेइ,
सदावित्ता, एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! कंड-
रीयस्स महत्थं जाव रायाभिसेअं उवट्टवेह जाव रायाभिसे-
एणं अभिसिंचइ ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स कण्डरीकः स्थविरैः सार्धं
किञ्चित् कालम् ‘ उग्गं उग्गेणं ’ उग्रोग्रेण-अत्युग्रेण विहारेण विहरति । ततः
पश्चात् ‘ समणत्तणपरितंते ’ श्रमणत्रपरितान्तः=श्रमणधर्मपरिपालने खिन्नः पुनः

‘ तएणं से कंडरीए थेरेहिं सद्धिं ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (से कंडरीए) वे कंडरीक (थेरेहिं
सद्धिं) स्थविरों के साथ (किञ्चिकालं) कुछ काल पर्यन्त (उग्गं उग्गेणं)
अत्युग्रविहार करने में (विहरइ) लग गये (तओपच्छा समणत्तण

‘ तएणं से कंडरीए थेरेहिं सद्धिं ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (से कंडरीए) ते कंडरीक (थेरेहिं सद्धिं)
स्थविरान्नी साथे (किञ्चिकालं) थोडा वधत सुधी तो (उग्गंउग्गेणं) अतीव
उग्र विहार करवाभां (विहरइ) प्रवृत्त थया (तओ पच्छा समणत्तण परितंते)

‘समणत्तणनिव्विण्णे’ श्रमणत्वनिर्विण्णः=साधुभावे औदासीन्यं प्राप्तः ‘समणत्तणनिव्वमच्छिण्ण’ श्रमणत्वनिर्भर्त्सितः=श्रमणत्वं निर्भर्त्सितं येन सः=साधुभावानादरपरायणः, अतएव ‘समणगुणमुक्कजोगी’ श्रमणगुणमुक्तयोगी=श्रमणगुणेभ्यो-मुक्तः=रहितो योगः योगः=मनोवाकायरूपः, सोऽम्यास्तीतित्यक्तश्रमणगुणइत्यर्थः, स्थविराणामन्तिक्रात् शनैः शनैः प्रत्यवप्सस्सक्ते=पश्चादागच्छति, प्रत्यवप्सस्सक्य, यत्रैव पुण्डरीकिणी नगरी यत्रैव पुण्डरीकस्य भवनं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य अशोकवनिकायाः=अशोकवाटिकायाः अशोकवरपादपस्य अश्वः पृथ्वीशिलापट्टके निषीदति=उपविशति, निषद्य, ‘ओहयमणसंकल्पे’ अवहतमनः संकल्पः=अवहतो-मनः संकल्प =मनोव्यापारो यस्य सः=अपगतमानसिकव्यापारः, ‘जाव झियाय-

परितंते) बाद में वे श्रमणधर्म के परिपालन करने में खिन्न चित्त बन गये (समणत्तणनिव्विण्णे समणत्तणनिव्वमच्छिण्ण समणगुणमुक्कजोगी थेराणं अंतियाओ सणियं २ पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव पुण्डरिणिणी णयरी जेणेव पुण्डरीयस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ) साधुभाव के निर्वाह करने में उदासीनता को प्राप्त हो गये-साधुभाव के प्रति उनमें अनादर भाव आ गया अत एव वे श्रमण गुणों से मुक्त योगवाले बन गये-श्रमण के गुणों का उन्होंने परित्याग कर दिया। इस तरह वे धीरे २ स्थविरों के पास से खिसककर एक दिन जहाँ पुण्डरीकिणी नगरी थी और उसमें भी जहाँ पुण्डरीक राजा का भवन था वहाँ पर आ गये- (उवागच्छित्ता असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिला पट्टयंसि णिसीयइ, णिसीइत्ता ओहयमणसंकल्पे जाव झियायमाणे

त्यारपणी तेओ श्रमण धर्माना पालनमां णिन्नचित्त-उदास णनी गया.

(समणत्तणनिव्विण्णे समणत्तणनिव्वमच्छिण्ण समणगुणमुक्कजोगी थेराणं अंतियाओ सणियं २ पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव पुण्डराणिणी णयरी जेणेव पुण्डरीयस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ)

तेओ साधुभावने नभावपामां उदास णनी गया. साधुभाव प्रत्ये तेमनामां अनादर भाव उत्पन्न धर्य गये, ऐथी तेओ श्रमण-गुणोथी मुक्त योगवाणा णनी गया ऐटवे के श्रमणना गुणोने तेमणे त्यल्ल दीधा. आ प्रभाणे तेओ धीमे धीमे स्थविरानी पासैथी चुपचाप नीकणीने ऐक द्विस्स न्यां पुंडरिक्किणी नगरी उती अने तेमा पणु न्यां पुंडरीक राजतुं लवन उतुं, त्यां आवी गया.

(उवागच्छित्ता असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टयंसि, णिसीयइ, णिसीइत्ता ओहयमणसंकल्पे जाव झियायमाणे सच्चिट्ठइ, तएणं

माणे ' यावद्ध्यायन्=आर्त्तध्यानं कुर्वन् संतिष्ठते । ततः खलु तस्य पुण्डरीकस्य राज्ञोऽम्बधात्री यत्रैव अशोकवनिका तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य कण्डरीकमन-गारम् अशोकवरपादपस्य अधः पृथिवीशिलापट्टकेऽपहतमनःसंकल्पं यावद् ध्यायन्तं पश्यति, दृष्ट्वा, यत्रैव पुण्डरीको राजा तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य पुण्डरीकं राजानमेवमवादीत्-एवं खलु देवानुप्रिय ! तव ' पिउभाउए ' प्रियभ्राता कण्ड-रीकोऽनगारोऽशोकवनिकाया अशोकवरपादपस्य अधः पृथ्वीशिलापट्टके अवहतमनः संकल्पो यावद्ध्यायति । ततः खलु पुण्डरीकः अम्बधात्र्या एतमर्थं=कण्डरीकस्य

संचिद्वइ, तएणं तस्स पौंडरीयस्स अम्मधाई जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीयं अणगारं असोगवरपायस्स अहे पुढ-विसिलावट्टयंसि ओहयमणसंकप्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव पौंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पौंडरीयं रायं एवं वयासी) वहां आकर वे अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष के नीचे पृथिवीशिला पट्टक पर बैठ गये । बैठकर अपहत मानसिक व्यापारवाले होकर वे वहां आर्त्तध्यान करने लगे । इनने में पुंडरीक राजा की अम्ब-धात्री-धायमाता उस अशोक वाटिका में आई-वहां आकर उसने कंडरीक अनगार को अशोक पादप के नीचे पृथिवीशिला पट्टक पर चिन्तामग्न देखा-देखकर वह जहां पुंडरीक राजा थे वहां आई-वहां आकर उसने पुंडरीक राजा से इस प्रकार कहा-(एवं खलु देवानुप्पिया ! तव पिउभाउए कंडरीए अणगारे असोगवणियाए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्टे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ) हे देवानुप्रिय !

तस्स पौंडरीयस्स अम्मधाई जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कंडरीय 'अणगारं' असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्टयंसि ओहयमणसंक-प्पं जाव झियायमाण पासइ, पासित्ता जेणेव पौंडरीए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पौंडरीय रायं एवं वयासी)

त्यां आवीने तेओ अशोक वाटिकां अशोक वृक्षनी नीचे पृथिविशिला पट्टक उपर भेसी गया. त्यां भेसीने तेओ अपहत मानसिक व्यापारवाणा (उदास) थडने आर्त्तध्यान करवा लाग्या अटलां पुंडरीक राजनी अम्ब-धात्री-धायमाता-अशोक वाटिकां आवी. त्यां आवीने तेणे कंडरीक अनगारने अशोक वृक्षनी नीचे पृथिविशिला उपर आर्त्तध्यान करता जेया. जेधने ते जयां पुंडरीक राज हुता त्यां आवीने तेणे पुंडरीक राजने आ प्रभाणे कहु के (एवं खलु देवानुप्पिया ! तव पिउभाउए कंडरीए अणगारे असोगवणि-याए असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्टे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ)

अशोकवनिकामध्यगताशोकवृक्षाधः स्थितस्यातर्ध्यानरूपमर्थं श्रुत्वा निशम्य=हृद्य-
वधार्य 'तद्देव' तथैव=यथास्थितस्तथैव 'संभते समाणे' सम्भ्रान्तः सन्-
'कथं पुनरसौ समागत' इति शङ्कितः सन् उत्थाय उत्तिष्ठति=उदिति उत्तिष्ठती-
त्यर्थः, उत्थाय. अन्तः पुरपरिवारसंपरिवृतः यत्रैव अशोकवनिका यत्रैव कण्डरीको-
ऽनगारस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य 'तिक्खुत्तो' त्रि कृत्वः=वारत्रयम् आद-
क्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा एवमत्रादीत्-'धण्णेसि णं तुमं देवाणुप्पिया । जाव
पव्वइए' धन्योऽसि खलु त्वं हे देवानुप्रिय । यावत् प्रव्रजितः । अह खलु
'अधण्णे' ३ अधन्यः ३ यावत् नो शक्नोमि प्रव्रजितुम् । 'तं' तस्मात्कारणात्
'धन्नेसि' धन्योऽसि खलु त्वं हे देवानुप्रिय ! 'जाव जीवियफले' यावत्
जीवितफलम्=त्वया जन्मजीवितफलं सुलब्धम् इति भावः। ततः खलु कण्डरीकेण
एवं=प्रशंसापरवचनैरुक्तः सन् तूष्णीकः संतिष्ठते, 'दोच्चंपि तच्चंति' द्वितीय-
मपि तृतीयमपि वारं पूर्वप्रकारेण उक्तः सन् 'जाव संचिद्धइ' यावत् संतिष्ठते=
मौनमवलम्ब्य स्थित इति भावः । ततः खलु पुण्डरीकः कण्डरीकमेवमवादीन्-अट्टो-

सुनिधे-तुम्हारे प्रिय भाई कण्डरीक अनगार अशोक वाटिका में अशोक
वृक्षके नीचे पृथिवीशिलापट्टक पर अपहतमनःसंकल्प होकर यावत् चिन्ता
मग्न बैठे हुए हैं (तएणं पोंडरीए अम्मधाईए एयमइं सोच्चा णिसम्म
तद्देव संभते समाणे उट्टाए उट्टेइ, उट्टित्ता अंतेउरपरिघालसंपरिवुडे
जेणेव असोगवणिघा जाव कण्डरीयं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ,
करित्ता एवं वयासी धण्णेसि णं तुमं देवाणुप्पिया ! जाव पव्वइए
अहण्णं अधण्णे ३ जाव नो पव्वइत्तए तं धन्नेसि णं तुमं देवाणुप्पिया !
जाव जीवियफले-तएणं कण्डरीए पुण्डरीएणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए
संचिद्धइ, दोच्चंपि तच्चंपि जाव संचिद्धइ, तएणं पोंडरीए कण्डरीयं एवं
वयासी अट्टो भंते ! भोगेहि ! हंता अट्टो ! तएणं से पोंडरीए राया कोडुं-

हे देवानुप्रिय ! सांलणे, तमारा प्रिय लार्थ कण्डरीक अनगार अशोक
वाटिकाभां अशोक वृक्षनी नीचे पृथिविशिला पट्टक उपर अपहतमन संकल्प
यधने यावत् चिन्तामग्न यधने भेसी रह्या छे

(तएणं पोंडरीए अम्मधाईए एयमइं सोच्चा णिसम्म तद्देव संभते समाणे
उट्टाए उट्टेइ, उट्टित्ता अंतेउरपरिघालसंपरिवुडे जेणेव असोगवणिघा जाव कण्ड-
रीयं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता एवं वयासी धण्णेसि णं तुमं
देवाणुप्पिया ! जाव पव्वइए अहण्णं अधण्णे २ जाव नो पव्वइत्तए तं धन्नेसिणं
तुमं देवाणुप्पिया ! जाव जीवियफले तएणं कण्डरीए पुण्डरीएणं एवं वुत्ते समाणे
तुसिणीए संचिद्धइ, दोच्चंवि, तच्चंवि जाव संचिद्धइ, तएणं पोंडरीए कण्डरीयं एवं
वयासी, अट्टो भंते ! भोगेहि ? हंता अट्टो ! तएणं से पोंडरीए राया कोडुं बिय

विद्यपुरिसे महावेड, सहावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कंडरीयस्स महत्थं जाव रायाभिसेअं उवट्टवेह, जाव रायाभिसेएणं अभिसिंचइ) इस प्रकार अन्धाधाय के सुख से इस बात को सुनकर और उसे चित्त में जमाकर जैसे बैठे हुए थे उसी तरह संभ्रान्त होते हुए-ये क्यों आये है-इस प्रकार शंकित चित्त होते हुए-उत्थानशक्ति से उठे बहुत जल्दी सुनते ही प्रमाण-उठे और उठकर अन्तःपुर के परिवार को साथ लेकर जहां अशोक बनिका थी-वहां पर आये-वहां आकर कंडरीक अनगर के पास पहुँचे-वहां पहुँच कर उन्होंने ने उन्हें तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण किया बाद में वे कहने लगे-हे देवानुप्रिय ! तुम्हें धन्यवाद है-जो तुम राज्य एवं अन्तःपुर का परित्याग कर प्रव्रजित हो गये हो इत्यादि जिस प्रकार पहिले उनसे कहा था इसी प्रकार अब भी कहा मैं अधन्य हूँ-३-जो यावत् दीक्षित होने के लिये शक्तिशाली नहीं हो रहा हूँ। इसलिये हे देवानुप्रिय ! आपके लिये धन्यवाद है-आपने जन्म और जीवन का फल अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है। इस तरह प्रशंसा परक वचनों से पुंडरीक राजा द्वारा कहे गये वे कंडरीक अनगर कुछ भी नहीं बोले-किन्तु चुपचाप ही बैठे रहे-। जब पुंडरीक राजा ने उनकी इस प्रकार की स्थिति देखी-तब दुबारा तिवारा भी उन्होंने ने

पुरिसे सहावेड, सहावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कंडरीयस्स महत्थं जाव रायाभिसेअं उवट्टवेह, जाव रायाभिसेएणं अभिसिंचइ)

आ प्रभाणु अंधाधायना सुभथी आ वात सांलणीने अने तेने मनमां धारणु करीने नेवी स्थितिमां तेओ अेडा डता तेवी न स्थितिमां स्तण्ध थधने " तेओ केम आव्या छे " आ प्रभाणु शंकायुक्त थतां-उत्थान शक्ति वडे तेओ ङला थया अने ङला थधने न्दही रणुवासना परिवारने साथे लधने न्यां अशोक वाटिका डती त्यां आव्या. त्यां आवीने कंडरीक अनगरनी पासे पडोन्था. त्यां पडोन्थीने तेमणु तेमने त्रणुवार आदक्षिणु प्रदक्षिणु कर्यां भाद कडेवा लाग्या के डे देवानुप्रिय ! तमने अरेअर धन्यवाद धरे छे के ने तमे रान्य अने रणुवासने। त्याग करीने प्रमत्त थर्ध गया छे, वगेरे नेम पडेलां कथुं डतुं तेमने ते वथते पणु कथुं. डु तो अधन्य छुं-३-ने यावत् दीक्षा अडणु करवानुं पणु सामथ्यं धरावतो नथी. अेथी डे देवानुप्रिय ! तमने धन्य छे तमोअे अरेअर पोतानां जन्म अने अवनतुं इण सारी रीते प्राप्त करी दीधुं छे. आ प्रभाणु प्रशंसाजनक वचनेथी पुंडरीक राज वडे संभाषित करयेला ते कंडरीक अनगर कंधपणु भोल्या नडि, तेओ भूंगा थधने अेसीन

मंते । भोगेहि ' अर्थे हे भदन्त ! भोगैः ?=किं भोगैः प्रयोजनमस्ति ? इति, कण्डरीकः प्राह- ' हंता ! अट्टो '=हन्त ! अर्थः=भोगमपभोक्तुमानसोऽस्मीति- भाः । ततः खलु=कण्डरीकाभिप्रायज्ञानानन्तरमित्यर्थः, स पुण्डरीको राजा कौटुम्बिकपुरुषान् गव्दयति=आह्वयति, शब्दयित्वा, एवमवदत् - क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! कण्डरीकस्य महार्थम्=अत्यर्थम् ' जात्र रायाभिसेयं ' यात्रत् राजा- भिपेकम् ' उग्रवेड ' उपस्थापयत्=परिकल्पयत्, ' जात्र रायाभिसेण अभिसि- चड ' यात्रत् राज्याभिपेकेण अभिपिञ्चति स पुण्डरीको राजा कण्डरीकं राजपदे स्थापयति ॥ सू० ४ ॥

मूलम्-तएणं पुंडरीए सयमेव पंचमुट्टियं लोयं करेइ,

उनसे ऐसा ही कहा परन्तु फिर भी उन्होंने ने कुछ नहीं ध्यान दिया केवल मौन धारण कर ही बैठे रहे-तब पुनः पुंडरीकने उन कंडरीक अनगार से इस प्रकार कहा-हे भदन्त ! क्या आप को भोगों से तात्पर्य है ? तब कंडरीक ने कहा-हां-मेरा मन भोगों को उपभोग करने के लिये हो रहा है । इस तरह कंडरीक का अभिप्राय जानने के बाद पुंडरीक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे ऐसा कहा-भो देवानुप्रियो तुम लोग कंडरीक के लिये राज्याभिपेक योग्य सामग्री एकत्रित कर लेआओ पुंडरीक राजा की इस आज्ञा के अनु-सार, उनलोगों ने वैसा ही किया-जब राज्याभिपेक सामग्री उपस्थित हो चुकी-तब पुंडरीकने कंडरीक का राज्याभिपेककर दिया-कंडरीक को राजपद में स्थापित कर दिया ॥ सूत्र ४ ॥

रह्या. पुंडरीक राज्याभे तेमनी आवी स्थिति लेधने णील अने त्रील वपत्त पणु आ प्रभाणु न कहु. पणु ते णु तेनी कंठ दरकार करी नडि तेआ इत्त भुंगा थधने भेसी न रह्या त्यारे इरी पुंडरीके ते कंडरीक अनगारने आ प्रभाणु कहुं के डे लगवन् । तमने गुं डल लोग उपभोगोनी धच्छा छे ? त्यारे कंडरीके कहुं के डे, अरेअर माइ मन लोग उपभोगमां प्रवृत्त थवा धच्छे छे. आ प्रभाणु कंडरीकनी धच्छा वलणीने पुंडरीक राज्याभे डौटुंभिक पुरुषोने जोलाव्या अने जोलावीने तेमने आ प्रभाणु कहुं के डे देवानुप्रियो ! तमे दोडे कंडरीक माटे-राज्याभिपेक योग्य सामग्री लेगी करे. पुंडरीक राज्याभे आ प्रभाणु आज्ञा साधणीने ते दोडेअे तेमन कथुं. त्यारे राज्या-भिपेकनी अधी वस्तुआ अेकत्रित थध गठ त्यारे पुंडरीके कंडरीकने राज्याभिपेक करी दीधे. अेटवे के कंडरीकने राज्याभने भेसाडी दीधे. ॥ सूत्र ४ ॥

करित्ता, सयमेव चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता
कंडरीयस्स संतियं आयारभंडयं गेण्हइ, गेण्हित्ता, इमं
एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ-कप्पइ से थेरे वंदित्ता
णमंसित्ता थेराणं अंतिए चाउज्जामं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं
तओ पच्छा आहारं आहरित्तए त्तिकट्टु, इमं च एयारूवं
अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता णं पोंडरिगिणीए पडिणिक्खमइ,
पडिणिक्खमित्ता, पुव्वाणुपुट्ठिव चरमाणे गामाणुगामं दूइज्ज-
माणे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव पहारेत्थ गमणाए॥सू०५॥

टीका—‘ तएणं पुंडरीए ’ इत्यादि । ततः खलु पुण्डरीकः स्वयमेव पञ्च
मुष्टिकं लोचं करोति, तथा स्वयमेव ‘ चाउज्जामं ’ चातुर्यामं=चतुर्महाव्रतलक्षणं
धर्मं प्रतिपद्यते, प्रतिपद्य, ‘ कंडरीयस्स संतियं ’ कण्डरीकरय सत्कम्=कण्डरीक
सम्बन्धि इत्यर्थः, ‘ आयारभंडयं ’ आचारभाण्डकं आचाराय=साधुः पञ्चविधा-
चारपरिपालनाय यद्भाण्डकं=वस्त्रपात्रसदोक्तमुखवस्त्रिकारजोहरणादिरूपम् तद्

‘ तएणं पुंडरीए सयमेव पंचमुष्टियं ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (पुंडरीए) पुंडरीक ने (सयमेव)
अपने आप (पंचमुष्टियं लोचं करेइ) अपना पंचमुष्टिक लोच किया-
(करित्ता सयमेव चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ पडिवज्जित्ता कंडरीयस्स
संतियं आयारभंडयं गेण्हइ) और लोच करके स्वयं ही उन्होंने-चातु
र्याम-चतुर्महाव्रत रूप धर्म को धारण कर लिया । एवं कंडरीक के
अनगार अवस्था संबन्धी आचार भाण्डक को-वस्त्र, पात्र, सदोरक मुख-
वस्त्रिका, रजोहरण आदिरूप साधु चिहों को-ले लिया । (गेण्हित्ता
इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ, कप्पइ से थेरे वंदित्ता णमंसित्ता

‘ तएणं पुंडरीए सयमेव पंचमुष्टियं ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपथी (पुंडरीए) पुंडरीके (सयमेव) पोतानी
जते ७ (पंचमुष्टियं लोचं करेइ) पोतानुं पथमुष्टिकं लुचनं कथुं ।

(करित्ता सयमेव चाउज्जामं धम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता कंडरीयस्स
संतियं आयारभंडयं गेण्हइ)

अने लुचन करीने जते ७ तेमणे चातुर्यामं-चतुर्महाव्रत रूपधर्मने धारण
करी लीधा. अने कंडरीकनी अनगार अवस्था संबन्धी आचार लांडके-वस्त्र,
पात्र, सदोरक मुखवस्त्रिका, रजोहरण वगेरे साधु चिहोने लई लीधां

गृह्णाति, गृहीत्वा, इममेतद्रूपं=वक्ष्यमाणमभिग्रहं=प्रतिज्ञाविशेषम् अभिगृह्णाति=करोति अभिग्रहस्वरूपमाह—कल्पते. मे स्थविरान् वन्दित्वा नमस्यित्वा स्थविराणामन्तिके चातुर्यामं धर्मम् 'उवसंपज्जित्ताणं' उपसंपन्न=स्वीकृत्य, ततः पश्चात्—आहारमाहर्त्तुम् इति कृत्वा निश्चित्य, इमं च एतद्रूपम् अभिग्रहम्, अभिगृह्य खलु पुण्डरीकिण्याः प्रतिनिष्क्राम्यति निस्सरति, प्रतिनिष्क्रम्य 'पुव्वाणुपुर्व्वि' पूर्व्वानुपूर्व्व्यां चरन्, ग्रामानुग्रामं द्रवन् यत्र स्थविरा भगवन्तस्तत्रैव प्राधारयद्=गमनाय गन्तुं प्रस्थितः ॥ सू०५ ॥

थेराणं अंतिए चाउज्जामं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं, तओ पच्छा आहारं आहरित्तए) वाद में उन्होंने इस प्रकार अभिग्रह धारण किया कि जबतक मैं स्थविर भगवंतो को वंदना नमस्कार कर उनके पाससे चातुर्याम धर्मको धारण नहीं कर लूंगा, तबतक मैं आहार पानी ग्रहण नहीं करूंगा उनके पास चातुर्याम धर्म धारण करके ही आहार ग्रहण करूंगा (त्ति कट्टु इमं च एयारूवं अभिग्रहं अभिगिण्हित्ता णं पोंडरिगिणीए पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पुव्वाणुपुर्व्वि चरमाणे गामाणुगामं दूहज्जमाणे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव पहारेत्थ गमणाए) इस प्रकार का यह अभिग्रहण कर वे उस पुंडरीकिणी नगरी से निकले—और निकल कर तीर्थंकर परम्परानुसार विहार करते हुए एवं एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विचरण करते हुए वे उस ओर प्रस्थित हुए कि जहां स्थविर भगवंत विराजमान थे ॥ सूत्र ५ ॥

(नेण्हित्ता इमं एयारूवं अभिग्रहं अभिगिण्हइ, कएइ, मे थेरे वंक्षित्ता णमंसित्ता थेराण अतिए चाउज्जामं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं, तओपच्छा आहारं आहरित्तए) तयारमाइ तेमण्णे आ नतने। अलिअइ धारणु करीं के न्यां सुधी हुं स्थविर लगवतोने वंदना तेमण नमस्कार करीने तेमनी पासैथी आतुर्याम धर्मने धारणु नडि कइ त्यां सुधी हुं आहार पाणी अडणु करीश नडि. तेमनी पासैथी आतुर्याम धर्मने धारणु करीने न हुं आहार अडणु करीश.

(त्ति कट्टु इमं च एयारूवं अभिग्रहं अभिगिण्हित्ताणं पोंडरिगिणीए पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पुव्वाणुपुर्व्वि चरमाणे गामाणुगामं दूहज्जमाणे जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव पहारेत्थ गमणाए)

आ प्रमाणे ते अलिअइने मनमां धारणु करीने तेओ ते पुंडरीकिणी नगरीनी गहार नीकण्या अने नीकणीने तीर्थंकर परंपरा मुज्ज विहार करतां करतां अने आ प्रमाणे अेक गामथी णीने गाम विचरणु करतां करतां तेओओ न्या स्थविर लगवतो विराजमान इता ते तरइ प्रस्थान कथुं. ॥सू०५॥

मूलम्--तएणं तस्स कंडरीयस्स रण्णो तं पणीयं पाण-
भोयणं आहारियस्स समाणस्स अतिजागरिण य अइ
भोयणप्पसंगेण य से आहारे णो सम्मं परिणमइ । तएणं
तस्स कंडरीयस्स रण्णो तंसि आहारंसि अपरिणममाणंसि
पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि स्सरीरंसि वेयणा पाउब्भूया
उज्जला विउला पनाढा जाव दुरहियासा पित्तज्जरपरिगय-
सरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरइ । तएणं से कंडरीए राया
रज्जे य रट्टे य अंतेउरे य जाव अज्झोववन्ने अट्टुहुहट्टवसट्टे
अक्कामए अवस्सवसे कालमासे कालं किञ्चा अहे
सत्तमाए पुढवीए उक्कोसकाल ट्टिइयंसि नरयंसि नेरइयत्ताए
उववण्णे । एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे
पुणरवि स्माणुस्सए कामभोगे आत्ताए जाव अणुपरियट्टि-
स्सइ, जहा व से कंडरीए राया ॥ सू० ६ ॥

टीका—' तएणं तस्स ' इत्यादि । ततः खलु तस्य कण्डरीकस्य राज्ञस्तं
' पणीयं ' प्रणीतम् = सरसं गरिष्ठं च पानभोजनम् ' आहारियस्स समाणस्स '
आहारित्तस्य सतः=आहारं कुर्वतः सतः ' अइजागरियेण य ' अतिजागरितेन च=

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (तस्स कंडरीयस्स रण्णो) उस कंड
रीक राजा के (तं पणीयं पाणभोयणं आहारियस्स समाणस्स अतिजा-
गरिणय अइभोयणप्पसंगेणय से आहारे णो सम्मं परिणमइ) इस
प्रणीत-सरस-गरिष्ठ पान भोजन के खाने से तथा विषयों की अधिक
आसक्ति के कारण अतिजागरण करने से एवं प्रमाणाधिक भोजन के

'तएणं तस्स कंडरीयस्स रण्णो' इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं) त्थारपणी (तस्स कंडरीयस्स रण्णो) ते कंडरीक राजाने

(तं पणीयं पाणभोयणं आहारियस्स समाणस्स अतिजागरिण य अइभो-
यणप्पसंगेण य से आहारे णो सम्मं परिणमइ)

ते प्रणीत-सरस-गरिष्ठ पान भोजनना आहारथी तेभञ्ज विषयोमां
वधारे पडती आसक्तिना दीधे, वधारे नगरणु करवाथी, अने प्रमाणु करतां

विषयोस्रक्तेरतिजागरणया ' अडभोयणप्परंगेज ' अतिभोजनप्रलङ्गेन=प्रमाणाधिक-
 भोजनेन स अहारो नो सम्यक् परिणमति=यथावदाहारस्य परिपाको न भवति ।
 ततः खलु तस्य कण्डरीकस्य राज्ञः ' तंसि ' आहारंसि ' तस्मिन् आहारे ' अप-
 रिणममाणंसि ' अपरिणमति=परिपाकमगच्छति सति ' पुव्वरत्तावरत्तकालसम-
 यंसि ' पूर्व(रात्रापररात्रकालसमये=रात्रोर्मध्यभागे ' सरीरंसि ' शरीरे वेदना प्रादु-
 र्भूता, कीदृशीवेदना ? उज्ज्वला=मृगलेशरहिता, विपुला=विशाला-सर्वशरीरव्याप्ता
 ' पगाढा ' प्रगाढा ' जाव दुरहियासा ' यावद् दुरधिसह्या=सोढुमशक्या, पुनः
 स कण्डरीको राजा ' पित्तज्वरपरिगयमरीरे ' पित्तज्वर परिगतशरीरः=पित्तज्वरेण
 परिगतं=व्याप्तं शरीरं यस्य सः=पित्तज्वरपरिव्याप्तशरीरः ' दाहवक्कंतीए ' दाह-
 व्युत्क्रान्तिकः=दाहज्वरज्वालासमाक्रान्तः चापि विहरति=आस्ते । ततः खलु स
 कण्डरीको राजा राज्ये च राष्ट्रे च अन्तःपुरे च ' जाव अज्जोववन्ने ' यावत्

प्रसंग से कृत आहार का परिपाक ठीक २ नहीं होता रहा-(तएणं
 तस्स कंडरीयस्स रण्णो तंसि आहारंसि अपरिणममाणंसि पुव्वरत्तावर-
 त्तकालसमयंसि सरीरंसि वेयणा पाउव्वुया उज्जला विउला पगाढा जाव
 दुरहियासा पित्तज्वरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरइ)
 इसलिये एक दिन की बात है कि उन कंडरीक राजा के जब वह कृत
 सरस गरिष्ठ आहार अच्छी तरह नहीं पचा तब उनके शरीर में रात्रि
 के मध्यभागमें वेदना प्रादुर्भूत हुई । जिस वजह से वह वेदना सुख
 के लेश से वर्जित थी उनके समस्त शरीर भर में व्याप्त हो रही थी
 बहुत अधिक थी-यावन् वह उन्हें दुरधिसह्य हो रही थी । पित्तज्वर
 से व्याप्त है शरीर जिन का ऐसे वे कंडरीक राजा दाहज्वर की ज्वाला

पथु वधारे भोजन प्रसंगोमां करेला आहारतुं पायन थरापर थतुं नडोतुं.

(तएणं तस्स कंडरीयस्स रण्णो तंसि आहारंसि अपरिणममाणंसि पुव्व-
 रत्तावरत्तकालसमयंसि सरीरंसि वेयणा पाउव्वुया उज्जला विउला पगाढा जाव
 दुरहियासा पित्तज्वरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए यावि विहरइ)

ओथी ओइ द्विसती वात छे डे ते कंडरीक राजने न्यारे भोजन रुपमा
 दीधेला ते सरस अने गरिष्ठ आहारतुं सारी रीते पायन थयु नडि त्तारे
 रात्रिना मध्य भागमां तेमना शरीरमां वेदना थवा मांडी, तेथी तेओओ भूण न
 दुःभी थया. आ वेदनामा मात्र दुःख न थतुं इतुं, ते वेदना तेमना संपूर्ण
 शरीरमां व्याप्त थई रही इती. प्रमाणुमां ते अहु न वधारे इती. यावत् ते
 तेमना-भाटे दुरधिसह्य (असह्य) थई पडी इती पित्तज्वरथी व्याप्त थयेला
 शरीरवाणा ते कंडरीक राज दाहज्वरनी व्याणाओथी सजगी उठया.

अध्युपपन्नः-मूर्च्छितो गृद्धः ग्रथितः अध्युपपन्नः राज्यादिषु सर्वथासक्त इत्यर्थः, 'अट्टदुहृद्वसट्टे' अर्तदुःखार्तवशार्तः=तत्र=आर्तः=मनसा दुःखितः, दुःखार्तः=देहदुःखयुक्तः, वशार्तः=राज्यराष्ट्रान्तः पुराद्यासक्तेन्द्रियवशेन विषयसुखवियोग-सम्भावनया पीडितः=आर्तध्यानोपगत इत्यर्थः । 'अकामए' अकामकः=अनिच्छकः-मरणवाञ्छारहितः, 'अवस्सवसे' अपस्ववशः=अपगतस्वातन्त्र्यः पराधीनः सन् कालमासे कालं कृत्वा 'अहे सत्तमाए' अधः सप्तम्यां पृथिव्याम् तमस्तमः प्रभाख्ये सप्तमे नरके 'उक्कोसकालट्टिइयंसि' उत्कृष्टकालस्थितिके नरके

से भी युक्त हो गये । (तएणं से कंडरीए राया रज्जे य रट्टे य अंतेउरे य जाव अज्झोववन्ने अट्टदुहृद्वसट्टे अकामए अवस्सवसे कालमासे कालं किच्चा अहे सत्तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्टिइयंसि नरयंसि नेरइयत्ताए उववण्णे) इस तरह दुःखित बने हुए वे कंडरीक राजा राज्य राष्ट्र, एवं अन्तपुर में अध्युपपन्न हो गये इस प्रकार राज्यादिकों में सर्वथा आसक्तिभाव से बंधे हुए वे राजा मन से दुःखित होकर, देह के दुःख से एकक्षण अर्तध्यान में पड़ गये । अन्त में वे, ये नहीं चाहते थे कि मेरी मृत्यु हो जावे-तौ भी सांसारिक स्थिति से बन्धे हुए होने के कारण या वेदनाओं से पीडित होने के कारण वे स्ववश नहीं थे परतंत्र थे, इसलिये काल अवसरकाल करके मर कर नीचे तमस्तम प्रभा नाम के सातवें नरक में कि जो उत्कृष्ट काल स्थिति प्रमाण है-अर्थात् ३३ सा-

(तएणं से कंडरीए राया रज्जे य रट्टे य अंतेउरे य जाव अज्झोववन्ने अट्टदुहृद्वसट्टे अकामए अवस्सवसे कालमासे कालं किच्चा अहे सत्तमाए पुढवीए, उक्कोसकालट्टिइयंसि नरयंसि नेरइयत्ताए उववण्णे)

आ प्रभाखे दुःखित थयेत्ता ते कंडरीक राज्ञे राज्ञे, राष्ट्रं अने रणु-वासमां अध्युपपन्नं थयं गया अट्टे के वधारे पडता आसक्तं थयं गया, आ प्रभाखे राज्ञे वगेरेमां संपूर्णपणे आसक्तं भावथी, अधायेत्ता ते राज्ञे मनथी दुःखितं थयने, शारीरिकं कथंथी अकं क्षणं भाटे पणु मुक्तिं नहिं थवाने-कारणे विषय सुप्पेना वियोगनी संलावना अदत्तं तेमं राज्ञे, राष्ट्रं, रणुवास वगेरेमां आसक्तं धन्दिथेना वशमां डोवाने कारणे आर्तध्यानमां भयं थयं गया छेवटे तेमो मृत्युने धम्भिता नडोता छतांमे सांसारिकं वातावरणमां अधायेत्ता डोवाने कारणे अथवा वेदनामोथी पीडितं डोवाने कारणे तेमो स्ववशं डोता नहिं, परवशं-परतंत्रं डोता, अथी काणं अवसरे काणं करीने,- मृत्यु पाभीने-नीचे तमस्तमप्रभा नामना सातमा नरकमां के. ने उत्कृष्ट काल-

नैरयिकतया उपपन्नः। एतद् दृष्टान्तेन भगवान् महावीरः साधुनुपदिशति—एवमेव
=अने नैवप्रकारेण हे आयुष्मन्तः ! श्रमणाः यः कश्चिदस्माकं श्रमणो वा श्रमणी वा
आचार्योपाध्यायानामन्तिके यावत्प्रव्रजितः सन् पुनरपि मानुष्यकान् कामभोगान्
' आसाएइ ' आस्वादयति । स ' जाव अणुपरियट्टिस्सइ ' यावदनुपर्यट्टिष्यति—
यावत्—चातुरन्तसंसारकान्तार परिभ्रमिष्यति । ' जहेव से कंडरीए राया ' यथैव
स कण्डरीको राजा ॥ सू०६ ॥

मूलम्—तएणं से पोंडरीए अणगारे जेणेव थेरा भगवंतो
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ,
वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतिए दोच्चंपि चाउज्जामं धम्मं
पडिवज्जइ, छट्टक्खमणपारणगंसि पढस्साए पोरिसीए सज्झायं
करेइ, करित्ता जाव अडमाणे सीयलुक्खं पाणभोयणं पडि-
गाहेइ, पडिगाहित्ता, अहापज्जत्तमिति कट्टु पडिणिघत्तइ,

गर की जहां उत्कृष्ट स्थिति है—नारकी की पर्याय से उत्पन्न हो गये ।
हसी बात को दृष्टान्त से श्री भगवान् महावीर प्रभु साधुओं को सम-
झाते हैं—(एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए सभाणे पुणरवि माणु-
स्सए कामभोगे आसाए जाव अणुपरियट्टिस्सइ, जहा व से कंडरीए
राया) इसी तरह हे आयुष्मन्त श्रमणों ! जो कोई हमारा श्रमण अथवा
श्रमणीजन आचार्य उपाध्याय के पास में दीक्षित होकर के पुनः मनुष्य
अव संवन्धी कामभोगों को ओगता है वह कंडरीक राजा की तरह
यावत् इस चतुर्गति रूप संसार कान्तार में परिभ्रमण कयेगा ॥सूत्र६॥

स्थिति प्रमाणे छे—अेट्ठे के उउ सागरनी न्यां उत्कृष्ट स्थिति छे—नारदीनी
पर्यायथी नन्म पाभ्या. अे न वातने श्री भगवान् महावीर प्रभु दृष्टान्त रूपमां
साधुओने समजवे छे के—

एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे पुणरवि माणुस्सए कामभोगे
आसाए जाव अणुपरियट्टिस्सइ, जहा व से कंडरीए राया)

आ प्रमाणे छे आयुष्मन्त श्रमणो ! जे केअं अमारा श्रमण अथवा
श्रमणीजन आचार्य के उपाध्यायनी पाससे दीक्षित थधने करी जे ते मनुष्य
सवना कामभोगोने लोगवे छे, ते कंडरीक राजनी जेम यावत् आ चतुर्गति
रूप संसार कान्तारमा परिभ्रमण करथे. ॥ सूत्र ६ ॥

जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, भत्त-
पाणं पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता, थेरेहिं भगवंतेहिं अब्भणुन्नाए
समाणे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झुववण्णे बिल-
मिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तं फासुएसणिज्जं असणपा-
णखाइमसाइमं सरीरकोटुगंसि पक्खिवइ । तएणं तस्स
पुंडरीयस्स अणगारस्स तं कालाइकंतं अरसं विसरं सीय-
लुक्खं पाणभोयणं आहारियस्स समाणस्स पुव्वरत्तावरत्तकाल-
समयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स सेआहारे णो सस्मं
परिणमइ । तएणं तस्स पुंडरीस्स अणगारस्स सरीरगंसि
वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुरहियासा, पित्तज्जरप-
रिगयसरीरे दाहवक्कंतिए विहरइ । तएणं से पुंडरीए अण-
गारे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे करयल
जाव एवं दयासी-णमोऽत्थुणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं
णमोत्थुणं थेराणं भगवंताणं सस धम्मायरियाणं धम्मोव-
एसयाणं पुठ्विं पि य णं सए थेराणं अंतिए सव्वे पाणाइ-
वाए पच्चक्खाए जाव मिच्छादंसणसल्ले णं पच्चक्खाए जाव
आलोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा सव्वट्टसिद्धे उव-
वन्ने । तओ अणतरं उठ्वट्टित्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ
जाव सव्वदुक्खाणसंतं काहिइ । एवामेव समणाउसो ! जाव
पव्वइए समाणे माणुस्सएहिं कामभोगेहिं णो सज्जइ णो रज्जइ,
जाव विप्पडिघायमावज्जइ, से णं इहभवे चेव बहूणं सावगाणं०

अच्चणिज्जे वंदणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे
 कल्लाणं संगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जेत्तिकट्टु परलोए
 वि य णं णो आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य मुंडणाणि य
 तज्जणाणि य ताडणाणि य जाव चाउरंतं संसारकंतारं
 जाव वाइवइस्सइ जेहावसे पौंडरीए अणगारे । एवं खलु
 जंबू ! समणेणं भगवयां महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं
 जाव सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं एगूणवीसइमस्स
 नायज्झयणस्स अयमट्टे पन्नत्ते । एवं खलु जंबू ! समणेणं
 भगवयां महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं
 छट्टस्स अंगरस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स अयमट्टे पण्णेत्ते
 त्तिवेमि ॥ सू० ७ ॥

टीका—‘ तएणं से ’ इत्यादि । ततः खलु स पुण्डरीकोऽनगारो यत्रैव
 स्थविराभगवन्तस्तत्रैव उवागच्छति, उवागत्य स्थविरान् भगवतो वन्दते नमस्यति,
 वन्दित्वा नमस्यित्वा स्थविराणामन्तिके ‘ दोच्चंपि ’ द्वितीयमपि वारम् चातुर्व्यामं=
 चतुर्महाव्रतरूपं धर्मं प्रतिपद्यते । तथा पष्ठक्षपणपारणायां संघाप्तायां प्रथमायां

‘ तएणं से पौंडरीए अणगारे’ इत्यादि ।

टीकार्थः—(तएणं) इसके बाद (से पौंडरीए अणगारे) वे पुंडरीक
 अनंगार (जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छइ) जहाँ स्थविर भग-
 वंत विराजमान थे वहाँ आ गये । (उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ,
 नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता थेराणं अंतिए दोच्चंपि चाउज्जामं धम्मं

(तएणं से पौंडरीए अणगारे) इत्यादि ।

टीकार्थः—(तएणं) त्याख्याद (से पौंडरीए अणगारे) ते पुंडरीक अन-
 गार (जेणेव थेरा भगवतो तेणेव उवागच्छइ) जहाँ स्थविर भगवंत विरा-
 जमान उता त्यां गया.

(उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता थेराणं
 अंतिए दोच्चंपि चाउज्जामं, धम्मं पहिव्वज्जइ, छट्टस्सवमणपारणायां पढमाय

पौरुष्यां=प्रथमे प्रहरे स्वाध्यायं करोति, कृत्वा 'अडमाणे' यावत् अटन् उच्चनीच-
मध्यमकुलेषु भिक्षार्थं परिभ्राम्यन् ' सीयलुक्खं ' शीतरूक्षं-शीतं=पर्युषित, रूक्षं
घृतादिरहितं पानं भोजनं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्य 'अहापज्जत्तमितिकट्टु ' यथापर्या-
प्तमिति कृत्वा=उदरभरणपर्याप्तमिदमन्नमिति मनसि कृत्य ' पडिणियत्तइ ' प्रति-

पडिवज्जइ, छट्टुक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्जायं करेइ
करित्ता जाव अडमाणे सीयलुक्खं पाणभोयणं पडिगाहेइ, पडिगाहित्ता
अहापज्जत्तमि त्ति कट्टु पडिनियत्तइ-जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवा-
गच्छइ, उवागच्छित्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता थेरेहिं भगवंतेहिं
अवभणुन्नाए समाणे अमुच्छिअ अगिद्धे अगठिए अणज्जुववणणे विल-
मिव पणगभूएणं अप्पाणेणं तं फासुएसणिज्जं असणपाणखाइम
साइमं सरीरकोट्टुगंसि पक्खिवइ) वहाँ आकर के उन्होंने ने स्थविर भग-
वंतों को वंदना नमस्कार किया। वंदना नमस्कार करके बाद में उन्होंने
ने उनसे दुवाराचातुर्याम-चतुर्महाव्रतरूप धर्म को धारण किया। जब
षष्ठक्षपण की पारणा का समय आया उस समय वे प्रथम पौरुषी में
स्वाध्याय करते-और स्वाध्याय करके फिर वे उच्च नीच मध्यम कुलों
में भिक्षा के लिये परिभ्रमण करते उस समय जो उन्हें शीत-पर्युषित,
रूक्ष-घृतादिरहित पान भोजन मिलता-वह वे ले लेते-और यह अन्न-
सामग्री उदरभरण के लिये पर्याप्त है ऐसा मन में विचार कर वहाँ से

पारिसीए सज्जायं करेइ करित्ता जाव अडमाणे सीयलुक्खं पाणभोयणं पडिगाहेइ
पडिगाहित्ता अहापज्जत्तमि त्ति कट्टु पडिनियत्तइ-जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता थेरेहिं भगवंतेहिं,
अवभणुन्नाए समाणे अमुच्छिअ अगिद्धे अगठिए अणज्जुववणणे विलमिव पणगभूएणं
अप्पाणेणं तं फासुएसणिज्जं असणपाणखाइमसाइमं सरीरकोट्टुगंसि पक्खिवइ)

त्यां आवीने तेभल्ले स्थविर भगवंताने वंदना अने नमस्कार कर्या
वंदना अने नमस्कार करीने तेभल्ले तेमनी पासेथी भीशुवर चातुर्याम-चतु-
र्महाव्रत इय धर्मने धारण कर्या न्यारे षष्ठ क्षपणुनी पारणाने वणत
आव्ये त्यारे तेओ प्रथम पौरुषीमां स्वाध्याय करता अने स्वाध्याय करीने
तेओ उच्च, नीच अने मध्यम कुलोमां भिक्षा भाटे परिभ्रमण करता ते
सभये तेमने शीत-पर्युषित, रूक्ष-धी वगरने, पान आहार भणने ते तेने
तेओ स्वीकारी देता अने ' आटठो आहार उदर-पोषणु भाटे पूरतो छे '
आवेो मनमां विचार करीने त्यांथी पाछा इरी नता पाछा आवीने भिक्षामां

निर्वर्तते=प्रत्यागच्छति, प्रतिनिवृत्त्य यत्रैव स्थविराभगवन्तस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, भक्तपानं प्रतिदर्शयति, प्रतिदर्श्य, स्थविरैर्भगवद्भिरभ्यनुज्ञातः सन् अमूर्च्छितः अगृह्यः अग्रथितः अनध्युपपन्नः=आसक्तिपरिवर्जित इतिभावः, ' विल-मिव पन्नगभूषणं अप्पाणेणं ' विलमिव पन्नगभूतेन आत्मना इव=यथा पन्नग-भूतेन=पन्नगभवमागतेन आत्मना=जीवेन विलं प्रविष्यते, तथा तं ' फासुएस-णिज्जं ' प्रासुकैषणीयं=द्वाचत्वारिंशद्दोषवर्जितम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं 'सरीर-कोट्टगंसि' शरीरकोष्ठके=उदरे प्रक्षिपति, यथा भुजङ्गो विलस्य पार्श्वभागद्वयमसंस्पृ-शनं मध्यभागत एवात्मानं विले प्रवेशयति तथा स मुखस्य पार्श्वद्वयस्पर्शरहित-माहारं कण्ठनालाभिमुखं प्रवेश्य आहारयतीति भावः । ततः खलु तस्य पुण्डरी-कस्य अनगरस्य ' कालाङ्कतं ' कालातिक्रान्तं=कालमतिक्रम्य प्राप्तम्-बुभुक्षा-

वापिस आ जाते-वापिस आकर फिर प्राप्त भिक्षान्न को दिखाने के लिये वे जहां स्थविर भगवंत विराजमान होते वहां आते-वहां आकर प्राप्त भिक्षान्न को उन स्थविर भगवंतों को दिखलाते-दिखालकर जब वे उस आहार को खाने की आज्ञा देते-तब वे अमूर्च्छित भाव से अगृह्यचित्तवृत्ति से, एवं आसक्ति रहित परिणति से उस प्राशुक एषणीय-४२ दोषों से रहित अशन, पान, खाद्य, एवं स्वाद्यरूप-आहार को जिस तरह सर्प-विल में प्रविष्ट होता है उसी तरह से शरीर कोष्ठक में-उदर में डाल देते थे । कारण इसका इस प्रकार है-जैसे भुजंग विल के पार्श्वद्वय नहीं छूता हुआ सीधे मध्यभाग से अपने को विल में प्रविष्ट कराता है उसी तरह वे मुनिराज मुख के पार्श्वद्वय के स्पर्श से रहित आहार को सीधे कण्ठनाल में धर कर आहार करते थे (तएणं तस्स पुण्डरीयस्स अणगरस्स तं कालाङ्कतं अरसविरसं सियलुक्खं पाण-

प्राप्त आहारने भताववा भाटे न्यां ते स्थविर भगवंत विराजमान हुता त्यां आवता. त्यां आवीने भेणवेदा आहारने ते स्थविर भगवंताने भतावता अने भतावीने न्यारे तेआ ते आहारने अडुणु करवानी आज्ञा करता त्यारे तेआ अमूर्च्छित-लावथी, अगृह्य-चित्तवृत्तिथी अने आसक्ति रहित परिणुत्तिथी ते प्रासुक एषणीय-४२ दोषोथी रहित अशन, पान, खाद्य अने स्वाद्यरूप आहा-रने भेम साप दरमां प्रवेशे छे तेमज्ज शरीर कोष्ठकमां-पेटमां नाभी हुता हुता. भेम साप दरमां अने पार्श्वाने स्पर्श न करतां सीधे वरये धरने पोतानी भतने दरमां प्रविष्ट करावी छे छे तेमज्ज ते मुनिराज पणु मुपपना अने पार्श्वाना स्पर्शथी रहित आहारने सीधे कण्ठनालमां भूडीने उदरस्थ करता हुता.

(तएणं तस्स पुण्डरीयस्स अणगरस्स तं कालाङ्कतं अरसं विरसं विय

समयमुल्लङ्घ्य प्राप्तम्, असं विरसं शीतरूक्षं पान भोजनम् 'आहारियस्स' आहारितस्य सतः पूर्वरात्रापररात्रकालसमये 'धम्मजागरियं जागरमाणस्स' धर्मजागारिकां जाग्रतः=धर्मचिन्तनार्थं जागरणां कुर्वतः स आहारो नो सम्यक् परिणमति=नो परिपाकं गच्छति। ततः खलु तस्य पुण्डरीकस्य अनगारस्य शरीरे वेदना प्रादुर्भूता 'उज्जला जाव दुरहियासा' उज्ज्वला यावत् दुरधिसहा, एषां व्याख्यापूर्ववत्, तथा स पुण्डरीकोऽनगारः पित्तज्वरपरिगतशरीरो दाहव्युत्क्रान्तिकः=दाहज्वरसमाकुलश्चापि विहरति। ततः खलु स पुण्डरीकोऽनगारः 'अस्थामे' अस्थामा=शक्तिरहितः, अबलः=शारीरिकबलरहितः, 'अवीरिए' अवीर्यः=उत्साहरहितः, अपुरुषकारपराक्रमः=पुरुषार्थपराक्रमरहितः 'करयल जाव' करतल यावत्=करतलपरिगृहीतं दशनखं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्-नमोऽस्तु खलु अर्हद्भ्यो यावत्संप्राप्तेभ्यः=मोक्षं गतेभ्यः, नमोस्तु खलु स्थविरेभ्यो भगवद्भ्यो मम धर्माचार्येभ्यो धर्मोपदेशकेभ्यः, पूर्वमपि च खलु मया स्थविराणा-

भोयणं आहारियस्स समाणस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स से आहारे णो सम्मं परिणमइ) इस तरह उन पुंडरीक अनगार का कालातिक्रम से खाया हुआ वह अरस, विरस, शीत, रूक्ष, पानभोजन रात्रि के मध्यभाग में धर्मचिन्तन निमित्त जागरण करने के कारण अच्छी तरह से नहीं पचता था (तएणं तस्स पुंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगंसि वेयणा पाउव्भूया उज्जला जाव दुरहियासा, पित्तज्वरपरिगतशरीरे दाहवक्कंतिए विहरइ, तएणं से पुंडरीए अणगारे अस्थामे, अबले, अवीरिए अपुरिसक्कारपरिक्कमे करयल जाव, एवं वयासी-णमोत्थुणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं णमोत्थुणं थेराणं भगवताणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसयाणं पुण्वि पि य णं मए

लुक्खं पाणभोयणं आहारियस्स समाणस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स से आहारे णो सम्मं परिणमइ)

आ प्रभाणे ते पुंडरीक अनगारो ऽणगतिकमथी करेदो ते अरस, विरस, शीत, रूक्ष पान आहारतुं रात्रिना मध्य भागमां धर्मचिन्तन भाटे करेदा ऽणगरणुने दीधे सारी रीते पायन थतुं न इतुं.

(तएणं तस्स पुंडरीयस्स अणगारस्स सरीरगंसि वेयणा पाउव्भूया उज्जला जाव दुरहियासा, पित्तज्वरपरिगतशरीरे दाहवक्कंतिए विहरइ, तएणं से पुंडरीए अणगारे अस्थामे, अबले, अवीरिए अपुरिसक्कारपरिक्कमे करयल जाव, एवं वयासी-णमोत्थुणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं थेराणं भगवताणं मम धम्मायरियाणं

मन्तिके सर्वः प्राणातिपातः प्रत्याख्यातः यावत् मिथ्यादर्शनशल्यं खलु प्रत्याख्या-
तम्=अष्टादशपापस्थानानि प्रत्याख्यातानि इति भावः, इदानीमपि तेषामेव

थेरारणं अंति ए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जाव भिच्छादंसणसल्ले णं
पच्चक्खाए जाव आलोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा सव्वद्द-
सिद्धे उववन्ने) इस कारण पुंडरीक अनगार के शरीर में वेदना प्रकट
हो गई। जिसके कारण उन्हें क्षणभर भी शांता नहीं मिलती। धीरे २
यह समस्त शरीर में भी व्याप्त हो गई। यावत् यह उनके लिये सहन
हो सके ऐसी नहीं रही-वे उसे बड़ी कठिनता से सहते। दाहज्वर ने
भी इनके शरीर पर अपना प्रभाव जमा लिया। इस तरह ये दाहज्वर
की ज्वाला से भी आकुल व्याकुल रहने लगे। धीरे २ इनका शरीर
शक्ति रहित हो गया। शारीरिक बल भी इनका जाता रहा। उत्साह
रहित एवं पुरुषार्थ पराक्रम से विहीन जब ये हो गये तब करतल परि-
गृहीत दशनखोंवाली अंजलि को इन्होंने अपने मस्तक पर रखकर इस
प्रकार का पाठ बोलना प्रारंभ किया यावत् मुक्ति प्राप्त अर्हत भगवंतों के
लिये मेरा नमस्कार हो, मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक स्थविर भगवंतों के
लिये मेरा नमस्कार हो। मैंने पहिले भी स्थविर भगवंतों के निकट सम-
स्त प्राणातिपात प्रत्योख्यान कर दिया है-यावत् मिथ्यादर्शन शल्य

धम्मोवएसयाणं पुब्बिं पि य ण मए थेराणं अंति ए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए
जाव भिच्छादंसणसल्लेण पच्चक्खाए जाव आलोइयपडिक्कंते कालमासे कालं
किच्चा सव्वद्द सिद्धे उववन्ने)

अथी ते पुंडरीक अनगारना शरीरमां वेदना प्रकट थर्ध गधं तेथी तेमने
अेकं क्षणु माटे पणु शांता भणती नडोती धीमे धीमे आ वेदना संपूणुं
शरीरमां प्रसरी गधं यावत् ते तेमना माटे असह्य थर्ध गधं, लारे मुश्केदीथी
तेओ तेने अमता डता. दाहज्वरे पणु तेमना शरीर उपर पोताने प्रभाव
जभावी दीधो डतो, अथी तेओ दाहज्वरनी न्याणाओथी पणु आकुण-व्याकुण
रडेवा लाग्या. धीमे धीमे तेमनुं शरीर अशक्त थर्ध गथुं, शारीरिके णण पणु
तेमनुं नष्ट थर्ध गथुं डतुं आ प्रमाणे न्यारे तेओ उत्साह रहित अने
पुरुषार्थ पराक्रम विहीन थर्ध गया त्यारे करतल-परिगृहीत दश नभोवाणी
अंजलिने तेमणे पोताना मस्तके भूझीने आ प्रमाणेना पाठ जोलवा लाग्या
डे यावत् मुक्ति प्राप्त अर्हत भगवंतोने मारा नमस्कार छे, मारा धर्माचार्य,
धर्मोपदेशक स्थविर भगवंतोने मारा नमस्कार छे. मे' पडेलां पणु भगवंतोनी
पासे समस्त प्राणातिपात करी दीधुं छे यावत् मिथ्यादर्शन शल्यनुं अठार

अन्तिके प्राणातिपातं यावत् मिथ्यादर्शनशल्यं प्रत्याख्यामि, एवं ' जाव आलो-
इय पडिकंते ' यावदालोचितप्रतिक्रान्तः कालमासे कालं कृत्वा सर्वार्थसिद्धे
उपपन्नः । ततोऽनन्तरम्=तत्पश्चात् सर्वार्थसिद्धात् ' उव्वट्टित्ता ' उद्वृत्य=सर्वार्थ-
सिद्धेर्निर्गत्य महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत् सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति । पुण्डरी-
कानगारचरितं दृष्टान्तेनोपदर्श्य श्रमणानुपदिशति भगवान् महावीरः- ' एवामेव '
अनेनैवप्रकारेण हे आयुष्मन्तः श्रमणाः ' जाव पव्वइए ' यावत्प्रव्रजितः=योऽस्माकं
श्रमणो वा श्रमणी वा आचार्योपाध्यायानामन्तिके प्रव्रजितः सन् मानुष्यकेषु
कामभोगेषु नो सज्जते नो असक्तिमाश्रयते ' नो रज्जते ' नो रज्यते=नो अनु-
रागवान् भवति, ' जाव नो विप्पडिघायमावज्जइ ' यावत् नो विप्रतिघातमाप-
द्यते=संयमनाशं न प्राप्नोति, स खलु इह भवे एव बहूनां श्रमणानां बहूनां श्रम-
णीनां बहूनां श्रावकाणां बहूनां श्राविकाणाम् अर्चनीयो वन्दनीयः पूजनीयः
सत्कारणीयः सम्माननीयो भवति, तथा च-स सर्वेषां ' कल्लाणं ' कल्याणं=
कल्याणरूपम् ' मंगलं ' मङ्गलम्=मङ्गलरूपम्, ' देवयं ' दैवतं=धर्मदेवरूपः,
' चेइयं ' चैत्यम्=ज्ञानरूपः पर्युपासनीयश्च भवति ' त्तिक्कट्टु ' इति कृत्वा इति

का अष्टादश पापस्थानों का, मैंने प्रत्याख्यान कर दिया है। और अब
भी उन्हीं के साक्षी से प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का प्रत्या-
ख्यान करता हूँ। इस तरह आलोचित प्रतिक्रान्त होकर वे कालअवसर
कालकर सर्वार्थ सिद्ध नामके अनुत्तर विमान में उत्पन्न हो गये।
(तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, जाव सव्वदुक्खा
णमंतं काहिइ, एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे माणुस्स-
एहिं कामभोगेहिं णो सज्जइ, णो रज्जइ, जाव नो विप्पडिघायमावज्जइ
सेणं इह भवे चेव बहूणं सावियाणं अच्चणिज्जे, वदणिज्जे, पूयणिज्जे,
सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवास-

पापस्थानानुं मे प्रत्याख्यान करी द्विधुं छे अने उवे तेमनी न साक्षीमां
प्राणुतिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्यनु प्रत्याख्यान कर छुं. आ प्रमाणे
आलोचित प्रतिक्रान्त थधने तेओ काण अवसरे काण करीने सर्वार्थसिद्ध नामना
अनुत्तर विमानमां उत्पन्न थध गया अने त्यां तेमनी उउ सागरोपमनी स्थिति छे.

(तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, जाव सव्वदुक्खाण-
मंतं काहिइ, एवामेव समणाउसो ! जाव पव्वइए समाणे माणुस्सएहिं काम
भोगेहिं णो सज्जइ, णो रज्जइ, जाव नो विप्पडिघायमावज्जइ से णं इह भवे
चेव बहूणं सावियाणं अच्चणिज्जे, वदणिज्जे, पूयणिज्जे, सक्कारणिज्जे, सम्माणणि-
ज्जे, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जे त्ति कट्टु परलोए वि य णं णो

हेतोः परलोकेऽपि च खलु मा नो आगच्छति= न प्राप्नोति बहूनि=बहुविधानि
दण्डनानि च मुण्डनानि च तर्जनानि च ताडनानि च यावत् चतुरन्तं संसार-
कान्तरं 'वीह्वइस्सइ' व्यतिव्रजिष्यति=उल्लङ्घयिष्यति, यथा स पुण्डरीकीऽनगारः

णिज्जे त्ति कइहु परलोए वि य णं णो आगच्छइ, बहूणि दंडणाणि य
मुंडणाणि य तज्जणाणि य ताडणाणि य जाव चाउरंतसंसारकंनारं
जाव वीह्वइस्सइ) इसके बाद वे उस सर्वार्थ सिद्ध विमान से चव कर
महाविदेहक्षेत्र में जन्म धारण कर वहीं से सिद्धपद के भोक्ता बनेंगे-
यावत् समस्त दुःखों का अन्त करेंगे। इस तरह पुंडरीक अनगार के
चरित्र को दृष्टान्त रूप से कहकर भगवान् महावीर प्रभु श्रमणजनों को
उपदेश करते हैं कि इसी प्रकार से हे आयुष्मंत श्रमणो ! जो हमारा
श्रमण या श्रमणीजन आचार्य उपाध्याय के पास प्रव्रजित होकर मनु-
ष्यभवं संबंधी कामभोगों में आसक्त नहीं बनता है, रज्जित-अनुराग
भाव संपन्न-नहीं होता है, यावत् अपने संघम को नष्ट नहीं करता है,
वह इस भव में ही अनेक श्रमण श्रमणी, श्रावक एवं श्राविकाओं
द्वारा अर्चनीय वंदनीय पूजनीय सत्करणीय एवं सन्माननीय होता है।
तथा जगत् के लिये कल्याणरूप, मंगलरूप, धर्म देवरूप, और ज्ञानरूप
बन जाता है। लोग उसकी उपासना करते हैं। वह परलोक में भी
अनेक प्रकार के दंडनरूप, दुःखों को, मुंडनों को तर्जनों को, ताडनाओं

आगच्छइ, बहूणि दंडणाणि य मुंडणाणिय तज्जणाणि य ताडणाणि य जाव
चाउरंतसंसारकतारं जाव वीह्वइस्सइ)

त्यारपथी तेओ ते सर्वार्थसिद्ध विमानमांथी अवीने महाविदेह क्षेत्रमां
जन्म धारणु करीने त्यांथी न सिद्धपद भेजवशे. यावत् समस्त दुःखेने अंत
करेशे. आ रीते पुंडरीक अनगारना चरित्रने दृष्टांत रूपे इहीने महावीर प्रभु
श्रमणुनेने उपदेश करतां इहे छे के आ प्रभाणु न हे आयुष्मंत श्रमणो !
ने अमारा श्रमणु के श्रमणीने आचार्य उपाध्यायनी पासे प्रव्रजित थधने
मनुष्य लयना कामभोगोमां आसक्त थता नथी. रज्जित-अनुरक्त थता नथी,
यावत् पोताना संघमने नष्ट करता नथी ते आ लयमां न धणु श्रमणु-
श्रमणी अने श्रावक-श्राविकाओ वडे अर्चनीय, वंदनीय, पूजनीय, सत्करणीय
अने सन्माननीय होथ छे तेमन जगतना भाटे कइयाणुइप, मंगणइप, धर्म-
देवइप अने ज्ञानइप णनी लय छे. लोको तेनी उपासना करे छे, ते परलोकमां
पणु धणी जगतना दंडन इप, दुःखेने, मुण्डनेने, तर्जनेने, ताडनाओने

सुधर्मास्वामी कथयति—एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण आदिकरेण तीर्थकरेण यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तेन एकोनविंशतितमस्य ज्ञाताध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः । ज्ञातश्रुतस्कन्धं समापयन् सुधर्मा पुनः कथयति—एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तेन षष्ठस्य अङ्गस्य=षष्ठाङ्गसम्बन्धिनः प्रथमस्य श्रुतस्कन्धस्य अयमर्थः=पूर्वोक्तरूपो भावः प्रज्ञप्तः=भगवता कथितः । 'त्ति वेमि' इति ब्रवीमि, व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू०७ ॥

को नहीं पाता है और चतुर्गतिवाले इस संसार कान्तार को पुंडरीक अनगार की तरह पार करनेवाला हो जाता है । (एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं जाव सिद्ध गई नामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं एगूणवीसइमस्स नायज्झयणस्स अयमट्टे पणत्ते, एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्ते णं छट्टस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स अयमट्टे पणत्ते त्तिवेमि) अब श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि हे जंबू ! आदिकर तीर्थकर यावत् सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त हुए श्रमण भगवान महावीर ने १९ वे ज्ञाताध्ययन का यह पूर्वोक्त रूप से अर्थ प्ररूपित किया है । इस तरह हे जंबू ! श्रमण भगवान महावीर ने कि जो सिद्धिगति नामक स्थान को अच्छी तरह प्राप्त कर चुके हैं, छठे अंग के प्रथम श्रुतस्कंध का यह पूर्वोक्त रूप से भाव प्रतिपादित किया है । ऐसा मैंने प्रभु के कहे अनुसार ही यह हे जंबू ! तुमसे निवेदित किया है ।

प्राप्त करते नथी अने चतुर्गतिवाणा आ संसार कान्तारने पुंडरीक अनगारनी जेम पार करनार थर्ध जय छे.

(एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं जाव सिद्धिगई नामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं एगूणवीस इमस्स नायज्झयणस्स ; अयमट्टे पणत्ते, एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्तेणं छट्टस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स अयमट्टे पणत्ते त्तिवेमि)

इवे श्री सुधर्मा स्वामी कडे छे डे डे जे जू ! आदिकर तीर्थकर यावत् सिद्धिगति नामक स्थानने भेणवी युकेला श्रमण भगवान महावीरे आगणीसमा ज्ञाताध्ययनने आ पूर्वोक्त रीते अर्थ प्ररूपित कर्ये छे आ प्रमाणे डे जे जू ! श्रमण भगवान महावीरे डे जेभे सिद्धिगति नामक स्थानने सारी रीते प्राप्त करी लीधुं छे—छट्ठा अंगना प्रथम श्रुत-स्कंधने आ पूर्वोक्त रूपमां भाव प्रतिपादित कर्ये छे. डे जे जू ! आवुं भे प्रभुना कइया सुजय जे तमने कहुं छे.

‘ तस्से ’ त्यादि, तस्य खलु प्रथमस्य श्रुतस्कन्धस्य एकोनविंशतिरध्ययनानि
‘ एगमरगाणि ’ एरुस्वरकानि=समानोच्चारणानि=अन्तराले उद्देशरहितानि एकोन-
विंशति दिवसेषु समाप्यते ॥ सू० ७ ॥

मंगलं भगवान् वीरः मंगलं गौतमः प्रभुः ।

सुधर्मा मंगलं, जंबूजैनधर्मश्च मंगलम् ॥ १ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितक-
लापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूच्छ-
त्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त-‘ जैनशास्त्राचार्य ’ पदभूषित-कोल्हापुरराज-
गुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकरपूज्यश्री-घासीलाञ्छ-
त्रतिविरचितायां ‘ ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ’ सूत्रस्यानगारधर्ममृतव-
र्षिण्याख्यायां व्याख्यायां प्रथमश्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥

इस कथन में मैंने अपनी तरफ से कोई भी कल्पना मिश्रित नहीं की है किन्तु प्रभु के मुख से जैसा मैंने इसे सुना है वैसा ही यह तुम से मैंने कहा है । “ तस्से ” त्यादि इस प्रथम श्रुतस्कन्ध के अन्तराल में उद्देश रहित १९ अध्ययन हैं । ये अध्ययन १९ दिनोंमें समाप्त होते हैं ।

टीकार्थः— सांसारिक समस्त जीवों के लिये यदि मंगलकारी पदार्थ है—तो ये हैं भगवान् महावीर प्रभु गौतमगणधर, सुधर्मास्वामी, जंबूस्वामी और जैनधर्म ।

इस तरह ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रके प्रथम श्रुतस्कन्ध संपूर्ण ।

आ कथनमां मे भारा तरक्ष्थी डोठपणु जतनी कल्पना मिश्रित करी नथी, पणु प्रभुना मुण्णथी जेवुं मे सांमज्जुं छे तेवुं ज मे कहुं छे. “ तस्से ” त्य दि आ प्रथम श्रुत-स्कंधना अतरालमां उद्देश रहित ओगणीस अध् यनो छे. आ अध्ययनो ओगणीस दिवसेमां समाप्त डोय छे.

टीकार्थः—अथा सांसारिक जिवाना माटे जे मंगलकारी पदार्थो छे तो ते जे छे—भगवान् महावीर प्रभु, गौतम गणधर, सुधर्मा स्वामी, जंबूस्वामी अने जैन धर्म.

“ आ प्रभाजे ज्ञाताधर्म कथांगनो ज्ञाता-नामे प्रथम श्रुतस्कंध समाप्त थयो. ”

॥ अथ ज्ञातासूत्रे द्वितीयश्रुतस्कन्धविवरणम् ॥

मङ्गलाचरणम्- -

(वसन्ततिलकावृत्तम्)

आद्ये श्रुते भगवता रुचिरैरनेकै,-

ज्ञातैरदायि सकलार्त्तिहरः सुबोधः ।

स्कन्धे द्वितीयइह धर्मकथा च साक्षाद् ,

विज्ञापिता तमनिश वरदं स्मरामि ॥ १ ॥

(मालिनीछन्दः)

गणधरगुणधारं, प्राप्तसंसारपारम् ,

भविजनहितकारं, दत्तसम्यक्त्वसारम् , ।

हृतसकलविकारं, भव्यचित्तैकहारं ,

शिवसुखपदधारं, नीमि चारित्रसारम् , ॥ २ ॥

-:द्वितीयश्रुतस्कंधप्रारंभ:-

आद्येश्रुते इत्यादि:- प्रथम श्रुतस्कंधमें भगवान् सूत्रकार ने अनेक सुन्दर दृष्टान्तों द्वारा सकल आर्त्ति (दुःख) हारक सुबोध प्रदान किया है अब वे इस द्वितीय श्रुतस्कंध में साक्षात् धर्मकथाएँ प्रकट करेंगे-अतः ऐसे भगवान् को मैं कि जो भव्यजीवों को कल्याण करनेवाले होते हैं उनको निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

गणधरइत्यादि—जो गणधरों के गुणों को धारण करनेवाले हैं संसार को पार करनेवाले हैं, जो भव्यजनों को हितकारक है, सम्यक्त्वरूपी गुणके बोधक हैं-सकल विकारों से रहित है, इसलिये जो भव्यजीवों

द्वितीय श्रुतस्कंध प्रारंभ

आद्ये श्रुतेत्यादि—प्रथम श्रुतस्कंधमां भगवान् सूत्रकारे धृष्ट्या सुंदर दृष्टान्ता वडे समस्त आर्त्ति (दुःख) हारक सुबोध प्रदान कर्यो छे हुवे तेज्यो आ धीम श्रुतस्कंधमां साक्षात् धर्मकथाज्यो प्रकट करशे ज्येटला माटे ज्येवा भग वानने-क ज्येज्यो लव्य ज्येवनुं कल्याणु करनारा छे-हु निरंतर नमस्कार कश् छुं. १

गणधर इत्यादि—ज्येज्यो गणधराना गुणाने धारणु करनारा छे, संसा- रने पार करनारा छे ज्येज्यो लव्यजनाना हितकारक छे, सम्यक्त्व इपी गुणना बोधक छे, आ भधा विकारोपी रहित छे, ज्येटला माटे ज्येज्यो लव्य ज्येवाना

व्याख्यातः प्रथमो ज्ञाताख्यः श्रुतस्कन्धः, अथ धर्मकथाख्यो द्वितीयः प्रार-
भ्यते, अस्य पूर्वेण सहायं सम्बन्धः—पूर्वस्मिन् श्रुतस्कन्धे उदाहरणप्रदर्शनपूर्वकमाप्तो-
पालम्भादिना धर्मरूपोऽर्थः प्रतिपादितः. इह तु ग एव साक्षाद् धर्मकथाभिः प्रति-
पाद्यते, इत्येवं सम्बन्धेन समायातस्यास्येदमादिमूत्रम्—‘ तेणं कालेणं ’ इत्यादि ।

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे
होत्था, वण्णओ, तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स बहिया उत्तर-
पुरत्थिमे दिसिभाए तत्थ णं गुणसिलए णामं चेइए होत्था
वण्णओ, तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महा-
वीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मा णामं थेरा भगवंतो जाइसंपन्ना
कुलसंपन्ना जाव चउदसपुठ्ठी चउणाणोवगया पंचहिं अणगा-

के चित्त को हरण करनेवाले हैं ऐसे उस सम्यक् चारित्ररूपी सार को धारण करनेवाले मोक्षपद के धारी हैं उसको मैं नमस्कार करता हूँ ।

प्रथम ज्ञाता नाम का श्रुतस्कन्ध व्याख्यात हो चुका अब धर्मकथा नाम का द्वितीय श्रुतस्कन्ध प्रारंभ किया जाता है । इस श्रुतस्कन्ध का पूर्व श्रुतस्कन्ध के साथ इस प्रकार से संबंध है कि पूर्व श्रुतस्कन्ध में उदाहरण प्रदर्शन पूर्वक आप्त तीर्थकर के उपासक आदि द्वारा धर्म रूप अर्थ प्रतिपादित किया गया है । अब इस द्वितीय श्रुतस्कन्ध में धर्म रूप अर्थ साक्षात् धर्मकथाओं द्वारा निरूपित किया जावेगा । इस द्वितीय श्रुतस्कन्ध का यह आदि सूत्र है । तेणं कालेणं तेणं समएणं इत्यादि ।

चित्तने आकर्षणारा छे, ओवा ते सम्यक्-चारित्र रूपी सारने धारण करनारा मोक्षपदना धारी छे, तेने हुं नमस्कार करे छुं

प्रथम ज्ञाता नामने श्रुतस्कन्ध व्याख्यात थरुं चुक्यो छे उवे धर्मकथा नामने भीजे श्रुतस्कन्ध शरुं करवामां आवे छे. आ श्रुतस्कन्धने पडेला श्रुत स्कन्धनी साथे आ प्रमाणे सम्बंध छे के पूर्व श्रुतस्कन्धमां उदाहरणोनी साथे आप्त तीर्थकरना उपासक वगेरे द्वारा धर्मरूप अर्थनुं प्रतिपादन करवामां आव्युं छे उवे आ भीजे श्रुतस्कन्धमां तेन धर्मरूप अर्थ साक्षात् धर्म-कथाओ वडे निरूपवामां आवशे. आ भीजे श्रुतस्कन्धनुं आ प्रथम सूत्र छे—

‘ तेणं कालेणं तेणं समएणं ’ इत्यादि —

रसएहिं सद्धिं संपरिवुडा पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा गाम्माणुगामं
दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव
गुणसिलए चेइए जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा
विहरंति, परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा जामेव दिसं
पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया, तेणं कालेणं तेणं समएणं
अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अंतेवासी अज्जजंबू णामं अणगारे
जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी—जइ णं भंते ! समणेणं जाव
संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स णायाणं अयसट्ठे
पन्नत्ते दोच्चस्स णं भंते ! सुयक्खंधस्स धम्मकहाणं समणेणं
जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?, एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव
संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा पणत्ता, तं जहा — चमरस्स
अग्गमहिसीणं पढमे वग्गे १ बलिस्स बइरोयणिंदस्स वइरोय-
णरन्नो अग्गमहिसीणं बीओ वग्गो २ असुरिंदवज्जियाणं दाहि-
णिह्हाणं भवणवासीणं इंदाणं अग्गमहिसीणं तइओ वग्गो ३
उत्तरिह्हाणं असुरिंदवज्जियाणं भवणवासीणं इंदाणं अग्गमहि-
सीणं चउत्थो वग्गो ४ दाहिणिह्हाणं वाणमंतराणं इंदाणं
अग्गमहिसीणं पंचमो वग्गो ५ उत्तरिह्हाणं वाणमंतराणं इंदाणं
अग्गमहिसीणं छट्ठो वग्गो ६ चंदस्स अग्गमहिसीणं सत्तमो वग्गो
७ सूरस्स अग्गमहिसीणं अट्ठमो वग्गो ८ सक्कस्स अग्गमहिसीणं
णवमो वग्गो ९ ईसाणस्स अग्गमहिसीणं दसमो वग्गो १० ॥सू०१॥

टीका—तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नाम नगरमासीत्, 'वण्णओ' वर्णकः—नगरवर्णनं सर्वमत्र विज्ञेयम् । तस्य खलु राजगृहस्य नगरस्य बहिरुत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे तत्र खलु गुणशिलकं नाम चैत्यमासीत्, 'वण्णओ' वर्णकः=चैत्यवर्णन-प्रकारः सर्वोऽत्र वाच्यः । तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीर-स्यान्तेवासिन आर्यसुधर्माणो नाम स्थविरा भगवन्तः 'जाइसंपन्ना' जातिस-म्पन्नाः=सुविशुद्धमातृवंशाः, कुलसंपन्नाः=विशुद्धपितृवंशाः, 'जाव' यावत्-बल-रूप-विनय-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-लाघव-सम्पन्नाः, इत्यादि यावत्-चतुर्दशपूर्विणः 'चउणाणोवगया' चतुर्ज्ञानोपगताः=मतिश्रुतावधिमनः पर्यवज्ञानयुक्ताः पञ्चभिर-

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) उस काल और उस समय में (रायगिहे नामं नयरे होत्था) राजगृह नाम का नगर था। (वण्णओ) नगर का वर्णन औपपातिक सूत्र में वर्णित चंपा नगरी के समान जानना चाहिये। (तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए तत्थणं गुणसिलए णामं चेहए होत्था, वण्णओ) उस राज-गृह नगर के बाहिर उत्तर पौरस्त्यदिग्भाग की ओर (ईशानकोण में) एक गुणशिलक नाम का चैत्य-उद्यान-था। यहां पर भी सब चैत्यवर्णन औपपातिक सूत्र की तरह जानना चाहिये—(तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्ज सुहम्माणामं थेरा भग-वंतो जाइ संपन्ना कुल संपन्ना जाव चउइसपुव्वी चउणाणोवगया पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा पुव्वाणुपुच्चि चरमाणा गामाणुगामं दूइ-

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समएणं) ते काले अने ते समये (रायगिहे नाम नयरे होत्था) राजगृह नामे नगर इतुं. (वण्णओ) आ नगरतुं वर्णन औपपातिक सूत्रमा वर्णववाभां आवेला अंपा नगरीना वर्णननी जेम ज न्णणी देवुं लेधंजे

(तस्स णं रायगिहस्स णयरस्स वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए तत्थणं गुणसिलए णामं चेहए होत्था, वण्णओ)

ते राजगृह नगरनी भडार उत्तर पौरस्त्य दिग्-भागनी तरक् ओट्ठे के ईशान डोणुमा ओक गुणशिलक नामे चैत्य-उद्यान-इतो. अहीं चैत्य विषेणुं भधुं वर्णन औपपातिक सूत्रनी जेम न्णणुं लेधंजे.

(तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्ज सुहम्माणामं थेरा भगवतो जाइसंपन्ना कुलसंपन्ना जाव चउइस पुव्वी चउणाणो-वगया पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा पुव्वाणुपुच्चि चरमाणा गामाणुगामं दूइ-

नगारशतैः सार्द्धं संपरिवृताः ' पुष्पाणुपुर्वि' पूर्वानुपूर्व्या=तीर्थङ्करपरम्परया ' चरमाणा' चरन्तः=विहरन्तः ग्रामानुग्रामं एकग्रामादव्यवधानेनान्यं ग्रामम् ' दू-
ज्जमाणा ' द्रवन्तः=स्पृशन्तः ' सुहं सुहेणं ' सुखं सुखेन=सुखपूर्वकं यथावसर-
मित्यर्थः विहरन्तो यत्रैव राजगृहं नगरं यत्रैव गुणशिलकं चैत्य यावत्-संयमेन
तपसा आत्मानं भावयन्तो विहरन्ति । अत्र आदरार्थं बहुवचनम् । परिपन्निर्गता ।
धर्मः कथितः । परिपद् यस्या एव दिशः प्रादुर्भूता तामेव दिशं प्रतिगता ।
तस्मिन् काले तस्मिन् समये आर्यसुधर्मणोऽनगारस्यान्तेवासी आर्यं जम्बूनामान-

उज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव गुणसिलए
चेइए जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति) उस काल
और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के अंतेवासी आर्य सुधर्मा
नाम के स्थविर भगवंत कि जो विशुद्ध मातृवंशवाले थे विशुद्ध पितृ-
वंशवाले थे, यावत् बल, रूप, विनय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं लाघव
संपन्न थे, चौदहपूर्व के पाठी थे-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान एवं
मनःपर्यव ज्ञान इन चारों ज्ञानों के धारक थे-पांचसौ अनगारों के साथ
तीर्थकर परंपरा के अनुसार विहार करते २ एक ग्राम से दूसरे ग्राम में
विना किसी व्यवधानके विचरण करते हुए सुख पूर्वक समय पर-जहां
राजगृह नगर और उस में भी जहां वह गुणशिलक चैत्य था आये ।
वहां वे संघस्य एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए उतरे (परिसा
निग्गया धम्मो कहिओ परिसा जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसिं
पडिगया, तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अंते-

उज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव गुणसिलए चेइए
जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति)

ते काले अने ते समये श्रमणु लगवान महावीरना अंतेवासी आर्य
सुधर्मा नामना स्थविर भगवंत के जेओ विशुद्ध मातृवंशवाला हुता-विशुद्ध
पितृवंशवाला हुता, यावत् बल, रूप, विनय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र अने
लाघव-संपन्न हुता. चौदह पूर्वना पाठी हुता, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान
अने मनःपर्यवज्ञान ओ आरे ज्ञानेना धारक हुता. पांचसौ अनगारोनी साथे
तीर्थकर परंपरा मुअण विहार करतां करतां ओक गामथी भीजे गाम डोअणु
अतना व्यवधान वगर सुभेथी यथा समय ज्यां राजगृह नगर अने तेमां
पणु ज्या ते गुणशिलक चैत्य हुतुं त्यां आव्या त्यां तेओ संयम अने तप
द्वारा पोताना आत्माने भावित करता रोकाया.

(परिसा निग्गया धम्मो कहिओ परिसा जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव
दिसिं पडिगया, तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अंतेवासी

गारः यावत्-‘पञ्जुवासमाणे’ पर्युपासीनः=सेवमानः एवमवदत्-यदि खलु
 ‘भंते’ भदन्त=हे भगवन् ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत्-मोक्षं सम्प्राप्तेन
 पण्डस्याङ्गस्य प्रथमस्य श्रुतस्कन्धस्य ‘गायाणं’ ज्ञातानाम्=उदाहरणानाम् अयमर्थः
 प्रज्ञप्तः द्वितीयस्य खलु हे भदन्त ! श्रुतस्कन्धस्य धर्मकथानां श्रमणेन यावत्सम्प्रा-
 प्तेन=मोक्षं गतेन भगवता कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? । सुधर्मास्वामीप्राह-एवं खलु हे जम्बू !

वासी अज्ज जम्बूणामं अणगारे जाव पञ्जुवासमाणे एवं वयासी-जह्णं
 भंते समणेणं जाव संपत्तेणं छट्टस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स
 णायाणं अयमट्ठे पन्नत्ते दोच्चस्स णं भंते ! सुयक्खंधस्स धम्मकहाणं
 समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव
 संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा पणत्ता) राजगृह नगर से परिषद
 वंदन करने के लिये आई । सुधर्मास्वामी धर्म का उपदेश दिया । उपदेश
 सुनकर परिषद अपने २ स्थान पर पीछे वहां से चली गई । उस काल में
 और उस समय में आर्य सुधर्मास्वामी के अंतेवासी आर्य जंबू नामके
 अनगार ने यावत् उनकी पर्युपासना करते हुए उनसे इस प्रकार पूछा
 हे भदंत ! यावत् मुक्तिको प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीरने छठेअंगके
 ज्ञातासूत्र प्रथम श्रुतस्कंध के उदाहरणोंका यह पूर्वोक्तरूप से अर्थ निरू-
 पित किया है-तो हे भदंत ! द्वितीय श्रुतस्कंधकी धर्मकथाओं का उन्हीं
 श्रमण भगवान् महावीर ने कि जो मुक्तिस्थान को प्राप्त हो चुके हैं क्या
 अर्थ निरूपित किया है ? इस प्रकार जंबू के प्रश्न को सुनकर श्री सुधर्मा

अज्जजंबू णामं अणगारे जाव पञ्जुवासमाणे एवं वयासी-जह्णं भंते समणेणं
 जाव संपत्तेणं छट्टस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स णायाणं अयमट्ठे पन्नत्ते
 दोच्चस्स णं भंते ! सुयक्खंधस्स धम्मकहाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे
 पणत्ते ? एव खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा पणत्ता)

राजगृह नगरथी परिषद वंदन करवा भाटे त्यां आवी. सुधर्मा स्वामीअ
 धर्मने। उपदेश आप्थे। उपदेश सांलणीने परिषद पोताना स्थाने पाछी जती
 रडी ते अणे अने ते समथे अर्थ सुधर्मा स्वामीना अंतेवासी (शिष्य)
 आर्य जंबू नामना अनगारे यावत् तेमनी पर्युपासना करतां तेमने आ
 प्रभाण्णे पूछुं के हे लहन्त ! यावत् मुक्ति प्राप्त करेला श्रमण भगवान् महा-
 वीरे छठ्ठा अंगना प्रथम श्रुतस्कंधना उदाहरणोने आ पूर्वोक्त रूपे अर्थ
 निरूपित कर्यो छे तो हे लहन्त ! ते ज श्रमण भगवान् महावीरे-के जेमण्णे
 मुक्तिस्थानने मेणवी लीधुं छे-द्वितीय श्रुतस्कंधनी धर्मकथाअने। शे। अर्थ
 निरूपित कर्यो छे. आ प्रभाण्णे जंबूना प्रश्नने सांलणीने श्री सुधर्मा स्वामीअ

श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन धर्मकथानां दशवर्गाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा तानेव दर्शयति—
 'चमरस्स' चमरस्य=चमरेन्द्रस्य दाक्षिणात्यासुरकुमारेन्द्रस्य अग्रमहिषीणां प्रथमो-
 वर्गः १ । 'वलिस्स' वलिनायनः 'वडरोयणिदस्स' वैरोचनेन्द्रस्य=वि=विधि-
 प्रकारैः रोचन्ते=दीप्यन्ते दाक्षिणात्यासुरकुमारेभ्यो विशिष्टदीप्तिमत्त्वात् इति विरो-
 चनाः, त एव वैरोचनाः=औदीच्यासुरकुमारास्तेषामिन्द्रः वैरोचनेन्द्रस्तस्य 'वडरो-
 यणरन्नो' वैरोचनराजस्य=वैरोचनाधिपतेः अग्रमहिषीणां द्वितीयो वर्गः २ । असु-
 रेन्द्रवर्जितानां 'दाहणिल्लाणं' दाक्षिणात्यानां=दक्षिणदिक्स्वन्धनां भवन-
 वासिनामिद्राणामग्रमहिषीणां तृतीयो वर्गः ३ । 'उत्तरिल्लाणं' उत्तरीयाणामसु-
 रेन्द्रवर्जितानां भवनवासिनामिद्राणामग्रमहिषीणां चतुर्थो वर्गः ४ । दाक्षिणात्यानां
 वानव्यन्तराणामिन्द्राणामग्रमहिषीणां पञ्चमो वर्गः ५ । उत्तरीयाणां वानव्यन्तरा-
 णामिन्द्राणामग्रमहिषीणां षष्ठो वर्गः ६ । चन्द्रस्याग्रमहिषीणां सप्तमो वर्गः ७ ।

स्वामी ने उनसे कहा—हे जंबू ! सुनो—यावत् मुक्तिस्थान को प्राप्त हुए
 श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथाओं के दश वर्ग प्रज्ञप्त किये हैं—(तं
 जहा) वे इस प्रकार हैं—(चमरस्स अग्रमहिषीणं पहमेवग्गे ? वलिस्स
 वडरोयणिदस्स वडरोयणरन्नो अग्रमहिषीणं वीओ वग्गो २ असुरिंद-
 वज्जियाणं दाहणिल्लाणं भवणवासीणं इंदाणं अग्रमहिषीणं तइओ
 वग्गो ३ उत्तरिल्लाणं असुरिंदवज्जियाणं भवणवासीणं इंदाणं अग्रम-
 हिषीणं चउत्थो वग्गो ४ दाहणिल्लाणं वाणमंतराणं—इंदाणं अग्रमहि-
 सीणं पंचमो वग्गो, उत्तरिल्लाणं वाणमंतराणं इंदाणं अग्रमहिषीणं छट्ठो
 वग्गो ६, चंदस्स अग्रमहिषीणं सत्तमो वग्गो, सूरस्स अग्रमहिषीणं
 अट्ठमो वग्गो, सक्कस्स अग्रमहिषीणं णवमो वग्गो, ईसाणस्स अग्रम-
 हिषीणं दसमो वग्गो) चमरेन्द्र की—दाक्षिणात्य असुरकुमारेन्द्र की—

तेमने कहुं के छे जंबू ! सांलणे, यावत् मुक्तिस्थानने प्राप्त करी चुकेला
 श्रमणु लणवान महावीरे धर्मकथाओना दश वर्गो प्रज्ञप्त कर्या छे (तंजहा)
 तेओ आ प्रमाणे छे—

(चमरस्स अग्रमहिषीणं पहमेवग्गे वलिस्स वडरोयणिदस्स वडरोयणरन्नो
 अग्रमहिषीणं वीओ वग्गो २ असुरिंदवज्जियाणं दाहणिल्लाणं भवणवासीणं
 इंदाणं अग्रमहिषीणं तइओ वग्गो ३, उत्तरिल्लाणं असुरिंदवज्जियाणं भवण-
 वासीणं इंदाणं अग्रमहिषीणं चउत्थो वग्गो ४ दाहणिल्लाणं वाणमंतराणं—
 इंदाणं अग्रमहिषीणं पंचमो वग्गो, उत्तरिल्लाणं वाणमंतराणं इंदाणं अग्रमहि-
 सीणं छट्ठो वग्गो ६, चंदस्स अग्रमहिषीणं सत्तमो वग्गो, सूरस्स अग्रमहिषीणं अट्ठमो
 वग्गो, सक्कस्स अग्रमहिषीणं णवमो वग्गो, ईसाणस्स अग्रमहिषीणं दसमो वग्गो)

सुरस्स=सूर्यस्याग्रमहिषीणामष्टमो वर्गः ८ । शक्रस्याग्रमहिषीणां नवमो वर्गः ९ ।
ईशानस्याग्रमहिषीणां दशमो वर्गः १० ॥ सू० १ ॥

मूलम्—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं
दसवग्गा पणत्ता पढसस्स णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव
संपत्तेणं के अट्टे पन्नत्ते ?, एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संप-
त्तेणं पढसस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता तं जहा—काली

अग्रमहिषियों का—पट्टदेवियों का—प्रथम वर्ग, बलि नामक वैरोचनेन्द्र की
अग्रमहिषियोंका द्वितीय वर्ग, असुरेन्द्रको छोडकर दक्षिण दिशा संबंधी
भवनवासियों के इन्द्रों की अग्रमहिषियों का तृतीय वर्ग, उत्तर दिशा
संबंधी भवनवासियों के इन्द्रों की कि जिन में असुरेन्द्र छोड दिये गये
हैं अग्रमहिषों का ४ चतुर्थ वर्ग, दक्षिण दिशा संबंधी वानव्यन्तरो के
इन्द्रों की अग्रमहिषियोंका पंचम वर्ग, उत्तर दिशा संबंधी वानव्यन्तरोके
इन्द्रों की अग्रमहिषियों का छट्टा वर्ग, चन्द्र की अग्रमहिषियों का ७ वां
वर्ग, सूर्यकी अग्रमहिषियोंका आठवां वर्ग, शक्र की अग्रमहिषियों का
नवमां वर्ग, और ईशानकी अग्रमहिषियों का दशमां वर्ग । वैरोचन उत्तर-
दिशाके असुरकुमार हैं । ये दक्षिण दिशासंबंधी असुरकुमारोंकी अपेक्षा
विशिष्ट दीप्तिसंपन्न होते हैं इसलिये इन्हें वैरोचन कहा गया है ॥सू० १॥

अभरेन्द्रनी—दक्षिणुना असुरकुमारैन्द्रनी—अग्रमहिषीओना—पट्टदेवीओना
पडेवो वर्ग, बलि नामे वैरोचनेन्द्रनी अग्रमहिषीओना भीले वर्ग, असुरेन्द्रने
आठ इरतां दक्षिणु दिशाना भवनवासीओना इन्द्रोनी अग्रमहिषीओना त्रीले
वर्ग, उत्तर दिशा संबंधी भवनवासीओना इन्द्रोनी के ओओमांथी अशुरेन्द्रोने
आठ इरी दीधा छे. अग्रमहिषीओना ओथे वर्ग, दक्षिणु दिशा संबंधी वान-
व्यन्तरोना इन्द्रोनी अग्रमहिषीओना पांचमे वर्ग, उत्तर दिशा संबंधी वान-
व्यन्तरोना इन्द्रोनी अग्रमहिषीओना सातमे वर्ग, सूर्यनी अग्रमहिषीओना
आठमे वर्ग, शक्रनी अग्रमहिषीओना नवमे वर्ग अने ईशाननी अग्रमहि-
षीओना दशमे वर्ग. वैरोचन उत्तर दिशाना असुरकुमार छे. ओ दक्षिणु दिशा
संबंधी असुरकुमारो इरतां विशिष्ट दीप्ति-संपन्न होय छे ओथी न ओ
वैरोचन इडेवाभां आया छे. ॥ सूत्र १ ॥

राईरयणी विज्जू मेहा, जइणं भंते ! समणैणं जाव संपत्तेणं
 पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता पढमस्स णं भंते !
 अज्झयणस्स समणैणं जाव संपत्तेणं के अट्टे पणत्ते ? , एवं खलु
 जंबू ! तेषं कालेणं तेषं समणैणं रायगिहे णयरे गुणसिलए
 चेइए सेणिए राया चेह्णणा देवी सामी समोसरिए परिसा
 णिग्गया जाव परिसा पज्जुवासइ, तेषं कालेणं तेषं समणैणं
 काली नामं देवी चमरचंचाए रायहाणीए कालवडिंसगभवणे
 कालंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं मह-
 त्तरियाहिं सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं
 अणियाहिवईहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णैहिं
 बहुएहि य कालवडिंसयभवणवासीहिं असुरकुमारेहिं देवीहि
 य सद्धिं संपरिवुडा महया हय जाव विहरइ, इमं च णं केवल-
 कप्पं जंबुदीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी२ पासइ,
 तत्थ समणं भगवं महावीरं जंबुदीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे
 नगरे गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संज-
 मेण तवसा अप्पाणं भावेमाणं पासइ पासित्ता हट्टुट्टुचित्तमा-
 णंदिया पीइमणा जाव हियया सीहासणाओ अब्भुट्टेइ अब्भु-
 ट्टित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ
 ओमुइत्ता तित्थगराभिमुहा सत्तट्टुपयाइं अणुगच्छइ अणुग-
 च्छित्ता वामं जाणुं अंचइ अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणियलंसि
 निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि निवेसेइ निवेसित्ता ईसिं

पच्चुण्णमइ पच्चुण्णमित्ता कडयत्तुडियथंभियाओ भुयाओ
 साहरइ साहरित्ता करयल जाव कहु एवं वयासी-णमोऽत्थुणं
 अरहंताणं जाव संपत्ताणं नमोऽत्थुणं समणस्स भगवओ महा-
 वीरस्स जाव संपाविउकामस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं
 इह गया पासउ सं भगवं तत्थ गए इह गयत्तिऋहु वंदइ
 नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहा निस-
 ण्णा, तएणं तीसे कालीए देवीए इमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था
 -सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता जाव पज्जुवा-
 सित्तएत्तिकहु एवं संपेहेइ संपेहित्ता आभिओगिए देवे सद्दावेइ
 सद्दावित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं
 महावीरे एवं जहा सूरियाभो तहेव आणत्तियं देइ जाव दिव्वं
 सुरवराभिगमणजोग्गं जाणविमाणं करेह करित्ता जाव पच्च-
 प्पिणह, तेवि तहेव करेत्ता जाव पच्चप्पिणंति, णवरं जोयण-
 सहस्सवित्थिण्णं जाणविमाणं सेसं तहेव, तहेव णामगोयं
 साहेइ तहेव नट्टविहिं उवदंसेइ जाव पडिगया ॥ सू० २ ॥

टीका—‘ जइणं भंते ’ इत्यादि । जम्बूस्वामीपृच्छति—यदि खलु ‘ भंते ’
 भदन्त ! = हे भगवन् ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन धर्मकथानां दशवर्गाः प्रज्ञप्ताः,

—:जइणं भंते ! इत्यादि ।

टीकार्थः—(जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा
 पणत्ता पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे
 पणत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स) जंबूस्वामी श्रो

जइणं भंते ! इत्यादि—

(जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा पणत्ता पढमस्स
 णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे पणत्ते ? एवं खलु जंबू ! सम-
 नेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स०)

प्रथमस्य खलु हे भदन्त ! वर्गस्य श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? सुधर्मास्वामीप्राह-एवं खलु हे जम्बूः ! श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन प्रथमस्य वर्गस्य पञ्च अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-काली १, रात्रिः २, रजनी ३, विद्युत् ४, मेधा ५ । जम्बूस्वामी पृच्छति-यदि खलु हे भदन्त ! श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन प्रथमस्य वर्गस्य पञ्च अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तत्र प्रथमस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेन यावत् सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? । सुधर्मा स्वामी कथयति—

एवं खलु हे जम्बूः ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं गुणशिलकं-चैत्यम्, श्रेणिको राजा, चेलुना देवी आसीन् । सामी=स्वामी श्रीमहावीरस्वामी

सुधर्मास्वामी से पूछते हैं कि (भंते) हे भदंत ! (जह्णं) यदि (समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा पणत्ता) श्रमण भगवान् महावीर ने जो कि मुक्तिस्थान को प्राप्त हो चुके हैं धर्मकथा के दश वर्ग प्ररूपित किये हैं तो (णं भंते) हे भदंत ! (समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स के अट्टे पन्नत्ते) उन्हीं श्रमण भगवान् महावीर ने कि जो मोक्ष में विराजमान हो चुके हैं प्रथम वर्ग का क्या अर्थ प्रज्ञप्त किया है ? (एवं खलु जंबू समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता, तं जहा-काली राई रयणी विज्जू मेहा जह्णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता पढमस्स णं भंते अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे पणत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए सेणिए राया चेल्लणादेवी) इस प्रकार जंबू स्वामी के प्रश्न को सुनकर सुधर्मास्वामी ने

जंबू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामीने पूछे छे डे (भंते) डे भदन्त ! (जह्णं) जे (समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दसवग्गा पणत्ता) श्रमण भगवान् महावीरे डे जेभण्णे मुक्तिस्थान भेगवी लीधुं छे. धर्मकथाओना दश वर्गो प्ररूपित कर्था छे तो (णं भंते) डे भदन्त ! (समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स के अट्टे पन्नत्ते) ते जे श्रमण भगवान् महावीरे डे जेओ मोक्षमां विराजमान थं थूक्या छे-पडेवा वर्गोना शेो अर्थ प्रज्ञप्त कर्था छे ?

(एवं खलु जंबू समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता, तं जहा-काली राई रयणी विज्जू मेहा जह्णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता । पढमस्स णं भंते, अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे पणत्ते ! एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए सेणिए राया चेल्लणा देवी)

‘समोसरिए’ समवसृतः समागतवान् । ‘परिसा’—परिपत्=राजगृहनगर-
वास्तव्यो जनसमूहः ‘णिग्गया’ निर्गता=भगवद्वन्दनार्थं स्व स्वस्थानान्निस्सृता,
भगवता धर्मकथा कथिता यावद् परिपद् भगवन्तं ‘पज्जुवासइ’ पर्युपास्ते=
सेवते, तस्मिन् काले तस्मिन् समये काली नाम देवी चमरचञ्चायां राजधान्यां

उन्हें उत्तर देने के अभिप्राय से कहा कि (एवं खलु जंबू !) हे जंबू !
तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है सुनो यावत् संप्राप्त श्रमण भग-
वान् महावीर ने प्रथम वर्ग के पांच अध्ययन प्रश्न किये हैं वे ये हैं—
काली १, रात्रि २, रजनी ३, विद्युत् ४, और मेघा ५। अब पुनः जंबू
स्वामी प्रश्न करते हैं कि हे भदंत ! यावत् मुक्तिस्थान को प्राप्त हुए
श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग के पांच अध्ययन निरूपित किये
हैं तो मैं आपसे पूछना हूँ कि भदंत यावत् मोक्ष को संप्राप्त उन्हीं श्रमण
भगवान् महावीरने प्रथम अध्ययनका क्या अर्थ निरूपित किया है ? इसका
उत्तर उन्हें सुधर्मास्वामी इस प्रकार देते हैं—हे जंबू ! उस काल और
उस समय में राजगृह नामकी नगरी थी—उस में गुणशिलक नाम का
उद्यान था—नगरी के राजा का नाम श्रेणिक था। उसकी रानी का नाम
चेल्लना था। (सामी समोसरिए परिसा णिग्गया जाव परिसा पज्जु-
वासइ—तेणं कालेणं तेणं समएणं काली नामं देवी, चमरचंचाए रायहाणीए

आ प्रभाणु ञ्णू स्वामी । प्रश्नने सांलणीने तेमने उत्तर आपवाना
उद्देश्थी श्री सुधर्मा स्वामीणे कळुं के (एवं खलु जंबू !) के ञ्णू ! तभारा
प्रश्नने उत्तर आ प्रभाणु छे. सांलणे, यावत् संप्राप्त श्रमणु लगवान मडा-
वीरे पडेला वर्गना पाच अध्ययने प्रश्न कर्था छे तेणे आ प्रभाणु छे—
१ काली, २ रात्रि, ३ रजनी, ४ विद्युत, अने ५ मेघा

इवे करी ञ्णू स्वामी प्रश्न करे छे के के लदन्त ! यावत् मुक्तिस्थानने
प्राप्त करी युकेला श्रमणु लगवान मडावीरे पडेला वर्गना पांच अध्ययने
निरूपित कर्था छे तो हुं तमने करी पूछवा भाणु छुं के के लदन्त ! यावत्
मोक्षने प्राप्त करी युकेला ते ञ्णू श्रमणु लगवान मडावीरे पडेला अध्ययनने
शो अर्थ निरूपित कथी छे ? श्री सुधर्मा स्वामी तेने उत्तर आपतां कडेवा
लाग्या के ञ्णू ! ते काले अने ते वणते राजगृह नामे ओक नगरी હતી.
तेमां शुणुशिलक नामे उद्यान હતું નગરીના રાખતું નામ શ્રેણિક હતું. તેની
રાણીનું નામ ચેલ્લના હતું.

(सामी समोसरिए परिसा णिग्गया जाव परिसा पज्जुवासइ—तेणं कालेणं
तेणं समएणं काली नामं देवी, चमर चंचाए रायहाणीए कालरडिसगभवणे

‘कालवडिसगभवणे’ कालावतंसकभवने काले=कालाख्ये सिंहासने चतसृभिः सामानिकसाहस्रीभिः, चतसृभिर्महत्तरिकाभिः, सपरिवाराभिस्तिसृभिः=वाह्याभ्यन्तरमध्यरूपाभिः ‘परिसाहिं’ परिषद्भिः पारिवारिकदेवीरूपाभिः, सप्तभिः ‘अणिएहिं’ अनीकैः=हयगजरथपदातिवृषभगन्धर्वनाट्यरूपैः, अत्रायं विवेकः-

कालवडिसगभवणे कालंसि, सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महरियाहिं, सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अणणेहिं वहुएहिं कालवडिसगभवणवासीहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडा महयाहय जाव विहरइ) वहां पर श्री महावीर स्वामी का आगमन हुआ। लोगों को जब इनके आगमन की खबर लगी-तब समस्त राजगृह निवासी जन इन का वंदना करने के अभिप्राय से गुणशिलक उद्यान में आये। भगवान् ने धर्मकथा कही-यावत् परिषद्ने भगवान् की पर्युपासना की। उस काल में और उस समय में काली नाम की देवी चमरचंपा नाम की राजधानी में रहती थी। इसके भवन का नाम कालावतंसक था। जिस सिंहासन पर यह बैठती थी उसका नाम काल था। यह उस भवन में चार हजार सामानिकों की परिषदों के साथ, चार हजार महत्तरिकाओं के साथ, अपने २ परिवारवाली तीन हजार पारिवारिक देवियों के साथ, सान अनीकोंके-हय, गज, रथ, पदाति, वृषभ, गंधर्व एवं नाट्यरूप सैन्य के-

कालंसि, सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महरियाहिं, सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अणणेहिं वहुएहिं कालवडिसगभवणवासीहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडा महयाहय जाव विहरइ)

त्यां श्री महावीर स्वामीतुं आगमन थयुं. ज्यारे लोकोने तेमना आगमननी ज्ञायु थउ त्यारे राजगृहना जधा लोको तेमने वंदन करवाना अलिप्रायथी गुणशिलक उद्यानमां आया भगवाने धर्मकथा कही सलगावी. यावत् परिषदे भगवाननी पर्युपासना करी ते काणे अने ते समये काणी नामनी देवी चमरचंपा नामनी राजधानीमां रहेती હતી. तेना लवनतुं नाम कालावतंसक હતું. જે સિંહાસન ઉપર તે બેસતી હતી તેનું નામ કાળ હતું. તે ભવનમાં તે ચાર હજાર સામાનિકાની પરિષદાની સાથે, ચાર હજાર મહત્તરિકાઓની સાથે, પોતપોતાના પરિવારવાળી ત્રણ હજાર પારિવારિક દેવીઓની સાથે સાત અનીકો-લોહા, હાથી, રથ, પાયદળ, વૃષભ, ગંધર્વ અને નાટ્ય

आद्यपञ्चकानि सङ्ग्रामाय, गन्धर्वनाट्ये पुनरुपभोगायेति, सप्तभिरनीकाधिप-
तिभिः, षोडशभिः आत्मरक्षकदेवसाहस्रीभिः, अन्यैर्वहुभिश्च कालावतंसकभवनवासि-
भिरसुरकुमारैर्देवैर्देवीभिश्च साद्धं संपरिवृता ' महयाहय जाव विहरइ ' महताऽहत
यावद् विहरति—' महयाऽऽहयनदृगीयत्राइयतंतीतलतालतुडियघणमुङ्गपडुप्पत्राइयर-
वेणं ' महताऽऽहतनाट्यगीतवादित तन्त्रीतलताल त्रुडित घनमृदङ्गपटुप्रवादितरवेण,
तत्र—' महता ' रवेणेति सम्बन्ध, आहतानि=अव्याहानि यानि नाट्यगीतानि,
तथा—वादितानि—तन्त्री=त्रीणा, तलाः=हस्ततालाः, तालाः=कांस्यतालाः, त्रुडि-
तानि=शेषाणि तूर्यादिवाद्यानि, तथा घन इव मृदङ्गः=घनध्वनिसादृश्याद् घनमृदङ्गः=
स चासौ पटु प्रवादितश्चेति घनमृदङ्गपटुप्रवादितः, ततस्त्रिपदो द्वन्द्वः, तेषां यो
रवस्तेन—उपलक्षितान् दिव्यान् भोगभोगान् शब्दादीन् भुञ्जाना विहरति । ' इमं
च णं ' अस्मिन्नवसरे खलु केवलकल्पं=संपूर्णम् जम्बूद्वीपं नाम द्वीपं=मध्यजम्बूद्वीपं
त्रिपुलेन ' ओहिणा ' अवधिना=अवधिज्ञानेन 'अभोएमाणी २' अभोगयमाना २
पश्यन्ति पुनः पुनरुपयोगं ददती सती पश्यति । किं पश्यति ? इत्याह—'तत्थ' तत्र=
अवधिज्ञानोपयोगे श्रमणं भगवन्तं महावीरं जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे राजगृहे-

साथ अनीकाधिपतियों के साथ, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के साथ,
तथा और भी बहुत से कालावतंसक भवन में निवास करनेवाले असु-
रकुमार देवों के एवं देवियों के साथ परिवृत होकर रहा करती थी ।
अव्याहत (सतत) नाट्यगीतों के एवं वादित तन्त्री, हस्त, ताल, कांस्य ताल,
त्रुडित आदि तूर्यादिवाद्यों के एवं भेघ की ध्वनि जैसे अच्छी तरह
घजाये गये मृदंगों के सुन्दर २ शब्दों से उपलक्षित दिव्य भोगों को
भोगती हुई अपने समय को आनन्द के साथ व्यतीत किया करती थी ।
(इमं च णं केवलकल्पं जंबुद्वीपं दीवं विउल्लेणं ओहिणा आभोएमाणी २
पासइ, तत्थ समणं भगवं महावीरं जंबू द्वीपे दीवे भारहे वासे रायगिहे

इय सैन्यनी साथे अनीकाधिपतिओनी साथे, सोण उन्तर आत्मरक्षक देवोनी
साथे तेमन् श्रीज पणु घणु कालावतंसक भवनोमां निवास करनारा असुर-
कुमारदेवो अने देवीओनी साथे परिवृत थधने रडेती डती. ते अयाडत
(सतत) नाट्य गीतो, वादित तन्त्री, उस्तताल, कांस्यताल, त्रुडित वगेरे तूर्य वगेरे
वाद्यो, भेघना ध्वनिनी जेम सारी पेठे वगाडवामां आवेला मृदगोना सुः२
शब्दोथी उपलक्षित दिव्य लोकोने उपलोग करती पोताना समयने सुभेथी
पसार करती रडेती डती.

(इमं च णं केवलकल्पं जंबुद्वीपं दीवं विउल्लेणं ओहिणा आभोएमाणी २
पासइ, तत्थ समणं भगवं महावीरं जंबुद्वीपे दीवे भारहेवासे रायगिहे णपरै

नगरे गुणशिलके चैत्ये यथाप्रतिरूपं=यथाकल्पम् ' उग्गह ' अवग्रहं=वसतेराज्ञाम्
' उग्गिण्हित्ता ' अवग्रह संयमेन तपसा आत्मानं भावयन्तं पश्यति, दृष्ट्वा हृष्ट-
तुष्टचित्तानन्दिता ' पीडमणा ' प्रीतिमनाः=प्रसन्नमनस्काः ' जावहियया ' यावन्-
हर्षवशविसर्पद्हृदया=हर्षवशादुल्लसितहृदया सिंहासनाद् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय

नगरे गुणशिलके चेइए अहापडिरुवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं
तवसा अप्पाणं भावेमाणं पासइ, पासित्ता हृष्ट-तुष्ट चित्तमाणंदिया
पीडमणा जाव हियया सीहासणाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टित्ता पायपीढाओ
पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता तित्थगराभि-
मुही सत्तट्टपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता
दाहिणं जाणुं धरणियलंसि निहट्टु त्तिक्खुत्तो मुद्दाणं धरणियलंसि निवे-
सेइ, निवेसित्ता... . कट्टु एवं वयासी) इस अवसर में उसने
केवल कल्प-सम्पूर्ण-जंबूद्वीप नामके द्वीपको-मध्यजंबूद्वीप को-विपुल
अवधिज्ञान के द्वारा वार २ उपयोग देकर देखा-। उस समय उसने
श्रमण भगवान् महावीर को जंबूद्वीपान्तर्गत भरत क्षेत्र में राजगृह
नगर में गुणशिलक चैत्य में यथाकल्प वसति की आज्ञा लेकर संयम
एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए स्थित देखा। देखकर वह बहुत
अधिक हृष्ट एवं तुष्ट हुई। उसका मन प्रीति से भर आया। हर्ष
के वश से हृदय उल्लसित हो उठा। वह उसी समय अपने सिंहासन

गुणशिलके चेइए अहापडिरुवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावे-
माणं पासइ, पासित्ता हृष्ट-तुष्ट चित्तमाणंदिया पीडमणा जाव हियया सीहा-
सणाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ
ओमुयइ, ओमुइत्ता तित्थगराभिमुही सत्तट्टपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता, वामं-
जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणियलंसि निहट्टु त्तिक्खुत्तो मुद्दाणं धरणिय-
लंसि निवेसेइ निवेसित्ता.. .कट्टु एवं वयासी)

ते समये तेष्से केवलकल्प-संपूर्ण-जंबूद्वीप नामना द्वीपने मध्य जंबू
द्वीपने विपुल अवधिज्ञानना उपयोगथी वारंवार ज्ञेयो। ते समये तेष्से श्रमण
भगवान् महावीरने जंबूद्वीपमां आवेत्ता भरतक्षेत्रना राजगृह नगरना गुण-
शिलक चैत्यमां यथाकल्प वसतीनी आज्ञा लभने संयम अने तप द्वारा पोताना
आत्माने भावित करता रहता ज्ञेयो। ज्ञेधने ते भूषणं हृष्ट अने तुष्ट थर्ध
गथं। तेनुं मन प्रेमथी तरणोण थर्ध गथुं उर्ध्वतिरेकथी हृदय उल्लसित थर्ध
गथुं। ते ते जं वप्यते पोताना सिंहासन उपरथी उठी अने उठीने ते पादपीठ

पादपीठात् 'पञ्चोत्सृहः' प्रत्यवरोहति=अवतरति, प्रत्यवरोह्य=अवतोर्य 'पाउयातो'
 पादुके 'ओमुयड' अवमुञ्चति=रित्यजति, मुक्त्वा तीर्थकराभिमुखी सतीमप्ता-
 ष्टपदानि 'अणुगच्छड' अनुगच्छति=सम्मुखं गच्छति, अनुगम्य वामं जानुं
 'अंवेड' अञ्चति=उर्ध्वीकरोति, अञ्चित्वा=उर्ध्वीकृत्य दक्षिणं जानुं धरणितले
 'निहृद्' निहृत्य=स्यापयित्वा 'तिक्खुत्तो' त्रिः कृत्यः=त्रिवारम् 'मुद्धानं'
 मूर्धानं=मस्तकं धरणितले निवेशयति=लगयति, निवेश्य 'ईसि पच्चुण्णमइ' ईप-
 त्प्रत्यवनमति=स्तोकं शिरोनामयति, प्रत्यवनम्य 'कडयतुडियथंभियाओ' कटकत्रुटित
 स्तम्भिते कटके=करभूपणे तुत्रिते=बाहुभूपणे तैः स्तम्भिते=अवष्टब्धे 'भुयाओ'
 भुजे 'साहरड' सहरति=एकत्रोरुहति, संहृत्य 'करयल जाव कडु' करतलपरि-
 गृहीतं गिर आवर्त्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्—'नमोत्थुणं' इत्यादि-
 नमोऽस्तु खलु अर्हद्भ्यः यावद् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं सम्प्राप्तेभ्यः, नमोऽस्तु

से उठी-और उठकर वह पादपीठ से होकर नीचे आई-नीचे आकर
 उसने दोनों पादुकाओं को पैरों में से उतार दिया। उतार कर फिर वह
 तीर्थकराधिष्ठित दिशा की ओर सात आठ पद आगे गई। वहाँ आकर
 उसने अपने वाम जानु को ऊँचा किया-ऊँचा कर के फिर दक्षिण जानु
 को नीचे धरणातल में रखा-रखकर फिर तीन बार अपने मस्तक को
 नीचे भूमिपर लगाया-लगाकर फिर वह कुछ झुकी-शिर को नीचे-
 नचाया। बाद में कटक और त्रुटित से भूषित भुजाओं को एकत्रित
 किया-एकत्रित करके फिर उसने उन दोनों हाथोंकी अंजलि बनाई-और
 उसे मस्तक पर आदक्षिण प्रदक्षिण कर इस प्रकार कहा (नमोत्थुणं
 अरहंताणं जाव संपत्ताणं नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

उपर धरने नीचे आवा। नीचे आने तेले जाने पादुकाओने पगोमांथी
 उतारी दीधी। उतारीने ते तीर्थकर ने दिशा तरङ्ग विराजमान डता ते दिशा
 तरङ्ग सात-आठ उगलां आगण गध त्यां अर्धने तेले चोताना डणा दीयथुने
 हांथा धर्यो हाथो करीने पधी तेले नमला दीयथुने नीचे पृथ्वी उपर टेकव्यो
 टेकवने तेले त्रण वणत चोताना म तजने नीचे पृथ्वी उपर टेकव्युं, टेकवने
 ते थोटी नमी-मस्तकने नीचे नमाव्युं. त्थारपधी तेले कटक अने त्रुटितथी
 विभूषित सुनत्थोने लेगी करी, लेगी करीने तेले तेथो जानेनी आंजलि
 जतावी अने तेने मस्तक उपर आदक्षिण प्रदक्षिण-पूर्वकं शेरनीने आ प्रभावे कछु

(नमोत्थुणं अरहंताणं जाव संपत्ताणं नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महा-
 वीरस्स जाव संपत्तिउत्तामस्स वेदामि णं भगवंतं तत्थचय ह गया पामउ मं भगव

खलु श्रमणाय भगवते महावीराय यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तुकामाय, वन्दे खलु भगवन्तं ' तत्थ गयं ' तत्रगतं=जम्बूद्वीपे राजगृहनगरस्य गुणशिलको-
धाने समवसूतम् ' इहगया ' इहगता=चमरवञ्चाराजधानी स्थिताऽहम्, पश्यतु
मां भगवान् तत्रगत इहगतम्, ' त्ति कट्टु ' इति कृत्वो=इत्युक्त्वा वन्दते नमस्यति,
वन्दित्त्वा नमस्यित्वा सिंहासनवरे ' पुरत्थाभिमुही ' पौरस्त्याभिमुखी पूर्वदिशाभि-
मुखी ' निसण्णा ' निपण्णा=उपविष्टा । ततः खलु तस्याः काल्या देव्या अयमेत-

जाव संपाविउकामस्स वंदीमि णं भगवंतं तत्थ गयं इह गया पासउ मं
भगवं तत्थ गए इह गयं त्ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता
सीहामणवरंसि पुरत्थाभिमुही निसण्णा तएणं तीसे कालीए देवीए
इमेयारूवे जाव ससुप्पज्जित्था) यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त
हुए अहंत भगवन्तों के लिये मेरा नमस्कार हो। सिद्धिगति नामक
स्थान को प्राप्त करने की कामनावाले श्रमण भगवान महावीर को मैं
नमस्कार करती हूँ। जंबूद्वीप में राजगृह नगर के गुणशिलक उद्यान में
इस समय विराजमान उन भगवान को मैं इस चमर चंपा नाम की
राजधानी में रही हुई नमस्कार कर रही हूँ। वहाँ पर रहे हुए वे प्रभु
मुझे यहाँ पर रही हुई देखे। इस प्रकार कहकर उसने उनको वंदना की
-नमस्कार किया-वंदना नमस्कार करके फिर वह अपने उत्तम सिंहा-
सन पर आकर पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके बैठ गई। इसके बाद उस
काली देवी के यह इस प्रकार का यावत् मनः संकल्प उत्पन्न हुआ-
(सेयं खलु मे सन्नं भगवं महावीरं वंदित्ता जाव पज्जुवासित्तए त्ति

तत्थ गए इह गयं त्ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता सीहामणवरंसि
पुरत्थाभिमुही निसण्णा-तएणं तीसे कालीए देवीए इमेयारूवे जाव ससुप्पज्जित्था)

यावत् सिद्धिगति नामक स्थानने प्राप्त थयेत्ता अहंत भगवंतोने मारा
नमस्कार छे. सिद्धिगति नामक स्थानने भेणववानी कामनावाणा श्रमणु भगवान
महावीरने हुं नमस्कार कइं छुं. जम्बू द्वीपना राजगृह नगरना गुणशिलक
उद्यानमां अत्याइ विराजमान ते भगवानने हुं आ अमरयंया नामनी राज-
धानीमां रहेती नमस्कार करी रही छुं. त्यां विराजमान ते प्रभु अहीं रहेती
भने भुअे. आ प्रमाणे कहीने तेणे तेभने वंदन कर्यां अने नमस्कार कर्यां.
वंदन अने नमस्कार करीने ते चोताना उत्तम सिंहासन उपर आवीने पूर्व
दिशा तरइ मुभ करीने असी गछ. त्थारपणी ते काणी देवीने आ नतने।
यावत् मनः संकल्प उत्पन्न थयो के—

द्रुपः यावत् मनः-सङ्कल्पः समुदपद्यत-श्रेयः खलु मम श्रमणं भगवन्तं महावीरं
 वन्दित्वा यावत् ' वज्जुवासित्तए ' पर्युपासितुम्=सेवितुम्, इति कृत्वा=इतिमनसि-
 निधाय एवम्=उत्करीत्या ' संपेहेइ ' सम्प्रेक्षते=विचारयति सम्प्रेक्ष्य=विचार्य
 ' आभिओगिएदेवे ' आभियोगिकान् देवान्=भृत्यदेवान् शब्दयति=आह्वयति,
 शब्दयित्वा=आह्वय एवमवदत्-एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! श्रमणो भगवान् महा-
 वीरः एवं यथा सूर्याभस्तथैव आज्ञापित्वां ददाति यावन् दिव्यं सुरवराभिगमन-
 योग्यं ' जाणविमाणं ' यानविमानं=यानाय गमनार्थविमानं कुरुन्, कृत्वा यावत्-
 ममाज्ञां ' पच्चप्पिणह ' प्रत्यर्पयत=मह्य निवेदयत । तेऽपिदेवाः तथैव कृत्वा यावत्

कद्दु एवं संपेहेइ संपेहिता आभिओगिए देवे सद्दावेइ, नद्दावित्ता एवं
 वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया । समणे भगवं महावीरे एवं जहा सूरि-
 याभो तहेव आणत्तिय देइ जाव दिव्वं सुरवराभिगमणजोग्गं जाण-
 विमाणं करेह, करित्ता जाव पच्चप्पिणह) सुजे अब यही उचित-श्रेय-
 स्कर है-कि मैं श्रमण भगवान् महावीर को वंदना करके यावत् उनकी
 पर्युपासना करूँ इस प्रकार उसने पूर्वोक्तरूप से विचार किया । विचार
 करके उसने उसी समय आभियोगिक देवों को बुलाया-और बुलाकर
 उससे इस प्रकार कहा-हे देवानुप्रियों ! श्रमण भगवान् महावीर राज-
 गृह नगर के गुणशिलक उद्यान में पधारे हुए हैं-मैं उनको वंदना करने
 के लिये जाना चाहती हूँ-अतः तुमलोग मेरे लिये दिव्य सुरवराभिगम-
 न योग्य एकयान-विमान तैयार करो इस प्रकार की उसने उन्हें
 सूर्याभ देव की तरह आज्ञा दी । और स्थान में उनसे यह भी कह दिया

(मेयं खलु मे समणं भगव महावीर वदित्ता जाव पज्जुवासित्तए त्तिकद्दु एवं
 संपेहेइ, संपेहिता आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी एवं खलु
 देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे एवं जहा सूरियाभो तहेव आणत्तिय देइ
 जाव दिव्वं सुरवराभिगमणजोग्गं जाणविमाणं करेह, करित्ता जाव पच्चप्पिणह)

भारा भाटे इवे ओ वात थोअ्य छे के हुं श्रमणु लगवान मडा-
 वीरने वदना करीने यावत् तेमनी पर्युपासना करूं, आ प्रमाणे तेणे विचार
 कर्यो. विचार करीने तेणे तरत वा आभियोगिक देवाने ओलाव्या अने ओला-
 वीने तेमने आ प्रमाणे इह्यु के हे देवानुप्रियो । श्रमणु लगवान मडावीर
 राजगृह नगरना गुणशिलक उद्यानमां पधारेला छे तेमने वदना करवा भाटे
 हुं त्या वा धन्धुं छुं. अथी तमे यथा भारा भाटे दिव्य सुरवराभिगमन
 थोअ्य ओइ यान-विमान तैयार करे. आ प्रमाणे ते बोडाने तेणे सूर्याभदेवनी
 नेम आज्ञा करी, अने साथे साथे तेवाने तेणे आ प्रमाणे इह्यु के न्यारे

प्रत्यर्पयन्ति=तदाज्ञानुसारेण कार्यं कृत्वा निवेदयन्ति । 'णवरं' नवरं=विशेष-
स्त्वयस्-यत्-सूर्याभस्य यानविमानं योजनशतसहस्रविस्तीर्णमस्ति, अस्यास्तु-
योजनसहस्रविस्तीर्णं यानविमानमस्ति, शेषं तथैव विज्ञेयम् । तथैव-सूर्याभदेवदेव
काली देवी स्वस्य नामगोत्रं साधयति=कथयति । तथैव=सूर्याभदेवदेव च नाट्य-
विधिम् उपदर्शयति, उपदर्श्य यावत् प्रतिगता=यत आगता तत्रैव प्रतिनिवृत्ता ॥ सू० २ ॥

मूलम्—भंतेति भगवं गोयसे समणं भगवं महावीरं वंदइ
णसंसइ वंदित्ता णसंसित्ता एवं वयासी-कालिए णं भंते !
देवीए सा दिव्वा देविट्ठीइ कहिं गया० कूडागारसालादिट्ठतो,

कि जब वह विमान बनकर तैयार हो जावे-तब उसकी पीछे हमें खबर
कर देना। सो उन आभियोगिक देवों ने वैसा ही किया-और पीछे
इसकी खबर उसे कर दी। इसमें (जोयणसहस्रविस्तीर्णं जाणविमाणं
सेसं तहेव) विशेषता इतनी रही कि सूर्याभदेव का यान विमान एक
लाख योजन का विस्तारवाला था। तब कि इसका यह यान विमान १
हजार योजन का विस्तारवाला था। बाकी सब रचना इसकी उसी
सूर्याभ विमान की तरह जानना चाहिये। (तहेव णामगोयं साहेइ,
तहेव नाट्यविहिं उवदंसेइ जाव पडिगया) सूर्याभ देव की तरह काली
देवी ने अपने नाम गोत्र का कथन किया और सूर्याभ देव की तरह ही
नाट्यविधि को दिखलाया दिखलाकर फिर वह जहां से आई थी वहीं
पर पीछे गई सूत्र २ ॥

विमान तैयार थर्छ जय त्पारे तेनी भने जणु करवामां आवे. त्पारपछी ते
आभियोगिक देवोअे तेमज उथुं. अने विमान तैयार थर्छ जवानी अणर
देवीनी पारे मोडलावी दीधी आ विमानमां (जोयणसहस्रविस्तीर्णं जाण-
विमाणं सेसं तहेव) विशेषता आटली ज उती के न्यारे सूर्याभदेवनुं यान-
विमान ओक लाख योजन जेटुं विस्तारवाणुं उतुं त्पारे तेनुं आ यान-विमान
ओक हजार योजन जेटुं विस्तारवाणुं उतुं आओ रचना संमंधी तेनी अधी
विगत सूर्याभ-विमाननी जेम ज जणुवी जेधअे (तहेव णामगोय साहेइ,
तहेव नाट्यविहिं उवदंसेइ जाव पडिगया) सूर्याभदेवनी जेम डाणी देवीअे
पोताना नाम-गोत्रनुं कथन उथुं अने सूर्याभदेवनी जेम ज नाट्यविधि भतावी
अने भतावीने ते न्यांथी आवी उती त्यां ज पाछी जती रही. ॥ सूत्र २ ॥

अहो णं भंते ! काली देवी महिङ्गिया३ कालिए णं भंते ! देवीए
सा दिव्वा देविङ्गी३ किण्णा लद्धा किण्णा पत्ता किण्णा अभि-
समण्णामया ?, एवं जहा सूरियाभस्स जाव एवं खलु गोयमा!
तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबूद्वीवे दीवे भारहे वासे आम-
लकप्पा णाम नयरी होत्था वण्णओ अंबसालवणे चेइए जिय-
सत्तू राया तत्थ णं आमलकप्पाए नयरीए काले नामं गाहा-
वइ होत्था अङ्गे जाव अपरिभूए, तस्स णं कालस्स गाहावइस्स
कालसिरी णामं भारिया होत्था, सुकुमाल जाव सुख्खा, तस्स
णं कालस्स गाहावइस्स धूया कालसिरीए भारियाए अत्तया काली
णामं दारिया होत्था, बुद्धा बुद्धकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडि-
यपुयत्थणी णिव्विन्नवरा वरपरिवज्जिया यावि होत्था, तेणं कालेणं
तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जहा वद्धमा-
णसामी णवरं णवहत्थुस्सेहे सोलसहिं समणसाहस्सीहिं अट्टत्ती-
साए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे जाव अंबसालवणे
समोसठे परिसा णिगया जाव पज्जुवासइ, तएणं सा काली
दारिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ट जाव हियया जेणेव
अम्मपियरो तेणैव उवागच्छइ उवागच्छत्ता करयल जाव एवं
वयासी-एवं खलु अम्मयाओ ! पासे अरहा पुरिसादाणीए
आइगरे जाव विहरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुव्वेहिं
अठ्ठभणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पाय-
वंदिया गमित्तए ? अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेहि,

तएणं सा कालिया दारिया अम्मापिईहिं अब्भणुन्नाया
समाणी हट्टु जाव हियया णहाया कयवलिकम्मा कायकोउय
मंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पवेसाइ मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिया
अप्पमहाग्घाभरणाळंकियस्सरीरा चेडियाचक्कवालपरिकिण्णा साओ
गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उव-
ट्ठाणसाला जेणेव धम्मिण्ण जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ उवा-
गच्छित्ता धम्मियं जाणपवरं दूरुह्वा, तएणं सा काली दारिया
धम्मियं जाणपवरं एवं जहा दोवइ जाव पज्जुवासइ, तएणं
पासे अरहा पुरिसादाणीए कालीए दारियाए तीसे थ महइ-
महालयाए परिसाए धम्मं कहेइ, तएणं सा काली दारिया
पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिस-
म्म हट्टु जाव हियया पास अरहं पुरिसादाणीयं तिक्खुत्तो
वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-सइहामि णं भंते !
णिगंथं पावधणं जाव से जहेयं तुब्भं वयह, जं णवरं देवाणु-
प्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि, तएणं अहं देवाणुप्पियाणं
अंतिए जाव पठवयामि, अहासुहं देवाणुप्पिए !, तएणं सा
काली दारिया पासैणं अरहया पुरिसादाणीएणं एवं वुत्ता समाणी
हट्टु जाव हियया पासं अरहं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता
तमेव धम्मियं जाणपवरं दूरुहइ दूरुहित्ता पासस्स अरहओ पुरि-
सादाणीयस्स अंतियाओ अंबसालवणाओ चेइयाओ पडिनि-
क्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव आमलकप्पा नयरी तेणेव

उवागच्छइ उवागच्छित्ता आमलकप्पं णयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव
 वाहिरिया उव्वहाणसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता ध-
 म्मियं जाणपवरं ठवेइ ठवित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ
 पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता जेणेव अस्मापियरा तेणेव उवागच्छइ
 उवागच्छित्ता करयल० एवं वयासी-एवं खलु अम्मयाओ !
 मए पासस्स अरहओ अंतिए धम्मं णिसंते सेऽवि य मे धम्मे
 इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए, तएणं अहं अम्मयाओ ! संसार
 भउविग्गा भीया जस्मणमरणाणं इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भ-
 पुञ्जाया समाणी पासस्स अरहओ अंतिए मुंडा भवित्ता अगा-
 राओ अणगारियं पव्वइत्तए, अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडि-
 वंधं करेह, तएणं से काले गाहावई विपुलं असणं उवक्ख-
 डावेइ उवक्खडावित्ता मित्तणाइ णियगसयणसंबंधिपरियणं
 आमंतेइ आमंत्तित्ता तओ पच्छा पहाए जाव विपुलेणं पुप्फव-
 त्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेत्ता सस्माणेत्ता तस्सेव मित्तणाइणि-
 यगसयणसंबंधिपरियणस्स पुरओ कालियं दारियं सेयापीएहिं
 कलसेहिं पहावेइ पहावित्ता सब्वालंकारविभूसियं करेइ करित्ता
 पुरिससहस्सवाहिणियं सीयं दुरोहेइ दुरोहित्ता मित्तणाइणियग-
 सयणसंबंधिपरियणेणं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्डीए जाव रवेणं
 आमलकप्पं नयरिं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता
 जेणेव अंवसालवणे चेइए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 छत्ताइए तित्थगराइसए पासइ पासित्ता सीयं ठावेइ ठावित्ता

कालियं दारियं सीयाओ पञ्चौरुहइ तएणं तं कालियं दारियं अम्मा-
 पियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसा० तेणेव उवागच्छइ
 उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-
 एवं खलु देवाणुप्पिया ! काली दारिया अरुहं धूया इट्ठा कंता
 जाव किमंग पुण पासणयाए ?, एसणं देवाणुप्पिया ! संसार-
 भउव्विगा इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा भवित्ता जाव
 पव्वइत्ताए, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं, सिस्सिणिभिवखं, दल-
 यामो पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिवखं, अहासुहं
 देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह तएणं काली कुमारी पासं
 अरहं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं
 अवक्कमइ अवक्कमित्ता सयमेव आभरणसल्लालंकारं ओमुयइ
 ओमुइत्ता सयमेव लोयं करेइ करित्ता जेणेव पासे अरहा पुरि-
 सादाणीए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता पासं अरहं तिकखुत्तो
 वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-आलित्ते णं
 भंते ! लोए एवं जाव सयमेव पव्वाविया, तएणं पासे
 अरहा पुरिसादाणीए कालिं सयमेव पुप्फचूलाए अज्जाए
 सिस्सिणियत्ताए दलयइ, तएणं सा पुप्फचूला अज्जा कालिं
 दारियं सयमेव पव्वावेइ, जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तएणं
 सा काली अज्जा जाया ईरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी,
 तएणं सा काली अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए अंतिए सामाइय-
 माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ बहूहिं चउत्थ जाव विहरइ ॥सू०३॥

टीका—कालीदेवीगमनानन्तरं गौतमः पृच्छति—‘ भंतेति ’ इत्यादि ।
 ‘ भंतेति ’ हे भदन्त ! इति सम्बोधय भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं
 वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—काल्या खलु हे भदन्त ! देव्या
 सा=या साम्प्रतं दर्शिता सा दिव्या ‘ देविड्डी ’ देवर्द्धिः=विमानपरिवारादिरूपा,
 ‘ देवञ्जुड ’ देवद्युतिः=शरीराभरणादीनां दीप्तिरूपा ‘ देवणुभावे ’ देवानुभावः=
 शक्तिप्रभावदिरूपः, कुत्रगता ? कुत्र प्रविष्टा ? भगवानाह—शरीरंगता, शरीरमनु-

‘ भंते ति भगवं गोयमे ’ इत्यादि ।

टीकार्थः—कालीदेवी के चले जाने के बाद (भगवं गोयमे) भग-
 वान गौतम ने (भंते ति) हे भदंत ! इस प्रकार संबोधित कर (समणं
 भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ) श्रमण भगवान् को वंदना की—नमस्कार
 क्रिया (वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी) वंदना नमस्कार करके फिर
 उन्हों ने उनसे इस प्रकार पूछा—(कालिएणं भंते ! देवीए सा दिव्वा
 देविड्डी ३ कर्हि गया० कूडागारसालादिट्टंनो, अहोणं भंते ! कालीदेवी
 महड्ढिया ३, कालिएणं भंते ! देवीए सा दिव्वा देविड्ढि ३ क्किण्णा लद्धा,
 क्किण्णा पत्ता, क्किण्णा अभिससण्णा गया ? एवं जहा सूरियाभस्स जाव)
 हे भदंत ! कालीदेवी ने जो इस समय दिव्य विमान—परिवार आदिरूप
 ऋद्धि दिखलाई, शरीर, आभरण आदि की दीप्तिरूप जो देवद्युति एवं
 शक्ति प्रभाव आदिरूप जो देवानुभाव दिखलाया—वह सब कहाँ चला

‘ भंतेत्ति भगवं गोयमे ’ इत्यादि—

टीकार्थः—काली देवीना जता रह्या णाह (भगवं गोयमे) भगवान गौतमे
 (भंतेत्ति) हे भदन्त ! आ प्रभाषे सम्बोधन करीने (समणं भगवं महावीरं
 वदइ णमंसइ) श्रमण भगवान् महावीरने वंदन अने नमस्कार कर्या. (वंदित्ता
 णमंसित्ता एव वयासी) वंदना अने नमस्कार करीने तेमणे तेआश्रीने पूछथुं के
 (कालिएणं भंते ! देवीए सा दिव्वा देविड्डी ३ कर्हि गया० कूडागार-
 सालादिट्टंनो, अहोणं भंते ! काली देवी महड्ढिया ३, कालिएणं भंते ! देवीए सा
 दिव्वा देविड्ढि ३ क्किण्णा लद्धा, क्किण्णा पत्ता, क्किण्णा अभिससण्णा गया ? एवं
 जहा सूरियाभस्सा जाव)

हे भदन्त ! काली देवीअे अत्यारे के दिव्यविमान, परिवार वगेरेनी
 ऋद्धि जातावी, शरीर, आभरण वगेरेनी दीप्तिनी के देवद्युति. तेमज शक्ति,
 प्रभाव वगेरेने के देवानुभाव जाताव्ये ते अधो क्या अदृश्य थरुं गये ?
 क्यां प्रविष्ट थरुं गये ?

प्रविष्टा, 'कूटाकारशालादिद्वंद्वो' अत्र कूटाकारशाला दृष्टान्तो बोद्धव्यः । 'अहो' आश्चर्ये खलु हे भदन्त ! कालीदेवी महर्द्धिका महाद्युतिका महानुभावा वर्तते काल्या खलु हे भदन्त ! देव्या सा दिव्या देवर्द्धिः ३ 'किण्णा' कथं=केन प्रकारेण 'लद्धा' लब्धा=अर्जिता, 'किण्णा' कथं=केन प्रकारेण 'पत्ता' प्राप्ता=स्वाधीनीकृता 'किण्णा' कथं=केन प्रकारेण 'अभिसमन्नागया' अभिसमन्वागता=उपभोगविषयतया समागता ? एवं 'जहामूरियाभस्स जाव' यथा-सूर्याभस्य यावत्=यथा सूर्याभदेवविषये गौतमस्वामिना प्रश्नः कृतस्तथैवात्रापि विज्ञेयः । अथ भगवान् कालीदेवीपूर्वभववृत्तान्तं वर्णयति—'एवं खलु' इत्यादि । एवं खलु हे गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहेव=अस्मिन्नेव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे आमलकल्या नाम नगरी आसीत् । 'वण्णओ' वर्णकः=नगरी-वर्णनग्रन्थऔपपातिमूत्रादवसेयः । तत्र आम्रशालवनं चैत्यं, जितशत्रू राजा

गया-? कहां प्रविष्ट हो गया? इस प्रकार गौतम का प्रश्न सुनकर भगवान् ने उनसे कहा-शरीर में चला गया-शरीर में प्रविष्ट हो गया । इस विषय में कूटाकारशाला का दृष्टान्त जानना चाहिये । हे भदन्त ! काली-देवी महर्द्धिक, महाद्युतिक एवं महानुभाववाली है । इस कालीदेवी ने वह देवर्द्धि ३ किस प्रकार प्राप्त की अर्जित की किस प्रकार उसे अपने आधीन किया ? और किस प्रकार से उसने उसे अपने भोग की विषयभूत बनाई ? इस तरह गौतमस्वामी ने सूर्याभदेव के विषय में जिस तरह से प्रश्न किया उसी तरह से यहां पर भी जानना चाहिये-। अब भगवान् कालीदेवी के पूर्वभव के वृत्तान्त का वर्णन करते हैं—(एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं-इहेव जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पा णाम णयरी होत्था-वण्णओ-अंबसालवणे चेइए जियसत्तू

आ प्रमाणे गौतमने प्रश्न सांखणीने लगवाने तेमने कहु के शरीरमां प्रविष्ट थय गयो-शरीरमां गतो रह्यो. आ विषे कूटाकार शाणानुं दृष्टान्त ज्ञाणुं जेधये. हे भदन्त ! काली देवी महर्द्धिक, महाद्युतिक अने महानुभाववाणी छे. आ काली देवीये ते देवर्द्धि उ देवी रीते प्राप्त करी छे, अर्जित करी छे, देवी रीते स्वाधीन बनावी छे, अने तेणे तेने देवी रीते पोताना उपलोगनी विषयभूता बनावी छे ? आ प्रमाणे गौतम स्वामीये सूर्याभदेवना विषे जेम प्रश्न कर्यो हुतो तेमने अही पण ज्ञाणुवो जेधये भगवान् हुवे काली देवीना पूर्वभवना वृत्तान्तनुं वर्णन करे छे—

(एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पा णाम णयरी होत्था-वण्णओ-अंबसालवणे चेइए जियसत्तू राया

चासीत् । तत्र खलु आमलकल्पायां कालो नाम गाथापतिरासीत् कीदृशः ? इत्याह-
 'अड्डे' आढ्यः=धनधान्यादि समृद्धि-समृद्धः, 'जाव' यावत् 'अपरिभूए'
 अपरिभूतः=बहुजनैरपि पराभूतुमशक्यः । तस्य खलु कालस्य गाथापतेः काल-
 श्रीर्नाम भार्याऽऽसीत्, कीदृशीत्याह-सुकुमारपाणिपादा यावत् सुरूपा । तस्य
 खलु कालस्य गाथापतेर्दुहिता कालश्रियः भार्याया आत्मजा काली नाम
 दारिका=पुत्री आसीत् । सा कीदृशी ? त्याह-'बुड्ढा' वृद्धा=बहुवयस्कत्वात्,
 वृद्धकुमारी=अपरिणीतत्वात्, 'जुण्णा' जीर्णा=जीर्णशरीरत्वात्, 'जुण्णकुमारी'
 जीर्णकुमारी-अपरिणीतावस्थायामेव संजातजीर्णशरीरत्वात्, 'पडियपूयत्थणी'

राधा तत्थ णं आमलकप्पाए नयरीए काले नामं गाहावई होत्था, अड्डे
 जाव अपरिभूए) वे कहते हैं-गौतम सुनो-तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर इस
 प्रकार है-उस काल और उस समय में इसी जंबूद्वीप नामके द्वीप में
 भारतवर्षमें आमलकल्पा नामकी नगरी थी । नगरीका वर्णन करनेवाला
 पाठ यहां पर औपपातिक सूत्र से योजित कर लेना चाहिये । उस नगरी
 में उद्यान था जिसका नाम आम्रशालावन था । इस नगरी के राजा का
 नाम जितशत्रु था । इस आमलकल्पा नगरी में काल नाम का गाथापति
 रहता था । यह धन धान्यादिसे विशेष समृद्ध था और लोगोंमें भी इस
 की अच्छी प्रतिष्ठा थी । (तस्स णं कालस्स गाहावइस्स कालसिरी णामं
 भारिया होत्था, सुकुमाल जाव सुरूवा, तस्स णं कालस्स गाहावइस्स
 धूवा कालसिरीए भारियाए अत्तया काली णामं दारिया होत्था बुड्ढा
 बुड्ढकुमारी, जुण्णा जुण्णकुमारी, पडियपूयत्थणी णिविन्नवरा चरपरिव-

तत्थणं आमलकप्पाए नयरीए काले नामं गाहावई होत्था अड्डे जाव अपरिभूए)

तेजो डडे छे के डे गौतम ! सांलणो, तमार प्रश्नोने उत्तर आ
 प्रमाणे छे-के ते डणे अने ते समये आ जंबूद्वीप नामना द्वीपमां भारत
 वर्षमां आमलकल्पा नामनी नगरी डती. नगरीना वर्णन विधेने पाठ अर्द्धी
 औपपातिक सूत्र वडे अण्णी देवे नेछणे ते नगरीमां अेक उद्यान डतुं.
 तेनुं नाम आम्रशाल वन डतुं. ते नगरीना राजतुं नाम जितशत्रु डतुं.
 ते आमलकल्पा नगरीमां डाला नाम गाथापति रहेतो डतो. ते धनधान्य
 वगेरथी सविशे समृद्ध डते अने नमान्नां तेनी सारी खेवी, प्रतिष्ठा डती.

(तस्स णं कालस्स गाहावइस्स कालसिरीणामं भारिया होत्था, सुकुमाल
 जाव सुरूवा, तस्स णं कालस्स गाहावइस्स धूवा कालसिरीए भारियाए अत्तया
 काली णामं दारिया होत्था बुड्ढा बुड्ढकुमारी, जुण्णा जुण्णकुमारी, पडियपूयत्थणी

पतितपूतस्तनी-अवनतनितम्बस्तनी, ' णिविन्नवरा ' निर्विण्णवरा=वरवरणे विरक्ता, अतएव ' वरपरिवर्जिता ' वरपरिवर्जिता=पतिरहिता चाप्यासीत् । तस्मिन् काले तस्मिन् समये पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयः=पुरुषश्रेष्ठः आदिकरः यथा वर्द्धमानस्वामी तथैव पार्श्वप्रभुरपि ' णवरं ' नवरम्-अयं विशेषः-श्रीवर्द्धमानस्वामी सप्तहस्तोच्छ्रेयः, पार्श्वप्रभुः ' णवहत्थुस्सेहे ' नवहस्तोत्सेधः=नवहस्तपरिमितशरीरावगाहनः, स षोडशभिः श्रमणसाहस्रीभिः, अष्टत्रिंशता आर्यिका-

ज्जिया यावि होत्था) इस काल गाथापति की कालश्री नाम भार्या थी। इसके हाथ पैर आदि समस्त अंग उपांग विशेष सुकुमार थे। देखने में यह बड़ी सुन्दर थी काल गाथापति के इस काल श्री की कुक्षि से उत्पन्न हुई एक काली नाम की दारिका भी थी। जो बहुत बयस्का हो चुकी थी-इसका विवाह भी नहीं हुआ था। इसलिये कुमारी अवस्था में ही यह वृद्धा जैसी बहु उमरवाली हो गई थी। शरीर भी बहु अवस्था संपन्न होने के कारण इसका जीर्ण हो चुका था। अतः अपरिणीतावस्था में ही यह जीर्ण कुमारी बन गई थी। इसके नितम्ब और स्तन दोनों ही बिलकुल ढीले हो गये थे नीचे झुक आये थे। वरके वरण करने रूप कार्य से यह विरक्त बन चुकी थी अतः यह वरपरिवर्जित थी-पति से सर्वथा रहित थी। (तेणं कालेणं तेणं समणं पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जहा वर्द्धमाणसामी णवरं णवहत्थुस्सेहे सोलसहिं समणसाहस्सीहिं अट्टत्तीसाए अज्जिया साहस्सीहिं

णिविन्नवरा, वरपरिवर्जिता यावि होत्था)

ते काल गाथापतिनी कालश्री नामे भार्या इती. तेना हाथ-पग वगेरे अने अधा अंगो तेमज उपांगो सविशेष सुकामण इतां. देभावमां ते अहुं न सुंदर इती. काल गाथापतिनी आ कालश्रीना गर्भथी जन्म पाभेदी अेक काली नामे दारिका (पुत्री) पणु इती ते भोटी उंभरनी थर्ध थूरी इती. तेनु लभ पणु थयुं नडोतुं. अेथी कुमारिकानी अवस्थामां न ते डोशी जेवी अहुं उंभरे पडोंयेली थर्ध गर्भ इती. अहुं उंभरे पडोंयेली डोवा अडल तेनुं शरीर पणु अणु थर्ध थूकयुं इतुं. अेथी कुमारिकानी अवस्थामां न ते अणु कुमारिका अनी गर्भ इती तेना नितम्ब अने स्तनो अने साव डीला थर्ध गया इता, नीचे लटकवा लाग्या इता वरने वरणु करवा रूप कार्यथी ते विरक्त अनी गर्भ इती अेथी ते वर परिवर्जित इती. ते अेकदम पति वगरनी इती.

(तेणं कालेणं तेणं समणं पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जहा वर्द्धमाणसामी णवरं णवहत्थुस्सेहे सोलसहिं समणसाहस्सीहिं अट्टत्तीसाए अज्जिया

साहस्रीभिः सार्द्धं संपरिवृतः यावत् आम्रशालवने समवसृतः । परिषन्निर्गता यावत् पर्युपास्ते । ततः खलु सा काली दारिका अस्याः भगवत्पार्श्वप्रभुसमागमन-रूपायाः कथायाः=वार्त्तायाः ' लद्धट्टा ' लब्धार्था भगवानत्रसमवसृतः, इत्येवं-रूपार्थमाप्ता ' हृष्ट जाव हियया ' हृष्ट यावद्दहदया—हृष्टतुष्टचित्तानन्दिता प्रीतमनस्का हर्षवशविसर्पद्दहदया सती यत्रैव अम्मापितरौ तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य ' करयल जाव ' करतलपरिगृहीतं शिर आवर्त्तं दशनखं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा एवमवादीत्—एवं खलु हे अम्भ तातौ ! पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयः आदिकरो यावत्—आम्रशाल-वने चैत्ये यथा—प्रतिरूपमवग्रहमवगृह्य संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति=आस्ते, तद्गच्छामि खलु हे अम्भतातौ ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती पार्श्वस्या-

सर्द्धि संपरिवुडे जाव अंबलसालवणे समोसढे) उस काल में और उस समय में पुरुषादानीय पुरुषश्रेष्ठ—आदिकर पार्श्वनाथ अर्हंत प्रभु जो श्री वर्द्धमान स्वामी जैसे थे—सोलह हजार श्रमणों के तथा ३८, हजार आर्यिकाओं के साथ तीर्थंकर परंपरानुसार विहार करते हुए उस आम्रशालवन में आये। भगवान् महावीर और पार्श्वनाथ प्रभु की शरी-रावगाहना में विशेषता केवल इतनी ही थी कि उनका शरीर सात हाथ ऊँचा था और पार्श्व प्रभु का शरीर ९ हाथ ऊँचा था। (परिसा णिग्गया, जाव पञ्जुवासइ, तएणं सा दारिया इमीसे कहाए लद्धट्टा समाणी हृष्ट जाव हियया जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी—एवं खलु अम्मयाओ पासे अरहा पुरिसा-दाणीए आइगरे जाव विहरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुम्भेहिं

साहस्सीहिं सर्द्धि संपरिवुडे जाव अंबसालवणे समोसढे)

ते ङाणे अने ते सभये पुरुषादानीय—पुरुष श्रेष्ठ—आदिकर पार्श्वनाथ—अर्हंत प्रभु—जेणो श्री वर्द्धमान स्वामी जेवा उता—सोण उल्लर श्रमणो। तेमज ३८ उल्लर आर्यिकाणोनी साथे तीर्थंकर परंपरा मुज्जय विहार करतां ते आम्रशाल वनमां आव्या. भगवान महावीर अने पार्श्वनाथ प्रभुनी शरी रावगाहनामां विशेषता इकत आटली ज छे के तेमनुं शरीर सात हाथ जेटु उच्युं उतुं अने पार्श्व प्रभुनुं शरीर नव हाथ उच्यु उतुं

(परिसा णिग्गया, जाव पञ्जुवासइ, तएणं सा काली दारिया इमीसे कहाए लद्धट्टा समाणी हृष्ट जाव हियया जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी—एवं खलु अम्मयाओ ! पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे जाव विहरइ, तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुम्भेहिं अम्भ-

हंतः पुरुषादानीयस्य पादवन्दिका=पादवन्दनाशया गन्तुम् । अम्बापितरौ कथ-
यतः—हे देवानुग्रिपे ! पुत्रि यथा सुखं तथा कुरु किन्तु अस्मिन् शुभकार्ये प्रति-
बन्धं=ममादं मा कुरु । ततः खलु सा कालिका दारिका अम्बापितृभ्यामभ्यनु-
ज्ञाता सती हृष्टयावद्हृदया स्नाता कृतवलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ता शुद्ध-

अवभणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवंदिया-
गमित्तए ?) लोगों को ज्योंही पार्श्व प्रभु के आम्रशालवन में आने की
खबर लगी—त्योंही सब जनता प्रभु को वंदना के लिये अपने २ स्थान
से निकलकर उस आम्रशालवन में आने लगी। वहां आकर प्रभु का
धार्मिक उपदेश सुन वह प्रभु की पर्युपासना करने लगी। इसके अन-
न्तर जब यह समाचार काली दारिका को मिला तो वह बहुत अधिक
हर्षित एवं संतुष्ट चित्त हुई। बाद में वह जहां अपने माता पिता थे वहां
पहुंची वहां जाकर उसने माता पिता को दोनों हाथ जोड़कर चरण
वंदना की—और इस प्रकार कहा—हे माततात ! पुरुषश्रेष्ठ, आदिकर,
ऐसे पार्श्वनाथ अर्द्धत प्रभु आम्रशालवन में पधारे हुए हैं—इसलिये मैं
आपसे आज्ञापित होकर उन पुरुषश्रेष्ठ अर्द्धत प्रभु पार्श्वनाथ को वंदना
करने के लिये जाना चाहती हूँ। (अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं
करेहि, तएणं सा कालिया दारिया अम्मापिईहिं अवभणुन्नाया समाणी
हट्टतुट्टं जाव हियया ण्हाया कयवलिकम्मा कयकौउयमंगलपायच्छित्ता

णुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवंदिया गमित्तए ?)

पार्श्व प्रभुना आम्रशालवनमां पधारवानी ञ्णु यतां ञ् अथा बोके
प्रभुने वंदन करवा माटे पोतपोताना स्थानेथी नीकणीने ते आम्रशाल वनमां
आववा लाग्या. त्यां आवीने प्रभुने धार्मिक उपदेश सांभणीने तेओ प्रभुनी
पर्युपासना करवा लाग्या. त्थारणाह काली दारिकाने आ समाचारो भज्या त्थारे
ते भूण ञ् हर्षित तेमञ् संतुष्ट चित्तवाणी थर्ध गध. त्थारपथी ते ञ्थां तेना
माता—पिता हुता त्यां पडोची. त्यां ञ्धने तेणु माता—पिताने ञ्ने उाथ
जेदीने यरञ्च वंदना करी अने त्थारपथी आ प्रमाणे विनती करी के-डे माता
पिता ! पुरुष श्रेष्ठ, आदिकर ओवा पार्श्वनाथ अर्द्धत प्रभु आम्रशाल वनमा
पधार्या छे. ओटला माटे हुं तमारी आज्ञा भेजवीने ते पुरुष श्रेष्ठ अर्द्धत
प्रभु पार्श्वनाथने वंदन करवा माटे ञ्वा धञ्चु छु.

(अहा सुहं, देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेहि, तएणं सा कालिया दारिया
अम्मापिईहिं अवभणुन्नाया समाणी हट्टतुट्टं जाव हियया ण्हाया कयवलिकम्मा कय

प्रवेश्यानि माङ्गल्यानि वस्त्राणि प्रवरपरिहिता अल्पमहार्घाभरणालङ्कृतशरीरा चेष्टिका-
चक्रवालपरिकीर्णा स्वकाद् गृहाद् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाह्या-
उपस्थानशाला यत्रैव धार्मिको यानप्रवरस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य धार्मिकं यान-
प्रवरं दृष्ट्वा=आरूढा । ततः खलु सा काली दारिका धार्मिकं यानप्रवरम्, एवं

सुद्धप्पवेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिया अप्पमहग्घाभरणालंक्रिय
सरीरा चेडिया चक्रवालपरिकिण्णा साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ,
पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव धम्मिए जाण-
प्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा,
तएणं सा काली दारिया धम्मियं जाण पवरं जहा दोवई जाव पज्जुवासइ)
तव माता पिता ने उससे ऐसा कहा-हे देवानुप्रिये ! तुझे जिस प्रकार
सुख मिले उस प्रकार तू कर-इस शुभकार्य में प्रतिबंध-प्रमाद मत
कर । इस प्रकार माता पितासे अभ्यनुज्ञात हुई उस दारिका ने हृष्ट तुष्ट
चित्त होकर स्नान क्रिया वायसादि के लिये अन्नका भागरूप-बलिकर्म
क्रिया कौतुक, मंगल एवं प्रायश्चित्त करके शुद्ध प्रवेश योग्य, मंगलकारी
वस्त्रों को अच्छी तरह पहिरा, और अल्पभार बहुमूल्य आभरणों से
अलंकृत शरीर होकर वह चेष्टिका चक्रवाल से युक्त हो अपने घर से
निकली । निकलकर वह वहाँ गई-जहाँ बाह्य उपस्थान शाला थी-उसमें
जाकर वह जहाँ धार्मिक यानप्रवर रक्खा था-वहाँ पहुँची-वहाँ जाकर

कोउयमंगलभायच्छित्ता सुद्धप्पवेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिया अप्पमहग्घा-
भरणालंक्रियसरीरा चेडियाचक्रवालपरिकिण्णा साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ,
पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे
तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा तएणं सा काली
दारिया धम्मियं जाणप्पवरं एवं जहा दोवई जाव पज्जुवासइ)

त्यारे मातापिताअे तेने आ प्रभाषे इधु के डे देवानुप्रिये ! तने जेम
शुभ भजे तेम तू कर. आ शुभ कार्यमां प्रतिबंध-प्रमाद कर नडि आ
प्रभाषे मातापिता वडे आजापित थयेदी ते दारिकाअे हृष्ट-तुष्ट चित्त थधने
स्नान क्युं डागडा वगेरेने अन्नभाग आपीने बलिकर्म क्युं. कौतुक, मंगल
अने प्रायश्चित्त करीने शुद्ध प्रवेश योग्य, मंगलकारी वस्त्रोने सारी रीते पडेया
अने वजनमां लुक्का पथु किमतमां भदु लारे अेवा आलश्लोथी शरीरने
अलंकृत करीने दासीअेना समूहथी परिवेष्टित थधने पोताना वेरथी नीकणी
नीकणीने ते त्यां पडेयाथी न्या आद्य उपस्थान शाला इती. तेमां जधने ते
न्या धार्मिक यानप्रवर अिभुं इतु तेमां आइठ थरुं गइ. आइठ थधने ते

‘ जहा दोवई जाव ’ यथा द्रौपदी यावत्-द्रौपदीवत् छत्रादीन् तीर्थङ्करातिशयान् दृष्ट्वा धार्मिकाद् यानप्रवरोदवतरति, पञ्चाभिगमपूर्वकं भगवत्समीपे गत्वा वन्दित्वा नमस्यित्वा च भगवन्तं ‘ पञ्जुवासइ ’ पर्युपास्ते । ततः खलु पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयः काल्यै दारिकायै तस्यां च महातिमहालयायां पर्षदि धर्मं कथयति ततः खलु सा काली दारिका पार्श्वस्यार्हतः पुरुषादानीयस्यान्तिके धर्मं श्रुत्वा निश्चयं हृष्ट याद्द् हृदया पार्श्वमर्हन्तं पुरुषादानीयं त्रिकृत्वो वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा

वह उस पर आरूढ हो गई। आरूढ होकर वह वहाँ से चली। ज्योंही उसने द्रौपदी की तरह तीर्थकरातिशयरूप छत्रादि विभूति को देखा तो वह देखकर उस धार्मिक यानप्रवर से नीचे उतरी। और पञ्च अभिगमन पूर्वक भगवान् के पास जाकर उसने उनको वंदना की, उन्हें नमस्कार किया-वंदना नमस्कार करके फिर उसने उनकी पर्युपासना की। (तएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालीए दारियाए तीसे य महइमहालयाए परिसाए धम्मो कहिओ) पुरुषादानीय अर्हत प्रभु पार्श्वनाथने उस काली दारिकाको उस विशाल परिषदाके बीचमें धर्मकथा सुनाई। (तएणं सा काली दारिया पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म इट्ठ जाव हियया पासं अरहं पुरिसादाणीयं तिवखुत्तो वंदइ नमंसइ) पुरुषादानीय उन अर्हत पार्श्वनाथ प्रभु से धर्म को सुनकर और हृदय में अवधारण कर वह काली दारिका बहुत अधिक हर्षित

त्यांथी खाना थछ. द्रौपदीनी जेम तेजे न्यारे तीर्थंकरातिशय रूप छत्र वगेरे विभूतिने जेठ डे जेतांनी साथे ज ते धार्मिक यान-प्रवरमांथी नीचे उतरि पडी. अने पञ्च अभिगमनपूर्वकं भगवाननी पास जेधने तेमने वंदना करी, तेमने नमस्कार कर्या. वंदना अने नमस्कार करीने तेजे तेमनी पर्युपासना करी. त्यारपछी

(तएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालीए दारियाए तीसे य महइमहालयाए परिसाए धम्मो कहिओ)

पुरुषादानीय अर्हत प्रभु पार्श्वनाथे ते काली दारिकाने ते विशाल परिषदानी साथे धर्मकथा संलणावी.

(तएणं सा काली-दारिया पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म इट्ठ जाव हियया पासं अरहं पुरिसादाणीयं तिवखुत्तो वंदइ नमंसइ)

पुरुषादानीय ते अर्हत पार्श्वनाथ प्रभुनी पासैथी धर्मने संलणीने अने तेने हृदयमां अवधारित करीने ते काली दारिका अहु ज वधारे हर्षित

नमस्यिन्वा एवमवादीत्-श्रद्धामि खलु हे भदन्त । नैर्ग्रन्थं प्रवचनं यावत् तद्
तथैतद् गृयं वदथ नवरं-विशेषोऽयम्-यत्-अहम् अम्मापितरो आपुच्छामि, ततः=
मातापितरो पृष्ठा खलु अह देवानुप्रियाणामन्तिके यावत् प्रव्रजामि । भगवानाह-
यथामुखं हे देवानुप्रिये । ततः खलु सा काली दारिका पार्श्वेन अर्हता पुरुषा-

हृदयं हृई । उसने उन पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अर्हंत प्रभु को तीन बार
वंदना नमस्कार किया । बाद में (वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी सह-
हामि णं भन्ते ! णिग्गंथं पाचयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह, जं णवरं
देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि, तएणं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए
जाव पच्चयामि, अहासुहं देवाणुप्पिए ! तएणं सा काली दारिया पासेणं
अरहया पुरिसादाणीएणं एवं वुत्ता समाणी हट्ट जाव हियया पासं
अरहं वंदह, नमंसह, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणपवरं दुरु-
हह, दुरुहत्ता पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतियाओ अंवसा-
लवणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमह, पडिनिक्खमित्ता जेणेव आमलकप्पा
नयरी, तेणेव उवागच्छह) वंदना नमस्कार करके उसने उन प्रभु से
ऐसा कहा-हे भदंत ! मैं आपके द्वारा प्रतिपादित निर्ग्रन्थ प्रवचन को
विशेष श्रद्धा की दृष्टि से देखती हूँ आपने जैसा यह प्रतिपादित किया
है वह वस्तुतः वैसा ही है । यह मुझे बहुत रुचा है । अतः मैं माता
पिता से पूछती हूँ । उनसे पूछकर फिर आप देवानुप्रिय के पास आकर

इत्यर्थ. तेषु ते पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अर्हंत प्रभुने त्रयु बार वंदना
आने नमस्कार इत्यां त्पारभाह

(वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी सहहामिणं भन्ते ! णिग्गंथं पाचयणं जाव
से जहेयं तुब्भे वयह, जं णवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि, तएणं
अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पच्चयामि, अहा सुहं देवाणुप्पिए ! तएणं सा
काली दारिया पासे णं अरहया पुरिसादाणीएणं एवं वुत्ता समाणी हट्ट जाव हियया
पासं अरहं वंदह, नमंसह, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणपवरं दुरुहह
दुरुहत्ता पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतियाओ अंवसालवणाओ चेइयाओ
पडिनिक्खमह, पडिनिक्खमित्ता जेणेव आमलकप्पा नयरी तेणेव उवागच्छह)

वंदना नमस्कार इतिने तेषु ते प्रभुने आ प्रभाषे इत्यु हे हे लहन्त ।
तभाषा वदे प्रतिपादित निर्ग्रन्थ प्रवचनने तुं विशेष श्रद्धानी दृष्टिओ लोडं
इ. तमे तेषु आ प्रतिपादित इत्युं छे णरेणर ते तेषुं छे. भन्ते आ
अथ न गभी गयुं छे. अथी हु मातापिताने पृथी लडं छे तेभने पृथीने

दानीयेन एवमुक्ता सती हृष्ट यावद् हृदया पार्श्वमर्हन्तं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा तदेव धार्मिकं यानप्रवरं दूरोहति, दूरुह्य पार्श्वस्यार्हतः पुरुषादानीय-स्यान्तिकाद् आम्रशालानात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव आमल-कल्पा नगरी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य आमलकल्पाया नगर्या मध्य-मध्येन यत्रैव वाह्या उपस्थानशाला तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य धार्मिकं यानप्रवरं स्थाप-यति, स्थापयित्वा धार्मिकाद् यानप्रवरात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव अम्बा-पितरो तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य ' करतल० ' करतलपरिशृहीतं मस्तकेऽञ्जलि-

दीक्षित होना चाहती हूँ। काली दारिका के इस अभिप्राय को सुनकर प्रभुने उससे कहा देवानुप्रिये! यथासुखम्। इस प्रकार वह काली दारिका पुरुषादानीय उन अर्हत प्रभु पार्श्वनाथ से अनुमोदित होकर चित्त में बहुत अधिक प्रसन्न हुई। उसने अर्हन्त पार्श्वनाथ प्रभु को वंदना नमस्कार किया-और वंदना नमस्कार करके वहाँ से आकर वह उसी अपने धार्मिक यान पर चढ़ गई चढ़कर वह फिर पुरुषादानीय, अर्हत प्रभु पार्श्वनाथ के पास से और उस आम्रशालवन नामके उद्यान से बाहिर चली आई। बाहिर आकर वह जहाँ आमलकल्पा नगरी थी -वहाँ पर आ गई। (उवागच्छित्ता आमलकल्पं णयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला-तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणपवर ठवेइ, ठवित्ता धम्मियाओ जाणपवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कर-

आय देवानुप्रियनी पासे आवीने दीक्षित थवा आहुं छुं; काली दारिकाना आ अलिप्रायने सालणीने प्रभुअे तेने कहुं के डे देवानुप्रिये। ' यथासुखम् ' आ प्रमाणे ते काली दारिका पुरुषादानीय ते अर्हत प्रभु पार्श्वनाथ वडे अनुमो-दित थधने चित्तमां भूण न प्रसन्न थध. तेणे अर्हत पार्श्वनाथ प्रभुने वंदना नमस्कार करीं अने वंदना नमस्कार करीने त्यांथी आवीने ते तेन पोताना धार्मिक यानमां जेसी गध अने जेसीने ते पुरुषादानीय अर्हत प्रभु पार्श्व-नाथनी पासेथी अने ते आम्रशाल वन नामना उद्यानथी अडार आवी गध. अडार आवीने ते ज्यां आमलकल्पा नगरी डती त्यां आवी गध

(उवागच्छित्ता आमलकल्पं णयरिं मज्झं मज्झेणं जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण-साला-तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणपवरं ठवेइ, ठवित्ता धम्मि-याओ जाणपवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता, जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवाग-च्छइ, उवागच्छित्ता करतल० एवं वयासी-एवं खलु अम्मयाओ ! मंए पासस्स

कृत्वा एवमवादीत्-एवं खलु हे अम्बतातौ ! मया पार्श्वस्यार्हतोऽन्तिके धर्मः
 'णिसंते' निशान्तः=श्रुतः, सोऽपि च धर्म. 'मे' मम 'इच्छि' इष्टः=
 इच्छाविषयीभूतः, 'पडिच्छि' प्रतीष्टः=पुनः पुनरभिलषितः 'अभिरुइ'=
 अभिरुचितः=आस्वाद्यवस्तुवत्सर्वथाप्रियः, ततः=तस्मात् कारणात् खलु अहं हे
 अम्बतातौ ! संसारभयोद्विग्ना भीता जन्ममरणेभ्योऽतः इच्छामि खलु युष्माभ्याम-

यल० एवं वयासी-एवं खलु अम्मयाओ ! मए पासस्स अरहओ अंतिए
 धम्मए णिसंते से वि य मे धम्मए इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए-तएणं
 अहं अम्मयाओ ! संसारभउव्विग्गा भीया जम्मणमरणाणं-इच्छामि
 णं तुव्वेहिं अम्मणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ अंतिए मुंडा भवित्ता
 अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए) वहां आकर के वह आमलकल्प
 नगरी के बीचों बीच से होकर जहाँ वह बाह्या उपस्थान शाला थी-वहाँ
 आई-वहाँ आकर वह उस धार्मिक यानप्रवर से नीचे उतरी-नीचे
 उतर कर फिर वाद में वह जहाँ अपने माता पिता थे-वहाँ गई-वहाँ
 जाकर उसने अपने दोनों हाथों की अंजलि बनाकर और उसे मस्तक
 पर रखकर उनसे इस प्रकार कहा-हे मात तात ! सुनो मैंने अर्हत प्रभु
 पार्श्वनाथ के मुख से धर्म सुना है-वह धर्म मुझे बहुत अच्छा लगा है,
 बार बार उस धर्म को सुनने की अभिलाषा हो रही है । जिस प्रकार
 आस्वाद्य वस्तु प्रिय लगती है उसी प्रकार वह धर्म मेरे लिये सब
 प्रकार से प्रिय लगा है । उसके सुनने से मैं हे मात तात ! इस संसार

अरहओ अंतिए धम्मए णिसंते से वि य मे धम्मए इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए-तएणं
 अहं अम्मयाओ ! संसारभउव्विग्गा भीया जम्मणमरणाणी-इच्छामि णं तुव्वेहिं
 अम्मणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ अंतिए मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगा-
 रियं पव्वइत्तए)

त्यां आवीने ते आमलकल्पा नगरीनी वस्से थमने न्यां ते णाह्य उप-
 स्थान शाला इती त्यां आवी त्यां आवीने ते ते धार्मिक यान प्रवरमांथी
 नीचे उतरी, नीचे उतरीने ते न्यां तेना मातापिता इतां त्यां गध, त्यां न्धने
 पोताना ञ्ने डाथेनी अन्धलि अनावीने अने तेने मस्तके भूद्रीने तेमने आ
 प्रभावे क्खुं के डे मातापिता ! सांभजो, अर्द्धंत प्रभु पार्श्वनाथना सुणथी
 मे' धर्मं श्रवणं कथुं' छे, ते मने गडु न गमी गथुं छे. ते धर्मने वारंवार
 सांभजवानी ध्विञ्छ थर् रडी छे जेम आस्वाद्य वस्तु प्रिय लागे छे तेमन्
 ते धर्म भाग माटे अभी रीते प्रिय थर् पड्यो छे डे मातापिता ! तेना

भ्यनुज्ञाता सती पार्श्वस्यार्हतोऽन्तिके मुण्डाभूत्वा आगाराद् अनगारितां प्रव्रजितुम्= स्वीकर्तुम् । मातापितरौ कथयतः—यथासुखं हे देवानुपिये ।=यथा रोचते तथा- कुरु किन्तु अस्मिन् कार्ये प्रतिबन्धं=प्रमादं मा कुरु । ततः=स्वपुत्र्या दीक्षानिश्चयानन्तरं खलु स कालो गाथापतिर्विपुलम् अशनम् ४ अशनादि चतुर्विधमाहारम् उपस्कारयति, उपस्कार्य मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनम् आमन्त्रयति, आमन्त्र्य ततः पश्चात् स्नातः यावत् विपुलेन पुष्पवस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण सत्कृत्य सम्मान्य तस्यैव मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनस्य पुरतः=अग्रे कालिकां दारिकां श्वेतपीतैः=रजतसुवर्णमयैः कलशैः स्नपयति, स्नपयित्वा सर्वालङ्कारविभूषितां करोति, कृत्वा पुरुषसहस्रवाहिनिकां शिविकां दूरोहयति=भारोहयति, दूरोह्य मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनेन सार्द्धं संपरिवृतः सर्वद्वर्षा यावत्—वाध-

के भय से उद्विग्न होकर जन्ममरण से भयभीत हो चुकी हूँ—अतः मैं चाहती हूँ कि मैं आप से आज्ञा प्राप्त कर उन अर्हत पार्श्वनाथ प्रभु के समीप मुंडित होकर अगारावस्था से अनेगारावस्था स्वीकार कर लूँ । इस प्रकार अपनी काली दारिका की बात सुनकर माता पिता ने उससे कहा—(अहासुहं देवानुपिया । मा पडिवंधं करेह, तएणं से काले गाहावई विपुलं असणं ४ उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइ णियग सयणसंबंधिपरियणं आमंतेइ आमंतित्ता तओ पच्छा पहाए जाव विउलेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणस्स पुरओ कालियं दारियं सेया पीएहिं कलसेहिं पहावेइ पहावित्ता संव्वालंकारविभूसियं करेइ, करित्ता पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं दूरोहेइ, दूरोहित्ता मित्तणाइणियगसयण

श्रवणुथी हुं आ संसारना लयथी उद्विग्न थधने जन्म-मरणुथी लयलीत थधं गधं छुं. अथी भारी धक्का छे के हुं तभारी आज्ञा भेगवीने ते अर्हत पार्श्वनाथ प्रभुनी पासै मुंडित थधने अगारावस्था त्थलने अतगारावस्था स्त्रीकारी लडं. आ प्रभाणु पोतानी काली दारिकानी वात सांलणीने मातापिताअे तेने डलुः—

(अहासुहं देवानुपिया । मा पडिवंधं करेह, तएणं से काले गाहावई विपुलं असणं ४ उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरियणं आमंतेइ आमंतित्ता तओ पच्छा पहाए जाव विपुलेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणस्स पुरओ कालियं दारियं सेयापीएहिं कलसेहिं पहावेइ पहावित्ता संव्वालंकारविभूसियं करेइ, करित्ता

मानानेकविधवादित्रवेण सह आमलकल्पाया नगर्या मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैवाप्रगालवनं चैत्यं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य छत्रादिकान् तीर्थकराति-

संबंधिपरियणेणं सद्धिं संपरिवुडे सच्चिद्विण्डुए जात्र रवेणं आमलकल्पं नयरिं मज्झं मज्जेणं णिगच्छइ) हे देवानुप्रिये ! तुझे जिस तरह अच्छा लगे वैसा तू कर-इस कार्य में प्रमाद न कर। इस तरह उस काल गाथापति ने अपनी पुत्री को दीक्षा ग्रहण करने में दृढ निश्चयवाली जानकर विपुल मात्रा में अशनादि रूप चतुर्विध आहार निष्पन्न कर-वाया-बाद में मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबन्धी परिजनों को आमंत्रित किया। आमंत्रित करके बाद में उसने स्नात होकर विपुल पुष्प, वस्त्र, गंध माल्य, एवं अलंकारों से सत्कार सन्मान करके उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबन्धी, परिजनों के साथ काली दारिका का श्वेत पीत कलशों द्वारा अभिषेक किया-बाद में उसे समस्त अलंकारों से विभूषित किया-फिर पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका पर उसे चढ़वाया। चढ़वाकर फिर उन मित्र, ज्ञाति निजक, स्वजन संबन्धी परिजनों से घिरा हुआ होकर वह अपनी समस्त ऋद्धि के अनुसार, वाद्यमान अनेक विध बाजों की ध्वनि के साथ २ आमलकल्पा नगरी के ठीक बीचों बीच से होकर निकला। (गिगच्छित्ता जेजेव अंबसालवणे चेइए

पुगिससहस्रवाहिणीयं सीयं दुरोहेइ, दुरोहित्ता मित्तणाइ, णियगसयणसंबंधि परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे सच्चिद्विण्डुए जात्र रवेणं आमलकल्पं नयरिं मज्झं मज्जेणं णिगच्छइ)

हे देवानुप्रिये ! तने जेम साइं लागे तेम कर आ काममां प्रमाद करीश नहि आ प्रमाणे ते कालगाथापतिजे चोतानी पुत्रीने दीक्षा अडणु करवाने मज्झम विचार जण्णीने पुण्ण प्रमाणुमां अशन वगेरे चार जतना आहारो तैयार करावडाव्या। त्थारभाद मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबन्धी परिजनोने आमंत्रित क्यो। आमंत्रित करीने तेजे स्नात करीने पुण्ण पुष्प, वस्त्र, गंध, माल्य अने अलंकारो वडे सत्कार तेमज्ज सन्मान करीने ते मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबन्धी, परिजनोनी साथे काली दारिकोने सद्धेइ, अने पीणा कण्ठो वडे अलिषेक क्यो त्थारभाद तेने समस्त अलंकारो वडे विभूषित करी अने त्थारपथी पुरुष सहस्रवाहिनी पालथी उपर तेने अठावी। अठावीने तेजे मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन संबन्धी, परिजनोनी साथे परि-वेष्टित थडने चोतानी समस्त ऋद्धिनी साथे, धणुं वाज्जोना ध्वनिनी साथे साथे आमलकल्पा नगरीनी परापर वच्चे थडने नीकण्ठो।

शयान् पश्यति, दृष्ट्वा शिविकां स्थापयति, स्थापयित्वा कालिकां दारिकां शिविकातः प्रत्यत्रोहयति । ततः खलु तां कालिकां दारिकाम् अम्बापितरौ पुरतः कृत्वा यत्रैव पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य वन्देते नमस्यतः, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमत्रादिष्टाम्—एवं खलु हे देवानुप्रियाः ! काली दारिका आवयोर्दुहिता इष्टा कान्ता यावत् उदुम्बरपुष्पमिव श्रवणायापि दुर्लभा किमद्ग ! पुनः

तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता छत्ताइए तित्थगराइसए पासइ) निकलकर वह वहां गया कि जहां वह आम्रशालवन नाम का उद्यान था । वहां जाकर उसने तीर्थंकर प्रकृति के उदय से होनेवाले छत्रादिक अतिशयो को देखा । (पासित्ता सीयं ठावेइ, ठावित्ता कालियदारियं सीयाओ पच्चोरुहइ, तएणं तं कालीयं दारियं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसा० तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी) देखकर उसने उस पुरुष सहस्रबाहिनी शिविका को खड़ी कर दिया । खड़ी करके उसमें से काली दारिका को नीचे उतारा बाद में वे माता पिता उस कालिक दारिका को आगे करके जहां पुरुषादानीय अर्हत प्रभु पार्श्वनाथ विराजमान थे वहां गये । वहां जाकर उन्होंने ने उनको वंदना की—नमस्कार किया । वंदना नमस्कार करके बाद में उन्होंने ने इस प्रकार प्रभु से कहा—(एवं खलु देवाणुप्पिया ! काली दारिया अमहं धूया इट्ठा कंता, जाव किमंगपुणपासणयाए ! एस

(णिग्गच्छित्ता जेणेव अंबसालवणे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताइए तित्थगराइसए पासइ)

नीकणीने ते त्यां गये ङे न्यां ते आम्रशाल वन नामे उद्यान उतुं त्यां जधने तेण्णे तीर्थंकर प्रकृतिना उदयथी अस्तित्वमां आवता छत्र वगेरे अतिशयोने जेया.

(पासित्ता सीयं ठावेइ, ठावित्ता कालियदारियं सीयाओ पच्चोरुहइ, तएणं तं कालियं दारियं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसा० तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी)

जेधने तेण्णे ते पुरुष सहस्रबाहिनी पादभीने शक्री. शक्रीने तेमांथी काली दारिकाने नीचे उतारी. त्थारपणी ते मातापिता ते कालीक दारिकाने आगण करीने न्यां पुरुषदानीय अर्हत प्रभु पार्श्वनाथ विराजमान उता त्यां गया. त्यां जधने तेमण्णे तेमने वंदना करी, नमस्कार कर्या वंदना तेमज नमस्कार करीने तेमण्णे प्रभुने विनंती करतां आ प्रमाण्णे कल्लु के—

(एवं खलु देवाणुप्पिया ! कालीदारिया अमहं धूया इट्ठा कंता, जाव किमंग-

‘पासण्याए’ दर्शनाय ? एषा खलु हे देवानुप्रियाः । संसारभयोद्विग्ना इच्छति देवानुप्रियाणामन्तिके मुण्डाभूत्वा यावत्प्रव्रजितुं, तद् एतां खलु देवानुप्रियाणां शिष्याभिक्षां दत्तः, ‘पडिच्छंतु’ प्रतीच्छन्तु=स्वीकुर्वन्तु खलु हे देवानुप्रियाः ! शिष्याभिक्षाम् । भगवानाह—यथासुखं हे देवानुप्रियो ! मा प्रतिबन्धं कुरुतम् । ततः खलु काली कुमारी पार्थर्महन्तं कन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा उत्तरपौरस्यं

पं देवाणुप्पिया ! संसारभउद्विग्गा, इच्छइ, देवाणुप्पियाणं ! अंतिए मुंडा भवित्ता जाव पव्वइत्तए, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं सिस्सिणिमिक्खं दलयामो पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिमिक्खं) हे देवानुप्रिय ! यह हमारी काली दारिका नामकी पुत्री है । यह हमें बहुत अधिक इष्टा, कान्ता यावत् उदस्वर पुष्प के समान सुनने के लिये भी दुर्लभा है—तो फिर हे अंग । इसके दर्शन की तो बात ही क्या कहना है । हे देवानुप्रिय । यह संसारभय से उद्विग्न हो रही है अतः आप देवानुप्रिय के पास मुंडित होकर यावत् संयम लेना चाहती है । इस लिये हम दोनों आपके लिये शिष्या की भिक्षा दे रहे हैं—आप देवानुप्रिय ! हमारी इस शिष्यारूप भिक्षा को स्वीकार करें (अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबन्धं करेह) इस प्रकार उन दोनों का कथन सुनकर प्रभु ने उनसे कहा हे देवानुप्रियो ! आप को जैसा सुख हो—वैसा आप करो—इसमें विलम्ब करने से लाभ नहीं है । (तएणं) इसके बाद (काली कुमारी पासं

पुण पासण्याए ? एसणं देवाणुप्पिया ! संसारभउद्विग्गा, इच्छइ, देवाणुप्पियाणं ! अंतिए मुंडा भवित्ता जाव पव्वइत्तए, तं एयं णं देवाणुप्पियाणं सिस्सिणिमिक्खं दलयामो पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिमिक्खं)

हे देवानुप्रिय ! आ हमारी काली दारिका नामे पुत्री छे. हमारा भाटे आ भहु न पधारे छिटा, कान्ता यावत् उदस्सर पुष्पनी जेम नाम श्रवणुमां पणु दुर्लभा छे. तो पथी जेना दर्शननी तो बात न शी करवी ? हे देवानुप्रिय ! आ संसार लयथी उद्विग्न थछ रही छे. जेथी आप देवानुप्रिय पासण्याए मुंडित थछने यावत् संयम अडणु करवा छच्छे छे. जेथी जेमे जने आपना भाटे आशिष्यानी लीक्षा अर्पणु करीजे छीजे. आप देवानुप्रिय हमारी आ शिष्यारूपी लिक्षाने स्वीकार करे. (अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबन्धं करेह) आ प्रभाणु तेजे जनेनुं कथन सांलणीने प्रभुजे तेभने कछु हे देवानुप्रियो ! तमने जेम सुभ प्राप्त थाय तेम करे. आमां विलंब करवाथी लाभ नथी. (तएणं) त्थारपथी

दिग्भागम् अवक्रामति, अवक्राम्य स्वयमेव=स्वहस्तेनैव आभरणमालयालङ्कारम्
अवमुञ्चति=अवतारयति, अवमुच्य स्वयमेव=स्वहस्तेनैव लोचं=केशलुञ्चनं करोति,
कृत्वा यत्रैव पार्श्वोऽर्हन् पुरुषादानीयस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पार्श्वमर्हन्तं त्रिः
कृत्वो वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा ऐश्वरादीन्-आदीन्ः खलु हे भद-
न्त ! लोकः एवम्=अनेन प्रकारेण यावत्-एषाऽपि स्वयं द्वै पार्श्वप्रभुणा प्रव्राजिता ।

अरहं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता, उत्तरपुरात्थिमं दिसिभागं
अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ,
ओमुइत्ता, सयमेव लोयं करेइ, करित्ता जेणेव पासे अरिहा पुं आदा-
णीए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासं अरहं तिवखुत्तो वदइ,
नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी) काली कुमारी ने पार्श्वनाथ
अरिहन्त प्रभु को वंदना एवं नमस्कार किया-। वंदना नमस्कार करके
फिर वह उत्तर पौरस्त्य दिग्भाग ईशान कोण की ओर गई। वहां जाकर
उसने अपने आप आभरण माल्य एवं अलंकारों को उतार दिया।
उतार कर अपने हाथों से उसने बालों का लुंचन किया-लुंचन करके
फिर वह जहां पुरुषादानीय पार्श्वनाथ प्रभु विराजमान थे वहाँ आई-
वहाँ आकर उसने पार्श्वनाथ अर्हत को तीनवार वंदन एवं नमस्कार
किया और वंदना नमस्कार कर फिर वह उनसे इस प्रकार कहने लगी
-(आलित्तेणं भंते ! लोए एवं जहा देवाणंदा जाव सयमेव पच्चाविया-

(काली कुमारी पासं अरहं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता, उत्तरपुरात्थिमं
दिसिभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता, सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता
सयमेव लोयं करेइ, करित्ता जेणेव पासे अरिहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता पासं अरहं तिवखुत्तो वदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी)

काली कुमारीये पार्श्वनाथ अरिहंत प्रभुने वंदना अने नमस्कार कर्थां.
वंदना अने नमस्कार करीने ते उत्तर पौरस्त्य दिग्भाग ईशान कोणनी तरइ
गछ. त्यां जेणे तेणे पोतानी जेणे ज आभरण, माल्य अने अलंकाराने
उतार्यां. उतारीने पोताना हाथे वडे ज तेणे वाणोतुं लुचन कर्थां. लुचन करीने
ते त्यां पुरुषादानीय पार्श्वनाथ प्रभु विराजमान उता त्यां आवी. त्यां आवीने
तेणे पार्श्वनाथ अर्हतने त्रय वार वंदन अने नमस्कार कर्थां वंदना अने
नमस्कार करीने ते तेभने आ प्रभाणे विनंती करवा लागी डे-

(आलित्तेणं भंते ! लोए एवं जहा देवाणंदा जाव सयमेव पच्चाविया-तएणं

ततः खलु पार्थोऽहं पुरुषादानीयः काली स्वयमेव पुष्पचूलायै आर्यायै शिष्यात्वेन ददाति । ततः खलु सा पुष्पचूला आर्या कालीं दारिकां स्वयमेव प्रवाजयति यावत्-सा काली तदाज्ञाम् उपसृष्ट्वा खलु विहरति । ततः सा काली-आर्या जाता, कीदृशी ? त्याह-ईरिया मिया यावत्-गुप्तब्रह्मचारिणी । ततः खलु सा काली अर्या पुष्पचूलायै अर्या अन्तिके सामायिकादीनि एकादशाङ्गानि अधीते,

तएणं पासे अर्या पुरिसादाणीए कालिं सयमेव पुष्पचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए दलयइ, तएणं सा पुष्पचूला अज्जा कालिं दारियं सयमेव पव्वावेइ-जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ) हे भदन्त ! यह लोक आदीप्त हो रहा है-इस प्रकार से पार्श्वनाथ प्रभु के द्वारा स्वयं ही दीक्षित की गई। इसके बाद उन पुरुषादानीय पार्श्व प्रभु ने काली को दीक्षित करके पुष्पचूला आर्या को शिष्याणीरूप से प्रदान कर दिया। पुष्पचूला आर्या ने उसे काली को इस प्रकार दीक्षित करवा कर अपनी शिष्याणीरूप में उसे स्वीकार कर लिया-यावत् वह काली उस आर्या की आज्ञानुसार अपनी प्रवृत्ति करने लग गई। (तएणं सा काली अज्जा जाव) इस तरह वह काली अब आर्या हो गई। (ईरिया मिया जाव गुत्तवमयारिणी तएणं सा काली अज्जा पुष्पचूलाए अज्जाए अंतिए

पामे अरहा पुरिसादाणीए कालिं सयमेव पुष्पचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए दलयइ, तएणं सा पुष्पचूला अज्जा कालिं दारियं सयमेव पव्वावेइ-जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ)

हे भदन्त ! आ लोक आदीप्त थई रह्यो छे. आ प्रभाणु आ पथु पार्श्वनाथ प्रभु वडे जते न दीक्षित करवाभां आवी. तयारपछी ते पुरुषादानीय पार्श्व प्रभुणे डादीने दीक्षित करीने पुष्पचूला आर्याने शिष्याना इपभां आपी दीधी. पुष्पचूला आर्याणे ते डादीने आ प्रभाणु दीक्षित करवावीने पोतानी शिष्याना इपभां तेनो स्वीकार करी लाये. यावत् ते डादी ते आर्यानी आज्ञा मुअय पोतानी प्रवृत्ति करवा लागी (तएणं सा काली अज्जा जाव) आ नीते ते डादी छवे आर्या थई गछ

(ईरिया मिया जाव गुत्तवमयारिणी, तएणं सा काली अज्जा पुष्पचूलाए अज्जाए अंतिए समाइयमाइयाइ एअकारसअंगाइ अहिज्जइ, वहुहिं चउत्थ जाव विहरइ)

वहूभिः चतुर्थं यावत्-षष्ठाष्टमदशमद्वादशभिस्तपःकर्मभिरात्मानं भावयन्ती
विहरति ॥ सू० ३ ॥

मूलम्-तएणं सा काली अज्जा अन्नया कयाइं सरीरवाउ-
सिया जाया यावि होत्था, अभिक्खणं२ हत्थे धोवइ पाए धोवइ
सीसं धोवइ मुहं धोवइ थणंतराइं धोवइ कक्खं तराणि धोवइ
गुज्झंतराइं धोवइ जत्थरं वि य णं ठाणं वा सैज्जं वा णिसी-
हियं वा चेइए तं पुव्वामेव अब्भुक्खेत्ता तओ पच्छा आसयइ
वा सयइ वा, णिसीहइ वा, तएणं सा पुप्फचूला अज्ज कालिं
अज्जं एवं वयासी-नो खलुकप्पइ देवाणुप्पिया ! समणीणं णिग्गं
थीणं सरीरवाउसियाणं होत्तए तुमं च णं देवाणुप्पिया ! सरी-
रवाउसिया जाया अभिक्खणं२ हत्थे धोवसि जाव आसयाहि
वा सयाहि वा णिसीहियाहि वा तं तुमं देवाणुप्पिए ! एयस्स
ठाणस्स आलोएहि जाव पायच्छित्तं पडिवज्जाहि, तएणं सा काली

सामाहयमाहयाइं एक्कारसअंगाइं अहिज्जइ, वहुहिं चउत्थ जाव विह-
रइ) उसका रहन शयन आदि सब व्यवहार नियमित एवं सीमित हो
गया। चलती तो वह ईर्या समिति से मार्ग का संशोधन कर चलती।
यावत् वह शुभ ब्रह्मचरिणी बन गई। ९ नौ कोटी से ब्रह्मचर्यव्रत की
संरक्षिका हो गई। इसके बाद उस काली आर्या ने पुष्पचूला आर्या के
पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया-और अनेक
चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम दशम, द्वादश, तपस्याओं की आराधना से अपने
आपको भावित किया ॥ सूत्र ३ ॥

तेनुं रहेवुं, सूनुं वगेरे भधुं काम नियमित अने सीमित थध गधुं.
यावती त्तारे ते धर्या-समितिथी मार्गनुं संशोधन करीने यावती. यावत् ते
शुभ ब्रह्मचरिणी भनी गध ९ कोटिथी ब्रह्मचर्य व्रतनी ते संरक्षिका थध
गध. त्तारपछी ते काली आर्याये पुष्पचूला आर्या नी पासै सामायिक वगेरे
अगियार अंगोनुं अध्ययन कथुं अने धणु अतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम,
द्वादश तपस्यायेनी आराधनाथी पोतानी नतने भावित करी. ॥ सूत्र ३ ॥

अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए एयमट्टं नो आढाइ जाव तुसिणीया
संचिट्ठइ, तएणं ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ कालिं अज्जंअभि-
क्खणं२ हीलेति णिंदंति खिसंति गरिहंति अवमण्णांति अभि-
क्खणं२ एयमट्टं निवारेंति, तएणं तीसे कालीए अज्जाए सम-
णीहिं णिग्गंथीहिं अभिक्खणं२ हीलिज्जमाणीए जाव वारिज्ज
माणिए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जितथा जया
णं अहं अगारवासमज्जे वसितथा तथा णं अहं सयवसा जप्पि-
भिइं च णं अहं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया
तप्पभिइं च णं अहं परवसा जाया, तं सेयं खलु मम कल्लं
पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते पाडिक्का उवस्सयं उवसंप-
ज्जित्ताणं विहरित्तएत्तिकट्टु एवं संपेहेइ संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते
पाडिएक्कं उवस्सयं गिण्हइ, तत्थ णं सा अणिवारिया अणोहट्ठिया
सच्छंदमई अभिक्खणं२ हत्थे धोवइ जाव आसयइ वा सयइ वा,
णीसेहेइ वा, तएणं सा काली अज्जा पासत्था पासत्थविहारी
ओसण्णा ओसण्णविहारी कुसीला कुसीलविहारी अहाळंदा अहा-
ळंदविहारी संसत्ता संसत्तविहारी बहूणि वासाणि सामन्नपरियागं
पाउणइ पाउणित्ता अद्धमसियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ झूसित्ता
तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ छेइत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय
अपाडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा चमरचंपाए रायहाणीए कालव-
डिंसए भवणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुल-
स्स असंखेज्जइ भागमेत्ताए ओगाहणाए कालीदेवित्तए उववण्णा,

तएणं सा कालीदेवी आहुणोववण्णा समाणी पंचविहाए पज्जत्तीए
जहा सूरियाभो जाव भासामण पज्जत्तीए० । तएणं सा काली-
देवी चउण्हं सामाणियसाहस्तीणं जाव अण्णैसिं च षड्ढूणं काल-
वेडंसगभवणवासीणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं
जाव विहरइ, एवं खलु गोयमा ! कालीए देवीए सा दिव्वा
देविद्धीइ लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया, कालीए णं भंते ! देवीए
केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा ! अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाई
ठिई पन्नत्ता, काली णं भंते ! देवी ताओ देवलोगाओ अणंतरं
उव्वट्ठित्ता कहिं गच्छिहिइ कहिं उव्वज्जिहिइ ?, गोयमा ! महा-
विदेहे वासे सिज्झिहिइ, एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं
पढमस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते तिथेमि ।
धम्मकहाणं पढमज्झयणं समत्तं ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘ तएणं सा ’ इत्यादि—ततः खलु सा काली आर्या अन्यदा कदा-
चित् ‘ सरीरवाउसिया ’ शरीरा वाकुशिका=शरीरसंस्करणशीला जाता चाप्या-
सीत् । अथ सा किं करोती ? त्याह—अभीक्षणं२ वारंवारं हस्तौ धावति, पादौ धावति,

‘ तएणं सा काली अज्जा अन्नया कयाइ,’ इत्यादि ।

टीकार्थः—(तएणं) इसके बाद (सा काली अज्जा) वह काली
आर्या (अन्नया कयाइ) किसी एक समय (सरीरवाउसिया) शरीर को
संस्कारित करने के स्वभाववाली बन गई इसलिये वह (अभीक्षणं२

‘ तएणं सा काडी अज्जा अन्नया कयाइ ’ इत्यादि—

टीकार्थः—(तएणं) त्थारपणी (सा काली अज्जा) ते काली आर्या
(अन्नया कयाइ) केधं अक वण्णते (सरीरवाउसिया) शरीरने संस्कारित
कशाना स्वभाववाणी अनी गधं, अट्टला माटे ते—

(अभीक्षणं२ हत्थे धोवइ, पाए धोवइ सीसं धोवइ, मुह धोवइ, थणंतराडं धोवइ,

शीर्षं धावति, मुखं धावति स्तनान्तराणि धावति, कक्षान्तराणि धावति, गुह्या-
न्तराणि धावति, यत्र यत्रापि च खलु ' ठाणं वा ' स्थानम्=उपवेशनस्थलम्
' सेज्जं वा ' शय्यां=शयनभूमिम्, ' णिसीहियं वा ' निपेधिकां=स्वाध्यायभूमिम्
' चेण्ड ' चेतयते=करोति ' तं ' तत्=स्थानादिकं ' पुव्वामेव ' पूर्वमेव=उपवेश-
नादि क्रियायाः पूर्व ' आसयइ वा ' आरते=उपविशति, ' सयइ वा ' शेते=
शयनं करोति, ' णिसीहइ वा ' निपेधयति=स्वाध्यायं करोति वा । ततः खलु सा
पुष्पचूलाऽऽर्या कालीमार्यामेवमवादीत्-नो खलु कल्पते हे देवाणुप्रिये । श्रमणीनां

हृत्पद्मे धोवइ पाए धोवइ, सीसं धोवइ मुहं धोवइ थणंतराइं धोवइ,
कक्खन्तराणि धोवइ, गुज्झन्तराइं धोवइ, जत्थर वि य णं ठाणं वा सेज्जं
वा णिसीहियं वा चेण्ड-तं पुव्वामेव अब्भुक्खेत्ता तओपच्छा आसयइ,
वा सयइ वा णिसीहइवा) धार २ हाथों को धोने लग गई, पैरों को धोने
लग गई, शिर को धोने लग गई, मुंह को धोने लग गई, स्तनान्तरों
को-स्तनों के मध्यभाग को-धोने लग गई, कक्षान्तरों को-कांखों के
मध्यभाग को-धोने लग गई, गुह्यभागों को-गुह्यांगों को धोने लग गई ।
जहां २ वह बैठने का स्थान, शयन, स्थान, स्वाध्याय करने का स्थान
नियत करती उसे पहिले से ही वह पानी से सिंचित कर देती-बाद में
वह वहां बैठती शयन करती, स्वाध्याय करती, (तएणं सा पुष्पचूला
अज्जा कालि अज्जं एवं वयासी) उस काली आर्या की इस स्थिति को
देखकर पुष्पचूला आर्या ने उसे इस प्रकार कहा-(नो खलु कल्पइ,

कक्खन्तराणी धोवइ, गुज्झन्तराइं धोवइ, जत्थर वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा णिसी-
हियं वा चेण्डं तं पुव्वामेव अब्भुक्खेत्ता तओपच्छा आसयइ, वा सयइ वा णिसीहइ वा)

वारंवार हाथोने धोवा लागी, पगोने धोवा लागी, माथाने धोवा लागी,
मुणने धोवा लागी, स्तनान्तरने-स्तनना वण्णेना स्थानने धोवा लागी, कक्षान्-
तरेने-गण्णोना मध्य भागने धोवा लागी, गुह्य भागोने-गुह्यांगोने धोवा
लागी. न्यां न्यां तेने जेसवानुं स्थान, शयनस्थान, स्वाध्याय करवानुं स्थान
नक्की करती तो तेने पडेवेथी व ते पाण्णीथी सिंचित करी देती, त्थारपणी ते
त्यां जेसवी, शयन करती, स्वाध्याय करती (तएणं सा पुष्पचूला अज्जा कालि
अज्जं एवं वयासी) ते काली आर्यानी आवी स्थिति जेधने पुष्पचूला आर्याणे
तेने आ प्रभाण्णे क्खु के-

निर्ग्रन्थीनां शरीरवाकुशिका जाताऽसि, यतस्त्वम्-अभीक्षणं २ हस्तौ धावसि यावत् ' आसयाहि वा ' आस्से=उपविशसि, ' सयाहि वा ' शेषे=शयनं करोषि ' णीसीहियाहि वा ' निषेधयसि=स्वाध्यायं करोषि, ' तं ' तत्=तस्मात् कारणात् त्वं हे देवानुप्रिये ! एतत् स्थानम्-' आलोएहि ' आलोचय यावत् प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यस्व । मूले-सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । ततः खलु सा काली आर्या

देवाणुप्पिया ! समणी णं णिग्गंथीणं सरीरवाउसियाणं होत्तए-तुमं च णं देवाणुप्पिया ! सरीरवाउसिया जाया-अभिकखणं २ हत्थे धोवसि, जाव आसयाहि वा सयाहि वा णिसीहियाहि वा तं तुमं देवाणुप्पियाए ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पायच्छित्तं पडिवज्जाहि) हे देवानुप्रिये ! निर्ग्रन्थ श्रमणियों को शरीरवकुश होना कल्पित नहीं हैं । परन्तु तुम तो हे देवानुप्रिये ! शरीरवकुश बन रही हो । बार २ हाथों को धोती हो यावत् जहाँ तुम्हें उठना बैठना होता है, शयन करना होता है, स्वाध्याय करना होता है उस स्थान को पहिले से ही सिंचित कर लेती हो तब जाकर वहाँ उठती बैठती हो, शयन करती हो, स्वाध्याय करती हो । इसलिये हे देवानुप्रिये ! तुम इस स्थान की आलोचना करो यावत् प्रायश्चित्त ग्रहण करो । (तएणं सा काली अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए एयमट्ठं नो आढाइ, जाव तुसिणीया संचिद्धइ, तएणं ताओ पुप्फचूलाओ

(नो खलु कप्पइ, देवाणुप्पिया ! समणीणं णिग्गंथीणं सरीरवाउसियाणं होत्तए-तुमं च णं देवाणुप्पिया ! सरीर वाउसिया जाया अभिकखणं २ हत्थे धोवसि, जाव आसयाहि वा सयाहि वा, णिसीहियाहि वा तं तुमं देवाणुप्पियाए ! एयस्स ठाणस्स आलोए हि जाव पायच्छित्तं पडिवज्जाहि)

हे देवानुप्रिये ! निर्ग्रन्थ श्रमणियोंने शरीरवकुश थवुं कल्पित नहीं, परंतु तमे तो हे देवानुप्रिये ! शरीरवकुश थछ रही छे। बार-बार हाथेने धुओ छे यावत् ज्यां तमारे उठवा भेसधानुं डाय छे, सूवानुं डाय छे, स्वाध्याय करवा डाय छे ते स्थानने पडेलां तमे पाणीथी सिंचित करी वे। छे, अने त्थारपथी तमे त्यां उठो-भेसो छे, सूवो छे अने स्वाध्याय करो छे। ओथी हे देवानुप्रिये ! तमे आ स्थाननी आलोचना करो यावत् प्रायश्चित्त ग्रहण करो।

(तएणं सा काली अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए एयमट्ठं नो आढाइ जाव तुसिणीया संचिद्धइ, तएणं ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ कालिं अज्जं अभि-

पुष्पचूलाया आर्याया एतमर्थं 'नो आढाइ' नो आद्रियते=न मन्यते यावत्
'तुसिगीया' तूष्णीका=समौना संतिष्ठते । ततः खलु ताः पुष्पचूला आर्याः
कालीमार्याम् 'अभिक्षणं' अभीक्षणं=वारं वारं 'हीलेति' हिलन्ति=जन्मकर्मो-
द्घाटनपूर्वकं निर्भर्त्सयन्ति 'णिंदन्ति' निन्दन्ति=कुत्सितशब्दपूर्वकं दोषोद्घाटनेन अना-
द्रियन्ते, 'खिसन्ति' खिसन्ति=हस्तमुखादिविकारपूर्वकमवमन्यन्ते, अपमानं कुर्वन्ती-
त्यर्थः 'गरिहन्ति' गर्हन्ते=गुर्वादिसमक्षं दोषाविष्करणपूर्वकं तिरस्कुर्वन्ति, 'अवमण्णं-
ति' अवमन्यन्ते=रुक्षवचनादिभिरपमानं कुर्वन्ति, तथा-अभीक्षणमभीक्षणम् वारंवारं,
एतमर्थं=शरीरसंस्करणरूपं निवारयन्ति । ततः खलु तस्याः काल्या आर्यायाः श्रम-

अज्जाओ फालि अज्जं अभिक्षणं २ हीलेति, णिंदन्ति, खिसन्ति, गरि-
हन्ति अवमण्णन्ति, अभिक्षणं २ एयमट्टं निवारंति, तएणं तीसे-कालीए
अज्जाए समणीहिं णिगंथीहिं अभिक्षणं २ हीलिज्जमाणीए जाव
वारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था) उस काली
आर्याने पुष्पचूला आर्याके इस कथन रूप अर्थको नहीं माना । केवल वह
यावत् चुपचाप ही रही । उत्तरमें जब उसने उनसे कुछ नहीं कहा-तब उस
पुष्पचूला आर्या 'हीलन्ति' काली आर्याकी वार २ जन्मकर्म उद्घाटन पूर्वक
भर्त्सना (तिरस्कार) करना प्रारंभ कर दिया । 'निंदन्ति' कुत्सित शब्दोच्चारण
पूर्वक दोषोद्घाटन करते हुए वे उसकी चार २ निंदा करने लगीं ।
'खिसन्ति' हस्त, मुख, आदि के विकार प्रदर्शन पूर्वक वे उसका
अपमान करने लग गईं । 'गरिहन्ति' गुरु आदिजनों के समक्ष दोषों
को प्रकट करके वे उसका तिरस्कार करने लगीं । तथा "अवमण्णन्ति"
रुक्षवचन आदि घोल २ कर उसका अपमान भी करने लग गईं ।

दृष्टं २ हीलेति णिंदन्ति, खिसन्ति, गरिहन्ति अवमण्णन्ति, अभिक्षणं २ एय-
मट्टं निवारंति, तएणं तीसे कालीए अज्जाए समणीहिं णिगंथीहिं अभिक्षणं २
हीलिज्जमाणीए जाव वारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था)

ते काली आर्याये पुष्पचूला आर्याना आ कथन रूप अर्थको स्वीकार
करीं नहिं कृत ते भूगी यथने न जेसी रही. नवाअमां न्यारे तेणु तेमने
कंठ न-कधु नहिं त्यारे पुष्पचूला आर्याये काली आर्यानी वारंवार जन्म,
कर्म, उद्घाटनपूर्वक भर्त्सना करवा भांडी. कुत्सित शब्दोच्चारणथी दोषोद्घाटन
करीं ते तेनी वारंवार निंदा करवा लागी. डाय, मुथ वगेरेने विकृत करीने
ते तेमनुं अपमान करवा लागी. शुद्ध वगेरेनी सामे दोषाने प्रकट करीने ते
तेमने तिरस्कार करवा लागी. तेमन इक्ष वयने वगेरे बोलीने तेनुं अप-
मान पणु करवा लागी अने साथे साथे ते आर्या तेने वारंवार शरीर-संस्कार
करवाती भनाई पणु करती रही. आ प्रमाणु निर्ध थ श्रमणुओ वडे वारंवार

णीभिः निर्ग्रन्थीभिः अभीक्षणमभीक्षणं हिल्यमानायाः यावत्-वार्यमाणाया अय-
मेतद्रूपः ' अज्जत्थिए ' आध्यात्मिकः=आत्मगतविचारः यावत्-मनोगतः सङ्कल्पः
समुदपघत यदा खलु अहम् अमारवासमध्ये ' वसित्था ' उषिता=न्वचसं तदा खलु
अहं ' सयवसा ' स्वयंवशा=स्वतन्त्रा आसम् , यत्प्रभृति च खलु अहं मुण्डाभूत्वा
अगात् अनगारितां प्रत्रजिताऽभवं तत्प्रभृति च खलु अहं परवशा जाताऽस्मि
' तं ' तत्=तस्मात् श्रेयः खलु मम कल्ये प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां यावत् सूर्ये ज्व-
लति=सूर्योदये सति ' पाडिकं ' प्रत्येकम्=एकमात्रं भिन्नमित्यर्थः, उपाश्रयमुपसं-
पद्य खलु विहरुम् , ' तिकद्दु ' इति कृत्वा=इति मनसि निधाय एवं सम्पेक्षते,

साथ २ में वे आर्या उसे बार २ शरीर संस्कार करने से मना भी
करती रही। इस प्रकार उस काली आर्या के निर्ग्रन्थ श्रमणियों द्वारा
बार २ भर्त्सित आदि होने पर तथा शरीर संस्कार करने से निषिद्ध होने
पर, उसे यह इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न
हुआ। (जया णं अहं अगारवासमज्झे वसित्था तथा णं अहं सयवसा,
जप्पिभिइं च णं अहं मुंडा भवित्ता अगाराओ, अणगारियं पव्वइया
तप्पभिइं च णं अहं परवसा जाया, तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए
रयणीए जाव जलंते पाडिककाउवस्सयं उवसंपज्जित्ता ण विहरित्तेए
त्तिकद्दु एवं संपेहेइ संपेहित्ता कल्लं जाव जलंते पाडिएक्कं उवस्सयं
गिण्हइ) जब मैं अपने घर के बीच में रहती थी-उस समय मैं स्वतंत्र
थी। परन्तु जिस दिन से मुंडित होकर अगार अवस्था से इस अनगार
अवस्था में आई हूँ उस दिन से मैं परवश-पराधीन बन चुकी हूँ। अतः
मुझे वही श्रेयस्कर है कि मैं दूसरे दिन प्रातः काल होते ही जब सूर्यो-

भर्त्सित वगेरे थवाथी तेमज् शरीर संस्कारनी मनाथ डोवा अदल ते डाली
आर्याने आ नतने आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उद्बलये। ३—

(जयाणं अहं अगारवासमज्झे वसित्था तथाणं अहं सयवसा जप्पभिइं-
च णं अहं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया तप्पभिइं च णं अहं
परवसा जाया तं सेयं खलु मम कल्लं पउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते पाडिका
उवस्सयं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तेए त्तिकद्दु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जाव
जलंते पाडिएक्कं उवस्सयं गिण्हइ)

न्यारे हुं घरमा रहेती डती त्यारे हुं स्वतंत्र डती, परंतु न्यारथी मे
मुंडित थधने अगार अवस्थाने त्यलने अनगार अवस्था स्वीकारी छे त्यारथी
हुं परवश-पराधीन थध गध छुं. अथी मारा भाटे डवे अे न श्रेयस्कर
न्याय छे डे हुं णीने दिवसे सवार थतां न न्यारे सूर्य उदय पामशे त्यारे

सम्प्रेक्ष्य कल्पे यावत् सूर्ये ज्वलति 'पाडिएकं' प्रत्येकम्-उपाश्रयं गृह्णाति । तत्र खलु सा 'अग्निवारिया' अनिवारिता-निवारकाभावात्, 'अणोहृद्विया' अनवधट्टिका यदृच्छा प्रवृत्तिप्रतिरोधकाभावात्, अतएव 'सच्छंदमई' स्वच्छन्दमतिः अभीक्ष्णमभीक्ष्णं हस्तौ धावति यावत्-आस्ते वा शेते वा निषेधयति वा । ततः खलु सा काली आर्या 'पासत्या' पार्श्वस्था-गाढकारणंविना नित्यपिण्डभोक्त्री, अतएव पार्श्वस्थविहारिणि, 'ओसणा' अवसन्ना समाचारीपालनेऽवसी-

दय हो जावेगा-दूसरे उपाश्रय में चली जाऊँ। इस प्रकार का उसने अपने मन में विचार किया। विचार करके फिर वह दूसरे दिन प्रातः काल होते ही सूर्योदय होने पर दूसरे उपाश्रय में चली गई। (तत्थणं सा अग्निवारिया अणोहृद्विया सच्छंदमई अभिक्खणं २ हत्थे धोवेइ, जाव आसयइ वा सयइ वा णीसेहेइ वा-तएणं सा काली अज्जा पासत्या पासत्यविहारी ओसणा ओसणविहारी, कुसीला कुसीलविहारी, अहाण्डा अहाण्डविहारी, संसत्ता संसत्तविहारी बहूणि वासाणि सा माणणपरियागं पाउणइ) वहाँ वह विना रोक टोक, यदृच्छा प्रवृत्ति करने लग गई। इच्छानुसार बार २ हाथ पैर आदि धोने लग गई। उठने बैठने एवं सोने के स्थान को तथा स्वाध्याय भूमि को पहिले से ही पानी से सिञ्चित कर वहाँ उठने बैठने एवं स्वाध्याय करने लगी। इस तरह की स्वच्छन्द प्रवृत्ति से वह काली आर्या पासत्या-गाढकारण के विना नित्य पिण्ड भोक्त्री-बन गई, पार्श्वस्थ विहारिणी हो गई। समाचारी

धीन उपाश्रयमा जती रहु'. आ प्रमाणे तेणे मनमां विचार करी. विचार करीने ते णीने दिवसे सवार यतां ज सूर्योदय तथा णाह णीन उपाश्रयमां जती रहु
(तत्थणं सा अग्निवारिया अणोहृद्विया सच्छंदमई अभिक्खणं २ हत्थे धोवेइ, जाव आसयइ वा सयइ वा णीसेहेइ वा तएणं सा काली अज्जा पासत्या पासत्यविहारी ओसणा ओसणविहारी कुसीला कुसीलविहारी अहा ण्डा अहाण्डविहारी संसत्ता संसत्तविहारी बहूणि वासाणि सामणणपरियागं पाउणइ)

त्यां ते शक-टोक विना स्वच्छंद यधने प्रवृत्ति करवा लागी. धरुआ भुञ्ज वारवार हाथ-पग धोवा लागी, उठवा-बैसवा अने सूवाना स्थानने तेमज स्वाध्याय भूमिने पडेवेथी ज पाथी वडे सिञ्चित करीने त्यां उठवा बैसवा तेमज स्वाध्याय करवा लागी. आ जतनी स्वच्छन्द प्रवृत्तिथी ते शकती आर्या पासत्या-गाढ कारण वगर नित्य पिण्ड भोक्त्री-भनी गध, पार्श्वस्थ

दन्ती, अतएव अवसन्नविहारिणी, ' कुशीला ' कुशीला=उत्तरगुणसेवया संज्वलन-
कषायोदये प्रवृत्ता, अतएव कुशीलविहारिणी, ' अहाच्छन्दा ' यथाच्छन्दा=
स्वाभिप्रायपूर्वकस्वमति कल्पितमार्गे प्रवृत्ता, अतएव यथा छन्दविहारिणी, ' संसक्ता '
संसक्ता गृहस्थादिप्रेमबन्धनेन शिथिलसामाचारीप्रवृत्ता सती बहूनि वर्षाणि श्रामण्य-
पर्यायं पालयति, पालयित्वा अर्द्धमासिक्या संलेखनयाऽऽत्मानं ' झूसेइ ' जोष-
यति=सेवते, झूसित्ता=जोषयित्वा त्रिशद् भक्तानि ' अणसणाए ' अनशनया ' छेएइ '
छिनत्ति, छित्त्वा तस्य स्थानस्य अनालोचिताऽ प्रतिक्रान्ता कालमासे
कालं कृत्वा चमरचञ्चयां राजधान्यां कालावतंसके भवने उपपातसभायां
देवशयनीये देवदूष्यान्तरिते = देवदूष्यवस्त्राच्छादिते अङ्गुलस्याऽसंख्येयभाग-
मात्रायामवगाहनायां कालीदेवीतया उपपन्ना । ततः खलु सा कालीदेवी अधुनो-

पालन करने में शिथिलता दिखलाने लगी-अवसन्न विहारिणी हो गई ।
कुशीला बन गई-संज्वलन कषाय के उदय होने से उत्तरगुणों की
विराधना करने लगी-कुशील विहारिणी हो गई और अपनी इच्छानु-
सार मार्ग की कल्पना कर उसमें प्रवृत्त रहने लग गई-इसलिये वह
यथाच्छन्द विहारिणी भी बन गई । गृहस्थ आदि जनों के अधिक परि-
चयजन्य प्रेमबंधन से अपने आचार पालन में शिथिल बनी हुई उसने
इस तरह होकर अनेक वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया-और
(पाउणित्ता) पालनकर (अर्द्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ,
झूसित्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ, छेइत्ता, तस्स ठाणस्स अणा-
लोइय अपडिक्कंत्ता कालमासे कालं किच्चा चमरचंचाए रायहाणीए
कालवडिंएस भवणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंनरिए अंगुल-

विहारिणी थर्ध गध सभायारी पालन करवामां शिथिलतावाणी भताववा लागी-
अवसन्न विहारिणी थर्ध गध कुशीला थर्ध गध, संज्वलन कषायने उदय
डोवाथी उत्तर गुणोनी विराधना करवा लागी, कुशील विहारिणी थर्ध गध
अने पोतानी धरुअ सुअभा मार्गोनी कल्पना करीने तेमां प्रवृत्त थवा लागी
अथी ते यथाच्छन्द विहारिणी पणु भनी गध. गृहस्थ वगेरे डोडोना वधारे
पडता परिचयजन्य प्रेमबंधनथी पोताना आचार पालनमा शिथिल थर्ध गध.
तेणु आ प्रमाणे धणुं वर्षो सुधी श्रामण्य-पर्यायनुं पालन करुं अने
(पाउणित्ता) पालन करीने

(अर्द्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसित्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए
छेएइ, छेइत्ता, तस्स ठाणस्स अणालोइयअपडिक्कंत्ता कालमासे काल किच्चा चमर-

पपन्ना=तत्कालसमुत्पन्नानती पञ्चविधयापर्याप्त्या यथासूर्याभः=सूर्याभदेववत् ,
 'जाव भासामणपञ्जतीए' भासामन.पर्याप्त्या-यावत्-अद्वारपर्याप्त्या १,
 शरीरपर्याप्त्या २, इन्द्रियपर्याप्त्या ३, आनप्राणपर्याप्त्या ४, भासामनः पर्याप्त्या
 ५, पर्याप्तिभावं गच्छति । पर्याप्तिवन्धकाले देवानामाहारशरीरादिपर्याप्तिसमाप्ति-
 कालान्तरापेक्षया भासामनः पर्याप्त्योः स्तोककालान्तरतया तयोरेकत्वेन विवक्ष-
 णान् पर्याप्तीनां पञ्चविधत्वम् । ततः खलु सा काली देवी चतसृणां सामानिक-
 माह्वीणां यावत्-अन्येषां च बहूनां कालावतंसकभवनवासिनामसुरकुमारणां

स्म अमंखेज्जड, भागमेत्ताए ओगाहणाए कालीदेवीत्तए उववण्णा)
 अर्द्धमास की संलेखना से उसने अपनी आत्मा को युक्त किया । इस
 प्रकार उसने अनशनों द्वारा ३० भक्तोंका छेदन करने पर भी उस स्थानकी
 आलोचना नहीं की और न वह उन अनिचारों से पीछे ही हटी-अतः
 अनालोचित अप्रतिक्रान्त बनकर वह जब उस काल अवसर-काल कर
 चमरचंपा नाम की राजधानी में, कालावतंसक भवनमें, उपातातसभामें
 देवदूतवचनसे आच्छादितदेवशयनीय 'शय्या' ऊपर अंगुलके असंख्यातवे
 मात्र की अवगाहना से काली देवी कैःरूप में उत्पन्न हो गई (तएणं सा
 कालीदेवी अहुणोववण्णा समाणी पंचविहाए पञ्जतीए जहा सूरियाभो
 जाव भासामणपञ्जतीए ०! तएणं सा कालीदेवी चउण्हं समाणि य
 साहम्मणी णं अण्णेसि च बहूणं कालवडेंसकभवनवासीणं असुरकुमाराणं

चंचाए रायहाणीए कालवडिंसए भवणे उववायसभाए देवसयणिज्जंघी देवदूसं-
 तगि अंगुलम अमंखेज्जड, भागमेत्ताए ओगाहणाए कालीदेवीत्तए उववण्णा)
 तेणे अर्द्धमासनी संलेखनाथी पोताना आत्माने युक्त कर्यो, आ प्रभाण्णे
 तेणे अनशने वड ३० भक्तोनुं छेदन करीने पणु ते स्थाननी आलोचना करी
 नडि अने ते अनिचारेना आचरणथी पणु अट्टी नडि, अथी अन बोधित
 अप्रतिक्रान्त थडने ते ल्यारे डाण अवसरे डाण करीने अमरचंया नामनी
 राजधानीमा उपाततसभ लवनमां, उपाततसभामां देवदूथ्य वअथी आच्छादित
 देवशनीय उपर आंगणीओतना असंख्यातमा मात्रनी अवगाहनाथी काली देवीना
 रूपमा उत्पन्न थडं गर्ह.

(तएण सा काली देवी अहुणोववण्णा समाणी पंचविहाए पञ्जतीए
 जहा सूरियाभो जाव भासामणपञ्जतीए ० । तएणं सा काली देवी चउण्हं समा-
 णिक.हम्मणीणं जाव अण्णेसि च बहूणं कालवडेंसकभवनवासी णं असुरकुमा-
 राणं देवाण च देवीणय आदेवचं जाव विहरह)

देवानां च देवीनां च ' आहेवच्च ' आधिपत्यं=स्वामित्वं कुर्वन्तीपालयन्ती यावद् विहरति ।

एवम्=उक्तप्रकारेण खलु हे गौतम ! काल्या देव्या सा दिव्या देवर्द्धिः ३, लब्धा, प्राप्ता, अभिसमन्वागता ।

गौतमः पृच्छति-काल्या खलु हे भदन्त ! देव्यास्तत्र ' केवइयं ' कियन्तं

देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाच विहरइ) इस प्रकार वह काली देवी अभी अभी उत्पन्न होकर पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त बनी है । पर्याप्तियां ६ होती हैं परन्तु यहां पर जो वे पांच की संख्या में निर्दिष्ट हुई हैं-उसका कारण यह है कि पर्याप्त के बंधकाल में देवों के आहार, शरीर आदि पर्याप्तियों के समाप्तिकाल की अपेक्षा भाषा और मनः पर्याप्त का साथ साथ बंध होता है, इसलिये इन दोनों को एक रूप से यहां विवक्षित किया गया है । वे पर्याप्तियां इस प्रकार हैं- (१) आहारपर्याप्ति (२) शरीर पर्याप्ति (३) इन्द्रियपर्याप्ति (४) श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति (५) भाषा एवं मनः पर्याप्ति । वह काली देवी चार हजार सामानिक देवोंका यावत् और दूसरे अनेक कालावतंसक भवनवासी असुरकुमार देवों का देवियों का आधिपत्य कर रही है । (एवं खलु गोयमा ! कालीए देवीए सा दिव्वा देवडूी ३ लद्धापत्ता अभिसमण्णा गया,

आ प्रभाणु ते काली देवी इमणुं ७ उत्पन्न थंने पांच प्रकारणी पर्याप्तियोथी पर्याप्त अनी छे. पर्याप्तियो छ डोय छे. पणु अडीं ७ पांचनी संख्यामां ७ अताववामां आवी छे. तेनुं कारणु आ प्रभाणु छे के पर्याप्तिना अंधकालमां देवोना आहार, शरीर वगेरे पर्याप्तियोना समाप्तिकालनी अपेक्षा भाषा अने मनः पर्याप्तितुं अेकी साथे अंध डोय छे अेथी आ अंनेने अडीं अेक रूपमा ७ अताववामां आवी छे. ते पर्याप्तियो आ प्रभाणु छे— (१) आहार पर्याप्ति, (२) शरीर पर्याप्ति, (३) इन्द्रिय पर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, (५) भाषा अने मनः पर्याप्ति ते काली देवी आर डुणर सामानिक देवो उपर यावत् थीण पणु धणु कालावतंसक भवनवासी असुर कुमार देवो, देवीओ उपर शासन करी रही छे.

(एवं खलु गोयमा ! कालीए देवीए सा दिव्वा देविडूी ३ लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया, कालीए णं भंते ! देवीए केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा अइदा इज्जाइं पळिओवमाईं ठिई पण्णत्ता)

कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? भगवान्माह-हे गौतम ! ' अड्ढाज्जाइं ' अर्द्धतृतीये=साद्धे
द्वे पल्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता ।

गौतमः पृच्छति-काली हे भदन्त ! देवी तस्मादेवञ्चोक्ताद् अतन्तरम्=आयु-
र्भवस्थितिभयानन्तरं ' उव्वट्टिता ' उद्भृत्य=निस्सृत्य कुत्र गमिष्यति कुत्र-
उत्पत्स्यते ? ।

भगवान्माह-हे गौतम ! सा काली देवी देवलोकान्च्युत्वा महाविदेहे वर्षे
उत्पद्य सेत्स्यति, ।

कालीए णं भंते ! देवीए केवह्यं कालं ठिई पणत्ता ? गोयमा अड्ढाज्-
ज्जाइं पलिभोवमाई ठिईपणत्ता) इस तरह से हे गौतम ! काली देवी
ने वह दिव्य देवर्द्धि ३, अर्जित की है स्वाधीन की है और उसे अपने
उपभोग के योग्य बनाया है । अब गौतम पुनः प्रभु से पूछते हैं-कि हे
भदत ! कालीदेवी की कितनी स्थिति है ? उत्तर में प्रभु ने उनसे कहा-हे
गौतम ! कालीदेवी की स्थिति अर्द्ध पल्य की (प्रज्ञप्त हुई) है (काली
णं भंते ! देवी ताओ देवलोगाओ अणंतरं उव्वट्टिता कहिं गच्छहिइ, कहिं
उव्वज्जिहिइ, ? गोयमा ! महाविदेहेवासे सिज्जिहिइ एवं खलु जंजू !
समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वगस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते
त्तिवेमि, धम्मकहाणं पढमज्झयणं समत्तं) हे भदन्त ! कालीदेवी उस
देवलोक से आयु एवं भवस्थिति के क्षय के अनन्तर निकलकर कहां
जावेगी, कहां उत्पन्न होगी ? इस गौतम के प्रश्न का उत्तर प्रभु ने उन्हें
इस प्रकार दिया-गौतम ! वह काली देवी देवलोक से चव कर महा-

आ प्रभाए उे गौतम ! दावी देवीए ते दिव्य देवर्द्धि उ प्राप्त करी
छे स्वाधीन बनावी छे अने तेने पोताने माटे उपलोग योग्य बनावी छे.
इये गौतम इरी प्रभुने पूछे छे के हे भदन्त ! दावी देवीनी स्थिति केटली
ज्याअभां प्रभुए तेभने कहु के हे गौतम ! दावी देवीनी स्थिति अदी पल्यनी
(प्रज्ञप्त थई) छे.

(कालीणं भंते ! देवी ताओ देवलोगाओ अणंतरं उव्वट्टिता कहिं गच्छि-
हिइ, कहिं उव्वज्जिहिइ ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्जिहिइ, एवं खलु
जंजू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वगस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पणत्ते
त्ति वेमि, धम्मकहाणं पढमज्झयणं समत्तं)

हे भदन्त ! दावी देवी ते देवलोकथी आयु अने भवस्थितिने पूरी
करीने कथां नथे ? कथां उत्पन्न थथे ? आ प्रभाए गौतमना प्रश्नने सांलणीने
प्रभुए उत्तरमा तेने कहु के हे गौतम ! ते दावी देवी देवलोकथी नथीने

श्रीसुधर्मास्वामी प्राह—एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन यावत्—मोक्षं सम्प्राप्तेन प्रथमस्य वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्य अयमर्थः=पूर्वोक्तो भावः प्रज्ञप्तः । त्तिवेमि ' इति ब्रवीमि, व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू०४ ॥

॥ धर्मकथानां प्रथमवर्गस्य प्रथमाध्ययनं समाप्तम् ॥

विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगी और वहीं से सिद्ध होगी। अब सुधर्मा स्वामी श्री जंबू ! स्वामी से कहते हैं कि हे जंबू ! मुक्ति को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह पूर्वोक्त अर्थ प्रज्ञप्त किया है। ऐसा मैंने उन्हीं के मुख से सुनकर यह तुमसे कहा है ॥ सूत्र ४ ॥

—:प्रथम वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त:-

महाविदेह क्षेत्रमां उत्पन्न थशे अने त्यांथी ज सिद्ध थशे. डवे सुधर्मा स्वामी श्री जम्बू ! स्वामीने कहे छे के डे जम्बू ! मुक्तिप्राप्त श्रमणु भगवान् महा-वीरे प्रथम वर्गना प्रथम अध्ययनने आ पूर्वोक्त इये अर्थ प्रज्ञप्त कये छे. आवुं डुं तेभना श्री सुधर्मा सांलणीने तभने कही गये छुं. ॥ सूत्र ४ ॥

“ प्रथम वर्गानुं प्रथम अध्ययन समाप्त. ”

अथ द्वितीयमध्ययने प्रारभ्यते—

मूलम्—जड् णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं पढमस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अय-
सट्ठे पणत्ते विइयस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं भग-
वया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के० अट्ठे पणत्ते ?, एवं खलु
जंवू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए
चेइए सामी समोसठे परिसा निग्गया जाव पज्जुवासइ, तेणं
कालेणं तेणं समएणं राई देवी चसरचंचाए रायहाणीए एवं
जहा काली तहेव आगया णट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया
भंतेत्ति भगवं गोयमा ! पुब्बभवपुच्छा, एवं खलु गोयमा !
तेणं कालेणं तेणं समएणं आमलकप्पा णयरी अंबसालवणे
चेइए जियसत्तू राया राई गाहावई राईसिरी भारिया राई
दारिया पासस्स समोसरणं राई दारिया जहेव काली तहेव
निक्खंता तहेव सरीरवाउसिया तं चेव सव्वं जाव अंतं
काहिति । एवं खलु जंवू ! विइयज्झयणस्स निक्खेवओ ॥

॥ पढमवग्गस्स वीयज्झयणं सुसत्तं ॥ सू० ५ ॥

टीका—' जड्णं भंते ' इत्यादि । जम्बूस्वामीपृच्छति—यदि खलु हे भदन्त ।

—द्वितीय अध्ययन प्रारंभः—

—जड्णं भंते ! समणेणं इत्यादि ।

टीकार्थः—जंबू स्वामी श्री सुधर्मास्वामी से पूछते हैं कि (भंते) हे भदन्त ! (जड्णं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं

णीवुं अध्ययन प्रारंभः—

जड्णं भंते ! समणेणं इत्यादि—

टीकार्थः—जंबू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामीने पूछे छे के (भंते) हे भदन्त !
(जड्णं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं पढमस्स

श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् सिद्धिगतिनाममधैयं स्थानं सम्प्राप्तेन धर्मकथानां प्रथमस्य वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्यायमर्थः=पूर्वोक्तो भावः प्रज्ञप्तः, द्वितीयस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् मोक्षं सम्प्राप्तेन कोऽर्थः=को भावः प्रज्ञप्तः ?

सुधर्मास्वामीप्राह—एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरम् । गुणशिलकं चैत्यम् । स्वामी भगवान् महावीरः समवसृतः । परिप-

पढमस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते विइयस्स ण भंते ! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए सामी समोसढे) यदि श्रमण भगवान् महावीर ने जो कि मुक्ति स्थान को प्राप्त हो चुके हैं धर्मकथाके प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह पूर्वोक्त रूप से अर्थ प्ररूपित किया है—तो हे भदन्त ! द्वितीय अध्ययन का उन्हीं श्रमण भगवान् महावीर ने जो कि मुक्ति को प्राप्त कर चुके हैं क्या भाव अर्थ प्रतिपादित किया है ? इस प्रकार जंबू स्वामी के पूछने पर सुधर्मा स्वामी उनसे कहते हैं कि हे जंबू ! सुनो—तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था । उसमें गुणशिलक नाम का उद्यान था । उसमें महावीर स्वामी समवसरे ।—(परिसा निग्गया—जाव पज्जुवासइ,

वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते विइयस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के० अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ? तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए सामी समोसढे)

जे श्रमणु भगवान् महावीरे—के जेमणु मुक्तिस्थान भेणवी लीधुं छे. धर्मकथाना प्रथम वर्गना प्रथम अध्ययननो आ पूर्वोक्त रूपमां अर्थ प्ररूपित कर्यो छे तो हे भदन्त ! ते जे श्रमणु भगवान् महावीरे—के जेमणु मुक्तिस्थान भेणवी लीधुं छे. थीअ अध्ययननो शे भाव—अर्थ प्रतिपादित कर्यो छे. आ प्रभाणु जंभू स्वामीना प्रश्नने सांलणीने श्री सुधर्मा स्वामी तेभने कडे छे के हे जंभू ! सांलणो, तभारा प्रश्ननो उत्तर आ प्रभाणु छे के ते कण्णे अने ते समये राजगृह नामे नगर इतुं तेमां गुणशिलक नामे उद्यान इतुं तेमां महावीर स्वामी पधार्या.

(परिसा निग्गया—जाव पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं राई देवी

त्रिर्गता यावत् भगवन्तं पर्युपास्ते । तस्मिन् काले तस्मिन् समये ' राई ' रात्रिः-
रात्रिनाम्नी देवी चमरचञ्चायां राजधान्याम्, एवं यथा काली तथैव-आगता,
नाट्यविधिमुपदर्श्य प्रतिगता । ' भंते त्ति ' हे भदन्त ! इति सम्बोध्य भगवान्
गौतमः ' पुव्वभवपुच्छा ' पूर्वभवपृच्छा रात्रि देव्याः पूर्वभवं पृच्छति । भगवान्
प्राह-एवं खलु हे गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये आमलकल्पा नगरी,
आम्रशालवनं चैत्यम्, जितशत्रू राजा, रात्रिर्गथापतिः, रात्रिश्रीभार्या, तयोः

तेणं कालेणं तेणं समएणं राई देवी चमरचंचाए रायहाणीए एवं जहा
काली-तहेव आ गया नट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया) प्रभु का आगमन
सुनकर नगर निवासिनी समस्त जनता उन प्रभु के दर्शन करने और
उनसे धर्मोपदेश सुनने के लिये उस गुणशिलक उद्यान में आई ।
प्रभु ने सब को धर्म का उपदेश दिया । सबने प्रभु की पर्युपासना
की । उस काल में और उस समय में रात्रिनाम की देवी चमर-
चंचाराजधानी में रहती थी-जैसे वहां काली देवी रहती थी । सो
वह भी प्रभु का आगमन सुनकर वहां आई । वहां आकर उसने नाट्य
विधि दिखलाई-और दिखलाकर फिर वह वहां से वापिस अपने स्थान
पर चली गई । (भंते त्ति भगवं गोयमा ! पुव्वभवपुच्छा-एवं खलु
गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं आमलकप्पा णयरी अंवसाल-
वणे चेइए-जियसत्तू राया-राई गाहावई, रायसिरी भारिया, राई

चमरचंचाए रायहाणीए एवं जहा काली-तहेव आगया नट्टविहिं उवदंसेत्ता
पडिगया)

प्रभुनुं आगमन सांभणीने नगरना षधा नागरिकेणो ते प्रभुनां दर्शन
करवा भाटे तेमज तेमनी पासेथी धर्मोपदेश सांभणवा भाटे ते गुणुशिलक
उद्यानभां आव्या. प्रभुओ षधाने धर्मने उषदेश आप्थे. षधाओ प्रभुनी
पर्युपासना करी ते काणे अने ते समये रात्रि नामे देवी चमरचंचा राज-
धानीमा दादी देवीनी नेम रडेती छती ते प्रभुनु आगमन सांभणीने त्यां
आवी. त्यां आवीने तेहे नाट्यविधि षतावी अने षतावीने ते त्यांथी
पाछी ळती रही

(भंते त्ति भगवं गोयमा ! पुव्वभवपृच्छा-एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं
तेणं समएणं आमलकप्पा णयरी अंवसालवणे चेइए-जियसत्तूः राया-राई
गाहावई, रायसिरी भारिया, राई दारिया, पासस्स समोसरणं-राई दारिया

रात्रिर्दारिकाऽऽसीत् । पार्श्वस्य = पार्श्वप्रभोः समवसरणम् । रात्रिर्दारिका यथैव काली तथैव निष्क्रान्ता=तथैव शरीरवाकुशिका, तदेव सर्वं यावत्-सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति ।

दारिया पासस्स समोसरणं राई दारिया जहेव काली- तहैव निक्खंता, तहेवसरीर वाउसिया तं चेव सव्वं जाव अंतं काहिइ एवं खलु जंबू । विइयज्झयणस्स निक्खेवओ) उसके चले जाने के बाद श्रमण भगवान् महावीर से गौतम ने रात्रिदेवी का पूर्वभव पूछा-प्रभु ने उनसे इस प्रकार कहा-हे गौतम ! उसकाल और उस समयमें आमलकल्पा नामकी नगरी थी । उसमें आम्रशालवन नामका उद्यान था । नगरीके राजा का नाम जितशत्रु था । वहां रात्रि नामका एक गाथापति रहता था । उसकी भार्या का नाम रात्रिश्री था । इन दोनों के रात्रि नाम की एक पुत्री थी जिस प्रकार काली प्रभु का उपदेश सुनकर प्रतिबोध को प्राप्त हो गई थी ।-उसी प्रकार पार्श्वनाथ के वहां उद्यान में आने पर भी उनसे धर्मोपदेश सुनकर प्रतिबोध को प्राप्त हो गई । अतः वह माता पिता से आज्ञा लेकर काली की तरह बड़े टाठ बाट के साथ शिविका में बैठकर प्रभु के समीप माता पिता ले गये । वहां वह दीक्षित हो गई । धीरे २ वह शरीर वाकुशिका बन गई । जिस प्रकार

जहेव काली-तहेव निक्खंता, तहेव सरीरवाउसिया तं चेव सव्वं जाव अंतं काहिइ एवं खलु जंबू ! विइयज्झयणस्स निक्खेवओ)

तेना गया आइ श्रमणु भगवान् महावीरने गौतमे रात्रि देवीना पूर्व-लवणी विगत पूछी. प्रभुणे तेमने आ प्रभाणे क्खुं के डे गौतम ! ते कणे अने ते समये आमलकल्पा नामे नगरी इती तेमां आम्रशालवन नामे उद्यान इतुं. नगरीना राजतुं नाम जितशत्रु इतुं. त्यां रात्रि नामे ओक गाथापति रहतेो इतेो तेनी पत्नीतुं नाम रात्रिश्री इतुं. तेओ अनेने रात्रि नामे ओक पुत्री इती. जेम काली प्रभुनेो उपदेश श्रवणु करीने प्रतिबोधने प्राप्त थछ तेमण त्यां उद्यानमां पधारैला पार्श्वनाथनी पासैथी धर्मोपदेश सांलणीने ते पणु प्रतिबोधित थछ गछ. ओथी कालीनी जेमण तेने पणु पोताना मातापितानी पासैथी आज्ञा भेजवी अने त्थारपछी तेना मातापिताणे तेने पादभीमां भेसाडीने प्रभुनी पासै लछ गया, त्यां ते दीक्षित थछ गछ धीमे धीमे ते पणु शरीर वाकुशिका अनी गछ. जेम काली दारिका पणु आर्या थछने शरीर वाकुशिका अनी गछ इती त्थारपछी जेवी स्थिति काली आर्यानी

‘ एवं खलु जम्बू ! ’ इत्यादि द्वितीयाध्ययनस्य निक्षेपकः=उपसंहारः= समाप्तिवाक्यप्रबन्धोऽत्र बोध्यः ॥ सू० ५ ॥

इति प्रथमवर्गस्य द्वितीयाध्ययनं समाप्तम् ॥-१-२ ॥

काली दारिका आर्या होकर शरीर वाकुशिका बन गई थी । इसके बाद जैसी स्थिति काली आर्या की हुई-वही सब स्थिति इस रात्रि दारिका की भी हुई-इस प्रकार सब संबन्ध यहां पर इसके विषय में लगा लेना चाहिये और वह सबन्ध “ महाविदेह में उत्पन्न होकर यह समस्त दुःखों का अन्त करेगी ” यहां तक जानना चाहिये । इस प्रकार हे जंबू ! यह प्रथमवर्ग के द्वितीय अध्ययन का उपसंहार है ॥ सू० ५ ॥

प्रथमवर्ग का द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

यद्यं तेवीज् स्थिति ते रात्रिदारिकानी पशु यद्यं अर्धी आ प्रभाणु कालिदारिकानो षधो संबंध आना विषे समञ्ज लेवे। नेधञ्जे अने ते संबंध “ महाविदेहमां उत्पन्न यधने ते षधा दुःखोनो अंत करशे ” अर्धी सुधी समञ्जवे। नेधञ्जे. आ प्रभाणु छे जंभू ! प्रथम वर्गना भीज् अध्ययननो आ उपसंहार छे. सू. ५

“ प्रथम वर्गनुं भीज् अध्ययन समाप्त ”

अथ तृतीयमध्ययनम्

मूलम्—जइ णं भंते ! तइयज्झयणस्स उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए एवं जहेव राई तहेव रयणी वि, णवरं आमलकप्पा नयरी रयणी गाहावई रयणी-सिरी भारिया रयणी दारिया सेसं तहेव जाव अंतं काहिइ ३ । एवं विज्जू वि आमलकप्पा नयरी विज्जुगाहावई विज्जु-सिरीभारिया विज्जुदारिया सेसं तहेव । ४ एवं मेहा वि आम-लकप्पाए नयरीए मेहे गाहावई मेहसिरी भारिया मेहा दारिया सेसं तहेव ५ । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्म-कहाणं पढमस्स वग्गस्स अयमहे पणत्ते ॥ सू० ६ ॥

टीका—‘ जइणं भंते ’ इत्यादि । यदि खलु भदन्त ! इत्यादि तृतीयाध्ययनस्य उत्क्षेपकः=जम्बूपक्षादिरूपः पारम्भवाक्यप्रबन्धोऽत्रवाच्यः । सुधर्मास्वामी कथ-

॥ तृतीय अध्ययन प्रारंभ ॥

(जइणं भंते ! तइयज्झयणस्स उक्खेवओ) इत्यादि ॥

टीकार्थः—(जइणं भंते ! तइयज्झयणस्स उक्खेवओ) अब जंबू स्वामी पुनः पूछते हैं कि हे भदन्त ! यदि भ्रमण भगवान् महावीर ने द्वितीय अध्ययन का यह पूर्वोक्तरूप से अर्थ निरूपित किया है—तो तृतीय अध्ययन का उन्होंने क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ? इस तरह से इस तृतीय अध्ययन का जंबू स्वामी का यह प्रश्न आदिरूप वाक्य प्रबन्ध उत्क्षेपक है—प्रारंभक है—इस प्रश्न का उत्तर श्री सुधर्मा स्वामी

श्रीलुं अध्ययन प्रारंभः—

‘ जइणं भंते ! तइयज्झयणस्स उक्खेवओ ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(जइणं भंते ! तइयज्झयणस्स उक्खेवओ) डवे जंभू स्वामी इरी पूछे-छे-के-डे लदन्त ! ने भ्रमणु लगवान् महावीर जीन अध्ययनने आ पूर्वोक्त इये अर्थ निरूपित कयीं छे तो श्रीन अध्ययनने तेमले, शे अर्थ प्रतिपादित कयीं छे ? आ प्रभाणु आ श्रीन अध्ययनने जंभू स्वामीने आ प्रश्न वगेरे इय वाक्य प्रबन्ध उत्क्षेपक छे—प्रारंभ छे आ प्रश्नने उत्तर श्री सुधर्मास्वामी आ प्रभाणु आपे छे के—

यति-एवं खलु हे जम्बूः ! राजगृहं नगरं, गुणशिलकं चैत्यम् । एवं यथैव रात्रि-
स्वधैवरजनी अपि, नवरम् आमलकल्पा नगरी, रजनीगाथापतिः, रजनीश्रीभार्या,
रजनी दारिका । शेषं तथैव । यावत्-सर्वदुःखानामन्तं करिष्यति ॥

॥ इति प्रथमवर्गस्य तृतीयाध्ययनम् ॥ १-३ ॥

इस प्रकार से देते हैं-(एवं खलु जंबू ! रात्रिगृहे ण्यरे गुणशिलक
चेडए एवं जहेव राई तहेव रयणी वि, णवरं आमलकल्पा नगरी, रयणी
गाहावई रयणीसिरी भारिया रयणी दारिया सेसं तहेव जाव अंतं
काहिइ ३) जंबू । सुनो-उस काल में और उस समय में राजगृह नाम
का नगर था । उसमें गुणशिलक नामका उद्यान था । जिस प्रकार रात्रि
प्रभु का आगमन सुनकर गुणशिलक उद्यान में गई थी उसी तरह
रजनी भी वहां गई उसने प्रभु के मुख से धर्म का उपदेश सुना । सुन-
कर संसार शरीर और भोगों से वह विरक्त हो गई । दीक्षा लेने का
अपना भाव उसने प्रभु से निवेदित किया । प्रभुने यथासुखं देवानुप्रि-
ये कहकर उसके भाव की सराहना करतेहुए 'शुभस्य शीघ्रं' करने की
अपनी अनुमति प्रकट की-तब यह घर आई और मानासे अपना
दीक्षा लेने का विचार प्रकट किया-इत्यादि सब संबन्ध काली दारिका
के कथानक अनुसार रजनी के साथ लगालेना चाहिये । जब रजनी
देवी प्रभु को वंदना करनेके लिये गुणशिलक उद्यान में आई और वहां

(एवं खलु जंबू ! रात्रिगृहे ण्यरे गुणशिलक चेडए एवं जहेव राई तहेव
रयणी वि णवरं आमलकल्पा नगरी, रयणी-गाहावई रयणीसिरी भारिया रयणी
दारिया सेसं तहेव जाव अंतं काहिइ ३)

हे जंबू ! सांलणो, ते काणे अने ते समये राजगृह नामे नगर इतुं.
तेमां गुणशिलक नामे उद्यान इतुं. जेम रात्रि प्रभुतुं आगमन सांलणीने
गुणशिलक उद्यानमा गछ इती तेमज रजनी पणु त्यां गछ. तेणु प्रभुना
मुपधी धर्मने उपदेश सांलण्ये. सांलणीने ते संसार, शरीर अने लोगोथी
विरक्त थर्छ गछ. तेणु पोताने दीक्षा थडणु करवाने लाव प्रभुनी सामे
प्रकट कथे. प्रभुअे 'यथासुभम्' देवानुप्रिये । कहीने तेना लावनी सराहना
करी अने शुभ कार्यमा विदणु करे नडि अथी पोतानी अनुमती दर्शानी.
त्यादे ते पोताने घेर आनी अने मातापितानी सामे दीक्षा थडणु करवाने
विचार प्रकट कथे-वगेरे गंधी विगत काली दारिकानी जेमज रजनीनी साथे
पणु समणु देवी जेधअे न्यादे रजनीदेवी प्रभुने वदना करवा भाटे गुण-
शिलक उद्यानमा आवी अने त्यां तेणु नाटयविधितु प्रदर्शन कथुं. त्यारणोद

‘ एवं विज्जूवि ’ इत्यादि । एवं विद्युदपि । आमलकल्पा नगरी, विद्युद् गाथापति, विद्युत् श्रीभार्या, विद्युदारिका । शेष तथैव ।

इति प्रथमवर्गस्य चतुर्थाध्ययनम् ॥ १-४ ॥

उसने नाटयविधिका प्रदर्शन क्रिया बाद में वह जब वहां से प्रभु की पर्युपासना कर वापिस अपने स्थान पर चली गई—तब प्रभु से गौतम गणधर ने उसके पूर्वभव पूछे तब प्रभु ने उनसे इस प्रकार कहा—उस काल और उस समय में आमलक कल्पा नामकी नगरी थी—उसमें रजनी नामका गाथापति रहता था । रजनी श्री उसकी भार्या का नाम था । इन दोनों के एक पुत्री जिसका नाम रजनी था । इसके विषय का अवशिष्ट कथानक “ समस्त दुःखो का यह अन्त करेगी ” यहां तक का काली दारिका के जैसा ही जानना चाहिये ॥ सू० ६ ॥

॥ प्रथम वर्ग का तीसरा अध्याय समाप्त ॥

एवं विज्जूवि आमलकल्पा नगरी विज्जू गाहावई ॥

विज्जुसिरीभार्या विज्जुदारिया, सेसं तहेव ॥ ४ ॥

एवं मेहावि आमलकल्पाए नगरीए मेहे गाहावई ॥

मेहासिरी भारिया मेहा दारिया सेसं तहेव ॥ ५ ॥

(एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं पढमस्स वर्ग-

प्रभुनी पर्युपासना करीने पाछी पोताना स्थाने जती रही त्पारे गौतम गणधरे प्रभुने तेना पूर्वभवो पूछ्या. त्पारे प्रभुणे तेने आ प्रमाणे कहुं के ते काने अने ते समये आमलकल्पा नामे नगरी હતી, તેમાં રજની નામે ગાથાપતિ રહેતો હતો, રજની શ્રી તેની પત્નીનું નામ હતું. તેઓ બંનેને એક પુત્રી હતી—જેનું નામ રજની હતું. એના વિષેની બાકીની બધી વિગત “ સમસ્ત દુઃખોનો તે અન્ત કરશે ” અહીં સુધીની કાલી દારિકાની જેમજ સમજ લેવી જોઈએ. ॥ સૂત્ર ૬ ॥

“ પ્રથમ વર્ગનું ત્રીજું અધ્યાયન સમાપ્ત ॥

(एवं विज्जूवि आमलकल्पा नगरी विज्जू गाहावई ।

विज्जुसिरीभार्या विज्जुदारिया, सेसं तहेव ॥ ४ ॥

एवं मेहा वि आमलकल्पाए नगरीए मेहे गाहावई ।

मेहासिरी भारिया मेहा दारिया सेसं तहेव ॥ ५ ॥

(एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं पढमस्स वर्गस्स अर्य-

सङ्के पणत्ते ६)

‘ एवं मेघावि ’ इत्यादि । एवं मेघाऽपि । आमलकल्पायां नगर्यां मेघो गाथा-
पतिः, मेघश्रीभार्या, मेघा दारिका । शेषं तथैव ।

श्रीसुधर्मास्वामीप्राह—एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन यावत् मोक्षं सम्प्राप्तेन
धर्मकथानां प्रथमस्य वर्गस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः ॥ सू० ६ ॥

॥ इति प्रथमवर्गस्य पञ्चमाध्ययनम् ॥ १-५ ॥

अथ द्वितीयो वर्गः प्रारभ्यते—‘ जङ्घं भंते ’ इत्यादि ।

मूलम्—जङ्घं भंते ! सप्तणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्ग-
स्स उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! सप्तणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स

स्स अयमद्वे पणत्ते ६) इसी तरह का कथानक विद्युतके विषय में भी जानना चाहिये। आमलकल्पा नगरी विद्युत गाथापति विद्युत् श्री भार्या इन दोनों के यहां विद्युत् दारिका। इस तरह नाम आदि में ही परिवर्तन हुआ है। अभिधेय विषय में कुछ अन्तर नहीं है। मेघ के विषय में भी यही बात जाननी चाहिये। आमलकल्प- नगरी, मेघ गाथापति, मेघ श्री भार्या, मेघा दारिका—इस प्रकार इस कथानक में इन नामों में परिवर्तन हुआ है—अभिधेय वक्तव्य—विषय में नहीं। इस प्रकार यहां तक प्रथम वर्ग के ५, अध्ययन समाप्त हो जाते हैं। विद्युद्दारिका का अध्ययन ४ चौथा, एवं मेघा दारिका का अध्ययन ५ पंचम है। इस तरह हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर ने कि जो मुक्ति स्थान के अधिपति बन चुके हैं धर्मकथा के प्रथमवर्ग का यह अर्थ प्ररूपित किया है ?

આ પ્રમાણેનું જ કથાનક વિદ્યુતના વિષે પણ સમજી લેવું જોઈએ. આમલકલ્પા નગરી, વિદ્યુત ગાથાપતિ અને વિદ્યુત શ્રી ભાર્યા. આ બંનેને ત્યાં વિદ્યુત દારિકા. આ પ્રમાણે ક્ષત્ર નામ વગેરેમાં પરિવર્તન થયું છે અભિધેય વિષયમાં કોઈ પણ બદલો તફાવત નથી. મેઘના વિષે પણ એ જ વાત સમજી લેવી જોઈએ. આમલકલ્પા નગરી, મેઘ ગાથાપતિ, મેઘ શ્રી ભાર્યા, મેઘ દારિકા. આ પ્રમાણે આ કથાનકમાં પણ નામોમાં જ પરિવર્તન થયું છે—અભિધેય વક્તવ્ય વિષયમાં નહિ. આ પ્રમાણે અહીં સુધી પ્રથમ વર્ગના પાંચ અધ્યયનો પૂરા થઈ ગયા છે. વિદ્યુદારિકાનું અધ્યયન ચોથું, અને મેઘ દારિકાનું અધ્યયન પાંચમું છે. આ પ્રમાણે હે જંબૂ ! શ્રમણ ભગવાન મહાવીરે—કે જેઓ મુક્તિ સ્થાનના અધિપતિ થઈ ચૂક્યા છે—ધર્મકથાના પ્રથમ વર્ગને આ અર્થ મરૂપિત કર્યો છે. ॥ ૬ ॥

वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता, तं जहा-सुंभा निसुंभा रंभा
 निरंभा मयणा, जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मक-
 हाणं दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता, दोच्चस्स णं
 भंते ! वग्गस्स पढमज्झयणस्स के अट्ठे पणत्ते ?, एवं खलु
 जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समणेणं रायगिहेणयरे गुणसिलए चेइए
 सामी समोसढे परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ, तेणं कालेणं
 तेणं समणेणं सुंभादेवी बलिचंचाए रायहाणीए सुंभवडेसए
 भवणे सुभंसि सीहासणंसि कालीगमणेणं जाव णट्टविहिं उव-
 दंसेत्ता जाव पडिगया, पुठ्वभवपुच्छा, सावत्थी णयरी कोट्टए
 चेइए जियसत्तू राया सुंभेगाहावई सुंभसिरी भारिया सुंभा
 दारिया सेसं जहा कालीए णवरं अद्घुट्टाईं पलिओवसाईं ठिईं
 एवं खलु जंबू ! निक्खेवओ अज्झयणस्स एवं सेसावि चत्तारि
 अज्झयणा सावत्थीए नवरं साखा पिया सरिसनामया, एवं
 खलु जंबू ! निक्खेवओ विईयवग्गस्स २ ॥ सू० ७ ॥

॥ बीओ वग्गो समत्तो ॥

टीका—जम्बूस्वामीपृच्छति—यदि खलु हे भदन्त ! श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन
 द्वितीयस्य वर्गस्य उत्क्षेपकः । सुधर्मास्वामीप्राह—एवं खलु हे जम्बूः श्रमणेन यावत्

—:द्वितीयवर्गप्रारंभः—

‘ जइणं भंते ! समणेणं ’ इत्यादि ।

टीकार्थः—जंबू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि (भंते !
 जइणं समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवओ—एवं खलु

भीजे वर्ग प्रारंभ—

‘ जइणं भंते ! समणेणं ’ इत्यादि—

टीकार्थः—जंबू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से पूछे छे उ—

(भंते ! जइणं समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्गस्स उक्खेवओ—एवं खलु

मोक्षं सम्प्राप्तेन द्वितीयस्य वर्गस्य पञ्चाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—शुम्भा १, नियुम्भा २, रम्भा ३, निरम्भा ४, मदना ५, । यदि खलु हे भदन्त ! श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेन द्वितीयस्य वर्गस्य पञ्च-अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, द्वितीयस्य खलु हे भदन्त । वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? । सुधर्मास्वामी प्राह—एवं

जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता) हे भदन्त ! मुक्ति स्थान को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने द्वितीय वर्ग का उत्क्षेपक प्रारंभ किस रूप से प्ररूपित किया है—तब सुधर्मा स्वामी ने उनसे कहा—हे जंबू ! सुनो यावत् मुक्तिस्थान को प्राप्त हुए उन श्रमण भगवान् महावीर ने इस द्वितीय वर्ग के पांच अध्ययन प्ररूपित किये हैं—(तं जहा) वे इस प्रकार हैं—(सुंभा, निरुंभा, रंभा, निरंभा मयणा, जइणं भंते । समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता, दोच्चस्सणं भंते वग्गस्स पहमज्झयणस्स के अट्ठे पणत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णदरे, गुणसीलए चेइए—सामी समोसठे परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ) (१) शुम्भा, (२) निरुंभा (३) रम्भा, (४) निरंभा (५) मदना, । अब जंबू स्वामी पुनः सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि हे भदन्त ! यदि यावत् मुक्ति स्थान को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीरने द्वितीयवर्ग

जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्गस्स पंचअज्झयणा पणत्ता)

हे भदन्त ! मुक्तिस्थानने प्राप्त करेला श्रमणु लगवान महावीरे णीम वर्गने उत्क्षेपक-प्रारंभ-कथा इपधी प्ररूपित करीं छे ? त्तारे सुधर्मा स्वामीअे तेभने इहु के हे जंबू ! सांलणे, यावत् मुक्तिस्थानने वरेला ते श्रमणु लगवान महावीरे आ णीम वर्गना पांच अध्ययने प्ररूपित करीं छे. (तंजहा) ते आ प्रभाहे छे—

(सुंभा, निरुंभा, रंभा, निरंभा, मयणा, जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पणत्ता, दोच्चस्स णं भंते वग्गस्स पहमज्झयणस्स के अट्ठे पणत्ते । एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णदरे, गुणसीलए चेइए—सामी समोसठे परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ)

(१) शुंभा, (२) निरुंभा, (३) रंभा, (४) निरंभा, (५) मदना. इवे जंबू स्वामी इरी सुधर्मा स्वामीने पूछे छे के हे भदन्त ! ने यावत् मुक्ति

खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरम् । गुणशिलकं चैत्यम् । स्वामी=वर्द्धमानस्वामी समवसृत । परिषन्निर्गता यावत्पर्युपास्ते । तस्मिन् काले तस्मिन् समये शुम्भा देवी बलिचञ्चायां राजधान्यां शुम्भावतंसके भवने शुम्भे सिंहासने ' कालीगमणं ' कालीगमेन=काली देवी सदृशपाठेन यावत्-नाट्यविधिमुपदर्श्य यावत्-प्रतिगता । ' पुव्वभवपुच्छा ' पूर्वभवपृच्छा=गौतम-स्वामी शुम्भा देव्याः पूर्वभवं पृच्छति । भगवान् कथयति-श्रावस्ती नगरी । कोष्ठकं चैत्यम् । जितशत्रू राजा । शुम्भो गाथापतिः । शुम्भश्रीभार्या । शुम्भा दारिका । शेषं यथा काल्याः=काली दारिकाया वर्णनं तथात्रापि विज्ञेयम् , नवरं=विशेस्त्व-

के पांच अध्ययन प्ररूपित किये हैं-तो हे भदंत ! द्वितीयवर्ग के प्रथम अध्ययन का उन्होंने क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये सुधर्मा स्वामी उनसे इस प्रकार कहते हैं कि-हे जंबू !-उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था-उसमें गुणशिलक नाम का उद्यान था-। उसमें वर्द्धमान स्वामी आये । प्रभु का आगमन सुनकर वहां की समस्त जनता उन्हें वंदन के लिये अपने २ स्थान से चल कर उस गुणशिलक उद्यान में आई । प्रभु ने सबको धर्म का उपदेश दिया परिषद् उपदेश सुनकर प्रभु की यावत् पर्युपासना की । (तेणं कालेणं तेणं समणं) उसी काल और उसी समय में (सुंभादेवी बलिचंचाए रायहाणीए सुंभवडेंसए भवणे सुंभंसि सीहा-सणंसि कालीगमणं जाव नट्टविहिं उवदंसेत्ता जाव पडिगया पुव्वभव पुच्छा, सावत्थी णयरी, कोट्टए चेइए जियसत्तू राया, सुंभे गाहावई सुंभ-

स्थानने प्राप्त करेला श्रवणु लगवान महावीरे णीळ वर्गना पांच अध्ययने। प्ररूपित किये छे, तो हे भदन्त ! णीळ वर्गना प्रथम अध्ययनने। तेमण्णे शो अर्थ प्रतिपादित किये छे ?

-आ प्रश्नना उत्तरमां श्री सुधर्मा स्वामी तेमने आ प्रमाणे कहे छे के हे जंबू ! ते काले अने ते समये राजगृह नामे नगर इतुं तेमां गुणशिलक नामे उद्यान इतुं । तेमां वर्द्धमान स्वामी पधार्या प्रभुनुं आगमन सांभणीने त्यांना अधा नागरिके तेमने वंदना करवा भाटे पोतपोताने स्थानेथी नीकणीने ते गुणशिलक उद्यानमां आया. प्रभुणे अधाने धर्मने। उपदेश आये। परिषदे धर्मोपदेश सांभणीने प्रभुनी यावत् पर्युपासना करी. (तेणं कालेणं तेणं समणं) ते काले अने ते समये

(सुंभा देवी बलिचंचाए रायहाणीए सुंभवडेंसए भवणे सुंभंसि सीहासणंसि काली गमणं जाव नट्ट विहिं उवदंसेत्ता जाव पडिगया, पुव्वभवपुच्छा सावत्थी णयरी, कोट्टए चेइए जियसत्तू राया, सुंभे गाहावई, सुंभसिरी भारिया, सुंभा-

यम्-अस्याः शुम्भादेव्याः ' अद्भुद्वाइं ' अर्द्धं चतुर्थानि=सार्द्धत्रयाणि पर्योपमानि
मिथितिरस्ति । शुभर्मास्वामीप्राह-हे जम्बू ! निक्षेपकः=उपहारोऽध्ययनस्य वाच्यः ॥

॥ इति द्वितीयवर्गस्य प्रथमाध्ययनम् ॥

मिरी भारिया सुंभादारिया, सेसं जहा कालीए णवरं अद्भुद्वाइ पलिओव-
माइं ठिई, एवं खलु जंबू ! निक्खेवओ अज्झयणस्स एवं सेसा वि चत्ता-
रिअज्झयणा सावत्थीए नवरं माया पिया सरिस्स नामया एवं खलु जंबू ।
निक्खेवओ विईयवग्गस्स वीओ वग्गो समत्तो) शुंभादेवी जो बलिचंचा
नामकी राजधानी में शुभावतंसक नामके भवन में रहती थी-और
शुंभनाम के सिंहासन पर बैठी थी-वह काली देवी के प्रकरण में
वर्णित पाठ के अनुसार प्रभु के समीप उनको वंदना करने के लिये
आई । वहाँ उसने नाट्यविधिका प्रदर्शन किया बादमें फिर वह वहाँ से
पंछे अपने स्थान पर चली गई । उसके चले जाने के बाद गौतमस्वामी
ने प्रभु से उस शुंभादेवी के पूर्वभव की पृच्छा की-तब भगवान् ने
उन से इस प्रकार कहा-श्रावस्ती नामकी नगरी थी । उसमें कोष्ठक
नामका उद्यान था, । नगरी के राजा का नाम जितशत्रु था उसमें गाथा
पति रहता था । जिसका नाम शुंभ था । इसकी शुंभश्री नाम की
भार्या थी । दारिका का नाम शुंभा था । इसके बाद का इसका वर्णन

दारिया, सेसं जहा कालीए णवरं अद्भुद्वाइं, पलिओवमाइं ठिई । एवं खलु जंबू ।
निक्खेवओ अज्झयणस्स एवं सेसा वि चत्तारि अज्झयणस्स सावत्थीए नवरं माया-
पिया सरिस्सनामया, एवं खलु जंबू ! निक्खेवओ-विईयवग्गस्स पंच अज्झ-
यणा समत्ता वीओ वग्गो समत्तो)

शुंभा देवी-के जे णत्थिअथा नामे राजधानीमां शुभावतंसक नामना
भवनमां रहेती इती अने शुंभ नामे सिंहासन उपर भेसती इती-शाली
देवीना प्रकण्ठुमां वधुवेला पाठ सुज्जण प्रभुनी पासे तेमने वंदना करवा भाटे
आवी. त्यां तेणे नाट्यविधितुं प्रदर्शनं कथुं. त्यारणाठ ते त्यांथी पाछी पोताना
स्थाने जती रही. तेमना जता रक्षा णाठ गौतम स्वामीजे प्रभुनी शुंभा
देवीना पूर्व भवनी पृच्छा करी. त्यादे भगवाने तेमने आ प्रभाण्णे क्खुं के-
श्रावस्ती नामे नगरी इती, तेमां कोष्ठक नामे उद्यान इतुं. नगरीना राजतुं
नाम जितशत्रु इतुं. तेमां शुंभ नामे गाथापति रहेतो इतो. शुंभश्री नामे
तेनी पत्नी इती, तेनी पुत्रीतुं नाम शुंभा इतुं त्यारपछीतुं तेतुं शेष वधुंन
शाली देवीनी जेमज्ज समञ्ज देवुं जेधजे. तेमां अने आमां तक्षवत जेठ-

‘ एवं सेसावि ’ इत्यादि—एवं शेषाण्यपि=निशुम्भा १—रम्भा २—निरम्भा ३—मदना ४ नामकानि चत्वारि अध्ययनानि श्रावस्त्या नगर्या विज्ञेयानि, नव-
रम्—एतावान् विशेषः—मातरः पितरः सदृशनामानः दारिकासदृशनामानः, तथाहि—
निशुम्भाया माता निशुम्भश्रीः, पिता निशुम्भः । रम्भाया माता रम्भश्रीः, पिता
रम्भः । निरम्भाया माता निरम्भश्रीः, पिता निरम्भः । मदनाया माता मदनश्रीः
पिता मदनः । एते सर्वे गाथापतयः आसन् ।

एवं खलु हे जम्बू ! निक्षेपको द्वितीयवर्गस्य ॥ ७ ॥

॥ इति धर्मकथानां द्वितीयो वर्गः समाप्तः ॥ २ ॥

कालीदेवी का है वैसा ही जानना चाहिये । उसमें और इसमें केवल
अन्तर इतना ही है कि कालीदेवी की स्थिति २॥ पत्य की थी और
इस शुंभादेवी की ३॥, पत्य की थी । इस प्रकार हे जंबू ! इस द्वितीय-
वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह निक्षेपक है । इसी तरह निशुंभा, रंभा
निरम्भा और मदना नाम के चार अध्ययन भी जानना चाहिये । इन
में विशेषता केवल इतनी ही है कि यहाँ जो माता पिता हैं वे दारिका
सदृश नामवाले हैं—जैसे निशुंभा के पिता का नाम निशुंभ, माता का
नाम निशुंभ श्री, रंभाके पिता का नाम रम्भ, माताका नाम रम्भश्री,
निरंभा के पिता नाम निरंभ माता का नाम निरंभश्री, मदना के
पिता का नाम मदन, और माताका नाम मदनश्री । ये सब ही गाथा-
पति हैं । इस तरह यह द्वितीयवर्ग का निक्षेपक—उपसंहार—है ।

॥ द्वितीयवर्ग समाप्त ॥

दो ७ छे डे डाली देवीनी स्थिति २॥ पत्यनी डती अने आ शुंला देवीनी
स्थिति ३॥ पत्यनी डती. आ प्रभाणे डे ७'पू । आ भील वर्गना प्रथम
अध्ययनने आ निक्षेपक छे आ प्रभाणे ७ निशुंला, रंला, निरंला अने
मदना नामना चार अध्ययने पणु लणी देवां लेधये. अमनामां विशेषता
इकत ओटली ७ छे डे अडीं ७े मातापिता छे ते पुत्रीना ७ेवा ७ नामवाणा
छे. ७ेमडे निशुंलाना पितानुं नाम निशुंल, मातानुं नाम निशुंलश्री, रंला
ना पितानुं नाम रंल, मातानुं नाम रंलश्री निरंलाना पितानुं नाम निरंल,
मातानुं नाम निरंलश्री, मदनाना पितानुं नाम मदन अने मातानुं नाम
मदनश्री, आ अघा गाथापतिओ छे आ प्रभाणे भील वर्गना निक्षेपक
उपसंहार छे.

॥ भीले वर्ग समाप्त ॥

अथ तृतीयो वर्गः प्रारभ्यते—‘ उक्खेवओ तइयवग्गस्स ’ इत्यादि

मूलम्—उक्खेवओ तइयवग्गस्स एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया सहावीरेणं जाव संपत्तेणं तइयस्स वग्गस्स चउपण्णं अज्झयणा पन्नत्ता, तं जहा—पढमे अज्झयणे जाव चउपण्णइमे अज्झयणे, जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं तइयस्स वग्गस्स चउपपन्नज्झयणा पणत्ता पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्टे पणत्ते !, एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणासिलए चेइए सामी समोसढे परिसा णिग्गया जाव षज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं अलादेवी धरणाए रायहाणीए अलावडंसए भवणे अलंसि सीहासणंसि एवं कालीगमएणं जाव णट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया, पुव्वभवपुच्छा, वाणारसी णयरी काममहावणे चेइए अले गाहावई अलसिरी भारिया अलादारिया सेसं जहा कालीए णवरं धरणस्स अग्गमहिसित्ताए उववाओ साइरेगं अद्धपलिओवसंठिई सेसं तहेव, एवं खलु णिक्खेवओ पढमज्झयणस्स, एवं कमा सक्का सतेरा सोयामणी इंदा घणविज्जुयावि, सव्वाओ एयाओ धरणस्स अग्गमहिसीओ एवं, एते छ अज्झयणा वेणुदेवस्सवि अविसेसिया भाणियव्वा एवं जाव घोसस्सवि एए चेव छ अज्झयणा, एवमेते दाहिणिह्ठाणं इंदाणं चउपण्णं अज्झयणा भवंति, सव्वाओवि वाणारसीए काममहावणे चेइए तइयवग्गस्स णिक्खेवओ॥सू०८॥

तइओ वग्गो समत्तो ॥३॥

टीका—‘ उक्खेवओ ’ उत्क्षेपकः=जम्बूप्रश्नादिरूपः प्रारम्भवाक्यप्रबन्धः तृतीयवर्गस्यात्रबोधः । श्रीसुधर्मास्वामी प्राह—एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत् मोक्षं सम्प्राप्तेन तृतीयस्य वर्गस्य ‘ चउप्पणं ’ चतुष्पश्चात् अलादीनि अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तत्रथा—तानि यथा—प्रथममध्ययनम् अलेति यावत्—चतुष्पश्चात्तममध्ययनम् । जम्बूस्वामी पृच्छति—यदि खलु हे

—तृतीय वर्ग प्रारंभः—

‘ उक्खेवओ तइयवग्गस्स ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—तृतीयवर्ग का प्रारंभवाक्य प्रबन्ध इस प्रकार है—अर्थात् सुधर्मास्वामी से जंबू स्वामी ने प्रश्न किया कि भदंत । श्रमण भगवान् महावीर ने कि जो मुक्ति को प्राप्त कर चुके हैं इस तृतीयवर्ग के कितने अध्ययन प्रज्ञप्त किये हैं—तब सुधर्मा स्वामी ने उनसे इस प्रकार कहा— (एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं तइयस्स वग्गस्स चउप्पणं अज्झयणा पणत्ता तं जहा पढमे अज्झयणे जाव चउप्पणइमे अज्झयणे जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं तइयस्स वग्गस्स चउप्पन्नज्झयणा पणत्ता, पढमस्सणं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ?) हे जंबू ! सुनो—उन मुक्ति प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने तृतीयवर्ग के अलादिक चौपन ५४ अध्ययन प्रज्ञप्त किये हैं । जंबू स्वामी पुनः पूछते हैं—भदंत ।

त्रीजे वर्ग प्रारंभ—

‘ उक्खेवओ तइयवग्गस्स ’ इत्यादि—

टीकार्थ—त्रीजे वर्गनुं प्रारंभ वाक्य प्रबन्ध आ प्रभाणु छे—अट्ठे के सुधर्मा स्वामीने जंबू स्वामीअे प्रश्न करीं के छे भदंत ! श्रमणु भगवान महावीरे—के नेभाणु मुक्ति भेजवी लीधी छे. आ त्रीजे वर्गना केटलां अध्ययने प्रज्ञप्त करीं छे ? त्तारे सुधर्मा स्वामीअे तेभने आ प्रभाणु कहुं—

(एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं तइयस्स वग्गस्स चउप्पणं अज्झयणा पणत्ता—तं जहा पढमे अज्झयणे जाव चउप्पणइ मे अज्झयणे जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मकहाणं तइयस्स वग्गस्स चउप्पन्नज्झयणा पणत्ता, पढमस्सणं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ?)

हे जंबू ! सांभणो, मुक्ति प्राप्त करेला ते श्रमणु भगवान महावीरे त्रीजे वर्गना अलादिक ५४ अध्ययने प्रज्ञप्त करीं छे. जंबू स्वामी इरी प्रश्न करे

भदन्त ! श्रमणेन यावत् मोक्षं सम्प्राप्तेन धर्मकथानां तृतीयस्य वर्गस्य चतुष्पञ्चा-
शद् अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तेषु प्रथमस्य खलु हे भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेन
यावत् मोक्षं सम्प्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? सुधर्मस्वामी कथयति—

एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरम्, गुण-
गिलकं चैत्यम्, स्वामी समवमृत, परिपन्निर्गता यावत्-भगवन्तं पर्युपास्ते ।
तस्मिन् काले तस्मिन् समये अलादेवी=धरणेन्द्रस्याग्रमहिषी धरणायां राजधान्याम्
अलावतंसके भवणे अले सिंहासणे, एव 'कालीगमणं' कालीगमेन=काली-
सदृशपाठेन यावत् नाट्यविधमुपदर्श्य प्रतिगता । 'पुञ्जभवपुच्छा' पूर्वभवपृच्छा-
गौतमस्वामी अलादेव्याः पूर्वभवं पृच्छति, भगवान् कथयति—वाणारसी नगरी ।
काममहावनं चैत्यम् । 'अले' अलनामा गाथापतिः । अलश्रीभार्या । अला-
दारिका । शेषं 'जहाकालीए' यथा काल्याः=कालीदेव्या वर्णनं तथैव अला-
देव्या वर्णनं विज्ञेयम्, नवरम्-धरणस्याग्रमहिषीतयाऽस्या उपपातः, सातिरेकं=

यावत् मुक्ति को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथा के
तृतीयवर्ग के ५४ अध्ययन प्रज्ञप्त किये हैं तो उनमें से हे भदन्त !
उन्हीं यावत् मुक्ति प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम अध्ययन
का क्या अर्थ प्ररूपित किया है ? इस प्रश्न के समाधान निमित्त सुधर्मा
स्वामी उनसे कहते हैं कि—(एवं खलु जंबू !) हे जंबू ! तुम्हारे प्रश्न का
उत्तर इस प्रकार है—(तेणं कालेणं तेणं समएणं अलादेवी धरणाए राघ
हाणीए अलावडंसए भवणे अलंसि सीहासणंसि एवं कालीगमएणं
जाव णट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया, पुञ्जभवपुच्छा, वाणारसी णयरी,
काममहावणे चेइए अलंगाहावई, अलासिरी भारिया, अलादारियासेसं
जहा कालीए णवर धरणस्स अग्गमहिसित्ताए उववाओ, साहरेणं

छे छे छे लदन्त ! यावत् मुक्ति प्राप्त करेला श्रमणु लगवान् महावीरे धर्मक-
थाना त्रीणवर्गना ५४ शोपनअध्ययनो प्रज्ञप्त कथां छे, तो तेओमांथी छे लदन्त !
ते ओ यावत् मुक्ति प्राप्त श्रमणु लगवान् महावीरे पडेला अध्ययननो शो
अर्थ प्ररूपित कथो छे ? आ प्रश्नना समाधानमां श्री सुधर्मा स्वामी तेमने
उछे छे छे (एवं खलु जंबू !) छे ओंभू ! तभारा प्रश्ननो उत्तर आ प्रभाणु छे छे

(तेणं कालेणं तेणं समएणं अलादेवी धरणाए राघहाणीए अलावडंसए
भवणे अलंसि सीहासणंसि एवं काली गमएणं जाव णट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया,
पुञ्जभवपुच्छा, वाणारसी णयरी, काममहावणे चेइए, अलं गाहावई, अलासिरी
भारिया, अलादारिया सेसं जहा कालीए णवरं धरणस्स अग्गमहिसित्ताए उव-

अद्रपलिओवमं ठिई सेस तहेव, एव खलु णिवखेवओ पढमज्झयणस्स)
 उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। वहाँ गुण-
 शिलक नाम का उद्यान था। उसमें तीर्थंकर परंपरानुसार विहार करते
 हुए श्रमण भगवान् महावीर आकर ठहरे हुए थे। नगर की परिषदा
 प्रभु को वंदना के लिये अपने २ घर से निकलकर उस उद्यान में आई
 प्रभु ने सबको धर्म का उपदेश दिया। सुनकर लोगों ने यावत् प्रभु की
 पर्युपासना की। उसी समय वहाँ पर धरणेन्द्र की अग्रमहिषी अलादेवी
 जो धरणा राजधानी में अलावतंसक इस नाम के भवन में रहती थी—
 और जिसके बैठने के सिंहासन का नाम अला था प्रभु को वंदना आदि
 करने के निमित्त आई। वहाँ आकर उस ने नाटयविधि दिखलाई।
 दिखलाकर वह फिर वहाँ से पीछे अपने स्थान पर गई। उसके आते ही
 गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से उसका पूर्वभव पूछा तब
 भगवान् ने उनसे इस प्रकार कहा वाणारसी नामकी नगरी थी—उसमें
 काम महावन नाम का उद्यान था। उसमें अलनाम का गाथापति रहता
 था। उसकी भार्या “अलश्री” इस नामकी थी। इस की एक पुत्री थी
 जिसका नाम अला था। इसका—अला का शेष कथानक, कालीदेवी का

वाओ, साडरेगं अद्रपलिओवमं ठिई सेसं तहेव, एवं खलु णिवखेवओ पढमज्झयणस्स)
 ते काणे अने ते समये राजगृह नामे नगर इत्तुं. तेमां गुणशिलक
 नामे उद्यान इत्तुं. तेमां तीर्थंकर परंपरा मुज्जय विहार करतां पधारीने
 श्रमणु लगवान महावीरे मुकाम कुर्यां इतो. नगरनी परिषद प्रभुने वंदन
 करवा माटे पोतपोताने घेरथी नीकणीने ते उद्यानमां आवी. प्रभुजे सौने
 धर्मने उपदेश आव्यो. उपदेश सांभणीने लोकोजे यावत् प्रभुनी पर्युपासना
 करी, ते वपते त्यां धरणेन्द्रनी अग्रमहिषी (पट्टराणी) अलादेवी के जे
 धरणा राजधानीमां अलावतंसक आ नामना लवनमां रहेती इती, अने जेने
 जेसवाना सिंहासननुं नाम अला इत्तुं—प्रभुने वंदना करवा माटे आवी. त्यां
 आवीने तेजे नाटयविधितुं प्रदर्शन कुर्युं, प्रदर्शन करीने ते त्यांथी पाछी
 पोताना स्थाने जाती रही. तेना गया पछी तरत ज गौतम स्वामीजे श्रमणु
 लगवान महावीरने तेना पूर्वभव पूछ्यो. त्यारे लगवाने तेमने आ प्रभाजे
 कथुं के वाणारसी नामे नगरी इती, तेमां काममहावन नामे उद्यान इत्तुं,
 तेमां अल नामे गाथापति रहेतो इतो. तेनी भार्यानुं नाम अलश्री इत्तुं.
 तेने जेक पुत्री इती तेनुं नाम अला इत्तुं. अला विषेनुं शेष कथानक पडेलां

साधियम् अर्द्धपत्न्योपमं स्थितिः । शेषं तथैव । एवं खलु निक्षेपकः प्रथमाध्ययनस्य । एवं क्रमात् शक्रा २, सतेरा ३, सौदामनी ४, इन्द्रा ५, घनविद्युदपि ६ । सर्वा एता धरणस्य=धरणेन्द्रस्य अग्रमहिष्य एव । एतानि षड् अध्ययनानि वेणुदेवस्यापि । ' अविसेसिया ' अविशेषितानि=निर्विशेषानि सदृशानि भणितव्यानि ।

जैसा कथानक पीछे वर्णित किया जा चुका है वैसा ही जानना चाहिये । उसके वर्णन में और इसके वर्णन में केवल अन्तर इतना ही है कि यह धरणेन्द्र की अग्रमहिषी के रूप में उत्पन्न हुई और इसकी स्थिति १॥ पत्य से कुछ अधिक है । बाकी का इसका वृत्तान्त कालीदेवी के जैसा ही है । इस तरह यह द्वितीयवर्ग के प्रथम अध्ययन का निक्षेपक-उपसंहार-है ।-(एवं क्रमा सकका, सतेरा, सोयामगी, इंदा, घणविज्जुया वि, सव्वओ एयाओ धरणस्स अग्रमहिसीओ, एवं, एते ६ अज्झयणा वेणुदेवास वि अविसेसिया भाणियव्वा, एवं जाव घोसस्स वि एए चैव ६ अज्झयणा, एवमेते दाहिणिल्लाणं इंदाणं-चउप्पणं अज्झयणा भवन्ति, सव्वओ वि चाणारसीए काममहावणे चैए तहयवग्गस्स णिकखेवओ ८ ॥

(तइओ वग्गो समत्तो) इसी क्रम से शक्रा २, सतेरा ३, सौदामनी ४, इन्द्रा ५, घनविद्युत् ६, ये सब देवियां धरणेन्द्र की ही अग्रमहिषियां थीं । इस तरह के ६ अध्ययन वेणुदेव के भी हैं । और इनका

वर्णनके छाली देवीना कथानकनी जेमअ समल्ल देवुं जेधजे. तेना अने आना वर्णनमां तक्षवत इत्ता जेट्ठो ज छे के आ धरणेन्द्रनी अग्रमहिषीना इपमां उत्पन्न थध अने आनी स्थिति १॥ पत्य करतां कधक वधारे छे. आनुं णात्रीनुं वर्णन काली देवी जेवुं ज छे. आ प्रमाजे आ णील वर्गना पडेला अध्ययनने निक्षेपक उपसंहार छे.

(एवं क्रमा सकका सतेरा, सोयामणी, इंदा, घणविज्जुया वि, सव्वओ एयाओ धरणम्म, अग्रमहिसीओ एवं एते ६ अज्झयणा वेणुदेवास वि अविसेसिया भाणियव्वा, एवं जाव घोसस्स वि एए चैव ६ अज्झयणा, एवमेते दाहिणिल्लाणं इंदाणं-चउप्पणं अज्झयणा भवन्ति, सव्वओ वि चाणारसीए काम महावणे चैए तहयवग्गस्स णिकखेवओ ॥ ८ ॥ तइओ वग्गो समत्तो)

आ अनुकम प्रमाणे ज शक्रा २, सतेरा ३, सौदामनी ४, इन्द्रा ५, घनविद्युत् ६, आ णधी देवीओ धरणेन्द्रनी ज अग्रमहिषीओ हुनी आ प्रमाणे ज ६ अध्ययने वेणु देवीना पद्य छे अने जेमनुं वर्णन धरणेन्द्रना

एवं यावत् घोषस्यापि=घोषेन्द्रस्यापि, एतान्येव षड् अध्ययनानि सन्ति । एवमे-
तानि दक्षिणात्यानाभिन्द्राणां चतुष्पञ्चाशद् अध्ययनानि भवन्ति । सर्वा अपि पूर्वो-
क्तादेव्यः पूर्वभवे वाणारस्यां जाताः काममहावने चैत्ये भगवतः पार्श्वस्यार्हतः
समीपे प्रव्रजिताः, तृतीयवर्गस्य निक्षेपकः=समाप्तिवाक्यप्रबन्धो विज्ञेयः ॥ सू०८ ।

॥ इति धर्मकथानां तृतीयो वर्गः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थो वर्गः प्रारभ्यते—‘ चउत्थस्स ’ इत्यादि ।

मूलम्—चउत्थस्स उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव
संपत्तेणं धम्मकहाणं चउत्थवग्गस्स चउप्पणं अज्झयणा
पणत्ता, तं जहा—पढमे अज्झयणे जाव चउपणइमे अज्झयणे
पढमस्स अज्झयणस्स उक्खेवओ एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं
तेणं समणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं
कालेणं तेणं समणं रूया देवी रूयाणंदा रायहाणी रूयगव-
वडिंसए भवणे रूयगंसि सीहासणंसि जहा कालीए तहा नवरं
पुव्वभवे चंपाए पुण्णभइ च्चैइए रूयगे गाहावई रूयगसिरी
भारिया रूया दारिया सेसं तहेव, णवरं भूयाणंदअग्गसहिंसि-

वर्णन श्री धरणेन्द्र के वर्णन जैसा ही है । घोषेन्द्रके भी ये ही ६ अध्य-
यन इसी तरह के हैं । इस तरह दक्षिण दिशा संबन्धी इन्द्रों के ० ५४
अध्ययन हो जाते हैं । ये सब देवियों पूर्वभवमें वाणारसी में उत्पन्न हुईं
और काममहावन उद्यानमें भगवान् पार्श्वनाथ अर्हत प्रभुके समीप दीक्षित
हुईं । इस तरहसे धर्मकथाका यह “ तृतीय वर्ग समाप्त हुआ है । ”

वर्णनं जेषुं ७ छे. घोषेन्द्रना पणु आ नतनां ७ ६ अध्ययने। छे. आ
प्रभाणु दक्षिणु दिशा संबन्धी इन्द्रोना ५४ अध्ययने थर् नय छे. आ षधी
देवीओ पूर्वभवमां वाणारसीमां उत्पन्न थर् हुती अने काममहावन उद्यानमां
भगवान् पार्श्वनाथ अर्हत प्रभुनी पासे दीक्षित थर्. आ प्रभाणु धर्मकथाने
आ त्रीजे वर्ग पूरा थये छे.

त्ताए उववाओ देसूणं पालिओवमं ठिई णिकखेवओ एवं सुखु-
यावि खयंसावि खयगावईवि खयकंतावि खयप्पभावि, एयाओ
वेव उत्तरिह्णाणं इंदाणं भाणियव्वाओ जाव महाघोसस्स,
णिकखेवओ चउत्थवग्गस्स ॥ सू० ९ ॥

॥ चउत्थो वग्गो समत्तो ॥ ४ ॥

टीका—‘ चउत्थस्स-चतुर्थवर्गस्य ‘ उक्खेवओ ’ उत्क्षेपकः=प्रारम्भवाक्य-
पाठोऽत्रवाच्यः । नृधर्मस्वामी प्राह-एवं खलु जम्बूः ! श्रमणेन यावरसम्प्रा-
प्तेन धर्मरूथानां चतुर्थवर्गस्य चतुष्पञ्चागत् अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा प्रथम-
मध्ययनं यावत्-चतुष्पञ्चागत्तममध्ययनम् । तेषु प्रथमस्याध्ययनस्य उत्क्षेपकः ।
सुधर्मस्वामीप्राह-एवं खलु हे जम्बूः ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहे सम-

-:चतुर्थ वर्ग प्रारंभ:-

‘ चउत्थस्स उवक्खेवओ ’ इत्यादि ।

टीकार्थः—(चउत्थस्स उवक्खेवओ) चतुर्थ वर्ग का प्रारंभ किस
तरह से हुआ है—इस प्रकार-जंबूस्वामी के पूछने पर श्री सुधर्मास्वामी
उनसे कहते हैं कि (एवं खलु जंबू) हे जंबू ! सुनो—(समणेणं जाव
संपत्तेणं धम्मरूथानं चउत्थवग्गस्स चउप्पणं अज्झयणा पणत्ता तं
जहा पढये अज्झयणे जाव चउप्पणाइ मे अज्झयणे) यावत् मुक्तिस्थान
को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथा के चतुर्थ वर्ग के ५४
अध्ययन प्रज्ञप्त किये हैं—वे प्रथम अध्ययन से लेकर ५४ वे अध्ययन तक
हैं—(पढमम्म अज्झयणस्स उक्खेवओ एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं

येथा वर्ग प्रारंभ.

‘ चउत्थस्स उवक्खेवओ ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(चउत्थस्स उवक्खेवओ) येथा वर्गनी शब्दात् डेवी रीते
शब्द छे ! आ नतनेो न्णु स्वामीये प्रश्न इयां णाह श्री सुधर्मा स्वामी
तेगने इडे छे डे (एवं खलु जंबू) छे न्णु ! सांलणेा,

(समणेणं जाव संपत्तेणं धम्मरूथानं चउत्थवग्गस्स चउप्पणं अज्झयणा
पणत्ता तं जहा पढये अज्झयणे जाव चउप्पणाइ मे अज्झयणे)

यावत् मुक्तिस्थानने भावेता श्रमणु लगवान् महावीरे धर्मरूथाना येथा
वर्गना ५४ अध्ययनेा प्रज्ञप्त इयां छे. तेथेा पडेता अध्ययनथी भांदिने ५४
भा अध्ययन मुधी छे.

वसरणं=भगवतः श्री महावीरस्वामिनः समागमनं संजातं, यावत् परिषद् भगवन्तं पर्युपास्ते । तस्मिन् काले तस्मिन् समये रूपादेवी=भूतानन्देन्द्रस्याग्रमहिषी रूपकावतंसके भवने रूपके सिंहासने यथा काल्याः=कालीदेव्या वर्णनं तथा=तद्वत्

समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं रूया देवी, रूयाणंदा रायहाणी रूयगवडिसए भवणे रूयगंसि सीहासणंसि जहा कालीए तहा नवरं पुव्वभवे चंपाए पुण्णभदे चेइए रूपगे गाहावई रूयगसिरी भारिया, रूया दारिया, सेसं तहेव, णवरं भूयाणंद अग्गमहिसित्ताए उववाओ देसूणं पलिओवमं ठिई निकखेवओ, एवं सुरुवया वि, रूयंसावि, रूयगाहावई वि रूयकंता वि रूयप्पभावि, एयाओ चेव उत्तरिल्लाणं इंदाणं भाणियव्वाओ, जाव महाघोसस्स णिकखेवओ चउत्थवग्गस्स चउत्थो वग्गो समत्तो)

प्रथम अध्ययन का हे जंबू ! उत्क्षेपक इस प्रकार है—उसकाल में और उस समय में राजगृह नगर में महावीर स्वामी का आगमन हुआ। परिषद् प्रभु को वंदना करने के लिये अपने २ स्थान से निकलकर जहां प्रभु विराजमान थे वहां आई। प्रभु ने धर्म का उपदेश दिया। यावत् सबने प्रभु की पर्युपासना की। उस काल और उस समय में भूतानंद इन्द्र की अग्रदेवी जिसका नाम रूपादेवी था वह प्रभु को वंदना के लिये

(पढयस्स अज्झयगस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं रूयादेवी, रूयाणंदा, रायहाणी रूयगवडिसए भवणे रूयगंसि सीहासणंसि जहा कालीए तहा नवरं पुव्वभवे चंपाए पुण्णभदे चेइए रूपगे गाहावई रूयगसिरी भारिया, रूया दारिया, सेसं तहेव, णवरं भूयाणंद अग्गमहिसित्ताए उववाओ देसूणं पलिओवमं ठिई निकखेवओ, एवं सुरुवया वि, रूयंसावि, रूयगाहावई, वि रूयकंता वि रूयप्पभावि, एयाओ चेव उत्तरिल्लाणं इंदाणं भाणियव्वाओ, जाव महाघोसस्स णिकखेओ चउत्थवग्गस्स ॥ ९ ॥ चउत्थो वग्गो समत्तो)

हे जंबू ! पड़ेला अध्ययनने उत्क्षेपक आ प्रभावे छे—ते काले अने ते समये राजगृह नगरमां महावीर स्वामीनुं आगमन थयुं. प्रभुने वंदना करवा भाटे परिषद् पोतपोताने स्थानेथी नीकणीने न्यां प्रभु विराजमान इता त्यां आवी, प्रभुअे धर्मने उपदेश आथ्ये यावत् सौअे प्रभुनी पर्युपासना करी. ते काले अने ते समये भूतानंद इन्द्रनी अग्रदेवी (पटशाली) जेतुं नाम इया देवी इतुं—प्रभुने वंदना करवा भाटे आवी. तेना रडेवाना लवननुं

रूपादेव्या अपि विज्ञेयम्, नवरं=विशेषोऽत्रायम्-पूर्वभवे चम्पायां नगर्यां पूर्ण-
भद्रं चैत्यम्, रूपको गाथापतिः, रूपश्रीभार्या, रूपादारिका, शेषं तथैव नवरं
भूतानन्दाग्रमहिषीतया तस्या उपपातः जन्म । देशोनं पल्योपमं स्थितिः । निक्षे-
पकः=समाप्तिवाक्यरूपः प्रबन्धोऽत्र विज्ञेयः । एवं सुरूपाऽपि २, रूपांशाऽपि ३,
रूपकावत्यपि ४, रूपकान्तापि ५, रूपप्रभापि ६ । एताश्चैव उत्तरीयाणामिन्द्राणां

आई। इसके रहने के भवन का नाम रूपकावतंसक था। और जिस
सिंहासन पर यह बैठती थी उसका नाम रूपक था। पीछे जिस प्रकार
का वर्णन कालीदेवी का किया गया है—उसी प्रकार का इनका भी वर्णन
जानना चाहिये। उसके पूर्वभव का वर्णन इस प्रकार है—यह पूर्वभव में
चंपा नामकी नगरी में कि जिसमें पूर्णभद्र नाम का उद्यान था और
रूपक गाथापति जिस में रहता था उस गाथापति की यह रूपश्री भार्या
से “रूपा दारिका” इस नाम से पुत्री उत्पन्न हुई थी। बाद में प्रभु का
उपदेश सुनकर यह प्रतिशोध को प्राप्त हो गई और कालीदेवी की तरह
यह आर्या बन गई इसके आगे जिस तरह का काली देवी का वृत्तान्त
बना इसी तरह से इसका भी जानना चाहिये। जब यह काल अवसर
काल कर गई तब यह भूतानंद इन्द्र की अग्रमहिषीरूप से उत्पन्न हुई।
वहाँ इसकी कृच्छ्रकर्म १, पल्य की स्थिति है। इस प्रकार रूपा देवी के
कथानक का यह निक्षेपक है। इसी तरह से (२) सुरूपा (३) रूपांशा
(४) रूपकावती (५) रूपकान्ता और ६ रूपप्रभा का भी वर्णन जानना

नाम रूपकावतंसक इतुं अने जे सिंहासन उपर ते भेसती इती तेनुं नाम
रूपक इतुं. जेभ पडेलां काली देवीनुं वर्णन करवाभां आठ्युं छे तेभज आनुं
वर्णन पणु समलु लेवु जेधजे तेना पूर्वभवनुं वर्णन आ प्रभाणु छे—
आ पूर्वभवभां चंपा नामनी नगरीभा-डे जेभां पूर्वलद्रा नामे उद्यान इतुं
अने रूपक गाथापति जेभां रहेतो इतो. ते गाथापतिनी आ रूपश्री लार्याथी
'रूपादारिका' आ नामथी पुत्री रूपे उत्पन्न थछ इती. त्यारपछी प्रभुने
उपदेश आलणीने जे गोधने प्राप्त थछ अने काली देवीनी जेभ आर्या थछ
गध. जेना पछीनी विगन काली देवीनी इती तेवी जे जेनी पणु समलु देवी
जेधजे. न्यारे तेणुं काल अवसरे काल कर्यो त्यारे आ भूतानंद इन्द्रनी
अग्रमहिषी (पटशापी) ना रूपभां उत्पन्न थछ त्यां तेनी थोडी ज्योछी
जेक पल्यनी स्थिति छे. आ प्रभाणु रूपादेवीना कथानकने आ निक्षेपक छे.
आ प्रभाणु जे (२) सुरूपा, (३) रूपांशा, (४) रूपकावती, (५) रूपकान्ता अने

भणितव्याः=अग्रमहिष्यो वक्तव्याः यावत् महाघोषस्य । महाघोषेन्द्रस्य । निक्षेप-
कश्चतुर्थवर्गस्य ॥ सू०९ ॥

॥ इति धर्मकथानां चतुर्थो वर्गः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमो वर्गः प्रारभ्यते—पंचमवर्गस्त ' इत्यादि ।

मूलम्—पंचमवर्गस्त उक्त्वेवओ, एवं खलु जंबू ! जाव
वत्तीसं अज्झयणा पणत्ता, तंजहा—कमला? कमलप्पभा२
चेव, उप्पला३ य सुदंसणा४ । रूववई५ बहुरूवा६, सुरूवा७
सुभगाविय८ ॥ १ ॥ पुण्णा९ बहुपुत्तिया१० चेव, उत्तमा११
तारयाविय१२ । पउमा१३ वसुमती१४ चेव, कणगा१५ कण-
गप्पभा१६ ॥२॥ वडेंसा१७ केउमई१८ चेव, वइरसेणा१९
रइप्पिया२० । रोहिणी२१ नवमिया२२ चेव, हिरी२३ पुप्फ-
वईइय २४ ॥३॥ भुयगा२५ भुयगवई२६ चेव, महाकच्छाँ-
पराइया२८ । सुघोसा२९ विमला३० चेव, सुस्सरा३१ यस्स-
सवई३२ ॥४॥ उक्त्वेवओ पढमज्झयणस्त, एवं खलु जंबू !
तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहेसमोसरणं जाव परिसा
पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं कमलादेवी कमलाए
रायहाणीए कमलवडेंसए भवणे कमलंसि सीहासणांसि सेसं
जहा कालीए तहेव णवरं पुठ्वभवे नागपुरे नयरे सहसंब-

चाहिये । ये देवियां भूतानंद इन्द्र की तरह उत्तरीय इन्द्रों की भी अग्र-
महिषियां हैं । और ये ही महाघोषेन्द्र की भी हैं । इस प्रकार यह चतुर्थ
वर्ग का निक्षेपक (स्वरूप) है ।

॥ चतुर्थवर्ग समाप्त ॥

(१) इपप्रलावुं वणुंन पणु समए देवुं नेधये. आ अधी देवीओ भूतानंद
धन्द्रनी नेम उत्तरीय धन्द्रोनी पणु अग्रमहिषीओ (पटराणीओ) छे. अने
महाघोषेन्द्रनी पणु तेओण पटराणीओ छे. आ प्रमाणे आ योथा वर्गने
निक्षेपक छे.

योथो वर्ग समाप्त.

वृणे उज्जाणे कमलस्स गाहावइस्स कमलसिरीए भारियाए
कमला दारिया पासस्स० अंतिए निक्खंता कालस्स पिसा-
यकुमारिंदस्स अग्गसहिंसी अद्धपलिओवमं ठिई, एवं सेसा
वि अज्जयणा दाहिणिह्हाणं वाणसंतररिंदाणं भाणियठ्वाओ
सत्त्वाओ णागपुरे सहस्संबवणे उज्जाणे साया पिया धूया सरि-
सनामया, ठिई अद्धपलिओवमं ॥ सू० १० ॥

॥ पंचमो वर्गो समत्तो ॥ ५ ॥

टीका—‘ पंचमवर्गस्त ’ पञ्चमवर्गस्य उत्क्षेपकः । सुधर्मस्वामी प्राह—एवं
खलु जम्बूः । इत्यादि, यावत् द्वात्रिंशद् अध्ययनानि कमलादि नामकानि प्रज्ञ-
प्तानि, तद्यथा—तेषां नामानि गाथा चतुष्टयेन प्राह—

“ कमला १ कमलप्रभा २ चैव, उत्पला ३ च सुदर्शना ४ ।

रूपवती ५ बहुरूपा ६, सुरूपा ७ सुभगा ८ ऽपि च ॥ १ ॥

—पंचम वर्ग प्रारंभः—

‘ पंचम वर्गस्त उक्खेवओ ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(पंचमवर्गस्त उक्खेवओ) हे भदंत ! पांचवें वर्ग का
उत्क्षेपक प्रारंभ का स्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने किस प्रकार से
प्ररूपित किया है ? इस प्रकार जंबूस्वामी के पूछने पर सुधर्मास्वामी ने
उनसे इस प्रकार कहा—(एवं खलु जंबू ।) हे जंबू ! सुनो—वह इस तरह
से है—(जाव वत्तीसं अज्जयणा पणत्ता—तं जहा (१) कमला (२) कम-
लप्रभा चैव, (३) उत्पला य (४) सुदर्शना । (५) रूपवती (६) बहुरूपा (७)
सुरूपा (८) सुभगाविय, । (९) पुण्णा (१०) बहुपुत्तिया चैव (११) उत्तमा
(१२) तारयाविय । (१३) पडमा (१४) वसुमती चैव (१५) कणगा (१६)
कणगप्पमा (१७) वडसा (१८) केउमई चैव (१९) बहरसेणा (२०) रइ-

पांथमो वर्ग प्रारंभः

‘ पंचम वर्गस्त उक्खेवओ ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(पंचम वर्गस्त उक्खेवओ) हे भदंत ! पांचम वर्ग का
उत्क्षेपक प्रारंभ—तु स्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने देवी शीते प्ररूपित कियुं
छे ? ओ प्रभाणे ञ्णु स्वाभीता प्रश्न कथा णाह सुधर्मा स्वाभीणे तेभने
आ प्रभाणे कथुं के—(एवं खलु जंबू ।) हे ञ्णु ! आलणे, ते आ प्रभाणे छे—

(जाव वत्तीसं अज्जयणा पणत्ता—तं जहा (१) कमला (२) कमलप्रभा
चैव, (६) उत्पला य, (४) सुदर्शना (५) रूपवती (६) बहुरूपा (७) सुरूपा (८)

पूर्णा ९ बहुपुत्रिका १० चैव, उत्तमा ११ तारका १२ ऽपि च ।
 पद्मा १३ वसुमती १४ चैव, कनका १५ कनकप्रभा १६ ॥ २ ॥
 अवतंसा १७ केतुमती . १८ चैव, वज्रसेना १९ रतिप्रिया २० ।
 रोहिणी २१ नवमिका २२ चैव, ह्रीः २३ पुष्पवती २४ ति च ॥ ३ ॥
 भुजगा २५ भुजगवती २६ चैव, महाकच्छा २७ ऽपराजिता २८ ॥
 सुघोषा २९ विमला ३० चैव, सुस्वरा ३१ च सरस्वती ३२ ॥ ४ ॥

प्रिया । (२१) रोहिणी (२२) नवमिया चैव (२३) हिरी (२४) पुष्पवईइय ।
 (२५) भुयगा (२६) भुयगवई चैव (२७) महाकच्छा (२८) पराइया (२९)
 सुघोसा (३०) विमला चैव (३१) सुस्वरा (३२) सरसवई) इस पंचम
 वर्ग के श्रमण भगवान् महावीर ने कमलादि नामवाले ३२ अध्ययन
 प्रज्ञप्त किये हैं । इनके नाम सूत्रकार चार गाथाओं द्वारा इस तरह से
 प्रकट करते हैं । कमला १, कमलप्रभा २, उत्पला ३, सुदर्शना ४, रूप-
 वती ५, बहुरूपा, ६, सुरूपा ७, सुभगा ८, पूर्णा ९, बहुपुत्रिक १०,
 उत्तमा ११ तारका १२, पद्मा १३, वसुमती १४, कनका १५ कनकप्रभा
 १६, अवतंसा १७, केतुमती, १८, वज्रसेना १९, रतिप्रिया २०, रोहिणी
 २१, नवमिका २२, ह्री २३, पुष्पवती, २४, भुजगा, २५, भुजगवती २६,
 महाकच्छा २७, अपराजिता २८, सुघोषा २९, विमला ३०, । सुस्वरा

सुभगाविय, (९) पुण्णा (१०) बहुपुत्रियो चैव (११) उत्तमा (१२) तारयाविय,
 (१३) पडमा, (१४) वसुमती चैव (१५) कणगा, (१६) कणगप्पभा, (१७)
 वडेंसा, (१८) केउमइ चैव, (१९) वइससेणा, (२०) रइप्पिया, (२१) रोहिणी,
 (२२) नवमिया चैव (२३) हिरी (२४) पुष्पवईइय, (२५) भुयगा (२६) भुय-
 गवई चैव, (२७) महाकच्छा (२८) पराइया, (२९) सुघोसा (३०) विमला चैव
 (३१) सुस्वरा, (३२) य सरसवई)

श्रमणु लगवान् महावीरे आ पांचमा वर्गना कमला वगेरे नामोवाणा
 उर अध्ययने प्रज्ञप्त कर्थां छे अमेनां नामो सूत्रकार चार गाथाओ वडे अ
 प्रमाणे प्रकट करे छे—कमला (१), कमलप्रभा (२), उत्पला (३), सुदर्शना
 (४), रूपवती (५), बहुरूपा (६), सुरूपा (७), सुभगा (८), पूर्णा (९), बहु-
 पुत्रिका (१०), उत्तमा (११), तारका (१२), पद्मा (१३), वसुमती (१४),
 कनका (१५), कनकप्रभा (१६), अवतंसा (१७), केतुमती (१८), वज्रसेना
 (१९), रतिप्रिया, (२०), रोहिणी (२१), नवमिका (२२), ह्री (२३), पुष्प-
 वती (२४) भुजगा (२५), भुजगवती (२६), महाकच्छा (२७), अपराजिता
 (२८), सुघोषा (२९), विमला (३०), सुस्वरा (३१), सरस्वती (३२).

उत्क्षेपकः प्रथमाध्ययनस्य । जम्बूस्वामिना पृष्ठे सुधर्मास्वामीप्राह-एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहे 'समोसरणं' समवसरणं=भग-

३१, सररवती ३२, । (उक्खेवओ पढमज्झयणस्स एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं कमला देवी, कमलाए रायहाणीए कमलवडेंसए भवणे कमलंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहेव णवरं पुव्वभवे नागपुरे नयरे सहसंबवणे उज्जाणे कमलस्स गाहावइस्स कमलसिरीए भरियाए कमला दारिया पासस्स० अंतिए निक्खंता कालस्स पिसायकुमारिंदस्स अग्गमहिस्सी अद्धपलिओवमं ठिई, एवं सेसा वि अज्झयणा दाहिणिल्लाणं वाणमंतरिंदाणं भाणियव्वाआ, सव्वओ णागपुरे सहसंबवणे उज्जाणे माया पिया धूया सरिसनामया, ठिई अद्धपलिओवमं) इसके बाद जंबूस्वामी ने श्री सुधर्मास्वामी से पूछा कि इनमें से कमला नामका जो प्रथम अध्ययन है उसका उत्क्षेपक किस तरह से है-इस प्रकार जंबूस्वामी के पूछने पर उनसे सुधर्मास्वामी ने कहा-कि हे जंबू ! सुनो-तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है-उस काल में और उस समय में राजगृह नामका नगर था। उसमें भगवान् महावीर का आगमन हुआ। यावत् वहाँ की परिषद् प्रभु को वंदना करने के लिये आई।

(उक्खेवओ पढमज्झयणस्स, एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिसापज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं कमला-देवी कमलाए रायहाणीए कमलवडेंसए भवणे कमलंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहेव णवरं पुव्वभवे नागपुरे नयरे सहसंबवणे उज्जाणे कमलस्स गाहा-वइस्स कमलसिरीए भरियाए कमला दारिया पासस्स० अंतिए निक्खंता कालस्स पिसाय कुमारिंदस्स अग्गमहिस्सी अद्धपलिओवमं ठिई, एवं सेसा वि अज्झयणा दाहिणिल्लाणं वाणमंतरिंदाणं भाणियव्वाओ, सव्वाओ णागपुरे सहसंबवणे उज्जाणे मायापिया धूया सरिसनामया, ठिई अद्धपलिओवमं)

त्यारपथी जंबू स्वामीओ श्री सुधर्मा स्वामीने पूछथु के आ णधामां कमला नामे के पडेत्तु अध्ययन छे तेने उत्क्षेपक केवी रीते छे ?

आ प्रभाणु जंबू स्वामीओ प्रश्न कथां णाद तेमने श्री सुधर्मा स्वामीओ कथां के छे जंबू ! सांभणो, तमाग प्रश्नने उत्तर आ प्रभाणु छे के ते क्षणे अने ते समये राजगृह नामे नगर छत्तु. तेमां लगवान महावीरनुं आगमन थयुं. यावत् नगरनी परिषद तेमने वंदना करवा भाटे आवी. प्रभुओ सौने

वन् महावीरस्वामी समागमनं संजातं, यावत् परिषद् भगवन्तं पर्युपाहते । तस्मिन् काले तस्मिन् समये कमला देवी कमलायां राजधान्यां, कमलावतंसके भवने कमले सिंहासने, शेषं यथा—काल्याः=कालीदेव्या वर्णनं तथैवाऽस्या अपि, नवरं= विशेषोऽयम्—पूर्वभवे नागपुरं नगरं, सहस्राश्रवनमुद्यानम्, कमलस्य गाथापतेः कमलश्रियो भार्यायाः कमला दारिका पार्श्वस्यार्हतः पुरुषादानीयस्य अन्तिके 'निखंता' निष्क्रान्ता=प्रव्रजिता, कालस्य पिशाचकुमारेन्द्रस्य अग्रमहिषी । अर्द्धपल्योपमं स्थितिः । एवं शेषाण्यपि कमलप्रभादिनामकान्यपि एकत्रिंशद् अध्य-

प्रभु ने सबको धर्म का उपदेश दिया । परिषद् ने प्रभु की पर्युपासना की । उस काल में और उस समय में कमला नाम की देवी, कमला राजधानी में कमलावतंसक भवन में रहती थी । उस के सिंहासन का नाम कमला था । इसके आगे का समस्त वर्णन कालीदेवी के वर्णन जैसा ही जानना चाहिये । परन्तु इसमें जो विशेषता है वह इस प्रकार है—जब गौतमस्वामी ने उसके—अर्थात् देवी के चले जाने के बाद उसके पूर्वभव का वृत्तान्त पूछा—तब प्रभु ने उनसे इस प्रकार कहा—पूर्वभव के इसके नगर का नाम नागपुर था—उसमें सहस्राश्रवन नाम का उद्यान था । उस नगर में कमल नामका गाथापति रहता था ।—उसकी भार्या का नाम कमला श्री था । इनके एक पुत्री थी जिस का नाम कमला था । वह काललब्धि के आनेपर पुरुषदानीय—पुरुष श्रेष्ठ—पार्श्वनाथ अर्हत प्रभु के समीप प्रव्रजित हो गई । बाद में मरने पर वह काल नाम के पिशाच कुमारेन्द्र की अग्रमहिषी बनी । वहाँ इसकी स्थिति अर्द्धपल्य की है ।

धर्मना उपदेश आये। परिषदे प्रभुनी पर्युपासना करी। ते काले अने ते समये कमला नामनी देवी, कमला राजधानीमां कमलावतंसक भवनमां रहती होती। तेना सिंहासनतुं नाम कमला हुतुं। अने पछीतुं अधुं वर्णन काली देवीना वर्णननी जेम ज समञ्ज देवुं जेधये। परंतु आमां जे क'छ विशेषता छे ते जे प्रमाणे छे—जे न्यारे गौतम स्वामीजे देवीना गया पछी तेना पूर्व भव विशेषनी विगत पूछी त्यारे प्रभुजे तेमने आ प्रमाणे कछुं—जे आना पूर्व भवना नगरतुं नाम नागपुर हुतुं। तेमां सहस्राश्रवन नामे उद्यान हुतुं। ते नगरमां कमल नामे गाथापति रहते हुते। तेनी पत्नीतुं नाम कमलाश्री हुतुं। अने जेक हिकरी हुती तेतुं नाम कमला हुतुं, ते जेज्य काललब्धिना अवसरे पुरुषदानीय—पुरुष श्रेष्ठ—पार्श्वनाथ अर्हत प्रभुनी पासे प्रव्रजित थछ गछ। त्यारपछी मृत्यु थया बाद ते काल नामना पिशाच कुमारेन्द्रनी अग्र-

ચનાનિ દક્ષિણાત્યાનાં વાનવ્યન્તરેન્દ્રાણામગ્રમદ્વિપીણાં મણિતત્ત્યાનિ । સર્વાશ્વૈતાઃ
પૂર્વમવેનાગપુરે નગરે સંજાતાઃ, સહસ્રામ્રવને ઉદ્યાને ભગવત્પાર્શ્વપ્રભોઃ સમીપે પ્રવ્ર-
જિતાઃ । માતાપિતા દુહિતા સદ્ગનામકઃ । આસાં સ્થિતિરર્ધપત્યોપમમ્ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

॥ ઇતિ ધર્મકથાનાં પञ્ચમો વર્ગઃ સમાપ્તઃ ॥ ૫ ॥

મૂલ્ય—છટ્ટોવિ વર્ગો પંચમવર્ગસરિસો, ણવરં મહાકાલા-
દીપં ઉત્તરિહ્યાણં ઇંદાણં અગ્ગમદ્વિસીઓ પુઠ્ઠભવે સાગેય-
નયરે ઉત્તરકુરુ ઉજ્જાણે માયા પિયા ધૂયા સરિસણામયા
સેસં તં ચેવ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

॥ છટ્ટો વર્ગો સમત્તો ॥ ૬ ॥

વાકી જો ૩૧, કમલપ્રભા નામકે અધ્યયન હૈં વે દક્ષિણ દિશા સંબન્ધી
વાનવ્યંતરેન્દ્રોં કી અગ્રમદ્વિષિયોં કૈં હૈં ઈસા જાનના ચાહિયે । યે સવ
હી પૂર્વમવ મેં નાગપુર નગર મેં ઉત્પન્ન હુઈ—ઔર સહસ્રામ્રવન નામકે
ઉદ્યાન મેં ભગવાન્ પાર્શ્વનાથ કૈં સમીપ પ્રવ્રજિત હુઈ । ઈન અધ્યયનોં મેં
માતા પિતા તથા પુત્રી યે સવ ઈક સરીચે નામવાલી હૈં । જૈસે કમલપ્રભા
નામક અધ્યયન મેં માતા કા નામ કમલપ્રભા શ્રી, પિતા કા નામ કમ-
લપ્રભ પૂર્વ પુત્રી કા નામ કમલપ્રભા હૈં—ઈત્તી તરહ સે ઔર અધ્યયનોં મેં
મી જાનના ચાહિયે । ઈન મત્ર દેવિયોં કી સ્થિતિ અર્ધપત્ય કી હૈં ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

—:પંચમવર્ગ સમાપ્ત:—

મદ્વિપી (પટગણી) બની. ત્યા તેની સ્થિતિ અર્ધપત્યની છે. શેષ જે ૩૧
કમલપ્રભા નામના અધ્યયનો છે તે દક્ષિણ દિશા સંબન્ધી વાનવ્યંતરેન્દ્રોની
અગ્રમદ્વિષીઓ (પટગણીઓ) નાં સમન્વા લેઈએ. આ બધી પૂર્વભવમાં
નાગપુર નગરમાં ઉત્પન્ન થઈ અને સહસ્રામ્રવન નામના ઉદ્યાનમાં ભગવાન
પાર્શ્વનાથની પાસે પ્રવ્રજિત થઈ ગઈ. આ બધાં અધ્યયનોમાં માતાપિતા તેમજ
પુત્રી આ સર્વે એક સરખાં નામવાળાં છે. જેમકે કમલપ્રભા નામના અધ્યય-
નમાં માતાનું નામ કમલપ્રભાશ્રી, પિતાનું નામ કમલપ્રભ અને પુત્રીનું નામ
કમલપ્રભા છે એ પ્રમાણે બીજા અધ્યયનો વિષે પણ બાણી લેવું લેઈએ. આ
બધી દેવીદેવોની સ્થિતિ અર્ધપત્યની છે. ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

પાંચમો વર્ગ સમાપ્ત.

टीका—‘ छट्टो वि ’ इत्यादि षष्ठोऽपि वर्गः पञ्चमवर्गसदृशः । नवरम्—एता-
वान् विशेषः—अत्र महाकालादीनाम् उत्तरीयाणामिन्द्राणामग्रमहिष्यः । एताः
सर्वाः पूर्वभवे साकेतनगरे उत्तरकुरुघाने पार्श्वप्रभुसमीपे प्रव्रजिताः मातरः पितरो
दुहितरः सदृशनामकाः । शेषं तदेव सर्वं वाच्यम् ॥ सू० ११ ॥

इति धर्ककथानां षष्ठो वर्गः समाप्तः ॥ ६ ॥

—षष्ठवर्ग प्रारंभः—

‘ छट्टो वि वर्गो पंचमवर्गसरिसो ’ इत्यादि ।

टीकार्थः—(छट्टो वि वर्गो पंचमवर्गसरिसो, णवरं महाकालादीणं
उत्तरिल्लाणं इंदाणं अग्रमहिषीओ पुव्वभवे सागेयनयरे उत्तरकुरुउ-
ज्जाणे माया पिया धूया सरिसणामया सेसं तं चेव ११) छटा वर्ग भी
पंचमवर्ग के जैसे ही है । परन्तु इसमें जो उसकी अपेक्षा विशेषता है
—वह इस प्रकार है—इस अध्ययन में उत्तर दिशा के इन्द्र महाकाल
आदिकों की अग्रमहिषियों का वर्णन है । ये सब अग्रमहिषियां पूर्वभव
में साकेत नगर (अयोध्या) में उत्तर कुरु नामके उद्यान में पार्श्वप्रभु के
समीप प्रव्रजित हुई हैं । माता पिता एवं पुत्रियां ये सब एक जैसा
नामवाले हैं । बाकी का इनके त्रिषय का समस्त कथन कालीदेवी के
वर्णन जैसा जानना चाहिये ।

—षष्ठवर्ग समाप्तः—

छट्टो वर्ग प्रारंभः—

‘ छट्टो वि वर्गो पंचम वर्गसरिसो ’ इत्यादि—

(छट्टो विवर्गो पंचमवर्गसरिसो, णवरं महाकालादीणं उत्तरिल्लाणं इंदाणं
अग्रमहिषीओ पुव्वभवे सागेय नयरे उत्तरकुरु उज्जाणे मायापिया धूया सरिस
णामया सेसं तं चेव ११)

छट्टो वर्ग षष्ठु पांचमा वर्गना जेवो ज छे. परंतु आमां जे तेना
करतां विशेषता छे, ते जे प्रमाणे छे के आ अध्ययनमां उत्तर दिशाना इन्द्र
महाकाल वगेरेनी अग्रमहिषीओ (पटराचीओ) तुं वर्णन छे. आ अघी
अग्रमहिषीओ पूर्वभवमां साकेत नगरमां उत्तरकुरु नामना उद्यानमां पार्श्व
प्रभुनी पासे प्रव्रजित थछ छे. मातापिता अने पुत्रीओ अघां जेक सरणां
नामवाणां छे. जेमना विषेतुं आकीतुं अधुं कथन काली देवीना वर्णन जेवुं
जल्लुं जेधज्जे.

छट्टो वर्ग समाप्त.

अथ सप्तमो वर्गः प्रारभ्यते—‘ सत्तमस्से ’ त्यादि ।

मृळम्—सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ, एवं खलु जंवू । जाव चत्तारि अज्झयणा पणत्ता, तं जहा—सूरप्पभा आयवा अच्चिमाली पभंकरा, षडमज्झयणस्स उक्खेवओ, एवं खलु जंवू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिस्ता पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरप्पभा देवी सूरंग्गि विमाणंसि सूरप्पभंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहाणवरं पुव्वभवे अरक्खुरीए नयरीए सूरप्पभस्स गाहाव-इस्स सूरसिरीए भारियाए सुरप्पभा दारिया सूरस्स अग्ग-सहिती टिई अद्धपलिओवसं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं सेसं जहा कालीए, एवं सेसाओवि सव्वाओ अरक्खुरीए णयरीए ॥ सू० १२ ॥ ॥ सत्तमो वग्गो समत्तो ॥ ७ ॥

टीका—‘ सत्तमस्से ’ ति—सप्तमस्य वर्गस्य उत्क्षेपकः । सुधर्मस्वामीकथयति—एवं खलु हे जम्बू ! यावत् चत्वारि अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—तानि

—सप्तमवर्ग प्रारंभः—

‘ सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ ’ इत्यादि ।

टीकार्थः—(सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ एवं खलु जंवू ! जाव चत्तारि अज्झयणा पणत्ता) हे भदन्त ! सातवें वर्ग का उत्क्षेपक किस प्रकार है ? इस जंबूस्वामी के प्रश्न करने पर गौतमस्वामी उनसे कहते हैं—कि हे जंबू ! सुनो, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—श्रमण

सातमो वर्ग प्रारंभ—

‘ सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ ’ इत्यादि—

टीकार्थ—(सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ एवं खलु जंवू ! जाव चत्तारि अज्झयणा पणत्ता) हे भदन्त ! सातमो वर्गको उत्क्षेपक देवी रीते छे ?

जम्बू स्वामीना आ प्रश्नने सासणीने गौतम स्वामी तेमने कहे छे कहे जम्बू ! सांलणो, तभारा प्रश्नने उत्तर आ प्रभासु छे के श्रमणु लगवान भडावीरे आ सातमो वर्गना चार अध्ययने प्रज्ञपित कथां छे.

यथासूरप्रभा १, आतपा २, अर्चिर्मालिः ३, प्रभङ्करा ४ । प्रथमाध्ययनस्योत्क्षे-
पकः । सुधर्मस्वामीप्राह—एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राज-
गृहे समवसरणम्=भगवद्वर्धमानस्वामिसमागमनम् यावत् परिषत् पर्युपास्ते ।
तस्मिन् काले तस्मिन् समये सूरप्रभादेवी, सूरविमाने, सूरप्रभे सिंहासने, शेषं

भगवान महावीर ने इस सातवें वर्ग के चार अध्ययन प्ररूपित क्रिये हैं
-(तं जहा-सूरप्पभा, आयवा, अच्चिमाली, पभंकरा, पढमज्झयणस्स,
उक्खेवओ एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोस-
रणं जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरप्पभा देवी,
सूरंसि विमाणंसि सूरप्पभंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहा) वे
चार अध्ययन इस प्रकार है सूरप्रभा १, आतपा २, अर्चिमाली ३,
प्रभङ्करा ४, इनमें प्रथम अध्ययन का उत्क्षेपक हे जंबू ! इस प्रकार है—
उस काल और उस समय में राजगृह नाम के नगर में भगवान् वर्ध-
मानस्वामी का आगमन हुआ था—प्रभु का आगमन सुनकर वहां की
परिषद् उनको वंदना करने के लिये उनके समीप गई—प्रभु ने सबको
धर्म का उपदेश दिया । उपदेश सुनकर सबने प्रभु की पर्युपासना की ।
उस काल और उस समय में सूरप्रभा नाम की एक देवी जो सूरविमान
में रहती थी—और सूरप्रभ सिंहासन पर बैठती थी प्रभु को वंदना करने
के लिये आई । इसके बाद का इसका वृत्तान्त जैसा पहिले कालीदेवी

(तं जहा-सूरप्पभा, आयवा, अच्चिमाली, पभंकरा, पढमज्झयणस्स,
उक्खेवओ एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव
परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरप्पभादेवी, सूरंसि विमाणंसि
सूरप्पभंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहा)

ते चार अध्ययनो आ प्रभाणे छेः—सूरप्रभा १, आतपा २, अर्चिमाली
३, प्रभङ्करा ४, छे जम्बू ! आ षधामां पडैला अध्ययनने। उत्क्षेपक आ
प्रभाणे छे छे ते काले अने ते समये राजगृह नामना नगरमां भगवान
वर्धमान स्वामीनुं आगमन थयु प्रभुनुं आगमन सांलणीने त्यांनी परिषद
तेमने वंदना करवा माटे तेमनी पासै गधं. प्रभुअे सौने धर्मने उपदेश
आप्ये। उपदेश सांलणीने सौअे प्रभुनी पर्युपासना करी. ते काले अने ते
समये सूरप्रभा नामनी अेक देवी-अे सूर विमानमां रडेती डती अने सूरप्रभ
सिंहासन उपर अेसती डती—प्रभुनी वंदना करवा माटे आवी. अेना पछीनुं

ચથા કાલ્યાઃ=કાલી દેવ્યા વર્ણનં તથા વિજેયમ્ , નવરમ્=અયં વિશેષઃ=પૂર્વભવે
અરક્ષુર્યાં નગર્યાં સૂરપ્રમન્ય ગાથાપતેઃ, સૂરશ્રિયો માર્યાયાઃ સૂરપ્રમા દારિકા,
સૂરસ્ય અગ્રમહિષી સ્થિતિરદ્વપલ્યોપમં પન્નમિર્વર્ષતૈરભ્યધિક્કમ્ । શેષં યથા કાલ્યાઃ ।
એવં ગ્રેષા અપિ=આતપાદિકોઃ દેવ્યો વાચ્યાઃ । સર્વાઃ પૂર્વભવે અરક્ષુર્યાં
નગર્યામાસન્ ॥ સૂ૦૧૨ ॥

॥ ઇતિ ધર્મકથાનાં સપ્તમો વર્ગઃ સમાપ્તઃ ॥ ૭ ॥

કા વૃત્તાન્ન લિલા જા તુકા હૈ-વૈલા હી હૈં । ઉસમૈં કુલ્હ અન્તર નહીં હૈ
(નવરં) પરન્તુ જિન વાતોં મૈં અન્તર હૈ-વહ્ ઇસ પ્રકાર હૈ-(પુવ્વભવે)
યહ પૂર્વભવ મૈં (અરક્ષુરીએ નયરીએ સૂરપ્પમસ ગાહાવહ્સસ સૂરસિરીએ
મારિયાએ સૂરપ્પમા દારિકા સૂરસસ અગ્ગમહિસી ઠિઈ અદ્વપલિઓવમં
પંચહિં વાસસર્હિં અવ્મહિયં સેસં જહા કાલીએ એવં સેસાઓ વિ સવ્વાઓ
અરક્ષુરીએ નયરીએ ૧૨) અરક્ષુર નામકી નગરી મૈં:નિવાસ કરનેવાલે
સૂરપ્રમા ગાથાપતિ કી સૂર શ્રી માર્યા કી કુલ્હિ સે અવતરી થી । ઇસકા
નામ સૂરપ્રમા થા । યહ સૂર કી અગ્રમહિષી હુઈ । ઇસકી વહાં પાંચસૌ
વર્ષ સે અધિક અર્ધપલ્ય કી સ્થિતિ હૈ । ઓર ઇસકા ઇસ અવસ્થા કા
સમસ્ત વર્ણન કાલી સમાન હી હૈ । ઇસી તરહ કા આતપાઆદિક ૩
દેવિયોં કા મી જીવન વૃત્તાન્ત હૈ । યે ૩ તીનોં હી દેવિયાં અપને ૨પૂર્વ-
ભવ મૈં અરક્ષુર નગરી મૈં જન્મી થીં ॥ સૂ૦૧૨ ॥

-:સસમવર્ગ સમાપ્ત:-

આતું વર્ણુન કાલી દેવીના વર્ણુન જેવુ જ સમજુ લેવુ નેધએ, તેમાં કોઈ
પણુ જાતનો તક્ષવન નથી. (નવરં) પરંતુ જે વાતમાં તક્ષવત છે, તે આ
મમાણે છે. (પુવ્વભવે) આ પૂર્વભવમાં

(અરક્ષુરીએ નયરીએ સૂરપ્પમસ ગાહાવહ્સસ સૂરસિરીએ મારિયાએ સૂરપ્પમા
દારિકા સૂરસસ અગ્ગમહિસી ઠિઈ અદ્વપલિઓવમં પંચહિં વાસસર્હિં અવ્મહિયં
સેસં જહા કાલીએ, એવં સેસાઓ વિ સવ્વાઓ અરક્ષુરીએ નયરીએ ૧૨)

અરક્ષુરી નામની નગરીમાં રહેનારી સૂરપ્રમા ગાથાપતિની સૂરશ્રીમાર્યાના
ગર્ભથી જન્મ પામી હતી, તેનું નામ સૂરપ્રમા હતું તે સૂરની અગ્રમહિષી
(પટશાત્લી) થઈ. તેની ત્યાં પાંચસો વર્ષ કરતાં વધારે અર્ધપલ્યની સ્થિતિ
છે. તેનું આ અવસ્થા વિષેનું ગદ્યુ વર્ણુન કાલીના જેવું જ છે. એ પ્રમાણે જ
આતપા વગેરે ૩ દેવીઓનું પણુ જીવનવૃત્તાંત છે. આ ત્રણે દેવીઓ પાત-
પાતાના પૂર્વભવમાં અરક્ષુર નગરમાં જન્મ પામી હતી. ॥સૂ૦૧૨॥

આતપો વર્ગ સમાપ્ત.

अथाष्टमो वर्गः प्रारभ्यते—‘ अट्टमस्से ’ इत्यादि ।

मूलम्—अट्टमस्स उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! जाव चत्तारि अज्झयणा पणत्ता, तं जहा—चंदप्पभा दोसिणाभा अच्चि-
माली पभंकरा, पढमस्स अज्झयणस्स उक्खेवओ, एवं
खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं
जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं चंद-
प्पभा देवी चंदप्पभंसि विमाणंसि चंदप्पभंसि सीहासणंसि
सेसं जहा कालीए, णवरं पुव्वभवे महुराए णयरीए भंडीर-
वडेसए उज्जाणे चंदप्पभे गाहावई चंदसिरी भारिया चंद-
प्पभा दारिया चंदस्स अग्गसहिसी टिई अद्धपलिओवमं
पण्णासाए वाससहस्सेहिं अट्टमहियं सेसं जहा कालीए,
एवं सेसाओवि महुराए णयरीए मायापियरोवि धूयासरि-
सणामा ॥ सू० १३ ॥ अट्टमो वर्गो समत्तो ॥ ८ ॥

टीका—‘ अट्टमस्से ति—अष्टमस्य उत्क्षेपकः । सुधर्मास्वामी प्राह—एवं खलु
हे जंबू ! यावत् चत्वारि अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा=तानि यथा—चन्द्रप्रभा १,
ज्योत्स्नाभा २, अर्चिर्मालिः ३, प्रभङ्करा ४ । प्रथमस्याध्ययनस्योत्क्षेपकः । एवं

—:अष्टमवर्गं प्रारभ—:

‘ अट्टमस्स उक्खेवओ ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—:(अट्टमस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू ! जाव चत्तारि अज्झयणा पणत्ता तं—जहा—चंदप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा,

आठमो वर्ग प्रारंभ

‘ अट्टमस्स उक्खेवओ , इत्यादि—

(अट्टमस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू ! जाव चत्तारि अज्झयणा पणत्ता—तं
जहा—चंदप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा, पढमस्स अज्झयणस्स उक्खे-

खलु हे जंबू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहे श्रीमहावीरस्वामिनः सम-
वर्णं, यावत्-परिपत् पर्युपासने । तस्मिन् काले तस्मिन् समये चन्द्रप्रभा देवी
चन्द्रप्रभे विमाने चन्द्रप्रभे विहासने जेपं यथा काल्याः=कालीदेव्या वर्णनं तद्वद्

पहमम्म अज्जयणस्स उक्खेवओ-एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं
समणं रायगिहे समोसरणं-जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं
समणं चंदप्पभादेवी चंदप्पमंसि विमाणंसि सीहासणंसि सेसं जहा
कालीए, णवरं पुव्वभवे महुराए णयरीए भंडीरवडंसए उज्जाणे चंद-
प्पभे गाहावई चंदसिरी भारिया चंदप्पभा दारिया) हे भदंत ! आठवें
वर्ग का उत्क्षेपक कैसा है ? इस प्रकार जंबूस्वामी के पूछने पर सुधर्मा-
स्वामी ने उनसे कहा-हे जंबू ! सुनो तुम्हाने प्रश्न का उत्तर इस प्रकार
है-श्रमण भगवान् महावीर ने इस वर्ग के चार अध्ययन प्रज्ञप्त किये है
-वे इस प्रकार से हैं-चंद्रप्रभा १, ज्योत्स्नाभा २, अर्चिर्वाली ३, प्रभं-
कग ४, । इनमे हे जंबू ! प्रथम चन्द्रप्रभा अध्ययन का उत्क्षेपक इस प्रकार
से है-उस काल में और उस समय में राजगृह नामके नगर में श्री
महावीर स्वामी का आगमन हुआ था-। उनसे धर्म का उपदेश प्राप्त
करने के लिये वहाँ की समस्त धार्मिक जनता उनके पास आई थी प्रभु
ने मंत्र के लिये धर्म का उपदेश सुनाया-सुनाकर सबों ने उनकी यावत्
पर्युपासना की । उस काल और उस समय में चंद्रप्रभा देवी जो कि

रओ-एव खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समणं रायगिहे समोसरणं-जाव
परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समणं चंदप्पभादेवी चंदप्पमंसि विमाणंसि
चंदप्पमंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए, णवरं पुव्वभवे महुराए णयरीए
भंडीरवडंसए उज्जाणे चंदप्पभे गाहावई चंदसिरी भारिया चंदप्पभा दारिया)

हे भन्त ! आठवा वर्गने उत्क्षेपक केवे छे ?

आ प्रभाण्णे जम्भु स्वामीना प्रश्नं कथां पाठं सुधर्मा स्वामीणे तेमने
इत्थं हे हे जंबू ! आभणो, तमाग प्रश्नो उत्तर आ प्रभाण्णे छे के श्रमण
भगवान् महावीरि आ वर्गतां चार अध्ययनो प्रज्ञप्त कथां छे, ते आ प्रभाण्णे
छे-चंद्रप्रभा १, ज्योत्स्नाभा २, अर्चिर्वाली ३, प्रभंङ्ग ४ हे जंबू !
आ आठवां उपदेश चन्द्रप्रभा नामे अध्ययनो उत्क्षेपक आ प्रभाण्णे छे के ते
क्षणं अने समये राजगृह नामना नगरमां श्री महावीर स्वामीतुं आगमन
कथं तेमनी पंचमी धर्मकथा आभणवा भाटे त्यांती णथी धार्मिक जनता त्यां
आणी. प्रभुणे धर्मने उपदेश सबणावथे आभणीने णथाणे तेमनी यावत्
पर्युपासना करी ते क्षणे अने ते समये चंद्रप्रभा देवी-के जे चंद्रप्रभ

विज्ञेयम्, नवरं=विशेषस्त्वयम्-पूर्वभवे मथुरायां नगर्या भण्डीरावतंसकमुद्यानम्, चन्द्रप्रभो गाथापतिः, चन्द्रश्रीभार्या, चन्द्रप्रभा दारिका, चन्द्रस्याग्रमहिषी, स्थितिरुद्धपत्योपमं पञ्चाशद्विर्वषहस्रैरभ्यधितम् । शेषं यथा काल्याः । एवं

चंद्रप्रभ विमान में रहती थी और चंद्रप्रभ सिंहासन पर बैठती थी—
 अरण भगवान् महावीर को वंदना करने एवं उनसे धर्म का उपदेश
 सुनने के लिये उनके निकट आई—। इसके बाद का इसका वृत्तान्त
 कालीदेवी के वृत्तान्त जैसा ही है । उसमें कोई अन्तर नहीं है । जहां
 अन्तर है—उसका खुलाशा इस प्रकार है—पूर्वभव में यह मथुरा नगरी
 में जन्मी थी । वहां भंडीरावतंसक उद्यान था । उस नगरी में चंद्रप्रभ
 नाम का गाथापति रहता था । उसकी भार्या थी जिसका नाम चंद्रश्री
 था । उनके यहां यह चंद्रप्रभा नामकी पुत्री थी । यह चन्द्र की अग्रम-
 हिषी बनी । (ठिई अद्धपलिओवमं, पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं
 सेसं जहा कालीए एवं सेसाओवि चंदस्स अग्गमहिसी) पचास हजार
 वर्ष से अधिक इसकी स्थिति आधेपत्य की है । इसके बाद का इसका
 जीवन वृत्तान्त काली दारिका के जीवन वृत्तान्त जैसा ही जानना
 चाहिये । इसी तरह ज्योत्स्नाभा आदिशेष ३ देवियों के संबन्ध को
 लेकर जो अध्ययन कहे गये हैं—वे जानना चाहिये ये सब ज्योत्स्नाभा

विमानमां रडेती इती अने चंद्रप्रभ विमानमां भेसती इती—श्रमणु लगवान
 महावीरनी वंदना करवा भाटे अने तेमनी पासेथी धर्मने। उपदेश सांभणवा
 भाटे तेमनी पासे आवी. तेना पधीनुं तेनुं वृत्तांत काली देवीना वृत्तांत
 नेपुं न्छे तेमां केध पणु जतने। तक्षवत नथी. ज्थां तक्षवत छे—तेनुं
 स्पष्टीकरणु आ प्रमाणे छे के पूर्वभवमां ते मथुरा नगरीमां जन्मी इती,
 त्यां लंडीरावतंसक उद्यान इतुं. ते नगरीमां चंद्रप्रभनामे गाथापति रडेते।
 इतो. चंद्रश्री तेनी भार्यानुं नाम इतुं. तेने चन्द्रप्रभा नामे पुत्री इती.
 आ चन्द्रनी अग्रमहिषी (पटराणी) थई.

(ठिई अद्धपलिओवमं, पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं सेसं जहा
 कालीए एवं सेसाओवि चंदस्स अग्गमहिसी)

पचास हजार वर्ष इततां आनी स्थिति अउधा पत्यनी छे. जेना,
 पधीनुं आनुं जवन विषेनुं वणुंन काली दारिकाना जवन नेपुं न्छे समज
 नेपुं नेधजे. आ प्रमाणे ज्योत्स्नाभा वगेरे आकी त्रणु देवीजोना संबधने
 लधने ने अध्ययने। इडेवामां आव्यां छे तेमने पणु समज देवां नेधजे.

शेषाः=ज्योत्स्नाभादि देव्योऽपि विज्ञेयाः । सर्वाः पूर्वभवे मथुरायां नगर्यां
जाताः; पार्श्वप्रभुममीपे च प्रव्रजिता । मातापितरोऽपि दुहितृसदृशनामानः ॥ सू० १३ ॥

इति धर्मकथानामाष्टमो वर्गः समाप्तः ॥ ८ ॥

अथ नवमो वर्गः प्राग्भ्यते—' णवमस्त ' इत्यादि ।

मूलम्—णवमस्त उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! जाव अट्टु-
अज्झयणा पणत्ता, तं जहा—पउसा सिवा सई अंजू रोहिणी
णवसिया, अचला अच्छरा, पढमज्झयणस्स उक्खेवओ, एवं
खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं
जाव परिसा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं पउमावई
देवी मोहम्मै कप्पे पउमवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए
पउमंसि सीहासणंसि जहा कालीए एवं अट्टुवि अज्झयणा
कालीगसएणं नायव्वा, णवरं सावत्थीए दो जणीओ हत्थिणा-
उरे दोजणीओ कंपिहपुरे दोजणीओ सागेयनयरे दोजणीओ
पउमे पिचरो विजया सायराओ सव्वाओऽवि पासस्स अंतिए
पव्वइयाओ सक्कस्स अग्गमहिस्सीओ ठिई सत्त पलिओवमाई
महाविदेहे वासे सिज्झिंहिति जाव अंतं काहिति ॥ सू० १४ ॥

॥ णवमो वर्गो समाप्तो ॥ ९ ॥

आदि देवियां पूर्वभव में (मथुराए णयरीए) मथुरा नगरी में उत्पन्न
हुई और पार्श्वनाथ प्रभु के समीप दीक्षित हुई । (माया पिचरो वि० धूया
सरिसणामा) इन पुत्रियों का नाम वैसा ही नाम इनके माता पिता का है ।

—: अष्टमवर्ग समाप्तः—

आ गंधी ज्योत्स्नाभा वगेरे देवीओ पूर्वभवमां (मथुराए णयरीए) मथुरा
नगरीमां उत्पन्न थर्ध अने पार्श्वनाथ प्रभुनी पासिथी दीक्षित थर्ध. (मायापिचरो
विठ्ठ धूया सरिसणामा) आ पुत्रीओनां नामो जेवां ज तेभनां मातापिताओनां
नामो पठ्ठुं छे.

आठमो वर्ग समाप्त.

टीका—' णवमस्से ' ति-नवमस्य वर्गस्योत्क्षेपकः । एवं खलु हे जम्बू ! यावत्-अष्ट-अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-पद्मा १, शिवा २, शची ३ अञ्जू ४, रोहिणी ५, नवमिका ६, अचला ७, अप्सराः ८ । एष प्रथमाध्ययनस्योत्क्षे-

-:नवमवर्ग प्रारंभ:-

णवमस्स उक्खेवओ इत्यादि ।

टीकार्थः—(णवमस्स उक्खेवओ-एवं खलु जंबू ! जाव अट्ट अज्झयणा पणत्ता-तं जहा-पउमा, सिवा, सई, अंजू, रोहिणी, णवमिया, अचला, अच्छरा, -पढमज्झयणस्स उक्खेवओ-एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिस्सा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं पउमावई, देवी सोहम्मै कप्पे पउमवडेसए विमाणे सभाए सुहम्माए पउमंसि-सीहासणंसि जहा कालिए एवं अट्टवि अज्झयणा कालीगमएणं नायव्वा) हे भदंत ! नौवें वर्ग का उत्क्षेपक किस प्रकार से है ? इस प्रकार जंबू स्वामी के प्रश्न करने पर सुधर्मा स्वामी उनसे कहते हैं कि हे जंबू ! सुनो-तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस तरह से है-श्रमण भगवान् महावीर ने इस वर्ग के यावत् आठ अध्ययन प्ररूपित किये-वे इस प्रकार से हैं-पद्मा १, शिवा, २, शची ३, अंजू ४, रोहिणी ५, नवमिका ६, अचला ७, और अप्सरा । इनमें हे जंबू ! प्रथम

नवमो वर्ग प्रारंभ.

(णवमस्स उक्खेवओ-एवं खलु जंबू ! जाव अट्ट अज्झयणा पणत्ता-तं जहा पउमा, सिवा, सई, अंजू, रोहिणी, णवमिया, अचला, अच्छरा, पढमज्झयणस्स उक्खेवओ-एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव परिस्सा पज्जुवासइ, तेणं कालेणं तेणं समएणं पउमावई देवी सोहम्मै कप्पे पउमवडेसए विमाणे सभाए सुहम्माए पउमंसि-सीहासणंसि जहा कालिए एवं अट्ट वि अज्झयणा काली गमएणं नायव्वा)

हे भदन्त ! नवमा वर्गने उत्क्षेपक केवी शीते छे ?

आ प्रभाण्णे जंजू स्वामीना प्रश्न कर्था आह सुधर्मा स्वामी तेमने उडे छे डे डे जंजू ! सांलणो, तमारो प्रश्नो उत्तर आ प्रभाण्णे छे—श्रमणु लगवान महावीरे आ वर्गनां यावत् आठ अध्ययनो प्ररूपित कर्था छे, ते आ प्रभाण्णे छे:—पद्मा १, शिवा २, शची ३, अंजू ४, रोहिणी ५, नवमिका ६, अचला ७ अने अप्सरा ८.

पुरुः । एवं गच्छ हे जम्भूः ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहे समवसरणम्= भगवान् महावीरस्य समागमनमभूत्, यावत्-परिपत् पर्युपास्ते । तस्मिन् काले तस्मिन् समये पद्मावती देवी, सौधर्मे कल्पे पद्मावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां पद्मे सिंहासने, यथा काल्याः । एवम् अपि अध्ययनानि कालीगमकेन=काली-देवीमद्गपाठेन जातव्यानि, नवरं=विशेषस्त्रयम्-पूर्वभवे श्रावस्त्यां नगर्यां 'दोज-

अध्ययन का उत्क्षेप त इस प्रकार से है—उस काल में और उस समय में राजगृह नगर में भगवान् महावीर का अगमन हुआ था । लोगों को जब इनके शुभागमन की खबर पड़ी तो वे सब के सब उनको वंदना करने के लिये और उनसे धर्मोपदेश का काम लेने के लिये उनके समीप पहुंचे । प्रभु ने आये हुए परिपद् को श्रुतचारित्ररूप धर्म का उपदेश दिया । उपदेश सुनने के बाद उसने प्रभु की यावत् पर्युपासना की । उस काल में और उस समय में पद्मावती देवी जो कि सौधर्मकल्प में पद्मावतंसक विमान में, सुधर्मा सभामें रहती थी और जिसके सिंहासन का नाम पद्म था श्रमण भगवान् महावीर को वंदना करने और उनसे धर्म का उपदेश सुनने के लिये वहां आई । इसके बाद का सम्बन्ध कालीदेवी का जैसा वर्णन पहिले किया गया है वैसा ही जानना चाहिये । इसी तरह से अवशिष्ट सात अध्ययन भी जानना चाहिये । इन आठों ही अध्ययनों का पाठ जैसा कालीदेवी का पाठ है वैसा ही है । कोई अन्तर नहीं है (नवरं) परन्तु जहां अन्तर है वह—

हे जम्भू ! आमां पडेला अध्ययनो उत्क्षेपक आ प्रमाणे छे—ते जणे अने ते समये राजगृह नगरमा लगवान महावीरनुं आगमन थयुं. लोकोने तेमना शुभागमननी वयारे वल्लु थरुं त्यारे तेओ सर्वे तेमने वंदन करवा माटे अने तेमनी पामेथी धर्मो उपदेश सांलगवा माटे तेमनी पासे गया. प्रभुओ आवेला सर्व लोकोने श्रुतचारित्र रूप धर्मो उपदेश संलगवाओ. उपदेश सांलगवाते लोकोओ प्रभुनी यावत् पर्युपासना करी. ते जणे अने ते समये पद्मावती देवी—हे जे सौधर्म इहपमां, पद्मावतंसक विमानमां सुधर्मा सभामां गडेती छती अने जेना सिंहासननुं नाम पद्म छतुं—श्रमणु लगवान महावीरने वंदन करवा अने तेमनी पामेथी धर्मो उपदेश सांलगवा त्यां आवी. जेना पडीनु वरुन पडेला करवामा आवेला काली देवीना वरुननी लेम नमउं लेंवु जेथेओ आ प्रमाणे ज आधीनां सात अध्ययनो त्रिये पणु वरुनी लेंवु जेथेओ ओ आठ आठ अध्ययनोना पाठ काली देवीना जेवो ज

णीओ ' द्वे जन्यौ=पद्मा-शिवाभिधे द्वे दारिके संजाते । एवं हस्तिनापुरे द्वे जन्यौ
श्रुतिः-अञ्जूः चेति, काम्पिल्यपुरे द्वे जन्यौ रोहिणीनवमिकानाभ्यौ, साकेतनगरे
द्वे जन्यौ अचला-अप्सरा इति संजाते । सर्वेषाम् ' पउमे ' पद्मः पद्मेति नामानः
पितरः, विजया=विजयानाभ्यो मातर आसन् । सर्वा अपि पार्श्वस्य=पार्श्वप्रभोर-
न्तिके प्रव्रजिताः, शक्रस्याग्रमहिष्यो जाताः । तासां स्थितिः सप्तपत्योपमानि ।
एताः सर्वा महाविदेहे वर्षे सेत्स्यन्ति यावत्सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति ॥सू० १४॥

॥ इति धर्मकथानां नवमो वर्गः समाप्तः ॥ ९ ॥

इस प्रकार से है-(सावत्थीए दोजणीओ) पद्मा और शिवा ये दो
कन्याएँ पूर्व भवर्षे श्रावस्ती नगरी में उत्पन्न हुईं (हत्थिणाउरे दोजणी-
ओ, काम्पिल्लपुरे दो जणीओ सागेयनयरे दो जणीओ पउमे पियरो
विजयाभायराओ सव्वाओवि पासस्स अंतिए पव्वइयाओ सक्कस्स अग्ग-
महिसीओ ठिई सत्तपलिओवमाइं महाविदेहे वासे सिज्झिहिंति जाव
अंतं काहिंति ' १४') श्रुति और अंजू ये दो हस्तिनापुरमें, रोहिणी,
नवमिका ये दो काम्पिल्यपुरमें, अचला एवं अप्सरा ये दो साकेत नगर
में, उत्पन्न हुईं । इन सब कन्याओंके पिता का नाम पद्म और माता का
नाम विजया था । ये सब कन्याएँ पार्श्वनाथ प्रभु के पास प्रव्रजित हुईं
हैं । शक्र की अग्रमहिषियां बनी हैं । इन की स्थिति सातपत्य थी । ये

छे तेम समञ्ज लेवु लेधये. तेमां केअ पणु जतनेा तक्षवत नथी. (णवरं)
परंतु ज्यां तक्षवत छे-ते आ प्रमाणे छे (सावत्थीए दोजणीओ) पद्मावती
अने शिवा आ अने कन्याओ पूर्वाभवमां श्रावस्ती नगरीमां उत्पन्न थधं.

(हत्थिणाउरे दो जणीओ, काम्पिल्लपुरे दो जणीओ सागेय नयरे दो जणीओ
पउमे पियरो विजया भायराओ सव्वाओवि पासस्स अंतिए पव्वइयाओ सक्कस्स
अग्गमहिसीओ ठिई, सत्त पलिओवमाइं महाविदेहे वासे सिज्झिहिंति जाव अंतं
काहिंति " १४ " ।)

श्रुति अने अंजू आ अने हस्तिनापुरमां, रोहिणी अने नवमिका आ
अने काम्पिल्यपुरमां, अचला अने अप्सरा आ अने साकेत नगरमां उत्पन्न
थधं. आ अधी कन्याओना पितानुं नाम पद्म अने मातानुं नाम विजया उंतुं.
आ अधी कन्याओ पार्श्वनाथ प्रभुनी पासे प्रव्रजित थधं छे अने शक्रनी
अग्रमहिषीओ (पटराणीओ) अनी छे. अमनी स्थिति सात पत्य लेटली

अथ दशमो वर्ग 'प्रारब्धते-दशमस्त' इत्यादि ।

मूष्-दशमस्त उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! जाव अट्ट
अज्जयणा पणत्ता, तं जहा-कण्हा य कण्हराई रामा तहराम-
रक्खिया वसू य । वसुयुत्ता वसुमित्ता वसुंधरा चेव ईसाणे ॥१॥
षडमज्जयणस्त उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं
ससएणं कण्हादेवी ईसाणे कप्पे कण्हयडेंसए विमाणे सभाए
सुहम्माए कण्हंसि सीहालणंसि सेसं जहा कालीए एवं अट्टवि
अज्जयणा कालीगसएणं षेवव्वा, णवरं पुट्टभवे वाणारसीए
नयरीए दो जणीओ रायगिहे नयरे दो जणीओ सावत्थीए
नयरीए दो जणीओ कोलंतीए नयरीए दो जणीओ, रामे
पिया धम्मा माया सव्वओऽवि पासस्त अरहओ अंतिए पव्व-
इयाओ पुप्फचूलाए अज्जाए सिस्सिणीयत्ताए ईसाणस्त अग्ग-
सहिसीओ ठिई णव पलिओवसाइं महाविदेहे वासे सिज्जि-
हिति बुज्जिहिति सुच्चिहिति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति । एवं
खलु जंबू ! णिक्खेवओ दशमवग्गस्त ॥ सू० १५ ॥

॥ दशमो वर्गो समाप्तो ॥ १० ॥

टीका—'दशमस्ते' ति दशमस्य उत्क्षेपकः । एवं खलु हे जम्बू ! यावत्
अष्ट-अव्ययानि प्रवृत्तानि तत्रया-तानि गायया प्रदर्श्यन्ते 'कण्हे' इत्यादि ।

सद्य महाविदेह क्षेत्रे ले सिद्ध अवस्था प्राप्त करेगी-यावत् सर्व दुःखो
का अन्त करेगी ॥ सू० १४ ॥

॥ नववर्गो समाप्तः ॥

छे आ षष्ठी मध्यविदेह क्षेत्रात्परी सिद्ध अवस्था प्राप्त करेये यावत् सर्व
दुःखोन्तो अन्त करेये ॥ सू० १४ ॥

नववर्गो वर्गो समाप्तः

“ कृष्णा १ च कृष्णराजिः २, रामा ३ तथा रामरक्षिका ४ वसूश्च ५ वसुगुप्ता ६, वसुमित्रा ७, वसुन्धरा ८ चैव ईशाने ॥ १ ॥ ”

तत्तन्नामभिरध्ययनानि प्रसिद्धानि । तत्र प्रथमाध्ययनस्योत्क्षेपकः । एवं खलु हे जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहे नगरे भगवतः श्रीमहावीर-

॥ दशमवर्गं प्रारंभ ॥

‘ दसमस्स उक्खेवओ ’ इत्यादि० “ १५ ”

टीकार्थ—(दसमस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू ! जाव अट्टअज्झयणा पणत्ता—तं जहां—कण्हाय कण्हराई, रामा, तह रामरक्खिया वसू य । वसुगुत्ता वसुमिक्खा वसुंधरा चैव ईसाणे “ १ ”—पढमज्झयणस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू !) हे भदन्त श्रमण भगवान महावीर ने दशवें वर्गका उत्क्षेपक किस प्रकार से कहा है ? इस तरह का जंबू ! स्वामी के प्रश्न का समाधान करने के निमित्त सुधर्मा स्वामी उनसे कहते हैं कि हे जंबू ! सुनो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—श्रमण भगवान महावीरने इस दशवें वर्ग के आठ अध्ययन प्रज्ञप्त किये हैं—वे ये हैं—कृष्णा १, कृष्णराजि २, रामा ३, रामरक्षिका ४, वसू ५, वसुगुप्ता ६, वसुमित्रा ७, और वसुंधरा । इन २ नामों द्वारा इन २ नाम वाले अध्ययन प्रसिद्ध हुए हैं । इनमें प्रथम अध्ययन का हे जंबू ! उत्क्षेपक

दशमो वर्ग प्रारंभ—

‘ दसमस्स उक्खेवओ ’ इत्यादि—

(दसमस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू ! जाव अट्ट अज्झयणा पणत्ता—तं जहां—कण्हाय कण्हराई, रामा तह रामरक्खिया वसू य । वसुगुत्ता वसुमिक्खा वसुंधरा चैव ईसाणे ॥ १ ॥ पढमज्झयणस्स उक्खेवओ—एवं खलु जंबू !)

हे भदन्त ! श्रमण भगवान महावीरने दशमा वर्गने उत्क्षेपक केनी रीते कही छे ?

आ प्रमाणेना जंभू स्वामीना प्रश्नने सांलणीने तेना समाधान माटे श्री सुधर्मा स्वामी तेमने कहे छे के हे जंभू ! सांलणे, तमारा प्रश्नने उत्तर आ प्रमाणे छे. श्रमण भगवान महावीरने आ दशमा वर्गने आठ अध्ययने प्रज्ञप्त कयां छे, ते आ प्रमाणे छे—कृष्णा १, कृष्णराजि २, रामा ३, रामरक्षिका ४, वसू ५, वसुगुप्ता ६, वसुमित्रा ७ अने वसुंधरा ८.

आ उक्खेवओ जंभू नामे वडे जे नामनां जंभूनां अध्ययने प्रसिद्ध थयां छे. हे जंभू ! आ अध्यामाथी पडेना अध्ययने उत्क्षेपक

श्राग्निः नमवमरणं यावत् परिपत् पर्युपास्ते, तस्मिन् काले तस्मिन् समये कृष्णा-
देवीईशाने कल्पे कृष्णावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां, कृष्ण सिंहासने, शेषं

इम तरह से हैं—(तेणं कालेण तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं जाव
परिसा पञ्जुवासइ) उस काल एवं उस समयमें राजगृह नगरमें भगवान्
महावीर का शुभागमन हुआ था। परिपद् उन को बंदना आदि करने
के लिये उनके समीप पहुँची। प्रभुने सबके लिये धर्म का उपदेश
सुनाया। लोगोंने उपदेश सुनकर प्रभु की पर्युपासना की (तेणं कालेणं
तेणं समएणं कण्हा देवी ईसाणे कप्पे कण्हेवडेंसए विमाणे सभाए
सुहम्मए कण्हंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालिए एव अविट्ठाअज्झ-
यणा कालीगमएणं जेयव्वा, णवरं पुव्वभवे वाणारसीए नयरीए दो
जणीओ रायगिहे नयरे दो जणीओ, सावत्थीए नयरीए दो जणीओ, को
संवीए नयरीए दो जणीओ रामे पिया धम्मा माया सव्वओऽवि पायस्स
अरहओ अंतिए पव्वइयाओ पुप्फाचूलाए अज्जाए निस्सिणीयत्ताए ईसा-
णम्म अग्गमहिंसीओ ठिई, णवपलिओवसाइ, महाविदेहे वासे सिज्झि-
हिति, बुज्झिहिति, मुच्चिहिति, सव्वदुक्खाणं, अंतंकार्हिति, एवं खलु
जंत्तु ! णिक्खेवओ दसमवग्गस्स) उसी काल और उसी समय वहाँ
कृष्णादेवी जो ईशान कल्प में कृष्णावतंसक विमान में रहती थीं—और

आ प्रभुछे छे (तेण कालेणं तेण समएण रायगिहे समोसरण, जाव परिसा
पञ्जुवासइ) ते क्षणे अने ते समये राजगृह नगरमां भगवान् महावीरनुं
शुभागमन थयु. तेभने वंदन करवा भाटे परिपट तेमनी पासे' पछाची. सौने
प्रभुओ धर्मोपदेश संलणाओ. धर्मोपदेश संलणीने परिपटे प्रभुनी पर्यु'पासना करी.

(तेणं कालेणं तेणं समएणं कण्हा देवी ईसाणे कप्पे कण्हेवडेंसए विमाणे
सभाए सुहम्मए कण्हंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालिए एव अविट्ठा अज्झयणा
कालीगमएणं जेयव्वा, णवरं पुव्वभवे वाणारसीए नयरीए दो जणीओ रायगिहे
नयरे दो जणीओ, सावत्थीए नयरीए दो जणीओ, कोसंवीए नयरीए दो जणीओ
रामे पिया धम्मा माया सव्वओऽवि पायस्स अरहओ अंतिए पव्वइयाओ पुप्फ
चूलाए अज्जाए निस्सिणीयत्ताए ईसाणम्म अग्गमहिंसीओ ठिई, णवपलि ओव-
साइ, महाविदेहे वासे सिज्झिहिति बुज्झिहिति, मुच्चिहिति, सव्वदुक्खाणं, अंतं
कार्हिति एवं खलु जंत्तु ! णिक्खेवओ दसमवग्गस्स)

ते क्षणे अने ते समये त्यां कृष्णा देवी—के जे ईशान—कल्पमां कृष्णा-
वतंसक विमानमा रहती र्हती अने जेनी सभानु नाम सुधर्मा तेभय
सिंहासतनुं नाम कृष्णा रतुं—आवी जेना पथीने पाड दक्षी देवीना

यथा काल्याः । एवमष्टा कृष्णराजिप्रभृतीनि अध्ययनानि कालीगमकेन=काली-
देवीसदृशपाठेन ज्ञातव्यानि नवरं=विशेषः यत्-पूर्वभवे वाणारस्यां नगर्यां द्वे=
कृष्ण-कृष्णराजिनाम्न्यौ जन्यौ=दारिके संजाते । एवं राजगृहे नगरे द्वे=वसु-
वसुगुप्ता नाम्न्यौ जन्यौ, कौशाम्ब्यां नगर्यां द्वे=वसुमित्रा-वसुन्धरा नाम्न्यौ
जन्यौ=दारिके समुत्पन्ने । सर्वासां रामः=रामाभिधः पिता, धर्मा=धर्माऽभिधा
माता । सर्वा अपि पार्श्वस्यार्हतोऽन्तिके प्रव्रजिताः, पुष्पचूलाया आर्यायाः शिष्या-
त्वेन पार्श्वप्रभुणा स्वयं प्रदत्ताः । ईशानस्य=ईशानेन्द्रस्य अग्रमहिष्यो जाताः । तत्र
तासां स्थितिर्नव पत्योपमानि वर्तते । ततश्च्युत्वा महाविदेहे वर्षे समुत्पद्य सेत्स्यन्ति,

जिसकी सभा का नाम सुधर्म तथा सिंहासन का नाम कृष्ण था आई ।
इस के आगे का पाठ कालीदेवी के वर्णन में जैसा पाठ कहा गया है
वैसा ही है । इसी तरह से कृष्णराजि प्रभृति अध्ययन भी-कालीदेवी
वर्णन में पठित पाठ के सदृश ही जानना चाहिये । कालीदेवी के पाठ
में और इन आठ अध्ययनोक्त पाठों में जो अन्तर है वह इस प्रकार
से है-पूर्वभव में वाणारसी नगरीमें कृष्णा और कृष्णराजि ये दो जनी
-उत्पन्न हुईं, राजगृहनगर में रामा और रामरक्षिका श्रावस्ती नगरी में
वसु, वसुगुप्ता और कौशांबी नगरी में वसुमित्रा एवं, वसुंधरा उत्पन्न
हुईं । इन सब के पिता का नाम राम और माताओं का नाम धर्मा था ।
ये सबकी सब पार्श्वनाथ प्रभु के पास प्रव्रजित हुईं । प्रभुने इन सब
को दीक्षित करके पुष्पचूला आर्या की शिष्यारूप से दिया । ये सब
इस ईशानेन्द्रकी अग्रमहिषी हुईं । वहां इनकी स्थिति नौ पत्योपम की
है । वहां से चक्कर ये महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होंगी और वहीं से

वर्षुनमां ने प्रभाणे पाठ कहेवाये छे ते प्रभाणे नः समञ्ज देवे
नेधये. आ प्रभाणे नः कृष्णराजि वगेरे अध्ययने पणु काली देवीना
पाठमां अने आ उक्त आठ अध्ययनेना पाठमां ने कंठ तक्षवत छे ते
आ प्रभाणे छे-पूर्वभवमां वाणारसी नगरीमां कृष्णा अने कृष्णराजि
आ अने उत्पन्न थछ, राजगृह नगरमां रामा अने रामरक्षिका श्रावस्ती
नगरीमां वसु, वसुगुप्ता अने कौशांबी नगरीमां वसुमित्रा अने वसुंधरा
उत्पन्न थछ. अमना पितानुं नाम राम अने मातानुं नाम धर्मा छतुं. अ
अधीअे पार्श्वनाथ प्रभुनी पासे प्रव्रज्या अड्यु करी छती. प्रभुअे सर्वेने
दीक्षित करीने पुष्पचूला आर्याने शिष्याअेना रुपमां सोंपी छती. अे अधी
ईशानेन्द्रनी अग्रमहिषीअे थछ. त्यां तेमनी स्थिति नव पत्योपमनी छे.
त्यांथी अवीने अे अधी महाविदेह क्षेत्रमां उत्पन्न थशे अने त्यांथी नः सिद्ध-

भोत्स्यन्ति, मोक्षयन्ति सर्वं दुःखानामन्तं करिष्यन्ति । एवं खलु हे जम्बू ! निक्षेपको दशमवर्गस्य ॥ सू० १५ ॥

॥ इति धर्मकथानां दशमो वर्गः समाप्तः ॥ १० ॥

मूलम्--एवं खलु जंबू समणेषां भगवया महावीरेण आदि-
गरेण सयंसंबुद्धेण पुरिसोत्तमेण जाव संपत्तेण धम्मकहाणं
अयमद्वे पणत्ते ॥

॥ धम्मकहासुयक्खंधो समत्तो दसहिं वग्गेहिं ॥

॥ णायाधम्मकहाओ समत्ताओ ॥

टीका—सुधर्मास्वामी कथयति—‘ एवं खलु ’ इत्यादि । एवं खलु हे जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण आदिकरेण तीर्थकरेण स्वयं सम्बुद्धेन पुरुषोत्तमेन

स्त्रिद्व पद की भोक्ता बनेंगी केवलज्ञानरूप आलोक से समस्त चराचर पदार्थों की ज्ञाता बनेंगी । द्रव्य एवं भावरूप समस्त कर्मों से छूटजावेगी इस तरह ये वहीं से समस्त दुःखों का अन्त करने वाली होंगी । इस प्रकार हे जंबू ! यह दशवेवर्ग का निक्षेपक है ।

॥ दसमवर्ग समाप्त ॥

‘ एवं खलु जंबू ! ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(एवं खलु जंबू ! समणेषां भगवया महावीरेण आदि-
गरेण तित्थगरेण सयंसंबुद्धेण पुरिसोत्तमेण जाव संपत्तेण धम्मकहाणं
अयमद्वे पणत्ते) अब जंबूम्वामी से श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं कि हे

५६ भेजवथे जे भधी केवणज्ञान रुप आलोकथी समस्त चर अने अचर पदार्थानुं ज्ञान भेजवथे. द्रव्य अने लावरूप भधा कर्माथी मुक्त थछ नथे. आ प्रभाणुं जे भधी त्यांथी न भधा दुःखेने अंत करनारी थथे. आ प्रभाणुं हे जंबू ! आ दशमा वर्गने निक्षेपक छे.

दशमो वर्ग समाप्त.

एवं खलु जंबू ! इत्यादि—

(एवं खलु जंबू ! समणेषां भगवया महावीरेण आदिगरेण तित्थगरेण सयं संबुद्धेण पुरिसोत्तमेण जाव संपत्तेण धम्म कहाणं अयमद्वे पणत्ते)

यावत् सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तेन धर्मकथानामयमर्थः प्रज्ञप्तः ॥

॥ धर्मकथानामको द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितक-
लापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूच्छ-
प्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त-'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुरराज-
गुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकरपूज्यश्री-घासीलाल-
व्रतिविरचितायां-ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रस्यानगारधर्माभृतवर्षि-
ण्याख्या व्याख्या समाप्ता ॥

जन्म। आदिकर, तीर्थङ्कर, स्वयं संशुद्ध पुरुषोत्तम, यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए ऐसे श्रमण भगवान महावीर ने धर्मकथा नामक द्वितीय श्रुतस्कंध का पूर्वोक्तरूप से अर्थ प्रज्ञप्त किया है। (धम्मकहासुयक्खंधो समत्तो दसहिं वग्गेहिं) धर्मकथा नामका यह द्वितीय श्रुतस्कंध दशवर्गों में समाप्त हुआ है। इस तरह (णायाधम्मकहाओ समत्ताओ) यह ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र समाप्त हुआ।

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर पूज्य श्री घासीलालजी महाराज कृत "ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र" की अनगारधर्माभृतवर्षिणी व्याख्या समाप्त ॥

इवे ञ'पू स्वामीने श्री सुधर्मा स्वामी कडे छे के छे ञ'पू। आदिकर तीर्थ'कर, स्वयं संशुद्ध, पुंशोत्तम यावत् सिद्धगति नामना स्थानने प्राप्त करी युकेला अेवा श्रमणु भगवान महावीरे धर्म'कथा नामना षीण श्रुतस्कंधने। पूर्वोक्त इये अर्थ प्रज्ञपित कर्यो छे. (धम्मकहा सुयक्खंधो समत्तो दसहिं वग्गेहिं) धर्म'कथा नामने आ षीणने श्रुतस्कंध दश वर्गोभां पूरो थयो छे. आ प्रभाणु (णायाधम्मकहाओ समत्ताओ) आ ज्ञाता धर्म'कथांङ्ग सूत्र पूं थयुं छे.

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर पूज्य श्री घासीलालजी महाराज कृत

"ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र" नी अनगारधर्माभृतवर्षिणी व्याख्या समाप्त

—:शास्त्रमशस्ति:—

काठियावाडदेशेऽस्ति, राजकोटपुरे शुभे

कोठारीहरगोविन्द काकानाम प्रसिद्धिमान् ।

तस्यास्तिभार्यापरमा सुशीला, धर्मानुरक्तागृहकार्यदक्षा ।

शान्तिप्रिया दीनदयार्द्रभावा, नाम्ना प्रसिद्धा किलरुक्मिणीसा ॥ २ ॥

दिनेशचन्द्रस्तनयोऽस्ति यस्य, कुलस्य दीपः सरलस्वभावः ।

कन्या सुशीला सरला जितुश्च—सदा—प्रमोदाय चकास्तिपित्रोः ॥ ३ ॥

व्याख्यानभवने तस्य, ज्ञाताधर्मकथाङ्गके ।

घासीलाछेन मुनिना कृता टीका सतां मुदे ॥ ४ ॥

द्विसहस्रचतुः संख्ये, विक्रमाब्दे रवौ दिने ।

माघे शुक्ले च पञ्चम्यां, सम्पूर्णा धर्मवर्षिणी ॥ ५ ॥

काठियावाडदेश में राजकोट नामका अच्छा नगर है। उस में कोठारी हरगोविन्दकाका रहते हैं। इनका सुशीलभार्याका नाम रुक्मिणी हैं। यह गृहकार्य में बहुत चतुर है। धर्मात्मा है, शान्ति प्रिया है एवं दीन दुःखियों के ऊपर सदा दया भाव रखती है। काका का कुल दीपक एक दिनेशचन्द्र नाम का पुत्र और जितु नाम की-कन्या है। ये दोनों माता पिता के प्रमोद के स्थान भूत हैं।

सुप्र घासीलाल मुनिराज ने उन्हीं के व्याख्यान भवन में ठहर कर विक्रम संवत् २००४ दिन रविवार माघशुक्ला पंचमी के दिन ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, सूत्र की यह टीका रचकर समाप्त की है।

काठियावाड प्रांतमां राजकोट नामे एक सरस रम्य नगर छे। तेमां कोठारी हरगोविन्द काका रहे छे तेमनी सुशील पत्नीतुं नाम रुक्मिणी छे। तेओ गृहकार्यमां बहुत चतुर छे, धर्मात्मा तेमज शान्ति प्रियापणु छे। तेओ गरीब दुःखीओना उपर दुभेशां दयाभाव राभे छे। काकाने कुलदीपक एक दिनेशचन्द्र नामे पुत्र अने जितु नामे एक कन्या छे। आ अने माता-पितानां प्रमोदनां आश्रयस्थाने छे

में घासीलाल मुनिराजे तेमनाज व्याख्यान भवनमां रहने विक्रम संवत् २००४ रविवार माघ शुक्ला पंचमीना दिवसे ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रनी आ टीका रचने पूरी करी छे।

बहुलः, तत्र-उत्कञ्चनम् सुगन्धजनवञ्चनप्रवृत्तस्य समीपागतविचक्षणभयात् तत्क्षणे-
 वञ्चनाकरणम् वञ्चनं=प्रतारणम्, माया=परवञ्चनबुद्धिः, निकृतिः=मायाप्रच्छाद-
 नार्थं मायान्तरकरणम्, कपटम्=वेपादिविपर्ययकरणम्, कूटम्=तुलातोलनका-
 दीनामन्यथाकरणम्, 'साइ' देशी गवदोऽयम्, विश्वासाभावः, एषां संप्रयोगो
 व्यवहारः स एव बहुलः प्रचुरो यस्य सः, 'निस्सीले' निःशीलः=शीलरहितः,
 'निवृत्त' निर्वृतः=अणुद्वतरहित, 'निर्गुणे' निर्गुण =गुणद्वतरहितः, 'निप-
 चक्रवाणपोमहोवशासे' निप्रत्याख्यान पौषधोपवासः = प्रत्याख्यानपौषधोप-
 वासरहितः 'बहूणं दुपयचउप्पयमियपसुपक्खिसरीसिवाणं घायाए वहाए उच्छाय-
 णाए' बहूनां द्विपदचतुष्पदमृगपशुपक्षिसरीसृपाणां घाताय, वशाय=सामान्य

हार इसके पास प्रचुर था। भोलेजनों के वंचन करने में प्रवृत्त हुआ
 वंचक जन जब पास में आये हुए जनको भय से नहीं ठगता है इस-
 का नाम उत्कंचन है। प्रतारण (ठगना) करना इसका नाम वंचन है।
 दूसरों का वंचन करने की बुद्धि का नाम माया है। अपनी मायाचारी
 को छिपा ने के लिये जो दूसरी मायाचाररूप क्रिया करनी होती है इस
 का नाम निकृति है। वेप आदि के परिवर्तन करने का नाम कपट है।
 तराजू एवं तोलने आदि के बांटों को कमती बढ़ती रखना इसका नाम
 कूट है। "साइ" यह देशीय शब्द है। इसका अर्थ विश्वास का
 अभाव होता है। यह निःशील था-शीलरहित था-निर्वृत था-व्रत
 रहित था, निर्गुण था-गुण रहित था, "प्रत्याख्यान और पौषधोपवास
 से वञ्चित था " बहूणं दुपयचउप्पयमियपसुपक्खिसरीसिवाणं घायाए
 वहाए उच्छायणाए अधम्मकेऊ समुट्टिए " अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग,

पुच्छ प्रमादमां इतो. भोगा माणुसेना वंचनमां प्रवृत्त थयेत्ते वंचक न्यारे
 पाने आवेत्ता माणुयने जीकथी इतो नथी तेनुं नाम उत्कंचन छे. प्रतारणनुं
 नाम वंचन छे. गीत माणुयने ठगवानी बुद्धिनुं नाम माया छे. पोतानी
 मयायारीने दुपावरा भाटे ले जीउ मायायार इप क्रिया करवामां आवे छे
 तेनुं नाम निकृति छे वेश वगेरे जइसकुं ते कपट कडेवाय छे त्राणवां तेमज
 केअवना वचनेने इइसं अने आरे करवां तेनुं नाम कूट छे. "साइ"
 आ देशीय शब्द छे तेने अर्थ विश्वासेना अभाव होय छे. ते निःशील
 इतो, शील रहित इतो, निर्वृत व्रत रहित इतो. निर्गुण इतो-गुण रहित
 इतो. प्रत्याख्यान अने पौषधोपवासधी वञ्चित इतो. "बहूणं दुपयचउप्पय-
 मियपसुपक्खिसरीसिवाणं घायाए वहाए - उच्छायणाए अधम्मकेऊ समुट्टिए "

विशेषप्रकारेण नाशाय, उत्सादनाय=द्विपदादिमकलजीवानां सर्वथा नाशाय च,
 'अधर्मकेज समुद्रिण' अधर्मकेतुः समुत्थितः-अधर्मः पापप्रधानो यः केतुः=
 केतुग्रहः, अधर्मकेतुः=उत्पातरूपधूमकेतुमहाग्रहः तद्वत् समुत्थितः । बहुणगर-
 णिगयजसे 'बहुनगरनिर्गतयशाः, बहुनगरेषु निर्गतं जनमुखाग्निःसृतं यशः
 ख्यातिं यस्य सः, प्रसिद्ध इत्यर्थः, शूरः 'दंढप्पहारी' दंढप्रहारी=दंढप्रहरणं
 शीलः 'साहसिए' साहसिकः=अविमृश्यकारी 'सद्वेधी' शब्दवेधी=शब्दश्रव-
 णेन लक्ष्यवेधी च आसीत् । 'से' सः = विजयश्वौरः खलु तत्र सिंहगुहायां
 चोरपल्ल्यां पञ्चानाम् चोरशतानाम् 'आहेवच्चं जाव' आधिपत्यं यावत्=
 स्वामित्वं कुर्वन् विहरति । ततः खलु स विजयस्तस्करः चोरसेनापतिः बहूनां
 चोराणां च 'पारदारियाणय' पारदारिकाणां=परस्त्रीगामिनां च 'गंठिभेय
 गाणय' ग्रन्थिभेदकानां 'संधिच्छेयगाणय' सन्धिच्छेदकानां=भित्तिसंधिं छित्त्वा
 ये धनमपहरन्ति ते संधिच्छेदका उच्यन्ते, तेषाम्, 'खत्तखणगाण य' क्षात्र-
 खनकानां=संधिरहितभित्ति खनकानाम्, 'रायावगारीणय' राजाऽपकारिणां=

पशु, पक्षी, सरीसृप आदि प्राणिघोके घातके लिये, बधके लिये, तथा उनके
 सर्वथा विनाशके लिये, यह अधर्मकेतुग्रह जैसा उदित हुआ था । अनेक
 नगरों में यह कुख्यात हो चुका था । बडा शूरवीर था । इसका प्रहार
 बहुत गहरा होता था । विना विचारे काम करना ही इसका स्वभाव था
 शब्द श्रवण कर यह अपने लक्ष्य के वेधने में बडा निपुण था । वह
 विजय चौर सिंहगुफा नाम की उस चोरपल्ली में पांचसौ चोरों का
 आधिपत्य यावत् स्वामित्व करता हुआ रहता था । (तएणं से विजय
 तक्करे चोरसेणावई बहूणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयगाण य
 संधिच्छेयगाण य खत्तखणगाण य, रायावगारीण य अणधारंगाण य

घण्टा द्विपद, यतुपद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृप (साप) वगैरे प्राणीयोना
 घात भाटे, वध भाटे तेमज तेमना सर्वनाश भाटे ते अधर्म केतुमडनी
 जेमज उदय पाभ्यो डतो. घण्टां नगराभां ते कुख्यात थछ युक्त्यो डतो. ते
 लारे शूरवीर डतो, तेना प्रहार भूष ज लारे थतो डतो. वगर विचार्या काम
 करवाभां ज तेना स्वभाव डतो. शब्द श्रवणु करीने ते पोताना लक्ष्यनि वीधी
 नाभवामां भूष ज निपुणु डतो. ते विजय चौर सिंह गुफा नामनी ते चौर-
 पद्वीभां पांचसो चोरानो स्वामी-यावत् स्वामित्वं लोगवतो रहतेो डतो.

(तएणं से विजयतक्करे चोरसेणावई बहूणं चोराण य पारदारियाण य
 गंठिभेयगाण य संधिच्छेयगाण य खत्तखणगाणय, रायावगारीण य अण